નમો અરિહંતાણં
નમો સિદ્ધાણં
નમો આયરિયાણં
નમો ઉવજ્ઝાયાણં
નમો લોએ સવ્વ સાહૂણં
એસો પંચ નમુક્કારો
સવ્વ પાવપ્પણાસણો
મંગલાણં ચ સવ્વેસિં
પઢમં હવઈ મંગલં

જિનાગમ પ્રકાશન યોજના

પ. પૂ. આચાર્યશ્રી ઘાંસીલાલજી મહારાજ સાહેબ
કૃત વ્યાખ્યા સહિત

DVD No. 2
(Full Edition)

:: યોજનાના આયોજક ::

શ્રી ચંદ્ર પી. દોશી - પીએચ.ડી.

website : www.jainagam.com

SHREE ANUYOGDWAR SUTRAM

શ્રી અનુયોગદ્વાર સૂત્રમ

પ્રથમ વિભાગ

શ્રી અનુયોગ દ્વાર સૂત્રમ
(ભાગ–૧)

પ્રભુદાસ
મોટી શેરી ચાંદી બોડ,
રાજકોટ. (ગુજરાત)

ચંદ્રકાંત પ્રભુદાસ દોશી

जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलालजी-महाराज-

विरचितया अनुयोगचन्द्रिकाख्यया व्याख्यया समलङ्कृतं

हिन्दी-गुर्जर-भाषाऽनुवादसहितम्

श्री अनुयोगद्वारसूत्रम्

(प्रथमो भागः)

नियोजक :

संस्कृत-प्राकृतज्ञ-जैनागमनिष्णात-प्रियव्याख्यानि

पण्डितमुनि-श्रीकन्हैयालालजी-महाराजः

प्रकाशकः

सांणदनिवासी-श्रेष्ठिश्री डोसाभाई गोपालदासस्मरणार्थं

तत्पुत्रप्रदत्त-द्रव्यसाहाय्येन

अ० भा० श्वे० स्था० जैनशास्त्रोद्धारसमितिप्रमुखः

श्रेष्ठि-श्रीशान्तिलाल-मङ्गलदासभाई-महोदयः

मु० राजकोट

प्रथमा-आवृत्तिः	वीर संवत्	विक्रम-संवत्	ईसवीसन्
प्रति १२००	२४९३	२०२३	१९६७

मूल्यम्-रू० २५-०-०

મળવાનું ઠેકાણું :
શ્રી અ. ભા. શ્વે. સ્થાનકવાસી
જૈનશાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ,
ઠે. ગરેડિયા કૂવા રોડ,
રાજકોટ, (સૌરાષ્ટ્ર).

Published by :
Shri Akhil Bharat S. S.
Jain Shastroddhara Samiti,
Garedia Kuva Road, RAJKOT,
(Saurashtra), W. Ry, India.

卐

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां,
जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः ।
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा,
कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥ १ ॥

卐

हरिगीतच्छन्दः

卐

करते अवज्ञा जो हमारी यत्न ना उनके लिये ।
जो जानते हैं तत्त्व कुछ फिर यत्न ना उनके लिये ॥
जनमेगा मुझसा व्यक्ति कोई तत्त्व इससे पायगा ।
है काल निरवधि विपुलपृथ्वी ध्यान में यह लायगा ॥ १ ॥

મૂલ્યઃ ૩. ૨૫=૦૦

પ્રથમ આવૃત્તિ પ્રત ૧૨૦૦
વીર સંવત્ ૨૪૯૩
વિક્રમ સંવત્ ૨૦૨૩
ઇસવીસન ૧૯૬૭

: મુદ્રક :
મણિલાલ છગનલાલ શાહ
નવપ્રભાત પ્રિન્ટીંગ પ્રેસ,
ઘીકાંટા રોડ, અમદાવાદ.

પ્રભુદાસ મુળજી દોશી
ગાંધી ચોરી માંડવી ચોક,
રાજકોટ. (ગુજરાત)

श्री

अनुयोगद्वारसूत्र भाग पहेले की

विषयानुक्रमणिका

अनुक्रमांक	विषय	पृष्ठांक
१	मंगलाचरण	१- २
२	विषयों का विवरण	३-१३
३	पांच प्रकार के ज्ञान के स्वरूप का निरूपण	१३-२९
४	श्रुतज्ञान के स्वरूप का निरूपण	३०-५७
५	आवश्यक के अनुयोगस्वरूप का निरूपण	५८-६०
६	आवश्यक के निक्षेप का निरूपण	६१-६३
७	नामावश्यक के स्वरूप का निरूपण	६४-७२
८	स्थापनावश्यक के स्वरूप का निरूपण	७२-७७
९	नामावश्यक और स्थापनावश्यक के भेद का कथन	७८-८५
१०	द्रव्यावश्यक का निरूपण	८६-१०१
११	नयभेद से द्रव्यावश्यक के स्वरूप का निरूपण	१०२-११५
१२	नो आगम से द्रव्यावश्यक का निरूपण	११६-११९
१३	ज्ञायक शरीर द्रव्यावश्यक का निरूपण	११९-१२६
१४	भव्यशरीर द्रव्यावश्यक निरूपणम्	१२७-
१५	ज्ञायक शरीर भव्य शरीर व्यतिरिक्त द्रव्यावश्यक का निरूपण	१३१-१३२
१६	लौकिक द्रव्यावश्यक का निरूपण	१३२-१४१
१७	कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यक का निरूपण	१४२-१५०
१८	ज्ञायक शरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्त लोकोत्तरीय द्रव्यावश्यक का निरूपण	१५०-१५९
१९	भावावश्यक का निरूपण	१५९-१६४
२०	नो आगम भावावश्यक का निरूपण	१६४-१६८

२१	कुप्रावचनिक भावावश्यक का निरूपण	१६८–१७०
२२	लोकोत्तरीय भावावश्यक का निरूपण	१७१–१७७
२३	भावावश्यक के पर्याय का निरूपण	१७८–१८२
२४	नामश्रुतका निरूपण	१८३–१८४
२५	आगम से द्रव्य श्रुतका निरूपण	१८४–१८६
२६	नो आगम से द्रव्यावश्यक का निरूपण	१८६–१८७
२७	ज्ञायक शरीर द्रव्यश्रुतका निरूपण	१८७–१८८
२८	भव्यशरीर द्रव्यश्रुतका निरूपण	१८९–१९०
२९	ज्ञायक शरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्यश्रुतकानिरूपण	१९०–१९९
३०	आगमसे भावश्रुतका निरूपण	२००–२०१
३१	लौकिक नो आगम से भावश्रुतका निरूपण	२०२–२०५
३२	लोकोत्तरीय नो आगमसे भावश्रुतका निरूपण	२०६–२१०
३३	भावश्रुत के पर्यायों का निरूपण	२१०–२१२
३४	स्कन्धाधिकार का निरूपण	२१३–२१५
३५	द्रव्यस्कन्ध का निरूपण	२१६–२१८
३६	द्रव्यस्कन्ध के सचित्तरूप प्रथम भेद का निरूपण	२१९–२२१
३७	अचित्त द्रव्यस्कन्ध का निरूपण	२२२–२२३
३८	मिश्र द्रव्यस्कन्ध का निरूपण	२२४–२२७
३९	अकृत्स्नस्कन्ध का निरूपण	२२८–२३०
४०	अनेक द्रव्यस्कन्ध का निरूपण	२३१–२३४
४१	आगमसे भावस्कन्ध का निरूपण	२३५–
४२	नो आगमसे भावस्कन्ध का निरूपण	२३६–२३८
४३	स्कन्धों के पर्यायों का निरूपण	२३९–२४१
४४	आवश्यक के छ अध्ययनों का निरूपण	२४१–२४५
४५	आवश्यक व्याख्यात हो चुके और आगे व्याख्यात होने वाले विषय का निरूपण	२४५–२५१
४६	लौकिक उपक्रम का निरूपण	२५१–२५३

४७	सचित्त द्रव्योपक्रम का निरूपण	२५४–२५७
४८	द्विपद संबंधी द्रव्योपक्रम का निरूपण	२५७–२५९
४९	चतुष्पद विषयक दोनों प्रकार के उपक्रम का निरूपण	२६०–२६१
५०	अपद् विषय दोनों प्रकार के उपक्रम का निरूपण	२६१–२६२
५१	अचित्त द्रव्योपक्रम का निरूपण	२६२–२६३
५२	मिश्र द्रव्योपक्रम का निरूपण	२६३–२६५
५३	क्षेत्रोपक्रम का निरूपण	२६६–२६९
५४	कालोपक्रम का निरूपण	२६९–२७१
५५	नो आगम से भावोपक्रम का निरूपण	२७१–२८४
५६	शास्त्रभावोपक्रम का निरूपण	२८४–२८५
५७	आनुपूर्वी आदि के स्वरूप का निरूपण	२८६–
५८	नामादि आनुपूर्वी का निरूपण	२८७–३०४
५९	औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी का निरूपण	३०५–३१६
६०	नैगमव्यवहारअर्थपदका निरूपण	३१७–३१९
६१	भङ्गसमुत्कीर्तनता का निरूपण	३१९–३२७
६२	भङ्गोपदर्शनता का निरूपण	३२७–३३४
६३	समवतार के स्वरूप का निरूपण	३३५–३३९
६४	अनुगमके स्वरूप का निरूपण	३३९–३४३
६५	सत्पद का निरूपण	३४३–३४४
६६	द्रव्यप्रमाण का निरूपण	३४५–३४७
६७	क्षेत्रप्रमाण का निरूपण	३४८–३५५
६८	स्पर्शनाद्वार का निरूपण	३५५–३६०
६९	कालद्वार का निरूपण	३६१–३६४
७०	अन्तरद्वार का निरूपण	३६५–३७६
७१	भागद्वार का निरूपण	३७६–३८३
७२	भावद्वार का निरूपण	३८३–३८७

७३	अल्प बहुत्वद्वार का निरूपण	३८७–३९७
७४	अर्थपद का निरूपण	३९९–४०२
७५	भङ्ग समुत्कीर्तनता का निरूपण	४०३–४०५
७६	भङ्गोपदर्शनता का निरूपण	४०६–४०८
७७	समवतार के स्वरूप का निरूपण	४०८–४१०
७८	अनुगम के स्वरूप का निरूपण	४१०–४२४
७९	पूर्वानुपूर्वी आदि तीन भेदों का निरूपण	४२५–४३१
८०	पुद्गलास्तिकायको अधिकृत करके तीन द्रव्यों का निरूपण	४३१–४३८
८१	क्षेत्रानुपूर्वी का निरूपण	४३९–४४२
८२	अर्थपद की प्ररूपणा	४४२–४४८
८३	अर्थपद प्ररूपणा के प्रयोजन का निरूपण	४४९–४५०
८४	भङ्गसमुत्कीर्तनता के प्रयोजन का निरूपण	४५१–४५२
८५	भङ्गोपदर्शनता का निरूपण	४५२–४५६
८६	समवतार का निरूपण	४५६–४५७
८७	अनुगम का निरूपण	४५८–४५९
८८	द्रव्यप्रमाण का निरूपण	४६०–४६४
८९	क्षेत्रप्रमाणद्वार का निरूपण	४६५–४७७
९०	स्पर्शनाद्वार का निरूपण	४७७–४७९
९१	कालद्वार का निरूपण	४८०–४८४
९२	अन्तरद्वार का निरूपण	४८५–४९०
९३	भागद्वार का निरूपण	४९१–५००
९४	भावद्वार का निरूपण	५०१–५०२
९५	अल्पबहुत्वद्वार का निरूपण	५०३–५१०
९६	अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी का निरूपण	५११–५१६
९७	औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी का निरूपण	५१६–५२३
९८	अधोलोक गत क्षेत्रानुपूर्वी का निरूपण	५२३–५२६

९९	तिर्यग्लोक क्षेत्रानुपूर्वी का निरूपण	५२७–५३२
१००	ऊर्ध्वलोक क्षेत्रानुपूर्वी का निरूपण	५३३–५३९
१०१	कालानुपूर्वी आदि का निरूपण	५३९–५४०
१०२	नैगमव्यवहारनयसंमत अर्थपद का निरूपण	५४१–५४७
१०३	नैगमव्यवहारनयसंमत भङ्गसमुत्कीर्तन का निरूपण	५४८–५५०
१०४	नैगमव्यवहारनयसंमत भङ्गोपदर्शन का निरूपण	५५१–५५४
१०५	समवतार के स्वरूप का निरूपण	५५५–५५६
१०६	अनुगम के स्वरूप का निरूपण	५५७–५६२
१०७	क्षेत्रद्वार और स्पर्शनाद्वार का निरूपण	५६३–५७३
१०८	कालद्वार का निरूपण	५७४–५७७
१०९	अन्तरद्वार का निरूपण	५७७–५८७
११०	अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी का निरूपण	५८७–५८८
१११	अर्थपदप्ररूपण आदि का निरूपण	५८८–५८९
११२	औपनिधिकी कालानुपूर्वी का निरूपण	५९०–६०१
११३	उत्कीर्तनानुपूर्वी का निरूपण	६०१–६०५
११४	गणनानुपूर्वी का निरूपण	६०५–६०८
११५	संस्थानानुपूर्वी का निरूपण	६०८–६१४
११६	सामाचार्यानुपूर्वी का निरूपण	६१४–६२३
११७	भावानुपूर्वी का निरूपण	६२३–६२८
११८	उपक्रम के दूसरेभेद नाम का निरूपण	६२८–६३०
११९	एक नाम के स्वरूपका निरूपण	६३०–६३२
१२०	द्विनाम आदिके स्वरूपका निरूपण	६३३–६४४
१२१	त्रिनाम के स्वरूपका निरूपण	६४५–६५५
१२२	पर्यवनामका निरूपण	६५५–६६६
१२३	प्रकारान्तरसे त्रिनामका निरूपण	६६६–६७१
१२४	चतुर्नामका निरूपण	६७१–६७७
१२५	पांचनामों का निरूपण	६७७–६७९
१२६	छ नामों का निरूपण	६७९–६८२
१२७	औदयिकादि भावों के स्वरूपका निरूपण	६८२–६९१
१२८	औपशमिक भावका निरूपण	६९३–६९६

१२९	क्षायिक भावका निरूपण	६९७–७१९
१३०	क्षायोपशमिक भावका निरूपण	७२०–७२५
१३१	पारिणामिक भावका निरूपण	७३५–७४५
१३२	सान्निपातिक भावका निरूपण	७४५–७४६
१३३	द्विकादि संयोगका निरूपण	७४७–७५६
१३४	द्विकादि त्रिकसंयोगज सांनिपातिकभावका निरूपण	७५७–७७२
१३५	चतुष्कसंयोगज सांनिपातिक भावका निरूपण	७७२–७८२
१३६	पंचक संयोगज सांनिपातिक भावका निरूपण	७८२–७८८
१३७	सप्तनामका निरूपण	७८९–७९२
१३८	कारणदर्शनपूर्वक स्वरोंका निरूपण	७९२–७९८
१३९	सात स्वरों के लक्षण का निरूपण	७९८–८०२
१४०	स्वरों के ग्राम एवं मूर्च्छना का निरूपण	८०३–८०५
१४१	स्वर के उत्पत्ति आदि का निरूपण	८०६–८०८
१४२	गीत में हेय और उपादेय का निरूपण	८०८–८२१
१४३	अष्ट नाम का निरूपण	८२१–८२७
१४४	नव नाम का निरूपण	८२८–८३३
१४५	लक्षणपूर्वक वीररस का निरूपण	८३३–८३६
१४६	लक्षणपूर्वकशृंगाररस का निरूपण	८३६–८३९
१४७	लक्षण सहित अद्भुतरस का निरूपण	८३९–८४०
१४८	लक्षण सहित रौद्ररस का निरूपण	८४१–८४४
१४९	लक्षणसहित व्रीडनकरस का निरूपण	८४५–८४८

समाप्त

卐

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

श्री जैनाचार्य–जैनधर्मदिवाकर–पूज्यश्री घासीलालव्रतिविरचितया
अनुयोगचन्द्रिकाख्यया व्याख्यया समलङ्कृतम्–

श्री_अनुयोगद्वारसूत्रम्

(प्रथमो भागः)

(मालिनी वृत्तम्)

शिवसरणिविधानं जीवरक्षैकतानं,
सुरनरकृतगानं केवलज्ञानभानम् ।
प्रशमरसनिदानं ज्ञानदानप्रधानं,
परमसुखनिधानं वर्धमानं नमामि ॥ १ ॥

(२)

करणचरणधारं सर्वपूर्वाब्धिपारं,
शुभतरगुणधारं प्राप्तसंसारपारम् ।
कलितसकललब्धिं लब्धविज्ञानसिद्धिं,
गणधरमभिरामं गौतमं तं नमामि ॥ २ ॥

॥ श्री ॥

अनुयोगद्वार सूत्र का हिन्दी भाषान्तर प्रारम्भ

मैं उन अंतिम तीर्थंकर श्री महावीर जिनेन्द्र को नमस्कार करता हूँ कि जिन्होंने ४ घातिक कर्मों का अत्यंत विनाश करके केवलज्ञानरूपी अनन्त प्रकाश प्राप्त कर लिया है। और इसी कारण जो मोक्षमार्ग के विधायक तथा अनन्त अव्याबाध सुख के निधान (निधि) बने हैं। भव्य जीवों को जो प्रधानरूप से ज्ञान का दान देते हैं और जीवों की रक्षा करने में सदा तत्पर रहते हैं। देव और मनुष्य जिनके गुणों का गान करते हैं तथा जो प्रशम (शांत) रस के निदान–आदिकारण हैं ॥१॥

અનુયોગદ્વાર સૂત્રનું ભાષાન્તર પ્રારંભ—

જેમણે ચાર ઘાતિયા કર્મોનો સંપૂર્ણતઃ ક્ષય કરીને કેવળજ્ઞાનરૂપી અનંત પ્રકાશને પ્રાપ્ત કરી લીધો છે, અને તે કારણે જેઓ મોક્ષમાર્ગના વિધાયક તથા અનંત અવ્યબાધ સુખના નિધાન (નિધિ) બનેલા છે, જેઓ ભવ્ય જીવોને મુખ્યત્વે જ્ઞાનનું દાન દે છે અને જીવોની રક્ષા કરવામા જે સદા તત્પર રહે છે, દેવો અને મનુષ્યો જેમના ગુણો ગાય છે, અને જેઓ શાન્તરસના નિદાન આદિકારણ છે એવાં અંતિમ તીર્થંકર શ્રી મહાવીર જિનેન્દ્રને હું નમસ્કાર કરું છું. ॥ ૧ ॥

(पृथ्वीच्छन्दः)

सगुप्तिसमितिं समां विरतिमादधानं सदा,
क्षमावदखिलक्षमं कलितमञ्जुचारित्रकम् ।
सदोरमुखवस्त्रिका विलसिताननेन्दुं गुरुं,
दुरन्त भववारिधिप्लवमपूर्वबोधं स्तुवे ॥३॥

(गीतिः)

भव्यानामुपकृतये, प्रवचनसिद्धान्तबोधिनीं सरलाम् ।
घासीलालः कुरुते, व्याख्यामनुयोगचन्द्रिकां शिवदाम् ॥ ४ ॥

जो करणसत्तरि और चरणसत्तरि के धारण करने वाले हैं। समस्त १४ पूर्वरूप समुद्र के जो पारगामी हैं। अत्यन्त श्रेष्ठ सम्यग्दर्शनादि गुणों के जो धारक हैं। संसार का पार जिन्होंने पा लिया है। समस्त लब्धियों के जो भंडार हैं विज्ञान (विशिष्ट ज्ञान) की सिद्धि जिन्हें प्राप्त हो चुकी है– ऐसे उन मुनिश्रेष्ठ गौतम गणधर को मैं नमस्कार करता हूँ । ॥२॥

जो तीन गुप्तियों सहित पांच समितियों को और समस्त विरति को सदा धारण करते हैं । पृथ्वी की तरह जो सर्वसह हैं। निर्मल चारित्र के जो आराधक हैं। वायुकायादिक जीवों की रक्षा के लिये सदोरकमुख-वस्त्रिका से जिन का मुखचन्द्र सर्वदा सुशोभित होता रहता है। जो इस दुरन्त संसाररूप समुद्र में प्रवहण–(नौका) के जैसे हैं। ऐसे अपूर्व बोध विशिष्ट गुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूं । ॥३॥

જેઓ કરણસત્તરિ (સત્તર કરણ) અને ચરણસત્તરિ (સત્તર ચરણ)ના ધારક છે, સમસ્ત ૧૪ પૂર્વરૂપ સમુદ્રનો પાર જેમણે પામી લીધો છે, અત્યંત શ્રેષ્ઠ સમ્યગ્દર્શન-આદિ ગુણોથી જેઓ વિભૂષિત છે, જેમણે પોતાના સંસારનો અન્ત કરી નાખ્યો છે, જેઓ સમસ્ત લબ્ધિયોના ભંડાર છે, અને વિજ્ઞાન (વિશિષ્ટ જ્ઞાન)ની સિદ્ધિ જેમને થઇ ચુકી છે એવાં મુનિશ્રેષ્ઠ ગૌતમ ગણધરને હું નમસ્કાર કરું છું ॥ ૨ ॥

ત્રણ ગુપ્તિઓ અને પાંચ સમિતિઓ તથા સમસ્ત વિરતિને સદા ધારણ કરનારા, પૃથ્વીના જેવા સહિષ્ણુ, નિર્મલ ચારિત્રના આરાધક, સદોરકમુખવસ્ત્રિકા (મુહપત્તી) વડે જેમનું મુખચન્દ્ર સદા સુશોભિત રહે છે, જેઓ આ દુરન્ત સંસારમાં ભ્રમણ કરતાં જીવો માટે નૌકા સમાન છે, એવાં અપૂર્વ બોધવિશિષ્ટ ગુરૂદેવને હું નમસ્કાર કરું છું. ॥ ૩ ॥

इह मनुष्यजन्म दुर्लभं, यथा—केनाऽपि क्रीडापरेण देवेन यदि माणिक्यमयं स्तम्भं वज्रेण चूर्णीकृत्य परमाणुतुल्यं तच्चूर्णं नलिकान्तर्निधाय मेरुशिखरं समारुह्य फूत्कृतमभीर्णंस्तच्चूर्णं सकलं सर्वतः समुड्डायितं भवेत्। तदनन्तरं च यदि विक्षिप्तास्ते परमाणवः प्रचण्डपवनोद्धुताः सर्वासु दिक्षु दूरं गता एकैकशो विभिन्नाः पतिताः स्यु स्तदा तान् परमाणुरूपान् सर्वतः संचित्य तैः पुनः

मैं घासीलाल मुनिव्रति भव्य जीवों के उपकार के निमित्त प्रवचन के सिद्धान्त को स्पष्ट करनेवाली अनुयोगद्वार सूत्र पर अनुयोगचन्द्रिका नाम की सरल व्याख्या को कि जो भव्य जीवों के लिये आनन्दप्रद है-रचता हूं। ॥४॥

इस चतुर्गतिरूप संसार में मनुष्य जन्म बहुत दुर्लभ है। इस की दुर्लभता शास्त्रकारोंने इस प्रकार से—प्रकट की है—जैसे क्रीडा में तत्पर बना हुआ कोई—देव माणिक्य के स्तम्भ को वज्र से तोडकर चूर २ कर देवें, और फिर उस चूर्ण को एक नली के भीतर भरकर मेरु के शिखर पर खडा २ अपनी फूंक से इधर उधर दिशाओं में उसे सब ओर उडादेवें। इस तरह सर्व दिशाओं में बिखरे हुए वे चूर्ण परमाणु कि जिन्हें प्रचंड वायु के वेग ने एक २ करके बहुत अधिक दूरतक तितर बितर कर लिया है अब यदि वह देव-उन बिखरे हुए विभिन्न परमाणुओं को सर्व दिशाओ से एकत्रित

ભવ્ય જીવોના ઉપકારને માટે, પ્રવચનના સિદ્ધાન્તનું સ્પષ્ટીકરણ કરનારી, અનુયોગદ્વાર સૂત્રની અનુયોગચન્દ્રિકા નામની સરળ વ્યાખ્યા, કે જે ભવ્ય જીવોને માટે આનંદપ્રદ છે, તેની હું ઘાસીલાલજી મુનિ, રચના કરું છું. ॥ ૪ ॥

ચાર ગતિવાળા આ સંસારમાં મનુષ્યજન્મની પ્રાપ્તિ થવી ઘણી દુષ્કર છે. તેની દુષ્કરતાનું શાસ્ત્રકારોએ નીચેના દૃષ્ટાન્ત દ્વારા પ્રતિપાદન કર્યું છે.

ધારો કે કોઇ એક દેવ ક્રીડામાં તત્પર બનેલો છે. તે વજ્રની મદદથી માણેકના સ્તંભને તોડી નાખીને તેના ચૂરેચૂરા કરી નાખે છે. ત્યાર બાદ તે ચૂર્ણને એક નળીમાં ભરી લે છે. ત્યારબાદ તે દેવ તે માણેકના ભૂકાથી ભરેલી નળીને લઇને મેરૂ પર્વતના શિખર ઉપર જઇને ઊભો રહે છે અને ફૂંક મારી મારીને તે નળીમાં ભરેલા માણેકના ભૂકાને ચારે દિશાઓમાં ઉડાડી દે છે. ત્યાર બાદ પ્રચંડ વાયુ ફુંકાવાને લીધે ચારે દિશાઓમાં વિખરાયેલા તે માણેકના પરમાણુઓ દૂર દૂર સુધી ઊડી જઇને વેર વિખેર થઈ જાય છે. હવે ધારો કે તે દેવ એવો વિચાર કરે કે સર્વ દિશાઓમાં વેરવિખેર પડેલા તે માણેકના પરમાણુઓને એકત્ર કરીને ફરીથી

स्तम्भनिष्पादनं दुष्करं, तथैव चतुर्गतिसंसारेषु भ्रमतां जीवानां मनुष्यजन्म दुर्लभम् तथा चायं संग्रहश्लोकः—

"चूर्णीकृत्य पराक्रमान्मणिमयं स्तम्भं सुरेण स्वयं,
मेरौ सन्नलिकासमीरवशतः क्षिप्तं रजो दिक्षु तत् ।
स्तम्भस्तैः परमाणुभिः सुमिलितैर्लोके यथा दुष्करः,
संसारे भ्रमतो मनुष्यजननं जन्तोस्तथा दुर्लभम्" ॥ इति।

एवंविधमतिदुर्लभं मानुषं जन्म सम्प्राप्य, मिथ्यात्वतिमिरप्रणाशकं श्रद्धाज्योतिःप्रकाशकं तत्त्वातत्त्वविवेचकं पीयूषपानमिव हितावहं चञ्चच्चन्द्रचन्द्रिकामिव हृदयाह्लादकं स्वप्नदृष्टवस्तुनः पुनर्जाग्रदवस्थायां—तल्लाभवत्प्रमोदजनकं भूमिगतनिधानप्राप्तिमिव सुखजनकसकलसन्तापहारकं धर्मश्रवणं समुपलभ्य,

---

कर पुनः उनसे मणिमय स्तंभ बनाना चाहे तो जिस प्रकार यह स्तंभ निर्माण कार्य उसका दुष्कर है, उसी प्रकार से इस चतुर्गतिरूप संसार में भटकते हुए जीवों को मनुष्य जन्म-मिलना दुर्लभ है । यही बात इस "चूर्णीकृत्य—इत्यादि श्लोक द्वारा कही गई है । इस तरह से अति दुर्लभ बने हुए मनुष्यजन्म को पाकर के और इसमें भी मिथ्यात्वरूप अन्धकार को नाश करनेवाले, श्रद्धारूप ज्योति का प्रकाश करनेवाले एवं तत्त्व और अतत्त्व का स्वरूप कहने वाले, ऐसे धर्म का श्रवण कि जो जीव के लिये अमृतपान के समान हितकारक है—चमकती हुई चन्द्रिका के समान, हृदयानन्दजनक है—जागृत अवस्था में स्वप्नदृष्ट वस्तुकी प्राप्ति के समान प्रमोदकारक है, भूमिगतनिधान की प्राप्ति के समान सुखदायक और समस्त सन्तापों का नाशक है, प्राप्त करके तथा इसके प्रभाव से

તેમાંથી માણિક્ય સ્તંભનું નિર્માણ કરું. તો તે વેર વિખર થઇને પડેલા પરમાણુઓને એકત્ર કરીને તેમાંથી માણિક્ય સ્તંભનું નિર્માણ કરવાનું કામ તે દેવને માટે જેટલું દુષ્કર છે, એટલું જ દુષ્કર ચાર ગતિવાળા આ સંસારમાં ભટકતાં જીવોને માટે મનુષ્ય જન્મની પ્રાપ્તિરૂપ કાર્ય છે. એજ વાત સૂત્રકારે "चूर्णीकृत्य" ઇત્યાદિ શ્લોક દ્વારા પ્રકટ કરી છે.

આ રીતે અતિ દુર્લભ એવા મનુષ્યજન્મને પ્રાપ્ત કરીને, મિથ્યાત્વરૂપ અંધકારનો નાશ કરનાર, શ્રદ્ધારૂપી જ્યોતિને પ્રકાશિત કરનાર, તત્ત્વ અને અતત્ત્વના સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કરનાર, એવા ધર્મનું શ્રવણ કે જે જીવોને માટે અમૃતપાન સમાન હિતકર છે, જે ચમકતી એવી ચન્દ્રિકાના પ્રકાશસમાન હૃદયને આનંદદાયક છે, જાગૃત અવસ્થામાં જે સ્વપ્નદૃષ્ટ વસ્તુની પ્રાપ્તિના સમાન પ્રમોદકારક છે, જે ભૂમિની

संसारसागरतरणतरणिं मिथ्यात्वतिमिरहरणद्युमणिं स्वर्गापवर्गसुखचिन्तामणिं क्षपकश्रेणिसरणिं कर्मरिपुदमनीं केवलदर्शनजननीं श्रद्धामवाप्य, कर्मरजःप्रक्षालने जलमिव भोगभुजङ्गनिवारणे मंत्रमिव, कर्मघनाघनविकरणे पवनमिव केवलज्ञानभास्करप्रकटने प्राचीदिशमिव साद्यनन्तमुक्तिसाम्राज्याभिलषितप्रापणौ कल्पतरुमिव संयमं लब्ध्वा, हेयोपादेयतत्त्वस्वरूपनिरूपणप्रवणावधा-

---

संसारसागर से पार उतारने के लिये, तरणि—नौका—जैसी मिथ्यात्वरूप—गहन अन्धकार को नाश करने के लिये सूर्य जैसी स्वर्ग और मोक्ष के सुखों को देने के लिये चिन्तामणि जैसी और क्षपकश्रेणि पर आरूढ कराने के लिये नसैनी (निसरणी) जैसी, ऐसी श्रद्धा को कि जो जीवों के अनादि संचित कर्मरूप रिपुओं को नाश करने वाली होती है एवं केवलज्ञान और केवलदर्शन को जन्म देने वाली होती है प्राप्त करके तथा जल के समान संचित कर्मरूपरज को धोनेवाले मंत्र के समान भोगरूप भुजंग को दूर करनेवाले, पवन के समान भविष्यत् कालीन कर्मरूप मेघों को उडा देनेवाले, अर्थात् (विखेरनेवाले) पूर्व दिशा के समान केवलज्ञानरूप सूर्य को प्रकटित करनेवाले, और कल्पवृक्ष के समान सादि-अनंत मुक्ति के साम्राज्यरूप इच्छित पदार्थ की प्राप्ति करा देने वाले, ऐसे संयम को प्राप्त करके तथा—हेय

નીચે છુપાયેલા ખજાનાની પ્રાપ્તિસમાન સુખદાયક છે, જે સમસ્ત સંતાપોનું નાશક છે, એવા ધાર્મિક પ્રવચનનું ભાવિક જીવે શ્રવણ કરવું જોઇએ.

આ પ્રકારના ધર્મશ્રવણને પ્રાપ્ત કરીને, તેના પ્રભાવથી સંસારસાગરને પાર કરવાને માટે શ્રદ્ધાની ખાસ જરૂર રહે છે તે શ્રદ્ધાને અહીં નૌકા સમાન કહી છે, કારણ કે સંસારસાગરને પાર કરવામાં તે નૌકાની ગરજ સારે છે. એવી નૌકા સમાન, મિથ્યાત્વરૂપ ગહન અન્ધકારને ભેદવામાં સૂર્યસમાન, સ્વર્ગ અને મોક્ષના સુખ પ્રાપ્ત કરાવવામાં ચિન્તામણિ રત્ન સમાન ક્ષપકશ્રેણિ પર આરોહણ કરાવવામાં નિસરણી સમાન, એવી શ્રદ્ધા ધર્મતત્ત્વ પ્રત્યે હોવી જોઇએ. એવી શ્રદ્ધા જીવોના અનાદિ કાળથી સંચિત કર્મરૂપ શત્રુઓનો નાશ કરનારી અને કેવળજ્ઞાન અને કેવળદર્શનની પ્રાપ્તિ કરાવનારી હોય છે.

જળની જેમ સંચિત કર્મરૂપ રજને ધોનાર, મંત્રની જેમ ભોગરૂપ ભુજંગને દૂર કરનાર, પવનની જેમ ભવિષ્યકાલિન કર્મરૂપ વાદળોને અસ્તવ્યસ્ત કરી નાખનાર, પ્રાચી દિશા (પૂર્વ દિશા) સમાન કેવળજ્ઞાનરૂપ સૂર્યને પ્રકટ કરનાર, અને કલ્પવૃક્ષ સમાન આદિ અનંત મુક્તિના સામ્રાજ્યરૂપ ઇચ્છિત પદાર્થની પ્રાપ્તિ કરાવનાર એવા

सुखजनकानि आचाराङ्गादिसूत्राणि विधिवदधीत्य, संसारवारिधिमहातरणिं शिवपद-सरलसरणिं सिद्धिपददायकं सकलगुणनायकम् अनादिं भवसंचिताष्टविधकर्मबन्धनोच्छेदकं मिथ्यात्वग्रन्थिभेदकं सम्यग्ज्ञानवर्षणे समर्थं सूत्रपरमार्थं स्वपरसमयरहस्यं च विज्ञाय, तथाविधकर्मक्षयोपशमसम्भविनीं प्रकटतत्त्व स्वरूपनिदर्शिनी द्रव्यगुणपर्यायविषयविज्ञां विशदप्रज्ञां समधिगत्य, प्रवचनानुयोगकरणे यतिभिर्यतितव्यम् ।

और उपादेयरूप वस्तुओं के स्वरूप के निरूपक एवं अव्याबाध सुख के जनक आचाराङ्ग आदि-आगम शास्त्रों का सविधि अध्ययन करके, तथा-संसारसमुद्र से पार उतारने में महातरणि जैसे-और शिवपद के सोपान जैसे, सूत्र के परमार्थ को एवं स्व-पर समय के रहस्य को कि जिसके बल पर जीव को सिद्धि गति की प्राप्ति होती है. और जीवों के अनादि भव परम्परा से संचितअष्टविध कर्मों का समूह विनाश होता है तथा-मिथ्यात्वरूपी अन्तरंग ग्रन्थि (गांठ)का जो भेदक होता है और सम्यग्ज्ञानरूपी वर्षा को जो बरसाने में समर्थ होता है, जान करके, तथा तथाविधकर्म—ज्ञानावरणीय—के क्षयोपशम से उत्पन्न—हुई विशदप्रज्ञा को कि जो समस्त तत्त्वों के स्वरूप का यथार्थ दर्शन कराती है, और जिससे—द्रव्यों के सहवर्ती गुणों एवं क्रमवर्ती पर्यायों का वास्तविक भान होता है इस बात को जान करके मोक्षाभिलाषियों का कर्तव्य है कि वे प्रवचन के व्याख्यान करने में प्रयत्नशील रहें ।

સંયમને પ્રાપ્ત કરીને તથા હેય અને ઉપાદેયરૂપ વસ્તુઓના સ્વરૂપના નિરૂપક અને અવ્યાબાધ સુખના જનક આચારાંગ આદિ આગમશાસ્ત્રોનું વિધિપૂર્વક અધ્યયન કરીને તથા સંસાર સાગરને તરી જવામાં મહાતરણિ (નૌકા) જેવા. શિવપદના સોપાન ન, સૂત્રના પરમાર્થને પ્રકટ કરનાર, સ્વ અને પર સમયના (જૈન સિદ્ધાંત અને સિદ્ધાંતોના) રહસ્યને પ્રકટ કરનાર, જેના પ્રભાવથી જીવને સિદ્ધિની પ્રાપ્તિ થાય છે, અનાદિ ભવ પરમ્પરાથી સંચિત અષ્ટવિધ કર્મોના સમૂહનો જેના દ્વારા વિનાશ થઈ જાય છે, તથા મિથ્યાત્વરૂપ અન્તરંગ ગ્રન્થિનું જે ભેદક હોય છે, અને સમ્યક્ જ્ઞાનરૂપ વર્ષા વરસાવવાને જે સમર્થ હોય છે, એવા પ્રવચનનું શ્રવણ કરવામાં તથા પઠન કરવામાં જીવે તત્પર રહેવું જોઈએ જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મોના ક્ષયોપશમથી ઉત્પન્ન થયેલી વિશદ પ્રજ્ઞા કે જે સમસ્ત તત્ત્વોના સ્વરૂપનું યથાર્થ દર્શન કરાવે છે, અને જેના દ્વારા દ્રવ્યોના સહવર્તી ગુણો અને ક્રમવર્તી પર્યાયોનું વાસ્તવિક ભાન થાય છે, એ વાતને સમજીને મોક્ષાભિલાષી જીવોએ પ્રવચનનું વ્યાખ્યાન કરવામાં પ્રયત્નશીલ રહેવું જોઈએ.

ननु कस्तावदनुयोगः ? उच्यते-युज्यते=संबध्यते भगवदुक्तार्थेन सहेति योगः कथनलक्षणो व्यापारः, अनुरूपोऽनुकूलो वा योगः अनुयोगः। भगवद्भाषितार्थतो न्यूनाधिकविपरीतभाववैलक्षण्यमीषदपि गणधरोक्तसूत्रेषु नास्ति-इति भगवदुक्तार्थानुरूपः प्रतिपादनलक्षणो व्यापारोऽनुयोग-इति निष्कर्षः।

अयमनुयोगश्चतुर्धा—(१) चरणकरणानुयोगः (२) धर्मकथानुयोगः, (३) गणितानुयोगः, (४) द्रव्यानुयोगश्च।

शंका—अनुयोग शब्द का क्या अर्थ है,

उत्तर—भगवान् ने अर्थरूप से जो प्रवचन की प्ररूपणा की है उसी के अनुसार अनुकूल-जो वक्ता द्वारा प्रवचन का कथन किया जाता है-उसका नाम अनुयोग है।

यहां पर कथन करनेरूप व्यापारका नाम योग है। भगवद्भाषित अर्थ को गणधरों ने सूत्ररूप से ग्रथित किया है। सो इस ग्रथनकार्य में उन्होंने अपनी तर्क से कुछ भी मिश्रण नहीं किया है—किन्तु जैसा प्रभु का कथन था उसी के अनुसार उन्होंने न्यूनता, अधिकता विपरीतता, एवं भाववैलक्षण्य का परिहार करते हुए ज्यों का त्यों कथन किया-है-उसे सुसंबद्ध किया है। इसी कारण गणधरोक्त सूत्रों में न्यूनता अधिकता आदि बातें जरासी भी मात्रा में नहीं हैं। इस तरह "भगवदुक्त अर्थ के अनुरूप प्रतिपादन रूप जो व्यापार है—उसका नाम अनुयोग है" यह इसका निष्कर्षार्थ है।

પ્રશ્ન-"અનુયોગ" શબ્દનો શો અર્થ થાય છે ?

ઉત્તર-ભગવાને અર્થરૂપ જે પ્રવચનની પ્રરૂપણા કરી છે, તેને અનુકૂળ અથવા તેની અનુસાર વક્તાદ્વારા પ્રવચનનું જે કથન કરાય છે તેનું નામ અનુયોગ છે.

અહીં કથન કરવારૂપ વ્યાપારને યોગ કહેવામાં આવેલ છે. ભગવદ્ભાષિત અર્થને ગણધરોએ સૂત્રરૂપે ગ્રથિત કર્યો છે. પરન્તુ તે ગ્રંથનકાર્યમાં તેમણે પોતાની કલ્પનાથી કોઈ પણ વસ્તુનો ઉમેરો કર્યો નથી ભગવાનનું જે પ્રકારનું કથન હતું તેને અનુરૂપ કથન જ તેમણે કર્યું છે. ભગવાનના કથનમાં સહેજ પણ વધારો કે ઘટાડો કર્યા વિના, તથા વિપરીતતા અને ભાવવૈલક્ષણ્યનો પરિહાર કરીને તેમણે તે કથન અનુસારનું જ કથન સૂત્રરૂપે ગ્રંથિત કરેલું છે. તે કારણે ગણધરો દ્વારા કથિત સૂત્રોમાં ન્યૂનતા, અધિકતા આદિનો અલ્પ માત્રામાં પણ સદ્ભાવ નથી. આ પ્રકારે ભગવદુકત (અર્હંતો દ્વારા કથિત) અર્થને અનુરૂપ પ્રતિપાદન રૂપ જે વ્યાપાર છે તેનું નામ જ અનુયોગ છે. આ પ્રકારનો અનુયોગ પદનો અર્થ ફલિત થાય છે.

यथा गणधरेण सुधर्मस्वामिना जम्बूस्वामिनं प्रति भगवदुक्तार्थानुरूपकथनरूपोऽनुयोग उपक्रमादीनि चत्वारि द्वाराणि समाश्रित्य कृतस्तथाऽन्येनाप्याचार्येण शिष्येभ्यः सूत्रार्थकथनरूपोऽनुयोगः कर्त्तव्यः। यद्यपि सर्वेषामागमानामनुयोगः कर्त्तव्यः, तथाऽप्यत्रसूत्रे आवश्यकस्यानुयोगः प्रस्तुतः। आवश्यकस्यानुयोगकरणे समर्थः खलु सर्वेषामागमानामनुयोगकरणे समर्थो भवति। तस्मादनुयोगविधिजिज्ञासुना मुनिनाऽनुयोगद्वारसूत्रमध्येतव्यम्। इदं च सूत्रं द्रव्यानुयोगान्तर्गतम्।

यह अनुयोग चार प्रकार का है—(१) चरणकरणानुयोग (२) धर्मकथानुयोग (३) गणितानुयोग और (४) द्रव्यानुयोग।

जिस प्रकार से गणधर सुधर्मा स्वामीने जंबूस्वामी के प्रति भगवदुक्त अर्थ के अनुसार कथन करनेरूप अनुयोग का उपक्रम आदि चार द्वारों का आश्रय करके किया है उसी तरह से अन्य आचार्य को भी शिष्यो के—प्रति सूत्रार्थ का कथन करनेरूप अनुयोग करना चाहिये। यद्यपि आचार्य को शिष्यों के लिये समस्त आगमों का अनुयोग कर्तव्य है, फिर भी इस सूत्र में आवश्यक का अनुयोग प्रस्तुत किया गया है।-क्यों कि आवश्यक के अनुयोग करने में समर्थ—बना हुआ मुनिजन समस्त आगमों के अनुयोग करने में शक्तिशाली हो जाता है। इसलिये अनुयोग की विधि को जानने की इच्छा रखनेवाले मुनिजन को इस अनुयोगद्वारसूत्र का अध्ययन अवश्य करता चाहिये। इस सूत्र का अन्तर्भाव द्रव्यानुयोग में हुआ है। अनुयोग शब्द का अर्थ व्याख्यात है।

આ અનુયોગ નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકારના છે—(૧) ચરણકરણાનુયોગ, (૨) ધર્મકથાનુયોગ, (૩) ગણિતાનુયોગ અને (૪) દ્રવ્યાનુયોગ.

જે પ્રકારે ગણધર સુધર્માસ્વામીએ પોતાના શિષ્ય જંબૂસ્વામીની સમક્ષ ભગવદુકત અર્થને અનુરૂપ કથન કરવા રૂપ અનુયોગનું ઉપક્રમ આદિ ચાર દ્વારોનો આશ્રય લઈને કથન કર્યું છે; એજ પ્રમાણે અન્ય આચાર્યોએ પણ શિષ્યોના હિતને માટે સૂત્રાર્થનું કથન કરવા રૂપ અનુયોગ કરવો જોઈએ. જો કે આચાર્યોએ શિષ્યોને માટે સમસ્ત આગમોનો અનુયોગ કરવો જોઈએ, પરન્તુ આ સૂત્રમાં આવશ્યકનો અનુયોગ પ્રસ્તુત કરવામાં આવ્યો છે, કારણ કે આવશ્યકનો અનુયોગ કરવાને સમર્થ હોય એવા આચાર્ય અથવા મુનિજન સમસ્ત આગમોનો અનુયોગ કરવામાં સમર્થ બની જાય છે. તેથી અનુયોગની વિધિને જાણવાની ઇચ્છાવાળા મુનિઓએ આ અનુયોગદ્વાર સૂત્રનું અધ્યયન અવશ્ય કરવું જોઈએ. આ શબ્દનો અન્તર્ભાવ (સમાવેશ) દ્રવ્યાનુયોગમાં થયો છે. અનુયોગ શબ્દનો અર્થ વ્યાખ્યાત સમજવો.

अस्य शब्दार्थस्त्वेवम्–अनुयोगस्य–व्याख्यानस्य द्वाराणि अनुयोगद्वाराणि, तत्प्रतिपादकं सूत्रम्–अनुयोगद्वारसूत्रम्। अनुयोगस्य चत्वारि द्वाराणि सन्ति। तद्यथा-उपक्रमः, निक्षेपः, अनुगमः, नयश्चेति। तत्र उपक्रमः–उपक्रमणम् उपक्रमः। व्याख्येयवस्तुनो नामनिर्देशः, व्याचिख्यासितशास्त्रस्य तैस्तैः प्रतिपादनप्रकारैः समीपीकरणं न्यासदेशानयनं निक्षेपयोग्यताकरणमित्यर्थः। उपक्रान्तं हि उपक्रमान्तर्गतभेदैर्विचारितं–निक्षिप्यते, नत्वनुपक्रान्तम् १। निक्षेपः–निक्षेपणं निक्षेपः –उपक्रमानीतस्य व्याचिख्यासितस्य षड्विधावश्यकादेः शास्त्रस्य नाम स्थापनादि भेदेन निरूपणम् २। अनुगमः–अनुगमनम्–अनुगमः। नामादिना निक्षिप्तस्य शास्त्रस्यानुकूलं ज्ञानम्, अनुकूलार्थकथनं च ३। नयः–नयति=अनेकांशात्मकं वस्तु

इस व्याख्यानरूप अनुयोग के द्वारों का प्रतिपादन करनेवाला जो सूत्र –आगम–है वह अनुयोगद्वार सूत्र है। अनुयोग के चार द्वार हैं। वे इस प्रकार से हैं–[१] उपक्रम (२) निक्षेप, (३) अनुगम और (४) नय। व्याख्येय वस्तु के नाम का कथन करना अर्थात् व्याचिख्यासित-व्याख्या से युक्त करने की इच्छा के विषयभूत बने हुए शास्त्र को उस २ रूपसे प्रतिपादन करने की शैली से न्यासदेश में लाना–निक्षेप की योग्यतावाला उसे बनाना इसका नाम उपक्रम है। उपक्रान्त-उपक्रम के अन्तर्गत भेदों से विचारित-वस्तु का ही तो निक्षेप होता है। अनुपक्रान्त का नहीं। षड्विध आवश्यक आदि शास्त्र का कि जो उपक्रमित एवं व्याचिख्यासित है, नाम स्थापना आदि के भेद से निरूपण करना इसका नाम निक्षेप हैं। नामादि के भेद से निरूपित शास्त्र का अनुकूल ज्ञान होना और अनुकूल उसके अर्थ का कथन करना इसका नाम अनुगम है। अनेक–धर्मात्मक वस्तु को एकांश के

આ વ્યાખ્યાનરૂપ અનુયોગના દ્વારોનું પ્રતિપાદન કરનાર જે સૂત્ર–આગમ–છે, તેનું નામ અનુયોગદ્વાર સૂત્ર છે. અનુયોગના જે ચાર દ્વાર છે, તે નીચે પ્રમાણે છે. (૧) ઉપક્રમ, (૨) નિક્ષેપ, (૩) અનુગમ અને (૪) નય. વ્યાખ્યેય વસ્તુના નામનું કથન કરવું એટલે કે વ્યાચિખ્યાસિત વ્યાખ્યાથી યુકત કરવાની ઇચ્છાના વિષયરૂપ બનેલ શાસ્ત્રને તે તે રૂપે પ્રતિપાદન કરવાની શૈલી વડે ન્યાસદેશમાં લાવવું. તેને નિક્ષેપની યોગ્યતાવાળું બનાવવું તેનું નામ ઉપક્રમ છે. ઉપક્રાન્ત-ઉપક્રમના અન્તર્ગત ભેદોની અપેક્ષાએ વિચારાયેલી વસ્તુનો જ નિક્ષેપ થાય છે–અનુપક્રાન્તનો થતો નથી. જે ઉપક્રમિત અને વ્યાચિખ્યાસિત છે એવા છ પ્રકારના આવશ્યક આદિ શાસ્ત્રનું નામ સ્થાપના આદિ ભેદોથી નિરૂપણ કરવું. તેનું નામ નિક્ષેપ છે નામાદિના ભેદથી નિરુપિત શાસ્ત્રનું અનુકૂળ જ્ઞાન હોવું અને તેના અર્થનું અનુકૂળ કથન કરવું

एकांशावलम्बनेन प्रतीतिपथं प्रापयतीति नयः, नयनम्=अनन्तधर्मात्मकस्य वस्तुनो नियतैकधर्मात्मकतावलम्बनेन प्रतीतौ प्रापणं नयः। अनन्तधर्मात्मकस्य वस्तुन एकांशपरिच्छेदो नय इति ४।

अत्र नगरदृष्टान्तमाह—

यथा द्वाररहितं नगरं नगरमेव न भवति। यद्येकस्यामेव प्राच्यां दिशि द्वारं भवेत्, तर्हि तत्र गजरथतुरगपदातीनां नगरवासिनां तदितरेषामागन्तुकानां जनानां च संघर्षे निर्गमः प्रवेशो वा दुष्करोऽनर्थकरश्च भवति।

અવલમ્બન સે જો પ્રતીતિ કરાતા હૈ, ઇસકા નામ નય હૈ। નગર કે દૃષ્ટાન્ત સે ઇન ચારોં દ્વારોં કા સ્પષ્ટીકરણ ઇસ પ્રકાર સે હૈ—જિસ નગર કો દ્વાર નહીં હોતા હૈ વહ વાસ્તવ મેં નગર હી નહીં માના જાતા હૈ। જિસ નગર મેં કેવલ પૂર્વદિશા મેં હી દ્વાર હો તો વહાં કે રહનેવાલે ગજ, તુરગ આદિ જાનવરોં કા મનુષ્યો કા, તથા બાહર સે આયે હુએ પ્રાણિયોં કા આને જાને મેં સંઘર્ષ હોને પર પ્રવેશ ઔર નિર્ગમ દુષ્કર બન જાતા હૈ, તથા વહ આના જાના અનર્થોત્પાદક ભી હોતા હૈં। ઇસી પ્રકાર સે ઉસ નગર મેં પ્રવેશ કરને કે લિયે કેવલ પૂર્વ ઔર પશ્ચિમ દિશા મેં એક ૨ દ્વાર હો તો ઐસી સ્થિતિ મેં યદ્યપિ પૂર્વ પશ્ચિમ દિગ્વિભાગવર્તી પ્રાણિયોં કો આને જાને મેં સરલતા ભલે હી રહે, પરન્તુ જો ઔર દિશાઓં મેં વહાં રહતે હૈં, ઉન્હે તથા બાહર સે આનેવાલે જો પ્રાણી હૈં ઉન્હેં ઔર ગજ, રથ તુરગ, આદિ જો જાનવર હૈં—ઉન્હેં સંઘર્ષ

તેનું નામ અનુગમ છે. અનેક ધર્માત્મક અર્થાત્ અનેક ધર્મના સ્વભાવવાળી વસ્તુની જે એકાંશના અવલંબનથી પ્રતીતિ કરાવે છે તેનું નામ નય છે.

નગરના દૃષ્ટાન્ત દ્વારા આ ચાર દ્વારોનું હવે સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે-

જે નગરને દરવાજો જ ન હોય તેને વાસ્તવિક રીતે તો નગર જ કહી શકાય નહીં. કોઈ નગરને માત્ર પૂર્વાદિ કોઇ એક જ દિશામાં એક જ દરવાજો હોય, તે નગરમાં દાખલ થવાનું કે તે નગરમાંથી બહાર જવાનું કાર્ય મુશ્કેલ બની જાય છે, કારણ કે હાથી, ઘોડા આદિ પ્રાણીઓ તથા મનુષ્યોની અવરજવરમાં સંઘર્ષ થવાને કારણે તે નગરમાં પ્રવેશ કરવાનું કે તે નગરમાંથી બહાર નીકળવાનું કાર્ય દુષ્કર બની જાય છે, તથા તે અવર-જવર કયારેક અનર્થોત્પાદક પણ બની જતી હોય છે. કોઇ નગરમાં પૂર્વ પશ્ચિમ બે દિશામાં બે દ્વારો હોય તો તે તે દિશામાં રહેલા પ્રાણીઓ અને મનુષ્યોને તો અવર જવર કરવાની અનુકૂળતા રહે છે, પરન્તુ અન્ય દિશાઓમાં જે પ્રાણીઓ અને મનુષ્યો રહેતા હોય છે, તેમને તો અવર-જવરમાં મુશ્કેલી જ પડે છે. અન્ય દિશાઓમાંથી નગરમાં પ્રવેશ કરતાં હાથી, રથ ઘોડા આદિ પ્રાણીઓ અને નગરની બહાર જતા પ્રાણીઓ વચ્ચે સંઘર્ષ થયા જ કરે છે, તે કારણે તે

प्राच्यां पश्चिमायां च दिशि द्वारसद्भावे तत्तद्दिग्भागवर्त्तिनां निर्गमप्रवेशसौकर्येऽपि तदितरदिग्भागवर्तिनां नगरान्तर्निवासिनां तदितरेषां बाह्य देशादागतानां च जनानां गजरथतुरगादीनां च संघर्षे निर्गमः प्रवेशो वा दुष्करोऽनर्थकरश्च भवति, तथैव त्रिषु दिग्भागेषु द्वारत्रयसद्भावेऽपि जनानां निर्गमः प्रवेशो वा दुष्करोऽनर्थकरश्च भवति, यत्र तु नगरे चतसृषु दिशासु चत्वारि मूलद्वाराणि, तथा तदनुगतानेकमार्गसंलग्नरथ्याद्वाराणि विद्यन्ते. तत्र निर्गमः प्रवेशो वा सुकरो भवति। तथैवावश्यकरूपं नगरमपि उपक्रमादिद्वाररहितं नाधिगन्तुं शक्यते। न च केवलमुपक्रमद्वारेण, नापि वा द्वाभ्यामुपक्रमनिक्षेपाभ्यां, न चापि त्रिभिरुप-

---

होने पर आना जाना बडा मुश्किल हो जाता है। परस्पर में धक्कमधक्का होने से अनेक प्रकार के अनिष्ट भी हो जाते हैं। इसी तरह से यदि उसमें प्रवेश करने के लिये तीन द्वार हों, तो कुछ पहिले की अपेक्षा प्रवेश निर्गम में सरलता होने पर भी सर्वथा सरलता नहीं आती है। परन्तु जब उसमें आने जाने के लिये चारो दिशाओं में चार दरवाजे हों, तथा और भी अनेक मार्ग संलग्न रथ्याद्वार हों, तो फिर आने जाने में किसी प्रकार का संघर्ष न होने से कोई भी प्राणी को रुकावट नही होती है और न किसी प्रकार के अनर्थ होने की संभावना ही रहती है। ठीक इसी प्रकार से आवश्यकरूप नगर भी यदि उपक्रम आदि चार द्वारों से विहीन हो तो वह ज्ञान का विषयभूत नहीं बन सकता अर्थात् उसका वास्तविक रहस्यज्ञात नहीं हो सकता, अतः उसे वास्तविकरूप में जानने के लिये इन चार ही उपक्रम आदि द्वारों की परम

નગરમાં પ્રવેશ કરવાનું અને તે નગરમાંથી નિર્ગમન કરવાનું કાર્ય મુશ્કેલ જ થઇ પડે છે. ત્યાં એકબીજા વચ્ચે ધક્કા ધક્કી થવાથી અનેક પ્રકારના અનિષ્ટો પણ ઉદ્ભવે છે. એજ પ્રમાણે જો તે નગરને ત્રણ દિશાઓમાં ત્રણ દરવાજા રાખ્યા હોય તો પહેલા અને બીજા પ્રકારના નગર કરતાં પ્રવેશ અને નિર્ગમમાં અધિક સરળતા તો રહે છે, પણ સંપૂર્ણ સરળતા તો રહેતી નથી. પણ જો નગરમાં આવવા–જવા માટે ચારે દિશાઓમાં ચાર દરવાજા રાખ્યા હોય, તથા બીજા માર્ગોને જોડતાં બીજાં પણ ઉપદ્વારો રાખ્યાં હોય, તો ત્યાં અવરજવરમાં કોઇ પણ પ્રકારનો સંઘર્ષ થતો નથી–કોઈ પણ બે પ્રાણીઓ વચ્ચે ધક્કાધક્કી ચાલતી નથી અને તે કારણે ત્યાં કોઇ પણ પ્રકારના અનર્થની શકયતા રહેતી નથી. ત્યાં પ્રાણીઓ અને મનુષ્યો સરળતાથી પ્રવેશ પણ કરી શકે છે અને નિર્ગમ પણ કરી શકે છે. એજ પ્રમાણે આવશ્યકરૂપ નગર પણ જો ઉપક્રમ આદિ ચાર દ્વારોથી રહિત હોય, તો જ્ઞાનના વિષયરૂપ બની શકતું નથી–એટલે કે તેનું વાસ્તવિક રહસ્ય જાણી શકાતું નથી. તેથી તેને યથાર્થરૂપે જાણવા માટે ઉપક્રમ આદિ આ ચારે

क्रमनिक्षेपानुगमैर्द्वारैरेतदर्थमधिगन्तुं शक्यते । तदर्थानधिगमे च सति क्लेशो ऽनर्थश्च जायते । भेदप्रभेदसहितोपक्रमादिद्वारचतुष्टयसद्भावे तु स्वल्पेनैव कालेन तत्सुगमं शाश्वतसुखप्रदं च भवति। तस्माद् द्वारचतुष्टयमाश्रित्य षड्विधावश्यक-प्रतिपादनार्थमिदं सूत्रं प्रस्तुतम् ।

इह शास्त्रे प्रवृत्त्यर्थमादावानुबन्धचतुष्टयं विज्ञेयम्। तच्च विषयः, प्रयोजनं संबन्धः, अधिकारी चेति। तत्र विषयोऽभिधेयः-स चेह उपक्रमादीन्यनुयोग-

---

आवश्यकता है। केवल एक उपक्रमद्वार से या उपक्रम निक्षेपरूप दो द्वारों से अथवा उपक्रम निक्षेप और अनुगम इन तीन द्वारों से उसका अर्थ नहीं जाना जा सकता । अर्थाधिगम—पदार्थ के ज्ञान हुए विना क्लेश एवं अनर्थ होता है। जब भेद प्रभेद सहित इन उपक्रम आदि चार द्वारों का उसमें सद्भाव होता है, तो उनकी सहायता से स्वल्प काल में ही वास्तविकरूप में शास्त्र के अर्थ का बोध सुगमरीति से हो जाता है और इस से वह शास्त्र शाश्वत सुख प्रद भी हो जाता है। इसलिये सूत्रकारने इन पूर्वोक्त चार द्वारों को लेकर षड् विध आवश्यकों को प्रतिपादन करने के लिये इस सूत्र को प्रस्तुत किया है ।

इस शास्त्र में प्रवृत्ति होने के निमित्त चार बातों की आवश्यकता है। उनका नाम अनुबंध चतुष्टय है। और वे "विषय, प्रयोजन, संबन्ध अधिकारी" ये हैं। जो इस शास्त्र का अभिधेय है. वह विषय है। वह विषय उपक्रमादि चार

દ્વારોની પરમ આવશ્યકતા રહે છે. કેવળ એક ઉપક્રમ દ્વારથી જ, અથવા ઉપક્રમ અને નિક્ષેપરૂપ બે દ્વારોથી અથવા ઉપક્રમ, નિક્ષેપ અને અનુગમરૂપ ત્રણ દ્વારોથી તેનો અર્થ જાણી શકતો નથી અર્થાધિગમ (અર્થનું જ્ઞાન) થયા વિના તો કલેશ અને અનર્થને પાત્ર થવું પડે છે. જ્યારે ભેદ પ્રભેદ સહિત આ ઉપક્રમ આદિ ચારે દ્વારોનો તેમાં સદ્ભાવ હોય છે, ત્યારે તેની સહાયતાથી ઘણા થોડા સમયમાં જ અને સરળતાથી વાસ્તવિકરૂપે શાસ્ત્રના અર્થનો બોધ થઇ જાય છે, અને તેને લીધે તે શાસ્ત્ર શાશ્વત સુખપ્રદ પણ થઈ જાય છે. તેથી સૂત્રકારે પૂર્વોક્ત ઉપક્રમ આદિ ચાર દ્વારોને અનુલક્ષીને છ પ્રકારના આવશ્યકોનું પ્રતિપાદન કરવાને માટે આ સૂત્રને પ્રસ્તુત કર્યું છે.

આ શાસ્ત્રમાં પ્રવૃત્તિ થવાને નિમિત્તે ચાર બાબતોની આવશ્યકતા રહે છે. જે ચાર બાબતોની આવશ્યકતા રહે છે તે ચાર બાબતોને અનુબંધ ચતુષ્ટય કહે છે. તે ચાર બાબતો નીચે પ્રમાણે છે–વિષય, પ્રયોજન, સંબંધ અને અધિકારી. આ શાસ્ત્રનો જે અભિધેય છે તેનું નામ જ વિષય છે. તે વિષય ઉપક્રમ

द्वाराणि । प्रयोजनं—फलम्, तच्च द्विविधम्—अन्तरफलं परम्पराफलं च । तत्राद्यं शास्त्रकर्तुर्भव्यानुग्रहरूपम् । श्रोतुश्च शास्त्रार्थबोधः । उभयोरपि परम्परा प्रयोजनम् —परमपदप्राप्तिः । शास्त्रस्य विषयस्य च सम्बन्धः—प्रतिबोध्य प्रतिबोधकभावः । परमपदप्राप्तिः । अधिकारी तु जिनाज्ञाराधक इति ।

अथ शिष्टाचारपरिपालनार्थं शास्त्रनिर्विघ्नपरिसमाप्त्यर्थं शास्त्रस्य मंगलस्वरूपत्वेऽपि शिष्यस्य शास्त्रविषयीभूतार्थज्ञानप्राप्तिदृढविश्वासार्थं च मंगलरूपं प्रथमं सूत्रमाह—

मूलम्—नाणं पंचविहं पण्णत्तं, तं जहा—आभिनिबोहियनाणं सुयनाणं, ओहिनाणं, मणपज्जवनाणं, केवलनाणं ॥ सू० १ ॥

अनुयोग द्वाररूप है । प्रयोजन नाम फल का है । वह दो प्रकार का होता है—[१] अनन्तर—साक्षात्—फल और दूसरा परम्परा फल । "पढने वाले, सुनने वाले भव्यजीवों का इस से अनुग्रह हो ऐसी भावना जो शास्त्रकार के हृदय में होती है वह ग्रन्थकर्ता की अपेक्षा तथा इसे अध्ययन करनेवाले, सुननेवाले प्राणियों को जो इस के द्वारा बोध प्राप्त होता है वह उनकी अपेक्षा इसका साक्षात् प्रयोजन है । एवं ग्रन्थ—शास्त्र—कर्ता—और अध्येता—श्रोता को जो परमपद (मोक्ष) की प्राप्ति होती है वह इसका परम्परा प्रयोजन है । शास्त्र का और विषय का प्रतिबोध्य प्रतिबोधकभाव संबन्ध है विषय प्रतिबोध्य शास्त्र उसका प्रतिबोधक है जिनाज्ञा का आराधक जीव अधिकारी है ।—

આદિ ચાર અનુયોગ દ્વારરૂપ જ છે. પ્રયોજન એટલે ફળ. તે પ્રયોજન બે પ્રકારનું હોય છે. અનન્તર સાક્ષાત્ અને (૨) પરમ્પરા ફળ.

વાંચનારા અને શ્રવણ કરનારા ભવ્ય જીવોનું તેના દ્વારા કલ્યાણ થાય, એવી જે ભાવના તે શાસ્ત્રકારના હૃદયમાં હોય છે, તે ગ્રન્થકર્તાની અપેક્ષાએ તેનું સાક્ષાત પ્રયોજન છે. તથા તેનું અધ્યયન કરવાથી કે શ્રવણ કરવાથી અધ્યયન કરનારને કે શ્રોતાને જે બોધ થાય છે, તે તેમની અપેક્ષાએ તેનું સાક્ષાત પ્રયોજન ગણાય છે. ગ્રન્થ (શાસ્ત્ર) કર્તાને, ગ્રન્થનું અધ્યયન કરનારને અને તેનું શ્રવણ કરનારને જે પરમપદની પ્રાપ્તિ થાય છે, એજ તેનું પરમ્પરા પ્રયોજન ગણાય છે. શાસ્ત્રનો અને વિષયનો પ્રતિબોધ્ય-પ્રતિબોધકભાવ રૂપ સંબંધ હોય છે. વિષય પ્રતિબોધ્ય અને શાસ્ત્ર તેનું પ્રતિબોધક હોય છે. જિનાજ્ઞાનું આરાધન કરનાર જીવ તેનો અધિકારી ગણાય છે.

छाया--ज्ञानं पञ्चविधं प्रज्ञप्तम्, तद् यथा-आभिनिबोधिकज्ञानं, श्रुतज्ञानम्, अवधिज्ञानं, मनःपर्यवज्ञानं, केवलज्ञानम् ॥१॥

टीका--'नाणं' इत्यादि—

ज्ञानम्-ज्ञातिर्ज्ञानमिति भावसाधनः, सविदित्यर्थः । ज्ञायतेऽनेनास्माद्वेति ज्ञानं, तदावरणस्य क्षयः क्षयोपशमो वा । ज्ञायते वाऽस्मिन्निति

अब सूत्रकार शिष्ट पुरुषों के आचार को पालन करने के लिये शास्त्र की निर्विघ्न परिसमाप्ति के लिये और-शिष्यों को शास्त्र विषयीभूत अर्थज्ञान की प्राप्ति का दृढ विश्वास जमाने के लिये मंगलरूप होने पर भी इस शास्त्र की आदि में सर्व प्रथम मंगल सूत्र का पाठ करते हैं।

"नाणं पंचविहं पण्णत्तं" इत्यादि । ॥ सू० १ ॥

शब्दार्थ-(णाणं) ज्ञान (पंचविहं) पांच प्रकार का-(पण्णत्तं) कहा गया हैं। यहां ज्ञान शब्द भावसाधन-करणसाधन और कर्तृसाधन है "ज्ञातिः-ज्ञानम् जानना इसका नाम ज्ञान है यह भावसाधन में ज्ञान की व्युत्पत्ति है-"ज्ञायते अनेन इति ज्ञानम्" यह करणसाधन में व्युत्पत्ति है-आत्मा जिसके द्वारा पदार्थों को जानता है वह ज्ञान है-इस करणसाधन से ज्ञानावरण कर्म का क्षय अथवा क्षयोपशम लक्षित होता है । क्यों कि इस के होने पर ही आत्मा में ज्ञान का प्रादुर्भाव (उत्पत्ति) या ज्ञान में सर्वथा निर्मलता आती है । अतःज्ञानावरण का क्षय और क्षयोपशम ज्ञानरूप होने के कारण अभेद संबन्ध से ज्ञानरूप ही

શાસ્ત્રકારે શિષ્ટ પુરુષોના આચારનું પાલન કરવા માટે, શાસ્ત્રની નિર્વિઘ્ને પરિસમાપ્તિ કરવા નિમિત્તે અને શિષ્યોમાં શાસ્ત્રવિષયીભૂત અર્થજ્ઞાનની પ્રાપ્તિનો દૃઢ વિશ્વાસ જમાવવાને નિમિત્તે જો કે શાસ્ત્ર પોતે જ મંગળરૂપ હોવા છતાં પણ-આ શાસ્ત્રનો પ્રારંભ કરતી વખતે સૌથી પહેલાં મંગળ સૂત્રનો પાઠ કર્યો છે.

"नाणं पंचविहं पण्णत्तं" ઇત્યાદિ ॥ સૂ. ૧ ॥

શબ્દાર્થ—(णाणं) જ્ઞાન (पंचविहं) પ્રાચ પ્રકારનું (पण्णत्तं) કહ્યું છે. અહીં 'જ્ઞાન' શબ્દ ભાવસાધન, કરણસાધન અને કર્તૃસાધનરૂપ છે. ભાવસાધનમાં જ્ઞાનની વ્યુત્પત્તિ આ પ્રમાણે થાય છે. "ज्ञातिः-ज्ञानम्" જાણવું તેનું નામ જ્ઞાન છે. કરણસાધનમાં જ્ઞાનની વ્યુત્પત્તિ આ પ્રમાણે છે "ज्ञायते अनेन इति ज्ञानम्" આત્મા જેના દ્વારા પદાર્થોને જાણે છે તેનું નામ જ્ઞાન છે. આ કરણસાધન દ્વારા જ્ઞાનાવરણકર્મનો ક્ષય અથવા ક્ષયોપશમ લક્ષિત થાય છે, કારણ કે જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો ક્ષય અથવા ક્ષયોપશમ થવાથી જ આત્મામાં જ્ઞાનનો પ્રાદુર્ભાવ થાય છે અથવા જ્ઞાનમાં સર્વથા નિર્મળતા પ્રકટ થાય છે. તેથી જ્ઞાનાવરણનો ક્ષય અને ક્ષયોપશમ જ્ઞાન રૂપ જ હોવાને કારણે અભેદ સંબંધની અપેક્ષાએ જ્ઞાનરૂપ જ નિવડે છે.

ज्ञानमात्मा—तदावरणक्षयक्षयोपशमपरिणामयुक्ताः । जानातीति वा ज्ञानम् । तत् पञ्चविधं=पञ्चप्रकारं प्रज्ञप्तं=प्ररूपितम् अर्थतस्तीर्थङ्करैः सूत्रतश्च गणधरैः । अत्र गणधरेण स्वबुद्ध्या परिकल्पितं किंचिदपि नोच्यते । पण्णत्तं' इत्यस्य 'प्राज्ञाप्तम्' इतिच्छायापक्षे—प्राज्ञात्-सर्वज्ञात् आप्तं—प्राप्तं गणधरैरित्यर्थः, यद्वा-प्रज्ञया भव्यजन्तुभिराप्तं-प्राप्तं—प्रज्ञाप्तं तदेव प्राज्ञाप्तम् । नहि प्रज्ञाविकलैरिदमाप्तुं शक्यते

होता है। इसलिये करणसाधन में पदार्थों के जानने में अत्यन्त साधक जो ज्ञान है वह गृहीत हुआ है। जो कि ज्ञानावरण के क्षय और क्षयोपशमस्वरूप है इसी तरह से पदार्थ जिस से जाना जाय वह ज्ञान है इस प्रकार की व्युत्पत्ति करने पर भी ज्ञानावरण का क्षय और क्षयोपशम—ज्ञानरूप ही होता है क्यों कि पदार्थ ज्ञान से जाना जाता है। "ज्ञायते अस्मिन्निति ज्ञानमात्मा" पदार्थ जिस से जाना जावे—उसका नाम ज्ञान है इस प्रकार की व्युत्पत्ति में आत्मा ज्ञान रूप प्रतीत होता हैं। यहां परिणाम और परिणामवाले का अभेद होनेके कारण आत्मा को ज्ञानरूप मान लिया गया हैं। क्यों कि ज्ञानावरणकर्म के क्षय अथवा क्षयोपशम से विशिष्ट आत्मा का परिणाम ज्ञान है और आत्मा परिणाम वाला है। "जानाति इति ज्ञानम्" इस व्युत्पत्ति में भी यही अर्थलभ्य है। ज्ञान में पांच प्रकारता अर्थ की अपेक्षा तीर्थंकरोंने और सूत्र की अपेक्षा गणधरोंने प्ररूपित की है। इस विषय में गणधरोंने अपनी तरफ से कुछ भी कल्पित करके नहीं कहा है "यह बात पण्णत्त" इस शब्द

તેથી કરણસાધનમાં પદાર્થોને જાણવામાં અત્યન્ત સાધક જે જ્ઞાન છે તેને જ અહીં ગ્રહણ કરાયું છે. એવું જ્ઞાન જ્ઞાનાવરણના ક્ષય અને ક્ષયોપશમ સ્વરૂપ જ હોય છે. એજ પ્રમાણે "પદાર્થ જેના વડે જાણી શકાય તે જ્ઞાન છે," આ પ્રકારની વ્યુત્પત્તિ કરવામાં આવે તો પણ જ્ઞાનાવરણનો ક્ષય અને ક્ષયોપશમ જ્ઞાનરૂપ જ થઈ પડે છે, કારણ કે પદાર્થ જ્ઞાનદ્વારા જ જાણી શકાય છે. "ज्ञायते अस्मिन्निति ज्ञानमात्मा" "પદાર્થ જેમાં જાણી શકાય તેનું નામ જ્ઞાન છે," આ પ્રકારની વ્યુત્પત્તિમાં આત્મા જ્ઞાનરૂપ પ્રતિપાદિત થાય છે. અહીં પરિણામ અને પરિણામવાળામાં અભેદ હોવાને કારણે આત્માને જ્ઞાનરૂપ માની લેવામાં આવ્યો છે, કારણ કે જ્ઞાનાવરણ કર્મના ક્ષય અથવા ક્ષયોપશમવાળા આત્માનું પરિણામ જ્ઞાન છે અને આત્મા તે પ્રકારના પરિણામવાળો છે. "जानाति इति ज्ञानम्" આ વ્યુત્પત્તિ અનુસાર પણ એજ અર્થ પ્રાપ્ત થાય છે. જ્ઞાનમાં અર્થની અપેક્ષાએ પાંચ પ્રકારતા તીર્થંકરોએ પ્રરૂપિત કરી છે અને સૂત્રની અપેક્ષાએ પાંચ પ્રકારતા ગણધરોએ પ્રરૂપિત કરી છે. આ બાબતમાં ગણધરોએ પોતાના તરફથી કલ્પિત કરીને કંઈ પણ મિશ્રિત કર્યું નથી, એજ વાત સૂત્રકારે "पण्णत्तं" પદ દ્વારા પ્રકટ કરી છે. અથવા

पञ्चविधत्वं दर्शयति—'तं जहा' इत्यादिना 'तं जहा' तद्यथा-तज्ज्ञान यथा पञ्चविधं भवति, तथा प्रोच्यते। तत्र (१) प्रथमं ज्ञानम्—'आभिणिबोहियनाणं' आभिनिबोधिकज्ञानम्. 'अभि' इति अभिमुखः—वस्तुयोग्यदेशावस्थानापेक्षी, 'नि' इति नियतः-इन्द्रियमनःसमाश्रित्य स्व स्व विषयापेक्षीबोधः—अभिनिबोधः, स एव आभिनिबोधिकम् तच्च तद् ज्ञानं च आभिनिबोधिकज्ञानम्। अत्र 'ज्ञान' शब्दः सामान्यज्ञान-वाचकः। अभिनिबोधशब्दः इन्द्रिय नो

से सूत्रकारने प्रकट की है। अथवा, "पण्णत्तं" इस पद की संस्कृत छाया "प्राज्ञाप्तं" ऐसी भी होती है—इस का अर्थ यह है कि ज्ञान में पंच प्रकारता गणधरों ने प्राज्ञ तीर्थंकर सर्वज्ञ भगवान् से प्राप्त की है। अथवा इसी छाया के पक्ष में ऐसा अर्थ भी होता है कि ज्ञान में यह पंच प्रकारता भव्य प्राणियोंने अपनी बुद्धि से ही पाई है। विना बुद्धि से तो यह प्राप्त की नहीं जा सकती है। इस तरह जो प्रज्ञाप्त है वही प्राज्ञाप्त हैं। (तं जहा) वह ज्ञान में पंच प्रकारता इस तरह से है।

(आभिणिबोहियनाणं) (१) आभिनिबोधिक ज्ञान-यह ज्ञान वस्तु को योग्य देश में होने की अपेक्षा रखता है तथा पांच इन्द्रिय और मन की सहायता से होता है। यह बात "अभि" और "नि" शब्द से प्रकट होती है। इस तरह योग्य देश में स्थित वस्तु का इन्द्रिय और मन की सहायता से जानने वाले ज्ञान का नाम अभिनिबोध ज्ञान है। यह अभिनिबोध ही आभिनिबोधिक

"पण्णत्त" આ પદની સંસ્કૃત છાયા "प्राज्ञाप्तं" છે. આ પ્રાજ્ઞાપ્તની અપેક્ષાએ જો વિચાર કરવામાં આવે તો તેનો અર્થ આ પ્રમાણે થાય છે-જ્ઞાનમાં પંચવિધતાની પ્રાપ્તિ ગણધરોએ પ્રાજ્ઞ તીર્થંકર સર્વજ્ઞ ભગવાન પાસેથી કરી છે.

અથવા તેનો અર્થ એવો પણ થાય છે કે—જ્ઞાનમાં આ પાંચ પ્રકારતા ભવ્ય જીવોએ પોતાની બુદ્ધિથી જ પ્રાપ્ત કરેલ છે. બુદ્ધિ વગર તો તેની પ્રાપ્તિ થઇ શકતી જ નથી. આ રીતે જે પ્રજ્ઞાપ્ત છે, એજ પ્રાજ્ઞાપ્ત છે. (तं जहा) જ્ઞાનના તે પાંચ પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે—(आभिणिबोहियनाणं) (૧) આભિનિબોધિક જ્ઞાન—

આ જ્ઞાન વસ્તુ યોગ્ય દેશમાં હોય એવી અપેક્ષા રાખે છે, તથા પાંચ ઇન્દ્રિયો અને મનની સહાયતાથી થાય છે. એજ વાત "अभि" અને "नि" ઉપસર્ગો દ્વારા પ્રકટ કરી છે. આ રીતે આભિનિબોધિક જ્ઞાનની વ્યાખ્યા આ પ્રમાણે થાય છે—"યોગ્ય દેશમાં સ્થિત (રહેલી) વસ્તુને ઇન્દ્રિયો અને મનની સહાયતાથી જાણનારા જ્ઞાનનું" નામ આભિનિબોધ છે. તે અભિનિબોધ જ આભિનિબોધિક

इन्द्रियजन्यविशिष्टज्ञानवाचकः। अतः सामान्यविशेषयोर्ज्ञानयोः सामानाधिकरण्यम्। इदं मतिज्ञानमप्युच्यते ॥१॥

(२) श्रुतज्ञानम्—श्रुतं—श्रुतिः—श्रवणं ज्ञानविशेषः। तच्च कीदृशम्? उच्यते, शब्दस्य श्रवणेन भाषणादिना वा यज्ज्ञानमुत्पद्यते तदेव श्रुतम्। अत्र श्रुतशब्देन श्रुतज्ञानं गृह्यते—ज्ञानं प्रभेदप्रकरणान्तःपातित्वात्। न तु श्रूयते' इति व्युत्पत्त्या शब्दार्थकः श्रुतशब्दः। लब्धिरूपे मतिज्ञाने सति पश्चात् श्रुतज्ञानमुत्पद्यते, न तु मतिज्ञानाभावे। अतो मतिज्ञानं कारणं श्रुतज्ञानस्य।

ज्ञान है। यहां ज्ञान शब्द सामान्यज्ञान का वाचक और अभिनिबोध शब्द इन्द्रिय और मन से उत्पन्न होने वाले विशिष्टज्ञान का वाचक है। अतः" 'आभिनिबोधिकं च तज्ज्ञानं च आभिनिबोधिकज्ञानं" इस तरह से इन दोनों सामान्य विशेष ज्ञानों में समानाधिकरणता हुई है। इस आभिनिबोधिकज्ञान का दूसरा नाम मतिज्ञान भी है।

श्रुतज्ञान—शब्द के श्रवण से अथवा भाषण आदि से जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह-ज्ञान श्रुतज्ञान है। ज्ञान के प्रभेदों के प्रकरण के आने के कारण यहां श्रुतशब्द से ज्ञान का ग्रहण हुआ। श्रुत से शब्द का नहीं। "श्रूयते" इति श्रुतं इस प्रकार की व्युत्पत्ति से श्रुत शब्दरूप अर्थ का वाचक भी होता है परन्तु वह शब्दार्थक श्रुत यहाँ गृहीत नहीं हुआ है। कारण वह शब्द पौद्गलिक पर्याय होने से अचेतन है, और ज्ञान आत्मा का निजस्वरूप होने से चेतन है।

જ્ઞાન છે." અહીં જ્ઞાન પદ સામાન્ય જ્ઞાનનું વાચક છે અને અભિનિબોધ પદ ઇન્દ્રિયો અને મનની સહાયતાથી ઉત્પન્ન થનાર વિશિષ્ટ જ્ઞાનનું વાચક છે. તેથી "आभिनिबोधिकं च तज्ज्ञानं च आभिनिबोधिकज्ञानं" આ પ્રકારે તે બન્ને સામાન્ય વિશેષ જ્ઞાનોમાં સમાનાધિકરણતા થઈ છે. આ આભિનિબોધિક જ્ઞાનનું બીજું નામ મતિજ્ઞાન પણ છે.

(૨) શ્રુતજ્ઞાન—શબ્દના શ્રવણથી અથવા ભાષણ આદિ વડે જે જ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે તેને શ્રુતજ્ઞાન કહે છે. જ્ઞાનના પ્રભેદોના પ્રકરણમાં આવી જતું હોવાને લીધે અહીં શ્રુત શબ્દ વડે જ્ઞાનનું જ ગ્રહણ થયું છે—અહીં 'શ્રુત' પદ દ્વારા શબ્દ ગૃહીત થયેલ નથી. 'श्रूयते इति श्रुतम्" આ પ્રકારની વ્યુત્પત્તિને આધારે શ્રુત પદ શબ્દરૂપ અર્થનું વાચક પણ સંભવી શકે છે, પરન્તુ તે શબ્દાર્થક શ્રુત અહીં ગ્રહણ કરવામાં આવ્યું નથી. કારણ કે તે શબ્દ પૌદ્ગલિક પર્યાયરૂપ હોવાથી અચેતન છે, પણ જ્ઞાન આત્માના નિજગુણરૂપ હોવાથી ચેતન છે.

शंका--शब्द के श्रवण अथवा भाषण आदि से जो ज्ञान होता है वह श्रुतज्ञान है" ऐसा जो श्रुत का लक्षण कहा जा रहा है वह अतिव्याप्ति दोष से युक्त होने के कारण ठीक नहीं है। क्यों कि यह लक्षण मतिज्ञान में भी रहता है। वह श्रोत्रेन्द्रिय और मन से भी होता है।-

उत्त--ऐसा समझना ठीक नहीं है-कारण मतिज्ञान पांचों इन्द्रियों और मन से ही होता है-। तब यह ज्ञान केवल मन से ही होता है-अन्य इन्द्रियों से नहीं।" शब्दश्रवण अथवा भाषणआदि से जो ज्ञान होता है वह श्रुतज्ञान है। ऐसा जो कहा गया है उसका कारण यह है कि शब्द श्रवण और भाषण आदि जन्य जो श्रोत्रेन्द्रिय से उस का ज्ञान होता है वह मतिज्ञान है-और इस मतिज्ञानपूर्वक उस विषय में जो शब्दश्रवण आदि के संबन्ध से विशेष चिंतन चालू होता है कि जो केवल मन का ही कार्य है वह श्रुतज्ञान है। उदाहरणार्थ-शब्द विषयक श्रोत्र जन्यज्ञान होने पर उसके संबन्ध से मन में" यह किस प्रकार के शब्द को बोल रहा है-उच्चस्वर से शब्द उच्चरित हो रहा है या धीमे स्वर से" इत्यादि विकल्पों का होना श्रुतज्ञान है।

શંકા—"શબ્દના શ્રવણ અથવા ભાષણ આદિથી જે જ્ઞાન થાય છે, તેને શ્રુતજ્ઞાન કહે છે," આ પ્રકારનું જે શ્રુતનું લક્ષણ અહીં બતાવવામાં આવ્યું છે તે અતિવ્યાપ્તિ દોષથી યુકત હોવાને કારણે ઉચિત નથી, કારણ કે તે લક્ષણનો સદ્ભાવ તો મતિજ્ઞાનમાં પણ હોય છે. તે શ્રોત્રેન્દ્રિય અને મનની સહાયતાથી થાય છે.

ઉત્તર—આ માન્યતા બરાબર નથી. કારણ કે—મતિજ્ઞાન પાંચે ઇંન્દ્રિયો અને મનની સહાયતાથી જ ઉત્પન્ન થાય છે, પરન્તુ શ્રુતજ્ઞાન તો માત્ર મનની સહાયતાથી જ ઉત્પન્ન છે—અન્ય ઇન્દ્રિયોની સહાયતાની તેને જરૂર રહેતી નથી. "શબ્દશ્રવણ અથવા ભાષણાદિથી જે જ્ઞાન થાય છે તેને શ્રુતજ્ઞાન કહે છે," આ પ્રમાણે જે કહેવામાં આવ્યું છે તેનું કારણ એ છે કે શબ્દશ્રવણ અને ભાષણાદિ જન્ય જે શ્રોત્રેન્દ્રિય થી તેનું જ્ઞાન થાય છે તે મતિજ્ઞાનરૂપ હોય છે. અને તે મતિજ્ઞાનપૂર્વક તે વિષયને અનુલક્ષીને શબ્દશ્રવણ આદિના વિષયમાં વિશેષ ચિન્તન ચાલુ થઇ જાય છે તે તો માત્ર મનનું જ કાર્ય હોવાથી તેને શ્રતજ્ઞાન કહે છે ઉદાહરણ દ્વારા આ વાતનું સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે—શબ્દવિષયક શ્રોત્રજન્ય જ્ઞાન થવાથી તેને વિષે મનમાં આ પ્રકારના વિકલ્પો ઉદ્ભવે છે- "આ કયા પ્રકારના શબ્દનું ઉચ્ચારણ થઈ રહ્યું છે ઊંચે સ્વરે શબ્દનું ઉચ્ચારણ થઈ રહ્યું છે કે ધીમે સ્વરે શબ્દનું ઉચ્ચારણ થઇ રહ્યું છે" આ પ્રકારના વિકલ્પો જે જ્ઞાનમાં ઉદ્ભવે છે તે જ્ઞાનને શ્રતજ્ઞાન કહે છે.

शंका-यद्यपि जिस प्रकार मतिज्ञान की उत्पत्ति में इन्द्रियाँ साक्षात् निमित्त होती हैं वैसी वे श्रुतज्ञान की उत्पत्ति में साक्षात् निमित्त नहीं होती हैं-परन्तु परम्परा से तो होती ही हैं। जैसे—स्पर्शन आदि इन्द्रियों से मतिज्ञान हो गया और फिर बाद में उनके विषय में श्रुतज्ञान-जो विशेष विचार-रूप है वह होता है। अतः इस अपेक्षा से तो मतिज्ञान और श्रुतज्ञान में कोई भेद प्रतीत नहीं होता सो ऐसा कथन भी ठीक नहीं है कारण कि यह औपचारिक कथन है। दूसरे मतिज्ञान विद्यमान वस्तु में ही प्रवृत्त होता है, और श्रुतज्ञान त्रैकालिक विषयों में प्रवृत्त होता है। तथा मतिज्ञान में शब्दोल्लेखन ही होता है और श्रुतज्ञान में नहीं होता है। अर्थात् जैसे श्रुतज्ञान की उत्पत्ति के समय संकेत स्मरण और श्रुतग्रंथ का तात्पर्य अनुसरण अपेक्षित होता है, वैसे वह ईहा आदि मतिज्ञान की उत्पत्ति में अपेक्षित नहीं है। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि लब्धिरूप मतिज्ञान के होने पर श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है मतिज्ञान के अभाव में नहीं। इसलिये इस श्रुतज्ञान का कारण मतिज्ञान है।

શંકા—જેમ મતિજ્ઞાનની ઉત્પત્તિમાં ઇન્દ્રિયો સાક્ષાત નિમિત્ત બને છે એમ શ્રુતજ્ઞાનની ઉત્પત્તિમાં તેઓ સાક્ષાત્ નિમિત્ત બનતી નથી. પરન્તુ પરમ્પરાની અપેક્ષાએ તો તેઓ શ્રુતજ્ઞાનમાં પણ નિમિત્ત રૂપ બને જ છે. જેમ કે સ્પર્શેન્દ્રિય આદિની સહાયતાથી ધારો કે મતિજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થઈ ગઇ છે, ત્યારબાદ તેમને વિષે વિશેષ વિચાર કરવારૂપ શ્રુતજ્ઞાન પણ ઉત્પન્ન થઈ જાય છે. આ રીતે વિચાર કરવામાં આવે તો મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાન વચ્ચે કોઇ ભેદ જ જણાતો નથી. સમાધાન—આ પ્રકારની માન્યતા પણ ખરી નથી. કારણકે આ કથન તો માત્ર ઔપચારિક કથન જ છે. વળી બીજું કારણ એ છે કે મતિજ્ઞાન તો માત્ર વિદ્યમાન વસ્તુમાં જ પ્રવૃત્ત થાય છે, પરન્તુ શ્રુતજ્ઞાન તો ત્રૈકાલિક વિષયોમાં પ્રવૃત્ત થાય છે. તથા મતિજ્ઞાનમાં શબ્દોલ્લેખન જ થાય છે, જ્યારે શ્રુતજ્ઞાનમાં તો સ્મરણ તર્કવિતર્ક આદિ પણ થાય છે એટલે કે જેવી રીતે શ્રુતજ્ઞાનની ઉત્પત્તિને સમયે સંકેત, સ્મરણ અને શ્રુતર્થ નું અનુસરણ અપેક્ષિત હોય છે, એવી રીતે ઇહા આદિરૂપ મતિજ્ઞાનમાં તે સંકેત, સ્મરણ આદિની અપેક્ષા રહેતી નથી. આ વાત પરથી એજ વાત નિશ્ચિત થાય છે કે લબ્ધિરૂપ મતિજ્ઞાનના સદ્ભાવમાં જ શ્રુતજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે—મતિજ્ઞાનનો અભાવ હોય તો શ્રુતજ્ઞાન ઉત્પન્ન થતું નથી. તેથી મતિજ્ઞાનને શ્રુતજ્ઞાનમાં કારણભૂત કહ્યું છે.

ननु आभिनिबोधिकाऽपरपर्यायमतिज्ञानमेव श्रुतज्ञानं सम्पद्यते यथा मृत्तिकैव घटः, तन्तुरेव पटः, तर्हि श्रुतज्ञानस्य पृथगुपादानं भगवता किमर्थं कृतम् ? उच्यते दृष्टान्तद्वयमिदं विषमम्, यथा घट मादुर्भावि—पिण्डाकारा मृत्तिका प्रणश्यति, पटोत्पत्तौ सत्यां तन्तुपुञ्जश्च तथा श्रुतज्ञाने समुत्पन्ने मतिज्ञानं न प्रणश्यति।

शंका—जब श्रुतज्ञान का कारण मतिज्ञान है कि जिसका दूसरा नाम आभिनिबोधिकज्ञान है भी तब जिस प्रकार मिट्टीरूप कारण घटकार्यरूप से परिणम जाता है उसी प्रकार से मतिज्ञान भी श्रुत ज्ञानरूप से परिणम जावेगा—अथवा जिस प्रकार मिट्टी ही घट बन जाती है, और तन्तु ही पट बन जाया करते हैं इसी तरह से मतिज्ञान भी श्रुतज्ञान हो जावेगा—तो फिर सूत्र कारने श्रुतज्ञान का पृथक्रूप से पाठ सूत्र में क्यों रखा है ?

उत्तर—ये दोनों दृष्टान्त ही विषम हैं क्यों कि—

इस प्रकार की मान्यता में मतिज्ञान का विनाश प्रसक्त होगा—हम देखते हैं कि जब घट की उत्पत्ति होती है, तब पिण्डाकार मृत्तिका का विनाश होता है और पट की उत्पत्ति में तन्तुपुंज का। परन्तु जब श्रुतज्ञान होता है तब मतिज्ञान का अभाव नहीं होता है। क्योंकि एक आत्मा में एक साथ चार ज्ञान तक होना सिद्धान्तकारों ने माना है। यदि श्रुतज्ञान के सद्भाव में मतिज्ञान का अभाव स्वीकार किया जावे तो यह सिद्धान्त विरुद्ध कथन

શંકા—જો મતિજ્ઞાન અથવા આભિનિબોધિક જ્ઞાનને જ શ્રુતજ્ઞાનના કારણરૂપ માનવામાં આવે, તો જેમ માટીરૂપ કારણ ઘટકાર્યરૂપે પરિણમી જાય છે, એજ પ્રમાણે મતિજ્ઞાન પણ શ્રુતજ્ઞાનરૂપે પરિણમી જશે, અથવા જે પ્રકારે માટી જ ઘડારૂપે પરિણમિત થઇ જાય છે, એજ પ્રમાણે મતિજ્ઞાન પણ શ્રુતજ્ઞાનરૂપે પરિણમિત થઇ જશે. તો પછી સૂત્રકારે શ્રુતજ્ઞાનને અહીં પૃથક્રૂપે (એક જુદા જ જ્ઞાનરૂપે) શા માટે પ્રતિપાદિત કર્યું છે ?

ઉત્તર—આ બન્ને દૃષ્ટાન્તો જ વિષમ છે, કારણ કે આ પ્રકારની માન્યતામાં તો મતિજ્ઞાનનો વિનાશ થવાની વાત માનવાનો પ્રસંગ ઉદ્ભવશે. આપણે એ વાતને તો પ્રત્યક્ષ દેખી શકીએ છીએ કે જ્યારે ઘટ (ઘડા)ની ઉત્પત્તિ થાય છે ત્યારે માટીના પિંડાનો વિનાશ થઇ જાય છે અને જ્યારે પટ (કાપડ)ની ઉત્પત્તિ થાય છે ત્યારે તંતુપુંજનો નાશ થઇ જાય છે. પરંતુ જ્યારે શ્રુતજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે ત્યારે મતિજ્ઞાનનો વિનાશ થઇ જતો નથી, કારણ કે એક આત્મામાં એક સાથે ચાર જ્ઞાનનો સદ્ભાવ હોઇ શકે છે, એવું સિદ્ધાન્તકારોએ સ્વીકારેલું છે. જો શ્રુતજ્ઞાનનો સદ્ભાવ હોય ત્યારે મતિજ્ઞાનનો અભાવ હોય છે એવું માનવામાં આવે, તો તે માન્યતા તો

"जत्थ मई तत्थ सुयं, जत्थ सुयं तत्थ मई" (नन्दी सू० २४)

छाया—यत्र मतिस्तत्र श्रुतं, यत्र श्रुतं तत्र मतिः।

श्रुतस्य सद्भावे मतेर्विद्यमानता भगवताऽभिहिता तस्मादपेक्षाकारणमेव मति ज्ञानं श्रुतज्ञानस्येति मन्तव्यम्, तथा च मतिज्ञानपूर्वकमिन्द्रियमनोजन्यमाप्तवचनानुसारि ज्ञानं तज्ज्ञानमिति निष्कर्षः।

'श्रूयते यत्तच्छ्रुतम्' इति व्युत्पत्त्या श्रुतशब्देन प्रवचनमपि गृह्यते। तस्मिन्पक्षे-श्रुतस्य=आप्तवचनस्य ज्ञानं श्रुतज्ञानमिति षष्ठीतत्पुरुषः। आप्तो रागादि

ठहरता है। कि "जत्थ मई तत्थ सुयं, जत्थ सुयं तत्थ मई" जहां पर मतिज्ञान है वहां श्रुतज्ञान है और जहां श्रुतज्ञान है वहां मतिज्ञान है। इस तरह श्रुत के सद्भाव में मतिज्ञान का सद्भाव-भगवान्ने कहा है। इसलिये ऐसा मानना चाहिये. कि तज्ञान या मतिज्ञान केवल अपेक्षाकारण ही है। अपेक्षाकारण का तात्पर्य निमित्तकारण से है। जो निमित्तकारण होते हैं वे उपादान कारण की तरह स्वयं कार्यरूप नहीं परिणमते हैं केवल उपादान कारण ही कार्यरूप परिणमता है। तथा च—जो मतिज्ञानपूर्वक ही परंपरा से इन्द्रियों से जो जनित हों और साक्षात्कारण जिसकी उत्पत्ति में मन हो ऐसा आप्तवचनानुसारी जो ज्ञान हैं वही श्रुतज्ञान है।

श्रूयते यत् तत् श्रुतम् "इस व्युत्पत्ति के अनुसार श्रुतशब्द से प्रवचन का भी ग्रहण हो जाता है। अतः इस पक्ष में आप्तवचनरूप श्रुत का जो ज्ञान है वह श्रुतज्ञान है ऐसा षष्ठी तत्पुरुष समास करना चाहिये। रागद्वेष आदि से रहित

સિદ્ધાન્તની વિરૂદ્ધની માન્યતા પ્રતિપાદિત થાય છે. શાસ્ત્રોમાં એવુ કહ્યું છે કે.... "जत्थ मई तत्थ सुयं, जत्थ सुयं तत्थ मई" જ્યાં મતિજ્ઞાન હોય છે, ત્યાં શ્રુતજ્ઞાન હોય છે જ્યાં શ્રુતજ્ઞાન હોય છે ત્યાં મતિજ્ઞાન હોય છે." આ રીતે શ્રુતના સદ્ભાવમાં મતિજ્ઞાનનો પણ સદ્ભાવ ભગવાને કહેલો છે. તેથી એવું માનવું જોઇએ કે મતિજ્ઞાન એ શ્રુતજ્ઞાનની ઉત્પત્તિમાં માત્ર અપેક્ષાકારણ (નિમિત્તરૂપ કારણ) જ છે. જે નિમિત્ત કારણો હોય છે તે ઉપાદાન કારણની જેમ સ્વયં કાર્યરૂપે પરિણમતા નથી. માત્ર ઉપાદાન કારણ જ કાર્યરૂપે પરિણમે છે. આ દૃષ્ટિએ વિચારવામાં આવે તો શ્રુતજ્ઞાનનો આ પ્રમાણે અર્થ ફલિત થાય છે.

જે મતિજ્ઞાનપૂર્વક હોય, પરમ્પરાની અપેક્ષાએ જે જ્ઞાન ઇન્દ્રિયોથી જનિત હોય છે પણ જેની ઉત્પત્તિમાં સાક્ષાત્ કારણભૂત મન હોય છે, એવું આપ્તવચનાનુસારી જે જ્ઞાન છે તેને શ્રુતજ્ઞાન કહે છે. "श्रूयते यत् तत् श्रुतम्" આ વ્યુત્પત્તિ અનુસાર શ્રુત પદ દ્વારા પ્રવચન પણ ગ્રહણ થઇ જાય છે. તેથી આ દૃષ્ટિએ વિચારવામાં આવે તો આપ્તવચન રૂપ શ્રુતનું જે જ્ઞાન છે તેને શ્રુતજ્ઞાન કહે છે, એવો ષષ્ઠી તત્પુરુષ

रहितः सर्वज्ञस्तस्य वचनम्—आप्त वचनम्। तदर्थाध्यवसाय (निर्णय) रूपं ज्ञानं श्रुत ज्ञानमिति। श्रुतज्ञानं प्रति शब्दस्य निमित्तकारणतया शब्देऽपि श्रुतव्यपदेशो भवति। ज्ञानभेदव्यवस्थायां श्रुतशब्दः श्रवणार्थवाचीत्यभिधेयम् ॥२॥

(३) अवधिज्ञानम्—अपधानमवधि—इन्द्रिय नोइन्द्रिय निरपेक्षस्य आत्मनः साक्षादर्थग्रहणम्, अवधिरेवज्ञानम् अवधिज्ञानम्। अथवा—'अव' शब्दोऽधःशब्दार्थः। अव=अधः विस्तृतं वस्तु धीयते=ज्ञायतेऽनेनेत्यवधिः। अवधिश्चासौ तज्ज्ञानं चेत्यवधिज्ञानम्। विस्तृतविषयकं ज्ञानमित्यर्थः। यथा-अनुत्तरोपपातिका देवा अवधि ज्ञानबलेन, भगवन्तमापृच्छय जीवादितत्त्वस्वरूपं निर्धारयन्ति।

विशिष्ट व्यक्ति का नाम आप्त है। जिसे सर्वज्ञ कहा जाता है। उसके बचन का नाम आप्तवचन है। उनके द्वारा प्रतिपादित अर्थरूप जो आगम है. उस आगम का निर्णयरूप ज्ञान श्रुतज्ञान है। श्रुतज्ञान के प्रति शब्द निमित्तकारण होता है एतावता निमित्त कारण की अपेक्षा लेकर शब्द में भी श्रुत का व्यवहार होता है। परन्तु ज्ञान भेद की व्यवस्था में श्रुतशब्द श्रवण जन्यज्ञानरूप अथ का बाची लिया गया है।

"अवधानमवधिः" अर्थात् इन्द्रियों एवं मनकी सहायता के विना केवल आत्मा से ही द्रव्य क्षेत्रकाल और भाव की मर्यादा लेकररूपी पदार्थों को जो साक्षात्रूप से ग्रहण करनेवाला ज्ञान होना है उसका नाम अवधि है।

अथवा—अवधिज्ञान में जो अपशब्द है वह अधःशब्द के अर्थ को कहने वाला है। इसलिये जिसज्ञान के द्वारा नीचे का विषय विस्ताररूप से "धीयते" जाना जाता है। वह अवधिज्ञान है तात्पर्य इसका यह है कि जब

સમાસ અહીં સમજવો જોઇએ. રાગ, દ્વેષ આદિથી રહિત વિશિષ્ટ વ્યક્તિને આપ્ત કહે છે. સર્વજ્ઞોને જ એવાં આપ્ત કહી શકાય છે. તે સર્વજ્ઞના વચનને આપ્તવચન કહે છે. તેમના દ્વારા પ્રતિપાદિત અર્થ રૂપ જે આગમ છે, તે આગમના નિર્ણયરૂપ જ્ઞાનને જ શ્રુતજ્ઞાન કહે છે. શ્રુતજ્ઞાનની પ્રાપ્તિમાં શબ્દરૂપ નિમિત્ત પરમ્પરા કારણ રૂપ હોય છે. તેથી નિમિત્ત કારણની અપેક્ષાએ શબ્દમાં પણ શ્રુત શબ્દનો વ્યવહાર થાય છે પરંતુ જ્ઞાનના ભેદોની વ્યવસ્થામાં શ્રુત શબ્દને શ્રવણજન્ય જ્ઞાનરૂપ અર્થનો વાચક લેવામાં આવેલ છે.

(૩) "अवधानमवधिः" અવધિજ્ઞાન—

ઇન્દ્રિયો અને મનની સહાયતા વિના કેવળ આત્મા દ્વારા જ દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવની મર્યાદાની અપેક્ષાએ રૂપી પદાર્થોને સાક્ષાતરૂપે ગ્રહણ કરનારું જે જ્ઞાન છે, તેને અવધિજ્ઞાન કહે છે. અથવા-અવધિજ્ઞાનમાં જે 'અવ' ઉપસર્ગ છે તે અધઃ શબ્દના અર્થનો વાચક છે. તેથી જે જ્ઞાન દ્વારા નીચેના વિષયનું વિસ્તૃત રૂપે "धीयते" જ્ઞાન થાય છે, તે જ્ઞાનને અવધિજ્ઞાન કહે છે. આ કથનનું તાત્પર્ય નીચે પ્રમાણે છે-અવધિજ્ઞાનનું ક્ષેત્ર આંગળના અસંખ્યાતમાં

यद्वा—अवधिना ज्ञानम्—इति तृतीया समासः। अवधिर्मर्यादारूपिद्रव्यान्येव विषयीकरोति नेतराणीति व्यवस्थारूपा। तथाचायमर्थः—अरूपि द्रव्यपरिहारेण रूपिद्रव्यमात्रविषयकं ज्ञानमवधिज्ञानमिति।

यद्वा—अधोऽधोऽधिकं पश्यति येन तदवधिज्ञानम्। तश्चतुर्गतिवर्तिनां जीवानामिन्द्रियमनोनिरपेक्षं प्रतिविशिष्टक्षयोपशमनिमित्तं रूपिद्रव्यसाक्षात्कारजनकं भवति। एतस्य देवमनुष्यतिर्यङ्नारका अधिकारिणः ॥३॥

अवधिज्ञान का क्षेत्र अंगुल केअसंख्यातवें भाग से लेकर सारा लोक हैं—तब उसका विषय भी कतिपय पर्याय सहितरूपी द्रव्य है इसलिये यह ज्ञान विस्तृत विषयवाला है। विस्तृत विषयता जो इस में प्रकट की है वह मनः पर्यायज्ञान की अपेक्षा जाननी चाहिये। क्यों कि मनःपर्याय ज्ञान का क्षेत्र सिर्फ मानुषोत्तर पर्वत पर्यंत ही है और उसका विषय अवधिज्ञान के विषयभूत हुए रूपी द्रव्य का अनततवां भाग है। अथवा—अवधिशब्द का अर्थ मर्यादा है। इस अर्थ में अवधि और ज्ञान का तृतीया तत्पुरुष समास होकर ऐसा अर्थ होता हैं कि जो ज्ञान मर्यादा लेकर पदार्थों को जानता हैं। वह अवधिज्ञान हैं। इस में मर्यादा रूपी पदार्थों को जानने की अपेक्षा से जाननी चाहिये। क्यों कि यह ज्ञान रूपी पदार्थों को नहीं जानता है। इसलिये इस प्रकार की व्यवस्थारूप मर्यादा युक्त होने के कारण इस ज्ञानक नाम अवधिज्ञान रखा है। अथवा—नीचे नीचे की ओर जो ज्ञान अधिक विषय को

ભાગથી લઈને આખા લોક પર્યન્તનું છે, અને કતિપય પર્યાય સહિતના રૂપી દ્રવ્યને વિષય કરનારૂં જ્ઞાન છે. આ રીતે તે જ્ઞાન વિસ્તૃત વિષયવાળું છે. તેમાં જે વિસ્તૃત વિષયતા પ્રકટ કરવામાં આવી છે તે મનઃપર્યય જ્ઞાનની અપેક્ષાએ સમજવી, કારણ કે મનઃપર્યય જ્ઞાનનું ક્ષેત્ર માત્ર માનુષોત્તર પર્વત પર્યન્ત જ છે અને અવધિજ્ઞાન દ્વારા જેટલારૂપી દ્રવ્યને જોઇ શકાય છે તેના કરતાં મનઃપર્યય જ્ઞાનદ્વારા અનંતમાં ભાગના રૂપી દ્રવ્યને જોઇ શકાય છે.

અથવા—અવધિ એટલે મર્યાદા. આ અર્થમાં અવધિ અને જ્ઞાન, આ બે પદોનો તૃતીયા તત્પુરુષ સમાસ બન્યો છે. આ દૃષ્ટીએ વીચારવામાં આવે તો અવધીજ્ઞાનનો અર્થ આ પ્રમાણે થશે-જે જ્ઞાન મર્યાદિત પદાર્થોને જાણે છે, તે જ્ઞાનનું નામ અવધિજ્ઞાન છે. તે જ્ઞાન, રૂપી પદાર્થોને જ જાણે છે-અરૂપી પદાર્થોને જાણતું નથી, આ પ્રકારની રૂપી પદાર્થોને જ જાણવારૂપ આ મર્યાદા સમજવી. તેથી આ પ્રકારની વ્યવસ્થારૂપ મર્યાદાથી યુકત હોવાને લીધે આ જ્ઞાનનું નામ અવધિજ્ઞાન પડયું છે. અથવા—જે જ્ઞાન નીચેની બાજુએ અધિક વિષયને દેખી શકે છે તે જ્ઞાનને અવધિજ્ઞાન કહે

देखता है—वह ज्ञान अवधिज्ञान है ऐसा यह अवधिज्ञान चारों गतियों के जीवों को इन्द्रियां और मन की सहायता के बिना अवधिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से होता है।

शंकाः—शास्त्रकारों ने मनुष्य और तिर्यंचगति के जीवों को जो अवधिज्ञान कहा है वही क्षयोपशम निमित्तक कहा है—फिर यहां चारों गतियों के जीवों को जो अवधिज्ञान होता है वह क्षयोपशम निमित्तक होता है ऐसा क्यों कहा—तो इस शंका का समाधान इस प्रकार से है कि अवधिज्ञान की उत्पत्ति नियमतः अवधिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से ही होती है—परन्तु इस क्षयोपशम में जहां व्रत, नियम, आदि अनुष्ठान की अपेक्षा रहती है—वह क्षयोपशम निमित्तक कहलाता है ऐसा अवधिज्ञान मनुष्य और तिर्यंचों के होता है। जिस अवधिज्ञान में इनकी अपेक्षा न हो किन्तु भव जन्म लेना ही कारण हो वहां वह अवधिज्ञान इन गुणों की अपेक्षा बिना ही अवधिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न हो जाता है। ऐसा अवधिज्ञान देव और नारकियों को होता है। अन्तरंग कारण इन दोनों प्रकार के अवधिज्ञानों

છે. ઇન્દ્રિયો અને મનની સહાયતા વિના રૂપી પદાર્થોને જોઇ શકનારૂં આ અવધિજ્ઞાન, અવધિજ્ઞાનાવરણીય કર્મના ક્ષયથી ચારે ગતિના જીવોમાં ઉત્પન્ન થતું હોય છે.

શંકા—શાસ્ત્રકારોએ તો એવું કહ્યું છે કે મનુષ્ય અને તિર્યંચગતિના જીવોને જે અવધિજ્ઞાન થાય છે તે ક્ષયોપશમ નિમિત્તક હોય છે. છતાં આપ શા કારણે એવું કહો છો કે ચારે ગતિના જીવોને અવધિજ્ઞાનાવરણીય કર્મના ક્ષયોપશમથી અવધિજ્ઞાન ઉત્પન્ન થઈ શકે છે?

સમાધાન—અવધિજ્ઞાનની ઉત્પત્તિ તો નિયમથી જ અવધિજ્ઞાનાવરણ કર્મના ક્ષયોપશમથી જ થાય છે, પરન્તુ આ ક્ષયોપશમમાં જ્યાં વ્રત, નિયમ આદિ અનુષ્ઠાનોની આવશ્યકતા રહે છે, ત્યાં તે અવધિજ્ઞાનને ક્ષયોપશમનિમિત્તક કહેવામાં આવે છે. એવા ક્ષયોપશમનિમિત્તક અવધિજ્ઞાનનો સદ્ભાવ મનુષ્ય અને તિર્યંચોમાં જ હોય જે અવધિજ્ઞાનમાં તેની આવશ્યકતા ન હોય પણ ભવ જ (જન્મ લેવો એજ) કારણ રૂપ હોય, ત્યાં આ ગુણોની અપેક્ષા વિના જ અવધિજ્ઞાનાવરણ કર્મના ક્ષયોપશમથી અવધિજ્ઞાન ઉત્પન્ન થઇ જાય છે. એવા અવધિજ્ઞાનનો સદ્ભાવ દેવો અને નારકોમાં હોય છે. આ રીતે આ બન્ને પ્રકારના અવધિજ્ઞાનમાં અન્તરંગ કારણ તો સમાન જ છે. અવધિજ્ઞાનાવરણીય કર્મનો ક્ષયોપશમ જ તે બન્નેમાં અન્તરંગ કારણ છે. સે કારણે "અવધિજ્ઞાનાવરણીય કર્મના ક્ષયોપશમથી ચારે ગતિના જીવોમાં અવધિજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે." આ પ્રકારના કથનમાં કોઇ દોષ સંભવતો નથી.

मनःपर्यवज्ञानमिति । अवनम् अवः । 'अव रक्षण गतिकान्तिप्रीतितृप्त्यवगमाद्यर्थेषु' पठितोऽस्ति, तत्रावगमार्थमाश्रित्य निष्पन्नः । अवः—अवगमः, बोध इत्यर्थः । परिशब्दः सर्वतो भावे, पर्यवः—समन्तादवबोधः । मनसः पर्यवो मनः पर्यवः मनोविषयकः समन्तादवबोध इत्यर्थः । मनःपर्यवश्चासौ तज्ज्ञानं चेति मनःपर्यवज्ञानम् । पर्ययः, पर्यायः, एते शब्दा एकार्थवाचकाः ।

में समान हैं। अवधिज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम ही अन्तरंग कारण है। अतः ऐसा कहने में कि अवधिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से अवधिज्ञान की उत्पत्ति चारों गतियों के जीवों को होती है इस प्रकार के कथन में कोई विरोध नहीं है।

मनःपर्यवज्ञान-पर्यव यह शब्द परि उपसर्ग अव धातु से बना है। अव धातु रक्षण, गति, कान्ति, प्रीति, तृप्ति, अवगम आदि अर्थों में पठित हुआ है सो यहीं पर इन में से अवगम अर्थ लिया गया हैं ।
अवगम का अर्थ बोध है। "परि" का अर्थ सब प्रकार से है। मन की सब पर्यायों का साक्षात् जानने वाला जो ज्ञान है वह मनः पर्यवज्ञान है। पर्यय पर्याय ये सब शब्द एकार्थवाचक हैं। तात्पर्य इसका यह है कि मनवाले संज्ञी प्राणी—किसी भी वस्तु का चिन्तवन मनसे करते हैं। चिन्तवन के समय चिन्तनीयवस्तु के भेद के अनुसार चिन्तनकर्म में प्रवृत्त मन भिन्न २ आकारों को धारण करता रहता है। ये आकृतियां ही मन की पर्याय हैं। इन मन की पर्यायों को साक्षात् जानने वाला ज्ञान मनःपर्यवज्ञान हैं द्रव्य मन और

---

(४) मनःपर्यवज्ञान-परि+अव=पर्यव. આ રીતે 'अव' ધાતુને 'परि' ઉપસર્ગ લાગવાથી 'पर्यव' પદ બન્યું છે. 'अव' ધાતુ રક્ષણ, ગતિ, કાન્તિ, પ્રીતિ, તૃપ્તિ, અવગમ આદિ અર્થોમાં વપરાય છે. અહીં તેનો અવગમ અર્થ ગૃહીત થયો છે. અવગમ એટલે બોધ. અને 'परि' એટલે 'સર્વ પ્રકારે'

"મનના સઘળા પર્યાયોને સાક્ષાત્ જાણનારું જે જ્ઞાન છે, તેનું નામ મનઃપર્યવજ્ઞાન છે." પર્યય અને પર્યાય આ બન્ને શબ્દો સમાનાર્થી છે. આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે-મનવાળા જીવો (સંજ્ઞી જીવો) કોઇ પણ વસ્તુનું મનની મદદથી ચિન્તવન કરે છે. આ પ્રકારના ચિન્તનકર્મમાં પ્રવૃત્ત થયેલું મન ભિન્નભિન્ન આકારોને ધારણ કરતું રહે છે. તે આકૃતિઓ જ મનના પર્યાયો છે. મનન એ પર્યાયોને સાક્ષાત જાણનારું જે જ્ઞાન છે તે જ્ઞાનનું નામ જ મનઃપર્યવજ્ઞાન છે.

मनोद्विविधं-द्रव्यभावभेदात्। तत्र द्रव्यमनो मनोवर्गणाः। संज्ञिना मनोवर्गणा गृहीताः सत्यो मन्यमानाश्चिन्त्यमाना भावमनोऽभिधीयते।

तत्रेह भावमनः परिगृह्यते। भावमनसः पर्यायाश्च परेषाम् अर्द्धतृतीयद्वीपाभ्यन्तरवर्त्तिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां चिन्त्यमानविषयाऽध्यवसायरूपाः। यथा—अन्यःकश्चिदेवं चिन्तयेत्—आत्मा कीदृशः? अरूपी, चेतनास्वभावः, कर्मणां कर्ता तत्फलभोक्ता चेत्यादयो ये ज्ञानविशेषरूपास्तस्यात्मनः परिणामविशेषा तेषां यद् ज्ञानं तन्मनःपर्यायज्ञानम्।

भाव मन के भेद से मन दो प्रकार का होता है। इनमें मनोवर्गणारूप तो द्रव्य मन हैं तथा संज्ञी जीव उन मनोवर्गणाओं को ग्रहण करके उनके निमित्त से जो विचार करता है वह भावमन हैं। यहां पर भावमन का ग्रहण हुआ हैं। मनः पर्यवज्ञानी दूसरों के इस भावमन की पर्यायों को कि जो अढाई द्वीपवर्ती संज्ञी पंचेन्द्रिय प्राणियों द्वारा विचारी गई हैं उन्हें साक्षात् जानता है। जैसे कोई यह विचारे कि आत्मा कैसा है? "अरूपी है चेतना स्वभाववाला है, कर्मों का कर्ता है, और उन कर्मों के फलों का भोक्ता है "इस तरह ये ज्ञानाविशेषरूप जो उस आत्मा के बिचारित परिणाम विशेष है उन परिणाम विशेषों का जो ज्ञान है वह मनःपर्यव ज्ञान है। अर्थात् मनःपर्ययज्ञानी इन से कल्पित मन की पर्यायों को साक्षात् जानता है। इससे यह बात ध्वनित होती है कि मनःपर्ययज्ञानी मन को ही प्रत्यक्षरूप से जानता है, चिन्तनीय वस्तुओं को नहीं।

દ્રવ્યમન અને ભાવમનના ભેદથી મન બે પ્રકારનું કહ્યું છે. આ બન્નેમાંનું જે દ્રવ્ય મન છે તે મનોવર્ગણારૂપ છે, તે મનોવર્ગણાઓને ગ્રહણ કરીને તેમના નિમિત્તથી સંજ્ઞી જીવ જે વિચાર કરે છે તે ભાવમનરૂપ છે. અહીં ભાવમન ગ્રહણ કરવામાં આવ્યું છે. અઢી દ્વીપવર્તી સંજ્ઞી પંચેન્દ્રિય જીવો દ્વારા વિચારવામાં આવેલી ભાવમનના પર્યાયોને મનઃપર્યવજ્ઞાની જીવ સાક્ષાત્ જાણે છે. જેમ કે કોઈ એવો વિચાર કરે કે "આત્મા કેવો છે? શું તે અરૂપી છે? શું તે ચેતના સ્વભાવવાળો છે? શું તે કર્મોનો કર્તા અને તે કર્મોનાં ફલોનો ભોકતા છે?" આ પ્રકારનું આ જ્ઞાનવિશેષરૂપ ને આત્માદ્વારા વિચારિત જે પરિણામવિશેષ છે, તે પરિણામવિશેષોને જાણનારૂં જે જ્ઞાન છે, તે જ્ઞાનનું નામ મનઃપર્યવજ્ઞાન છે. એટલે કે મનપર્યવજ્ઞાની જીવ આ સંકલ્પિત મનના પર્યાયોને સાક્ષાત્ જાણી શકે છે. આ કથન દ્વારા એ વાત સૂચિત થાય છે કે મનપર્યવજ્ઞાની જીવ મનની પર્યાયોને જ પ્રત્યક્ષરૂપે જાણે છે-ચિન્તનીય વસ્તુઓને જાણતો નથી.

मनःपर्ययज्ञानी च मनःपर्यायानेव प्रत्यक्षी करोति, न तु बाह्यवस्तु । न च मनः पर्ययज्ञानिना बाह्यं वस्तु ज्ञायते इति वाच्यम्, अनुमानतस्तस्य बाह्यवस्तुज्ञानसद्भावात् । यथा विशिष्टक्षायोपशमिकप्रतिभाशाली प्रेक्षावान् प्रशान्तःकस्यचिदाकारेङ्गितादिकं विलोक्य तदीयमनोगतं भावं सामर्थ्यं चानुमानतो विजानाति तथा मनःपर्ययज्ञानी कस्यचिद् भावरूपं मनःसर्वतोभावेन प्रत्यक्षीकृत्वानुमानेन बाह्यं विषयमवबुध्यते—'इदं वस्त्वनेन चिन्त्यते' इति । बाह्यपदार्थचिन्तनसमये हि बाह्यपदार्थाकारसदृशाकारं मनो भवति ।

इदं मनःपर्ययज्ञानं रूपिविषयत्वप्रत्यक्षक्षायोपशमिकत्वप्रमत्तत्वादिसाम्येऽप्यवधिज्ञानाद् भिन्नं, स्वाम्यादि भेदात् । तथाहि अवधिज्ञानमविरतसम्यग्दृष्टेरपि

प्रश्न—तो क्या चिन्तनीय वस्तुओं को मनःपर्ययज्ञानी जान नहीं सकता ?—उत्तरः-जान सकता है-पर पीछे से अनुमानद्वारा । जैसे कोई विशिष्टक्षयोपशमिक प्रतिभाशाली विद्वान् शान्तभाव से किसी दूसरे व्यक्ति के आकार इंगित आदि को प्रत्यक्ष देख कर उसके मनोगत भाव एवं सामर्थ्य को अनुमान से जान लेता है उसी तरह मनःपर्ययज्ञानी किसी के भावरूप मन को सर्वतोभाव से प्रत्यक्ष कर अनुमान से तद्गत चिन्तनीय बाह्य वस्तुओं को जानलिया करता है कि इसने इस वस्तु का चिन्तन किया है क्यों कि इसका मन उस वस्तु के चिन्तन के समय अवश्य होनेवाले इसप्रकार के आकारों से युक्त है । मन जब बाह्य पदार्थों का चिन्तन करता है तो उस समय वह उस चिन्तित बाह्यपदार्थ के आकार जैसा आकारवाला हो जाता है ।

मनःपर्ययज्ञान और अवधिज्ञान इन दोनों में रूपी पदार्थों को जानने

પ્રશ્ન શું મનઃપર્યવજ્ઞાની જીવ ચિન્તનીય વસ્તુઓને જાણી શકતો નથી ?

ઉત્તર—મનઃપર્યવજ્ઞાની જીવ ચિન્તનીય વસ્તુઓને પાછળથી અનુમાનદ્વારા જ જાણી શકે છે. જેવી રીતે કોઇ વિશિષ્ટ ક્ષયોપશમિક પ્રતિભાશાળી વિદ્વાન શાન્તભાવે કોઇ અન્ય વ્યક્તિની મુખાકૃતિ, તેની ચેષ્ટાઓ આદિને પ્રત્યક્ષ જોઇને તેના મનોગત ભાવોને સામર્થ્યને અનુમાનથી જાણી લે છે, એજ પ્રમાણે મનઃપર્યવજ્ઞાની જીવ કોઇ અન્ય જીવના ભાવરૂપ મનને પોતાના મનઃપર્યવજ્ઞાન વડે પ્રત્યક્ષ કરીને અનુમાનથી તદ્ગત ચિન્તનીય બાહ્ય વસ્તુઓને પણ જાણી શકે છે. તે મનઃપર્યવજ્ઞાની જીવ એવું અનુમાન કરે છે કે આ વ્યક્તિએ આ વસ્તુનું ચિન્તન કર્યું છે, કારણ કે તેનું મન તે વસ્તુના ચિન્તન સમયે જેવાં આકારોથી અવશ્ય યુકત હોવું જોઇએ એવા આકારોથી અવશ્ય યુકત છે. મન જ્યારે બાહ્યપદાર્થોનું ચિન્તન કરે છે, ત્યારે તે (મન) તે ચિન્તિત બાહ્યપદાર્થોના આકાર જેવા આકારવાળું થઇ જાય છે.

મનઃપર્યવજ્ઞાન અને અવધિજ્ઞાનમાં રૂપી પદાર્થોને જાણવાની અપેક્ષાએ, ક્ષાયો-

भवति। द्रव्यतोऽशेषरूपिद्रव्यविषयम्, क्षेत्रतोऽसंख्यातलोकविषयम्। कालतोऽतीतानागतासंख्यातोत्सर्पिण्यवसर्पिणीविषयम्। भावतः सकलरूपिद्रव्येषु प्रतिद्रव्यमसंख्यातपर्यायविषयम्।

मनःपर्ययज्ञानं तु प्रमादरहितस्याऽऽमर्षाद्यन्यतमलब्धिधारिणः संयतस्य भवति। द्रव्यतः—संज्ञिपञ्चेन्द्रियमनोद्रव्यविषयम्। क्षेत्रतः—समयक्षेत्रमात्रविषयम्। कालतः—अतीतानागतपल्योपमासंख्यातभागविषयम्। भावतो—मनोद्रव्यगतानन्तपर्यायविषयम् ॥४॥

की, क्षायोपशमिकत्व की एवं प्रत्यक्षत्व आदि की अपेक्षा से समानता हैं—तो भी स्वाम्यादि की अपेक्षा से भिन्नता है—अवधिज्ञान जो अविरतसम्यक् दृष्टि है, उसको भी हो जाता है, द्रव्य कि अपेक्षा यह समस्तरूपी पदार्थों को विषय करता है, क्षेत्र की अपेक्षा असंख्यात लोक इसका विषय माना गया है, काल की अपेक्षा यह अतीत अनागतकाल के असंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालों को जानता है, तथा भाव की अपेक्षा यह समस्तरूपी द्रव्यों में प्रतिद्रव्य की असंख्यात पर्यायों को जानता है। मनःपर्ययज्ञान अविरत अवस्थावाले जीव को नहीं होता है। उसमें भी प्रमत्त संयत को नहीं होता हैं किन्तु जो अप्रमत्त संयत है उसको होता है। उसमें भी आमर्ष आदि किसी एक लब्धिधारी के ही होता हैं। द्रव्य की अपेक्षा संज्ञी पंचेन्द्रियजीव के मनोद्रव्य को विषय करता हैं। क्षेत्र की

પશમિકત્વની અપેક્ષાએ અને પ્રત્યક્ષત્વ આદિની અપેક્ષાએ સમાનતા છે. પરન્તુ કેટલીક બાબતોમાં તે અવધિજ્ઞાનથી જુદું પડે છે.

અવધિજ્ઞાન અવિરત સમ્યગ્દૃષ્ટિ જીવમાં પણ ઉત્પન્ન થઈ જાય છે, દ્રવ્યની અપેક્ષાએ તે સમસ્તરૂપી પદાર્થોને જોઈ શકે છે, ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ અસંખ્યાત લોક તેનો વિષય મનાય છે, કાળની અપેક્ષાએ તે અતીત અને અનાગતકાળના અસંખ્યાત ઉત્સર્પિણી અને અવસર્પિણી કાળોને જાણે છે, તથા ભાવની અપેક્ષાએ તે સમસ્તરૂપી દ્રવ્યોમાંના પ્રત્યેક દ્રવ્યની અસંખ્યાત પર્યાયોને જાણે છે. મનઃપર્યવજ્ઞાનની ઉત્પત્તિ અવિરત અવસ્થાવાળા જીવમાં થતી નથી, પરન્તુ જે જીવ સંયત હોય છે તેને જ મનઃપર્યવજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે. વળી પ્રત્યેક સંયત જીવને તે ઉત્પન્ન થાય છે એવો કોઈ નિયમ નથી. જેમ કે પ્રમત્ત સંયતને તે ઉત્પન્ન થતું નથી, પણ અપ્રમત્ત સંયતને જ ઉત્પન્ન થાય છે. અપ્રમત્ત સંયતમાં પણ આમર્ષ આદિ કોઈ એક લબ્ધિધારીને જ મનઃપર્યવજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે. દ્રવ્યની અપેક્ષાએ સંજ્ઞી પંચેન્દ્રિય જીવના મનોદ્રવ્યને તે વિષય કરે છે—જાણી શકે છે. ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ

(५) केवलज्ञानम्—केवलम्=एकमसहायं ज्ञानावरणीयकर्मात्यन्तक्षयसमुद्भूतम् अतीतानागतवर्त्तमानयथावस्थितसकलद्रव्यगुणपर्यायविषयकमप्रतिपातिज्ञानं केवलज्ञानम् ॥५॥

अधिकं जिज्ञासुभिर्नन्दिसूत्रे मत्कृतज्ञानचन्द्रिकाटीकायां विलोकनीयम्।

इत्थं शास्त्रस्यादावेव ज्ञानपञ्चकवर्णनेन मङ्गलं प्रदर्शितं भवति, सकलक्लेशोच्छित्तिमूलत्वेन ज्ञानस्य परममङ्गलत्वात् ॥सू० १॥

अपेक्षा–इसका विषय समयक्षेत्र मात्र हैं। काल की अपेक्षा–अतीत अनागत काल का–पल्योपम का असंख्यात वां भाग इसका विषय है। भाव की अपेक्षा–इसका विषय मनोद्रव्य संबन्धी अनंत पर्याये हैं। केवलज्ञान–एक असहाय ज्ञान का नाम केवलज्ञान हैं। यह ज्ञान ज्ञानावरणीय कर्म के अत्यन्त क्षय से होता है। अन्य ज्ञानों की तरह यह प्रतिपाती नही हैं। इसके विषय का अधिक विस्तार नन्दीसूत्र की ज्ञानचन्द्रिका नाम की टीका में मैनें लिखा हैं–सो जिज्ञासु महानुभाव वहां से इसे देखलें।

इस प्रकार से सूत्रकार ने शास्त्र की आदि में ही जो पांच प्रकार के ज्ञानों का वर्णन किया हैं उससे मंगल प्रदर्शित होता हैं। क्योंकि ज्ञान सकलक्लेशों की उच्छित्ति का मूलकारण है। अतः उसमें परम मंगलता आती है। ॥ सूत्र० १ ॥

સમયક્ષેત્ર માત્રને જ તે વિષય કરનારૂં–જાણનારૂં–છે. કાળની અપેક્ષાએ અતીત (ભૂત) અને અનાગત (ભવિષ્ય) કાળના પલ્યોપમનો અસંખ્યાતમો ભાગ તેનો વિષય છે. ભાવની અપેક્ષાએ તેનો વિષય મનોદ્રવ્ય સંબંધી અનંત પર્યાયો છે.

(૫) કેવળજ્ઞાન—આ જ્ઞાન એવું છે કે જેમાં ઇન્દ્રિયો અને મનની સહાયતાની અપેક્ષા રહેતી નથી, જ્ઞાનવરણીય કર્મના આત્યન્તિક (સંપૂર્ણતઃ) ક્ષયથી આ જ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે. તેનો વિષય, ભૂત, ભવિષ્ય અને વર્તમાન, આ ત્રણે કાળ સંબંધી સમસ્ત દ્રવ્ય અને તેમની સમસ્ત (અનંત) પર્યાયો છે. અન્ય જ્ઞાનોની જેમ તે પ્રતિપાતિ (એક વખત પ્રાપ્ત થયા બાદ જેનો વિનાશ થાય એવું) નથી. કેવળજ્ઞાનનું વિસ્તૃત નિરૂપણ નન્દીસૂત્રની જ્ઞાનચન્દ્રિકા નામની મેં લખેલી ટીકામાં કરવામાં આવ્યું છે, તો જિજ્ઞાસુ પાઠકોએ ત્યાંથી તે વાંચી લેવું.

આ પ્રકારે સૂત્રકારે શાસ્ત્રને પ્રારંભે જ પાંચ પ્રકારના જ્ઞાનોનું જે નિરૂપણ કર્યું છે તેનું કારણ એ છે કે જ્ઞાન પોતે જ મંગલરૂપ છે. સકલ ક્લેશોના ઉચ્છેદનમાં જ્ઞાન જ કારણભૂત બને છે. આ રીતે જ્ઞાનમાં પરમ મંગળતાનો સદ્ભાવ હોવાથી સૂત્રકારે શરૂઆતમાં જ તેની પ્રરૂપણા કરી છે. ॥ સૂ૦ ૧ ॥

पञ्चविधेषु ज्ञानेषु श्रुतज्ञानस्यैव उद्देशसमुद्देशाद्यवसरेऽधिकारोऽस्ति, नेतरेषामिति बोधयितुमाह—

मूलम्—तत्थ चत्तारि नाणाइं ठप्पाइं ठवणिज्जाइं णो उद्दिसंति, णो समुद्दिसंति, णो अणुण्णविज्जंति। सुयनाणस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ ॥ सू० २ ॥

छाया तत्र चत्वारि ज्ञानानि स्थाप्यानि स्थापनीयानि नो उद्दिश्यन्ते, नो समुद्दिश्यन्ते, नो अनुज्ञाप्यन्ते। श्रुतज्ञानस्य उद्देशः समुद्देशः अनुज्ञा अनुयोगश्च प्रवर्त्तते॥सू०२।

टीका—'तत्थ चत्तारि' इत्यादि—

तत्र=तेषु पञ्चविधेषु ज्ञानेषु चत्वारि—चतुःसंख्यकानि ज्ञानानि आभिनिबोधिकादयो मनःपर्यवकेवलरूपाणि अनुयोगाहार्याणि-न व्यवहारार्हाणि 'ठप्पाइं' स्थाप्यानि उद्देशसमुद्देशाद्यवसरे अत एव 'ठवणिज्जाइं' स्थापनीयानि=अनधिकृतानि। न तेषामुद्देशादयः क्रियन्ते इति भावः।

अब सूत्रकार यह प्रकट करते हैं कि पांच प्रकार के जो ये ज्ञान हैं-इनमें श्रुतज्ञान का ही उद्देश, समुद्देश आदि के अवसर में अधिकार है दूसरे चार ज्ञानों का नहीं-- "तत्थ चत्तारि"-इत्यादि । ॥सूत्र २॥

शब्दार्थः—(तत्थ) इन पूर्वोक्त पांच प्रकार के ज्ञानों में (चत्तारि नाणाइं) चार प्रकार के ज्ञान—मति—अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान—(ठप्पाइं) उद्देश, समुद्देश आदि के अवसर में व्यवहारयोग्य नहीं हैं। क्यों कि ये गुरु के उपदेश की अपेक्षावाले नहीं हैं। इसलिये (ठवणिज्जाइं) ये स्थापनीय हैं—अर्थात् इनके उद्देश आदि नहीं—किये गये हैं। इस विषय में ऐसा जानना चाहिये कि श्रुतज्ञान ही वाचना आदि द्वारा अपने विषयभूत पदार्थों में

હવે સૂત્રકાર એ પ્રકટ કરે છે કે પાંચ પ્રકારના જે જ્ઞાન છે તેમાંથી શ્રુતજ્ઞાનનો જ ઉદ્દેશ, સમુદ્દેશ આદિને અવસરે અધિકાર છે-અન્ય ચાર જ્ઞાનોનો નથી.

"तत्थ चत्तारि" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(तत्थ) પૂર્વોક્ત પાંચ પ્રકારનાં જ્ઞાનોમાંથી (चत्तारि नाणाइं) ચાર પ્રકારનાં જ્ઞાન એટલે કે મતિજ્ઞાન, અવધિજ્ઞાન, મનઃપર્યવજ્ઞાન અને કેવળજ્ઞાન (ठप्पाइं) ઉદ્દેશ, સમુદ્દેશ આદિના અવસરે વ્યવહારયોગ્ય નથી. કારણ કે ચારે જ્ઞાનમાં ગુરુના ઉપદેશની અપેક્ષા રહેતી નથી, તેથી (ठवणिज्जाइं) તે ચારે જ્ઞાન સ્થાપનીય છે. એટલે કે તેમના ઉદ્દેશ આદિ કરવામાં આવેલ નથી આ વિષયને અનુલક્ષીને એવું સમજવું જોઇએ કે શ્રુતજ્ઞાન જ વાચના આદિ દ્વારા પોતાના

इदमत्राबधेयम्—श्रुतज्ञानमेव हि वाचनादिना साक्षात् प्रवर्त्तकं च। अन्यानि तु यद्यपि पदार्थानां स्वरूपमवबोधयन्ति, तथापि श्रुतज्ञानमनाश्रित्य साक्षात् प्रवर्त्तयितुं निवर्त्तयितुं वा न समर्थानि, तस्मादिह तेषां नाधिकार इति। उक्तमेवार्थं विशदयन्नाह—णो उद्दिस्संति' इत्यादि। नो उद्दिश्यन्ते शिष्येभ्यो नोपदिश्यन्ते। नो समुद्दिश्यन्ते-एतानि स्थिरपरिचितानि कुरु इत्येवंरूपेण एतानि चत्वारि ज्ञानानि गुरुभिः शिष्यान् प्रति नोपदिश्यन्ते, अत एव एतानि नो अनुज्ञाप्यन्ते-'एतानि सम्यगवधारय, अन्यांश्चापि अध्यापय' इत्येवंरूपेण एतानि शिष्यान् प्रति नानुमोद्यन्ते।

अथवा—आभिनिबोधिकज्ञानम्, अवधयादीनि च ज्ञानानि स्थाप्यानि गुर्वधीनत्वेनोद्देशाद्यविषयाणि, अतः स्थापनीयानि=अध्यारोप्यानि। श्रुतज्ञानं तु

साक्षात् प्रवर्त्तक होता है। यद्यपि अन्य ज्ञान भी पदार्थों के स्वरूप का बोध कराते हैं, परन्तु वे श्रुतज्ञान का आश्रय लिये विना अपने विषयभूत हेयोपादेय विषय से न साक्षात् रूप में निवर्तक होते हैं, और न उसमें प्रवर्तक होते हैं। इसलिये उन ज्ञानों का यहां उद्देश समुद्देश आदि में विचार नहीं किया गया है। इसी अर्थ को सूत्रकार विशद रूप से विवेचन करने के लिये कहते हैं कि (णो उद्दिसंति णो समुद्दिसंति) ये चार ज्ञान गुरुजनों द्वारा शिष्यों के लिये उपदिष्ट नहीं होते हैं—और न गुरुजन उनसे ऐसा कहते हैं। कि तुम इनका स्थिररूप से परिचय करो (णो अणुण्णविज्जंति) इन्हें अच्छी तरह से निश्चित कर हृदय में धारण करो तथा दूसरों को भी इन्हें पढाओ अथवा—ये आभिनिबोधिक और अवधि आदि ज्ञान स्थाप्य है—गुरुजनों के ये आधीन नहीं हैं इस कारण उद्देश आदि विषयभूत नहीं हैं इसलिये स्थापनीय

વિષયભૂત પદાર્થોમાં સાક્ષાત પ્રવર્ત્તક અને નિવર્ત્તક હોય છે. જો કે અન્ય જ્ઞાન પણ પદાર્થોના સ્વરૂપનો બોધ કરાવે છે ખરાં, પરન્તુ તેઓ શ્રુતજ્ઞાનનો આધાર લીધા વિના પોતાના વિષયભૂત હેયોપાદેય વિષયથી સાક્ષાત રૂપે નિવર્ત્તક પણ હોતાં નથી. અને તેમાં પ્રવર્ત્તક પણ હોતાં નથી. તેથી તે જ્ઞાનોનો અહીં ઉદ્દેશ સમુદ્દેશ આદિમાં વિચાર કરવામાં આવ્યો નથી. એજ વિષયનું વિશદરૂપે વિવેચન કરવા નિમિત્તે સૂત્રકાર કહે છે કે-

(णो उद्दिसंति णो समुद्दिसंति) તે ચાર જ્ઞાન ગુરુજનો દ્વારા શિષ્યોને ઉપદિષ્ટ થતાં નથી, અને ગુરુજન તેમને એવું પણ કહેતા નથી કે તમે તેમનો સ્થિર રૂપે પરિચય કરો, (णो अणुण्णविज्जंति) તેમને સારી રીતે નિશ્ચય કરીને હૃદયમાં ધારણ કરો તથા અન્યને પણ તેનું અધ્યયન કરાવો.

અથવા-આભિનિબોધિક, અવધિજ્ઞાન અને કેવળજ્ઞાન સ્થાપ્ય છે, તે ચાર જ્ઞાનો ગુરુજનોને

अनेकार्थत्वादतिगम्भीरत्वाद् विविधमन्त्राद्यतिशयसम्पन्नत्वाच्च गुरूपदेशसापेक्षम्, अत एव गुरोरन्तिके उद्देशादिविधिना परमकल्याणकारि श्रुतमेव गृह्यते। आभिनिबोधिकादीनि तु तत्तदावरणीयकर्मक्षयक्षयोपशमाभ्यां स्वत एव जायन्ते, न तु उद्देशादिक्रममपेक्षन्ते। अत एव-आभिनिबोधिकस्य अवध्यादीनां च उद्देशादयो न क्रियन्ते, किन्तु श्रुतज्ञानस्य उद्देशः=उद्दिश्यते इत्युद्देशः=इदमध्ययनादि त्वया पठितव्यमिति गुरोरुपदेशरूपं वचनम्। समुद्देशः='इदमधीतसूत्रादिकं स्थिरपरिचितं कुरु' इति गुरोरुपदेशवचनम्। अनुज्ञा-'इदं धारय अन्यांश्च अध्यापयेति

हैं-अव्याख्येय हैं। परन्तु जो श्रुतज्ञान है वह तो अनेक अर्थवाला होने से, अति गंभीरता युक्त होने से, और विविध प्रकार के मंत्रादिकों के अतिशय से समन्वित होने से गुरुजनों के उपदेश की अपेक्षावाला है। इसलिये गुरुजन के समीप उद्देश आदिरूप विधिपूर्वक परम कल्याणकारी श्रुत ही ग्रहण किया जाता है। अवशिष्ट जो आभिनिबोधिक आदिक ज्ञान हैं वे तो अपने २ आवरणीय कर्म के क्षयोपशम और क्षय से स्वतः ही आविर्भूत हो जाया करते हैं। ये उद्देश, समुद्देश आदिरूप क्रम की अपेक्षा अपनी आविर्भूति-उत्पत्ति-में नहीं रखते हैं। इसलिये आभिनिबोधिक ज्ञान और अवधिज्ञानों के उद्देश आदि नहीं किये जाते हैं। किन्तु जो (सुयनाणस्स) श्रुतज्ञान है-उसका ही (उद्देसो) उद्देश-इस अध्ययन आदि-को तुम्हें पढना चाहिये इस प्रकार का गुरु का उपदेशरूप वचन, (समुद्देसो) समुद्देश-ये पठित सूत्रादिक विस्मृत न हो जावे इसलिये इन्हें स्थिररूप से परिचित करो बार २ इनका पाठ करो इस प्रकार का गुरु का उपदेशरूपवचन (अणुण्णा) अनुज्ञा हृदय

આધીન નથી, તે કારણે તે ચારે જ્ઞાન ઉદ્દેશ આદિના વિષયભૂત નથી. તેથી તે ચારે જ્ઞાનોને સ્થાપનીય-અવ્યાખ્યેય કહેવામાં આવેલ છે. પરન્તુ શ્રુતજ્ઞાન તો અનેક અર્થવાળું હોવાથી, અતિ ગંભીરતા યુકત હોવાથી, અને વિવિધ પ્રકારના મંત્રાદિકોના અતિશયોથી સમન્વિત (યુકત) હોવ થી ગુરુજનોના ઉપદેશની અપેક્ષાવાળું છે. તે કારણે ગુરુજનોની સમીપે ઉદ્દેશ આદિરૂપ વિધિપૂર્વક પરમ કલ્યાણકારી શ્રુત જ ગ્રહણ કરવામાં આવે છે. બાકીના આભિનિબોધિક આદિ જે ચાર જ્ઞાનો છે તે તો પોત પોતાના આવરણીય કર્મના ક્ષયોપશમ અને ક્ષયથી પોતાની જાતે જ અવિર્ભૂત (પ્રકટ) થઇ જાય છે. તે ચારે જ્ઞાનની ઉત્પત્તિમાં આ ઉદ્દેશ સમુદ્દેશ આદિરૂપ ક્રમની અપેક્ષા રહેતી નથી. તેથી આભિનિબોધિક જ્ઞાન અને અવધિજ્ઞાન આદિ જ્ઞાનોના ઉદ્દેશ કરવામાં આવતા નથી. પરંતુ જે (सुयनाणस्स उद्देसो) શ્રુતજ્ઞાન છે. તેના જ ઉદ્દેશ, (समुद्देसो) સમુદ્દેશ, (अणुण्णा) અનુજ્ઞા (अणुओगो य) અને અનુયોગ (पवत्तइ) હોય છે-અન્ય જ્ઞાનોના ઉદ્દેશ, સમુદ્દેશ આદિ હોતા નથી.

शिष्यं प्रति गुरोरुपदेशवचनम् । अनुयोगः—भगवदुक्तानुरूपता च प्रवर्त्तते । श्रुतज्ञानस्यैव उद्देशः समुद्देशः अनुज्ञा अनुयोगश्च भवति, नान्येषामिति भावः ॥सू०२॥

मूलम्—जइ सुयनाणस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ किं अंगपविट्ठस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ? किं अंगबाहिरस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो

में इनका धारणरूप संस्कार जमाओ, और दूसरों के लिये इन्हें पढाओं इस प्रकार का गुरु का उपदेशरूपवचन, (अणुओगो य) और अनुयोग भगवदुक्तानुरूपता (पवत्तइ) ये सब होते हैं। अन्य ज्ञानों के नहीं।

भावार्थ—श्रुतज्ञान के अतिरिक्त अवशिष्ट चार ज्ञानों में उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग ये चार बातें नहीं होती हैं। क्यों कि इन ज्ञानों में गुरु के उपदेश से जन्यत्व की अपेक्षा नहीं हैं। ये तो अपने २ आवरणकर्मों के क्षय क्षयोपशम के अनुसार उत्पन्न होते हैं। यद्यपि तज्ञान भी अपने आवरणकर्म के क्षयोपशम से ही उत्पन्न होता है—फिर भी उस में गुरुपदेश की अपेक्षा से जन्यता मानी गई है। अतः उसमें उद्देश आदि होते हैं। ॥सू०२॥

આ અધ્યયન આદિનો તમારે અભ્યાસ કરવો જોઇએ, આ પ્રકારના ગુરુના ઉપદેશરૂપ વચનને ઉદ્દેશ કહે છે. આ પઠિત સૂત્રાદિ ભૂલી ન જવાય તે માટે સ્થિર ચિત્તે તેમનો પરિચય કરો. વારંવાર તેનો પાઠ કરો, આ પ્રકા । ગુરુના વચનોને સમુદ્દેશ કહે છે.

હૃદયમાં આ સૂત્રને કદી પણ વિસ્મૃત ન થાય એવી રીતે ધારણ કરો અને અન્યને તેનું અધ્યયન કરાવો, આ પ્રકારના ગુરુના ઉપદેશરૂપ વચનોને અનુજ્ઞા કહેછે.

ભગવદુકતાનુરૂપતાને અનુયોગ કહે છે.

ભાવાર્થ—શ્રુતજ્ઞાન સિવાયના જે ચાર જ્ઞાનો છે તેમાં ઉદ્દેશ, સમુદ્દેશ, અનુજ્ઞા અને અનુયોગનો-(આ ચાર વાતનો) સદ્ભાવ હોતો નથી, કારણ કે તે જ્ઞાનોની ઉત્પત્તિ ગુરુના ઉપદેશને લીધે સંભવી શકતી નથી. તે ચાર જ્ઞાનોની ઉત્પત્તિ તો ત્યારે જ થાય છે કે જ્યારે તે પ્રત્યેક જ્ઞાનના આવારક કર્મોનો ક્ષયોપશમ અથવા ક્ષય થઈ જાય છે. કેવળજ્ઞાનની ઉત્પત્તિ ત્યારે જ થાય છે કે જ્યારે જ્ઞાનવરણીય કર્મોનો સંપૂર્ણતઃ ક્ષયોપશમ થવાથી જ તે જ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે. જો કે શ્રુતજ્ઞાન પણ તેનું આવરણ કરનારા કર્મના ક્ષયોપશમથી જ ઉત્પન્ન થતું હોય છે. છતાં પણ તેમાં ગુરુના ઉપદેશની અપેક્ષાએ જન્યતા માનવામાં આવી છે. તેથી જ શ્રુતજ્ઞાનમાં ઉદ્દેશ સમુદ્દેશ આદિનો સદ્ભાવ રહે છે. ॥ સૂ. ૨ ॥

य पवत्तइ ? अंगपविट्ठस्स वि उद्देसो जाव पवत्तइ, अणंगपविट्ठस्स वि उद्देसो जाव पत्तवइ । इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च अणंगपविट्ठस्स अणुओगो ॥ ३ ॥

छाया—यदि श्रुतज्ञानस्य उद्देशः, समुद्देशः, अनुज्ञा, अनुयोगश्च प्रवर्तते किम् अङ्गप्रविष्टस्य उद्देशः, समुद्देशः अनुज्ञा अनुयोगश्च प्रवर्तते ? किम् अङ्गबाह्यस्य उद्देशः समुद्देशः अनुज्ञा, अनुयोगश्च प्रवर्तते ? अङ्गप्रविष्टस्यापि उद्देशो यावत् प्रवर्तते, अनङ्गप्रविष्टस्यापि उद्देशो यावत् प्रवर्तते । इदं पुनः प्रस्थापनं प्रतीत्य अनङ्गप्रविष्टस्य अनुयोगः ॥सू० ३॥

टीका—'जइ सुयनाणस्स' इत्यादि—

यदि श्रुतज्ञानस्य उद्देशः समुद्देशः अनुज्ञा अनुयोगश्च प्रवर्तते तर्हि स उद्देशादिः किम् अङ्गप्रविष्टस्य-द्वादशाङ्गान्तर्गतस्याचाराङ्गादेः प्रवर्त्तते, किं वा अनङ्गप्रविष्टस्य-अङ्गबाह्यस्य दशवैकालिकादेः प्रवर्तते ? इति शिष्यप्रश्नः । गुरुरुत्तरयति—'अंगपविट्ठस्स वि' इत्यादिना । हे शिष्य ! अङ्गप्रविष्टस्यापि उद्देशो

"जइ सुयनाणस्स" इत्यादि

शब्दार्थ—(जइ) यदि (सुयनाणस्स) श्रुतज्ञान में (उद्देसो) उद्देश (समुद्देसो) समुद्देश, (अणुण्णा) अनुज्ञा (य) और (अणुओगो) अनुयोग इन की (पवत्तइ) प्रवृत्ति होती है तो (किं) क्या (अंगपविट्ठस्स) जो अंगप्रविष्ट श्रुत है उसमें (उद्देसो) इन उद्देश, (समुद्देसो) समुद्देश, (अणुण्णा) अनुज्ञा (य) और (अणुओगो) अनुयोग की (पवत्तइ) प्रवृत्ति होती है ? क्या अथवा जो (अंगबाहिरस्स) अंग बाह्य श्रुतज्ञान है उसमें (उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ) उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग इनकी प्रवृत्ति होती है क्या ? उत्तर—(अंगपविट्ठस्स) अंग प्रविष्ट जो आचाराङ्गादि श्रुत है उनमें (वि) भी (उद्देसो य जाव

"जइ सुयनाणस्स" ઇત્યાદિ

શબ્દાર્થ-(जइ) જો (सुयनाणस्स) શ્રુતજ્ઞાનમાં (उद्देसो) ઉદ્દેશ, (समुद्देसो) સમુદ્દેશ, (अणुण्णा) અનુજ્ઞા (य) અને (अणुओगो पवत्तइ) અનુયોગની પ્રવૃત્તિ (સદ્ભાવ) થાય છે, તો (किं अंगपविट्ठस्स) શું જે અંગપ્રવિષ્ટ શ્રુત છે તેમાં (उद्देसो, समुद्देसो, अणुण्णा य अणुओगो पवत्तइ) એ ઉદ્દેશ, સમુદ્દેશ, અનુજ્ઞા અને અનુયોગની પ્રવૃત્તિ થાય છે ? કે જે (अंगबाहिरस्स) અંગબાહ્ય શ્રુતજ્ઞાન છે તેમાં (उद्देसो, समुद्देसो अणुण्णा अनुओगो य पवत्तइ) ઉદ્દેશ, સમુદ્દેશ, અનુજ્ઞા અને અનુયોગની પ્રવૃતિ થાય છે ?

ઉત્તર—(अंगपविट्ठस्स वि उद्देसो जाव पवत्तइ) આચારાંગ આદિ જે અંગ

यावत् प्रवर्त्तते, अनङ्गप्रविष्टस्यापि च उद्देशो यावत् प्रवर्त्तते। अत्र शास्त्रे पुनः इदं=प्रस्तुतं प्रस्थापनं=प्रारम्भं प्रतीत्य आश्रित्य अनङ्गप्रविष्टस्य अनुयोगः प्रवर्त्तते॥सू.३

मूलम्—जइ अणंगपविट्ठस्स अणुओगो, किं कालियस्स अणुओगो ? उक्कालियस्स अणुओगो ?। कालियस्स वि अणुओगो, उक्कालियस्स वि अणुओगो। इमं पुणपट्ठवणं पडुच्च उक्कालियस्स अणुओगो ॥ सू० ४ ॥

छाया—यदि अनङ्गप्रविष्टस्य अनुयोगः, किं कालिकस्य अनुयोगः ? उत्कालिकस्यानुयोगः ? कालिकस्यापि अनुयोगः, उत्कालिकस्यापि अनुयोगः । इदं पुनः प्रस्थापनं प्रतीत्य उत्कालिकस्यानुयोगः ॥ सू० ४ ॥

टीका—'जइ' इत्यादि—

यदि अनङ्गप्रविष्टस्य अनुयोगः किं कालिकस्यानुयोगः ? किं वा उत्कालिकस्यानुयोगः ? इति शिष्यप्रश्नः । तत्र-कालेन निर्वृत्तं कालिकम् । काले प्रथम-

---

पवित्तइ] इन उद्देश समुद्देश आदि की प्रवृत्ति होती है, तथा "अणंगपविट्ठस्स वि जा' अनंग प्रविष्ट दशवैकालिक आदि सूत्र हैं उनमें भी (उद्देसो जाव पवत्तइ) उद्देस आदि की प्रवृत्ति होती है। (इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च) इस शास्त्र में यह प्रारंभ की अपेक्षा लेकर अनंग प्रविष्ट में अनुयोग प्रवर्तित होता है ऐसा कहा गया है। ॥सूत्र३॥

"जइ अणंगपविट्ठस्स इत्यादि ।"

शब्दार्थ—(जइ) यदि (अणंगपविट्ठस्स अणुओगो) अनंग प्रविष्ट श्रुत में अनुयोग की प्रवृत्ति होती है तो (किं) क्या (कालियस्स अणुओगो ?) कालिक में अनुयोग प्रवृत्ति होती है क्या ? या (उक्कालियस्स अणुओगो) उत्कालिक

પ્રવિષ્ટ શ્રુત છે તેમાં ઉદ્દેશ, સમુદ્દેશ, અનુજ્ઞા અને અનુયોગ પ્રવર્તે છે, તથા (अणंगपविट्ठस्स वि उद्देसो जाव पवत्तइ) દશ વૈકાલિક આદિ જે અનંગપ્રવિષ્ટ શ્રુત છે તેમાં પણ ઉદ્દેશ, સમુદ્દેશ, અનુજ્ઞા અને અનુયોગ પ્રવર્તે છે, આ રીતે અંગપ્રવિષ્ટ અને અંગબાહ્ય, એ બન્ને પ્રકારના શ્રુતમાં ઉદ્દેશ આદિ ચારેનો સદ્ભાવ સમજવો. (इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च) આ શાસ્ત્રમાં આ પ્રારંભની અપેક્ષાએ એવું કહેવામાં આવ્યું છે કે અનંગ પ્રવિષ્ટ શ્રુતમાં અનુયોગની પ્રવૃત્તિ થાય છે. ॥ સૂ. ૩ ॥

"जइ अणंगपविट्ठस्स" ઇત્યાદિ— ॥ સૂ. ૪ ॥

શબ્દાર્થ—પ્રશ્ન (जइ अणंगपविट्ठस्स अणुओगो) જો અનંગપ્રવિષ્ટ શ્રુતમાં અનુયોગની પ્રવૃતિ થાય છે, તો (किं कालियस्स अणुओगो ?) શું કાલિક શ્રુતમાં

चरमपौरुषीलक्षणे अस्वाध्यायकालं विहाय पठ्यते यत् तत्कालिकम्। तच्च उत्तराध्ययनादिकं, यदिह दिवसरात्रि प्रथमचरमपौरुषीद्वये एव पठ्यते। ऊर्ध्वं कालात् पठ्यते, इत्युत्कालिकम्। अस्वाध्यायकालं विहाय दिवसे रात्रौ च सर्वस्मिन् यामे यत् पठ्यते तदुत्कालिकमित्यर्थः कालिकसूत्राणि— (१) उत्तराध्ययन—(२) दशाश्रुतस्कन्ध—(३) बृहत्कल्प—(४) व्यवहार—(५) निशीथ—(६) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—(७) चन्द्रप्रज्ञप्ति—(८) निरयावलिका—(९) कल्पावतंसिका—(१०) पुष्पिता (११) पुष्पचूलिका—(१२) वृष्णिदशादीनि अङ्गबाह्यानि, आचाराङ्गादीनि

में अनुओग की प्रवृत्ति हाती है? (कालियस्स वि अणुओगो उक्कालियस्स वि अणुओगो) उत्तरः—कालिकका भी अनुयोग होता है और उत्कालिक का भी अनुयोग होता है। (इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च उक्कालियस्स अणुओगो) इस शास्त्र में यह प्रारंभ की अपेक्षा लेकर उत्कालिक का अनुयोग कहा है।

भावार्थ—अनंग प्रविष्ट श्रुत के अनेक भेद कहे गये हैं—उनमें कालिक उत्कालिक श्रुत है। प्रथम पौरुषी और अन्तिम पौरुषीरूप काल में जो अस्वाध्यायकाल को छोडकर पढा जाता है. वह कालिक श्रुत है। जैसे—उत्तराध्यय १, दशाश्रुतस्कंध २, बृहत्कल्प ३, व्यवहार ४, निशीथ, ५ जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति ६, चन्द्रप्रज्ञप्ति ७, निरयावलिका ८, कल्पावतंसिका ९, पुष्पिता १०, पुष्पचूलिका ११, वृष्णिदशा आदि ये सब अंगबाह्य श्रुत है वे कालिक श्रुत हैं। तथा आचारां-

---

અનુયોગની પ્રવૃત્તિ થાય છે, કે (उक्कालियस्स अणुओगो) ઉત્કાલિક શ્રુતમાં અનુયોગની પ્રવૃત્તિ થાય છે?

ઉત્તર-(कालियस्स वि अणुओगो उक्कालियस्स वि अणुओगो) કાલિક શ્રુતમાં પણ અનુયોગની પ્રવૃત્તિ થાય છે અને ઉત્કાલિક શ્રુતમાં પણ અનુયોગની પ્રવૃત્તિ થાય છે, (इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च उक्कालियस्स अणुओगो) આ શાસ્ત્રમાં આ પ્રારંભની અપેક્ષાએ ઉત્કાલિકનો અનુયોગ કહ્યો છે.

ભાવાર્થ—અનંગ પ્રવિષ્ટ શ્રુતના અનેક ભેદ કહ્યા છે. તેમાંના બે ભેદો આ પ્રમાણે છે-(૧) કાલિકશ્રુત અને (૨) ઉત્કાલિક શ્રુત.

પહેલી પૌરૂષી (પહેલો પ્રહર) અને છેલ્લી પૌરૂષી (છેલ્લો પ્રહર)રૂપ કાળમાં અસ્વાધ્યાયકાળ જે કહ્યો છે તેટલા કાળને છોડીને, જેનું અધ્યયન કરવામાં આવે છે, એવા શ્રુતને કાલિક શ્રુત કહે છે. કાલિક શ્રુત નીચે પ્રમાણે કહ્યાં છે-

(૧) ઉત્તરાધ્યયન (૨) દશાશ્રુતસ્કંધ, (૩) બૃહત્કલ્પ, (૪) વ્યવહાર, (૫) નિશીથ (૬) જંબૂદ્વીપપ્રજ્ઞપ્તિ, (૭) ચન્દ્રપ્રજ્ઞપ્તિ, (૮) નિરયાવલિકા (૯) કલ્પાવતંસિકા, (૧૦) પુષ્પિતા, (૧૧) પુષ્પચૂલિકા (૧૨) વૃષ્ણિદશા વગેરે જે અંગબાહ્ય શ્રુત છે તેમનો કાલિકશ્રુતમાં સમાવેશ થાય છે, તથા આચારાંગાદિ જે ૧૧ અંગ છે તેમનો પણ

एकादशाङ्गानि च। इतोऽतिरिक्तान्यपि कालिकसूत्राणि नन्दिसूत्रे निर्दिष्टानि सन्ति, विच्छिन्नत्वान्नेह तानि निर्दिश्यन्ते। उत्कालिकसूत्राणि–(१) दशवैकालिकौ-(२) पपातिक–[३] राजप्रश्नीय–(४) जीवाभिगम–(५) प्रज्ञपना(६)–नन्दीसूत्रा–[७] नुयोगद्वारा–(८) वश्यक–(९) सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्राणि। इतोऽन्यान्यप्युत्कालिक-सूत्राणि नन्दिसूत्रे निर्दिष्टानि सन्ति, विच्छिन्नत्वान्नेह तानि निर्दिश्यन्ते। उत्तर यति–कालिकस्याऽप्यनुयोग', उत्कालिकस्याप्यनुयोगः। पुनरत्र शास्त्रे इदं=प्रस्तुतं प्र'थापनं=प्रारम्भं प्रतीत्य=आश्रित्य, उत्कालिकस्यानुयोगः ॥ सू० ४ ॥

मूलम्—जइ उक्कालियस्स अणुओगो, किं आवस्सगस्स अणुओगो? आवस्सगवइरित्तस्स अणुओगो? आवस्सगस्स वि अणुओगो,

---

गादि जो ११ अंग हैं ये भी कालिकश्रुत हैं। इन से अतिरिक्त और भी कालिक सूत्र हैं जिनका कथन नंदिसूत्र में किया गया है। विच्छिन्न हो जाने के कारण हम उन्हें यहां निर्दिष्ट नही करते हैं। (१) दशवैकालिक, (२) औपपातिक, (३) राजप्रश्नीय (४) जीवाभिगम, (५) प्रज्ञापना (६) नंदीसूत्र (७) अनुयोगद्वार (८) आवश्यक, (९) सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्र, ये सब उत्कालिकसूत्र हैं। इनसे अतिरिक्त और भी उत्कालिक सूत्र है। जिन्हें नंदिसूत्र में निर्दिष्ट किया गया है, परन्तु वे सब विच्छिन्न हो चुके हैं अतः हम उन्हें यहां प्रकट नहीं करते हैं। उत्कालिक सूत्र अस्वाध्यायकाल को छोडकर दिन में और रात्रि में जब चाहे तब हरएक समय में पढे जाते हैं। इस शास्त्र में उत्कालिक का अनुयोग ही प्रस्तुत होने से प्रकट किया गया है। ॥सूत्र ४॥

કાલિકશ્રુતમાં જ સમાવેશ થાય છે. તે સિવાય બીજાં કેટલાક કાલિકસૂત્રો પણ છે, જેમનું કથન નન્દિસૂત્રમાં કરવામાં આવ્યું છે. તે સૂત્રો વિચ્છિન્ન થઈ ગયેલા હોવાથી અહીં તેમનો નિર્દેશ કરવામાં આવ્યો નથી.

હવે ઉત્કાલિક સૂત્રોનાં નામ આપવામાં આવે છે—

(૧) દશવૈકાલિક, (૨) ઔપપાતિક, (૩) રાજપ્રશ્નીય, (૪) જીવાભિગમ, (૫) પ્રજ્ઞાપના, (૬) નન્દિસૂત્ર, (૭) અનુયોગદ્વાર, (૮) આવશ્યકસૂત્ર અને (૯) સૂર્ય-પ્રજ્ઞપ્તિસૂત્ર, આ બધાં સૂત્રોનો ઉત્કાલિક શ્રુતમાં સમાવેશ થાય છે. આ સિવાય બીજાં કેટલાક ઉત્કાલિક સૂત્રો છે, જેમનાં નામ નન્દિસૂત્રમાં આપવામાં આવ્યાં છે. પરન્તુ તે સૂત્રો વિચ્છિન્ન થઈ ગયેલાં હોવાથી તેમનાં નામો અહીં પ્રકટ કર્યાં નથી. અસ્વાધ્યાય કાળ સિવાયના કોઈ પણ કાળે–દિવસે અથવા રાત્રે, જ્યારે ઇચ્છા થાય ત્યારે ઉત્કાલિકસૂત્રોનું અધ્યયન થઈ શકે છે. આ શાસ્ત્રમાં ઉત્કાલિકનો અનુયોગ જ પ્રસ્તુત હોવાથી પ્રકટ કરવામાં આવ્યો છે. ॥ સૂત્ર ૪ ॥

आवस्सगवइरित्तस्स वि अणुओगो ! इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च आवस्सगस्स अणुओगो ॥ सू० ५ ॥

छाया-यदि उत्कालिकस्य अनुयोगः, किमावश्यकस्य अनुयोगः ? आवश्यकव्यतिरिक्तस्य अनुयोगः ? आवश्यकस्यापि अनुयोगः, आवश्यकव्यतिरिक्तस्यापि अनुयोगः । इदं पुनःप्रस्थानं प्रतीत्य आवश्यकस्य अनुयोगः ॥सू० ५॥

टीका-'जइ' इत्यादि-

यदि उत्कालिकस्य अनुयोगः किमावश्यकस्य अनुयोगः ? आवश्यकव्यतिरिक्तस्य वाऽनुयोगः ? इति शिष्यप्रश्नः । उत्तरयति-'आवस्सगस्स वि' इत्यादिना । अनुयोग आवश्यकस्यापि भवति, आवश्यकव्यतिरिक्तस्यापि भवति ।

"जइ उक्कालिय स" इत्यादि ।

शब्दार्थ—(जइ) यदि (उक्कालिय स) उत्कालिक श्रुत का (अणुओगो) अनुयोग होता है तो (किं) क्या (आवस्सग स अणुओगो ?) आवश्यक का अनुयोग होता है ? या (आव सगवइरित्तस्स अणुओगो) आवश्यक से व्यतिरिक्त का अनुयोग होता है ? उत्तर-(आवस्सगस्स वि अणुओगो) आवश्यक का भी अनुयोग होता है । और (आव सगवइरित्त स वि अणुओगो) जो आवश्यक से भिन्न है उनका भी अनुयोग होता है । (इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च आव सगस्स अणुओगो) इस शास्त्र में यह प्रार भ की अपेक्षा लेकर आवश्यक का अनुयोग कहा है ।

भावार्थ—शिष्य पूछ रहा है कि हे भदंत ! यदि उत्कालिक श्रुत का अनुयोग होता है तो किस उत्कालिक श्रुत का-आवश्यक का या आवश्यक

"जइ उक्कालियस्स" इत्यादि—

शब्दार्थ—प्रश्न—(जइ उक्कालियस्स अणुओगो) જો ઉત્કાલિકશ્રુતનો અનુયોગ થાય છે, તો (किं आवस्सगस्स अणुओगो) શું આવશ્યકનો અનુયોગ થાય છે કે (आवस्सगस्सगवइरित्त स अणुओगो ?) આવશ્યકથી ભિન્ન હોય એવાં શ્રુતનો અનુયોગ થાય છે.

ઉત્તર—(आवस्सगस्स वि अणुओगो) આવશ્યકનો પણ અનુયોગ થાય છે, અને (आवस्सगवइरित्तस्स वि अणुओगो) જે આવશ્યકથી ભિન્ન છે તેમનો પણ અનુયોગ થાય છે. (इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च आवस्सगस्स अणुओगो) આ શાસ્ત્રમાં આ પ્રારંભની અપેક્ષાએ આવશ્યકનો અનુયોગ કહ્યો છે.

ભાવાર્થ—શિષ્ય અહીં એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે "હે ભગવન્ ! જો ઉત્કાલિક શ્રુતનો અનુયોગ થાય છે, તો કયા ઉત્કાલિક શ્રુતનો અનુયોગ થાય છે ? શું આવશ્યકનો અનુયોગ થાય છે ? કે આવશ્યક સિવાયના જે ઉત્કાલિક શ્રુત છે ? તેમનો અનુયોગ થાય છે ?"

पुनरत्र शास्त्रे इदं-प्रस्तुतं प्रस्थापनं-प्रारम्भं प्रतीत्य-आश्रित्य आवश्यक-य-श्रमणैः श्रावकैश्चोभयकालमवश्यकरणीयस्य सामायिकादिषडध्ययनात्मकस्य सकलसामाचारीमूलस्यावश्यकसूत्रस्यानुयोगः प्रवर्त्तते । यद्यप्यावश्यकसूत्रे उद्देशसमुद्देशानुज्ञा वर्त्तन्ते तथाऽप्यत्र सूत्रे उद्देशादिकं त्रयं विहायानुयोग एवाधिक्रियते, तस्यावसरप्राप्तत्वात् । अनुयोगस्य वक्तव्यतैवम्-

"निक्खेवेगट्ठ[1] निरुत्ति[3] विही[4], पवित्ती[5] य केण[6] वा कस्स[7] ? ।
तद्दार[8] भेयलक्खण[9],-तदरिह[10] परिसा[11] य सुत्तत्थो[12] ॥"

छाया-निक्षेप एकार्थो निरुक्तिः विधिः प्रवृत्तिश्च केन वा कस्य ।
तद्द्वाराणि भेदा लक्षणं, तदर्हा परिषच्च सूत्रार्थः ॥इति॥

अस्या व्याख्या-निक्षेपः=नामस्थापनादिकः । एकार्थः=पर्यायः-अनुयोगो

से अतिरिक्त का-तब उत्तर देते हुए आचार्य कहते हैं कि इन दोनों का भी अनुयोग होता है। यहां पर उद्देश, समुद्देश और अनुज्ञा का कथन कर के सूत्रकार ने जो आवश्यक में केवल अनुयोग का कथन किया है वह अनुयोग को अवसर प्राप्त होने से किया है । यह आवश्यक साधु साध्वी और श्रावक श्राविका को प्रातः और सायंकाल दोनों समय अवश्य करने योग्य कहा गया है । सामायिक आदि के भेद से यह आवश्यक छह प्रकार का है । इसके ऊपर षड्ध्ययनात्मक एक स्वतन्त्र सूत्र रचा गया है-जिसका नाम आवश्यक सूत्र है । यह सकल सामाचारी का मूल कारण है । अनुयोग के विषय में वक्तव्यता इस प्रकार से है-

"निक्खेवेगट्ठ इत्यादि" नाम स्थापना आदिरूप से अनुयोग का कहना यह अनुयोग का निक्षेप है । अनुयोग के पर्यायवाची शब्दों को कहना-जैसे

આ પ્રશ્નનો ઉત્તર આપતાં આચાર્ય કહે છે કે "આ બન્નેનો અનુયોગ છે ?"

અહીં ઉદ્દેશ, સમુદ્દેશ અને અનુજ્ઞાનું કથન કરીને સૂત્રકારે આવશ્યકમાં કેવળ અનુયોગનું જ જે કથન કર્યું છે તે અનુયોગના પ્રાપ્ત અવસરની અપેક્ષાએ કર્યું છે. આ આવશ્યક સાધુ સાધ્વી, શ્રાવક અને શ્રાવિકાએ પ્રાતઃ અને સાયંકાળ, એ બન્ને સમયે કરવા યોગ્ય કહેલ છે. સામાયિક આદિના ભેદથી આ આવશ્યક છ પ્રકારનો કહ્યો છે. આ વિષયને અનુલક્ષીને છ અધ્યયનવાળું એક સ્વતંત્ર સૂત્ર રચવામાં આવ્યું છે. તે સૂત્રનું નામ "આવશ્યક સૂત્ર" છે. તે સકલ સામાચારીનું મૂળ કારણ છે. અનુયોગના વિષયમાં આ પ્રમાણે વક્તવ્યતા છે,

"निक्खेवेगट्ठ" ઇત્યાદિ—નામ, સ્થાપના આદિરૂપે અનુયોગનું કથન થવું તેનું નામ અનુયોગનો નિક્ષેપ છે. અનુયોગના પર્યાયવાચી શબ્દોનું કથન કરવું-જેમ કે

नियोगो भाषा विभाषा वार्त्तिकं चैतेऽनुयोग पर्यायाः। निरुक्तिः=निर्वचनम् सा चैवम्-तीर्थङ्करप्ररूपितार्थस्य गणधरोक्तशब्दसमूहरूपसूत्रेण सह अनु=अनुकूलो नियतो वा योगः सम्बन्धोऽनुयोगः। अनुयोगशब्दस्य विस्तृतव्याख्या-उपासकदशाङ्गसूत्रस्य मत्कृतायामगारधर्मसंजीवन्यां टीकायां विलोकनीया। विधिः=सूत्रार्थकथनविधिः। तत्र-गुरुणा प्रथमं शिष्येभ्यः सूत्रार्थो वक्तव्यः। तदनु सोऽर्थो निर्युक्तिमिश्रो वक्तव्यः। सूत्रे निर्युक्तानां-निश्चयेन युक्तानामेषार्थानां युक्तिपुरस्सरमर्थः शिष्येभ्यो वक्तव्य इत्यर्थः। तत पुनरपि प्रसङ्गानुप्रसङ्गागतः सर्वोऽप्यर्थो वाच्यः। तदुक्तम्-

"सुत्तत्थो खलु पढमो बीयो निज्जुत्तिमीसिओ भणिओ।
तइओ य निरवसेसो, एस विही होइ अणुओगे॥"

अनुयोग, नियोग, भाषा, विभाषा, वार्तिक यह शब्द अनुयोग के पर्यायवाचक हैं। निरुक्तिपूर्वक अनुयोग का अर्थ कहना यह अनुयोग की निरुक्ति हैं। इस में तीर्थंकरों द्वारा प्ररूपित अर्थ का गणधरोक्त शब्द समूहरूप सूत्र के साथ अनुकूल अथवा नियत संबन्ध प्रकट करना होता है। सूत्रार्थ कह ने की पद्धति का नाम विधि हैं। इसमें सर्व प्रथम गुरु को शिष्य के लिये सूत्र का अर्थ सिखलाने का विधान है। बाद में उस शिक्षित अर्थ को निर्युक्ति से मिश्रित कर शिष्य को सिखलाना चाहिये अर्थात् निश्चययुक्त पदार्थों का ही-अर्थात् वीतराग कथा से जिन पदार्थों का पदों के अर्थों का गुरु के द्वारा शिष्यने निश्चय कर लिया है ऐसे ही पदार्थों का युक्ति प्रदानपूर्वक शिष्य को और अर्थ कहना चाहिये, इसके बाद प्रसङ्ग अनुप्रसंग को लेकर और भी जो २ अर्थ होता हो—उस सब को प्रकट करना चाहिये-इन सब

અનુયોગ, નિયોગ, ભાષા, વિભાષા વાર્તિક, આ બધા પદો અનુયોગના પર્યાયવાચક શબ્દો છે. નિરુકિતપૂર્વક અનુયોગનો અર્થ કહેવો તેનું નામ "અનુયોગ નિરુકિત દ્વર્વક અનુયોગનો અર્થ કહેવો તેનું નામ "અનુયોગની નિરૂકત" છે. તેમાં તીર્થંકરો દ્વારા પ્રરૂપિત અર્થનો ગણધરોકત શબ્દસમૂહરૂપ સૂત્રની સાથે અનુકૂળ અથવા નિયત સંબંધ પ્રકટ કરવાનો હોય છે. સૂત્રાર્થ કહેવાની પદ્ધતિનું નામ વિધિ છે. તેમાં ગુરૂએ સૌથી પહેલાં તો શિષ્યને સૂત્રનો અર્થ શિખવવો જોઇએ, એવું વિધાન છે. ત્યારબાદ શિખવવામાં આવેલા તે અર્થને નિર્યુકિતથી મિશ્રિત કરીને શિષ્યને શિખવવો જોઇએ. એટલે કે નિશ્ચયયુકત પદાર્થોના જ [વીતરાગ દ્વારા પ્રરૂપિત જે પદાર્થોના પદોના અર્થોના ગુરુની મદદથી શિષ્યે નિશ્ચય કરી લીધો હોય એવાં જ પદાર્થોનો) યુકિત પ્રદાનપૂર્વક જે કોઇ બીજો અર્થ થતો હોય તે પણ શિષ્યને કહેવો જોઇએ, ત્યારબાદ પ્રસંગ અને અનુપ્રસંગને અનુલક્ષીને તેના બીજાં જે જે અર્થ થતાં હોય તે સઘળાં અર્થ પણ પ્રકટ કરવા જોઇએ. આ બધી બાબતોને અનુયોગમાં

छाया-सूत्रार्थः खलु प्रथमो, द्वितीयो निर्युक्तिमिश्रितो भणितः ।
तृतीयश्च निरवशेषः, एष विधिर्भवत्यनुयोगे ॥ इति ॥

विस्तरतस्त्वन्यत्र । तथा-अनुयोगस्य प्रवृत्तिः अत्र चत्वारो भङ्गाः । तत्र प्रथमो भङ्गः-उद्यमी गुरुरुद्यमी शिष्यः । द्वितीयो भङ्गः-उद्यमी गुरुरनुद्यमी शिष्यः । तृतीयो भङ्गः-अनुद्यमी गुरुरुद्यमी शिष्यः । चतुर्थो भङ्गः-अनुद्यमी गुरुरनुद्यमी शिष्यः अत्र-प्रथमभङ्गेऽनुयोगस्य सर्वथा प्रवृत्तिर्भवति, चतुर्थभङ्गे तु सर्वथा नैव भवति। द्वितीय तृतीययोस्तु कदाचित् प्रवृत्ति र्भव त कदाचिन्नापि भवति । तथाऽनुयोगः केन कर्त्तव्यः ? इति प्रोच्यते-

---

का अनुयोग में समाविष्ट है। यही बात तदुक्तं करके "सुत्तत्थो" इत्यादि-गाथा द्वारा पुष्ट की है। विधि संबन्धी विस्तार अन्य शास्त्रों में लिखा है। अतः जिज्ञासु जन इस विषय को वहां से जान लेवें अनुयोग की प्रवृत्ति में चार भंग हैं—वे इस प्रकार से हैं-

उद्यमी गुरु उद्यमी शिष्य यह प्रथम भंग है। उद्यमी गुरु अनुद्यमी शिष्य यह द्वितीय भंग हैं। अनुद्यमी गुरु उद्यमी शिष्य यह तीसरा भंग है। अनुद्यमी गुरु अनुद्यमी शिष्य यह चौथा भंग है। इन में से जो प्रथम भंग है उसमें तो अनुयोग की सर्वथा प्रवृत्ति होना निश्चित है। चौथे भंग में अनुयोग की प्रवृत्ति बिलकुल नही होती है। द्वितीय और तृतीय भंग में अनुयोग की प्रवृत्ति कभी होती है और कभी नहीं भी होती है।

સમાવી શકાય છે એજ વાત "सुत्तत्थो" ઇત્યાદિ ગાથાઓ દ્વારા પુષ્ટ કરવામાં આવી છે. વિધિ સંબંધી વિસ્તૃત કથન અન્ય શાસ્ત્રોમાં આપવામાં આવેલું છે, તો જિજ્ઞાસુ પાઠકોએ આ વિષયનું વિશેષ કથન ત્યાંથી વાંચી લેવું જોઇએ. અનુયોગની પ્રવૃત્તિમાં નીચે પ્રમાણે ચાર ભાંગાઓ (વિકલ્પો) છે—

(૧) ઉદ્યમીગુરૂ અને ઉદ્યમી શિષ્ય, આ પહેલો ભાંગો છે.
(૨) ઉદ્યમી ગુરૂ અને નિરૂદ્યમી શિષ્ય, આ બીજો ભાંગો છે.
(૩) અનુદ્યમી ગુરૂ અને ઉદ્યમી શિષ્ય, ત્રીજો ભાંગો છે.
(૪) અનુદ્યમી ગુરૂ અને અનુદ્યમી શિષ્ય, આ ચોથો ભાંગો છે.

આ ચાર વિકલ્પોમાંથી જે પહેલો વિકલ્પ બતાવ્યો છે તે વિકલ્પ પ્રમાણેની પરિસ્થિતિમાં તો અનુયોગની પ્રવૃત્તિ થવાનું કાર્ય સર્વથા નિશ્ચિત જ હોય છે. ચોથા વિકલ્પમાં બતાવ્યા પ્રમાણેની જ્યારે પરિસ્થિતિ હોય છે, ત્યારે અનુયોગની પ્રવૃત્તિ બિલકુલ ચાલી શકતી નથી. બીજા અને ત્રીજા વિકલ્પોમાં બતાવેલી પરિસ્થિતિમાં કયારેક અનુયોગની પ્રવૃત્તિ સંભવી પણ શકે છે અને કયારેક નથી પણ સંભવી શકતી.

"देस[१] कुल[२] जाई[३] रूवी[४], संहणणी[५], धिइजुओ[६] अणासंसी[७] ।
अविकत्थणो[८] अमाई[९], थिरपरिवाडी[१०] गहियवक्को[११] ॥ १ ॥
जियपरिसो[१२] जियनिद्दो[१३], मज्झत्थो[१४] देसकालभावन्नू[१५] ।
आसन्नलद्धपइभो[१६], नानाविहदेसभासन्नू[१७] ॥ २ ॥
पंचविहे आयारे[१८], जुत्तो सुत्तत्थतदुभयविहिन्नू[१९] ।
आहरण हेउ उवणय,—नय निउणो गाहणाकुसलो[२०] ॥ ३ ॥
ससमयपरसमयविऊ[२१], गंभीरो दित्तिमं[२२] सिवो[२३] सोमो[२४] ।
गुणसयकलियो[२५] जुत्तो, पवयणसारं परिकहेउं ॥ ४ ॥

छाया—देशकुलजातिरूपी संहननी, धृतियुतः अनाशंसी ।
अविकत्थनः आमायी, स्थिरपरिपाटी गृहीतवाक्यः ॥१॥
जितपरिषद् जितनिद्रो मध्यस्थो देशकालभावज्ञः ।
आसन्नलब्धप्रतिभो नानाविधदेशभाषाज्ञः ॥२॥
पञ्चविधे आचारे, युक्तः सूत्रार्थतदुभयविधिज्ञः ।
आहरणहेतूपनय, नय निपुणो ग्राहणाकुशलः ॥३॥
स्वसमयपरसमयविद्, गम्भीरो दीप्तिमान् शिवः सोमः ।
गुणशतकलितो युक्तः, प्रवचनसारं परिकथयितुम् ॥४॥

गाथार्थः—यो मुनिः देशकालकुल जातिरूपी-देशः=आर्यदेशः, कुलं=विशुद्धः पितृवंशः, जातिः=विशुद्धो मातृवंशः, रूपं=शोभनाऽऽकृतिः, एतानि चत्वारि सन्त्यस्येति तथा भवति । अर्थाद् यः आर्यदेशोत्पन्नः, विशुद्धपितृमातृवंशोद्भवः, रूपवांश्च भवति । तथा संहननी=दृढसंहननवान् । दृढसंहननी हि

अब यह कहा जाता है कि यह अनुयोग किस प्रकार के विशेषणों से विशिष्ट मुनिजन द्वारा किया जाता है-"देसकुल जाई रूवी" इत्यादि देश—जो मुनि आर्य देश में उत्पन्न हुआ हो (१) कुल जाति शुद्ध हो जिसका पितृवंश और जिसका मातृ वंश विशुद्ध हो (२) रूप—आकार जिसका शोभन हों (३) संहननी—जो दृढ संहनन वाला हो (४) धृति युक्त—अति गहन भी अर्थ में जिसे किसी भी प्रकार की

હવે એ વાત પ્રકટ કરવામાં આવે છે કે કયા કયા ગુણોથી (વિશેષણોથી) સંપન્ન વિશિષ્ટ મુનિજનો દ્વારા આ અનુયોગમાં પ્રવૃત્તિ થઈ શકે છે-

"देसकुल जाई" इत्यादि—

(૧) જે મુનિ આર્યદેશમાં ઉત્પન્ન થયેલા હોય, (૨) જે મુનિના કુળજાતિ શુદ્ધ હોય-એટલે કે જેનો માતૃવંશ અને પિતૃવંશ વિશુદ્ધ હોય, (૩) રૂપ-જેમનો આકાર (દેખાવ) સુંદર હોય, (૪) સંહનની-જે મુનિ દૃઢ સંહનનવાળા હોય, (૫)

व्याख्यानादौ न श्राम्यतीति भावः। धृतियुतः—धृतिः=अतिगहनेष्वप्यर्थेषु निर्भ्रान्तता, परीषहोपसर्गसहने निश्चलता च, तया युतः=युक्तः। अनाशंसी=वस्त्रसत्काराद्यनाकाङ्क्षी। अविकत्थनः=आत्मश्लाघा वर्जितो नाति बहुभाषी वा। अमायी=कपटवर्जितः। स्थिरपरिपाटी—स्थिरा=अतिशयेन निरन्तराभ्यासतः स्थैर्यमापन्ना परिपाटी—अनुयोगकरणक्रमो यस्य स तथा। यद्वा—गुरुपरम्पराप्राप्तज्ञाननिरन्तरपाठकः। एतादृशो हि सूत्रमर्थं च न कदाचिदपि विपरीतं करोति। गृहीतवाक्यः—गृहीतं वाक्यं=वचनं यस्य स तथा, आदेयवचनवान् इत्यर्थः। तस्य हि अल्पमपि वचनं महार्थमिव प्रतिभाति। जितपरिषद्—जिता परिषद् येन स तथा, महत्यामपि परिषदि यः क्षोभं नोपयाति। जितनिद्रः—जिता निद्रा येन स तथा, रात्रौ सूत्रमर्थं च चिन्तयन् निद्राधीनो न भवतीत्यर्थः। मध्यस्थः=पक्षपातवर्जितः। देशकालभावज्ञः द्रव्यक्षेत्रकालभावज्ञानसम्पन्नः। आसन्नलब्धप्रतिभः—

भ्रान्ति न हो, तथा परीषह और उपसर्ग के सहने में जिसके निश्चिलता हो (५) अनाशंसी—वस्त्र सत्कार आदि की जिसके आकांक्षा न हो (६) अविकत्थन आत्मप्रशंसा से जो रहित हो अथवा व्यर्थ का जो बहुत भाषण करने वाला न हो (७) अमायी—कपट भाव से जो रहित हो (८) स्थिर परिपाटी—जिसका अनुयोग करने का क्रम अतिशय निरन्तर अभ्यास के वश से स्थिरता को प्राप्त हो गया हो अथवा—गुरु परम्परा से प्राप्त ज्ञानका जो पाठक हो, (९) गृहीत वाक्य—जिसके वचन आदेय हों (१०) जित परिषत्—बडी भारी सभा में भी जो क्षोभ को प्राप्त न हो, ११, जितनिद्रः—रात्रि में भी जो सूत्र और अर्थ का चिन्तन करता हुआ निद्रा के वशवर्ती नहीं होता हो १२, मध्यस्थ—पक्षपात से जो रहित हो १३, देशकाल भावज्ञ—जो देश, काल भाव का ज्ञाता

धृतियुक्त—અતિ ગહન વિષયના અર્થ વિષે પણ જેમના મનમાં કોઈ પણ પ્રકારની ભ્રાન્તિ ન હોય. તથા પરીષહો અને ઉપસર્ગોની નિશ્ચલતાપૂર્વક જે સહન કરનારા હોય, ૬, અનાશંસી વસ્ત્ર, સત્કાર આદિની આકાંક્ષાથી જેઓ રહિત હોય, ૭, અવિકત્થન—જેઓ આત્મશ્લાઘાથી રહિત હોય અથવા નકામું લાંબું ચોડું ભાષણ કરનારા ન હોય. ૮, અમાયી-જેઓ કપટભાવથી-માયાચારીથી રહિત હોય. ૯, સ્થિરપરિપાટી નિરન્તર અભ્યાસને કારણે જેમનો અનુયોગ કરવાનો ક્રમ સ્થિરતા યુકત બન્યો હોય, અથવા ગુરૂપરમ્પરાથી પ્રાપ્ત જ્ઞાનના જેઓ પાઠક હોય, ૧૦, ગૃહીતવાક્ય—જેમના વચનો આદેય (ગ્રહણ કરવા યોગ્ય) હોય. ૧૧, જિતપરિષત્-ઘણી વિશાળ સભામાં પણ જેઓ ક્ષોભ અનુભવતા ન હોય. ૧૨, જિતનિદ્રઃ—જેમણે નિદ્રા ઉપર પણ વિજય પ્રાપ્ત કર્યો હોય એટલે કે રાત્રે પણ નિદ્રાને અધીન થયા વિના જેઓ સૂત્ર અને અર્થનું ચિન્તન કર્યા કરતા હોય. ૧૩, મધ્યસ્થ-જેઓ પક્ષપાતથી રહિત હોય, ૧૪. દેશકાલ

आसन्नं=शास्त्रार्थं कर्तुं समीपे समागतं परवादिनं प्रति लब्धा प्रतिभा येन स तथा, परवादिभिराक्षिप्तः शीघ्रमुत्तरदायीत्यर्थः। नानाविधदेशभाषाज्ञः—अनेकदेशभाषाज्ञानसम्पन्नः। पञ्चविधआचारे युक्तः=ज्ञानादिपञ्चाचारे युक्तः। सूत्रार्थतदुभयविधिज्ञः। आहरणहेतूपनयनिपुणः-तत्र-आहरणं=दृष्टान्तः, हेतुः=कारको ज्ञापकश्च। तत्र कारके-यथा घटस्य कर्त्ता कुम्भकारः। ज्ञापको यथा—घटानामभिव्यञ्जकः प्रदीपः। उपनयः=उपसंहारः, नयाः=नैगमादयः, एतेषु निपुणः=कुशलः। ग्राहणाकुशलः ग्राहणायां=शिष्यस्य सूत्रार्थतदुभयग्राहणायां कुशलः। स्वसमयपरसमयवित्=स्वसिद्धान्तपरसिद्धान्तज्ञानसंपन्नः। गम्भीरः=अतुच्छस्वभावः।

हो—अर्थात् द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का जो जानने वाले हो १४, आसन्नलब्धप्रतिभः—शास्त्रार्थ करने के लिये निकट आये हुए परवादी को परास्त करने के लिये जिस की प्रतिभा तेज हो—अर्थात् परवादी से आक्षिप्त होने पर जो शीघ्र ही उत्तर दाता हो १५, नानाविध देशभाषाज्ञः—अनेक देशों की भाषाओं का जिसे ज्ञान हो १६, पञ्चविध आचारयुक्तः—ज्ञानाचार आदि पांच प्रकार के आचारों का जो पालन कर्ता हो, १७, सूत्रार्थ तदुभय विधिज्ञः—सूत्र अर्थ तथा तदुभय सूत्रार्थ की विधि का जानकार हो १८, आहारण हेतूपनयननिपुणः—उदाहरण, हेतु, उपनय और नय इनमें जो निपुण हो १९, ग्रहण कुशल-जो शिष्य को तत्व ग्रहण कराने में कुशल हो २०, स्वसमय परसमयवित्—जिस स्वसमय का और परसमय का अच्छी तरह से बोध—ज्ञान

ભાવજ્ઞ-જેઓ દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવના જ્ઞાતા હોય, એટલે કે દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવના જેઓ જાણકાર હોય, ૧૫, "आसन्नलब्धप्रतिभः" શાસ્ત્રાર્થ કરવાને માટે પોતાની પાસે આવેલા પરમવાદીને પરાસ્ત કરવાને યોગ્ય પ્રતિભાથી જેઓ સંપન્ન હોય-એટલે કે પરમતવાદીની સાથે જ્યારે ચર્ચા ચાલે ત્યારે તેના પ્રશ્નોનો યોગ્ય ઉત્તર આપીને તેના મતનું ખંડન અને પોતાના મતનુ (સ્વ સમયનું) સમર્થન કરવાને જેઓ સમર્થ હોય છે, ૧૬, "नानाविधदेशभाषज्ञः" જેમને અનેક દેશની ભાષાઓનું જ્ઞાન હોય, ૧૭, 'पञ्चविधआचारयुक्तः" જ્ઞાનાચાર આદિ પાંચ પ્રકારના આચારોનું જેઓ પાલન કરનારા હોય. ૧૮, 'सूत्रार्थतदुभयविधिज्ञः" — જેઓ સૂત્ર, અર્થ તથા તદુભય (સૂત્ર અને અર્થ બન્ને) સૂત્રાર્થની વિધિના જાણકાર હોય, ૧૯. "आहरणहेतूपनयनयनिपुणः" ઉદાહરણ, હેતુ, ઉપનય અને નયમાં જેઓ નિપુણ હોય. ૨૦, "ग्रहणकुशलः" જેઓ શિષ્યને તત્વ ગ્રહણ કરાવવામાં કુશળ હોય, ૨૧, "स्वसमयपरसमयवित्" જેઓ સ્વસમય (જૈન સિદ્ધાંત) અને પરસમયનું (અન્યસિદ્ધાંતોનું સારું જ્ઞાન ધરાવતા હોય,

दीप्तिमान्-परवादिभिरनुद्घर्षणीयः। शिवः=अक्रोधनः यद्वा—त्र तत्र वा विहरन् लोकः कल्याणकारी। सोमः=शान्तदृष्टिः। गुणशतकलितः=गुणाः=दया दाक्षिण्यादयः तेषां शतानि, तैः कलितः, इह शतशब्दो बहुत्ववाचकः। एतादृश एव मुनिः प्रवचनसारं=द्वादशाङ्गरूपप्रवचनार्थं परिकथयितुं=सम्यक् प्ररूपयितुं युक्तः=योग्यः समर्थो भवतीत्यर्थः उक्तपञ्चविंशतिगुणयुक्तस्य मुनेर्वचनं घृतपरिषिक्तवह्निरिव भाति। उक्तगुणरहितस्य वचनं तु स्नेहविहीनदीप इव न शोभते। एवं पञ्चविंशति गुणयुक्तेन मुनिना कस्य वाऽनुयोगः=कस्य शास्त्रस्याऽनुयोगः वक्तव्य इत्यपि वक्तव्यम्। तद्द्वाराणि-तस्य अनुयोगस्य द्वाराणि=उपक्रमादीनि वक्तव्यानि। वक्ष्यते अग्रे स्वयमेव सूत्रकारः। तस्य-अनुयोगस्य लक्षणं वक्तव्यम्। लक्षणं चैवमुक्तम्—

हो २१, गंभीरः—जिसका स्वभाव गहरा हो २२, दीप्तिमान् परवादियों द्वारा जो परास्त न किया जा सके २३, शिव—क्रोध जिसे न आवे, अथवा—इतस्ततः विहार करता हुआ जो लोक का कल्याणकारी हो २४, सोम—जिसकी दृष्टि शांत हो २६, और गुणशत कलित—सैकडों दयादाक्षिण्य आदि गुणों से जो युक्त हो, ऐसा मुनि द्वादशांगरूप प्रवचन के अर्थ को अच्छी तरह से प्ररूपित करने के लिये समर्थ होता है। इन २५, (पच्चीस) गुणों से युक्त मुनि के वचन घृत से सिंचित अग्नि के जैसे तेजस्वी होते हैं। परन्तु इन गुणों से रहित जो साधु होता है उसके वचन स्नेह से रहित दीपक की तरह शोभित नहीं होते हैं। इस प्रकार इन २५ गुणों से युक्त मुनि को "किस शास्त्र का अनुयोग कर्तव्य है यह भी कहना चाहिये। अनुयोग के जो उपक्रम आदि द्वार कहे गये हैं—वे भी शिष्य को कहना चाहिये। अनुयोग के भेद

२२, "गंभीरः" જેઓ સ્વભાવે ગંભીર હોય, २३, "दीप्तिमान्" જેઓ દીપ્તિમાન હોય—પરમતવાદીઓ જેમને પરાસ્ત કરવાને સમર્થ ન હોય, २४, "शिवः" જેમનામાં ક્રોધનો અભાવ હોય અથવા અહીં તહીં વિહાર કરતા થકા જેઓ જીવોનું કલ્યાણ કરનારા હોય, २५, "सोम" જેમની દૃષ્ટિ અથવા મુખમુદ્રા શાન્ત હોય, "गुणशतकलितः" અને જેઓ દયા દાક્ષિણ્ય આદિ સેંકડો ગુણોથી સંપન્ન હોય. એવા મુનિ જ દ્વાદશાંગરૂપ પ્રવચનના અર્થને સારી રીતે પ્રરૂપિત કરવાને સમર્થ હોય છે, આ ૨૫ ગુણોથી યુકત મુનિનાં વચનો ઘી વડે સિંચિત અગ્નિના સમાન તેજસ્વી હોય છે. પરન્તુ આ ગુણોથી રહિત જે સાધુ હોય છે તેના વચનો તેલથી રહિત દીપકના સમાન તેજરહિત (પ્રભાવ રહિત) હોય છે.

આ પ્રકારના ૨૫ ગુણોથી યુકત મુનિએ કયા શાસ્ત્રનો અનુયોગ કરવો જોઈએ, એ વાત પણ અહીં પ્રકટ કરવા અનુયોગના જે ઉપક્રમ આદિ દ્વાર

"संहिता य पयं चेव, पयत्थो पयविग्गहो।
चालणा य पसीद्धी य छव्विहं विद्धि लक्खणं॥
छाया—संहिता च पदं चैव पदार्थः पदविग्रहः।
चालना च प्रसिद्धिश्च षड्विधं विद्धि लक्षणम्॥

तत्र-संहिता=अस्खलितपदोच्चारणम्। पदम्=वर्णानामन्योन्यापेक्षाणां निरपेक्षा संहति, सुबन्तं तिङन्तं वा। पदार्थः-पदस्य अर्थः=अभिधेयः। पदविग्रहः=प्रकृतिप्रत्ययविभागरूपो विस्तारः। च=पुनः चालना=प्रश्नः। प्रश्ने सति प्रसिद्धिः=समाधानं चेति षड्विधम् अनुयोगस्य लक्षणं विद्धि=जानीहि। व्याख्येयसूत्रस्य च अलियमुवघायजणयं' इत्यादि द्वात्रिंशद्दोषरहितत्वादिकं लक्षणं वक्तव्यम्।

कि जिन्हें सूत्रकार स्वयं ही आगे कहेंगे। अनुयोग का क्या लक्षण है यह भी शिष्य को समझाना चाहिये। अनुयोग का लक्षण इस प्रकार कहा है—"संहिता य" इत्यादि—अस्खलितरूप से पदों का उच्चारण करना इस का नाम संहिता है। अन्योन्यापेक्षावाले वर्णों की निरपेक्ष जो संहिता है उसका नाम अथवा सुबन्त और तिङन्त का नाम पद है। पद के अभिधेय का नाम पद विग्रह है। चालना नाम प्रश्न का है। प्रश्न के समाधान का नाम प्रसिद्धि है। ये छह प्रकार का अनुयोग का लक्षण है। यह लक्षण कहना चाहिये-तथा "अलियमुवघायजणयं" इत्यादि जो ३२, दोष कहे गये है उनसे रहित अनुयोग होता है यह भी अनुयोग का लक्षण कहना चाहिये। तथा यह भी कहना चाहिये कि अनुयोग को सुनने के लिये-

---

છે. તે પણ તેમણે શિષ્યોને કહેવા જોઇએ. અનુયોગના પણ ભેદો શિષ્યોને બતાવવા જોઇએ. તે ભેદોનું નિરૂપણ સૂત્રકાર પોતે જ આગળ કરવાના છે. તેમણે શિષ્યોને અનુયોગનાં લક્ષણો પણ સમજાવવા જોઇએ. અનુયોગનાં લક્ષણો નીચે પ્રમાણે છે.

"संहिता य" ઇત્યાદિ—પદોનું અસ્ખલિત રૂપે ઉચ્ચારણ કરવું તેનું નામ સંહિતા છે. અન્યોન્યની અપેક્ષાવાળા વર્ણોથી નિરપેક્ષ જે સંહિતા છે તેનું નામ અથવા સુબન્ત અને તિઙન્તનું નામ પદ છે. પદના અભિધેયનું નામ પદાર્થ છે. પ્રકૃતિ પ્રત્યયના વિભાગરૂપ વિસ્તારનું નામ પદવિગ્રહ છે. પ્રશ્નને "ચાલના" કહે છે. પ્રશ્નના સમાધાનરૂપ ઉત્તરને પ્રસિદ્ધિ કહે છે. આ છ પ્રકારનું અનુયોગનું લક્ષણ છે. ગુરૂએ અનુયોગના આ છ લક્ષણો પણ શિષ્યને કહેવા જોઇએ. તથા "अलियमुवघायजणयं" ઇત્યાદિ જે ૩૨ દોષ છે તે પણ કહેવા જોઇએ. આ ૩૨ દોષોથી અનુયોગ રહિત હોય છે, અને પણ શિષ્યોને કહેવું જોઇએ. વળી તેમણે શિષ્યોને એ પણ સમજાવવું જોઇએ કે અનુયોગનું શ્રવણ કરવા માટે કેવા કેવા મુનિને યોગ્ય ગણવામાં આવે છે. અનુયોગનું શ્રવણ કરવા માટે મુનિમાં નીચેની પાત્રતાઓ હોવી જોઇએ.

तदर्हाः तस्य=अनुयोगस्य अर्हाः=योग्या मुनयो वक्तव्याः। तथाहि—

बहुस्सुए चिरपव्वइए, कप्पिए य अचंचले ।
अवट्ठिए य मेहावी, अपरिभाविओ विऊ ॥१॥
पत्ते य अणुण्णाए, भावओ परिणामगे ।
एयारिसे महाभागे, अणुओगं सोउमरिहइ ॥२॥

छाया—बहुश्रुतश्चिरप्रव्रजितः, कल्पिकश्च अचञ्चलः ।
अवस्थितश्च मेधावी, अपरिभावितो विद्वान् ॥१॥
पात्रं चानुज्ञातः, भावतः, परिणामकः ।
एतादृशो महाभागः, अनुयोगं श्रोतुमर्हति ॥२॥

यो मुनिः बहुश्रुतः=शास्त्रज्ञः, चिरप्रव्रजितः=चिरकालगृहीतदीक्षः, कल्पिकः=गीतार्थः, अचञ्चलः=चाञ्चल्यवर्जितः, अवस्थितः=साधुमर्यादायां स्थितः, मेधावी=बुद्धिमान्, अपरिभावितः=परिषहोपसर्गैरपरिभूतः, परतीर्थिकैरपरिभूतो वा, विद्वान्=पण्डितः—प्रभूताशेषशास्त्राभ्यासनिर्मलबुद्धिरित्यर्थः, पात्रं=योग्यः, अनुज्ञातः=गुरुणाऽऽज्ञप्तः, तथा—भावतः परिणामक=भावपरिणामयुक्तश्च भवति। एतादृशो महाभागो मुनिरनुयोगं श्रोतुमर्हति ।

ऐसा मुनि योग्य होता है—जो "बहुस्सुए चिरपव्वइए" इत्यादि बहुश्रुत—शास्त्रों का ज्ञाता हो, चिरकाल का दीक्षित हो, गीतार्थ हो चञ्चलता से रहित हो, साधुमर्यादा में स्थिर हो, बुद्धिशाली हो, परीषह और उपसर्गों से या अन्यतीर्थिकजनों से अपरिभूत हो, विद्वान् हो,—अर्थात् अनेकशास्त्रों के अभ्यास से जिस की बुद्धि निर्मल हो अनुयोग का पात्र हो गुरु से अनुयोग सुनने की जिसे आज्ञा मिल चुकी हो, और जो भावसे परिणामयुक्त हो ऐसा महाभाग मुनि अनुयोग को सुनने के योग्य होता है। गुरु को अनुयोग सुनने वाली सभा का भी कथन करना चाहिये—उन्हें कहना चाहिये कि

"बहुस्सुए चिरपव्वइए" ઇત્યાદિ—જે બહુશ્રુત—(શાસ્ત્રોનો જ્ઞાતા) હોય, ચિરકાલનો દીક્ષિત હોય, ગીતાર્થ હોય, ચંચલતાથી રહિત હોય, સાધુની મર્યાદાનું દૃઢતાપૂર્વક પાલન કરનાર હોય, બુદ્ધિશાળી હોય, પરીષહો, ઉપસર્ગો અને અન્યતીર્થિકોથી જે અપરિભૂત (પરાસ્ત ન થાય એવો) હોય, વિદ્વાન હોય-એટલે કે અનેકશાસ્ત્રોના અભ્યાસથી જેની બુદ્ધિ નિર્મળ થયેલી હોય, અનુયોગને પાત્ર હોય. ગુરૂએ જેને અનુયોગનું શ્રવણ કરવાની અનુજ્ઞા આપી હોય, અને જે ભાવની અપેક્ષાએ પરિણામયુકત હોય. એવા મહાભાગ મુનિને જ અનુયોગનું શ્રવણ કરવાને પાત્ર માનવામાં આવે છે. ગુરૂએ અનુયોગ શ્રવણ કરનારી પરિષદ કેવી હોવી

तथा-परिषद्=अनुयोगस्य योग्या परिषद् वक्तव्या । सा च सामान्यतस्त्रिधा भवति । तद्यथा—

"जाणंतिया अजाणंतिया य, तह दुव्विअड्ढिया चेव ।
तिविहा य होइ परिसा, तीसे नाणत्तगं वोच्छं ॥१॥"

छाया—जानाना अजानाना च, तथा दुर्विदग्धिका चैव ।
त्रिविधा च भवति परिषत् तस्या नानात्वं वक्ष्ये ॥१॥

अयं भावः—परिषत् त्रिविधा भवति,-ज्ञायकपरिषत्, अज्ञायकपरिषत्, दुर्विदग्धिका परिषदिति । तत्र-एकैकपरिषत्स्वरूपं लक्षयितुं प्रथमं ज्ञायकपरिषत्स्वरूपमाह—

"गुणदोसविसेसण्णू अणभिग्गहिया य कुस्सुइमएसुं ।
सा खलु जाणगपरिसा, गुणतत्तिल्ला अगुणवज्जा ॥१॥
खीरमिव रायहंसा, जे घुट्ठंति गुणे गुणसमिद्धा ।
दोसे वि य छड्डित्ता, ते वसहा धीरपुरिसत्ति ॥२॥

छाया—गुणदोषविशेषज्ञा अनभिगृहीता च कुश्रुतिमतेषु ।
सा खलु ज्ञायकपरिषत्, गुणतत्परा अगुणवर्जा ॥१॥
क्षीरमिव राजहंसा, ते पिबन्ति गुणान् गुणसमृद्धाः ।
दोषानपि च त्यक्त्वा, ते वृषभा धीरपुरुषा इति ॥२॥

अयं भावः—या परिषद् गुणदोषान् विशेषतो जानाति । कुश्रुतिमतेषु आग्रहवती न भवति । एवंविधा गुणेषु तत्परा अगुणेभ्यो रहिता परिषत्ज्ञायक

अनुयोग को सुनने के योग्य ऐसी परिषत् होती हैं—अर्थात् परिषत् सामान्य से ३, प्रकार की होती है—एक ज्ञायक परिषत्, दूसरी अज्ञायक परीषत् और ३ तीसरी दुर्विदग्धिका परिषत् । यही बात "जाणंतिया" इत्यादि गाथाद्वारा प्रकट की गई है । इनमें से ज्ञायक परिषत् का स्वरूप इस प्रकार से हैं—गुणदोस विसेसण्णू "इत्यादि—जो परिषद् गुण और दोषों को विशेषरूप से जानती है

જોઇએ તે પણ શિષ્યને સમજાવવું જોઇએ. તેમણે તેને એ વાત સમજાવવી જોઇએ કે અનુયોગનું શ્રવણ કરનારી પરિષદમાં આ પ્રકારની યોગ્યતા હોવી જોઇએ-પરિષદના સામાન્ય રીતે ત્રણ પ્રકાર કહ્યા છે, તે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે—૧, જ્ઞાયક પરિષદ, ૨, અજ્ઞાયક પરિષદ અને ૩. દુર્વિદગ્ધિકા પરિષદ આ વાત "जाणंतिया" ઇત્યાદિ ગાથા દ્વારા પ્રકટ કરવામાં આવી છે.

જ્ઞાયક પરિષદનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું હોય છે—

"गुणदोसविसेसण्णू" ઇત્યાદિ—જે પરિષદ ગુણ અને દોષોને વિશેષરૂપે જાણતી હોય છે, અને ખોટાં શાસ્ત્રોની માન્યતાઓને જે માનતી નથી—ખોટાં શાસ્ત્રોને

परिषदुच्यते । अत्र परिषदि ये नरा भवन्ति, ते गुणसमृद्धा भवन्ति ।

यथा राजहंसा सजलदुग्धाद् जलं विहाय दुग्धमेव पिवन्ति, तथैव एते दोषान् विहाय गुणानेव गृह्णन्ति । एते हि धर्मधुराधारणे वृषभा इव उद्युक्ता भवन्ति । अत एव एते धीरपुरुषा उच्यन्ते, इति ज्ञायक–परिषत् ।

अथ–अज्ञायकपरिषत्स्वरूपमाह—

"जा होइ पगइमुद्धा मिगसावगसीहकुक्कुडगभूया ।
रयणमिव असंठविया, सुहसंणप्पा गुणसमिद्धा ॥१॥

छाया–या भवन्ति प्रकृतिमुग्धा मृगशावकसिंहकुक्कुटकभूता ।
रत्नमिवासंस्थापिता सुखसंज्ञाप्या गुणसमृद्धा ॥१॥

अयं भावः–या परिषत् प्रकृतिमुग्धा=प्रकृत्या-स्वभावेन मुग्धा=भद्रभाव-संपन्ना, मृगशावकसिंहकुक्कुटकभूताः–तव मृगशावकाः=हरिणशिशवः, सिंहाः=सिंह-

---

और खोटे शास्त्रों को मानने वालों के मत में जिसे आग्रह नहीं होता है वह परिषत् ज्ञायक परिषत् है । ऐसी परिषत् गुणों में तत्पर और अगुणों से रहित होती हैं । इस परिषत् में जो मनुष्य होते हैं वे गुणसमृद्ध होते हैं । जैसे राज हंस जलसहितदुग्ध मेंसे जल का परित्याग कर दूध का ही पान करते हैं वैसे ही यह परिषत् दोषों को छोड कर गुणो को ही ग्रहण करती है । इस परिषत् के सदस्यजन धर्म की धुरा को धारण करने में वृषभ की तरह सदा उद्योगशील रहा करते हैं। इसलिये ये धीर पुरुष कहलाते हैं । अज्ञायक परिषत् का स्वरूप इस प्रकार से है–"जा होइ पगइ भद्दा" इत्यादि–जो परिषत् स्व-भाव से भद्रभावयुक्त होती है । तथा मृगशिशु, सिंहशिशु और कुक्कटशिशु के समान जिसके सदाय सरल भाव वाले होते हैं–एवं जो खान से निकले हुए

માનનારા લોકોના મતમાં જેને બિલકુલ શ્રદ્ધા હોતી નથી એવી પરિષદને જ્ઞાયક પરિષદ કહે છે. એવી પરિષદ ગુણગ્રાહી અને અગુણોથી રહિત હોય છે. આ પરિ-ષદમાં એકત્ર થયેલા મનુષ્યો ગુણસમૃદ્ધ હોય છે. જેવી રીતે રાજહંસ જલમિશ્રિત દૂધમાંથી દૂધને જ ગ્રહણ કરે છે અને જળનો પરિત્યાગ કરે છે. તેમ આ પરિષદ પણ દોષોનો પરિત્યાગ કરીને ગુણોને ગ્રહણ કરે છે. આ પરિષદના સભ્યો ધર્મની ધુરાને ધારણ કરવામાં વૃષભની જેમ સદા ઉદ્યોગશીલ રહે છે. તે કારણે તેમને ધીર પુરૂષો માનવામાં આવે છે.

અજ્ઞાયક પરિષદનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું હોય છે—

"जा होइ पगइभद्दा" ઇત્યાદિ—જે પરિષદના સભ્યો સ્વભાવની અપેક્ષાએ ભદ્રભાવ (સરલતા)થી યુકત હોય છે. જેના સભ્યો મૃગશિશુ. સિંહશિશુ અને કુકડાના

शावकाः, कुक्कुटकाः=कुक्कुटकशावकाः-तद्भूताः=तत्सदृशा । 'सिंहकुक्कुट' शब्दौ अत्र तत्तच्छावकपरौ । तज्ज्ञना हरिणशिशुसिंहशिशुकुक्कुटशिशव इव अत्यन्त सरल इत्यर्थः ।

तथा—रत्नमिव असंस्थापिता=सहजरत्नमिवासंस्कृता=भवति । सा परिषत् सुखसंज्ञाप्या=अनायासबोधनीया गुणसमृद्धा=गुणगणयुता च भवति । किं च—

"जा खलु अभावियाकुस्सुइहिं न य ससमए गहियसारा ।
अकिलेसकरा सा खलु, वइरं छक्कोडिसुद्धं व ॥"

छाया—या खलु अभाविता कुश्रुतिभिः, न च स्वसमये गृहीतसारा ।
अक्लेशकारी सा खलु वज्रं षट्कोटिशुद्धमिव ॥२॥

अयं भावः—या परिषत् कुश्रुतिभिरभाविता भवति, न च स्वसमये गृहीत सारा=स्वसिद्धान्ताभिज्ञा च न भवति, अक्लेशकारी=क्लेशोत्पादिका न भवति, या च षट्कोटिशुद्धं सर्वथा शुद्धवज्रमिव हीरक इव विशुद्धा भवति, सा खल्व ज्ञायकपरिषदुच्यते । इति ॥

सम्प्रति दुर्विदग्धपरिषदुच्यते—

"न य कत्थ वि निम्माओ, न य पुच्छइ परिभवस्स दोसेणं ।
बत्थिव वायपुण्णो, फुट्टइ गामेल्लगऽवियड्ढो ॥१॥
किंचिम्मत्तग्गाही, पल्लवगाही य तुरियगाही य ।
दुवियड्ढगा उ एसा, भणिया तिविहा इमा परिसा" ॥२॥

रत्न के समान असंस्कृत होते हैं । और इसी से जिन्हें समझाना बहुत सरल होता है-अर्थात् जो थोड़े से कहने में ही सन्मार्ग पर आ जाते हैं । ये सब गुणगण से युक्त रहा करते हैं । "जा खलु अभाविता" इत्यादि—यह परिषत् कुश्रुतियों के बहकावे में नही आती है और अपने सिद्धान्त के पीछे यह लड़ना झगडना नहीं जानती है । षट्कोटि शुद्ध हीरे के समान यह परिषत् विशुद्ध होती है । दुर्विदग्ध परिषत् का स्वरूप इस प्रकार से है—"न य कत्थ वि" इत्यादि—जो पुरुष किसी भी विषय में निष्णात न हो और जो पुरुष

શિશુ સમાન સરલભાવથી યુકત હોય છે. અને ખાણોમાંથી નીકળેલા રત્ન સમાન જે અસંસ્કૃત હોય છે. જે પરિષદાને ધર્મતત્વ સમજાવવાનું કાર્ય ઘણું જ સરલ હોય છે. એવા ગુણોથી યુકત પરિષદને અજ્ઞાયક પરિષદ કહે છે. "जा खलु अभावित्ता" કુશાસ્ત્રો આ પરિષદને બહેકાવી શકતાં નથી અને તે પરિષદ સ્વ સિદ્ધાંતોથી અભિજ્ઞ પણ હોતી નથી. સિદ્ધાન્તને નામે તને ઝગડા કરતા પણ આવડતા નથી. ષટકોટ શુદ્ધ હીરા સમાન વિશુદ્ધ આ પરીષદ હોય છે.

छाया—न च कुत्रापि निर्मातो न च पृच्छति परिभवस्य दोषेण ।
बस्तिरिव वातपूर्णः स्फुटति ग्रामेयकोऽविदग्धः ॥१॥
किंचिन्मात्रग्राहिणी, पल्लवग्राहिणी त्वरितग्राहिणी च ।
दुर्विदग्धा त्वेषा भणिता, त्रिविधेयं परिषत् ॥२॥
यो नरः कुत्रापि विषये निष्णातो न भवति ।

परिभवस्य दोषेण=अपमानदोषेण चान्यं जनं वस्तुतत्त्वं न पृच्छति । 'यद्यहमेनं प्रक्ष्यामि तव ममाप्रतिष्ठा स्यादिति हेतो स्तत्त्वज्ञजनसकाशात् तत्त्वज्ञानं लब्धुं न यतते इति भावः । एतादृशो ग्रामेयको —ग्राम्यः=संस्कारवर्जितः अविदग्धः-अनिपुणः पुरुषः, वातपूर्णो बस्तिरिव स्फुटति =स्थूलो भवति अहंकारी भवतीत्यर्थः किंच—य किञ्चिन्मात्रग्राही भवति,

---

निष्णात हैं उनसे वह इस अभिप्राय से वस्तुतत्त्व को नहीं पूछता हो कि इन से पूछने पर मेरी अप्रतिष्ठा-अवज्ञा-होगी इसी कारण वह तत्त्वज्ञान प्राप्ति में प्रयत्नशाली नहीं होता है ऐसी व्यक्ति सत् ज्ञान के संस्कार से रहित बन कर केवल अविदग्ध-अनिपुण बना रहता है और वायु से पूर्ण धमनी के समान अपने अभिमान में फूला रहता है। इसी तरह जो थोडा बहुत जानता हैं तथा पल्लवग्राही पांडित्य-जिसके पास में है, जो त्वरितग्राही है-कहने पर शीघ्र समझतो लेता है-पर फिर विस्मृत हो जाता है-फिर भी ज्ञानि के अहंकार में तत्पर रहता है ऐसे इन व्यक्तियों की सभा का नाम दुर्विदग्धा सभा है । तात्पर्य इस का यह है कि बोध लव होने पर जो अपने आप

દુર્વિદગ્ધ પરીષદનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું હોય છે.

'नय कत्थ वि" ઇત્યાદિ—કોઇ એક પુરૂષ અમુક વીષયમાં નીષ્ણાત નથી. તે વિષયમાં બીજી કોઇ એક વ્યક્તિ નિષ્ણાત છે, પરન્તુ પહેલી વ્યક્તિ બીજી વ્યક્તિને વસ્તુતત્ત્વ વિષે એ કારણે પૂછતી નથી કે તેને પૂછવાથી મારી અપ્રતિષ્ઠા થશે. આ પ્રકારના અભિમાનને કારણે તે તત્ત્વજ્ઞાન-પ્રાપ્તિમાં પ્રયત્નશીલ રહેતો નથી. એવો માણસ સાચા જ્ઞાનના સંસ્કારથી રહિત જ રહેવાને કારણે અવિદગ્ધ-અનિપુણ જ રહે છે. એવો માણસ હવાથી ભરેલી ધમણ સમાન અભિમાનથી ફૂલાયા જ કરે છે, આ પ્રકારના અધકચરા જ્ઞાનવાળાને અર્ધદગ્ધ કહે છે. આ પ્રકારના અર્ધદગ્ધ, છીછરા જ્ઞાનવાળા, ત્વરિતગ્રાહી (કોઇ વાત કહેવામાં આવે તો શીઘ્ર સમજી લેનારા પણ પાછળથી તેને ભૂલી જનારા) માણસો જ્ઞાનના અભિમાનમાં તત્પર રહેતા હોય છે. એવી વ્યક્તિયોની સભાને દુર્વિદગ્ધા પરિષદ કહે છે આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે જેઓ પોતાને વિશિષ્ટ તત્ત્વજ્ઞાની માની રહ્યા છે, અને જેવો વારંવાર સમજાવવા

पल्लवग्राही त्वरितग्राही भवति। तेषां परिषद् दुर्विदग्धा। इत्येवमुक्तरीत्या त्रिविधा परिषद् विज्ञेया। इहाद्ये उभे अनुयोगार्हे, तृतीया तु अनुयोगानर्हा। एतत्सर्वमुक्त्वा सूत्रार्थो वक्तव्यः। इत्येवमनुयोगस्य द्वादश द्वाराणि वक्तव्यानि भवन्ति। सूत्रकारस्तु शेषाणि द्वाराण्युपलक्षयितुं 'कस्य शास्त्रस्यायमनुयोगः?' इति सप्तमं द्वारं चेतसि निधाय "जइ सुयनाणस्स उद्देसो' इत्यारभ्य 'इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च आवस्सगस्स अणुओगो' इति यावदुक्तवान् ॥सू० ५॥

को विशिष्ट तत्त्वज्ञानी मान बैठे हैं और समझाने पर भी जो अपने झूठे आग्रह को छोडते नही हैं ऐसे व्यक्ति दुर्विदग्ध कहे गये हैं। इन की सभा का नाम दुर्विदग्ध सभा है। इस प्रकार इन तीन सभाओं में से आदि की दो सभाएं तो अनुयोग के योग्य हैं, परन्तु जो तीसरी सभा है वह अनुयोग है वह अनुयोग के योग्य नहीं हैं।—

यह सब अनुयोग से लगता हुआ विषय पहिले कहकर अनुयोगाचार्य को सूत्रार्थ का कथन करना चाहिये। इस प्रकार ये अनुयोग के १२ द्वार हैं। इन बारह द्वारों को अनुयोगाचार्य के विषय कहना चाहिये। सूत्रकारने यद्यपि इन १२ द्वारों का यहां कथन नहीं किया है तो भी उन्होंने शेष द्वारों को उपलक्षित करनेकेलिये "कस्य शास्त्रस्य अयम्-अनुयोगः" इस सप्तमद्वार को चित्त में रखकर—"जइ सुयनाणस्स उद्देसो" यहां से प्रारंभ करके "इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च आवस्सगस्स अणुओगो" यहां तक कहा है। स्थिर परिपाटी—

છતાં પણ પોતાના દુરાગ્રહને છોડતા નથી, જેઓ જ્ઞાની પુરુષોની વાત સમજવાને પણ તત્પર નથી એવાં પુરુષોને દુર્વિદગ્ધ કહે છે અને એવા પુરુષોની સભાને દુર્વિદગ્ધ પરિષદ કહે છે. આ ત્રણ પ્રકારની જે પરિષદો કહી તેમાંની પહેલા બે પ્રકારની પરિષદો તો અનુયોગને પાત્ર ગણાય છે, પણ ત્રીજા પ્રકારની જે દુર્વિગ્ધ પરિષદ છે, તેને અનુયોગને પાત્ર ગણી નથી, અનુયોગને લગતું આ બધું કથન સૌથી પહેલાં કરવું જોઇએ. ત્યારબાદ જ અનુયોગાચાર્યે સૂત્રાર્થનું કથન કરવું જોઇએ. આ પ્રકારના તે અનુયોગના ૧૨ દ્વાર છે. તે બાર દ્વારોનું અનુયોગાચાર્યે શિષ્ય આગળ કથન કરવું જોઇએ. જો કે સૂત્રકારે બે ૧૨ દ્વારોનું કથન અહીં કર્યું નથી, છતાં પણ બાકીના દ્વારોને ઉપલક્ષિત કરવા નિમિત્તે "कस्य शास्त्रस्य अयम् अनुयोगः" "કયા સૂત્રનો આ અનુયોગ છે," આ સાતમાં દ્વારને હૃદયમાં ધારણ કરીને "जइ सुयनाणस्स उद्देसो" આ સૂત્રપાઠથી શરૂ કરીને "इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च आवस्सगस्स अणुओगो" આ સૂત્રપાઠ પર્યન્તનું કથન કર્યું છે. "સ્થિર પરિપાટી" આ વિશેષણ

मूलम्—आवस्सयं णं किं अगं अंगाइं ? सुयं सुयाइं ? खंधो खंधा ? अज्झयणं अज्झयणाइं ? उद्देसो उद्देसा ? । आवस्सयं णं नो अंग, नो अंगाइं, सुयं, नो सुयाइं, खंधो, नो खंधा, नो अज्झयणं, अज्झयणाइं, नो उद्देसो, नो उद्देसा ॥ सू० ६ ॥

छाया-आवश्यकं खलु किम् अङ्गम् अङ्गानि ? श्रुतं श्रुतानि ?, स्कन्धः स्कन्धाः ? अध्ययनम् अध्ययनानि ?, उद्देशः उद्देशाः ? । आवश्यकं खलु ना अङ्गं, नो

जो विशेषण बतलाया गया है वह यह प्रमाणित करता है कि इस विशेषण-वाला मुनि कभी भी सूत्र और अर्थ को विपरीत नही करता है। जो आदेय वचनवाला मुनि होता है—उसके थोडे भी वचन महार्थ से भरे हुए जैसे मालूम होते हैं। आहरण नाम उदाहरण का है। हेतु दो प्रकार का होता है—१ एक ज्ञापक हेतु और दूसरा कारक हेतु-घटका-अभिव्यंजक दीप घटका ज्ञापक हेतु है। घटका कर्ता कुंभकार—घटका कारक हेतु है। उपसंहार का नाम उपनय है। नैगमादि सात नय हैं। ॥सूत्र ५॥

"आवस्सयं णं इत्यादि । ॥सूत्र ६॥

शब्दार्थ—(आवस्सयं णं) आवश्यक सूत्र (किं अंगम्) क्या १ एक अंग रूप है ? (अंगाइं) या अनेक अंगरूप है ? (सुयं सुयाइं) एक श्रुतरूप है ? या अनेक श्रुतरूप है ? (खंधो खंधाइं ?) एक स्कंधरूप है ? या अनेकस्कंध रूप है ? (अज्झयणं अज्झेयणाइं) एक अध्ययनरूप है—या अनेक अध्ययनरूप है ? (उद्देसो उद्देसा) एक उद्देशरूप है या अनेक उद्देशरूप है ?—

એ વાતનું સમર્થન કરે છે કે આ વિશેષણવાળો મુનિ કદી પણ સૂત્ર અને અર્થનું વિપરીત કથન કરતો નથી. જે મુનિ આદેયવચનથી યુકત હોય છે, તેમના થોડાં વચનો પણ મહા અર્થથી ભરેલા લાગે છે. "આહરણ" એટલે ઉદાહરણ અથવા દૃષ્ટાન્ત હેતુ બે પ્રકારનો હોય છે—(૧) જ્ઞાપકહેતુ અને (૨) કારક હેતુ ઘટનો અભિવ્યંજક દીપક ઘટના જ્ઞાપક હેતુરૂપ છે. ઘટનું નિર્માણ કરનાર કુંભકાર (કુંભાર) ઘટના કારકહેતુરૂપ છે. ઉપસંહારનું નામ ઉપગમ છે. નૈગમ આદિ સાત નય છે. । સૂત્ર ૫ ।

"आवस्सयं णं" इत्यादि—

શબ્દાર્થ—(आवस्सयं णं अंगम् अंगाइं ?) આવશ્યક સૂત્ર શું એક અંગરૂપ છે, કે અનેક અંગરૂપ છે ? (सुयं सुयाइं ?) શું તે એક શ્રુતરૂપ છે, કે અનેક શ્રુત-રૂપ છે ? (खंधो खंधाइं ?) શું તે એક સ્કંધરૂપ છે, કે અનેક સ્કંધરૂપ છે ? (अज्झयणं अज्झयणाइं ?) શું તે એક અધ્યયનરૂપ છે, કે અનેક અધ્યયનરૂપ છે ? (उद्देसो उद्देसा ?) શું તે એક ઉદ્દેશરૂપ છે, કે અનેક ઉદ્દેશરૂપ છે ?

अङ्गानि. श्रुतम्, नो श्रुतानि, स्कधः नो स्कधाः नो अध्ययनम् अध्ययनानि, नो उद्देशो नो उद्देशाः ॥सू० ६॥

टीका-'आवस्सयं णं' इत्यादि-

आवश्यकं खलु किं द्वादशान्तर्गतमेकमङ्गमिदम् ? किं वा अङ्गानि-बहून्यङ्गानि। तथा किं श्रुतं श्रुतानि ? आवश्यकं किमेकश्रुतरूपं किंवाऽनेकश्रुतरूपम् ? तथा किं स्कन्धः स्कन्धाः-किमेकः स्कन्धः, बहवो वा स्कन्धाः ! । तथा अध्ययनम् अध्ययनानि आवश्यक दं किमेकमध्ययनं किं वा बहून्यध्ययनानि। तथा उद्देश-उद्देशा वा-किम्-एक उद्देशो वा बहवो वा उद्देशाः इति दश प्रश्नाः।

उत्तरयति—'आवस्सयं ण इत्यादि। आवश्यकं खलु नो एकाङ्गरूपं नैवा-

उत्तर-(आवस्सयं णं नो अंगं नो अंगाइं) अनंग प्रविष्टरूप श्रुत होने के कारण आवश्यक सूत्र-न एक अंगरूप है। और न अनेक अंगरूप है। "सुयं नो सुयाइं" यह तो एक तरूप है। अनेक श्रुतरूप नहीं है। (खंधो नो खंधा) एक स्कंधरूप है, अनेक स्कंधरूप नहीं है। (नो अज्झयणं, अज्झयणाइं) षड् अध्ययन स्वरूप होने से यह एक अध्ययनरूप नहीं हैं किन्तु अनेक अध्ययनरूप है। (नो उद्देसो नो उद्देसा) यह न एक उद्देशरूप है और न अनेक उद्देशरूप है। इसका तात्पर्य यह है कि यह आवश्यक सूत्र एक श्रुत स्कंधात्मक और षड् अध्ययनरूप हैं। यह एक अंगरूप और अनेक अंगरूप नहीं है। अनेक श्रुतस्कंधरूप नहीं है और न एक अध्ययनात्मक है, न एक और अनेक उद्देशरूप ही है।

शंका-यहां ये दो प्रश्न हैं कि "यह आवश्यक सूत्र १ अंगरूप है या अनेक अंगरूप है" करने योग्य ही नही प्रतीत होते-क्यों कि यह सूत्र नन्दि-

---

ઉત્તર—(आवस्सयं णं नो अंगं नो अंगाइं) અનંગ પ્રવિષ્ટ શ્રુતરૂપ હોવાને કારણે આવશ્યકસૂત્ર એક અંગરૂપ પણ નથી, અને અનેક અંગરૂપ પણ નથી. (सुयं नो सुयाइं) તે એક શ્રુતરૂપ જ છે. અનેક શ્રુતરૂપ નથી, (खंधा नो खंधा) તે એક સ્કંધરૂપ છે, અનેક સ્કંધરૂપ નથી, (णो अज्झयणं, अज्झयणाइं) તે ૬ અધ્યયનોવાળું હોવાને લીધે તેને એક અધ્યયનવાળું કહી શકાય નહીં, પણ અનેક અધ્યયનવાળું કહી શકાય. (नो उद्देसो, नो उद्देसा) તે એક ઉદ્દેશરૂપ પણ નથી અને અનેક ઉદ્દેશરૂપ પણ નથી. આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે-આવશ્યક સૂત્ર એક શ્રુતસ્કંધાત્મક અને છ અધ્યયનવાળું છે, તે એક અંગરૂપ પણ નથી અને અનેક અંગરૂપ પણ નથી, તે અનેક શ્રુતસ્કંધરૂપ પણ નથી, તે એક અધ્યયનાત્મક પણ નથી, અને એક અથવા અનેક ઉદ્દેશરૂપ પણ નથી.

શંકા—"આવશ્યક સૂત્ર એક અંગરૂપ છે ? કે અનેક અંગરૂપ છે ?" આ બે પ્રશ્નો અહીં પૂછવા જોઈતા ન હતા, કારણ કે આપે જ આગળ એવી વાત કરી

नेकाङ्गरूपम अध्ययनाङ्गप्रविष्टत्वात्। श्रुतम्—इदमेकश्रुतरूपमस्ति नो श्रुतानि—बहुश्रुतात्मकं च नास्ति। स्कन्धः-इदमेकस्कन्धरूपं नतु स्कन्धाः—बहुस्कन्धात्मकं न भवति। नो अध्ययनम्—नैकाध्ययनरूपम्, किन्तु अध्ययनानि—षडध्ययनात्मकतयाऽनेकाध्ययनरूपम्। नो उद्देशः—इदं नैकोद्देशरूपम्, नो उद्देशाः—न बहूद्देशात्मकमित्यर्थः।

अयं भावः—इदम् आवश्यकम् एकश्रुतात्मकत्वात् श्रुतम्एक स्कन्धात्मकत्वात् स्कंधः षडध्ययनात्मकत्वात् अध्ययनानि च, किन्तु नो अङ्गम, नो अङ्गानि, नो श्रुतानि, नो स्कन्धाः, नो अध्ययनम्, नो उद्देशः, नो उद्देशा वा।

नचावश्यकम्—अङ्गम् अङ्गानि वा? इति प्रश्नद्वयमकरणीयमेव, नन्दिसूत्रेऽस्यानङ्गप्रविष्टत्वेनोक्तत्वात्, अत्र तृतीयसूत्रे—'इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च अणंगपविट्ठस्स अणुओगो' इत्यनेनान्य सूत्रस्यानङ्गप्रविष्टत्वेनोक्तत्वात्? इति चेत्, उच्यते—यत्तावदुक्तम्—नन्दिसूत्रेऽस्यानङ्गप्रविष्टत्वमुक्तम्, अतोऽत्र सूत्रेऽस्याङ्गत्वविषये प्रश्नोऽयुक्त इति, तदयुक्तम्, यतो नास्ति कश्चिदेवंविधो नियमो यत्प्रथमं नन्दिसूत्रं व्याख्यायैवेदं सूत्रं व्याख्येयम्, कदाचिदनुयोगद्वारं व्याख्यायैव नन्दिसूत्रं

सूत्र में अनंग प्रविष्टरूप से कहा गया है। तथा इसी सूत्र के तृतीय सूत्र में "इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च अणंगपविट्ठस्स अणुओगो" इस अंशद्वारा भी इसी बात को कहा है कि यह सूत्र अनंग प्रविष्ट श्रुतरूप है। अतः अनंगप्रविष्ट होने के कारण इस सूत्र के प्रति ये पूर्वोक्त दो प्रश्न अकरणीय ही हैं। उत्तर-इस बात को लेकर कि नन्दिसूत्र में इस सूत्र के अनंग प्रविष्ट कहा है; इसलिये सूत्र में अंगत्वविषयक ये दो प्रश्न अयुक्त हैं सो ऐसा कहना ठीक नहीं है क्यों कि इस प्रकार का कोई नियम तो है नहीं कि पहिले नन्दिसूत्र का व्याख्यान करके ही इस सूत्र का व्याख्यान करना चाहिये। कदाचित् ऐसा भी हो सकता है कि पहिले इस अनुयोगद्वार सूत्र का व्याख्यान कर

छे के आवश्यक सूत्रने नन्दिसूत्रमां अनंग प्रविष्ट (अंगबाह्य) सूत्ररूपे कहेवामां आव्युं छे. वळी आ ग्रन्थना प्रीत सूत्रमां ज "इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च अणंगपविट्ठस्स अणुओगो" आ सूत्रांश द्वारा पण आवश्यक सूत्रने अनंग प्रविष्ट श्रुत रूपे प्रतिपादित करवामां आव्युं छे. आ रीते तेने अनंगप्रविष्ट श्रुतरूप प्रकट कर्या बाद उपर्युक्त बे प्रश्नो शुं अस्थाने नथी? आ प्रकारना प्रश्न फरी पूछवामां शुं पुनरुक्ति दोषनी संभावना रहेती नथी?

उत्तर—नन्दिसूत्रमां आवश्यकसूत्रने अनंग प्रविष्ट श्रुतरूप कहेवामां आव्युं छे, तेथी आ सूत्रने अनुलक्षीने अंगत्व विषयक जे बे प्रश्नो पूछवामां आव्या छे, ते प्रश्नोने अयुक्त गणवा ते उचित नथी, कारण के एवो कोई नियम तो नथी

व्याख्येयं भवेत्। किञ्च-यदि नन्दिसूत्रेऽस्या बाह्यत्वे निर्णीते पुनरस्याङ्गत्वविषये प्रश्नो निरर्थकस्तर्हि 'जइ सुयनाणस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ, किं अंगपविट्ठस्स.....? किं अंगबाहिरस्स.....?' इत्यादि तृतीयसूत्रोपन्यास एव निरर्थकः स्यात्, अतो नास्ति नन्दिसूत्रा-नुयोगद्वारसूत्रयोः पौर्वापर्यभावः, अतोऽस्याङ्गत्वविषये प्रश्नः समीचीन एव।

ननु मङ्गलार्थं नन्दिसूत्रमेव प्रथमं व्याख्यातव्यम् ? इति चेदुच्यते-तदपि न, नन्दिसूत्रेऽपि ज्ञानपञ्चककीर्त्तनस्यैव मङ्गलत्वम्, तच्चेहाऽप्यस्तीति मङ्गलस्यापि नन्दिसूत्रस्य प्रथमव्याख्याने प्रयोजनाभावात्। यच्चोक्तम्-'इमं पुण पट्ठवणं'

के बाद में व्याख्याता नन्दिसूत्र का व्याख्यान करदें। किञ्च-यदि नंदिसूत्र में इसमें अंगबाह्यता का निर्णय होने से अंगत्व विषयक प्रश्न निरर्थक है ऐसा ही मान लिया जावे तो फिर "जइ सुयनाणस्स" इत्यादि तृतीय सूत्र का उपन्यास ही निरर्थक हो जावे गा। इसलिये नंदिसूत्र और अनुयोगद्वारसूत्र इनमें पौर्वापर्यभाव नहीं है-अतः अंगत्व विषयक प्रश्न इसके ऊपर जो किया गया है वह समीचीन ही है।

शंका-मंगल के निमित्त नन्दिसूत्र ही प्रथम व्याख्यान करने योग्य है अतः इस तरह इन में पौर्वापर्यभाव आ जायगा-सो ऐसी भी बात नही है क्यों कि नन्दिसूत्र में भी पांच ज्ञानों के कथन से जिस प्रकार मंगलता है उसी प्रकार से वह मंगलता इसमें भी है। क्योंकि यहां पर भी पांच ज्ञानों

જ કે પહેલાં નન્દિસૂત્રનું વ્યાખ્યાન (કથન) કર્યા બાદ આ સૂત્રનું વ્યાખ્યાન કરવું ન જોઈએ. કદાચ એવું પણ સંભવી શકે છે કે પહેલાં આ અનુયોગ દ્વાર સૂત્રનું વ્યાખ્યાન કરીને ત્યારબાદ વ્યાખ્યાતા નન્દિસૂત્રનું વ્યાખ્યાન પણ કરે.

વળી એવું જ માની લેવામાં આવે કે નન્દિસૂત્રમાં આ સૂત્ર (આવશ્યક સૂત્ર) ની અંગબાહ્યતાનો નિર્ણય થઈ ગયો હોવાથી-અંગત્વ વિષયક જે પ્રશ્નો પૂછવામાં આવ્યા છે તે નિરર્થક લાગે છે, એવી પરિસ્થિતિમાં તો "जइ सुयनाणस्स" ઇત્યાદિ ત્રીજા સૂત્રનો ઉપન્યાસ જ નિરર્થક બની જશે. નન્દિસૂત્ર અને અનુયોગદ્વારસૂત્રમાં પૌર્વાપર્ય ભાવનો સદ્ભાવ નથી, તેથી તેને અનુલક્ષીને અંગત્વ વિષયક જે પ્રશ્નો પૂછવામાં આવ્યા છે તે ઉચિત જ છે.

શંકા—મંગળનિમિત્તની અપેક્ષાએ તો નન્દિસૂત્ર જ પ્રથમ વ્યાખ્યાન કરવા યોગ્ય છે, તે કારણે તે બન્નેમાં પૌર્વાપર્ય ભાવનો સદ્ભાવ પણ સંભવી શકે છે.

ઉત્તર—એવી વાત પણ નથી, કારણ કે નન્દિસૂત્રમાં પણ પાંચ જ્ઞાનના કથનથી જેવી મંગળતાનો સદ્ભાવ છે, એવી જ મંગળતાનો આ સૂત્રમાં પણ સદ્ભાવ છે,

इत्यादिनाऽस्यानङ्गत्वमुक्तमेव, पुनरस्याङ्गत्वविषये प्रश्नोऽसमीचीन एवेति, तत्सत्यम्, परन्तु विस्मरणशीलानामल्पबुद्धिमतां शिष्याणामनुग्रहार्थमेवायं प्रश्नः, इत्यस्याङ्गत्वविषये प्रश्नो निर्दुष्ट एवेति बोध्यम् ॥ सू० ६ ॥

'इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च आवस्सगस्स अणुओगो' । इत्यनेन 'आवश्यकम्' इति सूत्रनाम निर्णीतम्, तथाऽनन्तरोक्तेषु दशसु प्रश्नेष्वावश्यकं श्रुतत्वेन स्कंधत्वेनाध्ययनकलापात्मकत्वेन च निर्णीतम्, तस्मात् प्रकृते किम् ? इत्याह-'तम्हा' इत्यादिना

का सर्व प्रथम कथन किया गया है । इस लिये इस बात को लेकर मंगल भूतभी नन्दिसूत्र का प्रथम व्याख्यान करना चाहिये यह बात नहीं बनती है । क्योंकि इस प्रकार के कथन में कोई खास प्रयोजन की पुष्टि नहीं होती है। तथा यह जो बात यही है कि 'इमं पट्ठवणं" इत्यादि पाठ से भी इस अनुयोगद्वार में अनङ्गप्रविष्टता प्रतिपादित होती है अतः इस में यह अंगत्व विषयक प्रश्न असमीचीन ही है सो यह बात ठीक है-परन्तु जो शिष्य विस्मरणशील है और अल्पबुद्धिवाले हैं उनके अनुग्रह के लिये ही यह प्रश्न किया गया है। इस तरह इसमें यह अंगत्व विषयक प्रश्न निर्दोष ही है ऐसा जानना चाहिये । ॥सू० ६॥

"इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च आवस्सगस्स अणुओगो "इस सूत्र पाठ से इसका नाम आवश्यक सूत्र है यह निर्णीत हो जाता है, तथा अनन्तरोक्त दश प्रश्नों में यह आवश्यक श्रुतरूप है, स्कंधरूप है, और षडध्ययनात्मक है यह

કારણ કે આ સૂત્રમાં પણ સૌથી પહેલાં પાંચ જ્ઞાનોનું જ કથન કરવામાં આવ્યું છે. આ દૃષ્ટિએ વિચાર કરવામાં આવે તો મંગળભૂત નન્દિસૂત્રનું જ પ્રથમ વ્યાખ્યાન કરવું જોઇએ, એવી વાત પ્રતિપાદિત થતી નથી, કારણ કે આ પ્રકારના કથનથી કોઇ ખાસ પ્રયોજનને પુષ્ટિ મળતી નથી.

તથા એવી જ દલીલ કરવામાં આવી છે કે "इमं पट्ठवणं" ઇત્યાદિ સૂત્રપાઠ દ્વારા પણ આ અનુયોગ દ્વારમાં અનંગપ્રવિષ્ટતા પ્રતિપાદિત થાય છે, તેથી અંગત્વ વિષયક પ્રશ્નો અનુચિત જ છે, તો એ દલીલ પણ બરાબર નથી, કારણ કે જે શિષ્ય વિસ્મરણશીલ અને અલ્પબુદ્ધિવાળા હોય તેમના ઉપર અનુગ્રહ કરવાને માટે જ આ બે પ્રશ્ન પૂછવામાં આવ્યા છે. તે કારણે અંગત્વ વિષયક જે પ્રશ્ન પૂછવામાં આવેલ છે, તે બધા નિર્દોષ પ્રશ્નો જ સમજવા જોઇએ. ॥ સૂ. ૬ ॥

"इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च आवस्सगस्स अणुओगो" આ સૂત્રપાઠ દ્વારા તેનું નામ આવશ્યકસૂત્ર છે, તે નિર્ણીત થઇ જાય છે, અને ત્યાર પછીના દસ પ્રશ્નો દ્વારા એ નિર્ણીત થઇ જાય છે કે આ સૂત્ર શ્રુતરૂપ છે, સ્કન્ધરૂપ છે અને છ

मूलम्—तम्हा आवस्सयं निक्खिविस्सामि, सुयं निक्खिविस्सामि खंधं निक्खिविस्सामि, अज्झयणाइं निक्खिविस्सामि ॥ सू० ७ ॥

छाया-तस्मात् आवश्यकं निक्षेप्स्यामि, श्रुतं निक्षेप्स्यामि स्कंधं निक्षेप्स्यामि, अध्ययनानि निक्षेप्स्यामि ॥ सू० ७ ॥

टीका—'तम्हा' इत्यादि—

इह हि आवश्यकसूत्रस्यानुयोगः तच्चाऽऽवश्यकं श्रुतरूपं स्कंधरूपम्, अध्ययनरूपं च । 'तम्हा' तस्मात् आवश्यकं निक्षेप्स्यामि=आवश्यकस्य निक्षेपं करिष्यामि, श्रुतं निक्षेप्स्यामि=श्रुतस्य निक्षेपं करिष्यामि, स्कन्धं निक्षेप्स्यामि स्कन्धस्य निक्षेपं करिष्यामि, अध्ययनानि निक्षेप्स्यामि=अध्ययनानां निक्षेपं करि-

---

निर्णीत हो जाता है—इससे प्रकृत में क्या बात आती है? इस शंका के "समाधान निमित्त" सूत्रकार कहते है—

"तम्हा आवस्सयं" इत्यादि । ॥सू ७॥

शब्दार्थ—यहां आवश्यक सूत्र का अनुयोग प्रस्तुत है और वह आवश्यक श्रुतरूप, स्कंधरूप एवं अध्ययनरूप है। (तम्हा) इसलिये (आवस्सयं) आवश्यक का मैं (निक्खिविस्सामि) निक्षेप करूंगा। (सुयं निक्खिविस्सामि) श्रुत का निक्षेप करूंगा (अज्झयणाइं निक्खिविस्सामि) अध्ययनों का निक्षेप करूंगा। इसका तात्पर्य यह है—कि जब यह शास्त्र आवश्यक आदिरूप से निर्णीत हो चुका है। तब इन आवश्यक आदि शब्दों का अर्थ खुलासारूप से स्पष्ट करने के योग्य हो जाता है। इसके अर्थ का स्पष्टरूप से विवेचन तभी हो सकता है कि जब पदों का निक्षेप किया जावे। बिना निक्षेप किये इन

અધ્યયનવાળું છે. હવે આ સૂત્રમાં કયા કયા વિષયનો સમાવેશ થાય છે, તે પ્રકટ કરવા નિમિત્તે સૂત્રકાર કહે છે કે—"तम्हा आवस्सयं" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—અહીં આવશ્યક સૂત્રનો અનુયોગ પ્રસ્તુત છે, અને તે આવશ્યક શ્રુતરૂપ, સ્કંધરૂપ અને અધ્યયનરૂપ છે. तम्हा તેથી (आवस्सयं निक्खिविस्सामि) આવશ્યકનો હું નિક્ષેપ કરીશ, (सुयं निक्खिविस्सामि) શ્રુતનો નિક્ષેપ કરીશ, (अज्झयणाइं निक्खिविस्सामि) અને અધ્યયનોનો હું નિક્ષેપ કરીશ.

આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—જ્યારે આ શાસ્ત્ર આવશ્યક આદિરૂપે નિર્ણીત થઇ ગયું છે, ત્યારે આ આવશ્યક આદિ શબ્દોના અર્થ ખુલાસા સહિત સ્પષ્ટ કરવાનું જરૂરી બની જાય છે. તેના અર્થનું સ્પષ્ટરૂપે વિવેચન કરવાનું કાર્ય ત્યારે જ સરળ બની શકે કે જ્યારે પદોનો નિક્ષેપ કરવામાં આવે. નિક્ષેપ

ष्यामि। अयं भावः—इदं शास्त्रमावश्यकादिरूपतया निर्णीतम्, अत आवश्यकादि शब्दानामर्थो निरूपणीयः! स च निक्षेपपूर्वक एव स्पष्टतया निरूपितो भवति, अत आवश्यकादीनां निक्षेपः क्रियते। निक्षेपश्च निक्षेपेण आवश्यकादेर्यथासम्भवं नामादिभेदनिरूपणम् ॥सू० ७॥

उत्कृष्टतो जघन्यतश्च कियान् निक्षेपः कर्त्तव्यः ? इत्याह—

मूलम्—जत्थ य जं जाणेज्जा निक्खेवं निक्खिवे निरवसेसं।
जत्थ वि य न जाणेज्जा चउक्कगं निक्खिवे तत्थ ॥सू० ८॥

छाया—यत्र च यं जानीयाद् निक्षेपं निक्षिपेत् निरवशेषम्। यत्रापि च न जानीयात्, चतुष्कं निक्षिपेत्तत्र ॥सू० ८॥

के अर्थ का विवेचन स्पष्टरूप से नहीं हो सकता है। इसलिये इन आवश्यक आदि शब्दों का अब निक्षेप किया जाता है। निक्षेप का अर्थ—आवश्यक आदि शब्दों के यथा संभव नामादि भेदों का निरूपण करना—होता है। ॥सूत्र७॥

उत्कृष्टरूप से और जघन्यरूप से कितने निक्षेप कर्तव्य होते हैं इसके लिये सूत्रकार कहते हैं कि— "जत्थ य जं जाणेज्जा" इत्यादि। सू० ८॥

शब्दार्थ—(जत्थ य जं जाणेज्जा) जीवादिरूप वस्तु में निक्षेप्ता यदि निक्षेप—न्यास—को जानता हो तो उस जीवादिरूप वस्तु में वह (निरवसेसं निक्खेवं निक्खिवे) नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावादि स्वरूप समस्त निक्षेप भेदों का निरूपण करे। (जत्थ वि य न जाणेज्जा तत्थ चउक्कगं निक्खिवे) तथा जिस वस्तु में जीवादिरूप पदार्थ में—

કર્યા વિના અર્થનું વિવેચન સ્પષ્ટતાપૂર્વક થઈ શકતું નથી. તેથી આ આવશ્યક આદિ પદોનો હવે નિક્ષેપ કરવામાં આવે છે.

નિક્ષેપનો અર્થ આવશ્યક શબ્દોના યથા સંભવ નામાદિ ભેદોનું નિરૂપણ કરવું તેનું નામ જ નિક્ષેપ છે. ॥ સૂ૦ ૭ ॥

ઉત્કૃષ્ટરૂપે અને જઘન્યરૂપે કેટલા નિક્ષેપ કર્તવ્ય (કરવા યોગ્ય) હોય છે, તે પ્રકટ કરવાને માટે સૂત્રકાર કહે છે કે—

"जत्थ य जं जाणेज्जा" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(जत्थ य जं जाणेज्जा) જીવાદિરૂપ વસ્તુમાં નિક્ષેપ્તા નિક્ષેપ (ન્યાસ)ને જાણતો હોય તો (निरवसेसं निक्खेवं निक्खिवे) તે જીવાદિરૂપ વસ્તુમાં નામ, સ્થાપના, દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ, ભવ અને ભાવાદિરૂપ નિક્ષેપના સમસ્ત ભેદોનું નિરૂપણ કરવું જોઈએ. (जत्थ वि य न जाणेज्जा तत्थ चउक्कगं निक्खिवे) તથા જે વસ્તુમાં-જીવાદિરૂપ પદાર્થમાં-સમસ્ત નિક્ષેપોને (નિક્ષેપ્તા નિક્ષેપ કરનાર ગુરુ)

टीका-'जत्थ य' इत्यादि-

यत्र च=जीवादि वस्तूनि यं निक्षेपं-न्यासं जानीयात्, तत्र जीवादिवस्तूनि निरवशेषं=समग्रं-नाम स्थापना द्रव्यक्षेत्रकालभवभावादि स्वरूपं निक्षेपभेदसमूहं निक्षिपेत्-निरूपयेत्। यत्रापि च अपि च=पुनः यत्र=यस्मिन् जीवादिवस्तूनि सर्वान् निक्षेपान् न जानीयात्, तत्र-तस्मिन्नपि जीवादिवस्तूनि चतुष्कं-नामस्थापनाद्रव्यभावरूपं निक्षेपं निक्षिपेत्-न्यस्येत्। अयं भावः-यत्र नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभवभावादिलक्षणा भेदा ज्ञायन्ते, तत्र एभिः सर्वैरपि भेदैर्वस्तुनो निक्षेपो भवति। यत्र तु सर्वे भेदा न ज्ञायन्ते, तत्रापि नामादिभिश्चतुर्भिर्वस्तुनिक्षेप्तव्यमेव, नामादीनां सर्वव्यापकत्वात्। न हि किमपि सदृशं वस्तु विद्यते, यत्र नामादिचतुष्टयं नास्तीति ॥सू० ८॥

यदि वह निक्षेप्ता समस्त निक्षेपों को नहीं जानता हो तो भी उस वस्तु में वह नाम स्थापना, द्रव्य, और भावरूप चार निक्षेपों का न्यास करें।

भावार्थ—जहां पर नाम स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, और भाव आदिरूप निक्षेप भेद जाने जाते हैं वहां पर इन समस्त भी भेदों से वस्तु का निक्षेप होता है। परन्तु जहां ये सब भेद नहीं जाने जाते हैं वहां भी नाम आदि चार वस्तु का निक्षेप तो करना ही चाहिये। क्यों कि नामादिक सर्वव्यापक हैं। ऐसी कोई वस्तु नहीं हैं कि जिस में नामादि चतुष्टय नहीं हैं।

लोक में या आगम में जितना भी शब्दव्यवहार होता-हैं-वह कहां किस अपेक्षा से किया जा रहा है। इस ग्रन्थी को सुलझाना ही निक्षेप-व्यवस्था का काम है। प्रयोजन के अनुसार एक ही शब्द के अनेक अर्थ हो

જાણતા ન હોય, તે વસ્તુમાં પણ નામ, સ્થાપના, દ્રવ્ય અને ભાવરૂપ નિક્ષેપના ચાર ભેદોનું નિરૂપણ તો તેમણે કરવું જ જોઇએ.

ભાવાર્થ—જ્યાં નામ, સ્થાપના, દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ, ભવ અને ભાવ આદિરૂપ નિક્ષેપ જાણી શકાય એમ હોય ત્યાં આ સમસ્ત ભેદોની અપેક્ષાએ વસ્તુનો નિક્ષેપ થાય છે. પરન્તુ જ્યાં આ બધાં ભેદો જાણી શકાતા ન હોય ત્યાં પણ નામ, સ્થાપના, દ્રવ્ય અને ભાવ, આ ચાર વસ્તુનો નિક્ષેપ તો કરવો જ જોઇએ, કારણ કે નામાદિક ચારે વસ્તુઓ તો સર્વવ્યાપક છે. એવી કોઇ પણ વસ્તુ નથી કે જેમાં નામાદિ ચતુષ્ટયનો સદ્ભાવ ન હોય.

લોકમાં અથવા આગમમાં જેટલા શબ્દોનો વ્યવહાર થાય છે તે ક્યાં કંઈ દૃષ્ટિએ કરવામાં આવતો હોય છે, આ સમસ્યાને હલ કરવાનું જ નિક્ષેપ-વ્યવસ્થાનું કામ છે. એક જ શબ્દના પ્રયોજન અનુસાર અનેક અર્થ થતા હોય છે. તે અર્થ

आवश्यकं, श्रुतं, स्कन्धम्, अध्ययनानि च निक्षेप्स्यामीति प्रतिज्ञातम्। तत्र प्रतिज्ञानुसारेण प्रथममावश्यकनिक्षेपार्थमाह—

मूलम्—से किं तं आवस्सयं ? आवस्सयं चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा—नामावस्सयं ठवणावस्सयं दव्वावस्सयं भावावस्सयं।सू०९।

जाते हैं। ये अर्थ ही उस शब्द के न्यास—निक्षेप—अथवा विभाग हैं। शब्द का अर्थ यदि निक्षेप्ता नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव आदि रूप से जानता है तो उसका कर्तव्य है कि वह इन सब न्यासों का विश्लेषण उस शब्द के अर्थ को समझाने में करें। यदि वह इन सब भेदों से परिचित नहीं है तो कम से कम उस शब्दार्थ कर वह नाम, स्थापना, द्रव्य और भावरूप से विश्लेषण अवश्य करें। क्यों कि ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है जो इन चाररूप न हो। हरएक पदार्थ कम से कम नाम, स्थापना, द्रव्य और भावरूप तो है ही। इन में से वक्ता किस निक्षेपरूप अर्थ का प्रतिपादन कर रहा है यह बात सहज में समझ में आ जाती है। इस से प्रकृत अर्थ का बोध और अप्रकृत अर्थ का निराकरण होनेरूप फल श्रोता को प्राप्त हो जाता है।सूत्र ८।

अब सूत्रकार प्रतिज्ञा के अनुसार आवश्यक इस शब्द का निक्षेपार्थ क्या है. इस बात को स्पष्ट करते हैं। क्यों कि उन्होंने अभी ऐसी प्रतिज्ञा की है कि मैं आवश्यक, त, स्कंध और अध्ययनों का निक्षेप करूँगा।

જે તે શબ્દના ન્યાસ, નિક્ષેપ અથવા વિભાગરૂપ છે. જો નિક્ષેપ્તા (નિક્ષેપ કરનાર ગુરુ) શબ્દનો અર્થ નામ, સ્થાપના, દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ, ભવ અને ભાવ આદિ રૂપે જાણતો હોય, તો તેનું એ કર્તવ્ય થઇ પડે છે કે તેણે શબ્દનો અર્થ સમજાવતી વખતે આ બધાં ન્યાસો (વિભાગો)નું વિશ્લેષણ કરવું જોઇએ. જો નિક્ષેપ્તા એ બધાં ભેદોથી પરિચિત ન હોય તો તેણે શબ્દાર્થનું નામ, સ્થાપના, દ્રવ્ય અને ભાવરૂપે તો અવશ્ય વિશ્લેષણ કરવું જ જોઇએ, કારણ કે એવો કોઈ પદાર્થ નથી કે જેમાં નામ આદિ ઉપર્યુક્ત ચાર નિક્ષેપોનો સદ્ભાવ જ ન હોય પ્રત્યેક પદાર્થ ઓછામાં ઓછા નામ, સ્થાપના, દ્રવ્ય અને ભાવરૂપ તો અવશ્ય હોય જ છે. આ નિક્ષેપોમાંથી વક્તા કયા નિક્ષેપરૂપ અર્થનું પ્રતિપાદન કરી રહ્યો છે એ વાત સરળતાથી સમજાઇ જાય છે. તેના દ્વારા પ્રકૃત અર્થનો બોધ અને અપ્રકૃત અર્થનું નિરાકરણ થવારૂપ ફળ શ્રોતાને પ્રાપ્ત થઇ જાય છે. ॥ સૂ. ૮ ॥

હવે સૂત્રકાર પોતાની પ્રતિજ્ઞા અનુસાર "આવશ્યક" આ શબ્દનો શો નિક્ષેપાર્થ છે, તે પ્રકટ કરે છે, કારણ કે તેમણે હમણાં જ (પૂર્વ સૂત્રમા) એવું વચન આપ્યું છે કે "હું આવશ્યક, શ્રુત, સ્કન્ધ અને અધ્યયનોનો નિક્ષેપ કરીશ."

छाया—अथ किं तदावश्यकम् आवश्यकं चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—नामावश्यकं स्थापनावश्यकं, द्रव्यावश्यकं, भावावश्यकम् ॥सू० ९॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि—

'से' इति 'अथ' शब्दार्थे । स चेह वाक्योपन्यासे । उक्तं च-'मङ्गलानन्तरारम्भप्रश्नकात्स्न्र्येष्वथो अथ' इति । किं शब्दःप्रश्ने । तदिति पूर्वप्रक्रान्तपरामर्शे ततोऽयं निष्कर्षो—अथ तत्=पूर्वप्रक्रान्तम् आवश्यकं किम्=किं स्वरूपम्? इति शिष्यप्रश्नः । उत्तरयति—'आवस्सयं' इत्यादिना । आवश्यकम्—अवश्यं कर्त्तव्यम्-आवश्यकम्—श्रमणादिभिश्चतुर्विधसंघैरवश्यमुभयकालं क्रियते इति भावः ।

से किं तं आवस्सयं इत्यादि । ॥सूत्र ९॥

शब्दार्थ—(से किं तं आवस्सयं) शिष्य पूछता है कि हे भदंत! पूर्व प्रक्रान्त आवश्यक का क्या स्वरूप हैं ?

उत्तर—(आवस्सयं चउव्विहं पण्णत्तं) आवश्यक चार प्रकार का कहा गया है। (तंजहा) उसके वे चार प्रकार ये हैं—(नामावस्सयं, ठवणावस्सयं, दव्वावस्सयं भावावस्सयं) नाम आवश्यक स्थापना आवश्यक द्रव्य आवश्यक, और भाव आवश्यक । अथ शब्द का प्रयोग मङ्गल अनन्तर, आरंभ, प्रश्न और कात्स्न्र्य इन अर्थों में होता है। यहां इसका प्रयोग वाक्य के उपन्यास में हुआ हैं। "किं शब्द प्रश्न में आया है। अवश्य कर्तव्य जो होता है उसका नाम आवश्यक है। साधुसाध्वी और श्रावक श्राविकारूप चतुर्विध संघ के लिये प्रातःकाल और सायंकाल यह धर्म आवश्यक कर्तव्य कहा गया है।—अथवा

"से किं तं आवस्सयं" इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं आवस्सयं ?) શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે "હે ભગવન્! પૂર્વોક્ત આવશ્યકનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર—(आवस्सयं चउव्विहं पण्णत्तं) આવશ્યક ચાર પ્રકારના કહ્યા છે, (तं जहा) એ ચાર પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે—(नामावस्सयं, ठवणावस्सयं, दव्वावस्सयं, भावावस्सयं) (૧) નામ આવશ્યક, (૨) સ્થાપના આવશ્યક, (૩) દ્રવ્ય આવશ્યક અને (૪) ભાવ આવશ્યક. "अथ" શબ્દનો પ્રયોગ મંગળ, અનન્તર, આરંભ, પ્રશ્ન, અને કાત્સ્ન્ર્ય, આટલા અર્થમાં થાય છે. અહીં તેનો પ્રયોગ વાકયના ઉપન્યાસમાં થયો છે. ("किं") આ પદ પ્રશ્ન પૂછવા નિમિત્તે વપરાયું હોવાથી પ્રશ્નાર્થનું વાચક છે. જે અવશ્ય કરવા યોગ્ય હોય છે તેને આવશ્યક કહે છે. સાધુ, સાધ્વી, શ્રાવક અને શ્રાવિકા રૂપ ચતુર્વિધ સંઘને સવારે અને સાંજે (સાયંકાળે) અવશ્ય કર્તવ્ય (કરવા યોગ્ય) અમુક જે કાર્યો છે તેને આવશ્યક કહે છે. અથવા અવશ્ય શબ્દનો આ પ્રમાણે પણ અર્થ થાય છે—અચલ, અરુજ, અક્ષય, અવ્યાબાધ

यद्वा–अचलमरुजमक्षयमव्याबाधममन्दानन्दसन्दोहरूपं शाश्वतं शिवसुखमवश्यं–निश्चयेन भवति यस्मात्–तदावश्यकम्। यद्वा–आ=समन्ताद्वश्या भवन्ति इन्द्रियकषायादि भावशत्रवो यस्मात्तदावश्यकम्। यद्वा-ज्ञानादिगुणसमूहो मोक्षो वा आ=समन्ताद्वश्यः क्रियतेऽनेनेति-आवश्यकम्।

यद्वा—'आवस्सय' इत्यस्य 'आवासक' मितिच्छाया। विंशतिसंख्यकेषु स्थानकेषु आवासयति–तदाराधने तत्परं करोत्यात्मानमित्यावासकं षड्विधावश्यकमेव। यद्वा- श्रुतचारित्रलक्षणधर्मारामे आवासयति-निवासयत्यात्मानमित्यावासकम्।

इदं आवश्यकं चतुर्विधं–चतस्रो विधा भेदा अस्येति चतुर्विधं–चतुःप्रकारकं प्रज्ञप्तं-प्ररूपितम्। तद्यथा-यथा-तदावश्यकं चतुर्विधं भवति तथोच्यते–नामावश्यकं, स्थापनावश्यकं, द्रव्यावश्यकं, भावावश्यकम्, इत्येवं चतुर्विधमावश्यकं भवति॥सू०॥

अवश्यशब्द का अर्थ अचल अरुज अक्षय अव्याबाध अमन्दआनन्द (अत्यन्त आनंद का पुंज) का संदोहरूप जो शाश्वत शिव सुख है वह है। यह शिव सुख निश्चय से जिसके प्रभाव वश जीवों को प्राप्त होता है वह आवश्यक है। अथवा-इन्द्रिय और कषाय आदि भावशत्रु सर्व प्रकार से जिस से वश में हो जाते हैं वह आवश्यकहै। अथवा–ज्ञानादिक गुणों का समूह या मोक्ष जिसके द्वारा सर्व प्रकार से वश्य किया जाता है वह आवश्यक है। अथवा–"आवस्सयं" की संस्कृत छाया "आवासक" ऐसी भी है–जो २० स्थानों में–अर्थात् इन स्थानों की आराधना में–आत्मा को तत्पर बनाता है उसका नाम आवासक है और वे छह प्रकार के आवश्यक ही हैं। अथवा–श्रुतचारित्ररूप धर्मोद्यान में जो आत्मा का निवास करता है वह आवासक है। यह आवासकरूप आवश्यक चार प्रकार का कथित हुआ है। ॥सूत्र ९॥

અમન્દ આનંદના સંદોહરૂપ જે શાશ્વત શિવ સુખ છે તેને અવશ્ય કહે છે. જેના પ્રભાવથી જીવને તે શિવ સુખની અવશ્ય પ્રાપ્તિ થઈ જાય છે, તે વસ્તુનું નામ આવશ્યક છે. અથવા-ઇન્દ્રિયો અને કષાય આદિ ભાવશત્રુઓ જેના દ્વારા સર્વ પ્રકારે વશ થઈ જાય છે, તેનું નામ આવશ્યક છે. અથવા જ્ઞાનાદિ ગુણોનો સમૂહ અથવા મોક્ષ જેના દ્વારા સર્વ પ્રકારે વશ્ય (પોતાને અધીન) કરવામાં આવે છે, તેનું નામ આવશ્યક છે. અથવા 'आवस्सय' આ પદની સંસ્કૃત છાયા "आवासक" પણ થાય છે. એ દૃષ્ટિએ વિચારવામાં આવે તો આવશ્યકનો અર્થ આ પ્રમાણે પણ થાય છે–જે ૨૦ સ્થાનોની આરાધના કરવામાં પોતાના આત્માને પ્રવૃત્ત રાખે છે તેનું નામ આવાસક છે, અને એવાં છ પ્રકારના જ આવશ્યક છે. અથવા શ્રુત ચારિત્રરૂપ ધર્મધ્યાનમાં જે આત્મા નિવાસ કરે છે તેને આવાસક કહે છે. તે આવાસકરૂપ આવશ્યક ચાર પ્રકારના કહ્યા છે. ॥ સૂ. ૯ ॥

सम्प्रति नमावश्यकस्य स्वरूपं प्रतिपादयितुं सूत्रकार आह—

मूलम्—से किं तं नामावस्सयं ?, नामावस्सयं जस्स णं जीवस्स वा अजीवस्स वा जीवाणं वा अजीवाणं वा तदुभयस्स वा तदुभयाणं वा, आवस्सएत्ति नामं कज्जइ, से तं नामावस्सयं ॥सू०१०॥

छाया—अथ किं तद् नामावश्यकम् ? नामावश्यकं-यस्य खलु जीवस्य वा अजीवस्य वा जीवानां वा अजीवानां वा, तदुभयस्य वा, तदुभयेषां वा आवश्यकमिति नाम क्रियते, तदेतन्नामावश्यकम् ॥ सू० १०॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—'से किं तं नामावस्सयं' इति। अथ किं तन्नामावश्यकम् ? उत्तरयति-नामावश्यकम्-एवं भवति यस्य खलु जीवस्य वा अजीवस्य वा, जीवानां वा अजीवानां वा, तदुभयस्य वा जीवाजीवोभयस्य वा, तदुभयेषां वा=जीवाजीवोभयेषां वा आवश्यकमिति नाम क्रियते तदेतन्नामाव-

---

अब कार नाम आवश्यक का क्या स्वरूप हैं इसे प्रतिपादन करने के लिये सूत्र कथन करते हैं—"से किं तं नामावस्सयं" इत्यादि। ॥ सूत्र १०॥

शब्दार्थ--शिष्य पूछता है कि हे भदंत। (से किं तं नामावस्सयं) पूर्व प्रक्रान्त नाम आवश्यक का क्या स्वरूप है ? उत्तर—(नामावस्सयं) नाम आवश्यक का स्वरूप इस प्रकार से है-(जस्स णं जीवस्स वा अजीवस्स वा जीवाणं वा अजीवाणं वा) जिस किसी जीव का अथवा अजीव का, या अनेकजीवों का या अनेक अजीवों का (तदुभयस्स वा तदुभयाणं वा) अथवा जीवअजीव दोनों का, या जीवाजीवों का (आवस्सएत्ति नामं कज्जइ] आवश्यक ऐसा जो नाम रक्खलिया जाता है (से त्तं नामावस्सयं) वह नाम आवश्यक है। नाम

હવે સૂત્રકાર નામ આવશ્યકનું સ્વરૂપ કેવું હોય છે, એ વાતનું પ્રતિપાદન કરવાને માટે નીચેના સૂત્રનું કથન કરે છે-"से किं तं नामावस्सयं" ઇત્યાદિ-

શબ્દાર્થ-શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે-(से किं तं नामावस्सयं ?) હે ભગવન્! પૂર્વોક્ત નામ આવશ્યકનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર-(नामावस्सयं) નામ આવશ્યકનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ છે—(जस्स णं जीवस्स वा अजीवस्स वा, जीवाणं वा अजीवाणं वा) જે કોઇ જીવનું અથવા અજીવનું, અથવા અનેક જીવોનું કે અનેક અજીવોનું, (तदुभयस्स वा तदुभयाणं वा) અથવા જીવ અજીવ બન્નેનું અથવા જીવોનું અને અજીવોનું (જીવો અને અજીવો બન્નેનું) (आवस्सएत्ति नामं कज्जइ) "आवश्यक" એવું જે નામ રાખવામાં આવે છે. (से तं नामावस्सयं) તેને 'નામ આવશ્યક' કહે છે. નામ આવશ્યકમાં નામ

श्यकम् । नाम च तदावश्यकं चेति नामावश्यकं नामरूपमावश्यकमित्यर्थः । यद्वा—जीवादिवस्तु नामावश्यकं भवति, नाम्ना—नाममात्रेण आवश्यकं नामावश्यकमिति व्युत्पत्तिसंभवात् । यदि जीवादि—वस्तुन आवश्यकमिति नाम क्रियते तदा जीवादिवस्तु नाममात्रेणावश्यकं भवतीति नामावश्यकशब्दार्थो जीवादिवस्तुभवतीति भावः । नाम्नो लक्षणं चेदम्—"यद्वस्तुनोऽभिधानं, स्थितमन्यार्थे तदर्थनिरपेक्षम् "अपर्यायमनभिधेयं च नाम यादृच्छिकं तथा ।" इति । अयं भाव—'यद्वस्तुनोऽभिधानम्' वस्तुनः इन्द्रादेः यदभिधानम्=इन्द्रेति वर्णपञ्चकानुपूर्वीरूपं

આવશ્યક में नाम ही आवश्यक हो जाता है। अर्थात् "आवश्यक" ऐसा नाम उस वस्तु का रख लिया जाता है। तात्पर्य कहने का यह है कि किसी भी जीवादिक का "आवश्यक" ऐसा जो व्यवहार में इच्छानुसार गुणनिरपेक्ष नाम रख लिया जाया करता है वह "आवश्यक का नामनिक्षेप है। इस नामनिक्षेप में वस्तु केवल "आवश्यक" इस नाम मात्र से ही उसरूप कही जाती है। इस नामनिक्षेप में तदनुरूप गुणों की आवश्यकता नहीं होती है। केवल व्यवहार चलाने के लिये ही ऐसा किया जाता है। अतः नाम मात्रेण आवश्यकं नामावश्यकं" इस व्युत्पत्ति के अनुसार वह आवश्यकरूप वस्तु नाम मात्र से आवश्यक कहा जाता है। आवश्यक जैसेगुण उसमें नही होते। इस विषय का खुलासा अर्थ इस प्रकार से है—जब किसी जीवादि वस्तु का "आवश्यक" ऐसा नाम रख लिया जाता है उस समय वह जीवादिक वस्तु नाम मात्र से आवश्यक कहलाती है। इस प्रकार नामरूप आवश्यक इस

જ આવશ્યક થઇ જાય છે. એટલે કે તે વસ્તુનું "આવશ્યક" એવું નામ રાખવામાં આવે છે. આ કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે કોઈ પણ જીવાદિકનું "આવશ્યક" એવું જે ગુણનિરપેક્ષ (ગુણની અપેક્ષાથી રહિત) નામ. ઇચ્છાનુસાર વ્યવહાર ચલાવવા માટે રાખી કરવામાં આવે છે તેને "આવશ્યકનો નામ–નિક્ષેપ" કહે છે. આ નામનિક્ષેપમાં વસ્તુને કેવળ "આવશ્યક" એવા નામ માત્રથી જ તે રૂપે ઓળખવામાં આવે છે. આ નામ નિક્ષેપમાં તેને અનુરૂપ હોય એવા ગુણોની આવશ્યકતા રહેતી નથી. કેવળ વ્યવહાર ચલાવવાને નિમિત્તે જ એવું કરવામાં આવે છે. તેથી "नाममात्रेण आवश्यकं नामावश्यकं" આ વ્યુત્પત્તિ અનુસાર તે આવશ્યકરૂપ વસ્તુને નામ માત્રની અપેક્ષાએ જ–એટલે કે નામ પુરતી જ આવશ્યક કહેવામાં આવે છે–જો કે આવશ્યકને અનુરૂપ ગુણોનો તે વસ્તુમાં અભાવ હોય છે. આ વિષયનું વિશેષ સ્પષ્ટીકરણ હવે કરવામાં આવે છે—જ્યારે કોઈ જીવાદિક વસ્તુનું 'આવશ્યક' એવું નામ રાખવામાં આવે છે. ત્યારે તે જીવાદિક વસ્તુને નામમાત્રની અપેક્ષાએ જ આવશ્યક

तन्नाम, इति प्रथमः प्रकारः। अथ द्वितीयेन प्रकारेण नाम्नो लक्षणमाह—'स्थितमन्यार्थे तदर्थनिरपेक्षं पर्यायानभिधेयं च' इति। अन्यार्थे—गोपालदारकादौ स्थितम्—इन्द्रेति नाम तदर्थनिरपेक्षं=तस्य प्रसिद्धस्य इन्द्रशब्दस्य परमैश्वर्यादिरूपो योऽर्थस्तन्निरपेक्षं भवति, गोपालदारकादौ परमैश्वर्यादेरभावात्। तथा—गोपालदारकादौ स्थितम् 'इन्द्र इति नाम इन्द्रस्य ये पर्यायाः शक्रादयस्तैरनभिधेयंच भवति। शक्रादौ इन्द्रेति प्रसिद्धं नाम वाच्यार्थशून्ये गोपालदारका-

---

शब्द का वह जीवादिरूप वस्तु वाच्यार्थ हो जाता है। नाम का लक्षण इस प्रकार से कहा गया है—

"वस्तुनो यदभिधानं तन्नाम" वस्तु का जो व्यवहार में नाम रहे वह नाम है। जैसे किसी इन्द्रादिरूप वस्तु का इन्द्र इनमें इ-न्-द्-र्-अ-इन पांच अक्षरों की आनुपुर्वीरूप आभिधान यह नाम का प्रथम प्रकार है। नाम के लक्षण का द्वितीय प्रकार इस तरह से है—"स्थितमन्यार्थे निरपेक्षं पर्यायानभिधेयं च" किसी गोपाल के लडके का नाम किसी ने इन्द्र ऐसा रखदिया—उसमें परमैश्वर्य आदिरूप जो इन्द्रशब्द का अर्थ है वह है नहीं—क्यों कि वह तो ग्वाले का लडका है उस में परमैश्वर्य का होना कहां से आ सकता है. उसका तो उसमें अभाव ही है—इसलिये उसका इन्द्र यह नाम अपने अर्थ से निरपेक्ष है। और इन्द्र के जो शक्र पुरन्दर आदि पर्यायवाची शब्द है उन से भी वह अनभिधेय (नहीं कहने योग्य) है। इन पर्यायवाची शब्दों से अभिधेय तो इन्द्र ही हो सकता है। अतः

કહેવામાં આવે છે. આ રીતે તે જીવાદિરૂપ વસ્તુ નામરૂપ 'આવશ્યક' આ શબ્દનો વાચ્યાર્થ બની જાય છે. નામનું લક્ષણ આ પ્રમાણે કહ્યું છે.

"वस्तुनो यदभिधानं तन्नाम" વસ્તુનું જે વ્યવહારમાં નામ રહે તેનું જ નામ 'નામ' છે. જેમ કે કોઇ ઇન્દ્રાદિરૂપ વસ્તુનું "ઇન્દ્ર" એવું પાંચ અક્ષરોની આનુપૂર્વીરૂપ અભિધાન. આ નામનો પ્રથમ પ્રકાર છે નામના લક્ષણનો બીજો પ્રકાર આ પ્રમાણે છે-"स्थितमन्यार्थे तदर्थनिरपेक्षं पर्यायानभिधेयं च" કોઇગોવાળના પુત્રનું નામ કોઇએ 'ઇન્દ્ર પાડયું 'ઇન્દ્ર' પદ તો પરમ ઐશ્વર્યનું વાચક છે. ગોવાળના 'ઇન્દ્ર' નામના પુત્રમાં આ ઐશ્વર્ય કયાંથી સંભવી શકે ? તેમાં તો આ ગુણનો અભાવ જ હોય છે. આ રીતે તેનું આ નામ પોતાના અર્થની અપેક્ષાએ તો બરાબર આગતું નથી. આ રીતે અર્થની અપેક્ષા રાખ્યા વિના પણ કોઇ વસ્તુ કે વ્યકિતને અમુક નામે ઓળખવામાં આવતી હોય છે. વળી શક્ર, પુરન્દર આદિ જે શબ્દો ઇન્દ્રના પર્યાયવાચી છે. તેમના દ્વારા પણ તે અનભિધેય છે. આ પર્યાયવાચી શબ્દો દ્વારા અભિધેય તો ઇન્દ્ર જ હોઇ શકે છે. આ રીતે ગોવાળના બાળકને ઇન્દ્ર એવું

दावारोपितं, तदपि नाम भवतीति बोध्यम्। तृतीयप्रकारेणापि तल्लक्षणमाह—'यादृच्छिकं च तथा' इति। तथा—यदृच्छया कमप्यर्थमनाश्रित्य स्वेच्छया तथाविधव्युत्पत्तिशून्यं "डित्थडवित्थादिरूपं नाम क्रियते, तदपि नाम। इति त्रिविधं नामलक्षणम्। त्रिविधमपि नाम अवश्यकरणीयत्वाद् नामावश्यकमुच्यते। अत्र सूत्रे 'वा' शब्दाः विकल्पार्थकाः।

ननु जीवस्य 'आवश्यक' इति नाम कथं संभवति? उच्यते—यथा कश्चिल्लोके जीवस्य स्वपुत्रादे 'देवदत्त' इत्यादि नाम करोति तथा कश्चित् स्वे-

---

गोपालदारक (बालक) का इन्द्र ऐसा नाम जो कि शक्र आदि में प्रसिद्ध है वाच्यार्थ से शून्य बने हुए उस गोपालदारक में आरोपित किया गया है। नाम के लक्षण का यह द्वितीय प्रकार है। तथा जो यदृच्छा से नाम रख लिये जाते हैं वे यादृच्छिक नाम हैं जैसे किसी अर्थ की अपेक्षा किये विना ही डित्थ डवित्थ इत्यादि नाम तथाविध व्युत्पत्ति से रहित रखे जाते हैं। इन नामों के रखने में रखनेवाले की इच्छा होती है। इस तरह यह तीन प्रकार नाम के लक्षण हैं। ये तीनों प्रकार के नाम अवश्यकरणीय होने के कारण नाम आवश्यक कहे जाते हैं।

शंका—जीवका "आवश्यक" ऐसा नाम कैसे संभवित होता है?

જે નામ રાખવામાં આવ્યું છે તે વાચ્યાર્થથી રહિત જ લાગે છે. શક્ર આદિને અનુલક્ષીને જ્યારે "ઇન્દ્ર" નામ વપરાય છે. ત્યારે તો તે નામ તેના વાચ્યાર્થથી યુકત લાગે છે. આ રીતે વાચ્યાર્થ સાથે મેળ ન ખાય અથવા જે નામમાં વાચ્યાર્થનો જ અભાવ હોય એવું નામ પણ કોઇ કોઇ વાર રાખવામાં આવતું હોય છે. નામના લક્ષણનો આ બીજો પ્રકાર સમજવો.

તથા જે નામ ઇચ્છા અનુસાર રાખવામાં આવે છે, તે નામને યાદૃચ્છિક નામ કહે છે. જેમકે કોઇ અર્થની અપેક્ષા રાખ્યા વિના જ "डित्थ, डवित्थ" ઇત્યાદિ, તે પ્રકારની વ્યુત્પત્તિથી રહિત નામો પણ રાખવામાં આવે છે. આ પ્રકારના નામો રાખવામાં તે નામ રાખનારની ઇચ્છા જ મુખ્ય ભાગ ભજવતી હોય છે. નામનું આ ત્રીજા પ્રકારનું લક્ષણ છે. આ રીતે પહેલા પ્રકારમાં "ઇન્દ્ર" નામ સાર્થક લાગે છે, બીજા પ્રકારમાં ગોવાળના પુત્રનું "ઇન્દ્ર" નામ તેના અર્થ પ્રમાણે ગુણથી સંપન્ન લાગતું નથી ત્રીજા પ્રકારના "डित्थ, डवित्थ" આદિ નામો કોઇ પણ પ્રકારના અર્થની અપેક્ષા વિના માત્ર નામ રાખનારની ઇચ્છાનુસાર રાખવામાં આવે છે. આ ત્રણ પ્રકારનાં નામ અવશ્ય કરણીય હોવાથી તેમને આવશ્યક કહેવામાં આવે છે.

શંકા—જીવનું "આવશ્યક" એવું નામ કેવી રીતે સંભવી શકે છે?

च्छावशात् स्वपुत्रादेरावश्यकमिति करोति। भावावश्यक स्वरूपशून्ये गोपालदारकादौ आवश्यकेति नामकरणे नाम्ना-नाममात्रेणावश्यकं नामावश्यकं गोपालदारकादि भवति।

अजीवस्यावश्यकमिति नाम कथं संभवति। उच्यते-'आवश्यकावासक' शब्दयोरेकार्थता प्रोक्ता। लोके हि-शुष्कोऽचित्तो बहुकोटराकीर्णो वृक्षोऽन्यो

उत्तर—जैसे कोई व्यक्ति अपने पुत्र का नाम देवदत्त रख लेता है उसे देवने तो दिया नहीं है—परन्तु लोक व्यवहार चलाने के लिये ऐसा किया जाता है—उसी तरह कोई ग्वाला आदि अपनी इच्छा से अपने पुत्र आदि का नाम "आवश्यक" ऐसा रखलें तो यह आवश्यक का नाम निक्षेप है। वास्तव में आवश्यक जैसे गुण उस गोपालदारक में नहीं हैं-वह तो उन से शून्य है—अर्थात् भावावश्यक से वह रहित है—उस में आवश्यक ऐसा जो नामकरण किया गया है वह एक जीव को आश्रित नाम मात्र का आवश्यक है। इस नाम मात्र आवश्यक का वाच्य वह गोपालदारक है। एक अजीव में आवश्यक ऐसा नाम निक्षेप इस प्रकार से घटित करना चाहिये-

आवश्यक और आवासक इन दोनों शब्दों में एकार्थता अभी २ कही गई है—सो इस दृष्टि को ध्यान मे रखकर अजीव में "आवश्यक" यह नाम ऐसे घटित हो जाता है कि किसी व्यक्तिने किसी एक शुष्क (सूखे) और

ઉત્તર—જેમ કોઇ વ્યક્તિ પોતાના પુત્રનું નામ 'દેવદત્ત' રાખે છે, ને કે દેવે તેને તે પુત્ર આપ્યો હોતો નથી, પરન્તુ લોકવ્યવહાર ચલાવવાને એવું કોઇ પણ નામ રાખવું જ પડે છે, એજ પ્રમાણે જો કોઇ ગોવાળ આદિ વ્યક્તિ પોતાની ઇચ્છાથી પોતાના પુત્રનું નામ "આવશ્યક" રાખી શકે છે. તો આ પ્રકારનું નામ રાખવું તેનું નામ જ આવશ્યકનો નામનિક્ષેપ સમજવો. ખરી રીતે તો તે ગોવાળના પુત્રમાં આવશ્યક જેવા ગુણો તો હોતા નથી—એ પ્રકારના ગુણોથી તો તે રહિત જ હોય છે. એટલે કે ભાવાવશ્યકથી તે બાળક રહિત જ છે, છતાં પણ તેમાં 'આવશ્યક' એવા નામનું જ આરોપણ કરવામાં આવ્યું છે તે એક જીવને આશ્રિત નામ માત્રનું જ 'આવશ્યક' છે. આ નામ માત્ર ના આવશ્યકનો વાચ્ય તે ગોવાળપુત્ર છે. લોક વ્યવહાર ચલાવવા નિમિત્તે જ આવી કોઇ પણ 'સંજ્ઞા' તે બાળકને ઓળખવા માટે ઉપયોગી થઇ પડે છે એટલે જેમ 'દેવદત્ત' નામ રાખી શકાય છે, તેમ "આવશ્યક" નામ પણ શા માટે ન રાખી શકાય કોઈ એક અજીવમાં "આવશ્યક" એવો નામ નિક્ષેપ આ પ્રકારે ઘટાવી શકાય છે-આ સૂત્રમાં જ આગળ એ વાતનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે કે આવશ્યક અને આવાસક, આ બન્ને સમનાર્થી પદો છે. આ દૃષ્ટિએ વિચાર કરવામાં આવે તો અજીવમાં "આવશ્યક" એવું નામ આ પ્રમાણે સુસંગત લાગે છે—

वा तथाविधः कश्चित् पदार्थविशेषः सर्पादेरावासोऽयमिति प्रोच्यते। स वृक्षोऽन्यो वा तथाविधः पदार्थो यद्यप्यनन्तैः परमाणुलक्षणैरजीवद्रव्यैर्निष्पन्नस्तथाऽप्येकस्कन्धपरिणतिमाश्रित्य एकाजीवत्वेन विवक्षितः। स्वार्थिक क प्रत्यये कृते आवास एव आवासकमिति नाम एकस्याजीवस्य सिद्धम्।

बहूनामपि जीवानामावासकमिति नाम संभवति। यथा इष्टकापाकाद्यग्निर्मूषिकावास इत्युच्यते। इष्टकापाकाद्यग्नौ हि मूषिकाः संमूर्च्छन्ति। अतस्तेषामसंख्येयानामग्निजीवानां पूर्ववदावासकमिति नाम सिद्धम्। बहूनामजीवानामपि आवासकमिति नाम भवति। दृश्यते हि बहुभिरचित्तैः स्तृणैर्नीडं

अनेक कोटरों से युक्त वृक्ष को अथवा इसी प्रकार के किसी दूसरे पदार्थ को कि जिस में सर्पादिक का निवास स्थान है देखकर कह दिया कि यह वृक्षादिशुष्क पदार्थ सर्पादिक का निवासस्थान है—आवासभूत है—। लोक में ऐसा व्यवहार चलता है-इसलिये उस अजीव एक वृक्षादि पदार्थ का "आवासक या आवश्यक ऐसा नाम रखना यह एक अजीव के आश्रित नाम निक्षेप का विषय है। यद्यपि वह वृक्षादि पदार्थ अनंत परमाणुरूप अजीव द्रव्यों से निष्पन्न हुआ है तो भी एक स्कंधरूप परिणति को आश्रित करके वह एक अजीवरूप विवक्षित किया गया है। तात्पर्य कहने का यह है कि यदि कोई यहां पर ऐसी आशंका करें कि यहां पर एक अजीव पदार्थ को लेकर आवश्यक ऐसा नाम निक्षेप का विषय प्रस्तुत है—शुष्क-वृक्ष में आपने इसे घटित किया है सो वह शुष्क वृक्ष एक अजीव पदार्थ नहीं है-वह तो अनेक परमाणु

કોઇ એક શુષ્ક (સૂકા) અને અનેક બખોલોથી યુકત વૃક્ષમાં સર્પાદિક જીવોનો વાસ જોઇને એમ કહી દેવામાં આવે છે કે આ વૃક્ષ તો સર્પાદિકનું નિવાસસ્થાન છે અથવા સર્પાદિકના આવાસરૂપ છે. લોકમાં આ પ્રકારનો વ્યવહાર ચાલે છે. તેથી તે વૃક્ષાદિ અજીવ પદાર્થનું "आवासक અથવા आवश्यक" એવું નામ રાખવું તે એક અજીવમાં "आवासक અથવા आवश्यक" એવા નામ નિક્ષેપરૂપ સમજવું. જો કે તે વૃક્ષાદિ પદાર્થ અનંત પરમાણુ રૂપ અજીવ દ્રવ્યો વડે નિષ્પન્ન થયેલ હોય છે, છતાં પણ એક સ્કન્ધરૂપ પરિણતિનો આશ્રય લઇને તેને એક અજીવરૂપે પ્રકટ કરવામાં આવેલ છે. અહીં કોઇ એવી શંકા કરે કે અહીં તો એક અજીવ પદાર્થની અપેક્ષાએ આવશ્યક એવા નામનિક્ષેપની વાત ચાલી રહી છે, આપે તો શુષ્ક વૃક્ષમાં 'आवश्यक' એવો નામનિક્ષેપ કર્યો છે, પરન્તુ તે શુષ્ક વૃક્ષ એક અજીવ પદાર્થરૂપ નથી. તે તો અનેક પરમાણુ પુંજમાંથી નિષ્પન્ન થયેલું હોવાથી અનેક અજીવ દ્રવ રૂપ પદાર્થ જ છે, તો આ શંકાનું સમાધાન આ કથન દ્વારા કરવામાં આવ્યું છે. અહીં એમ બતાવવામાં આવ્યું છે કે શુષ્ક વૃક્ષ જો કે અનેક પૌદ્ગલિક પરમાણુ-

सम्पद्यते। तद्धि पक्षिणामावासमित्युच्यते। इत्थं बहूनामजीवानामपि 'आवासं'मिति नाम सिद्धम्।

पुंज से निष्पन्न होने के कारण अनेक अजीव द्रव्यरूप पदार्थ है-सो इस शंका का समाधान इस कथन में किया गया है। कहा गया है कि यह शुष्क पदार्थ यद्यपि अनेक पौद्गलिक परमाणुओं के पुंज से निष्पन्न हुआ है-परन्तु उसरूप की यहां विवक्षा नहीं है-यहां तो उन सबके संबन्ध से एक परिणतिरूप हुए एक स्कंधद्रव्य की विवक्षा है-इससे यह एक अजीव द्रव्य की विवक्षा है-इससे यह एक अजीव द्रव्य है। अनेक अजीव द्रव्य नहीं।

अनेक जीवों में आवासक ऐसा नाम इस प्रकार से घटित करना चाहिये-इष्टका (ईंट) पाक आदि की जो अग्नि होती है उसमें अनेक मूषिकाएँ संमूर्च्छन जन्म धारण करती हैं। इस अपेक्षा यह इष्टपाक आदि की अग्नि मूषिकावासरूप से कह दी जाती है। इस तरह उन असंख्यात अग्नि जीवों का आवासक ऐसा नाम सिद्ध हो जाता है। अनेक अजीवों का आवासक ऐसा नाम इस प्रकार से होता है कि अनेक अचित्त तिनकों से नीड-घोंसला-बनता है। और उसमें पक्षी रहते हैं-इसलिये यह" पक्षियों का आवासक हैं-इस नाम से कहा जाता है। अतः अनेक अजीव में आवासक ऐसा आवासक नामनिक्षेप

એના પુંજથી નિષ્પન્ન થયેલું છે, પરન્તુ અહીં તે પ્રકારની વિવક્ષા કરવામાં આવી નથી. અહીં તો તે બધાના સંબંધથી એક પરિણતિરૂપ થયેલા એક સ્કન્ધ દ્રવ્યની જ વિવક્ષા ચાલી રહી છે. તેથી તેને અહીં એક અજીવ દ્રવ્ય રૂપે જ પ્રતિપાદિત કરવામાં આવેલ છે, અનેક અજીવ દ્રવ્ય રૂપે પ્રતિપાદિત કરવામાં આવેલ નથી.

અનેક જીવોમાં "આવશ્યક" એવું નામ આ પ્રમાણે ઘટિત કરવું જોઈએ-

ઈંટો પકવવાના ભઠ્ઠા આદિની જે અગ્નિ હોય છે તેમાં અનેક મૂષિકાઓ (ઉંદરડીઓ) સંમૂર્ચ્છન જન્મ ધારણ કરે છે. તેથી તે ભઠ્ઠા આદિની અગ્નિને મૂષિકાવાસરૂપે પણ ઓળખાવામાં આવે છે. આ રીતે તે અસંખ્યાત અગ્નિજીવોનું "આવાસક" એવું નામ સિદ્ધ થઈ જાય છે.

અનેક અજીવોનું આવાસક એવું નામ આ પ્રમાણે સિદ્ધ કહી શકાય છે.

અનેક અચિત્ત તણખલાંઓની મદદથી માળો બને છે, અને તેમાં પક્ષીઓ રહે છે, તે કારણે તેને પક્ષીઓના આવાસરૂપ ગણીને એવું કહેવામાં આવે છે કે "આ પક્ષીઓનો આવાસક છે." આ રીતે અનેક અજીવોમાં "આવાસક" એવો

जीवाजीवोभयस्यापि 'आवासक'मिति नाम संभवति। दृश्यते हि-जलाशयोद्यानजलयन्त्रादिसहितः प्रासादादिप्रदेशो राजादेरावास उच्यते। अत्र च-जलाशयोद्यानादयः सचेतनरत्नादयश्च जीवाः सन्ति। इष्टका वाष्पादयोऽचेतनरत्नादयश्चाजीवाः सन्ति। एतदुभयनिष्पन्नस्य राजप्रासादादि-प्रदेशस्य आवासकं नाम सिध्यति।

उभयेषां जीवानामजीवानां चापि 'आवासक' मिति नाम संभवति। दृश्यते हि-राजप्रासादयुक्तं सम्पूर्णनगरं राजादीनामावास उच्यते। सकलः सौधर्मादिकल्प इन्द्रादीनामावास उच्यते। इत्थं बहूनां जीवानामजीवानां च सम्मिलितानाम् 'आवासकम्' इति नाम सिद्ध्यति। राजप्रासादस्य लघुत्वादेकस्मा जीवा-

---

सिद्ध हो जाता है। जीव और अजीव इन दोनों में आवासक यह नाम निक्षेप इस प्रकार से बनता है कि जो राजमहल का प्रदेश जलाशय, उद्यान एवं जल यन्त्र-नल-आदि से युक्त होता है वह राजा आदिका आवासस्थान है-इस नाम से कहा जाता है। वहां जो जलाशय, उद्यान एवं सचेतन रत्नादिक हैं-वे तो सचित्त द्रव्य हैं और इष्टका (ईंट या पाठ, अचेतन रत्नादिक हैं वे सब अजीव हैं। इन दोनों से निष्पन्न हुए उस राजमहल आदि के प्रदेश का नाम आवासरूप होने के कारण "आवासक" का निक्षेप बनता है। इसी प्रकार से जीव अजीव इन दोनों का भी आवासक यह नाम इस प्रकार से घटित होता है कि राजप्रासाद से युक्त समस्त नगर राजादिक का आवास है इस रूप से व्यवहार में कह दिया जाता है। तथा सौधर्म आदि समस्त कल्प इन्द्रादिकों के आवासरूप से व्यवहृत होते हैं। इस तरह संमिलित अनेक अजीव और जीवों का "आवासक" ऐसा नाम सिद्ध हो जाता

આવાસનો નામનિક્ષેપ સિદ્ધ થઈ જાય છે. જીવ અજીવ, એ બન્નેમાં "આવાસક" આ નામનિક્ષેપ આ પ્રમાણે સિદ્ધ કરી શકાય છે.

જે રાજમહેલનો પ્રદેશ જળાશય, ઉદ્યાન અને જળયંત્ર (નળ) આદિથી યુક્ત હોય છે, તેને "રાજા આદિનું આવાસસ્થાન છે," એ રૂપે કહેવામાં આવે છે, ત્યાં જે ઉદ્યાન, જળાશય અને સચેતન રત્નાદિક વસ્તુઓ છે, તે તો સચિત્ત દ્રવ્યરૂપ જ છે, અને ઈંટની દીવાલો, અને અચેતન રત્નાદિકો વગેરે જે વસ્તુઓ છે, તે અચિત્તદ્રવ્યરૂપ હોવાથી અજીવ છે, એ બન્નેથી જેનું નિર્માણ થયું છે. એવા તે મહેલ આદિના પ્રદેશનું નામ આવાસરૂપ હોવાને કારણે "આવાસક"નું નિક્ષેપ બને છે. એજ પ્રમાણે જીવાજીવમાં પણ 'આવાસક' આ નામનિક્ષેપ આ પ્રમાણે ઘટાવી શકાય છે. રાજપ્રાસાદથી યુક્ત સમસ્ત નગર "રાજાદિકનો આવાસ છે." આ રૂપે વ્યવહારમાં કહેવામાં આવે છે. તથા સૌધર્મ આદિ સમસ્ત કલ્પને ઇન્દ્રાદિકોના આવાસ રૂપ કહેવામાં આવે છે એ રીતે સંમિલિત અનેક અજીવો અને જીવોનું "આવાસક"

जीवोभयं विवक्षितम् । नगरादीनां सौधर्मादिकल्पानां च महत्त्वाद् बहूनि जीवाजीवोभयानि विवक्षितानि। इत्थं जीवाजीवोभयैकत्वबहुत्वविषये एकत्वं बहुत्वं च विवक्षाधीनं द्रष्टव्यम्। एवमन्यत्रापि जीवादीनामावासकनाम यथासंभवं भावनीयम्। इदं हि दिङ्मात्रप्रदर्शनार्थमुक्तम् इति नामावश्यकप्ररूपणा ॥सू०१०॥

अथ स्थापनाऽऽवश्यकं निरूपयितुं सूत्रकार आह—

मूलम्—से किं तं ठवणावस्सयं ? ठवणावस्सयं जण्णं कट्ठकम्मे

है। राजप्रासाद नगर एवं सौधर्म आदि की अपेक्षा लघु होने के कारण जीव और अजीव इन दोनों रूप से एक कहा गया है। तथा राजप्रासाद की अपेक्षा नगरादिक एवं सौधर्मकल्प महान्–विशाल–होने के कारण अनेक जीव और अजीवरूप से विवक्षित, हुए हैं। इस प्रकार जीव, अजीव, और उभय में अनेकत्व का यह विचार विवक्षा के आधीन हुआ जानना चाहिये। इस प्रकार से अन्यत्र भी जीवादि वों का आवासक नाम यथा संभव समझ लेना चाहिये। यह जो यहां समझाया गया है वह तो बहुत ही संक्षेप से समझाया गया है।

इस प्रकार यह नाम आवश्यक की प्ररूपणा जाननी चाहिये।

भावार्थ—सूत्रकार ने यहां नाम आवश्यक का स्वरूप जीव अजीव आदि पदार्थों के एकत्व अनेकत्व को लेकर समझाया हैं। इसे व्यवहार में पहिले यों समझ लेना चाहिये–कि प्रत्येक शब्द का अर्थ चार प्रकार का होता है–(१) नामरूप (२) स्थापनारूप, (३) द्रव्यरूप और चौथा भावरूप। शास्त्रीय परिभाषा में इन्हें निक्षेप कहा गया है। निक्षेप नाम रखने या न्यास का है।

એવું નામ સિદ્ધ થઈ જાય છે. રાજપ્રાસાદ, નગર એને સૌધર્મકલ્પ આદિની અપેક્ષાએ જીવ અને અજીવો નાના હોવાને કારણે તે બન્નેને અહીં અજીવરૂપ એક શબ્દથી જ પ્રતિપાદિત કરવામાં આવેલ છે. તથા રાજમહેલ કરતાં નગર સાધર્માદિ કલ્પો વિશાળ હોવાને કારણે અનેક જીવ અને અજીવરૂપે વિવક્ષિત થયેલ છે. આ રીતે જીવ. અજીવ અને ઉભયમાં એકત્વ અનેકત્વનો આ વિચાર વિવક્ષાને અધીન રહીને થયેલો સમજવો. એજ પ્રકારે અન્યત્ર પણ જીવાદિકોનું 'આવાસક' નામ યથા સંભવ સમજી લેવું જોઇએ. અહીં આ જે સમજૂતી આપવામાં આવી છે. તે તો બહુજ સંક્ષિપ્તમાં આપવામાં આવી છે. આ પ્રકારની આ નામ આવશ્યકની પ્રરૂપણા સમજવી.

સૂત્રકારે અહીં નામ આવશ્યકનું સ્વરૂપ જીવ અજીવ આદિ પદાર્થોના એકત્વ અનેકત્વની અપેક્ષાએ સમજાવ્યું છે. આ બાબતમાં પહેલાં તો એ સમજી લેવું જોઇએ કે પ્રત્યેક શબ્દનો અર્થ ચાર પ્રકારનો હોય છે. તે ચાર પ્રકાર નીચે પ્રમાણે છે.

वा पोत्थकम्मे वा, चित्तकम्मे वा, लेप्पकम्मे वा गंथिमे वा वेढिमे वा पूरिमे वा संघाइमे वा अक्खे वा वराडए वा एगो वा अणेगो वा सब्भावठवणा वा असब्भावठवणा वा आवस्सए त्ति ठवणा ठविज्जइ, से त्तं ठवणावस्सयं ॥सू० ११ ॥

जिसमें व्युत्पत्ति की प्रधानता नहीं है किन्तु जो मातापिता या इतरलोगों के संकेत बल से जाना जाता हैं वह नामनिक्षेप का विषय है। जैसे किसी व्यक्ति में "महावीर" जैसे गुण नहीं होने पर भी व्यवहार चलाने के निमित्त उसके माता पिता आदि जन उसका नाम महावीर रख लेते हैं। जो वस्तु असली वस्तु के सदृश आकार वाली है वह स्थापना निक्षेप का विषय है। जैसे जंबूद्वीप का नकशा अढाइद्वीप का नकशा तथा वृक्ष महेल आदि का चित्र। जो पदार्थ भाव का पूर्वरूप या उत्तररूप हो वह द्रव्यनिक्षेप का विषय है—जैसे जो वर्तमान में श्रावकपुत्र है वह आगे श्रावक बनेगा उसे श्रावक कहना। जिस शब्द के अर्थ में शब्द का व्युत्पत्ति या प्रवृत्ति निमित्त वर्तमान में बराबर घटित हो रहा हो वह भावनिक्षेप का विषय है। जैसे वर्तमान में महान् वीरता के कार्य करने वालेको महावीर कहना। इसी तरह से जिस जीवादि

---

(૧) નામરૂપ (૨) સ્થાપનારૂપ, (૩) દ્રવ્યરૂપ અને (૪) ભાવરૂપ શાસ્ત્રોની પરિભાષામાં તેને નામનિક્ષેપ કહેવામાં આવે છે. નિક્ષેપ એટલે નામ રાખવું અથવા ન્યાસ (વિભાગ) કરવો તેનું નામ નિક્ષેપ છે.

જેમાં વ્યુત્પત્તિની પ્રધાનતા હોતી નથી પણ જે માતા, પિતા અથવા અન્ય લોકોના સંકેતનો આધાર લઈને જાણી શકાય છે, એવું નામનિક્ષેપનું સ્વરૂપ અથવા એવો નામનિક્ષેપનો વિષય છે. જેમકે કોઇ વ્યક્તિમાં મહાવીર જેવાં ગુણોનો અભાવ હોવા છતાં પણ વ્યવહાર ચલાવવાને નિમિત્તે તેના માતા, પિતા આદિ લોકો તેનું નામ મહાવીર રાખી લે છે જે વસ્તુ અસલી વસ્તુના સમાન આકારવાળી છે, તે સ્થાપના નિક્ષેપનો વિષય છે. જેમકે જંબૂદ્વીપનો નકશો, અઢીદ્વીપનો નકશો, વૃક્ષ મહેલ આદિના ચિત્ર, આ બધા સ્થાપના નિક્ષેપના ઉદાહરણો છે.

જે પદાર્થ ભાવનો પૂર્વરૂપ કે ઉત્તરરૂપ હોય, તે દ્રવ્યનિક્ષેપનો વિષય છે. જેમકે જે અત્યારે શ્રાવકપુત્ર છે તે ભવિષ્યમાં શ્રાવક બનશે માટે તેને શ્રાવક કહેવો જોઇએ. આનું નામ દ્રવ્યનિક્ષેપ છે.

જે શબ્દના અર્થમાં શબ્દની વ્યુત્પત્તિ અથવા પ્રવૃત્તિનું નિમિત્ત વર્તમાનમાં બરાબર ઘટાવી શકાતાં હોય. તે ભાવનિક્ષેપનો વિષય છે જેમકે વર્તમાન સમયે મહાવીરતાનું કાર્ય કરનારને મહાવીર કહેવો, તે ભાવરૂપ નિક્ષેપ થયો ગણાય.

पदार्थ में आवश्यक जैसा एक भी गुण नहीं है और उसे आवश्यक इस नाम से व्यवहार करना सो नाम आवश्यक है। नाम का तीन प्रकार के लक्षण से व्यवहार होता है—जहां नाम का व्युत्पत्ति या प्रवृत्ति का निमित्त घटित होता है वह नाम-नामनिक्षेप का विषय न हो कर भावनिक्षेप का विषय बनता है। जैसे परमैश्वर्य को भोगते हुए इन्द्र नामधारी व्यक्ति को इन्द्र इस नाम से पुकारना। यह नाम का प्रथम प्रकार है। द्वितीय प्रकार में जैसा नाम हो उसकी प्रवृत्ति का निमित्त व्युत्पत्ति का निमित्त उस में न हो किन्तु संकेत आदि हो तो यह नामनिक्षेप में परिणमित किया गया है जैसे गोपालदारक-गोपाल बालक। तृतीय प्रकार में डित्थ, डवित्थ आदिरूढ शब्द कि जो व्युत्पत्ति रहित ही स्वेच्छानुसार प्रचलित होते हैं—लिये गये है। इन में भी प्रवृत्ति का निमित्त व्युत्पत्ति का निमित्त नहीं होता है किन्तु रूढि होती है। इस तरह केवल द्वितीय प्रकार ही नामनिक्षेप का विषय पडता है। अतः जिस में आवश्यक जैसे गुण नहीं हैं उस में आवश्यक इस नाम का न्यास (रखना) करना यह आवश्यक का नामनिक्षेप है। जीवआदिक पदार्थों में यह निक्षेप किस

એજ પ્રમાણે જે જીવાદિ પદાર્થમાં 'આવશ્યક એવો એક પણ ગુણ નથી, તે જીવાદિ પદાર્થમાં 'આવશ્યક' એવા નામનો વ્યવહાર કરવો, તેને નામ આવશ્યક કહે છે. નામનો ત્રણ પ્રકારના લક્ષણોથી વ્યવહાર થાય છે—જ્યાં નામનું વ્યુત્પત્તિ અથવા પ્રવૃત્તિનું નિમિત્ત ઘટિત થતું હોય છે, તે નામ—નામનિક્ષેપનો વિષય બનવાને બદલે ભાવનિક્ષેપનો વિષય બની જાય છે. જેમકે પરમ ઐશ્વર્યથી સંપન્ન એવી કોઈ વ્યક્તિને "ઇન્દ્ર" એવા નામે ઓળખવી. આ નામનો પહેલો પ્રકાર છે.

નામનો બીજો પ્રકાર—જેનું નામ હોય એવી પ્રવૃત્તિના નિમિત્તનો અથવા વ્યુત્પત્તિના નિમિત્તનો જેમાં સદ્ભાવ ન હોય, પરન્તુ સંકેત આદિનો સદ્ભાવ હોય તો તેને નામનિક્ષેપમાં પરિણમિત કરવામાં આવ્યું છે. જેમકે ગોવાળના પુત્રનું 'ઇન્દ્ર'નામ.

ત્રીજા પ્રકારમાં 'ડિત્થ ડવિત્થ' આદિ રૂઢ શબ્દો કે જે વ્યુત્પત્તિથી રહિત છે અને બોલનારની ઇચ્છાનુસાર પ્રચલિત (ઉચ્ચારિત) થયેલ છે, તેમને ગણાવી શકાય છે. તેમાં પણ પ્રવૃત્તિનું નિમિત્ત અથવા વ્યુત્પત્તિનું નિમિત્ત હોતું નથી પણ રૂઢિનો જ સદ્ભાવ હોય છે. આ રીતે કેવળ બીજો પ્રકાર જ નામનિક્ષેપના વિષયરૂપ ગણી શકાય છે. તેથી જેમાં આવશ્યક જેવાં ગુણ નથી, તેમાં 'આવશ્યક' આ નામનો ન્યાસ કરવો તેને આવશ્યકનો નામનિક્ષેપ કહે છે. જીવાદિક પદાર્થોમાં આ નિક્ષેપ કેવા પ્રકારે ઘટિત કરવામાં આવ્યો છે, તે વિષયનું ટીકાકારે સૂત્રની

छायाः—अथ किं तत् स्थापनावश्यकम्? स्थापनावश्यकं-यत्खलु काष्ठकर्मणि वा पुस्तकर्मणि वा चित्रकर्मणि वा लेप्यकर्मणि वा ग्रन्थिमे वा वेष्टिमे वा पूरिमे वा सङ्घातिमे वा अक्षे वा वराटके वा एको वा अनेको वा सद्भावस्थापनया वा असद्भावस्थापनया वा आवश्यकेति स्थाप्यते, तदेतत् स्थापनावश्यकम् ॥सू० ११॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि—

'से किं तं ठवणावस्सयं' अथ किं तत् स्थापनावश्यकम्? इति शिष्य प्रश्नः। उत्तरमाह—'ठवणावस्सयं' इत्यादि। स्थापनावश्यकम्—स्थाप्यते—क्रियते इति स्थापना। यथा-जम्बूद्वीपस्य मानचित्रम्, 'नक्शा' इति भाषाप्रसिद्धम्। आवश्यकमित्यनेन आवश्यकक्रियावान् श्रावकादिरिह गृह्यते। आवश्यक तद्वतो रभेदोपचारात्। काष्ठपाषाणादौ कृतं तत् यच्चित्रं-ज्ञानादिगुणरहिताऽऽकृतिः स्थापना।

प्रकार से घटित किया गया है यह विषय सूत्र की टीका में टीकाकारने स्पष्ट किया है। उसे भावार्थ में स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं है। ॥सूत्र १०॥

अब सूत्रकार स्थापना आवश्यक का निरूपण करते हैं—

"से किं तं ठवणावस्सयं" इत्यादि।

शब्दार्थ—(से किं तं ठवणावस्सयं) शिष्य प्रश्न करता है भदंत। स्थापना आवश्यक का क्या स्वरूप है?—

उत्तरः—(ठवणावस्सयं) स्थापना आवश्यक का स्वरूप इस प्रकार से है—जो की जावे उसका नाम स्थापना हैं। जैसे जंबूद्वीप का नक्शा, अढाई द्वीप का नक्शा है। आवश्यक शब्द से यह आवश्यक क्रियावाला श्रावक आदि गृहीत हुआ है। क्यों कि आवश्यक क्रिया और आवश्यक क्रियावाले में अभेद का उपचार किया गया है। काष्ठपाषाण आदि में किया गया—उकेरा गया—

ટીકામાં જ સ્પષ્ટીકરણ કરેલું છે. તેથી ભાવાર્થમાં તેનું સ્પષ્ટીકરણ કરવાની જરૂરત રહેતી નથી. ॥ સૂ૦ ૧૦ ॥

હવે સૂત્રકાર સ્થાપના આવશ્યકનું નિરૂપણ કરે છે—

"से किं तं ठवणावस्सयं" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—શિષ્ય ગુરૂને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે-(से किं तं ठवणावस्सयं ?) હે ભગવન્! સ્થાપના આવશ્યકનું કેવું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર—(ठवणावस्सयं) સ્થાપના આવશ્યકનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે. જે કરવામાં આવે તેનું નામ સ્થાપના છે. જેમકે જંબૂદ્વીપનો નકશો, અઢીદ્વીપનો નકશો, વગેરે સ્થાપના આવશ્યકરૂપ છે. આવશ્યક પદના પ્રયોગદ્વારા અહીં આવશ્યક ક્રિયાવાળા શ્રાવક વગેરે ગૃહીત થયા છે, કારણ કે આવશ્યક ક્રિયા અને આવશ્યક ક્રિયાવાળામાં અભેદનો ઉપચાર કરવામાં આવ્યો છે. કાષ્ઠ પાષાણ આદિમાં આલેખવામાં-

तत्र श्रावकाद्यभेदोपचारात् स्थापनारूपमावश्यकमित्यर्थः। काष्ठकर्मादिषु आवश्यक क्रियां कुर्वन्तो यत् स्थापनारूपाः श्रावकादयः स्थाप्यन्ते चित्ररूपेण तत् स्थापनावश्यकमिति तात्पर्यम्! तदाह—जण्णं' इत्यादि। यत्खलु काष्टकर्मणि वा—काष्ठे समुत्कीर्णं रूपके वा पुस्तकर्मणि वा। पुस्तं वस्त्रं तस्य कर्म—तन्निर्मिता पुत्तलिका तस्मिन् वा। अथवा—'पोत्थकर्मणि' इतिच्छाया, पोत्थं=पुस्तकं, तच्चेह संपुटकरूपम्, तत्र कर्म=तन्मध्ये वर्तिकालिखितं रूपकं तस्मिन् वा। यद्वा—पोत्थं-पुस्तं=ताडपत्रं, तत्र कर्म—तच्छेदनिष्पन्नं रूपकं तस्मिन् वा। चित्रकर्मणि वा=चित्रलिखिते रूपके वा। लेप्यकर्मणि-लेप्यरूपके वा, ग्रन्थिमे वा-ग्रन्थेन निवृत्तं ग्रन्थिमं-नैपुण्यातिशयात् ग्रन्थिसमुदाय निष्पादितं रूपकं तस्मिन् वा। वेष्टिमे वा—वेष्टनेन=पुष्पवेष्टनक्रमेण निष्पन्नं रूपकं वेष्टिमं

उसका चित्र जो कि ज्ञानादि गुणों से सर्वथा शून्य (रहित) होता है. वह स्थापना-निक्षेप है उसमें आवश्यक क्रिया को संपादन करने की आकृतिरूप में श्रावक आदि कों का फोटो—पत्थर या काष्ठ के पटिये पर बनाया जाता हैं, सो चित्र यही स्थापनारूप आवश्यक है। इसी विषय को सूत्रकार "जण्णं" इत्यादि पदों द्वारा स्पष्ट करते हैं—(जण्णं कट्ठकम्मे वा पोत्थकम्मे वा) जो आकृति काष्ठ में उकेरी जावे उसमें अथवा पुस्त—वस्त्र—कपडे पर चित्रित की जावे उसमें अथवा वस्त्र से पुत्तलिका के रूप में बनाई जावे उस में या पोत्थकर्मणि" पुस्तक के बीच में कुची से रंग आदि भर कर बनाई जावे उसमें अथवा ताड पत्र पर छेद करके बनाई जावे उसमें अथवा (चित्तकम्मे वा) चित्ररूप में बनाई जावे इसमें (लेप्पकम्मे वा) अथवा मृत्तिका को गिली करके बनाई जावे उसमें (गंथिमे वा वेढिमे वा पूरिमे वा संघाइमे वा) अथवा वस्त्र की गांठों के समुदाय से

કોતરવામાં આવેલું તેનું ચિત્ર કે જે જ્ઞાનાદિ ગુણોથી સર્વથા વિહીન હોય છે, તે સ્થાપનાનિક્ષેપ છે. જેમાં આવશ્યક ક્રિયાને સંપાદન કરવાની આકૃતિરૂપે શ્રાવક આદિકોનાં ચિત્રો પથ્થર પર અથવા લાકડાનાં પાટિયાં વગેરે પર બનાવવામાં આવે છે, તેને જ સ્થાપના રૂપ આવશ્યક કહે છે. એજ વિષયને સૂત્રકાર "जण्णं" ઇત્યાદિ પદો દ્વારા સ્પષ્ટ કરે છે—

(जण्णं कट्ठकम्मे वा पोत्थकम्मे वा) જે આકૃતિ લાકડા પર કોતરી કાઢવામાં આવે તેમાં અથવા પુસ્ત પર (વસ્ત્ર પર) ચિત્રિત કરવામાં આવે તેમાં, અથવા વસ્ત્રમાંથી ઢીંગલીરૂપે બનાવવામાં આવે તેમાં અથવા-पोत्थकर्मणि" પુસ્તકની અંદર પીછી વડે રંગાદિ પૂરીને બનાવવામાં આવે તેમાં, અથવા (चित्तकम्मे वा) ચિત્રરૂપે જેનું સર્જન કરવામાં આવે તેમાં, (लेप्पकम्मे वा) ભીની માટીમાંથી બનાવવામાં આવે તેમાં, (गंथिमे वा, वेढिमे वा, पुरिमे वा, संघाइमे वा) અથવા વસ્ત્રની ગાંઠોના સમુદાયથી

तस्मिन् वा। यद्वा—एकस्य द्वयोर्बहूनां वा वस्त्राणां वेष्टनेन निष्पन्नं यद्रूपं तद् वेष्टिमं तस्मिन् वा। पूरिमे वा—पूरणेन भरणेन निष्पन्नं पूरिमं—ताम्रपित्तलादिमयं तस्मिन् वा। सङ्घातिमे वा—सङ्घातेन=बहुवस्त्रादिखण्डसमुदायेन निष्पन्नं रूपकं सङ्घातिमं तस्मिन् वा। अक्षे वा—अक्षश्चन्दनकस्तस्मिन् वा वराटके=कपर्दके वा सद्भावस्थापनया वा काष्टकर्मादिषु आकारवती या स्थापना सा सद्भावस्थापना श्रावकाद्याकारस्य तत्र सद्भावात्। तया सद्भावस्थापनया, असद्भावस्थापनया वा अक्षादिषु अनाकारवती असम्यगूरूपेण स्थापना भवति सा असद्भावस्थापना, श्रावकाद्याकारस्य तत्रासद्भावात्। तया वा स्थाप्यमानः एको वा अनेको वा आवश्यकेति—आवश्यकक्रियायुक्तश्रावकादिः स्थापना स्थाप्यते=क्रियते। तदेतत् स्थापनाऽऽवश्यकम् ।सू,११॥

जो बनाई जावे उसमें, अथवा एक या दो अथवा अनेक वस्त्रों कों वेष्टित करके जो बनाई जावे उसमें, अथवा पुष्पों को आकृति के रूप मे सजा सजा करके जो आकार बनाया जावे उसमें अथवा पित्तलादि द्रव्यों को सांचे मे ढार कर जो आकृति बनाई जावे उसमें अथवा अनेक वस्त्रों के खण्डों से—घज्जियों से—जो रूप बनाया जावे उसमें (अक्खेवा) अथवा पाशे में (वराडएवा) अथवा कोडी में (एगो वा अणेगो वा) एक अथवा अनेक आवश्यक क्रिया युक्त एक अनेक श्रावक आदि की (सब्भावठवणा असब्भावठवणा) की गई जो सद्भावस्थापना अथवा असद्भावस्थापना है (आवस्सएत्ति ठवणा ठविज्जइ) वह आवश्यक की स्थापना है। (से तं ठवणावस्सयं) यह स्थापना आवश्यक का स्वरूपहै। ॥सूत्र ११॥

બનાવવામાં આવે તેમાં, અથવા એક, બે અથવા અનેક વસ્ત્રોને વેષ્ટત કરીને બનાવવામાં આવે તેમાં, અથવા પુષ્પોની આકૃતિરૂપે સજાવટ કરી કરીને જે આકાર બનાવવામાં આવે તેમાં, અથવા પિત્તળાદિ દ્રવ્યોને ખીબામાં ઢાળીને જે આકાર બનાવવામાં આવે તેમાં અથવા આવે તેમાં, અથવા અનેક વસ્ત્રોના લીરાંઓ (ચિંદરડાંઓ)માંથી જે આકૃતિ બનાવવામાં આવે તેમાં (अक्खे वा) અથવા પાશાઓમાં અથવા (वराडए वा) કોડીમાં (एगो वा अणेगो वा) એક અથવા અનેક આવશ્યક ક્રિયા યુકત એક-અનેક શ્રાવક આદિવડે (सब्भावठवणा असब्भावठवणा) કરવામાં આવેલી જે સદ્ભાવસ્થાપના અથવા અસદ્ભાવ સ્થાપના છે. (आवस्सएत्ति ठवणा ठविज्जइ) તેનું નામ આવશ્યકની સ્થાપના છે. (से तं ठवणावस्सयं) આ પ્રકારનું આ સ્થાપનાઆવશ્યકનું સ્વરૂપ છે. ॥ સૂ૦ ૧૧ ॥

नामस्थापनयोर्भेदमाह—

मूलम्—नामट्ठवणाणं को पइविसेसो ? णामं आवकहियं, ठवणा इत्तरिया वा होज्जा आवकहिया वा ॥सू० १२॥

छाया—नामस्थापनयोः कः प्रतिविशेषः ? नाम यावत्कथिकम्, स्थापना इत्वरिका वा भवेत्, यावत्कथिका वा । ॥सू० १२॥

टीका—'नामट्ठवणाणं' इत्यादि—

शिष्यः पृच्छति—नामस्थापनयोः कः प्रतिविशेषः ? नामस्थापनयो को विशेषः ? न कोऽपि विशेषो दृश्यते। यथा भावावश्यकस्वरूपशून्ये गोपालदारकादौ आवश्यकेति नाम क्रियते, तथैव स्थापनाऽपि भावावश्यकस्वरूपशून्ये काष्ठपुस्तकादौ आवश्यकशास्त्रस्य तदाकाररूपतया अतदाकाररूपतया वा स्थापना स्थाप्यते अतो भावशून्ये द्रव्यमात्रे क्रियमाणत्वादनयो र्नास्ति कश्चिद् विशेष इति प्रष्टुरा-

अब सूत्रकार नाम और स्थापना निक्षेप में क्या अन्तर है—इस बात को प्रकट करते हैं—"नामट्ठवणाणं" इत्यादि । ॥सूत्र १२॥

शब्दार्थ-(हे भदंत ! नाम और स्थापना का क्या भेद हैं ? इस पूर्वोक्त कथन से तो इन दोनों में कोइ अन्तर नहीं ज्ञात होता है ? कारण—

जिस प्रकार भावावश्यक के स्वरूप से शून्य गोपालदारक आदि में आवश्यक ऐसा नामनिक्षेप किया जाता है—उसी प्रकार से भावावश्यक के स्वरूप से शून्य काष्ठ पुस्तक आदि में आवश्यकशास्त्र की तदाकाररूप से या अतदाकाररूप से स्थापनानिक्षेप किया जाता है। अतः भाव से शून्य द्रव्यमात्र में क्रियमाण होने के कारण इन दोनों में कोई विशेषता लक्षित नहीं होती है—इस प्रकार का अभिप्राय पूछनेवाले शिष्य का है।

હવે સૂત્રકાર નામ નિક્ષેપ અને સ્થાપના નિક્ષેપ વચ્ચે શો તફાવત છે, તે પ્રકટ કરે છે.

"नामट्ठवणाणं" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—શિષ્ય ગુરૂને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે "હે ભગવન્! નામ અને સ્થાપના વચ્ચે શો તફાવત છે ? પૂર્વોકત કથન પ્રમાણે તો તે બન્ને વચ્ચે કોઇ ભેદ જ દેખાતો નથી, કારણ કે.....જેમ ભાવાવશ્યકના સ્વરૂપથી રહિત ગોવાળપુત્ર આદિમાં "આવશ્યક" એવો નામ નિક્ષેપ કરવામાં આવે છે, એજ પ્રમાણે ભાવાવશ્યકના સ્વરૂપથી વિહીન, કાષ્ઠ, પુસ્તક આદિમાં આવશ્યકશાસ્ત્રની તદાકારરૂપે અથવા અતદાકાર રૂપે સ્થાપના રૂપ નિક્ષેપ કરવામાં આવે છે. તેથી ભાવથી વિહીન દ્રવ્ય માત્રમાં ક્રિયમાણ હોવાને કારણે એ બન્ને વચ્ચે કોઇ પણ પ્રકારનો ભેદ દેખાતો નથી. આ પ્રકારની પ્રશ્ન કરનાર શિષ્યની માન્યતા અહીં પ્રકટ કરી છે.

शयः उत्तरयति–'णामं आवकहियं' इत्यादि । नाम यावत्कथिकम्–स्वाश्रयद्रव्यस्य अस्तित्वकथां यावद् नाम अवतिष्टते, नाम्न आश्रयद्रव्यं यावत्तिष्टति तावन्नामापि तिष्ठतीति भावः । स्थापना तु इत्वरिका=स्वल्पकालावस्थायिनी वा भवेत् यावत्कथिका वा भवेत् । काष्टकर्मादौ आवश्यकशास्त्रस्य तदाकाररूपा अतदाकाररूपा स्थापना यावत्कथिका भवति, अक्षादौ तु सा इत्वरिका भवतीत्यर्थः अयं भावः–काचित् स्थापना स्वाश्रयद्रव्यस्य सद्भावेऽपि मध्यकाल एव निव-

उत्तर–(णामं आवकहियं ठवणा इत्तरिया वा होज्जा आवकहिया वा) नाम यावत्कथिक होता है और स्थापना इत्वरिक तथा यावत्कथिक दोनों प्रकार का होता है।

स्वाश्रय द्रव्य के अस्तित्व काल तक नाम रहता है–अर्थात्–जिसका वह नाम है वह जब तक मौजूद रहता है तब तक उसका वह नाम विद्यमान रहता है–इसका नाम यावत्कथिक है परन्तु स्थापना जो है वह स्वल्प काल-तक भी रहती है और यावत्कथिक भी होती है–काष्ट कर्म आदि में आवश्यकशास्त्र की तदाकाररूप अथवा अतदाकाररूपकृत स्थापना यावत्कथिक होती है–स्वाश्रयद्रव्य की स्थिति तक रहती है। तथा अक्ष–(चौकोर पाशा) आदि में कृत अतदाकार स्थापना स्वल्प काल तक रहती हैं। तात्पर्य यह है कि कोई स्थापना स्वाश्रय द्रव्य के सद्भाव में भी बीच ही में समाप्त हो जाया करती है और कोई स्थापना ऐसी होती है जो अपने आश्रयभूत द्रव्य की

ઉત્તર—(णामं आवकहियं ठवणा इत्तरिया वा होज्जा, आवकहिया वा) નામ યાવત્કથિત હોય છે, પરન્તુ સ્થાપના ઇત્વરિક (સ્વલ્પકાળ સુધી જ રહેનાર) અને યાવત્કાથત, એ બન્ને પ્રકારની હોય છે. સ્વાશ્રયભૂત દ્રવ્યના અસ્તિત્વકાળ સુધી નામ રહે છે. એટલે કે જેનું તે નામ રાખવામાં આવ્યું છે તે વસ્તુ અથવા વ્યકિતનું અસ્તિત્વ જ્યાં સુધી રહે છે. ત્યાં સુધી જ તે નામનું અસ્તિત્વ રહે છે. આ રીતે નામને યાવત્કથિત કહેવામાં આવ્યું છે. પરન્તુ સ્થાપના તો સ્વલ્પકાળ સુધી પણ રહે છે અને યાવત્કથિત (વસ્તુનું અસ્તિત્વ રહે એટલા માટે કાળ સુધી ટકનારી) પણ હોઇ શકે છે.

જેમકે કાષ્ઠ કર્મ આદિમાં આવશ્યકશાસ્ત્રની તદાકારરૂપ અથવા અતદાકારરૂપ કરેલી સ્થાપના યાવત્કથિત હોય છે–સ્વાશ્રયભૂત દ્રવ્યનું જ્યાં સુધી અસ્તિત્વ રહે ત્યાં સુધી જ તે સ્થાપનાનું અસ્તિત્વ રહે છે, તથા અક્ષ (પાશા) આદિમાં કરેલી અતદાકાર સ્થાપના બહુ જ ઓછા કાળ સુધી રહે છે. આ કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે—કોઇ સ્થાપનના સ્વાશ્રયભૂત દ્રવ્યનું અસ્તિત્વ રહેવા છતાં પણ વચ્ચેથી જ

तंते, काचित्तु तत्सत्ता यावद्वस्तिष्ठते, इति एवं च-नामस्थापनयोर्भावशून्यत्वेनाधारसाम्येऽपि भेदःस्व स्वावस्थानकाल कृत एव भगवता प्रदर्शितः यद्यपि गोपाल दारकादौ विद्यमानेऽपि कदाचिदनेकनामपरिवर्तनं लोके क्वचीद्दृश्यते, तथाच कालकृतोऽपि भेदो नास्ति, तथापि—बहुशः स्थले नाम्नो यावत्कथिकत्वमेव दृश्यते, नाम्नः परावर्तनं तु क्वचिद्विरलतयोपलभ्यते। अतोऽल्पस्थलव्यापित्वेन नाम्न इत्वरिकता भगवता न विवक्षिता। नाम्नोऽल्पकालिकताकल्पने तूत्सूत्रप्ररूपणापत्तिरिति बोद्धव्यम्।

सत्ता काल तक रहती है। इस प्रकार नाम और स्थापना निक्षेप में भावशून्यता की अपेक्षा आधार की समानता होने पर भी अपने २ अवस्थान काल की अपेक्षा कृत ही भेद है ऐसा भगवान ने प्रदर्शित किया है। यद्यपि गोपाल-दारक आदि में उनकी विद्यमानता रहने पर भी कभी २ अनेक नामों का परिवर्तन होता हुआ लोक में कहीं २ देखा जाता है—इस अपेक्षा कालकृत भेद सर्वथा नहीं आता है—तो भी अनेक स्थलों में नाम में यात्कथिकता देखी जाती है। इत्वरिकता नहीं। यह तो केवल विरलतारूप में ही कहीं २ देखी जाती है। इसलिये नाम की इत्वरिकता अल्पस्थल व्यापी होने के कारण उस में भगवान् ने विवक्षित नहीं की है। यदि नाम में अल्पकालिकतारूप इत्वरिकता कल्पित की जावे तो उत्सूत्र प्ररूपणा की आपत्ति आती है ऐसा जानना चाहिये।

ગમે ત્યારે સમાપ્ત થઇ જતી હોય છે, ત્યારે કોઇ સ્થાપના એવી હોય છે કે જે પોતાના આશ્રયભૂત દ્રવ્યનું અસ્તિત્વ જ્યાં સુધી રહે ત્યાં સુધી રહે છે.

આ પ્રમાણે નામ અને સ્થાપના નિક્ષેપમાં ભાવશૂન્યતાની અપેક્ષાએ આધારની સમાનતા હોવા છતાં પણ પોતપોતાના અવસ્થાનકાળની અપેક્ષાએ જ ભેદ રહેલો છે, એવું ભગવાને કહ્યું છે.

જો કે ગોવાળપુત્ર આદિનું અસ્તિત્વ રહેવા છતાં પણ કોઇ કોઇ વાર તેમના નામોમાં પરિવર્તન થયા કરતું હોય છે, એવું પણ જોવામાં આવે છે ખરૂં. આ દૃષ્ટિએ વિચારવામાં આવે તો એવી પરિસ્થિતિમાં તો નામમાં યાવત્કથિકતા રહેતી નથી, પરન્તુ આવું ભાગ્યે જ બને છે. અનેક વસ્તુઓ અથવા પદાર્થોમાં તો નામની યાવત્કથિકતા જ જોવા મળે છે-ઇત્વરિકતા (અલ્પ સ્થાયિત્વ) દેખાતી નથી. નામની અપેક્ષાએ ઇત્વરિકતા તો કેવળ વિરલતા રૂપે જ કોઇ કોઇ વસ્તુમાં જોવામાં આવે છે. આ રીતે નામની ઇત્વરિકતા અલ્પ સ્થલવ્યાપી હોવાથી ભગવાને અહીં તેની વિવક્ષા કરી નથી. જો નામમાં અલ્પકાલિકતા રૂપ આ ઇત્વરિકતાને સ્વીકારવામાં

यत्तु—उपलक्षणमात्रं चेदं कालभेदेनैतयोर्भेदकथनम्—अपरस्यापि बहुप्रकारभेदस्य सम्भवात्, इत्युक्तं,

तदुत्सूत्रप्ररूपणम्—यथोत्सूत्रप्ररूपणभिया—नामनिक्षेपे इत्वरिकतायाः क्वचित् संभवेऽपि भगवताऽनुक्तत्वादुपलक्षणमिति न स्वीकृतं, तथैव स्थापनायां कालातिरिक्तस्य भेदहेतोः कल्पनेऽप्युत्सूत्रप्ररूपणं प्रसज्येत कालान्यकृतभेदस्य भगवताऽनुक्तत्वात् । एतेन—यत् कैश्चिदुक्तं यथा=प्रतिमारूपस्थापना—दर्शनात् भावः समुल्ल-

---

જો કોઈ એવું કહે છે કે" આ પ્રકારના કાલ ભેદથી નામનિક્ષેપ અને સ્થાપનાનિક્ષેપમાં જે ભેદનું કથન કરવામાં આવ્યું છે તે ઉપલક્ષણ માત્ર છે કેમકે આ સિવાય બીજા પણ અનેક પ્રકારોને લઈને આ બન્નેમાં ભેદ સંભવિત થાય છે" તો તેમનું આ પ્રમાણે કથન કરવું તે ઉત્સૂત્ર પ્રરૂપણા છે—આગમથી વિરુદ્ધ છે—કેમકે જુઓ જેમ નામનિક્ષેપમાં ક્વચિત્ ઇત્વરિકતાનો સંભવ હોવા છતાં પણ ભગવાને ઉત્સૂત્ર પ્રરૂપણાના ભયથી તેનો ઉલ્લેખ કર્યો નથી—ત્યાં તો માત્ર યાવત્કથિકતા જ પ્રદર્શિત કરવામાં આવી છે અને એજ કારણે ઇત્વરિકતાનો ઉપલક્ષણરૂપે સ્વીકાર કરવામાં આવ્યો નથી, એજ પ્રમાણે સ્થાપનામાં પણ કાળ સિવાયની કોઈ પણ બાબતને ભેદ કારણરૂપે સ્વીકારવામાં આવે તો એ પ્રકારની પ્રરૂપણામાં પણ ઉત્સૂત્રપ્રરુપણાનો જ પ્રસંગ પ્રાપ્ત થશે, કારણ કે સ્થાપના નિક્ષેપમાં કાળકૃત ભેદ સિવાયનો કોઈ પણ ભેદ બતાવવાને કહ્યો નથી.

આવે તો ઉત્સૂત્રપ્રરૂપણાનો દોષ લાગે છે-એટલે કે એ પ્રકારની પ્રરૂપણા કરવી એ સૂત્ર વિરૂદ્ધની સિદ્ધાન્તોથી વિરૂદ્ધની પ્રરૂપણા કરી ગણાય, એમ સમજવું.

અહીં કોઇ એવી દલીલ કરે કે આ પ્રકરણમાં કાળભેદની અપેક્ષાએ નામનિક્ષેપ અને સ્થાપનાનિક્ષેપ વચ્ચે જે ભેદ પ્રકટ કરવામાં આવ્યો છે, તે તો ઉપલક્ષણ માત્ર જ છે. કારણ કે આ સિવાય બીજી અનેક રીતે પણ તે બન્ને વચ્ચે ભેદ સંભવી શકે છે. તો આ પ્રકરણનું તેનું જે કથન છે તેને ઉત્સૂત્ર પ્રરૂપણા રૂપ જ ગણી શકાય, કારણ કે તે પ્રકારની માન્યતા આગમની વિરૂદ્ધ જાય છે. જેમ નામનિક્ષેપમાં કોઇ કોઇ પ્રસંગે ઇત્વરિકતા (અલ્પકાલિનતા)નો સંભવ હોવા છતાં પણ ભગવાને ઉત્સૂત્ર પ્રરૂપણાના ભયથી તેનો ઉલ્લેખ કર્યો નથી-ત્યાં તો માત્ર યાવત્કથિકતા જ પ્રદર્શિત કરવામાં આવી છે અને એજ કારણે ઇત્વરિકતાનો ઉપલક્ષણરૂપે સ્વીકાર કરવામાં આવ્યો નથી, એજ પ્રમાણે સ્થાપનામાં પણ કાળ સિવાયની કોઇ પણ બાબતને ભેદ કારણરૂપે સ્વીકારવામાં આવે તો એ પ્રકારની પ્રરૂપણામાં પણ ઉત્સૂત્રપ્રરુપણાનો જ પ્રસંગ પ્રાપ્ત થશે, કારણ કે સ્થાપના નિક્ષેપમાં કાળકૃત ભેદ સિવાયનો કોઇ પણ ભેદ બતાવવાને કહ્યો નથી.

सति नैवं नामश्रवणमात्रादिति नामस्थापनयोर्भेदः, यथा चन्द्रादेः प्रतिमारूप स्थापनायां लोकस्योपयाचितेच्छा पूजाप्रवृत्तिसमीहितलाभादयो दृश्यन्ते, नैव नामेन्द्रादौ, इत्यपि तयोर्भेदः। एवमन्यदपि वाच्य" मिति तदुत्सूत्रप्ररूपणाजनितानन्तसंसारजनकम्। आगमे चेदमुपलभ्यते—"तहारूवाणं अरहंताणं नामगोयसवणयाए महाफलं"। इति। तत्र नास्ति नामनिक्षेपस्य विषयः। "अरहंताणं भगवंताणं" इत्युक्त्या तस्मिन्नर्थे प्रयुक्तस्य नाम्न एव श्रवणेन महाफलसंभवात्

स्थापना के देखने से जैसे भावों में उल्लास होता है—वैसा भाव उत्पन्न होते हैं वैसा भावो में उल्लास—उस तरह का परिणाम-उस नाम मात्र के श्रमण से नहीं होता है-यही नाम और स्थापनानिक्षेप में भेद है।- देखो—जब इन्द्रकी प्रतिमा रूप से स्थापना की जाती है तो लोग उसके समक्ष विविध प्रकार की याचना करते है, उसकी पूजा करते हैं, और अपने समीहित की प्राप्ति करलेते हैं, इत्यादि सब बाते देखी जाती हैं-नाम इन्द्र आदि में इस प्रकार की बाते नहीं देखी जाती-अतः इस तरह से भी इन दोनों निक्षेपों में भेद है-तथा और भी इसी तरह से भेद के हेतु वाच्य हैं" सो ऐसा यह वक्तव्य भी आगम के विरुद्ध है और इस तरह की प्ररूपणा करना अनन्त संसार का बढाने वालाहै। कि "तथारूपवाले अरहंत भगवंतों के नाम और गोत्र के सुनने से महाफल होता है" सो यह कथन नामनिक्षेप का विषय नहीं है। "अरहंताणं भगवंताणं' क्योंकि इस उक्ति से तथारूप भावअर्हंत में प्रयुक्त नाम के

વળી કોઇ કોઇ માણસો એવું પણ કહે છે કે....."પ્રતિમારૂપ સ્થાપનાને નિહાળવાથી ભાવોનો જેવો ઉલ્લાસ અનુભવવામાં આવે છે-જેવો ઉલ્લાસ ઉત્પન્ન થાય છે, એવો ભાનોનો ઉલ્લાસ (એ પ્રકારનું મનઃપરિણામ)-તે નામ માત્રના શ્રવણથી ઉત્પન્ન થતો નથી. નામનિક્ષેપ અને સ્થાપનાનિક્ષેપ વચ્ચે આ પ્રકારનો જ તફાવત છે. જેમકે ઇન્દ્રની પ્રતિમાની સ્થાપના કરવામાં આવી હોય તો લોકો તેની સમક્ષ વિવિધ પ્રકારની યાચના કરે છે, તેની પૂજા કરે છે અને પોતાની ઇચ્છિત વસ્તુઓની પ્રાપ્તિ કરી લે છે, પરન્તુ નામ ઇન્દ્ર આદિમાં એવું જોવામાં આવતું નથી. આ રીતે તે બન્ને પ્રકારના નિક્ષેપોમાં આ પ્રકારનો ભેદ પણ રહેલો છે. એટલું જ નહીં પણ તે બન્ને નિક્ષેપો વચ્ચે રહેલો ભેદ દર્શાવતા બીજાં કેટલાક કારણોનો પણ સદ્ભાવછે.

તો આ પ્રકારનું કથન પણ આગમ વિરૂદ્ધનું કથન હોવાથી ઉત્સૂત્રકથન જ ગણાય છે. આ પ્રકારની આગમ વિરૂદ્ધની પ્રરૂપણા કરનાર વ્યકિત અનન્ત સંસારની જનક બને છે. આગમમાં આ પ્રકારનું જે કથન આવે છે કે.....

"તથારૂપ અહંત ભગવંતોના નામ અને ગોત્રનું શ્રવણ કરવાથી મહાફલની પ્રાપ્તિ થાય છે," આ કથન નામનિક્ષેપના વિષયરૂપ નથી. કારણકે "અરહંતાણં ભગ-

गोपालदारकादौ प्रयुक्तस्य नाम्नः श्रवणेन तु गोपालदारकाद्यर्थस्यैव बोधादात्मपरिणामशुद्धिहेतुत्वं तस्य नास्तीति। नामनिक्षेपस्थले भगवतोऽर्हतः स्मरणासंभवः, तस्य भावशून्यत्वात्, अत्र तु नामगोत्राभ्यां भगवदर्हतः सम्बन्धं षष्ठ्यन्तपदप्रयोगादेव दर्शयता भगवता नामनिक्षेपो न विवक्षितः। भावजिनबोध-

ही श्रवण से महाफल होना बतलाया गया है। केवल नाम श्रवण से नहीं। नहीं तो गोपालदारक में प्रयुक्त अर्हंत नाम के श्रवण से भी महाफल की प्राप्ति हो जानी चाहिये। वहां तो ऐसा होता नहीं है। केवल उस नाम से गोपालदारकरूप अर्थ की हि प्रतीति होती है। आत्मपरिणामों की शुद्धिरूप महाफल उससे प्राप्त नहीं होता है। अतः यह मानना चाहिये कि भावरूप अर्हंत नाम के ही श्रवण से जीवों को आत्मपरिणामों की शुद्धिरूप फल प्राप्त होता है। क्यों कि वही उसका हेतु है। साधारण नामनिक्षेप में यह हेतुता नहीं आती है। यदि कोई ऐसा कहे-कि अर्हंत नामनिक्षेप भले ही आत्मपरिणामों की शुद्धि का हेतु न हो तो न सही परन्तु उसके श्रवण से भगवान् अर्हंत का तो स्मरण हो जाता है सो ऐसा कहना भी उचित नहीं है क्यों कि नामनिक्षेप स्थल में भगवान् अर्हंत का, उससे भावनिक्षेप से शून्य होने के कारण स्मरण हो आना असं-

वंताणं" इत्यादि कथन द्वारा એ બતાવવામાં આવ્યુ છે કે તથારૂપ ભાવરૂપ અર્હંતમાં પ્રયુક્ત નામના જ શ્રવણથી મહાફલની પ્રાપ્તિ થાય છે–કેવળ નામ નામના જ શ્રવણથી મહાફલની પ્રાપ્તિ થતી નથી. નહીં તો કોઇ પણ વ્યકિતને માટે (દાખલા તરીકે ગોવાળના પુત્રને માટે) 'અર્હંત' આ નામનો ઉપયોગ કરવામાં આવે, તો તેના નામનું શ્રવણ કરવાથી પણ મહાફલની પ્રાપ્તિ થઇ જવી જોઇએ! પણ અહીં તો એવું બનતું નથી. તે નામદ્વારા માત્ર તે ગોવાળપુત્ર રૂપ અર્થની જ પ્રતીતિ થાય છે. આત્મપરિણામોની શુદ્ધિરૂપ મહાફળની પ્રાપ્તિ તેના નામ શ્રવણથી થતી નથી. તેથી એવું માનવું જોઇએ કે ભાવરૂપ અર્હંત નામના જ શ્રવણથી જીવોને આત્મપરિણામોની શુદ્ધિરૂપ ફળની પ્રાપ્તિ થાય છે, કારણ કે એજ તેનો હેતુ છે. સાધારણ નામનિક્ષેપમાં આ હેતુતા સંભવી શકતી નથી.

વળી કોઇ માણસ અહીં એવી દલીલ કરે કે અર્હંત નામનિક્ષેપ ભલે આત્મપરિણામોની શુદ્ધિમાં કારણભૂત ન થતો હોય, પણ તેના શ્રવણથી ભગવાન અર્હંતના નામનું સ્મરણ તો થઇ જાય છે, એટલું તો આપે માનવું જ પડશે।

તો આ પ્રમાણે કહેવું તે પણ ઉચિત નથી, કારણ કે ભાવનિક્ષેપથી રહિત એવા નામનિક્ષેપથી અર્હંત ભગવાનનું સ્મરણ થવાની વાત અસંભવિત છે.

कस्य नाम्न एव श्रवणेन महाफलसंभवः। एवं स्थापनापि भावरूपार्थशून्या, स्थापनया भावरूपार्थस्य नास्ति कोऽपि सम्बन्धः। भावजिनशरीरवर्तिनी या ऽऽकृतिरासीद् तस्या आश्रयाश्रयिभावरूपसम्बन्धो भावजिनेन सह तदानीं भावोल्लासोऽपि कस्यचित् संजातः, तथा भक्त्या तामाकृतिं स्मरतो जनस्य भावोल्लासः संभवतु, तदाऽऽकृतेर्भावजिनेन संबन्धात्, परंतु--स्थापनाया आश्रयाश्रयिभावसम्बन्धो नास्तिभावजिनेन सह। भावजिनात्मनस्तत्राऽऽहवनं स्थापनं तु जिनाज्ञाबाह्यं

भव है। इसलिये "तहारूवाणं अरहंताणं" इत्यादि पाठ में नाम और गोत्र इन दोनों के साथ भगवान् अर्हंत के संबन्ध को षष्ठ्यन्तपद के प्रयोग से प्रकट करनेवाले सूत्रकार ने नामनिक्षेप की विवक्षा नहीं की है। किन्तु भावनिक्षेप जिनके बोधक नाम की विवक्षा की है। क्योंकि उसी नाम के श्रवण से श्रोता को महाफल की प्राप्ति होना संभवित है। इसी तरह से स्थापना भी भावरूप अर्थ से शून्य होती है। क्यों कि उसका भावनिक्षेपरूप अर्थ के साथ कोई संबन्ध ही नहीं है। यदि कहा जावे कि पहिले भाव जिनके अस्तित्व काल में जो उनके शरीर की आकृति थी—वह आकृति ही स्थापना निक्षेप में विद्यमान रहती है—इसलिये उससे आश्रयाश्रयी भावरूप संबन्ध का बोध हो जाता है—सो यह कथन भी ठीक नही है—क्योंकि स्थापनानिक्षेप में आश्रयी ही नहीं हैं तब उससे भावजिन के साथ आश्रयाश्रयी भावरूप संबन्ध ज्ञात कैसे हो सकता है? यह तो भावजिनके साथ वे जब थे तब

તેથી "तहारूवाणं अरहंताणं" ઇત્યાદિ પાઠમાં નામ અને ગોત્ર એ બન્નેની સાથે ભગવાન અર્હંતના સંબંધને છઠ્ઠી વિભક્તિના પદના પ્રયોગ દ્વારા પ્રકટ કરનાર સૂત્રકારે નામનિક્ષેપની વિવક્ષા કરી નથી, પરન્તુ ભાવનિક્ષેપ જિનના બોધક એવા નામની વિવક્ષા કરી છે. કારણ કે એજ નામના શ્રવણથી શ્રોતાને મહાફલની પ્રાપ્તિ થવાનું સંભવી શકે છે. એજ પ્રમાણે સ્થાપના પણ ભાવરૂપ અર્થથી વિહીન જ હોય છે, કારણ કે ભાવનિક્ષેપરૂપ અર્થની સાથે તેનો કોઈ સંબંધ જ હોતો નથી.

જો અહીં એવી દલીલ કરવામાં આવે કે પહેલાં ભાવજિનના અસ્તિત્વકાળમાં જે તેમના શરીરની આકૃતિ હતી, એ આકૃતિ જ સ્થાપનાનિક્ષેપમાં વિદ્યમાન રહે છે, તેથી તેના દ્વારા આશ્રયાશ્રયી ભાવરૂપ સંબંધનો બોધ થઈ જાય છે, તો એ પ્રકારની માન્યતા પણ ઉચિત નથી, કારણ કે વર્તમાન કાળે સ્થાપના નિક્ષેપમાં જો આશ્રયીનો જ સદ્ભાવ ન હોય તો તેના દ્વારા ભાવજિનની સાથે આશ્રયાશ્રયી ભાવરૂપ સંબંધનો બોધ જ કેવી રીતે થઈ શકે! ભાવજિનની સાથે જ્યારે તે

प्रवचनविरुद्धं कर्तुमशक्यं, कथं तर्हि-भावजिनसम्बन्धाभावे प्रतिमा भावजिनं तद्गुणं वा स्मारयितुं शक्ता भवेत्। सर्वथा कुप्रावचनिकद्रव्यावश्यकवत् प्रतिमापूजनं कुर्वन्तःकारयन्तश्च मिथ्यात्वं प्राप्नुवन्ति न तु सम्यक्त्वमिति। इति स्थापनावश्यकम् ॥सू० १२॥

था-। हां यह हो सकता है कि जिस प्रकार भावजिन का दर्शन करनेवाले किसी व्यक्ति को भावोल्लास हो आता है, उसी तरह भक्ति से उनकी उस आकृति का स्मरण करनेवाले जन को भावोल्लास हो आवे-क्यों कि उस आकृति का भावजिन के साथ संबन्ध है यदि भावजिनके साथ उस आकृति को संबन्ध नहीं होवे तो फिर प्रतिमा भावजनक और उनके गुणों का स्मरण कराने में समर्थ कैसे हो सकती है? परन्तु स्थापना का भावजिन के साथ आश्रयाश्रयी भावरूप संबंध तो कोई है नहीं—कि जिस से उससे इसका बोध हो जावे। भावजिन की आत्मा का उसमें आह्वान करना, स्थापन करना यह सब तो जिनाज्ञा से बिलकुल बाहिर की बात है। ऐसी प्रवचन विरुद्ध बात को करना अशक्य है इसलिये सर्वथा कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यक की तरह प्रतिमा पूजन करने और करानेवाले मिथ्यादृष्टिपने को प्राप्त होते हैं-सम्यक्त्व को नहीं। इस तरह स्थापनावश्यक का यह स्वरूप है। भावार्थ इसका स्पष्ट है। ॥सूत्र १२॥

આકૃતિ વિદ્યમાન હતી ત્યારે જ આ પ્રકારનો સંબંધ અસ્તિત્વ ધરાવતો હતો. હા, એવું સંભવી શકે છે કે જે પ્રકારે ભાવજિનના દર્શન કરનાર કોઇ વ્યક્તિમાં ભાવોલ્લાસનો ઉભરો આવી જાય છે, એજ પ્રમાણે ભક્તિભાવપૂર્વક તે આકૃતિનું સ્મરણ કરનાર વ્યક્તિમાં પણ ભાવોલ્લાસનો ઉભરો આવી જાય ખરો, કારણ કે આકૃતિનો ભાવજિનની સાથે સંબંધ છે. જો ભાવજિનની સાથે તે આકૃતિને સંબંધ ન હોય, તો તે પ્રતિમા ભાવજનક અને અનેક ગુણોનું સ્મરણ કરાવવાને સમર્થ કેવી રીતે બની શકે! પરન્તુ સ્થાપનાનો ભાવજિનની સાથે આશ્રયાશ્રયી ભાવરૂપ કોઇ સંબંધ તો છે જ નહીં કે જેના દ્વારા તેનો બોધ થઇ જાય, ભાવજિનના આત્માનું તેમાં આવાહન કરવું-સ્થાપન કરવુ, એ તો જિનાજ્ઞાની વિરૂદ્ધનું કૃત્ય ગણાય. એવી પ્રવચનવિરૂદ્ધની વાત કરવી જોઇએ નહીં. તેથી સર્વથા કુપ્રાવચનિક દ્રવ્યાવશ્યકની જેમ પ્રતિમાપૂજન કરનાર અને કરાવનાર મિથ્યાદૃષ્ટિયુક્ત બની જાય છે અને સમ્યક્ત્વથી રહિત જ રહે છે, સ્થાપનાવશ્યકનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ છે. તેનો ભાવાર્થ સ્પષ્ટ હોવાથી વિશેષ સ્પષ્ટીકરણની જરૂર રહેતી નથી. ॥સૂ૦ ૧૨॥

इदानीं द्रव्यावश्यकं निरूपयति—

मूलम्—से किं तं दव्वावस्सयं ? दव्वावस्सयं दुविहं पण्णत्तं तं जहा—आगमओ य नो आगमओ य ॥ सू० १३ ॥

छाया-अथ किं तद् द्रव्यावश्यकम् ? द्रव्यावश्यकं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—आगमतश्च नो आगमतश्च ॥ सू० १३ ॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि—

शिष्यःपृच्छति—अथ किं तद् द्रव्यावश्यकम् ? उत्तरयति-'दव्वावस्सयं' इत्यादि । द्रव्यावश्यकम्—द्रवति=गच्छति तांस्तान् पर्यायानिति द्रव्यम्—विवक्षितयोरतीतभविष्यद् भावयोःकारणम्, अनुभूतविवक्षितभावमनुभविष्यद्विवक्षितभावं वा वस्त्वित्यर्थः । द्रव्यलक्षणं च सामान्यत इदं बोध्यम्।

अब सूत्रकार द्रव्यावश्यक का निरूपण करते हैं—

"से किं तं दव्वावस्सयं" इत्यादि । ॥सूत्र १३॥

शब्दार्थ—(अथ) शिष्य पूछता है कि हे भदंत ! (किं तं दव्वावस्सयं) पूर्व प्रक्रान्त (पूर्व प्रस्तुत विषय) द्रव्यावश्यक का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—(दव्वावस्सयं दुविहं पण्णत्तं) द्रव्यावश्यक दो प्रकार का है जो उन २ पर्यायों को प्राप्त करता है उसका नाम द्रव्य है अर्थात् जो विवक्षित अतीत अनागत भाव का कारण हो वह द्रव्यनिक्षेप है । जैसे राजगद्दी से पृथक् किये हुए राजा को नरेश कहना । तथा जो आगे राजा होनेवाला है वर्तमानमें वह राजा की पर्याय में नहीं है उसे अभी से राजा कहना यह भविष्यत् कालीन पर्याय की अपेक्षा द्रव्यनिक्षेप है । जैसे राजा का पुत्र

હવે સૂત્રકાર દ્રવ્યાવશ્યકનું નિરૂપણ કરે છે—

"से किं तं दव्वावस्सयं" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે....

"से किं तं दव्वावस्सयं ?" હે ભગવન્! પૂર્વ પ્રક્રાન્ત (પૂર્વ પ્રસ્તુત વિષય) દ્રવ્યાવશ્યકનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર—(दव्वावस्सयं दुविहं पण्णत्तं) દ્રવ્યાવશ્યક બે પ્રકારનો કહ્યો છે. તે તે પર્યાયોને જે પ્રાપ્ત કરતું રહે છે તેનું નામ દ્રવ્ય છે. એટલે કે જે વિવક્ષિત અતીત (ભૂત કાલિન), અનાગત (ભવિષ્યકાલિન) ભાવનું કારણ હોય છે, તે દ્રવ્યનિક્ષેપ છે. જેમકે રાજગાદીનો જેની પાસે ત્યાગ કરાવવામાં આવ્યો છે તેને નરેશ કહેવો તે ભૂતકાલિન પર્યાયની અપેક્ષાએ દ્રવ્યનિક્ષેપ છે, તથા વર્તમાન કાળે જે રાજા નથી. પણ ભવિષ્યમાં રાજા બનવાનો છે તેને અત્યારથી જ રાજા કહેવો તે ભાવિષ્યકાલિન પર્યાયની અપેક્ષાએ દ્રવ્યનિક્ષેપ છે. જેમ કે રાજાના પુત્રને રાજા કહે

'भूतस्य भाविनो वा भावस्य हि कारणं तु यल्लोके।
तद् द्रव्यं तत्त्वज्ञैः सचेतनाचेतनं कथितम्। इति।

व्याख्या—लोके हि भूतस्य=अतीतस्य भाविनः=भविष्यतो वा भावस्य तु यत्कारणं भवति, तत् तत्त्वज्ञैः द्रव्यं-कथितम्। तद्द्रव्यं सचेतनाचेतनं-सचेतनं=पुरुषादिकम्, अचेतनं=काष्ठादिकं च भवति। अयं भावः—यः पूर्वं स्वर्गादिष्विन्द्रादिर्भूत्वा इदानीं मनुष्यादित्वेन परिणतः स जीवोऽतीतस्य इन्द्रादिपर्यायस्य कारणत्वात् साम्प्रतमपि द्रव्यत इन्द्रादिरुच्यते। यथा-अमात्यादि पदात् प्रच्युतोऽपि अमात्यादिरुच्यते। अपि च अग्रेऽपि य इन्द्रादित्वेनोत्पत्स्यते, स इदानीमपि भविष्यदिन्द्रादिपदपर्यायकारण-

---

राजा कहा जाता है द्रव्य निक्षेप में विवक्षितपर्याय को जो अनुभवित कर चुकी है ऐसी वस्तु तथा विवक्षित पर्याय को जो भविष्यत्काल में अनुभव करेगा ऐसी वस्तु के विषयरूप से परिगणित हुई है यही बात सामान्यरूप से कथित इस द्रव्य के लक्षण में इस प्रकार से जानने के लिये कही गई है—लोक में तत्त्वज्ञों ने भूतपर्याय का अथवा भविष्यत् पर्याय का जो कारण होता है वह द्रव्य है। ऐसा कहा हैं। वह द्रव्य सचेतन भी है और अचेतन भी हैं। इस का भाव इस प्रकार से जानना चाहिये-जैसे कोई जीव पहिले स्वर्ग आदि में इन्द्र आदि की पर्याय में था और वहां से चव कर मनुष्य पर्याय में आगया। फिर भी उसे अतीत इन्द्रादि पर्याय का कारण होने से मनुष्य पर्याय में भी आमात्यपद से रहित हुए व्यक्तिको अमात्य कहने की तरह इन्द्र कहना यह द्रव्य निक्षेप है। इसी तरह जो जीव भविष्य में

वामां आवे छे. द्रव्यनिक्षेपमां विवक्षित (अमुक) पर्यायने जे अनुभवित करी चुकी छे એવી વસ્તુ તથા વિવક્ષિત પર્યાયનો જે ભવિષ્યકાળમાં અનુભવ કરશે. એવી વસ્તુ તેના વિષયરૂપે પરિગણિત થઇ છે. એજ વાત સામાન્યરૂપે કથિત દ્રવ્યના લક્ષણમાં આ પ્રકારે જાણવાને માટે બતાવવામાં આવી છે-તત્ત્વજ્ઞોએ એવું કહ્યું છે કે લોકમાં ભૂતપર્યાયનું અથવા ભવિષ્યની પર્યાયનું જે કારણ છે, તેનું નામ દ્રવ્ય છે. તે દ્રવ્ય સચેતન પણ છે અને અચેતન પણ છે. તેનો ભાવાર્થ આ પ્રમાણે સમજવો.

જેમકે કોઇ એક જીવ પહેલાં સ્વર્ગમાં ઇન્દ્રની પર્યાયે ઉત્પન્ન થયો હતો. ત્યારબાદ તે ભવનું આયુષ્ય પૂરું થતાં, ત્યાંથી ચ્યવીને તે મનુષ્યલોકમાં મનુષ્યની પર્યાયે ઉત્પન્ન થઇ ગયો. જેમ અમાત્યના પદથી ચ્યુત થયેલી વ્યક્તિને અમાત્ય કહેવામાં આવે છે. એમ મનુષ્યની પર્યાયે ઉત્પન્ન થયેલા તે મનુષ્યને તેની ભૂતકાલિન ઇન્દ્રરૂપ પર્યાયને કારણે ઇન્દ્ર કહેવો, તેનું નામ જ દ્રવ્યનિક્ષેપ છે. જેમ

त्वाद् द्रव्यत इन्द्रादिरभिधीयते, यथा—राजकुमारोऽपि राजा प्रोच्यते भाविराज पर्यायप्राप्तिहेतुत्वात्। एवमचेतनस्य काष्ठादेरपि भूतभविष्यत्पर्यायकारणत्वेन द्रव्यता भावनीयेत्यर्थः।

एवं द्रव्यरूपमावश्यकम्। तद् द्रव्यावश्यकं द्विविधं प्रज्ञप्तम्? तद्यथा—आगमतश्च—आगममाश्रित्य, नो आगमतश्च-नो आगममाश्रित्य। च शब्दौ द्वयोरपि स्वस्वविषये प्राधान्यख्यापनार्थौ ॥सू० १३॥

तत्र—आगमतो द्रव्यावश्यकं निरूपयति—

मूलम्—से किं तं आगमओ दव्वावस्सयं? आगमओ दव्वावस्सयं जस्स णं आवस्सएत्ति पदं सिक्खियं ठियं जियं मियं परिजियं नामसमं घोससमं अहीणक्खरं अणच्चक्खरं अव्वाइद्धक्खरं अक्खलियं अमिलियं अवच्चामेलियं पडिपुण्णं पडिपुण्णघोसं कंठोट्ठविप्प-

---

इन्द्र की पर्याय से उत्पन्न होनेवाला हो उसे भविष्यत्कालीन इन्द्र पर्याय का कारण होने के कारण राजकुमार को राजा कहने की तरह इन्द्र कहना यह भी द्रव्य निक्षेप का विषय है। यद्यपि राजकुमार वर्तमान में राजा नहीं है आगे राजा होगा-परन्तु जो उस अवस्था में भी वह राजा कहा जाता है वह भाविराज पर्याय की प्राप्ति का हेतु होने से ही कहा जाता है। इसी तरह से अचेतनकाष्ठ आदि में भी भूत. भविष्यत् पर्याय की कारणतालेकर द्रव्यता घटित कर लेनी चाहिये। इस तरह द्रव्यरूप आवश्यक का नाम द्रव्यावश्यक है। यह द्रव्यावश्यक आगम को आश्रित करके और नो आगम को आश्रित करके दो प्रकार का होता हैं। भावार्थ स्पष्ट है—सूत्र १३।

ભવિષ્યકાળમાં રાજા બનવાનો હોય એવા રાજકુમારને 'રાજા' કહેવામાં આવે છે, એજ પ્રમાણે જે જીવ ભવિષ્યમાં ઇન્દ્રની પર્યાયે ઉત્પન્ન થવાનો હોય તેને ભવિષ્યકાલિન ઇન્દ્ર પર્યાયનું કારણ હોવાને લીધે ઇન્દ્ર કહેવો તે પણ દ્રવ્યનિક્ષેપનો વિષય છે જો કે રાજકુમાર અત્યારે રાજા નથી, પરન્તુ ભવિષ્યમાં રાજા થવાનો છે, છતાં પણ તેને રાજકુમારની અવસ્થામાં પણ જે રાજા કહેવામાં આવે છે તે ભાવિ રાજપર્યાયની પ્રાપ્તિરૂપ કારણની અપેક્ષાએ જ કહેવામાં આવે છે. એજ પ્રમાણે અચેતન કાષ્ઠ આદિમાં પણ ભૂત-ભવિષ્ય પર્યાયની કારણતાની અપેક્ષાએ દ્રવ્યતા ઘટિત કરી લેવી જોઇએ. આ પ્રકારે દ્રવ્યરૂપ આવશ્યકનું નામ દ્રવ્યાવશ્યક છે તે દ્રવ્યાવશ્યક બે પ્રકારનો છે-(૧) આગમની અપેક્ષાએ અને નો આગમની અપેક્ષાથી બે પ્રકારના સમજવા. ભાવાર્થ સ્પષ્ટ છે. ॥ સૂ૦ ૧૩ ॥

मुक्कं गुरुवायणोवगयं, से णं तत्थ वायणाए पुच्छणाए परियट्टणाए धम्मकहाए नो अणुप्पेहाए, कम्हा ? 'अणुवओगो दव्व' मिति कट्टु।सू.१४।

छाया--अथ किं तद् आगमतो द्रव्यावश्यकम् ? आगमतो द्रव्यावश्यकं यस्य खलु आवश्यकेति पदं शिक्षितं स्थितं जितं मितं परिजितं नामसमं घोषसमम् अहीनाक्षरम् अनत्यक्षरम् अव्याविद्धाक्षरम् अस्खलितम् अमिलितम् अव्यत्याम्रेडितं परिपूर्णं परिपूर्णघोषं कण्ठोष्ठविप्रमुक्तं गुरुवाचनोपगतम् । स खलु तत्र वाचनया प्रच्छनया परिवर्तनया धर्मकथया नो अनुप्रेक्षया, कस्मात् ? अनुपयोगो द्रव्यमिति कृत्वा ॥सू० १४॥

टीका—शिष्यः पृच्छति-'से किं तं आगमओ दव्वावस्सयं' इति । अथ किं तद् आगमतो द्रव्यावश्यकम् ? आगममाश्रित्य द्रव्यावश्यकं किम् ? इति प्रष्टुराशयः उत्तरयति-'आगमओ दव्वावस्सयं' इत्यादि । आगमतो द्रव्यावश्यकम्-एवं विज्ञेयम्-यस्य खलु साधो -आवश्यकमिति पदम्-सर्वज्ञप्रणीतमावश्यकाभिधेयं शास्त्रं शिक्षितम्-विनयपूर्वकं गुरुमुखाद् गृहीतम् । स्थितं स्मृतिपथे

आगम की अपेक्षा द्रव्यावश्यक का स्वरूप सूत्रकार निरूपित करते हैं—

"से किं तं" इत्यादि ॥सूत्र १४॥

शब्दार्थ-(से) शिष्य पूछता है कि हे भदंत ! (किं तं आगमओ दव्वावस्सयं) आगम की अपेक्षा करके द्रव्यावश्यक का क्या स्वरूप है ? अर्थात् द्रव्यावश्यक के जो दो भेद कहे गये हैं उनमें से पहिले भेद का क्या स्वरूप है ? उत्तर—(आगमओ दव्वावस्सयं) आगम की अपेक्षा लेकर द्रव्यावश्यक का स्वरूप इस प्रकार से है-(जस्स णं आवस्सएत्ति पदं सिक्खियं) जिस साधुने आवश्यक शास्त्र को विनयपूर्वक गुरुके मुख से सीखा है (ठियं) उसे अच्छी

હવે સૂત્રકાર આગમની અપેક્ષાએ દ્રવ્યાવશ્યકના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે.

'से किं तं" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(से) શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે (किं तं आगमओ दव्वावस्सयं ?) આગમની અપેક્ષાએ જે દ્રવ્યાવશ્યક કહ્યો છે તેનું કેવું સ્વરૂપ છે ? એટલે કે દ્રવ્યાવશ્યકના જે બે ભેદ બતાવવામાં આવ્યા છે, તેમાંથી જે પહેલો ભેદ બતાવ્યો છે તેનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર—(आगमओ दव्वावस्सयं) આગમની અપેક્ષાએ દ્રવ્યાવશ્યકનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે-(जस्सणं आवस्सएत्ति पदं सिक्खियं) જે સાધુએ આવશ્યકશાસ્ત્રનું ગુરુની સમક્ષ વિનયપૂર્વક અધ્યયન કર્યું છે, (ठियं) તેને સારામાં સારી રીતે પોતાના

विद्यमानम्, जितं–शब्दतोऽर्थतश्च परिचितम्–परिज्ञातम्। मितं–विज्ञातश्लोकपद-वर्णादि संख्यामानम् परिजितं-परि=समन्तात् सर्वप्रकारैर्जितं–परिजितम्, आनु-पूर्व्या, अनानुपूर्व्या च परावर्तितम्, नामसमम्–नाम्ना समं यथा स्वनामं न विस्मृतं भवति, तथा यत् कदापि विस्मृतं न भवति, तन्नामसमम्, घोषसमं=घोषा उदा-त्तादयस्तैः समम्, यथा गुरुणा घोषा उक्तास्तथा यत्र शिष्येणापि समुच्चार्यन्ते तद् घोषसमम्। अहीनाक्षरम् एकेनाप्यक्षरेण अहीनम्। अनत्यक्षरम्–एकद्व्यादि-भिरक्षरैरधिकमत्यक्षरम्, न अत्यक्षरं यत्र तदनत्यक्षरम्–अधिकाक्षररहितमित्यर्थः, अव्याविद्धाक्षरम्-व्याविद्धानि=विपर्यस्तरत्नमालागतरत्नानीव विपर्यस्तानि अक्षराणि यस्मिंस्तद् व्याविद्धाक्षरम्, न तथा अव्याविद्धाक्षरम्=व्याविद्धाक्षरत्वदोष-

---

तरह से अपने स्मृति पथ में उतारा है, (जियं) शब्द और अर्थ की अपेक्षा लेकर जिसने उसे अच्छी तरह से जान लिया है (मियं) जिसके श्लोकों की पदों की और वर्णों की संख्या का प्रमाण जिसे भली प्रकार अभ्यास किया हुआ है (परिजियं) आनुपूर्वी एवं अनानुपूर्वी से जिसने उसे सब तरफ से और सब प्रकार से आवर्तित किया है, (नामसमं) अपने नाम के समान जो कभी भी उसे अपने स्मृतिपथ से दूर नहीं करता है (घोससमं) जिस प्रकार से गुरु महाराज उदात्त आदि घोष स्वरों का उच्चारण किया है, उसी प्रकार से जो उसके घोषादि स्वरों का चारुरूप से उच्चारण करता है, तथा-(अहीणक्खरं) एकभी अक्षर की हीनता से रहित उसे जिसने सीखा है (अणच्चक्खरं) बोलते समय–पाठ करते समय जो अपनी तरफ से बोलता है–अर्थात् जैसा उसमें लिखा है वैसा ही उसे उच्चारण करता है (अव्वाइद्धक्खरं) जिसे

સ્મૃતિપટલમાં ઉતાર્યું છે, (जियं) શબ્દ અને અર્થની અપેક્ષાએ જેને તેણે સારી રીતે જાણી લીધેલ છે, (मियं) જેના શ્લોકોની, પદોની અને વર્ણોની સંખ્યાનું પ્રમાણ જેણે સારી રીતે સમજી લીધું છે, (परिजियं) આનુપૂર્વી અને અનાનુપૂર્વી પૂર્વક જેણે તેને બધી તરફથી અને બધા પ્રકારે પરાવર્તિત કરી લીધું છે, (नामसमं) પોતાના નામની જેમ જે તેને કદી પણ પોતાના સ્મૃતિપટમાંથી દૂર કરતો નથી, (घोससमं) જે રીતે ગુરૂ મહારાજે ઉદાત્ત આદિ ઘોષસ્વરોનું ઉચ્ચારણ કર્યું હોય, એજ પ્રકારે તેના ઘોષાદિ સ્વરોનું જે સુંદર રીતે ઉચ્ચારણ કરતો હોય, (अहीणक्खरं) એક પણ અક્ષરની હીનતા ન રહે એવી રીતે જેણે તેનું અધ્યયન કર્યું છે, (अणच्चक्खरं) બોલતી વખતે–પાઠ કરતા વખતે જે પોતાના તરફથી એક પણ અક્ષર તેમાં ઉમેરીને બોલતો નથી–એટલે કે તેમાં જે પ્રમાણે લખ્યું હોય એ પ્રમાણે જ તેનું ઉચ્ચારણ કરે છે.

रहितम्, अक्षरव्यतिक्रमरहितमित्यर्थः, अस्खलितम्—शास्त्रपाठसमये मध्ये मध्ये विरम्य विरम्य तदुच्चारणम् तत्स्खलितरूपोच्चारणदोषस्तेन रहितमित्यर्थः। अमिलितं=मिलितदोषरहितम्, यत् शास्त्रान्तरवर्तिभिः पदैरमिश्रितं, यथा—सामायिकसूत्रे दशवैकालिकोत्तराध्ययनादिपदानि न क्षिपति। अथवा—परावर्तमानस्य यत्र पदादि विच्छेदो न प्रतीयते तन्मिलितं, न तथा, अमिलितम्। अव्यत्याम्रेडितम्—एकस्मिन्नेव शास्त्रेऽन्यान्यस्थाननिबद्धानि एकार्थानि सूत्राणि एकत्र स्थाने समानीय यत्पठितं तद् अव्यत्याम्रेडितम्, अथवा—आचाराङ्गादिसूत्रमध्ये स्वबुद्धि-

---

उसने इस तरह से सीखा है कि जिस से उसके उच्चारण में अक्षरों का व्यतिक्रम नहीं हो सकता हो, (अक्खलियं) पाठ करते समय जो बीच २ में ठहर कर उसका उच्चारण नहीं करता है किन्तु धाराप्रवाह के समान सावधि जो उसे बोलता चला जाता है, (अमिलियं) शास्त्रान्तरवर्ती पदों को मिलाकर जो उसे नहीं बोलता है—जैसे सामायिक सूत्र में दशवैकालिक, उत्तराध्ययन के सूत्रों को बोलना—यह मिश्रित दोष हैं—इस दोष से रहितकर सामायिक पाठ का बोलना यह अमिश्रित दोष हैं। अथवा पाठ करते समय जहां पदादि का विच्छेद प्रतीत नहीं होता है, उसका नाम मिलित है, इसरूप से नहीं बोलना इस का नाम अमिलित है—अर्थात् इस तरह से आवश्यकसूत्र का उच्चारण करता है कि जिसके उच्चारण में पदादिका विच्छेद अच्छी तरह से लक्षित होता रहता है। (अवच्चामेलियं) एक ही शास्त्र में अन्य २ स्थानों पर लिखे गये एकार्थक सूत्रों को एक स्थान में लेकर उस शास्त्र का पढना इसका नाम

(अव्वाइद्धक्खरं) જેનું તેણે એવી રીતે અધ્યયન કર્યું છે કે તેના ઉચ્ચારણ વખતે અક્ષરોનો વ્યતિક્રમ થઇ જતો નથી, (अक्खलियं) જેનો પાઠ કરતી વખતે વચ્ચે વચ્ચે અટકીને તેનું ઉચ્ચારણ કરતો નથી પણ પાણીના પ્રવાહની જેમ અસ્ખલિતરૂપે જે તેનું ઉચ્ચારણ કર્યે જાય છે, (अमीलियं) અન્ય શાસ્ત્રવર્તી પદોને તેની સાથે સેળભેળ કરીને જે તેનું ઉચ્ચારણ કરતો નથી-જેમકે સામાયિક સૂત્રમાં દશવૈકાલિક કે ઉત્તરાધ્યયનના સૂત્રોનું ઉચ્ચારણ કરવું તેનું નામ મિશ્રિત દોષ છે, આ દોષો ન થાય એવી રીતે સામયિક પાઠનું ઉચ્ચારણ થવું જોઇએ. અથવા પાઠ કરતી વખતે જ્યાં પદાદિનો વિચ્છેદ થતો નથી, તેનું નામ મિલિત છે અને તે પ્રકારે ઉચ્ચારણ ન કરવું તેનું નામ અમિલિત છે. એટલે કે તે આવશ્યકસૂત્રના પાઠનું એવી રીતે ઉચ્ચારણ કરે છે કે જેના ઉચ્ચારણમાં પદાદિનો વિચ્છેદ સારી રીતે લક્ષિત થતો રહે છે, (अवच्चामेलियं) એક જ શાસ્ત્રમાં જુદા જુદા સ્થાનો પર લખવામાં આવેલા એકાર્થક સૂત્રોને એક જ સ્થાનમાં લઇને તે શાસ્ત્રનો પાઠ કરવો

कल्पितानि तत्सदृशानि सूत्राणि कृत्वा प्रक्षिप्य पठितं व्यत्याम्रेडितम्। यद्वा अस्थानविरतिकं व्यत्याम्रेडितम्, न तथा, अव्यत्याम्रेडितदोषरहितमित्यर्थः। परिपूर्णम्-सूत्रतो बिन्दुमात्रादिभिरूनम्, अर्थतोऽध्याहाराकाङ्क्षादिरहितं च। परिपूर्णघोषम् उदात्तादिघोषयुक्तम् ननु 'घोससमम्' इत्युक्त्वा पुनःपरिपूर्णघोषमिति कथनं पुनरुक्तिदोषग्रस्तम्, इति चेदुच्यते, घोससमम्' इति शिक्षाकालमाश्रित्योक्तम्, 'परिपूर्णघोषम्' इति तु परावर्त्तनाकालमाश्रित्योक्तम्, अतो नास्ति पुनरु-

व्यत्याम्रेडित है अथवा आचारांग आदि सूत्र के बीच में अपनी बुद्धि से बनाकर उसके जैसे सूत्रों को प्रक्षिप्त करके पढना इसका नाम भी व्यत्याम्रेडित है, अथवा बोलते समय जहां विराम लेना चाहिये वहां विराम नही लेना और नहीं लेना चाहिये वहां विराम लेना इसका नाम भी व्यत्याम्रेडित है। इस प्रकार का व्यत्याम्रेडित दोष जिसके द्वारा उस आवश्यक शास्त्र के अध्ययन करने में नहीं लगा गया है अर्थात् इस दोष को वर्जित करके जिसने आवश्यकशास्त्र को सीखा है, (पडिपुण्णं) सूत्र की अपेक्षा बिन्दु मात्र आदि से अन्यून एवं अर्थ की अपेक्षा अध्याहार एवं आकांक्षा आदि से रहितरूप से उस आवश्यकशास्त्र का जिसने भली प्रकार से ज्ञान प्राप्त कर लिया है-(पडिपुण्णघोसं) उदात्त अनुदात्तस्वरित घोषों का यथास्थान ज्ञान प्राप्तकर जिसने उस शास्त्र का अच्छी रीति से परावर्तन किया है। "घोससमं और परिपूर्णघोषं" इन दोनों विशेषणों में पुनरुक्तिदोषपना लिये नही मानना चाहिये कि पहिला विशेषण शिक्षा काल को आश्रित करके कहा गया है और यह दूसरा विशेषण परावर्तन

તેનું નામ "व्यत्याम्रेडित छे. अथवा आचारांग आदि सूत्रनो पाठ करती वખते વચ્ચે વચ્ચે પોતાની બુદ્ધિથી રચેલાં તેના જેવાં જ સૂત્રોનું ઉચ્ચારણ કરવું તેનું નામ પણ व्यत्याम्रेडित छे अथवा બોલતી વખતે જ્યાં વિરામ લેવો અને વિરામ ન લેવાનો હોય ત્યાં વિરામ લેવો તેનું નામ પણ व्यत्याम्रेडित छे. આ પ્રકારના व्यत्याम्रेडित દોષનું જેના દ્વારા તે आवश्यक शास्त्रनुं अध्ययन करती વખતે સેવન કરાયું નથી, એટલે કે આ દોષના ત્યાગપૂર્વક જેણે આવશ્યકશાસ્ત્ર અધ્યયન કર્યું છે. (पडिपुण्णं) સૂત્રની અપેક્ષાએ બિન્દુ માત્ર આદિથી અન્યૂન અને અર્થની અપેક્ષાએ અધ્યાહાર અને આકાંક્ષા આદિથી રહિતરૂપે તે आवश्यकशास्त्रनुं જેણે સારી રીતે જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરી લીધું છે.

(पडिपुण्णघोसं) ઉદાત્ત આદિ ઘોષોનું યથાસ્થાન જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરીને જેણે તે શાસ્ત્રનું સારી રીતે પરાવર્તન કર્યું છે, 'घोससमं' અને "पडिपुण्णघोसं" આ બન્ને વિશેષણોમાં પુનરુક્ત દોષ એ કારણે માનવો જોઇએ નહીં કે પહેલું વિશેષણ શિક્ષા કાળને આશ્રિત કરીને વપરાયું છે અને બીજું વિશેષણ પરાવર્તન કાળને

क्तिदोषः । कण्ठोष्ठविप्रमुक्तम्–कण्ठश्च-ओष्ठंच-कण्ठोष्टम्–तेन विप्रमुक्तम्-सुस्पष्टमित्यर्थः न तु बालमूकादिभाषितवदस्पष्टम् । तथा-गुरुवाचनोपगतं–गुरोःसकाशादधिगता या वाचना,=सूत्रस्यार्थस्य च ग्रहणं तथा उपगतं प्राप्तम्, तदेवं यस्य साधोरावश्यकपदं शिक्षितादिगुणोपेतमधिगतं भवति, स खलु साधुः तत्र=आवश्यकपदे वाचनया-शिष्याध्यापनरूपया प्रच्छनया–प्रच्छना–पूर्वाधीतसूत्रादौ संशये सति गुरुसमीपे प्रच्छनम्, यद्वा–प्रच्छना-विशोधितस्य सूत्रस्य माभूद् विस्मरणमिति गुरोः प्रश्नरूपा, तया, परिवर्त्तनया=अधीतस्य सूत्रादेः पुनःपुनरावृत्ति करणं गुणनं परिवर्तना, तया, धर्मकथया=दुर्गतौ प्रपतन्तं सत्त्वसंघातं सुगतौ धारय-

(पुनरावर्तन) कालको आश्रित करके कहा गया है। (कंठोट्ठविप्पमुक्कं) बाल आदि के भाषित की तरह जिस का उसशास्त्र का अस्पष्ट उच्चारण नहीं है–किन्तु बिलकुल स्पष्ट स्वर से जो उसका उच्चारण करता है, तथा (गुरुवायणोवगयं) गुरुके पास रहकर जिसने इस आवश्यकशास्त्र की वाचना पाई है–सूत्र और अर्थ का अध्ययन किया है–जिस से उसे उस–आवश्यक शास्त्र का ज्ञान प्राप्त हुआ है–इस तरह इन पूर्वोक्त श्रुत-गुणरूपविशेषणों के अनुसार जिस साधुने आवश्यकशास्त्र का ज्ञान प्राप्त कर-लिया है–अतः (से) वह साधु (तत्थ) उस आवश्यकशास्त्र मे (वायणाए पुच्छणाए परियट्टणाए धम्मकहाए) शिष्य अध्ययनरूप वाचना से, पूर्वाधीत सूत्रादि में संशय होने पर गुरु के समीप पूछनेरूप अथवा विशोधित सूत्र का विस्मरण न हो जावे इस ख्याल से गुरु से प्रश्नकरनेरूप पृच्छना से, अधीत पढा हुआ सूत्रादिक कि पुनः पुनः आवृत्ति करनेरूप परिवर्तना से और दुर्गति में पडते

આશ્રિત કરીને વપરાયું છે. (कंठोट्ठविप्पमुक्कं) બાલક અથવા મૂંગા માણસના જેવું અસ્પષ્ટ ઉચ્ચારણ જે કરતો નથી–પરન્તુ બિલકુલ સ્પષ્ટ સ્વરથી જે તેનું ઉચ્ચારણ કરે છે, (गुरुवायणोवगयं) ગુરૂની પાસે રહીને જેણે આ આવશ્યક શાસ્ત્રની વાચના કરી છે–એટલે કે ગુરૂની સમક્ષ જેણે સૂત્ર અને અર્થનું અધ્યયન કર્યું છે અને આ રીતે જેને આવશ્યક સૂત્રનું જ્ઞાન પ્રાપ્ત થયું છે, આ રીતે પૂર્વોકત શ્રુત ગુણ રૂપ વિશેષણોના અનુસાર જે સાધુએ આવશ્યકશાસ્ત્રનું જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરી લીધું છે. અને તેથી (से) તે સાધુ (तत्थ) તે આવશ્યકશાસ્ત્રમાં (वायणाए पुच्छणाए परियट्टणाए धम्मकहाए) શિષ્ય અધ્યયનરૂપ વાચન વડે પૂર્વાધીત (પહેલાં જેનું અધ્યયન કરવામાં આવ્યું છે તેને પૂર્વાધીત કહે છે) સૂત્રાદિમાં સંશય થાય ત્યારે ગુરૂને તે વિષે પ્રશ્ન કરવારૂપ પૃચ્છાવડે અથવા વિશોધિત સૂત્રનું વિસ્મરણ ન થઈ જાય તે ખ્યાલથી ગુરૂને પ્રશ્ન કરવારૂપ પૃચ્છના વડે અધીત સૂત્રનો ફરી ફરીને પાઠ કરવારૂપ પરિવર્તના વડે અને દુર્ગતિમાં પડતાં જીવોને સુગતિમાં ધારણ કરાવનાર ધર્મકથાવડે-એટલે

तीति धर्मः तस्य कथनं धर्मकथा अहिंसादि धर्मप्ररूपणरूपा, तया, वर्तमानोऽस्तीति आगमतो द्रव्यावश्यकमुच्यते। ननु वाचनादिभिस्तत्रावश्यकशास्त्रे वर्तमानः साधुः कथमागमतो द्रव्यावश्यकं भवतीति शिष्यशङ्कां निराकर्तुमाह-'नो अणुप्पेहाए' नो अनुप्रेक्षया-वाचनादिभिस्तत्र वर्तमानोऽपि शास्त्रार्थानुचिन्तनरूपयाऽनुप्रेक्षया नो वर्त्तमानो भवति अनुप्रेक्षया युक्तो न भवतीत्यर्थः, अतः स आगमतो द्रव्यावश्यकं भवति। अनुप्रेक्षयाचाऽवर्तमानः कथमागमतो द्रव्यावश्यकं भवतीति स्वयमाह सूत्रकारः-'कम्हा' इत्यादिना। कस्मात् आगमतो द्रव्यावश्यकं भवति? उत्तरयति-'अणुवओगो दव्वमिति वट्टु' अनुपयोगो द्रव्यमिति कृत्वा-उपयुज्यते-वस्तुपरिच्छेदं करोति जीवोऽनेनेत्युपयोगः। करणे घञ् प्रत्ययः। उपयोगः=

हुए जीवों को सुगति में धारण कराने वाले (पहोंचाने वाले) धर्म की कथा से-अर्थात् अहिंसादि धर्म की प्ररूपणा से-वर्तमान है-इस तरह आगम की अपेक्षा वह साधु द्रव्यावश्यक कहा गया है। यहां ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये, कि वाचनादिरूप क्रियाओं से उस आवश्यक शास्त्र में वर्तमान वह साधु आगम की अपेक्षा द्रव्यावश्यक कैसे है क्योंकि (नो अणुप्पेहाए) इस पद से सूत्रकार ने इस शंका का समाधान किया है-वे कहते हैं कि वाचनादिरूप क्रियाओं से आवश्यकशास्त्र में वर्तमान रहा हुआ भी वह साधु शास्त्र के अर्थ का अनुचिन्तन करने रूप अनुप्रेक्षा चिन्तन से उसमें वर्तमान नहीं है। इसलिये वह आगम से द्रव्यावश्यक है। (कम्हा अणुवओगो दव्वमिति) क्योंकि "अनुपयोगो द्रव्यं" ऐसा शास्त्र का वचन है। इस का तात्पर्य यह हैं कि-जीव जिस के द्वारा वस्तु का परिच्छेद करता है उस का नाम उपयोग है। उप उपसर्ग पूर्वक युज्

કે અહિંસાદિ ધર્મની પ્રરૂપણાવડે વર્તમાન (વિદ્યમાન) છે. આ રીતે આગમની અપેક્ષાએ તે સાધુને દ્રવ્યાવશ્યક કહેલામાં આવ્યો છે.

અહીં એવી શંકા ન કરવી જોઈએ કે વાચનાદિ ક્રિયાઓ વડે તે આવશ્યક સૂત્રમાં વર્તમાન તે સાધુ આગમની અપેક્ષાએ દ્રવ્યાવશ્યક કેવી રીતે સંભવી શકે છે? સૂત્રકારે આ સૂત્રપાઠ દ્વારા તે શંકાનું સમાધાન કર્યું છે—

(નો અણુપ્પેહાએ) વાચનાદિરૂપ ક્રિયાઓ વડે આવશ્યક શાસ્ત્રમાં વર્તમાન રહેલો એવો તે સાધુ શાસ્ત્રના અર્થનું અનુચિન્તન કરવારૂપ અનુપ્રેક્ષાની અપેક્ષાએ તેમાં વર્તમાન હોતો નથી તે કારણે તે આગમની અપેક્ષાએ દ્રવ્યાવશ્યક છે. (કમ્હા અણુપયોગો દવ્વમિતિ) કારણ કે શાસ્ત્રનું એવું વચન છે કે "અનુપયોગો દ્રવ્યં" આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—

જીવ જેના દ્વારા વસ્તુનો પરિચ્છેદ કરે છે (વસ્તુનું જ્ઞાન મેળવે છે) તેનું

जीवस्य बोधरूपो व्यापारः । न विद्यते उपयोगो यत्रासौ–अनुपयोगः । इति कृत्वा=अस्मात् कारणात् स साधुरागमतो द्रव्यावश्यकं भवति। यस्य कस्यचित् साधोरावश्यकशास्त्रं शिक्षितं स्थितं जितं यावद् वाचनोपगतं भवति, स खलु साधुरत्रावश्यकशास्त्रे वाचना-प्रच्छना-परिवर्तना धर्मकथाभिर्वर्तमानोऽपि आवश्यकोपयोगरहितत्वादागमतो द्रव्यावश्यकं भवतीति समुदितार्थः । अत्रेदं बोध्यम्–वाचना प्रच्छनादय उपयोगपूर्वका अनुपयोगपूर्वकाश्च भवन्ति । परमिह द्रव्यावश्यकप्रस्तावादनुपयोगपूर्वका वाचनाप्रच्छनादयो बोद्धव्याः । अनुपयोगस्तु भाव-

---

धातु से करण में घञ् प्रत्यय करने से उपयोग शब्द निष्पन्न हुआ है । जीव के बोधरूप व्यापार का नाम उपयोग है । यह उपयोग जहां पर नहीं है उस का नाम अनुपयोग है । इस अनुपयोग से उस आवश्यक शास्त्र में युक्त होने के कारण वह आवश्यक शास्त्र का ज्ञाता आगम से द्रव्यावश्यक माना जाता है । तात्पर्य कहने का यह है कि जिस साधुने आवश्यक शास्त्र को अच्छी तरह से जान लिया है. सीख लिया है–उसका वह पूर्णरूप से ज्ञाता हो चुका है–अतः वह साधु उस आवश्यकशास्त्र में वाचना पृच्छना, परिवर्तना एवं धर्मकथा के रूप से वर्तमान मान लिया जाता है–फिर भी आवश्यक के उपयोग से रहित होने के कारण वह आगम से द्रव्यावश्यक कहलाता है । उसे यों समझना चाहिये कि वाचना पृच्छना आदि उपयोगपूर्वक भी होते हैं और अनुपयोगपूर्वक भी । परन्तु यहां द्रव्यावश्यक का प्रकरण होने से वे

નામ 'ઉપયોગ' છે. 'युज्' ધાતુને उप ઉપસર્ગપૂર્વક કરણ અર્થ ઘञ् પ્રત્યય લગાડવાથી ઉપયોગ શબ્દ બને છે. જીવના બોધરૂપ વ્યાપારનું નામ ઉપયોગ છે. તે ઉપયોગનો જ્યાં સદ્ભાવ નથી તેને અનુપયોગ કહે છે. તે અનુપયોગપૂર્વક તે આવશ્યકશાસ્ત્રમાં યુક્ત હોવાને કારણે તે આવશ્યકશાસ્ત્રના જ્ઞાતાને દ્રવ્યની અપેક્ષાએ આવશ્યક (દ્રવ્યાવશ્યક) માનવામાં આવે છે. આ કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે જે સાધુએ આવશ્યક શાસ્ત્રને સારી રીતે જાણી લીધું છે–સારી રીતે તેનું અધ્યયન કરી લીધું છે. તેનો પૂર્ણરૂપે જાણકાર થઇ ગયો છે, એવા સાધુને તે આવશ્યકશાસ્ત્રમાં વાચના. પૃચ્છના, પરિવર્તના અને ધર્મકથા રૂપે વર્તમાન માની લેવામાં આવે છે, છતાં પણ આવશ્યકના ઉપયોગથી રહિત હોવાને કારણે તેને આગમની અપેક્ષાએ દ્રવ્યાવશ્યક કહેવામાં આવે છે. આ વાતનો વધુ ખુલાસો આ પ્રમાણે સમજવો–વાચના, પૃચ્છના, આદિ ઉપયોગપૂર્વક પણ થાય છે અને અનુયોગપૂર્વક પણ થાય છે પરન્તુ અહીં દ્રવ્યાવશ્યકનું પ્રકરણ ચાલતું હોવાથી તેમને અનુપયોગપૂર્વક જ

शून्यता, तच्छून्यं च वस्तु द्रव्यमेव भवतीति वाचनादिभिरत्र वर्तमानोऽपि साधु द्रव्यावश्यकम्। अनुप्रेक्षा तूपयोगपूर्विकैव संभवति, अतस्तत्र वर्तमानो द्रव्यावश्यकं न भवति।

ननु आगममाश्रित्य द्रव्यावश्यकमित्यागमरूपमिदं द्रव्यावश्यकमित्युक्तं भवति, एतच्च युक्तं न प्रतिभाति, यत् आगमो ज्ञानं, ज्ञानं च भाव एवेति कथमस्य द्रव्यत्वमुपपद्यते? इतिचेत् उच्यते—आगमस्य कारणमात्मा, तदधिष्ठितो देहः, शब्दश्चोपयोगशून्यसूत्रोच्चारणरूप इहास्ति, न तु साक्षादागमः। एतच्च त्रितयमागमकारणत्वात् कारणे कार्योपचारादागम उच्यते, कारणं च विवक्षित भावस्य द्रव्यमेव भवतीत्यदोषः।

अनुपयोगपूर्वक गृहीत किये गये हैं। भावशून्यता का नाम अनुपयोग है। उपयोग से शून्य द्रव्य ही होता है। इसलिये वह आवश्यकशास्त्र का ज्ञाता साधु उसमें वाचनादिक से वर्तमान होता हुआ भी उपयोग से शून्य होने के कारण द्रव्यावश्यक है। अनुप्रेक्षा जो होती है वह उपयोगपूर्वक ही होती है इसलिये उसमें वर्तमान साधु द्रव्यावश्यक नहीं है वह तो भावावश्यक हैं।—

शंका—जब आप आगम को आश्रित करके द्रव्यावश्यक की प्ररूपणा करते हो तो वह द्रव्यावश्यक आगमरूप कहा गया है मानने में आता है। परन्तु यह बात युक्त प्रतीत नहीं होती है क्योंकि आगम जो होता है वह तो ज्ञानरूप होता है। और ज्ञान भावरूप होता है। अतः आगम में द्रव्यता कैसे बन सकती है?

उत्तर—आगम के कारण आत्मा, आत्माधिष्ठित देह, और उपयोगशून्य सूत्र का उच्चारणरूप शब्द ये तीन माने गये हैं। साक्षात् आगम नहीं। ये तीन आगम के कारण होने से कारण में आगमरूप कार्य का उपचार किया गया है। इसलिये इन्हें आगमरूप से कहा है। विवक्षित भाव का जो कारण

ગૃહીત કરવામાં આવેલ છે. ભાવશૂન્યતાનું નામ અનુપયોગ છે દ્રવ્ય જ ઉપયોગથી રહિત હોય છે. તેથી તે આવશ્યક શાસ્ત્રનો જ્ઞાતા સાધુ તેમાં વાચના આદિરૂપે વર્તમાન હોવા છતાં પણ ઉપયોગથી રહિત હોવાને કારણે દ્રવ્યાવશ્યક જ કહેવાય છે. અનુપ્રેક્ષા તો ઉપયોગપૂર્વક જ થાય છે. તેથી તેમાં (અનુપ્રેક્ષામાં) વર્તમાન સાધુ દ્રવ્યાવશ્યક નથી, પણ ભાવાવશ્યક છે.

શંકા—જ્યારે આપ આગમને આશ્રિત કરીને દ્રવ્યાવશ્યકની પ્રરૂપણા કરો છો. ત્યારે એવું લાગે છે કે દ્રવ્યાવશ્યકને આગમરૂપ કહેવાયાં આવ્યું છે, એવું આપ પ્રતિપાદન કરી રહ્યા છો. પરન્તુ એ વાત યુકત લાગતી નથી કારણ કે આગમ

ननु—आगमतोऽनुपयुक्तो द्रव्यावश्यकम्, इत्येतावतैवेष्टसिद्धेः शिक्षितादिश्रुतगुणाभिधानं व्यर्थमितिचेत्, उच्यते—शिक्षितादिश्रुतगुणाभिधानेन सूत्रकार इदं सूचयति—एवंविधं निर्दोषमपि श्रुतमुच्चारयतोऽनुपयुक्तस्य द्रव्यश्रुतं द्रव्यावश्यकमेव भवति, किं पुनः सदोषम्। उपयुक्तस्य स्खलितादिदोषदुष्टमुच्चारयतोऽपि

होता है वह द्रव्य ही होता है। इसलिये आवश्यक में उपयोगरहित आत्मा का आगम से द्रव्यावश्यक कहना निर्दोष है।

शंका—ठीक है— आवश्यक में अनुपयुक्त आत्मा को आप आगम की अपेक्षा द्रव्यावश्यक कहिये—इसमें कोई विरोध नहीं है—परन्तु सूत्रकार ने जो शिक्षितादि श्रुतगुणों का वर्णन किया है सो उनके कहने की क्या आवश्यकता थी? वह श्रुतगुण कथन तो व्यर्थ है। क्यों कि इस श्रुतगुण कथन से आगम की अपेक्षा लेकर द्रव्यावश्यक की सिद्धि में कोई संगति प्रतीत नहीं होती? सो इस प्रकार का आक्षेप भी संगत प्रतीत नहीं होता—कारण सूत्रकार इस श्रुतगुणवर्णन से यह सूचित करते है कि इस प्रकार निर्दोष भी शास्त्र का उच्चारण करने वाले साधुका कि जो उस में अनुपयुक्त (विना उपयोग के)

तो ज्ञानरूप होय छे अने ज्ञान भावरूप होय छे. तेथी आगममां द्रव्यता केवी रीते घटावी शकाय छे?

उत्तर—आगमना आ त्रण कारणो मानवामां आव्यां छे–(१) आत्मा, (२) आत्माधिष्ठित देह अने (३) उपयोग रहित सूत्रना उच्चारणरूप शब्द–साक्षात आगम नहीं. आगमना आ त्रण कारणो छे वाथी कारणमां आगमरूप कार्यनो उपचार करवामां आव्यो छे. ते कारणे तेमने आगमरूप कहेवामां आवेल छे. विवक्षित भावनुं जे कारण होय छे ते द्रव्य ज होय छे. तेथी आवश्यकमां उपयोग रहित आत्माने आगमनी अपेक्षाओ द्रव्यावश्यक कहेवो एमां कोई दोष नथी, ओ तो निर्दोष कथन ज गणी शकाय.

शंका—आवश्यकमां अनुपयुक्त आत्माने आप आगमनी अपेक्षाओ लईने द्रव्यावश्यक कहो, एमां अमने कंई वांधो नथी; परन्तु सूत्रकारे जे शिक्षित आदि श्रुतगुणोनुं वर्णन कर्युं छे. ते वर्णन करवानी अहीं शी आवश्यकता हती? ते श्रुतगुणकथन तो व्यर्थ ज लागे छे, कारणु के आ श्रुतगुण कथन वडे आगमनी अपेक्षाओ द्रव्यावश्यकनी सिद्धिमां कोई संगति देखाती नथी.

उत्तर—आ प्रकारनो आक्षेप पणु संगत लागतो नथी, कारण के सूत्रकार आ श्रुतगुण वर्णन वडे ओ सूचित करवा मागे छे के–आ प्रकारे निर्दोषरूपे पणु शास्त्रनुं उच्चारण करनारो साधु के जे तेमां अनुपयुक्त ज रहेलो छे, तेनुं ते द्रव्य त

भावश्रुतमेव भवति। एवं प्रत्युपेक्षादि क्रिया निर्दोषा अपि अनुपयुक्तस्य न तथाविधफलदात्र्यो भवन्ति। उपयुक्तस्य तु मतिवैकल्यादितः सदोषा अपि प्रत्युपेक्षादि क्रियाः कर्ममलापनयनाय समर्था भवन्तीति।

ननु भवत्वनुपयुक्तो द्रव्यावश्यकम्, किन्तु हीनाक्षरंसूत्रं समुच्चारिते को दोषः? कथमुक्तमहीनाक्षर? मिति, उच्यते—लौकिकविद्यामन्त्रा अपि अक्षरहीनाः समुच्चार्यमाणारतत्फलं दातुमसमर्था अनर्थावहाश्च भवन्ति, किं तर्हि परममन्त्ररूपे

हो रहा है—वह द्रव्यश्रुत द्रव्यावश्यक ही है। तो फिर सदोष शास्त्र को उच्चारण करने वाले की तो बात ही क्या है? जो उस शास्त्र में उपयोग युक्त है ऐसा प्राणी यदि स्खलित आदि दोष से भी दूषित शास्त्र का उच्चारण करता है तो उसका वह द्रव्य त भावश्रत ही है। इसी तरह अनुपयुक्त साधु रूप प्राणी की प्रत्युपेक्षणादि क्रिया निर्दोष भी हों तो भी वे तथाविध फल की प्रदाता नहीं होती हैं। परन्तु जो साधु उन प्रत्युपेक्षणादि-पडिलेहणा क्रियाओं को उनमें उपयुक्त बन कर करता है और यदि वे मति विकलता आदि के वश से सदोष भी कर्ममलको दूर करने के लिये समर्थ होती हैं।

शंका—अनुपयुक्त साधु द्रव्यावश्यक भले हो परन्तु हीनाक्षररूप से सूत्र के उच्चारित होने पर क्या दोष है कि जिस से "अहीणक्खरं" यह श्रुत का कथित गुणरूप स्वरूप विशेषण सफल माना जा सके?

उत्तर—लौकिक विद्या, मंत्र, भी जब अक्षर न्यून बोले जाते है तो वे अपने वास्तविक फल को देने में असमर्थ हो जाते हैं और अनर्थकारक बन जाते हैं तब फिर परममंत्र रूप सूत्र के विषय में क्या कहना। हीनाक्षर सूत्र के

द्रव्यावश्यक જ છે, તો સદોષ શાસ્ત્રનું ઉચ્ચારણ કરનારની તો વાત જ શી કરવી! જે તે શાસ્ત્રમાં ઉપયોગયુક્ત છે એવો સાધુ પણ જો સ્ખલિત આદિ દોષથી દૂષિત થયેલા શાસ્ત્રનું ઉચ્ચારણ કરે છે, તો તેનું તે દ્રવ્યશ્રુત ભાવશ્રુત જ છે. એજ પ્રમાણે અનુપયુક્ત સાધુરૂપ જીવની પ્રત્યુપેક્ષણાદિ ક્રિયા નિર્દોષ હોય તો પણ તથાવિધ (તે પ્રકારના) ફલની પ્રદાતા સંભવી શકતી નથી. પરન્તુ જે સાધુ તે પ્રત્યુપેક્ષણાદિ ક્રિયાઓને તેમાં ઉપયુક્ત બનીને કરે છે, એવો સાધુ કદાચ મતિ વિકલતા આદિને કારણે સદોષ હોય તો પણ તેની તે ક્રિયાઓ કર્મમળને દૂર કરવાને સમર્થ જ હોય છે.

શંકા—અનુપયુક્ત સાધુને દ્રવ્યાવશ્યક માની લઈએ, પરન્તુ હીનાક્ષરરૂપે સૂત્રનું ઉચ્ચારણ કરવામાં એવો તો કયો દોષ છે કે જેથી "अहीणक्खरं" આ શ્રુતના કથિત ગુણરૂપ વીશેષણને સફળ જાની શકાય?

ઉત્તર—લૌકિક વિદ્યારૂપ મંત્રનું ઉચ્ચારણ કરવામાં પણ જો એકાદ અક્ષરને ઉડાડી દેવામાં આવે છે, તો તે મંત્ર પણ વાસ્તવિક ફળ આપવાને અસમર્થ

सूत्रे वक्तव्यम्? हीनाक्षरे सूत्रे उच्चारिते तत्फलपरमकल्याणरूपमोक्षानवाप्ति-रनन्तसंसारावाप्तिश्च भवतीति सुधीभिर्विभाव्यम्।

अत्रायं दृष्टान्तः—एकदा राजगृहनगरोद्याने समवसृतस्य भगवतो महावीर-स्य चरणौ वन्दितुं देवासुरविद्याधरनरसमुदायः समागतः। स्वपुत्रेणाभयकुमा-रेण सह राजा श्रेणिकोऽपि समागतः। भगवता परिषदि धर्मदेशना दत्ता। धर्मदेशनानन्तरं सर्वेऽपि भगवन्तमभिवन्द्य स्वस्वस्थानं गताः। सपुत्रः श्रेणिको भगवन्तं पर्युपासीनः। भगवत्समीप एव स्थितः। अस्मिन् समये कश्चिद् विद्याधरो विस्मृतविद्यैकाक्षरो नभसा गन्तुमुत्पतितः, किंचिद् गत्वा

उच्चरित होने पर उसका फल जो परम कल्याणरूप मोक्ष की प्राप्ति होना वह नहीं होती है और अनन्त संसार की प्राप्तिरूप अनर्थ प्रगट होते हैं, इस विषय में यह दृष्टांत है—एक समय राजगृह नगर के उद्यान में भगवान् महा-वीर का समवसरण हुआ।

प्रभु को वंदना करने के लिये देव, असुर, विद्याधर एवं मनुष्य इन सबका समुदाय आ पहुंचा। अपने पुत्र अभयकुमार के साथ राजा श्रेणिक भी आये। भगवान ने परिषदा में धर्म की देशना दी। देशना सुनकर सब भगवान् को वंदना करके अपने २ स्थान पर चले गये। पर राजा श्रेणिक नहीं गये। सपुत्र वे भगवान की पर्युपासना में लवलीन हो कर भगवान् के समीप में ही बैठ गये। इतने में कोई एक विद्याधर जिसको अपनी विद्या का एक अक्षर विस्मृत हो गया था। आकाशमार्ग से जाने के लिये उडा। वह

બની જાય છે અને અનર્થકારક પણ બની શકે છે, તો પછી પરમ મંત્રરૂપ સૂત્રની તો વાત જ શી કરવી? હીનાક્ષર સૂત્રના ઉચ્ચારણને લીધે પરમ કલ્યાણકારક મોક્ષ રૂપ ફળની પ્રાપ્તિ પણ થતી નથી એટલું જ નહીં પણ અનંત સંસારની પ્રાપ્તિરૂપ અનર્થ પણ પ્રગટ થાય છે આ વિષયને અનુલક્ષીને નીચેનું દૃષ્ટાંત આપવામાં આવ્યું છે.

કોઇ એક સમયે રાજગૃહ નગરના ઉદ્યાનમાં મહાવીર પ્રભુનું સમવસરણ થયું પ્રભુને વંદણા કરવા નિમિત્તે દેવ, અસુર, વિદ્યાધર અને મનુષ્યનો સમુદાય આવી પહોંચ્યો. પોતાના પુત્ર અભયકુમારને સાથે લઇને મહારાજા શ્રેણિક પણ આવી પહોંચ્યા ભગવાને ત્યાં એકત્ર થયેલી પરિષદાને ધર્મની દેશના દીધી. ભગવાનની દેશના સાંભળીને અને ભગવાનને વંદણા કરીને સૌ પોતપોતાને સ્થાને પાછાં ફર્યાં. પરન્તુ રાજા શ્રેણિક ત્યાંથી ખસ્યા નહીં. તે પોતાના પુત્રની સાથે ભગવાનની પર્યુપાસનામાં તલ્લીન થઇને ત્યાંજ બેસી રહ્યો. હવે આ વખતે નીચેનો બનાવ બન્યો. સમવસરણ-માંથી પાછો ફરતો કોઇ એક વિદ્યાધર આકાશમાર્ગે ઉડવા માગતો હતો પણ આકા-શમાં ઉડવા માટે જે મંત્રનો ઉચ્ચાર કરવો જોઇએ તે મંત્રનો એક અક્ષર તે ભૂલી

निपतितः, पुनरुत्पतितो निपतितश्च । एवं पुनः पुनरुत्पतन्तं निपतन्तं तं विद्याधरं दृष्ट्वा अभयकुमारो भगवन्तं प्रणम्यैवमब्रवीत्—भदन्त । कथमयं महाभागो विद्याधरो विच्छिन्नपक्षः पक्षीव पुनः पुनर्नभसि उत्पतति निपतति च ? ततो भगवता प्रोक्तम्—अयं विद्याधरो विस्मृतविद्यैकाक्षरो नभसि गन्तुं प्रयतते, परन्तु सफलो न भवति । भगवद्वचनं श्रुत्वा अभयकुमारस्तस्य विद्याधरस्य समीपे समागत्यैवमब्रवीत्—महाभाग ! यदि त्वं मह्यमपि विद्यासाधनोपायं कथयेस्तदा—त्वद्विस्मृतविद्यैकाक्षरं तुभ्यं निवेदयामि । विद्याधरेणाभयकुमारवचनं प्रतिपन्नम् । अभय-

कुछ दूर गया. ही था कि नीचे गिर पडा । वहां से फिर उडा और फिर आगे जाकर गिर पडा । इस तरह वारवार उडते और गिरते हुए उस विद्याधर को अभयकुमारने देख लिया । देखकर उसने भगवान् से नमस्कार कर पूछा-हे भदन्त ! कटे हुए पक्षवाले पक्षी की तरह यह विद्याधर बार २ आकाश में उडता है और गिर पडता है सो इसका क्या कारण है ? तब भगवान्-ने कहा—यह विद्याधर अपनी आकाश गामिनी विद्या का एक अक्षर भूल गया है-अतः उडने का प्रयत्न करता हुआ भी यह उसमें सफल नहीं हो पा रहा है । भगवान् के इस प्रकार वचन सुनकर अभयकुमार शीघ्र ही उस विद्याधर के पास गया और बोला-महाभाग ! यदि तुम मुझे विद्या सिखा देंगे तो मैं तुम्हारे लिये विद्या के विस्मृत हुए एक अक्षर को कह दूंगा । अभयकुमार की इस बात को उस विद्याधर ने मान लिया—तब अभय-

ગયેા હતેા. તે આકાશમાં ઉડયેા તેા ખરા પણ થેાડે દૂર જઈને નીચે પડી ગયેા. વળી ફરીથી ઉડયેા, પરન્તુ થેાડે દૂર જઈને ફરી નીચે પડી ગયેા. આ પ્રમાણે વારંવાર ઉડતાં અને પડતાં તે વિદ્યાધરને અભયકુમારે જોયેા. તેનું કારણ જાણવાની તેને ઇચ્છા થઇ તેણે મહાવીર પ્રભુને વંદણા નમસ્કાર કરીને આ પ્રમાણે પ્રશ્ન પૂછયેા-"હે ભગવન્ ! તૂટેલી પાંખવાળા પક્ષીની જેમ આ વિદ્યાધર વારંવાર આકાશમાં ઉડે છે અને નીચે પડી જાય છે. તેનું કારણ શું હશે ?

ત્યારે મહાવીર પ્રભુએ અભયકુમારને આ પ્રમાણે જવાબ આપ્યેા-હે અભયકુમાર ! તે વિદ્યાધર પેાતાની આકાશગામિની વિદ્યાનેા એક અક્ષર ભૂલી ગયેા છે. તે કારણે ઉડવાનેા પ્રયત્ન કરવા છતાં પણ તે તેમાં સફળ થતેા નથી.

ભગવાનનાં એવાં વચનેા સાંભળીને અભયકુમાર તુરત જ તે વિદ્યાધરની પાસે પહેાંચી ગયેા. તેણે તે વિદ્યાધરને કહ્યું-"હે મહાભાગ ! જો તમે મને વિદ્યા સાધવાનેા ઉપાય બતાવેા, તેા હું તમને આકાશગામિની વિદ્યાના મંત્રનેા વિસ્મૃત થઇ ગયેલેા એક અક્ષર બતાવી દઉં વિદ્યાધરે અભયકુમારની તે વાતનેા સ્વીકાર કર્યો.

कुमारस्य एकस्मादपि पदादनेकपदाभ्यूहनशक्तिरासीत्। स विद्याधरकथितमन्त्रं श्रुत्वा विस्मृतमक्षरं तस्मै निवेदितवान्। स विद्याधरोऽपि तस्मै विद्यासाधनोपायमकथयत्। ततो विद्याधरो विस्मृतमक्षरमुपलभ्य स्वसमीहितप्रदेशं गतः। अनेन दृष्टान्तेनेदं बोध्यम्—यथा तस्य विद्याधरस्यैकाक्षरविस्मरणेन हीनाक्षरता दोषान्नभोगतिरपरता, विद्या च व्यर्थतां याता तथैव हीनाक्षरे सूत्रे उच्चारितेऽर्थभेदस्तद्भेदात् क्रियाभेदः, क्रियाभेदे च मोक्षानवाप्तिः। ततो दीक्षाग्रहणादिकमपि वैयर्थ्यमापद्येतेति। एवमधिकाक्षरादिष्वपि दोषा बोध्याः। विस्तरभिया दृष्टान्ताभिधानाद् विरम्यते। ॥ सू० १४ ॥

कुमार ने कि जिसे 'सर्वाक्षर सन्निपाती' विद्या में निपुणता थी जिससे उनको एक भी पद से अनेक पदों को विचार करने की शक्ति प्राप्त थी उस विद्याधर के कथित मंत्र को सुनकर विस्मृत अक्षर उसे कह दिया। विद्याधरने भी अभयकुमार को विद्यासाधन के उपाय कह दिये। इस प्रकार अपनी विद्या के विस्मृत अक्षर को प्राप्त कर वह विद्याधर अपने यथेष्ट स्थान पर चला गया। अतः इस दृष्टान्त से यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस प्रकार उस विद्याधर की एक अक्षर विस्मृत हो जाने के कारण विद्या हीनाक्षरता के दोष से दूषित होने से नभोगति करने में असमर्थ हुई और व्यर्थ हुई उसी तरह हीनाक्षर करके सूत्र का उच्चारण से अर्थ में भेद हो जाता है, उस से क्रिया में भेद आने से मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो पाती है। इस से दीक्षा ग्रहण आदि कार्य भी सब व्यर्थ हो जाते हैं। इसी तरह

અભયકુમાર પાસે 'सर्वाक्षरसन्निपाती' વિદ્યા હોવાથી તેઓમાં એવી શક્તિ હતી કે તે એકાદ પદને શ્રવણ કરીને પણ અનેક પદોનો વિચાર કરી શકતા હતા. આ શક્તિના પ્રભાવથી વિદ્યાધર કથિત મંત્રને સાંભળીને વિસ્મૃત અક્ષર તેણે તે વિદ્યાધરને બતાવી દીધો. વિદ્યાધરે પણ અભયકુમારને વિદ્યા સાધવાના ઉપાય બતાવી દીધા. આ પ્રકારે મંત્રના વિસ્મૃત અક્ષરને જાણી લઈને તે વિદ્યાધર પોતાને યથેષ્ટ સ્થાને ચાલ્યો ગયો.

આ દૃષ્ટાન્ત દ્વારા એ વાત સિદ્ધ થાય છે કે-જેમ તે વિદ્યાધર પોતાની આકાશગામિની વિદ્યાનો એક અક્ષર ભૂલી જવાને કારણે તેની વિદ્યા હીનાક્ષરતાના દોષથી દૂષિત થવાને લીધે તેને નભોગતિ કરાવવાને અસમર્થ બની ગઇ, એજ પ્રમાણે હીનાક્ષર કરીને સૂત્રનું ઉચ્ચારણ કરવામાં આવે તો અર્થમાં ભેદ પડી જાય છે, અર્થમાં ભેદ પડી જવાને કારણે ક્રિયામાં પણ ભેદ પડી જાય છે અને ક્રિયામાં ભેદ પડી જવાને લીધે મોક્ષની પ્રાપ્તિ પણ થઇ શકતી નથી. તે કારણે દીક્ષાગ્રહણ આદિ કાર્ય પણ વ્યર્થ બની જાય છે. એજ પ્રમાણે સૂત્રમાં અક્ષરોને ઉમેરીને સૂત્રનું

सम्प्रति नयभेदेन द्रव्यावश्यकभेदा उच्यन्ते—

मूलम्—नेगमस्स णं एगो अणुवउत्तो आगमओ एगं दव्वावस्सयं, दोण्णि अणुवउत्ता आगमओ दोण्णि दव्वावस्सयाइं, तिण्णि अणुवउत्ता आगमओ तिण्णि दव्वावस्सयाइं, एवं जावइया अणुवउत्ता आगमओ तावइयाइं दव्वावस्सयाइं। एवमेव ववहारस्सवि। संगहस्स णं एगो वा अणेगे वा अणुवउत्तो वा अणुवउत्ता वा दव्वावस्सयं दव्वावस्सयाणि वा, से एगे दव्वावस्सए। उज्जुसुयस्स एगो अणुवउत्तो आगमओ एगं दव्वावस्सयं, पुहुत्तं नेच्छइ। तिण्हं सद्दनयाणं जाणए अणुवउत्ते अवत्थु, कम्हा? जइ जाणए अणुवउत्ते न भवइ, जइ अणुवउत्ते जाणए ण भवइ तम्हा णत्थि आगमओ दव्वावस्सयं। से तं आगमओ दव्वावस्सयं ॥सू० १५॥

अधिक अक्षर आदि करके सूत्र के उच्चारण में दोष आते हैं। इनके ऊपर भी दृष्टान्त है जिन्हें यहां शास्त्र के विस्तार के भय से नहीं लिखा है।

भावार्थ-संक्षेप में आगम की अपेक्षा लेकर द्रव्यावश्यक का स्वरूप सूत्रकार के अभिप्रायानुसार इस प्रकार जानना चाहिये जिस साधुने आवश्यक सूत्र को सविधि अच्छी तरह से सीख लिया है—श्रुत गुण के अनुसार उसका अध्ययन कर लिया है—परन्तु उसमें उपयोग से वह रहित है—ऐसी स्थिति में वह साधु का आगम द्रव्यावश्यकरूप है। ॥सूत्र १४॥

ઉચ્ચારણ કરવામાં પણ દોષ રહેલો છે. તેનું પ્રતિપાદન કરતું એક દૃષ્ટાન્ત આપી શકાય એમ છે, પણ શાસ્ત્રનો વિસ્તાર થઈ જવાના ભયથી અહીં તે દૃષ્ટાન્ત આપ્યું નથી.

ભાવાર્થ—આગમની અપેક્ષાએ દ્રવ્યાવશ્યકનું સ્વરૂપ સૂત્રકારના અભિપ્રાય અનુસાર કેવું છે તે હવે સંક્ષિપ્તમાં પ્રકટ કરવામાં આવે છે—

જે સાધુએ આવશ્યકસૂત્રને વિધિપૂર્વક સારી રીતે શીખી લીધું છે—શ્રુતગુણાનુસાર તેનું અધ્યયન કરી લીધું છે પરન્તુ તેનાં તે ઉપયોગથી વિહીન છે, એવી પરિસ્થિતિમાં તે સાધુ આગમની અપેક્ષાએ દ્રવ્યાવશ્યક કહેવાને યોગ્ય ગણાય છે ॥સૂત્ર ૧૪

छाया—नैगमस्य खलु एकः अनुपयुक्त आगमत एकं द्रव्यावश्यकम्, द्वावनुपयुक्तौ आगमतो द्वे द्रव्यावश्यके, त्रयःअनुपयुक्ता आगमतः त्रीणि द्रव्यावश्यकानि। एवं यावन्तः अनुपयुक्ता आगमतः तावन्ति द्रव्यावश्यकानि। एवमेव व्यवहारस्यापि। संग्रहस्य खलु एको वा अनेके वा अनुपयुक्तो वा अनुपयुक्ता वा द्रव्यावश्यकं द्रव्यावश्यकानि वा, स एकं द्रव्यावश्यकम्। ऋजुसूत्रस्य एकः अनुपयुक्त

अब सूत्रकार नयों के भेद से द्रव्यावश्यक के भेद कहते हैं:—
"नेगमस्स णं एगो" इत्यादि। ॥सू० १५॥

शब्दार्थ-(नेगमस्स णं) नैगमनय की विवक्षा से (एगो) एक (अणुवउत्तो) अनुपयुक्त आत्मा (आगमओ) आगम को आश्रित करके (एगं दव्वावस्सयं) एक द्रव्यावश्यक है। (दोण्णि अणुवउत्ता आगमओ दोण्णि दव्वावस्सयाइं) दो अनुपयुक्त आत्माएं आगम की अपेक्षा लेकर दो द्रव्यावश्यक हैं। (तिण्णि अणुवउत्ता आगमओ तिण्णि दव्वावस्सयाइं) तीन अनुपयुक्त आत्माएं आगम की अपेक्षा लेकर तीन द्रव्यावश्यक हैं। (एवं जावइया अणुवउत्ता आगमओ तावइयाइं दव्वावस्सयाइं) इसी तरह जितनी और भी आत्माएं अनुपयुक्त हैं उतने ही आगम की अपेक्षा लेकर द्रव्यावश्यक हैं। (एवमेव ववहारस्स वि) इसी तरह से व्यवहारनयकी विवक्षा से जानना चाहिये। (संगहस्स णं एगो वा अणेगो वा अणुवउत्तो वा अणुवउत्ता वा दव्वावस्सयं दव्वावस्सयाणि वा से एगे दव्वावस्सए) संग्रहनय की विवक्षा से एक, अनुपयुक्त आत्मा एक द्रव्यावश्यक तथा अनेक द्रव्यावश्यक हैं" ऐसा जो कथन नैगमनय और व्यवहार

હવે સૂત્રકાર નયોના ભેદની અપેક્ષાએ દ્રવ્યાવશ્યકના ભેદોનું કથન કરે છે,
"नेगमस्स णं एगो" इत्यादि—

શબ્દાર્થ—(नेगमस्स णं) નૈગમ નયની દૃષ્ટિએ વિચાર કરવામાં આવે તો (एगो) એક (अणुवउत्तो) અનુપયુક્ત આત્મા (आगमओ) આગમને આશ્રિત કરીને (एगं दव्वावस्सयं) એક દ્રવ્યાવશ્યક છે. (दोण्णि अणुवउत्ता आगमओ दोण्णि दव्वावस्सयाइं) બે અનુપયુક્ત આત્માઓ આગમની અપેક્ષાએ બે દ્રવ્યાવશ્યક છે. (तिण्णि अणुवउत्ता आगमओ तिण्णि दव्वावस्सयाइं) ત્રણ અનુપયુક્ત આત્માઓ આગમની અપેક્ષાએ ત્રણ દ્રવ્યાવશ્યક છે, (एवं जावइया अणुवउत्ता आगमओ तावइयाइं दव्वावस्सयाइं) એજ પ્રમાણે જેટલા આત્માઓ અનુપયુક્ત છે. એટલા આગમની અપેક્ષાએ દ્રવ્યાવશ્યક છે. (एवमेव ववहारस्स वि) વ્યવહાર નયની દૃષ્ટિએ વિચારવામાં આવે તો પણ આ વિષયને અનુલક્ષીને ઉપર મુજબનું જ કથન સમજવું. (संगहस्स णं एगो वा अणेगो वा अणुवउत्तो वा अणुवउत्ता वा दव्वावस्सयं दव्वावस्सयाणि वा से एगे दव्वावस्सए) સંગ્રહ નયને આધારે વિચાર કરવામાં આવે તો "એક અનુપયુક્ત આત્મા આગમની અપેક્ષાએ એક દ્રવ્યાવશ્યક

आगमत एक द्रव्यावश्यकम्, पृथक्त्वं नेच्छति । त्रयणां शब्दनयानां ज्ञायकःअनुपयुक्तः अवस्तु, कस्मात्? यदि ज्ञायकोऽनुपयुक्तो न भवति, यदि अनुपयुक्तो ज्ञायको न भवति तस्माद् नास्ति आगमतो द्रव्यावश्यकम् । तदेतदागमतो द्रव्यावश्यकम् ॥सू०१५॥

टीका—'नेगमस्स णं' इत्यादि—

जिनशासने हि सर्वमपि सूत्रमर्थश्च नयैर्विचार्यते । तत्र नयाः सप्तविधाः ।

नय की दृष्टी से किया जाता है वह सब एक द्रव्यावश्यक है। क्योंकि संग्रहनय भिन्न २ प्रकार की वस्तुओं को तथा अनेक व्यक्तियों को किसी भी सामान्य तत्त्व के आधार पर एक रूप में संकलित करता है। (उज्जुसुयस्स एगो अणुवउत्तो आगमओ एगं दव्वावस्सयं पुहुत्तं नेच्छइ) ऋजु सूत्र नयकी दृष्टी में एक अनुपयुक्त आत्मा आगम की अपेक्षा लेकर एक द्रव्यावश्यक है। यह नय भेदवाद को नही चाहता है। (तिण्णं सद्दनयाणं जाणए अणुवउत्ते अवत्थु, कम्हा ? जइ जाणए अणुवउत्ते न भवइ, जइ अणुवउत्ते, जाणए न भवइ) तीन शब्दनयों की दृष्टि में जो ज्ञायक होता है वह यदि तो अनुपयुक्त है, तो वह अवस्तुस्वरूप है। क्यों कि ज्ञायक अनुपयुक्त नही होता । यदि वह अनुपयुक्त है तो वह ज्ञायक नहीं है। इसलिये आगम की अपेक्षा लेकर द्रव्यावश्यक जो कहा गया है वह नहीं है। (से तं आगमओ दव्वावस्सयं) इस तरह आगम को आश्रित करके प्रक्रान्त द्रव्यावश्यक

છે, તથા અનેક અનુપયુકત આત્માઓ અનેક દ્રવ્યાવશ્યક છે.'' આ પ્રકારનું જે જે કથન નૈગમ નય અને વ્યવહાર નયની અપેક્ષાએ કરવામાં આવ્યું છે, તેને બદલે અહીં બધાને એક દ્રવ્યાવશ્યક જ કહેવા જોઈએ, કારણ કે સંગ્રહનય જુદા જુદા પ્રકારની વસ્તુઓને તથા અનેક વ્યકિતઓને કોઈ પણ સામાન્ય તત્ત્વનો આધાર લઈને એક રૂપમાં સંકલિત કરે છે. (उज्जुसुयस्स एगो अणुवउत्तो आगमओ एगं दव्वावस्सयं पुहुत्तं नेच्छइ) ઋજુસૂત્ર નયની દૃષ્ટિએ એક અનુપયુકત આત્મા આગમની અપેક્ષાએ એક દ્રવ્યાવશ્યક છે. આ નય ભેદભાવને ચાહતો નથી. (तिण्णं सद्दनयाणं जाणए अणुवउत्ते अवत्थु, कम्हा ? जइ जाणए अणुवउत्ते, न भवइ, जइ अणुवउत्ते, जाणए न भवइ) ત્રણ શબ્દ નયોની દૃષ્ટિએ એવું માનવામાં આવે છે કે-જે જ્ઞાયક હોય છે તે જો અનુપયુકત હોય તો તે અવસ્તુ સ્વરૂપ છે, કારણ કે જ્ઞાયક અનુપયુકત સંભવી શકે જ નહીં જો તે અનુપયુકત હોય, તો તે જ્ઞાયક જ હોઈ શકે નહીં. તે કારણે આગમનો આશ્રય લઈને જે દ્રવ્યાવશ્યક બતાવવામાં આવેલ છે તેનો સદ્ભાવ જ નથી. (से तं आगमओ दव्वावस्सयं) આ પ્રકારનું આગમને આશ્રિત કરીને પ્રક્રાન્ત (પ્રસ્તુત વિષયરૂપ) દ્રવ્યાવશ્યકનું સ્વરૂપ છે.

उक्तं च—

नेगम संगहववहार, उज्जुसुए चेव होइ बोद्धव्वे।
सद्दे य समभिरूढे, एवंभूए य मूलनया ॥१॥
छाया—नैगमः संग्रहो व्यवहार ऋजुसूत्रश्चैव भवति बोद्धव्यः।
शब्दश्च समभिरूढ एवंभूतश्च मूलनयाः ॥इति॥
तत्र-नैगमनयमाश्रित्य आगमतो द्रव्यावश्यकभेदमाह—

का स्वरूप है।—

जिनशासन में समस्त सूत्र और अर्थों का विचार नयों को लेकर किया गया है। ये नय मूल में सात हैं कहाभी है (१) नैगम (२) संग्रह (३) व्यवहार (४) ऋजु सूत्र (५) शब्द (६) समभिरूढ (७) एवंभूत। इनमें से नैगमनय को लेकर सूत्रकार आगम की अपेक्षा से द्रव्यावश्यक के भेदों को कहते हैं—नैगमनय का तात्पर्य उन विचारों से है कि जिनके बल-पर पदार्थ का बोध विविध प्रकार से होता है। "नैको गमो बोधमार्गः यस्य सः नैगमः" बोधके अनेक उपाय है वे नैगम हैं इस व्युत्पत्ति के अनुसार यही अर्थ लभ्य होता है।

इस नैगम नयकी अपेक्षा से उपयोग वर्जित एकदेवदत्त आदि व्यक्ति एक आगम द्रव्यावश्यक है। दो अनुपयुक्त देवदत्त और यज्ञदत्त नाम के व्यक्ति दो आगम द्रव्यावश्यक हैं। अनुपयुक्त देवदत्त, यज्ञदत्त और विष्णुदत्त नाम के व्यक्ति ३ आगमद्रव्यावश्यक हैं। इसी तरह जितने भी अनुपयुक्त व्यक्ति हैं वे सब उतने ही आगमद्रव्यावश्यक इस नयकी दृष्टि

જિન શાસનમાં સમસ્ત સૂત્ર અને અર્થોનો જુદા જુદા નયનો આધાર લઈને વિચાર કરવામાં આવ્યો છે. એ નય મુખ્યત્વે સાત કહ્યા છે. (૧) નૈગમ નય, (૨) સંગ્રહ નય, (૩) વ્યવહાર નય, (૪) ઋજુસૂત્ર નય, (૫) શબ્દ નય, (૬) સમભિરૂઢ નય અને (૭) એવંભૂત નય.

પહેલાં તો નૈગમ નયની માન્યતા અનુસાર સૂત્રકાર આગમની અપેક્ષાએ દ્રવ્યાવશ્યકના ભેદોનું નિરૂપણ કરે છે. નૈગમ નયનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—જે વિચારોને આધારે પદાર્થનો બોધ વિવિધ થાય છે, તે વિચારધારાનું નામ જ નૈગમ નય છે. नैको गमो बोधमार्गः यस्य सः नैगमः" આ વ્યુત્પત્તિ અનુસાર ઉપર્યુક્ત અર્થ જ પ્રાપ્ત થાય છે,

આ નૈગમનયની અપેક્ષાએ ઉપયોગ વર્જિત એક દેવદત્ત આદિ વ્યક્તિ એક આગમ દ્રવ્યાવશ્યક છે. ઉપયોગરહિત (અનુપયુક્ત) દેવદત્ત અને યજ્ઞદત્ત નામની બે વ્યક્તિ બે આગમદ્રવ્યાવશ્યક છે. દેવદત્ત, યજ્ઞદત્ત અને વિષ્ણુદત્ત નામની ત્રણ અનુપયુક્ત વ્યક્તિઓ ત્રણ આગમદ્રવ્યાવશ્યક છે. એજ પ્રમાણે જેટલી અનુપયુક્ત વ્ય

नेगमस्स णं' इत्यादिना' नैको गमोऽर्थमार्गो यस्य स नैगमः। पृषोदरादित्वात् ककारस्य लोपः बहुविधवस्त्ववबोधक इत्यर्थः। तस्य नैगमस्य खलु एको देवदत्तादिः अनुपयुक्तः=उपयोगवर्जितः, आगमत एकं द्रव्यावश्यकम्। द्वौ देवदत्तयज्ञदत्तावनुपयुक्तौ आगमतो द्वे द्रव्यावश्यके। त्रयो देवदत्तयज्ञदत्तविष्णुमित्रा अनुपयुक्ता आगमतस्त्रीणि द्रव्यावश्यकानि। 'एवं' अनेन प्रकारेण यावन्तः अनुपयुक्ताः, आगमतः तावन्ति द्रव्यावश्यकानि अयं भावः—नैगमनयः सामान्यरूपं विशेषरूपं च वस्तु अधिगमयति=बोधयति। न तु संग्रहवत्सामान्यमेव। तत्र—विशेषरूपं भेदमाश्रित्य देवदत्तादि प्रत्येकव्यक्ति भेदेन यावन्तोऽनुपयुक्ताः भवन्ति सर्वाण्यप्यस्य द्रव्यावश्यकानि। न पुनः संग्रहवत्सामान्यवादित्वादेकमेव द्रव्यावश्यकम् इति।

में हैं। तात्पर्य इसका यह है कि—नैगमनय सामान्य और विशेषरूप अर्थ को कहता है—जिस प्रकार संग्रहनय सामान्यरूप ही अर्थ है ऐसा कहता है, उस प्रकार से यह नय नहीं कहता। यह तो विशेष को भी विषय करता है। इसकी मान्यतानुसार पदार्थ सामान्य और विशेष उभयरूप है वह न सामान्यरूप है और न केवल विशेषरूप ही। इस तरह विशेषरूप भेद का आश्रय करके देवदत्त आदि जितने भी अनुपयुक्त व्यक्ति हैं उतने ही आगम द्रव्यावश्यक इस नय की दृष्टि से हैं सामान्यवादी होने के कारण संग्रहनय की तरह एक ही द्रव्यावश्यक नहीं हैं। संग्रहनय से गृहीत पदार्थों का विधिपूर्वक-विभाग जिस अभिप्राय के द्वारा किया है उस अभिप्राय का नाम व्यवहार नय है। इस नय की मान्यतानुसार सामान्य कोई वस्तु नहीं है। क्योंकि यह सामान्य का निरावरण करता है। इसके प्रतिपादन का विषय विशेष है।

કિતએ હોય છે તેઓ આ નયની માન્યતા અનુસાર એટલા જ આગમદ્રવ્યાવશ્યક છે. આ કથનનું તાત્પર્ય નીચે પ્રમાણે છે. નૈગમ નય સામાન્ય અને વિશેષરૂપ અર્થને બતાવે છે. જેવી રીતે સંગ્રહનય "સામાન્યરૂપ જ અર્થ છે," એવું કહે છે, એ પ્રકારે આ નય કહેતો નથી. એ તો વિશેષરૂપે પણ અર્થને બતાવે છે. નૈગમ નયની માન્યતા અનુસાર તો પદાર્થ કેવળ સામાન્યરૂપ પણ નથી, કેવળ વિશેષરૂપ પણ નથી, પરન્તુ સામાન્ય અને વિશેષરૂપ એટલે કે ઉભયરૂપ છે. આ રીતે વિશેષરૂપ ભેદની અપેક્ષાએ દેવદત્ત આદિ જેટલા અનુપયુક્ત પુરૂષો છે, એટલાં જ આ નયની દૃષ્ટિએ આગમ દ્રવ્યાવશ્યક છે—સામાન્યવાદી હોવાને કારણે સંગ્રહનયની જેમ એક જ દ્રવ્યાવશ્યક નથી, સંગ્રહનયથી ગૃહીત પદાર્થોનો જે અભિપ્રાયદ્વારા વિધિપૂર્વક વિભાગ કરવામાં આવે છે, તે અભિપ્રાયનું નામ વ્યવહાર નય છે. આ નયની માન્યતા અનુસાર કોઇ વસ્તુ સામાન્ય નથી, કારણ કે તે સામાન્યનું નિરા-

एवं व्यवहारस्यापि—संग्रहनयेन गृहीतानामर्थानां विधिपूर्वकमवहरणं येनाभिसंधिना क्रियते स व्यवहारः। अर्थात् विशेषप्रतिपादनपरो व्यवहारनय इत्यर्थः। परसंग्रहनयेन गृहीतार्थविषये व्यवहारोदाहरणं यथा—यत् सत्, तद् द्रव्यं पर्यायो वेति। अपरसंग्रहगृहीतार्थविषये व्यवहारोदाहरणं यथा—यद् द्रव्यं तज्जीवादिषड्विधम्। स पर्यायः द्विविधः—क्रमभावी सहभावी चेति। एवं यो जीवः स मुक्तः संसारी-

अतः यह उसके प्रतिपादन करने में ही तत्पर रहता है। संग्रहनय के दो भेद हैं—१, पर संग्रहनय और दूसरा अपर संग्रहनय-। जड चेतनरूप अनेकव्यक्तियों में जो सद्रूप एक सामान्यतत्त्व है उसी पर दृष्टि रखकर दूसरे विशेषों को ध्यान में न रखते हुए सभी व्यक्तियों को एक रूप मानकर ऐसा जो विचार होता है कि संपूर्ण जगत् सद्रूप है क्यों कि—सत्ता से रहित कोई वस्तु है ही नहीं। इसी का नाम परसंग्रहनय है। इस पर संग्रहनय से गृहीत विषय के विषय में व्यवहार ऐसा विचार करता है कि जो सद्रूप है वह द्रव्य है या पर्याय है। यदि द्रव्य सत् है जो कि परसंग्रह नयके विषय की अपेक्षा ऊपर संग्रहनय का विषय पडता है तो क्या जीव द्रव्य है, या अजीव द्रव्य है। क्यों कि द्रव्य के जीव पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इस प्रकार से ६ भेद हैं। इन में जीव को छोडकर पुद्गल आदि सब अजीव द्रव्य के भेद हैं। यदि पर्याय सत् है-तो वह दो प्रकार की है (१) क्रमभावी और दूसरी सहभावी। यदि जीवद्रव्य सत् है तो

કરણ કરે છે. તેને પ્રતિપાદન કરવાનો વિષય વિશેષ છે, તેથા તે તેનું પ્રતિપાદન કરવાને જ તત્પર રહે છે. સંગ્રહનયના બે ભેદ છે-(૧) પર સંગ્રહનય અને (૨) અપરસંગ્રહનય. જડ ચેતનરૂપ અનેક વસ્તુઓમાં જે સદ્રૂપ એક સામાન્ય તત્ત્વ છે. એના પર જ નજર રાખીને બીજી વિશિષ્ટતાઓને ધ્યાનમાં લીધા વિના સઘળી વસ્તુઓને એકરૂપ માનીને એવો જે વિચાર કરવામાં આવે છે કે સંપૂર્ણ જગત સદ્રૂપ છે, કારણ કે સત્તા (અસ્તિત્વ)થી રહિત કોઈ પદાર્થ છે જ નહીં, તેનું જ નામ પરસંગ્રહનય દ્વારા ગૃહીત પદાર્થના વિષયમાં વ્યવહાર એવો વિચાર કરે છે કે જે સદ્રૂપ છે તે દ્રવ્ય છે કે પર્યાય છે ? જો તે દ્રવ્યસત્ રૂપ હોય તો તે પરમસંગ્રહનયનો વિષય હોવાને બદલે અપરસંગ્રહનયનો વિષય ગણી શકાય છે. જો તે દ્રવ્યસત રૂપ હોય તો શું તે જીવદ્રવ્યરૂપ છે કે અજીવદ્રવ્યરૂપ છે ? કારણ કે દ્રવ્યના પુદ્ગલ, ધર્મ, અધર્મ, આકાશ અને કાળ, આ પ્રકારે ૬ ભેદ પડે છે. તેમાંથી જીવ સિવાયના જે પાંચ ભેદો કહ્યા છે તે અજીવદ્રવ્યના ભેદો છે. જો પર્યાયસત્ હોય તો તે પર્યાય બે પ્રકારની હોય છે-(૧) ક્રમભાવી અને (૨) સહભાવી.

च," इत्यादि। तस्य एवमेव=नैगमवदेव एको देवदत्तादिरनुपयुक्त आगमत एकं द्रव्यावश्यकम्, द्वावनुपयुक्तौ आगमतो द्वे द्रव्यावश्यके, त्रयोऽनुपयुक्ता आगमतस्त्रीणि द्रव्यावश्यकानि। एवं यावन्तोऽनुपयुक्तास्तावन्ति आगमतो द्रव्यावश्यकानि विज्ञातव्यानि। विशेषार्थप्रतिपादकतया नैगमव्यवहारयोः साम्यम्, अतःक्रमप्राप्तं संग्रहमतिक्रम्य ग्रन्थलाघवार्थं व्यवहारस्योपन्यासो नैगममनुकृतः। सम्प्रति

कौन सा जीवद्रव्य संसारी जीव या मुक्त जीव? इस तरह यह व्यवहार नय वहां तक भेद करता चला जाता है कि फिर जिस से और भेद नहीं हो सके। जिस विधि से संग्रह किया जाता है उसी विधि से उनका विभाग किया जाता है। इस प्रकार नैगमनय की तरह ही अनुपयुक्त एक देवदत्त आदि व्यक्ति आगम द्रव्यावश्यक है। अनुपयुक्त दो व्यक्ति दो आगम द्रव्यावश्यक हैं। अनुपयुक्त तीन व्यक्ति तीन आगम द्रव्यावश्यक हैं। इस तरह जितने भी आगम में अनुपयुक्त व्यक्ति हैं वे सब उतने ही आगम द्रव्यावश्यक हैं। जिस प्रकार विशेषरूप अर्थ की प्ररूपणा नैगमनय करता है उसी प्रकार से उसकी प्ररूपणा व्यवहारनय भी करता है—एतावता इन दोनों में समानता है। इसीलिये सूत्रकारने क्रमप्राप्त संग्रहनय को छोडकर शास्त्र की लघुता निमित्त व्यवहारनय का उपन्यास संग्रहनय से पहिले और नैगमनय के पीछे किया है। संग्रहनय की विचारधारा के अनुसार आगम द्रव्यावश्यक एक ही है—वह इस प्रकार से सामान्य मात्र को विषय करनेवाला जो परा-

---

જો જીવદ્રવ્ય સત્ હોય તો કયું જીવદ્રવ્ય એવું છે–સંસારી જીવદ્રવ્ય એવું છે કે મુક્ત જીવદ્રવ્ય એવું છે? આ પ્રકારે આ વ્યવહારનય ત્યાં સુધી ભેદ કરતો જ જાય છે કે છેવટે એમાંથી અન્ય કોઈ ભેદ પાડી શકાય જ નહીં. જે વિધિથી સંગ્રહ કરવામાં આવે છે, એજ વિધિથી તેમનો વિભાગ કરવામાં આવે છે. આ પ્રકારે નૈગમનયની જેમજ અનુપયુક્ત એક દેવદત્ત આદિ વ્યકિત એક આગમ દ્રવ્યાવશ્યક છે. અનુપયુક્ત બે વ્યકિત બે આગમદ્રવ્યાવશ્યક છે. અનુપયુક્ત ત્રણ વ્યકિત ત્રણ આગમદ્રવ્યાવશ્યક છે. એજ પ્રમાણે જેટલી આગમમાં અનુપયુક્ત વ્યકિતઓ હોય, એટલાં જ આગમદ્રવ્યાવશ્યક સમજવા. જે પ્રકારે નૈગમનય વિશેષ રૂપ અર્થની પ્રરૂપણા કરે છે, એજ પ્રમાણે તેની પ્રરૂપણા વ્યવહારનય પણ કરે છે. એટલા પુરતી એ બન્નેમાં સમાનતા છે. તે કારણે સૂત્રકારે કમપ્રાપ્ત સંગ્રહનયને છોડીને શાસ્ત્રની લઘુતાને નિમિત્તે નૈગમનયની પછી અને સંગ્રહનયના પહેલાં વ્યવહારનયનો ઉપન્યાસ કર્યો છે.

સંગ્રહનયની માન્યતા અનુસાર આગમદ્રવ્યાવશ્યક એક જ છે. તે આ પ્રમાણે સમજવું–સામાન્ય માત્રને વિષય કરનારો જે પરામર્શ (અભિપ્રાય-માન્યતા) છે, તેનું

संग्रहनयमतेन प्राह-'संगहस्स' इत्यादिना। संग्रहस्य, सामान्यमात्रग्राही परामर्शः संग्रहः। स द्विविधः—परोऽपरश्च। सर्वं वस्तु एकं, सदूपत्वेनाविशेषात्। अयमर्थः-सर्वस्मिन् वस्तुनि सत्ता विद्यते, सा चैकैव, अतस्तां सत्तामाश्रित्य सर्वं वस्तु एकं सदित्युच्यते। सत्ताख्यं महासामान्यमाश्रित्य परसंग्रहः प्रोक्तः। अपरसंग्रहस्तु अवान्तरसामान्यं द्रव्यत्वपर्यायत्वादिकमाश्रित्य भवति। यथा—'धर्माधर्माकाशकालपुद्गलजीवद्रव्याणामैक्यं द्रव्यत्वाभेदात्' इत्यादि। अयमर्थः—

मर्श है उसका नाम संग्रहनय है। यह संग्रहनय पर सामान्य और अपरसामान्य को विषय करने की दृष्टि से दो प्रकार का है—परसामान्य को विषय करनेवाला—परसंग्रहनय और अपरसामान्य को विषय करनेवाला अपरसंग्रहनय है। सत्ता नाम का महा सामान्य परसामान्य है। द्रव्यत्व, पर्यायत्व आदि जो अवान्तर सामान्य है वह अपरसामान्य की अविशेषता से एक है—अर्थात् ऐसी कोई वस्तु नहीं है कि जिस में सत्ता नहीं हो अतः—अब सब में सत्ता विद्यमान है और वह सत्ता एक ही है—तब इस सत्ता को लेकर सब वस्तुएँ एक स्वरूप हैं। यह परसंग्रहनय की विचार धारा है। अपरसंग्रहनय की विचारधारा अवान्तर सामान्य को लेकर चलती है—जैसे धर्म, अधर्म आकाश काल, पुद्गल और जीव इन द्रव्यों में द्रव्यत्वजाति की अपेक्षा अभेद होने से एकता है। क्यों कि इनमें इसी से द्रव्य द्रव्य ऐसा

નામ સંગ્રહનય છે. તે સંગ્રહનય પરસામાન્ય અને અપરસામાન્યને વિષય કરવાની દૃષ્ટિએ બે પ્રકારનો છે. પર સામાન્યને વિષય કરનારો પરસંગ્રહનય છે અને અપરસામાન્યને વિષય કરનારો અપરસંગ્રહનય છે સત્તા નામના મહાસામાન્યને પરસામાન્ય કહે છે. દ્રવ્યત્વ, પર્યાયત્વ, આદિ જે અવાન્તર સામાન્ય છે, તેને અપરસામાન્ય કહે છે. જ્યારે એવો વિચાર કરવામાં આવે છે કે સમસ્ત વસ્તુ સત્તા સામાન્યની અવિશેષતાની અપેક્ષાએ એક જ છે-એટલે કે એવી કોઈ વસ્તુ જ નથી કે જેમાં સત્તા જ (અસ્તિત્વજ) ન હોય. આ રીતે સઘળી વસ્તુઓમાં સત્તા વિદ્યમાન છે અને તે સત્તા એક જ છે, જો એ સત્તાની દૃષ્ટિએ વિચાર કરવામાં આવે તો સઘળી વસ્તુઓ એક સદ્રૂપ જ છે. આ પ્રકારની પરસંગ્રહનયની વિચારધારા (માન્યતા) છે.

અપરસંગ્રહનયની વિચારધારા અવાન્તર સામાન્યની અપેક્ષાએ ચાલે છે-જેમકે ધર્મ, અધર્મ, આકાશ. કાળ. પુદ્ગલ અને જીવ, આ દ્રવ્યોમાં દ્રવ્યત્વજાતિની અપેક્ષાએ અભેદ હોવાથી એકતા છે. કારણ કે તેમનામાં તેના દ્વારા જ દ્રવ્યાદ્રવ્ય એવું જ્ઞાન અને દ્રવ્યાદ્રવ્ય એવી વચનપ્રવૃત્તિ થાય છે. એજ વાતને

लोके हि धर्मो द्रव्यम् अधर्मो द्रव्यम्,आकाशो द्रव्यं, कालो द्रव्यं, पुद्गलो द्रव्यं-जीवो द्रव्यम्, इत्येवमुच्यते, अतो ज्ञायते-धर्मादौ द्रव्यत्वं वर्तत इति। एक-मेव द्रव्यत्वं धर्मादिषु षट्सु विद्यते। द्रव्यत्वेन धर्मादीनामेकत्वं संगृह्यते। एवं चेतनाचेतनपर्यायाणां सर्वेषामेकत्वं संगृह्यते, पर्यायत्वाविशेषादिति। एवंभूतो यः संग्रहो नयस्तस्यापेक्षया खलु एको वा अनेके वा अनुपयुक्तो वा अनुपयुक्ता वा यद् आगमतो द्रव्यावश्यकं द्रव्यावश्यकानि वा। तत् किमित्याह-'से एगे' इति। तदेकं द्रव्यावश्यकम्। अस्या माशयः-संग्रहनयो हि सामान्यस्यैव ग्राहकः न तु विशेषाणाम्, तस्मात् सामान्यव्यतिरेकेण विशेषसिद्धेर्यानि कानिचिद् द्रव्या-

---

ज्ञान और द्रव्य, द्रव्य ऐसीवचन प्रवृत्ति होती है। इसी बात को "धर्मो द्रव्यं अधर्मो द्रव्यं, आकाशो द्रव्यं, कालो द्रव्यं पुद्गलो द्रव्यं, जीवो द्रव्यं" इन पदोंद्वारा प्रगट किया है, इस तरह अनुवृत्ति प्रत्यय होने से यह प्रतीत होता है कि इनमें द्रव्यत्व है। और यह द्रव्यत्व धर्मादिक ६ द्रव्यव्यक्तियों में एक ही है। इसलिये इस द्रव्यत्व की अपेक्षा धर्मादिक द्रव्यों में एकता का संग्रह हो जाता है। इसी तरह से सचेतन और अचेतन द्रव्यों की जितनी भी पर्यायें हैं उन सब में भी पर्यायत्वरूप सामान्य की अपेक्षा से एकता का संग्रह हो जाता है। इस प्रकार का जो यह संग्रहनय है। उस की अपेक्षासे चाहे तो एक आगम में अनुपयुक्त देवदत्तादि व्यक्ति हों चाहे अनेक देवदत्तादि व्यक्ति हों वे सब एक ही आगमद्रव्यावश्यक हैं। तात्पर्य इसका यह है-कि संग्रहनय एक सामान्यमात्र का ही ग्राहक है, विशेषों का नहीं। इसलिये विशेष की अपेक्षा जो अनेक आगम द्रव्यावश्यक हैं वे सब जब सामान्य के अतिरिक्त

"धर्मो द्रव्यं अधर्मो द्रव्यं, आकाशो द्रव्यं, पुद्गलो द्रव्यं जीवो द्रव्यं" આ પદો દ્વારા પ્રકટ કરવામાં આવી છે. આ રીતે અનુવૃત્તિ પ્રત્યય હોવાથી એવું લાગે છે કે તેમનામાં દ્રવ્યત્વ છે. અને તે દ્રવ્યત્વ ધર્માદિક ૬ દ્રવ્યવ્યક્તિઓમાં (પદાર્થોમાં) એક જ છે. તેથી આ દ્રવ્યની અપેક્ષાએ ધર્માદિક દ્રવ્યોમાં એકતાનો સંગ્રહ થઈ જાય છે. એજ પ્રમાણે સચેતન અને અચેતન દ્રવ્યોની જેટલી પર્યાયો છે, તે સઘળી પર્યાયોમાં પણ પર્યાયત્વરૂપ સામાન્યની અપેક્ષાએ એકતાનો સંગ્રહ થઈ જાય છે. આ પ્રકારનો સંગ્રહનય છે તેની અપેક્ષાએ એક આગમમાં અનુપયુક્ત દેવદત્ત આદિ વ્યક્તિ પણ એક જ આગમદ્રવ્યાવશ્યક છે, અને અનુપયુક્ત દેવદત્ત આદિ અનેક વ્યક્તિઓ પણ એકજ આગમદ્રવ્યાવશ્યક છે. આ કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે સંગ્રહ-નય એક સામાન્ય માત્રનો જ ગ્રાહક છે. વિશેષોનો ગ્રાહક નથી. તેથી વિશેષની અપેક્ષાએ જે અનેક આગમદ્રવ્યાવશ્યક છે, તે બધાં જ જો સામાન્ય છે-વિશેષોરૂપ

वश्यकानि तानि सर्वाणि सामान्यापेक्षया सत्ताया एकत्वादेकमेव, अतः संग्रह-नयमते एकमेव द्रव्यावश्यकम्। इति।

अथ ऋजुसूत्रमते आह-'उज्जुसुयस्स' इत्यादि। ऋजुसूत्रस्य ऋजु=वर्तमानक्षणस्थायि पर्यायमात्रं प्राधान्यतः सूत्रयति-सूचयतीति ऋजुसूत्रः। यथा

विशेष हैं ही-नहीं तो उसकी अपेक्षा जायमान ये अनेक आगम द्रव्यावश्यक सत्ता की एकता के कारण एक ही हैं। इसलिये संग्रहनय के मत में एक ही द्रव्यावश्यक है। अब सूत्रकार ऋजु सूत्रनय की अपेक्षा आगम द्रव्यावश्यक का विचार करते हैं-वर्तमानक्षण स्थायि पर्यायमात्र को जो प्रधानता से विषय करता है उसका नाम ऋजु सूत्रनय है। नैगम, संग्रह और व्यवहार ये तीन नय पदार्थों की विविध अवस्थाओं की ओर ध्यान नहीं देते हैं। इसलिये उन्हें क्या पता कि वर्तमान में पदार्थ का क्या रूप है। इसीलिये इन तीन नयों को द्रव्यार्थिकनय माना गया है। क्यों कि इनमें द्रव्य को ही विषय करने की मुख्यता है। पर्यायों की तरफ इनका लक्ष्य नहीं है-क्योंकि इन की दृष्टि में अविवक्षित है-गौण-हैं। परन्तु ऐसा तो हो ही नहीं सकता कि विचारक का ध्यान केवल द्रव्य पर ही रहे, पर्याय पर न जावे। विचारक के विचार जिस प्रकार विविध पदार्थों का उनकी विविध अवस्थाओं की विवक्षा किये विना वर्गीकरण और विभाग करते हैं उसी प्रकार वे उन पदार्थों की विविध अवस्थाओं को भी अपने लक्ष्य में रखते हैं। किंतु

જ નથી, તો તેની અપેક્ષાએ જાયમાન તે અનેક આગમદ્રવ્યાવશ્યક સત્તાની એકતાને કારણે એક જ છે. તેથી સંગ્રહનયની માન્યતા અનુસાર તો એકજ દ્રવ્યાવશ્યક છે

હવે સૂત્રકાર ઋજુસૂત્રનયની અપેક્ષાએ આગમદ્રવ્યાવશ્યકનો વિચાર કરે છે-વર્તમાન ક્ષણસ્થાયી પર્યાયમાત્રનો જ જે મુખ્યત્વે વિચાર કરે છે, તે નયનું નામ ઋજુસૂત્રનય છે. નૈગમ, સંગ્રહ અને વ્યવહાર, આ ત્રણ પ્રકારના નય, પદાર્થની વિવિધ અવસ્થાઓ તરફ ધ્યાન દેતાં નથી, તેથી તે નયને આધારે એવું કેવી રીતે જાણી શકાય કે વર્તમાનમાં પદાર્થનું કેવું સ્વરૂપ છે? તે કારણે તે ત્રણ નયને દ્રવ્યાર્થિક નય માનવામાં આવેલ છે. કારણ કે તેમાં દ્રવ્યને જ વિષય કરવાની-દ્રવ્યનો જ વિચાર કરવાની-પ્રધાનતા હોય છે: પરન્તુ પર્યાયોની તરફ તેમનું લક્ષ્ય હોતું નથી, કારણ કે તે તો તેમની દૃષ્ટિએ અવિવક્ષિત અથવા ગૌણ છે. પણ વિચારકનું ધ્યાન કેવળ દ્રવ્ય પર જ રહે અને પર્યાય પર ન જાય એવું તો સંભવી શકતું નથી. વિચારકના વિચારો જે પ્રમાણે વિવિધ પદાર્થોનું-તેમની વિવિધ અવસ્થાઓની વિવિક્ષા કર્યા વિના-ધ્યાનમાં લીધા વિના જેમ વર્ગીકરણ અને વિભાગીકરણ કરે છે, એજ પ્રમાણે તેઓ વિવિધ પદાર્થોની વિવિધ અવસ્થાઓને પણ

'संप्रति सुखविवर्तोऽस्ति' इत्यादि। अनेन वाक्येन हि वर्तमानक्षणवर्ति सुखाख्यं पर्यायमात्रं प्रदर्श्यते। तस्य मते-एको देवदत्तादिः अनुपयुक्तः, आगमत एकं द्रव्यावश्यकम्। अयं भावः-ऋजुसूत्रनयो हि वर्तमानकालिकमेव पर्यायवस्तुं बोधयति, नातीतं विनष्टत्वात्, नाप्यनागतमनुत्पन्नत्वात्। वर्तमानकालिकमपि

विविध अवस्थाओं का सम्मेलन द्रव्य कोटि में आता है पर्याय कोटि मे आता है क्योंकि पर्याय एक क्षणवर्ती होती है। उसमें भी वर्तमान का नाम ही पर्याय है। क्योंकि अतीत विनष्ट और अनागत अनुत्पन्न होने के कारण उनमें पर्याय का व्यवहार नहीं हो सकता। इसी से ऋजु सूत्रनय का विषय वर्तमान पर्यायमात्र कहा गया है। आशय यह है कि यह नय विद्यमान अवस्थारूप से ही वस्तु को स्वीकार करता है। द्रव्य उसमे सर्वथा अविवक्षित रहता है। अतः पर्याय संबन्धी जितने भी विचार होते हैं वे सब ऋजु सूत्रनय की श्रेणि में आते हैं। जैसे "संप्रति सुखविवर्तोऽस्ति" इस समय सुखयुक्त है इस वाक्य से वर्तमानक्षणवर्ती सुख नाम की पर्यायमात्र दिखलाई गई है। इसके मत में एक अनुपयुक्त देवदत्तादि एक आगम द्रव्यावश्यक है। यह अभी २ स्पष्ट किया गया है कि वर्तमानकालीन पर्याय वस्तु को ही यह नय विषय करता है अतीत अनागत पर्यायों को नहीं-क्योंकि अतीत पर्याय विनष्ट है और अनागत पर्यायें अनुत्पन्न हैं। वर्तमान कालीन पर्याय में भी जो

લક્ષ્યમાં રાખે છે. પરંતુ વિવિધ અવસ્થાઓનું સંમેલન દ્રવ્યકોટિમાં આવે છે-પર્યાયકોટિમાં આવતું નથી. વાસ્તવમાં તો એક પર્યાય જ પર્યાયકોટિમાં આવે છે, કારણ કે પર્યાય એક ક્ષણવર્તી હોય છે. તેમાં પણ વર્તમાનનું નામજ પર્યાય છે. કારણ કે અતીત (ભૂતકાલિન) વિનષ્ટ હોય છે અને અનાગત (ભવિષ્ય કાલિન) અનુત્પન્ન હોય છે. તે કારણે તેમનામાં પર્યાયનો વહેવાર થઇ શકતો નથી. તે કારણે ઋજુસૂત્ર નયનો વિષય વર્તમાન પર્યાય માત્ર જ કહ્યો છે. આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે આ નય વિદ્યમાન અવસ્થા રૂપે જ વસ્તુનો સ્વીકાર કરે છે. દ્રવ્ય તેમાં સર્વથા અવિવક્ષિત રહે છે. તેથી પર્યાય સંબંધી જેટલાં વિચારો હોય છે, તે બધાં ઋજુસૂત્રનયની શ્રેણિમાં આવી જાય છે. જેમકે "संप्रति सुखविवर्तोऽस्ति" આ વાક્યથી વર્તમાન ક્ષણવર્તી સુખ નામની પર્યાય માત્ર જ બતાવવામાં આવી છે. ઋજુસૂત્રનયની માન્યતા અનુસાર એક અનુપયુકત દેવદત્તાદિ એક આગમદ્રવ્યાવશ્યક છે. એ વાત તો આગળ સ્પષ્ટ કરવામાં આવી ચૂકી છે કે આ નય વર્તમાન કાલિન પર્યાયવસ્તુને જ વિષય કરે છે-અતીત અનાગત પર્યાયોને વિષય કરતો નથી કારણ કે અતીત (ભૂતકાલિન) પર્યાયો વિનષ્ટ હોય છે અને અનાગત (ભવિષ્ય

स्वकीयमेव बोधयति स्वकार्यसाधकत्वात् स्वधनवत्, न तु परकीयं, स्वकार्यासाधकत्वात् परधनवत्, तस्मादेको देवदत्तादिरनुपयुक्तोऽस्य मते आगमत एकं द्रव्यावश्यकम्, इति। अयं नयः—पृथक्त्वं नेच्छति-अतीतानागतभेदतः परकीयभेदतश्च पार्थक्यं नाभिलषति, किंतु वर्तमानकालिकं स्वगतमेव वस्तु, तच्चैकमेव। तस्मादेकमेव द्रव्यावश्यकमेतन्नयमते।

शब्दादींस्त्रीन् नयान् समाश्रित्य कथयति—'तिण्हं सद्दनयाणं' इत्यादि। त्रयाणां शब्दप्रधाना नयाः शब्दनयाः=शब्दसमभिरूढैवम्भूता, एते हि अर्थावगमकारणत्वात् शब्दस्यैव प्राधान्यमिच्छन्ति, न तदर्थस्य। शब्दादेवार्थप्रतीतेः, तेषां

अपनी पर्याय है उसे ही कहता है क्योंकि वही स्वधन की तरह अपने कार्य की साधक होती है। परकीय पर्याय को वह विषय नहीं करती है कारण वह अपने कार्य की साधक नहीं होती है जैसे परका धन। इस नयकी दृष्टि में इसी कारण से पृथक्त्व—नानात्व नहीं है—अर्थात् अतीत अनागत के भेद से और परकीय भेद से यह पर्यायों में भिन्नता नहीं मानता है। किन्तु वर्तमान कालिक स्वगत पर्याय को ही वास्तविक मानता है और एक ही है ऐसा प्रतिपादन करता है। इसलिये इस नय की मान्यतानुसार आगमद्रव्यावश्यक एक ही है—अनेक नहीं।-अब सूत्रकार शब्द, समभिरूढ और एवंभूत नय को लेकर आगमद्रव्यावश्यक का विचार करते हैं।-शब्दप्रधाननयों का नाम शब्दनय है और ऐसे ये तीन नय हैं। अर्थावगम अर्थ का ज्ञान होने का कारण होने से शब्द की ही ये प्रधानता मानते हैं—अर्थ की नहीं। इन नयों की ऐसी

કાલિન) પર્યાયો અનુત્પન્ન હોય છે. વર્તમાનકાલિન પર્યાયમાં પણ જે પોતાની પર્યાય છે તેને જ તે બતાવે છે. કારણ કે એજ પોતાના ધનની જેમ પોતાના કાર્યની સાધક હોય છે. કારણ કે એજ પોતા । ધનની જેમ પોતાના કાર્યની સાધક હોય છે. પરકીય પર્યાયને તે વિષય કરતો નથી. કારણ કે અન્યના ધનની જેમ તે પોતાના કાર્યની સાધક હોતી નથી. આ નયની દૃષ્ટિએ એજ કારણે પૃથક્ત્વ—વૈવિધ્ય નથી કારણ કે અતીત અનાગતના ભેદથી અને પરકીય ભેદથી આ નય પર્યાયોમાં ભિન્નતા માનતો નથી. પરન્તુ વર્તમાનકાલિક સ્વગત પર્યાયને જ તે વાસ્તવિક માને છે અને એક જ છે એવું પ્રતિપાદન કરે છે. તેથી આ નયની માન્યતા અનુસાર આગમ દ્રવ્યાવશ્યક એક જ છે અનેક નથી.

હવે સૂત્રકાર શબ્દનય, સમભિરૂઢ નય અને એવંભૂત નયની દૃષ્ટિએ આગમ દ્રવ્યાવશ્યકનો વિચાર કરે છે— શબ્દ પ્રધાન નયોનું નામ શબ્દનય છે. અને એવાં આ ત્રણ નય છે. અર્થાવગમ (અર્થનો બોધ)નું કારણ હોવાથી શબ્દની જ પ્રધાનતા

ज्ञायकः-ज्ञाता, अथ च अनुपयुक्तः, इत्येतत् अवस्तु=असत्, न संभवतीत्यर्थः। कस्मात् एवमुच्यते ? इत्याह-'जइ' इत्यादि-यदि ज्ञायको भवति, अथ अनुपयुक्तो न भवति, यदि अनुपयुक्तो भवति तर्हि ज्ञायको न भवति। अयं भावः-आवश्यकशास्त्रज्ञस्तत्र चानुपयुक्त आगमतो द्रव्यावश्यकमिति पूर्वं प्ररूपितम्। एतच्च शब्दादिनया न स्वीकुर्वन्ति। एतेषां मते यो हि-आवश्यकशास्त्रज्ञः सोऽनुपयुक्तो न भवितुमर्हति, यो हि-अनुपयुक्तः स आवश्यकशास्त्रज्ञो न भवितुमर्हति, ज्ञानस्योपयोगरूपत्वात्। एते हि शुद्धनयमाश्रित्य वस्त्वभ्युपगच्छन्ति,

---

मान्यता है कि द्रव्य और पर्याय के संबन्ध में जितने विचार होते हैं उनका वर्गीकरण उपर्युक्त चार नयों में ही हो जाता है। जिनका वर्गीकरण स्वतंत्र नय द्वारा किया जाय ऐसे विचार ही शेष नहीं रहते। तथापि विचारों को प्रकट करने और इष्ट पदार्थ का ज्ञान कराने का प्रधान साधन शब्द है। इसलिये इसकी मुख्यता से जितना भी विचार किया जाता है वह सब तीन नयों की ही कोटि में आता है। ये नय यह कहते हैं कि अबतक शब्द प्रयोग की विविधता होने पर भी अर्थ में भेद स्वीकार नहीं किया गया है-परन्तु जहां शब्दनिष्ठ तारतम्य है उसके अनुसार अवश्य अर्थभेद है। इसीलिये ये कहते हैं कि यह बात कैसे बन सकती है कि जो आवश्यक शास्त्र का ज्ञाता है वह उसमें अनुपयुक्त है। क्योंकि ज्ञाता होने पर अनुपयुक्त-और अनुपयुक्त होने पर ज्ञाता वह असत् है-संभवित नहीं होता है।

આ ત્રણે નયો માને છે—અર્થની પ્રધાનતા માનતા નથી. આ નયોની એવી માન્યતા છે કે દ્રવ્ય અને પર્યાયના સંબંધમાં જેટલા વિચારો હોય છે. તે વિચારોનું વર્ગીકરણ ઉપર્યુકત ચાર નયમાં જ થઈ જાય છે.

જેમનું વર્ગીકરણ સ્વતંત્ર નય દ્વારા કરી શકાય એવો કોઇ વિચાર જ બાકી રહેતો નથી. છતાં પણ વિચારોને પ્રકટ કરનાર અને ઈષ્ટ પદાર્થોનું જ્ઞાન કરાવનાર મુખ્ય સાધન શબ્દ છે. તેથી તેની (શબ્દની) પ્રધાનતાની અપેક્ષાએ જેટલા વિચારો કરવામાં આવે છે તેટલા વિચારોને આ ત્રણ નયોની કોટિમાં જ મૂકી શકાય છે. તે નયો એ બતાવે છે કે હજી સુધી શબ્દ પ્રયોગની વિવિધતા હોવા છતાં પણ અર્થમાં ભેદનો સ્વીકાર કરવામાં આવ્યો નથી પરન્તુ જ્યાં શબ્દ નિષ્ઠ તારતમ્ય છે. તેના અનુસાર અર્થભેદ પણ અવશ્ય છે જ. તેથી તેઓ કહે છે કે-"એવી વાત કેવી રીતે સંભવી શકે કે જે આવશ્યકશાસ્ત્રનો જ્ઞાતા છે. તે તેમાં અનુપયુકત છે, કારણકે જ્ઞાતા હોવા છતાં પણ અનુપયુકત હોય અને અનુપયુકત હોવા છતાં પણ જ્ઞાતા હોય એ વાત જ અસંભવિત હોય છે. જ્ઞાતા હોય તો તે તેમાં ઉપયુકત

अतो यद्यप्यागमकारणत्वादात्मदेहादिकमागमत्वेनोक्तं तदप्यौपचारिकम्, अतस्तदागमत्वेन न प्रतिपद्यन्ते। तस्मादेतन्मते द्रव्यावश्यकस्य असंभवएवेति। उक्तार्थमुपसंहरन्नाह—'से तं आगमओ दव्वावस्सयं' इति। तदेतदागमतो द्रव्यावश्यकम् ॥ सू० १५ ॥

ज्ञाता है तो वह उस में उपयुक्त है। अनुपयुक्त है तो वह उस का ज्ञाता नहीं है। अतः आवश्यक शास्त्र के अनुपयुक्त ज्ञाता को लेकर जो आगमद्रव्यावश्यक की प्ररूपणा की ये शब्दादिनय स्वीकार नहीं करते हैं। क्योंकि ज्ञाता और अनुपयुक्तता का समन्वय बैठता नहीं है। अनुपयुक्तता की स्थिति में वह आवश्यकशास्त्र का ज्ञाता ही नहीं हो सकता है। ज्ञाता शब्द का अर्थ "उस संबन्धी ज्ञानवाला" ऐसा होता है। जब तत्संबन्धी ज्ञानवाला वह है तो इसका तात्पर्य यही है कि वह ज्ञान के उपयोगवाला है। क्योंकि ज्ञान स्वयं उपयोगरूप है। ये तीनों नय शुद्धनय को आश्रित करके वस्तु को स्वीकार करते हैं। इसलिये जो "आगम के कारण होने से आत्मा तदधिष्ठित देह, और शब्द ये आगमरूप हैं" ऐसा कहा है। क्योंकि ये आगमरूप से नहीं माने जाते हैं। इसलिये इन नयों के मन्तव्यानुसार आगमद्रव्यावश्यक असंभव ही है। इस तरह पूर्व प्रक्रान्त आगमद्रव्यावश्यक का स्वरूप इस प्रकार का कहा है।

(ઉપયોગ સંપન્ન) હોય અને અનુપયુક્ત હોય તો તેનો જ્ઞાતા જ ન હોય એ વાત જ સંભવી શકે છે. તેથી આવશ્યકશાસ્ત્રના અનુપયુક્ત જ્ઞાતાની અપેક્ષાએ જે આગમ વ્યાવશ્યકની પ્રરૂપણા કરી છે. એ પ્રરૂપણાનો આ શબ્દાદિ ત્રણ પ્રકારના નયો સ્વીકાર કરતા નથી. કારણ કે જ્ઞાતા અને અનુપયુક્તતાનો સમન્વય જ સંભવી શકતો નથી. અનુપયુક્તતાની સ્થિતિમાં તે આવશ્યકશાસ્ત્રનો જ્ઞાતા જ સંભવી શકતો નથી. ('જ્ઞતા' એટલે "તેના સંબંધી જ્ઞાન ધરાવનારો." આ પ્રકારનો અર્થ સમજવો) જો તે જ્ઞાતા હોય એટલે કે તે વિષયના જ્ઞાનથી સંપન્ન હોય. તો તેનું તાત્પર્ય એજ છે કે તે જ્ઞાનના ઉપયોગવાળો (ઉપયુક્ત) છે. કારણ કે જ્ઞાન પોતે જ ઉપયોગરૂપ હોય છે આ ત્રણે નય શુદ્ધ નયને આધારે વસ્તુનો સ્વીકાર કરે છે. તેથી એવું જે કહેવામાં આવ્યું છે કે "આગમનાં કારણરૂપ હોવાથી આત્મા તદધિષ્ઠિત દેહ અને શબ્દ એ આગમરૂપ છે." આ કથન પણ ઔપચારિક કથન જ છે. કારણ કે તેમને આગમરૂપ માનવામાં આવતા નથી. તેથી આ ત્રણે નયોની માન્યતા અનુસાર આગમદ્રવ્યાવશ્યક સંભવિત જ નથી. આ રીતે પૂર્વપ્રકાન્ત આગમદ્રવ્યાવશ્યકનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનુ કહ્યું છે.

सम्प्रति नोआगमता द्रव्यावश्यकं प्राह—

मूलम्—से किं तं नो आगमओ दव्वावस्सयं ? नो आगमओ दव्वावस्सयं तिविहं पण्णत्तं, तं जहा-जाणयसरीरदव्वावस्सयं, भवियसरीरदव्वावस्सयं, जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं दव्वावस्सयं ।सू०१६,

छाया—अथ किं तद् नोआगमतो द्रव्यावश्यकम्, नो आगमतो द्रव्या-

अयं भावः—सूत्रकार ने नैगमादि सात नयों की मान्यता को आश्रित करके आगमद्रव्यावश्यक में एकत्व अनेकत्व आदि का प्रतिपादन किया है। नैगमनय की अपेक्षा से आगमद्रव्यावश्यक में एकत्व और अनेकत्व है। संग्रहनय की अपेक्षा से उसमें केवल एकत्व है। व्यवहारनय की अपेक्षा से एक और अनेक आगम द्रव्यावश्यक हैं। ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा से आगमद्रव्यावश्यक एक ही हैं। शब्द, समभिरूढ और एवंभूत इन तीन नयों की अपेक्षासे आगमद्रव्यावश्यक है ही नहीं। इन सब नयों की मान्यताओं का स्पष्टीकरण टीका के अर्थ में करदिया गया है। ॥ सूत्र १५॥

अब सूत्रकार नोआगमद्रव्यावश्यक का प्रतिपादन करते हैं—

"से किं तं नो आगमओ" इत्यादि। ॥ सूत्र १६ ॥

शब्दार्थ—(से किं तं नोआगमओ दव्वावस्सयं) हे भदंत! नोआगम

સંક્ષિપ્ત ભાવાર્થ—સૂત્રકારે નૈગમ આદિ સાત નયોની માન્યતાનો આધાર લઈને આગમદ્રવ્યાવશ્યકમાં એકત્વ, અનેકત્વ આદિનું પ્રતિપાદન કર્યું છે. નૈગમનયની માન્યતા અનુસાર આગમદ્રવ્યાવશ્યકમાં એકત્વ અને અનેકત્વ છે. સંગ્રહનયની માન્યતા અનુસાર તેમાં માત્ર એકત્વ જ છે. વ્યવહારનયની માન્યતા અનુસાર એક આગમદ્રવ્યાવશ્યક પણ છે અને અનેક દ્રવ્યાવશ્યક પણ છે. ઋજુસૂત્રનયની માન્યતા પ્રમાણે આગમદ્રવ્યાવશ્યક એક જ છે. શબ્દનય, સમભિરૂઢનય અને એવંભૂતનય. આ ત્રણે નયોની માન્યતા અનુસાર આગમદ્રવ્યાવશ્યક છે જ નહીં. આ સઘળા નયોની માન્યતાનું સ્પષ્ટીકરણ ટીકાર્થમાં કરવામાં આવ્યું છે. ॥સૂ૦ ૧૫॥

હવે સૂત્રકાર "નોઆગમદ્રવ્યાવશ્યકનું" પ્રતિપાદન કરે છે—

"से किं तं नोआगमओ" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(से किं तं नो आगमओ दव्वावस्सयं ?) હે ભગવન્! નો આગમને આશ્રિત કરીને દ્રવ્યાવશ્યકનું કેવું સ્વરૂપ છે ?

वश्यकं त्रिविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-ज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यकम्, भव्यशरीरद्रव्यावश्यकम्, ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यावश्यकम् ॥सू० १६॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि—

अथ किं तद् नो आगमतो द्रव्यावश्यकम् ? इति शिष्यप्रश्नः। उत्तरयति—'नोआगमओ दव्वावस्सयं तिविहं पण्णत्तं' इत्यादि। नो आगमतो द्रव्यावश्यकं त्रिविधं प्रज्ञप्तम्। अत्र नो शब्दः सर्वथा प्रतिषेधे देशतः प्रतिषेधेऽपि च वर्तते। तथा च सर्वथा आगमाभावमाश्रित्य द्रव्यावश्यकं, तथा-देशतः आगमाभावमाश्रित्य द्रव्यावश्यकं च नोआगमतो द्रव्यावश्यकमिति। तत् त्रिविधं प्रज्ञप्तं=तीर्थंकरैः प्ररूपितमित्यर्थः। (१) ज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यकं, (२) भव्यशरीरद्रव्यावश्यकम्, (३) ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यावश्यकंचेति। तत्र—ज्ञानवानिति ज्ञायकः, शीर्यते

को आश्रित कर के द्रव्यावश्यक का क्या स्वरूप है ? उत्तर—(नोआगमओ दव्वावस्सयं तिविहं पण्णत्तं) नोआगम की अपेक्षा करके द्रव्यावश्यक तीन प्रकार का प्रज्ञप्त हुआ है। (तंजहा) उसके वे तीन प्रकार ये हैं—(जाणयसरीरदव्वावस्सयं, भविअसरीरदव्वावस्सयं, जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं दव्वावस्सयं) (१) ज्ञायक शरीर द्रव्यावश्यक (२) भव्य शरीरद्रव्यावश्यक, और ज्ञायक शरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्यावश्यक। नो शब्द सर्वथा प्रतिषेध में और किञ्चित् प्रतिषेध में भी आता है। नो आगमद्रव्यावश्यक में नो शब्द इन्हीं दोनों अर्थों में व्यवहृत हुआ है। इस तरह आगम के सर्वथा अभाव को और आगम के एकदेश अभाव को लेकर द्रव्यावश्यक बनता है। यह नो आगम द्रव्यावश्यक ज्ञायक शरीर आदि के भेद से ३ प्रकार का है। जो आगमशास्त्र को जान चुका है ऐसे ज्ञायक का निर्जीव शरीर नोआगम-

---

ઉત્તર—(नोआगमओ दव्वावस्सयं तिविहं पण्णत्तं) નો આગમની અપેક્ષા-દ્રવ્યાવશ્યકના ત્રણ પ્રકાર કહ્યા છે. (तंजहा) તે ત્રણ પ્રકારો નીચે પ્રમાણે સમજવા—

(जाणयसरीरदव्वावस्सयं, भविअसरीरदव्वावस्सयं, जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं दव्वावस्सयं) (१) જ્ઞાયકશરીર દ્રવ્યાવશ્યક. (૨) ભવ્યશરીર દ્રવ્યાવશ્યક અને જ્ઞાયકશરીર ભવ્યશરીર વ્યતિરિકત દ્રવ્યાવશ્યક.

ટીકાર્થ—"नो" શબ્દ સર્વથા નિષેધ અથવા અંશતઃ નિષેધના અર્થમાં વપરાય છે. "નોઆગમ દ્રવ્યાવશ્યકમાં" જે 'નો' શબ્દ આવ્યો છે તે ઉપર્યુકત બન્ને અર્થમાં વપરાયો છે. આ રીતે આગમના સર્વથા અભાવને અને આગમના એક દેશતઃ અભાવને લઈને દ્રવ્યાવશ્યક બને છે. આ નોઆગમદ્રવ્યાવશ્યક જ્ઞાયક શરીર આદિના ભેદથી ત્રણ પ્રકારનો કહ્યો છે. જે આગમનું જાણી ચુકયો છે એવા જ્ઞાયકનું નિર્જીવ શરીર નો આગમદ્રવ્યવાશ્યક છે. આગામી કાળમાં જે જીવ વિવક્ષિત

प्रतिक्षणं क्षीयते इति शरीरं, ज्ञायकस्य शरीरं ज्ञायकशरीरं तदेव द्रव्यावश्यकमिति विग्रहः जीवपरित्यक्तमावश्यकशास्त्रज्ञानवतः शरीरं ज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यकम्। विवक्षितपर्यायेण भविष्यतीति भव्यस्तस्य शरीरं भाविभावावश्यककारणत्वात् द्रव्यावश्यक हैं। विवक्षित पर्याय से युक्त जो आगामी काल में होगा उसका नामभव्य है। भावि भावरूप आवश्यक का कारण होने से उसका शरीर भव्य शरीर द्रव्यावश्यक है ज्ञायक शरीर और भव्यशरीर इन दोनों से भिन्न जो द्रव्यावश्यक है वह ज्ञायक शरीर–भव्य शरीर व्यतिरिक्त द्रव्यावश्यक है। इस प्रकार यह तीन प्रकार का नो आगमद्रव्यावश्यक है।

भावार्थ—नो आगमद्रव्यावश्यक का स्वरूप प्रकट करने के लिये सूत्रकार ने इसके तीन भेद किये है–(१) ज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यक, (२) भव्य शरीरद्रव्यावश्यक और (३) तद्व्यतिरिक्त द्रव्यावश्यक। नोआगम द्रव्यावश्यक में नो शब्द आगम के सर्वथा निषेध करने में प्रयुक्त हुआ है–तथा च–जीव पहिले आवश्यकशास्त्र का ज्ञाता था वह जब मर जाता है–पर्यायान्तरित हो जाता है तब उस समय का निर्जीव शरीर है वह आगमाभाव से विशिष्ट होने के कारण ज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यक है। इसी तरह जो आगामी काल में आवश्यकशास्त्र का ज्ञाता होगा ऐसे उसका जो शरीर है वह भव्यशरीर

પર્યાયથી યુકત થવાનો છે, તેને ભવ્યજીવ કહે છે. ભાવિ સ્વભાવરૂપ આવશ્યકનું કારણ હોવાથી તેનું શરીર ભવ્યશરીર દ્રવ્યાવશ્યક ગણાય છે. જ્ઞાયક શરીર દ્રવ્યાવશ્યક અને ભવ્યશરીર દ્રવ્યાવશ્યકથી ભિન્ન જે દ્રવ્યાવશ્યક છે તેને જ્ઞાયકશરીર–ભવ્યશરીર વ્યતિરિકત દ્રવ્યાવશ્યક કહે છે. આ પ્રમાણે આ ત્રણ પ્રકારનો આ નોઆગમ દ્રવ્યાવશ્યક છે.

ભાવાર્થ—નોઆગમ દ્રવ્યાવશ્યકનું સ્વરૂપ પ્રકટ કરવા નિમિત્તે સૂત્રકારે તેના નીચે પ્રમાણે ત્રણ ભેદ કહ્યા છે–

(૧) જ્ઞાયકશરીરદ્રવ્યાવશ્યક (૨) ભવ્યશરીર દ્રવ્યાવશ્યક, (૩) તદ્વયવ્યતિરિકત (બન્નેથી ભિન્ન) દ્રવ્યાવશ્યક.

નોઆગમ દ્રવ્યાવશ્યકમાં "નો" પદ આગમનો સર્વથા નિષેધ કરવામાં પ્રયુકત થયો છે. જેમકે—

જે જીવ પહેલાં આવશ્યકશાસ્ત્રનો જ્ઞાતા હતો, તે જ્યારે મરણ પામે છે–અન્ય પર્યાયે ઉત્પન્ન થઈ જાય છે, તે સમયનું તેનું જે નિર્જીવ શરીર હોય છે તે આગમના અભાવવાળું હોવાને કારણે જ્ઞાયકશરીરદ્રવ્યાવશ્યક રૂપ ગણાય છે. એજ પ્રમાણે જે જીવ ભવિષ્યમાં આવશ્યકશાસ્ત્રનો જ્ઞાતા થવાનો છે; તે જીવના શરીરને ભવ્ય

इदमेकं भव्यशरीरद्रव्यावश्यकम् । ज्ञायकशरीरभव्यशरीराभ्यां व्यतिरिक्तं-भिन्नं द्रव्यावश्यकं इत्येवं त्रिविधं नोआगमतो द्रव्यावश्यकं बोध्यम् ॥ सू० १६ ॥

तत्र प्रथमभेदं निरूपयितुमाह—

मूलम्—से किं तं जाणयसरीरदव्वावस्सयं ? जाणयसरीरदव्वावस्सयं आवस्सएत्ति पयत्थाहिगारजाणयस्स जं सरीरयं ववगयचुयचवियचत्तदेहं जीवविप्पजढं सिज्जागयं वा संथारगयं वा निसीहियागयं वा सिद्धसिलातलगयं वा पासित्ता णं कोई भणेज्जा अहो! इमेणं सरीरसमुस्सएणं जिणदिट्ठेणं भावेणं आवस्सएत्तिपयं आघवियं पण्णवियं परूवियं दंसियं निदंसियं उवदंसियं । जहा को दिट्ठंतो ? अयं महुकुंभे आसी, अयं घयकुंभे आसी से तं जाणयसरीरदव्वावस्सयं ॥ सू० १७ ॥

छाया—अथ किं तद् ज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यकम् ? ज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यकम् आवश्यकेति पदार्थाधिकारज्ञायकस्य यत् शरीरकं व्यपगतच्युतच्यावित यक्तदेहं जीव-

---

द्रव्यावश्यक है । तथा इन दोनों से व्यतिरिक्त जो द्रव्यावश्यक है वह तद्व्यतिरिक्त द्रव्यावश्यक है । ॥ सूत्र १६॥

अब सूत्रकार नोआगम द्रव्यावश्यक का जो प्रथम भेद ज्ञायक शरीर द्रव्यावश्यक है उसे विशेषरूप से स्पष्ट करते हैं—

"से किं तं जाणयसरीरदव्वावस्सयं" इत्यादि । ॥ सू० १७ ॥

शब्दार्थ—प्रश्न—(से किं तं जाणयसरीरदव्वावस्सयं) हे भदंत ! ज्ञायक शरीर द्रव्यावश्यक का क्या स्वरूप है ?

શરીર દ્રવ્યાવશ્યકરૂપ માનવામાં આવે છે. તથા આ બન્ને કરતાં ભિન્ન એવો જે દ્રવ્યાવશ્યક છે તેને તદ્વયતિરિક્ત (ઉભયથી ભિન્ન) દ્રવ્યાવશ્યક કહે છે. ॥સૂ ૧૬॥

"નોઆગમ દ્રવ્યાવશ્યક" નો, જ્ઞાયકશરીરદ્રવ્યાવશ્યક નામનો જે પહેલો ભેદ છે તેનું સૂત્રકાર હવે વિશેષ સ્પષ્ટીકરણ કરે છે—

'से किं तं जाणयसरीरदव्वावस्सयं" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—પ્રશ્ન-(से किं तं जाणयसरीरदव्वावस्सयं) હે ભગવન્ ! જ્ઞાયક શરીર દ્રવ્યાવશ્યકનું કેવું સ્વરૂપ કહ્યું છે ?

प्रहीणं शय्यागतं वा संस्तारगतं वा नैषेधिकीगतं वा सिद्धशिलातलगतं वा दृष्ट्वा खलु कोऽपि भणेत्-अहो ! अनेन शरीरसमुच्छ्रयेण जिनदृष्टेन भावेन आवश्यकेतिपदम् आघवितं प्रज्ञापितं प्ररूपितं दर्शितं निदर्शितम् उपदर्शितम् ।

उत्तर—(आवस्सएत्ति पयत्थाहिगारंजाणयस्स जं सरीरं) आवश्यक पदवाच्य आगम के अर्थरूप अधिकार के ज्ञाता का-अर्थात् आवश्यकसूत्र के अर्थ को जाननेवाले साधु आदि का-ऐसा शरीर कि जो (ववगयचुयचवियचत्तदेहं) व्यपगत चैतन्यपर्याय से रहित है, च्युत-बलिष्ठ आयुक्षय के कारणों से प्राण रहित है त्यक्तदेह-आहारपरिणति जनित वृद्धि जिससे सर्वथा निकलचुकी है (जाणयसरीरदव्वावस्सयं) ज्ञायक शरीर द्रव्यावश्यक है। इसी अर्थ का स्पष्ट ज्ञान होने के लिये सूत्रकार शब्दान्तर से इसका वर्णन करते हैं (जीवविप्पजढं सिज्जागयं वा संथारगयं वा निसीहियागयं वा सिद्धसिलातलगयं वा पासित्ता णं कोई भणेज्जा) वे कहते हैं कि जब इस प्रकार के प्राण रहित शरीर को शय्या पर देखकरके, संस्तारगत देखकरके स्वाध्यायभूमि अथवा श्मशानभूमि गत देखकरके या सिद्ध शिलातलगत देखकरके वे कहते हैं कि (अहो) अहो ! (इमेणं) इस (सरीरसमुस्सएणं) शरीररूप पुद्गल संघात ने (जिनदिट्ठेणं भावेणं) तीर्थंकरों द्वारा मान्य हुए कर्म निर्जरण के अभिप्राय से अथवा तदावरण के क्षय, क्षयोपशमरूप भाव से अर्थात् ज्ञानावरणीयकर्म के क्षय

उत्तर—(आवस्सएत्ति पयत्थाहिगारं जाणयस्स जं सरीरं) આવશ્યક પદવાચ્ય આગમના અર્થરૂપ અધિકારના જ્ઞાતાનું એટલે કે આવશ્યકસૂત્રના અર્થને જાણનારા સાધુ આદિનું એવું શરીર કે જે (ववगयचुयचवियचत्तदेहं) વ્યપગત-ચૈતન્ય પર્યાયથી રહિત છે, ચ્યુત દસ પ્રકારના પ્રાણોથી પરિવર્જિત (રહિત) છે, ત્યકતદેહ આહારપરિણતિ જનિત વૃદ્ધિ જેનાથી સંપૂર્ણ નીકળી ચુકી છે, (जाणयसरीरदव्वावस्सयं) એવા શરીરને "જ્ઞાયક શરીર દ્રવ્યાવશ્યક" કહે છે, આ અર્થનો વધુ સ્પષ્ટ ખ્યાલ આપવાના હેતુથી સૂત્રકાર અન્ય શબ્દો દ્વારા તેનું વર્ણન કરે છે—

(जीवविप्पजढं सिज्जागयं वा, संथारगयं वा, निसीहियागयं वा, सिद्धसिलातलगयं वा पासित्ताणं कोइ भणेज्जा) આ પ્રકારના પ્રાણરહિત શરીરને શય્યા પર દેખીને, સંસ્તારગત દેખીને, સ્વાધ્યાયભૂમિ અથવા સ્મશાનભૂમિગત દેખીને અથવા સિદ્ધશિલાગત દેખીને તેઓ કહે છે કે—(अहो) અહો ! (इमेणं सरीरसमुस्सएणं) આ શરીર રૂપ પુદ્ગલ સંઘાતે (जिनदिट्ठेणं भावेणं) તીર્થંકર ભગવાનો દ્વારા માન્ય થયેલા કર્મનિર્જરણના અભિપ્રાયથી અથવા તદાવરણના ક્ષય, ક્ષયોપશમ રૂપ ભાવથી એટલે કે જ્ઞાનાવરણીય કર્મના ક્ષય ક્ષયોપશમ અનુસાર (आवस्सएत्तिपयं)

यथा को दृष्टान्तः ? अयं मधुकुम्भ आसीत्, अयं घृतकुम्भ आसीत्। तदेतत् ज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यकम् ॥ सू० १७ ॥

टीका—शिष्यः पृच्छति--'से किं तं' इत्यादि। हे भदन्त! अथ किं तत् ज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यकम् ? उत्तरमाह—'जाणयसरीरदव्वावस्सयं' इत्यादि। ज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यकं दर्श्यते इत्यर्थः। आवश्यकेति पदार्थाधिकारज्ञायकस्य—आवश्यकेतिपदस्य=आवश्यकपदवाच्यस्य आगमस्य यः अर्थाधिकारः=अर्थ एव अर्थाधिकारः तस्य ज्ञायकः=ज्ञाता, तस्य आवश्यकसूत्रार्थं ज्ञातवतः साध्वादेर्यत् शरीरम्।

क्षयोपशम के अनुसार (आवस्सएत्तिपयं) आवश्यक सूत्र का विशेषरूप से (आघवियं) गुरु से ज्ञान प्राप्त किया था (पण्णवियं) सामान्यरूप से उसे शिष्यों को समझाया था। (परूवियं) सूत्रार्थ कथनपूर्वक फिर उसे शिष्यजनों को पढाया था (दंसियं) प्रतिलेखनादि क्रियारूप मे उसे स्वयं ने अपनी आत्मा में उतारा था। और बाद में इसी रूप में दूसरों को दिखलाया था-अर्थात् प्रतिलेखनादि क्रिया के प्रदर्शन से यह प्रकट किया था कि दोनों समय समस्त भंड पात्रों की प्रतिलेखना करनी आवश्यक हैं। अंगुल मात्र वस्त्र खण्ड भी विना प्रतिलेखना के नहीं रहना चाहिये। (निदंसियं) आवश्यकशास्त्र के ग्रहण करने में जो शिष्यजन अक्षम थे उनके लिये इसने करुणावश होकर बार २ आवश्यकशास्त्रग्रहण करवाया था। (उवदंसियं) सदनय और युक्तियों द्वारा शिष्यजनों के हृदयस्थान में इसे विना किसी संदेह के इसने जमाया था अतः वह शरीरज्ञायक शरीरद्रव्यावश्यक हैं।

આવશ્યક સૂત્રનું વિશેષરૂપે (आघवियं) ગુરુ પાસે અધ્યયન કર્યું હતું-જ્ઞાન પ્રાપ્ત કર્યું હતું. (पण्णवियं) સામાન્યરૂપે તેણે શિષ્યોને તે સમજાવ્યું હતું. (परूवियं) સૂત્રાર્થના કથનપૂર્વક તેણે ફરીથી શિષ્યજનોને તેનું અધ્યયન કરાવ્યું હતું. (दंसियं) પ્રતિલેખનાદિ ક્રિયારૂપે તેમણે પોતે પોતાના આત્મામાં ઉતાર્યું હતું, અને ત્યાર બાદ એજ રૂપે શિષ્યોને બતાવ્યું હતું, એટલે કે પ્રતિલેખના આદિ ક્રિયાના પ્રદર્શનથી એ પ્રકટ કર્યું હતું કે બન્ને સમય સમસ્ત પાત્ર વસ્ત્રાદિ ઉપકરણોની પ્રતિલેખના કરવી આવશ્યક છે. વસ્ત્રનો એક ઇંચ જેટલો ભાગ પણ પ્રતિલેખના વિનાનો રહેવો જોઇએ નહીં. (निदंसियं) આવશ્યકશાસ્ત્રને ગ્રહણ કરવાને જે શિષ્યો અક્ષમ હતા, તેમના પ્રત્યે કરુણાભાવ રાખીને તેણે તેમને વારંવાર આવશ્યક સૂત્ર ગ્રહણ કરાવવાનો પ્રયત્ન કર્યો હતો. (उवदंसियं) સદ્ધા નય અને યુક્તિઓ દ્વારા તેણે શિષ્યજનોના હૃદયસ્થાનમાં નિઃશંકરૂપે તેને અવધારણ કરાવ્યું હતું. તેથી તેનું આ શરીર જ્ઞાયક શરીર દ્રવ્યાવશ્યક છે.

कीदृशं ज्ञायकशरीरं द्रव्यावश्यकं भवतीत्याह–'वयगय' इत्यादि। व्यपगतच्युत-च्यावितत्यक्तदेहं–व्यपगतः=चैतन्यपर्यायरहितम्, अत एव–च्युतः=दशविधप्राणेभ्यः परिवर्जितम, च्यावितम्=बलवताऽयुःक्षयेण प्राणेभ्यः परिभ्रंशितम्, त्यक्तदेहं–त्यक्तो देहः=आहारपरिणतिजनित उपचयो येन तत्तथा, व्यपगतादीनां चतुर्णां कर्मधारयः। अमुमेवार्थं स्पष्टप्रतिपत्तये शब्दान्तरेणाह–'जीवविप्पजढं' इति, जीवविप्रहीणं=जीवात्मना सर्वथा परित्यक्तं तत् शय्यागतं वा–शय्या शरीरप्रमाणा तत्र गतं=स्थितं दृष्ट्वा संस्तारगतं वा संस्तारोऽर्धतृतीयहस्तप्रमाणस्तत्र गतं दृष्ट्वा नैषेधिकीगतं वा–नैषेधिकी स्वाध्यायभूमिः श्मशानभूमिश्च तत्र गतं दृष्ट्वा सिद्ध-शिलातलगतं वा–अनेकविधतपःपरिशोषितशरीराः साधवो यत्र स्वयमेव गत्वा भक्तप्रत्याख्यानरूपमनशनं कृतवन्तः, कुर्वन्ति, करिष्यन्ति च, तत् सिद्धशिला-तलम्, यद्वा यत्र कश्चिद् महर्षिः सिद्धस्तत् सिद्धशिलातलम्, तत्र गतं=स्थितं दृष्ट्वा खलु कोऽपि श्रावकादिः, भणति=कथयति–'अहो!' अहो इति दैन्ये, विस्मय, आमन्त्रणे च 'अनित्यं शरीरम्' दैन्यम्। 'आवश्यकं ज्ञातम्' इति विस्मयः। पार्श्वस्थं प्रति आमन्त्रणम्। त्रितयोऽप्यर्थोऽत्र संगच्छते। खलु अनेन=प्रत्यक्ष-तया परिदृश्यमानेन शरीरसमुच्छ्रयेण=शरीरमेव समुच्छ्रयः पुद्गलसंघातस्तेन जिनदृष्टेन तीर्थङ्कराभिमतेन भावेन=कर्मनिर्जरणाभिप्रायेण, यद्वा-तदावरणक्षय-क्षयोपशमलक्षणेन आवश्यकेतिपदम्–आवश्यकशास्त्रम्, आगृहीतम्=गुरोः सकाशादधिगतम्, प्रज्ञापितम्–सामान्यरूपेण शिष्येभ्यः कथितम्, प्ररूपितम्=सूत्रार्थ-कथनपूर्वकं शिष्येभ्योऽध्यापितम्, दर्शितम्=प्रतिलेखनादिक्रियायाः प्रतिलेखनीय-यम् अङ्गुलमात्रं वस्त्रखण्डमपि अप्रतिलेखनेन न स्थापनीयम्, इति। निदर्शितम्–

शंका––अचेतन होने से शरीररूप पुद्गल स्कंध जब आवश्यकशास्त्र का ज्ञाता ही नहीं हो सकता है तब सूत्रकार का "आवस्सएत्तिपदं आघविय" आदि कहना संगत प्रतीत नहीं होता है। क्योंकि ग्रहण करना प्ररूपणाआदि करना ये सब क्रियाएं जीव के साथ संबन्धित होती हैं। अतः जीव के धर्म होने के कारण इनकी घटना शरीर के साथ नहीं हो सकती है? सो इस आशंका का उत्तर इस प्रकार

શંકા—અચેતન હોવાને કારણે શરીરરૂપ પુદ્ગલ સ્કંધ જો આવશ્યકશાસ્ત્રનો જ્ઞાતા જ હોઈ શકતો નથી. તો સૂત્રકારનું "आवस्सएत्ति पदं आघविय) આ પ્રકા-રનું કથન સંગત લાગતું નથી. કારણ કે ગ્રહણ કરવાની અને પ્રરૂપણા આદિ કરવાની ક્રિયાઓ તો જીવની સાથે સંબંધ ધરાવનારી હોય છે. આ ક્રિયાઓ જીવના ધર્મ રૂપ હોવાને કારણે મૃત શરીરમાં તેને કેવી રીતે ઘટાવી શકાય? ચૈતન્ય યુક્ત શરીરમાં જ આ ક્રિયાઓનો સદ્ભાવ હોય છે.

आवश्यकशास्त्रग्रहणाक्षमेभ्यः शिष्येभ्यः करुणावशात् पुनः पुनर्दर्शितम्, उपदर्शितम्=सर्वनययुक्तिभिश्च प्रदर्शितम्। अत इदं शरीरं ज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यकम्!

नन्वनेन शरीरसमुच्छ्वासेनाऽऽवश्यकमागृहीतमित्यादि नोपपद्यते, ग्रहणप्ररूपणादीनां जीवधर्मत्वेन शरीरस्याघटमानत्वात्, इति चेदुच्यते-भूतपूर्वमाश्रित्य तत्कथितम्, अतो नास्ति दोषः। ननु शय्यादिगतं साधुशरीरं दृष्ट्वा कश्चित् पूर्वोक्तप्रकारेण वदति, परन्तु तस्य द्रव्यावश्यकत्वं न संभवति, "भूतस्य भाविनो वा भावस्य हि कारणं तु यल्लोके। तद्द्रव्यं तत्त्वज्ञैः सचेतनाचेतनं कथितम्" इति पूर्वोक्तवचनात् आवश्यकपर्यायस्य कारणमेव द्रव्यावश्यकं भवितुमर्हति। आवश्यकपर्यायस्य कारणं तु चेतनाधिष्ठितमेव शरीरम्, नत्वचेतनम्, अतो निर्जीव

से है कि ज्ञायक शरीर को जो द्रव्यावश्यक कहा है वह भूतपूर्व को (अर्थात् भूतकाल की अपेक्षा को) लेकर कहा है। अर्थात् जब यह शरीर चेतनाधिष्ठित था—तब उस के संबन्ध से यह उस शास्त्र कीप्ररूपणा आदि करता था। अतः इसमें कोई दोष नहीं हैं।

शंका-शय्यादिगत साधु के शरीर को देख करके यदि कोई पूर्वोक्त प्रकार से कहता है तो भले कहो। परन्तु उस शरीर में द्रव्यावश्यकता संभवित नहीं होती है क्यों कि भूत अथवा भावी पर्याय का जो कारण है—चाहे वह सचेतन हो चाहे अचेतन हो वही तत्वज्ञों की दृष्टि में द्रव्य—द्रव्य निक्षेप का विषय माना गया है। अतः इस कथन से आवश्यकपर्याय का कारण ही द्रव्यावश्यक होने के योग्य हो सकता है। सो ऐसे द्रव्यावश्यक का ऐसा कारण तो चेतनाधिष्ठित शरीर ही होता है, अचेतन शरीर नहीं। इसलिये निर्जीव शय्यादिगत साधु शरीर द्रव्यावश्यक नहीं हो सकता है।

આ શંકાનું સમાધાન નીચે પ્રમાણે સમજવું—

જ્ઞાયક શરીરને જે દ્રવ્યાવશ્યક કહેવામાં આવ્યું છે, તે ભૂતપૂર્વની અપેક્ષાએ કહેવામાં આવ્યું છે. એટલે કે જ્યારે તે શરીર ચૈતન્યથી યુકત હતું ત્યારે તે આ શાસ્ત્રની પ્રરૂપણા આદિ કરતું હતું. તેથી આ પ્રકારના કથનમાં કોઇ દોષ નથી.

શંકા—શય્યાદિગત સાધુના શરીરને જોઇને કોઈ પૂર્વોકત પ્રકારે કહેતા હોય તો ભલે કહે, પરન્તુ એ શરીરમાં દ્રવ્યાવશ્યકતા તો સંભવી જ શકતી નથી! કારણ કે ભૂત કે ભાવી પર્યાયનું જે કારણ છે-ભલે તે સચેતન હોય અથવા ભલે તે અચેતન હોય. પણ એને જ તત્ત્વજ્ઞો દ્રવ્ય-દ્રવ્યનિક્ષેપનો વિષય માને છે. તેથી આ કથન અનુસાર તો આવશ્યકપર્યાયનું કારણ જ દ્રવ્યાવશ્યક બનવાને યોગ્ય હોઇ શકે છે. અને એવા દ્રવ્યાવશ્યકનું એવું કારણ તો ચેતનાયુકત શરીર જ હોઇ શકે છે, અચેતન શરીર એવાં કારણરૂપ બની શકતું નથી. તે કારણે શય્યાદિગત નિર્જીવ સાધુનું શરીર દ્રવ્યાવશ્યક હોઈ શકતું નથી.

शय्यादिगतं साधुशरीरं द्रव्यावश्यकं भवितुं नार्हतीति चेदुच्यते—यद्यपि तस्मिन् काले चैतन्याभावात् शरीरस्य द्रव्यावश्यकत्वं नास्ति, तथापि अतीतपर्यायानुवृत्त्या-भ्युपगमपरनयानुवृत्त्याऽतीतमावश्यकपर्यायकारणत्वमपेक्ष्यास्य द्रव्यावश्यकत्वं बोध्यमिति नास्ति काचिद् विप्रतिपत्तिः । अत्रार्थे शिष्यो दृष्टान्तं पृच्छति—'जहा कोदिट्ठंतो' इति । यथा को दृष्टान्तः=अत्र यथा कश्चिद् दृष्टान्तो भवेत्, तथा कथयतु ? इति शिष्यपृच्छायां दृष्टान्तमाह—'अयं महुकुंभे आसी, अयं घयकुंभे आसी' इति । अयं मधुकुम्भ आसीत्, अयं घृतकुम्भ आसीत् इति । अयं भावः—यथा कोऽपि कस्मिंश्चिद् घटे घृतं वा मधु वा भृत्वा समानीतवान्, पुनस्ततस्तदपसारितवान्, अपसारिते तस्मिन्-अयं घृतकुम्भ आसीत्, अयं मधुकुम्भ आसीदिति

सो इस शंका का उत्तर इस प्रकार से है कि यद्यपि उस काल में चेतना नहीं होने से उस शरीर में द्रव्यावश्यकरूपता नहीं है तो भी भूतपूर्व प्रज्ञापन नय की अपेक्षा से अतीत आवश्यक पर्याय के प्रति कारणता उसमे भी ऐसा मानकर उसमें द्रव्यावश्यकता जाननी चाहिये । इस तरह इस कथन में कोई दोष नहीं है । शिष्यजनों को समझाने के लिये इसी विषय में सूत्रकार दृष्टान्त कहते हैं क्योंकि (जहा कोदिट्ठंतो) उन्होंने इन पदोंद्वारा यही पूछा हैं कि हे गुरु महाराज ! इस विषय में जैसा कोई दृष्टान्त हो वैसा आप कहिये । (अयं महुकुंभे आसी अयं घयकुंभे आसी) तब वे शिष्य को दृष्टान्त कहते हैं कि जिस प्रकार कोई व्यक्ति घडे में मधु या घृत भरकर लाया और फिर उसमें से उस मधु या घृतको निकाल लिया भी वह उसे यह मधुकुंभ था या यह घृतकुंभ था इस प्रकार से कहता है । और ऐसा व्यवहार भी लोक में उसमें भूतकालिक मधु या घृत का आधार-

---

આ શંકાનું હવે સમાધાન કરવામાં આવે છે—

જો કે તે કાળે તે સાધુશરીરમાં ચેતનાનો સદ્ભાવ નથી અને તે કારણે તે શરીરમાં દ્રવ્યાવશ્યકરૂપતાનો સદ્ભાવ નથી, પરન્તુ ભૂતપૂર્વ પ્રજ્ઞાપનનયની અપેક્ષાએ અતીત (ભૂતકાલિન) આવશ્યકપર્યાયના કારણનો તો તેમાં સદ્ભાવ હતો જ, એમ માનીને તેમાં દ્રવ્યાવશ્યકતા જાણવી જોઈએ. આ રીતે વિચારવામાં આવે તો આ કથનમાં કોઇ દોષ નથી, આ વિષય શિષ્યજનોને સારી રીતે સમજાવવા માટે સૂત્રકાર એક દૃષ્ટાન્ત આપે છે, (जहा को दिट्ठंतो) કારણ કે શિષ્યો દ્વારા જ આ પ્રકારનું સૂચન કરવામાં આવ્યું છે "હે ગુરુમહારાજ! આ વિષયનો અમને સચોટ ખ્યાલ આવે તે માટે એવું કોઇ દૃષ્ટાન્ત હોય, તો આપ અમને તે કહીને સમજાવવાની કૃપા કરો."

(अयं महुकुंभे आसी अयं घयकुंभे आसी) શિષ્યજનોની આ વિનંતિને ધ્યાનમાં લઇને ગુરુ નીચેનું દૃષ્ટાન્ત આપે છે—કોઇ એક વ્યક્તિ એક ઘડામાં મધ અથવા ઘી ભરીને લાવે છે, ત્યાર બાદ તે તેમાંથી મધ અથવા ઘી કાઢી નાખે છે અથવા વાપરી નાખે છે. છતાં પણ તે એવું કહે છે કે "આ મધનો ઘડો છે અથવા આ ઘીનો ઘડો છે." ભૂતકાળમાં તે કુંભ મધ અથવા ઘીને ભરવા

भूतकालिकं घृतमध्वाधारत्वेन लोके व्यपदिश्यते । तथैव भूतकालिकावश्यकपर्याय कारणत्वाधारत्वेन निर्जीवं शय्यागतं शरीरमपि द्रव्यावश्यकमुच्यते, इति ।

इत्थं पूर्वोक्तं जीव विप्रमुक्तं शय्यादिगतं साधुशरीरं नोआगमतो द्रव्यावश्यकं भवति । आवश्यकार्थज्ञानलक्षणस्य आगमस्य तदानीं तच्छरीरे सर्वथाऽभावात्।

'चुय' इत्युक्त्वा 'चाविय' इति पुनरभिधानं स्वभाववादिनो मतनिराकरणार्थम् । स्वभाववादिनो हि स्वभावत एव मरणं मन्यन्ते, परन्तु स्वभावस्य सर्वदा वर्तमानत्वेन सर्वदा तत्प्रसङ्गात्, अतः आयुः क्षयेणैव प्राणिनां प्राणाः शरीरान्निर्गच्छन्तीति सूचयितुं 'चाविय' इत्युक्तम् ।

वाला होने से व्यपदिष्ट होता है। उसी प्रकार भूतकालीन आवश्यक पर्याय का कारणरूप आधारवाला होने से निर्जीव शय्यादिगत शरीर भी द्रव्यावश्यक कहा जाता है। इस तरह पूर्वोक्त जीव विप्रमुक्त शय्यादिगत साधु आदि का शरीर नोआगमकी अपेक्षा लेकर द्रव्यावश्यक होता है। क्योंकि उस अवस्था में आवश्यक का अर्थज्ञानरूप आगम का उस शरीर में सर्वथा अभाव है "चुय" ऐसा कहकरके भी जो सूत्रकार ने "चाविय" ऐसा कहा है वह स्वभाववादी मत का निराकरण करने के लिये कहा है, क्योंकि स्वभाववादियों की ऐसी मान्यता है कि मरण स्वभाव से ही होता है। परन्तु यह उनकी मान्यता ठीक नहीं है क्योंकि मरण स्वभाव तो सर्वदा वर्तमान ही रहता है—अतः सर्वदा मरण होने का प्रसंग प्राप्त होता है। इसलिये इस पद से यह बतलाया गया है कि जब आयु का क्षय होता है तभी प्राणियों के प्राण शरीर से निकलते

માટે વપરાતો હતો. તે કારણે લોકોમાં તેને મધનો ઘડો અથવા ઘીનો ઘડો કહેવાનો વ્યવહાર થતો જોવામાં આવે છે. એજ પ્રમાણે ભૂતકાલિન આવશ્યક પર્યાયના કારણ રૂપ આધારવાળું હોવાથી નિર્જીવ શય્યાદિગત શરીર પણ દ્રવ્યાવશ્યક જ કહેવાય છે. આ પ્રકારે પૂર્વોકત જીવવિપ્રમુકત (પ્રાણોથી રહિત) શય્યાદિગત સાધુ આદિનું શરીર નોઆગમની અપેક્ષાએ દ્રવ્યાવશ્યક હોય છે. કારણ કે તે અવસ્થામાં આવશ્યકના અર્થજ્ઞાનરૂપ આગમનો તે શરીરમાં બિલકુલ અભાવ હોય છે.

"चुय" 'च्युत' આ પદનો પ્રયોગ કર્યા બાદ "चाविय" 'च्यावित' આ પદનો જે પ્રયોગ કરવામાં આવ્યો છે તે સ્વભાવવાદીઓના મતનું નિરાકરણ કરવા માટે કરવામાં આવેલ છે. સ્વભાવવાદીઓની એવી માન્યતા છે કે મરણ તો સ્વાભાવિક રીતે જ થાય છે. તેમની તે માન્યતા બરાબર નથી. કારણ કે મરણસ્વભાવ તો સર્વદા વિદ્યમાન રહે છે. અને તેમની માન્યતા સ્વીકારવામાં આવે તો સર્વદા મરણ થવાનો પ્રસંગ પ્રાપ્ત થશે. તેથી તેમની તે માન્યતા ખોટી છે. "चाविय" આ પદનો

सम्प्रत्युपसंहरन्नाह–'से त्तं जाणयसरीरदव्वावस्सयं' इति । तदेतत् ज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यकं वर्णितम् । इति ॥ सू० १७॥

हैं । इतना कथनकर अब सूत्रकार इसका उपसंहार करते हुए कहते हैं कि– (से त्तं जाणयसरीरदव्वावस्सयं) इस प्रकार पूर्वोक्त ज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यक का यह वर्णन है ।

भावार्थ–सूत्रकारने इस सूत्र द्वारा ज्ञायकशरीर द्रव्यावश्यक का स्वरूप वर्णन किया है । यह बात पहिले स्पष्ट की जा चुकी है कि भूत या भविष्यत् का कारण ही द्रव्य होता है । अतः जो साधु आदि आवश्यकशास्त्र को जान रहा है परन्तु उसका उसमें उपयोग नहीं है ऐसा वह साधु आदि का जीव द्रव्यावश्यक हैं । इस द्रव्यावश्यक का भेद ही नोआगम द्रव्यावश्यक है । जिस साधुने पहिले आवश्यक सूत्र का सविधिज्ञान प्राप्तकर लिया था और जब वह पर्यायान्तरित होता है-तो उसका वह निर्जीव शरीर आवश्यक सूत्र के ज्ञान से सर्वथा अभावविशिष्ट होने के कारण ही नोआगमज्ञायकशरीर-द्रव्यावश्यक है । आगमज्ञान जिस में बिलकुल नहीं है ऐसा वह शरीर उस आगम के ज्ञाता का है कि जिसने उस आगम को जाना तो था परन्तु वह उसमें उपयोग से विहीन था । इस तरह नोआगमज्ञायक शरीर द्रव्यावश्यक पदों के अर्थ से वह निर्जीव शय्यादिगत साधु का शरीर नोआगमज्ञायक

પ્રયોગ કરીને એ વાતનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે કે જ્યારે આયુકર્મનો ક્ષય થાય છે ત્યારે જ પ્રાણીઓનાં પ્રાણ શરીરમાંથી નીકળી જાય છે.

હવે સૂત્રકાર આ સૂત્રનો ઉપસંહાર કરતાં આ પ્રમાણે કહે છે-(से त्तं जाणयसरीरदव्वावस्सयं) આ પ્રકારનું પૂર્વોક્ત જ્ઞાયક શરીર દ્રવ્યાવશ્યકનું સ્વરૂપ છે.

ભાવાર્થ—સૂત્રકારે આ સૂત્રદ્વારા જ્ઞાયક શરીર દ્રવ્યાવશ્યકના સ્વરૂપનું વર્ણન કર્યું છે. એ વાત તો પહેલા સ્પષ્ટ કરવામાં આવી ચુકી છે કે ભૂત અથવા ભવિષ્ય પર્યાયનું કારણ જ દ્રવ્ય હોય છે તેથી જે સાધુ આદિ આવશ્યકશાસ્ત્રને જાણી ગયો છે પણ તેમાં તેનો ઉપયોગ નથી એટલે કે જે અનુપયુક્તતા સંપન્ન છે, એવાં તે સાધુ આદિનો જીવ દ્રવ્યાવશ્યક કહેવાયા છે.

"नोद्रव्यावश्यक" આ દ્રવ્યાવશ્યકનો એક ભેદ છે.

જે સાધુએ પહેલાં આવશ્યક સૂત્રનું સવિધિ જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરી લીધું હતું. એવા સાધુનો જીવ જ્યારે મનુષ્યપર્યાયમાંથી નીકળીને અન્ય પર્યાયમાં ચાલ્યો જાય છે. ત્યારે તેનું તે નિર્જીવ શરીર આવશ્યક સૂત્રના જ્ઞાનથી સર્વથા અભાવવિશિષ્ટ (રહિત) થઈ જાય છે. તે કારણે તેનાં તે નિર્જીવ શરીરને નો આગમજ્ઞાયક શરીર દ્રવ્યાવશ્યક રૂપ કહેવામાં આવે છે. આગમજ્ઞાન જેના બિલકુલ નથી. એવું તે શરીર તે આગમજ્ઞાતાનું છે કે જેણે તે આગમને જાણ્યો તો હતો પણ તે તેમાં ઉપયોગથી વિહીન (અનુપયુક્ત) હતો. આ રીતે નોઆગમ જ્ઞાયક શરીર

अथ द्वितीयभेदं निरूपयितुमाह—

मूलम्—से किं तं भवियसरीरदव्वावस्सयं? भवियसरीरदव्वावस्सयं जे जीवे जोणि म्मणनिक्खंते इमेणं चेव आत्तएणं सरीरसमुस्सएणं जिणोवदिट्ठेणं भावेणं आवस्सएत्तिपयं सेयकाले सिक्खिस्सइ न ताव सिक्खाइ। जहा को दिट्ठंतो? अय महुकुंभे भविस्सइ, अयं घयकुंभे भविस्सइ। से त्तं भवियसरीरदव्वावस्सयं। सू०१८।

छाया—अथ किं तद् भव्यशरीरद्रव्यावश्यकम्? भव्यशरीर द्रव्यावश्यकं यो जीवो योनिजन्मनिष्क्रान्तः अनेनैव आत्तकेन शरीरसमुच्छ्रयेण जिनोपदिष्टेन

शरीर द्रव्यावश्यक है। अनेकविध तपस्याओं से जिनका शरीर परिशोषित हो रहा है ऐसे साधुजनों ने जहां स्वयमेव जाकर भक्त प्रत्याख्यानरूप अनशन को किया है करते है और आगे भी करेंगे उस स्थानका नाम सिद्धशिलातल है। अथवा जहांपर जो कोई महर्षि संस्तारक करके मरणधर्मको प्राप्त किया हो उस स्थान का नाम सिद्ध शिलातल हैं। ॥ सू० १७ ॥

अब सूत्रकार नोआगम द्रव्यावश्यक का जो दूसरा भेद भव्यशरीर द्रव्यावश्यक है-उसकि प्ररूपणा करते हैं-

"से किं तं भवियसरीरदव्वावस्सयं इत्यादि—॥ सू० १८ ॥

शब्दार्थ—(अथ) शिष्य पूछता है कि हे भदन्त! (तं भवियसरीरदव्वावस्सयं किं) पूर्वप्रक्रान्त भव्यशरीरद्रव्यावश्यक का क्या स्वरूप है?

द्रव्यावश्यक" આ પદોના અર્થની અપેક્ષાએ તે નિર્જીવ શય્યાદિગત સાધુનું શરીર નો આગમ જ્ઞાયકશરીર દ્રવ્યાવશ્યક' છે.

અનેક પ્રકારની તપસ્યાઓ વડે જેનું શરીર પરિશોષિત થઇ રહ્યું છે. એવાં સાધુઓ જ્યાં જાતે જ જઇને આહારપાણીના પ્રત્યાખ્યાનરૂપ અનશન ધારણ કરે છે. ધારણ કરતા હતા અને ધારણ કરશે. તે સ્થાનનું નામ 'સિદ્ધશિલાતલ' છે. અથવા જે સ્થાને કોઈ મહર્ષિ થઇ ગયા હોય તે સ્થાનને સિદ્ધશિલાતલ કહે છે. સૂ ૧૭

હવે સૂત્રકાર ભવ્ય શરીર દ્રવ્યાવશ્યક નામનો નો આગમદ્રવ્યાવશ્યકનો જે બીજો ભેદ છે તેની પ્રરૂપણા કરે છે—"से किं तं भवियसरीरदव्वावस्सयं इत्यादि—

શબ્દાર્થ—(अथ) હવે શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે (तं भवियसरीरदव्वावस्सयं किं?) હે ભગવન્! પૂર્વોક્ત ભવ્ય દ્રવ્યાવશ્યકનું કેવું સ્વરૂપ છે?

भावेन आवश्यकेति पदम् एकाले शिक्षिष्यते, न तावत् शिक्षते। यथा कले दृष्टान्तः ? अयं मधुकुम्भो भविष्यति, अयं घृतकुम्भो भविष्यति। तदेतत् भव्यशरीरद्रव्यावश्यकम् ॥ सू० १८ ॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—से किं तं भवियसरीरदव्वावस्सयं' इति अथ किं तद् भव्यशरीरद्रव्यावश्यकम् ? उत्तरमाह- 'भविसरीरदव्वावस्सयं' इति भव्यशरीरद्रव्यावश्यकं=भविष्यतीति भव्यः—विवक्षितपर्याययोग्य इत्यर्थः, तस्य शरीरं तदेव भविभावावश्यककारणत्वाद् द्रव्यावश्यकं—भव्यशरीरद्रव्यावश्यकं वर्ण्यते इत्यर्थः। यो जीव—योनिजन्मनिष्क्रान्तः=योन्याः=योनिमध्यात्—जन्म काले निष्क्रान्तः=निर्गतो न तु पूर्णसमयात् पूर्वमेव गर्भात् पतितो अनेक आत्तकेन=गृहीतेन शरीरसमुच्छ्रयेण जिनोपदिष्टेन भावेन आवश्यकेति पदम्=आवश्यकशास्त्र भविष्यत्काले शिक्षिष्यते=अध्येष्यते, न तावत्—संप्रति शिक्षते ? एवं विधं शरीरं भव्यद्रव्यावश्यकं भवति। अत्रापि आगमाभावमाश्रित्य नोआगमत्वं बोध्यम्, तस्मिन् समये तत्र शरीरे सर्वथाऽऽगमस्याऽभावात्। नो शब्देऽत्र आगमस्य सर्वथा निषेधं सूचयति।

उत्तर—(जे जीवे जोणिजम्मणनिक्खंते इमेणं चेव आत्तएणं सरीरसमुस्सएणं जिणोवदिट्ठेणं आवस्सएत्ति पयं सेयकाले सिक्खिस्सइ न तावसिक्खाइ भवियसरीरदव्वावस्सयं) जो जीव उत्पत्तिस्थानरूप योनि से अपना समयपूर्ण करके ही निकला है—समय के पहिले बीच में उत्पन्न नहीं हुआ है—ऐसा वह जीव उस प्राप्त शरीर से जिनोपदिष्ट भावके अनुसार आवश्यकशास्त्र को भविष्यतकाल में सीखेगा—वर्तमान कालमें सीख नहीं रहा है ऐसा वह शरीर भव्यशरीर द्रव्यावश्यक है। इस भव्यशरीर द्रव्यावश्यक में भी आगम के अभाव को लेकर नो आगमता जाननी चाहिये। क्यों कि उस समय उस

उत्तर—(जे जीवे जोणिजम्मणनिक्खंते इमेणं चेव आत्तएणं सरीरसमुस्सएणं जिणोवदिट्ठेणं भावेणं आवस्सए त्ति पयं सेयकाले सिक्खिस्सइ न तावसिक्खाइ भवियसरीरदव्वावस्सयं) જે જીવ ઉત્પત્તિસ્થાનરૂપ યોનિમાંથી પોતાનો સમયપૂરો કરીને જ બહાર નીકળ્યો છે સમય પૂરો થયા પહેલા બહાર નીકળ્યો નથીએટલે કે ગર્ભમાંથી પૂરો સમય વ્યતીત થયા પહેલાં પતિત થયો નથી, એવો તે જીવ તે પ્રાપ્ત શરીર વડે જ જિનોપદિષ્ટ ભાવ અનુસાર આવશ્યકશાસ્ત્રને ભવિષ્યમાં શિખશે-વર્તમાન કાળમાં તે તેને શીખી રહ્યો નથી, એવાં તે ભવ્ય જીવનું શરીર ભવ્યશરીર દ્રવ્યાવશ્યક કહેવાય છે. આ ભવ્યશરીરદ્રવ્યાવશ્યકમાં પણ આગમના અભાવને લીધે નોઆગમતા (આવશ્યકશાસ્ત્રના જ્ઞાનનો સર્વથા અભાવ) જાણવી, કારણ કે તે સમયે

ननु-आवश्यकपर्यायस्य कारणं द्रव्यावश्यकमुच्यते-तदानीं तत्र शरीरे आगमाभावात् तस्य नास्ति तं प्रति कारणत्वम्, अतोऽत्र शरीरे नास्ति द्रव्यावश्यकत्वम् ? इति चेत्, उच्यते-तदानीमपि तत्र द्रव्यावश्यकत्वमुपचर्यते इति नास्ति कोऽपि दोषः। अत्र दृष्टान्तजिज्ञासया शिष्यः पृच्छति-'जहा को दिट्ठंतो' इति। यथा को दृष्टान्तः हे भदन्त। अत्र यथा कोऽपिदृष्टान्तो भवेत् तथा ब्रवीतु ? उत्तरमाह-'अयं महुकुंभे भविस्सइ, अयं घयकुंभे भविस्सइ' इति। अयं मधुकुम्भो भविष्यति, अयं घृतकुम्भो भविष्यति। अयं भावः-घृतरक्षणाय मधुरक्षणाय च कुम्भ-

---

शरीर में आगम का सर्वथा अभाव है। नो शब्द इस समय के शरीर में आगम का सर्वथा निषेध सूचित करता है।

शंका-आवश्यक पर्याय का जो कारण होता है वह द्रव्यावश्यक कहा जाता है। इस समय के शरीर में तो आगम का सर्वथा अभाव है, इसलिये उस शरीर को द्रव्यावश्यक के प्रति कारणता नहीं होने से उसमें द्रव्यावश्यकता कैसे आसकती है ?

उत्तर-उस समय भी उसमें द्रव्यावश्यकता उपचार किया जाता है। क्योंकि यह शरीर आगे चलकर इसी पर्याय में आवश्यकशास्त्र का ज्ञाता बनेगा-परन्तु वर्तमान में नहीं है। इसलिये आवश्यकशास्त्र का भाविकाल संबन्धी अनुपयुक्त ज्ञातृत्व का उसमें उपचार करके उसका सर्वथा निषेध किया गया है। इस विषय में दृष्टान्त जानने की इच्छा से शिष्य पूछता है कि हे भदंत! (जहा को दिट्ठंतो) यहां पर जैसा दृष्टान्त हो वैसा आप कहिये

તે શરીરમાં આગમનો સર્વથા અભાવ જ હોય છે "નો" પદ તે સમયે શરીરમાં સર્વથા નિષેધ સૂચિત કરે છે.

શંકા—આવશ્યકપર્યાયનું જે કારણ હોય છે, તેને દ્રવ્યાવશ્યક કહેવામાં આવે છે. અત્યારે તો તેના શરીરમાં આગમનો સર્વથા અભાવ જ છે. આ રીતે શરીરમાં દ્રવ્યાવશ્યકના કારણનો જ સદ્ભાવ ન હોવા છતાં પણ તેમાં દ્રવ્યાવશ્યકતા કેવી રીતે સંભવી શકે છે ?

ઉત્તર—આ સમયે તો તેમાં દ્રવ્યાવશ્યકતાનો ઉપચાર કરવામાં આવે છે એટલે કે આ કથનને ઔપચારિક કથન જ સમજવું જોઈએ કારણ કે આ શરીર આગળ જતાં આ મનુષ્ય પર્યાયમાં જ આવશ્યકશાસ્ત્રનો જ્ઞાતા બનવાનું છે-વર્તમાનકાળે તો તે તેનો જ્ઞાતા નથી. તેથી આવશ્યકશાસ્ત્રના ભવિષ્યકાળ સંબંધી અનુપયુક્ત જ્ઞાતૃત્વનો તેમાં ઉપચાર કરીને તેનો સર્વથા નિષેધ કરવામાં આવ્યો છે.

આ વિષયને દૃષ્ટાન્તથી સમજવા માટે શિષ્ય ગુરુને આ પ્રમાણે કહે છે-(जहा को दिट्ठंतो) હે ભદન્ત! આ વિષયનું પ્રતિપાદન કરતું કોઈ દૃષ્ટાન્ત કહેવાની કૃપા કરો. ગુરુ મહારાજ આ વિષયનું પ્રતિપાદન કરવા નિમિત્ત નીચેનું દૃષ્ટાન્ત આપે છે.

कारेण द्वौ घटौ निर्मितौ। ततःकोऽपि तं पृष्टवान्—किमर्थौ एतौ घटौ? कुम्भकारः कथयति अयं घृतकुम्भो भविष्यति, अयं तु मधुकुम्भो भविष्यति, इति। यथा भविष्यद्घृताधारत्वपर्यायं मध्वाधारत्वपर्यायं तदानीमप्याश्रित्य घृतकुम्भो मधुकुम्भश्चेति व्यपदिश्यते, तथाऽत्रापि भाविनाऽऽवश्यकपर्यायकारणत्व-

(अयं मधुकुंभे भविस्सइ, अयं घयकुंभे भविस्सइ) सुनो दृष्टान्त इस विषय में इस प्रकार है—घृत रखने के लिये, और मधु रखने के लिये, किसी कुमार ने दो घडे बनाये। उन्हें देखकर किसीने उससे पूछा कि ये किसलिये तुमने बनाये हैं-तब उसने उससे कहा कि यह घृत कुंभ होगा और यह मधुकुंभ होगा। तो जिस प्रकार उस समय भविष्यत् घृताधारत्वरूप पर्याय और मध्वाधारत्वरूप पर्याय वा उन दोनों में आश्रय कर उन्हें वह घृत कुंभ और मधुकुंभ इसरूप के कह देता है, उसी तरह इस समय के शरीर में भी भावि आवश्यकरूप पर्याय के प्रति कारणता को लेकर उसे द्रव्यावश्यकरूप से मान लिया जाता है। इस द्रव्यावश्यकरूप भव्यशरीर में वर्तमान में आवश्यक के अर्थज्ञान का सर्वथा अभाव है इसलिये उसमें नोआगमता जाननी चाहिये। इस तरह यह प्रक्रान्त (पूर्वप्रस्तुत) भव्यशरीर द्रव्यावश्यक का वर्णन किया।

तात्पर्य इसका यह है कि—सूत्रकारने इस सूत्रद्वारा भव्यशरीर द्रव्यावश्यक का स्वरूप प्रकट किया है। मनुष्य प्राप्त शरीर से जो आगे आवश्यक

(अयं मधुकुंभे भविस्सइ, अयं घयकुंभे भविस्सइ) કોઇ એક કુંભારે મધ ભરવાને માટે તથા ઘી ભરવાને માટે બે ઘડા બનાવ્યા. તે બન્ને ઘડાને જોઇને કોઇએ તેને એવો પ્રશ્ન પૂછયો કે "આ બે ઘડા તમે શા માટે બનાવ્યા છે?" ત્યારે કુંભારે એક ઘડો બતાવીને કહ્યું કે "આ મધુકુંભ છે" અને બીજો ઘડો બતાવીને કહ્યું કે "આ ઘૃતકુંભ છે" જે પ્રકારે ભવિષ્યકાલિન ઘૃતાધારત્વરૂપ પર્યાય અને મધુ આધારત્વરૂપ પર્યાયનો તે બન્ને ઘડામાં આશ્રય લઇને અત્યારે પણ તેમને ઘૃતકુંભ અને મધુકુંભ રૂપે ઓળખવામાં આવે છે-(જો કે વર્તમાનકાળે તો તેમાં ઘૃત પણ નથી અને મધ પણ નથી) એજ પ્રમાણે આ સમયના શરીરમાં પણ ભવિષ્યકાલિન આવશ્યકરૂપ પર્યાયના કારણનો સદ્ભાવ હોવાને કારણે તેને દ્રવ્યાવશ્યક રૂપે માની લેવામાં આવે છે. આ દ્રવ્યાવશ્યકરૂપ ભવ્યશરીરમાં વર્તમાન કાળે તો આવશ્યકના અર્થજ્ઞાનનો સર્વથા અભાવ જ છે. તે કારણે તેમાં "નો આગમતા" સમજવી. પૂર્વપ્રકાન્ત (પૂર્વપ્રસ્તુત) ભવ્યશરીરદ્રવ્યાવશ્યકનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ છે.

ભાવાર્થ—સૂત્રકારે આ સૂત્રદ્વારા ભવ્યશરીર દ્રવ્યાવશ્યકનું સ્વરૂપ પ્રકટ કર્યું છે. જે મનુષ્ય પ્રાપ્ત શરીર દ્વારા જ ભવિષ્યમાં આવશ્યકસૂત્રનો અનુપયુક્ત જ્ઞાતા

माश्रित्य द्रव्यावश्यकत्वं विज्ञेयमिति। भव्यशरीरे आवश्यकार्थज्ञानाभावान्नो-आगमत्वं बोध्यम्। तदेतद् भव्यशरीरद्रव्यावश्यकं वर्णितम् ॥सू० १८॥

अथ तृतीयभेदं निरूपयितुमाह--

मूलम्—से किं तं जाणयसरीरभविय सरीरवइरित्तं दव्वावस्सयं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं दव्वावस्सयं तिविहं पण्णत्तं। तं जहा-लोइयं, कुप्पावयणियं, लोउत्तरियं ॥ सू० १९ ॥

छाया-अथ किं तद् ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यावश्यकम्। ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यावश्यकं त्रिविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा लौकिकं, कुप्रावचनिकं, लोकोत्तरिकम् ॥सू० १९॥

टीका-शिष्यः पृच्छति—'से किं तं' इत्यादि। अथ किं तद् ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यावश्यकम्? उत्तरमाह-'जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं'

शास्त्र का अनुपयुक्त ज्ञाता बनेगा उस का वह शरीर द्रव्यावश्यक है। वर्तमान में वह ऐसा नहीं है, अतः उसका उसमें उपचार करलिया जाता है। इस द्रव्यावश्यक में आवश्यक का अर्थज्ञान बिलकुल नहीं है। इसलिये इसे नो-आगम की अपेक्षा वह भव्यशरीर द्रव्यावश्यक है। ॥ सूत्र १८ ॥

अब सूत्रकार तृतीय भेद के स्वरूप का निरूपण करते हैं—

से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं इत्यादि। ॥ सू० १९ ॥

शब्दार्थ—(से) शिष्य पूछता है कि हे भदंत! (त जाणयसरीर भविय सरीर वइरित्तं दव्वावस्सयं कि) पूर्व प्रक्रान्त (पूर्वप्र तुत) ज्ञायकशरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्यावश्यक का क्या स्वरूप है? उत्तर—(जाणयसरीरभविसरीर-

---

બનવાનો છે, તેના તે શરીરને દ્રવ્યાવશ્યકરૂપે અહીં પ્રકટ કરવામાં આવ્યું છે. વર્તમાનકાળે તે એવું નથી, તેથી તેનો તેમાં ઉપચાર કરી લેવામાં આવે છે. આ અપેક્ષાએ તેને દ્રવ્યાવશ્યક બનાવી લેવામાં આવે છે. આ દ્રવ્યાવશ્યકમાં આવશ્યકનું અર્થજ્ઞાન બિલકુલ નથી, તેથી નોઆગમની અપેક્ષાએ તેને ભવ્યશરીર દ્રવ્યાવશ્યક કહેવામાં આવ્યું છે. ॥ સૂ૦ ૧૮॥

હવે સૂત્રકાર ઉપર્યુક્ત બન્નેથી ભિન્ન એવા નોઆગમદ્રવ્યાવશ્યકના ત્રીજા ભેદનું સ્વરૂપ સમજાવે છે-"से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે (से तं जाणयसरीर भवियसरीर-वइरितं दव्वावस्सयं किं) હે ભગવન્! પૂર્વપ્રસ્તુત જ્ઞાયકશરીર ભવ્યશરીર વ્યતિરિક્ત દ્રવ્યાવશ્યકનું સ્વરૂપ કેવું છે? એટલે કે જ્ઞાયકશરીર અને ભવ્યશરીરથી ભિન્ન એવા દ્રવ્યાવશ્યકનું સ્વરૂપ કેવું છે?

इत्यादि । ज्ञायकशरीर भव्यशरीरव्यतिरिक्तं ज्ञायकशरीरभव्यशरीराभ्यां व्यतिरिक्तं =भिन्नं द्रव्यावश्यकं त्रिविधं प्रज्ञप्तम् । तद्यथा—लौकिकं, कुप्रावचनिकं च ॥सू० १९॥

तत्र ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तलौकिक द्रव्यावश्यकरूपं प्रथमं भेदं निरूपयितुमाह—

मूलम्—से किं तं लोइयं दव्वावस्सयं लोइयं दव्वावस्सयं जे इमे राईसरतलवर माडंबियकोडुंबियइब्भसेट्ठि सेणावइ सत्थवाहप्पभिइओ कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए सुविमलाए फुल्लुप्पलकमलकोमलुम्मिलियम्मि अहापंडुरे पभाए रत्तासोगप्पगासकिंसुयसुयमुहगुंजद्धरागसरिसे कमलागरनलिणिसंडबोहए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिमि दिणयरे तेयसा जलंते मुहधोयणदंतपक्खालण-तेल्ल-फणिहसिद्धत्थय-हरि आलिय-अद्दागधूवपुप्फमल्लगंधतंबोलवत्थाइयाइं दव्वावस्सयाइं करेंति । तओ पच्छा रायकुलं वा देवकुलं वा आरामं वा उज्जाणं वा सभं वा पवं वा गच्छंति से तं लोइयं दव्वावस्सयं ॥ सू० २० ॥

छाया—अथ किं तद् लौकिकं द्रव्यावश्यकम् ? लौकिकं द्रव्यावश्यकं—य

वइरित्तं दव्वावस्सयं तिविहं पण्णत्तं) ज्ञायकशरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्यावश्यक तीन प्रकार का कहा है—(तं जहा) वे प्रकार ये हैं—(लोइयं कुप्पावयणियं लोउत्तरियं) लौकिक कुप्रावचनिक और लोकोत्तरिक । ॥ सू० १९ ॥

अब सूत्रकार तद्व्यतिरिक्त लौकिक द्रव्यावश्यकरूप प्रथम भेद का कथन करते है—"से किं तं लोइयं दव्वावस्सयं" इत्यादि । ॥ सूत्र २० ॥

शब्दार्थ—से किं तं शिष्य पूछता है कि हे भदंत ! (तं लोइयं दव्वावस्सयं

उत्तर—(जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं दव्वावस्सयं तिविहं पण्णत्तं) જ્ઞાયકશરીર ભવ્યશરીર વ્યતિરિક્ત દ્રવ્યાવશ્યકના ત્રણ પ્રકાર કહ્યા છે. (तंजहा) તે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે-(लोइयं कुप्पावयणियं लोउत्तरियं) (१) લૌકિક, (२) કુપ્રાવચનિક અને (३) લોકોત્તરિક ॥ સૂ. १૯ ॥

હવે સૂત્રકાર તદ્વ્યતિરિક્ત લૌકિક દ્રવ્યાવશ્યકરૂપ પહેલા ભેદનું સ્વરૂપ સમજાવેછે.

"से किं तं लोइयं दव्वावस्सयं" ઇત્યાદિ-

શબ્દાર્થ—(से) શિષ્ય ગુરૂને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે હે ભગવન્ ! (तंलोइयं

इमे राजेश्वरतलवरमाडम्बिककौटुम्बिकेभ्यश्रेष्ठिसेनापतिसार्थवाहप्रभृतयः कल्पे प्रादुष्प्रभातायां रजन्यां सुविमलायां फुल्लोत्पलकमलकोमलोन्मीलिते यथापाण्डुरे प्रभाते रक्ताशोकप्रकाशकिंशुकशुकमुखगुञ्जार्द्धरागसदृशे कमलाकरनलिनीषण्ड-बोधके उत्थिते सूर्ये सहस्ररश्मौ दिनकरे तेजसा ज्वलति मुखधावनदन्तप्रक्षालन

किं) लौकिक द्रव्यावश्यकरूप प्रथम भेद का क्या स्वरूप है? (लोइयं दव्वावस्सयं) उत्तर-लौकिक द्रव्यावश्यक का स्वरूप इस प्रकार से है-(जे इमे राईसर, तलवरमाडंबिय, कोडुंबिय, इब्भ सेट्ठि, सेणावइ, सत्थवाहप्पभिइओ) जो ये राजेश्वर-मांडलिकनरपति, ऐश्वर्य संपन्नव्यक्ति, तलवर, माडंबिक कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह आदि मनुष्य (कल्लं) सामान्य प्रभात के होने पर (पाउप्पभायाए रयणीए) प्रारंभिक अवस्था प्राप्त है प्रभात जिस में ऐसी रात्रि के होने पर (सुविमलाए, फुल्लुप्पलकमलकोमलुम्मिलियम्मि) तथा पूर्व की अपेक्षा स्फुटतर प्रकाश संपन्न रात्रि के होने पर विकसित कमल के पत्रों के और मृगविशेष के नयनों के सुकुमार उन्मीलनवाले (अहापंडुरे) यथा योग्य पीतमिश्रित शुक्ल (पभाए) प्रभात के होने पर (रत्तासोगप्पगासकिंसुयसुयमुहगुंजद्धरागसरिसे) तथा रक्त अशोकवृक्ष की कांति के तथा पलाश पुष्प, और शुक मुख एवं गुंजार्ध के राग के सदृश (कमलागरणलिणिसंडबोहए) कमलों की उत्पत्ति भूमिरूप हृदादिजलाशयों में पद्मवनों के विकाशक (सहस्सरस्सिम्मि

दव्वावस्सयं किं?) લૌકિક દ્રવ્યાવશ્યક રૂપ તે પ્રથમ ભેદનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર—(लोइयं दव्वावस्सयं) લૌકિક દ્રવ્યાવશ્યકનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે-

(जे इमे राईसर, तलवर, माडंबिय, कोडुंबिय, इब्भ, सेट्ठि, सेणावइ, सत्थवाहप्पभिइओ) જે આ રાજેશ્વર (માંડલિક નરપતિ-ઐશ્વર્યસંપન્ન વ્યક્તિ), તલવર, માંડલિક, કૌટુંબિક, ઇભ્ય, શ્રેષ્ઠી, સેનાપતિ, સાર્થવાહ આદિ મનુષ્યો (कल्लं) સામાન્ય પ્રભાતકાળ થતાં, (पाउप्पभायाए रयणीए) રાત્રિ વ્યતીત થઈને દિવસની પ્રારંભિક અવસ્થારૂપ પ્રભાતકાળનો પ્રારંભ થતાં, (सुविमलाए, फुल्लुप्पल-कमलकोमलुम्मिलियम्मि) તથા રાત્રિકાળ પસાર થઈને પહેલાં કરતાં સ્ફુટતર પ્રકાશથી સંપન્ન, વિકસિત કમલપત્રોથી સંપન્ન અને મૃગવિશેષના નયનોના સુકુમાર ઉન્મીલનથી યુક્ત, (अहापंडुरे) યથાયોગ્ય પીતમિશ્રિત શુક્લ (આછાં પીળાં) પભાए) પ્રભાત થતાં, (रत्तासोगप्पगासकिंसुय सुयमुहगुंजद्धरागसरिसे) તથા લાલ અશોકવૃક્ષના સમાન, પલાશપુષ્પ સમાન તથા શુકના મુખ સમાન અને ગુંજાર્ધ (ચણોઠીનો અર્ધ ભાગ) સમાન લાલ, (कमलागरनलिणिसंडबोहए) કમલોના ઉત્પત્તિ સ્થાનરૂપ હૃદાદિ જળાશયોમાં પદ્મ વનોને વિકસિત કરનાર, (सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा

तैलस्नानफणिहसिद्धार्थकहरितालिकाऽऽदर्शधूपपुष्पमाल्यगन्धताम्बूलवस्त्रादिकानि द्रव्यावश्यकानि कुर्वन्ति। ततःपश्चात् राजकुलं वा देवकुलं वा आरामं वा उद्यानं वा सभां वा प्रपां वा गच्छन्ति। तदेतत् लौकिकं द्रव्यावश्यकम् ॥सू० २०॥

टीका—शिष्यःपृच्छति—'से किं तं' इत्यादि। अथ किं तद् लौकिकं द्रव्यावश्यकम् इति। उत्तरमाह-लौकिकं—लोके भवं लौकिकं द्रव्यावश्यकं वर्तते

दिणयरे तेयसा जलंते) सहस्रकिरणों से युक्त, दिवसविधायक और तेज से देदीप्यमान ऐसे (सूरे उट्ठियम्मि) सूर्य के उदित होने पर (मुहधोयण—दंतपक्खालण—तेल्ल—ण्हाणफणिह—सिद्धत्थय—हरि—अद्दागधूप—पुप्फमल्लगंधतंबोलवत्थाइं दव्वावस्सयाइं करेंति) मुँह का धोना दन्तों का प्रक्षालन करना फणिह—कंघी से बालों का ऊंछना, मङ्गलनिमित्त सरसों का और दूर्वा का प्रक्षेपण करना, दर्पण में मुँह का अवलोकन करना, धूप से वस्त्रों को सुरभित करना, फूलों को लेना, पुष्पों की माला पहिरना पान खाना, और शुद्ध वस्त्रों का पहिरना इत्यादिरूप द्रव्यावश्यक करते हैं। (तओ पच्छा) इसके बाद वे (रायकुलं वा देवकुलं वा आरामं वा उज्जाणं वा सभं वा, पवं वा गच्छंति) राजकुल में, या देवकुल में अथवा आराम में या उद्यान में, या सभा में अथवा पानीयशाला में जाते हैं। तात्पर्य इसके कहने का यह है कि राजेश्वरादि संबन्धी जो मुखधावनादि कार्य है वह सब लौकिक द्रव्यावश्यक हैं। राजा जिन्हें

જલંતે) સહસ્ર કિરણોથી યુકત, દિવસ વિધાયક અને તેજથી દેદીપ્યમાન એવા (सूरे उट्ठियम्मि) સૂર્યનો ઉદય થતાં (मुहधोयण, दंतपक्खालणं, तेल्ल, ण्हाण, फणिह, सिद्धत्थय, हरि, अद्दागधूव, पुप्फमल्लगंधतंबोलवत्थाइं दव्वावस्सयाइं करेंति) મુખ ધોવારૂપ, દાંત સાફ કરવા રૂપ શરીર પર તેલનું માલિશ કરવારૂપ, સ્નાન કરવારૂપ, દાંતિયા કે કાંસકી વડે વાળ ઓળવારૂપ, મંગળ નિમિત્ત સરસવ અને દુર્વાનું પ્રક્ષેપણ કરવારૂપ, દર્પણમાં પોતાના મોઢ નું અવલોકન કરવારૂપ, સુગંધયુકત ધૂપથી વસ્ત્રોને સુગંધિદાર કરવારૂપ, ફૂલો ગ્રહણ કરવારૂપ, ફૂલોની માળાઓ પહેરવારૂપ, પાન ખાવારૂપ, સ્વચ્છ વસ્ત્રો ને પરિધાન કરવારૂપ ઇત્યાદિ-રૂપ દ્રવ્યાવશ્યક કરે છે (तओ पच्छा) ત્યારબાદ તેઓ (रायकुलं वा, देवकुलं वा, आरामं वा, उज्जाणं वा, सभं वा, पवं वा, गच्छंति) રાજદરબારમાં, અથવા દેવ સ્થાનમાં, અથવા આરામગૃહમાં અથવા બાગમાં, અથવા સભામાં અથવા જળાશય તરફ જાય છે.

આ સમસ્ત કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે રાજેશ્વર આદિ ઉપર્યુકત માણસોના જે મુખધાવન આદિ કાર્યો છે તે સૌને લૌકિક દ્રવ્યાવશ્યકરૂપ ગણવામાં આવ્યા છે.

इत्यर्थः। ये इमे मनुष्याः राजेश्वरतलवरमाण्डविककौटुम्बिकेभ्यश्रेष्ठिसेनापतिसार्थवाहप्रभृतयः, तत्र—राजानः=माण्डलिकनरपतयः, ईश्वराः=ऐश्वर्यसम्पन्नाः, तलवराः=भूपालदत्तपट्टपरिभूषितराजवल्लभाः कोट्टपाला इत्यर्थः छिन्नभिन्नजनाश्रयविशेषो मडम्बस्तत्राधिकृताः माडम्बिकाः ग्रामपञ्चशतीपतय इत्यर्थः, यद्वा—सार्द्धक्रोशद्वयपरिमितप्रान्तरैर्विच्छिद्यविच्छिद्यस्थितानां ग्रामाणामधिपतयः, कौटुम्बिकाः=कुटुम्बभरणे तत्पराः, यद्वा-बहुकुटुम्बप्रतिपालकाः, इभ्याः इभो=हस्ती तत्प्रमाणं द्रव्यमर्हन्तीति तथा, ते च जघन्यमध्योत्कृष्टभेदात् त्रिप्रकाराः, तत्र हस्तिपरिमितमणिमुक्ताप्रवालसुवर्णरजतादिद्रव्यराशिस्वामिनो जघन्याः, हस्तिपरिमितवज्रमणिमाणिक्यराशिस्वामिनो मध्यमाः, हस्तिपरिमितकेवलवज्रस्वामिन

पट्टबन्ध प्रदान करता है उनका नाम तलवर है अर्थात् कोटवाल। ये राजा जैसे ही होते हैं। छिन्नभिन्न जनाश्रय विशेष का नाम मडंब है। इन मडंबों में जो अधिकृत होते हैं उन का नाम माडंबिक है। ये ५०० गाँवों के अधिपति होते हैं। ढाई २ कोस के अन्तर को छोड छोड कर जो गांव बसते हैं उनका नाम भी मडंब है। इनके जो अधिपति होते हैं वे माडंबिक हैं। कुटुंब के भरणपोषण कार्य में जो रत रहते हैं अथवा अनेक कुटुम्बों का जो प्रतिपालन करते हैं वे कौटुंबिक हैं। इभ नाम हाथी का है। हाथी प्रमाण द्रव्य जिनके पास होता है वे इभ्य हैं। ये जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट इस तरह ३ प्रकार के होते हैं। इनमें से जो हस्त परिमित मणि, मुक्ता, प्रवाल सुवर्ण और रजत आदि द्रव्यराशि के स्वामी होते हैं वे जघन्य इभ्य हैं। हस्तिपरिमित वज्र-हीरा, मणि, और माणिक्य राशि के जो स्वामी होते हैं

હવે આ સૂત્રમાં વપરાયેલા તલવર આદિ પદોનો અર્થ સમજાવવામાં આવે છે-"તલવર" સંતુષ્ટ થાય ત્યારે રાજા જેમનો રાજપોષાક પ્રદાન કરે છે તેમનું નામ તલવર છે. તેઓ રાજા જેવાં જ હોય છે. છિન્નભિન્ન જનાશ્રયવિશેષને મડંબ કહે છે. આ પ્રકારના મડંબોના અધિપતિને માડંબિક કહે છે. તેઓ ૫૦૦-૫૦૦ ગામોના અધિપતિ હોય છે. અથવા અઢી અઢી ગાઉને અંતરે જે ગામો વસે છે તે ગામોનું નામ મડંબ છે અને તેના અધિપતિને માડંબિક કહે છે. કુટુંબના ભરણ પોષણ ના કાર્યમાં જેઓ રત રહે છે તેમને. અથવા અનેક કુટુંબોનું પરિપાલન કરનારને કૌટુંબિક કહે છે. 'ઇભ્ય' એટલે હાથી હાથી પ્રમાણ ધન જેની પાસે હોય છે. તેને ઇભ્ય કહે છે ઇભ્યના નીચે પ્રમાણે ત્રણ પ્રકાર છે. જઘન્ય મધ્યમ અને ઉત્કૃષ્ટ હસ્તિપરિમિત (હાથી પ્રમાણ) મણિ. મોતી. પ્રવાલ. સુવર્ણ. રજત (ચાંદી) આદિ દ્રવ્યરાશિના જે સ્વામી હોય છે તેને 'જઘન્ય' ઇભ્ય' કહે છે. હસ્તિપરિમિત વજ્ર

उत्कृष्टाः, श्रेष्ठिनः=लक्ष्मीकृपाकटाक्षप्रत्यक्षलक्ष्यमाणद्रविणलक्षलक्षण-विलक्षणहिरण्यपट्टसमलङ्कृतमूर्धानो नगरप्रधानव्यवहर्त्तारः, सेनापतयः=चतुरङ्गसेनानायकाः, सार्थवाहाः=गणिम-धरिम-मेय-परिच्छेद्यरूपक्रयविक्रययोग्यवस्तु-जातमादाय लाभेच्छया देशान्तराणि व्रजतां सार्थं वाहयन्ति=योगक्षेमेभ्यो परि-पालयन्ति, दीनजनोपकाराय मूलधनं दत्त्वा तान् संवर्द्धयन्तीति तथा, तत्र-गणिमम्=एकद्वित्रिचतुरादि संख्याक्रमेण गणयित्वा यद्दीयते तथा-नालिकेर-पूगी-

वे मध्यम इभ्य हैं। जो हस्ति परिमित वज्र के ही अकेले स्वामी होते हैं वे उत्कृष्टइभ्य हैं। जिन के पास लक्ष्मी देवी के कृपाकटाक्ष से लाखों का द्रव्य होता है और इसी कारण जो नगर सेठ की उपाधि से विभूषित रहा करते हैं। इसके उपलक्ष्य में राजा इन्हें सुवर्ण का पट्टबंध प्रदान करता है जिस से उन का मस्तक सदा विभूषित रहा करता हैं। ऐसे मनुष्य श्रेष्ठी कहलाते हैं। चतुरंग सेना के जो नायक होते हैं उनका नाम सेनापति है। गणिम, धरिम, मेय, और परिच्छेद्यरूप क्रय विक्रय योग्य द्रव्यसमूह को लेकर जो लाभ की इच्छा से देशान्तर को जाते हुए मनुष्यों के साथ को दीनजनों के निमित्त प्रदान कर उनका संवर्द्धन करते हैं उनका नाम सार्थवाह है। अलब्ध वस्तु का लाभ होना इसका नाम योग और लब्ध का परिरक्षण होना इसका नाम क्षेम है। नारिकेल-नारियल, पूगीफल-सुपारी, कदलीफल-केला आदि ये सब गणिम द्रव्य हैं। क्योंकि ये एक, दो, तीन, चार, आदिरूप से

-हीरा, मणि अने माणेकनी राशिनो जे स्वामी होय छे तेने 'मध्य इभ्य' कहे छे. हस्तिपरिमित वज्रनो ज जे स्वामी होय छे तेने उत्कृष्ट इभ्य' कहे छे.

जेमनी पासे लक्ष्मीदेवीनी कृपाने लीधे लाखोनुं द्रव्य होय छे. अने ते कारणे जेने नगरशेठनी पदवी मळी होय छे. एवा मनुष्यने श्रेष्ठी (शेठ) कहे छे. आ पदवीना उपलक्ष्यमां राजा तेमने सुवर्णनो पट्टबंध प्रदान करे छे ते पट्टबंधथी ते श्रेष्ठीनुं मस्तक सदा विभूषित रहे छे. चतुरंग सेनाना नायकने सेनापति कहे छे.

हवे सार्थवाह' आ पदनो अर्थ समजाववामां आवे छे—

गणिम. धरिम. मेय. अने परिच्छेद्यरूप क्रयविक्रययोग्य द्रव्यसमूहने लइने लाभ प्राप्तिनी इच्छाथी अन्य देश तरफ प्रयाण करतां मनुष्योना सार्थ (समूह)ने जे योग क्षेमपूर्वक पाळे छे. अथवा तेमने जवानुं होय ते स्थाने सलामत रीते पहोंचाडे छे, जे पोताना मूळ धननुं गरीब लोकोने माटे दान करीने तेमनुं संव-र्धन करे छे, एवा पुरुषने सार्थवाह कहे छे,

अलब्ध वस्तुनो लाभ (प्राप्तिरूप लाभ) थवो तेनुं नाम 'योग' छे. अने लब्ध (प्राप्त थयेली वस्तु)नुं परिरक्षण थवुं तेनुं नाम 'क्षेम' छे नारियेर. सोपारी

फलं–कदलीफलादिकम् । धरिमं=तुलासूत्रेणोत्तोल्य यद्दीयते, यथा व्रीहि–यव-लवण–सितादि । मेयं=शरावलघुभाण्डादिनोत्तोल्य यद्दीयते, यथा–दुग्ध–घृत–तैलप्रभृति । परिच्छेद्यं च प्रत्यक्षतो निकषादिपरीक्षया यद्दीयते, यथा–मणि–मुक्ता–प्रवालाभरणादि । एतेषां राजेश्वरादीनामितरेतरयोगद्वन्द्वः, ते प्रभृतयः= आद्या मुख्या येषां ते तथा, कल्पे=सामान्येन प्रभाते, प्रभातस्यैव विशेषावस्थाः प्राह–'पाउप्पभायाए' इत्यादिना । 'पाउप्पभायाए' प्रादुष्प्रभातायां–प्रादुर्भूतः प्रारम्भिकावस्थां प्राप्तः प्रभातो यस्यां सा तथा तस्याम्, रजन्याम्–रात्रौ इति प्रभातस्य प्रथमावस्था १ । तदनन्तरम् सुविमलायां=पूर्वापेक्षया–स्फुटतरप्रकाशायां

गिनकर बेचे या दिये जाते हैं। जो तराज़ से तोलकर बेचे या दिये जाते हैं–उनका नाम धरिम है जैसे व्रीहि, यव–जौ, लवण, शक्कर आदि। पीतल आदि के बनाये गये बाँटों से जो नापकर बेचे या दिये जाते हैं–उनका नाम मेय है–जैसे घृत, तेल दुग्ध वगैरह । जो कसौटी आदि पर कसकर प्रत्यक्ष में परीक्षित करके दिये जाते हैं वे परिछेद्य हैं। जैसे मणि, मुक्ता प्रवाल आदि। "पाउप्पभायाए" इत्यादि पदों द्वारा सूत्रकारने प्रभात की विशेष अवस्थाओं का प्रतिपादन किया है । वे अवस्थाएँ यहां ३ तीन प्रकट की गई है "पाउप्पभायाए" इस पद से प्रभात की प्रथम अवस्था बतलाई गई है–इस अवस्था में रात्रि प्रभातप्राय हो जाती है। यह समय प्रभात की आभा प्रारम्भिक अवस्था में आ जाती है । इसके बाद प्रभात कीद्वितीय-

---

કેળાં આદિને ગણિમદ્રવ્ય કહે છે. કારણ કે આ વસ્તુઓ એક બે. ત્રણ આદિરૂપ ગણીને વેચાય છે અથવા ખરીદ કરાય છે. ત્રાજવાની મદદથી વજન કરીને જે વસ્તુઓને વેચાય અથવા ખરીદાય છે તે વસ્તુઓને ધરિમ કહે છે. જેમકે ચોખા. જવ, ખીલું. સાકર આદિ દ્રવ્યો પીતળ આદિમાંથી બનાવેલા પાવળાં આદિ સાધનો વડે માપીને જે દ્રવ્યો વેચાય છે તે દ્રવ્યોને 'મેય' કહે છે. જેમકે ઘી. તેલ; દૂધ. જે દ્રવ્યોને કસોટી પથ્થર આદિ પર કસોટી કરીને–તેમની પ્રત્યક્ષ પરીક્ષા કરીને કરીને વેચવા કે ખરીદવામાં આવે છે. એવાં દ્રવ્યોને પરિચ્છેદ્ય કહે છે. જેમકે. મણિ. મોતિ. પ્રવાલ આદિ દ્રવ્યો.

"पाउप्पभायाए" ઇત્યાદિ પદો દ્વારા સૂત્રકારે પ્રભાતની વિશેષ અવસ્થાઓનું પ્રતિપાદન કર્યું છે. તે અવસ્થાઓ અહીં ત્રણ પ્રકારની કહેવામાં આવી છે–"पाउप्पभायाए" આ પદ દ્વારા પ્રભાતની પ્રથમ અવસ્થા પ્રકટ કરવામાં આવી છે. આ અવસ્થામાં રાત્રિ પ્રભાતપ્રાય થઈ જાય છે. લગભગ રાત્રિના ચાર વાગ્યાના સમયને આ પ્રભાતની પ્રથમ અવસ્થારૂપ સમય સમજવો. તે સમયે પ્રભાતની આભા

तस्यामेव रात्रौ अनन्तरम् फुल्लोत्पलकमलकोमलोन्मीलिते-फुल्लं च तदुत्पलं च फुल्लोत्पलम्, कमलो मृगविशेषः, तयोः कोमलं=सुकुमारम् दलनरोश्च उन्मीलितम्=उन्मीलनं यस्मिन् प्रभाते स तथा तस्मिन् 'अहापंडुरे' यथापाण्डुरे =यथायोग्यपीतसंकलितशुक्ले प्रभाते सति इति-प्रभातस्य द्वितीयावस्था २। तदनन्तरं-रक्ताशोकप्रकाशकिंशुकशुकमुखगुञ्जार्द्धरागसदृशे रक्ताशोकस्य प्रकाशः=कान्तिः, किंशुकं =पलाशपुष्पं च, शुकमुखं च, गुञ्जार्द्धं च, तेषां रागेण सदृशो यः स तथा तस्मिन्, कमलाकरनलिनीषण्डबोधके-कमलानाम आकराः=उत्पत्तिभूमयो ह्रदादि जलाशय विशेषास्तेषु यानि नलिनीषण्डानि=पद्मवनानि तेषां बोधकस्तस्मिन्, सहस्सरस्सिम्मि= सहस्रकिरणे दिनकरे=दिवसविधायिनि तेजसा ज्वलति सूर्ये उत्थिते च सति इति प्रभातस्य तृतीयावस्था ३। तदा मुखधावनदन्तप्रक्षालनतैलस्नानकर्णह-सिद्धार्थकहरितालिकाऽऽदर्शधूपपुष्पमाल्यगन्धताम्बूलवस्त्रादिकानि द्रव्यावश्यकानि कुर्वन्ति। तत्र-मुखधावनं=जलेन मुखप्रक्षालनम्, दन्तप्रक्षालनम्=दन्तकाष्ठा-

---

य अवस्था होती है-इसमें पहिले की अपेक्षा प्रकाश स्फुटतर हो जाता है-जिसे-पौ फटना कहते हैं। धीरे २ प्रकाश बढते २ कमलों के ईषत् विकाश और मृगों के उन्निद्र-निद्रारहित नयनों के सुकुमार उन्मीलन से युक्त होकर कुछ २ पीतवर्ण से मिश्रितशुभ्रता से समन्वित बन जाता है। इस द्वितीय अवस्था को पार कर जब प्रभात अपनी तृतीय अवस्था में पहुंचता है तब इस समय सूर्य उदित होकर अपने प्रकाश-ऊषा से उसे प्रकाशित कर देता हैं। इसे तृतीय अवस्था संपन्न प्रभात के समय जो राजेश्वरादि मनुष्य मुखधावनादि आवश्यक कृत्यों का संपादन करते हैं वे सब कार्य लौकिक द्रव्यावश्यक हैं।

પ્રારંભિક અવસ્થામાં આવી જાય છે. ત્યારબાદ પ્રભાતની દ્વિતીય અવસ્થાનો પ્રારંભ થવા માંડે છે. ત્યારે પહેલાં કરતાં પ્રકાશ સ્ફુટતર થતો જાય છે. આ સમયને 'પ્યો ફાટવો' અથવા ઝાંખાઝાંખાનો સમય કહે છે ધીરેધીરે પ્રકાશ વધતો જાય કમળોનો ઈષત્ (સામાન્ય અલ્પ) વિકાસથી અને મૃગોના ઉન્નિદ્ર નયનોના સુકુમાર ઉન્મીલનથી (ઉઘડવાથી) યુકત થઈને સહેજ સહેજ પીતવર્ણથી મિશ્રિત એવી શુભ્રતાથી સમન્વિત બની જાય છે આ બીજી અવસ્થા પસાર કરીને જ્યારે પ્રભાત પોતાની ત્રીજી અવસ્થાને પ્રાપ્ત કરે છે, ત્યારે સૂર્યોદય થઈ જવાને કારણે, સૂર્યના હજારો કિરણો વડે-ઊષા વડે પ્રભાત પ્રકાશિત થઈ જાય છે. આ તૃતીય અવસ્થાસંપન્ન પ્રભાતને સમયે રાજેશ્વર આદિ મનુષ્યો જે મુખધાવન આદિ આવશ્યક કૃત્યો કરે છે, તે સઘળાં કૃત્યોને લોકિક દ્રવ્યાવશ્યક કહે છે.

दिना दन्तानां धावनं, तैलं=तैलाभ्यङ्गः, स्नानं, तथा—कणिहः—कङ्कतिका—कङ्कतिकया केशेषु व्यापारणमित्यर्थः, सिद्धार्थकाः=सर्षपाः, हरितालिका=दूर्वा, मस्तके मङ्गलार्थं सिद्धार्थकानां दूर्वायाश्च प्रक्षेपणम्, आदर्शः=दर्पणः—मुखाद्यवलोकनम्, धूपः=धूपेन वस्त्राणां सुरभीकरणम्, पुष्पाणि, माल्यम्=पुष्पमाला, पुष्पमाल्यानां मस्तकादिषूपयोगः, ताम्बूलम्, वस्त्राणि च आदिर्येषां तानि तथाभूतानि द्रव्यावश्यकानि कुर्वन्ति। ततःपश्चात्=मुखधावनादि-द्रव्यावश्यककरणानन्तरं राजकुलं वा देवकुलं वा आरामं वा उद्यानं वा तथा सभां वा, प्रपां=पानीयशालां वा गच्छन्ति। राजेश्वरादिसम्बन्धिकं मुखधावनादिकं द्रव्यावश्यकं विज्ञेयम्।

ननु राजेश्वरादिभिरवश्यं क्रियमाणत्वाद् मुखधावनादीनां भवत्वावश्यकत्वम् परन्तु द्रव्यत्वं तु तेषां नास्ति, विवक्षितपर्यायस्य यत् कारणं तस्यैव द्रव्यत्वात्, उक्तं चापि—

"भूतस्य भाविनो वा भावस्य हि कारणं तु यल्लोके।
तद्द्रव्यं तज्ज्ञैः सचेतनाचेतनं कथितम्" ॥ इति ॥

अस्य पद्यस्य व्याख्या प्रागेव 'से किं तं दव्वावस्सयं' इति त्रयोदशसूत्रस्य टीकायां कृता।

इत्थं राजेश्वरादि संबन्धिनां मुखधावनादीनामावश्यकपर्यायकारणत्वाभावाद्

શંકા—રાજેશ્વર આદિ મનુષ્યદ્વારા સંપાદિત મુખધાવન આદિ ક્રિયાઓમાં અવશ્ય કરણીયતા હોવાને કારણે આવશ્યકત્વ ભલે રહે. એ વાત સંબંધમાં અમે કોઇ વિવાદમાં ઉતરવા માગતા નથી. પરન્તુ તે ક્રિયાઓમાં વિવક્ષિત પર્યાયના કારણરૂપ દ્રવ્યત્વ સંભવી શકતું નથી. કારણ કે વિવક્ષિત પર્યાયરૂપ જે આવશ્યક પર્યાય અહીં પ્રકૃત કરવામાં આવી છે, તે પર્યાયની સાથે મુખધાવન આદિ ક્રિયાઓને શો સંબંધ છે? તેરમાં સૂત્રની ટીકામાં આપે દ્રવ્યનું આ પ્રમાણે લક્ષણ કહ્યું છે—"भूतस्य भाविनो वा" ઇત્યાદિ. આપે પ્રતિપાદિત કરેલા એ લક્ષણ પ્રમાણેની દ્રવ્યતા રાજેશ્વર આદિના મુખધાવન આદિ લૌકિક કાર્યોમાં નહીં આવી શકવાથી (અસંગતિ)

नास्ति द्रव्यावश्यकत्वमिति चेदुच्यते–'भूतस्य भाविनो वा' इत्याद्येव द्रव्यलक्षणं नास्ति, किन्तु–'अप्पाहण्णे वि दव्वसद्दोत्थिं' अप्राधान्येऽपि द्रव्यशब्दोऽस्ति–इति वचनात् अप्रधानरूपेऽर्थेऽपि द्रव्यशब्दो वर्तते। मुखप्रावनादौ मोक्षप्राप्तेरप्राधान्यं च मोक्षकारणभूतभावावश्यकापेक्षया बोध्यम्। यतो मोक्षस्य कारणं तु भावावश्यकमेव नतु द्रव्यावश्यकम् अतोऽत्र मुखधावनादेरप्राधान्यमिति। ततश्च-द्रव्यभूतानि–अप्रधानभूतानि–आवश्यकानि द्रव्यावश्यकानीत्यर्थः, एवं च संसारकारणानां राजेश्वरादि मुखधावनादीनामस्त्येव द्रव्यावश्यकत्वम्. इति नास्ति दोषावसरः। मुख-

---

कार्यों में नहीं. आसकने से उनमें आवश्यक पर्याय के प्रति कारणता नहीं बन सकती है। इस कारणता के अभाव में उनमें द्रव्यावश्यकता नहीं आसकती है ?

उत्तर–शंकाकार को जो इस प्रकार की शंका उत्पन्न हुई है। उसका कारण "भूतस्य भाविनो वा" इत्यादि पद्योक्त द्रव्य का लक्षण है कि इसपर यह कहना है कि द्रव्य का लक्षण इतना ही नहीं है किन्तु "अप्पहाणे वि दव्वसद्दोत्थि" अप्राधान्य अर्थ में भी द्रव्य शब्द है "इस-कथन के अनुसार अप्रधान अर्थ में भी द्रव्य शब्द का प्रयोग हुआ है। इन मुखधावनादि लौकिक कृत्यों में मोक्षप्राप्ति की अप्रधानता मोक्ष के कारण भूत भावावश्यक की अपेक्षा से कहा गया है। क्योंकि मोक्ष का कारण तो भावावश्यकही होता है, नहि कि द्रव्यावश्यक इसलिए यहाँ मुखधावनादि की अप्रधानता है। इसकारण द्रव्यभूत-अप्रधानभूत जो आवश्यक हैं वे द्रव्यावश्यक हैं ऐसा अर्थ द्रव्यावश्यक का लभ्य हो जाता है। इस तरह राजेश्वर आदि के संसारकारणभूत मुखधावनादि कार्यों में द्रव्यावश्यकता घटित हो जाती है। इन मुखधावनादि कृत्यों में लोकप्रसिद्धि से भी आगमरूपता नहीं हैं–अतः उनमें आगम का अभाव होने से नो

હોવાથી) તે ક્રિયાઓ આવશ્યકપર્યાયના કારણરૂપ બની શકતી નથી. આ કારણતાના અભાવને લીધે તે ક્રિયાઓમાં દ્રવ્યાવશ્યકતાનો સદ્ભાવ સંભવી શકતો નથી,

ઉત્તર—શંકા કરનારે આ પ્રકારની જે શંકા કરી છે તેનું કારણ "भूतस्य भाविनो वा" ઇત્યાદિ સૂત્રપાઠ દ્વારા દ્રવ્યનું જે લક્ષણ પ્રકટ કરવામાં આવ્યું છે, તે લક્ષણવાળા પદાર્થને જ દ્રવ્ય માનવું જોઇએ, એવી જ તેની માન્યતા છે. આ પ્રકારની માન્યતાને કારણે જ આ શંકા ઉદ્ભવી છે. તો તેની શંકાના જવાબરૂપે અમારે એટલું જ કહેવાનું કે દ્રવ્યનું લક્ષણ એટલું જ નથી, પરન્તુ "अप्पहाणे वि दव्वसद्दोत्थि" "અપ્રધાન્યમાં પણ દ્રવ્ય શબ્દ છે," આ કથન અનુસાર અપ્રધાન અર્થમાં પણ દ્રવ્ય શબ્દનો પ્રયોગ થયો છે. તે મુખધાવન આદિ લૌકિક કૃત્યોમાં જે અપ્રધાનતા (પ્રધાનતાથી રહિતપણું) કહી છે તે મોક્ષના કારણભૂત ભાવાવશ્યકની અપેક્ષાએ કહેવામાં આવી છે, તેથી દ્રવ્યભૂત-અપ્રધાનરૂપ જે આવશ્યક છે તેમને

धावनादौ लोकप्रसिद्धयाऽपि आगमाभावात् सर्वथा नोआगमत्वम्, नोशब्दश्चात्र सर्वथा आगमनिषेधे वर्तते । तदेतत् लौकिकं द्रव्यावश्यकं वर्णितम् ॥सू० २०॥

आगमता आजाती है । इस प्रकार सर्वथा आगम के अभावजन्य द्रव्यावश्यकता इनमें होने से लौकिक द्रव्यावश्यकता इनमें बन जाती है। इस तरह से लौकिक द्रव्यावश्यक का स्वरूप वर्णन है ।

भावार्थ—इस सूत्रद्वारा सूत्रकार ने तद्व्यतिरिक्त लौकिकद्रव्यावश्यक का स्वरूप बतलाया है । उसमें संसारीजनोंद्वारा जो भी मांगलिक कृत्य हैं कि जिन्हें करना आवश्यक होता है वे सब लौकिक द्रव्यावश्यक हैं । मंगल निमित्त सर्षपों का प्रक्षेप करना दूर्वा का संसार कार्यों में उपयोग करना, दहीं आदि का किसी शुभ कार्य के निमित्त भक्षण करना आदि सब द्रव्यावश्यक हैं । यद्यपि इन लौकिक आवश्यकपर्याय के प्रति कोई संबंध नहीं है फिर भी इन्हें द्रव्यावश्यक का अर्थ अप्रधानभूत आवश्यक मानकर द्रव्यावश्यकरूप माना गया है। इन लौकिक कार्यों में आगम का सर्वथा अभाव रहता है । अतः ये नोआगमरूप हैं ॥सूत्र२०॥

द्रव्यावश्यकરૂપ કહે છે આ પ્રકારનો દ્રવ્યાવશ્યકનો અર્થ પ્રાપ્ત થઈ જાય છે. આ પ્રકારે રાજેશ્વરાદિના સંસાર કારણભૂત મુખધાવન આદિ કાર્યોમાં દ્રવ્યાવશ્યકતા ઘટિત થઈ જાય છે. આ મુખધાવનાદિ કૃત્યોનાં લોકપ્રસિદ્ધિની અપેક્ષાએ પણ આગમરૂપતા નથી. તે કારણે તે ક્રિયાઓમાં આગમનો અભાવ હોવાને લીધે નો આગમતા સિદ્ધ થાય છે. આ પ્રકારે આગમના સર્વથા અભાવ જન્ય દ્રવ્યાવશ્યકતા તેમનામાં હોવાથી તેમનામાં લૌકિક દ્રવ્યાવશ્યકતા હોવાની વાત સિદ્ધ થઈ જાય છે દ્રવ્યાવશ્યકતાના સ્વરૂપનું આ પ્રકારનું વર્ણન અહીં કરવામાં આવ્યું છે.

ભાવાર્થ—આગલા બે સૂત્રમાં (૧૭ અને ૧૮ મા સૂત્રમાં જ્ઞાયકશરીર દ્રવ્યાવશ્યક અને ભવ્યશરીરદ્રવ્યાવશ્યકનું સ્વરૂપ પ્રકટ કરવામાં આવ્યું. હવે તે બન્નેથી ભિન્ન એવા દ્રવ્યાવશ્યકની પ્રરૂપણા કરવામાં આવે છે. આ સૂત્રદ્વારા તેના પ્રથમ ભેદરૂપ લૌકિક દ્રવ્યાવશ્યકનું સ્વરૂપ બતાવવામાં આવ્યું છે. સંસારી જીવો દ્વારા જે જે માંગલિક ક્રિયાઓ કરવાનું આવશ્યક માનવામાં આવે છે. તે સઘળી ક્રિયાઓને લૌકિક દ્રવ્યાવશ્યક કહેવામાં આવે છે. મંગળ નિમિત્તે સરસવ આદિનો પ્રક્ષેપ કરવો, દૂર્વા (દર્ભ)નો માંગલિક કાર્યોમાં ઉપયોગ કરવો. કોઈ શુભકાર્યને નિમિત્તે દહીં આદિનું ભક્ષણ કરવું. વગેરે ક્રિયાઓને લૌકિક દ્રવ્યાવશ્યક કહે છે. જો કે આ લૌકિક આવશ્યક કૃત્યોનો આવશ્યકપર્યાયની સાથે કોઈ સંબંધ નથી. છતાં પણ દ્રવ્યાવશ્યકનો અર્થ અપ્રધાનભૂત આવશ્યક માનીને તેમને દ્રવ્યાવશ્યકરૂપ માનવામાં આવેલ છે. આ લૌકિક કાર્યોમાં આગમનો સર્વથા અભાવ રહે છે. તેથી તેઓ નો આગમરૂપ છે. ॥ સૂ૦ ૨૦ ॥

अथ ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्त—कुप्रावचनिकद्रव्यावश्यकरूपं द्वितीयभेदं निरूपयति—

मूलम्—से किं तं कुप्पावयणियं दव्वावस्सयं ? कुप्पावयणियं दव्वावस्सयं जे इमे चरगचीरिगचम्मखंडियभिक्खोंडपंडुरंगगोयमगोव्वतिय गिहिधम्मधम्मचिंतगअविरुद्धविरुद्धवुड्ढसावगप्पभितओ पासंडत्था कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव तेयसा जलंते इंदस्स वा खंदस्स वा रुद्दस्स वा सिवस्स वा वेसमणस्स वा देवस्स वा नागस्स वा जक्खस्स वा भूयस्स वा मुगुंदस्स वा अज्जाए वा दुग्गाए वा कोट्टकिरियाए वा उवलेवणसंमज्जणआवरिसणधूवपुप्फगंधमल्लाइयाइं दव्वावस्सयाइं करेंति, से तं कुप्पावयणियं दव्वावस्सयं ॥ सू० २१ ॥

छाया—अथ किं तत् कुप्रावचनिकं द्रव्यावश्यकम् ? कुप्रावचनिकं द्रव्यावश्यकं य इमे चरकचीरिकचर्मखण्डिकभिक्षोण्डपाण्डुराङ्गगोतमगोव्रतिक

अब सूत्रकारतद्व्यतिरिक्त का जो दूसरा भेद कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यक है उसका वर्णन करते हैं—"से किं तं कुप्पावयणियं" इत्यादि ॥सूत्र २१॥

शब्दार्थ—(से) हे भदंत ! (तं) पूर्वप्रक्रान्त (पूर्व प्रस्तुतविषय) कुप्पावयणियं दव्वावस्सयं किं) कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यक का क्या स्वरूप है। (कुप्पावयणियं दव्वावस्सयं) उत्तर—कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यक का स्वरूप इस प्रकार है-सुनो-(जे इमे चरगचीरिगचम्मखंडियभिक्खोंडपंडुरंगगोयमगोव्वतियगिहिधम्म

"तद्व्यतिरिक्त द्रव्यावश्यकनो जे कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यक नामनो त्रीजो भेद छे तेनुं हवे सूत्रकार वर्णन करे छे—"से किं तं कुप्पावयणियं" इत्यादि—

शब्दार्थ—(से) शिष्य गुरुने एवो प्रश्न पूछे छे के हे भगवन्! (तं) पूर्व प्रक्रान्त (पूर्व प्रस्तुत विषय) (कुप्पावयणियं दव्वावस्सयं किं) कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यकनुं स्वरूप केवुं छे ?

उत्तर—(कुप्पावयणियं दव्वावस्सयं) कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यकनुं स्वरूप आ प्रकारनुं छे—(जे इमे चरगचीरिगचम्मखंडियभिक्खोंडपंडुरंगगोयमगोव्वतिगि-

गृहिधर्म धर्मचिन्तकाविरुद्धविरुद्धवृद्धश्रावकप्रभृतयः पाषण्डस्थाः कल्पे प्रादुष्प्रभातायां रजन्यां यावत् तेजसा ज्वलति इन्द्रस्य वा स्कन्दस्य वा रुद्रस्य वा शिवस्य वा वैश्रवणस्य वा देवस्य वा नागस्य वा यक्षस्य वा भूतस्य वा मुकुन्दस्य वा आर्यायाः वा दुर्गायाः वा कोट्टक्रियायाः वा उपलेपनसम्मार्जनावर्षणधूपपूष्पगन्धमाल्यादिकानि द्रव्यावश्यकानि कुर्वन्ति । तदेतत् कुप्रावचनिकं द्रव्यावश्यकम् ॥ सू० २१ ॥

धम्मचिंतगं अविरुद्धविरुद्धवुड्ढसावगप्पभितओ पासंडत्था) જો યે चरक, चीरिक, चर्मखंडिक, भिक्षोण्ड, पाण्डुराङ्ग, गोतम, गोव्रतिक, गृहि, धर्माधर्म चिंतक, अविरुद्ध, विरुद्ध, और वृद्ध. श्रावक आदि हैं कि जो पाषण्डस्थ अपने आप को व्रती मानते हैं (कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव तेयसा जलंते) सामान्य प्रभात होने पर प्रभातप्राय रजनी के होने पर यावत् तेज से ज्वलित सूर्य के उदय होने पर (इंदस्सवा) इन्द्र की (खंदस्स वा) अथवा स्कंद—कार्तिक स्वामी की (रुद्दस्स वा) अथवा रुद्र की (सिवस्स वा) अथवा शिव की (वेसमणस्स वा) अथवा वैश्रमण की (देवस्स वा) अथवा सामान्य देव की (नागस्स वा) अथवा नाग की (जक्खस्स वा) अथवा यक्ष की (भूयस्स वा) अथवा भूत की (मुगुंदस्सवा) अथवा मुकुंद की (अज्जाए वा) अथवा आर्यादेवी की (दुग्गाए वा) अथवा दुर्गा कि (कोट्टकिरियाए वा) अथवा कोट्टक्रिया की (उवलेवण संमज्जण—आवरिसण—धूवपुप्फगंधमल्लाइयाइं दव्वावस्सयाइं करेंति—से तं कुप्पावयणियं

हिअधम्मअधम्मचिंतगअविरुद्धविरुद्धवुड्ढसावगप्पभित ओ पासंडत्था) જે આ चरक चीरिक, चर्मखंडिक, भिक्षोंड. पांडुरांग. गौतम, गोव्रतिक, गृहिधर्मा, धर्मचिन्तक, अविरुद्ध अने वृद्ध श्रावक आदि छे के जेओ पाषंडस्थ छे-जेओ पोतानी जातने व्रती माने छे (आ बधां पदोनो अर्थ शब्दार्थने अन्ते स्पष्ट करवामां आव्यो छे) (कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव तेयसा जलंते) तेओ सामान्य प्रभात थतां—लगभग रात्रिनो अन्तकाळ समीप आवे त्यारे भळभांखळु थाय त्यारे अने सूर्य पोताना सहस्रकिरणोथी प्रकाशवा लागे त्यारे (इंदस्स वा)इन्द्रनी अथवा (खंदस्स वा) स्कंदनी—कार्तिक स्वामिनी, (रुद्दस्स वा) अथवा रुद्रनी (सिवस्स वा) अथवा शिवनी (वेसमणस्स वा) अथवा वैश्रमणनी कुबेरनी. (देवस्स वा) अथवा सामान्य देवनी (नागस्स वा) अथवा नागनी (जक्खस्स वा) अथवा यक्षनी. (भूयस्स वा) अथवा भूतनी (मुगुंदस्स वा) अथवा मुकुन्दनी. (अज्जाए वा) अथवा आर्यादेवीनी (दुग्गाए वा) अथवा दुर्गानी (कोट्टकिरियाए वा) अथवा कोट्ट क्रियानी (उवलेवण, संमज्जण—आवरिसण-धूव पुप्फ गंधमल्लाइयाइ दव्वावस्सयाइं करेंति से तं कुप्पावयणियं

टीका—शिष्यःपृच्छति—'से किं तं' इत्यादि। अथ किं तत् कुप्रावचनिकं द्रव्यावश्यकम्? उत्तरमाह-कुप्रावचनिकं=कुत्सितं प्रवचनं येषां ते कुप्रावचनाः, कुत्सितत्वं चास्य प्रवचनस्य मोक्षानुपयोगित्वात्, तेषामिदं कुप्रावचनिकम् द्रव्यावश्यकमेवं विज्ञेयम्—य इमे चरकचीरिकचर्मखण्डिक-भिक्षोण्ड-पाण्डुराङ्गगोतमगोव्रतिकगृहिधर्मधर्मचिन्तकाविरुद्धविरुद्धवृद्धश्रावकप्रभृतयः. पाषण्डस्थाः, तत्र-चरकाः=घाटिवाहकाः—यूथबद्धाः सन्तो ये भिक्षां चरन्ति ते चरकाः, अथवा-भुञ्जाना ये चरन्ति ते चरकाः। चीरिकाः=रथ्यापतितवस्त्रखण्डधारकाः, चर्मखण्डिकाः=चर्मवसनाः, यद्वा—चर्ममयसर्वोपकरणाः, भिक्षोण्डाः=ये भिक्षालब्धमेवान्नादिकं भुञ्जते न तु स्वपालितगवादीनां दुग्धादिकं, ते भिक्षोण्डा

दव्वावस्सयं) उपलेपन क्रिया करते हैं, संमार्जन क्रिया करते हैं, दुग्ध एवं गन्धोदक आदि से स्नान क्रिया करते हैं, पुष्पपूजा करते हैं, धूपपूजा करते है, चन्दन से उनका उपलेपन करते हैं उन पर माला चढाते हैं, इत्यादिरूप जो द्रव्यावश्यक करते हैं वह सब कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यक है। इस प्रकार पूर्व प्रक्रान्त द्रव्यावश्यक का यह स्वरूप है।

जो समुदायरूप में एकत्रित होकर भिक्षा मांगते हैं वे चरक हैं। अथवा खाते २ जो चलते हैं वे चरक हैं मार्ग में पडे हुए वस्त्रखंडों को जो पहना करते हैं वे चीरिक हैं। चमडे को वस्त्ररूप में पहनते हैं अथवा चमडे के ही समस्त उपकरण जिनके होते हैं उनका नाम चर्मखंडिक है। भिक्षा में प्राप्त हुए अन्न से ही जो अपना—उदर पूर्ण करते हैं-अपने घर में पालित गाय आदि के दुग्धादिक से नहीं—

दव्वावस्सयं) ઉપલેપન ક્રિયા કરે છે, સમાર્જન ક્રિયા કરે છે, દૂધ, ગંધોદક આદિ વડે સ્નાન કરાવવાની ક્રિયા કરે છે, ફૂલો વડે પૂજા કરે છે, ધૂપપૂજા કરે છે, ચન્દન વડ તેનું ઉપલેપન કરે છે, તેમના પર માળાઓ ચડાવે છે, ઇત્યાદિ પ્રકારના જે દ્રવ્યાવશ્યક કરે છે તે સઘળા દ્રવ્યાવશ્યકને કુપ્રાવચનિક દ્રવ્યાવશ્યક કહે છે. પૂર્વ પ્રસ્તુત કુપ્રાવચનિક દ્રવ્યાવશ્યકનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ છે હવે ચરક આદિ પદોનો અર્થ સ્પષ્ટ કરવામાં આવે છે—જેઓ સમુદાયરૂપે એકત્ર થઇને ભિક્ષા માગે છે તેમનું નામ ચરક છે. અથવા ખાતાં ખાતાં જેઓ ચાલે છે. તેમને 'ચરક' કહે છે. માર્ગ પર પડેલા વસ્ત્રખંડોને એકત્ર કરીને જેઓ તે વસ્ત્રખંડોને ધારણ કરે છે—પહેરે છે—તેમને 'ચીરક' કહે છે, ચામડાને જ વસ્ત્રરૂપે પહેરનાર અથવા ચામડાનાં જ ઉપકરણો રાખનારને 'ચર્મખંડિત' કહે છે.

ભિક્ષામાં પ્રાપ્ત થયેલા અન્નથી જ જેઓ પોતાનું પેટ ભરે છે—પોતાને ઘેર પાળેલી ગાય આદિના દૂધ આદિથી જે પોતાનું પેટ ભરતો નથી તેને 'ભિક્ષોંડ'

उच्यन्ते, यद्वा–भिक्षोण्डाः=सुगतशासनस्थाः, पाण्डुराङ्गाः–पाण्डुराणि=भस्मलेपनात् शुभ्राणि अङ्गानि=गात्राणि येषां ते तथा, भस्मलेपितशरीरा इत्यर्थः गोतमाः–ये हि विस्मयकारकपादपतनादिशिक्षाभिर्वृषभं शिक्षयित्वा वराटकमालाभिरतं विभूष्य तस्य वृषभस्य विविधमभिनयं दर्शयित्वा भिक्षन्ते ते गोतमाः गोव्रतिकाः–गोव्रतं येषां ते गोव्रतिकाः=गोचर्यानुकारिणः, ते हि गवां मध्ये वस्तुमिच्छया तद्भवनाभावितान्तःकरणा पुरान्निर्गच्छन्तीभिर्गोभिःसह निर्गच्छन्ति, तिष्ठन्तीभिः सह तिष्ठन्ति, उपविशन्तीभिः सहोपविशन्ति, भुञ्जानाभिःसह तद्वदेव तृणपुष्पफलादिकं भुञ्जते, जलं पिबन्तीभिः सह तदनुकरणेनैव जलं पिबन्ति। उक्तं च– "गावीहिं समं निग्गमपवेसठाणासणाइ पकरंति।
भुंजंति जहा गावी तिरिक्खवासं विभावंता॥"

उनका नाम भिक्षोण्ड है। अथवा सुगत–(बुद्ध) के शासन को मानने वालों का नाम भी भिक्षोण्ड है। भस्म के लेपन से जिनका शरीर शुभ्र हो जाता है उन का नाम शुभ्राङ्ग है। जो बैल को विस्मयकारक चाल सिखा करके और उसे कौडियों की मालाओं से विभूषित करके उसका अभिनय दिखा २ कर भिक्षावृत्ति करते हैं उनका नाम गोतम है। राजा दिलीप की तरह गोव्रत का जो पालन करते हैं उनका नाम गोव्रतिक है। गोव्रत को पालन करने वाले मनुष्य गायों के मध्य में रहने की इच्छा से गायें जब पुर से नीकलती हैं तब उनके साथ ही नीकलते हैं, जब वे बैठती हैं–तब बैठते हैं जब वे खडी होती हैं–तब वे खडे होते हैं, जब ये चरती हैं तब वे भोजन करते हैं फलादि का, और जब वे जल पीती हैं, तब वे जल पीते हैं।

કહે છે અથવા સુગતના (બુદ્ધના) શાસનને માનનારનું નામ ભિક્ષોંડ છે. ભસ્મના લેપથી જેમનું શરીર શુભ્ર થઇ જાય છે, તેમને 'શુભ્રાંગ' કહે છે. જેઓ બળદને આશ્ચર્યજનક ચાલ શિખવીને અને તેને કોડીઓની માળાઓથી વિભૂષિત કરીને, તેનો અભિનય લોકોને બતાવી બતાવીને ભિક્ષાવૃત્તિ કરે છે તેમને 'ગોતમ' કહે છે. રાજા દિલીપની જેમ ગો વ્રતનું પાલન કરનારને 'ગોવ્રતિક' કહે છે. ગોવ્રતનું પાલન કરનાર પુરુષ ગાયોની પાસે રહીને તેમની સેવા કર્યા કરે છે. જ્યારે ગાયો ગામમાંથી બહાર નીકળે છે ત્યારે ગોવ્રાતક પણ તેમની સાથે જ ગામની બહાર ચાલી નીકળે છે, જ્યારે તે ગાયો નીચે બેસે છે ત્યારે તે ગોવ્રતિક પણ નીચે બેસે છે. જ્યારે તેઓ ઊભી થાય છે ત્યારે તે પણ ઊભો થાય છે, જ્યારે તેઓ ચરતી હોય છે, ત્યારે તે પણ ફલાદિરૂપ ભોજન કરે છે, જ્યારે તેઓ પાણી પીવે છે, ત્યારે તે પણ પાણી પીવે છે. કહ્યું પણ છે, એમ કહીને સૂત્રકારે જે ગાથા આપી છે તે

छाया—गोभिः समं निर्गमप्रवेशस्थानासनादि प्रकुर्वन्ति।
भुञ्जते यथा गौः, तिर्यग्वासं विभावयन्तः ॥इति॥

गृहिधर्माणः—गृहिणां धर्मो येषां ते गृहिधर्माणः='गृहस्थ-धर्म एव श्रेयान्' इति मत्वा तदुचितधर्माचारिणः, । उक्तं च तदनुसारिभिः—

"गृहाश्रमसमो धर्मो, न भूतो न भविष्यति ।
तं पालयन्ति ते धीराः, क्लीबाः पाषण्डमा ताः ॥ इति ।

धर्मचिन्तकाः—याज्ञवल्क्यादि प्रणीतधर्मसंहितादिभिःसह ये धर्मं चिन्तयन्ति=रात्रि-र्न्यवहरन्ति ये ते धर्मचिन्तिका उच्यन्ते, अविरुद्धाः—देवनृपमातापितृतिर्यगादीनाम-विरोधेन विनयकारिणो ये भवन्ति तेऽविरुद्धाः=वैनयिका इत्यर्थः, विरुद्धाः=

उक्तं च—करके जो गाथा लिखी है उस का अर्थ भी यही है। गृहस्थ धर्म ही श्रेयस्कर है ऐसी जिन की मान्यता होती हैं। और उसी के उचित जो धर्म का आचरण करते हैं वे गृहिधर्मा है। इन लोगो का ऐसा कहना है कि गृहस्थाश्रम जैसा धर्म न हुआ है और न होगा। जो धीर होते हैं वे ही इसका पालन करते हैं और जो क्लीब-कमजोर हैं ये व्रतों को छेते हैं। याज्ञवल्क्य आदि के द्वारा रचित धर्मसंहिता आदि को लेकर जो धर्म का विचार करते हैं-उनके अनुसार अपनी दैनिक प्रवृत्ति चलाते हैं वे धर्मचिन्तक हैं। देव नृप, मातापिता और तिर्यंञ्च आदि का विना किसी भेदभाव के जो एकसा विनय करतें हैं वे अविरुद्ध—वैनयिक मिथ्यादृष्टि—हैं।

ગાથાનો ઉપર મુજબનો જ અર્થ થાય છે. તે ગાથામાં ગોવ્રતિકનાં લક્ષણો બતાવવામાં આવ્યા છે,

"ગૃહસ્થધર્મ જ શ્રેયસ્કર છે," આ પ્રકારની માન્યતા ધરાવનાર અને તેને અનુરૂપ જ ધર્મનું આચરણ કરનાર જે પુરુષો હોય છે તેમને 'ગૃહિધર્મા' કહે છે. તે લોકોની એવી માન્યતા છે કે "ગૃહસ્થાશ્રમ જેવો કોઇ ધર્મ થયો .પણ નથી અને થવાનો પણ નથી. જે લોકો ધીર હોય છે તેઓ જ તેનું પાલન કરી શકે છે અને જે લોકો કલીબ (કમજોર) હોય છે તેઓ જ વ્રતોની આરાધના કરે છે. યાજ્ઞવલ્કય આદિ તત્ત્વચિન્તકો દ્વારા રચિત ધર્મસંહિતા આદિને આધારે જેઓ ધર્મનો વિચાર કરે છે, અને તેને અનુસાર જ પોતાની દૈનિક પ્રવૃત્તિ ચલાવે છે તેમને "ધર્મચિન્તક" કહે છે.

જેઓ દેવ. નૃપ, માતા. પિતા. અને તિર્યંચાદિનો કોઈપણ પ્રકારનો ભેદભાવ રાખ્યા વિના એક સરખો વિનય કરે છે, તેમને 'અવિરુદ્ધ' (વૈનયિક મિથ્યાદૃષ્ટિ)

अक्रियावादिनः, एते हि पुण्यपापपरलोकादिकं न मन्यन्ते, अतः सर्वपाषण्डि-विरुद्धाचारत्वादेते विरुद्धा उच्यन्ते ।

नन्वेतेषामक्रियावादीनां पुण्यपापाद्यस्वीकरणात् इन्द्राद्युपलेपनकर्तृत्वं न संभवतीति चेत्, उच्यते, पुण्यप्राप्तीच्छया यद्यपि तेषाम् ईन्द्राद्युपलेपनकर्तृत्वं न संभवति तथापि जीविकोद्देशेन तु तत्संभवत्येवेति न कश्चिद् दोषः ।

वृद्धश्रावकाः=वृद्धाः प्राचीनकालमपेक्ष्य वृद्धाः, तएव श्रावयन्तीति श्रावकाः-ब्राह्मणाः—ऋषभदेवज्येष्ठपुत्रभरतशासनकाले ये देवगुरुधर्मस्वरूपं श्रावयितार

पुण्य, पाप और परलोक आदि की मान्यता से जो बहिर्भूत होते हैं ऐसे अक्रियावादी विरुद्ध हैं । इनका आचारविचार सर्व पाखण्डियों सर्व धर्मवाले की अपेक्षा विरुद्ध होता है । इसलिये ये विरुद्ध कहे जाते हैं ।

शंका—ये अक्रियावादी जब पुण्यपाप आदि कुछ भी नहीं मानते हैं—तब इन्द्र आदि का ये उपलेपन आदि क्यों करेंगे-अर्थात् नहीं करेंगे, ऐसी स्थिति में इन्हें इन्द्रादि के उपलेपन आदि के कर्तृत्व में क्यों गिनाया गया है-सो इस शंका का उत्तर इस प्रकार से है कि इन में भले ही पुण्य प्राप्ति की इच्छा से इन्द्रादिक का उपलेपन कर्तृत्व संभवन हो—तोभी आजिविका के उद्देश से उनमें इन्द्रादिक का उपलेपनादि करना संभवित होता ही है । अतः सूत्रकार की कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यक में इनकी परिगणना निर्दुष्ट है । वृद्धश्रावक का अर्थ यहां ब्राह्मण से है । क्योंकि प्राचीन

કહે છે. જેઓ પાપ, પુણ્ય, પરલોક આદિને માનતા જ નથી એવાં અક્રિયાવાદીને 'વિરૂદ્ધ' કહે છે. તેમના આચારવિચાર બધાં ધર્મવાળા કરતાં વિરૂદ્ધના જ હોય છે.

શંકા—તે અક્રિયાવાદીઓ જે પાપ પૂણ્ય આદિમાં માનતા જ નથી. તો તેઓ ઈન્દ્ર આદિનું ઉપલેપન. પૂજન આદિ શા માટે કરે ? કહેવાનું તાત્પર્ય એ છે કે સૂત્રમાં ઇન્દ્રાદિનું ઉપલેપન. પૂજન આદિ કરનારમાં આ અક્રિયાવાદીઓને પણ ગણાવવામાં આવેલ છે. અક્રિયાવાદીઓ આ પ્રકારની ક્રિયાઓ કરે તે કેવી રીતે માની શકાય ?

ઉત્તર—ભલે તેઓમાં પુણ્યપ્રાપ્તિની ઇચ્છાથી ઇન્દ્રાદિનું ઉપલેપન, પૂજન આદિ ક્રિયાઓ કરવાની વાત અસંભવિત હોય પરંતુ આજીવિકા ચલાવવાના હેતુથી તેઓમાં પણ ઇન્દ્રાદિકનું ઉપલેપન પૂજન આદિ ક્રિયાઓનો સદ્ભાવ હોઈ શકે છે. તેથી સૂત્રકારે કુપ્રાવચનિક દ્રવ્યાવશ્યકમાં તેમની જે પરિગણના કરી છે તે નિર્દોષ કથનરૂપ જ સમજવી જોઇએ.

આ સૂત્રમાં 'વૃદ્ધશ્રાવક' આ પદ બ્રાહ્મણના અર્થમાં વપરાયું છે, કારણ કે અહીં પ્રાચીન કાળની અપેક્ષાએ તેમનામાં વૃદ્ધતા પ્રકટ કરવામાં આવી છે. આ

आसन् अतएववृद्धाः, त एव पश्चाद् ब्राह्मणा जाताः। एतेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः, ते प्रभृतयः=आद्याः—मुख्या येषां ते तथा, प्रभृतिग्रहणात् परिव्राजकादीनां संग्रहः, पाषण्डस्थाः—पाषण्डं=व्रतं तत्र तिष्ठन्तीति पाषण्डस्थाः=व्रतिनः कल्ये प्रादुष्प्रभातायां रजन्यां यावत्तेजसा ज्वलति, एतेषां पदानां व्याख्या पूर्वसूत्रे कृता तत एवावगन्तव्या, इन्द्रस्य वा स्कन्दस्य=कार्तिकेयस्य वा, रुद्रस्य=हरस्य वा, शिवस्य =व्यन्तरविशेषस्य वा, वैश्रवणस्य वा, देवस्य=सामान्यदेवस्य वा, नागस्य=

काल की अपेक्षा लेकर इनमें वृद्धता कही गई है, और वह इस प्रकार से है कि—जब ऋषभदेव भगवान् यहां विराजमान थे, तब उनके ज्येष्ठपुत्र भरतचक्रवर्ती ने अपने शासनकाल में देव गुरु धर्म के स्वरूप को सुनाने के लिये इनकी स्थापना की थी। अतः स्थापना का काल बहुत ही अधिक प्राचीन इस तरह से प्रमाणित होता है! बाद में ये वैदिकधर्म के उपासक बन गये अतः ये ब्राह्मण कहलाने लगे। यहां प्रभृति शब्द से परिव्राजक आदि कों का ग्रहण हुआ है। पाषण्ड शब्द का अर्थ व्रत है। व्रतका पालन करने वाले पाषण्डस्थ है। यहां यावत् शब्द से २१, वें सूत्र में कथित प्रातःकाल की ३ अवस्थाओं का और सूर्य के सहस्ररश्मि—दिनकर आदि विशेषणों का ग्रहण किया गया हैं। स्कंद नाम कार्तिकेय का है। रुद्रनाम महादेव का है। शिव—व्यन्तरदेव विशेष का नाम है। वैश्रवण

કથનનું નીચે પ્રમાણે સ્પષ્ટીકરણ સમજવું—જ્યારે ઋષભદેવ ભગવાન અહીં વિરાજમાન હતા, ત્યારે તેમના જ્યેષ્ઠ પુત્ર ભરત ચક્રવર્તીએ પોતાના શાસનકાળમાં દેવ, ગુરુ અને ધર્મનું સ્વરૂપ સંભળાવવાનો કાળ ઘણો જ પ્રાચીન હોવાની વાત પ્રમાણિત (સિદ્ધ) થઈ જાય છે. ત્યાર બાદ તે લોકો વૈદિક ધર્મના ઉપાસક બની ગયા, અને તે કારણે બ્રાહ્મણ તરીકે ઓળખાવા લાગ્યા આ રીતે પ્રાચીન કાળમાં જેઓ જિનેન્દ્રના ઉપાસકો હતા, પણ પાછળથી વૈદિક ધર્મના ઉપાસક બની ગયા. એના લોકોને અહીં "વૃદ્ધશ્રાવક" કહ્યા છે. અહીં 'પ્રભૃતિ' પદનો પ્રયોગ કરીને સૂત્રકારે અહીં પરિવ્રાજક આદિ અન્ય પન્થના લોકોને ગ્રહણ કરવાનું સૂચન કર્યું છે.

"પાષંડ" આ પદ "વ્રત"ના અર્થમાં વપરાયું છે. વ્રતને પાલન કરનારને 'પાષંડસ્થ' કહે છે. "कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव तेयसा जलंते" આ સૂત્રપાઠમાં જે 'जाव (यावत्)' પદ આવ્યું છે. તેના દ્વારા ૨૧ માં સૂત્રમાં કથિત પ્રાતઃકાળની ત્રણ અવસ્થાઓને તથા સૂર્યના સહસ્રરશ્મિ. દિનકર આદિ વિશેષણોને ગ્રહણ કરવામાં આવેલ છે.

સ્કંધ એટલે કાર્તિકેય. રુદ્ર એટલે મહાદેવ. 'શિવ' આ શબ્દ વ્યન્તરદેવ-

भवनपतिविशेषस्य वा, यक्षस्य वा, भूतस्य वा यक्षोभूतौ व्यन्तरविशेषौ मुकुन्दस्य=नारायणस्य वा, आर्यायाः=आर्या देवी विशेषः, तस्या वा, दुर्गायाः—सिंहारूढामहिषासुरं हन्तुं तदुपरिनिहितैकचरणा दुर्गा तस्या वा, कोट्टक्रियायाः=महिषकट्टनपरा कोट्टक्रिया—तस्या वा, उपलेपनसंमार्जनावर्षणधूपपुष्पगन्धमाल्यादिकानि=द्रव्यावश्यकानि कुर्वन्ति । तत्र उपलेपनम्=नवनीताद्युपलेपः, सम्मार्जनं=वस्त्रखण्डेन संशोधनम्, आवर्षणम्=दुग्ध—गन्धोदकादिना स्नपनम्, पुष्पं=पुष्पैः पूजनम्, धूपः=धूपदानम्, गन्धः=चन्दनाद्यनुलेपनम्, माल्यं=मालापरिधापनम्, एतान्यादौ येषां तानि तथा, द्रव्यावश्यकानि कुर्वन्ति । अयं भावः—य इमे चरकचीरिकादयः पाषण्डस्थाः कल्ये प्रादुष्प्रभातरजन्यादिक्रमेण समुत्थाय इन्द्रा-

---

कुबेर का नाम है। भवनपति विशेष नागकुमार का नाम नाग है। यक्ष और भूत ये व्यन्तरदेवविशेष हैं। नारायण का नाम मुकुंद है। दुर्गा नाम की एक देवी है। जिसकी सवारी सिंह पर है। महिषासुर को मारने के लिये इसका एक चरण सिंह पर रखा रहता है—इसरूप में इसकी मूर्ति बनी हुई होती है। कोट्टक्रिया नाम की भी एक देवी होती है। जिसने महिषासुर का नाश किया है। नवनीत—मक्खन आदि का इन पर उपटन करना इसका नाम उपलेपन है। वस्त्रखंड से इनको झाडना पोंछना इसका नाम सम्मार्जन है। दुग्ध एवं गन्धोदक से इन्हें नहलाना इसका नाम स्नपन है। तात्पर्य कहने का यह है कि जो चरक चीरक आदि पाषण्डस्थ प्रातःकाल आदि के

વિશેષને માટે વપરાયો છે. વૈશ્રવણ એટલે કુબેર નામનો લોકપાલ દસ પ્રકારના ભવનપતિ દેવોમાં જે નાગકુમાર દેવો છે તેમને અહીં "નાગ" કહેવામાં આવેલ છે. યક્ષ અને ભૂત. આ બન્ને વ્યન્તર નિકાયના દેવો છે. "મુકુંદ" એટલે નારાયણ (વિષ્ણુ ભગવાન), 'દુર્ગા" આ નામની એક દેવી છે. તે સિંહ પર સવારી કરે છે. મહિષાસુરને મારનારી આ દેવીની એવી મૂર્તિ બનાવવામાં આવે છે કે જેનો એક ચરણ મહિષાસુર પર અને બીજો સિંહ પર રહેલો હોય છે. "કોટ્ટક્રિયા" આ નામની પણ એક દેવી હોય છે. જેણે મહિષાસુરનો ધ્વંસ કર્યો હતો.

હવે ઉપલેપન આદિ પદોનો અર્થ સ્પષ્ટ કરવામાં આવે છે-ઉપર્યુક્ત દેવ-દેવીઓની મૂર્તિ પર માખણ આદિનું ઉપટન (લેપન) કરવું તેનું નામ ઉપલેપન છે. વસ્ત્રના કકડા વડે તેમની મૂર્તિઓને લૂછવી અથવા ઝાપટવી તેનું નામ સંમાર્જન છે. દૂધ અને ગન્ધોદક (સુગન્ધયુક્ત જળ) આદિ વડે તેમની મૂર્તિઓને નવરાવવી તેનું નામ 'સ્નપન' છે.

આ સઘળા કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે ચરક, ચીરિક આદિ ઉપર્યુક્ત પાષંડસ્થો (પાખંડીઓ) પ્રાતઃકાળ આદિ સમયે ઇન્દ્રાદિકોની પ્રતિમાઓનું ઉપલેપન આદિ

दीनामुपलेपनादीनि द्रव्यावश्यकानि कुर्वन्ति, तैः कृतमुपलेपनादिकं कुप्रावचनिकं द्रव्यावश्यकमिति । अत्रापि अप्राधान्याद् द्रव्यत्वम्, अप्राधान्यं चोपलेपनादौ मोक्षकारणभावावश्यकापेक्षया बोध्य ,

मोक्षकारणं तु भावावश्यकमेव न तु द्रव्यावश्यकम्,

अतोऽत्रोपलेपनादि द्रव्यावश्यकस्याप्राधान्यं भवतीति ।

सर्वथा-आगमत्वाभावात् नाआगमत्वं च ज्ञेयम् । तदेतत्कुप्रावचनिकं द्रव्यावश्यकं वर्णितमिति ॥सू० २१॥

ज्ञायकशरीर—भव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यावश्यकस्य लोकोत्तरिकरूपं तृतीयभेदमाह—

मूलम्—से किं तं लोगुत्तरियं दव्वावस्सयं ? लोगुत्तरियं दव्वावस्सयं जे इमे समणगुणमुक्कजोगी छक्कायनिरणुकंपा हयइव उद्दामा, गया इव निरंकुसा, घट्टा मट्ठा तुप्पोट्ठा पंडुरपडपाउरणा जिणाणं मणाणाए सच्छंदं विहरिऊणं उभओ कालं आवस्सयस्स उवट्ठंति । से तं लोगुत्तरियं दव्वावस्स । से त जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं दव्वावस्सयं । से तं नोआगमओ दव्वावस्सयं ॥सू० २२॥

हो जाने पर इन्द्रादिकों की प्रतिमाओं का उपलेपन आदि आवश्यक कृत्य करते हैं वे सब कृत्य कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यक हैं । इन उपलेपनादि क्रियाओं में मोक्ष के कारणभूत भावावश्यक की अपेक्षा अप्रधानता होने से द्रव्यत्व जानना चाहिये और सर्वथा आगम के अभाव की अपेक्षा नोआगमता जाननी चाहिये । इस प्रकार कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यक का यह स्वरूपवर्णित किया है । भावार्थ स्पष्ट है-॥सूत्र २१॥

अब सूत्रकार तद्व्यतिरिक्त द्रव्यावश्यक का तीसरा भेद जो लोकोत्तरिक द्रव्यावश्यक है—उसका कथन करते हैं—

આવશ્યક કૃત્યો કરે છે. તે બધાં કૃત્યોને કુપ્રાવચનિક દ્રવ્યાવશ્યક કહેવામાં આવે છે. તે ઉપલેપન આદિ ક્રિયાઓમાં મોક્ષના કારણભૂત ભાવાવશ્યકની અપેક્ષાએ અપ્રધાનતા હોવાથી દ્રવ્યત્વનો સદ્ભાવ સમજવો જોઇએ. અને આગમના સર્વથા અભાવની અપેક્ષાએ "નો આગમતા" સમજવી જોઇએ. આ પ્રકારે કુપ્રાવચનિક દ્રવ્યાવશ્યકનું આ સ્વરૂપ અહીં પ્રતિપાદિત કરવામાં આવ્યું છે. ભાવાર્થ સ્પષ્ટ છે.સૂ.૨૧.

તદ્વ્યતિરિક્ત દ્રવ્યાવશ્યકના લોકોત્તરિક દ્રવ્યાવશ્યક નામના ત્રીજા ભેદનું સ્વરૂપ હવે સૂત્રકાર પ્રકટ કરે છે—"से किं तं लोगुत्तरियं" ઇત્યાદિ—

छाया—अथ किं तद् लोकोत्तरिकं द्रव्यावश्यकम् ? लोकोत्तरिकं द्रव्यावश्यकं-य इमे श्रमणगुणमुक्तयोगिनः षट्कायनिरनुकम्पाः हया इव उद्दामानः, गजा इव निरंकुशाः, घृष्टाः मृष्टाः, तुप्रोष्ठाः पाण्डुरपटप्रावरणाः जिनानामनाज्ञया स्वच्छन्दं विहृत्य उभयकालम् आवश्यकाय उपतिष्ठन्ते । तदेतद् लोकोत्तरिकं द्रव्यावश्यकम् । तदेतद् ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यावश्यकम् । तदेतत् नो आगमतो द्रव्यावश्यकम् ॥सू० २२॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—'से किं तं' इत्यादि । अथ किं तद् लोकोत्तरिकं द्रव्यावश्यकम् ? उत्तरमाह—लोकोत्तरिकं लोकेषु=भुवनत्रये उत्तराः=उत्कृष्टतराः साधवः, यद्वा—लोकेषु=भुवनत्रये उत्तरम्=उत्कृष्टतरं जिनप्रवचनं, तेषां तस्य वा इदम्-लोकोत्तरिकं साधुसम्बन्धिजिनशासनसम्बन्धि वा, द्रव्यावश्यकम् एवं विज्ञेयम् य इमे श्रमणगुणमुक्तयोगिनः—श्रमणाः=साधवस्तेषां गुणाः=मूलोत्तरगुणरूपाः, तत्र—प्राणातिपातविरमणादयो मूलगुणाः, पिण्डविशुद्ध्यादयस्तूत्तरगुणाः—तेषु मुक्तः=परित्यक्तो योगो=व्यापारो यैस्ते श्रमणगुणमुक्त-

---

"से किं त लोगुत्तरियं" इत्यादि । ॥सूत्र २२॥

शब्दार्थ—(से) हे भदंत । (तं लोगुत्तरियं दव्वावस्सयं किं) लोकोत्तरिक द्रव्यावश्यक का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—(लोगुत्तरियं दव्वावस्सयं) लोकोत्तरिक द्रव्यावश्यक का स्वरूप इस प्रकार है—(जे इमे समणगुणमुक्कजोगी छक्काय निरणुकंपा हया इव उद्दामा) श्रमण के मूल गुणों और उत्तर गुणों में जिनका व्यापार परित्यक्त हो चुका है—अर्थात्—मूलोत्तर गुणों में जिनकी बिलकुल आस्था नहीं उपेक्षाहै अर्थात् उनसे जो रहित है तथा छहकाय के जीवों के प्रति जिन के अन्तःकरण में दया नहीं है, अतएव उद्दण्ड घोडों की तरह जिनकी प्रवृत्ति बिलकुल हो रही है—

શબ્દાર્થ—(से) શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે—(तं लोगुत्तरियं दव्वावस्सयं किं ?) હે ભદન્ત ! પૂર્વપ્રસ્તુત લોકોત્તરિક દ્રવ્યાવશ્યકનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર—(तं लोगुत्तरियं दव्वावस्सयं) લોકોત્તરિક દ્રવ્યાવશ્યકનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ છે.

(जे इमे समणगुणमुक्कजोगी छक्काय निरणुकंपा हयाइव उद्दामा) શ્રમણના મૂળગુણોમાં અને ઉત્તરગુણોમાંથી જેમનો વ્યાપાર (પ્રવૃત્તિ) પરિત્યકત થઇ ચુકી છે-એટલે કે મુલોત્તરગુણોમાં જેમને બિલકુલ આસ્થા નથી પણ ઉપેક્ષા જ છે-એટલે કે જેઓ શ્રમણના મૂળગુણોથી અને ઉત્તરગુણોથી રહિત છે. તથા છકાયના જીવો પ્રત્યે જેમના અંતઃકરણમાં દયા નથી. અને તે કારણે ઉદ્દંમ અશ્વની જેમ જેમની

योगिनः, मूलोत्तरगुणरहिता इत्यर्थः । एते कदाचित् सानुकम्पा अपि स्युरित्याह–'छक्कायनिरणुकंपा' इति। षट्कायनिरनुकम्पाः–षट्कायेषु-=पृथिव्यादिषु निर्गता=अनुकम्पा दया येषां ते तथा, षड्जीवनिकायदयावर्जिताः अत एव–ते हया इव उद्दामानः=वल्गारहिता अश्वा इव, चरणनिपातजीवोपमर्दनिरपेक्षत्वात् द्रुतचारिणः, गजा इव निरङ्कुशाः=आचार्याज्ञोल्लङ्घनशीलत्वात् तथा–घृष्टाः=फेनादिना श्लक्ष्णीकृत=जङ्घाद्यवयवा अवयवावयविनोरभेदोपचारात् घृष्टाः । तथा–मृष्टा=तैलादकादिना मृष्टाः चिक्कणीकृताः केशाःशरीरं वा येषां ते मृष्टाः, तथा- तुप्पोष्ठाः-तुप्राः=शीतकालिकरूक्षत्वापनयनार्थं नवनीतादिस्निग्धपदार्थैः प्रक्षिता ओष्ठा येषां ते तथा, नवनीतादिभिः चिक्कणितौष्ठा इत्यर्थः, तथा–

अर्थात् जिस प्रकार विनालगाम के अश्व चरण निपात में जीवोपमर्द निरपेक्ष होने से द्रुतगति किया करते हैं उसी तरह जो ईर्यासमिति से रहित होने के कारण दवदवचारी (द्रुतचारी) होते है (गयाइव निरंकुसा) मदोन्मत हाथी की तरह जो निरङ्कुश होते हैं–जिस प्रकार मदोन्मत्त गज अपने महावत की आज्ञा से बहिर्भूत बन जाया करता है–उसी प्रकार जो आज्ञा को नहीं मानते हैं– (घट्ठा) जिन्होंने फेन आदिसे जंघा आदि अवयोंका चिक्काण–मुलायम) बनाया है (मट्ठा) तैल आदिस्निग्धपदार्थों से केशों का जो संस्कार करते हैं, जल से बार २ जो शरीर को धोते रहते हैं (तुप्पोट्ठा) शीतकाल जन्य ओष्ठों की रूक्षता हटाने के लिये जो नवनीत-मक्खन–आदि स्निग्धपदार्थों की उनमें मालिश करते हैं–अर्थात् नवनीतादिक की मालिश से जो अपने ओष्ठयुगल

પ્રવૃત્તિ ચાલુ રહી છે. એટલે કે જેવી રીતે અશ્વ જમીન પર ચરણ મુકતી વખતે જીવોપમર્દનની પૈરવી કર્યા વિના દ્રુતગતિથી ચાલ્યા કરે છે. એજ પ્રમાણે જેઓ ઇર્યાસમિતિથી વિહીન હોવાને કારણે જીવોપમર્દનની પરવા કર્યા વિના શીઘ્રગતિથી ચાલ્યા કરતાં હોય છે (તાચારી હોય છે). (गयाइव निरंकुसा) જેઓ મદોન્મત્ત હાથીના જેવાં નિરંકુશ હોય છે–જેમ મદોન્મત્ત હાથી તેના મહાવતની આજ્ઞા પ્રમાણે ચાલતો નથી એજ પ્રમાણે જેઓ ગુરુની આજ્ઞાને માનતા નથી. (घट्ठा) ફેન (એક પ્રકારનો સ્નિગ્ધ પદાર્થ) આદિ વડે જેમણે જાંઘ આદિ અવયવોને મુલાયમ બનાવ્યાં છે. (मट्ठा તેલ આદિ સ્નિગ્ધ પદાર્થ વડે જેઓ પોતાના વાળનો સંસ્કાર કરે છે. અને જેઓ જળથી શરીરને વારંવાર ધોયા કરે છે. ધોયાં કરે છે, (तुप्पोट्ठा) ઠંડીને કારણે ફાટી ગયેલા હોઠની રૂક્ષતા દૂર કરવાને માટે જેઓ માખણ, સ્નો, વેસેલીન આદિ સ્નિગ્ધ પદાર્થોનું તેના પર માલિશ કરે છે, એટલે કે જેઓ સ્નો આદિના માલિશ વડે પોતાના હોઠોને મુલાયમ રાખવાનો

पाण्डुरपटप्रावरणाः—पाण्डुराः धौताः मलपरीषहसहनाक्षमत्वात्, पटाः=परिधानवस्त्राणि, प्रावरणानि—शरीराच्छादनवस्त्राणि च येषां ते तथा, परिहितनिर्मलवसनाः, जिनानामनाज्ञया स्वच्छन्दं विहृत्य—जिनाज्ञामनादृत्य स्वस्व रुच्या विविधक्रियाः कृत्वा उभयकालं—प्रातःसायम् आवश्यकाय—प्रतिक्रमणाय उपतिष्ठन्ते—उद्युक्ता भवन्ति। तत्तेषामावश्यकं लोकोत्तरिकं द्रव्यावश्यकम्। अत्र द्रव्यावश्यकत्वं भावशून्यत्वात्, तत्फलाभावात्, संसारकारणत्वाच्च अप्रधानतया बोध्यम्।

को चिकने रखते हैं. (पंडुरपडपाउरणा) जो मल परीषह को सहने में असमर्थ होने के कारण अपने पहनने और ओढने के वस्त्रों को धोने में आसक्त रहते हैं-। (जिणाणमणाणाए) जिन भगवान् की आज्ञाकी परवाह न करके जो (सच्छंदं विहरिऊणं) अपनी अपनी रुचि के अनुसार विविध क्रियाओं को करके (उभओ कालं) प्रातः सायं दोनों समय (आवस्सयस्स उवट्ठंति) प्रतिक्रमण करने के लिये उद्युक्त होते हैं (से) सो (तं लोउत्तरियं दव्वावस्सयं) उनका वह आवश्यक-प्रतिक्रमण—लोकोत्तरिक द्रव्यावश्यक हैं। (से तं जाणयसरीर भविय सरीरवइरित्तं दव्वावस्सयं) इस तरह ज्ञायकशरीर और भव्यशरीर इन दोनों से जुदा यह द्रव्यावश्यक—लोकोत्तरिक द्रव्यावश्यक है। इन क्रियाओं में भावशून्यता होने के कारण उनका कोई वास्तविक फल प्राप्त नहीं होता है—उल्टा उन से संसार का ही वर्धन होता है। इसलिये इन भावशून्य द्रव्यलिङ्गि साधुओं द्वारा किया गया आवश्यक कर्म अप्रधान होने के कारण द्रव्या-

---

પ્રયત્ન કરતા રહે છે, (पंडुरपडपाउरणा) જેઓ મલપરીષહને સહન કરવામાં અસમર્થ હોવાને કારણે પોતાના પહેરવા ઓઢવાના વસ્ત્રોને ધોવામાં આસકત રહે છે. (जिणाणमणाणाए) જિનેન્દ્ર ભગવાનની આજ્ઞાની પરવા કર્યા વિના જેઓ (सच्छंदं विहरिऊणं) પોતાની ઇચ્છા અનુસારની વિવિધ ક્રિયાઓ કરીને (उभओकालं) પ્રાતઃકાળ અને સાયંકાળ, આ બન્ને સમયે (आवस्सयस्स उवट्ठंति) પ્રતિક્રમણ કરવાને તૈયાર થાય છે, (से तं लोउत्तरियं दव्वावस्सयं) તો તેમની તે આવશ્યક ક્રિયારૂપ પ્રતિક્રમણ લોકોત્તરિક દ્રવ્યાવશ્યકરૂપ ગણાય છે. (से तं जाणयसरीर भविय सरीरवइरित्तं दव्वावस्सयं) જ્ઞાયકશરીર અને ભવ્યશરીર, આ બન્નેથી ભિન્ન એવા દ્રવ્યાવશ્યકના લોકોત્તરિક દ્રવ્યાવશ્યક નામના ત્રીજા ભેદનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ સમજવું. આ ક્રિયાઓમાં ભાવશૂન્યતા હોવાને કારણે તેમનું કોઈ વાસ્તવિક ફલ પ્રાપ્ત થતું નથી, પરન્તુ ઉલ્ટો સંસાર જ વધે છે. તેથી આ પ્રકારના દ્રવ્યલિંગી સાધુઓ દ્વારા કરવામાં આવેલું આવશ્યકકર્મ અપ્રધાન હોવાને કારણે દ્રવ્યા-

नोआगमत्वं च देशे क्रियालक्षणे आगमाभावात्। 'नो' शब्दस्यात्र देशप्रतिषेधवचनत्वं बोध्यम्। आवश्यकज्ञानसद्भावादागमोऽपि देशतो वर्तते, इति।

अत्र लोकोत्तरिकद्रव्यावश्यके दृष्टान्तः प्रदर्श्यते—पुरा वसन्तपुरे नगरेऽगीतार्थ एकः संघो विहरतिस्म। तत्र संघे साधुगुणरहितः कश्चित्संविग्नाभासः साधुः प्रतिदिनं पुरःकर्मादिदोषदुष्टमनेषणीयं भक्तादि गृहीत्वा महता संवेगेन प्रतिक्रमणकाले सर्वमालोचयति। अगीतार्थो गच्छाचार्यश्च तस्मै अगीतार्थत्वात्

वश्यक माना गया है ऐसा जानना चाहिये। यहां पर 'नो' शब्द एक देश प्रतिषेध अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अर्थात् परिक्रमण क्रियारूप एकदेश में आगम रूपता नहीं है। परन्तु प्रतिक्रमणरूप आवश्यक के ज्ञान का सद्भाव होने से वहां आगम भी इस तरह एकदेशरूप आवश्यक क्रिया में आगम का प्रतिषेध यह 'नो' शब्द करता है। और यह प्रकट करता है कि यहां केवल आगम एकदेश में वर्तमान है। इस तरह "नो" शब्द में देश प्रतिषेधवचनता जाननी चाहिये। लोकोत्तरिक द्रव्यावश्यक के ऊपर दृष्टान्त इस प्रकार से है—प्राचीनकाल में वसन्तपुर नाम के नगर में एक अगीतार्थ संघविहार करता हुआ आया। उसमें साधुगुणों से रहित एक साधु था। जो संविग्नाभास (ऊपर से वैराग्य दिखानेवाला) था। वह प्रतिदिन पुरः कर्मादि दोषों से युक्त अनेषणीय आहार ले करके आता—और बडे ही संवेग भाव से

વશ્યકરૂપ માનવામાં આવ્યું છે, એમ સમજવું. અહીં "नो आगम" પદમાં વપરાયેલો "नो" શબ્દ એક દેશ પ્રતિષેધ (નિષેધ)ના અર્થમાં પ્રયુક્ત થયો છે, એટલે કે પ્રતિક્રમણ ક્રિયારૂપ એક દેશમાં આગમરૂપતા હોતી નથી, પરન્તુ પ્રતિક્રમણરૂપ આવશ્યના જ્ઞાનનો સદ્ભાવ હોવાથી ત્યાં આગમનો પણ એકદેશની અપેક્ષાએ સદ્ભાવ હોય છે. આ રીતે 'નો' પદ અહીં એક દેશરૂપ આવશ્યક ક્રિયામાં આગમનો પ્રતિષેધ (નિષેધ) કરે છે, અને એ વાત પ્રકટ કરે છે કે ત્યાં આગમ કેવળ એક દેશતઃ વર્તમાન છે. આ પ્રમાણે "नो" શબ્દમાં દેશ પ્રતિષેધ વચનતા સમજવી જોઇએ. લોકોત્તરિક દ્રવ્યાવશ્યકનું પ્રતિપાદન કરવાને માટે હવે નીચેનું દૃષ્ટાન્ત આપવામાં આવે છે–

પ્રાચીન કાળમાં વસંતપુર નામના નગરમાં અગીતાર્થ સાધુઓનો એક સંઘ વિહાર કરતો કરતો આવી પહોંચ્યો. તે સંઘમાં સાધુઓના ગુણોથી રહિત, પણ સંવિગ્નાભાસી (ઉપર ઉપરથી વૈરાગ્ય ભાવ દેખાડનારો) એવો એક સાધુ હતો. તે હંમેશા પુરઃકર્માદિ દોષોથી યુકત અનેષણીય (અકલ્પ્ય) આહાર વહોરી લાવતો હતો, અને પ્રતિક્રમણ કરતી વખતે ઘણા જ સંવેગભાવ પૂર્વક પોતાના દોષોની

प्रायश्चित्तं प्रयच्छन् एवं वदति-पश्यत साधवः। कथमयं स्वदुष्कृतमगोपयन् अशठतया प्रकाशयति, दोषासेवनं सुकरम्, आलोचना तु दुष्करा, अतोऽशठतयैव शुध्यतेऽसौ। इत्थं तस्य प्रशंसां त्वाऽन्येऽपि अगीतार्थश्रमणास्तं प्रशंसन्ति, चिन्तयन्ति च गुरुसमीपआलोचन । चेत् शुद्धस्तर्हि असकृद्दोषासेवनायां कृतायामपि न कश्चिद् दोषः। इत्थं गच्छति कियतिकाले तत्रैकः संविग्नगीतार्थः कश्चित् साधुः समायातः। स प्रतिदिनमेवंविधं व्यतिकरं विलोक्य तं गच्छा-

---

प्रतिक्रमण करने के समय में अपने दोषों की आलोचना करता। गच्छाचार्य जो कि स्वयं अगीतार्थ थे वे अगीतार्थ जान करके उसके लिये प्रायश्चित्त दे ते समय ऐसा कहते कि हे साधुओं—देखो—यह साधु कितना भला है कि जो अपने एक भी दोष को नहीं छिपाता है, और सबको सरल भावसे प्रकटकर देता है। दोषों का सेवन तो हो जाता है, परन्तु उनकी आलोचना करना बडा कठिन काम है। इसलिये यह किसी भी मायाचार के विना जो अपने दोषों की आलोचना करता है उसी से यह शुद्ध हो जाता है। इस प्रकार आचार्यकृत प्रशंसा को सुनकर के संघस्थ अन्य अगीतार्थ श्रमणजन भी उसकी प्रशंसा करने लगजाते। और विचारने लगते कि गुरु के समीप में यदि आलोचना करने मात्र से ही दोषों की शुद्धि हो जाती है तो बार २ दोषों के सेवन करने में भी कोई हानि नहीं है। इस प्रकार करते २ जब कितनाक समय निकल गया—तब उस संघ में एक संविग्न (क्रियापात्र) गीतार्थ कोई साधु विहार करता हुआ बाहर से आया। जब उसने संघ की इस

આલોચના કરતો હતો. તે ગચ્છના આચાર્ય કે જેઓ અગીતાર્થ હતા, તેઓ આ સંવિગ્નાભાસી સાધુને પ્રાયશ્ચિત્ત દેતી વખતે સાધુઓની પાસે તેની આ પ્રમાણે પ્રશંસા કર્યા કરતાં હતાં-"હે સાધુઓ! જુઓ, આ સાધુ કેટલો ભલો છે કે તેનો એક પણ દોષ છુપાવતો નથી, અને પોતાના સઘળા દોષોને સરલભાવે પ્રકટ કરી દે છે. દોષોનું સેવન તો થઈ જાય છે, પરન્તુ તેમની આલોચના કરવાનું કામ ઘણું જ કઠણ છે. કોઈ પણ પ્રકારના માયાચાર વિના પોતાના દોષોની આલોચના કરવાને લીધે તે શુદ્ધ થઈ જાય છે." આચાર્ય દ્વારા તેની આ પ્રમાણે પ્રશંસા થતી જોઈને સંઘના અંગીતાર્થ અન્ય શ્રમણો પણ તેની પ્રશંસા કરવા મંડી જતા. તે સંઘના સાધુઓમાં આ પ્રકારની ખોટી માન્યતા વ્યાપી ગઈ કે ગુરુની સમીપે માત્ર આલોચના કરવાથી જ દોષોની શુદ્ધિ થઈ જતી હોય, તો વારંવાર દોષોનું સેવન કરવામાં પણ કોઈ હાનિ નથી. આ પ્રકારની તેમની પ્રવૃત્તિ કેટલાક સમય સુધી ચાલુ જ રહી. એવામાં કોઈ એક સંવિગ્ન (ક્રિયાપાત્ર) ગીતાર્થ સાધુ ગામ નગર આદિનો વિહાર કરતો કરતો તે વસન્તપુર નગરમાં આવી પહોંચ્યા. જ્યારે તેણે તે અગી-

चार्यमुक्तवान्—त्वमस्य शठसाध : प्रशंसां कुर्वन् अग्निभक्तप्रशंसको नृप इव दृश्यसे। गच्छाचार्येण तत्कथां कथयितुं प्रेरितः स संविग्नगीतार्थो मुनिरेवं प्रोक्तवान्।

आसीद् गिरिनगरवासी कश्चिदग्निभक्तो वणिक्। स प्रतिवर्षं पद्मराग-रत्नैः गृहं भृत्वा वह्निना तत् प्रदीपयति। अग्नौ तस्यैवं विधं श्रद्धातिशयं विलोक्य, तन्नगरवासिनो जना नरपतिश्चाविवेकितया तं प्रशंसन्त एवंवदन्ति-'धन्योऽयंवणिक्, यः प्रतिवर्षं पद्मरागैर्वह्निं सन्तर्पयति। अथान्यदा प्रबलपवनवेगेन

प्रकार की प्रतिदिन की व्यवस्था देखी—तब उससे नहीं रहा गया—और गच्छाचार्य के पास जाकर उसने उनसे कहा आप इस शठ साधु की जो प्रशंसा करते हैं—वह ऐसा आपका अग्निभक्त की प्रशंसा करनेवाले ए- राजा की तरह है। यह कथा कैसी है इस प्रकार गच्छाचार्य के पूछने पर उस संविग्न गीतार्थ साधुने उन्हें यह कथा इस तरह से सुनाई—गिरिनगर में ए अग्निभक्त वणिक् रहता था। वह प्रतिवर्ष पद्मरागरत्नों को घर में भरकर उसमें आग लगा देता था। उसके अविवेक पूर्ण कार्य की वहां का राजा और पुरवासिजन सबही प्रशंसा करते। कहते—देखो इसके श्रद्धातिशय को—जो प्रतिवर्ष पद्मरागमणियों से अग्निदेव को संतर्पित करता है। एकदिन की बात है कि जब उसने पद्मरागमणियों को भरकर घरमें आग लगाई—तब उस समय आंधी के वेग से अग्निज्वाला इतनी अधिक प्रदीप्त हुई कि उसका संभालना मुश्किल हो गया—। देखते २ उस प्रदीप्त अग्निने राजमहल सहित उस समस्तनगर

तार्थसंघना ते संविग्नाभासी साधुनी ते प्रकारनी दरेराजनी प्रवृत्ति देखी, त्यारे तेनाथी ते सहन थई शकी नहीं. तेणे ते अगीतार्थ संघाचार्यनी पासे जईने तेमने आ प्रमाणे कह्युं—"आप आ शठ साधुनी जे प्रशंसा करो छो ते अग्निभक्तनी प्रशंसा करनारा एक राजाना कार्य जेवुं कार्य छे. त्यारे ते संघाचार्ये तेमने पूछ्युं—"अग्निभक्तनी शी कथा छे?

त्यारे ते संविग्न गीतार्थ साधुओ तेमने नीचे प्रमाणे कथा कही-गिरिनगरमां एक अग्निभक्त वणिक रहेतो हतो. ते अग्निदेवने खुश करवा माटे प्रतिवर्ष पद्मराग रत्नोने घरमां भरीने तेने आग लगाडतो हतो. तेना आ अविवेकभर्युं कार्यनी त्यांना राजा अने नगरवासीओ खूब प्रशंसा करता हता. तेओ एकबीजाने कहेतां—"जुओ तेने अग्निदेव प्रत्ये केटली बधी श्रद्धा छे! ते श्रद्धाने कारणे ज ते प्रतिवर्ष पद्मराग मणिओथी अग्निने संतृप्त करे छे." हवे एक दिवसे एवुं बन्युं के ज्यारे ते वणिके घरमां पद्मरागमणिओ भरीने घरने आग लगाडी त्यारे अचानक आंधी चडवाने कारणे ते आग चोमेर प्रसरी गई अने तेने लीधे

प्रदीप्तस्तत्प्रदीपितवह्नीराजप्रासादसहितं समस्तमपि तन्नगरं ददाह। ततो राज्ञा स वणिग्दण्डितो नगराद् निष्कासितश्च।

तथा त्वमपि अविधिप्रवृत्तस्य अस्य प्रशंसां कुर्वन् आत्मानं संघं च विनाशयसि। यदि पुनरस्यमेनं शिक्षयसि, तदाऽपर नृप इव स्वपरकल्याणकारको भविष्यसि। तथाहि—

आसीत्कश्चिद् राजा, यो हि तथाविधकर्मकारिणं कंचीदेकं वणिजं समाहूय प्रोक्तवान्—यदि तव पद्मरागमणिभिरग्नेस्तर्पणमावश्यकं, तर्हि वने गत्वा

को भी स्वाहा कर दिया। राजा ने जब परिस्थिति का विचार किया तो अपने अज्ञानता पर उसे बडा पश्चात्ताप हुआ। अन्तमें उसने उस वणिक् को दण्डित करअपने नगर से बाहिर निकाल दिया। इसी प्रकार आप भी अविधि में प्रवृत्त हुए इस साधु की जो प्रशंसा करते हैं—वह आप का और संघ का विनाशक है। यदि इस संघ में आप किसी एक को भी शिक्षित करदें तो आपका यह कार्य एक दूसरे राजा की तरह स्व और पर का कल्याणकारक होगा—सुनिये-एक राजा था। उसके राज्य में भी इसी अग्निभक वणिक् की तरह एक वणिक् रहता था। वह भी प्रतिवर्ष पद्मरागमणियों को घर में भर कर उसमें आग लगा देता था—और इस तरह से अग्नि को संतर्पित किया करता था। जब राजा को उसकी इस बात का पता लगा—तब उसे बुलाकर उसने कहा कि यदि पद्मरागमणियों से अग्नि को संतर्पित करना तुम्हारे लिये आवश्यक है—तो तुम यह कार्य नगर में रह

લેવાનું કાર્ય મુશ્કેલ બની ગયું. તે આગની જ્વાળાઓમાં રાજમહેલ સહિત આખું નગર ભસ્મીભૂત થઇ ગયું. જ્યારે રાજાએ આ પરિસ્થિતિના કારણનો શાંત ચિત્તે વિચાર કર્યો ત્યારે તેને પોતાની અજ્ઞાનતાને માટે પશ્ચાત્તાપ થયો. તેણે તે વણિકને સજા ફરમાવીને પોતાના નગરમાંથી હાંકી કાઢયો. તે રાજાની જેમ આપ અવિધિમાં-પાપાચારમાં પ્રવૃત્ત થયેલા આ શઠ સાધુની જે પ્રશંસા કરો છો, તે આપનો અને સંઘનો વિનાશ કરનારી નિવડશે. જો આપ આ સંઘમાંથી એવા એક સાધુને પણ શિક્ષા કરીને હાંકી કાઢશો. તો આપનું તે કાર્ય એક બીજા રાજાના કાર્યની જેમ સ્વ અને પરનું કલ્યાણ કરનારું થઇ પડશે. હવે તે સંવિગ્ન ગીતાર્થ સાધુ તે રાજાની કથા તે આચાર્યને કહી સંભળાવે છે

કોઇ એક રાજાના નગરમાં ઉપર્યુક્ત અગ્નિભક્ત વણિક જેવો એક વણિક રહેતો હતો. તે પણ અગ્નિદેવને તૃપ્ત કરવા નિમિત્તે પ્રતિવર્ષ પોતાના ઘરમાં પદ્મરાગમણિઓ ભરીને ઘરને આગ લગાડી દેતો હતો જ્યારે રાજાને તેની આ વાતની ખબર પડી ત્યારે તેણે તે વણિકને પોતાની પાસે બોલાવીને આ પ્રમાણે ચેતવણી આપી-જો પદ્મરાગ મણિઓ ઘરમાં ભરીને તેને આગ લગાડીને તમે અગ્નિદેવને

कथं नैवं करोषि ? तवैवंविधया क्रियया कदाचित्सर्वो ग्रामो विनश्येत् । इत्येवं तं निर्भर्त्स्य दण्डयित्वा नगराद् निष्कासितवान् । तथा त्वमपि कुरु ।

एवं तेन संविग्नगीतार्थेन बहुशः प्रतिबोधितोऽपि स गच्छाचार्यो यदा स्वव्यापारान्न निवृत्तस्तदा स साधुः अन्यान् गच्छस्थितान् साधून् एवमुक्तवान् –"यद्येषोऽसंविग्नोऽगीतार्थो गच्छाधिपो भवद्भिर्न परित्यज्यते, तदा भवतां महान् अनर्थो भविष्यती"ति । एवंविधं साध्वाभासावश्यकप्रकारं सर्वलोकोत्तरिकं द्रव्यावश्यकम् । एतत्सर्वं निगमयन्नाह–'से तं लोगुत्तरियं दव्वावस्सयं'

कर क्यों करते हो–क्यों नहीं जंगल में जाकर इसे किया करते हो । क्यों कि इस तुम्हारी प्रवृत्ति से कभी न कभी समस्त ग्राम के नष्ट होने की संभावना हैं । अतः तुम इस दुष्प्रवृत्ति को या तो त्याग करो नहीं तो गांव से बाहिर निकल जाओ । इस प्रकार डाट डपट कर उस राजाने उसे दण्डित करके अपने नगर से बाहिर निकाल दिया । अतः आप भी संघ की कल्याण कामना से ऐसा ही कीजिये । इस प्रकार उस संविग्नगीतार्थ साधुने उन गच्छाचार्य को बहुत प्रकार से समझाया । परन्तु जब वे समझाने पर नहीं समझे तब उस आगतसाधुने संघस्थित अन्य साधुओं से इस प्रकार कहा–देखो यह गच्छाधिपति असंविग्न (क्रियाहीन) और अगीतार्थ हैं, यदि आपलोग इससे अलग नहीं होते हैं–तो इसमें आप सब का बडा भारी अनर्थ होगा । इस प्रकार का साध्वाभासों (वेषधारियों) का जो भी आवश्यक प्रकार हैं वह

સંતૃપ્ત કરવાનું આવશ્યક માનતા હો. તો તમારે નગરમાં રહીને એવું કાર્ય કરવું જોઇએ નહીં. જંગલમાં જઇને તમે તે કામ કરી શકો છો. નગરમાં રહીને તમે તમારી આ પ્રવૃત્તિ ચાલુ રાખશો તો તમારી આ દુષ્પ્રવૃત્તિને કારણે કોઇ વાર આખા નગરને ભસ્મીભૂત કરી નાખશો. માટે કાં તો તમારી આ દુષ્પ્રવૃત્તિ બંધ કરી દો નહીં તો ગામ છોડીને જતા રહો.” આ પ્રમાણે ધમકાવીને રાજાએ તેને પોતાના નગરમાંથી હાંકી કાઢયો. આપે પણ સંઘના કલ્યાણને ખાતર તે શઠ સાધુને સંઘમાંથી હાંકી કાઢવો જોઇએ. આ પ્રમાણે તે સંવિગ્નગીતાર્થ સાધુએ તે ગચ્છાચાર્યને ખૂબખૂબ સમજાવ્યા, છતાં પણ જ્યારે તેમણે તેની વાતને ન સ્વીકારી ત્યારે તે સંવિગ્નગીતાર્થ સાધુએ તે સંઘના અન્ય સાધુઓને આ પ્રમાણે કહ્યું–“આ ગચ્છાધિપતિ અસંવિગ્ન (ક્રિયાહીન) અને અગીતાર્થ છે. જો આપ તેમનાથી જુદા નહીં પડો તો આપનું અકલ્યાણ થશે. આપનો સંસાર અલ્પ થવાને બદલે દીર્ઘ થતો જશે.”

આ પ્રકારના દ્રવ્યલિંગી સાધુઓની (માત્ર વેષની અપેક્ષાએ જ સાધુ દેખાતા હોય પણ સાધુના આચારોથી રહિત હોય એવા સાધુને દ્રવ્યલિંગી કહે છે) જે

इति तदेतत् लोकोत्तरिकं द्रव्यावश्यकं वर्णितम्। नोआगमतो द्रव्यावश्यकमपि सर्वं निरूपितमिति प्रकटयितुमाह—तदेतद् नोआगमतो द्रव्यावश्यकं वर्णितम्। तदेतत् द्रव्यावश्यकं वर्णितम्, इति ॥सू० २२॥

अथावसरप्राप्तं भावावश्यकं निरूपयितुमाह—

मूलम्—से किं तं भावावस्सयं ? भावावस्सयं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा आगमओ य, नो आगमओ य ॥ सू० २३ ॥

छाया—अथ किं तद् भावावश्यकम् ? भावावश्यकं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—आगमतश्च, नोआगमतश्च ॥सू० २३॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—'से किं तं भावावस्सयं' इति। हे भदन्त ! अथ किं तद् भावावश्यकम् ? उत्तरमाह—'भावावस्सयं' इति। भावावश्यकं-

---

सब लोकोत्तरिक द्रव्यावश्यक है। इस तरह यहाँ तक (से तं नोआगमओ दव्वावस्सयं) पूर्व प्रक्रान्त नोआगम द्रव्यावश्यक का कथन किया गया है कि नोआगम को लेकर द्रव्यावश्यक के भेद प्रभेदों का पूर्वोक्तरूप से वर्णन हो चुका है। ॥ सूत्र २२ ॥

अब सूत्रकार भावावश्यक का वर्णन करते हैं—

से किं तं भावावस्सयं इत्यादि ॥सूत्र २३॥

शब्दार्थ—(से) हे भदंत ! भावावश्यक का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—(भावावस्सयं दुविहं पण्णत्तं) भावावश्यक दो प्रकार का है। (तंजहा) वे प्रकार ये हैं-(आगमओ य नोआगमओ य) एक आगम को लेकर भावावश्यक और दूसरा नोआगम को लेकर भावावश्यक। विवक्षित क्रिया के अनुभव से युक्त जो साध्वादिरूपपदार्थ है उसका नाम भाव है। यहां भाव

કોઇ આવશ્યક ક્રિયાઓ હોય છે. તે લોકોત્તરિક દ્રવ્યાવશ્યક રૂપજ ગણાય છે. (से तं नो आगमओ दव्वावस्सयं) આ રીતે અહીં સુધીમાં પૂર્વપ્રસ્તુત "નો આગમ દ્રવ્યાવશ્યકનું" કથન કરવામાં આવ્યું છે. એમ સમજવું. કહેવાનું તાત્પર્ય એ છે કે નોઆગમની અપેક્ષાએ દ્રવ્યાવશ્યકના જે ભેદ-પ્રભેદો પડે છે. તેમનું વર્ણન અહીં પૂરું થાય છે. ॥સૂ૦ ૨૨॥

હવે સૂત્રકાર ભાવાવશ્યકના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે—

"से किं तं भावावस्सयं" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(से) શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે—(तं भावावस्सयं किं) હે ભગવન્ ! ભાવાવશ્યકનું સ્વરૂપ કેવું કહ્યું છે ?

इह-विवक्षितक्रियानुभवयुक्तोयोऽर्थः साध्वादिरूपः स भावः। भाव तद्वतो भेदोपचाराद् भावः। यथा-ऐश्वर्यरूपायाः इन्दनक्रियायाः अनुभवाद् इन्द्रो भाव उच्यते। भावश्चासौ आवश्यकं च भावावश्यकम्। यद्वा-विवक्षितक्रियानुभवरूपं भावमाश्रित्य आवश्यकं भावावश्यकम्।

तद् द्विविधं प्रज्ञप्तम्। तद् यथा-आगमतश्च=आगममाश्रित्य, नोआगमतश्च=आगमाभावमाश्रित्य ॥ सू० २३ ॥

मूलम्—से किं तं आगमओ भावावस्सयं ? आगमओ भावावस्सयं जाणय उवउत्ते। से त्तं आगमओ भावावस्सयं ॥ सू० २४॥

छाया—अथ किं तद् आगमतो भावावश्यकम् ? आगमतो भावावश्यकं ज्ञायक उपयुक्तः। तदेतदागमतो भावावश्यकम् ॥ सू० २४ ॥

और भाववान् में अभेदोपचार किया गया है। इसलिये विवक्षित क्रिया के अनुभव से युक्त अर्थ को भाव कह दिया है। जैसे ऐश्वर्यरूप इन्दन क्रिया के अनुभव से इन्द्र भाव कहा जाता है। भावरूप आवश्यक का नाम भावावश्यक है। अथवा विवक्षित क्रिया के अनुभवरूप भाव को लेकर जो आवश्यक होता है उसका नाम भावावश्यक है। ॥सूत्र २३॥

भावावश्यक का स्वरूप आगम की अपेक्षा लेकर सूत्रकार इस प्रकार से प्रकट करते हैं—से किं तं आगमओ भावावस्सयं इत्यादि ॥सूत्र २४॥

शब्दार्थ—हे भदंत! आगम को आश्रित करके भाव आवश्यक का क्या स्वरूप है?

उत्तर—(भावावस्सयं दुविहं पण्णत्तं) ભાવાવશ્યકના બે પ્રકાર છે (तंजहा) તે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે કહ્યા (आगमो य नोआगमो य) (१) આગમની અપેક્ષાએ ભાવાવશ્યક અને (२) નો આગમની અપેક્ષાએ ભાવાવશ્યક.

વિવક્ષિત ક્રિયાના અનુભવથી યુકત જે સાધુ આદિ રૂપ પદાર્થ છે, તેનું નામ ભાવ છે. અહીં ભાવ અને ભાવવાનમા અભેદોપચારની અપેક્ષાએ આ પ્રમાણે કહેવામાં આ૦ ' છે. તેથી વિવક્ષિત ક્રિયાના અનુભવથી યુકત અર્થને ' ભાવ ' કહેવામાં આવ્યો છે. જેમ કે ઐશ્વર્ય રૂપ ઇન્દન ક્રિયાના અનુભવથી ઇન્દ્રને ભાવરૂપ કહેવામાં આવે છે. ભાવરૂપ આવશ્યકનું નામ ભાવાવશ્યક છે. અથવા વિવક્ષિત ક્રિયાના અનુભવન અપેક્ષાએ જે આવશ્યક હોય છે, તેનું નામ ભાવાવશ્યક છે. ॥ સૂ૦ ૨૩ ॥

હવે સૂત્રકાર ભાવાવશ્યકના પ્રથમ ભેદ રૂપ જે " આગમનની અપેક્ષાએ ભાવાવશ્યક " છે, તેના સ્વરૂપનું કથન કરે છે—

टीका—शिष्यः पृच्छति—'से किं तं आगमओ भावावस्सयं' इति। अथ किं तद् आगमतो भावावश्यकम् ? उत्तरमाह—'आगमओ भावावस्सयं' इत्यादि। आगमतो भावावश्यकम् ज्ञायक उपयुक्तः। अयमर्थः—आवश्यक आवश्यक पदार्थज्ञस्तज्जनित—संवेगेन विशुध्यमानपरिणामस्तत्र चोपयुक्तः साध्वादिरागमतो भावावश्यकम्। आवश्यकार्थज्ञानरूपस्यागमस्यात्र सत्त्वात्। भावेश्चात्रावश्यकार्थज्ञानजनितोपयोगवत्त्वात्, भावमाश्रित्यावश्यकमिति व्युत्पत्तेः। इदमुक्तं भवति—आव-

---

उत्तर—(आगमओ भावावस्सयं जाणय उवउत्ते) आवश्यकसूत्र के अर्थ को जानने वाला ऐसा उसमें उपयोगयुक्त बना हुआ साध्वादि कि जिसके परिणाम संवेग से विशुद्ध बन रहे हैं आगमतः भावावश्यक है। क्योंकि इसमे आवश्यक सूत्र के अर्थज्ञानरूप आगमका सद्भाव हो रहा है। यद्यपि आवश्यक के अर्थज्ञान से जनित जो उपयोग है उसका नाम भाव है। और इस भाव को आश्रित करके जो आवश्यक है वह भावावश्यक है, इस प्रकार की व्युत्पत्ति से आवश्यक अर्थ के ज्ञाता का आवश्यक में उपयोगरूप बना हुआ परिणाम, आगम से भावावश्यकरूप ठहरता है फिर भी जो साध्वादि को भावावश्यकरूप में कहा जाता है वह इस प्रकार के परिणाम से युक्त होने के कारण उपचार से कहा जाता हैं ऐसा जानना चाहिये। आवश्यक में जो यह उपयोग परिणाम

से किं तं आगमओ भावावस्सयं" इत्यादि—

શબ્દાર્થ—હે ભગવન્! આગમને આશ્રિત કરીને (આગમની અપેક્ષાએ) ભાવ આવશ્યકનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(आगमओ भावावस्सयं जाणय उवउत्ते) આવશ્યક સૂત્રના અર્થને જાણનારો અને તેમાં ઉપયોગ યુકત બનેલો સાધુ કે જેનાં પરિણામો સંવેગને લીધે વિશુદ્ધ બની રહ્યા હોય છે, તે આગમની અપેક્ષાએ ભાવાવશ્યક હોય છે, કારણ કે એવા સાધુમાં આવશ્યક સૂત્રના અર્થજ્ઞાન રૂપ આગમનો સદ્ભાવ થઇ રહ્યો હોય છે. જો કે આવશ્યકના અર્થજ્ઞાનથી જનિત જે ઉપયોગ છે તેનું નામ ભાવ છે, અને તે ભાવને આશ્રિત કરીને જે આવશ્યક છે, તેનું નામ ભાવાવશ્યક છે, આ પ્રકારની વ્યુત્પત્તિ અનુસાર આવશ્યકના અર્થના જ્ઞાતાનું આવશ્યકમાં ઉપયોગયુકત બનેલું પરિણામ (મનોવૃત્તિ) આગમની અપેક્ષાએ ભાવાવશ્યક રૂપ પ્રતિપાદિત થાય છે, છતાં પણ જે સાધુ આદિને ભાવાવશ્યક રૂપ કહેવામાં આવેલ છે તે આ પ્રકારના પરિણામથી યુકત હોવાને કારણે ઔપચારિક રીતે કહેવામાં આવ્યું છે, એમ સમજવું.

रूप भावावश्यक है वह धर्म पदवाच्य है क्यों कि यह श्रुत धर्म के अन्तर्गत है इसी की मान्यता के विषय में जिन भगवान् की आज्ञा का सद्भाव है।—

तात्पर्य कहनेका यह है कि यहां पर शंकाकार की ऐसी शंका हो सकती है कि नाम आवश्यक, स्थापना आवश्यक और द्रव्य आवश्यक ये आराधना करने योग्य हैं ऐसी जिन भगवान् की आज्ञा ही नहीं हैं यह बात तो निश्चित है-क्योंकि इनमें उपयोग का अभाव हैं और चारित्र गुण विहीनता है। अतः ये कर्मों कि निर्जरा के साधक नहीं होते हैं। और इसी कारण ये धर्मपद वाच्य भी नहीं होते हैं। परन्तु जो सामायिक आदि रूप लोकोत्तरिक द्रव्यावश्यक है कि जो प्रवचनोक्त है—आगम संमत है—वह तो धर्मपदवाच्य होना चाहिये—सो इस शंका का समाधान इस प्रकार से है—कि सामायिक आदि क्रियाएँ प्रवचनोक्त अवश्यक हैं तो भी वे जिनाज्ञा से वहिर्भूत बने हुए साध्वाभासों (वेषधारियों) द्वारा कि जो स्वच्छंद विहारी होते हैं, मूलगुण और उत्तर गुणों में जिन्हें आस्था नहीं होती है, छहकाय के जीवों की रक्षा करनेरूप अनुकंपा का भाव जिनके अंतःकरण में शून्यरूप से रहता है अनुपयोगपूर्वक अपनी रुचि के अनुसार यद्वा तद्वा क्रिया की

આવશ્યકમાં જે આ ઉપયોગ પરિણામ રૂપ ભાવાવશ્યક છે તે ધર્મ પદવાચ્ય છે, કારણ કે તે શ્રુતધર્મની અંદર સમાવિષ્ટ થઇ જાય છે. તેની જ માન્યતાના વિષયમાં જિનેન્દ્ર ભગવાનની આજ્ઞાનો સદ્ભાવ છે આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે-

કદાચ કોઇને એવી શંકા થાય કે નામ આવશ્યક સ્થાપના આવશ્યક અને દ્રવ્યાવશ્યક, તે ત્રણે આવશ્યકો આરાધના કરવા યોગ્ય છે, એવી જિનેંદ્ર ભગવાનની આજ્ઞા જ નથી. કારણ કે તેમનામાં ઉપયોગનો અભાવ છે, અને ચારિત્રગુણ વિહીનતા રહેલી છે તેથી તેઓ કર્મની નિર્જરાના સાધક થતા નથી. અને એજ કારણે તેઓ ધર્મ પદવાચ્ય પણ હોતા નથી. પરન્તુ સામાયિક આદિ રૂપ લોકોત્તર દ્રવ્યાવશ્યક, કે જે પ્રવચનોકત છે-આગમ સંમત છે, તે તો ધર્મ પદવાચ્ય હોવા જ જોઇએ.

તો તે પ્રકારની શંકાનું સમાધાન આ પ્રમાણે સમજવું સામાયિક આદિ ક્રિયાઓ આગમસંમત અવશ્ય છે. પરન્તુ જિનાજ્ઞાના પરિપાલનથી જેઓ વિહીન બનેલા છે એવા દ્રવ્યલિંગી (સાધુ વેષધારી) સાધુઓ દ્વારા કરવામાં આવતી તે સામાયિક આદિ ક્રિયાઓ ધર્મ પદવાચ્ય હોઇ શકતી નથી. કારણ કે એવા સાધુઓ તો સ્વચ્છંદ વિહારી હોય છે, મૂલગુણ અને ઉત્તર ગુણોથી તેઓ રહિત હોય છે, છકાયના જીવોની રક્ષા કરવા રૂપ અનુકંપા ભાવનો તેમનામાં સદંતર અભાવ હોય છે, એવા સાધુઓ તો અનુપયોગ પૂર્વક, પોતાની રુચિ પ્રમાણે ફાવે એવી રીતે તે સામાયિક આદિ

श्यकार्थज्ञस्य आवश्यकोपयोगपरिणाम आगमतो भावावश्यकम्। साध्वादिस्तु तादृशपरिणामवत्त्वादुपचारादागमतो भावावश्यकमुच्यते।

इदमावश्यकोपयोगपरिणामरूपं भावावश्यकं धर्मपदवाच्यं भवति, श्रुत धर्मान्तर्गतत्वादत्र जिनाज्ञाद्याः सत्त्वात्।

जाती है। अतः वे भी धर्मपदवाच्य नहीं हो सकती है। इसलिये उस लोकोत्तरिक द्रव्यावश्यक में भी निर्जराजनकत्व का अभाव होने से जिन भगवान की आज्ञा उसे मान्यता प्रदान करने की–वह आराधना करने योग्य है इस प्रकार की–नहीं हैं। इस प्रकार यह आगम भावावश्यक, का वर्णन किया।

भावार्थ––यह सूत्रकारने पहिले ही प्रकट करदिया है कि विवक्षित क्रिया के अनुभव से युक्त अर्थ का नाम भाव है। अर्थात् जो आवश्यक शास्त्र का ज्ञाता है और उसमें उपयोग से युक्त है–ऐसा साध्वादिरूप अर्थ भावावश्यक है। इस भावावश्यक के दो भेद हैं–? एक आगम भावावश्यक और दूसरे नोआगम भावावश्यक। आगम भावावश्यक में ज्ञाता का उपयोग रूप परिणाम आगमरूप माना गया है। अतः वह परिणाम आगम की अपेक्षा भावावश्यक होने से आगम भावावश्यक है। साध्वादिकों कि जो आवश्यकशास्त्र के ज्ञाता होकर उसमें उपयुक्त बने हुए हैं जो आगमभावावश्यक कहा जाता है वह उस परिणाम की अभेद विवक्षा से कहा जाता है। जिन भगवान् ने इस आगमभावावश्यक को ही धर्मपदवाच्य होने के कारण उपादेय

ક્રિયાઓ કરતા હોય છે. તે કારણે તેમની તે ક્રિયાઓ ધર્મ પદવાચ્ય (ધર્મ કહી શકાય એવી) હોતી નથી. તેથી એ લોકોત્તરિક દ્રવ્યાવશ્યકમાં પણ નિર્જરાજનકત્વનો અભાવ હોવાથી જિન ભગવાને તેમને આરાધના કરવા યોગ્ય કહી નથી. આ પ્રકારે આ સૂત્ર દ્વારા આગમ ભાવાવશ્યકનું સ્વરૂપ પ્રગટ કરવામાં આવ્યું છે.

ભાવાર્થ–સૂત્રકારે એ વાત તો આગળ પ્રકટ કરી દીધી જ છે કે વિવક્ષિત ક્રિયાના અનુભવથી યુકત અર્થનું નામ ભાવ છે. એટલે કે જે સાધુ આવશ્યક શાસ્ત્રનો જ્ઞાતા છે અને તેમાં ઉપયુકત (ઉપયોગ પરિણામથી યુકત) છે, એવા સાધુ આદિ રૂપ અર્થને ભાવાવશ્યક કહે છે. આ ભાવાવશ્યકના બે ભેદ બતાવ્યા છે (૧) આગમ ભાવાવશ્યક અને (૨) નોઆગમ ભાવાવશ્યક.

આગમ ભાવાવશ્યકમાં જ્ઞાતાના ઉપયોગ રૂપ પરિણામને આગમ રૂપ માનવામાં આવેલ છે. તેથી તે પરિણામ આગમની અપેક્ષાએ ભાવાવશ્યક રૂપ હોવાથી તેને આગમ ભાવાવશ્યક કહેવામાં આવ્યું છે. સાધ્વાદિકો કે જેઓ આવશ્યક શાસ્ત્રના જ્ઞાતા હોવાની સાથે સાથે તેમાં ઉપયુકત બનેલા તેમને જ જે આગમ ભાવાવશ્યક કહેવામાં આવે

नामावश्यकम्-आवश्यकनामको गोपालदारकादिः, स्थापनावश्यकम् आवश्यकक्रियावतः कस्यचित् काष्ठकर्मादिषु चित्रम्, द्रव्यावश्यकं च आवश्यकोपयोगशून्या देहागमक्रियाः। एतेष्वावश्यकेषु उपयोगाभावेन चरणगुणरहितत्वेन च कर्मनिर्जराजनकत्वाभावादाराध्यत्वेन जिनाज्ञा नास्ति, तस्मादेतत् त्रिविधमावश्यकं धर्मपदवाच्यं न भवतीति निश्चयः। लोकोत्तरिकद्रव्यावश्यकं—प्रवचनोक्तं सदपि जिनाज्ञाबाह्यैः स्वच्छन्दविहारिभिर्मूलोत्तरगुणरहितैः षट्कायनिरनुकम्पैरनुपयोगपूर्वकं क्रियमाणं सामायिकादिकम्। तदपि धर्मपदवाच्यं न भवितुमर्हति तत्रापि निर्जराजनकत्वाभावेन विधेयतया जिनाज्ञाया अभावात्।

उक्तमर्थमुपसंहरन् प्राह—'से तं आगमओ भावावस्सयं' इति। तदेतत् आगमतो भावावश्यकं वर्णितम् ॥ सू० २४॥

अथ भावावश्यकस्य द्वितीयभेदमाह—

मूलम्—से किं तं नो आगमओ भावावस्सयं ? नो आगमओ भावावस्सयं तिविहं पण्णत्तं, तं जहा—लोइयं, कुप्पावयणियं, लोगुत्तरियं ॥ सू० २५ ॥

स्वीकार्य कहा है—नाम स्थापना और द्रव्य आवश्यक को नहीं। क्योंकि आवश्यक नाम के धारी गोपालबालों में आवश्यक की स्थापनावाले किसी श्रावकआदि के आवश्यक क्रिया संपन्न चित्र में तथा आवश्यक क्रिया में उपयोग शून्य बने हुए नोआगम द्रव्यावश्यकरूप देह में एवं आगमोक्त भी लोकोत्तरिक द्रव्यावश्यकरूप सामायिक आदि में उपयोग की शून्यता से और चारित्र गुण की रहितता से कर्म निर्जरा करने की सामर्थ्य नही हैं। अतः ये धर्मपदवाच्य नहीं हुए हैं। और इसी कारण इन्हें उपादेय नहीं कहा गया है।।सूत्र २४॥

છે તે આ પરિણામની અભેદ વિવક્ષાની અપેક્ષાએ કહેવામાં આવે છે. આ આગમ ભાવાવશ્યક જ ધર્મ પદવાચ્ય હોવાથી જિનેશ્વર ભગવાને તેને ઉપાદેય કહેલ છે-

નામાવશ્યક, સ્થાપના આવશ્યક અને દ્રવ્યાવશ્યકને ઉપાદેય કહ્યા નથી. કારણ કે આવશ્યક નામધારી ગોપાલબાળોમાં, આવશ્યકની સ્થાપનાવાળા કોઇ શ્રાવક આદિના આવશ્યક ક્રિયા સંપન્ન ચિત્રમાં, તથા આવશ્યક ક્રિયામાં ઉપયોગ શૂન્ય (અનુપયુક્ત) બનેલા નોઆગમ દ્રવ્યાવશ્યક રૂપ સામાયિક આદિમાં ઉપયોગની શૂન્યતા અને ચારિત્રગુણની રહિતતાને લીધે કર્મની નિર્જરા કરવાનું સમર્થ્ય હોતું નથી. તેથી તેમને ધર્મ પદવાચ્ય કહી શકાય નહીં, અને એજ કારણે તેમને ઉપાદેય પણ ગણી શકાય નહીં. ॥ સૂ૦ ૨૪ ॥

छाया--अथ किं तद् नोआगमतो भावावश्यकम्? नोआगमतो भावावश्यकं त्रिविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-लौकिकं कुप्रावचनिकं लोकोत्तरिकम् ॥सू० २५॥

टीका--'से किं तं इत्यादि। व्याख्या निगदसिद्धा ॥सू० २५॥

लौकिकं भावावश्यकमाह--

मूलम्—से किं तं लोइयं भावावस्सयं? लोइयं भावावस्सयं पुव्वण्हे भारहं अवरण्हे रामायणं। से तं लोइयं भावावस्सयं।सू०२६।

अब सूत्रकार भावावश्यक का द्वितीय भेद जो नोआगमभावावश्यक है उसका निरूपण करते हैं-"से किं तं नोआगमओ" इत्यादि। ॥सूत्र २५॥

शब्दार्थ-(से) शिष्य पूछता है कि हे भदंत। नोआगम की अपेक्षा लेकर भावावश्यक का क्या स्वरूप है?

उत्तर-(नोआगमओ भावावस्सयं तिविहं पण्णत्त) नोआगम को आश्रित करके भावावश्यक तीन प्रकार का कहा हुआ है। (तंजहा) जैसे-(लोइयं) लौकिक (कुप्पावयणियं) कुप्रावचनिक और (लोगुत्तरियं) लोकोत्तरिक। इस प्रकार जानना चाहिये। उस व्याख्या में द्रव्यावश्यक की जगह भावावश्यक शब्द का प्रयोग करना चाहिये। ॥सूत्र २५॥

अब सूत्रकार लौकिक भावावश्यक का वर्णन करते हैं-

"से किं तं लोइयं" इत्यादि ॥सूत्र २६॥

ભાવાવશ્યકનો જે 'નોઆગમ ભાવાવશ્યક' નામનો બીજો ભેદ છે તેનું સૂત્રકાર હવે નિરૂપણ કરે છે—"से किं तं नो आगमओ" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ— (से) શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે કે હે ભગવન્! નો આગમની અપેક્ષાએ જે ભાવાવશ્યક કહ્યો છે તે ભાવાવશ્યકનું એટલે કે નો આગમ ભાવાવશ્યકનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર—(नोआगमओ भावावस्सयं तिविहं पण्णत्त) નોઆગમને આશ્રિત કરીને ભાવાવશ્યકના ત્રણ પ્રકાર કહ્યા છે. (तंजहा) તે ત્રણ પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે-

(लोइयं) (૧) લૌકિક (कुप्पावयणियं) (૨) કુપ્રાવચનિક અને (૩) लोगुत्तरियं) લોકોત્તરિક આ પદોની વ્યાખ્યા દ્રવ્યાવશ્યકની જેવી જ સમજવી જોઇએ, પરન્તુ તે વ્યાખ્યામાં દ્રવ્યાવશ્યકની જગ્યાએ 'ભાવાવશ્યક' પદનો ઉપયોગ કરવો જોઇએ ॥ સૂ. ૨૫ ॥

હવે સૂત્રકાર લૌકિક ભાવાવશ્યકનું નિરૂપણ કરે છે—

"से किं तं लोइयं" ઇત્યાદિ—

छाया—अथ किं तद् लौकिकं भावावश्यकम्? लौकिकं भावावश्यकं पूर्वाह्णे भारतम्, अपराह्णे रामायणम्। तदेतत् लौकिकं भावावश्यकम् ॥सू०२६॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—'से किं तं लोइयं भावावस्सयं' अथ किं तद् लौकिकं भावावश्यकम्? उत्तरमाह-'लोइयं भावावस्सयं' इत्यादि। लौकिकं भावावश्यकं पूर्वाह्णे भारतं=भारतस्य वाचनं श्रवणं वा, अपराह्णे रामायणम्, अपराह्णे रामायणम्=रामायणस्य वाचनं श्रवणं वा। लोके हि—भारतस्य वाचनं श्रवणं पूर्वाह्णे क्रियमाणं दृश्यते तथा—रामायणस्य वाचनं श्रवणम् अपराह्णे क्रियामाणं दृश्यते, वैपरीत्ये दोषदर्शनात्। ततश्चेत्थं लोकेऽवश्यकरणीयतयाऽवश्यकत्वं तद्वाचकस्य श्रोतुश्च तदर्थोपयोगपरिणामसत्त्वाद् भावत्वम्, तद्वाचकः भाणक्रियया पुस्तकपत्रादिपरावर्तनरूपया हस्ताभिनयरूपया च क्रियया युक्ता

शब्दार्थ—(से) शिष्य पूछता है कि हे भदंत! पूर्वप्रक्रान्त (पूर्वप्रस्तुत) लौकिक भावावश्यक का क्या स्वरूप है?

उत्तर—(लोइयं भावावस्सयं पुव्वण्हे भारहं अवरण्हे रामायणं) लौकिक भावावश्यक का स्वरूप ऐसा है कि पूर्वाह्न में महाभारत का वाचना अथवा श्रवण करना, अपराह्न में रामायण का वाचन अथवा श्रवण करना। लोकमें महाभारत का वाचन अथवा उसका श्रवण करना यह काम पूर्वाह्न में देखा जाता है, तथा रामायण का वाचना अपराह्न में (दूपेर पीछे)। इसके विपरीत करने से दोष का पात्र होना पडता है। इस तरह यह काम आवश्यक करने योग्य होने के कारण अवश्यकरूप है, तथा उसके श्रोता और वाचनकर्ता का उसके अर्थ में उपयोगरूप परिणाम के सद्भाव से उनमें भावरूपता है। वाचने वाला

શબ્દાર્થ-શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે હે ભગવન્! પૂર્વપ્રસ્તુત લૌકિક ભાવાવશ્યકનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(लोइयं भावावस्सयं पुव्वण्हे भारहं अवरण्हे रामायणं) લૌકિક ભાવાવશ્યકનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે-પૂર્વાહ્ન (દિવસના આગલા ભાગમાં) મહાભારતને વાંચવું અથવા શ્રવણ કરવું અને અપરાહ્ણને (દિવસના પાછલા ભાગમાં) રામાયણને વાંચવું અથવા શ્રવણ કરવું, તે અવશ્ય કરવા યોગ્ય હોવાથી આવશ્યક રૂપ ગણાય છે. લોકોમાં મહાભારતનું વાંચન અથવા શ્રવણ કરવાનું કાર્ય પૂર્વાહ્નમાં કરવા યોગ્ય ગણાય છે અને રામાયણનું વાંચન અથવા શ્રવણ કરવાનું કાર્ય અપરાહ્નમાં કરવા યોગ્ય મનાય છે. તેના કરતાં વિપરીત ક્રમે તે કરવાથી દોષને પાત્ર થવું પડે છે. આ રીતે આ કાર્ય અવશ્ય કરવા યોગ્ય હોવાથી આવશ્યક રૂપ છે, તથા તેના શ્રોતા અને વાચનકર્તાના તેના અર્થમાં ઉપયોગ રૂપ પરિણામના સદ્ભાવને લીધે તેમાં ભાવરૂપતા પણ હોય છે. વાચનકર્તા તે વખતે ભાષણ કરવાની ક્રિયાથી, પુસ્તકના

भवति, श्रोताऽपि च श्रवण-गात्र संयतत्व-करसंपुटीकरणादिक्रियावान् भवति। एवं तयोः क्रियाकत्वेन नोआगमत्वम्, 'किरियाऽऽगमो न होइ' इति वचनात्। क्रियारूपे देशे आगमत्वाभावाद् नोआगमत्वमपि। अत्र ना शब्दस्य देशनिषेधवाचकत्वात्। लोके भारतादावागमत्वं व्यवहियते, तस्मादेशत आगमोऽस्त्यपि। तस्मात् पूर्वाह्णेऽपराह्णे यथानिर्दिष्टकाले भारताद्युपयुक्तो यदवश्यं भारतादिकं वाचयति शृणोति वा, तदावश्यकं श्रवणं च लौकिकं भावावश्यकमिति

वाचते समय भाषण क्रिया से, पुस्तक के पन्नों को पलटने आदिरूप क्रिया से, और निज हाथ से इशारा करने रूप अभिनय क्रिया से युक्त होता है। तथा जो श्रोता होते हैं। वे भी श्रवण क्रिया से शरीर को संयत करनेरूप क्रिया से और दोनों हाथों को जोडे रहनेरूप क्रिया से युक्त होते हैं। इस तरह की इन दोनों की इन क्रियाओं में आगमता नहीं है—क्यों कि "किरिया-आगमो न होइ" क्रिया आगम नहीं होती है ऐसा सिद्धान्त का वचन है। इसलिये क्रियारूप देश में आगमता का अभाव होने से नोआगमता भी हैं। यहां नो शब्द देशनिषेधका बोधक है। परन्तु लोक में महाभारत आदि ग्रन्थों में आगमता का व्यवहार होता है-इसलिये इनमें आगमता भी है। इस तरह क्रिया में आगमता का सद्भाव होने से कहीं आगमता का सद्भाव और कहीं आगमता का अभाव बन जाने से नो एकदेश से आगमता बन जाती है। इस प्रकार यथा निर्दिष्ट पूर्वाह्ण और अपराध काल में भारतादि में उपयुक्त हुए व्यक्ति आदि का जो उनका वाचना और सुननारूप आ-

---

પાનાંઓ ફેરવવાની ક્રિયાથી યુકત હોય છે, તથા શ્રોતાઓ તે શ્રવણ કરવા રૂપ ક્રિયાથી, શરીરને સંયત કરવા રૂપ ક્રિયાથી અને બન્ને હાથોને જોડી રાખવા રૂપ ક્રિયાથી યુકત હોય છે. આ પ્રકારની વકતા અને શ્રોતાની તે ક્રિયાઓમાં આગમતાનો સદ્ભાવ હોતો નથી કારણ કે "किरिया आगमो न होइ" "ક્રિયા આગમરૂપ હોતી નથી," આ પ્રકારનું સિદ્ધાન્તનું કથન છે. આ પ્રકારે ક્રિયા રૂપ દેશમાં આગમતાનો અભાવ હોવાથી તેમાં 'નો આગમતા'નો પણ સદ્ભાવ હોય છે. અહીં "નો" શબ્દ દેશ નિષેધનો (અંશત નિષેધનો) બોધક છે. પરન્તુ લોકમાં મહાભારત આદિ ગ્રંથોમાં આગમતાનો વ્યવહાર થાય છે, તે કારણે તેમનામાં આગમતાનો સદ્ભાવ પણ રહેલો છે. આ રીતે ક્રિયામાં આગમતાનો અભાવ અને મહાભારત આદિમાં આગમતાનો સદ્ભાવ હોવાથી એટલે કે એક પ્રકારે આગમતાનો સદ્ભાવ હોવાથી તેમાં નોઆગમતા (એક દેશની અપેક્ષાએ આગમતા) સિદ્ધ થાય છે. આ પ્રકારે યથા નિર્દિષ્ટ પૂર્વાહ્ન કાળમાં મહાભારત આદિમાં ઉપયુકત (ઉપયોગ પરિણામથી યુકત) થયેલ વ્યકિતનું જે તેમના વાચન અને શ્રવણ રૂપ

बोध्यम्। तदेतत् निगमयन्नाह–'से तं लोइयं भावावस्सयं इति। तदेतत् लौकिकं भावावश्यकं वर्णितम् ॥सू० २६॥

कुप्रावचनिकं भावावश्यकमाह—

मूलम्—से किं तं कुप्पावयणियं भावावस्सयं? कुप्पावयणियं भावावस्सयं जे इमे चरगचीरिग जाव पासंडत्था इज्जंजलि होमजपो दुरुक्कनमोक्कारमाइयाइं भावावस्सयाइं करेंति। से तं कुप्पावयणियं भावावस्सयं सू० २७॥

छाया—अथ किं तत् कुप्रावचनिकं भावावश्यकम्? कुप्रावचनिकं भावावश्यकं य इमे चारकचीरिका यात् पाषण्डस्थाः इज्याञ्जलिहोमजपोदुरुक्कनमस्कारादिकानि भावावश्यकानि कुर्वन्ति। तदेतत कुप्रावचनिकं भावावश्यकम् ॥सू० २७॥

श्यक कर्म है वह वाचन और श्रवण लौकिक भावावश्यक है। इस तरह एकदेश में आगमता की अपेक्षा लेकर (से तं लोइयं भावावस्सयं) यह पूर्वप्रक्रान्त लौकिक भावावश्यक का वर्णन किया। ॥सूत्र २६॥

अब सूत्रकार कुप्रावचनिक भावावश्यक का वर्णन करते हैं।

"से किं तं कुप्पावयणियं" इत्यादि। ॥सू० २७॥

शब्दार्थ—(से) शिष्य पूछता है कि हे भदंत! तं (तत्) पूर्व प्रक्रान्त (पूर्वप्रस्तुत) (कुप्पावयणियं भावावस्सयं किं) कुप्रावचनिक भावावश्यक का क्या स्वरूप है?

उत्तर—(कुप्पावयणियं भावावस्सयं) कुप्रावचनिक भावावश्यक का स्वरूप

આવશ્યક કર્મ છે, તે વાંચન અને શ્રવણ લૌકિક ભાવાવશ્યક રૂપ હોય છે. (से तं लोइयं भावावस्सयं) આ પ્રકારનું નો આગમ (એકદેશરૂપ આગમતાના સદ્ભાવવાળા) લૌકિક ભાવાવશ્યકનું સ્વરૂપ સમજવું.

હવે સૂત્રકાર નો આગમ ભાવાવશ્યકના બીજા ભેદ રૂપ કુપ્રાવચનિક ભાવાવશ્યકનું નિરૂપણ કરે છે—"से किं तं कुप्पावयणियं" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(से) શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે (तं) પૂર્વપ્રક્રાન્ત-પૂર્વપ્રસ્તુત (कुप्पावयणियं भावावस्सयं किं) કુપ્રાવચનિક ભાવાવશ્યકનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(कुप्पावयणियं भावावस्सयं) કુપ્રાવચનિક ભાવાવશ્યકનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે-(जे इमे चरगचीरिग जाव पासंडत्था) જે ચરક, ચીરિક આદિ પૂર્વોક્ત

शिष्यः पृच्छति—'से किं तं कुप्पावयणियं भावावस्सयं ?' इति। अथ किं तत् कुप्रावचनिकं भावावश्यकम् ? । उत्तरमाह-कुप्रावचनिकं भावावश्यकमेवं विज्ञेयम्—ये इमे चरकचीरिक यावत् पाषण्डस्थाः उपयुक्ताः सन्तो यथावसरं यदवश्यम्, इज्याञ्जलिहोमजपोदुरुक्कनमस्कारादिकानि, भावावश्यकानि कुर्वन्तीत्यन्वयः। तत्र चरकादयः प्राग्व्याख्याताः। तत्र—इज्या=यज्ञः अञ्जलिः—जलाञ्जलिःसूर्याय क्षिप्यते, होमः=नित्यहवनम् जपः=गायत्र्यादेः, उन्दुरुक्कम्—धूपः, धूपदानमित्यर्थः, अयं देशीयःशब्दो धूपार्थकः। नमस्कारः=वन्दनम्, एतान्यादौ येषां तानि भावावश्यकानि कुर्वन्ति। एतानि हि चरकचीरिकादिभिः पाषण्डस्थैरवश्यं क्रियमाणत्वादावश्यकानि। तदर्थोपयोगश्रद्धादिपरिणामसद्भावाद् भावत्वम्। चरकादीनां तदर्थज्ञानरूपो देशतः आगमः, क्रियाः संयोगादिक्रियारूपो देशतस्तु नोआगमः

इस प्रकार से है। (जे इमे चरग चीरिग जाव पासंडत्था) जो ये चरक चीरिक आदि पाषंडस्थ मनुष्य उपयुक्त होकर अवसर के अनुसा (इज्जंजलिहोमजपोदुरुक्कनमोक्कारमाइयाइं) यज्ञ करते हैं, सूर्य के लिये जलांजलि देते हैं, नित्य हवन करते हैं, गायत्री का जाप करते हैं, अग्नि में धूप जलाते हैं, तथा वंदना आदिरूप भावावश्यक करते हैं, सो ये सब क्रियाएं उन चरक चीरिकादिकों द्वारा आवश्यककरणीय होने के कारण आवश्यकरूप हैं। तथा इनके अर्थ में जो उनका उपयोग परिणाम लगा रहता है तथा श्रद्धा आदि का भाव जाग्रत रहता है-सो इस कारण ये क्रियाएं भावावश्यकरूप हैं। इस तरह चरक आदि वेषों का जो उन क्रियाओं संबन्धीज्ञान है वह एकदेश आगमरूप है। तथा उनका और शिर का संयोजनादिरूप जो व्यवहार है कि—क्रियाएं हैं—वह क्रियारूप व्यवहार आगमरूप नहीं हैं—नो-

---

पाषंडस्थो (पाखंडी) मनुष्यो उपयुक्त (उपयोग रूप परिणाम संपन्न) थईने अवसरने अनुरूप (इज्जंजलिहोमजपोदुरुक्कनमोक्कारमाइयाइं) यज्ञ करे छे, सूर्यने जलांजलि अर्पण करे छे, नित्य होमहवन करे छे, गायत्रीनो जाप करे छे, अग्निमां धूप नाखीने तेने बाळे छे, तथा वंदना आदि क्रियाओ करे छे, ते बधी क्रियाओ भावावश्यक रूप गणाय छे. आ सघळी क्रियाओ ते चरक, चीरिक आदि पूर्वोक्त लोको द्वारा अवश्य करवा योग्य होवाने कारणे आवश्यक रूप गणाय छे. वळी ते क्रियाओमां तेमना उपयोग परिणामनो पण सद्भाव रहे छे. अने श्रद्धादि भावो पण जागृत रहे छे. आ कारणे ते क्रियाओने भावावश्यक रूप कहेवामां आवी छे. तथा ते वखते तेमना कर अने शिरना संयोजन आदि रूप जे व्यवहार अथवा क्रियाओ थाय छे, ते क्रियारूप व्यवहार आगम रूप नथी पण नो-

तथा च देशिकागमाभावमाश्रित्य नोआगमत्वमपि । नो शब्दस्यात्रापि देशनिषेध परत्वात् । चरकचीरिकादिभिः पाषण्डस्थैरवश्यं क्रियमाणम् इज्याञ्जलि होमादिकं कुप्रावचनिकं भावावश्यकमितिभावः । तदेतत् कुप्रावचनिकं भावावश्यकं वर्णितम् ।सू०२७।

आगम है—। इस तरह देशिक आगमके अभाव को लेकर उन क्रियाओं में नोआगमता है । नोआगम का तात्पर्य एकदेश में आगमता का सद्भाव है। अतः चरक, चीरक आदि पाषंडस्थ पुरुषों द्वारा की गई इज्या (यज्ञ) अंजलि होमादिकरूप एक देश क्रियाओं के ज्ञान में तो आगमता है। इस प्रकार कुप्रावचनिक—भावावश्यक का यह स्वरूप है ।

भावार्थ—यहां नोआगम का तात्पर्य सर्वथा आगमाभाव से नहीं है। किन्तु एकदेशमें आगम के अस्तित्व से है। चरक चीरिकादि पाखण्डी जनों को यज्ञादि क्रियाएँ उनके सिद्धान्तानुसार अवश्य करणीय होती हैं, वे उन्हे उपयोगपूर्वक करते हैं । उनमें उनकी अटूट श्रद्धा होती है । इस तरह ये क्रियाएँ भावावश्यकरूप में पडती है और ये सब क्रियाएं उनकी ज्ञान मूलक ही होती हैं। इसलिये इन क्रियाओं के ज्ञानमें तो आगम रहता ही हैं। परन्तु जो और उनकी हस्त शिर की संयोजन आदिरूप क्रियाएं हैं उनमें

આગમ રૂપ જ છે; કારણ કે આ ક્રિયાઓ આગમભાન્ય ક્રિયાઓ ન હો. આ રીતે દેશિક આગમના અભાવની અપેક્ષાએ છે ક્રિયાઓમાં નો આગમતાનો સદ્ભાવ હોય છે એમ સમજવું. "નો આગમતા" એટલે એકદેશની અપેક્ષાએ આગમતા. તેથી ચરક, ચીરિક આદિ પૂર્વોકિત પાષંડસ્થ પુરુષો દ્વારા કરવામાં આવેલી યજ્ઞ, અંજલિ દ્વારા અભિષેક, હોમ આદિ રૂપ એકદેશરૂપ ક્રિયાઓના જ્ઞાનમાં તો આગમતાનો સદ્ભાવ છે. તે દૃષ્ટિએ વિચારતા તે ક્રિયાઓ કુપ્રાવચનિક ભાવાવશ્યક રૂપ ગણાય છે. કુપ્રાવચનિક ભાવાવશ્યકનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ સમજવું.

ભાવાર્થ—"નો આગમ" આ પદ સર્વથા આગમાભાવતા દર્શાવતું નથી, પણ એકદેશતઃ આગમનો સદ્ભાવ બતાવે છે. ચરક, ચીરિક આદિ પાખંડી લોકોને માટે યજ્ઞાદિ ક્રિયાઓ તેમના સિદ્ધાન્તાનુસાર અવશ્ય કરણીય ગણાય છે. તેઓ તે ક્રિયાઓ ઉપયોગપૂર્વક કરે છે. તેમાં તેમને અતૂટ શ્રદ્ધા હોય છે. આ રીતે આ ક્રિયાઓ ભાવાવશ્યક રૂપ ગણાય છે, અને તેમની આ બધી ક્રિયાઓ જ્ઞાનમૂલક જ હોય છે. તેથી તે ક્રિયાઓના જ્ઞાનમાં તો આગમનો સદ્ભાવ રહે છે જ પરન્તુ એ સિવાયની હસ્તશિરના સંયોજન આદિ રૂપ જ ક્રિયાઓ છે તેમાં આગમરૂપતા હોતી

लोकोत्तरिकं भावावश्यकमाह—

मूलम्—से किं तं लोगुत्तरियं भावावस्सयं ? लोगुत्तरियं भावावस्सयं जण्णं इमे समणे वा समणी वा सावओ वा साविआ वा तच्चित्ते तम्मणे तल्लेसे तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते तदप्पियकरणे तब्भावणाभाविए अण्णत्थकत्थइमणं अकारेमाणे उभओकालं आवस्सस करेंति, तं लोगुत्तरियं भावावस्सयं। से तं नो आगमओ भावावस्सयं, से तं भावावस्सयं ॥ सू २८ ॥

छाया-अथ किं तद् लोकोत्तरिकं भावावश्यकम् ? लोकोत्तरिकं भावावश्यकं-यत्खलु इमे श्रमणा वा श्रमण्यो वा श्रावका वा श्राविका वा तच्चित्तास्तन्मनस्तल्लेश्यास्तदध्यवसितास्तत्तीव्राध्यवसानास्तदर्थोपयुक्तास्तदर्पितकरणास्तद्भावना-

---

आगमरूपता नहीं हैं। इस तरह आगम का एकदेश में अस्तित्व लेकर चरकचीरिकादि संबंधी होम आदि क्रियाएं कुप्रावचनिक भावावश्यक हैं।सू० २७।

अब सूत्रकार लोकोत्तरिक भावावश्यक का कथन करते हैं—

"से किं तं लोगुत्तरियं" इत्यादि । ॥ सू० २८ ॥

शब्दार्थ—(से) शिष्य पूछता है कि हे भदंत ! लोकोत्तरिक भावावश्यक का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—(लोगुत्तरियं भावावस्सयं) लोकोत्तरिक भावावश्यक का स्वरूप इस प्रकार से है—(जण्णं इमे समणे वा समणी वा सावओ वा साविआ वा) जो ये श्रमण श्रमणी, श्रावक अथवा श्राविका जन (तच्चित्ते) आवश्यक में चित्त लगाकर (तम्मणे) मन लगाकर (तल्लेस्से)

નથી. આ રીતે આગમના એકદેશતઃ અસ્તિત્વની અપેક્ષાએ ચરક, ચીરિક આદિ દ્વારા કૃત હોમ, હવન, યજ્ઞ આદિ ક્રિયાઓ કુપ્રાવચનિક ભાવાવશ્યક રૂપ હોયછે. સૂ. ૨૭।

હવે સૂત્રકાર લોકોત્તરિક ભાવાવશ્યક નામના નોઆગમ ભાવાવશ્યકના ત્રીજા ભેદનું નિરૂપણ કરે છે. "से किं तं लोगुत्तरियं" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(से) શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે પૂર્વપ્રસ્તુત લોકોત્તરિક ભાવાવશ્યકનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર—(लोगुत्तरियं भावावस्सयं) લોકોત્તરિક ભાવાવશ્યકનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ હોય છે-

(जण्णं इमे समणे वा समणी वा सावओ वा साविआ वा) આ શ્રમણ, શ્રમણી (સાધ્વી), શ્રાવક અને શ્રાવિકાઓ (तच्चित्ते) આવશ્યકમાં ચિત્ત લગાવીને, (तम्मणे)

भाविता अन्यत्र कुत्रापि मनोऽकुर्वन्त उभयतः कालम् आवश्यकं कुर्वन्ति । तदेतद् लोकोत्तरिकं भावावश्यकम् । तदेतन्नो आगमतो भावावश्यकम् तदेतद् भावावश्यम् ॥सू० २८॥

टीका—शिष्यः पृच्छति–'से किं तं लोगुत्तरियं भावावस्सयं' अथ किं तद् लोकोत्तरिकं भावावश्यकम् ? इति । उत्तरमाह–'लोगुत्तरियं' भावावस्सयं' इत्यादि। लोकोत्तरिकं भावावश्यकमेव विज्ञेयम्, यत्खलु इमे श्रमणा वा श्रमण्यो वा श्राम्यन्ति=मुक्त्यर्थं तपन्तीति–श्रमणाः स्त्रियश्चात् श्रमण्यः–साधवो वा साध्व्योवेत्यर्थः श्रावका वा श्राविका वा, शृण्वन्ति=साधुसमीपे जिनप्रणीतां सामाचारीमिति श्रावकाः=श्रमणोपासकाः, स्त्रियश्चात् श्राविकाः=श्रमणोपासिकाः, वा शब्दाः समुच्चयार्थाः, तच्चित्ताः=तस्मिन्नेव आवश्यके चित्तं=सामान्योपयोगरूपं येषां ते तथा, आवश्यके सामान्योपयोगवन्तः, तथा तन्मनसः–तस्मिन्नेव मनो विशेषो

शुभपरिणामरूप लेश्याओंसे युक्त होकर (तदज्झवसिए) क्रिया संपादन विषयक अध्यवसायसे युक्त होकर (तत्तिव्वज्झवसाणे) तीव्र आत्मपरिणाम विशिष्ट होकर (तदट्ठोवउत्ते) तदर्थ में उपयुक्त होकर (तदप्पियकरणे) तदर्पितकरणवाले होकर (तब्भावणाभाविए) तद्भावना से भावित होकर (अण्णत्थकत्थइ मणं अकरेमाणे) अन्य और कहीं पर भी मनको नहीं लगाकर (उभओ कालं) दोनों समय (आवस्सयं करेंति) आवश्यक करते हैं (से त्तं लोगुत्तरियं भावावस्सयं) यह लोकोत्तरिक भावावश्यक है। मुक्ति प्राप्ति के निमित्त जो तप तपते हैं उन का नाम "श्राम्यन्तीति श्रमणाः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार श्रमण हैं जो साधुओं के समीप जिन प्रणीत सामाचारी का श्रवण करते हैं उनका नाम श्रावक है। ये श्रमणोपासक होते हैं। आवश्यक क्रिया में जिनका सामान्यरूप से उपयोग है, वे श्रमण आदिजन यहाँ "तच्चित्ते" पद के वाच्यार्थ हुए

મન લગાવીને (तल्लेस्स) શુભ પરિણામરૂપ લેશ્યા સંપન્નથઈને (तदज्झवसिए) ક્રિયાસંપાદન વિષયક અધ્યવસાયથી યુકત થઈને, (तत्तिव्वज्झवसाणे) તીવ્ર આત્મપરિણામ યુકત થઈને, (तदट्ठोवउत्ते) આવશ્યક અર્થમાં ઉપયુકત (ઉપયોગરૂપ પરિણામયુકત) થઈને (तदप्पियकरणे) તદર્પિત કરણયુકત થઈને (तब्भावणाभाविए) તે પ્રકારની ભાવનાથી ભાવિત (સંપન્ન) થઈને (अण्णत्थकत्थइ मणं अकरेमाणे અને અન્ય કોઈ પણ વસ્તુમાં મનને ભમવા દીધા વિના, (उभओ कालं) બન્ને સમયે (आवस्सयं करेंति) જે આવશ્યક (પ્રતિક્રમણ આદિ અવશ્ય કરવા યોગ્ય ક્રિયાઓ) કરે છે, તેને લોકોત્તરિક ભાવાવશ્યક કહે છે.

હવે આ સૂત્રમાં શ્રમણ આદિ પદોનો ભાવાર્થ સ્પષ્ટ કરવામાં આવે છે–

"श्राम्यन्ति इति श्रमणाः' આ વ્યુત્પત્તિ પ્રમાણે "મુકિત પ્રાપ્ત કરવા નિમિત્તે જેઓ તપ તપે છે તેમને શ્રમણ કહે છે જેઓ સાધુઓની સમીપે જિનપ્રણીત સામાચારીનું શ્રવણ કરે છે તેમને શ્રાવક કહે છે. તેઓ શ્રમણોપાસક હોય છે. આવશ્યક ક્રિયામાં સામાન્ય રૂપે ઉપયોગ યુકત હોય એવા શ્રમણ આદિને અહીં "तच्चित्ते" આ પદના વાચ્યાર્થ રૂપે પ્રયુકત થયેલા સમજવા. જેઓ વિશેષ રૂપે

पयोगरूपं येषां ते तथा. आवश्यके विशेषोपयोगवन्तः, तल्लेश्याः—तस्मिन्=आवश्यके एव लेश्या=शुभपरिणामरूपा येषां ते तथा, आवश्यके शुभपरिणामवन्तः, तथा—तदध्यवसिताः—तस्मिन्=आवश्यके एव तच्चित्तत्वादिना अध्यवसितम्=अध्यवसायः क्रियासम्पादनविषयो येषां ते तथा, आवश्यकक्रियासंपादनविषयकविचारयुक्ताः, तथा-तत्तीव्राध्यवसानाः-तस्मिन्=आवश्यके एव तीव्रं =प्रारम्भकालादेव प्रतिक्षणं प्रवर्धमानम् अध्यवसानम् इदं सकलकर्मनिर्जराजनकं तस्मादवश्यमाश्रयणीयं—मित्येवंरूपकारक आत्मपरिणामो येषां ते तथा, तदर्थोपयुक्ताः आवश्यकार्थोपयुक्ताः—'आवश्यकं-सामायिक—चतुर्विंशतिस्तव—वन्दन—प्रतिक्रमण-कायोत्सर्ग—प्रत्याख्यानरूपं यदवश्यं शाश्वतमचलमरुजमक्षयमव्याबाधममन्दानन्द-सन्दोहरूपं शिवसुखं प्रापयति, तस्मादवश्यं सोपयोगं प्रशस्ततरसंवेगनिर्वेद-

---

जानना चाहिये। जिनका उपयोग विशेषरूप से आवश्यक क्रिया में लगा हुआ है ऐसा श्रमण आदि जन "तम्मणे" इस पद के वाच्यार्थ हुए जानना चाहिये। आवश्यक क्रियाओं के संपादन विषयक विचारों से जो युक्त हैं ऐसे श्रमण आदिजन "तदज्झवसिए" इस पद के वाच्यार्थ हुए जानना चाहिये। तथा जिनका आत्मपरिणाम प्रारम्भकाल से ही इस प्रकार के विचार से कि यह आवश्यक सकलकर्म की निर्जरा का जनक है इसलिये अवश्य आश्रयणीय है, प्रतिक्षण वृद्धिगत होता रहता है वे श्रमण आदिजन 'तत्तिव्वज्झवसाणे" इस पद के वाच्यार्थ हुए हैं। आवश्यक में जिन के परिणाम शुभ हैं वे 'तल्लेस्से" पद के वाच्यार्थ—जानना चाहिये। आवश्यक—सामायिक चतुर्विंशतिस्तव, वंदन प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग इनरूप हैं, सो यह अवश्य, शाश्वत, अचल, अरुज, अक्षय, अव्याबाध और अनन्द आनन्द के सन्दोहरूपशि।

આવશ્યક ક્રિયાઓમાં ઉપયોગ યુકત થયેલા છે એવાં શ્રમણોને અહીં "तम्मणे" આ પદના વાચ્યાર્થ રૂપે પ્રયુકત થયેલા સમજવા.

'આ આવશ્યક આશ્રયણીય છે,' આ પ્રકારની વિચાર ધારાથી જેમનું આત્મ-પરિણામ આરંભકાળથી જ યુકત રહે છે, અને ક્રમે ક્રમે જેમનું આ પ્રકારનું આત્મપરિણામ વૃદ્ધિ પામતું રહે છે, એવાં શ્રમણાદિને અહીં "तत्तिव्वज्झवसाणे" આ પદના વાચ્યાર્થ રૂપ સમજવા. આવશ્યક ક્રિયામાં જેમના પરિણામ શુભ છે એવાં શ્રમણ આદિને અહીં "तल्लेस्से" આ પદના વાચ્યાર્થ રૂપ સમજવા જોઇએ.

"સામાયિક, ૨૪ તિર્થંકરોની સ્તુતિ, વંદન, પ્રતિક્રમણ, કાયોત્સર્ગ ઇત્યાદિ રૂપ જે આવશ્યક છે, તેઓ શાશ્વત, અચલ, અરુજ, અક્ષય, અવ્યાબાધ અને અમન્દ આનંદના સન્દોહરૂપ (સમુદાયરૂપ) શિવ સુખની પ્રાપ્તિ અવશ્ય કરાવી દેનાર છે, અને

पूर्वकमाराधनीय—' मित्यात्मपरिणामयुक्ताः इत्यर्थः । : तथा—तदर्पितकरणाः—तस्मिन्=आवश्यके अर्पितानि=यथातथ्येन नियुक्तानि करणानि=तत्साधकभूतानि देहरजोहरणसदोरकमुखवस्त्रिकादीनि यैः ते तथा, आवश्यककर्मणि सम्यग्यथा स्थानन्यस्तोपकरणा इत्यर्थः, तथा-तद्भावनाभाविताः—तस्य=आवश्यकस्य भावना= आवश्यक-सर्वकल्याण—कारणम, अनन्तभवोपार्जित कर्मरजोऽपहारक—मिति प्रतिक्षण—मनुस्मरणरूपा, तया भाविताः प्रमादपरिहारपूर्वक परमोत्साहेन आवश्यक क्रियाकरणपरायणाः, अन्यत्र कुत्रापि मनः अकुर्वन्तः, उपलक्षणत्वाद् वाचं कायं चान्यत्रा कुर्वन्तः उभयकाले यत् आवश्यकं कुर्वन्ति तदेतल्लोकोत्तरिकं भावाव-

सुख को प्राप्त करा देता है अतः यह अवश्य उपयोगपूर्वक प्रशस्ततर संवेग के साथ निर्वेदपूर्वक आराधनीय है इस प्रकार के आत्मपरिणामों से जो युक्त हैं ऐसे श्रमण आदिजन "तदट्ठोवउत्ते" इस पद के वाच्यार्थ हुए हैं। तथा—जिन्हों ने आवश्यक में यथास्थान तत्साधकभूत देह, रजोहरण, सदोरकमुखवस्त्रिका आदिकों को नियुक्त कर रखा है अर्थात् आवश्यक क्रिया में अच्छी तरह से उन्होंने यथा स्थान उपकरणों को रखा है ऐसे वे श्रमण आदि जन "तदर्पितकरणे" पद के वाच्यार्थ हुए हैं। आवश्यक समस्त कल्याणों का कारण है तथा अनंत भवोपार्जित कर्म रज का नाशक है इस प्रकार की प्रतिक्षण में अनुस्मरणरूप भावना से जो प्रमाद परित्यागपूर्वक परमोत्साह से आवश्यक क्रिया के करने में परायण बने हुए हैं ऐसे श्रमण आदिजन "तब्भावणाभाविए" पद के वाच्यार्थ हुए हैं। मन यह पद वचन और कायका उपलक्षण

તે કારણે તે અવશ્ય ઉપયોગ પૂર્વક પ્રશસ્તતર સંવેગની સાથે, નિર્વેદપૂર્વક આરાધનીય છે," આ પ્રકારના આત્મપરિણામથી જેઓ યુકત હોય છે એવાં શ્રમણ આદિને "तदट्ठोवउत्ते" આ પદના વાચ્યાર્થ રૂપે ગ્રહણ કરવા જોઇએ

આવશ્યક ક્રિયા કરતી વખતે તે ક્રિયાના સાધનભૂત દેહ, રજોહરણ, સદોરક મુહપત્તી આદિ ઉપકરણોને જેમણે યોગ્ય સ્થાને રાખેલાં છે એટલે કે આવશ્યક ક્રિયામાં જેમણે ઉપકરણોને બરાબર વિચાર પૂર્વક ઉચિત સ્થાને સ્થાપિત કરેલાં છે, તે શ્રમણ આદિને અહીં "तदप्पियकरणे" આ પદના વાચ્યાર્થ રૂપ સમજવા જોઇએ.

" આવશ્યક ક્રિયાઓ સમસ્ત કલ્યાણોની જનક છે, તથા અનંત ભવોપાર્જિત કર્મરજનો નાશ કરનારી છે." આ પ્રકારની પ્રતિક્ષણે અનુસ્મરણ રૂપ ભાવનાથી પ્રેરાઇને જેઓ પ્રમાદના ત્યાગ પૂર્વક અને પરમોત્સાહ પૂર્વક આવશ્યક ક્રિયાઓ કરવાને પરાયણ બનેલા છે એવાં શ્રમણ આદિને "तब्भावणाभाविए" આ પદના વાચ્યાર્થ રૂપ સમજવા જોઇએ.

श्यकम् मूले समणे वा' इत्यादौ बहुत्वे वाच्ये एकवचननिर्देश आर्षत्वात्–यदिमे श्रमणादयस्तच्चित्तादि विशेषण–विशिष्टा उभयकालं प्रतिक्रमणाद्यावश्यकं कुर्वान्त तल्लोकोत्तरिकं भावावश्यकम्, इति संक्षेपार्थः। अत्रापि–अवश्यं करणात् आवश्यकत्वम्. तदुपयोगपरिणामस्य सद्भावाद् भावत्वम्, आवश्यकक्रियालक्षण देशस्यानागमत्वाद् नोआगमत्वं च बोध्यम्। तदेतल्लोकोत्तरिकं भावावश्यकं वर्णितम् एवं विधं नोआगमतो भावावश्यकं निरूपितमिति सूचयितुमाह–'से तं नोआगमतो भावावस्सयं' इति। तदेतन्नो आगमतो भावावश्यकं वर्णितम्। एवं सर्वथा भावावश्यकं निरूपितमिति सूचयितुमाह–'से तं भावावस्सयं' इति। तदे-

हैं। तात्पर्य कहने का यह है कि जो श्रमण आदिजन तच्चित्त आदि विशेषणों से युक्त बनकर दोनों काल प्रतिक्रमण आदि आवश्यकों को करते हैं भावावश्यक है। ये क्रियाएँ श्रमण आदि जनोंको अवश्य करने योग्य हैं इसलिये तो ये आवश्यक हैं। तथा उनमें इनके करनेवालोंका उपयोग परिणाम वर्तमान रहता है इसलिये उनमें भावरूपता है। तथा आवश्यक क्रियाएँ स्वयं आगम रूप नहीं हैं अतः आवश्यक क्रिया रूप एकदेशमें अनागमता और इनके ज्ञानरूप एकदेशमें आगमताका सद्भाव होनेसे नो आगमकी अपेक्षा ये आवश्यक क्रियाएँ लोकोत्तरिकभावावश्यक जाननी चाहिये। इस तरह नोआगमको आश्रित करके लोकोत्तरिकभावावश्यकका यहां तकका वर्णन किया। इस प्रकार नोआगम भावावश्यकका पूर्णरूपसे वर्णन हो चुका है इस बातको बतलाने के लिये सूत्रकारने "से तं भावावस्सयं" पदका प्रयोग किया है।

'मन' આ પદ વચન અને કાયનું ઉપલક્ષક છે. આ સઘળા કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે જે શ્રમણ, શ્રમણી, શ્રાવક અને શ્રાવિકા "तच्चित्त" આદિ વિશેષણોથી યુકત બનીને બન્ને કાળે પ્રતિક્રમણ આદિ જે આવશ્યકો કરે છે, તે આવશ્યકો નોઆગમની અપેક્ષાએ લોકોત્તરિક ભાવાવશ્યક ગણાય છે. આ ક્રિયાઓ શ્રમણ શ્રમણી શ્રાવક અને શ્રાવિકોને માટે અવશ્ય કરવા યોગ્ય મનાતી હોવાથી તેમને આવશ્યક રૂપ કહી છે. તે આવશ્યક ક્રિયાઓ કરનાર શ્રમણ આદિનું ઉપયોગ પરિણામ તેમાં વિદ્યમાન રહે છે, તે કારણે તેમાં ભાવરૂપતાનો સદ્ભાવ હોય છે. તથા આવશ્યક ક્રિયાઓ સ્વયં આગમ રૂપ નથી, તેથી આવશ્યક ક્રિયા રૂપ એકદેશમાં અનાગમતા અને તેમના જ્ઞાનરૂપ એક દેશમાં આગમતાનો સદ્ભાવ હોવાથી આ આવશ્યક ક્રિયાઓને નોઆગમની અપેક્ષાએ લોકોત્તરિક ભાવાવશ્યક રૂપ સમજવી આ રીતે નોઆગમને આશ્રિત કરીને લોકોત્તરિક ભાવાવશ્યકનું આ સૂત્રમાં પ્રતિપાદક કરવામાં આવ્યું છે. એજ વાતને સૂત્રકારે 'से तं भावावस्सयं" આ સૂત્રપાઠ દ્વારા પ્રગટ કરી છે. આ સૂત્રપાઠ એ વાત સૂત્રના

तद् भावावश्यकं सर्वथा वर्णितम्। भावावश्यकमेव चतुर्विधसंघस्योपादेयं न तु नामस्थापना द्रव्यावश्यकानि, तेषां कर्म निर्जराजनकत्वाभावात् संसारकारणत्वाच्च। तथा-भावावश्यकेऽपि आगमतो भावावश्यकं लोकोत्तरिकं च नोआगमतो भावावश्यकं चेति द्वयमेवोपादेयं, न तु-लौकिकं कुप्रावचनिकं च भावावश्यकमिति सर्वतीर्थंकराणामभिप्रायः ॥सू० २८॥

भावावश्यक ही चतुर्विध संघको उपादेय है। नाम स्थापना और द्रव्यरूप आवश्यक उपादेय नहीं है। क्योंकि इनमें कर्म निर्जराकी जनकताका सर्वथा अभाव है अर्थात इनको निमित्त या इनका सेवन करके यदि कोई प्राणी अपने कर्मोंकी निर्जरा करना चाहे तो वह नहीं कर सकता है। इसलिये इन्हें संसारवर्धक कारणोंमें परिगणित किया गया है। भावावश्यकमें भी आगम भावावश्यक और नोआगमका तृतीय भेद रूप लोकोत्तरिक भावावश्यक ये दोही उपादेय हैं। लौकिक और कुप्रावचनिक भावावश्यक नहीं ऐसा समस्त तीर्थंकरोंका कथन है।

भावार्थः—नोआगम भावावश्यकको आवश्यक रूप आगमका सर्वथा अभाव विवक्षित नहीं हुआ है। किन्तु आगमका एकदेश विवक्षित हुआ है। इस नोआगम भावावश्यकके लौकिककुप्रावचनिक और लोकोत्तरिक ये ३ तीन भेद किये गये हैं। पूर्वाह्न में महाभारतका अपराह्न में रामायणका वाचना

ઉપસંહાર રૂપે પ્રકટ કરે છે કે આ રીતે નોઆગમ લોકોત્તરિક ભાવાવશ્યકનું નિરૂપણ અહીં પુરું થાય છે.

ભાવાવશ્યક જ ચતુર્વિધ સંઘને માટે ઉપાદેય ગણાય છે. નામ, સ્થાપના અને દ્રવ્યાવશ્યક ઉપાદેય ગણાતાં નથી, કારણ કે તે ત્રણે આવશ્યકોમાં કર્મનિર્જરાની જનકતાનો સર્વથા અભાવ જ છે કારણ કે તેમનું સેવન કરવાથી જો કોઇ જીવ કર્મોની નિર્જરા કરવાનું ઇચ્છતો હોય, તો તે રીતે કર્મોની નિર્જરા કરી શકતો નથી. તે કારણે તે ત્રણે આવશ્યકોને સંસારવર્ધન કરનારાં કારણો રૂપે ગણાવવામાં આવેલ છે. ભાવાવશ્યકમાંથી પણ આગમ ભાવાવશ્યક અને નોઆગમના ત્રીજા ભેદ રૂપ લોકોત્તરિક ભાવાવશ્યક આ બેને જ ઉપાદેય કહી શકાય તેમ છે. લૌકિક અને કુપ્રાવચનિક ભાવાવશ્યકને ઉપાદેય રૂપ ગણી શકાય નહીં, એવું સમસ્ત તીર્થંકરોનું કથન છે.

ભાવાર્થ–નોઆગમ ભાવાવશ્યકમાં આવશ્યક રૂપ આગમનો સર્વથા અભાવ વિવક્ષિત થયો નથી, પરન્તુ આગમનો એકદેશ વિવક્ષિત થયો છે. આ નોઆગમ ભાવાવશ્યકના નીચે પ્રમાણે ત્રણ ભેદ પડે છે (૧) લૌકિક, (૨) કુપ્રાવચનિક અને (૩) લોકોત્તરિક પૂર્વાહ્નમાં મહાભારતનું અને અપરાહ્નમાં રામાયણનું વાંચન

एवं श्रवण करना ये निर्दिष्ट समय पर क्रियमाण होनेसे आवश्यक रूप हैं। इनमें वाचक और श्रोताका जो अर्थोपयोग परिणाम है वह भावरूप हैं। इसलिये वाचक और श्रोता, कि जिनका ग्रन्थों में उपयोग रूप परिणाम लग रहा है वे लौकिक भावावश्यक हैं। तथा लोककी अपेक्षा भारतादिक आगम भी हैं। इन आगमों में उपयुक्त बने हुए वक्ता और श्रोताजन में उस समय विविध प्रकारकी जो क्रिया होती रहती हैं वे आगमरूप नहीं हैं क्योंकि श्रुतज्ञान ही आगमरूप माना गया है। इस तरह एकदेशमें आगमकी विद्यमानता होनेसे भारतादिकका वाचन रूप लौकिक भावावश्यक है। चरक चीरिक आदि पाखंडीजनों द्वारा जो होम यज्ञ आदि क्रियाएं की जाती हैं वे सब उनके लिये उनके मान्य सिद्धान्तानुसार अवश्य कर्तव्य हैं इसलिये ये सब क्रियाँ आवश्यक हैं। इन आवश्यक क्रियाओ के संपादन करते समय उन संपादन कर्ताओंका उपयोग आदि रूप परिणाम उनमें संलग्न रहता है इसलिये ये भाव हैं। इस तरह ये क्रियाएँ भावावश्यक मान ली जाती है। इनका ज्ञान आगम, और संपादन कर्ताओं की करशिर संयोजनादिरूप क्रियाएँ अनागम हैं। इस प्रकार एकदेशमें आगमका सद्भाव होनेसे आगम के एकदेशको आश्रित करके ये क्रियाएँ कुप्रावचनिक भावावश्यक हैं।

અને શ્રવણ કરવા રૂપ કાર્ય નિર્દિષ્ટ સમયે ક્રિયમાણ હોવાથી આવશ્યકરૂપ છે. તેમાં વાચક અને શ્રોતાનું જે અર્થોપયોગ યુકત પરિણામ છે, તે ભાવરૂપ છે. આ કારણે તે ગ્રંથોમાં ઉપયોગ યુકત પરિણામથી યુકત એવાં તે વાચક અને શ્રોતાજનો લૌકિક ભાવાવશ્યક રૂપ ગણાય છે તથા લોકની અપેક્ષાએ મહાભારત આદિને આગમ પણ ગણવામાં આવે છે. તે આગમોમાં ઉપયુકત વક્તા, વકતા અને શ્રોતાઓમાં તે સમયે વિવિધ પ્રકારની ક્રિયાઓ થતી રહે છે, તે ક્રિયાઓ આગમરૂપ નથી, કારણ કે શ્રુતજ્ઞાનને જ આગમરૂપ માનવામાં આવ્યું છે. આ રીતે એકદેશની અપેક્ષાએ આગમની વિદ્યમાનતા હોવાના કારણે મહાભારત આદિનું વાંચન અને શ્રવણ 'નોઆગમ લૌકિક ભાવાવશ્યક' રૂપ છે. ચરક, ચીરિક આદિ પાખંડીઓ દ્વારા જે યજ્ઞ, હોમ, હવન આદિ ક્રિયાઓ કરવામાં આવે છે તે તેમના માન્ય સિદ્ધાન્તાનુસાર તેમને માટે અવશ્ય કરવા યોગ્ય મનાય છે. તેથી તે બધી ક્રિયાઓને આવશ્યક રૂપ કહેવામાં આવે છે. આ આવશ્યક ક્રિયાઓ કરતી વખતે તે ક્રિયાઓ કરનાર લોકોના ઉપયોગ આદિ રૂપ પરિણામ તે આવશ્યક ક્રિયાઓમાં સંલગ્ન રહે છે, તેથી આ પ્રકારના ભાવથી યુકત તે ક્રિયાઓને ભાવાવશ્યક રૂપ માનવામાં આવે છે. તે ક્રિયાઓનું જ્ઞાન આગમ રૂપ ગણાય છે. અને તે ક્રિયાઓ કરનારની કર શિર સંયોગ આદિ રૂપ ક્રિયાઓ અનાગમ રૂપ ગણાય છે. આ પ્રકારે એક દેશમાં આગમતાનો

अथ-भावावश्यकस्य पर्यायानाह—

मूलम्—तस्स णं इमे एगट्ठिया णाणाघोसा णाणावंजणा णामधेज्जा भवंति, तं जहा—

आवस्सयं १, अवस्सकरणिज्जं २, धुवनिग्गहो ३, विसोही ४य।
अज्झयणछक्कवग्गो ५, नाओ, आराहणा ७ मग्गो ८ ॥१॥
समणेणं सावएण य अवस्सकायव्वयं हवइ जम्हा।
अंते अहो निसस्सय तम्हा आवस्सयं नाम ॥२॥

से तं आवस्सयं ॥सू० २९॥

चतुर्विध संघ द्वारा उपयुक्त होकर जो दोनों समय-सुबह और सायङ्काल—प्रतिक्रमण आदि आवश्यक क्रियाएं की जाती है वे नोआगमकी अपेक्षा लोकोत्तरिक भावावश्यक हैं संघके द्वारा ये अवश्य ही उभयकाल में क्रियमाण होनेसे आवश्यक रूप हैं। कर्त्ता इनमें उपयोग पूर्वक तल्लीन होता है इसलिये इनमें भावरूपता है। इनका ज्ञान उपयोगरूपमें उसे होता है अतः ये आगम रूप है तथा और अवशिष्ट कर शिर संयोजनादि क्रियाएँ आगम रूप नहीं हैं। इस तरह नोआगमको आश्रित करके प्रतिक्रमण आदि ये क्रियाएँ लोकोत्तरिक भावावश्यक हैं। सूत्र ॥ २८ ॥

સદ્ભાવ હોવાથી આગમના એક દેશને આશ્રિત કરીને તે ક્રિયાઓને નોઆગમ લોકોત્તરિક ભાવાવશ્યક રૂપ કહેવામાં આવે છે.

ચતુર્વિધ સંઘ ઉપયુક્ત થઈને બન્ને સમય પ્રાતઃકાળે અને સાયંકાળે પ્રતિક્રમણ આદિ જે આવશ્યક ક્રિયાઓ કરે છે, તે ક્રિયાઓ નોઆગમની અપેક્ષાએ લોકોત્તરિક ભાવાવશ્યક રૂપ છે. બન્ને કાળે શ્રમણાદિ દ્વારા તે અવશ્ય કરવા યોગ્ય હોવાથી આવશ્યક રૂપ છે. કર્ત્તા તેમાં ઉપયોગ પૂર્વક તલ્લીન થઈ જાય છે, તેથી તેમાં ભાવરૂપતા છે. તે ક્રિયાઓના જ્ઞાનનો ઉપયોગ રૂપે તેનામાં સદ્ભાવ હોય છે, તેથી તે ક્રિયાઓ આગમરૂપ છે, તથા બીજી કરશિર સંયોજન આદિ ક્રિયાઓ આગમ રૂપ નથી. આ રીતે નોઆગમને આશ્રિત કરીને પ્રતિક્રમણ આદિ ક્રિયાઓ લોકોત્તરિક ભાવાવશ્યક રૂપ છે, એટલે કે તે પ્રતિક્રમણ આદિ આવશ્યક ક્રિયાઓ નોઆગમ લોકોત્તરિક ભાવાવશ્યક રૂપ છે, એમ સમજવું. ॥ સૂ. ૨૮ ॥

छाया—तस्य खलु इमानि एकार्थिकानि नानाघोषाणि नानाव्यञ्जनानि नामधेयानि भवन्ति, तद्यथा—

आवश्यकम् १ अवश्यकरणीयम् २ ध्रुवनिग्रहो ३ विशोधिश्च ४।
अध्ययनषट्कवर्गः ५ न्यायः ६ आराधना ७ मार्गः ८ ॥१॥

श्रमणेन श्रावकेण च अवश्यकर्त्तव्यकं भवति यस्मात्।
अन्तेऽहर्निशस्य तस्मादावश्यकं नाम ॥२॥

तदेतदावश्यकम् ॥ सू० २९ ॥

अब सूत्रकार भावावश्यकका पर्यायोंको कहते हैं—

"तस्सणं इमे" इत्यादि ! सूत्र ॥ २९ ॥

शब्दार्थः—(तस्स णं) उस आवश्यक के (इमे) ये वक्ष्यमाण (एगट्ठिया) एक अर्थवाले (नामधेज्जा) नाम हैं। ये नाम (णाणा घोसा णाणा वंजणा) भिन्न २ उदात्त आदि स्वरों एवं ककार आदि अनेक व्यञ्जनोंसे सहित हैं। (तंजहा) वे इस प्रकारसे हैं—(आवस्सयं) १ आवश्यक (अवस्स करणिज्जं५) अवश्यकरणीय, (धुवनिग्गहो) ध्रुवनिग्रह ३, (विसोही य) विशोधि ४ अज्झयण छक्कवग्गो)अध्ययनषट्कवर्ग ५, (नाओ) न्याय ६, (आराहणा) आराधना ७, (मग्गो) मार्ग इनमें आवश्यक शब्दका अर्थ (से किं तं आवस्सयं) इसके पहिले नौवें-सूत्र में स्पष्ट कर दिया गया है। अवश्यकरणीय—मोक्षार्थीजनों द्वारा यह नियमसे अनुष्ठेय (करने योग्य) होता है इसलिये इसका नाम अवश्यकरणीय है। ध्रुव

હવે સૂત્રકાર ભાવાવશ્યકના પર્યાયવાચી શબ્દોનું નિરૂપણ કરેછે—

"तस्सणं इमे" ઇત્યાદિ—

(तस्सणं इमे एगट्ठिया नामधेज्जा) તે આવશ્યકના નીચે પ્રમાણે એકાર્થક નામો છે—

(णाणा घोसा णाणा वंजणा) તે નામો જુદા જુદા ઉદાત્ત આદિ સ્વરો અને ક્કાર આદિ અનેક વ્યંજનોથી યુકત છે. (तंजहा) તે નામો નીચે પ્રમાણે છે—(आवस्सयं) (૧) આવશ્યક, (अवस्सकरणिज्जं) (૨) આવશ્ય કરણીય, (धुवनिग्गहो)ધ્રુવનિગ્રહ, (विसोहाय) (૪) વિશોધિ, (अज्झयणछक्कवग्गो) (૫) અધ્યયન-ષટ્ક વર્ગ, (नाओ) (૬) ન્યાય, (आराहणा) (૭) આરાધના અને (मग्गो) માર્ગ (૧) 'આવશ્યક' આ પદનો અર્થ "से किं तं आवस्सयं" આ પ્રશ્નસૂત્રથી શરૂ થતા નવમાં સૂત્રમાં પ્રકટ કરવામાં આવ્યો છે. (૨) 'અવશ્યકરણીય'-મોક્ષાર્થીજનો દ્વારા તે અવશ્ય અનુષ્ઠેય (અનુષ્ઠાન કરવા યોગ્ય, આચરણીય) હોય છે, તેથી તેનું 'અવશ્યકરણીય' નામ પડ્યું છે.

टीका—'तस्स णं' इत्यादि—

तस्य=आवश्यकस्य खलु इमानि=वक्ष्यमाणानि नानाघोषाणि—नाना=अनेक विधाः भिन्ना भिन्ना इति यावत्, घोषाः=उदात्तादिस्वराः येषां तानि तथा—भिन्नाभिन्नोदात्तादिस्वरयुक्तानि, तथा—नानाव्यञ्जनानि—नाना=अनेकविधानि व्यञ्जनानि=ककारादीनि येषां तानि तथा—ककारादिभिन्नभिन्नव्यञ्जनसहितानि एकार्थिकानि=परमार्थतः एकार्थविषयाणि नामधेयानि-नामानि-पर्यायाः भवन्ति। तद्यथा—आवश्यकम्१ अवश्यकरणीयम्२ ध्रुवनिग्रहो३ विशोधिश्च४ अध्ययनषट्कवर्गो५ न्यायः६ आराधना७ मार्गः८। इति। अयमर्थः—आवश्यकम्, अस्य शब्दार्थः= 'से किं तं आवस्सयं' इत्यत्र प्राग् वर्णितः ॥१॥ अवश्यकरणीयम्—मोक्षार्थिभिर्नियमेनानुष्ठेयत्वात्—अवश्यकरणीयम् ॥२॥ ध्रुवनिग्रहः—अनादित्वात् चिदपर्यवसितत्वाद् ध्रुवं=कर्म तत्फलभूतः संसारो वा, तस्य निग्रहः=निग्रहहेतुत्वात् निग्रहः, ध्रुवनिग्रहः—चतुर्गतिकसंसारनिवारकः ॥३॥ विशोधिः—विशोधनं विशोधिस्तद्हेतुत्वाद् आवश्यकं विशोधिः=तस्य कर्ममलापहारकत्वात् ॥४॥ अध्ययनषट्कवर्गः-अध्ययनषट्कम्=अध्ययनषट्कम् तद्रूपो वर्गः अध्ययनषट्कवर्गः=सामायिकादिषडध्ययनसमूहरूपः ॥५॥ न्यायः अभीष्टार्थसिद्धेः सम्यगुपायत्वाद् न्यायः यद्वा—

निग्रह—अनादि होने के एवं नाना जीवों की अपेक्षा पर्यवसानसे रहित होने के कारण ध्रुवनामकर्म या कर्म के फलभूत संसार है। इस कर्मका या उसके फलभूत संसारका निग्रह इससे होता है, इसलिये इसका नाम ध्रुवनिग्रह है। विशोधि— कर्मरूप मल की अपवृत्ति (निवृत्ति) इससे होती है— इसलिये इसका नाम विशोधि है। यह सामायिक आदि छह अध्ययन समूह रूप है—इसलिये इसका नाम अध्ययनषट्क वर्ग है। अभीष्ट अर्थ की सिद्धिका यह सबसे भला उपाय हैं इसलिये इसका नाम न्याय है—अथवा जीव और कर्म के अनादिका-

(३) 'ध्रुवनिग्रह'-કર્મ અથવા કર્મના ફલસ્વરૂપ સંસારનું નામ ધ્રુવ છે, કારણ કે કર્મ અને સંસાર, આ બન્ને અનાદિ અને વિવિધ જીવોની અપેક્ષાએ પર્યવસાનથી રહિત (અનંત) છે. એવા અનાદિ અનંત કર્મનો અથવા કર્મના ફલભૂત સંસારનો નિગ્રહ આ આવશ્યક ક્રિયાઓ વડે થાય છે, તેથી તેનું ત્રીજું નામ 'ધ્રુવનિગ્રહ' છે.

(૪) વિશોધિ-તેના દ્વારા કર્મરૂપી મળની નિવૃત્તિ અથવા વિશુદ્ધિ થાય છે, તેથી તેનું ચોથું નામ "વિશોધિ" છે.

(૫) 'અધ્યયનષટ્ક વર્ગ'-તે સામાયિક આદિ ૬ અધ્યયનના સમૂહરૂપ હોવાથી તેનું પાંચમું નામ 'અધ્યયનષટ્ક વર્ગ' છે.

(૬) 'ન્યાય'-અભીષ્ટ અર્થની સિદ્ધિના સૌથી સારા ઉપાય રૂપ હોવાને કારણે

जीवकर्मसंबन्धापनयनाद् न्यायः—यथार्थिप्रत्यर्थिनोर्द्वयोरपि क्षेत्रधनादिसम्बन्धिकं चिरकालिकमपि विवादं न्यायाध्यक्षदृष्टो न्यायो रुपनयति, तथैवावश्यकमपि जीवकर्मणोरनादिकालिनमाश्रयाश्रयिभावसम्बन्धमपनयतीति—आवश्यकमपि न्याय इत्युच्यते ॥६॥ आराधना=मोक्षाराधना हेतुत्वादावश्यकम् आराधना ॥७॥ मार्गः—तथा मार्गो नगरं प्रापयति, तथैवावश्यकमपि मोक्षं प्रापयतीति मोक्षरूपपुरप्रापकत्वात् आवश्यकं मार्गः इति ॥८॥

सम्प्रति—आवश्यकपदस्य शब्दार्थं सूत्रकारः स्वयमेव प्रदर्शयति—'समणेणं' इत्यादि। श्रमणेन=साधुना श्रावकेण, चकारस्योपलक्षणत्वात् श्रमण्या श्राविकया च यस्मात् अहर्निशस्य=अहोरात्रस्य अन्ते=अवसाने दिवसान्ते रात्र्यन्ते चे

लीन संबन्धको यह दूर कर देता है—जिस प्रकार वादि प्रतिवादी के बहुत समय का भी क्षेत्र, धन आदि संबन्धी विवादको न्यायाध्यक्ष न्याय के बल पर दूर कर देता है—उसी प्रकार आवश्यक भी जीव और कर्म के अनादिकालीन आश्रयाश्रयिभावरूप संबन्धको दूर कर देता है—इसलिये इसका नाम भी न्याय है। मोक्षकी आराधना करनेका यह हेतु है। इसलिये इसका नाम आराधना है। जिस प्रकार मार्ग पथिकको नगर में पहुंचा देता है उसी प्रकार आवश्यक भी मोक्ष रूप नगर में अपने पथिकको पहुंचा देता है—इसलिये इसका नाम-मार्ग है। आवश्यक शब्दका क्या अर्थ है—इस बातको अब सूत्रकार प्रकट करते हैं समणेणं सावएणं य श्रमण, श्रावक के द्वारा यह (जम्हा) जिस कारणसे (अहोनिसस्स अंते) दिवसान्त और निशान्त में (अवस्सा कायव्वं होइ) अवश्य करणीय होता है (तम्हा) इसकारण से (आवस्सयं नाम) इसका

तेनुं छठ्ठुं नाम "न्याय" अथवा—જેવી રીતે ન્યાયાધીશ વાદી અને પ્રતિવાદીના જર, જમીન આદિ વિવાદોને ન્યાયને આધારે દૂર કરી નાખે છે, એજ પ્રમાણે આવશ્યક પણ જીવ અને કર્મના અનાદિ કાલિન આશ્રયાશ્રયી ભાવરૂપ સંબંધને દૂર કરી નાખે છે. તેથી આવશ્યકનું છઠ્ઠું નામ 'ન્યાય છે.

(૭) 'આરાધના'—મોક્ષની આરાધના કરવામાં આવશ્યક હેતુરૂપ (સાધનરૂપ) થઈ પડે છે, તેથી તેનું સાતમું નામ 'આરાધના' છે.

(૮) 'માર્ગ'—જેવી રીતે માર્ગ પથિકને નગરમાં પહોંચાડી દે છે, એજ પ્રમાણે આવશ્યક પણ તેના આરાધક જીવને મોક્ષ રૂપ નગરમાં પહોંચાડી દે છે, તેથી તેનું આઠમું નામ માર્ગ છે. આવશ્યક શબ્દનો શો અર્થ છે, તે હવે સૂત્રકાર પ્રકટ કરે છે(समणेणं सावएणं य) શ્રમણ અને શ્રાવક દ્વારા તે (जम्हा) જે કારણે (अहोनिसस्स अंते) દિવસને અન્તે અને રાત્રિને અન્તે (अवस्स कायव्वं होइ) અવશ્ય

त्यर्थः, अवश्यकर्त्तव्यकम्=अवश्यं करणीयं भवति, तस्मात् अस्य आवश्यकं नाम भवति। तदेतदावश्यकम्–'आवस्सयं निक्खिविस्सामि' इति यत्प्रतिज्ञातं तदेवं नामादिभेदैरावश्यकं निक्षिप्य वर्णितम्। इत्थमनुयोगद्वारसूत्रे आवश्यकाधिकारः संपूर्ण ॥ सू० २९ ॥

'सुयं निक्खिविस्सामि' इति प्रतिज्ञानुसारेण श्रुताधिकारः प्रारभ्यते–तत्र प्रथमं श्रुतस्वरूपं निरूपयितुमाह–

मूलम्—से किं तं सुयं ? सुयं चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा-नाम-सुयं, ठवणासुयं, दव्वसुयं, भावसुयं ॥सू० ३०॥

छाया--अथ किं तत् श्रुतम् ? श्रुतं चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-नामश्रुतम्, स्थापनाश्रुतम्, द्रव्यश्रुतं, भावश्रुतम् ॥ सू० ३० ॥

टीका--'से किं तं सुयं' इत्यादि–व्याख्या निगदसिद्धा ॥सू० ३०॥

नामआवश्यक है। (से तं आवस्सयं) "आवस्सयं निक्खिविस्सामि" इसप्रकार की जो सूत्रकार ने पहिले कहा है उसी के अनुसार नाम, स्थापना आदि भेदों द्वारा आवश्यक का न्यास करके वर्णन किया हैं। इस प्रकारसे अनुयोगद्वार सूत्र में आवश्यक का अधिकार समाप्त हुआ। सूत्र० २९॥

अब सूत्रकार "सुयं निक्खिविस्सामि" इस कथन के अनुसार श्रुताधिकार प्रारंभ करते हैं–इसके पहिले वे श्रुत के स्वरूपका निरूपण करने के लिये "से किं तं सुयं, इत्यादि। सूत्र कहते हैं–

"से किं तं सुयं ?" इत्यादि । ॥ सूत्र ३० ॥

शब्दार्थः—(से) शिष्य पूछता है कि हे भदन्त ! श्रुतका क्या स्वरूप है?

उत्तर—(सुयं चउव्विहं पण्णत्तं) श्रुत चार प्रकारका कहा गया है

કરણીય હોય છે, (तम्हा)તે કારણે (आवस्सयं नाम) તેનું નામ આવશ્યક છે. (से तं "आवस्सयं 'आवस्सयं निक्खिविस्सामि" આ પ્રકારે સૂત્રકારે જે પહેલાં કહ્યું છે તે અનુસાર નામ સ્થાપના આદિ ભેદો દ્વારા આવશ્યકનો ન્યાસ (વિભાગ) કરીને વર્ણન કર્યું છે આ પ્રકારે અનુયોગદ્વાર સૂત્રનો આવશ્યક અધિકાર અહીં સમાપ્ત થાય છે. ॥ ૨૯ ॥

હવે સૂત્રકાર "सुयं निक्खिविस्सामि" આ કથન અનુસાર શ્રુતાધિકારનો પ્રારંભ કરે છે સૌથી પહેલાં તેઓ શ્રુતના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરવા નિમિત્તે "से किं तं सुयं" ઇત્યાદિ સૂત્ર કહે છે—"से किं तं सुयं?" ઇત્યાદિ —

શબ્દાર્થ-(से किं तं सुयं ?) શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે 'હે ભદન્ત! શ્રુતનું સ્વરૂપ કેવું છે?

तत्र नामश्रुतं निरूपयति-

मूलम्—से किं तं नामसुयं ? नामसुयं जस्स णं जीवस्स वा जाव सुएत्ति नाम कज्जइ, ॥सू० ३१॥

छाया—अथ किं तद् नामश्रुतम्? नामश्रुत यस्य खलु जीवस्य वा यावत् श्रुतेति नाम क्रियते, तदेतत् नामश्रुतम् ॥सू० ३१॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि। व्याख्या निगदसिद्धा ॥ सू० ३१ ॥

अथ स्थापनाश्रुतं निरूपयति—

मूलम्—से किं तं ठवणासुयं ? ठवणासुयं जण्णं कट्ठकम्मे वा जाव ठवणा ठविज्जइ, से तं ठवणासु । नामठवणाणं को पइविसेसो? नाम आवकहियं,ठवणा इत्तरिय वा होज्जा आवकहिया वा ।सू०३२।

(तं जहा) उसके वे चार प्रकार ये हैं-(नामसुयं ठवणासुयं-दव्वसुयं भावसुयं) नामश्रुत, स्थापनाश्रुत, द्रव्य त और भाव त। ॥ सूत्र ३० ॥

नाम श्रुतका क्या स्वरूप है इस बातको सूत्रकार प्रकट करते हैं—

'से किं तं नाम सुयं' इत्यादि। ॥ सूत्र ३१ ॥

शब्दार्थ— हे भदंत! नाम त का क्या स्वरूप है? उत्तर—(नामसुयं) नाम श्रुतका स्वरूप इस प्रकार से है (जस्स णं जीवस्स वा अजीवस्स वा जाव सुएत्ति नाम कज्जइ) जिस किसी जीव अथवा अजीव आदि का त ऐसा जो नाम रख लिया जाता है। इसकी व्याख्या नाम आवश्यक की तरह जाननी चाहिये। ॥ सूत्र ३१ ॥

उत्तर-(सुयं चउव्विहं पण्णत्तं) श्रुत ચાર પ્રકારનું કહ્યું છે (तंजहा) તે ચાર પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે-(नाम सुयं, ठवणासुयं, दव्वसुयं, भावसुयं, (૧) નામ શ્રુત (૨) સ્થાપનાશ્રુત, (૩) દ્રવ્યશ્રુત, અને (૪) ભાવ,,ત. ॥ સૂ૦ ૩૦ ॥

હવે સૂત્રકાર નામશ્રુતના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે-

"से किं तं नामसुयं?" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે હે ભગવન્! નામશ્રુતનું કેવું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર-(नामसुय)નામશ્રુતનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે—(जस्स णं जीवस्स वा अजीवस्स वा जाव सुएत्ति नाम कज्जइ) જે કોઇ જીવ અથવા અજીવ આદિનું "ત" એવું જે નામ રાખવામાં આવે છે તેને નામ ત કહે છે. આ નામશ્રુતની વ્યાખ્યા નામ આવશ્યકની વ્યાખ્યા અનુસાર જ સમજી લેવી. ॥ સૂ૦ ૩૧ ॥

छाया—अथ किं तत् स्थापनाश्रुतम् ? स्थापनाश्रुतं यत्खलु काष्ठकर्मणि वा यावत् स्थापना स्थाप्यते, तदेतत् स्थापनाश्रुतम् । नामस्थापनयोः कः प्रति विशेषः ? नाम यावत्कथिकम् स्थापना इत्वरिका वा भवेत्, यावत्कथिका वा ॥सू० ३२

टीका—'से किं तं ठवणासु ' इत्यादि—व्याख्या प्राग्वत् ॥ सू० ३२ ॥

द्रव्यश्रुतं निरूपयितुमाह—

मूलम्—से किं तं दव्वसुयं ? दव्वसुयं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—आगमओ य नो आगमओ य ॥सू० ३३॥

छाया—अथ किं तद् द्रव्यश्रुतम् ? द्रव्यश्रुतं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—आगमतश्च नो आगमतश्च ॥ सू० ३३ ॥

स्थापना श्रुत का स्वरूप क्या है इस बातका सूत्रकार निरूपण करते हैं—"से किं तं" इत्यादि ।।! सूत्र ३२ ॥

शब्दार्थः-से(किं तं)हे भदन्त ! स्थापना श्रुत का क्या स्वरूप हैं ?

उत्तरः—(ठवणासुयं) स्थापनाश्रुत का स्वरूप इस प्रकार से है (जण्णं) जो (कट्ठकम्मे वा जाव ठ णाठविज्जइ) काष्ठ आदि में "यह त है" इस प्रकार की जो कल्पना या आरोप किया जाता है (से तं ठवणासुयं) वह स्थापना श्रुत है। नाम ठवणाणं को पइविसेसो) नाम और स्थापना में क्या अन्तर है ?

उत्तरः—(नाम आवकहियं या ठवणा इत्तरिया वा होज्जा) नाम यावत्कथिक होता है और स्थापना यावत्कथिक/और इत्वरिक दोनों प्रकार की होती है। इसकी व्याख्या बारहवें सूत्र की तरह जाननी चाहिये। ॥ सूत्र ३२ ॥

હવે સૂત્રકાર સ્થાપના શ્રુતના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે —

"से किं तं ठवणासुयं?" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(से किं तं) ઇત્યાદિ-શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે હે ભગવન્! સ્થાપનાશ્રુતનું કેવું સ્વરૂપ છે? (कट्ठकम्मे वा जाव ठवणा ठविज्जइ) કાષ્ઠ આદિમા "આ શ્રુત છે" આ પ્રકારની જે કલ્પના અથવા આરોપ કરવામાં આવે છે (से तं ठवणासुयं તેને 'સ્થાપનાશ્રુત' કહે છે (णाम ठवणाणं को पइविसेसो) હે ભગવન્! નામ અને સ્થાપના વચ્ચે શો તફાવત છે?

ઉત્તર-(नाम आवकहियं ठवणा इत्तरिया वा होज्जा) નામ યાવત્કથિક હોય છે. અને સ્થાપના યાવત્કથિક અને ઇત્વરિક, આ બન્ને પ્રકારની હોય છે. આ સૂત્રનું વિશેષ વિવેચન તથા આ સૂત્રનો ભાવાર્થ બારમાં સૂત્રમાં (સ્થાપના આવશ્યક સૂત્રમાં) કહ્યા અનુસાર સમજવો. ॥ સૂ૦ ૩૨ ॥

टीका—'से किं तं दव्वसुयं' इत्यादि।
व्याख्या प्राग्वत् ॥ सू० ३३ ॥

तत्र—आगमतो द्रव्यश्रुतं निरूपयति—

मूलम्—से किं तं आगमओ दव्वसुयं ? आगमओ दव्वसुयं जस्स णं सुएत्ति पयं सिक्खियं ठियं जियं जाव णो अणुप्पेहाए कम्हा ? अणुवओगो दव्वमिति कट्टु नेगमस्स णं एगो अणुवउत्तो आगमओ एगं दव्वसुयं जाव कम्हा ? जइ जाणए अणुवउत्ते न भवइ । से तं आगमओ दव्वसुयं ॥सू० ३४॥

छाया—अथ किं तदागमतो द्रव्यश्रुतम्, आगमतो द्रव्यश्रुतं—यस्य खलु श्रुतेति पदं शिक्षितं स्थितं जितं यावत् नो अनुप्रेक्षया, कस्मात् ? अनुपयोगो

शब्दार्थ—(से किं त) हे भदन्त ! द्रव्यश्रुत का क्या स्वरूप है ?

उत्तर:—(दव्वसुयं दुविहं पण्णत्तं) द्रव्यश्रुत दो प्रकार का कहा गया है। (तंजहा) उसके वे प्रकार ये हैं—(आगमओ य नोआगमओ य) ? आगम को अश्रित कर के द्रव्यश्रुत होता है और दूसरा नोआगम को आश्रित करके द्रव्यश्रुत होता है। इसकी व्याख्या पहिले की तरह जाननी चाहिये। ॥सूत्र ३३॥

अब सूत्रकार आगम की अपेक्षा कर के द्रव्यश्रुत का निरूपण करते हैं—
"से किं तं आगमओ दव्वसुयं" इत्यादि ॥ सूत्र ३४ ॥

शब्दार्थ:—(से किं तं) शिष्य पूछता है कि हे भदन्त। आगम का आश्रय करके जो द्रव्यश्रुत होता है उसका क्या स्वरूप है ?

હવે સૂત્રકાર દ્રવ્યશ્રુતના સ્વરૂપનું [illegible] કરે છે—
"से किं तं दव्वसुयं ?" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(से किं तं दव्वसुयं?) હે ભગવન્! દ્રવ્યશ્રુતનું કેવું સ્વરૂપ કહ્યું છે?

ઉત્તર—(दव्वसुयं दुविहं पण्णत्तं) દ્રવ્યશ્રુતના બે પ્રકાર કહ્યા છે. (तंजहा) તે બે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે (आगमओ य नोआगमओय) (૧) આગમને આશ્રિત કરીને દ્રવ્યશ્રુત હોય છે, અને (૨) નોઆગમને આશ્રિત કરીને દ્રવ્યશ્રુત હોય છે. તેની વ્યાખ્યા આવશ્યક સૂત્રમાં આગળ કહ્યા પ્રમાણે સમજવી. ॥ સૂ૦ ૩૩ ॥

હવે સૂત્રકાર આગમને આશ્રિત જે દ્રવ્યશ્રુત છે તેનું નીચે પ્રમાણે નિરૂપણ કરે છે—**"से किं तं आगमओ दव्वसुयं"** ઇત્યાદિ-

શબ્દાર્થ—(से किं तं आगमओ दव्वसुयं?) શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે—હે ભગવન્! આગમનો આશ્રય કરીને જે દ્રવ્યશ્રુત હોય છે, તે દ્રવ્યશ્રુતનું કેવું સ્વરૂપ છે ?

द्रव्यमिति कृत्वा, नैगमस्य खलु एकोऽनुपयुक्त आगमत एकं द्रव्यश्रुतं यावत् कस्मात् ? यदि ज्ञायकः अनुपयुक्तो न भवति । तदेतदागमतो द्रव्यश्रुतम् ।सू०३४।

टीका—'से किं तं आगमओ दव्वसुयं' इत्यादि । व्याख्या पूर्ववत् ॥सू०३४॥

इत्यागमतो द्रव्यश्रुतम् । अथ नो आगमतो द्रव्यश्रुतमाह—

मूलम्—से किं तं नो आगमओ दव्वसुयं ? नो आगमओ दव्वसुयं तिविहं पण्णत्तं, तं जहा—जाणयसरीरदव्वसुयं, भवियसरीरदव्वसुयं, जाणयसरीर—भवियसरीरवइरित्तं दव्वसुयं ।सू०३५।

उत्तरः—(आगमओ दव्वसुयं) आगम का आश्रय कर के द्रव्यश्रुत का स्वरूप इस प्रकार से है—(जस्स णं सुएत्ति पयं सिक्खियं ठियं जियं जाव णो अणुप्पेहाए) जिस साधु आदि को श्रुतपद शिक्षित है स्थित है जित है । यावत्पद से मित है, परिजित है नामसम है, घोषसम है, अहीनाक्षर है, अनत्यक्षर है, अव्याविद्धाक्षर (उलट पुलट पनेसे रहित) है, अस्खलित है, अमिलित है, अव्यत्याम्रेडित है, परिपूर्ण घोषवाला है, कण्ठोष्ठविप्रमुक्त है, और गुरुवाचनोपगत है । इसतरह वह साधु आदि वाचना से पृच्छनासे परिवर्तना (आवृत्ति)से और धर्मकथा से उसमें वर्तमान हैं परन्तु उपयोग से वर्तमान नहीं हैं, अतः उपयोग से रहित होने के कारण वह साधु आगम को आश्रित कर के द्रव्यश्रुत माना गया है । (कम्हा) क्योंकि (अणुवओगो दव्वमिति कट्टु) ऐसा आगम का वचन हैं कि जो उपयोग से रहित होता है वह द्रव्य माना जाता है । इसकी व्याख्या १४ वें सूत्र के समान जाननी चाहिये । सूत्र ॥ ३४ ॥

ઉત્તર—(आगमओ दव्वसुयं) આગમનો આશ્રય કરીને દ્રવ્યશ્રુતનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ છે—

(जस्स णं सुएत्ति पयं सिक्खियं ठियं जियं जाव णो अणुप्पेहाए) જે સાધુ આદિને શ્રુતપદ શિક્ષિત છે, સ્થિત છે, જિત છે, મિત છે, પરિજિત છે, નામસમ છે, ઘોષસમ છે, અહીનાક્ષર છે, અનત્યક્ષર છે, અવ્યાવિદ્ધાક્ષર અસ્ખલિત છે, અમિલિત છે, અવ્યત્યામ્રેડિત છે, પરિપૂર્ણ ઘોષયુકત છે, કંઠોષ્ઠ વિપ્રમુકત છે, અને ગુરુવાચનોપગત છે, આ રીતે તે સાધુ આદિ વાચનાથી, પરિવર્તનાથી પૃચ્છનથી, પરિવર્તનાથી અને ધર્મકથાથી તેમાં વર્તમાન છે, પરન્તુ ઉપયોગ પરિણામથી તેમાં વર્તમાન (પ્રવૃત્ત) નથી, અને તેથી ઉપયોગથી રહિત હોવાને કારણે તે સાધુને આગમની અપેક્ષાએ દ્રવ્યશ્રુત માનવામાં આવે છે; (कम्हा) કારણ કે (अणुवओगो दव्वमिति कट्टु) આગમનું એવું વચન છે કે જે ઉપયોગથી રહિત હોય છે— અનુપયુકત પરિણામવાળો હોય છે તેને દ્રવ્યરૂપ માનવો જોઇએ. આ સૂત્રમાં વપરાયેલાં પદોનો ભાવાર્થ ૧૪ માં સૂત્રમાં આપ્યા પ્રમાણે સમજવો. ॥ સૂ૦ ૩૪ ॥

छाया--अथ किं तद् नो आगमतो द्रव्यश्रुतम् ? नो आगमतो द्रव्य श्रुतं त्रिविधं प्रज्ञप्तम तद्यथा-ज्ञायकशरीरद्रव्यश्रुतम्, भव्यशरीरद्रव्यश्रुतम्, ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यश्रुतम् ॥सू० ३५॥

टीका--'से किं तं नोआगमओ दव्वसुयं' इत्यादि। व्याख्या पूर्ववत् ।सू०३५।

अथ ज्ञायकशरीरद्रव्यश्रुतमाह--

मूलम्—से किं तं जाणयसरीरदव्वसुयं ? जाणयसरीरदव्वसुयं सुयत्तिपयत्थाहिगारजाणयस्स जं सरीरयं ववगयचुयचाविय-चत्तदेहं तं चेव पुव्वभणियं भाणियव्वं जाव से तं जाणयसरीर-दव्वसुयं ॥ सू० ३६ ॥

अब सूत्रकार नोआगम को आश्रित करके द्रव्यश्रुत का कथन करते हैं—

"से किं तं नोआगमओ दव्वसुयं" इत्यादि । सूत्र ३५ ॥

शब्दार्थः (से किं तं) हे भदन्त ! नोआगम को आश्रित करके द्रव्यश्रुत का क्या स्वरूप है ? (नोआगमओ दव्वसुयं) नोआगम को आश्रित करके द्रव्यश्रुत (तिविहं पण्णत्तं) ३ तीन प्रकार का कहा है। (तं जहा) वे प्रकार ये हैं—(जाणयसरीरदव्वसुयं, भवियसरीरदव्वसुयं, जाणयसरीर—भवियसरीरवइरित्तं दव्वसुयं) ज्ञायकशरीरद्रव्यश्रुत, भव्यशरीरद्रव्यश्रुत, और ज्ञायकशरीरभव्यशरीर इन दोनों से व्यतिरिक्तद्रव्यश्रुत। इस सूत्र की व्याख्या पहिले कहे हुए १६ वें सूत्र की व्याख्या के अनुसार जाननी चाहिये। ॥ सू ३५ ॥

હવે સૂત્રકાર નોઆગમને આશ્રિત કરીને દ્રવ્યશ્રુતનું નિરૂપણ કરે છે—

"से किं तं नोआगमओ दव्वसुयं?" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(से किं तं) ઇત્યાદિ શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે કે હે ભદન્ત! નોઆગમને આશ્રિત કરીને દ્રવ્યશ્રુતનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર—(नोआगमओ दव्वसुयं तिविहं पण्णत्तं) નોઆગમને આશ્રિત કરીને દ્રવ્યશ્રુતના ત્રણ પ્રકાર કહ્યા છે. (तं जहा) તે ત્રણ પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે (जाणयसरीरदव्वसुयं, भवियसरीरदव्वसुयं, जाणयसरीरवइरित्तं दव्वसुयं) (૧) જ્ઞાયક શરીર દ્રવ્યશ્રુત, (૨) ભવ્યશરીર દ્રવ્યશ્રુત, અને (૩) જ્ઞાયક શરીર અને ભવ્યશરીરથી ભિન્ન એવું દ્રવ્યશ્રુત આ સૂત્રની વ્યાખ્યા આગળ ૧૬ માં સૂત્રની જે વ્યાખ્યા આપવામા આવી છે, તે વ્યાખ્યા પ્રમાણે સમજવી. ॥ સૂ૦ ૩૫ ॥

छाया--अथ किं तद् ज्ञायकशरीरद्रव्यश्रुतम् ? ज्ञायकशरीरद्रव्यश्रुतं-श्रुतेति पदार्थाधिकारज्ञायकस्य यत् शरीरकं व्यपगतच्युतच्यावितत्यक्तदेहं तदेव पूर्वभणितं भणितव्यं यावत, तदेतत् ज्ञायकशरीरद्रव्यश्रुतम् ॥सू० ३६॥

टीका-'से किं तं जाणयसरीरदव्वसुयं' इत्यादि। व्याख्या पूर्ववत् ॥सू० ३६॥

ज्ञायकशरीर द्रव्यश्रुत का क्या स्वरूप है-इस बात को सूत्रकार स्पष्ट करते हैं-"से किं तं जाणयसरीरदव्वसुयं" इत्यादि ॥सू० ३६॥

शब्दार्थ—(से किं तं जाणयसरीरदव्वसुयं) हे भदन्त (ज्ञायकशरीर द्रव्य श्रुत का क्या स्वरूप है?

उत्तर--(सुयत्तिपयत्थाहिगारजाणयस्स) श्रुत शब्द वाच्य आगम के अर्थ रूप अधिकार के ज्ञाता का ऐसा (सरीरयं) शरीर (जं) जो (ववगयचुय चावियचत्तदेहं) व्यपगत-चैतन्य पर्याय से रहित हो चुका है, च्युत-दश प्रकार के प्राणों से परिवर्जित हो गया है, च्यावित-बलिष्ठ आयुक्षय के कारणों से प्राण रहित हो गया है। त्यक्तदेह आहार परिणति जनित वृद्धि जिससे सर्वथा निकल चुकी है (जाणयसरीरदव्वसुयं) ज्ञायकशरीर द्रव्यश्रुत है। (तं चेव पुव्वभणियं) यहां पर १७ वें सूत्र कथित इस विषय संबन्धी इस व्यपगत आदि पाठ से आगे (जाव से तं जाणयसरीरदव्वसुयं) ज्ञायकशरीर द्रव्यश्रुत का पाठ (भाणियव्वं) ग्रहण करलेना चाहिये। इसकी (व्याख्या १७ वें सूत्र में कही गई हैं। ॥ सूत्र ३६ ॥

હવે સૂત્રકાર જ્ઞાયકશરીર દ્રવ્યશ્રુતના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે—

"से किं तं जाणयसरीरदव्वसुयं" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(से किं तं जाणयसरीरदव्वसुयं?) શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે હે ભગવન્! જ્ઞાયકશરીર દ્રવ્યશ્રુતનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર—(सुयत्ति पयत्थाहिगारजाणयस्स) શ્રુત શબ્દના વાચક એવા આગમના અર્થરૂપ અધિકારના જ્ઞાતાનું (सरीरयं) શરીર (जं) કે જે (ववगयचुय चावियचत्तदेहं) વ્યપગત થઇ ચુકયું છે ચૈતન્ય પર્યાયથી રહિત થઇ ચુકયું છે, ચ્યુત થઇ ચુકયું છે દસ પ્રકારના પ્રાણોથી રહિત થઇ ચુકયું છે, ચ્યાવિત થઇ ચુકયું છે, બલિષ્ઠ આયુક્ષયના કારણોથી પ્રાણરહિત થઇ ચુકયું છે, ત્યકતદેહ થઇ ચુકયું છે આહાર પરિણતિ જનિત વૃદ્ધિ જેમાંથી સર્વથા નીકળી ચુકી છે (जाणयसरीरदव्वसुयं) એવાં શરીરને 'જ્ઞાયકશરીર દ્રવ્યશ્રુત' રૂપ કહેવામાં આવે છે. (तं चेव पुव्वं भणियं) અહીં ૧૭માં સૂત્રમાં કથિત આ વિષય સંબંધી આ વ્યપગત આદિ પદથી શરૂ કરીને (जाव से तं जाणयसरीरदव्वसुयं) જ્ઞાયકશરીર દ્રવ્યશ્રુત પર્યન્તનો પાઠ (भाणियव्वं) ગ્રહણ કરવો જોઇએ. તેની વ્યાખ્યા ૧૭માં સૂત્રની વ્યાખ્યા પ્રમાણે સમજવી જોઇએ. ॥ સૂ૦ ૩૬ ॥

अथ भव्यशरीरद्रव्यश्रुतं निरूपयितुमाह—

मूलम्—से किं तं भवियसरीरदव्वसुयं ? भवियसरीरदव्वसुयं जे जीवे जोणी जम्मण निक्खंते जहा दव्वावस्सए तहा भाणियव्वं जाव, से तं भवियसरीरदव्वसुयं ॥ सू० ३७ ॥

छाया—अथ किं तद् भव्यशरीरद्रव्यश्रुतम् ? भव्यसरीरद्रव्यश्रुतं यो जीवो योनिजन्मनिष्क्रान्तो यथा द्रव्यावश्यके तथा भणितव्यं यावत तदेतद् भव्यशरीरद्रव्यश्रुतम् ॥सू० ३७॥

अब सूत्रकार भव्यशरीर द्रव्यश्रुत का निरूपण करते हैं—

"से किं तं भवियसरीरदव्वसुयं" इत्यादि ।॥ सूत्र ३७ ॥

शब्दार्थः—(से) हे भदन्त ! (तं) पूर्वप्रक्रान्त (भवियसरीरदव्वसुयं) भव्यशरीरद्रव्यश्रुत का (किं) क्या स्वरूप है ?

उत्तरः—(जे जीवे जो णीजम्मणनिक्खंते) जो जीव उत्पत्तिस्थानरूप योनि से अपना समय पूर्ण करके निकला है—गर्भपात से उत्पन्न नहीं हुआ है किन्तु जन्मा है ऐसा वह जीव उस प्राप्त शरीर से जिनोपदिष्टभाव के अनुसार श्रुत शब्द वाच्य आगम के अर्थ को भविष्य में सीखेगा—वर्तमानकाल में सीख नहीं रहा है ऐसा शरीर भव्यशरीर द्रव्यश्रुत है। (जहा दव्वावस्सए तहा भाणियव्वं जाव से तं भवियसरीरदव्वसुयं) इस विषय से लगता हुआ वर्णन जिस प्रकार से द्रव्यावश्यक के वर्णन में किया गया है उसी प्रकारका वर्णन यहां भी समझना चाहिये। और यह वर्णन यह "भव्यशरीर द्रव्यश्रुत है'

હવે સૂત્રકાર ભવ્યશરીર દ્રવ્યશ્રુતનું નિરૂપણ કરે છે—

"से किं तं भवियसरीरदव्वसुयं" ઇત્યાદિ

શબ્દાર્થ—(से) શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે (तं) પૂર્વપ્રસ્તુત વિષયરૂપ (भवियसरीरदव्वसुयं) ભવ્યશરીરદ્રવ્યશ્રુતનું (किं) કેવું સ્વરૂપ છે ?

ઉત્તર (जे जीवे जोणीजम्मणनिक्खंते) જે જીવ ઉત્પત્તિ સ્થાનરૂપ યોનિમાંથી પોતાનો સમય (ગર્ભમાં રહેવાનો સમય) પૂરો કરીને નીકળ્યો છે ગર્ભપાતથી ઉત્પન્ન થયા નથી એવો તે જીવ તે પ્રાપ્ત શરીર વડે વર્તમાનકાળે શ્રુત શબ્દવાચ્ય આગમના અર્થને શીખી રહ્યો નથી પણ ભવિષ્યમાં આગમના અર્થને શીખવાનો છે. એવા તે જીવના શરીરને ભવ્યશરીર દ્રવ્યશ્રુત રૂપ ગણવામાં આવે છે. (जहा दव्वावस्सए तहा भाणियव्वं जाव से तं भवियसरीरदव्वसुयं) ૧૮માં સૂત્રમાં દ્રવ્યાવશ્યકના વિષયને અનુલક્ષીને જેવું વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે. એવું વર્ણન અહીં પણ ગ્રહણ કરવું જોઇએ. "તેને ભવ્યશરીર દ્રવ્યશ્રુત કહે છે" આ

टीका--'से किं तं भवियसरीरदव्वसुयं' इत्यादि। व्याख्या पूर्ववत् ।सू०३७।
अथ-ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यश्रुतमाह--

मूलम्--से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं दव्वसुयं ? जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं दव्वसुयं पत्तयपोत्थयलिहियं ।

अहवा जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं दव्वसुयं पंचविहं पण्णत्तं, तं जहा-अंडयं१ बोंडयं२ कीडयं ३ वालयं४ वागयं५ । (तत्थ) अंडयं हंसगब्भादि बोंडयं कप्पासमाइ । कीडयं पंचविहं पण्णतं, तंजहा-पट्टे मलए अंसुए चीणंसुए, किमिरागे । वालयं पंचविहं पण्णत्तं, तं जहा-उण्णिए, उट्टिए, मियलोमिए, कोतवे, किट्टिसे । वागयं सणमाइ । से तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं दव्वसुयं । से तं नो आगमओ दव्वसुयं । से तं दव्वसुयं॥सू०३८॥

छाया—अथ किं तद् ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यश्रुतम् ? ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यश्रुतं पत्रकपुस्तकलिखितम् ।

यहां तक जानना चाहिये। इसकी व्याख्या १४ वें सूत्र के अनुसार ही जाननी चाहिये। ॥ सूत्र ३७ ॥

अब सूत्रकार ज्ञायकशरीरभव्यशरीर इन दोनों से भिन्न जो तद्व्यतिरिक्त द्रव्यश्रुत हैं इसका स्वरूप कहते हैं—

"से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं दव्वसुयं" इत्यादि ॥ सूत्र ३८ ॥

शब्दार्थः-(से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं दव्वसुयं) शिष्य

સૂત્રપાઠ પર્યન્તનું 'भव्यशरीर द्रव्यावश्यक' સૂત્રનું સમસ્ત કથન અહીં પણ ગ્રહણ કરવું જોઇએ તેની વ્યાખ્યા પણ ૧૮માં સૂત્રની વ્યાખ્યા પ્રમાણે જ સમજવી. ॥સૂ૦૩૭॥

જ્ઞાયકશરીર અને ભવ્યશરીર આ બન્નેથી ભિન્ન એવું જે 'તદ્વ્યતિરિક્ત દ્રવ્યશ્રુત' છે તેના સ્વરૂપનું હવે સૂત્રકાર નિરૂપણ કરે છે

"से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं दव्वसुयं" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं दव्वसुयं ?) શિષ્ય

अथवा-ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यसूत्रं पञ्चविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-अण्डजं, बोण्डजं, कीटजं, वालजं, वाल्कलम्। (तत्र) अण्डजं हंसगर्भादि. बोण्डजं कर्पासादि, कीटजं पञ्चविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-पट्टं, मलयम्, अंशुकं, चीनांशुकं, कृमिरागम्, वालजं पञ्चविधं प्रज्ञप्तम्-तद्यथा और्णिकम् औष्ट्रिकम्, मृगलौमिकम्, कौतवम्, किट्टिसम्। वाल्कलं शणादि। तदेतद् ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यश्रुतम्। तदेतद् नोआगमतो द्रव्यश्रुतम्। तदेतद् द्रव्यश्रुतम् ॥सू०३८॥

टीका—शिष्यः पृच्छति-'से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं दव्वसुयं' इति। अथ किं तद् ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यश्रुतम् ? इति। उत्तरमाह-'जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं दव्वसुयं' इत्यादि। ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यश्रुतम्, पत्रकपुस्तकलिखितम्- पत्रकाणि=तालपत्रादीनिच पुस्तकानि=पत्रसङ्घातरूपाणि च तेषु लिखितम्। यद्वा-'पत्तयपोतयलिहियं' इतिपाठस्य 'पत्रकपोतकलिखितम्' इतिच्छाया। तत्र-पोतकानि=वस्त्राणि। पत्रकेषु पुस्तकेषु वस्त्रकेषु च लिखितं ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यश्रुतम्।

पूछता है कि हे भदन्त! ज्ञायकशरीर और भव्यशरीर इन दोनों से भिन्न जो द्रव्यश्रुत है उसका क्या स्वरूप है?

उत्तरः-'पत्तयपोत्थयलिहियं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं दव्वसुयं) ताडपत्रों और पत्रों के संघातरूप पुस्तकों में लिखा हुआ जो श्रुत हैं वह ज्ञायकशरीर और भव्यशरीरव्यसिरिक्त द्रव्यश्रुत हैं ऐसा जानना चाहिये। सूत्रकार (अहवा) अथवा-पक्ष से कहते हैं "पत्तयपोतयलिहियं" इस पाठकी संस्कृत छाया पत्रकपोतकलिखित', ऐसी भी होती है इस पक्ष में पोतकशब्द का अर्थ वस्त्र है, और पत्रक शब्द का अर्थ पुस्तक। इस प्रकार वस्त्रों के ऊपर और पुस्तकरूप कागजों के ऊपर लिखा गया श्रुत ज्ञायकशरीर और भव्यशरीर

ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે હે ભદન્ત! જ્ઞાયકશરીર અને ભવ્યશરીર. આ બન્નેથી ભિન્ન એવું જે દ્રવ્યશ્રુત છે તેનું કેવું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર-(पत्तयपोत्थयलिहिय जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं दव्वसुयं) તાડપત્રો અને પત્રોના સમૂહરૂપ પુસ્તકોમાં લખેલું જે શ્રુત છે તેને જ્ઞાયકશરીર અને ભવ્યશરીર વ્યતિરિક્ત દ્રવ્યશ્રુત કહે છે. (अहवा) અથવા "पत्तयपोत्थयलिहिय" આ સૂત્રાંશની સંસ્કૃત છાયાની દૃષ્ટિએ વિચાર કરવામાં આવે તો આ સૂત્રપાઠનો નીચે પ્રમાણે અર્થ થશે-

"પોતક" એટલે વસ્ત્ર, અને 'પત્રક" એટલે પુસ્તક આ રીતે શબ્દનો અર્થ કરતા દ્રવ્યશ્રુતનો નીચે પ્રમાણે અર્થ પણ થઈ શકે છે વસ્ત્રો ઉપર અને પુસ્તક રૂપ કાગળો પર લખેલા શ્રુતને જ્ઞાયકશરીર અને ભવ્યશરીરથી ભિન્ન એવું દ્રવ્ય-

पत्रकादिलिखितस्य श्रुतस्य उपयोगरहितत्वात् द्रव्यत्वं बोध्यम्। आगमो हि ज्ञानं, तस्य कारणम्—आत्मा—देहः शब्दश्चैतत्त्रयं, तदभावात् तस्य नोआगमत्वं विज्ञेयम्, अपि च—पत्रकपुस्तकलिखितस्य अचेतनत्वाद् ज्ञानरूपताभावाच्च नोआगमत्वम्। इह 'सुय' इत्यस्यार्षत्वात् सूत्रमिति छायापक्षे प्राह—'अहवा' इत्यादि। अथवा ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यसूत्रं पञ्चविधं प्रज्ञप्तम्। तद्यथा—अण्डजम्१, बोण्डजम्२, कीटजम्३, वालजम्४, वाल्कलम्५,

तत्र पञ्चविधद्रव्यसूत्रमध्ये प्रथमं भेदं प्ररूपयति—'अंडयं हंसगब्भादि' इति। अण्डजं हंसगर्भादि, इह हंसशब्देन चतुरिन्द्रियो जीवविशेषो गृह्यते, तस्य

से व्यतिरिक्त द्रव्यश्रुत है। पत्रक आदि पर लिखे हुए श्रुत में उपयोग से रहित होने के कारण द्रव्यत्व है। आगम नाम ज्ञान का है। इस के कारण आत्मा, देह और शब्द कारणभूत होते हैं। इनका अभाव होने पर उसमे नोआगमता है। अपि च—पत्रक पुस्तक आदि में लिखित श्रुत में अचेतनता होने के कारण ज्ञानरूपता का अभाव है इसलिये भी उसमें नोआगमता है। तथा जब "सुय" पद की छाया 'सूत्र' ऐसी होती है तब उस पक्ष में क्या इस का अर्थ होता है इसे (जाणयसरीरभविय सरीरवइरित्तं दव्वसुयं पंचविहं पण्णत्तं) वे कहते हैं कि ज्ञायक शरीर और भव्यशरीर इन से भिन्न जो द्रव्यसूत्र है वह पांच प्रकार का है—(त जहा) वे प्रकार ये है (अंडयं,१ बोंडयं२, कीडयं३, वालयं४, वागयं५,) अण्डज बोण्डज, कीटज, वालज और वाल्कल। (तत्थ) इन में (अण्डयं) अंडज का तात्पय इस प्रकार से हैं (हंस

श्रुत કહે છે." કાગળ આદિ પર લખાયેલા શ્રુતમાં ઉપયોગથી રહિતતા હોવાને કારણે દ્રવ્યત્વ છે. જ્ઞાનને આગમ કહે છે તે આગમરૂપ જ્ઞાનમાં આત્મા; દેહ અને શબ્દ કારણભૂત બને છે. તેમનો જ્યાં અભાવ હોય ત્યાં આગમતાનો સદ્ભાવ હોતો નથી પણ નોઆગમતાનો સદ્ભાવ રહે છે. તાડપત્ર પુસ્તક આદિમાં લખેલા શ્રુતમાં અચેતનતા હોવાથી જ્ઞાનરૂપતાનો અભાવ હોય છે, તે કારણે તે શ્રુતમાં નોઆગમતા રહેલી છે.

જ્યારે "सुयं" આ પદની સંસ્કૃત છાયા "सूत्र" 'સૂત્ર' થાય છે, ત્યારે તેનો શો અર્થ થાય છે તે હવે સૂત્રકાર પ્રકટ કરે છે- (जाणयसरीरभवियसरीरवइरितं दव्वसुयं पंचविहं पण्णत्तं) તેઓ કહે છે કે જ્ઞાયકશરીર દ્રવ્યશ્રુત અને ભવિયશરીર દ્રવ્યશ્રુતથી ભિન્ન એવું જે દ્રવ્યસૂત્ર ('दव्वसुय')ની સંસ્કૃત છાયા "द्रव्यसूत्र"ને આધારે આ પદ બન્યું છે) છે તે પાંચ પ્રકારનું કહ્યું છે- (तंजहा) જે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે-(अंडयं बोंडयं कीडयं वागयं) (૧) અંડજ, (૨) બોંડજ, (૩) કીટજ, (૪) બાલજ અને (૫) વાલ્કલ (तत्थ अण्डयं हंसगब्भादि)

गर्भः=तन्निर्मिता कोशिका 'कोथली' इति प्रसिद्धा तदुत्पन्नं सूत्रमण्डजमुच्यते, 'रेशमी' इति भाषाप्रसिद्धम्। आदिशब्दश्चतुरिन्द्रियभेदं प्रदर्शयति। ननु यदि हंसगर्भोत्पन्नं सूत्रमण्डजमुच्यते तर्हि 'अंडयं हंसगब्भादि' इति सामानाधिकरण्यं नोपपद्यते इति चेदुच्यते, कारणे कार्योपचारात् हंसगर्भोत्पन्नं सूत्रमपि-हंसगर्भ इत्युच्यते इति नास्ति कोऽपि दोषः ॥१॥

अथ द्वितीयभेदं प्ररूपयति-'बोंडयं कप्पासमाइ' इति। बोण्डजं कार्पासादिं' कार्पासनिष्पन्नं सूत्रं बोण्डजं-बोण्डं=कार्पासकोशः फलविशेषरूपस्तज्जातं

गब्भादि) 'हंस' एक चतुरिन्द्रिय जीव विशेष होता है। वह एक कोथली बनाता है। इससे उत्पन्न जो सूत्र होता है उसका नाम अंडज है। इसे भाषा में रेशमी वस्त्र कहते हैं। हंसगर्भ में जो आदि शब्द है वह चौइन्द्रियों के भेद का प्रदर्शक है।

शंकाः- यदि हंसगर्भ से उत्पन्न सूत्र अंडज कहलाता है तो "अंडयं हँस गब्भादि" में समानाधिकरणता नहीं बन सकती है, सो उसका उत्तर इस प्रकार से है कि यहां पर कारण में कार्यका उपचार किया गया है। इसलिये हँस के गर्भ कोथली से उत्पन्न हुए सूत्रको भी हंसगर्भ के नाम से कह दिया है। इसतरह के कथन में कोई दोष नहीं है। (बोंडयं कप्पासमाइ) कपास से बने हुए सूत्रका नाम बोण्डज है। बोण्ड नाम कपास के कोशका है। कपास का कोश एक प्रकारका फल होता है। जिसमें से कपास निकलता

પહેલાં તો અંડજનો ભાવાર્થ બતાવવામાં આવે છે. "હંસ" એક ચતુરિન્દ્રિય જીવ-વિશેષનું નામ છે. (અહીં હંસ નામનું પક્ષી ગૃહીત થયું નથી પણ પતંગીયા જેવું કોઇ ચતુરિન્દ્રિય જંતુ ગૃહીત થયું છે.) તે એક કોથળી (કોશ) બનાવે છે તેમાંથી જે સૂત્ર ઉત્પન થાય છે તેને 'અંડજ' કહે છે. તેને ગુજરાતી ભાષામાં રેશમી વસ્ત્ર કહે છે. 'હંસગર્ભ' આ પદની પાછળ જે 'આદિ' પદ મૂકવામાં આવ્યું છે તે ચૌઇન્દ્રિયોના ભેદનું પ્રદર્શક છે.

શંકા—જો હંસગર્ભમાંથી ઉત્પન્ન થયેલા સૂત્રને અંડજ સૂત્ર કહેવામાં આવે તો "अंडयं हंसगब्भादि"માં સમાનાધિકરણતા ઘટિત થતી નથી.

ઉત્તર—અહીં કારણમાં કાર્યનો ઉપચાર કરવામાં આવ્યો છે. તે કારણે હંસના ગર્ભમાંથી (કોશમાંથી) ઉત્પન્ન થયેલા સૂત્રને પણ અહીં હંસગર્ભના નામે પ્રકટ કરવામાં આવેલ છે. આ કારણે આ પ્રકારના કથનમાં કોઇ દોષ નથી.

(बोंडयं कप्पासमाइ) કપાસ અથવા રૂમાંથી બનેલા બોંડજ છે. "બોંડ" આ પદ કપાસના કોશરૂપ ફાલાને માટે વપરાય છે. આ કપાસમાંથી જે સૂત્ર બને છે તેને બોંડજ કહે છે. (હિન્દીમાં ફાલાને 'बोडियाँ' કહે છે) અહીં આદિ પદ

बोण्डजसूत्रं ते। इहाप्यादि शब्दः प्रकारवाची। फलस्य प्रकारो भेदः कर्पास इति बोधयितुमादि शब्दः प्रयुक्त इति। अत्रापि कार्ये कार्योपचारात् कर्पासं बोंडजमिति सामानाधिकरण्यम्।

अथ तृतीयभेदमाह-'कीडयं पंचविहं पण्णत्तं' इति। कीटजं पञ्चविधं प्रज्ञप्तम्-कीटजं=कीटात् चतुरिन्द्रिय जीवविशेषाज्जातं सूत्रं पञ्चप्रकारकं प्रज्ञप्तं=प्ररूपितम्। पञ्चप्रकारत्वमेव स्पष्टयति-'तं जहा' इत्यादि। तद्यथा-पट्टं=पट्टसूत्रम्, पट्टसूत्रोत्पत्तिविषये एवं वृद्धसम्प्रदायः-अरण्ये निकुञ्जमध्ये मांसचीडादिरूपाग्निपुञ्जाः स्थाप्यन्ते। तेषां पुञ्जानां पार्श्वतो निम्ना उन्नताश्च सान्तरा बहवः

है। इस कपास के बने हुए सूत्र को बोण्डज कहा जाता है। यहां आदि शब्द प्रकारवाची है। कपास से फलका भेद है। यह भेद कपास है। इस बातको समझाने के लिये यहां आदि शब्द प्रयुक्त हुआ है। यहां भी कारण में कार्य के उपचार से बोण्डज सूत्रको कपास कह दिया है। इसलिये समानाधिकरणता बनने में कोई दोष नहीं है। (कीडयं पंचविहं पण्णत्तं) कीटज सूत्र पांच प्रकारका कहा गया है। चौइन्द्रिय जीव विशेष का नाम कीट है। उस से उत्पन्न जो सूत्र होता है वह पांच प्रकार का होता है। (तंजहा) जैसे-"पट्टे मलए अंसुए चीणंसुए किमिरागे" पट्ट, मलय, अंशुक चीनांशुक और कृमिराग। पट्ट से यहां पट्ट सूत्र लिया गया है। इस पट्टसूत्र की उत्पत्ति के विषय में वृद्ध परम्परा से ऐसी बात सुनने में आती है-जंगल में एक निकुंज लतापिहित प्रदेश होता है। इस में मांसचीडादि रूप अग्निपुंज रख दिये जाते हैं-।

પ્રકારવાચક છે. કપાસ અને કાલા વચ્ચે ભેદ છે. કાલું એક પ્રકારના ફલ રૂપ છે જ્યારે કપાસ તેમાંથી નીકળતી વસ્તુરૂપ છે. આ વાતને સમજાવવાને માટે અહીં આદિ શબ્દ વપરાયો છે. અહીં પણ કહેવામાં આવેલ છે. તેથી સમાનાધિકરણતા ઘટિત થવામાં કોઇ દોષ રહેતો નથી.

(कीडयं पंचविहं पण्णत्तं) કીટજ સૂત્ર પાંચ પ્રકારના કહ્યાં છે. ચતુરિન્દ્રિય જીવવિશેષ (રેશમના કીડા આદિ જીવો)ને કીટ (કીડો કહે છે. તેની લાળ આદિ માંથી બનેલું જે સૂત્ર હોય છે તેને કીટજ સૂત્ર કહે છે (तंजहा) કીટજ સૂત્રના પાંચ પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે (पट्टे, मलए, अंसुए, चीणंसुए, किमिरागे) (૧) પટ્ટ (૨) મલય, (૩) અંશુક, (૪) ચીનાંશુક અને (૫) કૃમિરાગ.

'पट्ट' આ પદથી અહીં પટ્ટસૂત્ર ગ્રહણ થયું છે. આ પટ્ટ સૂત્રની ઉત્પત્તિના વિષયમાં વૃદ્ધ પરમ્પરાની અપેક્ષાએ આ પ્રકારની વાત પ્રચલિત છે-જંગલમાં કોઇ એક નિકુંજમાં (વૃક્ષ અને લતાઓના સમૂહથી યુકત સ્થાનને નિકુંજ કહે છે)

कीलका निखन्यन्ते। मांसलोलुपाः पतङ्गकीटाः मांसचीडादिकमभितः समायान्ति। ते हि कीलकान्तरेषु इतस्ततः परिभ्रमन्तो लालाः प्रमुञ्चन्ति। ताश्च कीलकेषु लग्नाः परिगृह्यन्ते। ततस्ताभिः पट्टसूत्रं निर्मीयते ॥१॥ मलय=मलयदेशोत्पन्नं सूत्रम् ॥२॥ अंशुकम्=चीनदेशबहिर्भागे समुत्पन्नं सूत्रम् ॥३॥ चीनांशुकम्=चीनदेशाभ्यन्तरभागे समुत्पन्नं सूत्रम् ॥४॥ कृमिरागं=कृमिरागं=कृमिरागसूत्रम्। अत्र विषये एवं श्रूयते-कस्मिंश्चिद्देशे मनुष्यादिशोणितं गृहीत्वा केनापि योगेन योजयित्वा पात्रे स्थाप्यते। तच्च सच्छिद्रपात्रेणाच्छाद्यते। तत्र-पुनः प्रभूताः कृमयः समुत्पद्यन्ते। ते पवनसेवनाभिलाषिणः पात्रच्छिद्रान्निर्गच्छन्ति आसन्नप्रदेशे पर्यट-

---

उन आमिष पुंजों को आजूबाजू में नीचीऊंची कुछ अन्तर से अनेक कीलें गाढ दी जाती हैं। वहां मांस के लोभी अनेक पतंग कीडे उस मांस चीडादिक की चारों ओर आते हैं।-और उन कीलों के आसपास घूम कर अपनी लारको छोडते हैं। उनकी लों पर लगी हुई उनकी लारोंको फिर लोग एकांत्रत कर के उनसे पट्टसूत्र बनाते हैं। मलयदेश में उत्पन्न हुए सूत्रका नाम मलय है। चीनदेश के बाहर उत्पन्न हुए सूत्रका नाम अंशुक हैं। चीनदेश के भीतर बने हुए सूत्रका नाम चीनांशुक है। कृमिराग सूत्र के विषय में ऐसी बात सुनी जाती है कि किसी देश में मनुष्य आदिका रक्त ले कर लोग उसे पात्र में किसी भी तरह जमाते हैं। और फिर उस पात्र के मुँहको छिद्रोंवाले ढकने से ढक देते हैं। उसमें धीरे कीडे उत्पन्न हो जाते हैं। वह जब वायुसेवन की इच्छा से सच्छिद्रढक्कन से होकर

માંસ આદિરૂપ આમિષપુંજ પાથરી દેવામાં આવે છે. ત્યાં તે માંસપુંજોની આસપાસ થોડે થોડે અંતરે નીચી ઊંચી અનેક ખીલીઓ ચોડી દેવામાં આવે છે. અનેક પતંગીયાઓ (કીડાઓ) માંસથી આકર્ષિત થઇને તે ખાવાની ઇચ્છાથી તે માંસપુંજોની ચારે તરફ આવે છે. અને માંસનું ભક્ષણ કરીને તે ખીલાઓની આસપાસ ભમીભમીને પોતાની લાળ તે ખીલાઓ પર છોડે છે. તે ખીલાઓ પર એકત્ર થયેલી લાળને એકત્ર કરી લઇને લોકો તેમાંથી પટ્ટસૂત્ર બનાવે છે.

મલયદેશમાં ઉત્પન્ન થયેલા સૂત્રને મલયસૂત્ર કહે છે. ચીન દેશની બહારના પ્રદેશોમાં બનેલા સૂત્રને અંશુક કહે છે. ચીન દેશની અંદરના ભાગોમાં બનેલા સૂત્રને ચીનાંશુક કહે છે. કૃમિરાગસૂત્ર વિષે આ પ્રકારની માન્યતા પ્રચલિત છે કોઇ મનુષ્ય આદિના રકતને એકત્ર કરીને કોઈ એક પાત્રમાં જમાવી દે છે. ત્યાર બાદ તે પાત્ર પર છિદ્રાળું આચ્છાદન ઢાંકી દે છે. તેમાં ધીરે ધીરે કીટરાશિ ઉત્પન્ન થઇ જાય છે. તે હવા ખાવાની ઇચ્છાથી તે સછિદ્ર આચ્છાનમાંથી બહાર નીકળીને

न्तस्ते लालजालं मुञ्चन्ति। तेन निष्पन्नं सूत्रं कृमिरागमुच्यते। तच्च रक्तवर्ण-कृमिसमुत्पन्नत्वात् स्वाभाविकरक्तवर्णं भवति।

अथ बालजसूत्ररूपं चतुर्थभेदं प्ररूपयति—'बालयं' इत्यादि। बालजं=बालाः =रोमाणि बालेभ्यः=ऊरणिकादि लोमभ्यो जातम् तत् पञ्चविधं प्रज्ञप्तम्=प्ररूपितम्, तद्यथा—और्णिकम्—ऊर्णाया इदमौर्णिकम् मेष रोमनिष्पन्नम् ॥१॥ औष्ट्रिकम्-उष्ट्राणामिदम्, औष्ट्रिकम्-उष्ट्रोमनिष्पन्न सूत्रम् ॥२॥ मृगलौमिकम्-मृगरोममिर्निष्पन्नं, मृगलौमिकम्। मृगसदृशा मृगेभ्यो ह्रस्वाकारा आरण्यजीवविशेषा इह मृग शब्देन विवक्षिताः, तेषां रोमभिर्निष्पन्नं सूत्रं मृगलौमिकम् ॥३॥ कौतवम्—उन्दुररोमनिष्पन्नं सूत्रम् ॥४॥ किट्टिसम्—और्णिकादिसूत्रनिर्माणानन्तरं यदवशिष्टं

बाहर निकलते हैं तो वह आसपास के प्रदेश में घूमते हुए वहां अपनी लार छोडते हैं। इस लार से जो सूत्र बनता है वह कृमिराग सूत्र कहलाता है। इसकी रक्तवर्णवाले कृमियों से उत्पन्न होने के कारण वर्ण स्वभावतः लाल रहता है। (बालयं पंचविहं पण्णत्तं) भेड आदि के बालों से उत्पन्न हुवा सूत्रका नाम बालज सूत्र है। यह भी पांच प्रकारका है— (तंजहा) जैसे—(उण्णिए) मेप आदि के रोम से उत्पन्न हुआ सूत्र और्णिक (उट्टिए) उष्ट्र के रोम से उत्पन्न हुआ सूत्र औष्ट्रिक (मियलोमिए) मृग के रोम से उत्पन्न हुआ सूत्र मृगलोमिक (कोतवे) चूहे के रोम से उत्पन्न हुआ सूत्र कौतव, (किट्टि से) और्णिक आदि सूत्रों के निर्माण करते समय जो बाल इधरउधर गिर जाते हैं उसका नाम किट्टिस है। इस किट्टिस से जो सूत्र बनाया

તે પાત્રની આસપાસ ભમવા માંડે છે અને તે પાત્ર પર પોતાની લાળ છોડયા કરે છે. તે લાળને લોકો એકત્ર કરી લે છે, અને તેમાંથી જે સૂત્ર બનાવવામાં આવે છે તેને કૃમિરાગસૂત્ર કહે છે. લાલવર્ણવાળા કૃમીઓમાંથી ઉત્પન્ન થવાને કારણે તેના રંગમાં સ્વાભાવિક રતાશનો સદ્ભાવ હોય છે.

(बालयं पंचविहं पण्णत्तं) ઘેટાં આદિના વાળમાંથી ઉત્પન્ન થયેલા સૂત્રનું નામ 'બાલજસૂત્ર' છે. તેના પણ પાંચ પ્રકાર છે (तंजहा) જેમ કે उण्णिए) (૧) ઔર્ણિક–ઘેટાં આદિના વાળમાંથી બનેલા સૂત્રને ઔર્ણિક (ઉનનું બનેલું) સૂત્ર કહે છે. (उट्टिए) (૨) ઔષ્ટ્રિક ઊંટના વાળમાંથી ઉત્પન્ન થયેલા સૂત્રને 'ઔષ્ટ્રિકસૂત્ર' કહે છે (मियलोमिए) મૃગના વાળમાંથી બનાવેલા સૂત્રને 'મૃગલોમિકસૂત્ર' કહે છે. (कोतवे) (૪) ઉંદરની રંવાટીમાંથી બનાવેલા સૂત્રને કૌતવ સૂત્ર કહે છે. (किट्टिए) (૫) આરણિક આદિ સૂત્રોનું નિર્માણ કરતી વખતે જે વાળ ઉડીને આમતેમ જઈ પડયાં હોય છે તે વાળને 'કિટ્ટિસ' કહે છે. કિટ્ટિસમાંથી (વેસ્ટમાંથી જે સૂત્ર બના-

तत् किट्टिसं तन्निष्पन्नं सूत्रमपि किट्टिसमुच्यते । यद्वा—और्णिकादीनां सूत्राणां द्व्यादिसंयोगेन निष्पन्नं सूत्रं किट्टिसम् । अथवा—पूर्वोक्तातिरिक्ता येऽश्वादयो जीवास्तल्लोमनिष्पन्नं सूत्रं किट्टिसम् ।५॥

अथ पञ्चमं भेदमाह='वागयं सणमाइ' इति । वालकलं सणादि—सणादि निष्पन्नं सूत्रं वालकलम् ।

ननु श्रुतप्रकरणे प्रस्तुते किमर्थं सूत्रप्ररूपणम् इति चेदुच्यते, प्राकृते—'सुय' शब्देन श्रुतस्य, आर्षत्वात्सूत्रस्य च ग्रहणात् समानशब्दप्रतिपाद्यत्वरूपसाम्यादिदमपि प्ररूपयतीति नास्ति कश्चिद्दोषः, प्रसंगतः शिष्यबुद्धिवैशद्यार्थं सूत्रस्वरूपं

जाता से वह किट्टिस सूत्र से । अथवा और्णिक आदि सूत्रों के अब दुहरा तिहरा— दो तारवाला तीन तारवाला आदि रूपमें करके जो सूत्र बनाया जाता है उसका नाम किट्टिस है । अपना इन मेष आदि जीवों से अतिरिक्त जो अश्व आदि जीव हैं, उनके रोमों से निष्पन्न हुआ सूत्र किट्टिस है ।(वागयं सणमाइ) सन आदि है जो सूत्र बनता है उसका नाम वालकल वल्वज सूत्र हैं ।

शंका—यहां तो श्रुत का प्रकरण प्रस्तुत है फिर किस कारण यहां सूत्र की प्ररूपणा सूत्रकार ने की ?

उत्तर—आर्ष होने के कारण प्राकृत में "सुय" शब्द से श्रुत और सूत्र इन दोनों का बोध होता है—क्योंकि इन दोनों अर्थों का प्रतिपादक यह "सूत्र" शब्द है । अतः इन दोनों में समान शब्दद्वारा प्रतिपाद्यस्वरूप

વપામાં આવે છે તેને "किट्टिससूत्र" કહે છે. અથવા ઔર્ણિક આદિ સૂત્રોને જ્યારે દુપટ, ત્રિપટ્ટ, ચોપટ, આદિ રૂપે વણીને તેમાંથી જે સૂત્ર બનાવવામાં આવે છે તેને किट्टिस કહે છે. અથવા ઉપર્યુક્ત ઘેટાં, ઊંટ આદિ જીવો સિવાયના અશ્વાદિ જીવોના વાળમાંથી બનાવેલ સૂત્રને किट्टिससूत्र કહે છે. (वागयं सणमाइ))૫) શણ આદિની છાલમાંથી જે સૂત્ર બને છે તેને વલ્કજ સૂત્ર કહે છે.

શંકા—અહીં શ્રુતનો અધિકાર ચાલી રહ્યો છે. છતાં અહીં સૂત્રકારે સૂત્રની પ્રરૂપણા શા માટે કરી છે ?

ઉત્તર—"सुय" આ પ્રાકૃત પદનો અર્થ શ્રુત થાય છે, અને 'सुय'ની સંસ્કૃત છાયા 'સૂત્ર' થાય છે આ વાત તો આગળ પ્રકટ થઈ ચુકી છે. આ રીતે "सुय" પદ શ્રુત અને સૂત્ર, આ બન્નેના અર્થનું બોધક છે, કારણ કે "सुय" શબ્દ આ બન્ને અર્થોનું પ્રતિપાદન કરે છે. તેથી તે બન્નેમા સમાન શબ્દ દ્વારા પ્રતિપાદ્યત્વરૂપ સમાનતા હોવાને કારણે સૂત્રકારે અહીં સૂત્રની પણ પ્રરૂપણા કરી

प्ररूपितम् अनेन–'भावश्रुते प्रक्रान्ते, कथं नामश्रुतादि प्ररूपणं ?' मितिसन्देहापसरोऽपि निरस्तः, तस्यापि शिष्यबुद्धिवैशद्यफलत्वात्। किंच नामस्थापनाद्रव्यश्रुतानां प्ररूपणमन्तरेण भावश्रुतस्य विशिष्टज्ञानं न भवतीत्यपि बोध्यम्।

उक्तमर्थं निगमयन्नाह–'से त जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं दव्वसुयं' इति। तदेतद् ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यश्रुतम्। नो आगमतो द्रव्यश्रुतमपि सर्वं निरूपितमिति प्रकटयितुमाह–'से तं नोआगमओ दव्वसुयं' इति। तदे-

---

समानता होने के कारण सूत्रकारने इसकी भी प्ररूपणा कर दी है। अथवा प्रसंग लेकर शिष्यबुद्धि की विशदता के निमित्त सूत्रकारने सूत्र का स्वरूप यहां प्रकट किया है। इस वर्णन से इस संदेह को भी कि "यहां पर तो भावश्रुत का प्रकरण चल रहा है– फिर इस प्रकरण में नामश्रुत नाम आदि का प्ररूपण क्यों किया" अवसर नहीं मिलता है। क्योंकि यह वर्णन भी शिष्यजनों की बुद्धि की विशदता करने रूप फल से सफल हैं। किंच–नाम स्थापना और द्रव्यश्रुत की प्ररूपणा के बिना भावश्रुत का विशिष्टज्ञान नहीं होता है इसलिये यह नाम श्रुत आदि की प्ररूपणा की गई है ऐसा भी जानना चाहिये। अब सूत्रकार इस अर्थ का उपसंहार करते हुए कहते हैं कि (से तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं दव्वसुयं) इस प्रकार यह पूर्व प्रक्रान्त ज्ञायकशरीर और भव्य-

---

छे. ते कारणे आ प्रकारनी प्ररूपणा निर्दोष समजवी जोईओ. अथवा प्रसंग प्राप्त आ सूत्र पदनी प्ररूपणा करवा पाछळ सूत्रकारनो आ प्रकारनो हेतु पण संभवी शके छे–"सुय" पदनी संस्कृत छाया "सूत्र" थाय छे. आ संबंधने अनुलक्षीने शिष्यबुद्धिनी विशदताने निमित्ते पण सूत्रकारे अहीं सूत्रना स्वरूपनी प्ररूपणा करी छे. वळी अहीं एवी शंका पण अस्थाने छे के "अहीं तो द्रव्यश्रुतनी प्ररूपणा थाती रही छे, छतां आ प्रकरणां नामश्रुत आदिनी प्ररूपणा शा माटे करवामां आवी छे?" आ शंका उचित न गणी शकाय, कारण के आ वर्णन पण शिष्यजनोनी बुद्धिनी विशदताने निमित्ते ज करवामां आव्युं छे अने ते प्रकारनी विशदता करवा रूप फलथी संपन्न छे. वळी नामश्रुत, स्थापनाश्रुत आदिनी प्ररूपणा कर्या विना द्रव्यश्रुतनुं विशिष्टज्ञान प्राप्त थई शकतुं नथी. ते कारणे आ नामश्रुत आदिनी प्ररूपणा अहीं करवामां आवी छे, एम समजवुं जोईओ

हवे सूत्रकार आ विषयनो उपसंहार करतां कहे छे के—

(से तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं दव्वसुयं) ज्ञायकशरीर अने भव्यशरीरथी भिन्न एवा द्रव्यश्रुतनुं आ प्रकारनुं स्वरूप छे. (से तं नोआगमओ

तद् नो आगमतो द्रव्यश्रुतम् । द्रव्यश्रुतमपि सर्वं निरूपितमिति दर्शयितुमाह—'से तं दव्वसुयं' इति । तदेतद् द्रव्यश्रुतं वर्णितम् ॥सू० ३८॥

अथ भावश्रुतं निरूपयति—

मूलम्—से किं तं भावसुयं ? भावसुयं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा आगमओ य, नोआगमओ य ॥सू० ३९॥

छाया—अथ किं तद् भावश्रुतम् ? भावश्रुतं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—आगमतश्च नोआगमतश्च ॥सू० ३९॥

टीका—शिष्यःपृच्छति—से किं तं भावसुयं" इति । अथ किं तद् भावश्रुतम् ? इति, उत्तरमाह—भावसुयं" इत्यादि । भावश्रुतम्—इह श्रुतपदार्थो-

---

शरीर से व्यतिरिक्त द्रव्यश्रुत है । (से तं नोआगमओ दव्वसुयं) इस तरह नोआगम को आश्रित करके समस्तद्रव्यश्रुत का निरूपण हो चुका । (से तं दव्वसुयं) यही सब द्रव्यश्रुत का स्वरूप है । ॥सूत्र ३८॥

अब सूत्रकार—भावश्रुत का वर्णन करते है—

"से किं तं भावसुयं" इत्यादि । सूत्र ॥ ३९ ॥

शब्दार्थः—(से किं तं) शिष्य पूछता है कि हे भदन्त ! पूर्व प्रक्रान्त भावश्रुत का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—(भावसुयं) भावश्रुत (दुविहं पण्णत्तं) दो प्रकार का कहा गया है। श्रुत रूप पदार्थ के अनुभव से युक्त जो साधु आदि जीव है वह भाव शब्द का वाच्यार्थ है। भाव और श्रुत इन दोनों में अभेद के उपचार से भावश्रुत साधवादि को कहा गया है। इसतरह भाव जो है वही श्रुत बन जाता है।

दव्वसुयं)આ રીતે નોઆગમ દ્રવ્યશ્રુતના ત્રણે ભેદોનું નિરૂપણ અહીં સમાપ્ત થાય છે. (से तं दव्वसुयं) અને દ્રવ્યશ્રુતના બધાં ભેદોનું નિરૂપણ પણ અહીં પૂરું થાય છે. ॥ સૂ૦ ૩૮ ॥

"से किं तं भावसुयं" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(से किं तं भावसुयं?) શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે હે ભગવન્! પૂર્વપ્રસ્તુત ભાવશ્રુતનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર-(भावसुयं दुविहं पण्णत्तं) ભાવશ્રુત બે પ્રકારનું કહ્યું છે. શ્રુતરૂપ પદાર્થના અનુભવથી યુક્ત જે સાધુ આદિ જીવો હોય છે તેઓ ભાવ શબ્દના વાચ્યાર્થ રૂપ છે ભાવ અને શ્રુત આ બન્નેમાં અભેદના ઉપચારની અપેક્ષાએ સાધુ આદિને ભાવશ્રુત કહેવામાં આવેલ છે. આ રીતે જે ભાવ છે એજ શ્રુત બની જાય છે.

नुभवयुक्तो यः साध्वादिः स भावः, श्रुतं च गृह्यते। भावश्रुतयोरभेदस्तयोश्च अभेदोपचाराद् भावश्चासौ श्रुतं च भावश्रुतम्। यद्वा—अर्थानुभवरूपं भावमाश्रित्य श्रुतं भावश्रुतम्। यद्वा—भावप्रधानं श्रुतं-भावश्रुतम्, तत् द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तं जहा' तद्यथा—आगमओ य नोआगमओ य आगमतश्च नोआगमतश्चेति॥३९॥

तत् प्रथमं भेदं निरूपयितुमाह—

मूलम्—से किं तं आगमओ भावसुयं? आगमओ भावसुयं जाणए उवउत्ते। से तं आगमओ भावसुयं सू० ४०॥

छाया—अथ किं तद् आगमतो भावश्रुतम्? आगमतो भावश्रुतं ज्ञायक उपयुक्तः। तदेतत् आगमतो भावश्रुतम्। सू० ४०।

टीका—शिष्यःपृच्छति—'से किं तं आगमओ भावसुय' इति। अथ किं तत् आगमतो भावश्रुतम्? उत्तरमाह—'आगमओ भावसुयं इत्यादि। आग-

---

अथवा भावरूप श्रुत को आश्रित करके जो श्रुत होता है वह भावश्रुत है। अथवा भाव प्रधान जो श्रुत है उसका नाम भावश्रुत है (तंजहा) उस भावश्रुत के वे दो प्रकार ये हैं—(आगमओ य, नोआगमओ य) १ एक आगम भावश्रुत और दूसरा नोआगम भावश्रुत। इनमें जो आगम को आश्रित करके भावश्रुत होता है उसका नाम आगम भावश्रुत और जो नोआगम आश्रित करके भावश्रुत होता है वह नोआगम भावश्रुत है। ॥ सूत्र ३९ ॥

अब सूत्रकार आगम भावश्रुत का स्वरूप कहते हैं—

"से किं तं आगमओ भावसुयं" इत्यादि। ॥ सूत्र ४० ॥

शब्दार्थः— (से किं तं आगमओ भावसुयं) हे भदन्त! आगम को आश्रित करके जो भावश्रुत होता है उसका क्या स्वरूप है?

અથવા ભાવરૂપ શ્રુતને આશ્રિત કરીને જે શ્રુત હોય છે તેને ભાવશ્રુત કહે છે. અથવા ભાવપ્રધાન જે શ્રુત છે તેનું નામ ભાવશ્રુત છે. (तंजहा) તે ભાવશ્રુતના નીચે પ્રમાણે બે પ્રકારો કહ્યા છે-(आगमओ य, नोआगमओ य) (१) આગમ ભાવશ્રુત અને (२) નોઆગમ ભાવશ્રુત આગમને આશ્રિત કરીને જે ભાવશ્રુત હોય છે તેને આગમ ભાવશ્રુત કહે છે અને નોઆગમને આશ્રિત કરીને જે ભાવશ્રુત હોય છે તેને નોઆગમ ભાવશ્રુત કહે છે. ॥ સૂ. ૩૯ ॥

હવે સૂત્રકાર આગમભાવશ્રુતના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે—

"से किं तं आगमओ भावसुयं" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(से) શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન કરે છે કે હે ભગવન્! (किं तं आगमओ भावसुयं?) આગમને આશ્રિત કરીને જે ભાવશ્રુત હોય છે તેનું સ્વરૂપ કેવું છે?

मतो भावश्रुतं ज्ञायक उपयुक्तः—श्रुतपदार्थज्ञः श्रुतपदार्थे उपयोगवांश्च यः साध्वादिः स आगमतः=आगममाश्रित्य भावश्रुतं भवति। अयं श्रुतोपयोगरूप-परिणामस्य सद्भावात् भावत्वम्। श्रुतार्थज्ञानस्य सद्भावादागमत्वं बोध्यम्। तदेतन्निगमयन्नाह-'से तं आगमओ भावसुय' इति। तदेतदागमतो भावश्रुतं वर्णितम्, इति ॥सू० ४०॥

अथ द्वितीयभेदमाह--

मूलम्—से किं तं नो आगमओ भावसुयं ? नोआगमओ भाव-सुयं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—लोइयं, लोगुत्तरियं च ॥सू० ४१॥

छाया—अथकिं तद् नोआगमतो भावश्रुतम्? नोआगमतो भावश्रुतं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—लौकिकम्, लोकोत्तरिकं च ॥सू० ४१॥

उत्तर-(आगमओ भावसुयं जाणए उवउत्ते) आगम को आश्रित करके भावश्रुत का स्वरूप इस प्रकार से है—जो साध्वादि त का ज्ञाता है और उसमें उपयोग युक्त है। वह आगम को आश्रित करके भावश्रुत होता है। श्रुत में उपयोगरूप परिणाम के सद्भाव से उस साध्वादि में भावता है, और श्रुत के अर्थज्ञान के सद्भाव से आगमता है। इसतरह (से तं आगमओ भाव-सुयं) यह आगम को लेकर भावश्रुत का स्वरूप है। ॥ सूत्र ४० ॥

नोआगमकी अपेक्षा लेकर भावश्रुत का स्वरूप इस प्रकार से है—

"से किं तं" इत्यादि। ॥ सूत्र ४१ ॥

शब्दार्थः—(से) हे भदन्त! नोआगम की अपेक्षा लेकर भावश्रुत का क्या स्वरूप हैं? (नोआगमओ भावसुयं दुविहं पण्णत्तं) नोआगम की अपेक्षा लेकर

उत्तर-(आगमओ भावसुयं जाणए उवउत्ते) આગમને આધારે ભાવશ્રુતનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ કહ્યું છે. જે સાધુ આદિ જીવ શ્રુતનો જ્ઞાતા હોય છે અને તેમાં ઉપયોગ પરિણામથી યુકત હોય છે, તે સાધુ આદિને આગમની અપેક્ષાએ ભાવશ્રુત કહે છે. શ્રુતમાં ઉપયોગ રૂપ પરિણામના સદ્ભાવને લીધે તે સાધુ આદિમાં ભાવતા હોય છે શ્રુતના અર્થજ્ઞાનના સદ્ભાવને લીધે તે સાધુ આદિમાં આગમતાનો પણ સદ્ભાવ હોય છે. આ પ્રકારનું (से तं आगमओ भावसुयं) આગમને આશ્રિત કરીને ભાવશ્રુતનું સ્વરૂપ છે, એમ સમજવું ॥ સૂ૦ ૪૦ ॥

હવે સૂત્રકાર નોઆગમ ભાવશ્રુતના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે.

"से किं तं नोआगमओ भावसुय" ઇત્યાદિ-

શબ્દાર્થ-(से) શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે હે ભગવન્! નોઆગમનો આશ્રય લઈને ભાવશ્રુતનું કેવું સ્વરૂપ કહ્યું છે-

टीका- 'से किं तं नोआगमओभावसुयं' इत्यादि।
व्याख्या निगदसिद्धा सू० ४१
तत्राद्यभेदं निरूपयति--

मूलम्--से किं तं लोइयं नोआगमओ भावसुयं? लोइयं नोआगमओ भावसुयं जं इमं अण्णाणिएहिं मिच्छादिट्ठिएहिं सच्छंद बुद्धिमइविगप्पियं, तं जहा-भारहं रामायणं भीमासुरुक्कं कोडिल्लयं घोडयमुहं सगडभद्दियाओ कप्पासियं णागसुहुयं कणगसत्तरी वेसियं वइसेसियं बुद्धसासणं कविलं लोगायइयं सट्ठितंतं माढरं पुराणं वागरणं नाडगाइं, अहवा बावत्तरिकलाओ चत्तारि वेया संगोवंगा। से तं लोइयं नो आगमओ भावसुयं ॥ सू० ४२ ॥

छाया—अथ किं तद् लौकिकं नोआगमतो भावश्रुतम्? लौकिकं नोआगमतो भावश्रुतं यदिदमज्ञानिकैः मिथ्यादृष्टिकैः स्वच्छन्दबुद्धिमतिविकल्पितम् तद्यथा-भारतं, रामायणं, भीमासुरोक्तं, कौटिल्यकम्, घोटकमुखम् शकटभद्रिका कार्पासिकम्, नागसूक्ष्मम्, कनकसप्ततिः, वैशेशिकम्, बुद्धशासनम्, कपिलं, लोकायतिकम्, षष्ठितन्त्रम्, माठरं पुराणं व्याकर नाटकानि। अथवा द्वासप्ततिकलाः, चत्वारो वेदाः साङ्गोपाङ्गाः। तदेतद् लौकिकं नोआगमतो भावश्रुतम् ॥सू०४२॥

भावश्रुत दो प्रकार का कहा गया है। (तंजहा) वे प्रकार ये हैं (लोइयं लोगुत्तरियं) १ एक लौकिक दूसरा लोकोत्तरिक। इस सूत्र की व्याख्या पहिले कही गई व्याख्या के अनुसार जाननी चाहिये। ॥ सू ४१ ॥

अब सूत्रकार नोआगम को आश्रित करके लौकिक भावश्रुत का कथन करते हैं—

"से किं तं" इत्यादि। सूत्र ४२ ॥

शब्दार्थः—(से) हे भदन्त! (नोआगमओ) नोआगम को आश्रित करके (तं)

उत्तर-(नोआगमओ भावसुयं दुविहं पण्णत्तं) नोआगमनी अपेक्षाओ भावश्रुतना बे प्रकार कह्या छे. (तंजहा), ते प्रकारो नीचे प्रमाणे छे—(लोइयं, लोगुत्तरियं) (१) लौकिक अने (२) लोकोत्तरिक आ सूत्रनी व्याख्या पहेलां आवश्यक सूत्रमां कह्या अनुसार समजवी. ॥ सू. ४१ ॥

हवे सूत्रकार नोआगम लौकिक भावश्रुतना स्वरूपनुं निरूपण करे छे-

"से किं तं" इत्यादि—

शब्दार्थ-(से) शिष्य गुरुने एवो प्रश्न पूछे छे के हे भगवन्! (नोआग-

टीका—शिष्यःपृच्छति—से किं तं लोइयं नोआगमओ भावसुयं' इति। अथ किं तद् लौकिकं नोआगमतो भावश्रुतम्? इति प्रश्नः। उत्तरमाह—'लोइयं नो आगमओ भावसुयं' इत्यादि। लौकिकं नोगमतो भावश्रुतम्, यदिदं-वक्ष्यमाणं भारतादिकम्, अज्ञानिकैः=अल्पज्ञानिभिः—अत्राल्पार्थको नञ् शब्दः, सम्यग्दृष्टयोऽप्यज्ञानिका भवन्ति इत्यत आह-'मिच्छादिट्ठीहिं' इति। मिथ्यादृष्टिभिः स्वच्छन्दबुद्धिमतिविकल्पितम्—स्वच्छन्देन=सर्वज्ञोक्तार्थविरुद्धेन स्वाभिप्रायेण बुद्धिमतिभ्यां-बुद्धिः=ईहावग्रहरूपा, मतिः=अवायधारणारूपा, ताभ्यां विकल्पितम्—सर्वज्ञोक्तार्थानुसारिबुद्धिमतिभ्यां विरचितमित्यर्थः। तद् लौकिकं नोआगमतो भावश्रुतं विज्ञेयम्। तदेव नामतो निर्दिशति 'तं जहा' इत्यादिना—तद्यथा—भारतं, रामायणं, भीमासुरोक्तं=भीमासुरेण रचितं शास्त्रम्, कौटिल्यकम्

पूर्वप्रक्रान्त (लोइयं भावसुयं) लौकिक भावश्रुत (किं) क्या है ?

उत्तरः—(नोआगमओ) नोआगम को आश्रित करके (लोइयं भावसुयं) लौकिक भावश्रुत इस प्रकार से है-(जं इमं अण्णाणिएहिं मिच्छादिट्ठिएहिं सच्छंदबुद्धिमइविगप्पियं) जो यह अज्ञानी मिथ्यादृष्टियों द्वारा अपनी स्वच्छंद बुद्धि और मति से रचा गया है। वह लौकिकभावश्रुत है ऐसा जानना चाहिये। ईहा और अवग्रहरूप विचारधारा का नाम बुद्धि है। तथा अवाय और धारणरूप विचारधारा का नाम मति है। सर्वज्ञ उक्त अर्थसे विरुद्ध अभिप्रायवाली बुद्धि और मति से जिन शास्त्रोंका ग्रथन किया गया है वे सब लौकिक भावश्रुत है। (तंजहा) जैसे—(भारहं रामायणं भीमासुरुक्कं

મઓ) નોઆગમને આશ્રિત કરીને (तं) પૂર્વપ્રસ્તુત વિષયરૂપ (लोइयं भावसुयं?) લૌકિક ભાવશ્રુતનું (किं) કેવું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર—(नोआगमओ) નોઆગમને આશ્રિત કરીને (लोइयं भावसुयं) લૌકિક ભાવતશ્રુતનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ કહ્યું છે.

(जं इमं अण्णाणिएहिं मिच्छादिट्ठिएहिं सच्छंदबुद्धिमइ विगप्पियं) અજ્ઞાની મિથ્યાદૃષ્ટિએ વડે પોતાની સ્વચ્છંદ બુદ્ધિ અને મતિથી રચેલા શ્રુતને 'લૌકિક ભાવશ્રુત' કહે છે ઈહા અને અવગ્રહરૂપ વિચારધારાનું નામ બુદ્ધિ છે, તથા અવાય અને ધારણરૂપ વિચારધારાનું નામ મતિ છે. સર્વજ્ઞ કેવળી ભગવાનો દ્વારા કથિત અર્થથી વિરૂદ્ધ અભિપ્રાયવાળી બુદ્ધિ અને મતિથી જે શાસ્ત્રોનું ગ્રથન (રચનારૂપ ગ્રથન) કરાયું હોય છે, તે શાસ્ત્રોને લૌકિક ભાવશ્રુત કહે છે (तं जहा) એવાં લૌકિક ભાવશ્રુતોનાં નામ નીચે પ્રમાણે છે.

(भारहं रायायणं, भीमासुरुक्कं कोडिल्लयं घोडयमुहं) મહાભારત, રામાયણ; ભીમાસુર રચિત શાસ્ત્ર, કૌટિલ્ય (ચાણક્ય) રચિત અર્થશાસ્ત્ર, ઘોટકમુખ

कौटिल्येन=चाणक्येन निर्मितम्-अर्थशास्त्रम् (घोटकमुखम्,)घोटकमुखनामकं शास्त्रम्, शकटभद्रिकाः=एतन्नामकशास्त्राणि, कार्पासिकम्-कार्पासिकनामकं शास्त्रम्, नागसूक्ष्मम्, एतन्नामकं शास्त्रम्, कनकसप्ततिः-कनकसप्ततिनामकं शास्त्रम्, वैशिकम्-कामशास्त्रप्रकरणविशेषः, वैशेषिकम्-काणाददर्शनम्, बुद्धशासनं-त्रिपिटकरूपम्, कपिलम्-सांख्यशास्त्रम्, लोकायतिकं=चार्वाकदर्शनम्-सांख्यशास्त्रग्रन्थविशेषः, माठरं पुराणं व्याकरणं नाटकानि-माठरं=माठरनिर्मितशास्त्रविशेषः, पुराणं=व्याकरणं, नाटकानि=दृश्यकाव्यानि, बहुवचनान्तपदात्-श्रव्यकाव्यानि च। एतानि पूर्वोक्तानि भारतादीनि लौकिकं नोआगमतो भावश्रुतम्। प्रकारान्तरेण तदाह-'अहवा' इत्यादि। अथवा-द्वासप्ततिकलाः-कलनानि=लौकिकवस्तुस्वरूपपरिज्ञानानि कलाः, द्वासप्तति संख्यकाः कलाः-द्वासप्ततिकलाः, एताश्च-समवायाङ्गादिसूत्रेषु प्रोक्ताः, तथा-चत्वारो वेदाः साङ्गोपाङ्गाः-अङ्गानि=शिक्षाकल्पव्याकरणनिरुक्तछन्दोज्यौतिषरूपाणि

केाडिल्लयं घोडयमुहं) महाभारत रामायण, भीमासुररचित शास्त्र, चाणक्य रचित अर्थशास्त्र, घोटकमुखनामकशास्त्र, (सगडभद्दियाओ) शकटभद्रिका नामकशास्त्र (कप्पासियं) कार्पासिक नामकशास्त्र (णाग सुहुमं) नाग सूक्ष्म नामक शास्त्र (कणगसत्तरी) कनकसप्तति नामक शास्त्र (वेसियं) कामशास्त्र प्रकरण विशेष (वेइसेसियं) वैशेषिकशास्त्र, (बुद्धसासणं) त्रिपिटकरूप बुद्धशास्त्र, (कविलं) सांख्यशास्त्र, (लोगायइयं) चार्वाक दर्शन (सट्ठितंतं) षष्टि तंत्र सांख्यशास्त्र ग्रन्थ विशेष, (माठर) माठरनिर्मितशास्त्र विशेष, (पुराणं) पुराण) (वागरणं) व्याकरण (नाडगाइं) दृश्य काव्य और श्राव्य काव्य। (अहवा) अथवा (बावत्तरिकलाओ) ७२ कलाएँ (संगोवंगा चत्तारिवेया) सांगोपांग चारों वेद। ७२ कलाओं का वर्णन समवायाङ्ग आदि सूत्रो में है। शिक्षा, कल्प,

---

नामनुं शास्त्र, (सगडभद्दियाओ) शकट भद्रिका नामनुं शास्त्र, (कप्पासियं) कार्पासिक नामनुं शास्त्र, (णागसुहुमं) नागसूक्ष्म नामनुं शास्त्र, (कणगसत्तरी) कनकसप्तति नामनुं शास्त्र, (वेसियं) कामशास्त्रनुं प्रकरण विशेष, (वेइसेसियं) वैशेषिक शास्त्र, (बुद्धसासणं) त्रिपिटक રૂપ બૌદ્ધોનું ધર્મશાસ્ત્ર, (कविलं) કપિલનું સાંખ્યदर्शन नामनुं शास्त्र, (लोगासुइयं) चार्वाक दर्शन, (सट्ठितंतं) षष्टितंत्र सांख्य शास्त्रनो ग्रंथविशेष, (माठर) માઠર નિર્મિત શાસ્ત્ર વિશેષ, (पुराणं) पुराण (वागरणं) व्याकरण, (नाडगाइं) दृश्यकाव्य अने श्राव्यकाव्य, (अहवा) अथवा (बावत्तरिकलाओ ७२ कलाओ, (संगोवंगा चत्तारि वेदा) अंग अने उपांगयुक्त चारे वेद आ બધાને લૌકિકભાવશ્રુત કહે છે. ૭૨ કલાઓનું વર્ણન સમવાયાંગ આદિ સૂત્રોમાં કરવામાં આવ્યું છે. વેદોના છ અંગ નીચે પ્રમાણે છે શિક્ષા, કલ્પ, વ્યાકરણ, નિરુક્ત છન્દ અને જ્યોતિષ અને તેમની વ્યાખ્યા રૂપ જે ગ્રંથો છે તેમને ઉપાંગ કહે

षट्, उपाङ्गानि=तद्व्याख्यारूपाणि, तैः सहिता ऋग्यजुःसामाथर्वणलक्षणाश्चत्वारो वेदाः, लौकिकं नोआगमतो भावश्रुतम् । भारतरामायणादीनां लोके आगमत्वेन प्रसिद्धत्वादागमत्वेऽपि तदुक्तक्रियाया अनागमत्वात् नोआगमत्वम्, लोकप्रसिद्धयैव श्रुतत्वमपि तेषां। तदुपयोग एव भवितुमर्हति, उपयोगो भावनिक्षेप इतिवचनात् । तदेतत् लौकिकं नोआगमतो भावश्रुतं वर्णितम् । इति ॥ सू०४२॥

व्याकरण निरुक्त, छन्द, ज्यौतिष, ये छह वेदों के अंग हैं। और उनकी व्याख्या रूप जो ग्रन्थ हैं वे उपांग हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद ये चार वेद हैं। ये सब लौकिक भावश्रुत हैं। लोक में भारत रामायण आदि आगम शास्त्ररूप से माने जाते हैं, इसलिये इनमें आगमता है और इनमें जो क्रियाएँ वर्णित हैं, वे आचाररूप नहीं होने से अनागमरूप हैं। इसप्रकार भारत आदिकों में तदुक्त क्रियाओंकी अपेक्षा नोआगमता आ जाति है। लोक प्रसिद्धि से ही इनमें श्रुतता है। इसलिये ये नोआगम को आश्रित करके लौकिक भावश्रुत है। इनमें जो सूत्रकारने भाव तता प्रकट की है वह इनके संलग्न उपयोग की अपेक्षा से ही प्रकट की गई जाननी चाहिये। शब्दात्मक जो भारत, रामायण आदिक हैं वे तो भावश्रुत हो हीं नहीं सकते हैं क्योंकि "उपयोगो भावनिक्षेपः" उपयोग को ही भावनिक्षेप कहा है ऐसा आप्तवचन है। (से तं लोइयं नोआगमओ भावसुयं) इस प्रकार नोआगमकी अपेक्षा यह लौकिक भावश्रुतका वर्णन किया।—

છે. ચાર વેદના નામ આ પ્રમાણે છે ઋગ્વેદ, સામવેદ, યજુર્વેદ અને અથર્વવેદ લોકમાં મહાભારત, રામાયણ આદિને આગમ-શાસ્ત્ર રૂપે માનવામાં આવે છે, તેથી તેમાં આગમતાનો સદ્ભાવ છે, અને તે શાસ્ત્રોમાં જે ક્રિયાઓનું વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે તે ક્રિયાઓ આચારરૂપ નહીં હોવાથી અનાગમરૂપ છે. આ રીતે મહાભારત આદિ ગ્રન્થોમાં તદુકત ક્રિયાઓની અપેક્ષાએ નોઆગમતા આવી જાય છે. લોકપ્રસિદ્ધિની અપેક્ષાએ તે ગ્રન્થોમાં શ્રુતતાનો સદ્ભાવ છે. તેથી તે શાસ્ત્રોને નોઆગમ લૌકિક ભાવશ્રુત રૂપ કહેવામાં આવ્યાં છે તે શાસ્ત્રગ્રન્થોમાં સૂત્રકારે જે ભાવશ્રુતતા પ્રકટ કરી છે તે તેમના તે શ્રુતોમાં ઉપયોગરૂપ પરિણામની યુકતતા (સંલગ્નતા)ને કારણે જ પ્રકટ કરવામાં આવેલ છે, એમ સમજવું. શબ્દાત્મક જે મહાભારત, રામાયણ આદિ છે, તેમને તો ભાવશ્રુત ગણી શકાય જ નહીં કારણ કે "उपयोगो भावनिक्षेपः" ઉપયોગને જ ભાવનિક્ષેપ કહે છે. આ પ્રકારનું સિદ્ધાન્તોનું વચન છે. (से तं लोइयं नोआगमओ भावसुयं) આ પ્રકારનું નોઆગમ લૌકિક ભાવશ્રુતનું સ્વરૂપ સમજવું.

'अज्ञानिक' અજ્ઞાની પદમાં જે 'અ' ઉપસર્ગ છે, તે નકારવાચક નથી

अथ लोकोत्तरिकं नोआगमतो भावश्रुतमाह—

मूलम्—से किं तं लोउत्तरियं नोआगमओ भावसुयं ? लोउत्तरियं नोआगमओ भावसुयं जं इमं अरहंतेहिं भयवंतेहिं उप्पण्णणाणदंसणधरेहिं तीयपच्चुप्पण्णमणागय जाणएहिं सव्वण्णूहिं सव्वदरिसीहिं तिलुक्कवहियमहियपूइएहिं अप्पडिहयवरनाणदंसणधरेहिं पणीय दुवालसंगं गणिपिडगं, तं जहा—आयारो सूयगडो ठाणं समवाओ विवाहपण्णत्ती नायाधम्मकहाओ, उवासगदसाओ अंतगडदसाओ अणुत्तरोववाइयदसाओ, पण्हावागरणाइं विवागसुयं दिट्ठिवाओय। से तं लोउत्तरियं नोआगमओ भावसुयं। से तं आगमओ भवसुयं। से त्तं भावसुयं ॥ सू०४३ ॥

अथ किं तद् लोकोत्तरिकं नोआगमतो भावश्रुतम् ? लोकोत्तरिकं नोआगमतो भावश्रुतं यदिदं अर्हद्भि र्भगवद्भिरुत्पन्नज्ञानदर्शनधरैः अतीतप्रत्युत्पन्नानागतज्ञायकैः सर्वज्ञैः सर्वदर्शिभिः त्रैलोक्यावलोकितमहितपूजितैः अप्रतिहतवरज्ञानदर्शनधरैः प्रणीतं द्वादशाङ्गं गणिपिटकं, तद्यथा—आचारः, सूत्रकृतं, स्थानं, समवायः, विवाहप्रज्ञप्तिः, ज्ञाताधर्मकथाः, उपासकदशाः, अन्तकृतदशाः, अनुत्तरोपपातिकदशाः प्रश्नव्याकरणानि, विपाकश्रुतम्, दृष्टिवादश्च। तदेतत् लोकोत्तरिकं नोआगमनो भावश्रुतम्। तदेतद् नोआगमतो भावश्रुतम्। तदेतत् आगमतो भावश्रुतम् ॥ सू० ४३ ॥

अज्ञानिक पद में जो नञ् समास हुआ है वह अल्पार्थ में हुआ है। अतः अज्ञानिक का तात्पर्य "अल्पज्ञानवाले" ऐसे होता है। ऐसे अल्पज्ञानी तो सम्यक् दृष्टि भी होते हैं—अतः इनकी निवृत्ति के लिये मिथ्यादृष्टि पद सूत्रकार ने प्रयुक्त किया है। ॥ सू० ४२ ॥

अब सूत्रकार नोआगम की अपेक्षा करके लोकोत्तरिक भावश्रुतका वर्णन

પણ અલ્પાર્થક છે. તેથી અજ્ઞાની એટલે અલ્પજ્ઞાનવાળા, આ પ્રકારનો અર્થ અહીં સમજવો એવો અલ્પજ્ઞાની તો સમ્યક્ દૃષ્ટિ જીવ પણ હોઈ શકે છે, તેથી અહીં સમ્યક્દૃષ્ટિ અલ્પજ્ઞાનવાળાની નિવૃત્તિને નિમિત્તે સૂત્રકારે મિથ્યાદૃષ્ટિ વિશેષણનો પણ પ્રયોગ કર્યો છે. ॥ સૂ. ૪૨ ॥

'से किं त' इत्यादि—

अथ किं तद् लोकोत्तरिकं नोआगमतो भावश्रुतम ? इति शिष्यप्रश्नः । उत्तरमाह—उत्पन्नज्ञानदर्शनधरैः, उत्पन्ने ज्ञानावरणक्षपणादिप्रकारेण संजाते न तु सहजे ये ज्ञानदर्शने तयोर्धराः=धारकास्तैः, सादिकेवलज्ञानदर्शनोपयोगयुक्तैरित्यर्थः, तथा-अतीतप्रत्युत्पन्नानागतज्ञायकैः तत्र अतीताः=भूतकालिकाः, प्रत्युत्पन्नाः=वर्त्तमानकालिकाः, अनागताः=भविष्यत्कालिका अर्थास्तेषां ज्ञायकास्तैः, तथा—सर्वज्ञैः=सर्वद्रव्यपर्यायं जानन्तीति सर्वज्ञास्तैः, सर्वदर्शिभिः—केवलदर्शनेन एकेन्द्रियादि सर्वं त्रसस्थावरं जगद् द्रष्टुं शीलं येषां ते सर्वदर्शिनस्तैः, तथा त्रैलोक्या-

---

करते हैं—"से किं तं लोउत्तरियं" इत्यादि ।।॥ सूत्र ४३ ॥

शब्दार्थः-(से) शिष्य पूछता हैं कि हे भदन्त! (नोआगमओ) नोआगमको आश्रित करके (तं) पूर्वप्रकान्त (लोउत्तरियं भावसुयं किं) लोकोत्तरिक भावश्रुत क्या है ?

उत्तर-(नोआगमओ) नोआग की अपेक्षा करके (लोउत्तरियं भावसुयं) लोकोत्तरिकभावश्रुत इस प्रकार से है- (उप्पण्णणाणदंसणधरेहिं) ज्ञानावरणकर्म के क्षय से उत्पन्न हुए केवलज्ञान और दर्शनावरण कर्म के क्षय केवलदर्शनरूप उपयोग को धारण करनेवाले, (तीयपच्चुप्पण्णमणागयजाणएहिं) अतीत-भूतकालिक प्रत्युत्पन्न-वर्तमान कालिक अनागत-भविष्यत्कालिक पदार्थों को जाननेवाले (सव्वण्णूहिं) समस्त द्रव्यों और उनकी त्रिकालवर्ती पर्यायों के ज्ञाता (सव्वदरिसीहिं) केवलदर्शन से एकेन्द्रियादि समस्त त्रसस्थावर रूप जगत् देखने के

હવે સૂત્રકાર નોઆગમ લોકોત્તરિક ભાવશ્રુતનું નિરૂપણ કરે છે—

"से तं लोउत्तरियं" ઇત્યાદિ-

શબ્દાર્થ-(से) શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે હે ભગવન્! (नोआगमओ) નોઆગમ ભાવશ્રુતના બીજા ભેદરૂપ (तं लोउत्तरियं भावसुयं किं) પૂર્વપ્રસ્તુત લોકોત્તરિક ભાવશ્રુતનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર—(नोआगमओ) નોઆગમનો આશ્રય લઈને (लोउत्तरियं भावसुयं) લોકોત્તરિક ભાવશ્રુતનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે.

"उप्पण्ण णाणदंसणधरेहिं" જ્ઞાનવરણના ક્ષયથી ઉત્પન્ન થયેલા કેવળજ્ઞાન અને કેવળદર્શનરૂપ ઉપયોગને ધારણ કરનારા, 'तीयपच्चुप्पणमणामयजाणएहिं" અતીત (ભૂતકાલિક), પ્રત્યુત્પન્ન (વર્તમાન કાલિક), અને અનાગત (ભવિષ્યકાલીક) પદાર્થોને જાણનારા, (सव्वण्णूहिं) સમસ્ત દ્રવ્યો અને તેમની ત્રિકાળવર્તી પર્યાયોના જ્ઞાતા (सव्वदरिसीहिं) કેવળ દર્શનથી એકેન્દ્રિયાદિ સમસ્ત ત્રસ અને સ્થાવરરૂપ

वलोकितमहितपूजितैः—त्रैलोक्येन=त्रिलोकीस्थितेन भवनपतिव्यन्तरनरकिन्नरविद्याधरज्योतिषिकवैमानिकादिसमूहेन सूत्रे 'वहिय' इति देशी शब्दः अवलोकितार्थवाचक स्ततः—अवलोकिताः-अमन्दानन्दाश्रुपरिप्लुतलोचनैर्निरीक्षिताः महिताः=यथावस्थिताऽसदृशगुणोत्कीर्त्तनलक्षणेन भावस्तवेन अभिष्टुताः पूजिताः=वन्दनादिलक्षणया कायिकक्रियया सत्कृतास्तैः. तथा अप्रतिहतवरज्ञानदर्शनधरैः अप्रतिहते=समस्तावरणक्षयसम्भूतत्वाद् मूर्त्तामूर्त्तेषु समस्तवस्तुषु कटकुड्यादिभिरस्खलिते अविसंवादके वा अतएव क्षायिकत्वाद्वा वरे=श्रेष्ठे ये ज्ञानदर्शने=केवलज्ञानकेवलदर्शनरूपे, तयोर्धराः—धारका ये ते तथा तैः, एवंभूतैरर्हद्भिर्भगवद्भिः, यदिदं द्वादशाङ्गं=श्रुतरूपस्य परमपुरुषस्याङ्गानीव अङ्गानि, द्वादशअङ्गानि—आचारादीनि यत तद् द्वादशाङ्गगणिपिटकम् गणोऽस्यास्तीति गणी=आचार्यस्तस्य पिटकमिव=सर्वस्वाधारमञ्जूषेव प्रणीतं=प्ररूपितं, तद् लोकोत्तरिकं—लोकोत्तरैः=

स्वभाववाले (तिलुक्कवहियमहियपूइएहिं) तीन लोकवर्ती भवनपति, व्यन्तर, नर, किन्नर, विद्याधर ज्योतिषिक वैमानिक आदि के समूह से अवलोकित अमन्द आनन्द के अश्रुओं से परिप्लुत लोचनों द्वारा निरीक्षित—हुए, महित—यथावस्थित गुणों के कीर्तनरूप भावस्तव-से संस्तुत हुए, पूजित—वन्दनादिरूप कायिक क्रिया से सत्कृत हुए (अप्पडिहयवरनाणदंसणधरेहिं) तथा अप्रतिहत समस्त आवरण के क्षय से उत्पन्न होने के कारण मूर्त और अमूर्त सकलवस्तुओं में कटकुड्य (कट—चटाई कुड्य—भित्ति) आदि से भी अस्खलित अथवा अविसंवादी ऐसे श्रेष्ठ के ज्ञान और केवलदर्शन के धारक (अरिहंतेहिं भगवंतेहिं) अर्हन्त भगवन्तों द्वारा (दुवालसंगं) आचारांगादि द्वादश अंगवाला (जं इमं) जो यह

જગતને જોઈ શકવાના સ્વભાવવાળા, (तिलुक्कवहियमहियपूइएहिं) ત્રણ લોકવર્તી ભવનપતિ, વ્યન્તર, નર, કિન્નર, વિદ્યાધર, જ્યોતિષિક, વૈમાનિક આદિના સમૂહથી અવલોકિત, અમંદ આનંદના અશ્રુઓથી પરિપ્લુત લોચનો દ્વારા નિરીક્ષિત થતી મહિત— યથાવસ્થિત ગુણોના કીર્તનરૂપ ભાવસ્તવનથી સંસ્તુત (સ્તવિત) થતાં, પૂજાતાં-વન્દનાદિરૂપ કાયિક ક્રિયાવડે સત્કારિત થતાં, (अप्पडियवरनाणदंसणधरेहिं) તથા અપ્રતિહત સમસ્ત આવરણોના ક્ષયથી ઉત્પન્ન થયેલું હોવાને કારણે મૂર્ત અને અમૂર્ત સકળ વસ્તુઓ કટ, કુડય (કટ એટલે ચટ્ટાઈ અને કુડય એટલે ભીંત) આદિથી પણ અસ્ખલિત અથવા અવિસંવાદી એવા શ્રેષ્ઠ કેવળજ્ઞાન અને કેવળદર્શનના ધારક (अरिहंतेहिं भगवंतेहिं) અર્હંત ભગવંતો દ્વારા (दुवालसंगं) આચારાંગ આદિ બાર અંગવાળું (जं इयं) જે આ (गणिपिडगं पणीयं) ગણિપિટક પ્રરૂપત થયું છે, તે લોકોત્તર તીર્થંકરો દ્વારા પ્રણીત હોવાને કારણે લોકોત્તરિક

तीर्थकृद्भिः प्रणीतत्वाद् लोकोत्तरि भावश्रुतम्। तत्स्वरूपमाह–'तं जहा' इत्यादिना–तद्यथा–आचारः, सूत्रकृतं, थानं, समवायो विवाहप्रज्ञप्तिः, ज्ञाताधर्मकथाः, उपासकदशाः, अन्तकृत शाः. अनुत्तरापपातिकदशाः, प्रश्नव्याकरणानि विपाकश्रुतं, दृष्टिवादश्च। सर्वज्ञप्रणीतं द्वादशाङ्गरूपं यद् गणिपिटकं. तदर्थोपयागो भावश्रुतं उपयोगो भावनिक्षेप इति वचनात्। स चोपयोगश्चरणगुणसमन्वितश्चेत् तर्हि नो आगमतो भावश्रुतं भवति. चरणगुणस्य क्रियारूपत्वेन आनागमत्वात्. नो शब्दस्य च देशप्रतिषेधकत्वेना यणात्। उपयोगचारित्रवान्

(गणिपिडगं पणीयं) गणिपिटक प्ररूपित हुआ है लोकोत्तर तीर्थंकरों द्वारा प्रणीत होने के कारण लोकोत्तरिक भावश्रुत है। 'तं जहा' द्वादश अंगों के नाम इस प्रकार है।–(आयारो) आचारांग (सूयगडो सूत्रकृतांग (ठाणं) स्थानांग (समवाओ) समवायांग (विवाह पण्णत्ती) विवाह प्रज्ञप्ति-'भगवती सूत्र' (नायाधम्मकहाओ) ज्ञाता धर्मकथा (उवासगदसाओ) उपासक दशांग (अंतगडदसाओ) अन्तकृद्दशांग (अणुत्तराववाइयदसाओ) अनुत्तरापपातिक दशांग (पण्हावागरणाइं) प्रश्नव्याकरण, (विवागसुयं) विपाकश्रुत (दिट्ठिवाओ य) और दृष्टिवाद। इन बारह अंगों के अर्थ में जो उपयोगरूप परिणाम है वह भावश्रुत है "उपयोगो भावनिक्षेप" है, ऐसा सिद्धान्त का वचन है। यह उपयोगरूप परिणाम यदि चरणगुण–चारित्र गुण से युक्त है तो वह नोआगम से भावश्रुत है क्यों कि चरण गुण क्रियारूप है और क्रिया आगम नहीं होती है। इस प्रकार यहां नोशब्द में आगम एकदेश में निषेधक होने से देश प्रतिषेधकता बन जाती है। यद्यपि उपयोग और चारित्र गुण से

ભાવશ્રુતરૂપ છે. (तं जहा) તે દ્વાદશ (બાર) અંગોના નામ નીચે પ્રમાણે છે–(आयारो) (१) આચારાંગ, (सूयगडो) (२) સૂત્રકૃતાંગ. (ठाणं) (३) સ્થાનાંગ, (समवाओ) (४) સમવાયાંગ. (विवाह पण्णत्ती) (५) વિવાહ પ્રજ્ઞપ્તિ (ભગવતી સૂત્ર) (नाया धम्मकहाओ) (६) જ્ઞાતા ધર્મકથા. (उवासगदसाओ) (७) ઉપાસકદશાંગ. (अंतगडदसाओ) (८) અન્તકૃતદશાંગ. (अणुत्तरोववाइयदसाओ) (९) અનુત્તરોપપાતિકદશાંગ. (पण्हावागरणाइं) (१०) પ્રશ્નવ્યાકરણ. (विवागसुयं) (११) વિપાકશ્રુત અને 'दिट्ठिवाओ य' (१२) દૃષ્ટિવાદ. આ બારે અંગોના અર્થમાં જે ઉપયોગરૂપ પરિણામ છે તેનું નામ ભાવશ્રુત છે. કારણ કે "उपयोगो भावनिक्षेपः" આ પ્રકારનું સિદ્ધાન્તનું વચન છે. આ ઉપયોગ રૂપ પરિણામ જો ચરણગુણ–ચરિત્રગુણથી યુક્ત હોય તો તે નોઆગમની અપેક્ષાએ ભાવશ્રુત છે, કારણ કે ચરણગુણ ક્રિયારૂપ હોય છે, અને ક્રિયા આગમરૂપ હોતી નથી. આ પ્રકારે અહીં 'નો' પદ એકદેશની અપેક્ષાએ આગમનું નિષેધક હોવાથી દેશપ્રતિષેધકતા ઘટિત થઈ જાય છે. જો કે ઉપ-

साध्वादिष्वभेदोपचाराद् भावश्रुतं भवितुमर्हति। इह तु चारित्रसमन्वितो द्वादशाङ्गोपयोगो नोआगमतो भावश्रुतमित्याशयेन द्वादशाङ्गो गणिपिटकमित्युक्तम्। अन्यथा शब्दात्मकस्य द्वादशाङ्गस्योपयोगरूपत्वाभावाद् भावश्रुतत्वं नोपपद्यते। प्रकृतमुपसंहरन्नाह-'से तं' इति। तदेतद् लोकोत्तरिकं नो आगमतो भावश्रुतम्। सर्वं नो आगमतो भावश्रुतं निरूपितमिति सूचयितुमाह-'से तं' इति। तदेतन्नो आगमतो भावश्रुतम्। इत्थं सभेदं भावश्रुतं प्ररूपितमिति सूचयितुमाह-'से तं भावसुयं' इति। तदेतद् भावश्रुतम् इति। सू० ४३॥

इत्थं भावश्रुतस्वरूपमुक्त्वा सम्प्रति तत्पर्यायानाह-

मूलम्—तस्स णं इमे एगट्ठिया णाणाघोसा णाणावंजणा नामधेज्जा भवंति, तं जहा—

सुयसुत्तगंथसिद्धं,—तसासणे आणावयण उवएसे।

पन्नवण आगमे वि य, एगट्ठा पज्जवा सुत्ते॥

से त सुयं॥सू० ४४॥

युक्त हुआ साधु आदि भी अभेदोपचार से भावश्रुत हो सकता है, परन्तु यहां जो द्वादशाङ्गगणिपिटक को नोआगम से भावश्रुत कहा है वह द्वादशांग के चारित्रगुणसमन्वित उपयोग को लेकर ही कहा है ऐसा जानना चाहिये। क्योंकि शब्दात्मक जो द्वादशांग है वह उपयोगरूप नहीं होता है। अतः उसमें उपयोगरूपता का अभाव होने के कारण भावश्रुतता नहीं बनती है। (से तं नोआगमओ भावसुयं) इस तरह नोआगम को आश्रित करके यह लोकोत्तरिक भावश्रुत का स्वरूप है। (से तं भावसुयं) इस प्रकार से सूत्रकारने सभेद भावश्रुत की प्ररूपणा यहां तक की है। ॥सूत्र ४३॥

યોગ અને ચારિત્રગુણથી યુકત થયેલા સાધુ આદિ પણ અભેદોપચારથી ભાવશ્રુત હેઇ શકે છે, પરન્તુ અહીં જે દ્વાદશાંગરૂપ ગણિપિટકને નોઆગમની અપેક્ષાએ ભાવશ્રુત કહ્યું છે તે દ્વાદશાંગના ચારિત્રગુણ સમન્વત ઉપયોગની અપેક્ષાએ જ કહેવામાં આવ્યું છે, એમ સમજવું જોઇએ, કારણ કે શબ્દાત્મક જે દ્વાદશાંગ છે તે ઉપયોગ રૂપ હોતું નથી. તેથી તેમાં ઉપયોગ રૂપતાનો અભાવ હોવાને કારણે ભાવશ્રુતતા સંભવી શકતી નથી. (से तं नोआगमओ भावसुयं) આ પ્રકારનું નોઆગમને આશ્રિત કરીને લોકોત્તરિક ભાવશ્રુત નામના નોઆગમ ભાવશ્રુતના ત્રીજા ભેદનું સ્વરૂપ સમજવું (से तं भावसुयं) આ પ્રકારે સૂત્રકારે ભાવશ્રુતના ભેદોની અહીં સુધીમાં પ્રરૂપણા કરી છે આ રીતે ભાવશ્રુતનું વર્ણન અહીં સમાપ્તથાયછે.॥સૂ૦૪૩॥

छाया—तस्य खलु इमानि एकार्थिकानि नानाघोषाणि नानाव्यञ्जनानि नामधेयानि भवन्ति, तद्यथा—

श्रुतसूत्रग्रन्थसिद्धान्त शासनमाज्ञावचनमुपदेशः ।
प्रज्ञापना आगमोऽपि च एकार्थाः पर्यायाः सूत्रे ॥
तदेतत् श्रुतम् ॥ सू० ४४ ॥

टीका—'तस्स णं' इत्यादि—

तस्य=भावश्रुतस्य खलु इमानि=वक्ष्यमाणानि एकार्थिकानि=एकार्थविषयाणि नानाघोषाणि=उदात्तानुदात्तादि नानास्वरयुक्तानि, नानाव्यञ्जनानि=ककारादयनेकव्यञ्जनात्मकानि नामधेयानि=नामानि भवन्ति, तद्यथा—श्रुतसूत्र'सिद्धान्त' ग्रन्थशासनम्—तत्र— श्रुतम्—श्रूयते गुरुसमीपे यत्तत्श्रुतम १, सूत्रम्—अर्थानां सूचकं सूत्रम् २, ग्रन्थः—तीर्थंकरकल्पपादपवचनप्रसूनानां ग्रन्थनाद् ग्रन्थः ३, सिद्धान्तः

अब सूत्रकार भावश्रुत के पर्यायवाची शब्दों को कहते हैं।
"तस्स णं इमे" इत्यादि ॥ सू० ४४ ॥

शब्दार्थ—(तस्स णं इमे णाणाघोसा णाणावंजणा एगट्ठिया नामधेज्जा भवंति) उस भावश्रुत के ये उदात्त अनुदात्त आदि नाना स्वरों से युक्त, और ककारआदि अनेक व्यञ्जनोंवाले एकार्थविषयक नाम हैं। (तं जहा) जो इस प्रकार से ह—

(सुयसुत्तगंथसिद्धंतसासणे आणवयणउवएसे पन्नवणआगमे वि य एगट्ठा-पज्जवा सुत्ते) गुरु के समीप सुना जाने के कारण भावश्रुत का नाम श्रुत है अर्थों की सूचना इससे होती है इसलिये इसका नाम सूत्र है। तीर्थंकर रूप कल्पवृक्ष के वचन रूप पुष्पों का इसमें ग्रथन रहता है इसलिये इसका

હવે સૂત્રકાર ભાવશ્રુતના પર્યાયવાચી શબ્દોનું કથન કરે છે—
"तस्सणं इमे" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(तस्सणं इमे णाणाघोसा णाणावंजणा एगट्ठिया नामधेज्जा भवंति) તે શ્રુતના, ઉદાત્ત અનુદાત્ત આદિ વિવિધ સ્વરોથી યુકત અને ૮કાર આદિ અનેકવ્યંજનોથી યુકત એકાર્થવાચક નામો છે. (तंजहा) તે નામો નીચે પ્રમાણે છે—

(सुयसुत्तगंथसिद्धंतसासणे आणवयण उवएसे पन्नवण आगमे वि य एगट्ठा पज्जवा सुत्ते) (૧) શ્રુત—ગુરુની સમીપે તેનું શ્રવણ કરવામાં આવે છે, તે કારણે તેનું નામશ્રુત છે. (૨) સૂત્ર—અર્થોની સૂચના તેના દ્વારા મળે છે તેથી તેનું બીજું નામ સૂત્ર છે.

(૩) ગ્રન્થ—તીર્થંકરો રૂપ કલ્પવૃક્ષના વચનરૂપી પુષ્પોનું તેમાં ગ્રથન થયેલું

सिद्धं=प्रमाणप्रतिष्ठितमर्थम् अन्तं नयति=प्रमाणकोटिमारोहयतीति सिद्धान्तः४, शासनम्—मिथ्यात्वाविरतिकषायादिप्रवृत्तजीवानां शासनात्=शिक्षणाद्—शासनम् ५, एषां समाहारः । तथा-आज्ञा-आज्ञाप्यन्ते मोक्षार्थिनः प्राणिनोऽनयेति-आज्ञा६, वचनम्—उक्तिः=वाग्योग इत्यर्थः७, उपदेशः-हिताहितप्रवृत्तिनिवृत्त्युपदेशनात्—उपदेशः८, प्रज्ञापना—प्रज्ञाप्यन्ते यथावस्थितजीवादिपदार्थो अनयेति प्रज्ञापना९, अपि च आगमःआचार्यपारम्पर्येणागच्छतीति-आगमः, आप्तवचनं वा आगम१०, एते सर्वेऽपि सूत्रविषये एकार्थाः पर्यायाः बोद्धव्याः । प्रकृतमुपसंहरन्नाह-तदेतत् श्रुतम्—श्रुतादिनामभेदैर्यदुक्तं तत् श्रुतं विज्ञेयमिति ॥सू० ४४॥

नाम ग्रन्थ है। प्रमाण प्रतिष्ठित अर्थ को यह प्रमाण कोटिमें स्थापित कर देता है इसलिये इसका नाम सिद्धान्त है, मिथ्यात्व अविरति, और कषाय आदि में प्रवृत्त हुए व्यक्तियों का उनसे दूर होनेकी शिक्षा देता है इसलिये इसका नाम शासन है। मोक्षाभिलाषी प्राणी जन इससे आज्ञापित किये जाते है, इसलिये इसका नाम आज्ञा है। वाणी के द्वारा यह स्पष्ट किया जाता है इसलिये इसका नाम वचन है। जीवों को इससे हित में प्रवृत्त होने की शिक्षा (उपदेश) मिलता है इसलिये इसका नाम उपदेश है। इसके द्वारा जावादिक समस्त पदार्थ जिस रूप में स्थित है उसी रूप से प्रज्ञापित किये जाते हैं इसलिये इसका नाम 'प्रज्ञापना' है। आचार्य परंपरा से यह चला आ रहा है इसलिये इसका नाम 'आगम' है। अथवा यह आप्त का वचन है इसलिये भी 'आगम' है। ये सब सूत्र के पर्यायवाची शब्द है ऐसा जानना

હોવાથી તેનું નામ ગ્રન્થ છે. (૪) સિદ્ધાંત પ્રમાણપ્રતિષ્ઠિત અર્થને તે પ્રમાણભૂતની કોટિમાં સ્થાપિત કરી દે છે તેથી તેનું નામ સિદ્ધાંત છે. (૫) શાસન મિથ્યાત્વ, અવિરતિ, કષાય આદિમાં પ્રવૃત્ત થયેલી વ્યક્તિઓને તેનાથી દૂર રહેવાની શિક્ષા તે આપે છે, તેથી તેનું પાંચમું નામ શાસન છે (૬) આજ્ઞા-તેના દ્વારા મનુષ્ય આદિને અમુક આજ્ઞાઓ આપવામાં આવે છે, તેથી તેનું છઠ્ઠું નામ આજ્ઞા છે. (૭) વચનવાણી દ્વારા તેને સ્પષ્ટ કરવામાં આવે છે, તેથી તેનું નામ વચન છે. (૮) ઉપદેશ-તેના દ્વારા જીવોને ઉપાદેયોમાં પ્રવૃત્ત થવાની અને અનુપાદેય (હેય પદાર્થો)થી નિવૃત્ત થવાની શિક્ષા (ઉપદેશ) મળે છે, તેથી તેનું આઠમું નામ ઉપદેશ છે. (૯) પ્રજ્ઞાપના-તેના દ્વારા, જીવાદિક પદાર્થો જે રૂપે વર્તમાનમાં છે એજ રૂપે પ્રજ્ઞાપિત કરવામાં આવે છે એટલે કે જીવાદિક સમસ્ત પદાર્થોના યથાર્થ સ્વરૂપને પ્રજ્ઞાપિત કરવામાં આવે છે, તેથી તેનું નામ પ્રજ્ઞાપના છે. (૧૦) આગમ-આચાર્ય પરમ્પરાથી તે ચાલ્યું આવે છે, તેથી તેનું નામ "આગમ" છે. આ બધા શ્રુતના

इत्थं श्रुताधिकारमुक्त्वा सम्प्रति–'खंधं निक्खिविस्सामि' इति कथनानुसारेण स्कन्धाधिकार उच्यते—

मूलम्–से किं तं खंधे ? खंधे चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा–नामखंधे ठवणाखंधे दव्वखंधे भावखंधे ॥ सू० ४५ ॥

छाया–अथ कोऽसौ स्कन्धः ? स्कन्धश्चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–नामस्कन्धः, स्थापनास्कन्धः द्रव्यस्कन्धः, भावस्कन्धः ॥ सू० ४५ ॥

टीका–'से किं त' इत्यादि–

अस्य व्याख्या स्पष्टा, नवरं–स्कन्धःपरमाण्वादि समुदायः ॥४५॥

चाहिये। (से तं सुयं) इस तरह इन श्रुतादि नामों से यह श्रुत कहा गया है ॥सूत्र४४॥

अब सूत्रकार (खंधं निक्खिविस्सामि) इस कथन के अनुसार स्कन्धाधिकार प्रारंभ करते हैं—

शब्दार्थः–(से किं तं खंधे) हे भदन्त ! स्कंधका क्या स्वरूप है ? (खंधेचउव्विहे पण्णत्ते)

उत्तरः–स्कंधका स्वरूप प्रकट करने के लिये उस के चार प्रकार प्रज्ञप्त हुए हैं–(तं जहा) वे इस तरह से हैं–(नामखंधे) नाम स्कंध (ठवणा खंधे) स्थापना स्कंध (दव्वस्कंधे) द्रव्यस्कंध (भावखंधे) और भावस्कंध। स्कंध शब्द का अर्थ है पुद्गल परमाणुओं का संश्लेष। इसकी व्याख्या पहिले की गई व्याख्या की तरह ही जाननी चाहिये।

પર્યાયવાચી શબ્દો છે, એમ સમજવું જોઇએ. (से तं सुयं) આ પ્રકારે અહીં શ્રુતનું નિરૂપણ સમાપ્ત થાય છે. ॥ સૂ૦ ૪૪ ॥

હવે સૂત્રકાર 'खंधं निक्खिविस्सामि'' આ કથન અનુસાર સ્કન્ધાધિકારનો પ્રારંભ કરે છે—'से किं तं खंधे'' ઇત્યાદિ–

શબ્દાર્થ–(से किं खंधे ?) શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે હે ભગવન્! સ્કન્ધનું કેવું સ્વરૂપ હોય છે ?

ઉત્તર–(खंधे चउव्विहे पण्णत्ते) સ્કન્ધના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરવા નિમિત્તે તેના ચાર પ્રકાર કહ્યા છે. (तंजहा) તે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે-(नामखंधे, ठवणाखंधे, दव्वखंधे, भावखंधे) (૧) નામસ્કન્ધ, (૨) સ્થાપનાસ્કન્ધ, (૩) દ્રવ્યસ્કન્ધ અને (૪) ભાવસ્કન્ધ સ્કન્ધ શબ્દનો અર્થ ''પુદ્ગલ પરમાણુઓના સંશ્લેષ'' સમજવો આ સૂત્રની વ્યાખ્યા આગળ કહેલી વ્યાખ્યા પ્રમાણે સમજવી.

भावार्थः—रूप, गंध, रस, और स्पर्श जिसमें पाये जाते हैं उसका नाम पुद्गल है। यह पुद्गल अणु और स्कंध के भेद से दो प्रकार का कहा गया है। कितने ही प्रकार के पुद्गल क्यों न हों. वे सब इन दो भागों में समा जाते हैं। जो पुद्गलद्रव्य अतिसूक्ष्म है—जिस का भेद नहीं हो सकता है इसी कारण से जो स्वयं अपना ही आदि अथवा अपना ही अंत और अपना ही मध्य है, दो स्पर्श एक रस, एक गंध, और एक वर्ण से युक्त है वह परमाणु है। यद्यपि पुद्गल स्कंध में स्निग्ध रूक्ष में से एक, शीत उष्ण में एक मृदु कठोर में से एक, और लघु गुरु में से एक, ये चार स्पर्श होते हैं, किन्तु परमाणु के अतिसूक्ष्म होने के कारण उसमें मृदु कठोर लघु और गुरु, इन चार स्पर्शों का प्रश्न ही नहीं उठता है। इसलिये इसमें केवल दो स्पर्श माने गये हैं। इससे अन्य द्वयणुक आदि स्कंध बनते हैं। इसलिये यह उनका कारण है। कार्य नहीं।

यद्यपि द्वयणुक आदि स्कंधों का भेद होने से परमाणु की उत्पत्ति देखी जाती है इसलिये यह भी कथञ्चित् कार्य ठहरता है परन्तु मौलिक रूप में यह पुद्गलकी स्वाभाविक दशा है इसलिये वस्तुतः यह किसी का कार्य नही है। इसका ज्ञान इन्द्रियों से नहीं होता—किन्तु कार्य लिङ्ग द्वारा इसका अनुमान ज्ञान

ભાવાર્થ—જેમાં રૂપ, ગંધ, રસ અને સ્પર્શનો સદ્ભાવ હોય છે, તેનું નામ પુદ્ગલ છે. તે પુદ્ગલના બે ભેદ કહ્યા છે- (૧) અણુ અને (૨) સ્કન્ધ ભલે ગમે તેટલા પ્રકારના પુદ્ગલો હોય પણ તે બધાંનો આ બે ભેદોમાં સમાવેશ થઈ જાય છે.

જે પુદ્ગલ દ્રવ્ય અતિ સૂક્ષ્મ હોય છે, જેના વિભાગ થઈ શકતા નથી, અને તે કારણે જે પોતે જ પોતાના આદિરૂપ, પોતાના અન્તરૂપ અને પોતાના મધ્યરૂપ હોય છે, જે બે સ્પર્શ, એક રસ, એક ગંધ અને એક વર્ણથી યુકત હોય છે, એવાં પુદ્ગલ દ્રવ્યને પરમાણુ કહે છે. જો કે પુદ્ગલ સ્કન્ધમાં સ્નિગ્ધ અને કઠોર આ બે સ્પર્શોમાંનો એક સ્પર્શ, શીત અને ઉષ્ણ, આ બેમાંથી એક, મૃદુ અને કઠોર આ બે સ્પર્શમાંથી એક લઘુ અને ગુરુ, આ બેમાંથી એક, એમ ચાર સ્પર્શોનો સદ્ભાવ હોય છે, પરન્તુ પરમાણુ અતિ સૂક્ષ્મ હોવાને લીધે તેમાં મૃદુ, કઠોર, લઘુ અને ગુરુ, આ ચાર સ્પર્શોના સદ્ભાવનો તો પ્રશ્ન જ ઉદ્ભવતો નથી. તેથી તેમાં માત્ર બે સ્પર્શોનો જ સદ્ભાવ માનવામાં આવ્યો છે. તે પરમાણુમાંથી અન્ય દ્વયણુક (બે અણુવાળા) આદિ સ્કન્ધ બને છે. તેથી સ્કન્ધો બનાવવામાં તે કારણભૂત બને છે—કાર્યભૂત બનતું નથી. જો કે દ્વયણુક આદિ સ્કન્ધોનો વિભાગ થવાથી પરમાણુની ઉત્પત્તિ થતી જોવામાં આવે છે, તેથી તે પણ કયારેક કાર્યરૂપ બને છે. પરન્તુ મૌલિક રૂપે પુદ્ગલની તે સ્વાભાવિક દશા છે, તેથી વસ્તુતઃ તે કોઈના કાર્યરૂપ નથી. તે પરમાણુનું જ્ઞાન ઇન્દ્રિયોથી થતું નથી, પરન્તુ કાર્યલિંગ

मूलम्--नामट्ठवणाओ पुव्वभणियाणुक्कमेण भाणियव्वाओ ॥सू० ४६॥

छाया—नामस्थापने पूर्वभणितानुक्रमेण भणितव्ये ॥ सू० ४६ ॥

टीका—'नामट्ठवणाओ' इत्यादि—

नामस्कन्धः स्थापनास्कन्धश्च नामावश्यकस्थापनाऽऽवश्यक—प्रतिपादक सूत्राऽनुसारेण वक्तव्यौ । इति ॥सू० ४६॥

से बोध होता है। स्कंध दो या दो से अधिक परमाणुओं के संश्लेष से बनता है। द्वयणुक तो परमाणुओं के संश्लेष से ही बनता है—परन्तु त्र्यणुक आदि स्कंध परमाणुओं के संश्लेष से भी बनते है तथा परमाणु और स्कंध के संश्लेष से या विविध स्कंधों के संश्लेष से भी बनते हैं। इसलिये अन्त्यस्कंध के सिवा शेष सब स्कंध परस्पर कार्य भी हैं और कारण भी। जिन स्कंधों से बनते हैं उनके कार्य हैं और जिन्हें बनाते हैं उनके कारण भी ॥सूत्र४५॥

"नाम ट्ठवणाओ पुव्वभाणियाणुक्कमेण भाणिय व्वाओ" इत्यादि ॥ सूत्र ४६ ॥

शब्दार्थ—(नाम मट्ठवणाओ पुव्वभणियाणुक्कमेण भाणियव्वाओ) नाम स्कंध और स्थापनास्कंध का स्वरूप नाम आवश्यक और स्थापना आवश्यक के स्वरूप का प्रतिपादन करनेवाले सूत्रों के अनुसार जानना चाहिये। विशेषता केवल इतनी ही है। कि नाम आवश्यक की जगह नामस्कंध और स्थापना आवश्यक कि जगह स्थापना स्कंध लगाकर सूत्रों का अनुगम करना चाहिये। ॥सूत्र ४६॥

દ્વારા તેનો અનુમાન જ્ઞાનથી બોધ થાય છે. બે અથવા બેથી વધારે પરમાણુઓના સંશ્લેષથી સ્કન્ધ બને છે, દ્વયણુક સ્કન્ધ તો પરમાણુઓના સંશ્લેષથી જ બને છે, પણ ત્રયણુક (ત્રણ અણુવાળો) આદિ સ્કન્ધો પરમાણુઓના સંશ્લેષથી પણ બને છે અથવા વિવિધ સ્કન્ધોના સંશ્લેષથી પણ બને છે. તેથી દ્વયણુક સ્કન્ધ સિવાયના બાકીના બધાં સ્કન્ધો પરસ્પર કાર્ય પણ છે અને કારણ પણ છે—જે સ્કન્ધોમાંથી તેઓ બને છે તે સ્કન્ધોના કાર્યરૂપ અને જે સ્કન્ધોને તેઓ બનાવે છે તેમના કારણરૂપ છે, એમ સમજવું. ॥ સૂ૦ ૪૫ ॥

"नामट्ठवणाओ पुव्वभणियाणुक्कमेण भाणियव्वाओ" इत्यादि—

શબ્દાર્થ—(नामट्ठवणाओ पुव्वभणियाणुक्कमेण भाणियव्वाओ) નામસ્કન્ધ અને સ્થાપનાસ્કન્ધના સ્વરૂપનું નિરૂપણ નામ આવશ્યક અને સ્થાપના આવશ્યકના સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કરનારાં સૂત્રો પ્રમાણે જ સમજવું નહીં. એટલી જ વિશેષતા સમજવાની છે કે નામ આવશ્યકને બદલે નામસ્કન્ધ અને સ્થાપના સ્કન્ધ સૂત્રોનું કથન થવું જોઇએ. ॥ સૂત્ર ૪૬ ॥

अथ द्रव्यस्कन्धं निरूपयति—

मूलम्—से किं तं दव्वखंधे? दव्वखंधे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा आगमओ य नोआगमओ य। से क त आगमओ दव्वखंधे? आ मओ दव्वखंधे—जस्स णं खंधेत्ति प सिक्खियं, सेसं जहा द वावस्सए तहा भाणियव्वं। नवर खधाभिलावो जाव से किं तं जाणयसरीरभवियसरीर इरित्ते दव्वखंधे! जाणयसरीरवइरित्ते दव्वखंध तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—सचित्त अचि मीसए ॥सू० ४७॥

छाया—अथ कोऽसौ द्रव्यस्कन्धः? द्रव्यस्कन्धो द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—आगमतश्च नोआगमतश्च। अथ कोऽसौ आगमतो द्रव्यस्कन्धः? आगमतो द्रव्यस्कन्धः—यस्य खलु स्कन्धेति पदं शिक्षितम्, शेषं यथा द्रव्यावश्यके तथा

अब सूत्रकार द्रव्यस्कंध का निरूपण करते हैं—

"से किं तं दव्वखंधे" इत्यादि ॥ सूत्र ४७ ॥

शब्दार्थः—(से) हे भदन्त! (तं) पूर्वप्रक्रान्त (दव्वखंधे) द्रव्यस्कंध (किं) कया है?

उत्तर—(दव्वखंधे दुविहे पण्णत्ते) द्रव्यस्कंध दो प्रकार का कहा गया है। (तंजहा) जैसे (आगमओ य नोआगमओ य) १ एक आगम को लेकर और दूसरा नोआगम को लेकर। (से किं तं आगमओ दव्यखंधे) आगम से द्रव्य स्कंधका क्या स्वरूप है? (आगमओ दव्वखंधे जस्स णं खंधेत्ति पयं

હવે સૂત્રકાર દ્રવ્યસ્કન્ધનું નિરૂપણ કરે છે-

"से किं तं दव्वखंधे" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(से) શિષ્ય ગુરૂને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે (तं) પૂર્વ પ્રસ્તુત (दव्वखंधे) દ્રવ્યસ્કન્ધનું (किं) કેવું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર—(दव्वखंधे दुविहे पण्णत्ते) દ્રવ્યસ્કન્ધ બે પ્રકારના કહ્યા છે (तंजहा) તે બે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે—(१) (आगमओ य, नोआगमओय) (१) આગમની અપેક્ષાએ દ્રવ્યસ્કન્ધ અને (२) નોઆગમની અપેક્ષાએ દ્રવ્યસ્કન્ધ.

(से किं तं आगमओ दव्वखंधे?) હે ભગવન્! આગમને આશ્રિત કરીને દ્રવ્યસ્કન્ધનું કેવું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર—(आगमओ दव्वखंधे जस्सणं खंधे त्ति पयं सिक्खियं सेसं जहा दव्वावस्सए तहा भाणियव्वं) આગમની અપેક્ષાએ આગમને આશ્રિત કરીને

भणितव्वं । नवरं स्कन्धाभिलापो यावत्-अथ कोऽसौ ज्ञायकशरीरभव्यशरीर-व्यतिरिक्तो द्रव्यस्कन्धः ? ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तो द्रव्यस्कन्धस्त्रिविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-सचित्तः अचित्तो मिश्रकः ॥ ४७ ॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि । व्याख्या निगदसिद्धा ॥सू० ४७॥

तिक्खियं सेसं जहा दव्वावस्सए तहा भाणियव्वं) उत्तर–आगम से–आगम को आश्रित करके– द्रव्यस्कंध का स्वरूप इस प्रकार से है, जिस साधु आदि ने स्कंध इस पदके अर्थ को गुरु के मुख से सीख लिया है यहां से लेकर "ठियं-जियं" आदि शेष पदों को यहां कहना चाहिये और उनका अर्थ जिस प्रकार से द्रव्यावश्यक के वर्णन में कहा गया है वैसा ही अर्थ यहां पर उस पाठका लगा लेना चाहिये। इस तरह स्कंध संबन्धी आलाप "अथ कोऽसौ ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तो द्रव्यस्कंधः" यहां तक समझलेना चाहिये। (जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वखंधे तिविहे पण्णत्ते) ज्ञायकशरीर भव्य-शरीर से व्यतिरिक्त द्रव्यस्कंध तीन प्रकार का कहा गया है। (तंजहा) वे प्रकार ये हैं (सचित्ते अचित्ते मीसए) सचित्त, अचित्त और मिश्र।

भावार्थः–शिष्य ने गुरुमहाराज से पूछा है कि हे भदन्त ! द्रव्य स्कंध का क्या स्वरूप है ? तब गुरु महाराज ने उसे समझाने के लिये ऐसा कहा कि हे शिष्य। द्रव्य स्कंध को स्वरूप दो प्रकार से निर्धारित किया गया है–१

દ્રવ્યસ્કન્ધનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે–" જે સાધુએ 'સ્કન્ધ' આ પદના અર્થને ગુરુની સમીપે શીખી લીધો છે," અહીંથી શરૂ કરીને "ठियं जियं" આદિ દ્રવ્યાવશ્યક સૂત્રમાં આવેલા પદોને અહીં પણ ગ્રહણ કરવા જોઇએ. તે પદોનો જે પ્રકારનો અર્થ દ્રવ્યાવશ્યક સૂત્રમાં કરવામાં આવ્યો છે, તે પ્રકારનો અર્થ અહીં પણ ગ્રહણ થવો જોઇએ. આ પ્રકારે સ્કન્ધ સંબંધી "अथ कोऽसौ ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्तो द्रव्यस्कन्धः" અહીં સુધીનું ગ્રહણ થવું જોઇએ.

(जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वखंधे तिविहे पण्णत्ते) જ્ઞાયકશરીર અને ભવ્યશરીર વ્યતિરિક્ત (થી ભિન્ન) દ્રવ્યસ્કન્ધ ત્રણ પ્રકારનો કહ્યો છે. (तं जहा) તે પ્રકારો આ પ્રમાણે છે–

(सचित्ते अचित्त मीसए) (૧) સચિત્ત (૨) અચિત્ત અને (૩) મિશ્ર.

ભાવાર્થ–શિષ્ય ગુરુ મહારાજને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે 'હે ભગવન્ ! દ્રવ્યસ્કન્ધનું સ્વરૂપ કેવું છે?" ત્યારે ગુરુ તેને તે સમજાવવા માટે ભેદ પ્રભેદપૂર્વક તેના સ્વરૂપનું નીચે પ્રમાણે નિરૂપણ કરે છે.

તેઓ તેને કહે છે કે દ્રવ્યસ્કન્ધનું સ્વરૂપ બે પ્રકારે નિર્ધારિત કરી શકાય છે

आगम को आश्रित करके और दूसरा नाआगम को आश्रित करके। इनमें आगम को आश्रित करके द्रव्यस्कंध का स्वरूप जैसा पीछे १४ वें सूत्र में आगम को आश्रित करके द्रव्यावश्यक का स्वरूप कहा गया है—वैसा ही जानना चाहिये। जिसका तात्पर्य यह है कि जिस साधु आदि ने स्कंध के स्वरूप को प्रतिपादन करनेवाले शास्त्र को अच्छी तरह से जान तो लिया है परन्तु वह उसमें उपयोग से वर्जित है ऐसा वह साधु आगम की अपेक्षा द्रव्यस्कंध ज्ञायकशरीर द्रव्यस्कंध, भव्यशरीर द्रव्यस्कंध, और इन दोनों से व्यतिरिक्त द्रव्यस्कंध इसतरह से ३ तीन प्रकार का है। इनमें पहिले पदोंका स्वरूप १६, १७, १८, इन तीन सूत्रो द्वारा पीछे स्पष्ट किया गया है। वहां आवश्यक पद की जगह स्कंध पद लगाकर इसे समझलेना चाहिये। इसका सारांश ह है कि स्कंधशास्त्र के ज्ञाता का जो निर्जिव शरीर हैं वह नोआगम की अपेक्षा ज्ञायकशरीर है। तथा आगे जिस शरीर से स्कंधशास्त्र को वह

---

(૧) આગમને આશ્રિત કરીને અને (૨) નો આગમને આશ્રિત કરીને.

આગમનો આધાર લઇને દ્રવ્યસ્કન્ધનું કેવું સ્વરૂપ છે તે હવે સમજાવવામાં આવે છે. ૧૪માં સૂત્રમાં આગમનો આધાર લઇને દ્રવ્યાવશ્યકનું જેવું સ્વરૂપ કહેવામાં આવ્યું છે. એવું જ આગમને આશ્રિત કરીને દ્રવ્યસ્કન્ધનું સ્વરૂપ સમજવું. આ કથનનો સંક્ષિપ્ત સારાંશ નીચે પ્રમાણે સમજવો.

જે સાધુ આદિએ સ્કન્ધના સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કરનારા શાસ્ત્રને સારી રીતે જાણી લીધું છે, પરન્તુ તે તેમાં ઉપયોગ પરિણામથી રહિત છે, એવો તે સાધુ આગમની અપેક્ષાએ દ્રવ્યસ્કંધ રૂપ છે. નોઆગમની અપેક્ષાએ દ્રવ્યસ્કન્ધના ત્રણ પ્રકાર કહ્યા છે (૧) જ્ઞાયકશરીર દ્રવ્યસ્કન્ધ, (૨) ભવ્યશરીર દ્રવ્યસ્કન્ધ અને (૩) ઉપર્યુકત બન્નેથી વ્યતિરિકત (ભિન્ન એવો) દ્રવ્યસ્કન્ધ આ ત્રણ પ્રકારોમાંના પહેલા બે પ્રકારોનું સ્વરૂપ સૂત્ર ૧૭ ૧૮ અને ૧૯માં સૂત્રમાં કહ્યા અનુસાર જ સમજવું જોઇએ. ત્યાં 'આવશ્યક' શબ્દની જગ્યાએ 'સ્કન્ધ' શબ્દ મૂકવાથી સ્કન્ધ વિષયક કથન બની જશે. તે સૂત્રોનો સારાંશ નીચે પ્રમાણે છે સ્કન્ધશાસ્ત્રના જ્ઞાતાનું જે નિર્જીવ શરીર છે તે નોઆગમની અપેક્ષાએ જ્ઞાયકશરીર દ્રવ્યસ્કન્ધ રૂપ છે, તથા જે જીવ ગૃહીત શરીર દ્વારા ભવિષ્યમાં સ્કન્ધશાસ્ત્રનો જ્ઞાતા બનવાનો છે, તેના શરીરને નોઆગમ ભવ્યશરીર દ્રવ્યસ્કન્ધ રૂપ સમજવું.

હવે આ બન્નેથી વ્યતિરિકત (ભિન્ન) જે દ્રવ્યસ્કન્ધ છે, તેનું સ્વરૂપ સમજા-

तत्र सचित्तरूपं प्रथमं भेदं प्ररूपयितुमाह—

मूलम्—से किं तं सचित्ते दव्वखंधे ? सचित्ते दव्वखंधे अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा—हयखंधे गयखंधे किंनरखंधे किंपुरिसखंधे महोरगखंधे गंधव्वखंधे उसभखंधे । से तं सचित्ते दव्वखंधे ॥सू० ४८॥

छाया-अथ कोऽसौ सचित्तो द्रव्यस्कन्धः ? सचित्तो द्रव्यस्कन्धोऽनेकविधःप्रज्ञप्तः, तद्यथा-हयस्कन्धो गजस्कन्धः किन्नरस्कन्धः किम्पुरुषस्कन्धो महोरगस्कन्धो गन्धर्वस्कन्धो वृषभस्कन्धः । स एष सचित्तो द्रव्यस्कन्धः ॥सू० ४८॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—'से किं तं' इत्यादि । अथ कोऽसौ सचित्तो द्रव्यस्कन्धः ? इति । उत्तरमाह—'सचित्ते दव्वखंधे' इत्यादि । चित्तं चेतनासंज्ञानमुपयोगोऽवधानं मनोविज्ञानमिति पर्यायाः, चित्तेन सह वर्तते सचित्तः, द्रव्यस्कन्धः अनेकविधः=व्यक्तिभेदात् अनेकप्रकारकः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-हयस्कन्धः हयः=अश्वः, स एव विशिष्टैकपरिणामपरिणतत्वात् स्कन्धो हयस्कन्धः, एवं गजस्कन्धः, किन्नरादयो गन्धर्वान्ताः व्यन्तरविशेषाः । वृषभस्कन्धः—वृषभः—

सीखेगा वह भव्यशरीर द्रव्यस्कंध है।—अब इन दोनों से व्यतिरिक्त जो द्रव्यस्कंध है वह सचित्त, अचित और मिश्र के भेद से ३ तीन प्रकार का है ॥सूत्र४७॥

अब सूत्रकार सचित्त रूप प्रथम भेद की प्ररूपणा करते हैं—

"से किं तं सचित्ते दव्वखंधे" इत्यादि ।॥ सूत्र ४८ ॥

शब्दार्थः— (से किं तं सचित्ते दव्वखंधे) हे भदन्त ! पूर्वप्रक्रान्त (प्रारंभ किया हुआ) सचित्त द्रव्यस्कंध का क्या स्वरूप है ?

उत्तरः—(सचित्ते दव्वखंधे अणेगविहे पण्णत्ते) सचित्त द्रव्यस्कंध अनेक प्रकार का कहा गया है। (तंजहा) जैसे—(हयखंधे, गयखंधे किन्नर-

---

ववामां आवे छे तेना नीचे प्रमाणे त्रण भेद कह्या छे (१) सचित्त, (२) अचित्त अने (३) मिश्र. ॥ सू० ४७ ॥

हवे सूत्रकार सचित्त३प पहेला भेदनी प्र३पणा क३े छे.

"से किं तं सचित्ते दव्वखंधे" इत्यादि—

शब्दार्थ—(से किं तं सचित्ते दव्वखंधे?)

शिष्य गुरु महाराजने एवो प्रश्न पूछे छे के हे भदन्त ! नोआगम ज्ञायकशरीर अने भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्यस्कन्धना प्रथम भेद३प सचित्त द्रव्यस्कन्धनुं केवुं स्व३प कहुं छे.

उत्तर—(सचित्ते दव्वखंधे अणेगविहे पण्णत्ते) सचित्त द्रव्यस्कन्ध अनेक प्रकारनो कह्यो छे. (तंजहा) जेम के (हयखंधे, गयखंधे, किन्नरखंधे, किंपुरिस-

बलीवर्दः स एव स्कन्धः वृषभस्कन्धः। जीवानां शरीरैः सह कथंचिदभेदे सत्यपि सचित्तस्कन्धाधिकारात् जीवानामेव च परमार्थतः सचेतनत्वादिह हयादिसम्बन्धिनो जीवा एव विवक्षिता नतु तदधिष्ठितशरीराणीति बोध्यम्। ननु जीवानां स्कन्धत्वं नोपपद्यते, पुद्गलप्रचयस्यैव स्कन्धत्वादिति चेन्न, जीवानां प्रत्येकमसंख्येय-

---

खंधे, किंपुरिसखंधे, महोरगखंधे, गंधव्वखंधे, उसभखंधे) हयस्कंध, गजस्कंध, किन्नरस्कंध, किंपुरुष स्कंध, महोरगस्कंध, गंधर्वस्कंध, वृषभस्कंध। चेतना, संज्ञान, उपयोग, अवधान, मन और विज्ञान ये सब चित्त के पर्यायवाची शब्द हैं।

इस चित्त से जो युक्त होता है, उसका नाम सचित्त है। यह सचित्त स्कंध व्यक्तिभेद की अपेक्षा अनेक प्रकार का है। हय नाम अश्व घोडा—का यह पुद्गल परमाणुओं की एक विशिष्ट पर्याय है। अतः यह स्कंध रूप है। इसी तरह से गजादि स्कंधों के विषय में भि जानना चाहिये। किन्नर से लेकर गंधर्व तक के स्कंध व्यन्तरदेव के भेद हे। वृषभ नाम बैल का है जीवों का गृहीत शरीर के साथ कथंचित् अभेद हैं तो भी सचित्तस्कंध का अधिकार होने से यहां उन २ पर्यायों में रहे हुए जीवों में ही परमार्थतः सचेतनता होने के कारण वे हयादि संबन्धी जीव ही विवक्षित हुए हैं। तदधिष्ठित शरीर नहीं।

शंकाः—यहां आप जीवों में स्कन्धता का कथन कर रहे है—सो यह

खंधे, महोरगखंधे, गंधव्वखंधे, उसभखंधे,) હયસ્કન્ધ, ગજસ્કન્ધ, કિન્નરસ્કન્ધ. કિંપુરુષસ્કન્ધ, મહોરગસ્કન્ધ, ગંધર્વસ્કન્ધ, અને વૃષભસ્કન્ધ.

ચેતના, સંજ્ઞાન, ઉપયોગ, અવધાન, મન, અને વિજ્ઞાન આ બધા ચિત્તના પર્યાયવાચી શબ્દો છે. આ ચિત્તથી જે યુકત હોય છે તેને સચિત્ત કહે છે. આ સચિત્તસ્કન્ધ વ્યકિતભેદની અપેક્ષાએ અનેક પ્રકારના છે. હય એટલે ઘોડો તે પુદ્ગલ પરમાણુઓની એક વિશિષ્ટ પર્યાય રૂપ છે. તેથી તે સ્કન્ધરૂપ છે. એજ પ્રમાણે ગજાદિ સ્કન્ધોના વિષયમાં સમજવું.

કિન્નરથી લઇને વ્યન્તર પર્યન્તના સ્કન્ધો વ્યન્તર દેવોના ભેદરૂપ છે. વૃષભ એટલે બળદ. જીવોનો ગૃહીત શરીરની સાથે અમુક રૂપે અભેદ છે, છતાં પણ સચિત્ત દ્રવ્યસ્કન્ધનો અધિકાર ચાલતો હોવાથી અહીં તે તે પર્યાયોમાં રહેલા જીવોમાં જ પરમાર્થઃ (સ્વભાવતઃ) સચેનતા હોવાને લીધે તે હયાદિ સંબંધી જીવો જ વિવક્ષિત થયા છે તેમાં અધિષ્ઠિત (તદધિષ્ઠિત) શરીરની વિવક્ષા અહીં થઈ નથી.

શંકા—આપ અહીં જીવોમાં જે સ્કન્ધતાનું પ્રતિપાદન કરતું કથન કરી રહ્યા

प्रदेशात्मकत्वेन तेषां स्कन्धत्वस्य सुप्रतीतत्वात्। ननु हयस्कन्धादीनामन्यतरेण केनाप्युदाहरणेन सिद्धं किमेतैर्बहुभिरुदाहरणैरितिचेत्. उच्यते—आत्माऽद्वैतवादं निराकर्तुं भिन्नस्वरूपविजातीयस्कन्धबहुत्वमाश्रित्य उदाहरणं प्रदर्शितम्। अतथाद्वैतस्वीकारे सिद्धसंसारिव्यवहारोच्छेदप्रसंगात्। प्रकृतमुपसंहरन्नाह-स एष सचित्तो द्रव्यस्कन्ध इति ॥सू० ४८॥

कथन जचता नहीं है। क्योंकि जो पुद्गल प्रचयरूप होता है उसमें ही स्कन्धता घटित होती है। जीव में नहीं क्योंकि यह पुद्गल प्रचयरूप नहीं हैं।—

उत्तरः—ठीक है परन्तु यह ऐकान्तिक बात नही है, कि पुद्गलप्रचय में ही स्कंधता घटित होती है। हरएक जीव असंख्यात प्रदेश है। इस अपेक्षा उनमें स्कन्धता सुप्रतीत है। अतः पुद्गलप्रचय रूप नहीं होने परभी असंख्यात प्रदेशात्मकता रूप प्रचयवाला होने से जीव में स्कंधता सुघटित है।

शंकाः—सचित द्रव्यस्कंधकी सिद्धि हयस्कन्ध आदि में से किसी एक भी उदाहरण से जब हो जाती है। तब फिर इन अनेक उदाहरणों को यहां प्रकट करने की क्या आवश्यकता हुई? उत्तरः— आत्मा द्वैतवाद को निराकरण करने के लिये भिन्न २ स्वरूपवाले विजातीय स्कंधों की अनेकता लेकर सूत्रकारने इन उदाहरणों को दिखलाया है।

यदि केवल अद्वैतवाद को अंगीकार किया जावे तो सिद्ध और संसारी

છે તે કથન ઉચિત લાગતું નથી, કારણ કે જે પુદ્ગલપ્રચય રૂપ હોય તેમાં જ સ્કન્ધતા ઘટાવી શકાય છે જીવમાં સ્કન્ધતા ઘટાવી શકાતી નથી કારણ કે તે પુદ્ગલપ્રચય રૂપ નથી.

ઉત્તર "પુદ્ગલપ્રચયમાં જ સ્કન્ધતા ઘટિત થાય છે, એવી કોઇ એકાન્તિક વાત જ અહીં પ્રતિપાદિત થઈ નથી. પ્રત્યેક જીવ અસંખ્યાત પ્રદેશયુકત હોય છે. તે દૃષ્ટિએ વિચાર કરવામાં આવે તો તેમાં સ્કન્ધતા સુપ્રતીત થાય છે. તેથી પુદ્ગલપ્રચય રૂપ નહીં હોવા છતાં પણ અસંખ્યાત પ્રદેશાત્મકતા રૂપ પ્રચયવાળો હોવાને કારણે જીવમાં સ્કન્ધતા સુઘટિત જ છે?

શંકા—હયસ્કન્ધ આદિ સ્કન્ધોમાંથી કોઇ પણ એક સ્કન્ધના ઉદાહરણ દ્વારા સચિત્ત દ્રવ્યસ્કન્ધનું પ્રતિપાદન કરી શકાય એમ છે. છતાં અહીં અનેક ઉદાહરણો આપવા પાછળ સૂત્રકારનો શો હેતુ રહેલો છે.

ઉત્તર–આત્માદ્વૈતવાદનું નિરાકરણ કરવાને માટે ભિન્ન ભિન્ન સ્વરૂપવાળા વિજાતીયસ્કન્ધોની અનેકતાની અપેક્ષાએ સૂત્રકારે આ ઉદાહરણો બતાવ્યા છે. જો માત્ર અદ્વૈતવાદનો જ સ્વીકાર કરવામાં આવે, તો સિદ્ધ અને સંસારીનો જે વ્યવહાર છે તેના ઉચ્છેદનો પ્રસંગ પ્રાપ્ત થશે.

अचित्तद्रव्यस्कन्धं निरूपयति—

मूलम्—से किं तं अचित्ते दव्वखंधे ? अचित्ते दव्वखंधे अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा—दुपएसिए तिपएसिए जाव दसपएसिए संखिज्जपएसिए असंखिज्जपएसिए अणंतपएसिए। से तं अचित्ते दव्वखंधे ॥ सू० ४९ ॥

छाया—अथ कोऽसावचित्तो द्रव्यस्कन्धः ? अचित्तो द्रव्यस्कन्धः—अनेकविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—द्विप्रदेशिकः त्रिप्रदेशिको यावत् दशप्रदेशिकः संख्येयप्रदेशिकः असंख्येयप्रदेशिकः अनन्तप्रदेशिकः। स एषः अचित्तो द्रव्यस्कन्धः।४९।

का जो व्यवहार है उसके उच्छेद का प्रसंग प्राप्त होगा। (से तं सचित्ते दव्वखंधे) इस प्रकार से यह सचित्त द्रव्यस्कन्ध है। ॥ सूत्र ४८ ॥

अब सूत्रकार अचित्त द्रव्यस्कन्धों का निरूपण करते हैं—

"से किं तं अचित्ते दव्वखंधे" इत्यादि। ॥ सूत्र ४९ ॥

शब्दार्थः—(से किं तं अचित्ते दव्वखंधे) हे भदन्त ! अचित्त द्रव्यस्कंध का क्या स्वरूप है? (अचित्ते दव्वखंधे अणेगविहे पण्णत्ते) उत्तर—अचित्त द्रव्यस्कंध अनेक प्रकार का कहा गया है। (तं जहा) जैसे-(दुपएसिए तिपएसिए जाव दसपएसिए संखेज्जपसिए असंखेज्जपएसिए अणंतपससिए) दो प्रदेशवाला अचित्त द्रव्यस्कंध, तीन प्रदेशवाला अचित्तद्रव्यस्कंध, यावत् दश प्रदेशवाला अचित्तद्रव्यस्कंध, संख्यात प्रदेशवाला अचित्तद्रव्यस्कन्ध, असंख्यात प्रदेशवाला अचित्त द्रव्यस्कंध, और अनन्तप्रदेश-

---

(से तं दव्वखंधे) આ પ્રકારે સચિત દ્રવ્યસ્કન્ધના સ્વરૂપનું વર્ણન અહીં સમાપ્ત થાય છે ॥ સૂ૦ ૪૮ ॥

હવે સૂત્રકાર અચિત્ત દ્રવ્યસ્કન્ધના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે—

"से किं तं अचित्त दव्वखंधे" ઇત્યાદિ-

શબ્દાર્થ—(से किं तं अचित्ते दव्वखंधे?) શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન કરે છે કે હે ભગવન્! પૂર્વપ્રસ્તુત અચિત્ત દ્રવ્યસ્કન્ધનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર—(अचित्ते दव्वखंधे अणेगविहे पण्णत्ते) અચિત્તદ્રવ્યસ્કન્ધ અનેક પ્રકારનો કહ્યો છે. (तं जहा) જેમ કે...

(दुपएसिए, तिपएसिए जाव दसपएसिए, संखेज्जपएसिए, असंखेज्जपएसिए, अणंतपएसिए) બે પ્રદેશવાળો અચિત્ત દ્રવ્યસ્કન્ધ. ત્રણ પ્રદેશવાળો અચિત્ત દ્રવ્યસ્કન્ધ. એજ પ્રમાણે દસ સુધીના પ્રદેશવાળો અચિત્ત દ્રવ્યસ્કન્ધ, સંખ્યાત

टीका—"से किं तं" इत्यादि—

शिष्यः पृच्छति–अथ कोऽसावचित्तो द्रव्यस्कन्धः ? उत्तरमाह-अचित्तो द्रव्यस्कन्धः-अनेकविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-द्विप्रदेशिकः–प्रकृष्टः पुद्गलास्तिकाय-देशःप्रदेशः प्रदेशः परमाणुरित्यर्थः, द्वौ प्रदेशौ यत्र स द्विप्रदेशिकः–स्कन्धः। एवं यावत्–अनन्तप्रदेशिकः स्कन्धः। स एषोऽचित्तो द्रव्यस्कन्धः ॥ सू० ४९॥

वाला अचित द्रव्यस्कन्ध । यह "प्रकृष्टः देशः प्रदेशः" इस व्युत्पत्ति के अनुसार सब से अल्प परिमाणवाला पुद्गलास्तिकाय का जो देश है उसका नाम प्रदेश–परमाणु–है । संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेशवाला पुद्गलास्तिकाय का देश स्थान मूलरूप में परमाणु है ।

अनेक परमाणुओं के मेल से द्वयादि प्रदेशी स्कंध बनते है । १ पुद्गल परमाणु भी अस्तिकाय इसीलिए है कि वह नाना स्कंधों का उत्पादक है–

भावार्थ–यहां पर सूत्रकारने अचित्त द्रव्यस्कन्ध का स्वरूप कहा है । उसमें दो प्रदेशी स्कंध से लेकर अनन्तप्रदेशी स्कंध तक के जितने पुद्गलस्कंध हैं वे सब अचित्त द्रव्यस्कन्ध में परिगणित हुए हैं । दो परमाणु मिलकर द्विप्रदेशी स्कन्ध, तीन परमाणु मिलकर तीन प्रदेशी स्कंध यावत् अनन्त परमाणु मिलकर अनन्त प्रदेशी स्कंध बने हैं । ये सब अचित द्रव्यस्कंध हैं । ॥ सूत्र ४९ ॥

પ્રદેશવાળો અચિત્ત દ્રવ્યસ્કન્ધ, અસંખ્યાત પ્રદેશવાળો અચિત્ત દ્રવ્યસ્કન્ધ, અને અનંત પ્રદેશવાળો અચિત્ત દ્રવ્યસ્કન્ધ 'प्रकृष्टः देशः प्रदेशः" આ વ્યુત્પત્તિ અનુસાર સૌથી અલ્પ પરિમાણુવાળો પુદ્ગલાસ્તિકાયનો જે દેશ છે તેનું નામ પ્રદેશ પરમાણું છે સંખ્યાત. અસંખ્યાત અને અનન્ત પ્રદેશવાળા પુદ્ગલાસ્તિકાયનો દેશ (અંશ) મૂળરૂપે પરમાણુ છે.

અનેક પરમાણુઓના મેળથી (સંયોગથી) દ્વયાદિ પ્રદેશી સ્કન્ધ બને છે. એક પુદ્ગલ પરમાણુ પણ વિવિધ સ્કન્ધોનું ઉત્પાદક હોવાને કારણે અસ્તિકાય રૂપ જ છે.

ભાવાર્થ—અહીં સૂત્રકારે અચિત્ત દ્રવ્યસ્કન્ધના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કર્યું છે. બે પ્રદેશી સ્કન્ધથી લઇને અનંત પ્રદેશી સ્કન્ધ પર્યન્તના જેટલા પુદ્ગલ સ્કન્ધો છે, તે બધાંને અહીં અચિત દ્રવ્યસ્કન્ધ રૂપે ગણાવવામાં આવ્યાં છે. બે પરમાણુ મળીને દ્વિપ્રદેશી સ્કન્ધ, ત્રણ પરમાણુ મળીને ત્રિપ્રદેશી સ્કન્ધ, અને એજ પ્રમાણે ચાર, પાંચ આદિ અનન્ત પર્યન્તના પરમાણુ મળીને ચાર પ્રદેશી, પાંચ પ્રદેશી આદિ અનન્ત પ્રદેશી પર્યન્તના સ્કન્ધો બને છે. તે બધાં સ્કન્ધો અચિત્ત દ્રવ્યસ્કન્ધોછે.॥સૂ૦૪૯॥

अथ मिश्रद्रव्यस्कन्धं निरूपयति—

मूलम्—से किं तं मीसए दव्वखंधे ? मीसए दव्वखंधे अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा—सेणाए अग्गिमे खंधे, सेणाए मज्झिमे खंधे, सेणाए पच्छिमे खंधे, से तं मीसए दव्वखंधे ॥सू० ५०

छाया—अथ कोऽसौ मिश्रको द्रव्यस्कन्धः ? मिश्रको द्रव्यस्कन्धः—अनेकविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—सेनाया अग्रिमः स्कन्धः सेनाया मध्यमः—स्कन्धः, सेनायाः पश्चिमः स्कन्धः। स एष मिश्रको द्रव्यस्कन्धः ॥सू० ५०॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि—

अथ कोऽसौ मिश्रको द्रव्यस्कन्धः ? इति शिष्य प्रश्नः। उत्तरमाह—मिश्रकः—सचेतनाचेतन संकीर्णो मि :, स एव मिश्रकः, एवंविधो द्रव्यस्कन्धः अनेक

अब सूत्रकार मिश्रद्रव्यस्कंध का वर्णन करते हैं,—

"से किं तं मीसए" इत्यादि। ॥ सूत्र ५०॥

शब्दार्थ—(से किं तं मीसए दव्वखंधे) हे भदन्त। मिश्र द्रव्यस्कंध का क्या स्वरूप है?

उत्तर—(मीसए दव्वखंधे अणेगविहे पण्णत्ते) मिश्रद्रव्यस्कंध अनेक प्रकार का कहा गया है। (तं जहा) जैसे—(सेणाए अग्गिमेखंधे, सेणाए मज्झिमेखंधे सेणाए पच्छिमे खंधे, से तं मीसए दव्वखंधे) सेना का अग्रिम स्कंध, सेना का मध्यमस्कंध, सेना का पश्चिमस्कंध) इस प्रकार से यह मिश्र द्रव्यस्कंध है सचेतन और अचेतन इन दोनों का मिश्रण जहां होता है उसका नाम मिश्र

હવે સૂત્રકાર મિશ્ર દ્રવ્યસ્કન્ધનું નિરૂપણ કરે છે—

"से किं तं मीसए" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(से किं तं मीसए दव्वखंधे) હે ભદન્ત! મિશ્ર દ્રવ્યસ્કન્ધનું સ્વરૂપ કેવું છે.

ઉત્તર—(मीसए दव्वखंधे अणेगविहे पण्णत्ते) મિશ્ર દ્રવ્યસ્કન્ધના અનેક પ્રકાર કહ્યા છે. (तंजहा) જેમ કે.....

सेणाए अग्गिमे खंधे, सेणाए मज्झिमे खंधे, सेणाए पच्छिमे खंधे, से तं मीसए दव्वखंधे) (૧) સેનાનો અગ્રિમ સ્કન્ધ, (૨) સેનાનો મધ્યમસ્કન્ધ અને (૩) સેનાનો પશ્ચિમ (અન્તિમ) સ્કન્ધ આ પ્રકારનું આ મિશ્ર દ્રવ્યસ્કન્ધનું સ્વરૂપ છે.

प्रकारकः प्ररूपितः, तद्यथा—सेनाया अग्रिमः स्कन्धः—हस्त्यश्वरथपदातिकवचखड्ग-कुन्तधानुर्बाणादिसमुदायरूपासेना तस्या अग्रिमः स्कन्धः=अग्रभागो मिश्रकः स्कन्धः। तथा-सेनाया मध्यमः स्कन्धः पश्चिमः=पृष्ठवर्त्ती स्कन्धश्च मिश्रकःस्कन्धः। हस्त्यादयश्चात्र सचेतनाः, कवचादयश्चाचेतनाः। इत्थं सचेताचेतनत्वात्तत्र मिश्रकत्वं बोध्यम्। प्रकृतमुपसंहरन्नाह—स एष मिश्रको द्रव्यस्कन्ध इति सू० ५०॥

अथ प्रकारान्तरेण ज्ञायकशरीर भव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यस्कन्धं निरूपयति—

मूलम्—अहवा जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वखंधे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा-कसिणखंधे, अकसिणखंधे अणेगदवियखंधे ।सू०५१।

छाया-अथवा ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तो द्रव्यस्कन्धस्त्रिविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—कृत्स्नस्कन्धः, अकृत्स्नःकन्धः, अनेकद्रव्यस्कन्धः ॥५१॥

टीका—'अहवा' इत्यादि—व्याख्यानिगदसिद्धा ।५१॥

है। सेना इन दोनों की संमिश्रणरूप अवस्था है। इसमें हस्ती, अश्व, रथ, प्यादे, कवच, तलवार, भाला, धनुष, और बाण आदि का संबन्ध रहता है। इनका समुदाय ही तो सेना है इसमें हस्ती आदि सचेतन पदार्थ हैं। इन दोनों का संमिश्रण इसमें रहता हैं। इसलिये इसे मिश्र द्रव्यस्कन्ध कहा हैं।सू.५०।

अब दूसरी तरह सूत्रकार ज्ञायकशरीर भव्यशरीर से व्यतिरिक्त द्रव्यस्कंध का निरूपण करते हैं—"अहवा जाणयसरीरभवियसरीर" इत्यादि। ॥सूत्र ५१॥

शब्दार्थ—(अथवा ज्ञायकशरीर भव्यशरीर से व्यतिरिक्त द्रव्यस्कन्ध तीन प्रकार कहा गया है। (तं जहा) जैसे कृत्स्नस्कंध, अकृत्स्नस्कंध और अनेक द्रव्यस्कंध। इसकी व्याख्या पहिले जैसी जाननी चाहिये॥ सूत्र ५१॥

સચેતન અને અચેતન, આ બન્નેનું મિશ્રણ જેમાં થયેલું હોય છે તેને મિશ્ર કહે છે. સેના આ બન્નેના સંમિશ્રણરૂપ અવસ્થાથી સંપન્ન હોય છે. તેમાં હાથી, ઘોડા રથ, પાયદળ, કવચ, તલવાર, ભાલા, ધનુષ અને બાણ આદિ સચિત્ત અચિત્ત પદાર્થોનો સદ્ભાવ રહે છે, તેના સમુદાયને જ સેના કહે છે. તેમાં હાથી, ઘોડા, સૈનિકો આદિ સચેતન પદાર્થો હોય છે, અને તલવાર, કવચ, ભાલા આદિ અચેતન પદાર્થો પણ હોય છે. તેમાં સચેતન અને અચેતન, બન્નેનું સંમિશ્રણ રહે છે. તે કારણે તેને મિશ્ર દ્રવ્યસ્કન્ધ રૂપે અહીં પ્રકટ કરવામાં આવેલ છે.॥ સૂ. ૫૦ ॥

હવે સૂત્રકાર જ્ઞાયકશરીર અને ભવ્યશરીરથી ભિન્ન એવા તદ્વ્યતિરિક્ત દ્રવ્યસ્કન્ધનું નિરૂપણ બીજી રીતે કરે છે—"अहवा जाणयसरीरभवियसरीर" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—અથવા જ્ઞાયકશરીર અને ભવ્યશરીરથી ભિન્ન એવા દ્રવ્યસ્કન્ધના ત્રણ પ્રકાર કહ્યા છે. (तंजहा) તે ત્રણ પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે-(૧) કૃત્સ્નસ્કંધ, અકૃત્સ્નસ્કંધ અને અનેક દ્રવ્યસ્કન્ધ તે ત્રણના સ્વરૂપનું નિરૂપણ હવે પછીના સૂત્રોમાં કરવામાં આવશે. ॥ સૂ. ૫૧ ॥

तत्राद्यभेदं निरूपयति–

मूलम्–से किं तं कसिणखंधे ? कसिणखंधे से चेव हयखंधे, गयखंधे । से त कसिणखंधे सू० ५२

छाया–अथ कोऽसौ कृत्स्नस्कन्धः ? कृत्स्नस्कन्धः स एव हयस्कन्धो गजस्कन्धो यावद् वृषभस्कन्धः । स एष कृत्स्नस्कन्धः ॥५२॥

टीका–शिष्यःपृच्छति–'से किं तं' इत्यादि ।

अथ कोऽसौ कृत्स्नस्कन्धः ? उत्तरमाह–कृत्स्नस्कन्धः-जीवापेक्षया प्रदेशानां परिपूर्णत्वात् कृत्स्नः परिपूर्णः, स चासौ स्कन्धः, अयं तु स एव=पूर्वोक्त एव हयस्कन्धो–गजस्कन्धो यावद् वृषभस्कन्धो विज्ञेयः ।

ननु–हयस्कन्धादीनामेवात्रापि उदाहरणत्वेन निर्दिष्टत्वात् सचित्तस्कन्धस्यैव संज्ञान्तरेण प्रकारान्तरत्वमुक्तम्, नत्वत्र ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्त

"से किं तं कसिणखंधे इत्यादि ॥सूत्र ५२॥

शब्दार्थ–(से किं तं कसिणखंधे) हे भदन्त कृत्स्नद्रव्यस्कंधका क्या स्वरूप है ? (कसिणखंधे से चेव हयखंधे गयखंधे जाव उसभखंधे) उत्तर–हयस्कंध गजस्कंध से लेकर वृषभस्कंध तक जो सचित्तस्कंध ४८ वें सूत्र में प्रकट किया गया है-वही कृत्स्नस्कन्ध है । परिपूर्णस्कंध का नाम कृत्स्नस्कंध है । इस स्कंध में जीव की अपेक्षा प्रदेशों की परिपूर्णता रहती है ।

शंका–सूत्रकारने इस कृत्स्नस्कंध में भी हयादिकों को ही उदाहरणरूप से निर्दिष्ट किया हैं । और सचित्त द्रव्यस्कंध में भी उन्हें ही उदाहरणरूप से कहा है तो इनके इस कथन से यही ज्ञात होता है कि सचित्त द्रव्यस्कंध ही

"से किं तं कसिणखंधे" इत्यादि–

शब्दार्थ–(से किं कसिणखंधे?) शिष्य गुरुने એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે હે ભગવન્ ! કૃત્સ્ન દ્રવ્યસ્કન્ધનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર–(कसिणखंधे से चेव हयखंधे गयखंधे जाव उसभखंधे) હયસ્કન્ધ, ગજસ્કન્ધ આદિ વૃષભસ્કન્ધ પર્યન્તના જે સચિત્ર ૪૮માં સૂત્રમાં પ્રકટ કરવામાં આવ્યા છે, એ સચિત સ્કન્ધો જ કૃત્સ્ન દ્રવ્યસ્કન્ધ રૂપ છે પરિપૂર્ણ સ્કન્ધનું નામ કૃત્સ્ન સ્કન્ધ છે. આ સ્કન્ધમાં જીવની અપેક્ષાએ પ્રદેશોની પરિપૂર્ણતા રહે છે.

શંકા–સૂત્રકારે આ કૃત્સ્નસ્કન્ધમાં પણ અશ્વ વિગેરેના ઉદાહરણરૂપથી બતાવેલ છે, અને અચિત્ત દ્રવ્યસ્કન્ધમાં પણ તેમને જ ઉદાહરણરૂપે પ્રકટ કર્યા છે. તેમના આ કથનથી એજ વાત જાણવા મળે છે કે સચિત્ત દ્રવ્યસ્કન્ધને જ અહીં

द्रव्यस्कन्धस्य भेदान्तरत्वम् अतः कृत्स्नस्कन्धत्वादिना पुनरभिधानमनर्थकमिति चेदुच्यते-पूर्वं सचित्त-द्रव्यस्कन्धाधिकारात् तथाऽसम्भविनोऽपि बुद्ध्या निष्कृष्य उक्ता, इह तु जीवतदधिष्ठित शरीरावयवलक्षणः समुदायः कृत्स्नस्कन्धत्वेन विवक्षित इत्यतोऽभिधेयभेदात् सिद्धं भेदान्तरत्वम्। अस्त्येवं, तथापि हयस्कन्धस्य कृत्स्नत्वं नोपपद्यते, तदपेक्षया गजस्कन्धस्य बृहत्तरत्वादिति चेन्नैवम्, असंख्येय प्रदेशात्मको जीवस्तदधिष्ठिताश्चशरीरावयवा इत्येवं रूपः समुदायो हयादिस्कन्धत्वेन विवक्षित इति जीवस्यासंख्येयप्रदेशात्मकत्वेन सर्वत्र तुल्यतया गजादि स्कन्धस्य बृहत्तरत्वासिद्धेः। प्रकृतमुपसहरन्नाह-'से तं' इति। सएष कृत्स्नस्कन्धइति॥५२॥

नामान्तर से प्रकारान्तररूप में कहे गये हैं। अतः इस तरह से कृत्स्नस्कंध आदि रूप से-पुनः कथन करना-सचित्त द्रव्यस्कन्ध का विवेचन करना ठीक नहीं है?

उत्तर सचित्तद्रव्यस्कन्ध में हयादि संबंधी जीवों की ही उनके शरीर से उन्हें अपनी बुद्धि द्वारा पृथक् निकालकर विवक्षा हुई हैं- उनके शरीर की नहीं परन्तु इस कृत्स्नस्कंध में जीव और जीवाधिष्ठित शरीरावयव इन दोनों रूप जो समुदाय है उसकि विवक्षा हुई है। इस तरह अभिधेय के भेद से सचित्त द्रव्यस्कंध में और इस कृत्स्नस्कंध में परस्पर में भेद है।

शंका—इस तरह भेद भले रहो-तो भी हय स्कन्ध में कृत्स्नता नहीं बनती है। क्यों कि हयस्कन्ध की अपेक्षा गजस्कंध बहुत बडा होता है।

उत्तर—ऐसा नहीं है क्योंकि हयादिस्कंधों में असंख्यातप्रदेश जीव और इस जीव से अधिष्ठित शरीरावयव इन दोनोंरूप समुदाय विवक्षित है—एक

નામાન્તર દ્વારા (કૃત્સ્નસ્કન્ધ રૂપ અન્ય નામ દ્વારા) પ્રકટ કરવામાં આવેલ છે. તો સચિત્ત દ્રવ્યસ્કન્ધનું અહીં ફરીથી કૃત્સ્નદ્રવ્યસ્કન્ધને નામે વિવેચન કરવું તે યોગ્ય ગણાય નહીં.

ઉત્તર—સચિત્ત દ્રવ્યસ્કન્ધમાં અશ્વાદિ સંબંધી જીવોની જ તેમના શરીરથી તેમને પોતાની (સૂત્રકારની) બુદ્ધિ દ્વારા પૃથક (અલગ) કરી નાખીને-વિવક્ષા થઇ છે-તેમનાં શરીરની વિવક્ષા થઇ નથી. પરન્તુ આ કૃત્સ્નસ્કન્ધમાં જીવ અને જીવાધિષ્ઠિત શરીરાવયવ આ બન્ને રૂપ જે સમુદાય છે. તેની વિવક્ષા થઇ છે. આ રીતે અભિધેયના ભેદની અપેક્ષાએ સચિત્ત દ્રવ્યસ્કન્ધ અને આ કૃત્સ્ન દ્રવ્યસ્કન્ધમાં પરસ્પર ભેદ છે.

શંકા—આ પ્રકારનો ભેદ ભલે હોય, છતાં પણ હયસ્કન્ધમાં કૃત્સ્નતા ઘટિત થતી થી, કારણ કે હયસ્કન્ધ (અશ્વસ્કન્ધ) કરતાં ગજસ્કન્ધ ઘણો મોટો હોય છે.

ઉત્તર—એવું કથન યોગ્ય નથી, કારણ કે હયાદિસ્કન્ધોમાં અસંખ્યાત જીવ પ્રદેશો અને તે જીવ વડે અધિષ્ઠિત શરીરાવયવો બન્ને રૂપ સમુદાય વિવક્ષિત છે.

अथ—अकृत्स्नस्कन्धं निरूपयति—

मूलम्—से किं त अकसिणखंधे ? अकसिणखंधे सो चेव दुपएसियाइखंधे जाव अणंतपएसिए खंधे। से तं अकसिणखंधे ।सू०५३॥

जीव में असंख्यात प्रदेश होता है। इस प्रकार असंख्यात प्रदेशरूप से जीव की सर्वत्र तुल्यता है। अतः गजादिस्कंधों में बृहत्तरता की असिद्धि है। (से तं कसिणखंधे) इस तरह यह कृत्स्नस्कंध का स्वरूप है।

भावार्थ—सूत्रकारने इस सूत्र द्वारा दूसरी तरह से तद्व्यतिरिक्त द्रव्यस्कंध के भेदों का कथन किया है। इन में जो कृत्स्नस्कंध है उस में तत् २ जीव और तत्२ जीवाधिष्ठितशरीरावयवरूपसमुदाय विवक्षित हुआ है। इस तरह हयस्कंध अपने रूप से गजादिस्कंध अपने रूप से अपने २ में पूर्ण हैं। इसलिये ये स्कंध कृत्स्नस्कंध हैं। आत्मा को शास्त्रकारोंने असंख्यात प्रदेशी कहा है। ये प्रदेश चाहे हयस्कंध हो चाहे गजस्कंध हो सब में पूर्ण रहते हैं। यही इनकी अपने-अपने स्कंध में पूर्णता हैं। सचित्तद्रव्यस्कंध में तत्तत् जीवाधिष्ठितशरीर विवक्षित नहीं है वहां तो केवल उस शरीर में वर्तमान जीव ही विवक्षित है। इस प्रकार कृत्स्नस्कंध में और—सचित्त द्रव्यस्कंध में अन्तर जानना चाहिये। ॥ सू० ५२ ॥

એક જીવમાં અસંખ્યાત પ્રદેશો હોય છે. આ પ્રકારે અસંખ્યાત પ્રદેશીરૂપે જીવની સર્વત્ર તુલ્યતા (સમાનતા) છે. તેથી ગજાદિ સ્કન્ધોમાં અશ્વાદિ સ્કન્ધો કરતાં અધિકતા સિદ્ધ થતી નથી. (से तं कसिणखंधे) આ પ્રકારનું સ્કન્ધનું સ્વરૂપ છે.

ભાવાર્થ—સૂત્રકારે આ સૂત્રદ્વારા તદ્વ્યતિરિક્ત દ્રવ્યસ્કન્ધના ભેદોનું બીજી રીતે કથન કર્યું છે. તેમાંથી જે કૃત્સ્નસ્કન્ધ છે તેમાં તે તે જીવ અને તે તે (હય, ગજાદિ) જીવાધિષ્ઠિત શરીરાવયવ રૂપ સમુદાય વિવક્ષિત થયો છે. આવી રીતે હયસ્કન્ધ અને ગજાદિ સ્કન્ધ પોતપોતાને રૂપે પરિપૂર્ણ છે. તેથી તે સ્કન્ધને કૃત્સ્નસ્કન્ધ કહેવામાં આવેલ છે. આત્માને શાસ્ત્રકારોએ અસંખ્યાત પ્રદેશી કહ્યો છે. તે પ્રદેશ ભલે હયસ્કન્ધ હોય અથવા ભલે ગજસ્કન્ધ હોય બધામાં પૂર્ણ રહે છે એજ તેમની પોતપોતાના સ્કન્ધમાં પૂર્ણતા છે. સચિત્તદ્રવ્યસ્કન્ધમાં તે તે (અશ્વ, ગજ આદિ પ્રત્યેક) જીવાધિષ્ઠિ શરીર વિવક્ષિત થયું નથી, ત્યાં તો કેવળ તે તે શરીરમાં રહેલા જીવની જ વિવિક્ષા થઇ છે. આ પ્રકારનું કૃત્સ્નસ્કન્ધ અને સચિત્ત દ્રવ્યસ્કન્ધ વચ્ચેનું અંતર (તફાવત) સમજવું. ॥ સૂ. ૫૨ ॥

छाया—अथ कोऽसौ अकृत्स्नस्कन्धः ? अकृत्स्नस्कन्धः स एव द्विप्रदेशिकादिस्कन्धो यावत् अनन्तप्रदेशिकः स्कन्धः । स एष अकृत्स्नस्कन्धः ॥५३॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—'से किं तं' इत्यादि—

अथ कोऽसावकृत्स्नस्कन्धः ? इति शिष्यप्रश्नः । उत्तरमाह—अकृत्स्नस्कन्धः—न कृत्स्नः—अकृत्स्नः, स चासौ स्कन्धश्चेति, अकृत्स्नस्कन्धः—य मादन्योऽपि बृहत्तरः स्कन्धोऽस्ति सोऽपरिपूर्णत्वादकृत्स्नस्कन्ध इत्यर्थः, स तु स एव पूर्वोक्त द्विप्रदेशिकादि स्कन्धो यावत् अनन्तप्रदेशिकः स्कन्धः । द्विप्रदेशिकः स्कन्धस्त्रिप्रदेशिकापेक्षयाऽकृत्स्नः, त्रिप्रदेशिकश्चतुः प्रदेशिकापेक्षयाऽकृत्स्न इत्युत्तरोत्तरापेक्षया

अब सूत्रकार अकृत्स्नस्कंध का कथन करते हैं—

"से किं तं अकसिणखंधे ?" इत्यादि । ॥सूत्र ५३॥

शब्दार्थ—(से किं तं अकसिणखंधे सो चेव दुपएसियाइखंधे जाव अणंतपएसिए खंधे) अकृत्स्नस्कंध का स्वरूप इस प्रकार से है—कि जो द्विप्रदेशिक आदि स्कंध से लेकर अनन्तप्रदेशिक तक के स्कंध हैं वे सब अकृत्स्नस्कंध हैं। जिस स्कंध से और भी कोई दूसरा बहुत बडा स्कंध होता है—वह अपरिपूर्ण होने के कारण अकृत्स्नस्कंध है। ऐसे अपरिपूर्ण ये सब द्विप्रदेशवाले स्कंध से लेकर अनन्त प्रदेश तक के स्कंध हैं। इनमें अपरिपूर्णता इस प्रकार से है कि जो द्विप्रदेशिक स्कंध होता है वह त्रिप्रदेशिकस्कंध की अपेक्षा न्यून होने से अपरिपूर्ण होता है, त्रिप्रदेशिकस्कंध चतुः प्रदेशिक स्कंध की अपेक्षा न्यून होने से अपरिपूर्ण होता है। इस तरह उत्तरोत्तर की

હવે સૂત્રકાર અકૃત્સ્નસ્કન્ધનું નિરૂપણ કરે છે—

"से किं तं अकसिणखंधे" ઇત્યાદિ-

શબ્દાર્થ-(से किं तं अकसिणखंधे?) શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે હે ગુરુમહારાજ ! અકૃત્સ્ન સ્કન્ધનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(अकसिणखंधे सो चेव दुपएसियाइखंधे जाव अणंतपएसिए खंधे) અકૃત્સ્નસ્કન્ધનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે જે દ્વિપ્રદેશિક આદિ સ્કન્ધોથી લઇને અનન્તપ્રદેશિક પર્યન્તના સ્કન્ધો છે, તે બધાં અકૃત્સ્નસ્કન્ધો છે. જે સ્કન્ધ કરતાં વધારે મોટો કોઇ બીજો સ્કન્ધ હોઇ શકે છે, તે સ્કન્ધ અપરિપૂર્ણ હોવાને કારણે અકૃત્સ્ન સ્કન્ધ ગણાય છે. દ્વિપ્રદેશીથી લઇને અનંત પ્રદેશી પર્યન્તના સમસ્ત સ્કન્ધો આ રીતે અપરિપૂર્ણ જ હોય છે. તેમાં અપરિપૂર્ણતા આ પ્રકારે સમજવી જોઇએ જે દ્વિપ્રદેશિક સ્કન્ધ હોય છે તે ત્રિપ્રદેશિક સ્કન્ધ કરતાં ન્યૂન હોવાથી અપરિપૂર્ણ હોય છે, ત્રિપ્રદેશિક સ્કન્ધ ચતુઃપ્રદેશિક સ્કન્ધ કરતાં ન્યૂન હોવાથી અપરિપૂર્ણ હોય છે. એજ પ્રમાણે ઉત્તરોત્તર સ્કન્ધો કરતાં પ્રત્યેક પૂર્વના (આગળના) સ્કન્ધમાં ન્યૂન-

पूर्वपूर्वोऽकृत्स्नो बोध्यो यावत्कृत्स्नता नायाति ! पूर्वं द्विप्रदेशिकादिः सर्वोत्कृष्ट-प्रदेशश्च स्कन्धः सामान्येनाचित्ततया प्रोक्तः, इह तु सर्वोत्कृष्टस्कन्धादधोवर्त्ति एवाचित्तस्कन्धा उत्तरोत्तरापेक्षया पूर्वपूर्वतरा अकृत्स्नस्कन्धत्वेनोक्ता इत्युभयोर्भेदः।५२।

अपेक्षा से पूर्व २ का स्कंध अकृत्स्नस्कंध जानना चाहिये। यह अकृत्स्नता तबतक चलती है कि जब तक कृत्स्नता नहीं आती है।– द्विप्रदेशिक आदि स्कंध और समस्त और समस्त उत्कृष्ट प्रदेशवाले स्कंध पहिले सामान्य रूप से अचित्त कहे गये हैं। परन्तु इस अकृत्स्न द्रव्यस्कंध के प्रकरण में सर्वोत्कृष्ट स्कंध से पहिले के ही कंध उत्तरोत्तर की अपेक्षा से अकृत्स्नस्कंधरूप से कहे गये हैं। यही इन दोनों में भेद है–

भावार्थ––सूत्रकारने इस सूत्रद्वारा अकृत्स्नस्कन्ध का स्वरूप और अकृत्स्नस्कंध में तथा अचित्तस्कंध में क्या अन्तर है यह प्रकट किया है। आपेक्षिक अचित्त स्कन्धों की अपरिपूर्णता का नाम अकृत्स्नता है। यह अकृत्स्नता द्विप्रदेशी आदि स्कन्धों में त्रिप्रदेशी आदि स्कन्धों की अपेक्षा आती है। और यह आपेक्षिक अकृत्स्नता तबतक मानी जाती है कि जबतक अन्त में कृत्स्नता नहीं आ जाती है। इसके आते ही अन्त का स्कंध कृत्स्न होने से फिर आगे के लिये अकृत्स्नता की द्वारा रुक जाता हैं। इस प्रकार कृत्स्नता

તાની અપેક્ષાએ તેમાં અપરિપૂર્ણતા સમજવી આ અપરિપૂર્ણતાને કારણે જ તેમને અકૃત્સ્નસ્કન્ધ કહેવામાં આવ્યા છે. આ અકૃત્સ્નતા ત્યાં સુધી ચાલુ રહે છે કે જ્યાં સુધી કૃત્સ્નતા (પરિપૂર્ણતા) આવતી નથી.

દ્વિપ્રદેશિક આદિ સ્કન્ધ અને સમસ્ત ઉત્કૃષ્ટ પ્રદેશવાળા સ્કન્ધોને પહેલાં સામાન્યરૂપે અચિત્ત કહેવામાં આવ્યા છે. પરન્તુ આ અકૃત્સ્ન દ્રવ્યસ્કન્ધના પ્રકરણમાં સર્વોત્કૃષ્ટ સ્કન્ધથી આગળના સ્કન્ધોને ઉત્તરોત્તરની અપેક્ષાએ અકૃત્સ્નસ્કન્ધરૂપે કહેવામાં આવ્યા છે. એટલો જ અચિત્તસ્કન્ધ અને અકૃત્સ્નસ્કન્ધ વચ્ચે તફાવત છે.

ભાવાર્થ-સૂત્રકારે આ સૂત્રદ્વારા અકૃત્સ્નસ્કન્ધના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કર્યું છે, તથા અકૃત્સ્નસ્કન્ધ અને અચિત્ત સ્કન્ધ વચ્ચે શો તફાવત છે તે પણ પ્રકટ કર્યું છે. આપેક્ષિક અચિત્તસ્કન્ધોની અપરિપૂર્ણતાનું નામ જ અકૃત્સ્નતા છે. દ્વિપ્રદેશિક આદિ સ્કન્ધોમાં ત્રિપ્રદેશી આદિ સ્કન્ધો કરતાં અકૃત્સ્નતા (અપરિપૂર્ણતા) રહેલી હોય છે. આ આપેક્ષિક અકૃત્સ્નતાનો સદ્ભાવ રહે છે કે જ્યાં સુધી અન્તે કૃત્સ્નતા (પરિપૂર્ણતા) આવી જતી નથી. આ પ્રકારે જ્યારે કૃત્સ્નતા આવી જાય છે ત્યારે અન્તિમ સ્કન્ધ (ઉત્કૃષ્ટ પ્રદેશોવાળો સ્કન્ધ) કૃત્સ્ન સ્કન્ધ થઈ જવાને કારણે ત્યારબાદ અકૃત્સ્નતાની ધારા અટકી જાય છે. આ રીતે કૃત્સ્નસ્કન્ધો કરતાં પહેલાંના સ્કન્ધો

मूलम्—से किं तं अणेगदवियखंधे ? अणेगदवियखंधे—तस्स चेव देसे अवचिए तस्स चेव देसे उवचिए, से तं अणेगदवियखंध से तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्त दव्वखंधे, से तं नो आगमओ दव्वखंधे, से तं दव्वखंधे ॥ सू० ५४ ॥

छाया—अथ कोऽसौ अनेकद्रव्यस्कन्धः ? अनेकद्रव्यस्कन्धः—तस्यैव देशोऽपचितः तस्यैव देशउपचितः । स एषः अनेकद्रव्यस्कन्धः स एष ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तो द्रव्यस्कन्धः, स एष नोआगमतो द्रव्यस्कन्धः । स एष द्रव्यस्कन्धः ।.५४॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि—

अथ कोऽसौ अनेकद्रव्यस्कन्धः ? इति शिष्यप्रश्नः । उत्तरमाह अनेकद्रव्यस्कन्धः—अनेकद्रव्यश्चासौ स्कन्धश्चेति कर्मधारयः, स तु यद्रूपस्तथोच्यते 'तस्स

से पहिले २ के स्कन्धों में पूर्व २ की अपेक्षा कृत्स्नता और उत्तर २ की अपेक्षा अकृत्स्नता सापेक्षिक सध जाती है। अन्त के कृत्स्नस्कंध में कृत्स्नता सापेक्षिक नहीं है किंतु स्वाभाविक होती है। अचित्त द्रव्यस्कन्ध में द्विप्रदेशी आदि समस्त अचित्त स्कंधों में सामान्यरूप से अचित्तता प्रकट की गई है और अकृत्स्नस्कंध में सर्वोत्कृष्ट स्कंध से पहिले पहिले के स्कंधों में अपरिपूर्णता। इस प्रकार इन दोनों में अंतर कहा गया है ॥ सूत्र ५३ ॥

अब सूत्रकार अनेक द्रव्यस्कंध को कहते हैं—

"से किं तं" इत्यादि । ॥सूत्र ५४॥

માં તેમના પૂર્વ પૂર્વના (આગળ-આગળના) સ્કન્ધોની કરતાં કૃત્સ્નતા અને ઉત્તરોત્તર (પાછળ-પાછળના) સ્કન્ધોની અપેક્ષા અકૃત્સ્નતા સાપેક્ષિક રીતે ઘટિત થઈ જાય છે. અન્તિમ કૃત્સ્નસ્કન્ધમાં કૃત્સ્નતા સાપેક્ષિક હોતી નથી, પણ સ્વાભાવિક હોય છે, કારણ કે તેના કરતાં મોટો કોઈ સ્કન્ધ જ હોતો નથી, પણ તેના કરતાં નાના તેની આગળના સ્કન્ધો હોય છે.

અચિત્ત દ્રવ્યસ્કન્ધમાં-દ્વિપ્રદેશી આદિ સમસ્ત અચિત્ત સ્કન્ધોમાં સામાન્યરૂપે અચિત્તતા પ્રકટ કરવામાં આવી છે. અને અકૃત્સ્નસ્કન્ધમાં સર્વોત્કૃષ્ટ સ્કન્ધથી આગળના (પહેલાંના) સ્કન્ધોમાં અપરિપૂર્ણતા પ્રકટ કરવામાં આવી છે. આ પ્રકારનું તે બન્ને વચ્ચેનું અંતર (તફાવત) કહેવામાં આવ્યું છે. ॥ સૂ૦ ૫૩ ॥

હવે સૂત્રકાર અને દ્રવ્યસ્કન્ધોના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે.

'से किं तं अणेगदवियखंधे" इत्यादि—

चेव' इत्यादिना । तस्यैव=स्कन्धस्यैव यो देशः=नखदन्तकेशादिलक्षणो भागः अपचितः=जीवप्रदेशैर्विरहितो भवति, तथा-तस्यैव=स्कन्धस्यैव यो देशः=पृष्ठोदरकरचरणादिलक्षणो भाग उपचितः=जीवप्रदेशैर्व्याप्तो भवति, सोऽनेकद्रव्यस्कन्धो बोध्यः । अयं भावः-तयोर्देशयोर्विशिष्टैकपरिणामपरिणतयो र्यो देहाख्यः समुदायः सोऽनेकद्रव्यस्कन्धः, सचेतनाचेतनानेकद्रव्यात्मकत्वादिति । अयमनेक द्रव्यस्कन्धः सामर्थ्यात्तुरगादिस्कन्ध एव प्रतीयते ।

ननु तर्हि कृत्स्नस्कन्धादस्य को विशेषः ? इति चेदुच्यते-कृत्स्नस्कन्धस्तु

शब्दार्थ-(से किं तं अणेगदवियखंधे) हे भदन्त ! अनेक द्रव्यस्कंध का क्या स्वरूप है । (अणेगदवियखंधे) उत्तर-अनेक द्रव्यस्कंध का स्वरूप जैसा है-वैसा-हम कहते हैं (तस्स चेव देसे अवचिए तस्स चेव देसे उवचिए) स्कंध का जो नख वेश दन्त, आदिरूप भाग है, वह अपचित-जीवप्रदेशों से रहित-होता है, तथा उसी स्कंध का जो पृष्ठ, उदर, कर, चरण आदिरूप भाग है, वह उपचित-जीवप्रदेशों से व्याप्त रहता है (से तं अणेगदवियखंधे) वह अनेक द्रव्यस्कंध है । इसका तात्पर्य यह है कि इन दोनों भागों का कि जो एक विशिष्ट आकार में परिणत रहते हैं. देहरूप समुदाय अनेक द्रव्यस्कंध है ।

क्योंकि यह समुदाय सचेतन और अचेतनरूप अनेक द्रव्यात्मक है । यह अनेक द्रव्यस्कंध सामर्थ्य से तुरगादिस्कंध-हयादिस्कंध ही प्रतीत होता है।

शंका—जब यह अनेक द्रव्यस्कंध हयादिस्कंधरूप प्रतीत होता है तो

शब्दार्थ (से किं तं अणेगदवियखंदे ?) શિષ્ય ગુરૂને એવો પ્રશ્ન કરે છે કે હે ગુરૂ મહારાજ! અનેક દ્રવ્યસ્કન્ધનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર—(अणेगदवियखंधे) અનંત દ્રવ્યસ્કન્ધનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું કહ્યું છે- (तस्स चेव देसे अवचिए तस्स चेव देसे उवचिए) સ્કન્ધનો જે નખ, કેશ, દાંત આદિરૂપ ભાગ હોય છે તે અપચિત-જીવપ્રદેશોમાંથી રહિત-હોય છે, તથા એજ સ્કન્ધના જે પૃષ્ઠ, ઉદર, હાથ, પગ આદિરૂપ ભાગો છે તેઓ ઉપચિત-જીવ પ્રદેશોથી વ્યાપ્ત-રહે છે. (से तं अणेगदवियखंधे) આ પ્રકારનું અનેક દ્રવ્યસ્કન્ધનું સ્વરૂપ છે. આ કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે તે બન્ને ભાગો (અપચિત અને ઉપચિત ભાગો) કે જે એક વિશિષ્ટ આકારે પરિણત થઈને તેમનો જે દેહરૂપ સમુદાય બને છે તેને અનેકદ્રવ્યસ્કન્ધ કહેવામાં આવે છે કારણ કે તે સમુદાય સચેતનરૂપ અને અચેતન રૂપ અનેક દ્રવ્યાત્મક હોય છે. આ અનેક દ્રવ્યસ્કન્ધ તુરગાદિસ્કન્ધ (અશ્વાદિસ્કન્ધ) સમાન જ લાગે છે.

जीवप्रदेशानुगतो यावान् देशस्तावानेव विवक्षितो न तु जीवप्रदेशाव्याप्तनखादि सहितः, अत्र तु नखादि सहितोऽपि अनेकद्रव्यस्कन्धत्वेन विवक्षितः।

ननु पूर्वोक्तमिश्रस्कन्धादस्य को विशेषः ? इति चेदुच्यते-पूर्वत्र पृथगपृथगवस्थितानां सचेतनानां हस्त्यादीनामचेतनानां कवचादीनां च समूहत्वेन परिकल्पनया मिश्रस्कन्धत्वम्, अत्र तु विशिष्ट परिणाम परिणतानां सचेतनाचेतनद्रव्याणामनेकद्रव्यस्कन्धत्वम्, इत्यनयोर्विशेषः। मूले 'तस्स' शब्देनात्र प्रकरणस्वारस्यात् स्कन्धमात्रं विवक्षितम्। सम्प्रति प्रकृतमुपसंहर्तुमाह- से तं' इत्यादि। स एषः

फिर कृत्स्नस्कंध से इसमें अंतर क्या है?

उत्तर-कृत्स्नस्कंध में तो जीव के प्रदेशों से व्याप्त जितना शरीरावयवरूप देश है वही विवक्षित हुआ है, जीवप्रदेशों से अव्याप्त नखादि सहित प्रदेश नहीं। परन्तु इस अनेक द्रव्यस्कंध में नखादि सहित भी देश अनेकद्रव्यस्कंधरूप से विवक्षित हुआ है।

शंका-तो फिर मिश्रद्रव्यस्कन्ध से इसमें क्या विशेषता आई? उत्तर-मिश्रद्रव्यस्कन्ध में पृथक् और अपृथक्रूप से व्यवस्थित हुए हस्ती आदिकों के समुदाय को मिश्रस्कंधरूप से कहा गया है, परन्तु उस अनेक द्रव्यस्कंध में विशिष्ट परिणामरूप से परिणत हुए सचेतन अचेतन द्रव्यों को अनेक द्रव्यस्कंधरूप से कथित किया गया है। यही इन दोनों में विशेषता है। मूलमें "तस्स" शब्द यहां पर प्रकरण की स्वरसता से स्कंध मात्र विवक्षित हुआ है। अब इस प्रकरण का उपसंहार करने के निमित्त सूत्रकार कहते हैं

શંકા—જો આ અનેક દ્રવ્યસ્કન્ધ હસ્યાદિસ્કન્ધરૂપ જ પ્રતીત થાય છે, તો તેમાં કૃત્સ્નસ્કન્ધ કરતાં શી વિશિષ્ટતા છે?

ઉત્તર—કૃત્સ્નસ્કન્ધમાં તો જીવના પ્રદેશોથી વ્યાપ્ત જેટલો શરીરાવયવરૂપ દેશ (અંશ-ભાગ) છે; તેની જ વિવક્ષા થઈ છે. જીવપ્રદેશોથી અવ્યાપ્ત નખાદિ સહિત ના પ્રદેશોની વિવક્ષા થઈ નથી. પરન્તુ આ અનેક દ્રવ્યસ્કન્ધમાં તો નખાદિ સહિત જીવપ્રદેશોથી વ્યાપ્ત શરીરાવયવરૂપ દેશની અનેક દ્રવ્યસ્કન્ધરૂપે વિવક્ષા થઈ છે,

શંકા—મિશ્ર દ્રવ્યસ્કન્ધ કરતાં અનેક દ્રવ્યસ્કન્ધમાં શી વિશિષ્ટતા છે?

ઉત્તર—મિશ્ર દ્રવ્યસ્કન્ધમાં પૃથક્ અને અપૃથક્રૂપે વ્યવસ્થિત થયેલા હાથી આદિ સચેતન પદાર્થોના અને કવચ, તલવાર આદિ અચેતન પદાર્થોના સમુદાયને મિશ્રસ્કન્ધરૂપ કહેવામાં આવ્યો છે પરન્તુ આ અનેક દ્રવ્યસ્કન્ધમાં વિશિષ્ટ પરિણામ રૂપે પરિણત થયેલા સચેતન અચેતન દ્રવ્યોને અનેકદ્રવ્યસ્કન્ધરૂપ કહેવામાં આવેલ છે. એટલો જ એ બન્ને વચ્ચે તફાવત છે. મૂળમાં "तस्स" શબ્દ વડે અહીં પ્રકરણની સ્વરસતાની અપેક્ષાએ સ્કન્ધ માત્ર વિવક્ષિત થયેલ છે. હવે આ પ્રકરણનો

अनेकविधो द्रव्यस्कन्ध इति। ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तो द्रव्यस्कन्धो निरूपित इति सूचयितुमाह–'से तं' इत्यादि। स एष ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तो द्रव्यस्कन्ध इति। नो आगमतो द्रव्यस्कन्धो निरूपित इति सूचयितुमाह–'से तं' इत्यादि। स एष नोआगमतो द्रव्यस्कन्ध इति। द्रव्यस्कन्धोऽपि निरूपित इति सूचयितुमाह–'से तं' इत्यादि। स एष द्रव्यस्कन्ध इति।५४।

अथ भावस्कन्धं निरूपयितुमाह—

मूलम्—से किं तं भावखंधे ? भावखंधे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा आगमओ य नोआगमओ य ॥ सू० ५५ ॥

छाया—अथ कोऽसौ भावस्कन्धः ? भावस्कन्धो द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा आगमतश्च नोआगमतश्च ॥ ५५ ॥

कि (से तं अणेगदवियखंधे) इस प्रकार यह अनेकविध द्रव्यस्कंध है। (से तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वखंधे–से तं नो आगमओ दव्वखंधे, से तं दव्वखंधे) इस प्रकार से ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्यस्कंधका निरूपण समाप्त हुआ–और इसकी समाप्ति से नोआगम की अपेक्षा लेकर द्रव्यस्कंध का कथन भी पूर्ण हुआ इसकी पूर्णता से द्रव्यस्कंध निक्षेप का स्वरूप विषयक वर्णन भी पूर्ण हो चुका। ॥सूत्र ५४॥

अब सूत्रकार भावस्कंध का निरूपण करते हैं—

"से किं तं भावखंधे"। इत्यादि ॥सूत्र ५५॥

शब्दार्थ—(से किं तं भावखंधे) हे भदन्त। भावस्कंध का क्या स्वरूप है ?

ઉપસંહાર કરવા નિમિત્તે સૂત્રકાર કહે છે કે–(से तं अणेगदवियखंधे) આ પ્રકારનું અનેકદ્રવ્યસ્કન્ધનું સ્વરૂપ છે. (से तं जाणयसरीर, भवियसरीरवइरित्ते दव्वखंधे-से तं नोआगमओ दव्वखंधे, से तं दव्वखंधे) આ પ્રકારે જ્ઞાયકશરીર અને ભવ્યશરીર વ્યતિરિક્ત દ્રવ્યસ્કન્ધનું નિરૂપણ અહીં સમાપ્ત થાય છે. તેના નિરૂપણની સમાપ્તિ થવાથી નોઆગમદ્રવ્યસ્કન્ધના બધા ભેદોના નિરૂપણની પણ અહીં સમાપ્તિ થઈ જાય છે, આ રીતે નોઆગમદ્રવ્યસ્કન્ધનું નિરૂપણ સમાપ્ત થઈ જવાથી દ્રવ્યસ્કન્ધનિક્ષેપના સ્વરૂપ વિષયક કથન પણ અહીં પૂરું થઈ જાય છે. ॥સૂ૦ ૫૪॥

હવે સૂત્રકાર ભાવસ્કન્ધના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે—

से किं तं भावखंधे ?" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(से किं तं भावखंधे ?) શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે હે ગુરુમહારાજ ! ભાવસ્કન્ધનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

टीका—'से किं तं' इत्यादि—व्याख्या निगदसिद्धा ॥५५॥

अथ-आगमतो भावस्कन्धमाह—

मूलम्—से किं तं आगमओ भावखंधे ? आगमओ भावखंधे जाणए उवउत्ते । से तं आगमओ भावखंधे ॥सू०५६॥

छाया—अथ कोऽसौ आगमतो भावस्कन्धः ? आगमतो भावस्कन्धो ज्ञायक उपयुक्तः । स एष आगमतो भावस्कन्धः ॥५६॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि । व्याख्या निगदसिद्धा ॥५६॥

उत्तर—(भावखंधे दुविहे पण्णत्ते) भावस्कंध दो प्रकार का है (तं जहा) वे प्रकार ये हैं—(आगमओ य नोआगमओ य) एक आगम भावस्कंध और दूसरा नोआगम भावस्कंध । इसकी व्याख्या आगम भावावश्यक की व्याख्या जैसी ही जाननी चाहिये । ॥सू० ५५॥

अब सूत्रकार आगमभावस्कंध का कथन करते हैं—

"से किं तं आगमओ" इत्यादि । ॥ सूत्र ५६ ॥

शब्दार्थ—(से किं तं आगमओ भावखंधे ?) हे भदंत ! आगम को आश्रित करके जायमान आगमभावस्कंध का क्या स्वरूप है ? (आगमओ भावखंधे जाणए उवउत्ते) उत्तर—आगम को आश्रित करके स्कंध पदार्थ का उपयुक्त ज्ञाता आगम भावस्कंध है । (से तं आगमओ भावखंधे) यह आगम को

उत्तर—(भावखंधे दुविहे पण्णत्ते) ભાવસ્કન્ધના બે પ્રકાર કહ્યા છે. (तं जहा) તે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે-(आगमओ य नोआगमओ य) (૧) આગમભાવસ્કન્ધ અને (૨) નોઆગમભાવસ્કન્ધ ભાવસ્કન્ધની વ્યાખ્યા ભાવઆવશ્યકની વ્યાખ્યા જેવી જ સમજવી ॥ સૂ૦ ૫૫ ॥

હવે સૂત્રકાર આગમભાવસ્કન્ધના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે—

"से किं तं आगमओ भावखंधे ?" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(से किं तं आगमओ भावखंधे ?) શિષ્ય ગુરુને એવા પ્રશ્ન પૂછે છે કે ગુરુ મહારાજ ! આગમને આશ્રિત કરીને જાયમાન એવા આગમભાવસ્કન્ધનું કેવું સ્વરૂપ છે ?

ઉત્તર (आगमओ भावखंधे जाणए उवउत्ते) આગમને આધારે સ્કન્ધપદાર્થના ઉપયુકત (ઉપયોગ પરિણામ યુકત) જ્ઞાતાને આગમ ભાવસ્કન્ધ કહે છે. (से तं आगमओ भावखंधे) આ પ્રકારનું આગમને આશ્રિત કરીને આગમભાવસ્કન્ધનું

अथ नो आगमतो भावस्कन्धमाह--

मूलम्—से किं तं नोआगमओ भावखंधे? नोआगमओ भावखंधे एएसिं चेव सामाइयमाइयाणं छण्हं अज्झयणाणं समुदयसमिइसमागमेणं आवस्सयसुयखंधे भावखंधेत्ति लब्भइ। से तं नोआगमओ भावखंधे, से तं भावखंधे ॥सू० ५७॥

छाया--अथ कोऽसौ नोआगमतो भावस्कन्धः? नोआगमतो भावस्कन्धः एतेषामेव सामायिकादीनां षण्णामध्ययनानां समुदयसमितिसमागमेन आवश्यकश्रुतस्कन्धो भावस्कन्ध इति लभ्यते। स एष नोआगमतो भावस्कन्धः। स एष भावस्कन्धः ॥५७॥

टीका--शिष्यःपृच्छति-'से किं तं' इत्यादि-अथ कोऽसौ नोआगमतो भावस्कन्धः? इति। उत्तरमाह-नो आगमतो भावस्कन्ध एवं विज्ञेयः-एतेषां=प्रस्तुतानामेव सामायिकादीनां षण्णाम् अध्ययनानां समुदयसमितिसमागमेन-

---

आश्रित करके आगम भावस्कंध का स्वरूप है। इसकी व्याख्या आगमभावावश्यक प्रतिपादक सूत्र की व्याख्या जैसी जाननी चाहिये। ॥सूत्र ५६॥

अब सूत्रकार नोआगम को आश्रित करके भावस्कंध का स्वरूप कहते हैं--

"से किं तं नोआगमओ इत्यादि। ॥सूत्र ५७॥

शब्दार्थ--(से किं तं नोआगमओ भावखंधे) हे भदन्त। नोआगम से भावस्कंध क्या है। (नो आगमओ भावखंधे) नो आगम से भावस्कंध ऐसा है-(एएसिं चेव सामाइयमाइयाणं छण्हं अज्झयणाणं समुदयसमिइं समागमेणं

સ્વરૂપ છે. આ સૂત્રની વ્યાખ્યા આગમભાવાવશ્યકનું પ્રતિપાદન કરનારા સૂત્રની વ્યાખ્યા પ્રમાણે જ સમજવી. ॥સૂ० ५६॥

હવે સૂત્રકાર નોઆગમ ભાવસ્કન્ધના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે-

"से किं तं नोआगमओ भावखंधे" ઇત્યાદિ-

શબ્દાર્થ--(से किं तं नोआगमओ भावखंधे?) શિષ્ય ગુરૂને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે હે ગુરુ મહારાજ! નોઆગમને આશ્રિત કરીને જે ભાવસ્કન્ધ કહ્યો છે તે નોઆગમભાવસ્કન્ધનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(नोआगमओ भावखंधे) નોઆગમભાવસ્કન્ધનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે.

(एएसिं चेव सामाइयमाइयाणं छण्हं अज्झयणाणं समुदयसमिइं समागमेणं अवस्सयसुयखंधे भावखंधे त्ति लब्भइ) પરસ્પર પ્રસ્તુત થયેલા સામા-

समुदयस्य=आवश्यकादि षडध्ययनसमुदायस्य वा समितिः=नैरन्तर्येण मीलनं तस्याः समागमः=परस्परं संबद्धतया एकोपयोगस्तेन निष्पन्नो य आवश्यकश्रुतस्कन्धः स भावस्कन्ध इति लभ्यते=भवति। अयं भावः—परस्परसम्बद्धसामायिकादिषडध्ययनसमूहनिष्पन्नआवश्यकश्रुतस्कन्धः सदोरकमुखवस्त्रिका रजोहरणादिव्यापारलक्षणक्रियायुक्ततया विवक्षितो नोआगमतो भावस्कन्धः। स्कन्धपदार्थज्ञानंत्वागमः। तदुपयोगो भावः, क्रिया नोआगमः। क्रियालक्षणस्य देशस्यानागमत्वाद् नो शब्दोऽत्र देशनिषेधपरो बोद्धव्य इति। पृथग्भूतानामपि सामायिकादि षडध्ययनानां स्कन्धः स्यादत उक्तम्—'समुदयसमिइ' इति। समुदयसमि-

---

अवस्सय सुयक्खंधे भावखंधे त्तिलब्भइ) आत्मा में परस्पर प्रस्तुत हुए सामायिक आदि छह अध्ययनों के निरन्तर सेवन से जो आत्मा में एक उपयोगरूप परिणाम उत्पन्न होता है, उस परिणाम से निष्पन्न आवश्यक श्रुतस्कंध-भावस्कंध है। तात्पर्य इसका यह है-परस्पर में संबद्ध हुए सामायिक आदि छह अध्ययनों के समूह से निष्पन्न हुआ आवश्यक श्रुतस्कंध, सदोरकमुखवस्त्रिका रजोहरण आदि व्यापाररूप क्रिया से सहित जब विवक्षित होता है-तब वह नोआगमस्कंध है। स्कंध पदार्थ का ज्ञान आगम है। और उस आगम में हुआ ज्ञाता का उपयोग भाव है। तथा रजोहरण आदिरूप जो क्रिया है, वह नोआगम है। इस तरह क्रियारूप एकदेश में अनागमता होने से नो शब्द यहां देशनिषेध परक जानना चाहिये। सूत्रकार "समुदयसमिइ" पद का "आवश्यक आदि छह अध्ययनों के समूह का निरन्तर मिलना" यह अर्थ है तथा "समागम" का षटप्रदेशीस्कंध की तरह आवश्यकश्रुतस्कंध का

યિક આદિ છ અધ્યયનોના નિરંતર સેવનથી આત્મામાં જે એક ઉપયોગરૂપ પરિણામ નિષ્પન્ન (ઉત્પન્ન) થાય છે, તે પરિણામથી નિષ્પન્ન (જાયમાન) આવશ્યક શ્રુતસ્કંધનું નામ ભાવસ્કન્ધ છે. આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે-પરસ્પરની સાથે સંબદ્ધ થયેલા એવા સામાયિક આદિ છ અધ્યયનોના સમૂહથી નિષ્પન્ન થયેલો આવશ્યક શ્રુતસ્કન્ધ, સદોરક મુહપત્તી રજોહરણ આદિ વ્યાપારરૂપ ક્રિયા સહિત જ્યારે વિવક્ષિત થાય છે, ત્યારે તે નોઆગમભાવસ્કન્ધરૂપ બની જાય છે. સ્કન્ધપદાર્થના જ્ઞાનને આગમરૂપે, તથા તે આગમમાં જ્ઞાતાના ઉપયોગરૂપ પરિણામને ભાવરૂપે અહીં પ્રકટ કરવામાં આવેલ છે. તથા રજોહરણ આદિરૂપ જે ક્રિયા છે તેને નોઆગમ કહી છે. આ રીતે ક્રિયારૂપ એક દેશમાં અનાગમતા હોવાથી "નો" શબ્દ અહીં દેશનિષેધનું સૂચન કરે છે, એમ સમજવું. આ સૂત્રમાં "समुदय समीइ" આ પદનો "સામાયિક આદિ છ અધ્યયનોનું નિરન્તર મળવું" એવો અર્થ થાય છે, तथा "समागम" આ પદનો "છ પ્રદેશી સ્કન્ધની જેમ આવશ્યક શ્રુતસ્કન્ધનું

तिस्तु नैरन्तर्यावस्थापितलोहशलाकानामिव परस्परनिरपेक्षाणामपि स्यादत आह– 'समागम' इति । षट्प्रदेशिकस्कन्धवत् एकीभूतोयमावश्यकश्रुतस्कन्धः । प्रकृतमुपसंहरन्नाह–सोऽसौ नोआगमतो भावस्कन्धः, इति । भावस्कन्धः सर्वतोऽपि निरूपित इहि सूचयितुमाह–सोऽसौ भावस्कन्धः, इति ॥सू० ५७

आत्मा में एकरूप होना'' यह है। इस तरह सूत्रकारने इस समागमपद से यह स्पष्ट किया है कि नैरन्तर्यरूप में अवस्थापित लोह शलाकाओं के समान परस्पर निरपेक्ष सामायिक आदि षड आवश्यकों की समुदयसमिति नोआगम से भावस्कंध नहीं है। (से तं नोआगमओ भावखंधे) इस तरह यह नोआगम से भावस्कंध है। (से तं भावखंधे) इस प्रकार भावस्कंध का वर्णन किया।

भावार्थ––सूत्रकारने इस सूत्र द्वारा नोआगम को आश्रित करके भावस्कंध का स्वरूप प्रकट किया है। इसमें उन्होंने यह कहा है कि परस्पर संश्लिष्ट सामायिक आदि छह अध्ययनों के निरन्तर सेवन करने से जो आत्मा में तल्लीनता होनेरूप उपयोग परिणाम होता है और उस परिणाम से जो आवश्यकश्रुतस्कंध निष्पन्न होता है उसका नाम भावस्कंध है। यही भावस्कंध जब सदोरकमुखवस्त्रिका आदि व्यापाररूप क्रिया से विवक्षित किया जाता है। तब वह नोआगम भावस्कंध है। स्कंध पदार्थ का ज्ञान आगम उसमें ज्ञाता का उपयोग भाव और जो रजोहरण आदि द्वारा किं

આત્મામાં એકરૂપ થવું'', એવો અર્થ થાય છે. આ રીતે સૂત્રકારે આ સમાગમ પદના પ્રયોગ દ્વારા એ વાત સ્પષ્ટ કરી છે કે નૈરન્તર્ય રૂપે અવસ્થાપિત લોહશલાકાઓની (લોઢાની સળીઓની) જેમ પરસ્પર નિરપેક્ષ સામાયિક આદિ છ આવશ્યકોની સમુદયસમિતિ નોઆગમની અપેક્ષાએ ભાવસ્કન્ધ નથી. (से तं नोआगमओ भावखंधे) નોઆગમની અપેક્ષાએ ભાવસ્કન્ધનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ છે. (से तं भावखंधे) આ રીતે ભાવસ્કન્ધના બન્ને ભેદોનું વર્ણન અહીં સમાપ્ત થાય છે.

ભાવાર્થ––સૂત્રકારે આ સૂત્રદ્વારા નોઆગમને આશ્રિત કરીને ભાવસ્કન્ધના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કર્યું છે. તેમાં તેઓએ એ વાત પ્રતિપાદિત કરી છે કે પરસ્પર સંશ્લીષ્ટ (સંબદ્ધ) સામાયિક આદિ ૬ અધ્યનોના નિરન્તર સેવનથી આત્મામાં જે તલ્લીનતા થવા રૂપ ઉપયોગ પરિણામ થાય છે અને તે પરિણામથી જે આવશ્યકશ્રુત સ્કન્ધ નિષ્પન્ન થાય છે, તેનું નામ ભાવસ્કન્ધ છે. એજ ભાવસ્કન્ધને જ્યારે સદોરક મુહત્તી રજોહરણ આદિ વ્યાપારરૂપ ક્રિયાથી વિવક્ષિત કરવામાં આવે છે, ત્યારે તે નોઆગમભાવસ્કંધ કહેવાય છે. સ્કન્ધ પદાર્થના જ્ઞાનનું નામ આગમ છે, તેમાં જ્ઞાતાના ઉપયોગ પરિણામનું નામ ભાવ છે, અને જે રજોહરણ આદિવડે થતી ક્રિયા

इदानीं स्कन्धस्य पर्यायान् विवक्षुराह—

मूलम्—तस्स णं इमे एगट्ठिया णाणाघोसा णाणावंजणा एगट्ठिया नामधेज्जा भवंति, तं जहा—गणकाए य निकाए, खंधे वग्गे तहेव रासी य। पुंजे पिंडे निगरे, संघाए आउलसमूह ॥१॥ से तं खंधे ॥ सू० ५८ ॥

छाया—तस्य खलु इमानि एकार्थिकानि नानाघोषाणि नानाव्यञ्जनानि एकार्थिकानि नामधेयानि भवन्ति, तद्यथा—गणःकायश्च निकायः स्कन्धो वर्गस्तथैव राशिश्च। पुञ्जःपिण्डो निकरः संघात आकुलः समूहः ॥१॥ स एष स्कन्धः ॥५८॥

जानेवाली प्रमार्जना आदि क्रियाएँ हैं वे नोआगम हैं। यहां नो शब्द सर्वथा आगमाभाव का निषेधक नहीं हैं किन्तु एकदेश आगम का निषेधक है ? स्कंध पदार्थ का ज्ञान आगम और क्रिया अनागम नोआगम है। यह नोआगम को लेकर भावस्कंध का स्वरूप है।सूत्र५७।

अब सूत्रकार स्कंध की पर्यायों का कथन करते हैं—

तस्सणं इमे एगट्ठिया इत्यादि ! ॥सूत्र ५८॥

शब्दार्थ—(तस्स) इस स्कंध के (इमे) ये (णाणाघोसा) उदात्त आदि नाना घोषवाले (णाणावंजणा) ककार आदि अनेक व्यंजनोंवाले (एगट्ठिया)—एकार्थिक पर्यायवाची (नामधेज्जा भवंति) नाम हैं। (तं जहा) जो इस प्रकार से हैं—(गणकाए य निकाए खंधे, वग्गे तहेव रासी य पुंजे पिंडे निगरे संघाए आउलसमूहे ॥१॥ से तं खंधे) गणकाय, निकाय, स्कंध, वर्ग, राशि, पुंज,

---

એ છે તે નોઆગમ છે. અહીં 'નો' શબ્દ સર્વથા આગમાભાવનો નિષેધક નથી, પરન્તુ એક દેશતઃ આગમનો નિષેધક કે. સ્કન્ધ પદાર્થનું જ્ઞાન આગમરૂપ છે અને ક્રિયા અનાગમ-નોઆગમરૂપ છે. નોઆગમભાવસ્કન્ધનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ છે. સૂ૫૭।

હવે સૂત્રકાર સ્કન્ધના પર્યાયવાચી શબ્દોનું કથન કરે છે—

"तस्स णं इमे एगट्ठिया" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(तस्स) તે સ્કન્ધના (इमे) આ (णाणा घोसा) ઉદાત્ત આદિ વિવિધ ઘોષવાળાં (णाणावंजणा) ક્કાર આદિ અનેક વ્યંજનોવાળાં (एगट्ठिया) એકાર્થિક પર્યાયવાચી (नामधेज्जा भवंति) નામો કહ્યાં છે. (तं जहा) જે નામો નીચે પ્રમાણે છે-(गणकाए य निकाए खंधे, वग्गे तहेव रासीय पुंजे पिंडे निगरे, संघाए आउल समूहे ॥१॥ से तं खंधे) ગણ, કાય, નિકાય, સ્કન્ધ, વર્ગ, રાશિ, પુંજ, પિંડ,

टीका—'तस्स णं' इत्यादि—

तस्य=स्कन्धस्य खलु इमानि=वक्ष्यमाणानि एकार्थिकानि नानाघोषाणि नानाव्यञ्जनानि नामधेयानि भवन्ति। तद्यथा-गण'=मल्लादिगणवद् गणः, कायः=पृथिवीकायादिवत्कायः, निकायः=षड्जीवनिकायवन्निकायः, स्कन्धः=द्विप्रदेशिकादिस्कन्धवत् स्कन्धः, वर्गः=गोवर्गवद् वर्गः, राशिः=शालिधान्यादिवद्राशिः, पुञ्जः=विप्रकीर्णपुञ्जीकृतधान्यादिवत् पुञ्जः, पिण्डः=गुडादि पिण्डवत् पिण्डः, हिरण्यद्रव्यादिनिकरवद् निकरः, सङ्घातः=महोत्सवादि सम्मिलितजनसङ्घातवत् सङ्घातः,

---

पिण्ड, निकर, संघात, आकुल और समूह! ये जो गण से लेकर समूह तक के शब्द हैं, वे भावस्कंध के वाचक पर्याय हैं। ऐसा जानना चाहिये। एकार्थिक आदि पदों की व्याख्या पहिले की तरह जाननी चाहिये। इस प्रकार से यहां तक स्कंध के स्वरूप का वर्णन सूत्रकारने किया है।

जिस प्रकार मल्ल आदिकों का गण होता है उसी प्रकार से स्कंध भी अनेक परमाणुओं का संश्लिष्टरूप एक परिणाम होता है इसलिये इस का नाम गण है। पृथिवीकाय आदि के समान यह स्कंध काय है। षट्जीव निकाय की तरह यह स्कंध निकाय है। द्विप्रदेशिक आदिस्कंध केजैसा यहस्कंध है। गोवर्ग की तरह यह वर्गरूप है। शालिधान्य आदि की तरह यह राशिरूप है।-फैलाकर इकट्ठे किये गये धान्यादी की तरह यह पुंजरूप है। गुड आदि के पिण्ड की तरह यह पिंडरूप है। चांदी आदि के समूह की तरह

निकर, संघात, आकुल अने समूह આ જે ગણથી લઈને સમૂહ પર્યન્તના શબ્દો છે તે ભાવસ્કન્ધના વાચક છે, એમ સમજવું. એકાર્થિક આદિ પદોની વ્યાખ્યા આગળ કહ્યા અનુસાર સમજવી આ પ્રકારે સૂત્રકારે અહીં સુધી સ્કન્ધના સ્વરૂપનું વર્ણન કર્યું છે. અહીં સ્કન્ધનું વર્ણન પૂરું થાય છે.

હવે આ ગણ આદિ પદોનો અર્થ સમજાવવામાં આવે છે—

"ગણ"-જેમ મલ્લ આદિનું ગણ હોય છે એજ પ્રમાણે સ્કન્ધ પણ અનેક પરમાણુઓના એક સંશ્લિષ્ટ પરિણામરૂપ હોય છે, તેથી તેનું નામ ગણ પડયું છે.

"કાય"-પૃથ્વીકાય આદિની જેમ આ સ્કન્ધ કાયરૂપ છે.

"નિકાય"-ષટ્જીવનિકાયની જેમ આ સ્કન્ધ નિકાયરૂપ છે.

"સ્કંધ"-દ્વિપ્રદેશિક આદિ સ્કંધની જેમ તે સ્કન્ધરૂપ છે.

"વર્ગ"-ગો વર્ગની જેમ તે સ્કન્ધરૂપ છે.

"રાશિ" શાલિધાન્ય (ચોખા) આદિની જેમ તે રાશિરૂપ છે.

"પુંજ" એકત્ર કરેલા ધાન્યપુંજની જેમ તે પુંજરૂપ છે.

"પિંડ" ગોળ આદિના પિંડની જેમ તે પિંડરૂપ હોય છે.

आकुलः=राजगृहाङ्गणजनाकुलवदाकुलः, समूहः=पुरादिजनसमूहवत् समूहः। एते गणादि समूहान्ताः शब्दा भावस्कन्धस्य वाचका बोध्याः। एवार्थिकादिपदानां व्याख्या पूर्ववद् बोध्या। सम्प्रति स्कन्धमुपसंहरन्नाह—स एष स्कन्ध इति॥सू५८॥

इत्थं स्कन्धाधिकार उक्तः, सम्प्रति आवश्यकस्य षडध्ययनानि विवियन्ते—

मूलम्—आवस्सगस्स णं इमे अत्थाहिगारा भवंति, तं जहा-
सावज्जजोगविरई, उक्कित्तण गुणवओ य पडिवत्ती।
खलियस्स निंदणावणचिगिच्छा गुणधारणा चेव ।१। ॥सू०५९॥

छाया—आवश्यकस्य खलु इमे अर्थाधिकारा भवन्ति, तद्यथा—
सावद्ययोगविरतिः उत्कीर्त्तनं गुणवतश्च प्रतिपत्तिः।
स्खलितस्य निन्दना व्रणचिकित्सा गुणधारणा चैव । सू० ५९॥

यह निकररूप है। महोत्सव आदि में सम्मिलित जनसमुदाय के समान यह संघातरूप है। राजगृह के आंगन मे हुए व्याप्त जनसमूहरूप यह आकुल है। पुर आदि के जन-मूह की तरह यह समूहरूप है ॥सूत्र ५८॥

स्कंधाधिकार का कथनकर अब सूत्रकार आवश्यक के छह अध्ययनों का विवेचन करते हैं—'आवस्सगस्स" इत्यादि। ॥सूत्र ५९॥

शब्दार्थ—हे भदन्त! आवश्यक संबन्धी छह अध्ययन कौन २ से हैं?

इस प्रकार से पूछे जाने पर सूत्रकार अर्थाधिकार को आश्रित करके उन अध्ययनों को कहते हैं—(आवस्सगस्स इत्यादि) (आवस्सगस्स णं इमे

"निकर" चांदी आदिना समूहनी जेम ते निकररूप छे.

"संघात" महोत्सव आदिमां एकत्र थयेला जनसमुदायनी जेम ते संघातरूपछे.

"आकुल" राजगृह आदिना आंगणामां जमा थयेला व्याप्त जनसमूहनी जेम ते आकुलरूप छे.

"समूह" पुर आदिना जनसमूहनी जेम ते समूहरूप छे. ॥ सू० ५८ ॥

स्कन्धाधिकारनुं वर्णन पूरुं थयुं, हवे सूत्रकार आवश्यकना ६ अध्ययनोनुं विवेचन करे छे- आवस्सगस्स" इत्यादि—

शब्दार्थ—शिष्य गुरुने एवो प्रश्न पूछे छे के हे गुरु महाराज! आवश्यकना कया कया छ अध्ययन छे?

उत्तर—आ प्रकारना प्रश्नना उत्तर रूपे सूत्रकार अर्थाधिकारनो आश्रय लईने ते अध्ययनो कहे छे-(आवस्सगस्स णं इमे अत्थाहिगारा भवंति) अर्थाधिकारने-

टीका—'आवस्सगस्स णं' इत्यादि—

आवश्यकसम्बन्धीनि षडध्ययनानि कानि ? इति तान्यर्थाधिकारमाश्रित्योच्यन्ते—आवस्सगस्स' इत्यादिना। आवश्यकस्य खलु इमे=वक्ष्यमाणा अर्थाधिकाराः—अर्थेन अधिकाराः—अर्थमाश्रित्य प्रवृत्ताः भवन्ति, तद्यथा—सावद्ययोगविरतिः=सामायिकलक्षणो प्रथमेऽध्ययने प्राणातिपातादि सर्वसावद्ययोगविरतिरर्थाधिकारः ? उत्कीर्त्तनम्=द्वितीये चतुर्विंशतिस्तवाध्ययने कर्मक्षयप्रधानकारणत्वात् लब्धबोधिविशुद्धिहेतुत्वात् पुनर्बोधिलाभफलत्वात् सावद्ययोगविरत्युपदेशकत्वेनोपकारित्वाच्च तीर्थकृतां गुणोत्कीर्त्तनरूपोऽर्थाधिकारः २। तृतीये वन्दनाध्ययने गुणव्रतश्च प्रतिपत्तिः—गुणाः=मूलोत्तरगुणरूपा व्रतपिण्डविशुद्ध्यादयो विद्यन्ते

अत्थाहिगारा भवंति) आवश्यक के ये वक्ष्यमाण अर्थाधिकार-अर्थ को आश्रित करके कथन हैं। (तं जहा) जो इस प्रकार से हैं—

(सावज्जजोगविरई उक्कित्तणं गुणवओ य पडिवत्ती। खलियस्स निंदणा वणतिगिच्छा गुणधारणा चेव) सामायिकरूप प्रथम अध्ययन में, प्राणातिपात आदिरूप सर्व सावद्ययोग से विरति होना यह अर्थाधिकार है। द्वितीय चतुर्विंशतिस्तवरूप अध्ययन में कर्मों के क्षय करने में प्रधानकारण होने से लब्धबोधिकी विशुद्धि से हेतु होने से, तथा पुनर्बोधि के लाभरूप फल की प्राप्ति में कारणभूत होने से और सावद्ययोग से विरति के उपदेशक होने के कारण अत्यंत उपकारी होने से, तीर्थंकरों के गुणों का उत्कीर्तनरूप अर्थाधिकार है, तृतीय वन्दनाध्ययन में मूलगुण और उत्तर गुणरूप व्रत, पिण्डविशुद्धि

અર્થને આશ્રિત કરીને આવશ્યકનું નીચે પ્રમાણે કથન છે. (तंजहा) તે છ અધ્યયનોમાં આ પ્રકારના અર્થની (વિષયની) પ્રરૂપણા કરી છે—

(सावज्जजोगविरई उक्कित्तणगुणवओ य पडिवत्ती। खलियस्स निंदणावणतिगिच्छा गुणधारणा चेव) સામાયિકરૂપ પહેલા અધ્યયનમાં આદિરૂપ સાવદ્ય યોગોની વિરતિનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે. બીજા ચતુર્વિંશતિસ્તવરૂપ (૨૪ તીર્થંકરોના કીર્તનસ્તવનરૂપ) જે અધ્યયન છે તેમાં તીર્થંકરોની સ્તુતિ ગુણોના ઉત્કીર્તનરૂપ અર્થાધિકાર છે તે તીર્થંકરોની સ્તુતિ કરવાનું કારણ નીચે પ્રમાણે છે—કર્મોનો ક્ષય કરવામાં પ્રધાન કારણભૂત હોવાથી, લબ્ધબોધિની વિશુદ્ધિમાં કારણભૂત હોવાથી અને પુનર્બોધિના લાભરૂપ ફળની પ્રાપ્તિમાં કારણભૂત હોવાથી, સાવદ્યયોગોમાંથી વિરતિના ઉપદેશક હોવાને કારણે અત્યન્ત ઉપકારી હોવાથી તીર્થંકરોના ગુણોની સ્તુતિ થવી જ જોઈએ. ૨૪ તીર્થંકરોના ગુણોના ઉત્કીર્તનરૂપ અર્થથી સંપન્ન આ બીજું અધ્યયન છે. ત્રીજા વન્દણા અધ્યયનમાં મૂળગુણ અને ઉત્તરગુણરૂપ વ્રત

यस्य स गुणवांस्तस्य प्रतिपत्तिः=वन्दनादिका कर्त्तव्या,-एवंरूपोऽर्थाधिकारः। च शब्दः पुनरर्थे ३। तथा—चतुर्थे प्रतिक्रमणाध्ययने-स्खलितस्य=साधुकृत्याच्चलितस्य निन्दना=निन्दा कर्त्तव्या। अयं भावः—मूलोत्तरगुणेषु प्रमादाचीर्णस्य प्रत्यागतसंवेगस्य जन्तोर्विशुध्यमानाध्यवसायस्य अकार्यमिद'मित्येवं रूपेण निन्दारूपोऽर्थाधिकारः ४। तथा पञ्चमे कायोत्सर्गाध्ययने—व्रणचिकित्सा—व्रणस्य चिकित्सा=भैषज्यम्। अयं भावः-चारित्ररूपपुरुषस्य योऽयमतिचाररूपो भावव्रणस्तस्य दशविधप्रायश्चित्तरूपा चिकित्सा कर्त्तव्येति, एवंरूपोऽर्थाधिकारः प्रोच्यते ५। तथा—षष्ठे प्रत्याख्यानाध्ययने-गुणधारणा—गुणानां=मूलोत्तरगुणानां

आदि गुण जिसमें है ऐसे गुणवान् साधुको वन्दना आदि करनेरूप अर्थाधिकार है। चौथे प्रतिक्रमण अध्ययन में साधुकृत्य से स्खलित हुए की निन्दाकरने—अर्थात् अतिचारों की निग्रहणा करने आदिरूप अर्थाधिकार है। इसका भाव यह है कि जो साधु मूलगुणों एवं उत्तरगुणों में प्रमाद पतिततो हो रहा है, परन्तु वैराग्यभाव उसका नष्ट नहीं हुआ है, और परिणामों में जिसकी विशुद्धि बढती रहती है—ऐसे उस साधु को "यह काम करने योग्य नहीं है" इस प्रकार का निंदारूप अर्थाधिकार है।—

पांचवां जो कायोत्सर्ग नामका अध्ययन हैं उसमें व्रण (फाडा) चिकित्सारूप अर्थाधिकार है तात्पर्य इसका यह है कि चारित्ररूप पुरुष का जो अतिचाररूप भावव्रण है उसकी दश प्रकार प्रायश्चित्तरूप चिकित्साकरनी चाहिये ऐसा उसमें अर्थाधिकार है। तथा छठा प्रत्याख्यान नाम का जो

પિંડ વિશુદ્ધિ આદિથી સંપન્ન હોય એવા ગુણવાન્ સાધુને વંદણા આદિ કરવારૂપ અધિકાર છે. ચોથા પ્રતિક્રમણ અધ્યયનમાં સાધુકૃત્યથી સ્ખલિત થયેલાની નિન્દા કરવાનો એટલે કે પોતાના દ્વારા જે અતિચારોનું સેવન થઈ ગયું હોય તેની નિગ્રહણા આદિ કરવારૂપ અર્થાધિકાર છે. આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે જે સાધુ મૂળગુણો અને ઉત્તરગુણોની આરાધના કરવામાં પ્રમાદને કારણે દોષો કરતો હોય છે, પરન્તુ તેનો વૈરાગ્યભાવ નષ્ટ થયો નથી અને જેના પરિણામોમાં વિશુદ્ધિની વૃદ્ધિ જ થતી રહે છે, એવા સાધુ દ્વારા પોતાના દોષની આ પ્રકારે નિંદા કરાય છે. "આ કામ કરવા યોગ્ય નથી, છતાં પ્રમાદને કારણે મારાથી એવું થઇ ગયું." આ પ્રકારની નિંદારૂપ અધિકારથી યુકત ચોથું અધ્યયન છે. (૫) પાંચમું કાયોત્સર્ગ નામનું અધ્યયન છે, તેમાં વ્રણચિકિત્સારૂપ અર્થાધિકારનું પ્રતિપાદન કર્યું છે. એટલે કે ચારિત્રરૂપ પુરુષનો અતિચારરૂપ જે ભાવવ્રણ છે તેની દસ પ્રકારના પ્રાયશ્ચિત્ત રૂપ ઇલાજો વડે ચિકિત્સા કરવી જોઇએ, એ વિષયનું તેમાં પ્રતિપાદન કર્યું છે. છઠ્ઠું પ્રત્યાખ્યાન નામનું અધ્યાય છે. તેમાં મૂળગુણો અને ઉત્તરગુણોને ધારણ કરવા

धारणा=प्रतिपत्तिः, एवंरूपोऽर्थाधिकारः प्ररूपयिष्यते। मूलोत्तरगुणानां निरतिचारं सन्धारणं यथा भवति तथा प्रत्याख्यानाध्ययने प्ररूपयिष्यते इत्यर्थः। 'चैव' इति 'च' शब्दादन्येऽप्यवान्तरार्थाधिकारा विज्ञेयाः। 'एव' शब्दोऽवधारणे बोध्यः।

अध्ययन है। उसमें मूलगुण और उत्तरगुणों को धारण करनेरूप अर्थाधिकार है। मूलगुण उत्तरगुणों को अतिचार रहित अच्छी तरह धारण करता है वैसी प्ररूपणा सूत्रकार प्रत्याख्यान अध्ययन में करेंगे। "च" शब्द से सूत्रकारने यह प्रकट किया है कि आवश्यक के और अवान्तर अर्थाधिकार हैं। "एव" शब्द अवधारण अर्थ में आया हैं।

भावार्थ—सूत्रकारने इस सूत्रद्वारा आवश्यक के छ अर्थाधिकारों को वर्णन किया हैं।(१) सामायिक (२) चतुर्विंशतिस्तव, (३) वंदना, (४) प्रतिक्रमण, (५) कायोत्सर्ग और (६) प्रत्याख्यान। इन सर्व सावद्ययोगों से विरक्त होना सामायिक अध्ययन में, चौवीस तीर्थंकरों की स्तुति करना द्वितीय चतुर्विंशतिस्तव अध्ययन में, गुणवान साधु को वन्दना आदि करना वन्दनाध्ययन में साधुकृत्य से स्खलित हुए साधु को अपनी निंदा करना प्रतिक्रमण अध्ययन में, चारित्र में लगे हुए अतिचारों की दशविध प्रायश्चित से शुद्धि करना कायोत्सर्ग अध्ययन में, मूलगुण और उत्तरगुणों को धारण करना प्रत्याख्यान अध्ययन में अर्थाधिकार हैं।

૩૫ અર્થાધિકાર છે. પ્રત્યાખ્યાન દ્વારા તે મૂળગુણ અને ઉત્તરગુણોને અતિચાર રહિત સમ્યક્‌રૂપે ધારણ કરે છે, એવી પ્રરૂપણા સૂત્રકાર આગળ જતાં પ્રત્યાખ્યાન અધ્યયનમાં કરશે. 'च" શબ્દ દ્વારા સૂત્રકારે એ પ્રકટ કર્યું છે કે આવશ્યકના આ સિવાયના બીજા પણ અવાન્તર અર્થાધિકાર છે. "एव" આ પદ અવધારણ અર્થમાં વપરાયું છે.

ભાવાર્થ—સૂત્રકારે આ સૂત્રદ્વારા આવશ્યકના છ અર્થાધિકારોનું વર્ણન કર્યું છે-(૧) સામાયિક (૨) ચતુર્વિંશતિસ્તવ (૨૪ તીર્થંકરોની સ્તુતિ), (૩) વંદના, (૪) પ્રતિક્રમણ, (૫) કાયોત્સર્ગ અને (૬) પ્રત્યાખ્યાન.

પહેલા અધ્યયનમાં સમસ્ત સાવદ્ય યોગોથી વિરકત થવાનો, બીજા અધ્યયનમાં ૨૪ તીર્થંકરોની સ્તુતિ કરવાનો, ત્રીજા વંદના અધ્યયનમાં ગુણવાન સાધુને વંદણા આદિ કરવાનો, ચોથા પ્રતિક્રમણ અધ્યયનમાં સાધુકૃત્યથી સ્ખલિત થયેલા સાધુએ પોતાની નિન્દા કરવાનો, પાંચમાં કાયોત્સર્ગ અધ્યયનમાં ચારિત્રમાં લાગેલા અતિચારોની દસ પ્રકારના પ્રાયશ્ચિત્તોથી શુદ્ધિ કરવાનો અને છઠ્ઠા પ્રતિક્રમણ અધ્યયનમાં મૂળગુણો અને ઉત્તરગુણોને ધારણ કરવાનો અર્થાધિકાર છે. આગળ સૂત્રકારે આ પ્રમાણે કથન કર્યું હતું—

पूर्वम् 'आवस्सयं निक्खिविस्सामि, सुयं निक्खिविस्सामि, खंधं निक्खिविस्सामि, अज्झयणं निक्खिविस्सामि' इत्युक्तम्। तत्र-आवश्यकादीनि त्रीणि पदानि निक्षिप्तानि। अध्ययनस्य निक्षेपः सम्प्रति क्रमप्राप्तोऽपि न क्रियते। यतस्तस्य निक्षेपः वक्ष्यमाणनिक्षेपानुयोगद्वारे ओघनिष्पन्ननिक्षेपे करिष्यते।सू०५९।

अधुनाऽऽवश्यकस्य यद् व्याख्यातं, यच्च व्याख्येयं तदुभयमुपदर्शयन्नाह-

मूलम्—आवस्सयस्स एसो पिंडत्थो वण्णिओ समासेणं।
एत्तो एक्केक्कं पुण, अज्झयणं कित्तइस्सामि ॥१॥

तं जहा—सामाइयं, चउवीसत्थओ वन्दणयं पडिक्कमणं काउस्सग्गो पच्चक्खाणं। तत्थ पढमं अज्झयणं सामाइयं, तस्स णं इमे

पूर्व में आवस्सयं निक्खिविस्सामि, सुयं निक्खिविस्सामि, खंधं निक्खिविस्सामि अज्झयणं निक्खिविस्सामि" ऐसा सूत्रकारने कहा है। सो इनमें से आवश्यक आदि तीन पद तो सूत्रकार द्वारा निक्षिप्त किये जा चुके। अब अध्ययन का निक्षेप क्रम प्राप्त है-सो क्रम प्राप्त होने पर भी उसका निक्षेप सूत्रकार यहां नहीं कर रहे हैं क्यों कि वक्ष्यमाण निक्षेपअनुयोगद्वार में आघनिष्पन्न निक्षेप में वे उसका निक्षेप करेंगे। ॥ सूत्र ५९ ॥

अब सूत्रकार आवश्यक का जो विषय-व्याख्यात हो चुका है तथा आगे जो विषय व्याख्यात हो चुका है यह दिखलाते हैं:—

आवस्सयस्स एसो इत्यादि। ॥ सूत्र ६० ॥

शब्दार्थ—(आवस्सयस्स) आवश्यक इसनाम से प्रसिद्ध शास्त्र का (एसा) यह पूर्वोक्तरूप (पिंडत्थो) पिण्डार्थ (समासेणं) संक्षेपसे (वण्णिओ) कहा है।

"आवस्सयं निक्खिविस्सामि, सुयं निक्खिविस्सामि,
खंधं निक्खिविस्सामि, अज्झयणं निक्खिविस्सामि"

આ કથન અનુસાર આવશ્યક, શ્રુત અને સ્કન્ધ આ ત્રણનો નિક્ષેપ તો થઇ ચુકયો છે હવે અનુક્રમ પ્રમાણે અધ્યયનનો નિક્ષેપ થવો જોઇએ. છતાં પણ સૂત્રકાર અહીં ક્રમ પ્રાપ્ત અધ્યયનનો નિક્ષેપ કરતા નથી, કારણ કે આ વિષયનો નિક્ષેપ અનુયોગ દ્વારમાં-ઓઘનિષ્પન્ન નિક્ષેપમાં તેઓ તેનો નિક્ષેપ કરશે. ॥ સૂ ૫૯ ॥

હવે સૂત્રકાર આવશ્યકનો જે વિષય વ્યાખ્યાત થઇ ચુકયો છે અને આગળ જે વિષય વ્યાખ્યાત થવાનો છે, તે બતાવે છે. "आवस्सयस्स एसो" ઇત્યાદિ—

चत्तारि अणुओगदारा भवंति, तं जहा–उवक्कमे १, निक्खेवे २, अणुगमे ३, नए ४ ॥६०॥

छाया—आवश्यकस्य एष पिण्डार्थो वर्णितः समासेन।
अत एकैकं पुनरध्ययनं कीर्त्तयिष्यामि ॥१॥

तद्यथा–सामायिकं चतुर्विंशतिस्तवो वन्दनकं प्रतिक्रमणं कायोत्सर्गः प्रत्याख्यानम्। तत्र प्रथममध्ययनं सामायिकम्। तस्य खलु इमानि चत्वारि अनुयोगद्वाराणि भवन्ति, तद्यथा-उपक्रमो निक्षेपः अनुगमो नयः ॥६०॥

तात्पर्य कहने का यह है–इस शास्त्र का आवश्यकश्रुतस्कंध ऐसा नाम सार्थक है। अतः सार्थक नाम होने से अवश्य करणीय सावद्ययोगविरति आदि का प्रतिपादन सूत्रकार आगे करेंगे। (एत्तो) इसलिये आवश्यक का संक्षेप से समुदाय अर्थ वर्णन करने के बाद (पुण) पुनः (एक्केकं अज्झयणं) एक एक अध्ययन का (कित्तइस्सामि) कथन में करूंगा। (तं जहा) वे अध्ययन इस प्रकार से हैं–(सामाइयं चउवीसत्थओ वंदणयं पडिक्कमणं, काउस्सग्गो पच्चक्खाणं) १ सामायिक, २ चतुर्विंशतिस्तव, ३ वन्दनक, ४ प्रतिक्रमण ५ कायोत्सर्ग ६, प्रत्याख्यान। (तत्थ पढमं अज्झयणं सामाइयं) इन ६ अध्ययनों में से १ पहिला अध्ययन सामायिक है। समः आयः–समायः समायः प्रयोजनमस्येति सामायिकम् इस व्युत्पत्ति के अनुसार रागद्वेष से रहित ऐसा आत्मा का–

शब्दार्थ—(आवस्सयस्स) આવશ્યક આ નામે પ્રસિદ્ધિ એવા શાસ્ત્રનો (एसो) આ પૂર્વોકત પ્રકારનો (पिंडत्थो) પિંડાર્થ (समासेणं) સંક્ષિપ્તમાં (वण्णिओ) કહેવામાં આવ્યો છે. આ કથનનું તાત્પર્ય આ પ્રમાણે છે-આ શાસ્ત્રનું આવશ્યક શ્રુત સ્કન્ધ' એવું નામ સાર્થક છે. આ રીતે આ શાસ્ત્રનું નામ સાર્થક હોવાથી, અવશ્ય કરણીય સાવદ્યયોગ વિરતિ આદિનું પ્રતિપાદન સૂત્રકાર આગળ કરવાના છે. (एत्तो) તેથી આવશ્યકના સમુદાય અર્થનું સંક્ષિપ્તમાં વર્ણન કરીને (पुण) હવે (एक्केकं अज्झयणं) એક એક અધ્યયનનું (कित्तइस्सामि) વર્ણન હું કરીશ, એવું સૂત્રકાર વચન આપે છે. (तंजहा) આવશ્યકના તે અધ્યયનોનાં નામ આ પ્રમાણે છે - (सामाइयं, चउवीसत्थओ वन्दणयं पडिक्कमणं, काउस्सग्गो पच्चक्खाणं) (૧) સામાયિક, (૨) ચતુર્વિંશતિસ્તવ (૨૪ તીર્થંકરોની સ્તુતિ). (૩) વન્દનક, (૪) પ્રતિક્રમણ, (૫) કાયોત્સર્ગ અને (૬) પ્રત્યાખ્યાન. (तत्थ पढमं अज्झयणं सामाइयं) આ છ અધ્યયનોમાં પહેલું સામાયિક નામનું અધ્યયન છે. જેના દ્વારા બોધ આદિકોના અધિક અધિક પ્રાપ્તિ થતી રહે તેનું નામ અધ્યયન છે. "समः आयः=समायः समायः प्रयोजनमस्येति

टीका—'आवस्सयस्स' इत्यादि—

आवश्यकस्य=आवश्यकेति नाम्ना प्रसिद्धस्य शास्त्रस्य एषः=पूर्वोक्तरूपः पिण्डार्थः=समुदायार्थः समासेन=संक्षेपेण वर्णितः=कथितः। अस्य शास्त्रस्यावश्यक श्रुतस्कन्ध इति-अन्वर्थनाम। नाम्नोऽन्वर्थत्वात् अवश्यं करणीयं सावद्ययोगविरत्यादिकं प्रतिपादयिष्यते, इति—अभिप्रायः। उत्तरार्ध गाथाऽर्थमाह—अतः=आवश्यकस्य संक्षेपेण समुदायार्थ वर्णनानन्तरं पुनः=भूयः एकैकम् अध्ययनं कीर्त्तयिष्यामि=कथयिष्यामीति।

एकैकमध्ययनं कीर्त्तयिष्यामीति प्रतिज्ञानुसारेण तन्निरूपयितुमाह—'त जहा' इत्यादि। तद्यथा-सामायिकं चतुर्विंशतिस्तवो वन्दनकं प्रतिक्रमणं कायोत्सर्गः प्रत्याख्यानम्। तत्र—तेषु षट्सु अध्ययनेषु प्रथमम्=आद्यम् अध्ययनम्—अधि-अधिकम् अयनं=प्रापणं बोधादेर्येन तदध्ययनम्, सामायिकम्—समः=रागद्वेषवियुक्तः स्वात्मवत्सर्वभूतेषु दृष्टिसम्पन्नस्तस्य आयः=प्रतिक्षणं ज्ञानादि—गुणोत्क-

---

समभावरूप परिणाम कि जो सर्वभूतों में स्वात्मवत् दृष्टि से संपन्न होताहै उसका नाम सम है। इस सम की जो आय प्राप्ति है-ज्ञानादिगुणोत्कर्ष के साथ लाभ है-उसका नाम समाय है। यह सम प्रतिक्षण अपूर्व भवाटवी में भ्रमण कराने के कारणभूत संक्लेश भाव के विच्छेदक और निरुपम सुख के हेतु ऐसे ज्ञान, दर्शन और चारित्ररूप पर्यायों से जो संयुक्त हो जाता है उसका नाम समाय हैं यह समायशब्द का निष्कर्षार्थ है। यह समाय ही जिस ज्ञान क्रियारूप अध्ययन का प्रयोजन है उसका नाम सामायिक है। अथवा समाय एव सामायिकम्" समाय ही सामायिक है। इसका जो सबसे पहिले कथन किया है—उसका कारण यह है कि यह सामायिक समस्त चारित्रादि गुणों का आधार होने के कारण मुक्ति का प्रधान हेतु है। कहा हैं—जैसे सर्व

सामायिकम्" આ વ્યુત્પત્તિ રાગદ્વેષથી રહિત એવા આત્માનું સમભાવરૂપ પરિણામ કે જે સર્વભૂતોમાં સ્વાત્મવત્ દૃષ્ટિથી સંપન્ન હોય છે, તેનું નામ 'સમ' છે. તે સમની જે આય (પ્રાપ્તિ) છે-જ્ઞાનાદિ ગુણોત્કર્ષ રૂપ જે લાભ છે, તેનું નામ સમાય છે પ્રતિક્ષણ અપૂર્વ ભવાટવીમાં ભ્રમણ કરાવવાને કારણભૂત સંક્લેશ ભાવના વિચ્છેદક અને અનુપમ સુખના હેતુ એવાં જ્ઞાન, દર્શન અને ચારિત્રરૂપ પર્યાયોથી જે સંયુક્ત (સંપન્ન) થઇ જાય છે તેનું નામ સમાય છે. આ પ્રકારનો 'સમાય' પદનો નિષ્કર્ષાર્થ થાય છે. આ સમાય જ જે જ્ઞાન ક્રિયારૂપ અધ્યયનનું પ્રયાજન છે, તેનું નામ સામાયિક છે. અથવા-"समाय एव सामायिकम्" સમાય જ સામાયિકરૂપ છે આ સામાયિકનું સાથી પ્રથમ કથન કરવાનું કારણ એ છે કે આ સામાયિક સમસ્ત ચારિત્રાદિ ગુણોના આધારરૂપ હોવાથી મુક્તિપ્રાપ્તિના પ્રધાન કારણરૂપ છે.

र्यप्राप्तिः—समायः, समो हि प्रतिक्षणमपूर्वैः ज्ञानदर्शनचरणपर्यायैर्भवाटवीभ्रमणहेतु-संक्लेशविच्छेदकैर्निरुपमसुखहेतुभिः संयुज्यते इति भावः, समायः प्रयोजनमस्य ज्ञानक्रियासमुदायरूपस्वाध्ययमस्येति सामायिकम् । यद्वा—समाय एव सामायिकम् । समस्तचरणादिगुणाधारत्वेन प्रधानमुक्तिकारणत्वादस्य प्रथममुपन्यासः। उक्तं च—

"सामायिकं गुणानामाधारः, स्वमिव सर्वभावानाम् ।
नहि सामायिकहीनाश्चरणादि गुणान्विता येन ॥१॥
तस्माज्जगाद भगवान् सामायिकमेव निरूपमापायम् ।
शारीरमानसानेकदुःखनाशस्य मोक्षस्य ॥२॥" इति ॥

तस्यैवंभूतस्य सामायिकस्य खलु इमानि वक्ष्यमाणानि चत्वारि अनुयोगद्वाराणि—अनुयोगः=अध्ययनार्थकथनविधिस्तस्य द्वाराणीव द्वाराणि—महापुरस्येव सामायिकस्यानुयोगार्थं=व्याख्यानार्थं द्वाराणि=प्रवेशमार्गा भवन्ति। महानगरदृष्टान्तः पूर्वं सप्तपञ्च उपदर्शितस्तत एव विज्ञेयः ।

भावों का आधार आत्मा होता है उसी तरह समस्त गुणों का आधार सामायिक है—सामायिक रहित पुरुष चारित्रादिगुणों से युक्त नहीं हो सकते हैं । इसलिये भगवान्ने शारीरिक मानसिक अनेक दुःखों के नाशवाले मोक्ष का निरूपम उपाय सामायिकको ही कहा है । (तस्सणं इमे चत्तारि अणुओगदारा हवंति) उस सामायिक के वे चार अनुयोगद्वार हैं। जिस प्रकार प्रवेश के चार प्रधान द्वार होते हैं। उसी प्रकार प्रवेश के चार प्रधान द्वार होते हैं। उन्हीं का नाम अनुयोग द्वार अध्ययन के अर्थ के कहने की विधि का नाम अनुयोग है। महानगर का दृष्टान्त प्रथम सूत्र की व्याख्या करने के पहिले कहदिया है—अतः वहां से उसे जान लेना चाहिये ।—

કહ્યું છે કે—જેમ સમસ્ત ભાવોનો આધાર આત્મા હોય છે, તેમ સમસ્ત ગુણોનો આધાર સામાયિક છે.” સામાયિકરહિત પુરુષ ચારિત્ર આદિ ગુણોથી સંપન્ન હોઇ શકતા નથી. તેથી જ ભગવાને શારીરિક અને માનસિક દુઃખોનો નાશકર્તા મોક્ષ પામિનો શ્રેષ્ઠ ઉપાય સામાયિક જ કહ્યો છે. (तस्सणं इमे चत्तारि अणुओगदारा हवंति) તે સામાયિકના આ ચાર અનુયોગ દ્વાર છે જેમ કોઇ મહાનગરમાં પ્રવેશ કરવાને માટે ચારે દિશામાં ચાર મુખ્ય દરવાજા હોય છે, એજ પ્રમાણે આ મહાનગરરૂપ સામાયિકના અનુયોગને (વ્યાખ્યાનને) માટે ચાર દ્વાર કહે છે. અધ્યયનના અર્થને (વિષયને) કહેવાની વિધિનું નામ અનુયોગ છે મહાનગરના દ્વારોનું દૃષ્ટાન્ત પ્રથમ સૂત્રની વ્યાખ્યા કરતાં, પહેલાં પ્રકટ કરવામાં આવ્યું છે તો તે દૃષ્ટાન્ત પહેલા સૂત્રમાંથી વાંચી લેવું જોઇએ.

तानि अनुयोगद्वाराणि दर्शयति—'तं जहा' इत्यादि। तद्यथा उपक्रमः-उपक्रमणम्-उपक्रमः-दूरस्थस्य वस्तुनस्तत्तैः प्रतिपादनप्रकारैः समीपमानीय निक्षेपयोग्यताकरणमित्यर्थः। उपक्रान्तं हि उपक्रमान्तर्गतैर्भेदैर्विचारितं सत् निक्षिप्यते नान्यथेति भावः। यद्वा-उपक्रम्यते=निक्षेपयोग्यं क्रियतेऽनेन गुरुवाग्योगेनेत्युपक्रमः। अथवा-उपक्रम्यतेऽस्मिन् शिष्यश्रवणभावे सति गुरुणेत्युपक्रमः, किंवा-उपक्रम्यतेऽमादू विनीतविनेयविनयादिगुणैरित्युपक्रमः। एवं विवक्षाभेदेन करणाधिकरणापादानकारकैर्गुरुवाग्योगादयोऽर्था उक्ताः। यदित्वेतेऽप्यन्यन्तरोऽर्थः करणादिकारकवाच्यत्वेन विवक्ष्यते तथापि न दोषः।

(तं जहा) सूत्रकार उन्हीं अनुयोगद्वारों को कहते हैं—(उवक्कमे, निक्खेवे, अणुगमे, नए) १ उपक्रम, निक्षेप, अनुगम, और नय। दूरस्थवस्तु को उन २ प्रतिपादन प्रकारों से समीप में लाकरके निक्षेप की योग्यतावाली बनाना इसका नाम उपक्रम है। उपक्रान्त वस्तु ही उपक्रमान्तर्गत भेदों से विचारित होती हुई निक्षिप्त योग्य होती है। अन्यथा नहीं। अथवा—जिस गुरु के वचन के व्यापार से वस्तु निक्षेप योग्य की जाती है उसका नाम उपक्रम है। शिष्यजनों को सुनने का भाव होने पर वस्तु जिसमें निक्षेपयोग्य की जाती है उसका नाम उपक्रम है। जिस विनीत-विनयशील शिष्य के विनयादि गुणों से वस्तु निक्षेप योग्य की जाती है उसका नाम उपक्रम है। इस प्रकार विवक्षा के भेद से इन पूर्वोक्त करण अधिकरण अपादान आदि का गुरुवाग्योग आदि अर्थ उपक्रम का कोई एक भी अर्थ करण आदि द्वारा वाच्यत्वेन विवक्षित हुआ लिया जाय तो भी उसमें कोई दोष नहीं हैं।

(तंजहा) તે અનુયોગદ્વારો નીચે પ્રમાણે છે—

(उवक्कमे, निक्खेवे, अणुगमे, नए) (૧) ઉપક્રમ, (૨) નિક્ષેપ, (૩) અનુગમ અને (૪) નય.

દૂરની વસ્તુઓને આ પ્રતિપાદન પ્રકારોની સમીપમાં લાવીને નિક્ષેપને યોગ્ય બનાવવી તેનું નામ ઉપક્રમ છે. ઉપક્રાન્ત વસ્તુ જ ઉપક્રમાન્ત ગતિભેદોથી વિચારાતાં વિચારાતાં નિક્ષિપ્તયોગ્ય થાય છે-અન્ય પ્રકારે નિક્ષેપયોગ્ય થતી નથી.

અથવા—જે ગુરુના વચનના વ્યાપારથી વસ્તુને નિક્ષેપયોગ્ય કરાય છે, તેનું નામ ઉપક્રમ છે. શિષ્યોને સાંભળવાનો ભાવ થાય ત્યારે વસ્તુ જેમાં નિક્ષેપયોગ્ય કરાય છે તેનું નામ ઉપક્રમ છે. જે વિનીત શિષ્યના વિનયાદિ ગુણોથી વસ્તુને નિક્ષેપયોગ્ય કરાય છે તેનું નામ ઉપક્રમ છે. આ પ્રમાણે વિવક્ષાના ભેદથી આ પૂર્વોકિત કરણ, અધિકરણ, અપાદાન આદિદ્વારા ગુરુવાગ્યોગ આદિ ઉપક્રમના અર્થ કહેવામાં આવ્યા છે. જો આ બધામાંથી ઉપક્રમના કોઈ એક પણ અર્થ કરણ આદિ દ્વારા વાચ્યત્વરૂપે જે વીવક્ષિત થયો છે તે લેવામાં આવે, તો પણ તેમાં કોઈ દોષ નથી.

निक्षेपः=निक्षेपणं निक्षेपः-नामस्थापनादिभेदैः शास्त्रादेर्न्यसनं व्यवस्थापनमिति यावत् । निक्षिप्यतेऽनेनास्मिन् अस्मादिति वा निक्षेपः । गुरुवाग्योगार्था अत्रापि पूर्ववद् बोध्याः ।

अनुगमः-अनुगमनम्, अनुगमः-सूत्रानुकूलार्थकथनम् । अनुगम्यते-व्याख्यायते सूत्रमनेनास्मिन् यस्माद्वेति-अनुगमः । वाच्यार्थविवक्षा पूर्ववद् बोध्या ।

नयः-नयनं नयः, नीयते=परिच्छिद्यते निर्णीयते वस्तुस्वरूपम्-अनेनास्मिन् अस्माद्वेति नयः । अनन्तधर्माध्यासिते वस्तुनि एकांशग्राहको बोध इत्यर्थः । अयमेवार्थो भावसाधने करणादि साधने चापि बोध्यः । इदमत्र बोध्यम्-उप-

---

रखने का नाम निक्षेप है—नाम स्थापना आदि के भेद से शास्त्र आदि का न्यास—व्यवस्थापन करना इसका नाम निक्षेप है । जिसके द्वारा अथवा जिसमें अथवा जिससे वस्तु निक्षेपकी जाती—समझाई जाती है इसका नाम निक्षेप है । गुरुवाग्योग आदि अर्थ यहां पर भी पहिले की तरह करण आदि साधनोंद्वारा किये गये जानना चाहिये । सूत्र के अनुकूल अर्थ कहना इसका नाम अनुगम है। जिसके द्वारा सूत्रका व्याख्यान किया जावे अथवा जिसमें सूत्रका व्याख्यान किया जाय अथवा जिससे सूत्रका व्याख्यान किया जावे उसका नाम अनुगम है । यहां पर भी करणादिकारकों द्वारा वाच्य अर्थ की विवक्षा पहिले की तरह जान लेनी चाहिये। जिसके द्वारा, अथवा जिसमें, जथवा जिससे वस्तु का स्वरूप जाना जावे उसका नाम नय है। इसका तात्पर्य यह कि वस्तु में अनंत धर्म हैं—उनमें से किसी एक अंश का ग्रहण करनेवा जो बोध है उसका नाम नय

રાખવું અથવા સ્થાપન કરવું તેનું નામ નિક્ષેપ છે. એટલે કે નામ, સ્થાપના આદિના ભેદો દ્વારા શાસ્ત્ર ન્યાસ (વ્યવસ્થાપન) કરવો તેનું નામ નિક્ષેપ છે. જેના દ્વારા અથવા જેમાં અથવા જેના વડે વસ્તુ નિક્ષેપ કરાય છે-વસ્તુનું પ્રતિપાદન કરાય છે-વસ્તુનું સ્વરૂપ સમજાવવામાં આવે છે તેનું નામ [illegible]. ગુરુવાગ્યોગ આદિ અર્થ પણ અહીં પહેલાંના જેવાંજ કરણ આદિ સાધનો દ્વારા કરવામાં આવ્યા છે, એમ સમજવું. સૂત્રને અનુકૂળ એવો અર્થ કહેવો તેનું નામ અનુગમ છે. જેના દ્વારા સૂત્રનું વ્યાખ્યાન કરવામાં આવે, અથવા જેમાં સૂત્રનું વ્યાખ્યાન કરવામાં આવે, અથવા જે વડે સૂત્રનું વ્યાખ્યાન કરવામાં આવે, તેનું નામ અનુગમ છે. અહીં પણ કરણ આદિ સાધનો દ્વારા વાચ્ય અર્થની વિવક્ષા પહેલાની જેમજ સમજવી.

જેના દ્વારા અથવા જેનાથી વસ્તુનું સ્વરૂપ જાણવામાં આવે છે તેનું નામ નય છે. તેનું તાત્પર્ય નીચે પ્રમાણે છે-વસ્તુમાં અનંત ધર્મ છે. તેમાંથી કોઇ એક અંશનો ગ્રહણ કરનારો જે બોધ હોય છે તેનું નામ નય છે. નયનો આ

क्रान्तमेव=निक्षेपयोग्यतामानीतमेव वस्तु निक्षिप्यते, अत आदावुपक्रममभिधाय पश्चाद् निक्षेप उक्तः नामादिभेदैर्निक्षिप्तमेव अनुगमविषयं भवति, अतो निक्षेपानन्तरमनुगम उच्यते। अनुगम्यमानमेव च नयैर्विचार्यते नान्यथेति तदनन्तरं नय उक्तः ॥सू० ६०॥

तत्र-उपक्रमो द्विविधः शास्त्रीयो लौकिकश्च। तत्र लौकिकमुपक्रममाह--

मूलम्—से किं तं उवक्कमे? उवक्कमे छव्विहे पण्णत्ते, तं जहा णामोवक्कमे ठवणोवक्कमे दव्वोवक्कमे खेत्तोवक्कमे कालोवक्कमे भावोवक्कमे। नामठवणाओ गयाओ। से किं तं दव्वोवक्कमे? दव्वोवक्कमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—आगमओ य नो आगमो य जाव जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वोवक्कमे तिविहे पण्णत्ते तं जहा—सचित्ते अचित्ते मीसए ॥सू० ६१॥

है। नय का यही अर्थ भावसाधन में और करण आदि साधनों में भी जानना चाहिये। यहां इस प्रकार समझना चाहिये उपक्रान्त ही—निक्षेप की योग्यता में आई हुई ही वस्तु निक्षेप्त होती है, इसलिये सब से पहिले उपक्रम को कह करके पश्चात् सूत्रकारने निक्षेप का पाठ किया है। नाम आदि भेदों से निक्षेप हुई वस्तु ही अनुगम की विषयभूत बनती है—इसलिये निक्षेप के अनन्तर अनुगम कहा है। अनुगम से युक्त हुई ही वस्तु नयों द्वारा विचार कोटि में आती है, अन्यथा नहीं इसलिये अनुगम के बाद नय का पाठ किया है। ॥सूत्र ६०॥

અર્થ જ ભાવસાધનનું અને કરણ આદિ સાધનોમાં પણ સમજવો જોઇએ. અહીં આ પ્રમાણે સમજવું જોઇએ. ઉપક્રાન્ત જ-નિક્ષેપની યોગ્યતામાં આવેલી વસ્તુ જ નિક્ષિપ્ત થાય છે, તેથી સૂત્રકારે સૌથી પહેલાં ઉપક્રમનું કથન કરીને ત્યારબાદ નિક્ષેપનું કથન કર્યું છે.

નામ આદિ ભેદોથી જેનો નિક્ષેપ કરવામાં આવ્યો હોય એવી વસ્તુ જ અનુગમ કરવાને યોગ્ય બને છે. તેથી નિક્ષેપનું કથન કર્યા બાદ સૂત્રકારે અનુગમનું કથન કર્યું છે. અનુગમથી યુકત એવી વસ્તુ જ નયો દ્વારા વિચારણીય બને છે, તેથી અનુગમના સ્વરૂપનું કથન કર્યાબાદ સૂત્રકારે નયના સ્વરૂપનું કથન કર્યું છે.॥સૂ.૬૦॥

छाया—अथ कोऽसौ उपक्रमः ? उपक्रमः षड्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—नामोपक्रमः स्थापनोपक्रमः द्रव्योपक्रमः क्षेत्रोपक्रमः कालोपक्रमो भावोपक्रमः नामस्थापने गते। अथ कोऽसौ द्रव्योपक्रमः ? द्रव्योपक्रमो द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—आगमतश्च नोआगमतश्च भव्यशरीरव्यतिरिक्तो द्रव्योपक्रमस्त्रिविधः प्रज्ञप्तः तद्यथा—सचित्तः, अचित्तः मिश्रकः ॥६१॥

उपक्रम शास्त्रीय उपक्रम और लौकिक उपक्रम के भेद से दो प्रकार का है-इनमें लौकिक उपक्रम का क्या स्वरूप है यह सूत्रकार प्रकट करते हैं—

"से किं तं उवक्कमे" इत्यादि ॥सूत्र ६१॥

शब्दार्थ—(से किं तं उवक्कमे) हे भदन्त ! उपक्रम का क्या तात्पर्य है ? उत्तर—(उवक्कमे छव्विहे पण्णत्ते) उपक्रम छ प्रकार का कहा गया है। (तंजहा) जैसे (णामोवक्कमे, ठवणोवक्कमे, दव्वोवक्कमे, खेत्तोवक्कमे, कालोवक्कमे, भावोवक्कमे) नाम उपक्रम, स्थापना उपक्रम द्रव्य उपक्रम, क्षेत्रउपक्रम, कालउपक्रम और भावउपक्रम। (नामठवणाओ गयाओ) नाम उपक्रम और स्थापना उपक्रम का स्वरूप नाम आवश्यक और स्थान आवश्यक के समान जानना चाहिये। (से किं तं दव्वोवक्कमे) हे भदन्त। द्रव्योपक्रम का क्या स्वरूप है ? (दव्वोवक्कमे दुविहे पण्णत्ते) द्रव्योपक्रम दो प्रकार का कहा गया है। (तं जहा) जैसे (आगमओ य नोआगमओ य जाव जाणयसरीर भविअसरीर-

---

ઉપક્રમના શાસ્ત્રીય ઉપક્રમ અને લૌકિક ઉપક્રમ નામના બે ભેદ કહ્યા છે. તેમાંથી લૌકિકઉપક્રમનું સૂત્રકાર હવે નિરૂપણ કરે છે—

"से किं तं उवक्कमे" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(से किं तं उवक्कमे ?) શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે હે ગુરુમહારાજ ! ઉપક્રમનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર—(उवक्कमे छव्विहे पण्णत्ते) ઉપક્રમ ૬ પ્રકારનો કહ્યો છે-(तंजहा) તે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે.

(णामोवक्कमे, ठवणोवक्कमे, दव्वोवक्कमे, खेत्तोवक्कमे, कालोवक्कमे, भावोवक्कमे) (૧) નામ ઉપક્રમ, સ્થાપના ઉપક્રમ, (૩) દ્રવ્યઉપક્રમ, (૪) ક્ષેત્રઉપક્રમ (૫) કાળઉપક્રમ અને (૬) ભાવઉપક્રમ. (नामउवणाओ गयाओ) નામઉપક્રમ અને સ્થાપના ઉપક્રમનું સ્વરૂપ નામ આવશ્યક અને સ્થાપના આવશ્યક જેવું સમજવું.

(से किं तं दव्वोवक्कमे ?) પ્રશ્ન—હે ગુરુમહારાજ ! દ્રવ્યોપક્રમનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર—(दव्वोवक्कमे दुविहे पण्णत्ते) દ્રવ્યોપક્રમ બે પ્રકારનો કહ્યો છે. (तं जहा) જેમકે....(आगमओ य, नोआगमओ य जाव जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वो-

टीका—शिष्यःपृच्छति—'से किं तं' इत्यादि—अथ कोऽसौ उपक्रमः ? इति। उत्तरमाह—उपक्रमः षड्विधः प्रज्ञप्तः-नामोपक्रमादिरूपः। तत्र नामोपक्रमस्थापनोपक्रमौ नामावश्यकस्थापनावश्यकवद् विज्ञेयौ। सम्प्रति द्रव्योपक्रमं प्रश्नपूर्वकं प्रस्तौति-अथ कोऽसौ द्रव्योपक्रमः ? द्रव्योपक्रमो द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद् यथा—आगमतश्च नो आगमतश्च, यावत् ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तो द्रव्योपक्रमः। इह यावच्छब्देन द्रव्यावश्यकवद् द्रव्योपक्रमव्याख्या बोध्या। तत्र ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तो द्रव्योपक्रम स्त्रिविधः प्रज्ञप्तः। तद् यथा—सचित्तः, अचित्तः, मिश्रकः। तत्र सचित्त द्रव्यविषयः सचित्तः, अचित्तद्रव्यविषयोऽचित्तः, मिश्रद्रव्यविषयो मिश्रकः ॥सू० ६१॥

वइरित्ते दव्वोवक्कमे तिविहे पण्णत्ते—तं जहा—सचित्ते अचित्ते मीसए) आगम द्रव्योपक्रम-नोआगम द्रव्योपक्रम। नोआगम द्रव्योपक्रम ३ तीन प्रकार का है—ज्ञायकशरीर द्रव्योपक्रम, भव्यशरीर द्रव्योपक्रम और ज्ञायकशरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्योपक्रम। इनमें ज्ञायक शरीर, भवियशरीर से व्यतिरिक्त जो-द्रव्योपक्रम है वह तीन प्रकार का है। सचित्त, अचित्त और मिश्र। जिस उपक्रम का विषय सचित्त द्रव्य है वह तद्व्यतिरिक्त सचित्तद्रव्योपक्रम है। जिस उपक्रम का विषय अचित्त द्रव्य है वह तद्व्यतिरिक्त अचित्तद्रव्योपक्रम है। और जिसका विषय सचित्त अचित्त दोनों प्रकार का द्रव्य है। वह तद्व्यतिरिक्त मिश्र द्रव्योपक्रम है। इस द्रव्योपक्रम की व्याख्या द्रव्यावश्यक की तरह जाननी चाहिये।

भावार्थ—सूत्रकारने यहां पर उपक्रम के ६ भेदों को प्रकट करते हुए

वक्कमे तिविहे पण्णत्ते-तं जहा-सचित्ते, अचित्ते मीसए)

(૧) જ્ઞાયકશરીર દ્રવ્યોપક્રમ અને (૨) નોઆગમદ્રવ્યોપક્રમ. નોઆગમદ્રવ્યોપક્રમ નીચે પ્રમાણે ત્રણ પ્રકારનો કહ્યો છે-(૧) જ્ઞાયકશરીર દ્રવ્યોપક્રમ, (૨) ભવ્યશરીર દ્રવ્યોપક્રમ અને (૩) જ્ઞાયકશરીર અને ભવ્યશરીરથી વ્યતિરિક્ત (ભિન્ન) દ્રવ્યોપક્રમ તેમાંનો જે જ્ઞાયકશરીર ભવ્યશરીર વ્યતિરિક્ત દ્રવ્યોપક્રમ છે તેના નીચે પ્રમાણે ત્રણ પ્રકાર છે. (૧) સચિત્ત, (૨) અચિત્ત અને (૩) મિશ્ર જે ઉપક્રમનો વિષય સચિત્ત દ્રવ્ય છે, તેને તદ્વ્યતિરિક્ત સચિત્તદ્રવ્યોપક્રમ કહે છે. જે ઉપક્રમનો વિષય અચિત્તદ્રવ્ય છે તે ઉપક્રમને તદ્વ્યતિરિક્ત અચિત્ત દ્રવ્યોપક્રમ કહે છે. અને જેનો વિષય સચિત્ત અચિત્ત બન્ને પ્રકારનું દ્રવ્ય છે. તે ઉપક્રમને તદ્વ્યતિરિક્ત મિશ્ર દ્રવ્યોપક્રમ કહે છે. આ દ્રવ્યોપક્રમની વ્યાખ્યા દ્રવ્યાવશ્યકના જેવી જ સમજવી.

ભાવાર્થ—સૂત્રકારે આ સૂત્રમાં ઉપક્રમના ૬ ભેદોને પ્રકટ કર્યા છે. તેમાંથી

अथ सचित्तं द्रव्योपक्रमं निरूपयति—

मूलम्—से किं तं सचित्त दव्वोवक्कमे? सचित्त दव्वोवक्कमे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—दुपए चउप्पए अपए। एक्किं पुण दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—परिक्कमे य वत्थुविणासे य ॥ सू० ६२ ॥

नाम स्थापना और द्रव्य का उपक्रम का स्वरूप प्रकट किया है। इसमें किसी चेतन अचेतन पदार्थ का उपक्रम ऐसा नाम रख लेना यह नाम उपक्रम है। किसी पदार्थ में उपक्रम का आरोप करना यह स्थापना उपक्रम है। भूत में हुई अथवा भविष्यत् काल में होनेवाली उपक्रम की पर्याय को वर्तमान में उपक्रमरूप से कहना यह द्रव्य उपक्रम है। इसके आगम और नो आगम को आश्रित करके दो भेद हैं। उपक्रमशास्त्र का अनुपयुक्त ज्ञाता आगम की अपेक्षा से द्रव्योपक्रम है। नोआगम को आश्रित करके द्रव्योपक्रम के ३ भेद हैं—ज्ञायकशरीर, भव्यशरीर और इन दोनों से व्यतिरिक्त द्रव्योपक्रम। इनमें उपक्रम शास्त्र के अनुपयुक्त ज्ञाता का निर्जीव शरीर नोआगम से ज्ञायक शरीर द्रव्योपक्रम है। जिस प्राप्त शरीर से जीव आगे उपक्रम शास्त्र को सीखेगा वह भव्यशरीर द्रव्योपक्रम है। इन दोनों से व्यतिरिक्त जो नोआगमद्रव्योपक्रम है वह सचित्त, अचित्त और मिश्रद्रव्योपक्रम के भेद से तीन ३ प्रकार का है। ॥सूत्र ६१॥

નામ, સ્થાપના અને દ્રવ્યોપક્રમનું નિરૂપણ આ સૂત્રમાં કર્યું છે. કોઇ ચેતન–અચેતન પદાર્થનું 'ઉપક્રમ' એવું નામ રાખવું તે 'નામઉપક્રમ' છે. કોઇ પદાર્થમાં ઉપક્રમનો આરોપ કરવો તેનું નામ સ્થાપના ઉપક્રમ' છે. ભૂતકાળમાં પ્રાપ્ત થયેલી અથવા ભવિષ્યમાં થનારી ઉપક્રમની પર્યાયને વર્તમાનમાં ઉપક્રમરૂપે કહેવી તેનું નામ દ્રવ્યઉપક્રમ છે. તેના આગમ અને નોઆગમને આશ્રિત કરીને બે ભેદ છે. ઉપક્રમશાસ્ત્રનો અનુપયુક્ત જ્ઞાતા આગમની અપેક્ષાએ દ્રવ્યોપક્રમ છે, નોઆગમને આશ્રિત કરીને દ્રવ્યોપક્રમના ત્રણ ભેદ પડે છે. (૧) જ્ઞાયકશરીર, (૨) ભવ્યશરીર અને (૩) તે બન્નેથી ભિન્ન એવો તદ્વ્યતિરિક્ત દ્રવ્યોપક્રમ.

ઉપક્રમશાસ્ત્રના અનુપયુક્ત જ્ઞાતાના નિર્જીવ શરીરને નોઆગમની અપેક્ષાએ જ્ઞાયકશરીરદ્રવ્યોપક્રમ કહે છે. જે પ્રાપ્ત શરીરથી જીવ આગળ જતાં ઉપક્રમશાસ્ત્ર શીખશે, તેનું નામ ભવ્યશરીર દ્રવ્યોપક્રમ છે. આ બન્નેથી ભિન્ન એવો જે નોઆગમ દ્રવ્યોપક્રમ છે, તે સચિત્ત, અચિત્ત, અને મિશ્ર દ્રવ્યોપક્રમના ભેદથી ત્રણે પ્રકારનો કહ્યો છે. ॥ સૂ. ૬૧ ॥

छाया--अथ कोऽसौ सचित्तो द्रव्योपक्रमः ? सचित्तो द्रव्योपक्रमस्त्रिविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा--द्विपदश्चतुष्पदोऽपदः । एकैकः पुनर्द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा--परिकर्मणि च वस्तुविनाशे च ॥सूत्र ६२॥

अब सूत्रकार सचित्त द्रव्योपक्रम का स्वरूप प्रकट करते हैं-

"से किं तं सचित्ते दव्वोवक्कमे" इत्यादि । ॥सूत्र ६२॥

शब्दार्थ--(से किं तं सचित्ते दव्वोवक्कमे) हे भदन्त! सचित्त द्रव्योपक्रम का क्या स्वरूप है?

(सचित्ते दव्वोवक्कमे तिविहे पण्णत्ते) उत्तर--सचित्त द्रव्योपक्रम तीन प्रकार का कहा गया है। (तं जहा) जैसे (दुपए चउप्पए अपए) द्विपद, चतुष्पद और अपद। इन में से नट नर्तक आदिरूप द्विपद सचित्त द्रव्योपक्रम है। हस्ती अश्व आदिरूप चतुष्पद सचित्त द्रव्योपक्रम है। तथा आम्रादि-वृक्षरूप अपद सचित्त द्रव्योपक्रम है। (एक्किके पुण दुविहे पण्णत्ते) इनमे भी एक एक दो २ प्रकारका कहा गया है। (तं जहा) जैसे-(परिकम्मे य वत्थुविणासे य) परिकर्म में और वस्तु विनाश में अवस्थित वस्तु में गुण विशेष का आधान करना परिकर्म है। इस परिकर्म में परिकर्म विषयवाला द्रव्योपक्रम होता है। द्विपदवाले नट-नर्तक आदि जन घृत आदि द्रव्य के उपयोग से जो अपने बल आदि की वृद्धि करते हैं अथवा और अनेक साधनों से कर्ण एवं स्कन्धों को बढाते हैं वह परिकर्म को आश्रित करके सचित्त द्रव्यो

હવે સૂત્રકાર સચિત્ત દ્રવ્યોપક્રમના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે—

"से किं तं सचित्त दव्वोवक्कमे" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(से किं तं सचित्ते दव्वोवक्कमे ?) શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે હે ભગવન્! સચિત્ત દ્રવ્યોપક્રમનું કેવું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર—(सचित्ते दव्वोवक्कमे तिविहे पण्णत्ते) સચિત્ત દ્રવ્યોપક્રમ ત્રણ પ્રકારનો કહ્યો છે (तं जहा) તે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે.

(दुपए, चउपए, अपए) (૧) દ્વિપદ, (૨) ચતુષ્પદ અને (૩) અપદ નટ, નર્તક આદિરૂપ દ્વિપદ સચિત્ત દ્રવ્યોપક્રમ છે, ગજ, અશ્વ આદિરૂપ ચતુષ્પદ સચિત્ત દ્રવ્યોપક્રમ છે, તથા આમ્રાદિ વૃક્ષરૂપ અપદ સચિત્ત દ્રવ્યોપક્રમ છે.

एक्किके पुण दुविहे पण्णत्ते) એ પ્રત્યેકના પણ બબ્બે પ્રકાર કહ્યા છે. (तं जहा) જેમકે (परिकम्मे य वत्थुविणासे य) (૧) પરિકર્મનો આશ્રિત કરીને ગુણવિશેષનું આધાન કરવું તેનું નામ પરિકર્મ છે. આ પરિકર્મમાં પરિકર્મવિષયવાળો દ્રવ્યોપક્રમ છે. દ્વિપદવાળા (બે પગવાળા) નટ, નર્તક આદિજન ઘી આદિ દ્રવ્યના ઉપયોગથી પોતાના બળ આદિની જે વૃદ્ધિ કરે છે, અથવા બીજા અનેક સાધનોથી કર્ણ અને સ્કન્ધોને

टीका–शिष्यः पृच्छति–'से किं त' इत्यादि–

अथ कोऽसौ सचित्तो द्रव्योपक्रमः ? इति। उत्तरमाह–सचित्तो द्रव्योपक्रमस्त्रिविधः प्रज्ञप्तः। तद्यथा–द्विपदः, चतुष्पदः, अपद इति। तत्र-द्विपदः=नटनर्तकादिरूपः, चतुष्पदः=हस्त्यश्वादिरूपः, अपदः=आम्रादिवृक्षरूपः। तत्र द्विपदादिषु पुनरेकैको द्विविधः-परिकर्मणि च वस्तुविनाशे च। तत्रावस्थितस्यैव वस्तुनो गुणविशेषाधानपरिकर्म, तत्र परिकर्मणि–परिकर्मविषयो द्रव्योपक्रमः।

पक्रम है। कहा भी है कि क्रिया से वस्तुओं का जो गुण विशेषरूप परिणाम है–उसका नाम परिकर्म है। वस्तु के विनाश को विषय करनेवाला द्रव्योपक्रम तब होता है कि जब उपाय विशेषों से वस्तु के विनाश का ही उपक्रम होताहै।

भावार्थ––सूत्रकारने इस सूत्रद्वारा सचित्त द्रव्योपक्रम को ३ रूप में विभक्त किया है। १ द्विपद २ चतुष्पद और तीसरा अपद। द्विपद दो चरणवाले प्राणी चतुष्पद–चार चरणवाले जानवर, अपद–जिनके चरण नहीं ऐसे एकेन्द्रिय वृक्ष आदि अपद हैं। इन सब में जीव होने से ये सब सचित्त है। इन तीनों प्रकार के सचित्तों के विषय में परिकर्म और विनाश को लेकर द्विपदादि द्रव्योपक्रम दो २–२ प्रकार का और होता है। घृत आदि शक्तिवर्धक पदार्थों के सेवन से जो ये द्विपद आदि अपने में बल आदि की वृद्धि करते हैं वह परिकर्म विषयवाला, और उपाय विशेषों से वस्तु को विनाश करनेवाला जो उपक्रम किया जाता हैं वह विनाश विषयवाला द्रव्यो

(ખભાઓને) વૃદ્ધિયુકત કરે છે, તે પરીકર્મને આશ્રિત કરીને જે ઉપકમ છે તેનું નામ સચિત્તદ્રવ્યોપકમ છે. કહ્યું પણ છે કે ક્રિયાની અપેક્ષાએ વસ્તુઓનું જે ગુણવિશેષ રૂપ પરિણામ છે તેનું નામ પરિકર્મ છે. વસ્તુના વિનાશને વિષય કરનારો દ્રવ્યોપકમ ત્યારે જ થાય છે કે જ્યારે ઉપાયવિશેષો દ્વારા વસ્તુના વિનાશનો જ ઉપકમ થાય છે.

ભાવાર્થ—સૂત્રકારે આ સૂત્રદ્વારા સચિત્ત દ્રવ્યોપકમના ત્રણ ભેદો બતાવ્યા છે. (૧) દ્વિપદ, (૨) ચતુષ્પદ) અને (૩) અપદદ્વિપદ એટલે બે પગવાળા જીવો, ચતુષ્પદ એટલે ચાર પગવાળા જાનવરો અને અપદ એટલે જેને પગ નથી એવા એકેન્દ્રિય વૃક્ષાદિને ગ્રહણ કરવા જોઈએ. આ બધામાં જીવ હોવાથી તેઓ સચિત્ત છે. આ ત્રણે પ્રકારના સચિત્તોના વિષયમાં પરિકર્મ અને વિનાશની અપેક્ષાએ દ્વિપદાદિ પ્રત્યેક દ્રવ્યોપકમના બબ્બે પ્રકાર પડે છે. ઘી આદિ શક્તિવર્ધક પદાર્થોના સેવનથી જે આ દ્વિપદ આદિ સચિત્ત જીવો પોતાના બળ આદિની વૃદ્ધિ કરે છે, તે પરિકર્મ વિષયવાળો દ્રવ્યોપકમ છે, અને ઉપાયવિશેષો દ્વારા વસ્તુનો વિનાશ કરનારો જે ઉપકમ કરવામાં આવે છે તે વિનાશ વિષયવાળો દ્રવ્યોપકમ છે. આ કથનનો

द्विपदानां नटनर्त्तकादीनां घृताद्युपयोगेन यद् बलवर्णादिकरणं कर्णकन्धवर्धनादिक्रिया वा स सचित्तद्रव्योपक्रमः। उक्तं च--

"परिकम्मं किरियाए, वत्थूणं गुणविसेस परिणामो"।

छाया--परिकर्म क्रियया वस्तूनां गुणविशेषपरिणामः ॥इति॥

वस्तुविनाशविषयो द्रव्योपक्रमश्च-यदा उपायविशेषैर्वस्तुनो विनाश एवोपक्रम्यते तदा भवति ॥सू० ६२॥

द्विविधमप्येतमुपक्रमं वक्तुमुपक्रमते--

मूलम्--से किं तं दुपए उवक्कमे? दुपए उवक्कमे नडाणं नच्चगाणं जल्लाणं मल्लाणं मुट्ठियाणं वेलंबगाणं कहगाणं पवगाणं लासगाणं आइक्खगाणं लंखाणं मंखाणं तूणइल्लाणं तुंबवीणियाणं कावडियाणं मागहाणं। से तं दुपए उवक्कमे ॥ सू० ६३ ॥

छाया--अथ कोऽसौ द्विपद उपक्रमः? द्विपद उपक्रमो नटानां नर्त्तकानां जल्लानां मल्लानां मौष्टिकानां विडम्बकानां कथकानां प्लवकानां लासकानाम्

पक्रम हैं। तात्पर्य कहने का यह है कि सचित्त द्विपदों चतुष्पदों और अपदों कों परिकर्म और विनाश को लेकर जो घृतादिद्रव्यों का उपक्रम आयोजन सेवन किया जाता हैं वह परिकर्म और विनाशविषयवाला सचित्त द्विपदादि द्रव्योपक्रम हैं। ॥सू० ६२॥

इसी विषय को सूत्रकार स्पष्ट करते हैं-

"से किं तं दुपए उवक्कमे" इत्यादि ॥सूत्र ६३॥

शब्दार्थ--(से किं तं दुपए उवक्कमे) हे भदन्त! द्विपद सबन्धी द्रव्योपक्रम का क्या स्वरूप है।? (दुपए उवक्कमे नडाणं नच्चगाणं जल्लाणं

ભાવાર્થ એ છે કે દ્વિપદો, ચતુષ્પદો અને અપદોના પરિકર્મ અને વિનાશની અપેક્ષાએ જે ઘી આદિ દ્રવ્યોનો ઉપક્રમ (આયોજન-સેવન) કરવામાં આવે છે, તે પરિકર્મ અને વિનાશરૂપ વિષયવાળો સચિત્ત દ્વિપદાદિ દ્રવ્યોપક્રમ છે. ॥ સૂ૦ ૬૨॥

આ દ્વિપદ સંબંધી દ્રવ્યોપક્રમના વિષયમાં સૂત્રકાર વિશેષ સ્પષ્ટીકરણ કરે છે-

"से किं तं दुपए उवक्कमे" ઇત્યાદિ--

શબ્દાર્થ--(से किं तं दुपए उवक्कमे?) શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે હે ભગવન્! દ્વિપદ સંબંધી દ્રવ્યોપક્રમનું સ્વરૂપ કેવું છે?

आख्यायकानां लङ्घानां मल्लानां तूणिकानां तुम्बवीणिकानां कावडिकानां माग-धानाम्। स एष द्विपद उपक्रमः ॥सू० ६३॥

टीका—शिष्यः पृच्छति-'से किं त' इत्यादि। अथ कोऽसौ द्विपद-उपक्रमः ? उत्तरमाह—यद् नटानां-नाटयकर्तृणां, नर्तकाणां नृत्यविधायिनां, जल्लानां—जल्लाः—वस्त्रमादाय क्रीडाकारकाः, बिरुदपाठका वा, तेषाम्, मल्लानां= मल्लाः प्रसिद्धास्तेषां, मौष्टिकानां मुष्टिभिर्योद्धारो मल्लविशेषा मौष्टिकास्तेषाम्, विडम्बकानाम्=नानावेषधारिणां विदूषकानाम्, कथकानाम्—कथकाः=कथाकारकास्तेषाम्, प्लवकानां—प्लवन्ते ये ते प्लवकाः=गर्त्तादिहल्लङ्घितारो नद्यादितारका वा तेषाम्, लासकानाम्—लासकान् गायन्ति ये ते लासकाः, जयशब्द प्रयोक्तारो भण्डा वा, तेषाम्, आख्यायकानाम्-आख्यायकाः=शुभाशुभाख्यायिन-स्तेषाम् लङ्घानाम्-महतो वंशस्याग्रभागं ये धारयन्ति ते लङ्घास्तेषाम्, मङ्खानाम् ये चित्रपटादिहस्ता भिक्षां चरन्ति ते मङ्खास्तेषाम्, तूणिकानाम्=तूणवाद्यवादिनाम्,

---

मल्लाणं मुट्ठियाणं बेलंबगाणं कहगाणं पवगाणं लासगाणं आइक्खगाणं लंखाणं मंखाणं तूणइल्लाणं तुंबवीणियाणं कावडियाणं मागहाणं) नाटय करनेवाले नटों का नृत्यकरनेवालों का, वस्त्र को पकडकर क्रीडा करनेवाले जल्लों का, अथवा विरुदावली पढनेवालों का पहलवानों का, मुष्टियों से युद्धकरनेवाले मल्लविशेषों का, अनेक भेषों का धारण करनेवाले विदूषकों का, कथाओं को कहनेवालों का, गर्त्त आदि को लांघने की अथवा नदी से पार उतारने की क्रिया में अभ्यस्त बने हुए प्लवकों का रासलीला करनेवालों का अथवा जयशब्द का प्रयोग करनेवाले भांडों का शुभ और अशुभ को कहनेवाले अख्यायकों का, बडे भारी वांस के अग्रभाग पर आरोहण करनेवाले लंखों का, चित्रपट आदि को हाथ में लेकर भीख मांगनेवाले मंखों का, तूणवाद्य को बजानेवाले तूणिकों

ઉત્તર—(दुपए उवक्कमे नडाणं नच्चगाणं जल्लाणं मल्लाणं, मुट्ठियाणं बेलंबगाणं कहगाणं पवगाणं लासगाणं आइक्खगाणं, लंखाणं मंखाणं, तूणइल्लाणं तुंबवीणि-याणं कावडियाणं मागहाणं) નાટકો કરનાર નટોનો, નૃત્ય કરનારા નર્તકોનો, વસ્ત્રને પકડીને ક્રીડા કરનારા જલ્લોનો અથવા બિરુદાવલી બોલનારાઓનો પહેલવા-નોનો, મુષ્ટિકોનો (મુઠ્ઠીઓ વડે લડનારા મલ્લવિશેષોનો), અનેક વેષો ધારણ કરનાર વિદૂષકોનો, કથાકારોનો, ગર્ત્ત આદિને પાર કરવાની અથવા નદીને પાર કરાવવાની ક્રિયામાં અભ્યસ્ત રહેતા એવા પ્લવકોનો, રાસલીલા કરનારાનો અથવા જય શબ્દનું ઉચ્ચારણ કરનારા ભાંડોનો, શુભ અને અશુભને કહેનારા અખ્યાયકોનો, ઘણા મોટા વાંસ પર આરોહણ કરનારા લંખોનો (બજાણીયાઓનો), ચિત્રપટ આદિને હાથમાં લઈને તેની મદદથી ભીખ માગતા મંખોનો, તંતૂવાદ્યોને બજાવનારા તૂણિકોનો,

तुम्बवीणिकानाम् तुम्बनिर्मिता या वीणा सा तुम्बवीणा, तद्वादनं शिल्पं येषां तुम्बवीणिकास्तेषाम्, कावडिकानाम्—'कावडि' इति भाषाप्रसिद्धभारवाहकानाम् मागधानाम्—मागधाः=मङ्गल पाठकास्तेषाम्, एषां सर्वेषामपि घृताद्युपयोगेन बल-वर्णाधिकरणं कर्णस्कन्धादिवर्द्धनं वा स द्विपद उपक्रमः। एष परिकर्मविषयः सचित्तो द्विपद उपक्रमः यस्तु नटादीनां खड्गादिभिर्नाश एवोपक्रम्यते—सम्पाद्यते स वस्तुविनाशविषयः सचित्तो द्विपदो द्रव्योपक्रमः इति वाक्यमपि प्रकरण-वशादाक्षेप्तव्यम्। स एष द्विपद उपक्रमः ॥सू० ६३॥

का, तूंबडी की वीणा बनाकर उसे बजानेवाले तुंबवीणिकों का, कावड से भार ढोनेवालों कावडिकों का, और मंगल पाठकों का जो अपने शरीर में घृतादिक द्रव्य के सेवन से शक्ति आदि के संवर्द्धन करने का उपक्रम किया जाता हैं, अथवा जिन २ और साधनों से वर्णों को और स्कंधों को बढाया एवं बलिष्ठ किया जाता है वह सब प्रयत्न द्विपद संबन्धी उपक्रम है। यह जो द्विपदों का उपक्रम है वह परिकर्म को विषय करनेवाला है इसलिये यह सचित्त द्विपद उपक्रम है। तथा उन्हीं नट आदिकों का जो खड्गआदि से विनाश करने का उपक्रम किया जाता हैं वह वस्तु के विनाश से संबन्धित होने के कारण वस्तु विनाश विषयवाला सचित्त द्विपद द्रव्यो-पक्रम है। इस तरह का वस्तु विनाश विषयक सचित्त द्विपद द्रव्योपक्रम का पाठ सूत्र में नहीं आया हैं—तो भी प्रकरण के वश से उसे यहां समझ लेना चाहिये। इस प्रकार से यह द्विपद उपक्रम संबन्धी कथन है।

તુંબડીની વીણા બનાવીને તેને વગાડનારા તુંબવીણિકોનો, કાવડની મદદથી ભાર વહન કરનાર કાવડીયાઓનો અને મંગળપાઠકોનો જે પોતાના શરીરમાં ઘી આદિના સેવન વડે શક્તિ આદિના સંવર્ધનનો જે ઉપક્રમ કરવામાં આવે છે. અથવા જે જે બીજાં સાધનો દ્વારા વર્ણોને અને બળને વૃદ્ધિયુક્ત અને બલિષ્ઠ કરવામાં આવે છે, તે બધાં પ્રયત્નને દ્વિપદ વિષયક ઉપક્રમ કહે છે. આ જે દ્વિપદોનો ઉપક્રમ છે તે પરિકર્મને વિષય કરનારો છે, તેથી તે સચિત્ત દ્વિપદ ઉપક્રમ છે. તથા એજ નટ આદિકોનો તલવાર આદિથી જે વિનાશ કરવાનો ઉપક્રમ કરવામાં આવે છે, તે વસ્તુના વિનાશરૂપ વિષયવાળો સચિત્ત દ્વિપદ દ્રવ્યોપક્રમ છે. આ પ્રકારનો વસ્તુ-વિનાશ વિષયક સચિત્ત દ્વિપદ દ્રવ્યોપક્રમનો પાઠ સૂત્રમાં આવ્યો નથી, તો પણ આ પ્રકરણમાં તેનો સમાવેશ કરવાનું જરૂરી લાગવાથી, તેનું કથન અહીં થવું જોઈએ. આ પ્રકારનું દ્વિપદ સચિત્ત ઉપક્રમનું સ્વરૂપ સમજવું.

अथ चतुष्पदविषयं द्विविधमप्युपक्रमं वर्णयति-

मूलम्--से किं तं चउप्पए उवक्कमे ? चउप्पए उवक्कमे चउप्पयाणं आसाणं हत्थीणं इच्चाइ । से त चउप्पए उवक्कमे ॥सू० ६४॥

छाया--अथ कोऽसौ चतुष्पद उपक्रमः ? चतुष्पद उपक्रमश्चतुष्पदानाम् अश्वानां हस्तिनाम्, इत्यादि । स एष चतुष्पद उपक्रमः ॥ ॥सू० ६४॥

भावार्थ--सूत्रकार ने जो सचित्त के भेदरूप द्विपद आदि का परिकर्म और विनाश विषयक द्रव्योपक्रम कहा है-उसी के द्विपदरूप आद्यभेद के स्वरूप का वर्णन संक्षेप में इस सूत्रद्वारा किया गया है--नट, नर्तक आदिजनों का जो अपने में शक्ति बढाने वाले घृत आदि पदार्थ हैं उन पदार्थों के सेवन आदि करने का जो उनका उपक्रम प्रयत्न-है वह परिकर्म विषयक द्विपद उपक्रम है। तथा विनाश के साधनभूत तलवार आदि से जो इनके विनाशकर दिये जाने का उपक्रम होता है, वह विनाश विषयक द्विपद उपक्रम है । ॥सू० ६३॥

अब चतुष्पद विषयक दोनों प्रकार के उपक्रम का वर्णन सूत्रकार करते हैं--

"से किं तं चउप्पए" इत्यादि । ॥सूत्र ६४॥

शब्दार्थ-(से किं तं चउप्पए उवक्कमे) हे भदन्त ! चतुष्पद उपक्रम का क्या स्वरूप हैं-(चउप्पए उवक्कमे चउप्पयाणं आसाणं हत्थीणं इच्चाइ) चतुष्पद अश्व, गज आदि जानवरों को अच्छी चालचलने आदि की शिक्षा

ભાવાર્થ--સૂત્રકારે જે સચિત્તના ભેદરૂપ દ્વિપદ આદિના પરિકર્મ અને વનાશ વિષયક દ્રવ્યોપક્રમ કહ્યો છે, તેના જ દ્વિપદરૂપ પ્રથમ ભેદના સ્વરૂપનું વર્ણન અહીં સંક્ષિપ્તમાં કરવામાં આવ્યું છે.--

નટ, નર્તક આદિજનો પોતાની શકિત વધારવાને ઘી આદિ પદાર્થોનું સેવન કરવાનો જે ઉપક્રમ-પ્રયત્ન કરે છે તેને પરિકર્મ વિષયક દ્વિપદ ઉપક્રમ કહે છે. તથા તલવાર આદિ સાધનો વડે તે નટ, નર્તક આદિજનોનો વિનાશ કરી નાખવાનો જે ઉપક્રમ (પ્રયત્ન) થાય છે તેને વિનાશ વિષયક દ્વિપદ ઉપક્રમ કહે છે. ॥ સૂ૦ ૬૩ ॥

હવે સૂત્રકાર ચતુષ્પદ વિષયક બન્ને પ્રકારના ઉપક્રમનું વિષયકનું નિરૂપણ કરે છે-

"से किं तं चउप्पए" ઇત્યાદિ--

શબ્દાર્થ--(से किं तं चउप्पए उवक्कमे ?) શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે હે ભગવન્ ! ચતુષ્પદ ઉપક્રમનું કેવું સ્વરૂપ છે ?

ઉત્તર--(चउप्पए उवक्कमे चउप्पयाणं आसाणं हत्थीणं इच्चाइ) ચોપગાં અશ્વ, ગજ આદિ જાનવરોને સારી ચાલ ચલાવવા આદિ શિક્ષા દેવારૂપ જે ઉપ મ છે.

टीका–शिष्यःपृच्छति–'से किं तं' इत्यादि। अथ कोऽसौ चतुष्पदानाम् अश्वानां हस्तिनामित्यादि–अश्वगजप्रभृति चतुष्पदजीवानां शिक्षागुणविशेषकरण-परिकर्मणि-सचित्तद्रव्योपक्रमः, खड्गादिभिस्तेषां विनाशकरणं च, वस्तुविनाशे सचित्तद्रव्योपक्रमः, इति वाक्यशेषः। एतन्निगमयन्नाह–स एष उपक्रम इति ॥सू.६४॥

अथापदविषयं द्विविधमुपक्रममाह–

मू–से किं तं अपए उवक्कमे? अपए उवक्कमे अपयाणं अंबाणं अंबाडगाणं इच्चाइ। से तं अपओवक्कमे। से तं सचित्त-दव्वोवक्कमे ॥सू० ६५॥

छाया–अथ कोऽसौ अपद उपक्रमः? अपद उपक्रमः–अपदानाम् आम्राणाम् आम्रातकानाम् इत्यादि। स एष अपदोपक्रमः। स एष सचित्त द्रव्योपक्रमः ॥६४॥

टीका—शिष्यः पृच्छति–'से किं तं" इत्यादि। अथ कोऽसौ अपद उपक्रमः? इति। उत्तरमाह–अपद उपक्रमो हि–अपदानां=स्थावरनामकर्मोदयात् चरनक्रियावर्जितानाम् आम्राणाम्=आम्रवृक्षाणाम्, तत्फलानां च, तथा–

देना यह परिकर्म की अपेक्षा सचित्त द्रव्योपक्रम है। तथा इन्हीं जानवरों को तलवार आदि से मार डालना यह विनाश की अपेक्षा सचित्त द्रव्योपक्रम है। इस प्रकार यह सचित के भेदरूप चतुष्पद का दोनों प्रकार के द्रव्योपक्रम का कथन है। ॥सूत्र ६४॥

अब सूत्रकार अपद विषयक दोनों प्रकार के उपक्रम का कथन करते हैं–

"से किं तं अपए" इत्यादि। ॥सूत्र ६५॥

शब्दार्थ—(से किं तं अपए उवक्कमे) हे भदन्त! अपद-जो आम्र एवं आम्रातक आदि वृक्ष और उन के फल हैं कि जिनमें स्थावर नामकर्म के

તે પરિકર્મની અપેક્ષાએ સચિત્ત દ્રવ્યોપક્રમ છે. તથા એજ જાનવરોને તલવાર આદિ વડે મારી નાખવાનો જે ઉપક્રમ છે, તેને વિનાશની અપેક્ષાએ સચિત્ત દ્રવ્યોપક્રમ કહે છે. આ પ્રકારે સચિત્તના ભેદરૂપ ચતુષ્પદના બન્ને પ્રકારના દ્રવ્યોપક્રમનું અહીં વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે. ॥ સૂ૦ ૬૪ ॥

હવે સૂત્રકાર અપદ (ચરણ વિહીન જીવો) વિષયક બન્ને પ્રકારના ઉપક્રમનું નિરૂપણ કરે છે. "से किं तं अपए उवक्कमे" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(से किं तं अपए उवक्कमे?) શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે હે ભગવન્! અપદ ઉપક્રમનું સ્વરૂપ કેવું હોય છે?

आम्रातकानाम्–आम्रातकवृक्षाणां तत्फलानां च, इत्यादि। अयं भावः–आम्रादिवृक्षाणां वृक्षायुर्वेदोक्तपद्धत्या वृद्धिकरणं, तत्फलानां च गर्ते पलालादौ स्थापनादिना झटिति पक्वावस्थापादनं तत् परिकर्मविषयः अपद उपक्रमः। शस्त्रादिना च यदेषां विनाशकरणं तद् वस्तु विनाशविषयः अपद उपक्रम इति। स एषः अपदोपक्रमः। स एष सचित्तद्रव्योपक्रम इति ॥सू० ६५॥

अथ–अचित्तद्रव्योपक्रमं निरूपयति—

मूलम्–से किं तं अचित्तदव्वोवक्कमे? अचित्तदव्वोवक्कमे खंडाईणं गुडाईणं मच्छंडीणं। से तं अचित्तदव्वोवक्कमे ॥ सू०६६॥

छाया—अथ कोऽसौ अचित्तद्रव्योपक्रमः? अचित्तद्रव्योपक्रमः खण्डादीनां गुडादीनां मत्स्यण्डीनाम्। स एषः अचित्त द्रव्योपक्रमः ॥६६॥

टीका—शिष्यः पृच्छति–'से किं तं' इत्यादि–अथ कोऽसौ अचित्तद्रव्योपक्रमः? इति। उत्तरमाह–अचित्तद्रव्योपक्रमः–खण्डादीनां='खाँड' इति

उदय से स्वयं चलन क्रिया नहीं होती है उनकी वृक्षायुर्वेदोक्त पद्धति से वृद्धि करना–खात आदि डालकर उन्हें बढाने का उपक्रम करना उनके फलों को खड्डा आदि में भरकर पलाल आदि से उन्हें दबाकर के जल्दी पका लेना यह सब परिकर्म का विषय करनेवाला अपद उपक्रम है। तथा शस्त्र आदि से इनका विनाश करना यह वस्तु विनाश विषयक अपद उपक्रम है। इसप्रकार यह दोनों प्रकारका उपक्रम अपद का द्रव्योपक्रम है। इस तरह यहां तक यह सचित्त द्रव्य संबन्धी उपक्रम का कथन है। ॥सू० ६५॥

ઉત્તર—આમ્ર (આંબો) આદિ જે વૃક્ષો અને તેમનાં જે જે ફળો છે, જેમના સ્થાવર નામ કર્મના ઉદયને લીધે જેઓ ચલન ક્રિયાથી રહિત હોય છે, તેમની વૃક્ષાયુર્વેદોક્ત પદ્ધતિથી વૃદ્ધિ કરવી-ખાતર આદિ નાખીને તેમની સારી રીતે વૃદ્ધિ થાય એવો પ્રયત્ન કરવો, તેમના ફળોને ખાડા આદિમાં ભરીને તેના પર પરાળ આદિ દબાવીને તેમને જલ્દી પકાવવાનો પ્રયત્ન કરવો, તેને પરિકર્મની અપેક્ષાએ અપદ ઉપક્રમ કહેવાય છે. તથા શસ્ત્ર આદિ વડે તે વૃક્ષાદિનો વિનાશ કરવો તેને વસ્તુ વિનાશવિષયક અપદ ઉપક્રમ કહે છે. આ પ્રકારે બન્ને પ્રકારના અપદ ઉપક્રમનું નિરૂપણ અહીં પૂરું થાય છે, અને સચિત્ત દ્રવ્યોપક્રમના બધાં ભેદોનું વર્ણન પણ અહીં સમાપ્ત થાય છે. ॥સૂ. ૬૫॥

भाषाप्रसिद्धप्रभृतीनां, गुडादीनां=गुडप्रभृतीनां, मत्स्यण्डीनाम्–प्रतलगुडादीनां, 'राब' इति भाषाप्रसिद्धानां विज्ञेयः। अयं भावः–अचित्तानां खण्डगुड मत्स्यण्डीनां द्रव्याणामुपाय–विशेषेण यन्माधुर्याधिक्यकरणं तत परिकर्मविषयः अचित्तद्रव्योपक्रमः। एषामेव यत्सर्वथा विनाशकरणं तद् वस्तुविनाशविषयः अचित्त द्रव्योपक्रमः। एतन्निगमयन्नाह–'से तं' इत्यादि। स एष अचित्त द्रव्योपक्रम इति ॥सू० ६६॥

अथ मिश्रद्रव्योपक्रममाह—

मूलम्–से किं तं मीसए दव्वोवक्कमे? मीसए दव्वोवक्कमे से चेव धासग आयंसगाइमंडिए आसाई। से तं मीसए दव्वोवक्कमे। से तं जाणयसरीर भवियसरीर वइरित्ते दव्वोवक्कमे। स तं नोआगमओ दव्वोवक्कमे। से किं तं दव्वोवक्कमे सू०६७॥

अब सूत्रकार अचित्त द्रव्योपक्रम का कथन करते हैं–

"से किं तं अचित्त दव्वोवक्कमे" इत्यादि ॥सूत्र ६६॥

शब्दार्थ—(से किं तं अचित्तदव्वोवक्कमे) हे भदन्त! अचित्त द्रव्योपक्रम का क्या स्वरूप है?

उत्तर—(खंडादीनां गुडादीनां मच्छंडीणं, अचित्तदव्वोवक्कमे) खांड, गुड और राब इन पदार्थों में उपाय विशेष से जो मधुरता की अधिकता करदी जाती है वह परिकर्म विषयवाला अचित्त द्रव्योपक्रम है तथा इन्हीं पदार्थों का जो सर्वथा विनाश करदिया जाता है, वह विनाश विषयक अचित्त द्रव्योपक्रम है। (से तं अचित्तदव्वोवक्कमे) इस तरह से अचित्त द्रव्योपक्रम का यह स्वरूप है। ॥सूत्र ६६॥

હવે સૂત્રકાર અચિત્ત દ્રવ્યોપક્રમના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે—

"से किं तं अचित्तदव्वोवक्कमे" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(से किं तं अचित्तद्रव्वोवक्कमे?) શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે હે ભગવન્! અચિત્ત દ્રવ્યોપક્રમનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(खंडादीनां गुडादीनां मच्छंडीणां अचितदव्वोवक्कमे) ખાંડ, ગોળ, ઇત્યાદિ પદાર્થોમાં ઉપાય વિશેષો દ્વારા મધુરતાની વૃદ્ધિ કરવા રૂપ જે ઉપક્રમ થાય છે, તેને પરિકર્મ વિષયનો અચિત્ત દ્રવ્યોપક્રમ કહે છે. તથા એજ પદાર્થોનો જે સર્વથા વિનાશ કરી નાખવા રૂપ ઉપક્રમ થાય છે તેને વિનાશ વિષયક અચિત્ત દ્રવ્યોપક્રમ કહે છે. (से तं अचित्ते दव्वोवक्कमे) આ પ્રકારનું અચિત્ત દ્રવ્યોપક્રમનું સ્વરૂપ છે. ॥ સૂ. ૬૬ ॥

छाया—अथ कोऽसौ मिश्रको द्रव्योपक्रमः स एव स्थासकादर्शकादिमण्डितः अश्वादिः । स एष मिश्रको द्रव्योपक्रमः । स एष ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तो द्रव्योपक्रमः । स एष आगमतो द्रव्योपक्रमः। स एष द्रव्योपक्रम ॥सू० ६७॥

टीका—शिष्य पृच्छति—'से किं तं' इत्यादि । अथ कोऽसौ मिश्रको द्रव्योपक्रमः ? इति । उत्तरमाह- मिश्रकः=सचित्ताचित्तात्मको द्रव्योपक्रमः-स्थासकादर्शकादि मण्डितः-स्थासकः=अश्वाभरणविशेषः, आदर्शः=दर्पणग्रीवाभरण विशेषः, आदि शब्दात् कुङ्कुमादयः, एषां समासः, तैर्मण्डितः=भूषितः अश्व-

---

अब सूत्रकार मिश्र द्रव्योपक्रम का कथन करते है—

"से किं तं मीसए दव्वोवक्कमे" इत्यादि । ॥सू० ६७॥

शब्दार्थ—(से किं तं मीसए दव्वोवक्कमे) हे भदन्त ! मिश्र द्रव्योपक्रम क्या स्वरूप है ?

उत्तर—(मीसए दव्वोवक्कमे से चेव थासगआयंसगाइमंडिए आसाई—से तं मीसए दव्वोवक्कमे) सचित्तात्मक—मिश्र—द्रव्योपक्रम का स्वरूप इस प्रकार से है-कि अचित्त स्थासक और आदर्श आदि से विभूषित हुए घोडे से लेकर बैल तक के जानवरों में जो शिक्षा आदि गुण की विशेषता करने का उपक्रम किया जाता है वह परिकर्म विषयक मिश्रद्रव्योपक्रम हे । स्थासक यह घोडे का आभरण विशेष है । आदर्श यह बैल का आभरण विशेष है । एडक शब्द का अर्थ मेष हैं। स्थासक—आदर्श और आदि पद से गृहीत कुंकुम का लेप

હવે સૂત્રકાર મિશ્ર દ્રવ્યોપક્રમના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે-

"से किं तं मीसए दव्वोवक्कमे" ઇત્યાદિ

શબ્દાર્થ-(से किं तं मीसए दव्वोवक्कमे?) શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે —કે હે ભગવાન્ ! મિશ્ર દ્રવ્યોપક્રમનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર-(मीसए दव्वोवक्कमे से चेव थासगआयंसगाइमंडिए आसाइ—से तं मीसए दव्वोवक्कमे)

સચિત્તાત્મક મિશ્ર દ્રવ્યોપક્રમનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે- અચિત્ત સ્થાસક, દર્પણ આદિથી વિભૂષિત થયેલા ઘોડાથી લઈને બળદ પર્યન્તના જાનવરોમાં જે શિક્ષા આદિ ગુણની વિશેષતા કરવાનો ઉપક્રમ કરવામાં આવે છે, તેને પરિકર્મ વિષયક મિશ્ર દ્રવ્યોપક્રમ કહે છે. 'સ્થાસક' આ ઘોડાનું એક ખાસ આભરણ છે અને દર્પણની માફક બળદનું આભરણ વિશેષ છે. 'एडक' આ શબ્દ મેષ (ઘેટા) નો વાચક છે. સ્થાસક, દર્પણ, કુંકુમનો લેપ આદિ અચિત્ત દ્રવ્યો છે તથા અશ્વ,

दिः=अश्वप्रभृत्येऽकान्तो विज्ञेयः। अयं भावः—स्थासकादर्शकादि भूषितानां कृत कुङ्कुमानां तेषामश्वाद्येऽकान्तानां यच्छिक्षादि गुणविशेषकरणं परिकर्मविषयः मिश्रद्रव्योपक्रमः। तेषां खड्गादिभिर्विनाशस्तु वस्तुविनाशविषयो मिश्रद्रव्योपक्रम इति। अत्र—अश्वादीनां सचेतनत्वात् स्थासकादीनाम् अचेतनत्वात् मिश्र द्रव्यत्वं बोध्यम्। एतदुपसंहरन्नाह—'से तं' इत्यादि। स एष मिश्रका द्रव्योपक्रम इति। ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तो द्रव्योपक्रमः सकलोऽपि निरूपित इति सूचयितुमाह—'से तं' इत्यादि। स एष ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तो द्रव्योपक्रम इति। नोआगमतः सर्वोऽपि द्रव्योपक्रमो निरूपित इति सूचयितुमाह—'से त्तं' इत्यादि। स एष नोआगमतो द्रव्योपक्रम इति। द्रव्योपक्रमः सर्वो निरूपित इति सूचयितुमाह—'से तं इत्यादि। स एष द्रव्योपक्रम इति। सू० ६७॥

ये सब अचित्त द्रव्य है। तथा अश्व वगैरह सचित्त द्रव्य है। इन से जब इन सचित्त पदार्थों को विभूषित किया जाता है-तब ये मिश्र द्रव्य कहलाते हैं। इन में जो शिक्षा गुण से विशेषता का आपादन होता है यही मिश्र द्रव्योपक्रम का स्वरूप परिकर्म की अपेक्षा लेकर कहा गया है। तथा जब इनका खड्ग आदि विनाशक कारणों से विनाश हो जाता है तब वह विनाश को लेकर मिश्र द्रव्योपक्रम का स्वरूप कहा जाता है। यही मिश्रद्रव्योपक्रम है। (से तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं दव्वोवक्कमे) इस प्रकार ज्ञायकशरीर द्रव्योपक्रम और भव्यशरीर द्रव्योपक्रम से व्यतिरिक्त द्रव्योपक्रम का स्वरूप कहा है। (से तं नोआगमओ दव्वोवक्कमे—से तं दव्वोवक्कमे) नोआगम की अपेक्षा लेकर यह द्रव्योपक्रम का स्वरूप पूर्णरूप से निरूपित

બળદ, ઘેટાં આદિ સચિત્ત દ્રવ્યો છે. આ સચિત્ત અશ્વ આદિ જનવરોને જ્યારે ઉપર્યુક્ત સ્થાસક, દર્પણ આદિ અચિત્ત દ્રવ્યો વડે વભૂષિત કરવામાં આવે છે, ત્યારે તેઓ મિશ્ર દ્રવ્ય રૂપ બની જાય છે. એવાં મિશ્ર દ્રવ્ય રૂપ સ્થાસકથી વિભૂષિત અશ્વાદિમાં જે શિક્ષા આદિ ગુણની વિશેષતા કરવાનો ઉપક્રમ થાય છે તેનું નામ જ પરિકર્મ વિષયક મિશ્ર દ્રવ્યોપક્રમ છે. અને તેમનો તલવાર આદિ શસ્ત્રો વડે વિનાશ કરવાનો જે ઉપક્રમ થાય છે, તે ઉપક્રમને વિનાશ વિષયક મિશ્ર દ્રવ્યોપક્રમ કહે છે. આ પ્રકારનું મિશ્ર દ્રવ્યોપક્રમનું સ્વરૂપ છે.

(से तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं दव्वोवक्कमे)

આ પ્રકારે જ્ઞાયકશરીર દ્રવ્યોપક્રમ અને ભવ્યશરીર દ્રવ્યોપક્રમથી વ્યતિરિક્ત (ભિન્ન) એવા દ્રવ્યોપક્રમના સ્વરૂપનું નિરૂપણ અહીં પૂરું થાય છે. (से तं नो आगमओ दव्वोवक्कमे से तं दव्वोवक्कमे) આ રીતે નોઆગમ દ્રવ્યોપક્રમના બધા

अथ क्षेत्रोपक्रमं निरूपयति—

मूलम्—से किं तं खेत्तोवक्कमे ? खेत्तोवक्कमे जण्णं हलकुलियाईहिं खेत्ताइं उवक्कमिज्जंति । से तं खेत्तोवक्कमे ॥सू० ६८॥

छाया—अथ कोऽसौ क्षेत्रोपक्रमः ? क्षेत्रोपक्रमो यत्खलु हलकुलिकादिभिः क्षेत्राण्युपक्रम्यन्ते । स एष क्षेत्रोपक्रमः ॥६८॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—से किं तं' इत्यादि । अथ कोऽसौ क्षेत्रोपक्रमः ? इति। उत्तरमाह—क्षेत्रोपक्रमः-क्षेत्राणामुपक्रमः-क्षेत्रसम्बन्ध्युपक्रमः यत्खलु हल-

---

हो चुका। इसके निरूपण होने से द्रव्योपक्रम का समस्त स्वरूप भी निरूपित हो गया ऐसा जानना चाहिये।

भावार्थ—सचित्ताचित्त द्रव्य में जो विशेषता का आपादन किया जाता है वह परिकर्म विषयवाला मिश्र द्रव्योपक्रम है और सचित्ताचित्तरूप मिश्र द्रव्य का जो खड्गादि विनाशक कारणों से विनाश किया जाता है, वह विनाश विषयक सचित्ताचित्त द्रव्योपक्रम है—इस प्रकार यहां तक द्रव्योपक्रम से संबन्धित जितना भी वर्णन है वह सब सूत्रकार ने कर दिया है । ॥सूत्र ६७॥

अब सूत्रकार क्षेत्रोपक्रम का स्वरूप प्रकट करते है—

"से किं तं खेत्तोवक्कमे" इत्यादि । सूत्र ॥६८॥

शब्दार्थ—(से किं तं खेत्तोवक्कमे) हे भदन्त! क्षेत्रोपक्रम का क्या स्वरूप है?

उत्तर—(खेत्तोवक्कमे जण्णं हलकुलियाईहिं खेत्ताइं उवक्कमिज्जंति—से

ભેદોના સ્વરૂપનું નિરૂપણ અહિં સંપૂર્ણ થાય છે, અને તેનું નિરૂપણ થઇ જવાને લીધે દ્રવ્યોપક્રમના બધા ભેદો અને પ્રભેદોનું નિરૂપણ પણ સંપૂર્ણ થઇ જાય છે એમ સમજવું.

ભાવાર્થ—સચિત્તાચિત્ત દ્રવ્યમાં (મિશ્ર દ્રવ્યમાં) જે વિશેષતાનું આપાદન કરવામાં આવે છે, તે પરિકર્મ વિષયક મિશ્ર દ્રવ્યોપક્રમ છે. અને સચિત્તાચિત્ત રૂપ મિશ્ર દ્રવ્યોનો જે શસ્ત્રાદિ રૂપ વિનાશક કારણો વડે વિનાશ કરવામાં આવે છે, તેને વિનાશ વિષયક મિશ્ર દ્રવ્યોપક્રમ કહેવાય છે. આ રીતે અહીં સુધીમાં દ્રવ્યોપક્રમ સાથે સંબંધ રાખનારૂં એવું સમસ્ત વર્ણન સૂત્રકારે સમાપ્ત કર્યું છે. ॥ સૂ૦ ૬૭॥

હવે સૂત્રકાર ક્ષેત્રોપક્રમના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે—

"(से किं तं खेत्तोवक्कमे)" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—"से किं तं खेत्तोवक्कमे" હે ભગવન્ ક્ષેત્રોપક્રમનું શું સ્વરૂપ છે? (खेत्तोवक्कमे जण्णं हलकुलियाईहिं खेत्ताइं उवक्कमिज्जंति से तं

कुलिकादिभिः—हलं प्रसिद्धम्, कुलिकं=हलविशेषः तत् लघुतरं काष्ठं खलु तृणादिच्छेदनार्थमुपयुज्यते। तदादिभिः क्षेत्राणि उपक्रम्यन्ते—बीजवपनयोग्यानि क्रियन्ते। अयं भावः—हलकुलिकादिभिः क्षेत्राणां यद्बीजवपनयोग्यताकरणं तत्परिकर्मविषयः क्षेत्रोपक्रमः। तथा—गजबन्धनादिभिर्यत् क्षेत्राणि उपक्रम्यन्ते=विनाश्यन्ते, तद् वस्तु विनाशविषयः क्षेत्रोपक्रमः। गजमूत्रपुरीषादिना क्षेत्रगतबीजप्ररोहणशक्तिं विनाशयते, इति विनाशितानि क्षेत्राण्युच्यन्ते। इत्थं द्विविधः क्षेत्रोपक्रमो बोध्य इति।

ननु क्षेत्रगत पृथिव्यादि द्रव्याणामेव एतौ परिकर्मविनाशौ। इत्थं च

तं खेत्तोवक्कमे) क्षेत्रोपक्रम का स्वरूप इस प्रकार से है कि जो हल एवं कुलिक—तृणादिको खेत में से दूर करने के लिये काम में लिये गये एक प्रकार का हल जैसा लघुतर काष्ठ-आदि से जोतकर खेत बीज वपन (बोने) के योग्य बनाये जाते हैं वह क्षेत्रोपक्रम का स्वरूप है। यह क्षेत्रोपक्रम परिकर्म और विनाश को लेकर दो प्रकार का है—इनमें जो हल आदि से जोतकर क्षेत्र को बीजोत्पादन की योग्यतावाला बनाना यह परिकर्म विषयक क्षेत्रोपक्रम है तथा खेतों में हाथी आदि कों को बांधकर उन्हें बीजवपन (बोने) के अयोग्य बना देना यह वस्तु विनाश विषयक क्षेत्रोपक्रम है। हाथी की मूत्र और लिंडों से खेत में बीजोत्पादन करने की शक्ति का नाश हो जाता है। इस प्रकार यह दोनों प्रकार का क्षेत्रोपक्रम जानना चाहिये।

शंका—परिकर्म और विनाश जो होते हैं वे क्षेत्रगत पृथिवी आदि द्रव्यों के ही होते हैं—

खेत्तोवक्कमे) क्षेत्रोपक्रमनुं स्वरूप आ प्रकारनुं छे के हळ अने कुलिक (खेतरमांथी तृणादिकोने दूर करवाने माटे एक प्रकारनुं हळ जेवुं लघुतर काष्ठ विशेष वपराय छे तेनुं नाम कुलिक छे.) आदि वडे खेडीने खेतरने बीज वावववाने योग्य बनाववानुं कार्य थाय छे तेने क्षेत्रोपक्रम कहे छे. ते क्षेत्रोपक्रमना परिकर्म अने विनाशनी अपेक्षाओ बे भेद पडे छे. हळ आदि वडे खेडीने खेतरने जे बीजोत्पादननी योग्यतावाणुं बनावववानो उपक्रम (प्रयत्न) थाय छे, तेने परिकर्म विषयक क्षेत्रोपक्रम कहे छे. तथा खेतरमां हाथी आदिने बांधीने तेने बीजोत्पादनने माटे अयोग्य बनाववानो जे उपक्रम थाय छे तेने विनाश विषयक क्षेत्रोपक्रम कहे छे. एवुं मानवामां आवे छे के हाथीना मूत्र, मळ आदि जे खेतरमां पडयुं होय ते खेतरनी बीजोत्पादन शक्तिनो नाश थई जतय छे आ प्रकारे अहीं बन्ने प्रकारना क्षेत्रपरिकर्मनुं स्वरूप प्रकट करवामां आव्युं छे.

शंका— परिकर्म अने विनाश जे थाय छे ते तो क्षेत्रगत पृथ्वी आदि द्रव्योनो ज थाय छे. तेथी तेने क्षेत्रोपक्रम कहेवाने बदले द्रव्योपक्रम ज कहेवो

द्रव्योपक्रम एवायं न तु क्षेत्रोपक्रमः, तर्हि कथं क्षेत्रोपक्रमः ? इति चेत्, उच्यते-क्षेत्रं हि आकाशमुच्यते, तस्य चामूर्त्तत्वात्तदुपक्रमो न संभवति, तथापि तदाधेयत्वेन स्थितानां पृथिव्यादि द्रव्याणां य उपक्रमः स क्षेत्रोऽप्युपचर्यते। लोकेऽपि यथा 'मञ्चाः क्रोशन्ती'-त्यादौ आधेयतधर्माणामाधारे उपचारो भवति। उक्तंचापि

"खेत्तमरूवं निच्चं. न तस्स परिकम्मणं न य विणासो।
आहेयगयवसेण उ, करणविणासोवयारो उ" ॥ १ ॥

इसलिये यह क्षेत्रोपक्रम न होकर द्रव्योपक्रम ही हुआ फिर इसे क्षेत्रोपक्रम कैसे कहा—

उत्तर—क्षेत्र शब्द का अर्थ आकाश है। और यह आकाशरूप क्षेत्र अमूर्त है-अतः इसका उपक्रम नहीं होसकता है। फिर भी इस में आधेय रूप से वर्तमान जो पृथिव्यादि द्रव्य है, उनका तो उपक्रम होता है इसलिये उनका उपक्रम आधाररूप आकाश में उपचरितकर लिया जाता है। इसलिये क्षेत्रोपक्रम बन जाता है। लोक में भी जैसे "मञ्चाःक्रोशन्ति" मंचबोलते हैं। खेत रक्षा के लिये खेत के लिये खेत के पाली पर जो घरविशेष बनाते हैं उसको मंच कहते हैं, मंच बोलते हैं ऐसा जो कह दिया जाता है—वह आधेय रूप पुरुषादिकों के धर्मों को आधार में उपचरित करके ही कहा जाता है— कहा भी है-'खेत्तमरूवे' इत्यादि—उस का अर्थ यही है-कि क्षेत्र तो अरूपी और नित्य है। उसका न परिकर्म हो सकता है और न विनाश,

---

જોઇએ. છતાં અહીં તેને ક્ષેત્રોપક્રમ રૂપે શા માટે પ્રતિપાદિત કરવામાં આવ્યો છે?

ઉત્તર—ક્ષેત્રા શબ્દનો અર્થ આકાશ થાય છે, અને આ આકાશરૂપ ક્ષેત્ર અમૂર્ત છે તેથી તેનો ઉપક્રમ થઇ શકતો નથી. છતાં પણ તેમાં આધેય રૂપે વર્તમાન જે પૃથ્વી આદિ દ્રવ્ય છે તેમનો તો ઉપક્રમ થાય છે. તેથી તેમનો ઉપક્રમ આધાર રૂપ આકાશમાં ઉપચરિત કરી લેવામાં આવે છે. તેથી ક્ષેત્રોપક્રમ ઘટિત થઇ જાય છે. લોકોમાં પણ "मञ्चाः क्रोशन्ति" "મંચ બોલે છે," એવું કહેવામાં આવતું હોય છે. ખેતરની રક્ષા માટે એક માંચડો બનાવ્યો હોય છે. ત્યાં બેઠો બેઠો કોઇ પુરુષ ખેતરની રખવાળી કરે છે મંચ પર બેઠેલો પુરુષ બોલતો હોય ત્યારે કેટલીક વખત "મંચ બોલે છે," આ પ્રકારનો પણ વ્યવહાર થતો જોવામાં આવે છે. આધેય રૂપ પુરૂષના ધર્મોને આધાર રૂપ મંચમાં ઉપચરિત કરીને આ પ્રમાણે કહેવામાં આવે છે. કહ્યું પણ છે કે "खेत्तमरूवे" ઇત્યાદિ—આ સૂત્રપાઠનો પણ એવો જ અર્થ છે કે ક્ષેત્ર તો અરૂપી અને નિત્ય છે. તેનું પરિકર્મ

छाया--क्षेत्रमरूपं नित्यं न तस्य परिकर्म न च विनाशः ।
आधेयगतवशेनैव करणविनाशोपचारोऽत्र ॥ इति ।
इत्थं च 'क्षेत्रोपक्रमः' उक्तोऽपि न दोषः । सम्प्रति प्रकृतमुपसंहरन्नाह-
'से तं' इत्यादि । स एष क्षेत्रोपक्रम इति ॥सू० ६८॥

अथ कालोपक्रमं निरूपयति—

मूलम्—से किं तं कालोवक्कमे ? कालोवक्कमे जण्णं नालियाईहिं कालस्सोवक्कमणं कीरइ । से तं कालोवक्कमे ॥ सू० ६९ ॥

छाया—अथ केाऽसौ कालोपक्रमः ? कालोपक्रमो यत्खलु नालिकादिभिः कालस्योपक्रमणं क्रियते । स एष कालोपक्रमः ॥६९॥

टीका--शिष्यः पृच्छति--'से किं तं' इत्यादि ? इति । उत्तरमाह-कालोपक्रमो हि स भवति, यत्खलु नालिकादिभिः--नालिया=ताम्रादिमय घटिका,

परन्तु क्षेत्र में जो करण और विनाश का व्यवहार होता है वह आधेयगत-वस्तु के करण और विनाश के उपचार से होता है। इस प्रकार क्षेत्रोपक्रम कहने में कोई दोष नहीं हैं। इस तरह यह क्षेत्रोपक्रम का स्वरूप है ॥सू० ६८॥

अब सूत्रकार कालोपक्रम का स्वरूप प्रकट करते हैं—

"से किं तं कालोवक्कमे" इत्यादि । ॥सूत्र ६९॥

शब्दार्थ-(से किं तं कालोवक्कमे) हे भदन्त ! कालोपक्रम का क्या स्वरूप है?

(कालोवक्कमे जण्णं नालियाईहिं कालस्सोवक्कमणं कीरइ । से तं कालोवक्कमे) कालोपक्रम का स्वरूप इस प्रकार से है-जो नालिका तथा घटी आदि से कालका यथावत् स्वरूप परिज्ञात हो जाता है-वह कालोपक्रम है। ताम्रआदि का एक छोटी सी घटी

પણ થઈ શકતું નથી અને તેનો વિનાશ પણ થઈ શકતો નથી. પરન્તુ ક્ષેત્રમાં જે કરણ અને વિનાશનો વ્યવહાર થાય છે. તે આધેયગત વસ્તુના કરણ અને વિનાશના ઉપચારની અપેક્ષાએ થાય છે. આ પ્રકારે તેને ક્ષેત્રોપક્રમ કહેવામાં કોઇ દોષ નથી. આ પ્રકારનું ક્ષેત્રોપક્રમનું સ્વરૂપ છે ॥ સૂ૦ ૬૮ ॥

"से किं तं कालोवक्कमे" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(से किं तं कालोवक्कमे?) શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે હે ભગવન્! કાલોપક્રમનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર—(कालोवक्कमे जण्णं नालियाहिं कालस्सोवक्कमणं कीरइ—से तं कालोवक्कमे) કાલોપક્રમનું સ્વરૂપ આ પ્રકારે કહ્યું છે- નાલિકા આદિ વડે કાળના યથાવત્ સ્વરૂપનું જે પરિજ્ઞાન થાય છે તેનું નામ કાલોપક્રમ છે. તામ્ર આદિની

इयं हि दाडिमपुष्पाकाराऽधच्छिद्रा भवति। अधश्छिद्रेण नालिका मध्ये जलं प्रविशति। जलेन भृतायां नालिकायां कालमानो निश्चीयते। आदि पदात् शङ्कुच्छाया नक्षत्रचारादयोऽपि बोध्याः। एभिरपि कालो मीयते। एतैः—कालमापकसाधनैः कालस्योपक्रमणं क्रियते। अयं भावः—नालिकाशङ्कुच्छायानक्षत्रचारादिभिर्यत् 'एतावान् पौरुष्यादिकालोऽतिक्रान्तः' इति परिज्ञायते स परिकर्मविषयः कालोपक्रमः। अत्र कालस्य यथावत्परिज्ञानमेव परिकर्म बोध्यम्। तथा—नक्षत्रादिचारैः कालस्य यद् विनाशनं स वस्तुविनाशविषयः कालोपक्रमः। श्रूयते हि लोके

બનાઈ જાતી છે। ઉસકા આકાર દાડિમ—અનાર કે પુષ્પ જૈસા હોતા હૈ? ઇસકે નીચે એક છેદ હોતા હૈ? નીચે કે છેદ સે ઇસમેં જલ પ્રવિષ્ટ હોતા હૈ। જબ યહ જલ સે ભર જાતી હૈ તો ઇસસે કાલ કા માન નિશ્ચિત કિયા જાતા હૈ। યહાં પર આદિ પદ સે શંકુચ્છાયા ઔર નક્ષત્રોં કી ચાલ આદિ ગ્રહણ હુઈ હૈ। ઇન સે ભી કાલ કા માન જાના જાતા હૈ। ઇસ તરહ ઇન કાલમાપક સાધનોં સે કાલ કા ઉપક્રમ કિયા જાતા હૈ।

તાત્પર્ય કહને કા યહ હૈ કિ ઇન નાલિકા—શંકુચ્છાયા ઔર નક્ષત્રચાલ આદિ સે જો "ઇતના પૌરુષી આદિ કાલ વ્યતીત હો ચુકા" સા જાના જાતા હૈ વહ પરિકર્મ વિષયવાલા કાલોપક્રમ હૈ। કાલ કા યથાવત્ પરિજ્ઞાન હોના હી યહાં પરિકર્મ જાનના ચાહિયે। તથા નક્ષત્ર આદિકોં કી ચાલ સે જો કાલ કા વિનાશ હોતા હૈ વહ વસ્તુવિનાશ વિષયક કાલોપક્રમ હૈ। લોક મેં ઐસા

એક નાની સરખી ઘડિયાળ બનાવવામાં આવે છે. તેનો આકાર દાડમના પુષ્પ જેવો હોય છે. તેની નીચે એક છિદ્ર હોય છે. આ સાધનને પાણીથી ભરેલા કોઈ પાત્રમાં મૂકવામાં આવે છે. તે છિદ્ર દ્વારા તેમાં પાણી દાખલ થવા માંડે છે. જ્યારે તે સાધન (નાલિકા) જળઘડી પાણીથી ભરાઈ જાય છે ત્યારે તેની મદદથી કાળનું માપ નિશ્ચિત કરવામાં આવે છે. અહીં 'આદિ' પદ વડે શંકુચ્છાયા અને નક્ષત્રોની ચાલ આદિ ગ્રહણ થયેલ છે. તેમની મદદથી પણ કાળનું માપ નીકળી શકે છે. આ પ્રકારે આદિ કાલમાપક સાધનો વડે કાળનો ઉપક્રમ કરવામાં આવેલ છે. આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે આ નાલિકા (જળઘડી) શંકુચ્છાયા (સૂર્ય ઘડી) અને નક્ષત્રોની ચાલ આદિ દ્વારા "આટલા પહોર આટલી ઘડી આદિ વ્યતીત થઈ ગયા આ પ્રકારનું કાળવિષયક જે જ્ઞાન થાય છે તેને પરિકર્મ કાલોપક્રમ કહે છે. કાળનું યથાવત્ પરિજ્ઞાન થવું તેનું નામ અહીં પરિકર્મ સમજવું. તથા નક્ષત્ર આદિકોની ચાલથી કાળનો જે વિનાશ થાય છે, તે વસ્તુવિનાશવિષયક કાલોપક્રમ સમજવો. લોકોમાં એવી વાત ચલી આવતી

'अनेन ग्रहनक्षत्रादिचारेण कालो विनाशितः, न भविष्यन्त्यधुना धान्यानि'—इति । उक्तं च—

"छायाए नालियाए, व परिकम्मं से जहत्थं विन्नाणे ।
रिक्खाइयचारे हि य, तस्स विणासो विवज्जासो ॥१॥

छाया—छायया नालिकया वा परिकर्म तस्य यथार्थं विज्ञानम् ।
ऋक्षादिकचारैश्च, तस्य विनाशो विपर्यासः ॥१॥

इत्थं वस्तु विनाशविषयः कालोपक्रमो बोध्यः । प्रकृतमुपसंहरन्नाह—'से तं' इति । स एष कालोपक्रम इति ॥६९॥

अथ भावोपक्रमं निरूपयति—

सूत्र—से किं तं भावोवक्कमे ? भावोवक्कमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा आगमओ य नोआगमओ य । आगमओ भावोवक्कमो नाणए उववत्ते । नोआगमओ भावोवक्कमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा पसत्थे, य अपसत्थे य । तत्थ अपसत्थे डोडिणिगणिया अभच्चाईणं । पसत्थे गुरुमाइणं । से तं नोआगमओ भावोवक्कमे । से तं भावोवक्कम । से तं उवक्कम ॥सू०७०॥

सुना जाता है कि इस ग्रह नक्षत्र आदि की चाल से काल नष्ट हो गया—अब अनाज पैदा नहीं होगा । कहा भी है—'छायया' इत्यादि उसका अर्थ इस प्रकार से हैं कि छाया से अथवा नालिका से जो काल का यथार्थ परिज्ञान है वह परिकर्म है । तथा नक्षत्रादिकों की गति से उसमें जो विपरीतता है वह काल का यह वस्तु विनाश विषयक कालोपक्रम है । इस तरह से यह कालोपक्रम का स्वरूप वर्णन है । ॥सू० ६९॥

વામાં આવે છે કે આ નક્ષત્રની ચાલ આદિથી કાળ નષ્ટ થઈ ગયો–હવે અનાજ પેદા નહીં થાય. કહ્યું પણ છે કે– "छाया" ઇત્યાદિ—આ સૂત્રપાઠનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે–છાયાથી અથવા નાલિકા આદિથી જે કાળનું યથાર્થ પરિજ્ઞાન થાય છે તેનું નામ પરિકર્મ છે, તથા નક્ષત્રાદિકોની ગતિથી તેમાં જે વિપરીતતા આવે છે, તે કાળના વિનાશરૂપ છે. આ પ્રકારના કાળના વસ્તુવિનાશ વિષયક આ કાળોપક્રમ છે. આ પ્રકારે કાલોપક્રમના વિષયનું નિરૂપણ અહીં સંપૂર્ણ થાય છે. ॥ સૂ. ૬૯ ॥

छाया--अथ कोऽसौ भावोपक्रमः ? भावोपक्रमो द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-आगमतश्च नोआगमतश्च । आगमतो भावोपक्रमो ज्ञायक उपयुक्तः । नोआगमता भावोपक्रमो द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-प्रशस्तश्चाप्रशस्तश्च । तत्र-अप्रशस्तो डोडिणि गणिकाऽमात्यादीनाम् । प्रशस्तो गुर्वादीनाम् । स एष नोआगमतो भावोपक्रमः । स एष भावोपक्रमः । स एष उपक्रमः ॥७०॥

टीका--शिष्यः पृच्छति-'से किं तं' इत्यादि । अथ कोऽसौ भावोपक्रमः ? इति । उत्तरमाह-भावोपक्रमो द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद् यथा-आगमतश्च नोआगमतश्च । तत्र-आगमतः । आगममाश्रित्य उपक्रमो हि ज्ञायकः=उपक्रम शब्दार्थज्ञः उपयुक्त =उपक्रमे उपयोगवांश्च बोध्यः । अयं भावः-उपक्रम-

---

अब सूत्रकार भावोपक्रम का निरूपण करते हैं-

"से किं तं भावोवक्कमे इत्यादि । ॥सू० ७०॥

शब्दार्थ—(से किं तं भावोवक्कमे) हे भदन्त ! भावोपक्रम का क्या स्वरूप है ?

उत्तर--(भावोवक्कमे दुविहे पण्णत्ते) भावोपक्रम दो प्रकार का कहा गया है । (तं जहा) उसके वे प्रकार ये हैं-(आगमओ य नोआगमओ य) १ आगम को आश्रित करके भावोपक्रम होता है और दूसरा नोआगमको आश्रित करके भावोपक्रम होता है. (जाणए उवउत्ते आगमओ भावोवक्कमे) जो उपक्रम शब्द के अर्थ को जानता है और उसमें उपयोग से युक्त है वह आगम से भावोपक्रम है ।-

હવે સૂત્રકાર ભાવોપક્રમનું નિરૂપણ કહે છે—

"से किं तं भावोवक्कमे" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(से किं तं भावोवक्कमे?) શિષ્ય ગુરુને એનો પ્રશ્ન પૂછે છે કે હે ભગવન્! ભાવોપક્રમનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર—(भावोवक्कमे दुविहे पण्णत्ते) ભાવોપક્રમના બે પ્રકાર કહ્યા છે. (तं जहा) તે બે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે.

(आगमओ य, नोआगमओ य) (૧) આગમને આશ્રિત કરીને જે ભાવોપક્રમ થાય છે તેને 'આગમ ભાવોપક્રમ' કહે છે. (૨) નોઆગમનો આશ્રિત કરીને થતા ભાવોપક્રમને-"નોઆગમ ભાવોપક્રમ" કહે છે. (जाणए उवउत्ते आगमओ भावोवक्कमे) જે ઉપક્રમ શબ્દના અર્થને જાણે છે અને તેમાં ઉપયોગથી યુકત છે, તે આગમની અપેક્ષાએ ભાવોપક્રમ છે. આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે-ઉપક્રમ અને ઉપાય, આ બન્ને એકાર્થક શબ્દો છે. ભગવાન તીર્થંકર દ્વારા કથિત અનુશાસનના જ્ઞાનના

उपायः, स चेह–भगवदनुशासनज्ञानसाधनरूपो ग्राह्यः। उक्तं च––

"सोच्चा भगवाणुसासणं, सच्चे तत्थ करेज्जुवक्कमं ॥"

छाया–श्रुत्वा भगवदनुशासनं सत्यं तत्र कुर्यादुपक्रमम्–इति–

व्याख्या–सत्यं=यथार्थं भगवता तीर्थंकरेण प्रोक्तमनुशासनं श्रुत्वा तत्र=अनुशासने उपक्रमं=तत्प्राप्त्युपायं कुर्यात्–इत्यर्थः।

इत्थं च भगवदुक्तानुशासनप्राप्त्युपायज्ञस्तत्रोपक्रमे उपयुक्तश्च आगमतो भावोपक्रम इति।

नोआगमतो भावोपक्रमोऽपि द्विविधः प्रज्ञप्तः। तद् यथा प्रशस्तश्च, अप्रशस्तश्च। इह भावशब्दः–अभिप्रायाख्यो जीवद्रव्यपर्यायोऽभिमतः। उक्तं च–भावाभिख्याः पञ्च स्वभावसत्ताऽऽत्मयोन्यभिप्राया इति। ततश्च–भावस्य

इसका भाव यह है कि उपक्रम और उपाय ये एकार्थक शब्द हैं–भगवान् तीर्थंकर द्वारा कथित अनुशासन के ज्ञान का साधनरूप वह उपक्रम यहां ग्राह्य हुआ है। अन्यत्र ऐसा ही कहा है–(सोच्चा) इत्यादि। कि भगवान् के द्वारा कथित अनुशासन बिलकुल सत्य है–उसे श्रवणकर श्रोता का कर्तव्य है कि वह उसकी प्राप्ति का उपाय करें। इस प्रकार भगवदुक्त अनुशासन की प्राप्ति का उपाय जानने वाला ज्ञाता उस उपक्रम में उपयुक्त होता हुआ आगम से भावोपक्रम है। (नोआगमओ भावोवक्कमे दुविहे पण्णत्ते–तं जहा) नो आगमको आश्रित करके भावोपक्रम दो प्रकारका कहा गया है। जैसे (पसत्थे य अपसत्थे य) एक प्रशस्त और दूसरा अप्रशस्त। यहां पर भाव शब्द का अर्थ अभिप्राय है और यह जीव द्रव्य का पर्यायरूप से माना गया है। कहा भी है (भावाभिख्याः) भावके पांच नाम हैं स्वभाव १, सत्ता २, आत्मा३, योनि ४, और अभिप्राय ५। इस तरह

साधनરૂપ તે ઉપક્રમ અહીં ગ્રાહ્ય થયો છે. અન્યત્ર પણ એવું જ કહ્યું છે કે 'सोच्चा" ઇત્યાદિ—તીર્થંકર ભગવાન દ્વારા કથિત અનુશાસન સર્વથા સત્ય છે. તેને શ્રવણ કરનાર શ્રાવકનું તેની પ્રાપ્તિનો ઉપાય કરવાનું કર્તવ્ય થઈ પડે છે. આ પ્રકારે ભગવદુકત અનુશાસનની પ્રાપ્તિનો ઉપાય જાણનાર જ્ઞાતા તે ઉપક્રમમાં ઉપયુકત (ઉપયોગ પરિણામથી યુકત) હોવાને કારણે આગમની અપેક્ષાએ ભાવોપક્રમરૂપ હોય છે.

(नोआगमओ भावोवक्कमे दुविहे पण्णत्ते) નોઆગમ ભાવોપક્રમ બે પ્રકારનો કહ્યો છે. (तं जहा) તે બે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે– (पसत्थे य अपसत्थे य) (૧) પ્રશસ્ત અને (૨) અપ્રશસ્ત અહીં ભાવ શબ્દનો અર્થ અભિપ્રાય છે, અને તે જીવદ્રવ્યનો પર્યાયરૂપ માનવામાં આવ્યો છે. કહ્યું પણ છે કે "भावाभिख्याः" ભાવના પાંચ નામ નીચે પ્રમાણે છે–(૧) સ્વભાવ, (૨) સત્તા, (૩) આત્મા, (૪) યોનિ

परकीयाभिप्रायस्य उपक्रमणं=यथावत्परिज्ञानं भावोपक्रम इति । तत्र=द्विविधे नोआगमतो भावोपक्रमे, अप्रशस्ता भावोपक्रमः—डोडिणि गणिकाऽमात्यादीनां बोध्यः । अयमाशयः—डोडिणिनाम्न्या ब्राह्मण्या गणिकया अमात्येन च यत् पराभिप्रायरूपस्य भावस्य यथावत् उपक्रमः—परिज्ञानं कृतं तद् नोआगमतोऽप्रशस्त भावोपक्रमः । अप्रशस्तत्वं चास्य संसारफलत्वात्, इति । डाडिण्यादिभिर्यथा पराभिप्रायः परिज्ञातः प्रसङ्गवशात्तदुच्यते—

आसीत्काऽपि डोडिणि नाम्नी ब्राह्मणी । तस्या आसंस्तिस्रो दुहितरः । सा ताः परिणाय्यैवं चिन्तितवती-जामातॄणामभिप्रायं परिज्ञाय दुहितरः शिक्षणीयाः

परकीय भाव अभिप्रायका यथावत् परिज्ञान होना इस का नाम भावोपक्रम है । (तत्थ) नोआगम की अपेक्षा से द्विविध हुए भावोपक्रम में जो अप्रशस्त भावोपक्रम है—वह डोडिणि ब्राह्मणी गणिका, और अमात्य आदि कों में जानना चाहिये । डोडिणि नाम की ब्राह्मणी एक वेश्या और एक अमात्य था सब पर के अभिप्राय का जो यथावत् परिज्ञात कर लिया करते थे वह उनका नोआगम से अप्रशस्त भावोपक्रम था । अप्रशस्तता इस में इसलिये है कि यह संसाररूप फल का जनक होता है।—डोडिणि आदि ने जिस प्रकार से पर का अभिप्राय जाना—प्रसंगवश उसे यहां दर्शाया जाताहै—

एक कोई डोडिणी नामकी ब्राह्मणी थी । उसकी ३ तीन लडकिया थीं । उनका उसने विवाह करदिया ! विवाह करने के बाद उसने सोचा कि में जामाताओं के अभिप्राय को ज्ञात कर अपनी इन पुत्रियों को शिक्षित कर

અને (५) અભિપ્રાય. આ રીતે પરકીય ભાવનું (અભિપ્રાયનું) યથાર્થ પરિજ્ઞાન થવું તેનું નામ ભાવોપક્રમ છે. (तत्थ) નોઆગમભાવોપક્રમના જે બે પ્રકારો કહેવામાં આવ્યા તેમાંનો જે અપ્રશસ્ત ભાવોપક્રમ કહ્યો છે તેનો સદ્ભાવ ડોડિણિ બ્રાહ્મણી, ગણિકા અને અમાત્ય વગેરેમાં જાણવો. હવે આ ડોડિણિ બ્રાહ્મણી આદિના અપ્રશસ્ત ભાવોપક્રમને સમજાવવાને માટે અહીં તેમની કથા આપવામાં આવી છે. તે ત્રણે બધાંના અભિપ્રાયને પરિજ્ઞાત કરવાને સમર્થ હતા. તેમનો તે ભાવોપક્રમ નોઆગમની અપેક્ષાએ અપ્રશસ્ત ભાવોપક્રમરૂપ હતો. તેમનો ભાવોપક્રમ અપ્રશસ્ત તે કારણે હતો કે તે સંસારરૂપ ફલનો જનક હતો. ડોડિણિ આદિએ જે પ્રકારે અન્યનો અભિપ્રાય જાણ્યો હતો તે પ્રકારનું અહીં પ્રસંગવશ કથન કરવામાં આવે છે—કોઈ એક ગામમાં ડોડિણી નામની એક બ્રાહ્મણી રહેતી હતી. તેને ત્રણ પુત્રીઓ હતી. તેણે તે ત્રણેના વિવાહ કરી નાખ્યા. પુત્રીઓનો વિવાહ કર્યા બાદ તેને એવો વિચાર આવ્યો કે ત્રણે જમાઈઓનો અભિપ્રાય (સ્વભાવ) જાણી લઈને મારે મારી પુત્રીઓને એવા પ્રકારની શિક્ષા આપવી જોઈએ કે તે શિક્ષાને અનુરૂપ જીવન

यथैताः सुखिताः स्युः इति विचिन्त्य तया सर्वा दुहितर एवमुक्ताः=युष्माकं पतयो यदा स्व स्व शयनागारे समागच्छेयुस्तदा युष्माभिः–कंचि दोष मुद्भाव्य स्व स्वपतिः शिरसि पादप्रहारेण ताडनीयः। तदा युष्मत्पतयो यत्कुर्युस्तन्मह्यं निवेदयत। एवं जनन्या प्रोक्ते सति ताः सर्वाः पुत्रिकाः स्व शयनागारे स्वीयं स्वीयं पतिं प्रतीक्षमाणाःस्थिताः ।

अथ ज्येष्ठायाः पतिः शयनागारे समागतः ततः सा कमपि दोषमुद्भाव्य तच्छिरसि चरणेन प्रहृतवती। प्रहारसमनन्तरमेव तस्याः पतिस्तदीयं चरणं हस्तेन गृहीत्वा सस्नेहमिदमब्रवीत्–अयि प्रिये! पाषाणादपि कठोरे मम शिरसि त्वया चरणः पातितः। मन्ये केतकीकुसुमादपि कोमलतरस्त्वदीयश्चरणः पीडितो

दूं कि जिससे इन का जीवन सुखी बन सके। इस प्रकार विचार करके उसने अपनी ३ तीनों पुत्रियों से कहा कि देखों जब तुम्हारे पति अपने २ शयन भवन में आवे तब तुम लोग किसी दोष को कल्पित कर उन्हें लातें मारना। जब वे तुम लोगों से इसके प्रतिकार स्वरूप में जो कुछ करें वह हम से कहना। इस प्रकार माता के कहने पर उन सब पुत्रियों ने वैसा ही किया। वे सब अपने २ शयनागार में चली गईं और वहाँ अपने २ पतिओं की प्रतीक्षा करतीं हुई बैठ गई। इतने में बडी लडकी का पति आगया। पति के आने पर उसने उसे दोष दिखाकर एक लात शिर में जमा दी। लात के लगते ही उसने उसके उसी पग को पकडकर बडे भारी स्नेह के साथ कहा अयि प्रिये! पाषाण से भी कठोरतर मेरे शिर पर तुमने अपने चरण को रखा है–सो मैं समझता हूं कि केतकी के कुसुम से भी

જીવીને તેઓ પોતાના જીવનને સુખી બનાવી શકે. આ પ્રકારનો વિચાર કરીને તેણે પોતાની ત્રણે પુત્રીઓને બોલાવીને આ પ્રમાણે સલાહ આપી–

"આજે જ્યારે તમારા પતિ તમારા શયનખંડમાં આવે ત્યારે તમારે કોઈ કલ્પિત દોષ બતાવીને તેમના મસ્તક પર લાતો મારવી. ત્યારે પ્રતિકારરૂપે તેઓ તમને જે કંઈ કહે અથવા જે કંઈ કરે તે સવારમાં મને કહેવાનું છે.

તે ત્રણે પુત્રીઓએ માતાની સલાહ પ્રમાણે જ કર્યું–તેઓ પોતપોતાના શયનખંડમાં ચાલી ગઇ અને પોતપોતાના પતિની પ્રતીક્ષા કરવા લાગી. સૌથી મોટી પુત્રીનો પતિ જ્યારે શયનખંડમાં આવ્યો, ત્યારે તેણે તેના પર કોઈ દોષનું આરોપણ કરીને તેના મસ્તક પર એક લાત લગાવી દીધી. લાત મારવાની સાથે જ તેના પતિએ તેનો પગ પકડીને તેને આ પ્રમાણે કહ્યું–"પ્રિયે! પથ્થરથી પણ કઠોર એવાં મારા મસ્તકપર તમે કેતકીના પુષ્પસમાન કોમળ પગ વડે જે લાત મારી છે

जातः। एवं ब्रुवाणः स तस्याश्चरणसंवाहनमकरोत्। प्रभाते सा सर्वं वृत्तं मात्रे निवेदितवती। सहर्षया मात्रा सा प्रोक्ता—वत्से! त्वया स्वगृहे यथेच्छं कर्त्तव्यम्, तव पति रत्वदाज्ञावर्ती भविष्यति। अथ द्वितीययाऽपि तथैव स्वपत्युःशिरसि चरणप्रहारः कृतः। तयाः पतिः किंचिद्रोषमुपदर्शयन्नुवाच—कुलवधूनाम्—नुचितोऽयं व्यवहारः। इत्युक्त्वा कोपान्निवृत्तः। प्रभाते साऽपि मात्रे सर्वं वृत्तं निवेदितवती। ततः सा मात्रा सहर्षं प्रोक्ता—वत्से! त्वमपि स्वगृहे यथेच्छं-

---

अधिक सुकुमार यह तुम्हारा चरण दुखने लगा होगा। इस प्रकार कहने के साथ ही उसने उसके उस चरण को दाबना प्रारंभ कर दिया। प्रातःकाल उस लडकी ने यह सब कृत्य अपनी माता से कह दिया। माता को इसे सुनकर बडा हर्ष हुआ। उसने पुत्री से कहा—वत्से। तुम अपने घर में जो कुछ करना चाहो सो कर सकती हो—क्योंकि पति के इस व्यवहार से यह पता पडता हैं कि वह तुम्हारा आज्ञावशवर्ती रहेगा।

दूसरी पुत्री ने भी अपने पति के साथ ऐसा ही व्यवहार किया—उसके शयनागार में पति के आने पर उसने उसके मस्तक पर ज्यों ही चरण प्रहार किया कि उसे कुछ रोष आ गया। अपना रोष प्रकट करते हुए उसने उससे कहा यह व्यवहार कुलवधुओं के योग्य नहीं है—जो तुमने मेरे साथ किया है। ऐसा कहकर वह फिर शांत हो गया। प्रातःकाल उस पुत्री ने रात्रि के पति के इस व्यवहार को माता से प्रकट किया। तब उसकी माताने हर्षित

तेने लीधे तमारा नाजुक चरणु दुखवा मांडया हशे," आ प्रमाणे कहीने तेणे तेना ते पगने दाबवा मांडयो, बीजे दिवसे ते मोटी पुत्रीओ आ समस्त वात तेनी माताने कही संभळावी. ते वात सांभळीने माताने (डोडिणी ब्राह्मणीने) घणो ज आनंद थयो. जमाईना आ प्रकारना वर्तनथी तेना स्वभावने ते समजी गइ. तेणे तेनी मोटी पुत्रीने आ प्रमाणे सलाह आपी. "तुं तारा घरमां जे करवा धारे ते करी शकीश, कारणु के तारा पतिना आ व्यवहारथी एवुं लागे छे के ते तारी आज्ञाने अधीन रहेशे."

बीजी पुत्रीओ पणु पोताना पति साथे ज एवो ज वर्ताव बताव्यो—जेवो ते शयनखंडमां प्रवेश्यो के तुरत ज कोई दोषनुं आरोपणु करीने तेणे तेना मस्तक पर एक लात लगावी दीधी. त्यारे तेना पतिने थोडो रोष उपज्यो. तेणे पोतानो रोष मात्र आ शब्दो द्वारा ज प्रकट कर्यो—"मारी साथे तें जे वर्ताव कर्यो छे, ते कुळवधुओने योग्य वर्ताव न गणाय तारे आवुं करवुं जोइओ नहीं" आ प्रमाणे कहीने ते शान्त थइ गयो. प्रातःकाळे बीजी पुत्रीओ पणु आ बधी वात संभळावी

कुरु रुष्टोऽपि पतिः क्षणमात्रेण तुष्टो भविष्यति ! अथ तृतीययाऽपि स्वपतिमुत्सर्थैव प्रहृतः ततः स क्रोधाध्मातचित्तो रोषारुणलोचन उच्चैः स्वरेण तां निर्भर्त्सयन्नेवमुवाच-अयि दुष्टे ! कुलकन्यकानुचितमिदं कृत्यं कथं त्वया कृतम् ? इत्युक्त्वा मुष्ट्यादिभिस्तां ताडयित्वा गृहान्निष्कासितवान् । ततः सा मातुः समीपे गत्वा सर्वं वृत्तं निवेदितवती । जामातुः स्वभावमवगत्य सा ब्राह्मणी तत्समीपे गत्वा तत्क्रोधमुपशान्तयितुं मधुरया गिरा प्रोवाच—वत्स । अस्मत्कुलाचारोऽयं यत् प्रथमसमागमे वध्वा वरस्य शिरसि चरणप्रहारः कर्तव्य इति, अतो मम

होकर उसे कहा कि हे बेटी ! तुमभी अपने घर में अपनी इच्छानुसार सब कुछ करो ! तुम्हारे व्यवहार से रुष्ट भी तुम्हारापति क्षणमात्र में तुष्ट हो जावेगा । जब तीसरी लडकी का पति अपने शयनागार में आया—तो उसने भी अपनी माता के कहे अनुसार वैसा ही व्यवहार अपने पति के साथ किया । तब वह क्रोध से भर गया और रोष से लाल २ आंखें करके बडे जोर से उससे डाटकर कहने लगा-अयि दुष्टे ! कुलकन्या के अयोग्य यह कृत्य तूने मेरे साथ क्यों किया ? ऐसा कहकर उसने उसे खूब मुक्कों से मारा पीटा और मार पीट कर फिर उसे घर से बाहिर निकाल दिया । तब वह अपने माता के पास गई और सब वृत्तान्त कहने लगी । पुत्री के कथनानुसार वह अपने जामाता के स्वभाव का जानकर उसके पास गई—और जाकरके मीठी २वाणी से उसके क्रोध को शांत करती हुई कहने लगी—वत्स ! यह हमारे कुल का आचार है कि सुहागरात में प्रथम समागम के समय वधू अपने पति

ત્યારે તેની માતાએ સંતોષ પામીને તેને આ પ્રમાણે કહ્યું—"બેટી ! તું પણ તારા ઘરમાં તારી ઇચ્છા પ્રમાણે વર્તાવ કરી શકે છે. તારા પતિનો સ્વભાવ એવો છે કે તે ગમે તેટલો રૂષ્ટ થયો હોય તો પણ ક્ષણમાત્રમાં તુષ્ટ થઇ જાય એવોછે."

ત્રીજી પુત્રીએ પણ કોઇ દોષનું આરોપણ કરીને તેના પતિને મસ્તક પર લાત લગાવી દીધી. ત્યારે તેના ક્રોધનો પારો ઘણો ઉંચો ચડી ગયો, તેની આંખો ક્રોધથી લાલ થઇ ગઇ અને તેણે તેને આ પ્રમાણે કહ્યું, "અરે નીચ ! કુલકન્યાએ ન કરવા યોગ્ય આ પ્રકારનું કાર્ય તેં શા માટે કર્યું ?" આ પ્રમાણે કહીને તેણે તેને ગડદા, પાટુ આદિ મારી મારીને ઘરમાંથી ધક્કો મારીને બહાર કાઢી મૂકી. ત્યારે તે પુત્રી તેની માતા પાસે ગઇ અને તેમને સર્વ હકીકત કહી સંભળાવી. પુત્રીની આ વાત દ્વારા ડોડિણી બ્રાહ્મણીને તેની ત્રીજી પુત્રીના પતિના સ્વભાવનો પણ ખ્યાલ આવી ગયો. તુરત જ તે તેની (ત્રીજી પુત્રીના પતિની) પાસે પહોંચી ગઇ અને મીઠી વાણી દ્વારા તેના ક્રોધને શાન્ત પાડવાનો પ્રયત્ન કરવા લાગી. તેણે તેને આ પ્રમાણે કહ્યું—"જમાઇરાજ ! અમારા કુળમાં સુહાગરાતે પ્રથમ સમાગમ વખતે પતિના

पुत्र्या भवांस्ताडितो न तु दौर्जन्येन। अतो भवान् स्वरोषं निवर्तयतु। श्वश्रू वचनं निशम्य स रोषान्निवृत्तः। सा स्वपुत्रीमुक्तवान्—वत्से! दुराराध्यस्ते पतिः अतोऽयं त्वया परमसावधानतया महता प्रयत्नेन समाराधनीयः। इत्थं डोडिणि ब्राह्मण्या स्व जामातॄणामभिप्रायो ज्ञातः।१)

अथ गणिकया यथा पराभिप्रायो ज्ञातस्तथोच्यते

आसीत् कस्मिंश्चिन्नगरे चतुष्षष्टिकलाचतुरा विलासिनी नाम गणिका। तया हि पराभिप्रायपरिज्ञानार्थं रतिभवनभित्तौ स्व स्व क्रियां कुर्वन्तो राजपुत्रा दयश्चित्रिताः। तस्या गृहे यज्जातीयो जनः समायाति स स्वजातीयोचितचित्र-

---

के मस्तकपर चरण प्रहार करे। इसी बात से मेरी पुत्री ने तुम्हें ताडित किया है—दुर्जनता से नहीं। इसलिये आप अपने रोष की शांति करलें। इस प्रकार से सासू के वचन को सुनकर उसने क्रोध छोड दिया। तब डोडिणि ने अपनी पुत्री से कहा—वत्से। तेरा पति दुराराध्य है। इसलिये तूं इसकी बडी सावधानी के साथ बहुत ही यत्न पूर्वक सेवा करना। इस प्रकार डोडिणि ब्राह्मणी ने अपने जामाताओं का अभिप्राय जान लिया।

अब गणिका ने जिस प्रकार से पर का अभिप्रय जाना वह कहा जाता है—किसी नगर में ६४ कलाओं में निपुण विलासवती नाम की एक गणिका रहती थी। उसने दूसरों के जभिप्राय को जानने के निमित्त अपने रति-भवन की दीवाल पर अपनी २ क्रियाओं को करते हुए राजपुत्र आदिकों

મસ્તક પર ચરણપ્રહાર કરવાનો આચાર ચાલ્યો આવે છે. તે કારણે મારી પુત્રીએ તમારી સાથે એવો વ્યવહાર કર્યો છે, દુષ્ટતાને કારણે એવું કરવામાં આવ્યું નથી. માટે આપે ક્રોધ છોડીને તેના વર્તન માટે તેને માફી આપવી જોઈએ.” સાસૂના આ પ્રકારના વચનો સાંભળીને તેનો ગુસ્સો ઉતરી ગયો. ત્યારબાદ તે ડોડિણી બ્રાહ્મણીએ તેની ત્રીજી પુત્રીને આ પ્રમાણે સલાહ આપી-“બેટી! તારા પતિ દુરા-રાધ્ય છે. માટે તારે તેમની આજ્ઞાનું બરાબર પાલન કરવું અને ખૂબ જ સાવધાની પૂર્વક તેમની સેવા કરવી.

આ પ્રકારે ડોડિણી બ્રાહ્મણીએ પોતાના જમાઈઓના અભિપ્રાયને ઉપર દર્શાવેલી યુક્તિ વડે જાણી લીધો.

હવે પરનો અભિપ્રાય જાણવાને સમર્થ એવી એક વિલાસવતી નામની ગુણિકાનું દૃષ્ટાંત આપવામાં આવે છે. કોઈ એક નગરમાં કોઇ એક ગણિકા રહેતી હતી. તે ૬૪ કલાઓમાં નિપુણ હતી. તેણે પરનો અભિપ્રાય જાણવાને માટે આ પ્રકારની પદ્ધતિ અપનાવી હતી. તેણે પોતાના રતિભવનની ભીંતો પર જુદા જુદા પ્રકારની ક્રિયાઓ કરતાં વિવિધ જાતિના પુરૂષોનાં ચિત્રો દોરાવ્યાં હતાં. જે પુરૂષ

दर्शने समासक्तते। ततः सा तं परिचित्य तदुचितव्यवहारेण तं सत्कुरुते। तस्या व्यवहारेण सन्तुष्टा जनास्तस्यै यथेष्टमर्थं जातं प्रयच्छन्ति। इत्थं गणिकया पराभिप्रायो ज्ञातः।२)

अथाऽमात्येन यथा पराभिप्रायो ज्ञातस्तथोच्यते—

आसीत् कस्मिंश्चिन्नगरे भद्रबाहुर्नाम राजा। तस्यासीन्नीति—शास्त्रचतुरो झटिति पराभिप्रायसंवादनशीलः सुशीलो नामाऽमात्यः। अथैकदा स राजाऽमात्येन सहाश्ववाहनिकायां गतः। पथि गच्छता राजतुरङ्गमेण क्वाऽपि स्खिलप्रदेशे (बिनजोता—पडतल प्रदेश) स्थित्वा मूत्रितम्। तच्च मूत्रं बहुतरकालपर्यन्तं तत्र

के चित्रों को अंकित कर दिया। उसके घरमें जिस जाति का मनुष्य आता वह अपने जातीयोचित चित्र के देखने में तल्लीन हो जाता। इस तरह उसे पहिचान कर उसके योग्य व्यवहार से उसका सत्कार करने लगती। इस प्रकार उसके व्यवहार से संतुष्ट हुए मनुष्य उसे इच्छानुकूल पैसा दे दिया करते।

अमात्य जिस पद्धति से पर का अभिप्राय जान लेता वह बात यहां प्रकट की जाती है—

किसी नगर में भद्रबाहु नामक राजा था। उसके अमात्य का नाम सुशील था। वह नीतिशास्त्र में बडा चतुर था, पर के अभिप्राय को जल्दी से जल्दी जान लेता था। एक दिन की बात हैं कि राजा अमात्यके साथ अश्वक्रीडा करने के लिये बाहर निकला—मार्ग में चलते हुए राजा के घोडे ने किसी पडतल प्रदेश में खडे होकर पेशाबकर दिया पेशाब वहीं पर

ત્યાં આવતો, તે પોતાના જાતીયોચિત ચિત્રનું નિરીક્ષણ કરવામાં તન્મય થઈ જતો તેના આ પ્રકારના વર્તનથી તેની જાતિ, સ્વભાવ, રુચિ આદિને તે વિલાસવતી સમજી જતી હતી અને તે પુરૂષની સાથે તેની જાતિ રૂચિ આદિને યોગ્ય વર્તાવ બતાવીને તેને સત્કાર આદિ દ્વારા ખુશખુશ કરી નાખતી. તેના વર્તન આદિથી ખુશ થઇને તેને ત્યાં જનારા પુરૂષો ખૂબ ધન આપીને પોતાનો સંતોષ પ્રકટ કરતા હતા.

હવે અમાત્યનું દૃષ્ટાન્ત આપવામાં આવે છે અને એ વાત પ્રકટ કરવામાં આવે છે કે તે અમાત્ય કેવી રીતે અન્યના અભિપ્રાયને જાણી લેતો હતો—

કોઇ એક નગરમાં ભદ્રબાહુ નામે રાજા રાજ્ય કરતો હતો. તેને સુશીલ નામે એક અમાત્ય હતો. તે નીતિશાસ્ત્રમાં ઘણો જ નિપુણ હતો. પરના અભિપ્રાયને ઘણી જ ઝડપથી જાણી લેવાને તે સમર્થ હતો. હવે એક દિવસ તે રાજા તે અમાત્યને સાથે લઈને અશ્વક્રીડા કરવા નિમિત્તે નગરની બહાર નીકળા પડયો. ચાલતાં ચાલતાં માર્ગના કોઈ એક પડતર (ખેતી ન થતી હોય એવો પ્રદેશ) પર ઊભા રહીને ઘોડાએ પેશાબ કર્યો. તે પેશાબ સૂકાઇ ગયો નહીં પણ ત્યાં તે જમીનમાં

स्थितमेवासीत्। निवर्त्तमानेन राज्ञाऽश्वमूत्रं तथैवावस्थितं दृष्टम्। ततो राज्ञा चिन्तितम् यद्यत्र सरो भवेत्तर्हि तदगाधजलं भवेत्, न कदापि परिशुष्येत्। इत्थं चिन्तयन् राजा तं भूभागं चिरं निरीक्षितवान्। ततोऽमात्येन सह राजा स्वभवनं समागतः। राज्ञो मनोगतभावं परिज्ञाय तेनामात्येन तदनु तत्र महत्सरः कारितम्, परितः सरोवरपालिषु च सर्वर्तुकुसुमफला विविध जातीया वृक्षाः समारोपिताः। ततोऽन्यथाऽमात्येन सह तत्र प्रदेशे गच्छता तेन राज्ञा तरुराजिशोभितं तत् सरोवरं विलोकय पृष्टम्—अहो! केनेदमति रमणीयं सरः कारितम्? आमात्येनोक्तम्—भवद्भिरेव, ततो विस्मितमना राजा

भरा रहा—सूखा नहीं जब अश्वक्रीडा करके राजा वापिस लौटा तो उसने उस घोडे के पेशाब को वहीं पर भरा हुआ देखा—तब राजाने मन में विचार किया—कि यदि यहां पर तालाब खुदवाया जावे तो वह अगाध जल से भरा रहेगा। कभी भी सूखेगा नहीं। इस प्रकार विचार करते २ उस राजा ने बहुत समय तक उस भूभाग को देखा इसके बाद वह राजा अमात्य के साथ राजमहल में आगया। राजा के मनोगत भाव को जानने वाले उस अमात्यने कुछ समय बाद वहां एक बडा भारी तालाब खुदवा दिया। उसके चारों ओर उसने तट पर सब ऋतुओं के कुसुम और फलवाले अनेक जाति के वृक्ष लगा दिये। किसी समय अमात्य के साथ राजा उसी मार्ग से होकर निकले। वृक्षके झुण्डों से शोभित उस सरोवर को देखकर उन्होंने मंत्री से पूछा अहो! यह अति रमणीय तालाब यहां किसने बनवाया है?

એમને એમ પડયો રહ્યો. થોડીવાર પછી રાજા અને અમાત્ય એજ રસ્તેથી પાછાં ફર્યા. તે પડતર જગ્યામાં ઘોડાના પેશાબને હજી પણ વિના સુકાયેલો જોઇને રાજાના મનમાં આ પ્રકારનો વિચાર આવ્યો-"જો આ જગ્યાએ તળાવ ખોદાવવામાં આવે, તો તે તળાવ કાયમ અગાધ જળથી ભરપૂર રહેશે. તેનું પાણી સૂકાશે નહીં આ પ્રકારનો વિચાર કરતો કરતો તે રાજા તે ભૂમિભાગ સામે ઘણીવાર સુધી તાકી રહ્યો. ત્યારબાદ તે રાજા તે અમાત્યની સાથે રાજમહેલ તરફ રવાના થઈ ગયો. તે ચતુર અમાત્ય તે રાજાના મનોગત ભાવને બરાબર સમજી ગયો. તેણે રાજાને પૂછયા વિના જ તે જગ્યાએ એક વિશાળ તળાવ ખોદાવ્યું અને તેના કિનારે વિવિધ પ્રકારના અને વિવિધ ઋતુઓનાં ફલ-ફૂલથી સંપન્ન વૃક્ષો રોપાવી દીધાં. ત્યારબાદ ફરી કોઈ દિવસે તે રાજા તે અમાત્યની સાથે એજ રસ્તે થઈને ફરવા નીકળ્યો પેલી જગ્યાએ વૃક્ષોના ઝુંડોથી સુશોભિત તે જળાશયને જોઇને રાજાએ તે અમાત્યને પૂછયું-અરે! આ અતિશય રમણીય જળાશય અહીં કોણે બંધાવ્યું છે?

पृष्टवान्–मया कदा कारितम् ? इति नो स्मरामि। एवं नृपेणोक्तोऽमात्यः सर्वं वृत्तं कथितवान्। राजाऽपि सचिवस्य परचित्ताभिप्रायज्ञानशक्तिं विलोक्य तं प्रशस्य तज्जीविकां वर्द्धयामास। इत्थममात्येन पराभिप्रायो ज्ञातः।३।

एतेषां सर्वेषां भावोपक्रमाणां संसारफलत्वाद् अप्रशस्तत्वम्। नो आगमतः प्रशस्तो भावोपक्रमश्च गुर्वादीनाम्। श्रुतादिपरिज्ञानार्थं यद् गुर्वादीनां भावोप-

---

तब अमात्य ने कहा महाराज! आपने ही बनवाया है, तब राजा के मन में बडा आश्चर्य हुआ और उसने मंत्री से पूछा मैंने यह करवाया हैं ? इस बात की तो मुझे याद ही नहीं है। इस प्रकार राजा से कहे गये अमात्य ने सब यथा स्थितवृत्तान्त उनसे कह दिया! राजा ने सब मंत्री की परके चित्त के अभिप्राय को जानने की शक्ति देखकर उसकी बडी प्रशंसा की और उसके वेतनकी वृद्धि करदी और उनका पद बढा दिया इस प्रकार यह परचित के अभिप्राय को जाननेवाले अमात्य की कथा है। कि जिसमें इस प्रकार से अमात्य ने परचित्ताभिप्राय को जाना यह कहा गया हैं। इन सब भावोपक्रमणों में संसाररूप फल जनकता होने के कारण अप्रशस्तता है। (पसत्थे गुरुमाईणं) गुरु आदिकों के अभिप्राय को यथावत् जानना यह नोआगम को आश्रित करके प्रशस्त भावोपक्रम हैं। अर्थात् श्रुत आदिकों के परिज्ञान के

त्यारे अमात्ये जवाब आप्यो–"हे महाराजा आपे पोते ज आ जळाशय बंधाव्युं छे." त्यारे राजाना आश्चर्यनो पार न रह्यो. तेणे अमात्यने कहुं. "आ जळाशय शुं में बंधाव्युं छे ? आ जळाशय बंधाववानो कोई आदेश कर्यानुं मने याद नथी !" त्यारे अमात्ये आ प्रमाणे खुलासो कर्यो–"हे महाराजा ! घणा समय सुधी आ जग्याओ घोडाना मूत्रने विना सूकाये पडयुं रहेलुं जोईने आपे आ जग्याओ जळाशय बंधाववानो विचार करेलो. आपे मानेलुं के आ जग्याओ जळाशय खोदाववाथी तेमां पाणी कदी सूकाशे नहीं. आपना आ मनोगत विचारने–आप अश्वक्रीडा करीने पाछा फरती वखते जे दृष्टिथी ते अश्वमूत्रनी सामे निरखी रह्या हता–ते दृष्टि द्वारा जाणी जोईने में आ जळाशय अहीं बंधाव्युं छे." परना चित्तने समजवानी पोताना अमात्यनी ते शक्ति जोईने राजाने घणो हर्ष थयो तेणे तेनी खूब प्रशंसा करी अने तेनुं वेतन अने होद्दो वधारी दईने तेनी कदर करी. आ प्रकारनी अन्यना मनोगत भावोने जाणनार ते अमात्यनी कथा छे. आ त्रणे भावोपक्रमणुनां दृष्टान्तो छे. आ भावोपक्रमणुमां संसाररूप फलजनकतानो सद्भाव होवाथी तेमने अप्रशस्त कहेवामां आवेल छे.

(पसत्थे गुरुमाईणं) गुरु आदिनां अभिप्रायने यथार्थरूप जाणवा ते प्रशस्त भावोपक्रम छे. एटले के श्रुत आदिनुं परिज्ञान प्राप्त करवा इच्छता शिष्यादिकोने

क्रमणं स प्रशस्तभावोपक्रम इत्यर्थः। ननु अत्रानुयोगद्वारविचारः प्रकृतः, अनुयोगश्च व्याख्यानम्, एवं च यदेवानुयोगद्वारव्याख्यानोपयोगि तदेवात्र वक्तव्यम्। गुरुभावोपक्रमस्तु व्याख्यानानुपयोगित्वादवक्तव्य एवेति चेदुच्यते व्याख्यानं हि गुर्वायत्तं भवति। अतो व्याख्यानोपलब्धये शिष्याणां गुरेरभिप्रायज्ञानं परमावश्यकम्। गुर्वभिप्रायज्ञो हि तदनुकूलाचरणेन गुरुं प्रसादयति, प्रसादितो गुरुस्तस्मै सरहस्यं शास्त्रं प्ररूपयति। एवं गुरुभावोपक्रमोऽपि व्याख्यानस्याङ्गमेव, अतो गुरुभावोपक्रम उचित एव। उक्तं च—

"गुर्वायत्ता यस्माच्छास्त्रारम्भा भवन्ति सर्वेऽपि।
तस्माद् गुर्वाराधनपरेण हितकाङ्क्षिणा भाव्यम् ॥१॥

लिये जो शिष्यादिको गुरु आदि कों के भाव का यथावत् परिज्ञान होता है—वह प्रशस्त भावोपक्रम हैं।

शंका—यहां तो अनुयोगद्वारका विचार चल रहा है। अनुयोग का अर्थ व्याख्यान हैं। इसलिये जो अनुयोगद्वार के व्याख्यान करने में उपयोगी हो वही यहां कहना चाहिये। गुरु भावोपक्रम तो व्याख्यान में अनुपयोगी है। इसलिये उसे यहां नही कहना चाहिये।—

उत्तर—व्याख्यान गुरु के आधीन होता है। अतः उस व्याख्यान की प्राप्ति के लिये गुरु के अभिप्राय का ज्ञान करना शिष्यों को परम आवश्यक है। गुरु के अभिप्राय को जानने वाला शिष्य उनको अपने ऊपर अनुकूल आचरण से प्रसन्न करता हैं और प्रसादित हुए वे गुरुजन उसके लिये रहस्य युक्त शास्त्र की प्ररूपणा करते हैं। इस प्रकार गुरुके भावका शिष्य को यथावत् परिज्ञान होना यह भी व्याख्यान का अंग ही है। इसलिये उसका कथन यहां उचित ही है। कहा भी है (गुर्वायत्ता) इत्यादि। शास्त्रों का पढनादि-

---

ગુરુआदिकेना भावनुं જે यथार्थ परिज्ञान थाय छे, तेनुं नाम नो आगमनी अपेक्षाओ प्रशस्त भावोपक्रम छे.

शंका—अहीं तो अनुयोगद्वारनी प्ररूपणा चाली रही छे. अनुयोगनो अर्थ व्याख्यान थाय छे. तेथी अनुयोगद्वारनुं व्याख्यान करवामां उपयुक्त होय तेमनुं ज कथन अहीं थवुं जोइओ. गुरुभावोपक्रम तो व्याख्यानमां अनुपयोगी छे, तेथी अहीं तेनुं कथन थवुं जोइओ नहीं.

उत्तर—व्याख्यान गुरुने आधीन होय छे. तेथी ते व्याख्याननी प्राप्तिने माटे गुरुना अभिप्रायने जाणी लेवानुं ज्ञान शिष्योने माटे परम आवश्यक गणाय छे. गुरुना अभिप्रायने जाणनारो शिष्य तेमने अनुकूळ थइ पडे एवा पोताना आचरणथी तेमने खुश करे छे, अने तेना वर्तनथी संतुष्ट थयेला ते गुरु तेनी समक्ष रहस्ययुकत शास्त्रनी प्ररूपणा करे छे. आ रीते गुरुना भावनुं शिष्यने यथावत परिज्ञान थवुं ओ पण व्याख्यानना ओक अंगरूप ज छे. ते कारणे सूत्रकारनुं उपर्युकत कथन उचित ज छे. कहुं पण छे के-(गुर्वायत्ताइत्यादि) शास्त्रोनुं पठन

अन्यच्च—"जुत्तं गुरुमणगहणं नाऊण तयं जहट्ठियं तत्तो ।
जह होइ सुप्पसन्नं, तह जइयव्वं गुणत्थीहिं" ॥१॥
छाया—युक्तं गुरुमनोग्रहणं, ज्ञात्वा तदा यथास्थितं ततः ।
यथा भवति सुप्रसन्नं, तथा यतितव्यं गुणार्थिभिः ॥१॥
पुनः
"गुरुचितायत्ताइं, वक्खाणंगाइ जेण सव्वाइं ।
तेण सह सुप्पसन्नं, होइ तयं तं सहा कुज्जा" ॥२॥
छाया—गुरुचितायत्तानि, व्याख्यानाङ्गानि येन सर्वाणि ।
तेन यथा सुप्रसन्नं, भवति तदा तत् तथा कुर्यात् ॥२॥

रूप समस्त अध्ययन गुरु महाराज के समीप में ही होता है इसलिये समस्त शास्त्रारम्भ गुरुमहाराज के आधीन है। अतः अपने हित की अभिलाषा रखने वाले शिष्य का कर्तव्य है कि वह गुरु महाराज की आराधना करने में तत्पर रहे।

१॥—और भी गुरुमहाराज के मनका—अभिप्राय—शिष्य को जानना उचित है। तब ही वह उनसे यथार्थ में शास्त्र का रहस्य ज्ञात कर सकता है। इसलिये गुणार्थी—विनीत शिष्य को चाहिये कि जिस प्रकार से गुरु महाराज सुप्रसन्न रहें ऐसा यत्न उसे करते रहना चाहिये।

२॥—फिर भी कहा है 'गुरु चित्ताइं इत्यादि। व्याख्यान के समस्त अंग गुरु महाराज के चित्ताधीन रहा करते हैं। इसलिये जिस प्रकार से वे सुप्रसन्न रहें वैसा सब काम शिष्य को अवश्य कर्तव्य है। ३॥—और भी

આદિરૂપ સમસ્ત અધ્યયન ગુરૂ મહારાજની સમીપે જ થાય છે, તેથી સમસ્ત શાસ્ત્રારંભ ગુરૂને આધીન છે. તેથી પોતાના હિતની ખેવના રાખનાર શિષ્યનું એ કર્તવ્ય થઈ પડે છે કે તેણે ગુરૂમહારાજની આરાધના કરવાના કાર્યમાં તત્પર રહેવું જોઈએ.

(૧) ગુરૂમહારાજના મનોભાવને (અભિપ્રાયને) જાણી લેવો તે શિષ્યને માટે અતિ આવશ્યક છે. ત્યારબાદ જ તે તેમની પાસેથી શાસ્ત્રના યથાર્થ રહસ્યને જાણી શકે છે. તેથી જે પ્રકારે ગુરૂ રાજી રહે એ પ્રકારનો પ્રયત્ન ગુણાર્થી વિનીત શિષ્યે કરવો જોઈએ.

(૨) કહ્યું છે કે-"गुरुचित्ताइं" ઈત્યાદિ-વ્યાખ્યાનના સમસ્ત અંગો ગુરૂ મહારાજના ચિત્તાધીન રહે છે. તેથી જે પ્રકારે તેઓ પ્રસન્ન રહે તે પ્રકારના કામો શિષ્યોએ અવશ્ય કરવા જોઈએ.

पुनः

"आगारिंगियकुसलं, जइ सेयं वायसं वए पुज्जा ।
तहवि य से नवि कूडे, विरहम्मि य कारणं पुच्छे" ॥३॥

छाया—आकारेङ्गितकुशलं (शिष्यं) यदि श्वेतं वायसं वदेयुः पूज्याः
तथाऽपि च तेषां (वचनं) नापि कूटयेत्, विरहे च कारणं पृच्छेत्॥३॥

तेषां पूज्यानां वचनं नापि कूटयेत्=असत्यं न कुर्यात्, तथेति कुर्यादित्यर्थः विरहे=विजने एकान्ते इत्यर्थः, कारणं=श्वेतवायसकथनप्रयोजनं पृच्छेत् शेषं सुगमम्॥

स एष नोआगमतो भावोपक्रमः । स एष भावोपक्रमः । स एष उपक्रमः ॥सू० ७०॥

'गुरुमाइणं' इत्यत्रादिशब्देन सूचितं शास्त्रभावोपक्रमं निरूपयितुमाह—

मूलम्—अहवा–उवक्कमे छव्विहे पण्णत्ते, तंजहा–आणुपुव्वी१, नामं२, पणामं३ वत्तव्वया४ अत्थाहिगारे५ समोयारे६ ॥सू० ७१॥

कहा है 'आगारिंगियकुसलं, इत्यादि आकार और इंगित (अभिप्राय) के जानने में कुशल शिष्य यदि पूज्य गुरुमहाराज काले कौवे को यदि सफेद कौवा भी कह दें, तो भी गुरुजन के वचन को उसे विना किसी तर्क के स्वीकार कर लेना चाहिये। बाद में एकान्त में काले कौवे को सफेद कहने के प्रयोजन—का कारण पूछना चाहिये । (से तं नोआगमओ भावोवक्कमे—से तं भावोवक्कमे—से तं उवक्कमे) वह यह नोआगमको आश्रित करके भावोपक्रम है। इसतरह आगम और नोआगमको आश्रित करके भावोपक्रम का यहां तक स्वरूप वर्णन किया । इस स्वरूप से उपक्रम का स्वरूप ज्ञात हो जाता है ।सूत्र७०।

---

(૩) કહ્યું પણ છે કે "आगारिंगियकुसलं" ઇત્યાદિ—આકાર અને ઇંગિતને જાણવામાં નિપુણ એવો શિષ્ય ગુરૂનાં વચનોને તર્ક અથવા દલીલ કર્યા વિના સ્વીકારી લે છે. ધારો કે ગુરૂ કહે કે "કાગડાનો વર્ણ ધોળો હોય છે," તો તેમના તે કથનને પણ તે શિષ્ય દલીલ કર્યા વિના સ્વીકારી લે છે. ત્યારબાદ એકાન્તમાં તેણે ગુરૂને પૂછવું જોઈએ કે "આપ કાગડાનો વર્ણ ધોળો કહો છો તેનું કારણ કૃપા કરીને સમજાવો."

(से तं नोआगमओ भावोवक्कमे) આ નોઆગમને આશ્રિત કરીને ભાવોપક્રમનું સ્વરૂપ સમજવું. (से तं भावोवक्कमे) આગમ ભાવોપક્રમ અને નોઆગમ ભાવોપક્રમરૂપ ભાવોપક્રમના બન્ને ભેદોનું નિરૂપણ અહીં સમાપ્ત થાય છે. (से तं उवक्कमे) આ રીતે ઉપક્રમના સમસ્ત ભેદોનું વર્ણન અહીં સમાપ્ત થાય છે. ॥સૂ૦ ૭૦॥

छाया--अथवा-उपक्रमः षड्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—आनुपूर्वी१. नाम२, प्रमाणं३, वक्तव्यता४, अर्थाधिकारः५ समवतारः ६ ॥सू० ७१॥

टीका—अहवा इत्यादि—

पूर्वं गुरुभावोपक्रमः प्रदर्शितः संप्रति शास्त्रभावोक्रमः प्ररूप्यते-'अथवे' -ति, अथवा-अनन्तरं=गुरुभावोपक्रमवर्णनानन्तरम् उपक्रमः-शास्त्रभावोपक्रमः षड्विधः प्रज्ञप्तः। 'तं जहा' इत्यादि, तद्यथा-यथा तस्य भावोपक्रमस्य षड्विधत्वं तदुच्यते 'आणुपुव्वी' इत्यादिना। तत्र प्रथम उपक्रम आनुपूर्वी१, द्वितीयो नाम २, तृतीयः प्रमाणम्३, चतुर्थो वक्तव्यता४, पञ्चमः-अर्थाधिकारः६, षष्ठः समवतारः ६ इति। ॥सू० ७१॥

अब सूत्रकार "गुरुमाईणं" इस पद में आदि पद से सूचित शास्त्रभावोपक्रम का निरूपण करने के लिये "अहवा" इत्यादि सूत्र कहते हैं: —

"अहवा उवक्कमे छव्विहे" इत्यादि। ॥सूत्र ७१॥

शब्दार्थ- -(अहवा) अथवा (उवक्कमे) उपक्रम (छव्विहे) छह प्रकार का (पण्णत्ते) कहा गया है। (तंजहा) वे प्रकार ये हैं-(आणुपुव्वी १, नामं २, पणामं ३, वत्तव्वया ४, अत्थाहिगारे ५, समोयारे ६,) आनुपूर्वी १, नाम २, प्रमाण ३, वक्तव्यता ४, अर्थाधिकार ५, और समवतार ६, पहिले गुरुभावोपक्रम का कथन सूत्रकारने करदिया है। अब वे आदिपद से सूचित शास्त्र भावोपक्रम का निरूपण करते हैं—यहां उपक्रम पद से शास्त्रभावोपक्रम लिया गया है। अतःशास्त्रोक्त भावोपक्रम पूर्वोक्तरूप से ६ प्रकार का है ऐसा सूत्र का संक्षिप्तार्थ है। ॥सूत्र ७१॥

હવે સૂત્રકાર "गुरुमाईणं" આ પદમાં આદિ પદથી સૂચિત શાસ્ત્રભાવોપક્રમનું નિરૂપણ કરવાને માટે "अहवा" ઇત્યાદિ સૂત્રોનું કથન કરે છે—

"अहवा उवक्कमे छव्विहे"—ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(अहवा) અથવા (उवक्कमे छव्विहे पण्णत्ते) ઉપક્રમ છ પ્રકારનો કહ્યો છે. (तंजहा) તે છ પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે-(आनुपुव्वी, नामं, पणामं, वत्तव्वया, अत्थाहिगारे, समोयारे) (૧) આનુપૂર્વી, (૨) નામ, (૩) પ્રમાણ, (૪) વક્તવ્યતા (૫) અર્થાધિકાર અને ૬ સમવતાર.

પહેલાં ગુરૂભાવોપક્રમનું પ્રતિપાદન સૂત્રકારે કરી લીધું. હવે તેઓ આદિપદથી સૂચિત શાસ્ત્રભાવોપક્રમનું નિરૂપણ કરે છે- આ વાત "अहवा" અથવા પદથી સૂચિત થાય છે. અહીં ઉપક્રમ પદથી શાસ્ત્રભાવોપક્રમ ગૃહીત થયો છે. તેથી શાસ્ત્રોક્તભાવોપક્રમ પૂર્વોક્તરૂપે છ પ્રકારનો હોય છે, એવો આ સૂત્રનો સંક્ષિપ્તાર્થ છે. ।સૂ.૭૧।

अथानुपूर्व्यादीनां स्वरूपं निरूपयितुमाह,

मूलम्—से किं तं आणुपुव्वी१, आणुपुव्वी दसविहा, पण्णत्ता, तंजहा नामाणुपुव्वी१, ठवणाणुपुव्वी२, दव्वाणुपुव्वी३, खेत्ताणुपुव्वी४, कालाणुपुव्वी५, उक्कित्तणाणुपुव्वी६, गणणाणुपुव्वी७, संठाणाणुपुव्वी८, सामायारीआणुपुव्वी९, भावाणुपुव्वी१० ॥सू० ७२॥

छाया—अथ काऽसौ आनुपूर्वी ? आनुपूर्वी दशविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—नामानुपूर्वी१, स्थापनानुपूर्वी२, द्रव्यानुपूर्वी ३, क्षेत्रानुपूर्वी ४, कालानुपूर्वी५, उत्कीर्त्तनानुपूर्वी६, गणनानुपूर्वी७, संस्थानानुपूर्वी८, सामाचार्यानुपूर्वी९, भावानुपूर्वी १० ॥सू० ७२॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—'से किं तं' इत्यादि। अथ कोऽसौ आनुपूर्वी ? इति। उत्तरमाह—आनुपूर्वी—इह हि पूर्वं प्रथमम् आदिः इति पर्यायाः। पूर्वस्य—अनु=

अब सूत्रकार आनुपूर्वी आदि को के स्वरूप का कथन प्रारंभ करते हैं:—इस में सब से प्रथम वे आनुपूर्वी कितने प्रकार की है यह स्पष्ट करते हैं—"से किं तं" इत्यादि। ॥सूत्र ७२॥

शब्दार्थ—(से किं तं आणुपुव्वी) हे भदन्त! पूर्व प्रक्रान्त आनुपूर्वी क्या है—(आणुपुव्वी दसविहा पण्णत्ता) उत्तर—आनुपूर्वी दस प्रकार की कही गई है। (तं जहा) जो इस प्रकार से है—(णामाणुपुव्वी) एक नामानुपूर्वी (ठवणाणुपुव्वी) दूसरी स्थापनानुपूर्वी (दव्वाणुपुव्वी) तीसरी द्रव्यानुपूर्वी (खेत्ताणुपुव्वी) चौथी क्षेत्रानुपूर्वी (कालाणुपुव्वी) पांचवी कालानुपूर्वी (उक्कित्तणाणुपुव्वी) छठी उत्कीर्तनानुपुर्वी (गणणाणुपुव्वी) सातवीं गणनानुपूर्वी (संठाणाणुपुव्वी) आठवी—संस्थानानुपूर्वी (सामायारीआ०) नववीं समाचार्यानुपूर्वी (भावाणुपुव्वी) और दशमी भावानुपूर्वी। पूर्व, प्रथम और आदि ये सब पर्याय

હવે સૂત્રકાર આનુપૂર્વી આદિકોના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરવાનો પ્રારંભ કરે છે. તેમાં સૌથી પહેલાં તો એ વાત પ્રકટ કરે છે કે આનુપૂર્વી કેટલા પ્રકારની છે?

"से किं तं आणुपुव्वी" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(से किं तं आणुपुव्वी) શિષ્ય ગુરૂને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે હે હે ભગવન્! પૂર્વપ્રકાન્ત (પૂર્વ પ્રસ્તુત) આનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર—आणुपुव्वी दसविहा पण्णत्ता—तंजहा) આનુપૂર્વીના નીચે પ્રમાણે દશ પ્રકાર કહ્યા છે—

(णामाणुपुव्वी (૧) નામાનુપૂર્વી, (ठवणाणुपुव्वी) (૨) સ્થાપનાનુપૂર્વી, (दव्वाणुपुव्वी) (૩) દ્રવ્યાનુપૂર્વી, (खेत्ताणुपुव्वी) (૪) ક્ષેત્રાનુપૂર્વી, (कालाणुपुव्वी (૫)

पश्चात्–अनुपूर्वे, तस्य भावः आनुपूर्वी–त्र्यादिवस्तु संहतिः, आनुपूर्वी–अनुक्रमः परिपाटीत्येते शब्दाः समानार्थकाः। त्र्यादिवस्तु संहतिरूपा एषाऽऽनुपूर्वी नामानुपूर्व्यादिभेदैर्दशविधा विज्ञेयेति ॥सू० ७२॥

सम्प्रति नामाद्यानुपूर्वी निरूपयितुमाह—

मूलम्—नाम ठवणाओ गयाओ।

से किं तं दव्वाणुपुव्वी? दव्वाणुपुव्वी दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–आगमओ य नोआगमओ य।

से किं तं आगमओ दव्वाणुपुव्वी जस्स णं आणुपुव्वित्ति पयं सिक्खियं ठियं जियं मियं परिजियं जाव नो अणुप्पेहाए, कम्हा? अणुवओगो दव्वमिति कट्टु। णेगमस्स णं एगो अणुवउत्तो आगमओ एगा दव्वाणुपुव्वी जाव कम्हा? जइ जाणए अणुवउत्ते न भवइ जइ अणुवउत्ते जाणए न भवइ तम्हा णत्थि आगमओ दव्वाणुपुव्वी। से तं आगमओ दव्वाणुपुव्वी।

वाची शब्द हैं। पूर्वस्य अनु अनुपूर्व–पूर्व के पीछे ऐसा अनुपूर्व शब्द का अर्थ होता है। अनुपूर्व का जो भाव है वह आनुपूर्वी है। अर्थात् तीन आदि वस्तुओं का जो समुदाय हैं वह आनुपूर्वी है। आनुपूर्वी अनुक्रम, परिपाटी ये सब आनुपूर्वी के पर्यायवाची शब्द हैं। तीन आदि वस्तुओं की संहति रूप यह आनुपूर्वी पूर्वोक्त प्रकार से दश भेदवाली है ऐसा जानना चाहिये। ॥सूत्र७२॥

કાલાનુપૂર્વી, (उक्कित्तणाणुपुव्वी) (૬) ઉત્કીર્તનાનુપૂર્વી, (गणणाणुपुव्वी) (૭) ગણનાનુપૂર્વી, (संठाणाणुपुव्वी) (૮) સંસ્થાનાનુપૂર્વી (सामायारी आणुपुव्वी) (૯) સમાચાર્યાનુપૂર્વી અને (भावाणुपुव्वी) (૧૦) ભાવાનુપૂર્વી.

પૂર્વ, પ્રથમ અને આદિ આ ત્રણે પર્યાયવાચી શબ્દો છે. "पूर्वस्य अनु अनुपूर्व" "પૂર્વ (પ્રથમ)ની પાછળ", એવો અનુપૂર્વ શબ્દનો અર્થ થાય છે. આ અનુપૂર્વનો જે ભાવ છે તેનું નામ અનુપૂર્વી છે. એટલે કે આદિ વસ્તુઓનો જે સમુદાય છે તેનું નામ આનુપૂર્વી છે. આનુપૂર્વી, અનુક્રમ અને પરિપાટી, આ ત્રણે આનુપૂર્વીના પર્યાયવાચી શબ્દો છે. ત્રણ આદિ વસ્તુઓના સમૂહરૂપ આ આનુપૂર્વી પૂર્વોક્ત દસ ભેદવાળી કહી છે, એમ સમજવું. ॥સૂ. ૭૨॥

से किं तं नो आगमओ दव्वाणुपुव्वी ? नो आगमओ दव्वाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—जाणयसरीरदव्वाणुपुव्वी, भवियसरीरदव्वाणुपुव्वी, जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वाणुपुव्वी। से किं तं जाणयसरीरदव्वाणुपुव्वी ? जाणयसरीरदव्वाणुपुव्वी आणुपुव्वी पयत्थाहिगारजाणयस्स जं सरीरयं ववगयचुयचाविय चत्तदेहं सेसं जहा दव्वावस्सए जाव से तं जाणयसरीरदव्वाणुपुव्वी। से किं तं भवियसरीरदव्वानुपूव्वी ? भवियसरीरदव्वाणुपुव्वी जे जीवे जोणीजम्मणणिक्खंते सेसं जहा दव्वावस्सए जाव से तं भवियसरीरदव्वाणुपूव्वी।

से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वाणुपुव्वी ? जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वाणुपुव्वी दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—ओवणिहिया य अणोवणिहिया य। तत्थ णं जा सा ओवणिहिया सा ठप्पा। तत्थ णं जा सा अणोवणिहिया सा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—नेगमववहाराणं, संगहस्स य ॥सू० ७३॥

छाया—नामस्थापने गते।

अथ काऽसौ द्रव्यानुपूर्वी ? द्रव्यानुपूर्वी द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-आगमतश्च नोआगमतश्च।

अब सूत्रकार नामानुपूर्वी का निरूपण करते हैं—

"नाम ठवणाओ गयाओ" इत्यादि। ॥सूत्र ७२॥

शब्दार्थ—(नामठवणाओ गयाओ) नामानुपूर्वी और स्थापनानुपूर्वी का स्वरूप नामावश्यक और स्थापनावश्यक के जैसा जानना चाहिये। (से किं

હવે સૂત્રકાર નામાનુપૂર્વી નિરૂપણ કરે છે—

"नामठवणाओ गयाओ" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(नामठवणाओ गयाओ) નામાનુપૂર્વી અને સ્થાપનાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ નામાવશ્યક અને સ્થાપના આવશ્યકના પૂર્વોક્ત સ્વરૂપ અનુસાર જ સમજવું. (से किं तं दव्वाणुपुव्वी ?) હે ભગવન ! દ્રવ્યાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

अथ काऽसौ आगमतो द्रव्यानुपूर्वी? आगमतो द्रव्यानुपूर्वी यस्य खलु आनुपूर्वीति पदं शिक्षितं स्थितं जितं मितं परिजितं यावद् नोअनुप्रेक्षया, कस्मात्? अनुपयोगो द्रव्यमिति कृत्वा। नैगमस्य खलु एकोऽनुपयुक्तः आगमत एका द्रव्यानुपूर्वी यावत्, कस्मात्? यदि ज्ञायकः अनुपयुक्तो न भवति, यदि अनुपयुक्तो ज्ञायको न भवति, तस्माद् नास्ति आगमतो द्रव्यानुपूर्वी। सैषा आगमतो द्रव्यानुपूर्वी।

अथ काऽसौ नोआगमतो द्रव्यानुपूर्वी? नोआगमतो द्रव्यानुपूर्वी त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा–ज्ञायकशरीरद्रव्यानुपूर्वी, भव्यशरीरद्रव्यानुपूर्वी, ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्ता द्रव्यानुपूर्वी। अथ काऽसौ ज्ञायकशरीरद्रव्यानुपूर्वी? ज्ञायकशरीरद्रव्यानुपूर्वी–आनुपूर्वीपदार्थाधिकारज्ञायकस्य यत् शरीरकं व्यपगतच्युतच्यावितत्यक्तदेहं शेषं यथा द्रव्यावश्यके तथा भणितव्यम्, यावत् सैषा ज्ञायकशरीरद्रव्यानुपूर्वी।

अथ का सा भव्यशरीरद्रव्यानुपूर्वी? भव्यशरीरद्रव्यानुपूर्वी–यो जीवो योनिजन्मनिष्क्रान्तः शेषं यथा द्रव्यावश्यके० यावत् सैषा भव्यशरीरद्रव्यानुपूर्वी। अथ काऽसौ ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्ता, द्रव्यानुपूर्वी? ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्ता, द्रव्यानुपूर्वी द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा–औपनिधिकी च अनौपनिधिकी च। तत्र खलु या सा औपनिधिकी सा स्थाप्या। तत्र खलु या सा अनौपनिधिकी सा द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा–नैगमव्यवहारयोः, संग्रहस्य च ॥सू० ७३॥

टीका—'नाम ठवणाओ' इत्यादि–

नामस्थापने=नामानुपूर्वी-स्थापनानुपूर्व्यौ गते=गत=गतप्राये उक्तप्राये इत्यर्थः। अयं भावः–नामानुपूर्वी स्थापनानुपूर्वी चैतद्वयं नामावश्यकवत् स्थापनावश्यकवद् विज्ञेयमिति।

अथ द्रव्यानुपूर्वी निरूपयितुमाह–'से किं तं' इत्यादि।

अथ काऽसौ द्रव्यानुपूर्वी? इति शिष्यप्रश्नः। उत्तरमाह–'दव्वाणुपुव्वी' इत्यादि। द्रव्यानुपूर्वी द्विविधा प्रज्ञप्ता। तद् यथा–आगमतश्च, नोआगमतश्च।

तं दव्वाणुपुव्वी) हे भदन्त! द्रव्यानुपूर्वी का क्या स्वरूप है? (दव्वाणुपुव्वी दुविहा पण्णत्ता) उत्तर–द्रव्यानुपूर्वी दो प्रकार की कही गई है (तंजहा) वे प्रकार ये हैं (आगमओय नोआगमओय) एक आगम से

उत्तर–(दव्वाणुपुव्वी दुविहा पण्णत्ता-तंजहा) द्रव्यानुपूर्वीना नीचे प्रमाणे बे प्रकार कह्या छे. (आगमओ य नोआगमओ य) (१) आगमनी अपेक्षाओ अने (२) नोआगमनी अपेक्षाओ आगमनो आश्रित करीने जे द्रव्यानुपूर्वी

तत्र-आगमतो द्रव्यानुपूर्वी यस्य साधोः खलु आनुपूर्वीति पदं शिक्षितं स्थितं जितं मितं परिजितं यावत्-इह यावच्छब्दात्-नामसमं घोषसमम् अहीनाक्षरम् अत्यक्षरम् अव्याविद्धाक्षरम् अस्खलितम् अमिलितम् अव्यत्याम्रेडितं प्रतिपूर्णं प्रति-

और दूसरी नोआगम से। आगम को आश्रित करके जो द्रव्य आनुपूर्वी होती है वह आगम द्रव्यानुपूर्वी है। (से किं तं आगमओ दव्वाणुपुव्वी) हे भदन्त। आगम को आश्रित करके जो द्रव्यानुपूर्वी होती है? उसका क्या स्वरूप है? (आगमओ दव्वाणुपुव्वी) आगम को आश्रित करके जो द्रव्यानुपूर्वी होती है उसका स्वरूप इस प्रकार से है-(जस्स णं आणुपुव्वित्ति पयं सिक्खियं) जिस साधु आदिने आनुपूर्वी इस पद वाच्य अर्थ को विनयपूर्वक गुरुमुख से सीख लिया है (ठियं) उसे अच्छी तरह से अपने स्मृति पथ में उतार लिया है (जियं) शब्द और अर्थ की अपेक्षा से जिसने उसे भलि भांति जान लिया है (मियं) उसके पदादिकों की संख्या का परिमाण जिसने भली प्रकार से अभ्यास कर लिया है। (परिजियं) जिसने उसे सब तरफ से और सब प्रकार से परावर्तित करलिया है। वह आगम को आश्रित करके द्रव्यानुपूर्वी है। यहां यावत् शब्द से "नामसम, घोषसम अहीनाक्षर अत्यक्षर अव्याविद्धाक्षर, अस्खलित, अमिलित, अव्यत्याम्रेडित, प्रतिपूर्ण प्रतिपूर्णघोष

થાય છે તેનું નામ આગમદ્રવ્યાનુપૂર્વી છે અને નો આગમને આશ્રિત કરીને જે આનુપૂર્વી થાય છે તેનું નામ નોઆગમદ્રવ્યાનુપૂર્વી છે. (से किं तं आगमओ दव्वाणुपुव्वी)? હે ભગવન્! આગમનો આશ્રિત કરીને જે અનુપૂર્વી છે તેનું સ્વરૂપ કેવું છે?

(आगमओ दव्वाणुपुव्वी) આગમને આશ્રિત કરીને જે દ્રવ્યાનુપૂર્વી થાય છે તેનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે-

(जस्स णं आणुपुव्वीति पयं सिक्खियं) જે સાધુ આદિએ "આનુપૂર્વી" આ પદના વાચ્યાર્થને વિનયપૂર્વક ગુરૂને મુખેથી સારી રીતે શીખી લીધો છે, (ठियं) તેને સારી રીતે પોતાના સ્મૃતિપટલ પર ઉતારી લીધો છે, (जियं) શબ્દ અને અર્થની અપેક્ષાએ જેણે તેને સારી રીતે જાણી લીધેલ છે, (मियं) તેના પદાદિકોની સંખ્યાનું પરિણામ જેણે સારી રીતે સમજી લીધું છે, (परिजियं) જેણે તેને બધી તરફથી અને બધા પ્રકારે પરાવર્તિત કરી લીધું છે, તે આગમનો આશ્રિત કરીને દ્રવ્યાનુપૂર્વી છે. અહીં 'यावत्' પદથી "नामसम, घोषसम, अहीनाक्षर, अत्यक्षर, अव्याविद्धाक्षर, अस्खलित,

पूर्णघोषं कण्ठोष्ठविप्रमुक्तं गुरुवाचनोपगतं भवति। स खलु तत्र-आनुपूर्वीतिपदे वाचनया प्रच्छनया परिवर्त्तनया धर्मकथया च वर्त्तमानो भवति, न तु अनुप्रेक्षया वर्तमानो भवति। एवंविधः स साधुरागमतो द्रव्यानुपूर्वी पदेऽनुप्रेक्षयाऽवर्तमानः साधुः आगमतो द्रव्यानुपूर्वी कथं भवतीत्याह-'कम्हा' इत्यादिना-कस्मात्

कंठोष्ठविप्रमुक्तः गुरुवाचनोपगतः" इन पदों का संग्रह किया गया है। इन पदों का अर्थ १४ वें सूत्र में स्पष्ट कर दिया है। ऐसा वह व्यक्ति "आनुपूर्वी" इस पद में वाचना पृच्छना, परिवर्त्तना और धर्मकथा इन से वर्तमान माना जाता है। परन्तु अनुप्रेक्षा से वर्तमान-नहीं माना जाता है। इस प्रकार का वह साधु व्यक्ति आगम से द्रव्यानुपूर्वी जानना चाहिये।

शंका-(कम्हा) आनुपूर्वी पद में अनुप्रेक्षा से अवर्तमान साधु आगम से द्रव्यानुपूर्वी कैसे माना जाता है?

उत्तर-"अनुपयोगो द्रव्यमिति कृत्वा" अनुपयोग-जीव जिसके द्वारा वस्तु का परिच्छेद करता है उसका नाम उपयोग है। इस उपयोगका अभाव अनुपयोग है। इस से युक्त होने के कारण आनुपूर्वी का वह ज्ञाता आगम से द्रव्यानुपूर्वी माना जाता है। ऐसा शास्त्र का वचन है। तात्पर्य कहने का यह है कि जिस साधुने आनुपूर्वी को

અમિલિત, અવ્યત્યામ્રેડિત, પ્રતિપૂર્ણ, પ્રતિપૂર્ણઘોષ, કંઠોષ્ઠવિપ્રમુક્ત. ગુરુવાચનોપગત" આ પદોને ગૃહણ કરવામાં આવ્યાં છે. તે પદોનો અર્થ ૧૪માં સૂત્રમાં સ્પષ્ટ કરવામાં આવ્યો છે. આ બધાં વિશેષણોથી યુક્ત સાધુ આદિને 'આનુપૂર્વી' આ પદમાં વાચના, પૃચ્છના, પરિવર્ત્તના અને ધર્મકથા દ્વારા વર્તમાન માનવામાં આવે છે, પરન્તુ અનુપ્રેક્ષા દ્વારા વર્તમાન માનતો નથી. આ પ્રકારના તે સાધુને આગમની અપેક્ષાએ દ્રવ્યાનુપૂર્વી સમજવો.

શંકા-(કમ્હા) આનુપૂર્વી પદમાં અનુપ્રેક્ષા દ્વારા અવર્તમાન સાધુ આગમની અપેક્ષાએ દ્રવ્યાનુપૂર્વી કેવી રીતે મનાય છે?

ઉત્તર-"અનુપયોગો દ્રવ્યમિતિ કૃત્વા" જીવ જેના દ્વારા વસ્તુનો પરિચ્છેદ (બોધ) કરે છે તેનું નામ ઉપયોગ છે. તે ઉપયોગના અભાવનું નામ અનુપયોગ છે. આ અનુપયોગથી યુક્ત હોવાને કારણે અનુપૂર્વીનો તે જ્ઞાતા આગમની અપેક્ષાએ દ્રવ્યાનુપૂર્વી મનાય છે, એવું શાસ્ત્રનું વચન છે. આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે-જે સાધુએ આનુપૂર્વીને સારી રીતે જાણી લીધી છે-શીખી લીધી છે-એટલે કે તે તેનો પરિપૂર્ણરૂપે જ્ઞાતા થઈ ગયો છે, તે

अनुप्रेक्षया वर्तमानः साधुरागमतो द्रव्यानुपूर्वी भवति? उत्तरयति-अणुवओगो दव्वमितिकट्टु' अनुपयोगो द्रव्यमिति कृत्वा। अनुपयोगो हि द्रव्यं भवति, अतोऽनुप्रेक्षयाऽवर्तमानः साधुरागमतो द्रव्यानुपूर्वी भवति।

नैगमादि भेदेन द्रव्यानुपूर्वी भेदास्त्वेवं विज्ञेयाः—नैगमस्य खलु एकोऽनुपयुक्त आगमत एका द्रव्यानुपूर्वी, यावत् यावच्छब्दात् द्वावनुपयुक्तौ आगमतो द्वे आनुपूर्व्यौ। त्रयोऽनुपयुक्ता आगमतस्तिस्रो द्रव्यानुपूर्व्यः। एवमेव व्यवहारस्यापि।

सम्यक् प्रकार से जान लिया है-सीख लिया है-वह उसका पूर्णरूप से ज्ञाता बन चुका है, अतः वह साधु उस आनुपूर्वी में वाचना पृच्छना आदि से वर्तमान होने पर भी उसमें उपयोग से रहित होने के कारण वह आगम से द्रव्यानुपूर्वी कहलाता है। (णेगमस्स णं एगो अणुवउत्तो आगमओ एगा दव्वाणुपुव्वी, जाव कम्हा? जइ जाणए अणुवउत्ते न भवइ, जइ अणुवउत्ते जाणए न भवइ, तम्हा णत्थि आगमओ दव्वाणुपुव्वी से त्तं आगमओ दव्वाणुपुव्वी)

अब सूत्रकार नैगमनय आदि के भेद से द्रव्यानुपूर्वी के भेदों को कहते है-इन में नैगमनय की दृष्टि से एक अनुपयुक्त आत्मा-साधु आगम से एक द्रव्यानुपूर्वी है। यहां यावत् शब्द से ऐसा जानना चाहिये-कि दो अनुपयुक्त साधु आगम से दो द्रव्यानुपूर्वी हैं। तीन अनुपयुक्त साधु, आगम से तीन द्रव्यापूर्वी हैं। इस प्रकार जितने अनुपयुक्त साधु हैं आगम से उतनी ही द्रव्यानुपूर्वीयां हैं। इसी प्रकार से व्यवहारनय की दृष्टि से द्रव्यानुपूर्वी में एकत्व अनेकत्व का कथन

સાધુ આનુપૂર્વીમાં વાચના, પૃચ્છના, આદિ વડે વર્તમાન હોવા છતાં પણ તેમાં ઉપયોગથી રહિત હોવાને કારણે આગમની અપેક્ષાએ દ્રવ્યાનુપૂર્વી કહેવાય છે.

(णेगमस्स णं एगो अणुवउत्तो आगमओ एगा दव्वाणुपुव्वी जाव कम्हा? जइ जाणए अनुवउत्ते न भवइ, जइ अनुवउत्ते जाणए न भवइ, तम्हा णत्थि आगमओ दव्वानुपुव्वी-से त्तं आगमओ दव्वानुपुव्वी)

હવે સૂત્રકાર નૈગમનય આદિના ભેદથી દ્રવ્યાનુપૂર્વીના ભેદોનું કથન કરે છે-નૈગમ નયની દૃષ્ટિએ એક અનુપયુક્ત આત્મા (સાધુ) આગમની અપેક્ષાએ એક દ્રવ્યાનુપૂર્વી છે. અહીં "यावत्" પદથી નીચેનો પૂર્વોક્ત સૂત્રપાઠ ગ્રહણ કરવો.

નૈગમનયની દૃષ્ટિએ બે અનુપયુક્ત સાધુ આગમની અપેક્ષાએ બે દ્રવ્યાનુપૂર્વી છે, ત્રણ અનુપયુક્ત સાધુ આગમની અપેક્ષાએ ત્રણ દ્રવ્યાનુપૂર્વી છે. એજ પ્રમાણે જેટલા અનુપયુક્ત સાધુ છે એટલાં જ આગમની અપેક્ષાએ દ્રવ્યાનુપૂર્વી છે. એજ પ્રમાણે વ્યવહારનયની અપેક્ષાએ પણ દ્રવ્યાનુપૂર્વીમાં

संग्रहस्य खलु एकोऽनुपयुक्तः, अनेकेवाऽनुपयुक्ता आगमतो द्रव्यानुपूर्वी द्रव्यानुपूर्व्यौ वा एकैव द्रव्यानुपूर्वी बोध्या। ऋजुसूत्रस्य एकोऽनुपयुक्त आगमतः एका द्रव्यानुपूर्वी, पृथक्त्वं नेच्छति। त्रयाणां शब्दनयानां ज्ञायकोऽनुपयुक्तोऽवस्तु, कस्मात्? यदि ज्ञायकः, अनुपयुक्तो न भवति, यदि अनुपयुक्तः, ज्ञायको न भवति तस्माद् नास्ति तन्मते आगमतो द्रव्यानुपूर्वी। अत्रोक्तानां शिक्षितादि पदानां व्याख्या पूर्ववद् बोध्या। एतदुपसंहरन्नाह-सैषाऽऽगमतो द्रव्यानुपूर्वीति।

जानना चाहिये संग्रहनय की ऐसी मान्यता है कि एक द्रव्यानुपूर्वी है। नैगम और व्यवहार नय की मान्यता के अनुसार द्रव्यानुपूर्वी जो एक और अनेकरूप है-सो यह नय ऐसा कथन करता है कि सामान्यतत्व के आधार पर समस्त द्रव्यानुपूर्वियां एक ही हैं-भिन्न २ अनेक नहीं। ऋजुसूत्रनय की मान्यतानुसार वर्तमान क्षण में एक अनुपयुक्त साधु आगम की अपेक्षा एक आनुपूर्वी है। यह नय आनुपूर्वी में भिन्नता-अनेकता नहीं मानता है। तीन शब्दनय की मान्यतानुसार-ज्ञायक होकर भी जो अनुपयुक्त होता है वह अवस्तु स्वरूप है। क्यों कि जो ज्ञायक होगा वह अनुपयुक्त नहीं होगा, जो अनुपयुक्त होगा वह ज्ञायक नहीं होगा। इसलिये आगम की अपेक्षा लेकर जो द्रव्यानुपूर्वी बनती है वह नहीं है। यहां पर जो शिक्षित आदि पद आये हैं उनकी व्याख्या पहिले की व्याख्या के समान समझनी

એકત્વ અનેકત્વનું કથન સમજવું જોઈએ. સંગ્રહનયની એવી માન્યતા છે કે એક જ દ્રવ્યાનુપૂર્વી છે. નૈગમનય અને વ્યવહાર નયની માન્યતા અનુસાર દ્રવ્યાનુપૂર્વી જે એક અને અનેકરૂપ છે તેનું કારણ એ છે કે આ નય એવું કથન કરે છે કે સામાન્ય તત્ત્વના આધાર પર સમસ્ત દ્રવ્યાનુપૂર્વીઓ એક જ છે-ભિન્ન ભિન્ન અનેક-નથી. ઋજુસૂત્ર નયની માન્યતા અનુસાર વર્તમાન ક્ષણે એક અનુપયુક્ત સાધુ આગમની અપેક્ષાએ એક આનુપૂર્વી છે. આ નય આનુપૂર્વીમાં ભિન્નતા (અનેકતા)ને માનતો નથી. ત્રણે શબ્દનયોની માન્યતા અનુસાર જ્ઞાયક હોવા છતાં પણ જે અનુપયુક્ત હોય છે તે અવસ્તુસ્વરૂપ છે. કારણ કે જે જ્ઞાયક હશે તે અનુપયુક્ત નહીં હોય અને જે અનુપયુક્ત હશે તે જ્ઞાયક નહીં હોય, આ પ્રકારની તે ત્રણે શબ્દ નયોની માન્યતા છે. તેથી આગમની અપેક્ષાએ જે દ્રવ્યાનુપૂર્વી બને છે તેનો આ ત્રણે શબ્દનયોની માન્યતા અનુસાર સદ્ભાવ જ હોતો નથી. અહીં જે શિક્ષિત આદિ પદો આવ્યાં છે તેમની વ્યાખ્યા આગળ આવ્યા પ્રમાણે જ સમજવી. આ પ્રકારનું આગમ દ્રવ્યાનુપૂર્વી સ્વરૂપ છે.

अथ नोआगमतो द्रव्यानुपूर्वीतिजिज्ञासया शिष्यः पृच्छति-'से किं तं' इत्यादि। अथ काऽसौ नोआगमतो द्रव्यानुपूर्वी ? इति। उत्तरयति-'नोआगमओ दव्वानुपुव्वी' इत्यादि। नोआगमतो द्रव्यानुपूर्वी त्रिविधा प्रज्ञप्ता-ज्ञायकशरीर-द्रव्यानुपूर्वी १ भव्यशरीर-द्रव्यानुपूर्वी २ ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यानुपूर्वी ३। ज्ञायकशरीरद्रव्यानुपूर्वी जिज्ञासमानः शिष्यः पृच्छति-अथ काऽसौ ज्ञायकशरीरद्रव्यानुपूर्वी ? उत्तरयति-'जाणयसरीर' इत्यादि। ज्ञायकशरीरद्रव्यानुपूर्वी हि-आनुपूर्वी पदार्थाधिकारज्ञायकस्य यत् शरीरकं व्यपगतच्युतच्यावितत्यक्तदेहं जीवविप्रमुक्तं शय्यागतं वा संस्तारगतं वा सिद्धशिलातलगतं वा दृष्ट्वा खलु

चाहिये। इस प्रकार यह आगम से द्रव्यानुपूर्वी का स्वरूप है। (से किं तं नोआगमओ दव्वानुपुव्वी) हे भदन्त ! नो आगम को आश्रित करके द्रव्यानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ? (नोआगमओ दव्वानुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता) नोआगम को आश्रित करके होनेवाली द्रव्यानुपूर्वी तीन प्रकार की कही गई है। (तं जहा) जैसे-(जाणयसरीरदव्वानुपुव्वी, भवियसरीरदव्वानुपुव्वी, जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वानुपुव्वी) ज्ञायकशरीरद्रव्यानुपूर्वी, भव्यशरीरद्रव्यानुपूर्वी और ज्ञायकशरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्यानुपूर्वी। (से किं तं जाणयसरीरदव्वानुपुव्वी) हे भदन्त ! पूर्वप्रकान्त ज्ञायशरीर द्रव्यानुपूर्वी क्या है ?

(जाणयसरीरदव्वानुपुव्वी) ज्ञायकशरीर द्रव्यानुपूर्वी इस प्रकार से है। (आनुपुव्वीपयत्थाहिगारजाणयस्स जं सरीरं ववगयचुयचाविय चत्त-

---

(से किं तं नोआगमओ दव्वाणुपुव्वी ?) હે ભગવન ! નોઆગમને આશ્રિત કરીને દ્રવ્યાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર-(नोआगमओ दव्यानुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता) નોઆગમને આશ્રિત કરીને જ્ઞાયમાન દ્રવ્યાનુપૂર્વી ત્રણ પ્રકારની કહી છે-(तंजहा) તે ત્રણ પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે-

(जाणयसरीरदव्वानुपुव्वी, भवियसरीर दव्वानुपुव्वी जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वानुपुव्वी) (૧) જ્ઞાયકશરીર દ્રવ્યાનુપૂર્વી, (૨) ભવ્યશરીર દ્રવ્યાનુપૂર્વી અને (૩) જ્ઞાયકશરીર ભવ્યશરીર વ્યતિરિક્ત દ્રવ્યાનુપૂર્વી.

પ્રશ્ન-से किं तं जाणयसरीरदव्वानुपुव्वो ?) હે ભગવાન ! પૂર્વ પ્રકાન્ત (પૂર્વ પ્રસ્તુત) જ્ઞાયકશરીર દ્રવ્યાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર-(जाणयसरीरदव्वानुपुव्वी) જ્ઞાયકશરીર દ્રવ્યાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે-(आनुपुव्वी पयत्थाहिगारजाणयस्स जं सरीरं ववगयचुयचाविय चत्तदेहं) 'आनुपूर्वी' આ પદના અર્થાધિકારને જાણનાર સાધુનું જે શરીરથી

कोऽपि भणेत् अहो! खलु अनेन शरीरसमुच्छ्रयेण जिनदृष्टेन भावेन आनुपूर्वीति पदम् आगृहीतं प्रज्ञापितं प्ररूपितं दर्शितं निदर्शितम्। यथा कोऽत्र दृष्टान्तः? अयं मधुकुम्भ आसीदिति। 'जीव विप्रमुक्तम्' इत्यारभ्य एतत्पर्यन्तः पाठः 'शेषं यथा द्रव्यावश्यके तथा भणितव्यं यावत्' इत्यनेन संग्राह्यः एषां पदानां व्याख्या द्रव्यावश्यके द्रष्टव्या। एतन्निगमयन्नाह–सैषा ज्ञायकशरीरद्रव्यानुपूर्वीति।

देहं) आनुपूर्वी इस पद के अर्थाधिकार को जानने वाले साधु का जो व्यपगत च्युत, च्यावित और त्यक्त देहवाला शरीर अर्थात् आहार परिणति जनित वृद्धि से रहित शरीर है वह ज्ञायकशरीर द्रव्यानुपूर्वी है। (सेसं जहा दव्वावस्सए जाव से तं जाणयसरीरदव्वानुपुव्वी) यहां पर " जीवविप्रमुक्तं शय्यागतं वा संस्तारगतं वा नैषेधिकीगतं वा, सिद्धं शिलातलगतं वा दृष्ट्वा खलु कोऽपि भणेत् अहो! खलु अनेन शरीरसमुच्छ्रयेण जिनदृष्टेन भावेन आनुपूर्वीति पदं आगृहीतं, प्रज्ञापितं, प्ररूपितं, दर्शितं, निदर्शितं। यथा कोऽत्र दृष्टान्तः? अयं मधुकुम्भ-आसीत् अयं घृतकुम्भ आसीत्" यह (सेसं) अवशिष्ट पाठ (जहा दव्वावस्सए जाव) जैसा द्रव्यावश्यक में कहा है वैसा लगा लेना चाहिये। इन समस्त पदों की व्याख्या द्रव्यावश्यक के प्रकरण में कह दी गई है–अतः वहां से जान लेनी चाहिये। इस प्रकार नोआगम की अपेक्षा से द्रव्यानुपूर्वी का स्वरूप है।

રહિત ચ્યુત, ચ્યાવિત અને ત્યકત દેહવાળું જે નિર્જીવ શરીર છે–એટલે કે આહાર પરિણતિ જનિત વૃદ્ધિથી રહિત જે શરીર છે તે જ્ઞાયક શરીર દ્રવ્યાનુપૂર્વી છે. (વ્યપગત, ચ્યુત, ચ્યાવિત આદિ પદોનો ભાવર્થ આગળ આવી ગયો છે.)

(सेसं जहा दव्वावस्सए जाव से तं जाणयसरीरदव्वानुपुव्वी) અહીં " जीवविप्रमुक्तं शय्यागतं वा, नैषेधिकीगतं वा, सिद्धशिलातलगतं वा दृष्ट्वा खलु कोऽपि भणेत् अहो! खलु अनेन शरीरसमुच्छ्रयेण जिनदृष्टेन भावेन आनुपूर्वीति पदं आगृहीतं, प्रज्ञापितं, प्ररूपितं, दर्शितं, निदर्शितं यथा कोऽत्र दृष्टान्तः? अयं मधुकुम्भ आसीत्, अयं घृतकुम्भ आसीत्" આ (सेसं) બાકીનો સૂત્રપાઠ (जहा दव्वावस्सए जाव) દ્રવ્યાવશ્યકમાં કહ્યા અનુસાર ગ્રહણ કરવો જોઇએ. આ સઘળાં પદોની વ્યાખ્યા દ્રવ્યાવશ્યકના પ્રકરણમાં આપવામાં આવી છે. તેથી જિજ્ઞાસુ પાઠકોએ તે ત્યાંથી વાંચી લેવી. આ પ્રકારનું નોઆગમની અપેક્ષાએ દ્રવ્યાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ છે.

शिष्यः पृच्छति-'से किं तं' इत्यादि। अथ काऽसौ भव्यशरीरद्रव्यानुपूर्वी? भव्यशरीरद्रव्यानुपूर्वी हि-यो जीवो योनि जन्मनिष्क्रान्तोऽनेनैव आत्तकेन शरीरसमुच्छ्रयेण जिनोपदिष्टेन भावेन आनुपूर्वीति पदम् आगामिकाले शिक्षिष्यते, न तावत् शिक्षते। यथा को दृष्टान्तः? अयं मधुकुम्भो भविष्यति, अयं घृतकुम्भो भविष्यतीति अनेनैव आत्तकेन' इत्यारभ्य एतत्पर्यन्तः पाठः शेषं यथा द्रव्यावश्यके यावत्' इत्यनेन संग्राह्यः। व्याख्या च द्रव्यावश्यके द्रष्टव्या। सम्प्रत्येतदुपसंहरन्नाह-सेत्तं भव्यशरीरद्रव्यानुपूर्वीति।

(से किं त्तं भविय सरीरदव्वानुपुव्वी) हे भदन्त! पूर्वप्रक्रान्त भव्यशरीर द्रव्यानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

उत्तर-(भविय सरीरदव्वानुपुव्वी) भव्यशरीरद्रव्यानुपूर्वी का स्वरूप इस प्रकार से है-(जे जीवे जोणीजम्मणणिक्खंते सेसं जहा दव्वावस्सए जाव-से तं भविय सरीरदव्वानुपुव्वी) जो जीव जन्मकाल में अपना पूर्ण नौमास का समय समाप्तकर उत्पन्न हुआ-बीच में नहीं, ऐसा मनुष्य इस प्राप्त शरीर से जो भविष्यत्कालमें आनुपूर्वी का अनुपयुक्त ज्ञाता बनेगा उसका वह प्राप्त शरीर नोआगमसे भव्यशरीर द्रव्यानुपूर्वी है। यहां पर "अनेनैव आत्तकेन" इस पाठ से लेकर "शरीरसमुच्छ्रयेण जिनोपदिष्टेन भावेन आनुपूर्वीतिपदं आगामिकाले शिक्षिष्यते न तावत् शिक्षते। यथा को दृष्टान्तः अयं मधुकुम्भो भविष्यति अयं घृतकुम्भो भविष्यति" यहां तक का पाठ "शेषं यथा द्रव्यावश्यके यावत्" इस पाठ से ग्रहण करलेना चाहिये। इस

પ્રશ્ન-से किं तं भवियसरीरदव्वानुपुव्वी? હે ભગવન્! ભવ્યશરીર દ્રવ્યાનુપૂર્વીનું કેવું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર-(जे जीवे जोणिजम्मणणिक्खंते सेसं जहा दव्वावस्सए जाव से तं भवियसरीरदव्वानुपुव्वी) જે જીવ માતાના ગર્ભમાં પૂરાં નવ માસ રહીને એટલે કે પૂર્ણકાળ વ્યતીત કરીને ઉત્પન્ન થયો છે-અપૂર્ણ કાળ વ્યતીત ઉત્પન્ન થયો નથી. એવો જીવ ભવિષ્યકાળમાં અનુપૂર્વીને અનુભવયુક્ત બનશે-વર્તમાનકાળે તો અનુપૂર્વીનો જ્ઞાતા નથી, તો એ જીવને તે પ્રાપ્ત શરીર નોઆગમની અપેક્ષાએ ભવ્યશરીર દ્રવ્યાનુપૂર્વી છે. અહીં "अनेनैव आत्तकेन" આ સૂત્રપાઠથી લઈને "शरीरसमुच्छ्रयेण जिनोपदिष्टेन भावेन आनुपूर्वीतिपदं आगामि काले शिक्षिष्यते न तावत् शिक्षते। यथा को दृष्टान्तः? अयं मधुकुम्भो भविष्यति अयं घृतकुम्भो भविष्यति" અહીં સુધીનો સૂત્રપાઠ દ્રવ્યાવશ્યક સૂત્રમાં કહ્યા અનુસાર ગ્રહણ કરવાનું સૂત્રકારે

शिष्यः पृच्छति-'से किं तं' इत्यादि। अथ काऽसौ ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्ता द्रव्यानुपूर्वी ? इति। उत्तरमाह-'जाणयसरीर' इत्यादि। ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्ता द्रव्यानुपूर्वी हि द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-औपनिधिकी च अनौपनिधिकी च। तत्र=भेदद्वयमध्ये या सा औपनिधिकी इह निधिशब्दस्य निक्षेपोऽर्थः, निधानं, निधिः निक्षेपः, न्यासः, स्थापनेति शब्दाः पर्यायाः। उप=सामीप्येन निधिः-उपनिधिः-एकस्मिन् विविक्षितेऽर्थे पूर्वं व्यवस्थापिते तत्समीपे

पाठ की शंकासमाधान पूर्वक जैसी व्याख्या द्रव्यावश्यक के स्वरूपको निरूपण करते समय की है वैसी ही व्याख्या इसकी जाननी चाहिये। इस प्रकार यह नोआगम को लेकर द्रव्यानुपूर्वी का स्वरूप है। (से किं तं जाणयसरीरभावियसरीरवइरित्ता दव्वाणुपुव्वी) हे भदन्त! पूर्वोक्त ज्ञायक शरीर भव्य शरीर इन दोनों से व्यतिरिक्त द्रव्यानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

उत्तर-(जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वाणुपुव्वी दुविहा पण्णत्ता) ज्ञायकशरीर भव्यशरीर इन दोनों से भिन्न द्रव्यानुपूर्वी दो प्रकार की कही है (तंजहा) जैसे (ओवणिहिया, य अणोवणिहिया य) औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी और अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी। (तत्थ णं जा सा ओवणिहिया सा ठप्पा) इनमें जो औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी है वह स्थाप्य है। क्योंकि अल्प विषयवाली होने से वह इस समय व्याख्या करने योग्य नहीं है। निधिशब्द का अर्थ यहां निक्षेप है।

સૂચન કર્યું છે દ્રવ્યાવશ્યકના પ્રકરણમાં શંકાઓના સમાધાન પૂર્વક ભવ્યશરીર દ્રવ્યાવશ્યકના સ્વરૂપનું જેવું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું છે એવું જ અહીં ભવ્યશરીર દ્રવ્યાનુપૂર્વીનું નિરૂપણ થવું જોઇએ આ પ્રકારનું નોઆગમની અપેક્ષાએ ભવ્યશરીર દ્રવ્યાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ સમજવું.

પ્રશ્ન-(से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वाणुपुव्वी ?) હે ભગવન્! પૂર્વપ્રકાન્ત જ્ઞાયકશરીર અને ભવ્યશરીર આ બન્નેથી ભિન્ન એવી દ્રવ્યાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર-(जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वाणुपुव्वी दुविहा पण्णत्ता) જ્ઞાયકશરીર અને ભવ્યશરીરથી ભિન્ન એવી દ્રવ્યાનુપૂર્વી બે પ્રકારની કહી છે. (तंजहा) તે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે-ओवणिहिया य अणोवणिहिया य) (૧) ઔપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વી અને (૨) અનૌપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વી (तत्थणं जा सा ओवणिहिया सा ठप्पा) તેમાં જે ઔપનિધિકી આનુપૂર્વી છે તે સ્થાપ્ય

एवापरापरस्य वक्ष्यमाणपूर्वानुपूर्व्यादिक्रमेण यन्निक्षेपणं स उपनिधिरित्यर्थः उपनिधिः प्रयोजनं यस्या आनुपूर्व्याः सा-औपनिधिकी। सामायिकादि-षडध्ययनानां पूर्वा पूर्व्यादिना निक्षेप एव उपनिधिः स प्रयोजनं यस्याः आनुपूर्व्याः सा, औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी स्थाप्या=संप्रति न व्याख्यातव्या-अल्पविषयत्वेनात्र नोच्यते, किंत्वग्रे वक्ष्यते इति भावः। सम्प्रति बहुवक्तव्यत्वेन पश्चान्निर्दिष्टाऽपि अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्व्येव व्याख्यायते। तत्र खलु या सा अनौपनिधिकी

निधान, निधि निक्षेप, न्यास स्थापना ये सब निधिशब्द के पर्याय वाची शब्द हैं। उपशब्दका अर्थ समीप है और निधि शब्दका अर्थ रखना है। एक कोई विवक्षित पदार्थ पहिले व्यवस्थापित कर देने पर फिर उसके पास ही और २ दूसरे पदार्थों के वक्ष्यमाण पूर्वानुपूर्वी के क्रम से जो रखा जाता है उसका नाम उपनिधि है। यह उपनिधि जिस आनुपूर्वी का प्रयोजन हो वह औपनिधिकी आनुपूर्वी है। इसमें सामायिक आदि छह अध्ययनों का पूर्वानुपूर्वी से निक्षेप किया जाता है। इनका यह निक्षेप ही उपनिधि है। औपनिधिकी आनुपूर्वी में यह उपनिधि ही प्रयोजनभूत होती है। अल्प विषय वाली होने से जो यहां उसे व्याख्यातव्य नहीं कहा गया है उसका तात्पर्य यह नहीं है कि उस सूत्र में सूत्रकार उसका कथन नहीं करेंगे। किन्तु आगे वे उसे कहेंगे-अभी यहां नहीं। अनौपनिधिकी आनुपूर्वी का जो सूत्रकार

છે, કારણકે અલ્પ વિષયવાળી હોવાના કારણે અત્યારે અહીં તેનું પ્રતિપાદન કરવાની જરૂર નથી 'નિધિ' પદનો અર્થ અહીં 'નિક્ષેપ' સમજવો. નિધાન, નિધિ, નિક્ષેપ, ન્યાસ અને સ્થાપના આ બધા નિધિશબ્દના પર્યાયવાચી શબ્દો છે. 'ઉપ' શબ્દનો અર્થ 'સમીપ' થાય છે. અને 'નિધિ' શબ્દ 'રાખવાના અર્થનો સૂચક છે હવે ઉપનિધિ શબ્દનો આ પ્રમાણે અર્થ થાય છે-કોઈ એક વિવક્ષિત પદાર્થને પહેલાં વ્યવસ્થાપિત કરી દીધાં પછી તેની પાસે જ અન્ય પદાર્થોને પૂર્વાનુપૂર્વીના ક્રમથી જે રાખવામાં (સ્થાપિત કરવામાં) આવે છે તેનું નામ ઉપનિધિ છે." આ ઉપનિધિ જે અનુપૂર્વીનું પ્રયોજન છે તે આનુપૂર્વીને ઔપનિધિકી આનુપૂર્વી કહે છે તેમાં સામાયિક આદિ ૬ અધ્યયનોનો પૂર્વાનુપૂર્વીથી નિક્ષેપ કરવામાં આવે છે. તેમનો આ નિક્ષેપ જ ઉપનિધિ રૂપ છે. ઔપનિધિકી આનુપૂર્વીમાં આ ઉપનિધિ જ પ્રયોજનભૂત હોય છે. અલ્પવિષયવાળી હોવાને કારણે તેને અહીં વ્યાખ્યાત કરવા યોગ્ય નહીં કહેવાનું તાત્પર્ય એવું નથી કે આ સૂત્રમાં સૂત્રકાર

द्रव्यानुपूर्वी सा द्विविधा प्रज्ञप्ता। 'अनौपनिधिकी' इत्यस्यायमर्थः अनुपनिधिः= वक्ष्यमाणपूर्वानुपूर्व्यादिक्रमेण अनिक्षेपः-अव्यवस्थापनं, स प्रयोजनं यस्याः सा अनौपनिधिका। पूर्वानुपूर्व्यादिक्रमेण व्यवस्थापनं न क्रियते सा व्यादि परमाणु-निष्पन्नस्कन्धविषया आनुपूर्वी अनौपनिधिकीत्युच्यते इति भावः।

औपनिधिकी आनुपूर्वी के पहिले यहीं विवेचन कर रहे हैं! उसका कारण यह है कि उस आनुपूर्वी के विषय में वक्तव्यता बहुत है। (तत्थ णं जा सा अणोवणिहिया सा दुविहा) इन औपनिधिकी अनौपनिधिकी आनुपूर्वी में जो यह दूसरी अनौपनिधिकी आनुपूर्वी है वह दो प्रकार की है। (तंजहा) जैसे (नेगमववहाराणं संगहस्सय) एक नैगम व्यवहार नय संमत और दूसरी संग्रह नय संमत। "अनौपनिधिकी" इसका अर्थ इस प्रकार से है कि वक्ष्यमाण पूर्वानुपूर्वी क्रम से जहां पदार्थों की स्थापना नहीं होती है-उसका नाम अनुपनिधि है यह अनुपनिधि जिस आनुपूर्वी का विषय है उसका नाम अनौपनिधिकी आनुपूर्वी है। जिस आनुपूर्वी में पूर्वानुपूर्वी आदि के क्रम से पदार्थों की स्थापना व्यवस्था न हो और जो व्यादिपरमाणु से निष्पन्न हुए स्कंध को विषय करती हो ऐसी आनुपूर्वी अनौपनिधिकी आनुपूर्वी है।

તેનું નિરૂપણ કરવા માગતા નથી તેઓ અહીં તેનું નિરૂપણ કરવાના નથી પણ આ ગ્રન્થમાં (સૂત્રમાં) જ તેનું નિરૂપણ આગળ કરવામાં આવશે.

અનૌપનિધિકી આનુપૂર્વીનું અહીં સૂત્રકારે ઔપનિધિકી આનુપૂર્વી પહેલાં જે વિવેચન કર્યું છે તેનું કારણ એ છે કે અનૌપનિધિકી આનુપૂર્વી વિષેની વક્તવ્યતા ઘણી જ લાંબી છે. (तत्थणं जा सा अणोवणिहिया सा दुविहा) આ બન્ને પ્રકારની આનુપૂર્વીઓમાંની જે અનૌપનિધિકી આનુપૂર્વી છે તે બે પ્રકારની કહી છે. (तंजहा) તે બે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે-(नेगमववहाराणं संगहस्स य) (૧) નૈગમ અને વ્યવહાર નય સંમત અને (૨) સંગ્રહનય સંમત "અનૌપનિધિકી" આ પદનો અર્થ આ પ્રમાણે થાય છે વક્ષ્યમાણ પૂર્વાપૂર્વીના ક્રમે જ્યાં પદાર્થોની સ્થાપના થતી નથી તેનું નામ અનુપનિધિ છે. આ અનુપનિધિ જે આનુપૂર્વીનો વિષય છે તે આનુપૂર્વીનું નામ અનૌપનિધિકી આનુપૂર્વી છે. આનુપૂર્વીમાં પૂર્વાનુપૂર્વી આદિના ક્રમપૂર્વક પદાર્થોની સ્થાપના વ્યવસ્થા ન હોય અને જે ત્રણ આદિ પરમાણુથી નિષ્પન્ન થયેલા (ઉત્પન્ન થયેલા) સ્કન્ધને વિષય કરતી હોય (સ્કંધનું પ્રતિપાદન કરતી હોય) એવી આનુપૂર્વીનું નામ અનૌપનિધિકી આનુપૂર્વી છે.

नच स्कन्धविषयेऽनौपनिधिकीत्वं नोपपद्यते, यतः कश्चित् स्कन्धस्त्रिप्रदेशिकः, कश्चिच्चतुःप्रदेशिकः कश्चित् पञ्चप्रदेशिकः, इत्युत्तरोत्तरं सर्वे स्कन्धाः क्रमपूर्वकमेव भवन्ति ततश्च पूर्वानुपूर्व्या व्यवस्थापनस्य सद्भावादनौपनिधिकीत्वमेव तत्रास्ति, नत्वनौपनिधिकीत्वं तत्र संभवतीति चेत्.

अत्रोच्यते–तत्र कस्यचित् स्कन्धस्य पूर्वानुपूर्व्यादि क्रमेण व्यवस्थापनं नान्येन केनचित् क्रियते, सर्वेषां स्कन्धानां विस्रसापरिणामपरिणतत्वात् अतः स्कन्धविषयेऽनौपनिधिकीत्वमुपपद्यते। यत्र तु तीर्थकरादिना पूर्वानुपूर्व्यादिक्रमेण वस्तूनां

शंका–स्कंध में अनौपनिधि की पना नहीं बनता है। क्योंकि कोई स्कंध तीन प्रदेश वाला होता है, कोई चार प्रदेशवाला होता है, कोई पांच प्रदेशवाला होता है। इस प्रकार उत्तरोत्तर समस्त स्कंध क्रम पूर्वक ही होते हैं इस प्रकार इनमें पूर्वानुपूर्वी के क्रम से स्थापना की व्यवस्था का सद्भाव आने से औपनिधि की पना ही आता है, अनौपनिधिकीपना नहीं।

उत्तर–स्कंधो में जो त्रिप्रदेशिकता आदि है वह किसी के द्वारा वहां की हुई नहीं है–अर्थात् ऐसा नहीं है कि त्रिप्रदेशी स्कंध है उसे किसी ने तीन परमाणु पूर्वानुपूर्वी क्रम से रखकर बनाया हो। उसमें त्रिप्रदेशिकता तो स्वभाव से ही है। क्योंकि जितने भी स्कंध हैं वे सब स्वाभाविक परिणाम से परिणत होते रहते हैं। इसलिये स्कंध में अनौपनिधिकीपना ही आता है। जहां पर तीर्थंकर आदिकों द्वारा पूर्वा-

---

શંકા–સ્કન્ધમાં અનૌપનિધિકીપણું સંભવી શકતું નથી, કારણ કે કોઈ સ્કંધ ત્રણ પ્રદેશવાળો હોય છે, કોઈ ચાર પ્રદેશવાળો હોય છે, કોઈ પાંચ પ્રદેશવાળો હોય છે. આ પ્રકારે ઉત્તરોત્તર સમસ્ત સ્કન્ધ ક્રમપૂર્વક જ હોય છે. તેથી તેમાં પૂર્વાનુપૂર્વીના ક્રમપૂર્વક સ્થાપનાની વ્યવસ્થાનો સદ્ભાવ હોવાથી ઔપનિધિકી પણું હોઈ શકતું નથી.

ઉત્તર–સ્કંધોમાં જે ત્રિપ્રદેશિકતા આદિ છે તે કોઇના દ્વારા ત્યાં કરાયેલ નથી એટલે કે એવી કોઇ વાત નથી કે ત્રિપ્રદેશી જે સ્કંધ છે તેને કોઇએ ત્રણ પરમાણુ પૂર્વાનુપૂર્વી ક્રમપૂર્વક રાખીને બનાવ્યો છે. તેમાં તો સ્વભાવથી જ ત્રિપ્રદેશિકતા હોય છે, કારણ કે જેટલાં સ્કન્ધ છે તે બધાં સ્વાભાવિક પરિણામ દ્વારા જ પરિણત થતા રહે છે. તેથી સ્કંધમાં અનૌપનિધિપણુ જ ઘટાવી શકાય છે જ્યાં તીર્થંકર આદિકો દ્વારા પૂર્વાનુપૂર્વી આદિના ક્રમથી વસ્તુ-

व्यवस्थापनं भवति, तत्रौपनिधिकी आनुपूर्वी, यथा-धर्माधर्मादिषड्द्रव्येषु, सामायिकादि षडध्ययनेषु च।

नन्वेवं पूर्वानुपूर्व्यादिक्रमेण व्यवस्थापनं यत्र नास्ति तत्रानौपनिधिकीति स्वीकारे आनुपूर्वीत्वमेव नोपपद्यते, पूर्वानुपूर्व्यादिक्रमस्यैवानुपूर्वीरूपत्वात्, पूर्वानुपूर्व्यादि क्रमेण व्यवस्थापनस्याऽभावे आनुपूर्व्या एव नास्ति संभवः? इतिचेत्.

अत्रोच्यते-यद्यपि स्कन्धगतत्र्यादि परमाणूनां स्कन्धरूपेण विशिष्टैकपरिणामपरिणतत्वात्, तथापि-योग्यतामाश्रित्यानुपूर्वीत्वं संभवति। तथाहि-त्र्यादिपरमाणूनामादिमध्यावसानभावेन नियतक्रमेण व्यवस्थापनयोग्यताऽस्तीत्यतस्तां योग्यतामाश्रित्यात्राप्यानुपूर्वीत्वं न विरम्यते।

नुपूर्वी आदि के क्रम से वस्तुओं की व्यवस्था होती है वहां पर औपनिधिकी आनुपूर्वी होती है। जैसे धर्म अधर्म आदि ६ द्रव्यों में और सामायिक आदि ६ अध्ययनों में है।—

शंका-यदि ऐसा ही स्वीकार किया जावे कि जहां पर पूर्वानुपूर्वी आदि के क्रम से व्यवस्थापन नहीं है वहां अनौपनिधिकी आनुपूर्वी है सो इस कथन में-ऐसी मान्यता में-आनुपूर्वीपना ही नहीं आता है। क्यों कि पूर्वानुपूर्वी आदि के क्रममेंही आनुपूर्वी रूपता है। जहां पूर्वानुपूर्वी आदि के क्रम से व्यवस्थापन का अभाव है वहां आनुपूर्वी का ही संभव नहीं होता है।

उत्तर-यद्यपि स्कंधगत तीन आदि परमाणुओं का नियतक्रम नहीं है क्यों कि वे परमाणुओं स्कंधरूपसे विशिष्टैक परिणाम में परिणत रहा करते हैं। तो भी योग्यता को आश्रित करके उनमें आनुपूर्वीपना

એની વ્યવસ્થા થાય છે, ત્યાં ઔપનિધિકી આનુપૂર્વી થાય છે. જેમ કે ધર્માસ્તિકાય, અધર્માસ્તિકાય આદિ ૬ દ્રવ્યોમાં અને સામાયિક આદિ ૬ અધ્યયનોમાં

શંકા-જો એવું જ માની લેવામાં આવે કે જ્યાં પૂર્વાનુપૂર્વી આદિના ક્રમથી વ્યવસ્થાપન નથી પણ અનૌપનિધિકી આનુપૂર્વીના ક્રમથી વ્યવસ્થાપન છે, તો એ પ્રકારની માન્યતામાં તો આનુપૂર્વીતા જ સંભવી શકતી નથી, કારણ કે પૂર્વાનુપૂર્વી આદિના ક્રમમાં જ આનુપૂર્વીરૂપતા છે. જ્યાં પૂર્વાનુપૂર્વી આદિના ક્રમપૂર્વક વ્યવસ્થાપનનો અભાવ છે, ત્યાં આનુપૂર્વીનો સંભવ જ હોતો નથી.

ઉત્તર-જો કે સ્કન્ધગત ત્રણ આદિ પરમાણુઓનો નિયતક્રમ હોતો નથી, કારણ કે તે પરમાણુઓ સ્કન્ધરૂપે એક વિશિષ્ટ પરિણામમાં પરિણત થયા કરે છે. છતાં પણ યોગ્યતાને આશ્રિત કરીને આનુપૂર્વીતા આ પ્રકારે

सम्प्रति अस्या द्वैविध्यमाह-तद्यथा-नैगमव्यवहारयोः, संग्रहस्य च। नैगमव्यवहारसंमता संग्रहसंमता चेति द्विविधाऽनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वीत्यर्थः। इदमत्र बोध्यम्-ओघतो हि नैगमसंग्रहव्यवहारऋजुसूत्रशब्दसमभिरूढैवंभूताः सप्त नया भवन्ति एतेषां हि द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकलक्षणे नयद्वयेऽन्तर्भावो भवति। 'द्रव्यमेव परमार्थतोऽस्ति न पर्यायाः' इत्यभ्युपगमपरो नयो द्रव्यार्थिकनयः, 'पर्याया एव वस्तुतः सन्ति न द्रव्य'-मित्यभ्युपगमपरो नयः पर्यायार्थिकनयः। तत्र नयेषु-नैगमसंग्रहव्यवहारा द्रव्यार्थिकनयाः, ऋजुसूत्रशब्दसमभि-

---

माना गया है। और वहां इस प्रकार से-कि-तीन आदि परमाणुओं में आदि मध्य और अवसानभावरूप जो नियतक्रम है उस क्रम से व्यवस्थापनकी योग्यता है। इसलिये उस योग्यता को आश्रित करके उन तीन आदि परमाणुओं में भी आनुपूर्वीपन विरुद्ध नहीं होता।

अनौपनिधिकी आनुपूर्वी में जो द्विविधता कही गई है उसका अभिप्राय यह है कि सामान्य से नय सात हैं, नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र शब्द, समभिरूढ और एवंभूत। इन सातों का द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक, इन दो नयो में अन्तर्भाव हो जाता है। द्रव्य ही परमार्थतः-वास्तविक रूप से-हैं पर्यायें नहीं-इस प्रकार द्रव्य को ही स्वीकार करने वाला नय द्रव्यार्थिक नय है। और पर्यायें ही वास्तविक सत् हैं द्रव्य नहीं इस प्रकार पर्यायों को ही वास्तविक रूप में मानने वाला नय पर्यायार्थिक नय है। नैगम, संग्रह, और व्यवहार ये तीन द्रव्य को ही

માનવામાં આવી છે-ત્રણ આદિ પરમાણુઓમાં આદિ, મધ્ય અને અવસાન (અન્ત) ભાવરૂપ જે નિયતક્રમ છે તે ક્રમની અપેક્ષાએ વ્યવસ્થાપનની યોગ્યતા છે. તેથી તે યોગ્યતાની અપેક્ષાએ તે ત્રણ આદિ પરમાણુઓમાં આનુપૂર્વીતાનો સદ્ભાવ માનવામાં કોઈ વાંધો રહેતો નથી.

અનૌપનિધિકી આનુપૂર્વીમાં જે દ્વિવિધતા પ્રકટ કરવામાં આવી છે તેનું કારણ નીચે પ્રમાણે છે-સામાન્ય રીતે તો આ સાત નય છે-નૈગમ, સંગ્રહ, વ્યવહાર, ઋજુસૂત્ર, શબ્દ, સમભિરૂઢ અને એવંભૂત તે સાતે નયને મુખ્ય બે પ્રકારમાં વહેંચી શકાય છે-(૧) દ્રવ્યાર્થિક અને (૨) પર્યાયાર્થિક દ્રવ્ય જ પરમાર્થતઃ (વાસ્તવિક રૂપે) છે-પર્યાયો નથી, આ રીતે દ્રવ્યને જ સ્વીકાર કરનારા નયોને દ્રવ્યાર્થિક નય કહે છે.

પર્યાયો જ વાસ્તવિક સત્ છે-દ્રવ્ય વાસ્તવિક સત્ (વિદ્યમાન વસ્તુ) નથી, આ રીતે પર્યાયોને જ વાસ્તવિક રૂપે સ્વીકારનારા નયોને પર્યાયાર્થિક નય કહેવામાં આવે છે. નૈગમ નય, સંગ્રહ નય અને વ્યવહાર નય, આ ત્રણે

रूढैवंभूताश्चत्वारः पर्यायार्थिकनयाः। तत्र द्रव्यार्थिको हि सामान्यतो द्विविधो भवति–विशुद्धोऽविशुद्धश्च। तत्र नैगमव्यवहाररूपः–अविशुद्धः। संग्रहरूपस्तु विशुद्धः। नैगमव्यवहारौ हि अनन्तपरमाण्वनन्तद्व्यणुकाद्यनेक व्यक्त्यात्मकं कृष्णाद्यनेकगुणाधारं त्रिकालविषयं वा अविशुद्धं द्रव्यं विषयीकुरुतः, इति हेतोरनयोरविशुद्धत्वम्। संग्रहश्च परमाण्वादिकं परमाण्वादि साम्यादेकं तिरोभूतगुणकलापमविद्यमानपूर्वापरविभागं नित्यं सामान्यमेव द्रव्यं विषयीकुरुते। सामान्यं च-अनेकत्वादि दोषवर्जितत्वात् शुद्धम्। ततश्च सामान्यरूपशुद्धद्रव्याभ्युपगमपरत्वादयं संग्रहनयः शुद्धः।

विषय करने वाले होने से द्रव्यार्थिक नय हैं। ऋजु सूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवंभूत ये चार नय पर्यायों को ही विषय करने वाले होने से पर्यायार्थिक नय हैं। सामान्य से द्रव्यार्थिक नय दो प्रकार का होता है एक विशुद्ध और दूसरा अविशुद्ध। नैगम और व्यवहार ये दो नय अविशुद्ध हैं। संग्रह नय विशुद्ध है। नैगम और व्यवहार ये दो नय अनन्त परमाणु, अनन्त द्व्यणुक आदि अनेक व्यक्तिस्वरूप, और कृष्ण आदि अनेक गुणों के आधारभूत अथवा त्रिकालवर्ती ऐसे अविरुद्ध द्रव्य को विषय करते हैं। इसलिये ये अविशुद्ध हैं। तथा संग्रह नय जातिकी अपेक्षा से परमाणु आदि एक सामान्य रूप द्रव्य को ही विषय करता है उसकी दृष्टि में अनेक भिन्न २ परमाणु भी परमाणु आदि रूप से समानता वाले होने के कारण एक हैं। गुण समूह पर उसकी

નયો द्रव्यनुं જ પ્રતિપાદન કરનારા હોવાથી द्रव्यार्थिक નયમાં તેમને સમાવી લેવામાં આવ્યા છે ઋજુસૂત્રનય, શબ્દનય, સમભિરૂઢ નય અને એવંભૂત નય, આ ચારે નયો પર્યાયોનું જ પ્રતિપાદન કરનારા હોવાથી તેમને પર્યાયાર્થિક નયમાં સમાવી શકાય છે. સામાન્ય રૂપે द्रव्यार्थिक નય બે પ્રકારનો છે–(૧) વિશુદ્ધ અને (૨) અવિશુદ્ધ નૈગમ અને વ્યવહાર, આ બન્ને નય અવિશુદ્ધ છે અને સંગ્રહનય વિશુદ્ધ છે. નૈગમ અને વ્યવહાર નય અનંત પરમાણુ, અનંતદ્વયણુક આદિ અનેક વ્યક્તિસ્વરૂપ (વસ્તુસ્વરૂપ) અને કૃષ્ણ આદિ અનેક ગુણોના આધારભૂત અથવા ત્રિકાલવર્તી એવા અવિશુદ્ધ દ્રવ્યને વિષય કરે છે (પ્રતિપાદન કરે છે) તેથી તે બન્ને નયને અવિશુદ્ધ કહ્યા છે. સંગ્રહનયને વિશુદ્ધ કહેવાનું કારણ નીચે પ્રમાણે છે સંગ્રહનય જાતિની અપેક્ષાએ પરમાણુ આદિ એક સામાન્ય રૂપ દ્રવ્યને જ વિષય કરે છે તે નયની માન્યતા અનુસાર તો અનેક ભિન્ન ભિન્ન પરમાણુઓ પણ પરમાણુ આદિ રૂપ સમાનતાવાળા હોવાને લીધે એક જ છે. ગુણસમૂહ તરફ તેની દૃષ્ટિ જતી નથી,

अत्र च द्रव्यानुपूर्व्याः प्रक्रान्तत्वात् द्रव्यार्थिकमतेनैव तस्याः शुद्धाऽशुद्धस्वरूपं दर्शयिष्यते, न तु पर्यायार्थिकमतेन, पर्यायविचारस्याप्रक्रान्तत्वादिति ॥सू०७३॥

सम्प्रति नैगमव्यवहारसम्मतामनौपनिधिकीं द्रव्यानुपूर्वीं दर्शयति–

मूलम्–से किं तं नेगमववहाराणं अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी ? नेगमववहाराणं अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–अट्ठपयपरूवणया१, भंगसमुक्कित्तणया२, भंगोवदंसणया३, समोयारे४, अणुगमे५ ॥सू०७४॥

दृष्टि नहीं जाती है। क्योंकि गुण भी एक प्रकार की पर्याय है। और यह वस्तु की सहभावी पर्याय है द्रव्यगत पूर्वापरविभाग को भी यह नहीं मानता है। अतः इन सबबातों को गौण करके वह नय सिर्फ एक नित्य सामान्य धर्मात्मक विशुद्ध द्रव्य को ही विषय करनेवाला होने से विशुद्ध माना गया है। क्योंकि इस नय का विषय अनेकत्वआदि नहीं है। सामान्य रूप द्रव्यत्व में अनेकत्वआदि तो उसकी दृष्टि में दूषण है। अतः अनेकत्वआदि दोषों से वर्जित सामान्यरूप शुद्ध द्रव्य को विषय करने के कारण यह नय विशुद्ध है। यहां पर द्रव्यानुपूर्वी का प्रकरण चल रहा है इसलिये द्रव्यार्थिकनय के मत से ही उस द्रव्यानुपूर्वी का शुद्ध अशुद्ध स्वरूप सूत्रकार दिखलावेंगे पर्यायार्थिकनय के मत से नहीं। ॥सू०७३॥

કારણ કે શુદ્ધ પણ એક પ્રકારની પર્યાય જ છે. દ્રવ્યગત પૂર્વાપર વિભાગને પણ તે માનતો નથી તેથી આ બધી બાબતોને ગૌણરૂપ ગણીને તે નય માત્ર નિત્ય સામાન્ય ધર્માત્મક વિશુદ્ધ દ્રવ્યનું જ પ્રતિપાદન કરનારો હોવાથી તેને વિશુદ્ધનય માનવામાં આવ્યો છે, કારણ કે આ નયનો વિષય અનેકત્વ આદિ નથી સામાન્યરૂપ દ્રવ્યત્વમાં અનેકત્વ આદિ તો તે નયની માન્યતા પ્રમાણે દૂષણરૂપ છે. તેથી અનેકત્વ આદિ દોષોથી વિહીન સામાન્યરૂપ શુદ્ધ દ્રવ્યનું પ્રતિપાદન કરનારો હોવાને કારણે સંગ્રહનયને વિશુદ્ધ નય કહેવામાં આવ્યો છે અહીં દ્રવ્યાનુપૂર્વીનો અધિકાર ચાલી રહ્યો છે, તેથી સૂત્રકાર અહીં દ્રવ્યાર્થિક નયની માન્યતા અનુસાર જ દ્રવ્યાનુપૂર્વીના શુદ્ધ અશુદ્ધ સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરશે–પર્યાયાર્થિક નયના મત અનુસાર અહીં તેનું નિરૂપણ કરશે નહીં ॥સૂ૦૭૩॥

छाया—अथ का सा नैगमव्यवहारयोः अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी ? नैगमव्यवहारयोः अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी पञ्चविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा अर्थपदप्ररूपणता१, भङ्गसमुत्कीर्त्तनता२, भङ्गोपदर्शनता३, समवतारः४, अनुगमः५ ॥सू०७४॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि—

अथ का सा नैगमव्यवहारसम्मता अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी ? इति शिष्यप्रश्नः। उत्तरमाह—'नैगमववहाराणं' इत्यादि। नैगमव्यवहारयोरनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी पञ्चविधा प्रज्ञप्ता। तद् यथा—अर्थपदप्ररूपणता—अर्थः=व्यणुकस्कन्धादिरूपस्तद्युक्तं तद्विषयं वा पदम्=आनुपूर्व्यादिकम्-अर्थपदम्, तस्य प्ररूपणं=कथनं

अब सूत्र का नैगम-व्यवहार नय संमत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी को प्रकट करते हैं—'से किं तं इत्यादि'।

शब्दार्थ—(से किं तं नेगमववहाराणं अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी ?) हे भदन्त! नैगम और व्यवहार इन दो नयों को संमत जो अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी है उसका क्या स्वरूप है?

उत्तरः—(नेगमववहाराणं अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी पंचविहा पण्णत्ता) नैगम व्यवहारनय संमत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी पांच प्रकारकी कही हुई है। (तंजहा) वे प्रकार ये हैं—(अट्ठपयपरूवणया, भंगसमुक्कित्तणया, भंगोवदंसणया, समोयारे अणुगमे) अर्थपदप्ररूपणता१, भंगसमुत्कीर्तनता२, भंगोपदर्शनता३, समवतार४, और अनुगम५,। अर्थपदप्ररूपणता—व्यणुकस्कंध आदिरूप अर्थ से युक्त अथवा—व्यणुकस्कंध तीन परमाणुवाला स्कंध आदिरूप अर्थ को विषय करनेवाला जो पद है

હવે સૂત્રકાર નૈગમ અને વ્યવહારનય સંમત અનૌપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ પ્રકટ કરે છે—"से किं तं" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(से किं तं नेगमववहाराणं अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी ?) શિષ્ય ગુરુને એવો પ્રશ્ન પૂછે છે કે હે ભગવાન્! નૈગમ અને વ્યવહાર, આ બે નયોને સંમત જે અનૌપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વી છે તેનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર—(नेगमववहाराणं अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी पंचविहा पण्णत्ता) નૈગમ અને વ્યવહારનય સંમત અનૌપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વી પાંચ પ્રકારની કહી છે. (तंजहा) તે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે—(अट्ठपयपरूवणया, भंग समुक्कित्तणया, भंगोवदंसणया, समोयारे अणुगमे) (૧) અર્થપદ પ્રરૂપણા, (૨) ભંગસમુત્કીર્તનતા, (૩) ભંગોપદર્શનતા, (૪) સમવતાર અને (૫) અનુગમ અર્થપદપ્રરૂપણતા—વ્યણુક (ત્રણ પરમાણુવાળો) સ્કન્ધ આદિ રૂપ અર્થથી યુક્ત અથવા વ્યણુકસ્કન્ધ આદિરૂપ અર્થને વિષય કરવાવાળું જે પદ છે તેનું નામ

तदेव, अर्थपदप्ररूपणता। आनुपूर्व्यादिका संज्ञा, तद्वाच्यस्त्र्यणुकादिरर्थः संज्ञी। संज्ञासंज्ञिसम्बन्धकथनमात्रं प्रथमं कर्त्तव्यमिति भावः। इति प्रथमो भेदः १। अत्र स्वार्थे तल् प्रत्ययो बोध्यः। तथा-भङ्गसमुत्कीर्त्तनता-भज्यन्ते=विकल्प्यन्ते इति भङ्गाः=तेषामेव आनुपूर्व्यादिपदानां समुदितानां वक्ष्यमाणन्यायेन संभविनो विकल्पाः, तेषां समुत्कीर्त्तनं=समुच्चारणं, तदेव, भङ्गसमुत्कीर्त्तनता, आनुपूर्व्यादिपदनिष्पन्नानां प्रत्येकभङ्गानां द्व्यादिसंयोगभङ्गानां च समुच्चारणमित्यर्थः। इति द्वितीयो भेदः २। तथा-भङ्गोपदर्शनता-तेषामेव सूत्रमात्रतयाऽनन्तरसमुत्कीर्त्तितानां भङ्गानां प्रत्येकं स्वाभिधेयेन त्र्यणुकाद्यर्थेन सह उपदर्शनम्-भङ्गोपदर्शनं, तदेव भङ्गोपदर्शनता। इति तृतीयोभेदः ३।

उसका नाम अर्थपद है। इस अर्थपद की प्ररूपणा करना यही अर्थपद प्ररूपणता है। आनुपूर्वी आदि यह संज्ञा है-नाम है। इन नाम का वाच्यार्थ जो त्र्यणुक आदि है वह संज्ञी है। संज्ञा संज्ञी के संबन्धका कथन मात्र सब से प्रथम करना यही अर्थपद प्ररूपणता है। तथा-भंग समुत्कीर्तनता-जो भेदरूप हो उसका नाम भंग है। समुदित उन्हीं आनुपूर्वी आदि पदों के संभवित विकल्पों-भेदों-का अच्छी प्रकार से उच्चारण करना अर्थात् आनुपूर्वी आदि के पदों से निष्पन्न हुए प्रत्येक भंगों का और संयोगज दो आदि भंगों का बोलना यही भंग समुत्कीर्तनता है। भंगोपदर्शनता-सूत्र मात्र होने के कारण अनन्तरूप से उच्चरित हुए उन्ही-भंगों में से प्रत्येक भंग का अपने अभिधेयरूप कथन त्र्यणुकादि अर्थ के साथ जो उपदर्शन-बोलना है-वही भंगोपदर्शनता है।

અર્થપદ છે. આ અર્થપદની પ્રરૂપણા કરવી તેનું નામ જ 'અર્થપદ પ્રરૂપણતા' છે. આનુપૂર્વી આદિ આ સંજ્ઞા (નામ) છે. આ નામોનો જે ત્રિઅણુક આદિ વાચ્યાર્થ છે સંજ્ઞી છે. સંજ્ઞા સંજ્ઞીના સંબંધનું કથન જ સૌથી પહેલાં કરવું એજ અર્થપદપ્રરૂપણતા છે.

ભંગસમુત્કીર્તનતા-જે ભેદ રૂપ હોય તેનું નામ ભંગ છે. સમુદિત એજ આનુપૂર્વી આદિ પદોના સંભવિત ભેદોનું (વિકલ્પોનું) સારી રીતે ઉચ્ચારણ કરવું એટલે કે આનુપૂર્વી આદિના પદો વડે નિષ્પન્ન (ઉત્પન્ન) થયેલા પ્રત્યેક ભંગોનું અને સંયોગજનિત બે આદિ ભંગોનું કથ કરવું તેનું નામ જ ભંગસમુત્કીર્તનતા છે.

ભંગોપદર્શનતા-સૂત્રમાત્ર હોવાને કારણે અનન્તરરૂપે ઉચ્ચરિત થયેલા એજ ભંગોમાંથી પ્રત્યેક ભંગનું પોતાના અભિધેય રૂપ ત્રિઅણુક આદિ અર્થની સાથે જે ઉપદર્શન (ઉચ્ચારણ) કરવું તેનું નામ જ ભંગોપદર્શનતા છે.

ननु भङ्गसमुत्कीर्त्तनभङ्गोपदर्शनयोः को भेदः ? इति चेत् उच्यते–भङ्गसमुत्कीर्त्तने भङ्गविषयकं सूत्रमेवोच्चारणीयम्। भङ्गोपदर्शने तु तदेव स्वविषयभूतेनार्थेन सहोच्चारयितव्यमिति। तथा-समवतारः=तेषामेवानुपूर्व्यादि द्रव्याणां स्वस्थानपरस्थानान्तर्भावचिन्तनप्रकारः। इति चतुर्थो भेदः ४। तथा–अनुगमः–अनुगमनम्, अनुगमः=तेषामेवानुपूर्व्यादिद्रव्याणां सत्पदप्ररूपणादिभिरनुयोगद्वारैर्विचारणम्। इति पञ्चमोभेदः ५। एभिः पञ्चभिप्रकारैर्नैगमव्यवहारनयमतेन अनौपनिधिक्याः द्रव्यानुपूर्व्याः स्वरूपं निरूप्यत इति भावः ॥सू० ७४॥

तत्र प्रथमं भेदमाह—

मूलम्–से किं तं नेगमववहाराणं अट्ठपयपरूवणया ? नेगमववहाराणं अट्ठपयपरूवणया–तिपएसिए आणुपुव्वी, चउप्पएसिए आणुपुव्वी जाव दसपएसिए आणुपुव्वी, संखेज्जपएसिए

शंकाः–भंगसमुत्कीर्तन और भंगोपदर्शन इन दोनों में क्या भेद है ? भंगसमुत्कीर्तन में भंग विषयक सूत्र का ही केवल उच्चारण करना होता है और भंगोपदर्शन में वही सूत्र अपने विषयभूत अर्थ के साथ बोला जाता है। उन्हीं आनुपूर्वी आदि द्रव्यों का स्वस्थान और परस्थान में अन्तर्भाव होने के विचारों का जो प्रकार है उसका नाम समवतार है। उन्हीं आनुपूर्वी आदि द्रव्यों का जो सत्पदकी प्ररूपणा आदि वाले अनुयोगद्वारों से विचार करना होता है वह अनुगम है। इन पांच प्रकारों से नैगमव्यवहार नय के मत से मान्य अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वीका स्वरूप निरूपित होता है। ॥सू०७४॥

શંકા- ભંગ સમુત્કીર્તન અને ભંગોપદર્શન વચ્ચે શો ભેદ છે ?

ઉત્તર–ભંગ સમુત્કીર્તનમાં ભંગવિષયક સૂત્રનું જ કેવળ ઉચ્ચારણ કરવાનું હોય છે. પરન્તુ ભંગોપદર્શનમાં એજ સૂત્ર પોતાના વિષયભૂત અર્થની સાથે ઉચ્ચારિત થાય છે.

સમવતાર–એજ આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્યોનો સ્વસ્થાન અને પરસ્થાનમાં અન્તર્ભાવ થવાના વિચારોનો જે પ્રકાર છે તેનું નામ 'સમવતાર' છે.

અનુગમ–એજ આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્યો જેને સત્પદની પ્રરૂપણા આદિવાળા અનુયોગ દ્વારોથી વિચાર કરાય છે તેનું નામ અનુગમ છે.

આ પાંચ પ્રકારે નૈગમ અને વ્યવહાર નયના મતસંમત અનૌપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ નિરૂપિત થાય છે, ॥સૂ૦૭૪॥

आणुपुव्वी, असंखिज्जपएसिए आणुपुव्वी, अणंतपएसिए आणुपुव्वी, परमाणुपोग्गले अणाणुपुव्वी, दुपएसिए अवत्तव्वए, तिपएसिया आणुपुव्वीओ जाव अणंतपएसियाओ आणुपुव्वीओ, परमाणुपोग्गला अणाणुपुव्वीओ, दुपएसियाइं अवत्तव्वयाइं। से तं णेगमववहाराणं अट्ठपयपरूवणया ॥सू० ७५॥

छाया—अथ का सा नैगमव्यवहारयोः अष्टपदप्ररूपणता ? नैगमव्यवहारयोः अष्टपदप्ररूपणता-त्रिप्रदेशिक आनुपूर्वी, चतुष्प्रदेशिक आनुपूर्वी, यावद् दशप्रदेशिक आनुपूर्वी, संख्येयप्रदेशिक आनुपूर्वी, असंख्येयप्रदेशिक आनुपूर्वी, अनन्तप्रदेशिक आनुपूर्वी, परमाणुपुद्गल अनानुपूर्वी, द्विप्रदेशिकः अवक्तव्यकः। त्रिप्रदेशिका आनुपूर्व्यो यावत् अनन्तप्रदेशिका आनुपूर्व्यः। परमाणुपुद्गलाः अनानुपूर्व्यः। द्विप्रदेशिकादीनि अवक्तव्यकानि। सैषा नैगमव्यवहारयो अर्थपदप्ररूपणा॥सू० ७५॥

टीका—शिष्य : पृच्छति-अथ का सा नैगमव्यवहारसम्मता अर्थपदप्ररूपणतारूपाऽऽनुपूर्वी ? इति। उत्तरमाह-नैगमव्यवहारसम्मताऽर्थपदप्ररूपणतारूपाऽऽनुपूर्वी एवं विज्ञेया, तथाहि-त्रिप्रदेशिकः-त्रयःप्रदेशाः=परमाणुलक्षणा विभागा यस्मिन् स त्रिप्रदेशिकः=प्रदेशत्रयात्मकः स्कन्धः आनुपूर्वी बोध्या। एवं चतुष्प्रदे-

---

अब सूत्रकार प्रथम भेदका वर्णन करते हैं-

'से किं तं नेगमववहाराणं इत्यादि'।

शब्दार्थः-(से किं तं नेगमववहाराणं अट्ठपयपरूवणया) हे भदन्त! पूर्वकथित नैगम व्यवहारनयसंमत अर्थपद प्ररूपणतारूप आनुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

उत्तरः-(नेगमववहाराणं अट्ठपयपरूवणया) नैगम व्यवहारनय संमत अर्थपद प्ररूपणतारूप आनुपूर्वीका स्वरूप इस प्रकार से है (तिपएसिए आणुपुव्वी, चउप्पएसिए आणुपुव्वी, जाव दसपएसिए आणु-

---

હવે સૂત્રકાર પ્રથમ ભેદનું વર્ણન કરે છે-

"से किं तं नेगमववहाराणं" इत्यादि—

શબ્દાર્થ-(से किं तं नेगमववहाराणं अट्ठपयपरूवणया ?) હે ભગવન્! પૂર્વકથિત નૈગમવ્યવહાર નયસંમત અર્થપદ પ્રરૂપણતા રૂપ આનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(तिपएसिए आणुपुव्वी, चउप्पएसिए आणुपुव्वी, जाव दसपएसिए

शिकःस्कन्धो यावत् दशप्रदेशिकः आनुपूर्वी बोध्या यावत् संख्यातप्रदेशिक आनुपूर्वी, असंख्यातप्रदेशिकः आनुपूर्वी, अनन्तप्रदेशिकः आनुपूर्वी बोध्या।

परमाणुपुद्गलः=एकः परमाणुस्तु अनानुपूर्वी बोध्या। परमाण्वन्तरा-संस्पृष्टत्वात्, द्विप्रदेशिकः=परमाणुद्वयविभागवान् स्कन्धस्तु आनुपूर्वितया अनानुपूर्वितया वा वक्तुमशक्यः, अतः सोऽवक्तव्यकः। यस्मादेवं तस्मात्-त्रिप्रदेशिकाः सर्वेऽपि स्कन्धा आनुपूर्व्यो भवन्ति, यावत् अनन्तप्रदेशिकाः सर्वेऽपि स्कन्धा आनुपूर्व्यो भवन्ति।

पुव्वी संखेज्ज पएसिए आणुपुव्वी, असंखिज्जपएसिए आणुपुव्वी, अणंत-पएसिए आणुपुव्वी) तीन प्रदेशोंवाला त्र्यणुक स्कंध आनुपूर्वी है चार प्रदेशोंवाला चतुष्प्रदेशिक स्कंध आनुपूर्वी है। यावत् दश प्रदेशोंवाला स्कंध आनुपूर्वी है यावत् संख्यातप्रदेशोंवाला स्कंध आनुपूर्वी है, असंख्य प्रदेशोंवाला स्कंध आनुपूर्वी है। ऐसा जानना चाहिये।

(परमाणुपोग्गले आणाणुपुव्वी, दुपएसिए अवत्तव्वए) परन्तु जो एक परमाणु है वह आनुपूर्वी नहीं है। क्योंकि वह और किसी दूसरे परमाणु से संस्पृष्ट नहीं है। द्विप्रदेशवाला जो स्कंध है वह आनुपूर्वीरूप से और अनानुपूर्वीरूप से वक्तुं अशक्य है इसलिये वह अवक्तव्य है। जब ऐसी बात है तो (तिपएसिया आणुपुव्वीओ जाव अणंतपएसियाओ आणुपुव्वीओ) तीन प्रदेशवाले समस्तस्कंध आनुपूर्वी हैं-यावत् अनन्त प्रदेशवाले जितने भी स्कंध हैं वे सब आनुपूर्वियां है। (परमाणु

આણુપુવ્વી, સંખેજ્જપએસિએ આણુપુવ્વી, અસંખિજ્જપએસિએ આણુપુવ્વી, અણંત પએસિએ આણુપુવ્વી) ત્રણ પ્રદેશોવાળો ત્ર્યણુક સ્કંધ આનુપૂર્વી છે, ચાર પ્રદેશોવાળો ચતુષ્પ્રદેશિક સ્કંધ આનુપૂર્વી છે, દસ પર્યન્તના પ્રદેશોવાળો સ્કંધ આનુપૂર્વી છે, સંખ્યાત પ્રદેશોવાળો સ્કંધ આનુપૂર્વી છે, અસંખ્યાત પ્રદેશોવાળો સ્કંધ આનુપૂર્વી છે અને અનંત પ્રદેશોવાળો સ્કંધ આનુપૂર્વી છે, એમ સમજવું

(परमाणुपोग्गले अणाणुपुव्वी, दुपएसिए अवत्तव्वए) પરન્તુ જે કેવળ એક પરમાણુ છે તે આનુપૂર્વી રૂપ નથી, કારણ કે તે કોઈ બીજા પરમાણુ વડે સંસ્પૃષ્ટ હોતું નથી બે પ્રદેશવાળો જે સ્કંધ છે તે આનુપૂર્વી રૂપે અને અનાનુપૂર્વી રૂપે વ્યક્ત થવો અશકય છે તેથી તે અવકતવ્ય છે જો એવી વાત છે તો (તિપએસિયા આણુપુવ્વીઓ જાવ અણંતપએસિયાઓ આણુપુવ્વીઓ) ત્રણ પ્રદેશોવાળા સમસ્ત સ્કંધો આનુપૂર્વીઓ રૂપ છે, અને અનંત પર્યન્તના પ્રદેશોવાળા જેટલા સ્કંધો છે તેઓ પણ આનુપૂર્વીઓ રૂપ છે.

परमाणुपुद्गलास्तु अनानुपूर्व्यो भवन्ति। द्विप्रदेशिकानि=द्व्यणुकस्कन्धद्रव्याणि आनुपूर्वितयाऽनानुपूर्वितया वा अवक्तव्यकानि भवन्ति।

अत्रेदं बोध्यम्-आनुपूर्वी परिपाटीत्युच्यते। सा च यत्रैवादि मध्यान्तलक्षणः सम्पूर्णो गणनानुक्रमोऽस्ति तत्रैवोपपद्यते, नान्यत्र। एवं च यत्र स्कन्ध आदिर्मध्योऽन्तश्च भवति स स्कन्ध आनुपूर्वीत्युच्यते। आदिश्च यस्मात्परमस्ति पूर्वं नास्ति स बोध्यः। मध्यश्च यस्मात् पूर्वमस्ति परमप्यस्ति स बोध्यः। अन्तश्च यस्मात्पूर्वमस्ति परं नास्ति स बोध्यः। एतत्त्रितयं तु त्रिप्रदेशिकाद्यनन्तप्रदेशिकान्तेषु

पोग्गला अणाणुपुव्वीओ, दुपएसियाइं अवत्तव्वयाइं) जो भिन्न २ असंबद्ध अवस्थावाले-पुद्गल परमाणु हैं वे आनुपूर्वियां नहीं हैं। (दुपएसियाइं अवत्तव्वयाइं) और जो दो प्रदेशवाले पुद्गल स्कंध हैं वे आनुपूर्वी रूप से और अनानुपूर्वी रूप से वक्तव्य नहीं होने के कारण अवक्तव्य हैं।

यहां यह समझना चाहिये-कि आनुपूर्वी नाम परिपाटी का है। यह परिपाटीरूप आनुपूर्वी वहीं पर होती है कि जहां पर आदि मध्य और अन्त रूप गणना का संपूर्ण अनुक्रम होता है। अन्यत्र नहीं होती। इस प्रकार जहां स्कंध में आदि, मध्य और अंत होता है। वह स्कंध आनुपूर्वी ऐसा कहलाता है। जिससे पर है और पूर्व नहीं है वह आदि शब्द का वाच्यार्थ-पदका अर्थ है। जिससे पूर्व है और पर भी है वह मध्य शब्द का वाच्यार्थ है। और जिससे पूर्व है परन्तु पर नहीं है-वह अन्त

(परमाणुपोग्गला अणाणुपुव्वीओ, दुपएसियाइं अवत्तव्वयाइं) જે ભિન્ન ભિન્ન-અસંબદ્ધ અવસ્થાવાળા પુદ્ગલ પરમાણુઓ છે તેઓ આનુપૂર્વીઓ રૂપ નથી, અને જે બે પ્રદેશોવાળા પુદ્ગલસ્કંધો છે તેમને આનુપૂર્વી રૂપે અને અનાનુપૂર્વી રૂપે વ્યક્ત કરી શકાય એવાં ન હોવાથી અવકતવ્ય છે.

અહીં આનુપૂર્વીનો અર્થ પરિપાટી સમજવો તે પરિપાટી રૂપ આનુપૂર્વીનો ત્યાં જ સદ્ભાવ હોય છે કે જ્યાં આદિ, મધ્ય અને અન્ત રૂપ ગણનાનો સંપૂર્ણ અનુક્રમ શકય હોય છે-જ્યાં આ અનુક્રમ સંભવિત હોતો નથી ત્યાં આનુપૂર્વી પણ સંભવી શકતી નથી આ પ્રકારે જે સ્કંધમાં આદિ, મધ્ય અને અન્ત હોય છે, તે સ્કન્ધને આનુપૂર્વી રૂપ કહી શકાય છે. જેની પૂર્વે કંઈ ન હોય પણ પછી કંઈક હોય, એવો 'આદિ' પદનો વાચ્યાર્થ છે. જેની પૂર્વે કંઈક હોય અને પછી પણ કંઈક હોય, એવો 'મધ્ય' પદનો વાચ્યાર્થ છે. જેની પૂર્વે કંઈક હોય પણ પછી કંઈ પણ ન હોય, એવો

स्कन्धेष्वस्ति, अतस्तेषु प्रत्येकं स्कन्धः आनुपूर्वी भवति। परमाणुपुद्गले तु एतत्त्रितयं नास्ति, अतः सोऽनानुपूर्वी बोध्यः। द्विप्रदेशिकस्तु अवक्तव्यको भवति। यद्यपि तत्र परमाणुद्वयस्य सद्भावादन्योऽन्यापेक्षया पूर्वपश्चाद्भावोऽस्ति, अतस्तत्र पूर्वस्य अनु-अनुपूर्वं तस्य भाव आनुपूर्वी इत्येवंरूपाऽऽनुपूर्वी सुतरां सिध्यति, तथापि मध्याभावात् सम्पूर्णगणनानुक्रमो नास्ति, अतः स आनुपूर्वीत्वेन वक्तुमशक्यः।

ननु माऽस्तु सम्पूर्णगणनानुक्रमस्तथापि पूर्वपश्चादभावरूपाया आनुपूर्व्या विद्यमानत्वादयमानुपूर्वी भवितु मर्हति? इति चेदुच्यते, यथा मेरुपर्वतादौ क्वचित्

शब्द का वाच्यार्थ है। ये तीनों आदि मध्य और अन्त त्रिप्रदेशिक आदि स्कंध से लेकर अनन्त प्रदेशतक के स्कंधों में होते हैं। इसलिये इनमें प्रत्येक स्कंध आनुपूर्वीरूप होता है। परन्तु जो एक परमाणु है उसमें ये तीनों नहीं होते हैं। इसलिये वह आनुपूर्वी नहीं होता है। द्विप्रदेशिक पुद्गलस्कंध अवक्तव्य होता है। यद्यपि द्विप्रदेशिक स्कंध में दो परमाणु संश्लिष्ट रहते हैं इसलिये वहां अन्योन्यापेक्षा से पूर्व पश्चाद्भाव है। अतः पूर्वस्य अनु-पूर्व के पीछे-अनुपूर्व है और इस अनुपूर्व का जो भाव है वह आनुपूर्वी है। इत्येवं रूपा आनुपूर्वी सुतरां वहां सिद्ध हो जाती है, तो भी मध्य का अभाव होने से सम्पूर्ण गणनानुक्रम वहां नहीं बनता है। इसलिये वह गणनानुक्रम आनुपूर्वी रूप से वक्तुं अशक्य है।

'अन्त' पहनो वाच्यार्थ छे. आ त्रणेनो (आदि, मध्य अने अन्तनो) सद्भाव त्रिप्रदेशिक आदि स्कंधथी लइने अनंत प्रदेशिक पर्यन्तना स्कंधोमां होय छे. तेथी ते प्रत्येक स्कंध आनुपूर्वी रूप होय छे. परन्तु जे एक परमाणु छे तेमां आदि, मध्य अने अन्त, आ त्रणेनो अभाव होय छे, तेथी एक परमाणु आनुपूर्वी रूप होतु नथी द्विप्रदेशिक स्कंधने आनुपूर्वी रूपे अथवा तो अनानुपूर्वी रूपे व्यकत करी शकतो नथी तेथी तेने अवकतव्य कह्यो छे जे के द्विप्रदेशिक स्कंधमां बे परमाणु संश्लिष्ट रहे छे, ते कारणे तेमां अन्योन्यनी अपेक्षाओ पूर्वपश्चाद्भावनो (आदि अने अन्तनो) सद्भाव होय छे, परन्तु त्यां मध्यनो सद्भाव होतो नथी अनुपूर्वनी व्युत्पत्ति आ प्रमाणे थाय छे-"पूर्वस्य अनु अनुपूर्वः" "पूर्वनी पाछळनुं एटले अनुपूर्व" आ अनुपूर्वनो जे भाव छे तेनुं नाम आनुपूर्वी छे. आ प्रकारनी आनुपूर्वी तो अहीं (द्विप्रदेशी स्कंधमां) सरळताथी सिद्ध थई जाय छे, छतां पण मध्यनो अभाव होवाथी त्यां संपूर्ण गणनानुक्रम संभवी शकतो नथी तेथी ते गणनानुक्रम आनुपूर्वी रूपे व्यकत थवो अशकय छे.

कमपि पदार्थं मध्यत्वेनावधीकृत्य पूर्वादिविभागो लोकैः क्रियते, तथैवाऽत्रापि यदि स्यात्तर्हि स्यादेवम्। नचैवमस्ति। अत्र तु मध्ये कोऽपि नास्ति, यमवधीकृत्याऽसाकल्येन पूर्वपश्चाद्भावः परस्परानपेक्षया संभवेत्। अर्थात्-यत्राद्यचरमपरमाण्वोर्मध्येऽन्यः परमाणुर्विद्यते, तत्र-मध्यगतं परमाणुमाश्रित्य यः पूर्वपश्चाद्भावो भवति स एवानुपूर्वी भवति, नान्यः अतोऽयमानुपूर्वीत्वेन वक्तुमशक्यः।

शंकाः-संपूर्ण गणनाक्रम भले न हो-परन्तु पूर्व पश्चाद्भावरूप आनुपूर्वी के विद्यमान होने से यह द्विप्रदेशी स्कंध आनुपूर्वी हो सकता है।

उत्तरः-जिस प्रकार मेरु पर्वत आदि में किसी स्थल पर किसी भी पदार्थ को मध्यरूप से मर्यादित करके लोग उससे पूर्व पश्चिमपर की विभाग करते हैं, उसी प्रकार यहां पर भी-द्विप्रदेशिक स्कंध में भी यदि ऐसा होता तो ऐसा हो सकता अर्थात् आनुपूर्वित्व आ सकता। परन्तु ऐसा तो है नहीं। क्यों कि यहां द्विप्रदेशिक स्कंध में मध्य में कोई भी नहीं है कि जिसे मर्यादित करके उस स्कंध में पूर्व पर भाव परस्पर की अनपेक्षा के समग्र भाव से बन जावे। तात्पर्य कहनेका यह है कि जहां पर आदि अंतके दो परमाणुओं के बीच में एक तीसरा परमाणु मौजूद रहता है वहां पर मध्य गत परमाणु को अवधिभूत मान कर जो पूर्व पश्चाद्भाव होता है वही आनुपूर्वी होता है। अन्य दूसरा नहीं। इसलिये द्विप्रदेशी स्कंध आनुपूर्वीरूप से वक्तुं अशक्य है।

શંકા-સંપૂર્ણ ગણનાનુક્રમ ભલે ન હોય પણ આદિ અને અન્તરૂપ-પૂર્વપશ્ચાદ્ભાવ રૂપ આનુપૂર્વી વિદ્યમાન હોવાથી આ દ્વિપ્રદેશી સ્કંધ આનુપૂર્વી રૂપ સંભવી શકે છે તો તેને આનુપૂર્વી રૂપ કહેવામાં શો વાંધો નડે છે?

ઉત્તર-જે રીતે મેરુ પર્વત આદિ સ્થળની મધ્યમાં આવેલા કોઇ પદાર્થને મધ્યભાગ રૂપે મર્યાદિત કરીને લોકો તેના પૂર્વ પશ્ચિમ રૂપ વિભાગ પાડે છે અને મધ્યસ્થ સ્થળની પૂર્વે આવેલા ભાગોને પૂર્વના ભાગો રૂપે અને પશ્ચિમે આવેલા સ્થળોને પશ્ચિમના ભાગો રૂપે ઓળખે છે, એજ પ્રમાણે દ્વિપ્રદેશી સ્કન્ધમાં પણ મધ્યભાગનો સદ્ભાવ હોતતો એવું થઇ શકત બનત-તેના પૂર્વ-પશ્ચિમરૂપ વિભાગ પડી શકત-અને તો તેમાં આનુપૂર્વીત્વ સંભવી શકત, પરન્તુ એવું તો તેમાં શક્ય નથી, કારણ કે દ્વિપ્રદેશિક સ્કન્ધમાં મધ્યમાં એવું કંઇ પણ નથી કે જેને મર્યાદિત કરીને તે સ્કન્ધમાં પૂર્વ પર ભાવ પરસ્પરની અનપેક્ષા પૂર્વક સમગ્રરૂપે શક્ય બને આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે જ્યાં આદિ અને અન્તના બે પરમાણુઓની વચ્ચે એક ત્રીજું પરમાણુ મૌજૂદ હોય છે, ત્યાં મધ્યના પરમાણુને અવધિભૂત (મર્યાદારૂપ) માનીને પૂર્વપશ્ચાદ્ભાવ શક્ય બને છે અને ત્યારે જ અનુપૂર્વી સંભવી શકે છે-તે સિવાય આનુપૂર્વીત્વ શક્ય બનતું નથી. તે કારણે દ્વિપ્રદેશી સ્કંધને આનુપૂર્વીરૂપે વ્યક્ત કરી શકતો નથી.

ननु तर्हि परमाणुपुद्गलवत् अनानुपूर्वीत्वेन कथं नोच्यते ? इति चेदाह-परस्परापेक्षया पूर्वपश्चाद्भावमात्रस्य सद्भावादयमनानुपूर्वीत्वेनापि वक्तुं न शक्यते। इत्थमानुपूर्वीत्वेन अनानुपूर्वीत्वेन च वक्तुमशक्यत्वादवक्तव्यक एव द्व्यणुकस्कन्धः। अनेन चेदमायातं-यत् त्रिप्रदेशिकादौ आदिमध्यान्तभावस्य विद्यमानतयाऽसाकल्येन पूर्वपश्चाद्भावस्य सत्त्वात् त्रिप्रदेशिकादिः स्कन्ध एवानुपूर्वी, परमाणुपुद्गलस्त्वनानुपूर्वी, द्व्यणुकस्त्ववक्तव्यक इति। एवं चात्र संज्ञासंज्ञिसम्बन्धकथनरूपाऽर्थपदप्ररूपणा कृता भवति।

शंका-जब यह द्विप्रदेशिकस्कंध आनुपूर्वीरूप से नहीं कहा जा सकता है तो फिर इसे पुद्गलपरमाणु की तरह अनानुपूर्वीरूप से क्यों नहीं कह देते हैं ?

उत्तर-परस्पर की अपेक्षा से इसमें पूर्वपश्चाद्भाव मात्र का जब सद्भाव है तो फिर इसे अनानुपूर्वीरूप से भी कैसे कहा जा सकता है?। इस प्रकार आनुपूर्वी और अनानुपूर्वीरूप से यह द्विप्रदेशिकस्कंध वक्तुं अशक्य होने से अवक्तव्य कोटि में मानलिया गया है। इस कथन से यह बात आई कि त्रिप्रदेशिक आदि स्कंध में आदि, मध्य और अन्त-भाव की विद्यमानता होने से समग्र रूपमें पूर्वपश्चाद्भाव मौजुद है। यह त्रिप्रदेशिक आदि स्कंध ही आनुपूर्वी है। और परमाणु पुद्गल अनानुपूर्वी है तथा द्व्यणुकस्कंध अवक्तव्य है। इस प्रकार यहां पर संज्ञासंज्ञि सम्बन्धरूप अर्थ पद की प्ररूपणा हो जाती है।

શંકા-જો દ્વિપ્રદેશી સ્કંધ આનુપૂર્વી રૂપ કહી શકાતા નથી, તો તેને પુદ્ગલ પરમાણુની જેમ અનાનુપૂર્વી રૂપ કહેવામાં શો વાંધો છે ?

ઉત્તર-પરસ્પરની અપેક્ષાએ તેમાં પૂર્વપશ્ચાદ્ભાવ માત્રનો જ જો સદ્ભાવ છે તો તેને અનાનુપૂર્વી રૂપ પણ કેવી રીતે કહી શકાય ? આ રીતે આ દ્વિપ્રદેશી સ્કંધ આનુપૂર્વી રૂપ પણ કહી શકાય તેમ નથી અને અનાનુપૂર્વી રૂપ પણ કહી શકાય તેમ નથી, તે કારણે તેને અવક્તવ્ય કોટિમાં ગણાવવામાં આવ્યો છે. આ કથન દ્વારા એજ વાત સિદ્ધ થાય છે કે ત્રિપ્રદેશિક આદિ, સ્કંધમાં આદિ મધ્ય અને અન્ત ભાવની વિદ્યમાનતા હોવાથી તેમાં સમગ્રરૂપે પૂર્વપશ્ચાદ્ભાવ મોજૂદ છે. તેથી આ ત્રિપ્રદેશિક આદિ સ્કંધજ આનુપૂર્વી રૂપ છે, અને પરમાણુ પુદ્ગલ અનાનુપૂર્વી રૂપ છે તથા દ્વિપ્રદેશી સ્કંધ અવક્તવ્ય કોટિનો છે. આ પ્રકારે અહીં સંજ્ઞા સંજ્ઞી સંબંધ રૂપ અર્થપદની પ્રરૂપણા થઈ જાય છે.

ननु 'त्रिप्रदेशिक आनुपूर्वी' इत्यादेकवचनप्रदर्शनेनैव संज्ञासंज्ञिसम्बन्धकथनं सिद्धम्, कथं पुनस्त्रिप्रदेशिका आनुपूर्व्यः इत्यादि बहुवचनान्तनिर्देशः कृतः? इति चेदुच्यते–आनुपूर्व्यादि द्रव्याणां प्रतिभेदमनन्तव्यक्तिरूपतां ख्यापनार्थं नैगमव्यवहारयोरित्थंभूताऽभ्युपगमप्रदर्शनार्थं च बहुवचनान्तत्वेन निर्देशः कृत इति नास्ति कश्चिद् दोषः।

शंका–"त्रिप्रदेशिक आनुपूर्वी" इत्यादि एकवचन के कथन से ही संज्ञा संज्ञी सम्बन्धका कथन जब सिद्ध हो जाता है तब फिर क्यों सूत्रकार ने "त्रिप्रदेशिका आनुपूर्व्यः" तीन इत्यादि बहुवचनान्त पद का निर्देश किया?

उत्तर–आनुपूर्वी आदि द्रव्यों का हरएक भेद अनन्त व्यक्तिरूप है इस बात को ख्यापनकरने के लिये और नैगम एवं व्यवहार नय का ऐसा सिद्धान्त है इस बात को प्रदर्शित करने के लिये बहुवचनका प्रयोग किया है। तात्पर्य कहने का यह है कि "त्रिप्रदेशा आनुपूर्व्यः" ऐसा जो सूत्रकारने कथन किया है उससे वे यह कहना चाहते हैं कि त्रिप्रदेशिक एक द्रव्यरूप एक ही आनुपूर्वी नहीं है किन्तु त्रिप्रदेशिक द्रव्य अनन्त हैं–अतः अनन्त आनुपूर्वियां हैं। इसलिये त्रिप्रदेशिकरूप भिन्न २ अनन्त आनुपूर्वियों की सत्ता सूचित करनेके लिये "त्रिप्रदेशिका आनुपूर्व्यः" ऐसा बहुवचनान्त पद का प्रयोग किया गया है।

શંકા–'ત્રિપ્રદેશિક ઇત્યાદિ એક વચનના કથન દ્વારા જ સંજ્ઞા સંજ્ઞી સંબંધનું કથન જો સિદ્ધ થઈ જાય છે તો સૂત્રકારે "त्रिप्रदेशिका आनुपूर्व्यः" 'ત્રિપ્રદેશિક આનુપૂર્વીઓ' ઇત્યાદિ બહુવચનાન્ત પદનો નિર્દેશ શા કારણે કર્યો છે?

ઉત્તર–'આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્યોનો પ્રત્યેક ભેદ અનંત વ્યક્તિરૂપ (પદાર્થરૂપ) છે,' એ વાતનું પ્રતિપાદન કરવાને માટે અને નૈગમ તથા વ્યવહાર નયનો એવો સિદ્ધાંત છે એ વાતને પ્રદર્શિત કરવા માટે બહુવચનનો પ્રયોગ પણ કરવામાં આવ્યો છે આ કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે "त्रिप्रदेशाः आनुपूर्व्यः" આ પ્રકારનું સૂત્રકારે જે કથન કર્યું છે તેના દ્વારા તેઓ એ વાત પ્રકટ કરવા માગે છે કે ત્રિપ્રદેશિક એક દ્રવ્યરૂપ એક જ આનુપૂર્વી નથી પરન્તુ ત્રિપ્રદેશિક દ્રવ્ય અનંત હોવાને લીધે અનન્ત આનુપૂર્વીઓ છે. તેથી ત્રિપ્રદેશિક રૂપ જુદી જુદી અનંત આનુપૂર્વીઓની સત્તા (અસ્તિત્વ) સૂચિત કરવાને માટે "त्रिप्रदेशिका आनुपूर्व्यः" "ત્રિપ્રદેશિક આનુપૂર્વીઓ" એવાં બહુવચનાન્ત પદનો પ્રયોગ કરવામાં આવ્યો છે. એજ પ્રમાણે આદ

ननु अनानुपूर्वीद्रव्यमेकेन परमाणुना निष्पद्यते, अवक्तव्यक द्रव्यं तु परमाणुद्वयेन, आनुपूर्वीद्रव्यं तु जघन्यतोऽपि परमाणुत्रयेण, एवं द्रव्यवृद्ध्या पूर्वानुपूर्वीक्रममाश्रित्य प्रथममनानुपूर्वीद्रव्यं वक्तव्यम्, ततोऽवक्तव्यकद्रव्यम्, ततश्चानुपूर्वीद्रव्यम्। पश्चानुपूर्वीक्रममाश्रित्य तु प्रथममानुपूर्वी द्रव्यं वक्तव्यम्, ततोऽवक्तव्यकद्रव्यम्, ततश्चानुपूर्वीद्रव्यम्। अत्र पुनः क्रमद्वयमुल्लङ्घ्य निर्देशः कथं कृत? इति चेदुच्यते–

इसी प्रकार से चार प्रदेशोंवाला एक स्कंध एक आनुपूर्वी है–इस प्रकार से चार प्रदेशोंवाले स्कंध भी अनन्त हैं अतः वे अनन्तानुपूर्वियां हैं। अन्यत्र भी इसी प्रकार से उद्भावित कर लेना चाहिये।

शंका–अनानुपूर्वी जो द्रव्य है वह एक परमाणु से निष्पन्न होता है अर्थात् एक परमाणु अनानुपूर्वी है, और अवक्तव्य द्रव्य परमाणुद्वय के सम्बन्ध से निष्पन्न होता है। अर्थात् संश्लिष्ट परमाणुद्वयस्कंध अवक्तव्य है, तथा कम से कम भी आनुपूर्वी द्रव्य परमाणुत्रय से निष्पन्न होता है, अर्थात् परमाणुत्रय के संश्लेष से सब से जघन्य आनुपूर्वी निष्पन्न होती है इस प्रकार द्रव्य की वृद्धि से पूर्वानुपूर्वी क्रम को लेकर सूत्रकार को चाहिये था कि वे पहिले अनानुपूर्वी द्रव्य का कथन करते, इसके बाद अवक्तव्य द्रव्यका कथन करते और इसके बाद आनुपूर्वी द्रव्य का कथनकरते हैं। यदि पश्चानुपूर्वी के क्रम को लेकर उन्हें कथन करना

પ્રદેશોવાળો એક સ્કંધ એક આનુપૂર્વી રૂપ છે અને ચાર પ્રદેશોવાળા જે અનંત સ્કંધો છે તેઓ અનંત આનુપૂર્વી રૂપ છે એજ પ્રમાણે અનંત પ્રદેશી પર્યન્તના સ્કંધો વિષે પણ સમજી લેવું.

શંકા–અનાનુપૂર્વી જે દ્રવ્ય છે તે એક પરમાણુમાંથી નિષ્પન્ન થાય છે–એટલે કે એક પરમાણુ અનાનુપૂર્વી રૂપ છે, અને અવક્તવ્ય દ્રવ્ય બે પરમાણુના સંબંધથી નિષ્પન્ન થાય છે–એટલે કે સંશ્લિષ્ટ પરમાણુ દ્વયસ્કંધ અવક્તવ્ય છે–એટલે કે દ્વિપ્રદેશી સ્કંધ આનુપૂર્વી રૂપ પણ નથી અને અનાનુપૂર્વી રૂપ પણ નથી આનુપૂર્વીદ્રવ્ય ઓછામાં ઓછા ત્રણ પરમાણુ વડે નિષ્પન્ન થાય છે એટલે કે ત્રણ પરમાણુના સંશ્લેષથી જઘન્યમાં જઘન્ય રૂપ આનુપૂર્વી નિષ્પન્ન થાય છે. આ રીતે દ્રવ્યની વૃદ્ધિ દ્વારા પૂર્વાનુપૂર્વી ક્રમની અપેક્ષાએ સૂત્રકારે પહેલાં અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યનું કથન કરવું જોઈતું હતું ત્યાર પછી અવક્તવ્ય દ્રવ્યનું કથન કરવું જોઈતું હતું અને ત્યાર બાદ આનુપૂર્વી દ્રવ્યનું કથન કરવું જોઈતું હતું જે પશ્ચાનુપૂર્વીના ક્રમથી કથન કરવું હોય

आनुपूर्वीद्रव्यापेक्षयाऽनानुपूर्वीद्रव्याणि अल्पानि, अनानुपूर्वीद्रव्यापेक्षयाऽवक्तव्यकद्रव्याणि अल्पेतराणि, इत्येव' द्रव्यहान्या पूर्वानुपूर्वीक्रमनिर्देश एवात्र वर्तते, इति नास्ति कश्चिद्दोषः। सम्प्रति प्रकृतमुपसंहरन्नाह–सैषा नैगमव्यवहारसम्मताऽर्थपदप्ररूपणतारूपाऽनौपनिधिकी आनुपूर्वी ॥सू० ७५॥

था तो–पहिले आनुपूर्वी द्रव्य का कथन करते बाद में अवक्तव्य द्रव्य का कथन करते और फिर बाद में अनानुपूर्वी द्रव्य का कथन करते। परन्तु उन्होंने इन दोनों क्रमों का उल्लंघन कर निर्देश किया है सो इसका क्या कारण?

उत्तर–सूत्रकार को इस प्रकार के निर्देश से यह बतलाना इष्ट है कि आनुपूर्वी द्रव्य की अपेक्षा अनानुपूर्वी द्रव्य थोडे हैं, और अनानुपूर्वी द्रव्य की अपेक्षा अवक्तव्यक द्रव्य और भी कम हैं। इस प्रकार द्रव्य की हानि से सूत्रकारने यहां पूर्वानुपूर्विक्रम को लेकर उसी का निर्देश वक्तव्यरूप से इष्ट किया है। अतः इस प्रकार निर्देश में कोई दोष नहीं है। (से तं नेगमववहाराणं अट्ठपयपरूवणया) इस प्रकार से नेगम व्यवहारनय संमत यह पूर्वप्रक्रान्त अर्थ पदप्ररूपणतारूप का अनौपनिधिकी आनुपूर्वी है।

भावार्थ–सूत्रकारने इस सूत्र द्वारा अर्थपद प्ररूपणा का क्या स्वरूप है यह विषय स्पष्ट किया है। त्र्यणुकस्कंध से लेकर अनन्त प्रदेशवाले

તો પહેલાં આનુપૂર્વીદ્રવ્યનું, ત્યાર બાદ અવ્યક્ત દ્રવ્યનું અને ત્યાર બાદ અનાનુપૂર્વ દ્રવ્યનું કથન કરવું જોઇતું હતું. પરન્તુ આ બે ક્રમમાંથી એક પણ ક્રમને અનુસરવાને બદલે તેમણે પહેલાં આનુપૂર્વીદ્રવ્યનું, ત્યાર બાદ અનાનુપૂર્વીનું દ્રવ્યનું અને છેલ્લે અવકતવ્ય દ્રવ્યનું કથન કર્યું છે. તો આમ કરવાનું શું કારણ હશે?

ઉત્તર–સૂત્રકાર આ પ્રકારના ક્રમ દ્વારા એ બતાવવા માગે છે આનુપૂર્વીદ્રવ્ય કરતાં અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય થોડું છે, અને અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય કરતાં અવક્તવ્ય થોડું છે આ રીતે સૂત્રકારે અહીં દ્રવ્યની હાનિની અપેક્ષાએ પૂર્વાનુપૂર્વી ક્રમનો આધાર લઈને ઉપયુક્ત ક્રમે તેની પ્રરૂપણા કરી છે. તેથી આ પ્રકારના નિર્દેશમાં કોઇ દોષ નથી.

(से तं नेगमववहाराणं अट्ठपयपरूवणया) આ પ્રકારનું નૈગમ અને વ્યવહારનય સંમત પૂર્વપ્રસ્તુત અર્થપદ પ્રરૂપણાનું રૂપ અનૌપધિકી આનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ છે.

ભાવાર્થ–સૂત્રકારે આ સૂત્ર દ્વારા અર્થપદ પ્રરૂપણાનું કેવું સ્વરૂપ છે તે વિષયને સ્પષ્ટ કર્યો છે. ત્રણ અણુવાળા (ત્રપ્રદેશી) સ્કંધથી લઈને અનંત

अस्याः प्रयोजनं किम् ? इति दर्शयितुमाह-

मूलम्-एयाए णं नेगमववहाराणं अट्ठपयपरूवणयाए किं पओयणं? एयाए णं नेगमववहाराणं अट्ठपयपरूवणयाए भंग-समुक्कित्तणया कज्जइ ॥सू०७६॥

जितने भी स्कंध हैं वे सब यहां "अर्थ" शब्द से गृहीत हुए हैं। इस अर्थ से युक्त अथवा इस अर्थ को विषय करनेवाला जो पद है उसका नाम अर्थपद है। इसकी प्ररूपणा का नाम अर्थ पद प्ररूपणा है। इस प्ररूपणा में पुद्गल परमाणु और द्विप्रदेशी स्कंध वर्जित हो जाते हैं। क्यों कि-एकपुद्गलपरमाणु आनुपूर्वीरूप नहीं है और द्विप्रदेशी स्कंध अवक्तव्य है। सब से जघन्य आनुपूर्वी का प्रारंभ त्रिप्रदेशी स्कंध से होता है। क्यों कि यहीं से क्रम की सम्पूर्ण गणना चलती है। गणना का तात्पर्य गिनती से है। आदि मध्य और अंत इस प्रकार से गणना जहां होती है वहीं पर आनुपूर्वीरूप परिपाटी मौजूद रहती है। यह अर्थ पद प्ररूपणारूप आनुपूर्वी नैगमनय और व्यवहारनय इन दोनों नयों को संमत है। ये अर्थ पद प्ररूपणारूप आनुपूर्वियां एक से लेकर अनन्त हैं। इसका कारण यह है कि त्रिप्रदेशी आदि स्कंध से लेकर अनन्त-प्रदेशी स्कंध तक के जितने भी स्कंध हैं वे सब अनन्त हैं। ॥सू० ७५॥

પર્યન્તના પ્રદેશવાળા જેટલા સ્કંધ છે, તે બધાંને લઈને અહીં "અર્થ" પદથી ગ્રહણ કરવામાં આવેલ છે. આ અર્થથી યુકત અથવા આ અર્થનું પ્રતિપાદન કરનારૂં જે પદ છે તેનું નામ 'અર્થપદ' છે. તેની પ્રરૂપણાનું નામ 'અર્થપદ પ્રરૂપણા' છે. આ પ્રરૂપણામાં પુદ્ગલ પરમાણુ અને દ્વિપ્રદેશી સ્કંધ વર્જિત થઈ જાય છે-એટલે કે તેમની પ્રરૂપણા થતી નથી, કારણ કે એક પુદ્ગલ પરમાણુ આનુપૂર્વી રૂપ નથી અને દ્વિપ્રદેશી સ્કંધ અવકતવ્ય છે. જઘન્યમાં જઘન્ય આનુપૂર્વીનો પ્રારંભ ત્રિપ્રદેશી સ્કંધથી થાય છે, કારણ કે ત્યાંથી જ ક્રમની સંપૂર્ણ ગણના ચાલુ થાય છે. (ગણના એટલે ગણતરી) આદિ, મધ્ય અને અન્ત, આ પ્રકારની ગણના જ્યાં સંભવિત હોય છે, ત્યાં જ આનુપૂર્વી રૂપ પરિપાટી મોજૂદ રહે છે. આ અર્થપદ પ્રરૂપણા રૂપ આનુપૂર્વી નૈગમનય અને વ્યવહારનય, આ બન્ને નયો દ્વારા સંમત (માન્ય) છે. આ અર્થપદ પ્રરૂપણારૂપ આનુપૂર્વીઓ એકથી લઈને અનંત પર્યન્તની છે, કારણ કે ત્રિપ્રદેશીથી લઈને અનંત પ્રદેશી સુધીના જેટલા સ્કંધ છે, તે બધાં અનંત છે. ॥સૂ૦૭૫॥

छाया—एतया खलु नैगमव्यवहारयोरर्थपदप्ररूपणतया किं प्रयोजनम्? एतया खलु नैगमव्यवहारयोरर्थपदप्ररूपणतया भङ्गसमुत्कीर्त्तनता क्रियते॥सू०७६॥

टीका—'एयाए णं' इत्यादि-

एतया नैगमव्यवहारसम्मतया अर्थपदप्ररूपणतया किं प्रयोजनम्=किं फलम्? इति शिष्यः पृच्छति। अथ-उत्तरयति-एतया नैगमव्यवहारसम्मतयाऽर्थपदप्ररूपणतया भङ्गसमुत्कीर्त्तनता क्रियते। अयं भावः-अर्थपदप्ररूपणतायां संज्ञासंज्ञिव्यवहारो निरूपितः। संज्ञासंज्ञिव्यवहारे सत्येव भङ्गकाः समुत्कीर्तयितुं शक्यन्ते, नान्यथा, संज्ञामन्तरेण निर्विषयाणां भङ्गानां प्ररूपणाया असंभवात्। तस्माद्

इसका प्रयोजन क्या है? इस बात को सूत्रकार अब प्रदर्शित करते हैं-'एयाएणं' इत्यादि।

शब्दार्थ-हे भदन्त! (एयाएणं नेगमववहाराणं अट्ठपयपरूवणयाए किं पओयणं) नैगम व्यवहारनय संमत इस अर्थ पद प्ररूपणता रूप आनुपूर्वी से क्या प्रयोजन सधता-निकलता-है।

उत्तर-(एयाएणं नेगमववहाराणं अट्ठपयपरूवणयाए भंगसमुक्कित्तणया कज्जइ) इस नैगमव्यवहारनय संमत अर्थ पद प्ररूपणतारूप आनुपूर्वी से भंग समुत्कीर्तनता की जाती है। तात्पर्य यह कि पहिले जो यह कहा गया है कि अर्थ पद प्ररूपणता में संज्ञा संज्ञि व्यवहार निहित है। क्यों कि उसी से संज्ञा संज्ञि व्यवहार चलता है। और इस व्यवहार के होने पर ही भंगों का समुत्कीर्तन (उत्पत्ति) हो सकता है। अन्यथा नहीं हो सकता है। कारण-संज्ञा-नाम-के विना निर्विषय हुए

હવે આ અર્થપદ પ્રરૂપણા રૂપ આનુપૂર્વીનું પ્રયોજન પ્રકટ કરવા નિમિત્તે સૂત્રકાર કહે છે કે—"एयाएणं" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-પ્રશ્ન-હે ભગવન્! (एयाएणं नेगमववहाराणं अट्ठपयपरूवणयाए किं पओयणं?) નૈગમ અને વ્યવહારનય સંમત આ અર્થપદ પ્રરૂપણતા રૂપ આનુપૂર્વી દ્વારા કયું પ્રયોજન સિદ્ધ થાય છે?

ઉત્તર-(एयाएणं नेगमववहाराणं अट्ठपयपरूवणयाए भंगसमुक्कित्तणया कज्जइ) આ નૈગમનય અને વ્યવહારનય સંમત અર્થપદ પ્રરૂપણતા રૂપ આનુપૂર્વી વડે ભંગસમુત્કીર્તનતા કરાય છે આ કથનનું તાત્પર્ય નીચે પ્રમાણે છે-

પહેલાં એવું કહેવામાં આવ્યું છે કે અર્થપદ પ્રરૂપણતામાં સંજ્ઞા સંજ્ઞી વ્યવહાર ચાલે છે, અને તે વ્યવહારનો સદ્ભાવ હોય તો જ ભંગોનું સમુત્કીર્તન (ભંગોની ઉત્પત્તિ) થઈ શકે છે-તેનો અભાવ હોય તો થઈ શકતું નથી. કારણ કે સંજ્ઞા (નામ) વિના નિર્વિષય થયેલા ભંગો (વિકલ્પો,

भङ्गसमुत्कीर्त्तनतैव एतस्या नैगमव्यवहारसम्मताया अर्थपदप्ररूपणतायाः फलं बोध्यमिति ॥सू० ७६॥

अथानौपनिधिक्या द्वितीयभेदरूपामर्थपदप्ररूपणतायाः फलभूतां भङ्गसमुत्कीर्त्तनतां निरूपयति-

मूलम्-से किं तं नेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया? नेगमववहाराणं भंगसमुसमुक्कित्तणया अत्थि आणुपुव्वी१, अत्थि अणाणुपुव्वी२, अत्थि अवत्तव्वए३, अत्थि आणुपुव्वीओ४, अत्थि अणाणुपुव्वीओ५, अत्थि अवत्तव्वयाइं६,। अहवा-अत्थि आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य १। अहवा-अत्थि आणुपुव्वीय अणाणुपुव्वीओ२। अहवा अत्थि आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वीओ य३। अहवा-अत्थि आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वीओ य४। अहवा-अत्थि अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य।५। अहवा-अत्थि आणुपुव्वीओ य अवत्तव्वयाइं य ६। अहवा-अत्थि आणुपुव्वीओ य अवत्तव्वए य ७। अहवा-अत्थि आणुपुव्वीओ य अवत्तव्वयाइं य ८। अहवा-अत्थि अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य ९। अहवा अत्थि अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वयाइं य १०। अहवा-अत्थि अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वए य ११। अहवा-अत्थि अणाणु-

---

भंगों की प्ररूपणा का होना असंभव है। इसलिये भंग समुत्कीर्तनता ही इस नैगम व्यवहार संमत अर्थपदप्ररूपणता का फल है। ऐसा जानना चाहिये। ॥सू० ७६॥

ભાંગાઓ)ની પ્રરૂપણા કરવાનું કાર્ય જ અસંભવિત બની જાય છે તેથી ભંગ-સમુત્કીર્તનતા જ આ નૈગમવ્યવહારનય સંમત અર્થપદ પ્રરૂપણતાનું ફલ છે એમ સમજવું જોઈએ. ॥સૂ૦૭૬॥

पुव्वीओ य अवत्तव्वयाइं य १२। अहवा–अत्थि आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य १। अहवा–अत्थि आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य अवत्तयाइं य २। अहवा–अत्थि आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वए य ३। अहवा–अत्थि आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वयाइं य ४। अहवा–अत्थि आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य ५। अहवा–अत्थि आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वयाइं य ६। अहवा–अत्थि आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वए य ७। अहवा-अत्थि आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वयाइं य ८ एए अट्ठ भंगा। एवं सव्वे वि छव्वीसं भंगा। से तं नेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया ॥सू० ७७॥

छाया—अथ का सा नैगमव्यवहारयोर्भङ्गसमुत्कीर्त्तनता? नैगमव्यवहारयोर्भङ्गसमुत्कीर्त्तनता–अस्ति आनुपूर्वी १, अस्ति अनानुपूर्वी २, अस्ति अवक्तव्यकम् ३, सन्ति आनुपूर्व्यः ४, सन्ति अनानुपूर्व्यः ५, सन्ति अवक्तव्यकानि ६।

अथवा–स्तः आनुपूर्वी च अनानुपूर्वी च १, अथवा सन्ति आनुपूर्वी च अनानुपूर्व्यश्च २, अथवा सन्ति आनुपूर्व्यश्च अनानुपूर्वी च ३, अथवा सन्ति आनुपूर्व्यश्च अनानुपूर्व्यश्च ४, अथवा स्तः आनुपूर्वी च अवक्तव्यकं च ५, अथवा सन्ति आनुपूर्वी च अवक्तव्यकानि च ६, अथवा सन्ति आनुपूर्व्यश्च अवक्तव्यकं च ७, अथवा सन्ति आनुपूर्व्यश्च अवक्तव्यकानि च ८, अथवा स्तः अनानुपूर्वी च अवक्तव्यकं च ९, अथवा सन्ति अनानुपूर्वी च अवक्तव्यकानि च १०, अथवा सन्ति अनानुपूर्व्यश्च अवक्तव्यकं च ११, अथवा सन्ति अनानुपूर्व्यश्च अवक्तव्यकानि च १२।

अथवा–सन्ति आनुपूर्वी च अनानुपूर्वी च अवक्तव्यकं च १, अथवा सन्ति आनुपूर्वी च अनानुपूर्वी च अवक्तव्यकानि च २, अथवा सन्ति आनुपूर्वी च अनानुपूर्व्यश्च अवक्तव्यकं च ३, अथवा सन्ति आनुपूर्वी च अनानुपूर्व्यश्च अवक्तव्यकानि च ४, अथवा सन्ति आनुपूर्व्यश्च अनानुपूर्वी च अवक्तव्यकं च ५, अथवा सन्ति आनुपूर्व्यश्च अनानुपूर्वी च अवक्तव्यकानि च ६, अथवा सन्ति आनुपूर्व्यश्च अनानुपूर्व्यश्च

अवक्तव्यकं च७, अथवा सन्ति आनुपूर्व्यश्च अनानुपूर्व्यश्च अवक्तव्यकानि च८, एतेऽष्टौ भङ्गाः। एवं सर्वेऽपि षड्विंशतिर्भङ्गाः। सैषा नैगमव्यवहारयोर्भङ्गसमुत्कीर्त्तनता ॥ सू० ७७ ॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि—

अथ का सा नैगमव्यवहारसम्मता भङ्गसमुत्कीर्त्तनता? इति शिष्य प्रश्नः। उत्तरयति-नैगमव्यवहारसम्मता भङ्गसमुत्कीर्त्तनता एवं विज्ञेया, तद्यथा-अस्ति आनुपूर्वी, अस्ति अनानुपूर्वी, अस्ति अवक्तव्यकमित्यादि। अस्य सूत्रस्य व्याख्या स्पष्टा। अत्रेदं बोध्यम्-एकवचनान्तेन आनुपूर्व्यादिपदत्रयेण त्रयो भङ्गाः, बहुवच-

---

अब सूत्रकार इसी भंग समुत्कीर्तनता का कि जो अनौपनिधिकी अर्थपदप्ररूपणतारूप फलभूत है निरूपण करते हैं-

"से किं तं नेगमववहाराणं भंग समुक्कित्तणया" इत्यादि।

शब्दार्थ-(से किं तं नेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया) हे भदन्त! नैगम व्यवहारनय संमत ऐसी वह भंगसमुत्कीर्तनता क्या है?

उत्तर—(नेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया) नैगम व्यवहारनय संमत वह भंगसमुत्कीर्तनता इस प्रकार से है (अत्थि आणुपुव्वी) आनुपूर्वी है (अत्थि अणाणुपुव्वी) अनानुपूर्वी है (अत्थि अवत्तव्वए) अवक्तव्य है (अत्थि आणुपुव्वीओ) आनुपूर्वियां हैं। (अत्थि अणाणुपुव्वीओ) अनानुपूर्वियां हैं (अत्थि अवत्तव्वयाइं) अवक्तव्यक हैं इत्यादि। इस सूत्र की व्याख्या स्पष्ट है। यहां इस प्रकार से जानना चाहिये-कि जो ये आनुपूर्वी आदि तीन पद एकवचनान्त हैं उन से

હવે સૂત્રકાર અનૌપનિધિકી અર્થપદ પ્રરૂપણતાના જે ફલરૂપ છે એવી ભંગ સમુત્કીર્તનતાનું નિરૂપણ કરે છે-

"से किं तं नेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया?" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(से किं तं नेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया) હે ભગવન્! નૈગમવ્યવહારનય સંમત એવી તે ભંગસમુત્કીર્તનતાનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(नेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया) નૈગમનય અને વ્યવહારનય-સંમત તે ભંગસમુત્કીર્તનતા આ પ્રકારની છે (अत्थि आणुपुव्वी) આનુપૂર્વી છે, (अत्थि अणाणुपुव्वी) અનાનુપૂર્વી છે, (अत्थि अवत्तव्वए) અવક્તવ્ય છે, (अत्थि आणुपुव्वीओ) આનુપૂર્વીઓ છે, (अत्थि अणाणुपुव्वीओ) અનાનુપૂર્વીઓ છે, (अत्थि अवत्तव्वयाइं) અને અવક્તવ્ય છે, ઇત્યાદિ રૂપ ભંગોની સમુત્કીર્તનતા (ઉત્પન્ન) સમજવી.

આ સૂત્રની વ્યાખ્યા સ્પષ્ટ છે. અહીં ભાંગાઓની રચના આ પ્રમાણે સમજવી. આનુપૂર્વી આદિના જે ત્રણ પદો એકવચનાન્ત છે, તેમના ત્રણ

नातेन च त्रयो भङ्गाः, इत्येवमसंयोगपक्षे षड् भङ्गा भवन्ति६। संयोगपक्षे तु पदत्रयस्यास्य त्रयो द्विकसंयोगाः। एकैकस्मिंस्तु द्विकसंयोगे एकवचन–बहुवचनाभ्यां चतुर्भङ्गयाः सद्भावाद् त्रिष्वपि द्विकसंयोगेषु द्वादश भङ्गाः सम्पद्यन्ते।१२। त्रिकयोगस्त्वत्र एक एव। तत्र च एकवचनबहुवचनाभ्यामष्टौ भङ्गा भवन्ति। सर्वेऽप्यमी षड्विंशतिः। २६। भङ्गानां स्थापना चेयम्—

। षड्विंशतिभङ्गानां कोष्ठकमिदम्।

असंयोगे भङ्गाः६	द्विकसंयोगे प्रथमा चतुर्भङ्गी१	त्रिकसंयोगे भङ्गाः ८
*आनुपूर्वी १	आनुपूर्वी–अनानुपूर्वी १	आनुपूर्वी-अनानुपूर्वी-अवक्तव्यकः १
अनानुपूर्वी२	आनुपूर्वी–अनानुपूर्व्यः २	आनुपूर्वी-अनानुपूर्वी-अवक्तव्यकाः२
अवक्तव्यकः३	आनुपूर्व्यः–अनानुपूर्वी ३	आनुपूर्वी-अनानुपूर्व्यः-अवक्तव्यकः ३

तीन भंग बनते हैं और जो आनुपूर्वी आदि तीन पद बहुवचनान्त हैं उनसे भी ३ भंग बनते हैं। इस प्रकार असंयोग पक्षमें ये छह ६ भंग हो जाते हैं ६। और संयोग पक्षमें इन तीन पदों के द्विसंयोगी भंग ३ होते हैं। इन में एक एक भंग में दो दो का संयोग होने पर एकवचन और बहुवचन को लेकर चार २ भंग हो जाते हैं इस प्रकार तीन भंग के द्विक संयोगी भंग चार २ होने से ये १२ भंग बन जाते हैं। तथा त्रिक संयोग में एक वचन और बहुवचन को लेकर ८ भंग बनते है। इस प्रकार सब भंग मिलकर २६ भंग होते हैं। इन भंगोंका क्रम इस प्रकार से है–

आनुपूर्वी १, अनानुपूर्वी २, अवक्तव्यक३, ये तीन भंग एक वचनान्त हैं। आनुपूर्वियां१, अनानुपूर्वियां२; और अनेक अवक्तव्यक३, ये ३ भंग बहुवचनान्त हैं, ऐसे असंयोगी भंग हुए ६। दो के संयोग से तीनचतुर्भंगियां बनती हैं, उनमें प्रथम चतुर्भंगी इस प्रकार से बनती है–आनुपूर्वी अनानुपूर्वी १, आनुपूर्वी अनानुपूर्वियां२,

ભાંગા બને છે અને જે આનુપૂર્વી આદિના ત્રણ પદો બહુવચનાન્ત છે તેમના પણ ત્રણ ભાંગાઓ બને છે. આ રીતે કુલ ૬ અસંયોગી ભાંગાઓ બને છે. આ ત્રણ પદોના (આનુપૂર્વી, અનાનુપૂર્વી અને અવકતવ્યકના) દ્વિકસંયોગી ભાંગા ત્રણ થાય છે પ્રત્યેક ભાંગામાં બબ્બેનો સંયોગ થવાથી એક વચન અને બહુવચનની અપેક્ષાએ પ્રત્યેક પદની સાથે ચાર-ચાર ભાંગા બને છે. આ રીતે ત્રણે પદોની સાથે કુલ ૧૨ દ્વિકસંયોગી ભાંગા બને છે. ત્રિકસંયોગી કુલ ૮ ભાંગા બને છે. આ રીતે બધા મળીને ૬+૧૨+૮=૨૬ ભાંગા બને છે.

આ ૨૬ ભાંગાઓનો ક્રમ આ પ્રમાણે સમજવો–(૧) આનુપૂર્વી, (૨) અનાનુપૂર્વી, (૩) અવક્તવ્યક, આ ત્રણ ભાંગા એકવચનાન્ત છે.

(૧) આનુપૂર્વીઓ, (૨) અનાનુપૂર્વીઓ (૩) અનેક અવક્તવ્યકો, આ ત્રણ ભાંગા બહુવચનાન્ત છે. એવી રીતે અસંયોગી ૬ ભાંગા થયા ૬

* एकवचनान्तयः,

बहुवचनान्तास्त्रयः
आनुपूर्व्यः १
अनानुपूर्व्यः२
अवक्तव्यकाः३
असंयोगे षड् भङ्गाः६

आनुपूर्व्यः-अनानुपूर्व्यः ४
द्विकसंयोगे द्वितीया चतुर्भङ्गी२
आनुपूर्वी- अवक्तव्यकः१
आनुपूर्वी- अवक्तव्यकाः२
आनुपूर्व्यः- अवक्तव्यकः३
आनुपूर्व्यः-अवक्तव्यकाः४
द्विकसंयोगे तृतीया चतुर्भङ्गी३
अनानुपूर्वी-अवक्तव्यकः१
अनानुपूर्वी-अवक्तव्यकाः२
अनानुपूर्व्यः-अवक्तव्यकः३
अनानुपूर्व्यः-अवक्तव्यकाः४
एतेद्विकसंयोगे द्वादश भङ्गाः१२

आनुपूर्वी-अनानुपूर्व्यः-अवक्तव्यकः ४
आनुपूर्व्यः-अनानुपूर्वी-अवक्तव्यकः ५
आनुपूर्व्यः-अनानुपूर्वी-अवक्तव्यकाः६
आनुपूर्व्यः-अनानुपूर्व्यः-अवक्तव्यकः ७
आनुपूर्व्यः-अनानुपूर्व्यः-अवक्तव्यकाः८
एते त्रिकसंयोगे अष्टौ भङ्गाः ८

आनुपूर्वियां अनानुपूर्वी३, आनुपूर्वियां अनानुपूर्वियां४। द्वितीय चतुर्भंगी इस प्रकार से है—

आनुपूर्वी, अवक्तव्यक१, एकआनुपूर्वी बहु अवक्तव्यक२, आनुपूर्वियां एक अवक्तव्यक,३, आनुपूर्वियां बहुअवक्तव्यक ४। तृतीय चतुर्भंगी इस प्रकार से है- अनानुपूर्वी अवक्तव्यक १, अनानुपूर्वी बहु अवक्तव्यक २, अनानुपूर्वियां एक अवक्तव्यक ३ अनेक आनुपूर्वियां अनेक अवक्तव्यक ४। इन तीन चतुर्भंगियोंको मिलानेसे द्विकसंयोगी बारह भंग होते है १२। तीन तीनके संयोग से जो आठभंग बनते हैं-वे इस प्रकार से हैं-एक आनुपूर्वी एकअनानुपर्वी एक अवक्तव्यक १, एक आनुपूर्वी एक अनानुपूर्वी अनेक अवक्तव्यक २, एक आनुपूर्वी अनेक अनानु-

બે પદોના સંયોગથી ત્રણ ચતુર્ભંગીઓ બને છે, તેમાં પ્રથમ ચતુર્ભંગી આ પ્રમાણે બને છે-(૧) આનુપૂર્વી–અનાનુપૂર્વી, (૨) આનુપૂર્વી–અનાનુપૂર્વીઓ, (૩) આનુપૂર્વીઓ–અનાનુપૂર્વી (૪) આનુપૂર્વીઓ અનાનુપૂર્વીઓ.

બીજી દ્વિકસંયોગી ચતુર્ભંગી આ પ્રમાણે ત્રણ ચતુર્ભંગીઓ બને છે. તેમાં બને છે-(૧) આનુપૂર્વી–એક અવક્તવ્યક, (૨) આનુપૂર્વી–બહુ અવક્તવ્યકો, (૩) આનુપૂર્વીઓ–એક અવક્તવ્યક, (૪) આનુપૂર્વીઓ બહુ અવક્તવ્યકો.

ત્રીજી ચતુર્ભંગી આ પ્રમાણે બને છે-(૧) અનાનુપૂર્વી–એક અવક્તવ્યક, (૨) અનાનુપૂર્વી–બહુ અવક્તવ્યકો (૩) અનાનુપૂર્વીઓ–એક અવક્તવ્યક અને (૪) અનાનુપૂર્વીઓ- અનેક અવક્તવ્યકો. આ ત્રણ ચતુર્ભંગીઓને મેળવવાથી દ્વિકસંયોગી બાર ભંગ બને છે. ૧૨

ત્રણ પદોના સંયોગથી નીચે પ્રમાણે આઠ ભાંગા બને છે-(૧) એક આનુપૂર્વી, એક અનાનુપૂર્વી એક અવક્તવ્યક (૨) એક આનુપૂર્વી, એક અનાનુપૂર્વી, અનેક અવક્તવ્યક (૩) એક આનુપૂર્વી, અનેક અનાનુપૂર્વીઓ,

एवमेते षड्विंशतिर्भेदा विज्ञेयाः। ननु किमर्थं भङ्गकसमुत्कीर्त्तनं क्रियते? इति चेदुच्यते-इहैकवचनान्तबहुवचनान्तैरानुपूर्व्यादिभिस्त्रिभिः पदैरसंयोगपक्षे संयोगपक्षे च मिलिताः षड्विंशति भंङ्गाः संभवन्ति। तेषु च मध्ये येन केनचिद् भङ्गेन वक्ता

पूर्वियां एक अवक्तव्यक ३, एक आनुपूर्वी अनेक अनानुपूर्वियां, अनेक अवक्तव्यक ४, अनेक आनुपूर्वियां एक अनानुपूर्वी एक अवक्तव्यक ५, अनेक आनुपूर्वियां एक अनानुपूर्वी अनेक अवक्तव्यक ६, अनेक आनुपूर्वियां अनेक अनानुपूर्वियां एक अवक्तव्यक ७, अनेक आनुपूर्वियां अनेक अनानुपूर्वियां अनेक अवक्तव्यक, ८. ऐसे त्रिकसंयोगी आठ भंग होते हैं ८ इस प्रकार ये स्वतन्त्र रूप से विना संयोग के एक वचन और बहुवचन, को लेकर ६, तथा इन छहों के दो दो के संयोग से १२, और तीन २ के संयोग से ८ भंग हो जाते हैं। ऐसे सब मिलकर कुल छाईस भंग होते हैं।

शंका— भंगों का समुत्कीर्तन वर्णन किस लिए किया गया है?

उत्तर—यहां पर एकवचनान्त और बहुवचनान्त जो आनुपूर्वी आदि तीन २ पद हैं कि जिनके असंयोग पक्ष से ६ और संयोग पक्षमें २० इस तरह २६ भंग बन जाते हैं—

એક અવકતવ્યક. (૪) એક આનુપૂર્વી, અનેક અનાનુપૂર્વીઓ, અનેક અવકતવ્યકો (૫) અનેક આનુપૂર્વીઓ, એક અનાનુપૂર્વી, એક અવકતવ્યક. (૬) અનેક આનુપૂર્વીઓ, એક અનાનુપૂર્વી, અનેક અવકતવ્યકો. (૭) અનેક આનુપૂર્વીઓ, અનેક અનાનુપૂર્વીઓ, એક અવકતવ્યક. (૮) અનેક આનુપૂર્વીઓ, અનેક અનાનુપૂર્વીઓ, અનેક અવકતવ્યકો આ રીતે ત્રિક સંયોગી આઠ ભંગ બને છે. આ રીતે સ્વતંત્ર રૂપે-વિના સંયોગવાળા ૬ ભાંગા એક વચન અને બહુવચનવાળાં પદોથી બને છે. તથા તે છએના દ્વિકસંયોગથી ૧૨ ભાંગા બને છે, અને ત્રણ ત્રણના સંયોગથી ત્રિકસંયોગી ૮ ભાંગા બને છે. આ રીતે કુલ ભાંગા ૬×૧૨×૮=૨૬ થઈ જાય છે.

પ્રશ્ન-ભંગોનું (ભાંગાઓનું) સમુત્કીર્તન (ઉત્પત્તિ) શા માટે કરવામાં આવ્યું છે?

ઉત્તર-અહીં જે એકવચનાન્ત અને બહુવચનાન્ત જે આનુપૂર્વી, અનાનુપૂર્વી અને અવકતવ્યક, આ ત્રણ ત્રણ પદો છે તેમના અસંયોગ પક્ષે ૬, અને સંયોગપક્ષે (દ્વિકસંયોગ અને ત્રિકસંયોગની અપેક્ષાએ) ૨૦ ભાંગા બને છે. આ રીતે કુલ ૨૬ ભાંગા બને છે, આ સઘળા ભાંગાઓમાંથી વકતા

द्रव्यं विवक्षते, तेन भङ्गेन वक्ता विवक्षितद्रव्यं वदतु इति हेतो नैगमव्यवहारनयाभ्युपगमेन सर्वानपि भङ्गान् प्रतिपादयितु भङ्गसमुत्कीर्त्तनं कृतमिति। सम्प्रति भङ्गसमुत्कीर्त्तनमुपसंहरन्नाह–सैषा भङ्गसमुत्कीर्त्तननेति ॥सू०७७॥

अस्याः प्रयोजनं किम्? इति प्रश्नपूर्वकं कारणं प्रतिपादयितुमाह–

मूलम्–एयाए णं नेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए किं पयोयणं? एयाए णं नेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए भंगोवदंसणया कीरइ ॥सू०७८॥

छाया—एतया खलु नैगमव्यवहारयो र्भङ्गसमुत्कीर्त्तनतया किं प्रयोजनम्? एतया खलु नैगमव्यवहारयोः भङ्गसमुत्कीर्त्तनतया भङ्गोपदर्शनता क्रियते ॥सू०७८॥

टीका—शिष्यः पृच्छति–'एयाए णं' इत्यादि–एतया नैगमव्यवहारसम्मतया भङ्गसमुत्कीर्त्तनतया किं प्रयोजनं-फलं किम्? इति। उत्तरयति–एतया नैगमव्यव-

---

उनके बीच में वक्ता जिस किसी भंग से द्रव्य की विवक्षा करना चाहता है, वह उस भंग से विवक्षित द्रव्य को कहे इस कारण नैगम और व्यवहारनय संमत समस्त भी भंगों को कहने के लिये सूत्रकार ने इन भंगो का समुत्कीर्तन किया है। (से तं नेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया) इस प्रकार यह पूर्व प्रकान्त नैगम व्यवहारनय संमत भंग समुत्कीर्तनता है। ॥सू० ७७॥

इसका क्या प्रयोजन है इस बात को सूत्रकार स्पष्ट करते हैं "एयाएणं नेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए किं पयोयणं" इत्यादि।

शब्दार्थ— हे भदन्त! नैगम व्यवहारनय संमत इस भंग समुत्कीर्तनता का क्या प्रयोजन है?

જે કોઇ ભાંગા (વિકલ્પ)ના અપેક્ષાએ દ્રવ્યની વિવક્ષા (પ્રતિપાદન) કરવા ભાગતા હોય, તે ભાંગાની અપેક્ષાએ વિવક્ષિત દ્રવ્યનું પ્રતિપાદન કરે, તે હેતુને ધ્યાનમાં લઈને નૈગમ અને વ્યવહારનય સંમત સમસ્ત ભાંગાઓનું કથન કરવાને માટે સૂત્રકારે આ ભાંગાઓનું સમુત્કીર્તન (રચના) કર્યું છે. (से तं नेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया) આ પ્રકારનું નૈગમ અને વ્યવહારનય સંમત પૂર્વોક્ત ભંગ સમુત્કીર્તનતાનું સ્વરૂપ છે. ॥સૂ૦૭૭॥

હવે સૂત્રકાર નૈગમવ્યવહાર નયસંમત ભંગસમુત્કીર્તનતાનું શું પ્રયોજન છે તે પ્રકટ કરે છે–"एयाएणं नेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए किं पयोयणं" ઇત્યાદિ–

શબ્દાર્થ–પ્રશ્ન–હે ભગવાન્! નૈગમવ્યવહાર નયસંમત આ ભંગસમુત્કીર્તનતાનું શું પ્રયોજન છે?

द्वारसम्पत्तया भङ्गसमुत्कीर्त्तनतया भङ्गोपदर्शनता क्रियते इति भङ्गोपदर्शनतैव भङ्गसमुत्कीर्तनतायाः प्रयोजनमिति। अयं भावः—भङ्गसमुत्कीर्त्तनतायां भङ्गकसूत्रमुक्तम्, भङ्गोपदर्शनतायां तस्यैव वाच्यं त्र्यणुकस्कन्धादिकं वक्ष्यते, तच्च भङ्गकसूत्रे समुत्कीर्त्तिते सत्येव वक्तुं शक्यते। वाचककथनमन्तरेण वाच्यकथनस्य सर्वथैवाऽसम्भवात्, अतो भङ्गोपदर्शनतैव भङ्गसमुत्कीर्त्तनतायाः फलं बोध्यम्।

उत्तर—(एयाएणं नेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए भंगोवदंसणया कीरइ) नैगम व्यवहारनय संमत इस भंग समुत्कीर्तनता से भंगों को दिखाया जाता है उनकी प्ररूपणा की जाती है। इसलिये भंगसमुत्कीर्तनता का भंगो को दिखलाना प्रयोजन है। इसका तात्पर्य यह है भंगो की समुत्कीर्तनता में भंगों को कहने वाला उनकी प्ररूणता करने वाला सूत्र कहा गया है और भंगोपदर्शनता में उसी के वाच्य त्र्यणुक स्कन्धआदि प्रदर्शित किये जावेंगे कहे-जावेंगे।

सो त्र्यणुक स्कन्ध आदिकों का यह प्रदर्शनरूप कथन जब तक भंगों कोदिखाने वाला सूत्र नहीं कहा जावेगा-तब तक नहीं हो सकता है उसी प्रदर्शक सूत्र के समुत्कीर्तन होनेपर ही वह वक्तुं शक्य हो सकता है। क्यों कि यह नियम है कि वाचक सूत्र-के कथन के विना वाच्यरूप अर्थ का कथन करना सर्वथा असंभव है। इसलिये भंगोदपर्शनता ही भंगसमुत्कीर्तनता का फल है—ऐसा जानना चाहिये।

उत्तर-(एयाएणं नेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए भंगोवदंसणया कीरइ) नैगमव्यवहार नयसंमत आ भंगसमुत्कीर्तनता वडे भंगो (भांगाओ) बतावવામાં આવે છે-તેમની પ્રરૂપણા કરવામાં આવે છે તેથી ભાંગાને બતાવવાનું જ ભંગસમુત્કીર્તનતાનું પ્રયોજન છે આ કથનનું તાત્પર્ય નીચે પ્રમાણે છે-ભંગોની સમુત્કીર્તનતામાં ભંગોને કહેનારા તેમની પ્રરૂપણા કરનારા-ભંગોને પ્રકટ કરનારાં સૂત્રે નું કથન કરવામાં આવ્યું છે, અને ભંગોપદર્શનતામાં તેના જ વાચ્ય એવાં ત્રયણુક (ત્રિપ્રદેશી-ત્રણ અણુવાળા) સ્કંધ આદિ પ્રદર્શિત કરવામાં આવશે.

જ્યાં સુધી ભંગોને પ્રકટ કરનારૂં સૂત્ર કહેવામાં ન આવે, ત્યાં સુધી ત્રિઅણુક સ્કંધ અદિકોના પ્રદર્શન રૂપ કથન થઈ શકતું નથી એજ પ્રદર્શક સૂત્રનું સમુત્કીર્તન થતાં જ તે કથન કરવું શકય બને છે. કારણ કે એવો નિયમ છે કે વાચક સૂત્રનું કથન કર્યા વિના વાચ્યરૂપ અર્થનું કથન કરવાનું કાર્ય સર્વથા અસંભવિત હોય છે. તેથી ભંગોપદર્શનતા (ભંગોને પ્રગટ કરવા તે) જ ભંગ સમુત્કીર્તનતાના ફલસ્વરૂપ છે એમ સમજવું જોઇએ.

ननु भङ्गोपदर्शनतायां वाच्यस्य त्र्यणुकस्कन्धादेः कथनकाले आनुपूर्व्यादि-सूत्रं पुनरप्युच्चारयिष्यते, तत्कथं पुनर्भङ्गसमुत्कीर्त्तनं क्रियते? इति चेदुच्यते— यथा हि—

संहिया य पयं चेव, पयत्थो पयविग्गहो।
चालणा य पसिद्धी य छव्विहं विद्धि लक्खणं ॥१॥

छाया—संहिता च पदं चैव, पदार्थः पदसंग्रहः।
चालना च प्रसिद्धिश्च, षड्विधं विद्धि लक्षणम् ॥१॥

इति व्याख्याक्रमे संहितायाः व्याख्याकाले सूत्रमुच्चारितमपि पदार्थकथन-काले पुनरप्यर्थप्रत्यर्थं तदुच्चार्यते, तद्वदत्रापि भङ्गसमुत्कीर्त्तनासिद्धस्यैव सूत्र-स्य भङ्गोपदर्शनतायां वाच्यवाचकभावानुगमप्रतिपत्त्यर्थं प्रसङ्गतः पुनरपि समुत्कीर्त्तनं करिष्यते न मुख्यतयेति न कश्चित् दोष इति ॥सू० ७८॥

शंका—भंगोपदर्शनता में वाच्य जो त्र्यणुक स्कन्ध आदि हैं उनके कथन काल में आनुपूर्वी—आदि प्रदर्शक सूत्र सूत्रकार—फीर कहेंगे—तो फिर यह कथन कैसे संगत हो सकता कि पहिले भंगसमुत्कीर्तन किया जाता है बाद में भंगो पदर्शन ?

उत्तर—"संहिया य पयं चेव पयत्थो पयविग्गहो. चालणा य पसिद्धी य छव्विहं विद्धि लक्खणं" इस प्रकार व्याख्यान के समय में सूत्र समुच्चारित होता हुआ भी पदार्थ कथन के अवसर पर उसका पुनः भी अर्थप्रतिपादन के लिये उच्चारण किया जाता है। उसी प्रकार से यहां पर भी भंगसमुत्कीर्तनता से सिद्ध हुए ही सूत्र का भंगोपद-र्शनता में वाच्यवाचक भाव की सुखपूर्वक प्रतिपत्ति के निमित्त

શંકા-ભંગોપદર્શનતામાં વાચ્ય જે ત્રિઅણુક આદિ સ્કંધ છે તેમના કથનકાળે (તેમનું કથન કરતી વખતે) આનુપૂર્વી આદિ પ્રદર્શક સૂત્ર સૂત્રકાર ફરી કહેશે તો આ કથન કેવી રીતે સંગત બની શકશે કે પહેલાં ભંગસ-મુત્કીર્તન કરાય છે અને ત્યાર બાદ ભંગોપદર્શન કરાય છે?

ઉત્તર-"संहिया य पयं चेव पयत्थो पयविग्गहो। चालणा य पसिद्धी य छव्विहं विद्धि लक्खणं" આ સૂત્રમાં કહ્યા પ્રમાણેનો વ્યાખ્યાનો ક્રમ છે. જેમ સંહિતાના વ્યાખ્યાનકાળે સૂત્ર સમુચ્ચારિત થયેલું હોવા છતાં પણ પદાર્થકથનને અવસરે અર્થનું પ્રતિપાદન કરવા નિમિત્તે ફરીથી પણ તેનું ઉચ્ચારણ કરવામાં આવે છે, એજ પ્રમાણે અહીં પણ ભંગસમુત્કીર્તનતાથી સિદ્ધ થયેલા સૂત્રનું જ ભંગોપદર્શનતામાં વાચ્યવાચક ભાવની સુખપૂર્વક પ્રતિ-

अथ भङ्गोपदर्शनतां प्रतिपादयितुमाह—

मूलम्–से किं तं नेगमववहाराणं भंगोवदंसणया? नेगमववहाराणं भंगोवदंसणया–तिपएसिए आणुपुव्वी१, परमाणुपोग्गले अणाणुपुव्वी२, दुप्पएसिए अवत्तव्वए ३। अहवा तिपसिया आणुपुव्वीओ१, परमाणुपोग्गला अणाणुपुव्वीओ२, दुप्पएसिया अवत्तव्वयाइं ३।

अहवा तिपएसिए१य परमाणुपुग्गले२य आणुपुव्वी३य अणाणुपुव्वी४य चउभंगो। अहवा–तिप्पएसिए१य दुप्पएसिए य आणुपुव्वी य अवत्तव्वए य चउभंगो८। अहवा परमाणुपोग्गले

प्रसंगवश फिर से भी समुत्कीर्त्तन किया जावेगा मुख्य रूप से नहीं। अतः उस में कोई दोष नहीं है।

भावार्थ–भंगसमुत्कीर्तनता का क्या प्रयोजन है यह बात सूत्रकार ने इस सूत्र द्वारा स्पष्ट की है। वे कह रहे हैं कि भंगसमुत्कीर्तनता का फल भंगोपदर्शनता है। भंगसमुत्कीर्तनता में भंगों का नाम निर्देश किया जाता है। तथा भंग कितने होते हैं, यह प्रकट किया जाता है। भंगोपदर्शनता में जो भंग कहे गये हैं उनका वाच्यार्थ 'यह है' यह प्रकट किया जाता है। इस प्रकर भंगसमुत्कीर्तनता में कथित भंगों का भंगोपदर्शनता-भंगों का दिखाने का वाच्यार्थ यह है यह प्रकट किया गया होने से भंगसमुत्कीर्तनता का फल भंगोपदर्शनता है यह बात बन जाती है।सू०७८।

પત્તિ (ગ્રહણ–બોધ) કરાવવાને માટે પ્રસંગવશ ફરીથી પણ સમુત્કીર્તન કરવામાં આવશે–મુખ્ય રૂપે નહીં તેથી તેમાં કોઇ દોષની સંભાવના નથી.

ભાવાર્થ–ભંગસમુત્કીર્તનતાનું શું પ્રયોજન છે, એ વાતનું સૂત્રકારે આ સૂત્ર દ્વારા સ્પષ્ટીકરણ કર્યું છે–તેમણે એ વાત અહીં સમજાવી છે કે ભંગસમુત્કીર્તનતાનું ફલ ભંગોપદર્શનતા છે. ભંગસમુત્કીર્તનતામાં ભંગોનો વાચ્યાર્થ પ્રકટ કરવામાં આવે છે. આ પ્રકારે ભંગસમુત્કીર્તનતામાં જે જે ભંગો કહેવામાં આવ્યા હોય તે તે ભંગોનો વાચ્યાર્થ પ્રકટ કરવાનું કાર્ય ભંગોપદર્શનતામાં કરવામાં આવે છે તે કારણે ભંગસમુત્કીર્તનતાનું ફલ ભંગોપદર્શનતા છે, એ વાત સિદ્ધ થઈ જાય છે. ॥સૂ૦૭૮।

य दुपएसिए य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य चउभंगो१२। अहवा तिप्पएसिए य परमाणुपोग्गले य दुप्पएसिए य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वीय अवत्तव्वए य१। अहवा तिप्पएसिए य परमाणुपोग्गले य दुप्पएसिया य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वयाइं च२। अहवा तिप्पएसिए य परमाणुपुग्गला य दुप्पएसिए य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वए य ३। अहवा तिप्पएसिए य परमाणुपोग्गला य दुप्पएसिया य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वयाइं च४। अहवा तिप्पएसिया य परमाणुपोग्गले य दुप्पएसिए य आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य५। अहवा तिप्पएसिया य परमाणुपोग्गले य दुप्पएसिया य आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वयाइं च६। अहवा—तिप्पएसिया य परमाणुपोग्गला य दुपएसिए य आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वए य७। अहवा—तिप्पएसिया य परमाणुपोग्गला य दुप्पएसिया य आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वयाइं च८। से तं नेगमववहाराणं भंगोवदंसणया॥सू०७९॥

छाया—अथ का सा नैगमव्यवहारयोः भङ्गोपदर्शनता ? नैगमव्यवहारयोः भङ्गोपदर्शनता—त्रिप्रदेशिक आनुपूर्वी १ परमाणुपुद्गलः अनानुपूर्वी २ द्विप्रदेशिकः अवक्तव्यम् ३, अथवा त्रिप्रदेशिका आनुपूर्व्यः परमाणुपुद्गला अनानुपूर्व्यः द्विप्रदेशिकाः अवक्तव्यकानि ३। अथवा त्रिप्रदेशिकश्च परमाणुपुद्गलश्च आनुपूर्वी च अनानुपूर्वी च४ चत्वारो भङ्गाः, अथवा त्रिप्रदेशिकश्च द्विप्रदेशिकश्च आनुपूर्वी च अवक्तव्यकं च४, चत्वारो भङ्गाः, अथवा परमाणुपुद्गलश्च, द्विप्रदेशिकश्च अनानुपूर्वी च अवक्तव्यकं च४ चत्वारो भङ्गाः१२। अथवा त्रिप्रदेशिकश्च परमाणुपुद्गलश्च द्विप्रदेशिकश्च आनुपूर्वी च अनानुपूर्वी च अवक्तव्यकं च १, अथवा त्रिप्रदेशिकश्च परमाणुपुद्गलश्च द्विप्रदेशिकाश्च आनुपूर्वी च अनानुपूर्वी च अवक्तव्यकानिच२, अथवा त्रिप्रदेशिकश्च परमाणुपुद्गलाश्च द्विप्रदे-

शिकश्च आनुपूर्वी च अनानुपूर्व्यश्च अवक्तव्यकं च३, अथवा त्रिप्रदेशिकश्च परमाणुपुद्गलाश्च द्विप्रदेशिकाश्च आनुपूर्वी च अनानुपूर्व्यश्च अवक्तव्यकानि च४, अथवा त्रिप्रदेशिकाश्च परमाणुपुद्गलश्च द्विप्रदेशिकश्च आनुपूर्व्यश्च अनानुपूर्वी च अवक्तव्यकं च५, अथवा त्रिप्रदेशिकाश्च परमाणुपुद्गलश्च द्विप्रदेशिकाश्च आनुपूर्व्यश्च अनानुपूर्वी च अवक्तव्यकानि च ६। अथवा त्रिप्रदेशिकाश्च परमाणुपुद्गलाश्च द्विप्रदेशिकश्च आनुपूर्व्यश्च अनानुपूर्व्यश्च अवक्तव्यकं च ७, अथवा त्रिप्रदेशिकाश्च परमाणुपुद्गलाश्च द्विप्रदेशिकाश्च आनुपूर्व्यश्च अनानुपूर्व्यश्च अवक्तव्यकानि च ८ सैषा नैगमव्यवहारयोः भङ्गोपदर्शनता ॥सू० ७९॥

टीका—शिष्यः पृच्छति–' से किं तं ' इत्यादि। अथ का सा नैगमव्यवहारसम्मता भङ्गोपदर्शनता? इति। उत्तरयति–नैगमव्यवहारसम्मता भङ्गोपदर्शनता एवं विज्ञेया, तथाहि त्रिप्रदेशिक आनुपूर्वी–त्रिप्रदेशिकोऽर्थ आनुपूर्वीत्युच्यते–त्रिप्रदेशिकस्कन्धलक्षणेनार्थेनानुपूर्वीति प्रथमो भङ्गको निष्पद्यते इत्यर्थः१। पर-

---

अब सूत्रकार उसी भंगोपदर्शनता का प्रतिपादन करते हैं—
"से किं तं नेगमववहाराणं" इत्यादि।

शब्दार्थ— (से किं तं नेगमववहाराणं भंगोवदंसणया ?) हे भदन्त नैगम व्यवहारनय संमत वह भंगोपदर्शनता क्या है ? (नेगमववहाराणं भंगोवदंसणया)

उत्तर— नैगमव्यवहारनय संमत वह भंगोपदर्शनता इस प्रकार से हैं। (तिप्पएसिए आणुपुव्वी १ परमाणुपुग्गले अणाणुपुव्वी २, दुप्पएसिये अवत्तव्वए ३) त्रिप्रदेशिकस्कंधरूप पदार्थ आनुपूर्वी इस शब्द का वाच्यार्थ है–अर्थात् तीन प्रदेश वाला पदार्थ आनुपूर्वी इस नाम से कहा जाता है इसलिए त्रिप्रदेशिक स्कंध रूप अर्थ से आनुपूर्वी

હવે સૂત્રકાર એજ ભંગોપદર્શનતાનું પ્રતિપાદન કરે છે–
" से किं तं नेगमववहाराणं " ઇત્યાદિ–

શબ્દાર્થ–પ્રશ્ન–(से किं तं नेगमववहाराणं भंगोवदंसणया ?) હે ભગવન્! નૈગમ અને વ્યવહાર નયસંમત તે ભંગોપદર્શનતાનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર–(नेगमववहाराणं भंगोवदंसणया) નૈગમવ્યવહાર નયસંમત તે ભંગોપદર્શનતાનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ છે–(तिप्पएसिए आणुपुव्वी १, परमाणुपुग्गले अणाणुपुव्वी २, दुप्पएसिए अवत्तव्वए ३,) ત્રિપ્રદેશિક સ્કંધ રૂપ પદાર્થ આનુપૂર્વી શબ્દનો વાચ્યાર્થ છે. એટલે કે ત્રણ પ્રદેશવાળા સ્કંધ રૂપ પદાર્થને ' આનુપૂર્વી ' આ નામે ઓળખાય છે. તેથી ત્રિપ્રદેશિક સ્કંધ રૂપ અર્થ (પદાર્થ) વડે ' આનુપૂર્વી ' આ પ્રથમ ભંગ બને છે. પરમાણુ પુદ્ગલ

माणुपुद्गलः अनानुपूर्वी परमाणुपुद्गललक्षणोऽर्थः अनानुपूर्वीत्युच्यते, इति द्वितीयो भङ्गः। द्विप्रदेशिकः अवक्तव्यकम्-द्विप्रदेशिकस्कन्धलक्षणोऽर्थोऽवक्तव्यकमुच्यते। इति तृतीयो भङ्गः३। एकवचनपक्षे त्रयो भङ्गा उक्ताः ३। एवं बहुवस्त्रिप्रदेशिकस्कन्धलक्षणा अर्था आनुपूर्व्यः, बहवः परमाणुपुद्गलरूपा अर्था अनानुपूर्व्यः बहवो द्विप्रदेशिकस्कन्धरूपा अर्था अवक्तव्यकानि। इति बहुवचनपक्षे त्रयो भङ्गाः६। इत्थमसंयोगपक्षे षण्णां भङ्गानामर्थकथनं बोध्यम्। एवं संयोगपक्षे प्रथमद्विक-

---

यह प्रथम भंग बनता है। परमाणुपुद्गल अनानुपूर्वी अर्थात् परमाणु पुद्गल रूप अर्थ अनानुपूर्वी कहलाता है—इसलिये पुद्गल परमाणु अर्थ से अनानुपूर्वी यह द्वितीय भंग बनता है। द्विप्रदेशिक स्कंध अवक्तव्यक इस शब्द का वाच्यार्थ है-अर्थात् द्विप्रदेशवाला पदार्थ अवक्तव्यक इस नाम से कहा जाता है इसलिये वह अवक्तव्यक कहलाता है। यह तीसरा भंग है ये ३ भंग एक वचन पक्ष मे कहे हैं। (अहवा तिप्पएसिया आणुपुव्वीओ १, परमाणुपोग्गला अणाणुपुव्वीओ २, दुप्पएसिया अवत्तव्वयाइं ३,) इसी प्रकार बहुत त्रिप्रदेशिक स्कंधरूप पदार्थ आनुपूर्वीयां हैं। बहुत १ परमाणु पुद्गल रूप पदार्थ अनानुपूर्वीयां हैं। बहुतद्विप्रदेशिक स्कन्ध रूप पदार्थ बहुत अवक्तव्यक है। इस प्रकार बहुवचन पक्षमें ये ३ तीन भंग हैं। इस प्रकार से असंयोग पक्ष में उक्त ६ भंगो का यह अर्थ

અનાનુપૂર્વી રૂપ છે–એટલે કે પરમાણુ પુદ્ગલ રૂપ અર્થ (પદાર્થ) ને અનાનુપૂર્વી કહે છે. તેથી પુદ્ગલપરમાણુ રૂપ પદાર્થથી "અનાનુપૂર્વી" આ નામનો બીજો ભંગ (ભાંગો) બને છે દ્વિપ્રદેશિક સ્કંધ 'અવકતવ્યક' રૂપ શબ્દનો વાચ્યાર્થ છે. (દ્વિપ્રદેશિક સ્કંધ આનુપૂર્વી રૂપે પણ વ્યકત થઈ શકતો નથી અને અનાનુપૂર્વી રૂપે પણ વ્યકત થઈ શકતો નથી, તે કારણે તેને અવકતવ્યક કહ્યો છે) એટલે કે દ્વિપ્રદેશિક સ્કંધને "અવકતવ્યક" આ નામે ઓળખવામાં આવે છે, તે કારણે તેને 'અવકતવ્યક' આ નામના ત્રીજા ભંગરૂપ ગણાવ્યો છે આ ત્રણે ભંગ એકવચનાન્ત પદની અપેક્ષાએ બનાવવામાં આવ્યા છે.

(अहवा–तिप्पएसिया आणुपुव्वीओ १, परमाणुपोग्गला अणाणुपुव्वीओ २, दुप्पएसिया अवत्तव्वयाइं ३,) એજ પ્રમાણે ઘણા ત્રિપ્રદેશિક સ્કન્ધ રૂપ પદાર્થ આનુપૂર્વીઓ રૂપ છે, અને ઘણા પરમાણુ પુદ્ગલ રૂપ પદાર્થો અનાનુપૂર્વીઓ રૂપ છે, અને ઘણા દ્વિદેપ્રશિક સ્કંધ પદાર્થો ઘણા અવકતવ્યક રૂપ છે. આ રીતે બહુવચન પક્ષમાં આ ત્રણ ભાંગા બને છે. આ પ્રકારનું અસંયોગ પક્ષમાં ભાંગાઓનું કથન સમજવું એટલે કે અસંયોગી કુલ ૬ ભાંગા બને

संयोगेऽपि त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः परमाणुपुद्गलश्चानुपूर्व्यनानुपूर्वीत्वेनोच्यते। एतदेव दर्शयति–अथवा त्रिप्रदेशिकश्च परमाणुपुद्गलश्च आनुपूर्वी च अनानुपूर्वी च चत्वारो भङ्गाः ४। अयं भावः–यदा त्रिप्रदेशिकस्कन्धः परमाणुपुद्गलश्च प्रतिपादयितुमभीष्टो भवति, तदा 'अत्थि आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य' इत्येवं भङ्गो निष्पद्यते। एवमन्येऽपि त्रयो भङ्गा अर्थकथनपुरस्सरा वक्तव्याः। इत्थं प्रथम-

कथन जानना चाहिये। संयोग पक्षमें–एकवचन और बहुवचन संबन्धी प्रथम और द्वितीय भंग को संयुक्त करने पर त्रिप्रदेशिक– एक स्कंध एक आनुपूर्वी और एक परमाणुपुद्गल एक अनानुपूर्वी का वाच्यार्थ जानना चाहिये। यही बात (अहवा तिप्पएसिए य परमाणुपुग्गले य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य चउभंगो) इन पदों द्वारा स्पष्ट की गई है। यह प्रथम चतुर्भंगी का प्रथम भंग है। "आनुपूर्वी अनानुपूर्व्यः" इस द्वितीय भंग में त्रिप्रदेश वाला १, एक स्कंध और एक प्रदेश वाले अनेक पुद्गलपरमाणु वाच्यार्थरूप से विवक्षित हुए हैं। "आनुपूर्व्यः अनानुपूर्वी, इस तृतीय भंग में तीन आदि प्रदेश वाले बहुत स्कंध और १ एक प्रदेशवाला१ एक पुद्गलपरमाणु विवक्षित हुआ है। "आनुपूर्व्यः अनानुपूर्व्यः" इस चतुर्थ भंग में अनेक त्रयादि प्रदेश वाले स्कंध और अनेक एक प्रदेश वाले पुद्गल परमाणु वाच्यार्थरूप से विवक्षित हुए हैं। इस प्रकार से यह दो भंगों के संयोग से उत्पन्न हुई

છે, એમ સમજવું સંયોગપક્ષમાં એકવચન અને બહુવચન સંબંધી પહેલા અને બીજા ભાંગાને સંયુક્ત કરવાથી ત્રિપ્રદેશિક એક સ્કંધ એક આનુપૂર્વી રૂપ અને એક પરમાણુપુદ્ગલ એક અનાનુપૂર્વીના વાચ્યાર્થ રૂપ સમજવો જોઇએ એજ વાત "अहवा तिप्पएसिए य परमाणुपुग्गले य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य चउभंगो" આ સૂત્રપાઠ દ્વારા સ્પષ્ટ કરવામાં આવી છે. આ પહેલી ચતુર્ભંગીનો પહેલો ભાંગો છે. "आनुपूर्वी अनानुपूर्व्यः" આ બીજા ભાંગામાં ત્રિપ્રદેશવાળો એક સ્કંધ અને એક પ્રદેશવાળા અનેક પુદ્ગલપરમાણુ વાચ્યાર્થ રૂપે વિવક્ષિત થયા છે. "आनुपूर्व्यः अनानुपूर्वी" આ ત્રીજા ભાંગામાં ત્રણ આદિ પ્રદેશવાળા ઘણા સ્કંધો અને એક પ્રદેશવાળું એક પુદ્ગલ પરમાણુ વિવક્ષિત થયેલ છે. "आनुपूर्व्यः अनानुपूर्व्यः" આ ચોથા ભાંગામાં અનેક ત્રિપ્રદેશી આદિ સ્કન્ધો અને અનેક એક પ્રદેશવાળા પુદ્ગલપરમાણુ વાચ્યાર્થ રૂપે વિવક્ષિત થયા છે. આ પ્રકારની બે ભંગો (ભાંગાઓના) ના સંયોગથી ઉત્પન્ન થયેલી આ પહેલી ચતુર્ભંગી છે. તેમાં

द्विकयोगे चत्वारो भङ्गा बोद्धव्याः ४। एवमेव द्वितीयद्विकयोगे तृतीयद्विकयोगे च चत्वारश्चत्वारो भङ्गा विज्ञेयाः। एवं द्वादश भङ्गाः१२। चउभंगो' इत्यत्रार्षत्वादेक वचनम्। त्रिकयोगे तु–अथवा त्रिप्रदेशिकश्च परमाणुपुद्गलश्च द्विप्रदेशिकश्च आनुपूर्वी च अनानुपूर्वी च अवक्तव्यकं चेत्यादयोऽष्टौ भङ्गा बोध्याः। सर्वेऽपि भङ्गा अर्थकथनपुरस्सरा भावनीयाः।

प्रथम चतुर्भंगी है। इसमें चार भंगों का वाच्यार्थ प्रकट किया गया है। इसी प्रकार से द्वितीय द्विक के योग में चार भंग और तृतीय द्विक के योग में चार भंग जानना चाहिये। इनके योग में वाच्यार्थ इन भंगों का कथा २ होता है यह बात प्रथम द्विक के योग से जायमान चतुर्भंगी में स्पष्ट कर दी है सो उसी के अनुसार उन उन भंगों का वाच्यार्थ समझना चाहिये। इस प्रकार १२ भंगों का वाच्यार्थ यहां तक प्रकट किया। "चउभंगो" में जो एकवचन का प्रयोग हुआ है वह आर्ष होने से हुआ है। त्रिक–तीन–के योग में तीन प्रदेश वाला पुद्गलस्कंध "आनुपूर्वी" इस शब्द का वाच्यार्थ एक प्रदेश वाला पुद्गल "अणु-अनानुपूर्वी" इस शब्द का वाच्यार्थ और दो प्रदेश वाला स्कंध "अवक्तव्यक" इस शब्द का वाच्यार्थ पड़ता है इसी प्रकार से द्वितीय तृतीय आदि आठ भंगों में भी जिन जिन भंगों के वाच्यार्थ जान लेना चाहिये।

ચાર ભાંગાઓનો વાચ્યાર્થ પ્રગટ કરવામાં આવ્યો છે. એજ પ્રમાણે બીજા દ્વિકસંયોગમાં પણ ચાર ભાંગા, અને ત્રીજા દ્વિકસંયોગમાં પણ ચાર ભાંગા સમજવા જોઈએ આ દરેક ભાંગાનો વાચ્યાર્થ પહેલી દ્વિકસંયોગી ચતુર્ભંગીના ભાંગાઓનું સ્પષ્ટીકરણ કરી બતાવી સ્પષ્ટ કરવામાં આવ્યો છે. તો તેની મદદથી આ બે ચતુર્ભંગીનો [illegible] પણ સમજી લેવો. જોઈએ આ રીતે દ્વિકસંયોગી બાર (૧૨) ભાંગાઓનો વાચ્યાર્થ અહીં સુધીમાં સ્પષ્ટ કરવામાં આવ્યો છે.

હવે ત્રણના યોગથી જે ભાંગાઓ બને છે તેનું સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે–પહેલો ભાંગો–ત્રણપ્રદેશવાળો પુદ્ગલસ્કંધ "आनुपूर्वी" શબ્દના વાચ્યાર્થ રૂપ, એક પ્રદેશવાળુ એક પુદ્ગલપરમાણુ "अनानुपूर्वी" શબ્દના વાચ્યાર્થ રૂપ અને બે પ્રદેશવાળા સ્કંધ "अवक्तव्यक" શબ્દના વાચ્યાર્થ રૂપ સમજવો.

એજ પ્રમાણે બેથી લઈને આઠ પર્યન્તના ભાંગાનો વાચ્યાર્થ પણ સમજી લેવો.

ननु-आनुपूर्व्यादिपदानां त्र्यणुकस्कन्धादिकोऽर्थः अर्थपदप्ररूपणतालक्षणे प्रथमद्वारे उक्त एव तत्किमनेन पुनरुक्तेन? इतिचेत्, उच्यते-तत्र पदार्थमात्रमुक्तम्, इह तु तेषामेवानुपूर्व्यादिपदानां भङ्गरचना समादिष्टानामर्थः प्रोच्यते इति नास्ति कश्चिद् दोषः। यद्वा-नयमतवैचित्र्यप्रदर्शनार्थं वा पुनरर्थपदर्शनं कृतमिति नास्ति कश्चिद् दोष इत्यलमधिकोक्त्या। प्रकृतमुपसंहरन्नाह-'से तं' इत्यादि। सैषा नैगमव्यवहारसम्मता भङ्गोपदर्शनतेति ॥सू० ७९॥

शंका— इन आनुपूर्वी आदि पदों का त्र्यणुक आदि रूप वाच्यार्थ अर्थ पद प्ररूपणता रूप प्रथम द्वार में कह ही दिया गया है। फिर इस पुनरुक्त कथन से क्या लाभ ?

उत्तर— अर्थपदप्ररूपणता में पदार्थमात्र कहा गया है-तबकि यहां पर उन्ही आनुपूर्वी आदि पदोंका की जो भंगरचना द्वारा स्पष्ट किये गये हैं अर्थ कहा गया है। अतः-यहां पुनरुक्ति दोष नहीं है। अथवा नय मत की विचित्रता दिखलाने के लिये पुनः अर्थ कथन किया गया है। इस प्रकार यह कथन सर्वथा निर्दोष है। इस विषय में अब अधिक क्या कहें। (से तं नेगमववहाराणं भंगोवदंसणया) इस प्रकार से नैगम व्यवहारनय संमत यह भंगोपदर्शनता है

भावार्थ-भंगसमुत्कीर्तनता द्वारा निर्दिष्ट हुए भंगो का इस भंगोपदर्शनता में अर्थ का कथन किया जाता है। इनका कौन२ वाच्यार्थ है यह बात

શંકા-આ આનુપૂર્વી આદિ પદોનો ત્રિઅણુક આદિ રૂપ વાચ્યાર્થ અર્થપદ પ્રરૂપણતા રૂપ પહેલા દ્વારમાં કહી દેવામાં આવ્યો છે. છતાં અહીં તેનું ફરીથી કથન શા માટે કરવામાં આવ્યું છે?

ઉત્તર-અર્થપદપ્રરૂપણતામાં માત્ર પદાર્થનું જ પ્રતિપાદન કરાયું છે. પરન્તુ અહીં તો ભંગરચના દ્વારા સ્પષ્ટ કરાયેલા એજ આનુપૂર્વી આદિ પદોનો અર્થ કહેવામાં આવ્યો છે તેથી અહીં પુનરુક્તિદોષનો સંભવ રહેતો નથી અથવા નયમતની વિચિત્રતા બતાવવાને માટે અર્થનું ફરીથી કથન કરવામાં આવ્યું છે આ રીતે આ કથન બિલકુલ નિર્દોષ જ છે આ વિષયમાં હવે અધિક કહેવાની જરૂર રહેતી નથી. (से तं नेगमववहाराणं भंगोवदंसणया) આ પ્રકારની નૈગમ અને વ્યવહાર નયસંમત આ ભંગોપદર્શનતા છે.

ભાવાર્થ-ભંગસમુત્કીર્તનતા દ્વારા નિર્દિષ્ટ થયેલા ભંગોના અર્થનું કથન આ ભંગોપદર્શનતામાં કરવામાં આવ્યું છે તેમનો કયો કયો વાચ્યાર્થ થાય છે એ વાત વ્યાખ્યામાં સ્પષ્ટ કરવામાં આવી છે. અર્થપદપ્રરૂપણતામાં

अथ क्रमप्राप्तं समवतारं प्ररूपयति-

मूलम्-से किं तं समोयारे? समोयारे-नेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कहिं समोयरंति? किं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति? अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति? अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति? नेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति नो आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति णो अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति। नेगमववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाइं कहिं समोयरंति? किं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति? अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति? अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति?, नो आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति, नो अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति। नेगमववहाराणं अवत्तव्वयदव्वाइं कहिं समोयरंति? किं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति? अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति? अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति? नो आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति, णो अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति। से तं समोयारे ॥सू०८०॥

छाया—अथ कोऽसौ समवतारः? समवतारः-नैगमव्यवहारयोः आनुपूर्वीद्रव्याणि कुत्र समवतरन्ति?, किम् आनुपूर्वीद्रव्येषु समवतरन्ति? अनानुपूर्वीद्रव्येषु समवतरन्ति? अवक्तव्यकद्रव्येषु समवतरन्ति? नैगमव्यवहारयोः आनुपूर्वीद्रव्याणि आनुपूर्वीद्रव्येषु समवतरन्ति, नो अनानुपूर्वीद्रव्येषु समवतरन्ति, नो अवक्तव्यकद्रव्येषु समवतरन्ति। नैगमव्यवहारयोः अनानुपूर्वीद्रव्याणि कुत्र समवतरन्ति?

व्याख्या में स्पष्ट की गई है। अर्थपद प्ररूपणता में केवल अर्थपदरूप पदार्थ का कथन है-तब कि इसमें भिन्न २ रूपसे कथित भंगोंका अर्थ है। इसलिए पुनरुक्ति दोष के लिये यहां स्थान नहीं है। सू० ७९॥

તો કેવળ અર્થપદ રૂપ પદાર્થનું જ કથન થયું છે, પરન્તુ ભંગોપદર્શનતામાં તો ભિન્ન ભિન્ન રૂપે કથિત ભંગોના અર્થનું કથન થયું છે તેથી અહીં પુનરુક્તિ દોષનો સંભવ નથી. ॥ સૂ૦૭૯॥

किम् आनुपूर्वीद्रव्येषु समवतरन्ति ? अनानुपूर्वी द्रव्येषु समवतरन्ति ? अवक्तव्यक द्रव्येषु समवतरन्ति? नो आनुपूर्वीद्रव्येषु समवतरन्ति, अनानुपूर्वी द्रव्येषु समवतरन्ति, नो अवक्तव्यकद्रव्येषु समवतरन्ति। नैगमव्यवहारयोः अवक्तव्यकद्रव्याणि कुत्र समवतरन्ति ? किम् आनुपूर्वीद्रव्येषु समवतरन्ति? अनानुपूर्वीद्रव्येषु समवतरन्ति ? अवक्तव्यकद्रव्येषु समवतरन्ति ? नो आनुपूर्वीद्रव्येषु समवतरन्ति, नो अनानुपूर्वी द्रव्येषु समवतरन्ति, अवक्तव्यकद्रव्येषु समवतरन्ति । स एष समवतारः ॥सू०८०॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि—

अथ कोऽसौ समवतारः? इति शिष्य प्रश्नः। उत्तरयति-समवतारः-समवतरणं समवतारः=समावेशः तेषामेषामानुपूर्वीदिद्रव्याणां स्वस्थानपरस्थानान्तर्भावचिन्तनप्रकारः, स एवं विज्ञेयः-तद्यथा-नैगमव्यवहारयोः आनुपूर्वीद्रव्याणि कुत्र समवतरन्ति ?=नैगमव्यवहारसम्मतानि आनुपूर्वी द्रव्याणि कुत्र समाविशन्ति ? किम् आनुपूर्वीद्रव्येषु समवतरन्ति ? किमनानुपूर्वीद्रव्येषु ? किंवाऽवक्तव्यक द्रव्येषु ?

अब सूत्रकार समवतार की प्ररूपणा करते हैं-

"से किं तं समोयारे" इत्यादि ।

(से किंतं समोयारे) हे भदंत! पूर्व प्रक्रान्त समवतार का क्या स्वरूप है ?

उत्तर— (समोयारे) पूर्व प्रक्रान्त समवतार का स्वरूप इस प्रकार से है— समवतार का तात्पर्य समावेश है-अर्थात् अनेक आनुपूर्वी आदि जो द्रव्य हैं इनका अन्तर्भाव स्वस्थान में होता है या परस्थान में होता है इस प्रकार के चिन्तन प्रकार का - विचार का जो उत्तर है वही समावेश- या समवतार है । यह विचार इस प्रकार से होता है कि-(नेगमववहाराणं आणुपुव्वी दव्वाइं-कहिं समोयरंति, किं आणुपुव्वी दव्वेहिं समोयरंति अणाणुपुव्वी दव्वेहिं समोयरंति ?)

હવે સૂત્રકાર સમવતારની પ્રરૂપણા કરે છે-

"से किं तं समोयारे" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(से किं तं समोयारे ?) હે ભગવન્! પૂર્વપ્રસ્તુત સમવતારનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર-(समोयारे) સમવતારનું સ્વરૂપ નીચે પ્રમાણે છે-સમવતાર એટલે સમાવેશ એટલે કે અનેક આનુપૂર્વી આદિ જે દ્રવ્યો છે તેમનો અંતર્ભાવ સ્વસ્થાનમાં થાય છે કે પરસ્થાનમાં થાય છે, આ પ્રકારના ચિન્તનનો-વિચારનો જે ઉત્તર છે તેને જ સમવતાર અથવા સમાવેશ કહે છે તે વિચાર આ પ્રમાણે થાય છે-(नेगमववहाराणं आणुपुव्वी दव्वाइं कहिं समोयरंति ? किं आणुपुव्वी

इति त्रिविधः प्रश्नः। उत्तरमाह–नेगमववहाराणं' इत्यादि। नैगमव्यवहारसम्मतानि आनुपूर्वीद्रव्याणि आनुपूर्वीद्रव्येषु समवतरन्ति, नो अनानुपूर्वीद्रव्येषु, न वाऽवक्तव्यकद्रव्येषु। अयं भावः–आनुपूर्वीद्रव्याणि आनुपूर्वीद्रव्यलक्षणायां स्वजातावेव वर्त्तन्ते, न ततोऽन्यत्र। यतः समवतारः–सम्यगविरोधेन अवतरणं=वर्तनम्–अविरोधवृत्तिता प्रोच्यते। अविरोधवृत्तिता च स्वजातावेव स्यात्, न तु परजातौ। तस्याः परजातिवृत्तित्वे विरोधात्। ततश्च नानादेशवृत्तीनि सर्वाण्य-

---

नैगम और व्यवहारनय-संमत जो आनुपूर्वी द्रव्य है वे कहां समाविष्ट होते हैं? क्या आनुपूर्वी द्रव्यों में समाविष्ट होते हैं या अनानुपूर्वी द्रव्यों में? या (अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति) अवक्तव्यक द्रव्यों में समाविष्ट होते हैं? (नेगमववहाराणं आणुपुव्वी दव्वाइं अणाणुपुव्वी दव्वेहिं समोयरंति)

उत्तर— नैगम व्यवहारनय संमत जो आनुपूर्वी द्रव्य हैं वे आनुपूर्वी द्रव्यों में ही समाविष्ट होते हैं (नो अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति नो अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति) अनानुपूर्वी द्रव्यों में समाविष्ट नहीं है और न अवक्तव्यक द्रव्यों में समाविष्ट होते हैं। इसका भाव यह है–कि समस्त आनुपूर्वी द्रव्य, विना किसी विरोध के अपनी जाति में ही रहते हैं। दूसरी जाति में नहीं। विना विरोध के अपनी जाति में रहना इसी का नाम समवतार समावेश, अविरोधवृत्तिता है। यह

दव्वेहिं समोयरंति, अणाणुपुव्वी दव्वेहिं समोयरंति) નૈગમ અને વ્યવહાર નયસંમત જે આનુપૂર્વી દ્રવ્યો છે તેમનો કયાં સમાવેશ થાય છે? શું આનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાં સમાવેશ થાય છે, કે અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાં સમાવેશ થાય છે? અથવા (अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति) અવક્તવ્યક દ્રવ્યોમાં સમાવેશ થાય છે? (नेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति) ઉત્તર–નૈગમ અને વ્યવહાર નયસંમત જે આનુપૂર્વી દ્રવ્યો છે, તેમનો આનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાં જ સમાવેશ થાય છે, (नो अणाणुपुव्वी दव्वेहिं समोयरंति, नो अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति) અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાં સમાવેશ પણ થતો નથી અને અવક્તવ્ય દ્રવ્યોમાં પણ સમાવેશ થતો નથી આ કથનનું તાત્પર્ય નીચે પ્રમાણે છે—

સમસ્ત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો કોઈ પણ જાતના વિરોધ (અવરોધ) વિના પોતાની જાતિમાં રહે છે–બીજી જાતિમાં રહેતા નથી કોઈ પણ પ્રકારના વિરોધ વિના પોતાની જાતિમાં રહેવું તેનું જ નામ સમવતાર અથવા સમા-

अविरोध वृत्तिता अपनी जाति में ही हो सकती है दूसरी जाति में नहीं। आनुपूर्वी द्रव्योंका समवतार यदि पर जाति में भी माना जावेगा तो इस प्रकार परजाति में रहने पर उनमें स्वजाति में रहने की अविरोध वृत्तिता नहीं बन सकेगी। इसलिये यह निश्चित सिद्धान्त है-कि नाना देशवर्ती समस्त आनुपूर्वी द्रव्य आनुपूर्वी द्रव्यरूप अपनी जाति में ही रहते हैं। परजाति में नहीं। (नेगमववहाराणं अणाणुपुव्वाइं कहिं समोयरंति किं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति ? अणाणुपुव्वी दव्वेहिं समोरंति ? अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति) नैगम व्यहारनय संमत समस्त अनानुपूर्वी द्रव्य कहां प्रविष्ट होते हैं ? क्या आनुपूर्वी द्रव्यों में समाविष्ट होते हैं, या अवक्तव्यक द्रव्यों में समाविष्ट होते हैं ?

उत्तर—(नो आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति, अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति, नो अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति) जितने भी अनानुपूर्वी द्रव्य है- वे सब न तो आनुपूर्वी द्रव्यों में रहते हैं, और न अवक्तव्यक द्रव्यों में रहते हैं, किन्तु अपनी जाति रूप जो अनानुपूर्वी द्रव्य है उनमें ही रहते हैं। इसी प्रकार से जितने भी नैगमव्यवहार नय संमत अवक्त-

---

वेश अथवा अविरोधवृत्तिता छे. आ अविरोधवृत्तितानो सद्भाव पोतानी जातिमां ज होई शके छे-अन्य जातिमां होइ शकतो नथी आनुपूर्वी द्रव्योनो समवतार (समावेश) जो पर जातिमां पण मानवामां आवे तो आ रीते पर जातिमां रहेवाथी तेमनामां स्वजातिमां रहेवानी अविरोधवृत्तिता संभवी नहीं शके तेथी एवो निश्चित सिद्धांत छे के विविध देशवर्ती समस्त आनुपूर्वी द्रव्य आनुपूर्वी द्रव्य रूप पोतानी जातिमां ज रहे छे- परजातिमां रहेतुं नथी.

(नेगमववहाराणं अणाणुपुव्वाइं कहिं समोयरंति किं आणुपुव्वी दव्वेहिं समोयरंति ? अणाणुपुव्वी दव्वेहिं समोयरंति ? अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति ?) नैगम अने व्यवहार नयसंमत समस्त अनानुपूर्वी द्रव्यो क्यां प्रविष्ट थाय छे ? शुं तेओ आनुपूर्वी द्रव्योमां समाविष्ट थाय छे के अनानुपूर्वी द्रव्योमां समाविष्ट थाय छे, के अवक्तव्यक द्रव्योमां समाविष्ट थाय छे ?

उत्तर-(नो आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति, अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति, नो अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति) जेटलां आनानुपूर्वी द्रव्यो छे, तेओ आनुपूर्वी द्रव्योमां पण रहेतां नथी, अवक्तव्यक द्रव्योमां पण रहेतां नथी, पण तेमनी जाति रूप जे अनानुपूर्वी द्रव्यो होय छे तेमां ज रहे छे. एज प्रमाणे नैगमव्यवहारनय संमत जेटलां अवक्तव्यक द्रव्यो छे तेओ

प्यानुपूर्वीद्रव्याणि आनुपूर्वीद्रव्येष्वेव वर्त्तन्ते नान्यत्रेति। एवं नैगमव्यवहारसम्मतानि अनानुपूर्वी द्रव्याणि अनानुपूर्वीद्रव्येष्वेव वर्त्तन्ते, नैगमव्यवहारसम्मतानि अवक्तव्यकद्रव्याणि च अवक्तव्यकद्रव्येष्वेव वर्त्तन्ते, इत्यपि भावनीयम्। प्रकृतमुपसंहरन्नाह-स एष समवतार इति ॥सू०८०॥

अथानुगमं निरूपयितुमाह—

मूलम्-से किं तं अणुगमे? अणुगमे नवविहे पण्णत्ते? तं जहा संतपयपरूवणया१ दव्वप्पमाणं२च खित्त३ फुसणा य४। कालो य ५ अंतरं ६ भाग ७ भाव ८ अप्पाबहुं ९ चेव ॥१॥ से तं अणुगमे ॥सू०८१॥

छाया—अथ कोऽसौ अनुगमः? अनुगमो नवविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-सत्पदप्ररूपणता १ द्रव्यप्रमाणं च २ क्षेत्रं ३ स्पर्शना च ४। कालश्च ५ अन्तरं ६ भागो७ भावः८ अल्पबहुत्वं चैव ॥१॥ स एषोऽनुगमः ॥सू० ८१॥

व्यक द्रव्य हैं वे सब अपनी जातिरूप अवक्तव्यक द्रव्यों में ही रहते हैं। ऐसा अर्थ अवशिष्ट पाठ को लगा लेना चाहिये। इस प्रकार यह समवतार का स्वरूप है?

भावार्थ—आनुपूर्वी अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक जितने भी द्रव्य हैं उनके विषय में ये तीन प्रश्न हो सकते हैं-कि आनुपूर्वी आदि समस्त द्रव्य कहां रहते हैं?। अपनी जाति वालों में ही रहते हैं-या भिन्न जाति वालों में रहते हैं। इनका ही समाधान सूत्रकार ने इस सूत्रद्वारा किया है। उसमें यह कहा गया है कि नैगमव्यवहारसंमत समस्त आनुपूर्वी आदि द्रव्य अपनी २ जाति में ही रहते हैं-भिन्न जाति में नहीं। ॥सू० ८०॥

પણ પોતાની જાતિ રૂપ અવક્તવ્યક દ્રવ્યોમાં જ રહે છે; એવો અર્થ બાકીના પાઠના વિષયમાં સમજી લેવો જોઈએ આ પ્રકારનું સમવતારનું સ્વરૂપ છે.

ભાવાર્થ-આનુપૂર્વી, અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક રૂપ જેટલાં દ્રવ્યો છે, તેમને વિષે આ ત્રણ પ્રશ્ન સંભવી શકે છે-આનુપૂર્વી આદિ સમસ્ત દ્રવ્ય ક્યાં રહે છે? શું તેઓ પોતાની જાતિવાળામાં જ રહે છે, કે ભિન્ન જાતિવાળામાં રહે છે? સૂત્રકારે આ સૂત્રમાં આ પ્રશ્નોનું જ સમાધાન કર્યું છે. તેમણે આ સૂત્રમાં એ વાતનુ પ્રતિપાદન કર્યું છે કે નૈગમવ્યવહારનય-સંમત સમસ્ત આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્ય પોતપોતાની જાતિમાં જ રહે છે-ભિન્ન જાતિમાં રહેતાં નથી. ॥સૂ૦૮૦॥

टीका—शिष्यः पृच्छति-'से किं तं' इत्यादि। अथ कोऽसौ अनुगम? इति। अनुगमः-सूत्रार्थस्य अनुकूलम् अनुरूपं वा गमनं=व्याख्यानम्-अनुगमः। स नवविधः=नवप्रकारकः प्रज्ञप्तः=प्ररूपितः, तद्यथा-सत्पदप्ररूपणता-सन् विद्यमानो योऽर्थः=भावस्तद्विषयं पदं सत्पदं तस्य प्ररूपणं=प्रज्ञापनं तदेव सत्पदप्ररूपणता प्रथमं कर्त्तव्या। अयं भावः-स्तम्भकुम्भादीनि पदानि सदर्थविषयाणि दृश्यन्ते, शशशृङ्गगगनकुसुमादीनि पदानि त्वसदर्थविषयाणि दृश्यन्ते। तत्रानु-

---

अब सूत्रकार अनुगम का निरूपण करते हैं—

"से किं तं अणुगमे?"। इत्यादि।

शब्दार्थ-(से किं तं अणुगमे?) हे भदन्त! अनुगम का क्या स्वरूप है? उत्तर-(अणुगमे नवविहे पण्णत्ते) अनुगम नौ प्रकार का कहा गया है। (तं जहा) जैसे-(संतपयपरूवणया) १ सत्पद-प्ररूपणता (दव्वप्पमाणं च) २ द्रव्यप्रमाण (खित्त ३ फुसणाय ४) ३ क्षेत्र४ स्पर्शन (कालोय, अंतर, भाग भाव अप्पाबहुं चेव) ५ काल ६ अन्तर, ७ भाग ८ भाव और ९ अल्पबहुत्व। (से तं अणुगमे) इस प्रकार यह अनुगम का स्वरूप है। सूत्र के अनुकूल अथवा अनुरूप व्याख्यान करना इसका नाम अनुगम है। यह पूर्वोक्त रूप से नौ प्रकार का कहा गया है। सत्पद-प्ररूपणतारूप १ प्रथम अनुगम के भेद में यह प्ररूपित किया जाता है कि जिस प्रकार से शशशृङ्ग आदि पद असदर्थ को विषय करने वाले

હવે સૂત્રકાર અનુગમનું નિરૂપણ કરે છે—

"से किं तं अणुगमे?" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(से किं तं अणुगमे?) હે ભગવન્! પૂર્વપ્રસ્તુત અનુગમનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(अणुगमे नवविहे पण्णत्ते-तं जहा) અનુગમના નીચે પ્રમાણે નવ પ્રકાર કહ્યા છે-(संतपयपरूवणया) (૧) સત્પદ પ્રરૂપણતા, (दव्वप्पमाणं च) (૨) દ્રવ્યપ્રમાણ, (खित्त ३ फुसणा य ४ (૩) ક્ષેત્ર, (૪) સ્પર્શન, (कालो य, अंतर, भाग, भाव, अप्पाबहुंचेव) (૫) કાળ, (૬) અન્તર, (૭) ભાગ, (૮) ભાવ, અને (૯) અલ્પબહુત્વ.

(से तं अणुगमे) આ પ્રકારનું અનુગમનું સ્વરૂપ છે સૂત્રને અનુકૂળ અથવા અનુરૂપ વ્યાખ્યાન કરવું તેનું નામ અનુગમ છે તેના ઉપર મુજબ નવ પ્રકાર કહ્યા છે. સત્પદપ્રરૂપણતા રૂપ અનુગમના પ્રથમ ભેદમાં વિદ્યમાન પદાર્થવિષયક પદની પ્રરૂપણા કરવામાં આવે છે સસલાને શિંગડાં હોવાની

पूर्वादिपदानि स्तम्भादि पदानीव सदर्थविषयाणि, किंवा शशशृङ्गादिपदानीव असदर्थविषयाणि ? इति पर्यालोचनीयमिति ।१। तथा-द्रव्यप्रमाणम्=आनुपूर्व्यादिपदवाच्यानां द्रव्याणां प्रमाणं=संख्यास्वरूपं पर्यालोचनीयम् ।२। च पुनः क्षेत्रम्= आनुपूर्व्यादिपदवाच्यद्रव्याणाम् आधारस्वरूपं वक्तव्यम्। कियति क्षेत्रे तानि भवन्तीति चिन्तनीयमिति भावः ।३। तथा-स्पर्शना च पर्यालोचनीया। तानि द्रव्याणि कियत् क्षेत्रं स्पृशन्तीति चिन्तनीयमिति भावः ।४। तथा-कालश्च वक्तव्यः-

होते हैं, उस प्रकार से ये आनुपूर्वी आदि पद असदर्थ विषयक नहीं हैं किन्तु जिस प्रकार स्तम्भ आदि पद स्तम्भ आदिरूप अपने वास्तविक अर्थ को विषय करने वाले होते हैं उसी प्रकार से आनुपूर्वी आदि पद यथार्थरूपसे अपने सदर्थ को विषय करने वाले हैं। इस प्रकार विद्यमान पदार्थ विषयकपद की प्ररूपणा का नाम सत्पदप्ररूपणता है। यह सत्पदप्ररूपणा अनुगम करते समय प्रथम कर्तव्य होती है। इसलिये उसे अनुगम के भेदों में प्रथम स्थान दिया गया है। द्रव्य प्रमाण में आनुपूर्वी आदि पदों के द्वारा जिन द्रव्यों को कहा जाता है उनकी संख्या कितनी है इसका विचार होता है ? क्षेत्र में-आनुपूर्वी आदि पदों द्वारा कथित द्रव्यों का आधाररूप क्षेत्र विचारित होता है-अर्थात् ये आनुपूर्वी आदि द्रव्य कितने प्रमाण क्षेत्र में होते हैं ऐसा विचार किया जाता है। स्पर्शन में ये आनुपूर्वी आदि द्रव्य कितने क्षेत्र को स्पर्श करते हैं

પ્રરૂપણા કરવી તે અસદર્થ પ્રરૂપણા છે, કારણ કે તેને શિંગડાં જ હોતાં નથી પરન્તુ આનુપૂર્વી આદિ પદ અસદર્થ વિષયક હોતા નથી પણ સદર્થ વિષયક હોય છે. જેવી રીતે સ્તમ્ભ આદિ પદ સ્તમ્ભ આદિ રૂપ પોતાના વાસ્તવિક અર્થને વિષય કરનારા (પ્રતિપાદન કરનારા) હોય છે, એજ પ્રમાણે આનુપૂર્વી આદિ પદ યથાર્થ રૂપે પોતાના સદર્થને વિષય કરનારા હોય છે. આ રીતે વિદ્યમાન પદાર્થવિષયક પદની પ્રરૂપણાનું નામ 'સત્પદપ્રરૂપણતા' છે, આ સત્પદપ્રરૂપણા અનુગમ કરતી વખતે પહેલાં કરવા યોગ્ય હોય છે. તેથી તેને અનુગમના ભેદોમાં પહેલું સ્થાન આપવામાં આવ્યું છે. ૧

દ્રવ્યપ્રમાણમાં એ વિચાર કરવામાં આવે છે કે આનુપૂર્વી આદિ પદો દ્વારા જે દ્રવ્યોનું કથન કરવામાં આવે છે તેમની સંખ્યા કેટલી છે. ૨

ક્ષેત્રમાં-આનુપૂર્વી આદિ પદો દ્વારા કથિત દ્રવ્યોના આધાર રૂપ ક્ષેત્રનો વિચાર કરવામાં આવે છે-એટલે કે એ આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્ય કેટલા પ્રમાણવાળા ક્ષેત્રમાં હોય છે, એવો વિચાર કરવામાં આવે છે. ૩

तेषां द्रव्याणां स्थितिलक्षणः कालश्च प्ररूपणीयः ॥५॥ तथा-अन्तरं वक्तव्यम्। विवक्षितस्वभावपरित्यागे सति पुनस्तद्भावप्राप्तिविरहलक्षणमन्तरं प्ररूपणीयमिति भावः। द्रव्यस्य विवक्षितस्वभावपरित्यागे सति पुनस्तद्भावप्राप्तौ च मध्ये यः कालः सोऽन्तरमुच्यते, इति बोध्यम्। ६॥ तथा-भागश्च वक्तव्यः। आनुपूर्वीद्रव्याणि शेषद्रव्याणां कस्मिन् भागे वर्त्तन्ते, इत्येवं भागः प्ररूपणीय इति भावः ॥७॥ तथा भावः प्ररूपणीयः। आनुपूर्वीद्रव्याणि कस्मिन् भावे वर्त्तन्ते इत्येवं रूपो भावो वक्तव्य इत्यर्थः ॥८॥ तथा-अल्पबहुत्वं चैव=चापि वक्तव्यम्। आनुपूर्व्यादिद्रव्याणां

ऐसी पर्यालोचना होती है। क्षेत्र में केवल आधारभूत आकाश ही लिया जाता है और स्पर्शनता में आधार क्षेत्र के चारों तरफ के आकाश प्रदेश जो आधेय के द्वारा छुये गये हों वे भी लिये जाते हैं। आनुपूर्वी आदि द्रव्यों की स्थिति का विचार यह काल है। अनुगम में आनुपूर्वी आदि द्रव्यों कि स्थिति कितनी है इस बात की पर्यालोचना की जाती है अन्तर नाम विरह काल का है। विवक्षित पर्याय के परित्याग हो जाने पर पुनः उसी पर्याय की प्राप्ति होने में जो बीच में अन्तर पडता है उसका नाम विरह काल है। अनुगम में इस अन्तर की प्ररूपणा करना आवश्यकीय माना गया है। आनुपूर्वी द्रव्यशेष द्रव्यों के किस भाग में रहते हैं इस प्रकार के भाग की भी प्ररूपणा अनुगम में कर्तव्य होती है आनुपूर्वी आदि द्रव्य किस भाव में रहते हैं इस प्रकार की प्ररूपणा का नाम भाव है। न्यूनाधिकता

સ્પર્શન અનુગમમાં એવો વિચાર કરવામાં આવે છે કે તે આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્ય કેટલા ક્ષેત્રનો સ્પર્શ કરે છે ક્ષેત્રમાં કેવળ આધારભૂત આકાશ જ લેવામાં આવે છે અને સ્પર્શનામાં આધાર ક્ષેત્રની ચારે તરફના જે આકાશ પ્રદેશો આધેય દ્વારા સ્પૃષ્ટ થયા હોય, તેમને પણ લેવામાં આવે છે આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્યોની સ્થિતિનો વિચાર કરવો તેનું નામ 'કાળઅનુગમ' છે. કાળઅનુગમમાં આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્યોની સ્થિતિ કેટલી છે, એ વાતની પર્યાલોચના (વિચારણા) કરવામાં આવે છે વિરહકાળને અન્તર કહે છે. વિવક્ષિત (અમુક) પર્યાયનો પરિત્યાગ થઈ ગયા બાદ ફરીથી એજ પર્યાયની પ્રાપ્તિ થવામાં વચ્ચે જેટલું અન્તર પડે છે તેટલા અન્તરને વિરહકાળ કહે છે. અનુગમમાં આ અન્તરની પણ પ્રરૂપણા કરવાનું આવશ્યક ગણાય છે.

આનુપૂર્વી દ્રવ્યો શેષ (બાકીના) દ્રવ્યોના કયા ભાગમાં રહે છે, તે પ્રકારના ભાગની પણ પ્રરૂપણા અનુગમમાં કરવી પડે છે. ૭ આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્યો કયા ભાવમાં રહે છે, તે પ્રકારની પ્રરૂપણાનું નામ ભાવઅનુગમ છે. ન્યૂનાધિકતાનું નામ અલ્પબહુત્વ છે દ્રવ્યાર્થિક નયને આધારે, પ્રદેશાર્થતાને

द्रव्यार्थताऽऽश्रयणेन प्रदेशार्थताऽऽश्रयणेन तदुभयार्थताऽऽश्रयणेन च परस्परं स्तोकबहुत्वचिन्तालक्षणम् अल्पबहुत्वं चाऽपि प्ररूपणीयमिति भावः ।।९।। प्रकृतमुपसंहरन्नाह–'से तं' इत्यादि। स एष अनुगम इति ॥सू० ८१॥

इत्थं संक्षेपतोऽर्थमभिधाय विस्तरेणार्थमभिधातुकामः सूत्रकारोऽनुगमस्य नवसु भेदेषु सत्पदप्ररूपणारूपं प्रथमं भेदमाह—

मूलम्–नेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि नत्थि? णियमा अत्थि, नेगमववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि णत्थि?, णियमा अत्थि, नेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाइं किं अत्थि णत्थि? णियमा अत्थि ॥सू० ८२॥

का नाम अल्पबहुत्व है। द्रव्यार्थिकनय के आश्रय से प्रदेशार्थता के आश्रय से और तदुभय–द्रव्यार्थिक प्रदेशार्थिक इन दोनों के आश्रय से इन आनुपूर्वी आदि द्रव्यों में जो स्तोक बहुत का विचार है वही अल्पबहुत्व है। अनुगम में इस अल्पबहुत्व की भी प्ररूपणा कर्तव्य होती है। (से तं अणुगमे) इस प्रकार यह अनुगम का स्वरूप है।

भावार्थ—सूत्रार्थ के अनुकूल अथवा अनुरूप व्याख्यान का नाम अनुगम है। इस अनुगम में इन नौ ९ विषयों का विचार किया जाता है। इसलिये वह अनुगम सत्पद प्ररूपणा आदि के भेद से नौ प्रकार का कहा गया है। इन सत्पद प्ररूपणता आदि का क्या स्वरूप है इसे स्वयं सूत्रकार विस्तार से आगे सूत्रों द्वारा स्पष्ट करते हैं। ॥सू० ८१॥

આધારે અને તદુભય (તે બન્ને)–દ્રવ્યાર્થિક અને પ્રદેશાર્થિક એ બન્નેને આધારે આ આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્યોમાં જે અલ્પત્વ અને બહુત્વનો વિચાર કરવામાં આવે છે તેનું નામ જ અલ્પબહુત્વ છે અનુગમમાં આ અલ્પબહુત્વની પ્રરૂપણા પણ કરવા યોગ્ય ગણાય છે (से तं अणुगमे) આ પ્રકારનું અનુગમનું સ્વરૂપ છે.

ભાવાર્થ–સૂત્રાર્થને અનુકૂળ અથવા અનુરૂપ વ્યાખ્યાનનું નામ અનુગમ છે. તે અનુગમમાં ઉપર્યુક્ત નવ વિષયોનો વિચાર કરવામાં આવે છે, તેથી તે અનુગમમાં સત્પદ પ્રરૂપણા આદિ નવ ભેદ કહ્યા છે આ સત્પદ પ્રરૂપણા આદિના સ્વરૂપનું વિસ્તાર પૂર્વકનું નિરૂપણ સૂત્રકાર પોતે જ આગળના સૂત્રોમાં કરવાના છે, તેથી અહીં તેનો ભાવાર્થ સંક્ષિપ્તમાં આપવામાં આવ્યો છે. ॥સૂ૦૮૧॥

छाया—नैगमव्यवहारयोः आनुपूर्वीद्रव्याणि किं सन्ति न सन्ति ? नियमात् सन्ति। नैगमव्यवहारयोः अनानुपूर्वी द्रव्याणि किं सन्ति न सन्ति ? नियमात् सन्ति। नैगमव्यवहारयोः अवक्तव्यकद्रव्याणि किं सन्ति न सन्ति ? नियमात् सन्ति॥सू०८२॥

टीका—' नेगमववहाराणं ' इत्यादि। व्याख्या निगदसिद्धा ॥सू०८२॥

इस प्रकार संक्षेप से सत्पदप्ररूपणा आदि का अर्थ कहकर अब सूत्रकार विस्तार से उनका अर्थ कहने की इच्छा से अनुगम के नौ भेदों का कथन करते हैं–'नेगमववहाराणं' इत्यादि।

शब्दार्थ—(नेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि नत्थि ?) नैगमव्यवहारनयसंमत आनुपूर्वी द्रव्य क्या है या नहीं हैं ?

(णियमा अत्थि) उत्तर–अवश्य हैं। (नेगमववहाराणं अणाणुपुव्वी दव्वाइं किं अत्थि णत्थि ?) नैगम व्यवहारनयसंमत अनानुपूर्वी द्रव्य हैं या नहीं हैं ? उत्तर–(णियमा अत्थि) नियम से हैं–अवश्य २ हैं–(नेगमववहाराणं अवत्तव्वागदव्वइं किं अत्थि ? णत्थि ?–णियमा अत्थि) नैगम व्यवहारानय संमत अवक्तव्यक द्रव्य हैं या नहीं हैं ?

उत्तर—नियमतः हैं।

भावार्थ—सूत्रकार ने इस सूत्रद्वारा नैगम व्यवहारनय संमत आनुपूर्वी आदि द्रव्य हैं ? यह बात नियमपद से जोर के साथ प्रकट की है

આ પ્રમાણે અનુગમના સત્પદપ્રરૂપણા આદિ ભેદોનો અર્થ સંક્ષિપ્તમાં સમજાવીને હવે સૂત્રકાર તે નવે ભેદોનો અર્થ વિસ્તારપૂર્વક સમજાવવા માગે છે. તેથી તેઓ સત્પદપ્રરૂપણતા રૂપ તેના પ્રથમ ભેદનું નીચેના સૂત્ર દ્વારા નિરૂપણ કરે છે—" नेगमववहाराणं " ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ–પ્રશ્ન–(नेगमववहाराणं आणुपुव्वी दव्वाइं किं अत्थि नत्थि ?) નૈગમ અને વ્યવહાર નયસંમત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો છે કે નથી ?

ઉત્તર–(णियमा अत्थि) અવશ્ય છે જ.

પ્રશ્ન–(नेगमववहाराणं अणाणुपुव्वी दव्वाइं किं अत्थि णत्थि ?) નૈગમવ્યવહારનયસંમત અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો શું છે કે નથી ?

ઉત્તર–(णियमा अत्थि) નિયમથી જ એટલે કે અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોનું અસ્તિત્વ પણ અવશ્ય છે જ.

ભાવાર્થ–સૂત્રકારે આ સૂત્રદ્વારા નૈગમવ્યવહાર નયસંમત આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્યોનું અસ્તિત્વ હોવાનું પ્રતિપાદન કર્યું છે. " તેમનું અસ્તિત્વ નિયમથી જ છે, " આ પ્રકારના કથન દ્વારા તેમણે આ વાતને ભારપૂર્વક

अथ द्रव्यप्रमाणरूपं द्वितीयभेदमाह—

मूलम्–नेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं संखिज्जाइं असंखिज्जाइं अणंताइं?, नो संखिज्जाइं नो असंखिज्जाइं अणंताइं। एवं अणाणुपुव्वीदव्वाइं अवत्तव्वगदव्वाइं च अणंताइं भाणियव्वाइं ॥सू०८२॥

छाया—नैगमव्यवहारयोरानुपूर्वी द्रव्याणि किं संख्येयानि असंख्येयानि अनन्तानि? नो संख्येयानि नो असंख्येयानि अनन्तानि। एवम् अनानुपूर्वी द्रव्याणि अवक्तव्यकद्रव्याणि च अनन्तानि भणितव्यानि ॥सू०८२॥

टीका—'नेगमववहाराणं' इत्यादि।

नैगमव्यवहारसम्मतानि आनुपूर्वीद्रव्याणि किं संख्येयानि सन्ति? किमसंख्येयानि सन्ति? किंवाऽनन्तानि सन्ति? इति प्रश्नः। उत्तरयति-आनुपूर्वीद्रव्याणि नो संख्येयानि सन्ति, नो असंख्येयानि सन्ति। अपि तु अनन्तानि सन्ति।

अर्थात् वे जोर देकर यह कह रहे हैं कि ये आनुपूर्वी आदि द्रव्य सत्ता विशिष्ट हैं। ऐसे नहीं हैं, कि ये नहीं हैं। ॥ सूत्र० ८२ ॥

'नेगमववहाराणं' इत्यादि।

शब्दार्थ–(नेगमववहाराणं आणुपुव्वी दव्वाइं किं संखिज्जाइं असंखिज्जाइं अणंताइं?) नैगमव्यवहारनय संमत अनेक आनुपूर्वी द्रव्य संख्यात हैं? या असंख्यात हैं? या अनन्त हैं?

उत्तर–(नो संखिज्जाइं नो असंखिज्जाइं) नैगमव्यवहारनय संमत आनुपूर्वी द्रव्य न संख्यात हैं और न असंख्यात हैं किन्तु (अणंताइं)

પ્રકટ કરી છે એટલે કે તેઓ ભારપૂર્વક એવું કહે છે કે આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્યો સત્તાવિશિષ્ટ છે–તે દ્રવ્યોનું અસ્તિત્વ અવશ્ય છે. જ. તેઓ અવિદ્યમાન નથી એમ સમજવું ॥ સૂ૦૮૨ ॥

"नेगमववहाराणं आणुपुव्वी" इत्यादि—

શબ્દાર્થ–(नेगमववहाराणं आणुपुव्वी दव्वाइं किं संखेज्जाइं, असंखिज्जाइं अणंताइं?) નૈગમવ્યવહાર નય સંમત અનેક આનુપૂર્વી દ્રવ્યો શું સંખ્યાત છે, કે અસંખ્યાત છે, કે અનંત છે?

ઉત્તર–(नो संखिज्जाइं नो असंखिज्जाइं, अणंताइं) નૈગમ અને વ્યવહારનયસંમત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો સંખ્યાત પણ નથી, અસંખ્યાત પણ નથી,

एकम् अनानुपूर्वीद्रव्याणि अवक्तव्यकद्रव्याणि च अनन्तानि विज्ञेयानि। इदमत्र बोध्यम्–इहानुपूर्व्यनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्येषु प्रत्येकमनन्तान्यनन्तानि एकैकस्मिन्नप्याकाशप्रदेशे लभ्यन्ते, किं पुनः सर्वलोके। अतः संख्येयासंख्येयप्रकारद्वयं निषिध्य त्रिष्वपि स्थानेष्वानन्त्यमेवोच्यते। असंख्येये लोके कथमनन्तानि द्रव्याणि तिष्ठन्तीति न शङ्कनीयम्? पुद्गलपरिणामस्य अचिन्त्यत्वात्, दृश्यते हि–एक प्रदीपप्रभा परमाणुव्याप्तेषु एकगृहान्तर्वर्त्याकाशप्रदेशेषु अनेकापरप्रदीपप्रभा-

---

अनन्तहैं। (एवं अणाणुपुव्वी दव्वाइं अवत्तव्वगदव्वाइं च अणंताइं भाणियव्वाइं) इसी प्रकार से यह भी जानना चाहिये कि अनानुपूर्वी द्रव्य और अवक्तव्यकद्रव्य भी अनंत हैं। संख्यात–असंख्यात नहीं हैं। इस कथन का यह भाव है कि आनुपूर्वी और अवक्तव्यक इन द्रव्यों में प्रत्येक आनुपूर्वी आदि द्रव्य अनन्त २ हैं। और प्रत्येक ये एक २ भी आकाश के प्रदेश में अनन्त अनन्त पाये जाते हैं। सर्वलोक की तो बात ही क्या है। इसलिये ये न संख्यात हैं और न असंख्यात हैं इसलिये इन तीनो में दोनों प्रकारता का निषेध कर अनन्तता की स्थापना की गई है। यहां ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये कि असंख्यात प्रदेशी आकाश रूप क्षेत्र में अनंत आनुपूर्वी आदिद्रव्य कैसे ठहर सकते है क्यों कि पुद्गल का परिणमन अचिन्त्य होता है। यह तो हम अपनी आखों से देखते हैं कि एक प्रदीप की प्रभा से व्याप्त एक गृहान्तवर्ती–आकाश के प्रदेशों में

પરન્તુ અનંત છે. (एवं अणाणुपुव्वीदव्वाइं अवत्तव्वगदव्वाइं च अणंताइं भाणियव्वाइं) એજ પ્રમાણે અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો પણ અનંત છે અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યો પણ અનંત છે, એમ સમજવું જોઈએ તે બન્ને પ્રકારના દ્રવ્યો સંખ્યાત પણ નથી અને અસંખ્યાત પણ નથી આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે આનુપૂર્વી અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક આ દ્રવ્યોમાંના આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્યો અનંત–અનંત છે. તે પ્રત્યેકનો એક એક આકાશપ્રદેશમાં પણ અનંત અનંત રૂપે સદ્ભાવ હોય છે. તો પછી સર્વલોકની તો વાત જ શી કરવી! તે કારણે તેઓને સંખ્યાત પણ કહ્યા નથી અને અસંખ્યાત પણ કહ્યા નથી આ રીતે ત્રણેમાં બન્ને પ્રકારતાનો નિષેધ કરીને અનંતતાનું જ પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે.

અહીં એવી શંકા કરવી ન જોઈએ કે અસંખ્યાત પ્રદેશી આકાશ રૂપ ક્ષેત્રમાં અનંત આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્યો કેવી રીતે રહી શકે છે, કારણ કે પુદ્ગલનું પરિણમન અચિંત્ય હોય છે. એ તો આપણે આપણી આંખો વડે જોઈ શકીયે છીએ કે એક પ્રદીપ (દીપક) ની પ્રભાથી વ્યાપ્ત એક ગૃહાન્તર્વર્તી–(બરની અંદર)

परमाणूनामप्यवस्थानम्। न चाक्षिदृष्टेऽप्यर्थेऽनुपपत्तिः, अतिप्रसङ्गात्। अत आनुपूर्व्यादि द्रव्याणामानन्त्ये न कश्चिद् दोष इति ॥सू० ८३॥

दूसरे ओर भी अनेक प्रदीपों की प्रभा के परमाणुओं का अवस्थान हो जाता है। आँखों देखे हुये अर्थ में शंका करने जैसी कोई बात ही नहीं होती है। नहीं तो, अतिप्रसंग नाम का दोष आता है। इसलिये आनुपूर्वी आदि अनन्त द्रव्यों को असंख्यात प्रदेशी आकाश में अवस्थित होने में कोई बाधा नहीं आती है। और न आनुपूर्वी आदि द्रव्यों को अनंत मानने में कोई आपत्ति आती है।

भावार्थ- सूत्रकार ने अनुगम का द्वितीय भेद जो द्रव्य प्रमाण है उसके विषय में यह निर्णय किया है उसमें आनुपूर्वी आदि द्रव्यों का प्रमाण अनन्त है ऐसा निर्देश कर ऐसा स्पष्ट किया है कि असंख्यात प्रदेशी आकाश लोकाकाश-में इनका अवगाहन बाधित नहीं हो सकता है क्योंकि पौद्गलिक परिणाम अचिन्त्य होता है। एकही घर के भीतर में रहे हुये आकाश में हम देखते हैं कि अनेक प्रदीप प्रभा के परमाणु समा जाते हैं। इसी प्रकार से अवगाहन शक्ति के योग से और परिणमन की विचित्रता से एक भी आकाश के प्रदेश में अनन्त आनुपूर्वी आदि द्रव्यों का अवगाहन बाधित नहीं होता है। ॥सू० ८३॥

રહેલ આકાશના પ્રદેશોમાં બીજાં પણ અનેક પ્રદીપોની પ્રભાના પરમાણુઓનું અવસ્થાન (નિવાસ) થઈ જાય છે. આંખો વડે જોયેલા વિષયમાં શંકાનો કોઇ અવકાશ જ રહેતો નથી નહીં તો, અતિપ્રસંગ નામનો દોષ આવે છે. તેથી આનુપૂર્વી આદિ અનંત દ્રવ્યોનું અસંખ્યાત પ્રદેશી આકાશમાં અવસ્થાન થવામાં કોઇ બાધા (મુશ્કેલી, અવરોધ) રહેતી નથી અને આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્યોને અનંત માનવામાં પણ કોઈ વાંધો સંભવતો નથી.

ભાવાર્થ-સૂત્રકારે અનુગમના દ્રવ્યપ્રમાણ નામના બીજા ભેદનું આ સૂત્ર દ્વારા નિરૂપણ કર્યું છે. તેમાં એવું કહેવામાં આવ્યું છે કે આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્યો અનંત છે. આ પ્રકારનું પ્રતિપાદન કરીને એવી સ્પષ્ટતા કરવામાં આવી છે કે અસંખ્યાતપ્રદેશી આકાશમાં-લોકાકાશમાં તેમની અવગાહના હોવાની વાત સ્વીકારવામાં કોઇ પણ પ્રકારનો વાંધો સંભવી શકતો નથી, કારણ કે પૌદ્ગલિક પરિણામ અચિન્ત્ય હોય છે. એક જ ઘરની અંદર રહેલા આકાશમાં (અવકાશમાં) અનેક પ્રદીપોની પ્રભાના પરમાણુઓનો સમાવેશ થઇ જાય છે, એ વાત તો આપણે આપણી આંખો વડે જ જોઈ શકીએ છીએ. એજ પ્રમાણે અવગાહનશક્તિના યોગથી અને પરિણમનની વિચિત્રતાથી આકાશનાં એક પ્રદેશમાં પણ અનંત આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્યોનું અવગાહન (સમાવેશ) માનવામાં કોઇ આપત્તિ સંભવી શકતી નથી. ।।સૂ૦૮૩।।

सम्प्रति क्षेत्ररूपं तृतीयभेदमाह-

मूलम्-नेगमववहाराणं आणुपुव्वी दव्वाइं लोगस्स किं संखिज्जइभागे होज्जा, असंखिज्जइभागे होज्जा, संखेज्जेसु भागेसु होज्जा, असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा, सव्वलोए होज्जा? एगं दव्वं पडुच्च संखेज्जइभागे वा होज्जा, असंखेज्जइभागे वा होज्जा संखेज्जेसु भागेसु वा होज्जा, असंखिज्जेसु भागेसु वा होज्जा, सव्वलोए वा होज्जा। णाणादव्वाइं पडुच्च नियमा सव्वलोए होज्जा। नेगमववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाइं किं लोयस्स संखिज्जइभागे होज्जा जाव सव्वलोए वा होज्जा? एगं दव्वं पडुच्च नो संखेज्जइ भागे होज्जा असंखिज्जइभागे होज्जा नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा नो असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा नो सव्वलोए होज्जा। एवं अवत्तव्वगदव्वाइं भाणियव्वाइं॥सू०८४॥

छाया—नैगमव्यवहारयोः आनुपूर्वीद्रव्याणि लोकस्य किं संख्येयतमभागे भवन्ति, असंख्येयतमभागे भवन्ति, संख्येयेषु भागेषु भवन्ति, सर्वलोके भवन्ति? एकं द्रव्यं प्रतीत्य संख्येयेषु भागेषु वा भवन्ति, असंख्येयतमभागे वा भवन्ति, संख्येयेषु भागेषु वा भवन्ति, असंख्येयेषु वा भवन्ति, सर्वलोके वा भवन्ति। नानाद्रव्याणि प्रतीत्य नियमात् सर्वलोके भवन्ति। नैगमव्यवहारयोः अनानुपूर्वीद्रव्याणि किं लोकस्य संख्येयतमभागे भवन्ति यावत् सर्वलोके वा भवन्ति? एकं द्रव्यं प्रतीत्य नो संख्येयतमभागे भवन्ति असंख्येयेषु भागेषु भवन्ति, नो असंख्येयेषु भागेषु भवन्ति, नो सर्वलोके भवन्ति, नानाद्रव्याणि प्रतीत्य नियमात् सर्वलोके भवन्ति। एवमवक्तव्यकद्रव्याणि भणितव्यानि॥सू०८४॥

टीका-'नेगमववहाराणं' इत्यादि-

अब सूत्रकार-तृतीय भेद के विषय मे कहते हैं—

"नेगम ववहाराणं" इत्यादि।

હવે સૂત્રકાર અનુગમના ત્રીજા ભેદ ૩૫ ક્ષેત્રના વિષયમાં નીચે પ્રમાણે કથન કરે છે—"नेगमववहाराणं" ઇત્યાદિ—

नैगमव्यवहारसम्मतानि आनुपूर्वीद्रव्याणि किं लोकस्य एकस्मिन् संख्येयतमे भागे भवन्ति=अवगाहन्ते ?१ किं वा एकस्मिन् असंख्येयतमे भागेऽवगाहन्ते ?२ अथवा-किं संख्येयभागेषु भवन्ति अवगाहन्ते ?३ किमसंख्येयभागेषु भवन्ति-अवगाहन्ते ?४ अथवा-किं सर्वलोके भवन्ति ?५ इति पञ्चप्रश्नाः। उत्तरमाह-आनुपूर्वीद्रव्याणि=व्यणुकस्कन्धादीनि अनन्ताणुकस्कन्धान्तानि, तत्र-एकं द्रव्यं प्रतीत्य=सामान्यत एकं द्रव्यमाश्रित्य किमपि लोकस्य संख्येयतमभागे भवति,

---

शब्दार्थ—(नेगमववहाराणं आणुपुव्वी दव्वाइं) नैगम व्यवहार नय संमत अनेक आनुपूर्वी द्रव्य (लोगस्स) लोक के (किं) क्या (संखिज्जइभागे) १ संख्यातवें भाग में (होज्जा) अवगाहित हैं ? या (असंखिज्जइभागे होज्जा २) असंख्यातवें भाग में अवगाहित हैं ? (संखेज्जेसु भागेसु होज्जा) या ३ संख्यात भागों में अवगाहित हैं ? या ४ (असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा) असंख्यात भागों में अवगाहित हैं ? या (सव्वलोए होज्जा ?) ५ सम्पूर्ण लोकमें अवगाहित हैं ?

उत्तर-(एगं दव्वं पडुच्च संखेज्जइभागे वा होज्जा, असंखेज्जइ भागे वा होज्जा संखेज्जेसु भागेसु वा होज्जा; असंखेज्जेसु भागेसु वा होज्जा सव्वलोए वा होज्जा) व्यणुकादि अनन्ताणु स्कंधों में से सामान्य रूप से किसी एक द्रव्य की अपेक्षा करके कोई एक आनुपूर्वी लोक के संख्यातवें भाग में तथा कोई एक आनुपूर्वी द्रव्य लोक के असंख्यातवें भाग में रहता है तथा कोई एक आनुपूर्वी द्रव्य लोकके

शब्दार्थ-(नेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं) नैगम अने व्यवहार-नयसंमत अनेक आनुपूर्वी द्रव्य (लोगस्स किं संखिज्जइ भागे होज्जा) शु लोकना संख्यातमां भागमां अवगाहित छे ? के लोकना असंख्यातमां भागमां अवगाहित छे, के (असंखिज्जइ भागे होज्जा २) लोकना असंख्यातमां भागमां अवगाहित छे, के (संखेज्जेसु भागेसु होज्जा ३) संख्यात भागोमां अवगाहित छे, के (सव्वलोए होज्जा ?) संपूर्ण लोकमां अवगाहित होय छे ?

उत्तर-(एगं दव्वं पडुच्च संखेज्जइ भागे वा होज्जा, असंखेज्जइ भागे वा होज्जा, संखेज्जेसु भागेसु वा होज्जा, असंखिज्जेसु भागेसु वा होज्जा, सव्वलोए वा होज्जा) त्र्यणु परमाणुवाळा (त्रिप्रदेशी) थी अनंत पर्यन्तनां अणुवाळा स्कंधो (अनंत प्रदेशी स्कंधो)मांथी सामान्य रूपे कोई एक द्रव्यनी अपेक्षाए कोई एक आनुपूर्वी द्रव्य लोकना संख्यातमां भागमां अवगाहित थईने रहे छे, कोई एक आनुपूर्वी द्रव्य लोकना असंख्यातमां भागमां रहे

लोकस्य संख्याततमभागमवगाह्य तिष्ठतीत्यर्थः १। तथा-किमपि लोकस्य असंख्येयतमे भागे भवति-तिष्ठति २। तथा-किमपि तु लोकस्य संख्येयेषु भागेषु भवति ३। तथा-लोकस्याऽसंख्येयेषु भागेषु भवति ४। तथा किमपि सर्वलोके भवति=सर्वलोकमवगाह्य तिष्ठति।

अयं भावः—अनन्तानन्तपरमाणुप्रचयनिष्पन्नमचित्तमहास्कन्धलक्षणम् आनुपूर्वीद्रव्यमेकं समयं सकललोकमवगाहते। ननु कथमयमचित्तमहास्कन्धः सकललोकमवगाहते? इति चेदाह-यथा-समुद्घातवर्त्तिकेवली सकललोकमवगाहते तथैवाचित्तमहास्कन्धोऽपि। तथाहि-लोकमध्यव्यवस्थितः समुद्घातवर्तिकेवली प्रथमसमये तिर्यगूसंख्यातयोजनविस्तरं संख्यातविस्तरं वा ऊर्ध्वाधस्तु चतुर्दशर-

---

संख्यात भागों में तथा कोई एक आनुपूर्वी द्रव्य, लोक के असंख्यात भागों में और कोई एक आनुपूर्वी द्रव्य समस्त लोक में अवगाहित होकर रहता है। जैसे कि अनंतानंत पुद्गल परमाणुओं के समूह से निष्पन्न हुआ अचित्त महास्कंध। यह अचित्त महा स्कंधरूप आनुपूर्वी द्रव्य एक समय में सकल लोक को अवगाहित करता रहता है।

शंका— यह अचित्त महास्कंध सकललोक में कैसे अवगाहित हो जाता है?

उत्तर- जैसे समुद्घातवर्ती केवली सकल लोक में समा जाते हैं- उसी प्रकार से अचित्त महास्कंध भी सकल लोक में अवगाहित हो- जाता है- समा जाता है। अर्थात् लोक के मध्य में व्यवस्थित हुआ केवली जब समुद्घात करता है तो वह प्रथम समय में आत्मा के प्रदेशों को दण्डाकार रूप में परिणमाता है। यह दण्डाकार रूप परिणमन

છે, તથા કોઇ એક આનુપૂર્વી દ્રવ્ય લોકના સંખ્યાત ભાગોમાં રહે છે, કોઈ એક આનુપૂર્વી દ્રવ્ય લોકના અસંખ્યાત ભાગોમાં રહે છે, અને કોઈ એક આનુપૂર્વી દ્રવ્ય સમસ્ત લોકમાં અવગાહિત થઈને રહે છે જેમ કે અનંતાનંત પુદ્ગલ પરમાણુઓના સમૂહમાંથી નિષ્પન્ન થયેલો અચિત્ત મહાસ્કંધ તે અચિત્ત મહાસ્કંધ રૂપ આનુપૂર્વી દ્રવ્ય એક સમયમાં સકળ લોકને અવગાહિત કરી શકે છે.

પ્રશ્ન-તે અચિત્ત મહાસ્કંધ સકલ લોકમાં કેવી રીતે અવગાહિત થઇ જાય છે.

ઉત્તર જેવી રીતે સમુદ્ઘાતવર્તી કેવલી સકળ લોકમાં સમાઈ જાય છે- અવગાહિત થઈ જાય છે, એજ પ્રમાણે અચિત્ત મહાસ્કંધ પણ સકલ લોકમાં અવગાહિત થઈ જાય છે-સમાઈ જાય છે એટલે કે લોકની મધ્યમાં રહેલા કેવળી જ્યારે સમુદ્ઘાત કરે છે, ત્યારે પ્રથમ સમયે આત્મપ્રદેશોને દંડાકાર

ज्जायतं विश्रसापरिणामेन वृत्तं दण्डं करोति, द्वितीये कपाटं करोति, तृतीये मन्थानं करोति, चतुर्थेऽन्तरालपूरणेन सकललोकव्याप्तिं करोति, पञ्चमेऽन्तराणि संहरति, षष्ठे मन्थानं, सप्तमे कपाटम्, अष्टमे पुनर्दण्डं संहरति। ततः स्वावस्थां प्रतिपद्यते। एवमचित्तमहास्कन्धोऽपि समयमेकं सकललोकमवगाहते इति।

तथा-नानाद्रव्याणि=आनुपूर्वीपरिणामयुक्तानि अनन्तानि द्रव्याणि प्रतीत्य=आश्रित्य द्रव्याणि नियमात्=नियमतः सर्वलोके भवन्ति=सकललोकमवगाहन्ते।

उनका तिर्यक् में संख्यात योजन तक अथवा असंख्यात योजन तक विस्तृत होता है। तथा ऊर्ध्व और नीचे में १४राजु प्रमाण लंबा होता है। आत्मप्रदेशों का यह दण्डाकार रूप परिणमन स्वाभाविक होता है द्वितीय समय में उनके वे आत्मप्रदेश कपाट के आकार में परिणम जाते हैं। तृतीय समय में मंथान रूप हो जाते हैं। और चौथे समय में अन्तराल की पूर्ति कर वे सकल लोक में व्याप्त होजाते हैं पांचवें समय में अंतरालों को संकुचित कर छठवें समय में मन्थान का सातवें समय में कपाट का आठवें समय में दण्ड का संकोच कर अपने आप में समाजाते हैं- पूर्वावस्थापन्न हो जाते हैं। इसी प्रकार अचित्त महास्कन्ध भी एक समय में सकल लोक को व्याप्त कर लेता है। (णाणादव्वाइं पडुच्च नियमा सव्वलोए होज्जा) तथा आनुपूर्वी परिणाम युक्त अनंतद्रव्यों को आश्रित करके वे द्रव्य नियम से सर्वलोक में

રૂપે પરિણમાવે છે. તેમનું આ દંડાકાર રૂપ પરિણમન તિર્યગ્ લોકમાં સંખ્યાત યોજન સુધી અથવા અસંખ્યાત યોજન સુધી વિસ્તૃત થયેલું હોય છે, તથા ઉર્ધ્વ અને અધોભાગમાં ૧૪ ચૌદ રાજુપ્રમાણ લાંબું હોય છે. આત્મપ્રદેશોનું આ દંડાકાર રૂપ પરિણમન સ્વાભાવિક હોય છે. બીજા સમયમાં તેમના તે આત્મપ્રદેશો કપાટના આકારમાં પરિણમન પામે છે ત્રીજા સમયમાં મંથાનરૂપ થઈ જાય છે, અને ચોથા સમયમાં અન્તરાલની પૂર્તિ કરીને સકળ લોકમાં વ્યાપ્ત થઈ જાય છે. પાંચમા સમયમાં અંતરાલોને સંકુચિત કરીને છઠ્ઠા સમયમાં મંથાનને સંકુચિત કરીને, સાતમાં સમયમાં કપાટને અને આઠમાં સમયમાં દંડને સંકુચિત કરીને પોતાના શરીરમાં જ સમાઈ જાય છે એટલે કે પૂર્વાવસ્થામાં આવી જાય છે એજ પ્રમાણે અચિત્ત મહાસ્કંધ પણ એક સમયમાં સકળ લોકને વ્યાપ્ત કરી લે છે. (णाणादव्वाइं पडुच्च नियमा सव्वलोए होज्जा) તથા આનુપૂર્વી પરિણામ યુક્ત અનંત દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો તે દ્રવ્યો સમસ્ત લોકમાં અવગાહિત છે. આ કથનનું

अयं भावः–सर्वलोकाकाशस्य नास्ति कोऽपि प्रदेशो यत्र सूक्ष्मपरिणामपरिणतानि अनन्तानि आनुपूर्वीद्रव्याणि न सन्ति, किन्तु सर्वत्र सन्ति। नत्वेतानि नानाद्रव्याणि संख्येयतमादिप्रदेशेषु सन्तीति। एवं नैगमव्यवहारसम्मताऽनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्यविषयेऽपि पञ्च पञ्च प्रश्नाः। उत्तरस्त्वेवं विज्ञेयः–एकं द्रव्यमाश्रित्यानानुपूर्वीद्रव्यम् अवक्तव्यकद्रव्यं च लोकस्य असंख्येयतमभागे भवति,

अवगाहित हैं। तात्पर्य इसका यह है कि समस्त लोकाकाश का कोई भी प्रदेश ऐसा नहीं है कि जहां पर सूक्ष्म परिणाम से परिणत हुए अनंत आनुपूर्वी द्रव्य न हो। अर्थात् लोक में सर्वत्र आनुपूर्वी द्रव्य हैं। ये आनुपूर्वी अनेक द्रव्य लोक के संख्यातवें अथवा असंख्यातवें भाग में नहीं हैं। इसी प्रकार से नैगम और व्यवहारनय संमत अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों के विषय में भी पांच २ प्रश्न होते हैं जो (नेगमववहाराणं अणाणुपुव्वी दव्वाइं किं लोयस्स संखिज्जइ भागे, होज्जा जाव सव्वलोए वा होज्जा?) इन पदों द्वारा व्यक्त किये गये हैं। इन प्रश्नों का उत्तर भी (एगं दव्वं पडुच्च नो संखेज्जइ भागे, होज्जा, असंखिज्जइ भागे होज्जा नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा. नो असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा. नो सव्वलोए होज्जा) इनसूत्रांशों द्वारा इसप्रकार दिया गया है–कि एक द्रव्य को आश्रित करके अनानुपूर्वी द्रव्य और अवक्तव्यक द्रव्य लोक के असंख्यातवें भाग में अवगाहित

તાત્પર્ય એ છે કે સમસ્ત લોકાકાશનો કોઇ પણ પ્રદેશ એવો નથી કે જ્યાં સૂક્ષ્મ પરિણામથી પરિણત થયેલાં અનંત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો ન હોય એટલે કે લોકમાં સર્વત્ર આનુપૂર્વી દ્રવ્યોનું અસ્તિત્વ છે તે અનેક આનુપૂર્વી દ્રવ્યો લોકના સંખ્યાતમાં અથવા અસંખ્યાતમાં ભાગમાં નથી પણ સમસ્ત લોકમાં છે, એમ સમજવું એજ પ્રમાણે નૈગમ અને વ્યવહાર નયસંમત અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો અને અવકતવ્યક દ્રવ્યોના વિષયમાં પણ પાંચ–પાંચ પ્રશ્નો પૂછી શકાય છે. જે પ્રશ્નો નીચેના સૂત્ર દ્વારા પૂછવામાં આવ્યા છે. (नेगमववहाराणं अणाणुपुव्वी दव्वाइं किं लोयस्स संखिज्जइभागे होज्जा. जाव सव्वलोए वा होज्जा?) નૈગમ અને વ્યવહાર નય સંમત અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો શું? લોકના સંખ્યાતમાં ભાગમાં, કે સંખ્યાત ભાગોમાં કે અસંખ્યાત ભાગોમાં કે સમસ્ત લોકમાં અવગાહિત થઇને રહે છે?

ઉત્તર–"एगं दव्वं पडुच्च नो संखेज्जइ भागे, होज्जा, असंखेज्जइ भागे होज्जा नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा, नो असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा. नो सव्वलोए होज्जा" જો એક દ્રવ્યની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામા આવે તો અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય અને અવકતવ્યક દ્રવ્ય લોકના અસંખ્યાતમાં ભાગમાં જ અવગાહિત થઇને રહે છે, સંખ્યાતમાં ભાગમાં, સંખ્યાત ભાગોમાં, અસંખ્યાત

न तु संख्येयतमभागे। अनानुपूर्वीद्रव्यं हि परमाणुरुच्यते स चैकैकाकाशप्रदेशावगाढ एव भवति, अवक्तव्यद्रव्यं च द्व्यणुकस्कन्धः, स चैकप्रदेशावगाढो द्विप्रदेशावगाढो वा स्यादित्यनयोरसंख्येयभागवृत्तित्वमेव। नानाद्रव्याणि प्रतीत्य नियमात्सर्वलोकावगाहना पूर्ववद् बोध्या ॥ सू० ८४ ॥

होकर रहते हैं। संख्यातवें भाग में नहीं। परमाणु अनानुपूर्वी द्रव्य है। वह आकाश के एकप्रदेश में ही अवगाहित- होकर रहता है। क्यों कि वह स्वयं एकप्रदेशी है। द्व्यणुक जो स्कंध है। वह अवक्तव्यक द्रव्य है। वह लोकाकाश के एक प्रदेश में भी रहता है और दो प्रदेश में भी रहता है। इस प्रकार इन दोनों की वृत्ति लोक के असंख्यातवें भाग में ही है, नाना अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों को आश्रित करके नाना अनानुपूर्वी द्रव्य और अवक्तव्यक नियम से समस्त लोकाकाश में रहते हैं। क्यों कि आकाश का कोई प्रदेश ऐसा नहीं है कि जहां पर इनका सद्भाव न हो।

भावार्थ-सूत्रकारने इस सूत्र द्वारा आनुपूर्वी आदि द्रव्यों के रहने के विषय में किये गये पांच प्रश्नों का उत्तर एक और नाना द्रव्यों को लेकर दिया गया है-वे पांच प्रश्न इस प्रकार से हैं-१ अनानुपूर्वी द्रव्य क्या लोक के संख्यातवें भाग में रहते हैं? २ या असंख्यातवें भाग में रहते हैं ३ या लोक के संख्यात भागों में रहते हैं? या ४ असंख्यात

ભાગોમાં કે સર્વલોકમાં અવગાહિત થઈને રહેતાં નથી પરમાણુ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યરૂપ છે. તે આકાશના એક પ્રદેશમાં જ અવગાહિત થઈને રહે છે બે અણુવાળો જે સ્કંધ છે તે અવક્તવ્યક દ્રવ્યરૂપ છે. તે લોકાકાશના એક પ્રદેશમાં પણ રહે છે અને બે પ્રદેશમાં પણ રહે છે આ રીતે તે બન્નેની અવગાહના લોકના અસંખ્યાતમાં ભાગમાં જ છે. વિવિધ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો તેઓ સમસ્ત લોકાકાશમાં રહે છે, એમ સમજવું જોઈએ, કારણ કે આકાશનો કોઈ પણ પ્રદેશ એવો નથી કે જ્યાં તેમનો સદ્ભાવ ન હોય.

ભાવાર્થ-સૂત્રકારે આ સૂત્ર દ્વારા આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્યોની અવગાહના વિષે પૂછવામાં આવેલા પાંચ પ્રશ્નોનો ઉત્તર એક દ્રવ્ય અને અનેક દ્રવ્યોને અનુલક્ષીને આપ્યો છે તે પાંચ પ્રશ્નો નીચે પ્રમાણે છે-(૧) આનુપૂર્વી દ્રવ્યો શું લોકના સંખ્યાતમાં ભાગમાં રહે છે? અથવા (૨) અસંખ્યાતમાં

भागों में रहते हैं ४ या समस्त लोक में रहते हैं ? ५

उत्तर- पुद्गल द्रव्य का आधार यद्यपि सामान्य रूप से लोकाकाश ही नियत है तथापि-विशेष रूप से भिन्न २ पुद्गल द्रव्य के आधार क्षेत्र के परिमाण में अन्तर होता है, वही अन्तर इस उत्तर में प्रकट किया गया है- क्योंकि भिन्न २ व्यक्ति होते हुए भी पुद्गलों के परिमाण में विविधता है एक रूपता नहीं है। इसलिये यहां उनके आधार का परिमाण अनेक रूप से कहा गया है-सारांश यह है कि आधार भूत क्षेत्र के प्रदेशों की संख्या आधेयभूत पुगद्ल द्रव्य के परमाणुओं की संख्या से न्यून या उसके बराबर हो सकती है अधिक नहीं। इसलिये एक परमाणु रूप अनानुपूर्वी द्रव्य आकाश के एकही प्रदेश में स्थित रहता है। पर द्व्यणुक एक प्रदेश में भी ठहर सकता है और दो प्रदेश में भी। इसी प्रकार उत्तरोत्तर संख्या बढते बढते व्यणुक, चतुरणुक, यावत् संख्यातागुक स्कन्ध एक प्रदेश, दो प्रदेश, तीन प्रदेश यावत् संख्यात प्रदेश क्षेत्र में ठहर सकते हैं। संख्याताणु द्रव्य की स्थिति के लिये असंख्यात प्रदेश वाले क्षेत्र की आवश्यकता नहीं-पड़ती।

ભાગમાં રહે છે ? (૩) અથવા શું લોકના સંખ્યાત ભાગોમાં રહે છે ? (૪) અથવા શું લોકના અસંખ્યાત ભાગોમાં રહે છે ? (૫) અથવા શું સમસ્ત લોકમાં રહે છે.

ઉત્તર-પુદ્ગલ દ્રવ્યોનો આધાર જો કે સામાન્ય રૂપે લોકાકાશ જ નિયત છે, છતાં પણ વિશેષ રૂપે ભિન્ન ભિન્ન પુદ્ગલદ્રવ્યના આધારક્ષેત્રના પરિમાણમાં અન્તર હોય છે, એજ અન્તર આ ઉત્તરમાં પ્રકટ કરવામાં આવ્યું છે-કારણ કે ભિન્ન ભિન્ન પદાર્થ હોવા છતાં પણ પુદ્ગલોના પરિમાણમાં વિવિધતા છે, એકરૂપતા નથી તેથી અહીં તેમના આધારનું પરિમાણ (પ્રમાણ) અનેક રૂપે કહેવામાં આવ્યું છે. આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે આધારભૂત ક્ષેત્રના પ્રદેશોની સંખ્યા આધેયભૂત પુદ્ગલદ્રવ્યના પરમાણુઓની સંખ્યા કરતાં ન્યૂન અથવા તેના જેટલી જ હોઈ શકે છે, પણ અધિક હોઇ શકતી નથી તેથી એક પરમાણુ રૂપ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય આકાશના એક જ પ્રદેશમાં રહે છે, પણ બે અણુવાળું અવક્તવ્યક દ્રવ્ય આકાશના એક પ્રદેશમાં પણ રહી શકે છે અને બે પ્રદેશમાં પણ રહી શકે છે. આ રીતે ઉત્તરોત્તર પરમાણુઓની અથવા પ્રદેશોની વૃદ્ધિ થતાં થતાં ત્રણઅણુવાળા, ચાર અણુવાળા યાવત્ સંખ્યાતાણુક સ્કંધ એક પ્રદેશમાં, બે પ્રદેશમાં, ત્રણ પ્રદેશમાં યાવત્ સંખ્યાત પ્રદેશ રૂપ ક્ષેત્રમાં રહી શકે છે. સંખ્યાત અણુવાળા

सम्प्रति स्पर्शनाद्वाररूपं चतुर्थभेदमाह-

मूलम्-नेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स किं संखेज्जइभागं फुसंति? असंखेज्जइभागं फुसंति? संखेज्जे भागे फुसंति? असंखेज्जे भागे फुसंति? सव्वलोगं फुसंति?। एगं दव्वं पडुच्च लोगस्स संखेज्जइभागं वा फुसइ जाव सव्वलोगं वा फुसइ। णाणादव्वाइं पडुच्च नियमा सव्वलोगं फुसंति। णेगमववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाइं लोयस्स किं संखिज्जइभागं फुसंति

असंख्याताणुक स्कंध एक प्रदेश से लेकर अधिक से अधिक अपने बराबर की असंख्यात संख्यावाले प्रदेशों के क्षेत्र में ठहर सकता है। अनंताणुक और अनंतानंताणुक स्कंध भी एक प्रदेश, दो प्रदेश इत्यादि क्रम से बढते २ संख्यात प्रदेश और असंख्यात प्रदेश वाले क्षेत्र में ठहर सकते हैं उनकी स्थिति के लिये अनन्त प्रदेशात्मक क्षेत्र की जरूरत नहीं है। पुगदल द्रव्य का सबसे बड़ा स्कंध जिसे अचित्त महास्कंध कहते हैं और जो अनंतानंत अणुओं का बना हुआ होता है वह भी असंख्यात प्रदेश लोकाकाश में ही ठहर जाता है। इस प्रकार आनुपूर्वी आदि एक द्रव्य की अपेक्षा इस कथन को हृदय में धारण करके इस सूत्र को लगाना चहिये। नाना द्रव्य की अपेक्षा इन समस्त द्रव्यों का अवगाहन समस्त लोकाकाश में है॥ सू० ८४॥

દ્રવ્યને રહેવા માટે અસંખ્યાત પ્રદેશોવાળા ક્ષેત્રની જરૂર પડતી નથી અસંખ્યાત અણુવાળો સ્કંધ એક પ્રદેશથી લઈને વધારેમાં વધારે પોતાના જેટલી જ અસંખ્યાત સંખ્યાવાળા પ્રદેશોના ક્ષેત્રમાં રહી શકે છે અનંત અણુવાળો અથવા અનંતાનંત અણુવાળો સ્કંધ પણ એકથી લઈને સંખ્યાત પર્યન્તના પ્રદેશવાળા અને અસંખ્યાત પ્રદેશોવાળા ક્ષેત્રમાં રહી શકે છે, તેને રહેવાને માટે અનંત પ્રદેશોવાળા ક્ષેત્રની આવશ્યકતા રહેતી નથી પુદ્ગલ દ્રવ્યનો સૌથી મોટો સ્કંધ કે જેને અચિત્ત મહાસ્કંધ કહે છે અને જે અનંતાનંત અણુઓનો બનેલો હોય છે, તે પણ લોકાકાશના અસંખ્યાત પ્રદેશોમાં જ રહી શકે છે. આ પ્રમાણે અનાનુપૂર્વી આદિ સ્કન્ધદ્રવ્યની અપેક્ષાએ આ કથનને હૃદયમાં ધારણ કરીને આ સૂત્રનો અર્થ સમજવો જોઇએ વિવિધ દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ આ સમસ્ત દ્રવ્યોનું અવગાહન સમસ્ત લોકાકાશમાં છે. ॥સૂ૦૮૪॥

जाव सव्वलोगं फुसंति? एगं दव्वं पडुच्च नो संखिज्जइ भागं फुसइ, असंखिज्जइ भागं फुसइ नो संखिज्जे भागे फुसइ, नो असंखिज्जे भागे फुसइ, नो सव्वलोयं फुसइ। नाणादव्वाइं पडुच्च नियमा सव्वलोयं फुसंति। एवं अवत्तव्वगदव्वाइं भाणियव्वाइं ॥सू० ८५॥

छाया—नैगमव्यवहारयोः आनुपूर्वी द्रव्याणि लोकस्य किं संख्येयतमभागं स्पृशन्ति? असंख्येयतमभागं स्पृशन्ति? संख्येयान् भागान् स्पृशन्ति? असंख्येयान् भागान् स्पृशन्ति? सर्वलोकं स्पृशन्ति?। एकं द्रव्यं प्रतीत्य लोकस्य संख्ये-

---

अब सूत्रकार स्पर्शनाद्वार नामक चतुर्थ भेद का कथन करते हैं- "नेगमववहाराणं" इत्यादि।

शब्दार्थ- (नेगमववहाराणं आणुपुव्वी दव्वाइं लोगस्स किं संखेज्जइभागं फुसंति?) नैगमव्यवहारनय संमत अनेक आनुपूर्वी द्रव्य क्या लोक के संख्यातवें भाग का स्पर्श करते हैं? (असंखेज्जइभागं फुसंति) या असंख्यातवें भाग का स्पर्श करते हैं (संखेज्जे भागे फुसंति) या संख्यात भागों का स्पर्श करते हैं? (असंखेज्जे भागे फुसंति) या असंख्यात भागों का स्पर्श करते हैं? (सव्वलोगं फुसंति) समस्त लोक का स्पर्श करते हैं-?

उत्तर- (एगं दव्वं पडुच्च लोगस्स संखेज्जइभागं वा फुसइ जाव सव्व लोगं वा फुसइ) त्र्यणुक स्कंध से लेकर अनन्ताणु स्कंध

હવે સૂત્રકાર અનુગમના સ્પર્શના નામના ચોથા દ્વારનું નિરૂપણ કરે છે- "नेगमववहाराणं" ઇત્યાદિ-

શબ્દાર્થ-(नेगमववहाराणं आणुपुव्वी दव्वाइं लोगस्स किं संखेज्जइ भागं फुसंति?) નૈગમ અને વ્યવહાર નયસંમત અનેક આનુપૂર્વી દ્રવ્યો શું લોકના સંખ્યાતમાં ભાગનો સ્પર્શ કરે છે? (असंखेज्जइ भागं फुसंति?) કે અસંખ્યાતમાં ભાગનો સ્પર્શ કરે છે? (संखेज्जे भागे फुसंति?) કે સંખ્યાત ભાગોનો સ્પર્શ કરે છે? (असंखेज्जे भागे फुसंति?) કે અસંખ્યાત ભાગોનો સ્પર્શ કરે છે? (सव्वलोगं फुसंति?) કે સમસ્ત લોકનો સ્પર્શ કરે છે?

ઉત્તર-(एगं दव्वं पडुच्च लोगस्स संखेज्जइभागं वा फुसइ जाव सव्वलोगं वा फुसइ) ત્રિઅણુક સ્કંધથી લઈને અનન્તાણુ સ્કંધ પર્યન્તના આનુ-

यतमभागं वा स्पृशति यावत् सर्वलोकं वा स्पृशति। नाना द्रव्याणि प्रतीत्य नियमात् सर्वलोकं स्पृशन्ति। नैगमव्यवहारयोरनानुपूर्वी द्रव्याणि लोकस्य किं संख्येयतमभागं स्पृशन्ति। यावत् सर्वलोकं स्पृशन्ति? एकं द्रव्यं प्रतीत्य नो संख्येयतमभागं स्पृशति, असंख्येयतमभागं स्पृशति, नो संख्येयान् भागान् स्पृशति, नो असंख्येयान् भागान् स्पृशति, नो सर्वलोकं स्पृशति। नाना द्रव्याणि प्रतीत्य नियमात् सर्वलोकं स्पृशन्ति। एवम् अवक्तव्यक द्रव्याणि भणितव्यानि॥सू०८५॥

तक के आनुपूर्वी द्रव्यों में से सामान्यतः कोई एक आनुपूर्वी द्रव्य लोक के संख्यातवें भाग की कोई एक लोक के असंख्यातवें भाग की कोई एक संख्यात भागों की कोई एक असंख्यात भागों की और कोई एक सर्व लोक की स्पर्शना करते हैं (णाणा दव्वाइं पडुच्च नियमा सव्वलोगं फुसंति) तथा नना आनुपूर्वी द्रव्य-अनन्त आनुपूर्वी परिणामयुक्त द्रव्य नियम से सर्वलोक की स्पर्शना करते हैं। (णेगमववहाराणं अणाणुपुव्वी दव्वाइं लोयस्स किं संखेज्जइ भागं फुसंति, जाव सव्वलोगं फुसंति?) नैगम व्यवहार नय संमत समस्त अनानुपूर्वी द्रव्यों में कोई एक अनानुपूर्वी द्रव्य क्या लोक के संख्यातवें भाग की स्पर्शना करते हैं?

उत्तर- (एगं दव्वं पडुच्च नो संखिज्जइभागं फुसइ, असंखिज्जइ भागं फुसइ नो संखिज्जे भागे फुसइ, नो असंखिज्जे भागे फुसइ, नो सव्वलोगं फुसइ) एक द्रव्य की अपेक्षा लेकर अनानुपूर्वी

પૂર્વી દ્રવ્ય લોકના સંખ્યાતમાં ભાગનો સ્પર્શ કરે છે, કોઈ એક અનુપૂર્વી દ્રવ્ય લોકના અસંખ્યાતમાં ભાગનો સ્પર્શ કરે છે, કોઈ એક આનુપૂર્વી દ્રવ્ય લોકના સંખ્યાત ભાગોનો, કોઈ એક આનુપૂર્વી દ્રવ્ય લોકના અસંખ્યાત ભાગોનો અને કોઈ એક આનુપૂર્વી દ્રવ્ય સમસ્ત લોકનો સ્પર્શ કરે છે. (णाणा दव्वाइं पडुच्च नियमा सव्वलोगं फुसंति) તથાવિવિધ આનુપૂર્વી દ્રવ્ય-અનંત આનુપૂર્વી પરિણામયુકત દ્રવ્ય નિયમથી સર્વલોકની સ્પર્શના કરે છે.

(णेगमववहाराणं आणाणुपुव्वी दव्वाइं लोगस्स किं संखेज्जइभागं फुसंति, जाव सव्वलोगं फुसंति?) નૈગમ અને વ્યવહાર નયસંમત સમસ્ત અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાંનું કોઈ એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય શું લોકના સંખ્યાતમાં ભાગની કે અસંખ્યાતમાં ભાગની, કે સંખ્યાત ભાગોની, કે અસંખ્યાત ભાગોની કે સમસ્ત લોકની સ્પર્શના કરે છે?

ઉત્તર-(एगं दव्वं पडुच्च नो संखिज्जइभागं फुसइ, असंखिज्जइ भागं फुसइ, नो संखिज्जे भागे फुसइ, नो असंखिज्जे भागे फुसइ, नो सव्व-

टीका—'नेगमववहाराणं' इत्यादि।

क्षेत्रद्वारवत् अत्राऽपि प्रश्नोत्तरप्रकारो बोध्यः। क्षेत्रस्पर्शनयो स्त्वयं विशेषः। परमाणुद्रव्यस्यावगाहना-एकस्मिन्नाकाशप्रदेशे भवति तत् क्षेत्रम्, स्पर्शना तु परमाणुद्रव्यस्य सप्तसु प्रदेशेषु षट्सु दिग्व्यवस्थितान् षट्प्रदेशान् यत्र च स्वावगाहना तमपि प्रदेशं स्पृशति परमाणुद्रव्यम्।

द्रव्य लोक के संख्यात भाग की स्पर्शनता नहीं करता है। किन्तु असंख्यात भाग की ही स्पर्शना करता है। लोक के संख्यात भागों की वह स्पर्शना नहीं करता है, असंख्यात भागों की वह स्पर्शना नहीं करता है और न वह सर्वलोक की स्पर्शना करता है। (णाणा दव्वाइं पडुच्च नियमा सव्वलोयं फुसंति) नाना द्रव्यों की अपेक्षा वे अनानुपूर्वी द्रव्य नियमतः समस्त लोक की स्पर्शना करते हैं। (एवं अवत्तव्वगदव्वाइं भाणियव्वाइं) इसी प्रकार से नाना अवक्तव्यक द्रव्यों के विषय में भी जानना चाहिये।

भावार्थ- क्षेत्रद्वार की तरह यहां पर भी प्रश्नोत्तर का प्रकार जानना चाहिये। क्षेत्र के स्पर्शन में यह भेद है कि परमाणुद्रव्य की जो अवगाहना एक आकाश प्रदेश में होती है वह क्षेत्र है, तथा परमाणु की जो निवासस्थान रूप आकाश के चारों ओर के प्रदेशों को छूना होता है वह स्पर्शना है यह उत्कृष्ट स्पर्श-छूना परमाणु का आकाश

लोगं फुसइ) એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો આ પ્રમાણે કથન સમજવું-એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય લોકના સંખ્યાતમાં ભાગની સ્પર્શના કરતું નથી, સંખ્યાત ભાગોની સ્પર્શના પણ કરતું નથી, અસંખ્યાત ભાગોની સ્પર્શના પણ કરતું નથી, અને સમસ્ત લોકની પણ સ્પર્શના કરતું નથી, પણ અસંખ્યાતમા ભાગની જ સ્પર્શના કરે છે. (णाणादव्वाइं पडुच्च नियमा सव्वलोयं फुसंति) વિવિધ દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો તે અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો નિયમથી જ સમસ્ત લોકની સ્પર્શના કરે છે. (एवं अवत्तव्वगदव्वाइं भाणियव्वाइं) એજ પ્રમાણે અવક્તવ્યક દ્રવ્યોની સ્પર્શના વિષે પણ સમજવું.

ભાવાર્થ-ક્ષેત્રદ્વારના જેવા જ અહીં પણ પ્રશ્નોત્તરના પ્રકાર સમજવા ક્ષેત્ર અને સ્પર્શનમાં એ ભેદ છે કે પરમાણુદ્રવ્યની અવગાહના જે એક આકાશપ્રદેશમાં થાય છે તે ક્ષેત્રરૂપ છે, તથા પરમાણુ વડે તેના નિવાસસ્થાન રૂપ આકાશના ચારે તરફના પ્રદેશોનો જે સ્પર્શ થાય છે તેનું નામ સ્પર્શના છે. પરમાણુનો તે ઉત્કૃષ્ટ સ્પર્શ આકાશના સાત પ્રદેશોમાં થાય છે. તે સાત

यत्तु सौगताः-परमाणुद्रव्यमादिमध्यान्त्यादिविभागरहितं निरंशमेकस्वरूपमिष्यते तस्य परमाणुद्रव्यस्य षड्दिक्स्पर्शनाऽभ्युपगमे तदेकत्वसिद्धान्तो नोपपद्यते-यदि येनैव स्वरूपेण परमाणुः पूर्वाद्यन्यतरदिशया सम्बद्धस्तेनैवान्यदिग्भिरित्युच्यते, तर्हि-अयं पूर्वदिक्सम्बद्धः, अयं चापरदिक्सम्बद्ध इत्यादि विभागो न स्यात्, एकस्वरूपत्वात्, यदि विभागाभाव एक इष्ट इत्युच्यते, तर्हि

के सात प्रदेशों में होता है चारों दिशाओं के चार प्रदेश और ऊपर, नीचे के दो एवं जहां उसकी अपनी अवगाहना है एक वह प्रदेश इस प्रकार ये सात प्रदेश हैं। 'इस स्पर्शना के विषय में जो बौद्धों का ऐसा कहना है कि परमाणु द्रव्य तो आदि मध्य, और अन्त आदि के विभाग से निरंश एक रूप है। फिर वह छह दिशाओं को स्पर्श करता है, ऐसा स्वीकार कैसे किया जा सकता है? यदि ऐसा स्वीकार किया जावे तो उसमें एकत्व का सिद्धान्त घटित नहीं हो सकता है क्यों कि जिस-स्वरूप से परमाणु पूर्वआदि किसी एक दिशा से सम्बध है यदि वह उसी स्वरूप से अन्य दिशाओं से भी सम्बद्ध है तो इस मान्यता में फिर ऐसा विभाग नहीं बन सकता कि यह परमाणु का पूर्व दिग् सबद्ध प्रदेश है यह अपर दिक्सं बद्ध प्रदेश है। क्यों कि वह एकरूप स्वीकार किया गया है। अतः यह मानना चाहिये कि परमाणु जब सप्त प्रदेशों को छूता है तो उसमें विविध रूपता होने से वह एक रूप नहीं हो

પ્રદેશ નીચે પ્રમાણે છે-ચારે દિશાઓના ચાર પ્રદેશ, ઉપરનો એક પ્રદેશ, અને નીચેનો એક પ્રદેશ અને જ્યાં તેની પોતાની અવગાહના છે તે એક પ્રદેશ-આ રીતે તે વધારેમાં વધારે સાત આકાશપ્રદેશોનો સ્પર્શ કરે છે. આ સ્પર્શના વિષયમાં બૌદ્ધોની એવી જે માન્યતા છે કે પરમાણુ દ્રવ્ય તો આદિ, મધ્ય અને અન્ત આદિના વિભાગથી રહિત નિરંશ (અંશ રહિત)-એકરૂપ જ છે તો પછી એવો સ્વીકાર કેવી રીતે કરી શકાય કે તે છ દિશાઓનો સ્પર્શ કરે છે? જો એવો સિદ્ધાંત સ્વીકારવામાં આવે તો તેમાં એકત્વનો સિદ્ધાંત ઘટિત થઇ શકતો નથી, કારણ કે સ્વરૂપે પરમાણુ પૂર્વાદિ કોઈ એક દિશામાં સંબદ્ધ છે, એવાં જ સ્વરૂપે જો તે અન્ય દિશાઓ સાથે પણ સંબંધ હોય, તો આ માન્યતામાં એવો વિભાગ સંભવી શકતો નથી કે પરમાણુનો આ પ્રદેશ પૂર્વદિગ્ભાગ સાથે સંબદ્ધ છે અને આ પ્રદેશ પશ્ચિમ દિગ્ભાગ સાથે સંબદ્ધ છે, કારણ કે તેને તો નિરંશ રૂપે (એક રૂપે) સ્વીકારવામાં આવ્યો છે. તેથી એવું માનવું જોઈએ કે પરમાણુ સાત પ્રદેશનો સ્પર્શ કરતું હોવાથી તેમાં વિવિધ રૂપતા હોવાથી તે એકરૂપ હોઈ શકતું

षड्दिक्सम्बन्धकथनं विरुध्यते, यदि येन स्वरूपेण परमाणुः पूर्वाद्यन्यतरदिशया सम्बद्धस्तद्भिन्नभिन्नस्वरूपेणापरदिग्भिः संबध्यते इत्युच्यते तर्हि परमाणोः षट् स्वरूपापत्त्या एकत्वं हीयते, इति वदन्ति तन्न सम्यक्।

परमाणुर्द्रव्यतया निरंश एव, एक एव, तथापि परमाणोः परिणामशक्तिरचिन्त्याऽस्तीति तथाविधपरिणामसद्भावाद् दिक्षट्केन सह नैरन्तर्येणावस्थानं संभवतीति तस्य सप्तसु प्रदेशेषु स्पर्शना कथनं नानुपपन्नमिति ॥ सू० ८५॥

सकता है। यदि एक रूपता मानने के लिये विविध रूपतारूप विभाग का अभाव ही इष्ट रखा जावे तो फिर उसमें षड्दिक छ दिशाओंका संबंध कथन विरुद्ध पड़ता है। तात्पर्य इसका यह है कि परमाणु जिस स्वरूप से पूर्व आदि किसी एक दिशा के साथ संबद्ध है उसका वह निजरूप भिन्न है और अपर आदि दिशाओं के साथ संबद्ध स्वरूप भिन्न है तो फिर इस प्रकार स्वरूप में भिन्नता आने के कारण-छह स्वरूपता की आपत्ति का प्रसंग हो जाने के कारण- उसमें एकत्व की हीनता ही आती है।

अतः बौद्धों का ऐसा कथन ठीक नहीं है- क्यों कि परमाणु द्रव्यरूप होने के कारण निरंश ही है एक ही है फिरभी परमाणु की परिमाण शक्ति अचिन्त्य है इसका कारण उस प्रकार के परिणाम के सद्भाव से छह दिशाओं के साथ उसका निरन्तर रूप अवस्थान संभवित है। इसलिये सात प्रदेशों में स्पर्श ना कथन अघटित नहीं है॥ सू० ८५॥

નથી જો એકરૂપતા માનવાને માટે વિવિધ રૂપતા રૂપ વિભાગનો અભાવ જ ઇષ્ટ માનવામાં આવે, તો તેમાં છ દિશાઓ સાથે સંબદ્ધ હોવાનું કથન વિરુદ્ધ પડે છે આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે પરમાણુ જે સ્વરૂપે પૂર્વાદિ કોઈ એક દિશાની સાથે સંબદ્ધ છે, તેનું તે નિજરૂપ ભિન્ન છે અને પશ્ચિમ આદિ દિશાઓની સાથે સંબદ્ધ સ્વરૂપ પણ ભિન્ન હોય તો આ રીતે સ્વરૂપમાં ભિન્નતા આવવાને કારણે છ પ્રકારના સ્વરૂપો માનવાનો પ્રસંગ પ્રાપ્ત થશે અને તે કારણે તેમાં એકત્વનો અભાવ આવવાનો પ્રસંગ પ્રાપ્ત થશે.

તેથી બૌદ્ધોની એ પ્રકારની માન્યતા સાચી નથી, કારણ કે પરમાણુ દ્રવ્ય રૂપ હોવાને કારણે નિરંશ જ છે-એક જ છે, છતાં પણ પરમાણુની પરિણામશક્તિ અચિંત્ય છે. તે કારણે તે પ્રકારના પરિણામના સદ્ભાવમાં છ દિશાઓની સાથે તેનું નિરંતર રૂપ અવસ્થાન સંભવિત છે. તેથી સાત દિશાઓમાં તેના સ્પર્શનું કથન અઘટિત (અનુચિત) નથી. ॥સૂ૦૮૫॥

उक्तं स्पर्शनाद्वारम्, इदानीं पञ्चमं कालद्वारमाह-

मूलम्-णेगमववहाराणं आणुपुव्वी दव्वाइं कालओ केवचिरं होई? एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं, णाणादव्वाइं पडुच्च णियमा सव्वद्धा। अणाणुपुव्वी दव्वाइं अवत्तव्वग दव्वाइं च एवंचेव भाणियव्वाइं।सू.८६।

छाया—नैगमव्यवहारयोरानुपूर्वीद्रव्याणि कालतः कियच्चिरं भवन्ति? एकं द्रव्यं प्रतीत्य जघन्येन एकं समयम्, उत्कर्षेण असंख्येयं कालम्। नाना द्रव्याणि प्रतीत्य नियमात् सर्वाद्धा। अनानुपूर्वीद्रव्याणिअवक्तव्यक द्रव्याणि च एवमेव भणितव्यानि ॥सू० ८६॥

स्पर्शना द्वार को कह कर अब सूत्रकार पांचवें कालद्वार का कथन करते हैं—"णेगमववहाराणं आणुपुव्वी दव्वाइं" इत्यादि।

शब्दार्थ-(णेगमववहाराणं आणुपुव्वी दव्वाइं) नैगम और व्यवहार इन दो नय संमत आनुपूर्वी द्रव्य (कालओ) काल की अपेक्षा से (केवच्चिरं) कितने काल तक (होई) आनुपूर्वी रूप से रहते हैं? (एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं)

उत्तर-आनुपूर्वी द्रव्य एक आनुपूर्वी की अपेक्षा को लेकर कम से कम एक समय और (उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं) अधिक से अधिक असंख्यात काल तक आनुपूर्वी रूप से रहता है। (णाणादव्वाइं पडुच्च णियमा सव्वद्धा) तथा नाना आनुपूर्वी द्रव्यों की अपे-

---

સ્પર્શનાદ્વારનું નિરૂપણ કરીને હવે સૂત્રકાર અનુગમના પાંચમાં ભેદ રૂપ કાળદ્વારનું કથન કરે છે—

"णेगमववहाराणं आणुपुव्वी दव्वाइं" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(णेगमववहाराणं आणुपुव्वी दव्वाइं) નૈગમ અને વ્યવહાર, આ બે નયસંમત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો (कालओ) કાળની અપેક્ષાએ (केवच्चिरं) કેટલા કાળ સુધી (होई) આનુપૂર્વી રૂપે રહે છે?

ઉત્તર-(एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं) એક આનુપૂર્વી દ્રવ્યની અપેક્ષાએ વિચારવામાં આવે તો એક આનુપૂર્વી દ્રવ્ય ઓછામાં ઓછા એક સમય સુધી અને (उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं) વધારેમાં વધારે અસંખ્યાત કાળ સુધી આનુપૂર્વી રૂપે રહે છે, (णाणादव्वाइं पडुच्च णियमा सव्वद्धा) તથા વિવિધ આનુપૂર્વી દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો અનેક આનુપૂર્વી દ્રવ્યોની સ્થિતિ સર્વકાળની હોય છે આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે.

टीका—' णेगमववहाराणं ' इत्यादि-

नैगमव्यवहारसम्मतानि आनुपूर्वीद्रव्याणि कालतः=कालमाश्रित्य कियच्चिरं= कियन्तं कालं भवन्ति?। आनुपूर्वीत्वपर्यायेण कियत्कालम् अवतिष्ठन्ते? इति पृष्टुराशयः। सूत्रे 'होई' इत्येकवचनमार्षत्वात् उत्तरमाह-आनुपूर्वीद्रव्यम् एकं द्रव्यं प्रतीत्य=आश्रित्य जघन्यत एकं समयमवतिष्ठते, उत्कर्षतः असंख्येयं कालमवतिष्ठते। नानाद्रव्याणि=बहूनि आनुपूर्वीद्रव्याणि प्रतीत्य=आश्रित्य तु नियमतः एषां सर्वाद्धा=सार्वकालिकी स्थितिर्भवति। अयं भावः-परमाणुद्वयादौ अपरैकादिपरमाणुमीलने सति अपूर्वं किंचिदानुपूर्वीद्रव्यमुत्पद्यते, ततः समयादूर्ध्वं पुनरप्ये-

---

क्षा लेकर अनेक आनुपूर्वी द्रव्यों की स्थिति सार्वकालिकी है तात्पर्य इसका यह है कि आनुपूर्वी द्रव्य का आनुपूर्वी द्रव्य रूप में रहने का जो एक समय रूप काल कहा गया है, वह इस प्रकार से है कि-परमाणुद्वय आदि में दूसरे एक आदि परमाणुओं के मिलने पर एक कोई अपूर्व आनुपूर्वी द्रव्य उत्पन्न हो जाता है बाद में एक समय के अनन्तर उसमें से एक आदि परमाणु के छूट जाने पर वह आनुपूर्वी द्रव्य उस रूप से अपगत (नष्ट) हो जाता है। इसलिये एक आनुपूर्वी द्रव्य की, अपेक्षा से आनुपूर्वी रूप में रहने का काल जघन्य से एक समय कहा गया है। और जब वही एक आनुपूर्वीद्रव्य असंख्यात काल तक आनुपूर्वी द्रव्य रूप में रहकर एक आदि परमाणु से वियुक्त होता है तब उसकी अवस्थितिका उत्कृष्ट समय असंख्यात का कहा गया है। अवस्थितिकाल किसी भी एक

આનુપૂર્વી દ્રવ્યનો આનુપૂર્વી દ્રવ્યરૂપે રહેવાનો જે એક સમય રૂપ કાળ કહ્યો છે તે આ પ્રકારે કહ્યો છે—

પરમાણુ દ્વયણુઆદિમાં (બે પરમાણુમાં) કોઈ એક આદિ અન્ય પરમાણુ મળવાથી કોઈ એક અપૂર્વ દ્રવ્ય ઉત્પન્ન થઈ જાય છે ત્યાર બાદ એક સમય પછી તેમાંથી એક આદિ પરમાણુ વિયુક્ત (અલગ) થઈ જવાથી તે આનુપૂર્વી દ્રવ્ય તે રૂપમાંથી અપગત (નષ્ટ) થઈ જાય છે એટલે કે તે રૂપે રહેતું નથી તે કારણે એક આનુપૂર્વી દ્રવ્યની અપેક્ષાએ આનુપૂર્વી રૂપે રહેવાનો કાળ ઓછામાં ઓછો એક સમયનો કહ્યો છે. અને જ્યારે એજ એક આનુપૂર્વીદ્રવ્ય અસંખ્યાત કાળ સુધી આનુપૂર્વી દ્રવ્યરૂપે રહીને એક આદિ પરમાણુ રૂપે વિયુક્ત (અલગ) થઈ જાય છે ત્યારે તેની અવસ્થિતિનો ઉત્કૃષ્ટ સમય અસંખ્યાત કાળનો કહ્યો છે. કોઈ પણ એક આનુપૂર્વી દ્રવ્યનો અવ-

काद्यणौ वियुक्ते सति तदानुपूर्वीद्रव्यमपगतं भवति, अत एकमानुपूर्वीद्रव्यमधिकृत्य जघन्यत एकः समयोऽवस्थितिकालः। यदा तु तदेवैकमानुपूर्वीद्रव्यमसङ्ख्यातकालं तद्भावेन स्थित्वाऽनन्तरोक्तस्वरूपेण वियुज्यते, तदा तस्य उत्कृष्टतोऽसंख्येयोऽवस्थितिकालः, नत्वनन्तोऽवस्थितिकालः, उत्कृष्टाया अपि पुद्गलसंयोगस्थितेरसंख्येयकालत्वात्। बहूनि आनुपूर्वीद्रव्याणि आश्रित्य तु एषामानुपूर्वीद्रव्याणां नियमतः सर्वाद्धा स्थितिर्बोध्या। यतो नास्ति कश्चित्तादृशः कालो यत्र कालेऽयं लोक आनुपूर्वीद्रव्यरहितो भवेदिति।

आनुपूर्वी द्रव्य का आनुपूर्वीरूप में रहने का काल अनन्त नहीं होता है। क्योंकि उत्कृष्ट भी पुद्गल संयोगस्थिति असंख्यात काल की ही होती है। अनेक आनुपूर्वी द्रव्यों की अपेक्षा तो इन आनुपूर्वीद्रव्यों की स्थिति नियमतः सर्व कालकी है। क्योंकि लोक में ऐसा कोई काल नहीं है कि जिसमें ये आनुपूर्वी द्रव्य नहीं हों। (अणाणुपुव्वी दव्वाइं अवत्तव्वगदव्वाइं च एवं चेव भाणियव्वाइं) अनानुपूर्वी द्रव्यों में और अवक्तव्यक द्रव्यों में भी जघन्य और उत्कृष्ट रूप काल एक द्रव्य और अनेक द्रव्यों की अपेक्षा लेकर पूर्वोक्त रूपसे ही जानना चाहिये। तात्पर्य यह है कि कोई एक परमाणु एक समय तक अकेला रहकर बाद में किसी दूसरे परमाणु से संश्लिष्ट हो जाता है। इसलिये एक आनुपूर्वी द्रव्य की अपेक्षा से उस अनानुपूर्वी रूप एक द्रव्य का अवस्थिति काल जघन्य से एक समय का और जब वही एक परमाणु

સ્થિતિકાળ (આનુપૂર્વી રૂપે રહેવાનો કાળ) અનંત હોતો નથી, કારણ કે ઉત્કૃષ્ટ પુદ્ગલસંયોગ સ્થિતિ પણ અસંખ્યાત કાળની જ હોય છે. અનેક આનુપૂર્વી દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ તો તે આનુપૂર્વી દ્રવ્યોની સ્થિતિ નિયમથી જ સર્વકાલીન હોય છે, કારણ કે લોકમાં એવો કોઇ કાળ નથી કે જ્યારે આનુપૂર્વી દ્રવ્યોનું અસ્તિત્વ જ ન હોય.

(अणाणुपुव्वीदव्वाइं अवत्तव्वगदव्वाइं च एवं चेव भाणियव्वं) અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાં અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યોમાં પણ એક દ્રવ્ય અને અનેક દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ પૂર્વોક્ત જઘન્ય કાળ અને ઉત્કૃષ્ટ કાળ સમજી લેવો આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે. કોઇ એક પરમાણુ એક સમય સુધી એકલું રહીને ત્યાર બાદ કોઈ બીજા પરમાણુ સાથે સંશ્લિષ્ટ થઇ જાય છે. તેથી એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યનો અવસ્થિતિકાળ (અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય રૂપે રહેવાનો કાળ) ઓછામાં ઓછો એક સમયનો કહ્યો છે, અને જ્યારે એજ એક પરમાણુ

एवमेव-अनानुपूर्वीद्रव्याणि अवक्तव्यकद्रव्याणि च वक्तव्यानि। आनुपूर्वीद्रव्येषु अवक्तव्यद्रव्येषु च जघन्यत उत्कृष्टतश्चापि पूर्वोक्त एवावस्थानकालः।

अयं भावः-कश्चित्परमाणुरेकं समयमेकाकी स्थित्वा ततोऽन्येन परमाणुना संश्लिष्टो भवति। अत एकमनानुपूर्वीद्रव्यमधिकृत्य जघन्यत एकः समयोऽवस्थितिकालः। स एवैकः परमाणु र्यदा असंख्यातं कालं तद्भावेन स्थित्वाऽन्येन परमाणुना संश्लिष्यति, तदा उत्कृष्टतोऽसंख्येयोऽवस्थितिकालो भवति। नानाद्रव्याण्याश्रित्य तु पूर्ववदेव सर्वाद्धा स्थितिर्बोध्या।

परमाणुद्वयलक्षणमवक्तव्यकद्रव्यमपि यदा समयमेकं संयुक्तं स्थित्वा ततो वियुज्यते, तदवस्थमेव वा पुनरन्येन परमाणुना संयुज्यते, तदा तस्यावक्तव्यकद्रव्यतया, एकसमयलक्षणः कालस्तस्य जघन्यतोऽवस्थितिकालो बोध्यः। यदा तु

असंख्यात काल तक अकेले रहने की स्थिति में रहकर बाद में किसी दूसरे परमाणु से संश्लिष्ट हो जाता है तब उसका अवस्थितिकाल उत्कृष्ट से असंख्यात काल माना जाता है नाना द्रव्यों की अपेक्षा से इन अनानु पूर्वी द्रव्यों की अवस्थिति का समय सर्वकाल माना गया है क्योंकि लोक में ऐसा कोईसामी समय नहीं है कि जिसमें ये अनानुपूर्वी द्रव्य न हों। एक परमाणुरूप द्रव्यरूप अवक्तव्यक द्रव्य भी जब एक समय तक संयुक्त रह कर फिर वियुक्त हो जाता है तब उसका अवस्थिति काल जघन्य से एक समय माना गया है, अथवा जब वह उसी स्थिति में एक समय तक रहते हुए किसी और दूसरे परमाणु से संयुक्त हो जाता है तब उसका अवस्थितिकाल जघन्य से एक समय का माना गया है। और जब वही अवक्तव्यक द्रव्य असंख्यात

અસંખ્યાત કાળ સુધી એકલું રહીને ત્યાર બાદ કોઇ બીજા પરમાણુની સાથે સંશ્લિષ્ટ થઈ જાય છે, ત્યારે તેનો અવસ્થિતિ કાળ અધિકમાં અધિક અસંખ્યાત કાળનો મનાય છે વિવિધ દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ વિચારવામાં આવે તો તે અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોનો અવસ્થિતિકાળ સર્વકાલીન માનવામાં આવ્યો છે, કારણ કે લોકમાં એવો કોઈ સમય નથી કે જ્યારે આ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોનું અસ્તિત્વ જ ન હોય.

બે પરમાણુ રૂપ એક અવક્તવ્યક દ્રવ્ય પણ જ્યારે એક સમય સુધી સંયુક્ત રહીને ત્યાર બાદ વિભક્ત થઈ જાય છે, ત્યારે તેનો જઘન્ય અવસ્થિતિ કાળ એક સમયનો માનવામાં આવે છે અથવા જ્યારે તે એજ સ્થિતિમાં એક સમય સુધી રહીને ત્યાર બાદ કોઈ એક બીજા પરમાણુ સાથે સંશ્લિષ્ટ

तदेवावक्तव्यकद्रव्यं असंख्यातं कालं तद्भावेन स्थित्वा विघटते, तद्वस्थमेव वा पुनरन्येन परमाणुना संश्लिष्यति, तदा उत्कृष्टतो अवक्तव्यकद्रव्यतया असंख्यातकालस्तदवस्थितिकालो बोध्यः। नानाद्रव्याण्याश्रित्य तु पूर्ववत् सर्वाद्धाऽवस्थितिकालो बोध्यः ॥सू० ८६॥

सम्प्रति षष्ठमन्तरद्वारमाह–

मूलम्–णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाणं अंतरं कालओ केवच्चिरं होई? एगं दव्वं पडुच्च जहन्नेणं एगं समयं उक्कोसेणं अणंतं कालं, नाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं। णेगमववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाणं अंतरं कालओ केवच्चिरं होई? एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं, नाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं। णेगमववहाराणं अवत्तग-

काल तक तद्भाव से स्थित रहकर फिर विघटित हो जाता है, अथवा जब वह उसी स्थिति में असंख्यात काल तक रहता हुआ बाद में किसी दूसरे परमाणु से संश्लिष्ट हो जाता है तब उत्कृष्ट से उसका अवक्तव्यक द्रव्य रूप से अवस्थिति काल असंख्यात काल प्रमाण माना जाता है। नाना अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा इन अवक्तव्यक द्रव्यों का अवस्थिति काल सर्वकालिक माना गया है। क्योंकि लोक में ऐसा कोई भी समय नहीं है कि जिसमें इनकी अवस्थिति न हो ॥सू० ८६॥

થઈ જાય છે ત્યારે તેનો અવસ્થિતિ કાળ જઘન્યની અપેક્ષાએ એક સમયનો ગણાય છે, અને જ્યારે તે અવક્તવ્યક દ્રવ્ય અસંખ્યાત કાળ સુધી એજ સ્થિતિમાં રહીને ત્યાર બાદ વિઘટિત (વિભક્ત) થઈ જાય છે, એટલે કે જ્યારે તે એજ સ્થિતિમાં અસંખ્યાત કાળ સુધી રહે છે અને ત્યાર બાદ કોઈ બીજા પરમાણુ સાથે સંશ્લિષ્ટ (સંયુક્ત) થઈ જાય છે, ત્યારે તેનો અવક્તવ્યક દ્રવ્યરૂપે રહેવાનો કાળ (અવસ્થિતિ કાળ) અધિકમાં અધિક અસંખ્યાત કાળપ્રમાણ માનવામાં આવ્યો છે.

વિવિધ અવક્તવ્યક દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ તે અવક્તવ્યક દ્રવ્યોનો અવસ્થિતિ કાળ (અવક્તવ્યક દ્રવ્યરૂપે રહેવાનો સમય) સર્વકાલીન કહ્યો છે. એટલે કે એવો કોઈ પણ સમય નથી કે જ્યારે તેમની અવસ્થિતિ (અસ્તિત્વ) જ ન હોય. ॥ સૂ૦ ૮૬ ॥

दव्वाणं अंतरं कालओ केवच्चिरं होई? एगं दव्वं पडुच्च जहन्नेणं एगं समयं उक्कोसेणं अणंतं कालं, नाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं ॥सू० ८७॥

छाया—नैगमव्यवहारयोरानुपूर्वी द्रव्याणामन्तरं कालतः कियच्चिरं भवति? एकं द्रव्यं प्रतीत्य जघन्येन एकं समयम्, उत्कर्षेण अनन्तं कालम्, नानाद्रव्याणि प्रतीत्य नास्ति अन्तरम्। नैगमव्यवहारयोरनानुपूर्वीद्रव्याणाम् अन्तरं कालतः कियच्चिरं भवति? एकं द्रव्यं प्रतीत्य जघन्येन एकं समयम्, उत्कर्षेण असंख्येयं

अब सूत्रकार अन्तरद्वारकी प्ररूपणा करते हैं

"णेगमववहाराणं" इत्यादि

शब्दार्थ-प्रश्न (णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाणं अंतरं कालओ केवच्चिरं होई)

प्रश्न-नैगम व्यवहारनय संमत आनुपूर्वी द्रव्यों का व्यवधान काल की अपेक्षा कितने काल का होता है? अर्थात् आनुपूर्वी द्रव्य आनुपूर्वी स्वरूप का परित्याग करके पुनः उस आनुपूर्वी स्वरूप को जितने काल के व्यवधान से प्राप्त करते हैं उस काल व्यवधान का नाम अर्थात् विरह काल का नाम अंतर है। यहां अंतर यह काल की अपेक्षा से शिष्य ने पूछा है। क्योंकि अंतर क्षेत्र की अपेक्षा से भी होता है। इसीलिये यहां उस क्षेत्र गत अंतर के परिहारार्थ काल पद का प्रयोग सूत्रकार ने किया है।

હવે સૂત્રકાર અન્તરદ્વારની પ્રરૂપણા કરે છે-"णेगमववहाराणं" ઇત્યાદિ-

શબ્દાર્થ-પ્રશ્ન-(णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाणं अंतरं कालओ केवच्चिरं होई?) નૈગમ અને વ્યવહાર, આ બન્ને નયસંમત આનુપૂર્વી દ્રવ્યનું વ્યવધાન (અંતરવિરહકાળ) કાળની અપેક્ષાએ કેટલા કાળનું હોય છે? આનુપૂર્વી દ્રવ્ય આનુપૂર્વી સ્વરૂપનો ત્યાગ કર્યા બાદ ફરીથી તે આનુપૂર્વી દ્રવ્યરૂપ સ્વરૂપને જેટલા કાળના વ્યવધાન (આંતર) બાદ પ્રાપ્ત કરે છે, તે વ્યવધાન કાળનું નામ અથવા વિરહકાળનું નામ અંતર છે. અહીં શિષ્યે કાળની અપેક્ષાએ તે અંતરના વિષયમાં પ્રશ્ન પૂછયો છે. ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ પણ અંતર હોઈ શકે છે, પણ અહીં ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ અંતર પૂછયું નથી અહીં તો કાળની અપેક્ષાએ અંતર પૂછયું છે. તેથી જ અહીં "कालओ केवच्चिरं" આ સૂત્રપાઠ મૂકયો છે.

कालम्, नानाद्रव्याणि प्रतीत्य नास्ति अन्तरम्। नैगमव्यवहारयोरवक्तव्यकद्रव्याणाम् अन्तरं कालतः कियच्चिरं भवति ? एकं द्रव्यं प्रतीत्य जघन्येन एकं समयम्, उत्कर्षेण अनन्तं कालम्, नानाद्रव्याणि प्रतीत्य नास्ति अन्तरम् ॥सू० ८७॥

टीका—'णेगमववहाराणं' इत्यादि-

नैगमव्यवहारसम्मतानाम् आनुपूर्वीद्रव्याणाम् अन्तरं=व्यवधानं कालतः=कालमाश्रित्य कियच्चिरं=कियत्कालावधि भवति ?। क्षेत्रतोऽप्यन्तरं भवत्यतस्तद्व्यवच्छेदाय प्राह-'कालओ केवच्चिरं' इति। आनुपूर्वीद्रव्याणाम् आनुपूर्वी स्वरूपतां परित्यज्य पुनस्तत्प्राप्ति यावता कालेन भवति स किं परिमाणः कालो भवतीति प्रश्नः। उत्तरमाह-एकं द्रव्यं प्रतीत्य=आश्रित्य जघन्यत एकं समयमन्तरम्, उत्कर्षतस्तु अनन्तं कालमन्तरम्। नानाद्रव्याणि प्रतीत्य तु अन्तरं नास्ति। अयं भावः-व्यणुकचतुरणुकादीनां मध्ये किमप्यानुपूर्वीद्रव्यं विश्रसापरिणामात् प्रयोगपरिणामाद् वा खण्डशो वियुज्य परित्यक्तानुपूर्वीभावं संजातम्। पुनस्तत् एकसमयादूर्ध्वं विश्रसादिपरिणामात् पुनस्तैरेव परमाणुभिस्तथैव निष्पन्नम्। इत्थं

उत्तर-(एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं अणंतं कालं) एक आनुपूर्वी द्रव्य की अपेक्षा जघन्य अंतर एक समय का और उत्कृष्ट अंतर अनंत काल का है (नाणा दव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं) तथा नाना द्रव्यों की अपेक्षा अंतर नहीं है। इस कथन का भाव यह है कि व्यणुक, चतुरणुक आदि आनुपूर्वी द्रव्य में से कोई एक आनुपूर्वी द्रव्य स्वाभाविक अथवा प्रायोगिक परिणमन से खंड खंड होकर आनुपूर्वी पर्याय से रहित हो गया अब पुनः वही द्रव्य एक समय के बाद स्वाभाविक आदि परिणाम के निमित्त से उन्हीं

ઉત્તર—(एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं उक्कोसेणं अणंतं कालं) એક આનુપૂર્વી દ્રવ્યની અપેક્ષાએ ઓછામાં ઓછું અંતર (વિરહકાળ) એક સમયનું અને વધારેમાં વધારે અંતર અનંત કાળનું હોય છે. (नाणा दव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं) તથા વિવિધ દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ વિચારવામાં આવે તો એવા અંતરનો સદ્ભાવ જ નથી. આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે- ત્રણ અણુવાળું, ચાર અણુવાળું આદિ આનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાંથી કોઈ એક આનુપૂર્વી દ્રવ્ય સ્વાભાવિક અથવા પ્રાયોગિક પરિણમન વડે ખંડ ખંડ થઈ જઈને આનુપૂર્વી પર્યાયથી રહિત થઈ ગયેલું હવે એજ દ્રવ્ય એક સમય બાદ ફરીથી સ્વાભાવિક આદિ પરિણમન દ્વારા એજ પરમાણુઓના સંયોગથી એજ આનુપૂર્વી

च एकं द्रव्यमाश्रित्यानुपूर्वीत्वस्य परित्यागे पुनर्लाभे च सति मध्ये योऽन्तरः स जघन्यत एकसमयात्मको बोध्यः, उत्कृष्टतस्तु अन्तरमनन्तकालं भवति। तथाहि तदेव विवक्षितं किमप्यानुपूर्वीद्रव्यं पूर्ववदेव भिन्नम्, ततस्ते परमाणवोऽन्येषु परमाणुद्व्यणुकत्र्यणुकप्रभृतिषु अनन्ताणुकस्कन्धपर्यन्तेषु प्रतिस्थानमुत्कृष्टां स्थितिमनुभवन्तः पर्यटन्ति। इत्थं पर्यटनं कृत्वा कालस्यानन्तत्वाद् विश्रसादिपरिणामतः पुनर्यदा तैरेव परमाणुभिस्तदेव विवक्षितमानुपूर्वीद्रव्यं जायते तदा उत्कृष्टतोऽनन्त

परमाणुओं के संयोग से निष्पन्न हो गया-विवक्षित आनुपूर्वी रूप बन गया। इस प्रकार एक आनुपूर्वी द्रव्य को आश्रित करके आनुपूर्वी स्वरूप के परित्याग हो जाने पर और पुनः उसी स्वरूप में आने पर बीच में जो अन्तर पडा वह जघन्य से एक समय का पडा-इस प्रकार यह एक समय का अन्तर जानना चाहिये। तथा उत्कृष्ट से अन्तर अनंत काल का, इस प्रकार से अजाता है कि कोई एक विवक्षित आनुपूर्वी द्रव्य पूर्वोक्त रूप से आनुपूर्वी पर्याय से रहित हो गया। इस प्रकार निर्गत वे परमाणु अन्य द्वयणुक त्र्यणुक आदि से लेकर अनन्त स्कंध पर्यन्त रूप अनन्त स्थानों में प्रत्येक उत्कृष्ट काल की स्थिति का अनुभव करते हुए संश्लिष्ट रहे। इस प्रकार प्रत्येक द्वयणुक आदि अनन्त स्थानो में अनंत काल तक संश्लिष्ट होते २ अनन्त काल समाप्त होने पर जब उन्हीं परमाणुओं द्वारा वही विवक्षित आनुपूर्वी द्रव्य पुनः निष्पन्न हो जावे तब यह अनंत काल का उत्कृष्ट अंतर

રૂપ બની જાય છે. આ રીતે એક આનુપૂર્વી દ્રવ્યના આનુપૂર્વી સ્વરૂપનો પરિત્યાગ થઈ ગયા બાદ ફરીથી એજ સ્વરૂપમાં આવી જવામાં જે કાળનો આંતરો પડે છે તે કાળના આંતરા રૂપ જઘન્ય અંતર એક સમયનું સમજવું ઉત્કૃષ્ટની અપેક્ષાએ જે અનંત કાળનું અંતર કહ્યું છે તેનું સ્પષ્ટીકરણ નીચે પ્રમાણે છે-ધારો કે કોઈ એક વિવક્ષિત આનુપૂર્વી દ્રવ્ય પૂર્વોક્ત રૂપે આનુપૂર્વી પર્યાયથી રહિત થઈ ગયું છે. આ રીતે વિભક્ત થયેલાં તે પરમાણુઓ અન્ય બે અણુવાળા, ત્રણ અણુવાળા વગેરેથી લઈને અનંત પર્યન્તના અણુવાળા સ્કન્ધ રૂપ અનંત સ્થાનોમાંની પ્રત્યેક સ્થાનમાં ઉત્કૃષ્ટ કાળની સ્થિતિનો અનુભવ કરતાં થકા સંશ્લિષ્ટ રહ્યા. આ પ્રમાણે પ્રત્યેક દ્વયણુક આદિ અનંત સ્થાનોમાં અનંત કાળ સુધી સંશ્લિષ્ટ રહ્યા બાદ એટલે કે એ સ્વરૂપમાં રહેતાં રહેતાં અનંત કાળ વ્યતીત થઈ ગયા બાદ એજ પરમાણુઓ દ્વારા જ્યારે વિવક્ષિત આનુપૂર્વી દ્રવ્યનું ફરીથી નિર્માણ થઈ જાય છે, ત્યારે એમ

कालमन्तरं भवति। नानाद्रव्याण्याश्रित्य त्वन्तरं न भवति। यतो नास्ति कश्चित् स काळो यत्र सर्वाण्यानुपूर्वीद्रव्याणि युगपदानुपूर्वीभावं परित्यजन्ति, लोकेऽनन्तानन्तानुपूर्वीद्रव्याणां सर्वदा विद्यमानत्वात्, अतो नानाद्रव्यापेक्षयाऽन्तरं नास्तीति।

तथा–नैगमव्यवहारसम्मतानामनानुपूर्वीद्रव्याणां कालतः कियच्चिरमन्तरं भवतीति प्रश्नः। उत्तरमाह–'एगं दव्वं' इत्यादि। एकं द्रव्यमाश्रित्य जघन्यत एकं समयमनानुपूर्वीद्रव्याणामन्तरं भवति, उत्कर्षतोऽसंख्येयं कालमन्तरं भवति। नाना-

---

होता है। नाना आनुपूर्वी द्रव्यों की अपेक्षा जो काल का अन्तर नहीं कहा गया है, सो उसका कारण यह है कि लोक में ऐसा कोई सा भी काल नहीं कि जिस में समस्त आनुपूर्वी द्रव्य अपने आनुपूर्वी स्वभाव का एक साथ परित्याग कह देते हो। क्यों कि लोक में अनंतानंत आनुपूर्वी द्रव्य सर्वदा विद्यमान रहते हैं। इसलिये नाना आनुपूर्वी द्रव्यों की अपेक्षा से अन्तर नहीं आ सकता है। (णेगमववहारणं अणाणुपुव्वीदव्वाणं अन्तरं कालओ केवच्चिरं होई ?)

प्रश्न– नैगम व्यवहारनय संमत अनानुपूर्वी द्रव्यों का व्यवधान काल की अपेक्षा कितने काल का होता है ?

उत्तर–(एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं नाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं) अनानुपूर्वी द्रव्यों का विरह काल एक अनानुपूर्वी द्रव्य की अपेक्षा से जघन्य एक समय का और

थवामां अनंत काळनुं उत्कृष्ट अंतर पडी जाय छे. એટલે કે આનુપૂર્વી પર્યાયનો પરિત્યાગ કર્યા બાદ ફરી આનુપૂર્વી પર્યાયમાં આવી જવામાં અનંત કાળનું વ્યવધાન (આંતરો) પડી જાય છે. "વિવિધ દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ કાળનું અંતર છે જ નહીં," આ પ્રકારના કથનનું કારણ એ છે કે લોકમાં એવો કોઈ પણ સમય નથી કે જ્યારે સમસ્ત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો પોતાના આનુપૂર્વી સ્વભાવનો એક સાથે પરિત્યાગ કરી દેતાં હોય, કારણ કે લોકમાં અનંતાનંત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો સર્વદા વિદ્યમાન રહે છે, તેથી વિવિધ આનુપૂર્વી દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ કાળનો આંતરો જ પડી શકતો નથી.

પ્રશ્ન–(णेगमववहाराणं अणाणुपुव्वी दव्वाणं अंतरं कालओ केवच्चिरं होई ?) નૈગમ અને વ્યવહાર નયસંમત અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોનું વ્યવધાન (અંતર–વિરહ-કાળ) કાળની અપેક્ષાએ કેટલા કાળનું હોય છે ?

ઉત્તર–(एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं नाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं) અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યનો વિરહકાળ એક

द्रव्याण्याश्रित्य तु नास्ति अन्तरमिति। अयमाशयः-यदा परमाणुस्वरूपं किमप्यनानुपूर्वीद्रव्यम्, अन्येन परमाणुना द्व्यणुकत्र्यणुकादिना वा एकं समयं संश्लिष्य समयादूर्ध्वं पुनर्विश्लिष्टं भवति, तदैकद्रव्यापेक्षया जघन्यत एकं समयमन्तरं भवति। यदा तु तदेवानानुपूर्वीद्रव्यं परमाणुद्व्यणुकत्र्यणुकादिना केनचिद् द्रव्येण सह संयुज्यते, संयुक्तं चासंख्येयं कालं स्थित्वा ततो वियुज्य पुनः पूर्ववदनानुपूर्वीत्वं लभते। इत्थमेकं द्रव्यमाश्रित्य उत्कृष्टतोऽसंख्येयकालमन्तरं भवतीति।

उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात काल का होता है। नाना अनानुपूर्वी द्रव्यों की अपेक्षा से कोई अन्तर नहीं हैं। तात्पर्य इसका इस प्रकार से है कि जब कोई भी परमाणुरूप अनानुपूर्वी द्रव्य अन्य किसी दूसरे परमाणु के साथ अथवा द्व्यणुक त्र्यणुक आदि के साथ एक समय तक संश्लिष्ट होकर बाद में उससे वियुक्त विश्लिष्ट-हो जाता है तब एक अनानुपूर्वी द्रव्य की अपेक्षा जघन्य एक समय का अन्तर होता है। और जब वही अनानुपूर्वी द्रव्य रूप परमाणु किसी द्व्यणुक त्र्यणुक आदि के साथ संयुक्त हो जाता है और असंख्यात काल तक संयुक्त रह कर फिर उससे वियुक्त होता है, तो इस प्रकार पुनः उसे अनानुपूर्वी रूप में आने पर यह द्रव्य की अपेक्षा उत्कृष्ट असंख्यात काल का अन्तर होता है।

અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યની અપેક્ષાએ ઓછામાં ઓછો એક સમયનો અને વધારેમાં વધારે અસંખ્યાત કાળનો હોય છે વિવિધ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો વ્યવધાન (વિરહકાળ-અંતર)નો સદ્ભાવ જ નથી. આ કથનનું સ્પષ્ટીકરણ નીચે પ્રમાણે છે-જ્યારે કોઈ પરમાણુ રૂપ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય કોઈ બીજા પરમાણુની સાથે અથવા દ્વયણુક, ત્રિઅણુક આદિ સ્કંધોની સાથે એક સમય સુધી સંશ્લિષ્ટ (સંયુક્ત) રહીને તેનાથી વિયુક્ત (અલગ) થઇ જાય છે ત્યારે એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યની અપેક્ષાએ ઓછામાં ઓછા સમયનું અંતર (વ્યવધાન) પડી જાય છે. અને એજ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય રૂપ પરમાણુ જ્યારે કોઈ દ્વયણુક, ત્રિઅણુક આદિ સ્કંધોની સાથે સંશ્લિષ્ટ થઈને અસંખ્યાત કાળ સુધી એજ સ્થિતિમાં રહીને ફરીથી તેમાંથી વિયુક્ત (વિભક્ત) થઈ જાય છે, અને ફરીથી અનાનુપૂર્વી રૂપે નિષ્પન્ન થઇ જાય છે, તો આ પ્રકારે અનાનુપૂર્વીના પરિત્યાગથી લઇને અનાનુપૂર્વીના પુનઃ નિર્માણમાં વધારેમાં વધારે અસંખ્યાત કાળનું અંતર પડે છે આ ઉત્કૃષ્ટ અંતર એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યની અપેક્ષાએ કહ્યું છે, એમ સમજવું.

ननु अनानुपूर्वीद्रव्यं यदाऽनन्तानन्तपरमाणुप्रचितस्कन्धेन सह संयुज्यते, तत्संयुक्तं चासंख्येयं कालमवतिष्ठते, ततोऽसौ स्कन्धो भिद्यते। भिन्ने च तस्मिन् स्कन्धे यस्तस्माल्लघुःस्कन्धो भवति, तेनापि सह संयुक्तमसंख्यातं कालमवतिष्ठते, पुनस्तस्मिन्नपि स्कन्धे भिद्यमाने यस्तस्माल्लघुतरः स्कन्धो भवति तेनापि लघुतरेण स्कन्धेन सह संयुक्तमसंख्येयं कालमवतिष्ठते, इत्येवं क्रमेण पुनस्तस्मिन्नपि भिद्यमाने स्कन्धे यस्तस्माल्लघुतमः स्कन्धो भवति, तेनापि संयुक्तमसंख्येयं कालमवतिष्ठते, इत्येवं तत्र भिद्यमाने क्रमेण कदाविदनन्ता अपि स्कन्धा संभ-

शंका-जब एक अनानुपूर्वी द्रव्य अनंतानंत परमाणुओं के प्रचय रूप से संयुक्त होता है और वह उसके साथ संयुक्त अवस्था में असंख्यात काल तक रहता है और बाद में जब यह स्कंध भेद को प्राप्त होता है-अर्थात् टूटता है-तब उससे जो लघुस्कंध उत्पन्न होता है, उसके साथ भी यह परमाणु रूप अनानुपूर्वी द्रव्य असंख्यात काल तक संयुक्त रहता है। बाद में जब वह भी स्कंध भेद को प्राप्त होता है-तब उससे भी एक लघुतर स्कंध उत्पन्न हो जाता है। और उस लघुतर स्कंध के साथ भी यह असंख्यात काल तक संयुक्त रहता है। इस प्रकार के क्रम से जब वह लघुतर स्कंध भी भेद प्राप्त हो जाता है-तब उससे भी एक लघुतम स्कंध उत्पन्न हो जाता है। और यह परमाणु रूप अनानुपूर्वी द्रव्य उस लघुतर स्कंध के साथ भी असंख्यात काल

શંકા-જ્યારે એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય અનંતાનંત પરમાણુઓના પ્રચય રૂપ સ્કંધ સાથે સંયુક્ત થાય છે અને તે તેની સાથે સંયુક્ત અવસ્થામાં અસંખ્યાત કાળ સુધી રહ્યા બાદ જ્યારે તે સ્કંધ વિભક્ત થઇ જાય છે ત્યારે તેમાંથી કોઈ લઘુસ્કંધ ઉત્પન્ન થઈ જાય છે. તે લઘુસ્કંધની સાથે પણ તે પરમાણુ રૂપ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય અસંખ્યાત કાળ સુધી સંયુક્ત રહે છે. ત્યારબાદ જ્યારે તે સ્કંધ પણ વિભક્ત થઈ જાય છે ત્યારે તેમાંથી કોઇ લઘુસ્કંધ ઉત્પન્ન થઇ જાય છે તે લઘુસ્કંધની સાથે પણ તે પરમાણુ રૂપ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય અસંખ્યાત કાળ સુધી સંયુક્ત રહે છે. ત્યાર બાદ જ્યારે તે સ્કંધ પણ વિભક્ત થઈ જાય છે ત્યારે તેમાંથી પણ એક લઘુતર સ્કંધ ઉત્પન્ન થઈ જાય છે, અને તે લઘુતર સ્કંધ સાથે પણ તે પરમાણુ રૂપ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય અસંખ્યાત કાળ સુધી સંયુક્ત રહે છે ત્યાર બાદ તે લઘુતર સ્કંધ પણ વિભક્ત થઇ જાય છે અને તેમાંથી પણ એક લઘુતમ સ્કંધ ઉત્પન્ન થઇ જાય છે. આ પરમાણુ રૂપ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય તે લઘુતમ સ્કંધની સાથે પણ અસંખ્યાત કાળ સુધી સંશ્લિષ્ટ (સંયુક્ત) રહે

वेयुः, तत्र प्रत्येकस्मिन् स्कन्धे संयुक्तमनानुपूर्वीद्रव्यं यदा यथोक्तामसंख्येयकालं स्थितिमनुभूय एकाकि भवति, तदा तस्य यथोक्तानन्तस्कन्धस्थित्यपेक्षयाऽनन्तमपि कालमन्तरं भवति। ततः कथमुक्तमसंख्येयं कालमेवान्तरम्? इति चेत्, उच्यते–

यदि संयुक्तः परमाणुरनन्तं कालं तिष्ठेत्तदा भवदुक्तमुचितं स्यात्, परन्त्वेवं नास्ति, एतत्सूत्रप्रामाण्यात् व्याख्याप्रज्ञप्त्यादि सूत्रप्रामाण्याच्च परमाणुसंयोग-

---

तक संश्लिष्ट रहता है। इस प्रकार क्रम २ से उन २स्कंधों के टूटने पर कदाचित अनंत भी स्कंध संभवित होते हैं-इस प्रकार अनंत स्कन्धों में से प्रत्येक स्कंध के साथ संयुक्त वह अनानुपूर्वी द्रव्य, जब असंख्यात काल की अपनी स्थिति को समाप्त कर एकाकी रूप में आजाता है–अर्थात् पूर्व की अनानुपूर्वी रूप एक परमाणु अवस्था को प्राप्तकर लेता है–तब उसका इन पूर्वोक्त अनन्त स्कंधों में रहने रूप स्थिति की अपेक्षा से अनन्त काल का भी अन्तर हो जाता है। तब फिर सूत्रकार ने यहां पर एक अनानुपूर्वी द्रव्यका काल की अपेक्षा लेकर असंख्यात काल का ही अन्तरक्यों कहा है?

उत्तर–यह शंकाकार के द्वारा प्रदर्शित अनन्त काल का अन्तर तब संगत बैठ सकता है कि जब परमाणु संयुक्त होकर अनंत काल तक द्वयणुकादि अनंत स्कंधों के साथ रहता हो। परन्तु इस सूत्र की प्रमा-

---

છે આ રીતે ક્રમે ક્રમે તે તે સ્કંધો વિભક્ત થતા રહે છે. આ પ્રકારે તો કયારેક અનંત સ્કંધ પણ સંભવી શકે છે આ અનંત સ્કંધોમાંના પ્રત્યેક સ્કંધની સાથે અસંખ્યાત–અસંખ્યાત કાળ સુધી સંયુક્ત રહીને જ્યારે તે પરમાણુ રૂપ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય પૂર્વની પોતાની સ્થિતિમાં આવી જાય છે–એટલે કે અનાનુપૂર્વી રૂપ પરમાણુ અવસ્થાને ફરી પ્રાપ્ત કરે છે, ત્યારે તો પૂર્વોકિત અનંત સ્કંધોમાં રહેવા રૂપ સ્થિતિની અપેક્ષાએ તો અનંત કાળનું અંતર પણ પડી જાય છે છતાં સૂત્રકારે અહીં શા માટે એવું કથન કર્યું છે કે એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યનો વિરહકાળ અસંખ્યાત કાળનો હોય છે? એટલે કે અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય રૂપ અવસ્થાનો ત્યાગ કર્યા બદ ફરી એજ અવસ્થા પ્રાપ્ત કરવામાં અસંખ્યાત કાળનું, અંતર પડે છે એમ શા માટે કહ્યું છે? અનંતકાળનું અંતર પડે છે, એવું કેમ કહ્યું નથી?

ઉત્તર–શંકાકર્તા દ્વારા પ્રદર્શિત અનંત કાળનું અંતર ત્યારે જ સંગત બની શકે કે જ્યારે તે પરમાણુ દ્વયણુક આદિ અનંત સ્કંધોની સાથે સંયુક્ત થઈને અનંત કાળ સુધી રહેતું હોય, પરન્તુ આ સૂત્રની પ્રમાણુતાથી અને

स्थितेरुत्कृष्टतोऽसंख्येयकालत्वावगमात्, अतोऽसंख्येयं कालमन्तरं बोध्यम्। नानाद्रव्याण्याश्रित्य तु अन्तरं न भवतीति।

तथा—नैगमव्यवहारसम्मतानां द्विप्रदेशिकस्कन्धरूपाणामवक्तव्यकद्रव्याणां कालतः कियच्चिरमन्तरं भवतीति प्रश्नः।

उत्तरमाह—'एगं दव्वं' इत्यादि। एकं द्रव्यमाश्रित्य जघन्यत एकं समयमन्तरम्, उत्कृष्टतोऽनन्तं कालमन्तरं भवति। नानाद्रव्याण्याश्रित्य तु अन्तरं नास्तीति।

णता से और व्याख्याप्रज्ञप्ति आदि सूत्रों की प्रमाणता से परमाणु की संयुक्त अवस्था की स्थिति उत्कृष्ट रूप से असंख्यात काल तक की ही कही गई है। अतः सूत्र कथित असंख्यात काल का ही उत्कृष्ट अन्तर जानना चाहिये। तथा नाना अनानुपूर्वी द्रव्यों की अपेक्षा अन्तर नहीं होता है। क्यों कि लोक मे ऐसा कोई भी काल नहीं है कि जिस काल में कोई न कोई अनानुपूर्वी द्रव्य न रहे। 'नेगमववहाराणं अवत्तगदव्वाणं अंतरं कालओ केवच्चिरं होई?'

प्रश्न- नैगमव्यवहारनयसंमत अवक्तव्यक द्रव्यों अपनी अवक्तव्यक अवस्था का परित्याग करदेनेपर और पुनः उसी स्थिति में आने पर कालकी अपेक्षा कितना विरह काल है।?

उत्तर-(एगं दव्वं पडुच्च जहन्नेणं एगं समयं उक्कोसेणं अणंतं कालं

व्याख्याप्रज्ञप्ति આદિ સૂત્રોની પ્રમાણુતાથી પરમાણુની સંયુકત અવસ્થામાં રહેવાની ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ અસંખ્યાત કાળ પર્યન્તની જ કહી છે તેથી સૂત્રકથિત અસંખ્યાત કાળનું જ ઉત્કૃષ્ટ અંતર સમજવું જોઇએ.

"વિવિધ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ અંતર હોતું નથી," આ પ્રકારના કથનનું કારણ નીચે પ્રમાણે છે—

લોકમાં એવો કોઈ પણ કાળ નથી કે જે કાળે કોઇને કોઈ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યનું અસ્તિત્વ જ ન હોય એટલે કે કોઇને કોઇ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યનું અસ્તિત્વ તો લોકમાં સદા કાળ રહે છે જ.

પ્રશ્ન-(नेगमववहाराणं अवत्तगदव्वाणं अंतरं कालओ केवच्चिरं होई?) નૈગમ અને વ્યવહાર નયસંમત અવકતવ્યક દ્રવ્યોને પોતાની તે અવકતવ્યક અવસ્થાનો પરિત્યાગ કર્યા બાદ ફરીથી અવકતવ્યક અવસ્થામાં આવી જવામાં કેટલા કાળનું અંતર પડે છે? એટલે કે દ્વયણુક સ્કંધ રૂપ અવકતવ્યક દ્રવ્યોનો વિરહકાળ કાળની અપેક્ષાએ કેટલો કહ્યો છે?

ઉત્તર-(एगं दव्वं पडुच्च जहन्नेणं एगं समयं, उक्कोसेणं अणंतं काळं,

अयं भावः-द्विप्रदेशिकस्कन्धरूपमवक्तव्यकद्रव्यं विघटितं स्वतन्त्रं परमाणुद्वयं जातम्। समयमेकं विघटितमेव स्थित्वा पुनः एतदेव परमाणुद्वयं परस्परं मिलित्वा द्विप्रदेशिकः स्कन्धो जातः। यद्वा-विघटित एव द्विप्रदेशिकः स्कन्धः स्वतन्त्र परमाणुरूपतां प्राप्य, अन्येन परमाण्वादिना समयमेकं संयुज्य-समयादूर्ध्वं ततो वियुज्य पुनस्तदेव परमाणुद्वयं परस्परं मिलित्वा द्विप्रदेशिकः स्कन्धो निष्पन्नः, इत्थमवक्तव्यकद्रव्याणां जघन्यत एकं समयमन्तरं बोध्यम्,

---

नाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं) एक अवक्तव्यक द्रव्य की अपेक्षा जघन्य अंतर एक समय का, और उत्कृष्ट अंतर अनंत काल का है। तथा नाना अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा अंतर नहीं है। इस कथन का तात्पर्य इस प्रकार से है-कि एक द्विप्रदेशी स्कंध द्रव्य विघटित हो गया और वह स्वतंत्ररूप से दो परमाणु रूप बन गया। अब वे दो परमाणु एक समय तक परस्पर जूदे २ रहे। फिर एक समय बाद आपस में संश्लिष्ट हो गये और उनके श्लेष से वही द्विप्रदेशी स्कंध पुनः उत्पन्न हो गया। अथवा-द्विप्रदेशि स्कंध विघटित हो गया और उससे दो परमाणु उत्पन्न हो गये। वे परमाणु अन्य परमाणु आदि के साथ एक समय तक संयुक्त रहे और बाद में उससे विघटित होकर वे ही परमाणु परस्पर मिलकर उसी द्विप्रदेशिक स्कंध रूप में परिणत हो

नाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं) એક અવક્તવ્યક દ્રવ્યની અપેક્ષાએ જઘન્ય (એ છમાં ઓછું) અંતર એક સમયનું અને ઉત્કૃષ્ટ (વધારેમાં વધારે) અંતર અનંત કાળનું છે, તથા વિવિધ અવક્તવ્યક દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ અંતરનો સદ્ભાવ જ નથી આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે-કોઇ એક દ્વિપ્રદેશી સ્કન્ધ રૂપ અવક્તવ્યક દ્રવ્ય ધારો કે વિઘટિત (વિભક્ત) થઇને બે સ્વતંત્ર પરમાણુ રૂપ અવસ્થાને પ્રાપ્ત કરે છે. ત્યાર બાદ ઓછામાં ઓછા એક સમય સુધી તો તે બન્ને પરમાણુ એક બીજાથી અલગ જ રહે છે, પણ ત્યાર બાદ તેઓ એક બીજાની સાથે સંશ્લિષ્ટ (સંયુક્ત) થઈ જઈને ફરીથી દ્વિપ્રદેશી સ્કન્ધ રૂપ બની જાય છે. અથવા-દ્વિપ્રદેશી સ્કંધ વિઘટિત થઇ જઇને તેમાંથી બે પરમાણુ ઉત્પન્ન થઈ જાય છે તે પરમાણુઓ અન્ય પરમાણુ આદિની સાથે એક સમય સુધી સંશ્લિષ્ટ રહે છે, પણ ત્યાર બાદ તેઓ તેનાથી વિયુકત થઇને પરસ્પરની સાથે સંયુકત થઈ થઇને ફરીથી દ્વિપ્રદેશિક સ્કંધ રૂપે પરિણત થઈ જાય છે. આ રીતે એજ દ્વિપ્રદેશી સ્કંધનું તેમના દ્વારા નિર્માણ થઇ જાય છે. આ પ્રકારે દ્વિપ્રદેશી સ્કંધ રૂપ અવસ્થાનો

यदा च तदेव विघटितं स्वतन्त्रं परमाणुभिरनन्तैर्द्व्यणुकत्र्यणुक यावदनन्ताणुकस्कन्धैः सह क्रमेण संयोगमासाद्य प्रत्येकस्मिन् स्कन्धेऽसकृदुत्कृष्टां स्थितिमनुभूय कालस्यानन्त्यात्पुनरपि तथैव द्व्यणुकस्कन्धतया परिणतं भवति, तदाऽवक्तव्यकद्रव्यत्वं प्रतिपद्यते। इत्थं वियोगानन्तरं पूर्वस्वरूपप्राप्तौ अनन्तकालः प्राप्यते,

गये-इस प्रकार वही प्रथम स्कंध बन गया। इस प्रकार द्विप्रदेशी स्कंध अवस्था विघटित होने से पुनः वही द्विप्रदेशी स्कंध बनने के बीच में यह अवक्तव्यक द्रव्य का एक समय का अन्तर जघन्य जानना चाहिये। तथा जब वही द्विप्रदेशी स्कंध विघटित होते ही दो परमाणु रूप में आजाता है और वे परमाणु स्वतंत्र रूप से अनंत परमाणुओं के साथ अनंत द्वयणुकों, त्र्यणुकों यावत् अनन्ताणुक स्कंधों के साथ क्रमर से संयोग को प्राप्त करके, जब प्रत्येक स्कंध में बार २ अपनी उत्कृष्ट स्थिति को समाप्त कर देते हैं तो इस प्रकार काल की अनंतता के बाद जब वे अपनी उसी पूर्व अवस्था रूप द्विप्रदेशिक स्कंध रूप में परिणत हो जाते हैं, तो इसके बीच में यह अनंत काल का उत्कृष्ट समय निकल आता है। नाना अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा काल का अंतर नहीं है ऐसा जो कहा गया है उसका भाव यह है कि लोक में ऐसा

પરિત્યાગ કરીને-દ્વિપ્રદેશી સ્કંધ રૂપ અવસ્થામાંથી વિઘટિત થઇને ફરીથી એજ દ્વિપ્રદેશી સ્કંધ રૂપ અવસ્થા પ્રાપ્ત કરવામાં એક સમયપ્રમાણ કાળનું જઘન્ય અંતર પડે છે. તેથી જ અવકતવ્યક દ્રવ્ય રૂપ અવસ્થા પુનઃ પ્રાપ્ત કરવામાં તેને ઓછામાં ઓછો એક સમય લાગતો હોવાથી જઘન્ય અંતર એક સમયનું કહ્યું છે.

ઉત્કૃષ્ટની અપેક્ષાએ તે અંતર અનંતકાળનું કેવી રીતે થાય છે? તે હવે સ્પષ્ટ કરવામાં આવે છે-

એજ દ્વિપ્રદેશી સ્કંધ વિઘટિત થઈને બે પરમાણુ રૂપ બની જાય છે તે બન્ને પરમાણુ સ્વતંત્ર રૂપે અનંત પરમાણુઓની સાથે અનંત દ્વયણુક સ્કંધો, ત્રિઅણુક સ્કંધો આદિ અનંત અણુક પર્યન્તના સ્કંધો સાથે ક્રમે ક્રમે સંયોગ પ્રાપ્ત કરીને જ્યારે પ્રત્યેક સ્કંધમાં વારંવાર પોતાની ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ સમાપ્ત કરી નાખે છે, અને આ રીતે અનંત કાળ બાદ જ્યારે તે પોતાની એજ પૂર્વ અવસ્થા રૂપ દ્વિપ્રદેશિક સ્કંધ રૂપે પરિણત થઇ જાય છે, તો આમ થવામાં અનંત કાળનો ઉત્કૃષ્ટ સમય વ્યતીત થઈ જાય છે આ રીતે ઉત્કૃષ્ટ અંતર (વિરહકાળ) અનંત કાળનો થાય છે.

अत उत्कृष्टतोऽनन्तं कालमन्तरं भवति। नानाद्रव्याण्याश्रित्य पूर्वोक्तवदेवान्तरं न भवतीति ॥सू० ८७॥

अथ सप्तमं भागद्वारमाह-

मूलम्-णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं सेसदव्वाणं कइभागे होज्जा? किं संखिज्जइभागे होज्जा? असंखिज्जइभागे होज्जा? संखेज्जेसु भागेसु होज्जा? असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा? नो संखिज्जइभागे होज्जा, नो असंखिज्जइभागे होज्जा, नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा, नियमा असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा। णेगमववहाराणं अणाणुपुव्वी दव्वाइं सेसदव्वाणं कइभागे होज्जा? किं संखिज्जइभागे होज्जा? असंखिज्जइभागे होज्जा? संखेज्जेसु भागेसु होज्जा? असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा? नो संखेज्जइभागे होज्जा, असंखेज्जइभागे होज्जा, नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा, नो असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा। एवं अवत्तव्वगदव्वाणि वि भाणियव्वाणि ॥सू० ८८॥

छाया-नैगमव्यवहारयोरानुपूर्वीद्रव्याणि शेषद्रव्याणां कियद्भागे भवन्ति?

कोई सा भी समय नहीं है कि जिसमें कोई न कोई अवक्तव्यक द्रव्य की सत्ता न बनी रहती हो। ॥ सू० ८७ ॥

अब सप्तम भाग नामक द्वार का सूत्रकार कथन करते हैं-

"णेगमववहाराणं" इत्यादि।

शब्दार्थ-(णेगमववहाराणं) नैगमव्यवहारनय संमत समस्त आनु-

"विविध अवक्तव्यक द्रव्योंकी अपेक्षाએ કાળનું અંતર નથી," આ કથનનો ભાવાર્થ એવો છે કે લોકમાં એવો કોઈ પણ સમય હોતો નથી કે જ્યારે લોકમાં કોઇને કોઇ અવક્તવ્યક દ્રવ્ય વિદ્યમાન ન હોય એટલે કે કોઇને કોઈ અવક્તવ્ય દ્રવ્ય તો લોકમાં સર્વદા વિદ્યમાન હોય છે જ. ॥સૂ૦૮૭॥

હવે સૂત્રકાર અનુગમના ભાગદ્વાર નામના સાતમાં ભેદનું નિરૂપણ કરે છે.

"णेगमववहाराणं" इत्यादि—

શબ્દાર્થ-(णेगमववहाराणं) નૈગમ અને વ્યવહાર નયસંમત સમસ્ત

किं संख्येयतमभागे भवन्ति ? असंख्येयतमभागे भवन्ति ? संख्येयेषु भागेषु भवन्ति ? असंख्येयेषु भागेषु भवन्ति ? नो संख्येयतमभागे भवन्ति, नो असंख्येयतमभागे भवन्ति, नो संख्येयेषु भागेषु भवन्ति, नियमात् असंख्येयेषु भागेषु भवन्ति । नैगमव्यवहारयोरनानुपूर्वी द्रव्याणि शेषद्रव्याणां कियद्भागे भवन्ति ? किं संख्येयतमभागे भवन्ति ? असंख्येयतमभागे भवन्ति ? संख्येयेषु भागेषु

पूर्वी द्रव्य (सेसदव्वाणं) शेष द्रव्यों में (कइभागे) कितने भाग में (होज्जा) है । (किं) क्या (संखेज्जइ भागे होज्जा) संख्यातवें भाग में हैं ? (संखेज्जेसु भागेसु होज्जा) अथवा संख्यात भागो में हैं ? अथवा (असंखिज्जइ भागे होज्जा) या असंख्यातवें भाग में हैं (असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा) या संख्यात भागो में हैं ? (नो संखिज्जइभागे होज्जा नो असंखिज्जइभागे होज्जा) न संख्यातवें भाग में हैं न असंख्यातवें भाग में हैं (नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा) और न संख्यात भागों में हैं, किन्तु (नियमा) नियम से वे (असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा) असंख्यात भागों में हैं । (णेगमववहाराणं अणाणुपुव्वी दव्वाइं) नैगम व्यवहारनय संमत समस्त अनानुपूर्वी द्रव्य (सेसदव्वाणं कइभागे होज्जा) शेष द्रव्यों की कितने भाग में हैं ? (किं) क्या (संखिज्जइ भागे होज्जा) संख्यातवें भाग में हैं ?

આનુપૂર્વી દ્રવ્ય (सेसदव्वाणं) બાકીના દ્રવ્યોના (कइभागे होज्जा ?) કેટલા ભાગમાં છે ? (किं संखेज्जइभागे होज्जा ?) શું સંખ્યાતમાં ભાગમાં છે ? (असंखेज्जइ भागे होज्जा) કે અસંખ્યાતમાં ભાગમાં છે ? (संखेज्जेसु भागेसु होज्जा) કે સંખ્યાત ભાગોમાં છે ? (असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा ?) કે અસંખ્યાત ભાગોમાં છે ?

ઉત્તર-(नो संखिज्जइभागे होज्जा, नो असंखिज्जइभागे होज्जा, नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा) સમસ્ત આનુપૂર્વી દ્રવ્ય બાકીના દ્રવ્યોના સંખ્યાતમાં ભાગમાં પણ હોતું નથી, અસંખ્યાતમાં ભાગમાં પણ હોતું નથી, સંખ્યાત ભાગોમાં પણ હોતું નથી, પરન્તુ (नियमा असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा) નિયમથી જ તે સમસ્ત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો બાકીના દ્રવ્યોના અસંખ્યાત ભાગોમાં હોય છે.

(णेगमववहाराणं अणाणुपुव्वी दव्वाइं) નૈગમ અને વ્યવહાર નયસંમત સમસ્ત અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય (सेसदव्वाणं कइभागे होज्जा ?) બાકીના દ્રવ્યોના કેટલામાં ભાગનું હોય છે ? (किं संखिज्जइभागे होज्जा) શું સંખ્યાતમાં ભાગમાં હોય છે ? (असंखिज्जइभागे होज्जा) કે અસંખ્યાતમાં

भवन्ति ? असंख्येयेषु भागेषु भवन्ति ? नो संख्येयतमभागे भवन्ति, असंख्येयतमभागे भवन्ति, नो संख्येयेषु भागेषु भवन्ति, नो असंख्येयेषु भागेषु भवन्ति। एवमवक्तव्यकद्रव्याण्यपि भणितव्यानि ॥सू० ८८॥

टीका—' नेगमववहाराणं ' इत्यादि–

नैगमव्यवहारसम्मतानि आनुपूर्वीद्रव्याणि=त्र्यणुकस्कन्धमारभ्यानन्ताणुकस्कन्धपर्यन्तानि सर्वाण्यपि आनुपूर्वीद्रव्याणि शेषद्रव्याणाम्=अनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्यलक्षणानां कियति भागे भवन्ति ? किं संख्येयतमभागे भवन्ति, यथा–अस-

---

या(असंखिज्जइभागे होज्जा)असंख्यातवें भाग में हैं ? या (संखेज्जेसु भागेसु होज्जा) संख्यात भागों में हैं ? या (असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा) असंख्यात भागों में हैं !

उत्तर– (नो संखेज्जइभागे होज्जा) संख्यातवें भाग में नहीं है–(असंखेज्जइभागे होज्जा) किन्तु असंख्यातवें भाग में हैं। (नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा नो असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा) संख्यात भागों में नहीं हैं ' और न असंख्यात भागों में हैं। (एवं अवत्तव्वगदव्वाणि वि भाणियव्वाइं) इसी प्रकार से अवक्तव्यक द्रव्यों के विषय में भी ऐसा ही कथन जानना चाहिये

भावार्थ –त्र्यणुक स्कंध आदि से लेकर अनन्त परमाणु स्कंध पर्यन्त जितने भी स्कंध हैं वे सब आनुपूर्वीद्रव्य हैं। अनंत एक २ परमाणु और अनंत द्वयणुक स्कंध क्रमशः अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्य हैं। पूछने वाले का यह अभिप्राय है कि आनुपूर्वी द्रव्य अनानुपूर्वी और

ભાગમાં હોય છે ? (संखिज्जेसु भागेसु होज्जा) કે સંખ્યાત ભાગોમાં હોય છે? (असंखिज्जेसु भागेसु होज्जा) કે અસંખ્યાત ભાગોમાં હોય છે ?

ઉત્તર–(नो संखिज्जइ भागे होज्जा, असंखेज्जइ भागे होज्जा) સંખ્યાતમાં ભાગમાં નથી, પણ અસંખ્યાતમાં ભાગમાં છે, (नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा, नो असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा) સંખ્યાત ભાગોમાં પણ નથી અને અસંખ્યાત ભાગોમાં પણ નથી. (एवं अवत्तव्वगदव्वाणि वि भाणियव्वाइं) અવક્તવ્યક દ્રવ્યોના વિષયમાં પણ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોના જેવું જ કથન અહીં ગ્રહણ કરવું જોઈએ.

ભાવાર્થ–ત્રણથી લઇને અનંત પરમાણુવાળા જેટલા સ્કંધો છે, તેમને આનુપૂર્વી દ્રવ્યો કહે છે જે અનંત એક એક સ્વતંત્ર પરમાણુ છે તેમને અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય કહે છે. બે પરમાણુવાળા જે અનંત સ્કંધો છે તેમને અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યો કહે છે આ સૂત્રમાં પ્રશ્નકર્તા એ પ્રશ્ન પૂછે છે કે આનુપૂર્વી

त्कल्पनया शतस्य विंशतिमिताः?, किमसंख्यातमे भागे भवन्ति, यथा शतस्यैव दश?, किं संख्येयेषु भागेषु भवन्ति, यथा शतस्यैव चत्वारिंशत् षष्टिर्वा?, किमसंख्येयेषु भागेषु भवन्ति, यथा शतस्यैव अशीतिः?, इति प्रश्नः। उत्तरमाह—आनुपूर्वीद्रव्याणि अनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्यापेक्षया हीनानि न भवन्ति, प्रत्युत अधिकान्येव भवन्ति, अधिकत्वं चाप्येषां नो संख्येयतमभागेन, नो असंख्येयतमभागेन, नापि संख्येयैर्भागैः, अपि तु असंख्येयैर्भागैरधिकानि भवन्तीति बोध्यम्,

---

अवक्तव्यक द्रव्यों से अधिक हैं या कम ? तब सिद्धान्तकारों ने इसका उत्तर अधिक रूप में दिया है। तब पुनः शंकाकार ने पूछा कि यदि ये शेष द्रव्यों की अपेक्षा अधिक हैं, तो उनके किस भाग से अधिक हैं। क्या संख्यातवें भाग से अधिक हैं ? या असंख्यातवें भाग से अधिक हैं ? या संख्यात असंख्यात भागों से अधिक हैं ? तब सूत्रकार ने उसे समझाया कि ये शेष द्रव्यों के असंख्यात भागों से ही अधिक हैं इतर तीन भागों से नहीं। क्योंकि ये आनुपूर्वीद्रव्य अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा हीन नहीं हैं। किन्तु अधिक ही हैं। यह अधिकता इनमें शेष द्रव्यों के संख्यातवें असंख्यातवें एवं संख्यात भागों से मानी गई है। इसका तात्पर्य यह है कि सब आनुपूर्वी-द्रव्य अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा असंख्यात

દ્રવ્ય, અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય અને અવક્તવ્યક દ્રવ્ય કરતાં અધિક પ્રમાણમાં છે કે અલ્પપ્રમાણમાં છે? ત્યારે તેના ઉત્તર રૂપે સિદ્ધાંતકારોએ કહ્યું છે કે આનુપૂર્વી દ્રવ્ય, અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક દ્રવ્ય કરતાં અધિક પ્રમાણમાં છે.

વળી પ્રશ્નકર્તા એવો પ્રશ્ન કરે છે કે જો તે આનુપૂર્વી દ્રવ્ય બાકીના દ્રવ્યો કરતાં અધિક છે, તો કેટલામાં ભાગ જેટલું અધિક છે? શું સંખ્યાતમાં ભાગ જેટલું અધિક છે? કે સંખ્યાત ભાગો જેટલું અધિક છે? કે અસંખ્યાત ભાગો જેટલું અધિક છે?

ત્યારે સૂત્રકારે તેનો એવો ઉત્તર આપ્યો છે કે આનુપૂર્વી દ્રવ્ય બાકીના દ્રવ્યોના અસંખ્યાત ભાગો પ્રમાણ જ અધિક છે, સંખ્યાતમાં ભાગ પ્રમાણ અધિક નથી, કારણ કે તે આનુપૂર્વી દ્રવ્યો, અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યો કરતાં ન્યૂન પ્રમાણમાં હોતાં નથી—પણ અધિક પ્રમાણમાં જ હોય છે તે આનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાં આ અધિકતા બાકીના દ્રવ્યોના સંખ્યાતમાં ભાગપ્રમાણ પણ કહી નથી, અસંખ્યાતમાં ભાગપ્રમાણ પણ કહી નથી, સંખ્યાત ભાગોપ્રમાણ પણ કહી નથી, પરંતુ અસંખ્યાત ભાગો પ્રમાણ જ

अयं भावः—आनुपूर्वीद्रव्याणि शेषद्रव्यापेक्षया असंख्येयगुणानि सन्ति, यथा शतस्याऽशीतिः। आनुपूर्वीद्रव्याणि, अनानुपूर्वीद्रव्याणि, अवक्तव्यकद्रव्याणि, एतत्त्रयमसत्कल्पनया शतस्वरूपं, तत्राऽऽनुपूर्वीद्रव्याणि-अशीतिसंख्यातुल्यानि, शेषद्रव्याणि=अनानुपूर्व्यवक्तव्यकरूपाणि प्रत्येकं दश-दश गणनया विंशतिसंख्यातुल्यानीति।

ननु शेषद्रव्यापेक्षयाऽऽनुपूर्वीद्रव्याणि स्तोकान्यपि भवन्तु, का हानिः? इति चेदुच्यते-अनानुपूर्वीद्रव्याणि परमाणुरूपाण्येव, अवक्तव्यकद्रव्याणि तु द्व्यणुक-

---

गुणे-अधिक-है। जैसे मान लिया जावे कि ये तीनों द्रव्य १००, संख्या के स्थानापन्न हैं। इनमें अस्सी संख्या के तुल्य आनुपूर्वी द्रव्य हैं। और शेष संख्या २०, बीस के तुल्य अर्थात् १०-१० दस संख्या के बराबर-अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्य हैं। शेष द्रव्यों के संख्यातवें असंख्यातवें भाग से अथवा संख्यात भागों की अपेक्षा आनुपूर्वी द्रव्यों को अधिक मानने पर उनमें असंख्यात गुणी अधिकता नहीं आसकने से हीनता आती है।

शंका-यदि शेष द्रव्यों की अपेक्षा समस्त आनुपूर्वी द्रव्यस्तोक-अल्प कम भी मानलिये जावें तो इसमे क्या हानि है?

કહી છે એટલે કે સમસ્ત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યો કરતાં અસંખ્યાત ગણાં વધારે છે. ધારો કે આ ત્રણે દ્રવ્યો મળીને ૧૦૦નું પ્રમાણ થાય છે, તેમાંથી ૮૦ ભાગ પ્રમાણ આનુપૂર્વી દ્રવ્યો હોય અને ૧૦-૧૦ ભાગ પ્રમાણ અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યો હોય તો બાકીના દ્રવ્યો ૨૦ ભાગપ્રમાણ હોવાથી તેમના કરતાં આનુપૂર્વી દ્રવ્ય ચાર ગણું હોવાથી તેમાં અસંખ્યાતગણી અધિકતા ગણી શકાય નહીં પરન્તુ સૂત્રકારે તેમાં અસંખ્યાતગણી અધિકતા કહી છે તેથી આ પ્રકારનું કથન કરવામાં અસંખ્યાત ગણી અધિકતા નહીં આવી શકવાને કારણે હીનતા આવી જાય છે. કારણ કે આનુપૂર્વી દ્રવ્યોને બાકીના દ્રવ્યો કરતાં સંખ્યાતમાં ભાગપ્રમાણ પણ કહ્યા નથી, અસંખ્યાતમાં ભાગપ્રમાણ પણ કહ્યા નથી, સંખ્યાત ભાગોપ્રમાણ (સંખ્યાત ગણાં) પણ કહ્યાં નથી, પણ અસંખ્યાત ભાગોપ્રમાણ (અસંખ્યાત ગણાં જ) કહ્યાં છે.

શંકા-જો બાકીનાં દ્રવ્યો કરતાં સમસ્ત આનુપૂર્વી દ્રવ્યને અલ્પ માનવામાં આવે તો તેમાં શી હરકત છે?

णाण्येव, आनुपूर्वीद्रव्याणि तु त्र्यणुकचतुरणुकप्रभृत्यनन्ताणुकपर्यन्तानि, अतः शेषद्रव्यापेक्षयाऽऽनुपूर्वीद्रव्याणि असंख्येयभागैरधिकानि बोध्यानि। उक्तं चाषि–

"एएसि णं भंते ! परमाणुपोग्गलाणं संखेज्जपएसियाणं असंखेज्जपएसियाणं अणंतपएसियाणं अणंतपएसियाण य खंधाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ? गोयमा ! सव्वत्थो वा अणंतपएसिया खंधा, परमाणुपोग्गला अणंतगुणा, संखेज्जपएसिया खंधा संखेज्जगुणा, असंखेज्जपएसिया खंधा असंखेज्जगुणा"

छाया-एतेषां खलु भदन्त ! परमाणुपुद्गलानां संख्येयप्रदेशिकानाम् असंख्येयप्रदेशिकानाम् अनन्तप्रदेशिकानां च स्कन्धानां के केभ्योऽल्पा वा बहुका वा तुल्या वा विशेषाधिका वा ?, गौतम! सर्वस्तोका अनन्तप्रदेशिकाः स्कन्धाः,

---

उत्तर–अनानुपूर्वी द्रव्य परमाणुरूप ही है और अवक्तव्यक द्रव्य द्व्यणुक रूप ही है। तथा आनुपूर्वी द्रव्य त्र्यणुक आदि स्कंध से लेकर अनन्ताणुक स्कंध पर्यन्त है—इसलिये ये आनुपूर्वी द्रव्य शेष द्रव्यों की अपेक्षा असंख्यातभागों से अधिक है ऐसा जानना चाहिये। अन्यत्र भी इसी बात को यों कहा है–हे भदन्त ! परमाणु रूप पुद्गलों में संख्यात प्रदेश वाले स्कंधों में, असंख्यात प्रदेश वालेस्कंधों में और अनन्त प्रदेश वाले स्कंधों में कौन किनसे अल्प है ? कौन किनसे–बहुत है ? कौन किनसे तुल्य है ? अथवा कौन किनसे विशेष अधिक है ?

उत्तर–हे गौतम सबसे कम अनंतप्रदेशी स्कंध है, परमाणु पुद्गल इनसे अनंत गुणित है संख्यात प्रदेशी स्कंध संख्यात गुणित है।

ઉત્તર–અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય પરમાણુ રૂપ જ છે અને અવક્તવ્યક દ્રવ્ય દ્વયણુક સ્કંધ રૂપ જ છે પરંતુ આનુપૂર્વી દ્રવ્ય ત્રિઅણુક, આદિ અનંત અણુક પર્યન્તના સ્કંધ રૂપ છે. તે કારણે તે આનુપૂર્વી દ્રવ્ય બાકીના દ્રવ્યો કરતાં અસંખ્યાત ગણું વધારે હોય છે, તે કારણે તેને બાકીના દ્રવ્યો કરતાં અલ્પ કહી શકાય નહીં વળી અન્યત્ર પણ એવું જ કહ્યું છે કે–" હે ભગવન્ ! પરમાણુરૂપ પુદ્ગલો, સંખ્યાત પ્રદેશોવાળા સ્કંધો, અસંખ્યાત પ્રદેશોવાળા સ્કંધો અને અનંત પ્રદેશોવાળા સ્કંધોમાં કોણ કોનાથી અલ્પ છે, કોણ કોનાથી અધિક છે, કોણ કોની બરાબર છે અને કોણ કોના કરતાં વિશેષાધિક છે ?

ઉત્તર–હે ગૌતમ ! અનંતપ્રદેશી સ્કંધ સૌથી અલ્પપ્રમાણમાં છે, પરમાણુપુદ્ગલ તેમનાં કરતાં અનંત ગણાં છે, સંખ્યાત પ્રદેશી સ્કંધ

परमाणुपुद्गला अनन्तगुणाः, संख्येयप्रदेशिकाः स्कन्धाः संख्येयगुणाः, असंख्येयप्रदेशिकाः स्कन्धा असंख्येयगुणाः, इति।

अत्र सूत्रे सर्वस्या अपि पुद्गलजातेरपेक्षयाऽसंख्यातप्रदेशिकाः स्कन्धा असंख्यातगुणा उक्ताः। असंख्यातप्रदेशिकाः स्कन्धास्तु आनुपूर्व्यामेवान्तर्भवन्ति, अतस्तदपेक्षया आनुपूर्वीद्रव्याणि शेषसमस्तद्रव्येभ्योऽपि असंख्यातगुणानि किं पुनरनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्यमात्रात्। 'अधिकानी'ति अर्थस्वारस्यादाक्षिप्यते।

तथा–नैगमव्यवहारसम्मतानि अनानुपूर्वीद्रव्याणि=परमाणुरूपाणि द्रव्याणि शेषद्रव्याणाम्=आनुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्याणामपेक्षया कियतिभागे भवन्ति? किं संख्येयेषु भागेषु भवन्ति? किमसंख्येयेषु भागेषु भवन्ति? इति प्रश्नः। उत्तरयति–नो संख्येयतमभागे भवन्ति, किंतु असंख्येयतमभागे भवन्ति, नो संख्येयेषु भागेषु भवन्ति, नो असंख्येयेषु भागेषु भवन्ति। अनानुपूर्वीद्रव्याणि–शेषद्रव्याणाम्

और असंख्यात प्रदेशी स्कंध असंख्यात गुणित है। इस सूत्र में समस्त पुद्गल जाति की अपेक्षा से उसके असंख्यात प्रदेशी स्कंध असंख्यात गुणे कहे हैं। सो ये असंख्यात प्रदेशी स्कंध आनुपूर्वी में ही अन्तर्भूत हो जाते हैं। इसलिये इस अपेक्षा से सब आनुपूर्वी द्रव्य शेष समस्त द्रव्यों से भी जब असंख्यात गुणित हैं तो कि अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा से ये असंख्यात गुणे हैं इसमें तो कहना ही क्या है। सूत्र में "अधिक" पद नहीं कहा गया है फिर भी यहां उसका आक्षिप्त अर्थ के अनुसार किया गया है। तथा नैगमव्यवहारनय संमत जो अनानुपूर्वी द्रव्य–परमाणु रूप द्रव्य हैं वे आनुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा से उनके असंख्यातवें

અસંખ્યાત ગણું છે. અને અસંખ્યાત પ્રદેશી સ્કંધ અસંખ્યાતગણુ છે. આ સૂત્રમાં સમસ્ત પુદ્ગલ જાતિની અપેક્ષાએ તેના અસંખ્યાત પ્રદેશી સ્કંધો અસંખ્યાત ગણું કહ્યા છે. તે અસંખ્યાત પ્રદેશી સ્કંધોનો આનુપૂર્વીમાં જ સમાવેશ થઈ જાય છે આ રીતે વિચાર કરતાં, બે સમસ્ત આનુપૂર્વી દ્રવ્ય બાકીના સમસ્ત દ્રવ્યો કરતાં પણ અસંખ્યાત ગણું છે, તો અનાનુપૂર્વી અને અવકતવ્યક દ્રવ્યો કરતાં તો તે અસંખ્યાત ગણું હોય એમાં શંકા કરવા જેવું જ નથી. સૂત્રમાં "અધિક" પદ વાપર્યું નથી, છતાં પણ અહીં તેના અર્થનો સ્પષ્ટ ખ્યાલ આપવા માટે તે પદનો પ્રયોગ કર્યો છે.

તથા નૈગમ અને વ્યવહાર નયસંમત જે અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય (પરમાણુ દ્રવ્ય) છે તે આનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યો કરતાં અસંખ્યાતમાં ભાગપ્રમાણ છે. તે બાકીના દ્રવ્યોના સંખ્યાતમાં ભાગપ્રમાણ નથી, સંખ્યાત

असंख्येयतममागे भवन्ति-सन्ति, न तु शेषभागेषु त्रिषु। अमत्कल्पनया यथा शतस्य दश, भवन्ति। न तु शेषेषु त्रिषु भागेषु भवन्ति। तदेवाह-'एवं अवत्तव्वग-दव्वाणि वि' इति। एवमवक्तव्यकद्रव्याण्यपि भणितव्यानि=अवक्तव्यकद्रव्याण्यपि अनानुपूर्वीवदेव शतस्य दशवद् विज्ञेयानि ॥सू० ८८॥

अथाष्टमं भावद्वारमाह—

मूलम्-णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कतरम्मि भावे होज्जा? किं उदइए भावे होज्जा? उवसमिए भावे होज्जा? खइए भावे होज्जा? खओवसमिए भावे होज्जा पारिणामिए भावे होज्जा? संनिवाइए भावे होज्जा? णियमा साइपारि-णामिए भावे होज्जा। अणाणुपुव्वीदव्वाणि अवत्तव्वगदव्वाणि य एवं चेव भाणियव्वाणि ॥सू०८९॥

छाया—नैगमव्यवहारयोरानुपूर्वीद्रव्याणि कतमस्मिन् भावे भवन्ति? किमौद-यिके भावे भवन्ति? औपशमिके भावे भवन्ति? क्षायिके भावे भवन्ति?

भाग हैं। शेष तीन भागों से अधिक नहीं हैं। जैसे मान लिया जावे कि ये तीनों द्रव्य १००संख्यात रूप में हैं-इनमें शेष द्रव्यों की अपेक्षा से आनुपूर्वी द्रव्य ८०' और अनानुपूर्वीद्रव्य १०, दश हैं। इसी प्रकार अवक्तव्यक द्रव्य भी आनुपूर्वी और अनानुपूर्वी द्रव्य की अपेक्षा सौ के दश की तरह उनके असंख्यातवें भाग जानना चाहिये शेष तीन भागों से नहीं। ॥ सू०८८ ॥

ગણું પણ નથી અને અસંખ્યાત ગણું પણ નથી. ધારો કે આનુપૂર્વી, અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક, આ ત્રણે દ્રવ્યો મળીને ૧૦૦ સો ની સંખ્યા રૂપે છે. તેમાં બાકીના દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ આનુપૂર્વી દ્રવ્ય ૮૦ અને અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય દશની સંખ્યા રૂપ છે એજ પ્રમાણે અવક્તવ્યક દ્રવ્ય પણ આનુપૂર્વી અને અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ ૧૦માંથી ૧૦૦ ની જેમ તેમના અસં-ખ્યાતમાં ભાગરૂપ જ સમજવું તેને તેમના સંખ્યાતમાં ભાગરૂપ અથવા તેમના કરતાં સંખ્યાત ગણું કે અસંખ્યાત ગણું સમજવું જોઈએ નહીં. ॥સૂ૦૮૮॥

क्षायोपशमिके भावे भवन्ति? पारिणामिके भावे भवन्ति? सान्निपातिके भावे भवन्ति? नियमात् सादि पारिणामिके भावे भवन्ति। अनानुपूर्वीद्रव्याणि अवक्तव्यकद्रव्याणि च एवमेव भणितव्यानि ॥सू० ८९॥

अब सूत्रकार अष्टम जो भावद्वार है–उसका कथन करते हैं–

"णेगमववहाराणं" इत्यादि

शब्दार्थ–(णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कतरम्मि भावे होज्जा)

प्रश्न–नैगमव्यवहारनय संमत समस्त आनुपूर्वी द्रव्य किस भाव में वर्तते हैं? (किं उदइए भावे होज्जा?) क्या औदयिक भाव में वर्तते हैं? (उवसमिये भावे होज्जा) या औपशमिक भाव में वर्तते हैं? (खइए भावे होज्जा?) या क्षायिक भाव में वर्तते हैं? (खओवसमिये भावे होज्जा?) या क्षायोपशमिक भाव में वर्तते हैं? (पारिणामिए भावे होज्जा) या पारिमाणिक भाव में वर्तते हैं? (संनिवाइए भावे होज्जा) या सान्निपातिक भाव में वर्तते हैं? (णियमा साइ परिणामिए भावे होज्जा)

समस्त आनुपूर्वी द्रव्य नियम से सादि पारिणामिक भाव में वर्तते हैं। द्रव्य का उस-उस रूपसे जो परिणमन होता है उसका नाम परिणाम है। इस परिणाम का नाम ही पारिणामिक है। अथवा परिणाम होता हो या परिणाम से जो बनता हो उसका नाम पारिणामिक है।

હવે સૂત્રકાર અનુગમના આઠમાં ભેદ રૂપ ભાવદ્વારનું કથન કરે છે–

"णेगमववहाराणं" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ–(णेगमववहाराणं आणुपुव्वी दव्वाइं कतरम्मि भावे होज्जा?) પ્રશ્ન–નૈગમ અને વ્યવહાર નયસંમત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો કયા ભાવમાં રહે છે? (किं उदइए भावे होज्जा) શું ઔદયિક ભાવમાં રહે છે? (उवसमिए भावे होज्जा?) કે ઔપશમિક ભાવમાં રહે છે? (खइए भावे होज्जा?) કે ક્ષાયિક ભાવમાં હોય છે? (खओवसमिए भावे होज्जा?) કે ક્ષાયોપશમિક ભાવમાં હોય છે? (पारिणामिए भावे होज्जा?) કે પારિણામિક ભાવમાં હોય છે? (संनिवाइए भावे होज्जा?) કે સાન્નિપાતિક ભાવમાં હોય છે?

ઉત્તર–(णियमा साइपरिणामिए भावे होज्जा) સમસ્ત આનુપૂર્વી દ્રવ્ય નિયમથી જ સાદિપારિણામિક ભાવમાં રહે છે દ્રવ્યનું તે તે રૂપે જે પરિણમન થાય છે તેનું નામ પરિણામ છે એ પરિણામનું નામ જ પારિણામિક

यह परिणाम दो प्रकार का होता है–एक सादि और दूसरा अनादि। धर्मास्तिकाय आदि जो अरूपी द्रव्य हैं उसका जो उस–उस रूप से स्वाभाविक परिणमन है वह अनादि परिणाम है। क्यों कि अनादि काल से ही इन द्रव्यों का परिणमन इसी रूप से होता चला आरहाहै। तात्पर्य कहने का यह है कि इन द्रव्यों का जो स्वाभाविक स्वरूप परिणमन हैं वही अनादि परिणाम है। परन्तु जो रूपी द्रव्य–पुद्गल द्रव्य है उनका उस उस प्रकार का जो 'परिणमन होता है वह सादि परिणाम है। क्योंकि अभ्र, इन्द्रधनुष आदि पौद्गलिक द्रव्यों के उस उस प्रकार के परिणमन में अनादिता होती है। इसलिये समस्त आनुपूर्वी द्रव्य सादि पारिणामिक भाव में वर्तते हैं। अर्थात् आनुपूर्वी द्रव्यों में जो आनुपूर्वी रूप विशिष्ट परिणाम है वह अनादि कालीन नहीं है। कारण–पुद्गलों का जो एक विशिष्ट रूप से परिणाम होता है वह उत्कृष्ट की अपेक्षा असंख्यात कालतक ही स्थायी माना गया है। इसी प्रकार से समस्त आनुपूर्वी द्रव्य और समस्त अवक्तव्य भी सादि परिणामिक भाव में ही रहते हैं। औदयिक भावों की व्याख्या आगे की जावेगी इसलिये यहां नहीं की गई है।

છે. તે પરિણામ બે પ્રકારનું હોય છે–(૧) સાદિ પરિણામ, (૨) અનાદિ પરિણામ ધર્માસ્તિકાય આદિ જે અરૂપી દ્રવ્યો છે તેમનું તે તે રૂપે જે સ્વાભાવિક પરિણમન થાય છે તેનું નામ અનાદિ પરિણામ છે, કારણ કે અનાદિ કાળથી જ તે દ્રવ્યોનું આ રૂપે પરિણમન થતું આવે છે. આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે આ દ્રવ્યોનું જે સ્વાભાવિક સ્વરૂપ પરિણમન છે, એજ અનાદિ પરિણામ છે. પરંતુ જે રૂપી દ્રવ્ય (પુદ્ગલ દ્રવ્ય) છે તેમનું તે તે પ્રકારનું જે પરિણમન થાય છે તે સાદિ પરિણામ છે, કારણ કે વાદળાં, મેઘધનુષ આદિ પૌદ્ગલિક દ્રવ્યોના તે તે પ્રકારના પરિણમનમાં અનાદિતા હોતી નથી તેથી એવું કહેવામાં આવ્યું છે કે સમસ્ત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો સાદિપરિણામિક ભાવમાં રહે છે. એટલે કે આનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાં જે આનુપૂર્વી રૂપ વિશિષ્ટ પરિણામ છે તે અનાદિ કાલિન નથી કારણ કે પુદ્ગલોનું જે એક વિશિષ્ટ રૂપે પરિણમન થાય છે તે વધારેમાં વધારે અસંખ્યાત કાળ સુધી જ સ્થાયી રહે છે, એમ માનવામાં આવે છે. એજ પ્રમાણે સમસ્ત અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય અને સમસ્ત અવક્તવ્યક દ્રવ્ય પણ સાદિપરિણામિક ભાવમાં જ રહે છે ઔદયિક આદિ ભાવોનું સ્પષ્ટીકરણ આગળ કરવામાં આવશે.

टीका—'णेगमववहाराणं' इत्यादि-

नैगमव्यवहारसम्मतानि आनुपूर्वीद्रव्याणि कतमस्मिन् भावे भवन्ति? इति सामान्यतः पृष्ट्वा विशेषतः पृच्छति-किमौदयिके भावे भवन्ति? किमौपशमिके भावे भवन्ति? क्षायिके भावे भवन्ति क्षायोपशमिके भावे भवन्ति? पारिणामिके भावे भवन्ति?, सान्निपातिके भावे भवन्ति? इति उत्तरमाह-नियमात्=अवश्यतया-आनुपूर्वीद्रव्याणि सादिपारिणामिके-भावे-भवन्ति। तत्र-परिणमनं द्रव्यस्य तेन तेन रूपेण भवनं परिणामः, स एव पारिणामिकः, परिणामे भवः, परिणामेन निर्वृत्त इति वा पारिणामिकः। स च द्विविधः-सादिरनादिश्च तत्र-धर्मास्तिकायादरूपिद्रव्याणामनादिः परिणामः। अनादिकालात् तत्तद्रव्यत्वेन तेषां परिणतत्वात्। रूपिद्रव्याणां तु सादिः परिणामः, अभ्रेन्द्रधनुरादीनां तथा परिणामस्यानादित्वाभावात्। सादिश्चासौ पारिणामिकश्च सादि पारि-

भावार्थ- आनुपूर्वी आदि द्रव्य कौन से भाव वाले हैं यह यहां प्रश्न किया गया है तब इसका उत्तर सूत्रकार ने यों दिया है कि ये सब आनुपूर्वी आदि पौद्गलिक द्रव्य सादि पारिमाणिक भाव वाले हैं। पारिमाणिक भाव द्रव्य का वह परिणाम है जो सिर्फ द्रव्य के अस्तित्व से आप ही आप हुआ है। औपशमिकभाव कर्मों के उपशम से होता है। जैसे मल के नीचे बैठ जाने पर जलमें स्वच्छता होती है। क्षायिक भाव कर्मों के क्षय से पैदा होता है। जैसे कीचड़ के सर्वथा नष्ट हो जाने पर जल में स्वच्छता आती है। क्षय और उपशम इन दोनों के संबन्ध से जो भाव उत्पन्न होते हैं वे क्षायोपशमिक भाव हैं-जैसे कोदों-कोद्रकमें धोने पर कुछ मादक शक्ति नष्ट हो जाती है और कुछ

ભાવાર્થ-આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્યો કયા ભાવવાળાં હોય છે, એવો અહીં પ્રશ્ન પૂછવામાં આવ્યો છે આ પ્રશ્નનો સૂત્રકારે એવો ઉત્તર આપ્યો છે કે સમસ્ત આનુપૂર્વી આદિ પૌદ્ગલિક દ્રવ્યો સાદિપારિણામિક ભાવવાળાં હોય છે. પારિણામિક ભાવદ્રવ્યનું એ પરિણામ છે કે, જે માત્ર દ્રવ્યના અસ્તિત્વમાં જ આપો આપ થયા કરે છે. ઔપશમિક ભાવ કર્મોના ઉપશમથી ઉત્પન્ન થાય છે. જેમ પાણીમાં રહેલો કચરો નીચે બેસી જઈને પાણી સ્વચ્છ થાય છે એજ પ્રમાણે કર્મોના ઉપશમથી ઔપશમિક ભાવ પેદા થાય છે. કર્મોના ક્ષયથી ક્ષાયિક ભાવ પેદા થાય છે જેમ કાદવનો સર્વથા નાશ થઈ જવાથી પાણી સ્વચ્છ બની જાય છે એજ પ્રમાણે કર્મોનો ક્ષય થવાથી ક્ષાયિક ભાવ ઉત્પન્ન થાય છે. ક્ષય અને ઉપશમ, આ બન્નેના સંબંધથી જે ભાવ ઉત્પન્ન થાય છે તેમને ક્ષાયોપશમિક ભાવ કહે છે. જેમ કોદરાને પાણીમાં ધોવાથી તેની થોડી માદકશક્તિ નષ્ટ થઈ જાય છે અને થોડી

णामिकः, तस्मिन् भावे भवन्ति, आनुपूर्वीद्रव्याणामानुपूर्वीत्वेन परिणामस्यानादित्वाऽसंभवात्, उत्कर्षतो विशिष्टैकपरिणामेन पुद्गलानामसंख्येयकालमेवावस्थानात्। एवमनानुपूर्वीद्रव्याणि अवक्तव्यकद्रव्याणि च सादिपारिणामिके भावे एव भवन्ति। औदयिकादीनां व्याख्याऽत्र न कृता, अग्रे करिष्यमाणत्वात् ॥सू० ८९॥

मूलम्—एएसि णं भंते! णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाणं अणाणुपुव्वीदव्वाणं अवत्तव्वगदव्वाणं य दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा? गोयमा! सव्वत्थोवाइं णेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाइं दव्वट्ठयाए, अणाणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए विसेसाहियाइं, आणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं १। पएसट्ठयाए सव्वत्थोवाइं णेगमववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाइं अपएसट्ठयाए। अवत्तव्वगदव्वाइं पएसट्ठयाए विसेसाहियाइं। आणुपुव्वीदव्वाइं पएसट्ठयाए अणंतगुणाइं २। दव्वट्ठपएसट्ठयाए सव्वत्थोवाइं णेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाइं दव्वट्ठयाए। अणाणुपुव्वीदव्वाइं दव्व-

---

शेष बची रहती है। कर्मों के उदय से होने वाले भाव औदयिक भाव हैं। जैसे कीचड़ के संबन्ध से जलमें मलिनता होती है। पारिणामिक भाव के दो भेद हैं १ एक सादि पारिणामिक भाव और-दूसरा अनदि पारिणामिक भाव। अनादि पारिणामिक भाव धर्मास्तिकायादिक अमूर्त पदार्थों में होता है। और मूर्त पौद्गलिक द्रव्यों में सादि पारिणामिक भाव होता है। ॥ सू० ८९ ॥

બાકી રહી જાય છે એજ પ્રમાણે ક્ષય અને ઉપશમને કારણે પણ કર્મોની સ્થિતિ થાય છે કર્મોના ઉદયથી ઉત્પન્ન થતાં ભાવને ઔદયિક ભાવ કહે છે જેમ કાદવને લીધે પાણી મલિન બને છે, એજ પ્રમાણે કર્મોના ઉદયથી આત્મા પર કર્મોરૂપી મેલ જામે છે પારિણામિક ભાવના નીચે પ્રમાણે બે ભેદ છે-(૧) સાદિ પારિણામિક ભાવનો સદ્ભાવ ધર્માસ્તિકાય આદિ અમૂર્ત દ્રવ્યોમાં હોય છે અને મૂર્ત પૌદ્ગલિક દ્રવ્યોમાં સાદિપારિણામિક ભાવનો સદ્ભાવ હોય છે. ॥સૂ૦૮૯॥

ट्ठयाए अपएसट्ठयाए विसेसाहियाइं। अवत्तव्वगदव्वाइं पएसट्ठयाए विसेसाहियाइं। आणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं, ताइं चेव पएसट्ठयाए अणंतगुणाइं ३। से तं अणुगमे, से तं नेगमववहाराणं अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी ॥सू० ९०॥

छाया—एतेषां खलु भदन्त ! नैगमव्यवहारयोरानुपूर्वीद्रव्याणामनानुपूर्वीद्रव्याणामवक्तव्यकद्रव्याणां च द्रव्यार्थतया प्रदेशार्थतया द्रव्यार्थप्रदेशार्थतया कानि केभ्योऽल्पानि वा बहुकानि वा तुल्यानि वा विशेषाधिकानि वा ? गौतम ! सर्वस्तोकानि नैगमव्यवहारयोरवक्तव्यकद्रव्याणि द्रव्यार्थतया, अनानुपूर्वीद्रव्याणि

अब सूत्रकार नववें अल्प बहुत्व द्वार की प्ररूपणा करते हैं—

"एएसिं णं भंते !" इत्यादि

शब्दार्थ—(भंते ! णेगमववहाराणं एएसिं आणुपुव्वी दव्वाणं अणाणुपुव्वीदव्वाणं अवत्तव्वगदव्वाणं य दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए, दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?) हे भदन्त ! नैगम व्यवहारनय संमत इन आनुपूर्वी द्रव्यों के अनानुपूर्वी द्रव्यों के, और अवक्तव्यक द्रव्यों के बीच में द्रव्यार्थता प्रदेशार्थता और द्रव्यार्थ प्रदेशार्थता की अपेक्षा करके कौन २ द्रव्य किन २ द्रव्यों से अल्प हैं ? कौन २ द्रव्यों से अधिक है ? कौन २ किन-२ के समान हैं ? कौन २ किन २ द्रव्यों से विशेष अधिक हैं ?

હવે સૂત્રકાર નવમાં અલ્પબહુત્વ દ્વારની પ્રરૂપણા કરે છે—

" एएसिं णं भंते ! " ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(भंते ! णेगमववहाराणं एएसिं आणुपुव्वीदव्वाणं अणाणुपुव्वी दव्वाणं अवत्तव्वगदव्वाणं य दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए, दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?) હે ભગવન્ ! નૈગમ અને વ્યવહાર નયસંમત આ આનુપૂર્વી દ્રવ્યો, અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યોની દ્રવ્યાર્થતા, પ્રદેશાર્થતા અને દ્રવ્યાર્થપ્રદેશાર્થતાની અપેક્ષાએ સરખામણી કરવામાં આવે, તો કયા કયા દ્રવ્યો કરતાં ન્યૂન છે ? કયા કયા દ્રવ્યો કયા કયા દ્રવ્યો કરતાં અધિક છે ? કયા કયા દ્રવ્યો કયા કયા દ્રવ્યોની બરાબર છે ? અને કયા કયા દ્રવ્યો કયા કયા દ્રવ્યોથી વિશેષાધિક છે ?

द्रव्यार्थतया विशेषाधिकानि। आनुपूर्वीद्रव्याणि द्रव्यार्थतया असंख्येयगुणानि। प्रदेशार्थतया सर्वस्तोकानि नैगमव्यवहारयोः अनानुपूर्वीद्रव्याणि अप्रदेशार्थतया

उत्तर- (गोयमा दव्वट्ठयाए णेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाइं सव्वत्थोवाइं) हे गौतम ! द्रव्यार्थता की अपेक्षा से नैगम व्यवहारनय संमत अवक्तव्यक द्रव्य सर्वस्तोक हैं—अनानुपूर्वी द्रव्यों से भी अल्प हैं। (अणाणुपुव्वी दव्वाइं दव्वट्ठयाए विसेसाहियाइं) तथा अनानुपूर्वी द्रव्य द्रव्यार्थता की अपेक्षा से विसेषाधिक हैं—अवक्तव्यक द्रव्यों से कुछ अधिक हैं। विसेषाधिकता इनमें वस्तुस्थिति के स्वभाव से है। "तदुक्तम्" इन परमाणु पुद्गलों के और द्विप्रदेशी स्कंधों के बीच में कौन किससे अधिक है? गौतम ! द्विप्रदेशिक स्कंधों से परमाणु पुद्गल अधिक हैं। इस कथन के अनुसार अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा परमाणुरूप पुद्गल अधिक प्रमाणित होते हैं। (दव्वट्ठयाए आणुपुव्वी दव्वाइं असंखेज्जगुणाइं) तथा द्रव्यार्थता की अपेक्षा से आनुपूर्वीद्रव्य असंख्यात गुणित हैं। तात्पर्य कहने का यह है कि जो अनानुपूर्वी द्रव्य हैं उनमें परमाणुरूप एक एक ही स्थान लभ्य है, एवं जो अवक्तव्यक द्रव्य हैं उनमें भी द्विप्रदेशी स्कंध रूप एक एक स्थान ही लभ्य हैं परन्तु जो

ઉત્તર-(गोयमा !) હે ગૌતમ ! (दव्वट्ठयाए णेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाइं सव्वत्थोवाइं) દ્રવ્યાર્થતાની અપેક્ષાએ નૈગમ અને વ્યવહાર નયસંમત અવક્તવ્યક દ્રવ્ય સૌથી અલ્પ છે-એટલે કે અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોથી પણ તે અલ્પપ્રમાણમાં હોય છે. (अणाणुपुव्वीदव्वाइं, दव्वट्ठयाए विसेसाहियाइं) તથા દ્રવ્યાર્થતાની અપેક્ષાએ અવક્તવ્યક દ્રવ્યો કરતાં અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો વિશેષાધિક છે. તેમાં આ વિશેષાધિકતા વસ્તુસ્થિતિના સ્વભાવની અપેક્ષાએ સમજવી. " तदुक्तम् " કહ્યું પણ છે કે " હે ભગવન્! પરમાણુ પુદ્ગલો અને દ્વિપ્રદેશી સ્કંધો, આ બન્નેમાંથી કોણ કોના કરતાં અધિક છે? ઉત્તર- હે ગૌતમ ! દ્વિપ્રદેશીક સ્કંધો કરતાં પરમાણુ પુદ્ગલો અધિક હોય છે. " આ કથન અનુસાર દ્વિપ્રદેશી સ્કંધો રૂપ અવક્તવ્યક દ્રવ્યો કરતાં પરમાણુપુદ્ગલ રૂપ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો અધિક છે, એ વાત પ્રમાણિત થાય છે. (दव्वट्ठयाए आणुपुव्वीदव्वाइं असंखेज्जगुणाइं) તથા દ્રવ્યાર્થતાની અપેક્ષાએ આનુપૂર્વી દ્રવ્યો, અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો કરતાં અસંખ્યાત ગણાં છે. આ કથનનું સ્પષ્ટીકરણ નીચે પ્રમાણે છે જે અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો છે તેમાં પરમાણુ રૂપ એક એક સ્થાન જ લભ્ય હોય છે, અને જે અવક્તવ્યક દ્રવ્યો છે તેમાં પણ દ્વિપ્રદેશી સ્કંધ રૂપ એક એક જ સ્થાન લભ્ય હોય છે. પરન્તુ જે

अवक्तव्यकद्रव्याणि प्रदेशार्थतया विशेषाधिकानि। आनुपूर्वीद्रव्याणि प्रदेशार्थतया-ऽनन्तगुणानि२। द्रव्यार्थप्रदेशार्थतया सर्वस्तोकानि नैगमव्यवहारयोरवक्तव्यद्रव्याणि द्रव्यार्थतया। अनानुपूर्वीद्रव्याणि द्रव्यार्थतया, अप्रदेशार्थतया विशेषाधिकानि। अवक्तव्यकद्रव्याणि प्रदेशार्थतया विशेषाधिकानि आनुपूर्वीद्रव्याणि द्रव्यार्थतया असंख्येयगुणानि, तान्येव प्रदेशार्थतया अनन्तगुणानि। स एषोऽनुगमः। सैषा नैगमव्यवहारयोः अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी ॥सू० ९०॥

आनुपूर्वी द्रव्य है उनमें त्र्यणुक स्कंध से लगाकर एकोत्तर वृद्धि से एक एक प्रदेश की उत्तरोत्तर वृद्धि होने से अनंताणुक स्कंध पर्यन्त अनन्त स्थान हैं इसलिये स्थान की बहुत विवक्षा से आनुपूर्वी द्रव्य अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा असंख्यातगुणे कहे गये हैं।

शंका— यदि आनुपूर्वी द्रव्यों के स्थान पूर्व की अपेक्षा अनन्त हैं इसलिये आनुपूर्वी द्रव्य असंख्यात गुणे पूर्व की अपेक्षा लेकर के कहे गये हैं, सो ये कहना ठीक नहीं है क्यों कि इस प्रकार के कथन से तो उन आनुपूर्वी द्रव्यों में उनकी अपेक्षा असंख्यातगुणता न आकर अनंत गुणता ही आती है ?

उत्तर–अनंताणुक जो स्कंध हैं वे तो अनानुपूर्वीद्रव्यों की अपेक्षा से अनन्त भागवर्ती होने के कारण स्वभावतः ही स्तोक–कम–हैं। इसलिये अनन्ताणुक स्कंधों को लेकर आनुपूर्वी द्रव्यों में–आनुपूर्वी के स्थानों में कुछ वृद्धि नहीं होती है। इसलिये यथार्थरूप में उनमें–आनुपूर्वी द्रव्यों

આનુપૂર્વી દ્રવ્યો છે તેમાં તો ત્રિઅણુક સ્કંધથી લઇને ક્રમે ક્રમે એક એક પ્રદેશની ઉત્તરોત્તર વૃદ્ધિ થતાં થતાં અનંતાણુક સ્કંધ પર્યન્તના અનંત સ્થાન હોય છે તેથી સ્થાનના બહુત્વની અપેક્ષાએ આનુપૂર્વી દ્રવ્યો, અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યો કરતાં અસંખ્યાત ગણાં કહેવામાં આવ્યાં છે.

શંકા–જો આનુપૂર્વી દ્રવ્યોના સ્થાન અનંત હોય, અને અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોના તથા અવક્તવ્યક દ્રવ્યોનાં સ્થાન એક એક હોય તો અહીં આનુપૂર્વી દ્રવ્યોને અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યો કરતાં અનંત ગણાં કહેવા જોઇતા હતાં છતાં અહીં તેમને અસંખ્યાત ગણાં શા કારણે કહ્યાં છે?

ઉત્તર–અનંતાણુક જે સ્કંધો છે તેઓ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો કરતાં અનંતમાં ભાગપ્રમાણ હોવાને કારણે સ્વાભાવિક રીતે જ સ્તોક (ઓછાં, ન્યૂન) છે. તેથી અનંતાણુક સ્કંધોને લીધે આનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાં–આનુપૂર્વી દ્રવ્યોનાં સ્થાનોમાં ખાસ કોઈ વૃદ્ધિ થતી નથી. તેથી યથાર્થ રૂપે તો તે આનુપૂર્વી

टीका—'एएसि णं' इत्यादि-

हे भदन्त! नैगमव्यवहारसम्मतानामेतेषामानुपूर्वीद्रव्याणामनानुपूर्वी द्रव्याणामवक्तव्यकद्रव्याणां च मध्ये द्रव्यार्थतया=द्रव्यमेवार्थो द्रव्यार्थस्तस्यभावो द्रव्यार्थता तया, द्रव्यत्वेनेत्यर्थः, द्रव्यत्वमपेक्ष्य, प्रदेशार्थतया=प्रदेशत्वमपेक्ष्य, द्रव्यार्थप्रदेशार्थतया=द्रव्यत्वं प्रदेशत्वं चापेक्ष्य कानि केभ्यः अल्पानि विशेषहीनत्वादिना स्तोकानि वा भवन्ति? बहुकानि=असंख्येयगुणत्वादिनाऽधिकानि वा भवन्ति? तुल्यानि=समसंख्यत्वेन समानि वा, किंचिदाधिक्येन विशेषाधिकानि वा भवन्ति? इति प्रश्नः। उत्तरयति-हे गौतम! द्रव्यार्थतया=द्रव्यार्थत्वमपेक्ष्य नैगमव्यवहारसम्मतानि अवक्तव्यद्रव्याणि सर्वस्तोकानि=अनानुपूर्वीद्रव्येभ्य आनुपूर्वीद्रव्येभ्यश्च अल्पानि। अनानुपूर्वीद्रव्याणि तु द्रव्यार्थतया विशेषाधिकानि=अवक्तव्यकद्रव्येभ्यः किंचिदधिकानि। विशेषाधिक्यं चास्य वस्तुस्थितिस्वभावात्। तदुक्तम्—

'एएसि णं भंते! परमाणुपोग्गलाणं दुप्पएसियाणं खंधाणं कयरे कयरेहिंतो बहुया? गोयमा! दुप्पएसिएहिंतो खंधेहिंतो परमाणुपोग्गला बहुया॥

छाया—एतेषां खलु भदन्त! परमाणुपुद्गलानां द्विप्रदेशिकानां स्कन्धानां मध्ये के केभ्यो बहुकाः;३ गौतम! द्विप्रदेशिकेभ्यः स्कन्धेभ्यः परमाणुपुद्गला बहुकाः०३ इति।

में- असंख्यात गुणित ही स्थान बनते हैं और उन्हीं स्थानों को लेकर उनमें असंख्यात गुणता आती है। अनंतगुणता नहीं। यह सब विषय अनुगम के भाग नाम के सप्तमद्वार में कथित "एएसिं णं भंते!" इत्यादि सूत्रपाठ से जान लेना चाहिये॥ इस प्रकार द्रव्यार्थता की अपेक्षा लेकर बहुत्व का कथन करके अब सूत्रकार प्रदेशत्व की अपेक्षा से आनुपूर्वी आदि

દ્રવ્યોમાં અસંખ્યાત ગણું જ સ્થાન બને છે, અને એજ સ્થાનોની અપેક્ષાએ તેમનામાં (આનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાં) અસંખ્યાત ગુણિતતા જ સંભવી શકે છે- અનંત ગુણિતા સંભવી શકતી નથી. ૮૮માં સૂત્રમાં અનુગમના ભાગદ્વાર નામના સાતમાં ભેદનું પ્રતિપાદન કરતી વખતે સૂત્રકારે "एएसिं णं" ઇત્યાદિ સૂત્રપાઠ દ્વારા આ વિષયનું વિશેષ વર્ણન કર્યું છે. તો તે સૂત્રમાંથી તે વાંચી લેવું. આ રીતે દ્રવ્યાર્થતાની અપેક્ષાએ આનુપૂર્વી દ્રવ્યો આદિની અલ્પબહુતાનું કથન કરીને હવે સૂત્રકાર પ્રદેશત્વની અપેક્ષાએ આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્યોના અલ્પબહુત્વનું કથન કરે છે-

तथा-द्रव्यार्थतया आनुपूर्वीद्रव्याणि असंख्येयगुणानि।

अयं भावः-अनानुपूर्वीद्रव्येषु परमाणुलक्षणं स्थानमेकैकमेव लभ्यते, अवक्तव्यकद्रव्येषु द्व्यणुकस्कन्धलक्षणं स्थानमेकैकमेवलभ्यते। आनुपूर्वीद्रव्येषु तु त्र्यणुकस्कन्धप्रभृतीनि एकोत्तरवृद्ध्याऽनन्ताणुकस्कन्धपर्यन्तानि अनन्तानि स्थानानि

द्रव्यों में अल्प बहुत्व का कथन करके अब सूत्रकार प्रदेशत्व की अपेक्षा से आनुपूर्वी आदि द्रव्यों में अल्प बहुत्वका कथन करते हैं-(णेगमववहारणं अणाणुपुव्वीदव्वाइं पएसट्ठयाए सव्वत्थोवाइं) नैगम व्यवहारनय संमत समस्त अनानुपूर्वी द्रव्य प्रदेशत्व की अपेक्षा करके अवक्तव्यक द्रव्यों से एवं आनुपूर्वी द्रव्यों से अल्प हैं। क्यों कि (अपएसट्ठयाए) अनानुपूर्वी द्रव्यों में प्रदेशरूप अर्थका अभाव है। तात्पर्य कहने का यह है कि परमाणु रूप अनानुपूर्वी द्रव्यों में भी यदि द्वितीय आदि प्रदेश हों तो द्रव्यार्थता की तरह प्रदेशार्थता में भी अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा से उनकी अधिकता हो जावे परन्तु ऐसा तो है नहीं क्यों कि परमाणु अप्रदेशी होता है-ऐसा सिद्धान्त का वचन है। इसलिये प्रदेशार्थता की अपेक्षा से ये आनुपूर्वी-द्रव्य सर्वस्तोक-थोडे कहे गये हैं। निष्कर्षार्थ इसका यह है कि अनानुपूर्वी द्रव्य द्रव्यार्थता की अपेक्षा लेकर अवक्तव्यक द्रव्यों से कुछ अधिक कहे गये हैं और अवक्तव्यक द्रव्य इनसे कम। सो यदि परमाणुरूप इन अनानुपूर्वी द्रव्यों में भी यदि द्वितीयादिक प्रदेश मान लिये जावें

(णेगमववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाइं पएसट्ठयाए सव्वत्थोवाइं) નૈગમ અને વ્યવહાર નયસંમત સમસ્ત અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો પ્રદેશત્વની અપેક્ષાએ અવક્તવ્યક દ્રવ્યો કરતાં અને આનુપૂર્વી દ્રવ્યો કરતાં અલ્પ હોય છે, કારણ કે (अपएसट्ठयाए) અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાં પ્રદેશ રૂપ અર્થનો અભાવ હોય છે. આ કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે જો પરમાણુ રૂપ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાં પણ દ્વિતીય આદિ પ્રદેશોનો સદ્ભાવ હોત તો દ્રવ્યાર્થતાની જેમ પ્રદેશાર્થતામાં પણ અવક્તવ્યક દ્રવ્યો કરતાં તેમની અધિકતા જ હોત પરન્તુ એવી કોઈ વાતનો તો સદ્ભાવ જ નથી, કારણ કે પરમાણુ અપ્રદેશી હોય છે, એવું સિદ્ધાંતનું વચન છે. તે કારણે પ્રદેશાર્થતાની અપેક્ષાએ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોને સૌથી અલ્પ કહેવામાં આવેલ છે આ સમસ્ત કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે દ્રવ્યાર્થતાની અપેક્ષાએ તો અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોને અવક્તવ્યક દ્રવ્યો કરતાં વિશેષાધિક કહેવામાં આવેલ છે. એટલે કે અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો કરતાં અવક્તવ્યક-દ્રવ્યો અલ્પ કહેવામાં આવ્યાં છે. પણ પ્રદેશત્વની અપેક્ષાએ તો આનુપૂર્વી

प्राप्यन्ते, अतः स्थानबहुत्वात् आनुपूर्वीद्रव्याणि अनानुपूर्वीद्रव्येभ्योऽवक्तव्यकद्रव्येभ्यश्चाऽसंख्येयगुणानि।

ननु-आनुपूर्वीद्रव्याणां स्थानानि यद्यनन्तानि, तर्हि आनुपूर्वीद्रव्याणि पूर्वापेक्षयाऽनन्तगुणानि भवन्तीतिवक्तव्यम्, कथनमसंख्यातगुणानीत्युक्तम्? इति चेत्, उच्यते-अनन्ताणुकस्कन्धास्तु अनानुपूर्व्यपेक्षयाऽनन्तभागवर्त्तित्वात् स्वभावादेव स्तोका इति-अनन्ताणुकस्कन्धैरानुपूर्वीद्रव्येषु न किंचिद् वर्धते, अतो वस्तुवृत्त्या असंख्यातान्येव तेषु स्थानानि प्राप्यन्ते। तदपेक्षया तु असंख्यातगुणान्येव तानि भवन्ति, नत्वनन्तगुणानीति। एतच्चानुगमस्य सप्तमे भागनामके द्वारे प्रदर्शितात्-'एएसि णं भंते' इत्यादिकात् सूत्रपाठात् सर्वभावनीयम् १। इत्थं द्रव्यार्थतयाऽल्पबहुत्वमभिधाय सम्प्रति प्रदेशार्थतया तदाह-'पएसट्ठयाए' इत्यादि। नैगमव्यवहारसम्मतानि अनानुपूर्वीद्रव्याणि प्रदेशार्थतया=प्रदेशत्वमपेक्ष्य सर्वस्तोकानि=अवक्तव्यद्रव्येभ्य आनुपूर्वीद्रव्येभ्यश्चाल्पानि। एषां सर्वस्तोकत्वे हेतुमाह-'अपएसट्ठयाए' इति। अप्रदेशार्थतया=अप्रदेशार्थत्वात्, अनानुपूर्वी द्रव्येषु प्रदेशरूपस्यार्थस्य अभावात्। अयं भावः-यदि हि अनानुपूर्वी द्रव्येष्वपि प्रदेशाः स्युस्तदा द्रव्यार्थतायामिव प्रदेशार्थतायामपि अवक्तव्यकद्रव्यापेक्षया तेषामाधिक्यं स्यात्, नचैतदस्ति, 'परमाणुरप्रदेशः' इति वचनात्, अतः सर्वस्तोकानि एतानि।

ननु यद्यनानुपूर्वीद्रव्येषु प्रदेशार्थता नास्ति, तर्हि अत्र तस्या विचारोऽनुपयुक्त एवे? ति चेत्, उच्यते-'प्रदेश' शब्दस्य सकृष्टः-सर्वसूक्ष्मः देशः=पुद्गलास्ति-

---

तो प्रदेशार्थता से भी उनकी अवक्तव्यकद्रव्यों की अपेक्षा अधिकता मानी जानी चाहिये। परन्तु ऐसा नहीं है। क्योंकि परमाणु अप्रदेशी है। अतः अनानुपूर्वी द्रव्य सर्वस्तोक हैं यही सिद्धान्त युक्तियुक्त है।

शंका—यदि अनानुपूर्वी द्रव्यों में प्रदेशार्थता नहीं है, तो यहां पर प्रदेशार्थता को लेकर उनका विचार करना अनुपयुक्त ही है?

દ્રવ્યોને અવક્તવ્ય દ્રવ્યો કરતાં પણ અલ્પ માનવામાં આવેલ છે, કારણ કે પરમાણુ રૂપ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય અપ્રદેશી હોય છે તો આ પરમાણુ રૂપ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાં પણ દ્વિતીય આદિ પ્રદેશોનો સદ્ભાવ માનવામાં આવે, તો પ્રદેશાર્થતાની અપેક્ષાએ પણ અવક્તવ્યક દ્રવ્યો કરતાં અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોની અધિકતા સંભવી શકે છે. પરન્તુ પરમાણુ રૂપ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોને સર્વસ્તોક (સૌથી અલ્પ) માનવાનો સિદ્ધાંત જ યુક્તિયુક્ત લાગે છે.

શંકા-જો અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાં પ્રદેશાર્થતાનો સદ્ભાવ જ ન હોય, તો અહીં પ્રદેશાર્થતાની અપેક્ષાએ તેમનો વિચાર કરવો એ વાત જ શું અનુચિત લાગતી નથી?

कायस्य निरंशो भागः, इति व्युत्पत्त्या परमाणुद्रव्येऽपि प्रदेशत्वमस्त्येव, अतः प्रदेशार्थतया एषां विचारो नानुपयुक्त इति। तथा-अवक्तव्यकद्रव्याणि प्रदेशार्थतयाऽनानुपूर्वीद्रव्येभ्यो विशेषाधिकानि अवक्तव्यकद्रव्येषु एकैकस्य द्विप्रदेशत्वात्। अनानुपूर्वीद्रव्यापेक्षयाऽवक्तव्यकद्रव्याणां प्रदेशार्थत्वमाश्रित्य विशेषाधिकत्वं बोध्यमिति। आनुपूर्वीद्रव्याणि तु प्रदेशार्थतया अवक्तव्यकद्रव्येभ्योऽनन्तगुणानि।

उत्तर—ऐसा नहीं है-क्योंकि 'प्रकृष्टदेशः प्रदेशः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार सर्व सूक्ष्मदेश का नाम प्रदेश, अर्थात् पुद्गलास्तिकाय का निरंश भाग है वह प्रदेश है। ऐसा प्रदेशपन परमाणु द्रव्य है ही। इसलिये प्रदेशार्थता की अपेक्षा इनका विचार अनुपयुक्त नहीं है तथा-(अवत्तव्वगदव्वाइं पएसट्ठयाए विसेसाहियाइं) अवक्तव्यक द्रव्य प्रदेशार्थता की अपेक्षा अनानुपूर्वी द्रव्यों से विशेषाधिक-कुछ अधिक-हैं। अर्थात् अवक्तव्यक द्रव्यों में एक २ अवक्तव्यकद्रव्य द्विप्रदेशवाला होता है और अनानुपूर्वी द्रव्यों में एक एक अनानुपूर्वीद्रव्य एक प्रदेश वाला होता है इसी कारण अनानुपूर्वी द्रव्यों से अवक्तव्यक द्रव्य प्रदेशार्थता को लेकर कुछ अधिक कहे गये हैं। (आणुपुव्वीदव्वाइं पएसट्ठयाए अणंतगुणाइं) जो आनुपूर्वी द्रव्य हैं वे अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा अनंतगुणे हैं। क्यों कि इनके प्रदेश अवक्तव्यकद्रव्यों के प्रदेशों

ઉત્તર—એ વાત બરાબર નથી, કારણ કે "प्रकृष्टदेशः प्रदेशः" આ વ્યુત્પત્તિ અનુસાર સૌથી સૂક્ષ્મ દેશનું નામ પ્રદેશ છે એટલે કે પુદ્ગલાસ્તિકાયનો જે નિરંશ ભાગ છે તે પ્રદેશરૂપ જ છે. એવું પ્રદેશત્વ તો પરમાણુ દ્રવ્યમાં જ હોય છે. તેથી પ્રદેશાર્થતાની અપેક્ષાએ તેમનો વિચાર કરવામાં અનુપયુક્તતા જણાતી નથી.

તથા-(अवत्तव्वगदव्वाइं पएसट्ठयाए विसेसाहियाइं) અવક્તવ્યક દ્રવ્ય પ્રદેશાર્થત્વની અપેક્ષાથી વિશેષાધિક હોય છે. એટલે કે અવક્તવ્યક દ્રવ્યોમાના પ્રત્યેક અવક્તવ્યક દ્રવ્ય બબ્બે પ્રદેશવાળાં હોય છે, અને અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાંનું પ્રત્યેક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય એક એક પ્રદેશવાળું હોય છે. તે કારણે પ્રદેશાર્થતાની અપેક્ષાએ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો કરતાં અવક્તવ્યક દ્રવ્યોને વિશેષાધિક (અમુક પ્રમાણમાં વધારે) કહ્યાં છે.

(आणुपुव्वीदव्वाइं पएसट्ठयाए अणंतगुणाइं) પ્રદેશાર્થતાની અપેક્ષાએ અવક્તવ્યક દ્રવ્યો કરતાં આનુપૂર્વી દ્રવ્યો અનંત ગણાં હોય છે, કારણ કે

द्रव्यार्थतयाऽऽनुपूर्वीद्रव्याणि अनानुपूर्वीद्रव्येभ्योऽवक्तव्यकद्रव्येभ्यश्चाऽसंख्यातगुणान्युक्तानि, तदपेक्षयाऽऽनुपूर्वीद्रव्यस्कन्धानामसंख्यातगुणत्वात्। प्रदेशार्थताऽपेक्षया तु आनुपूर्वीद्रव्याण्यनन्तगुणानि सन्ति, तत्प्रदेशानां पूर्वापेक्षयाऽनन्तगुणत्वादिति२। इत्थं प्रदेशार्थतयाऽल्पबहुत्वमुक्त्वा, इदानीमुभयार्थतामाश्रित्य तदुच्यते-'दव्वट्ठपएसट्ठयाए' इत्यादि। नैगमव्यवहारसम्मतानि अवक्तव्यकद्रव्याणि द्रव्यार्थप्रदेशार्थतया सर्वस्तोकानि, सर्वस्तोकत्वे हेतुमाह-'दव्वट्ठयाए' इति। अवक्तव्यकद्रव्याणां-द्रव्यार्थतया-द्रव्यार्थत्वात् सर्वस्तोकत्वं बोध्यम्। तथा अनानुपूर्वीद्रव्याणि

से अनंत गुणे हैं। यह पहिले कहा जा चुका है कि आनुपूर्वीद्रव्यार्थता को आश्रित करके अनानुपूर्वी द्रव्यों से अवक्तव्यकद्रव्यों से असंख्यातगुणें हैं क्यों कि इनकी अपेक्षा आनुपूर्वी द्रव्य स्कंध असंख्यात गुणें होते हैं। परन्तु प्रदेशों की अपेक्षा आनुपूर्वी द्रव्य अनन्त गुणें हैं। क्यों कि इनके प्रदेश पूर्व की अपेक्षा अनन्तगुणें कहे गये हैं। इस प्रकार प्रदेशार्थता की अपेक्षा अल्प बहुत्व का कथन करके अब सूत्रकार उभयार्थता की अपेक्षा लेकर अल्प बहुत्व का कथन करते हैं-

(णेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाइं दव्वट्ठपएसट्ठयाए सव्वत्थोवाइं) नैगमव्यवहारनय संमत अवक्तव्यक द्रव्य द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थता रूप उभयार्थता की अपेक्षा लेकर सर्वस्तोक हैं। क्योंकि (दव्वट्ठयाए) अवक्तव्यक द्रव्यों में द्रव्यार्थता की अपेक्षा लेकरके पहिले सर्व

તેમના પ્રદેશો અવક્તવ્યક દ્રવ્યોના પ્રદેશો કરતાં અનંત ગણું હોય છે. પહેલાં એ વાત તો પ્રકટ કરવામાં આવી ચુકી છે કે દ્રવ્યાર્થતાની અપેક્ષાએ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યો કરતાં આનુપૂર્વી દ્રવ્યો અસંખ્યાત ગણું છે, કારણ કે તેમના કરતાં આનુપૂર્વી દ્રવ્યસ્કંધ અસંખ્યાત ગણું હોય છે પરન્તુ પ્રદેશોની અપેક્ષાએ આનુપૂર્વી દ્રવ્યો અનંત ગણું છે, કારણ કે તેમના પ્રદેશો અવક્તવ્યક દ્રવ્યોના પ્રદેશો કરતાં અનંત ગણું કહ્યાં છે આ રીતે પ્રદેશાર્થતાની અપેક્ષાએ આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્યોના અલ્પ-બહુત્વનું કથન કરીને હવે સૂત્રકાર ઉભયાર્થતા (દ્રવ્યાર્થતા અને પ્રદેશાર્થતા)ની અપેક્ષાએ તેમના અલ્પબહુત્વનું કથન કરે છે-(णेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाइं दव्वट्ठपएसट्ठयाए सव्वत्थोवाइं) નૈગમ અને વ્યવહાર નયસંમત અવક્તવ્યક દ્રવ્ય દ્રવ્યાર્થતા અને પ્રદેશાર્થતા રૂપ ઉભયાર્થતાની અપેક્ષાએ સર્વસ્તોક સૌથી ઓછું-છે, કારણ કે (दव्वट्ठयाए) દ્રવ્યાર્થતાની અપેક્ષાએ અવક્તવ્યક દ્રવ્યોમાં સર્વસ્તોકતાનું પ્રતિપાદન પહેલાં કરવામાં આવ્યું છે, તથા (अणाणुपुव्वी दव्वाइं दव्वट्ठयाए

उभयार्थत्वमाश्रित्यावक्तव्यकद्रव्यापेक्षया विशेषाधिकानि बोध्यानि। अत्र हेतुमाह–'दव्वट्ठयाए अपएसट्ठयाए' इति। द्रव्यार्थतयाऽप्रदेशार्थतया च अनानुपूर्वीद्रव्याणामवक्तव्यकद्रव्यापेक्षया विशेषाधिक्यं बोध्यम्। 'अवत्तव्वगदव्वाइं' इत्यादि, अवक्तव्यकद्रव्याणां त्विह प्रत्येकं द्विप्रदेशत्वाद्विगुणितानां तेषामन्येभ्यः=अनानुपूर्वीद्रव्येभ्यः प्रदेशार्थतया विशेषाधिकत्वं बोध्यम्। उभयार्थत्वमाश्रित्यानुपूर्वीद्रव्याणि असंख्येयगुणान्यनन्तगुणानि च सन्तीति सूचयितुमाह–'आणुपुव्वीदव्वाइं' इत्यादि। आनुपूर्वीद्रव्याणि द्रव्यार्थतया असंख्येयगुणानि बोध्यानि, च=पुनः तान्येव=आनुपूर्वीद्रव्याण्येव प्रदेशार्थतया अनन्तगुणानि बोध्यानि। प्रत्येकचिन्ता-

---

स्तोकता कही गई है। तथा "अणाणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए अपएसट्ठयाए विसेसाहियाइं) अनानुपूर्वी द्रव्य उभयार्थत्व को आश्रित करके अवक्तव्यक द्रव्य की अपेक्षा से कुछ अधिक हैं। यहां कुछ अधिकता द्रव्यार्थता और अप्रदेशार्थता से जाननी चाहिये। (अवत्तव्वगदव्वाइं पएसट्ठयाए विसेसाहियाइं) तथा अवक्तव्यक द्रव्य प्रदेशार्थता की अपेक्षा लेकर अनानुपूर्वी द्रव्यों से विशेषाधिक है। सो यह विशेषाधिकता इनमें प्रत्येक अवक्तव्यकद्रव्य द्विप्रदेशी होने के कारण जाननी चाहिये। क्यों कि ये प्रत्येक अनानुपूर्वी द्रव्यों के प्रदेशों की अपेक्षा द्विगुणित प्रदेशवाले हैं। तब कि अनानुपूर्वी द्रव्यों में प्रदेश एक एक है। इस प्रकार इनमें द्विगुणिता जानना चाहिये। (आणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं ताइं चेव पएसट्ठयाए अणंतगुणाइं) उभयार्थता को आश्रित करके द्रव्यार्थता की अपेक्षा से आनुपूर्वी द्रव्य असंख्यात

अपएसट्ठयाए विसेसाहियाइं) અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય ઉભયાર્થત્વની અપેક્ષાએ અવક્તવ્યક દ્રવ્ય કરતાં વિશેષાધિક હોય છે અહીં દ્રવ્યાર્થતા અને અપ્રદેશાર્થતાની અપેક્ષાએ આ અધિકતા સમજવી. (अवत्तव्वगदव्वाइं पएसट्ठयाए विसेसाहियाइं) તથા અવક્તવ્યક દ્રવ્યો પ્રદેશાર્થતાની અપેક્ષાએ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો કરતાં વિશેષાધિક છે. તેમની આ વિશેષાધિકતા પ્રત્યેક અવક્તવ્યક દ્રવ્ય દ્વિપ્રદેશી હોવાને કારણે સમજવી, કારણ કે પ્રત્યેક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય કરતાં પ્રત્યેક અવક્તવ્યક દ્રવ્ય બમણા પ્રદેશવાળું હોય છે અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય એક એક પ્રદેશવાળું હોય છે અને અવક્તવ્યક દ્રવ્ય બબ્બે પ્રદેશવાળું હોય છે, તે કારણે અવક્તવ્યક દ્રવ્યને અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય કરતાં બમણા પ્રદેશવાળું કહ્યું છે.

(आणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं ताइं चेव पएसट्ठयाए अणंतगुणाइं) ઉભયાર્થતાની અપેક્ષાએ હવે તેમના અલ્પબહુત્વનો વિચાર

त्वादुभयार्थतया चिन्तायामयमेव विशेषः-अनानुपूर्वीद्रव्याणि द्रव्यार्थतामाश्रित्य अवक्तव्यकद्रव्यापेक्षया विशेषाधिकानि भवन्ति, तत्र प्रदेशरहितत्वात् प्रदेशार्थतया असंभवात् सर्वस्तोकत्वं न गृहीतम्। प्रत्येकचिन्तायां तु प्रदेशार्थतापक्षे तदपि गृहीतम्। एतदर्थमेव उभयार्थता पक्षोपादानम्। इत्थं नवविधमनुगममुक्त्वा सम्प्रति प्रकरणमुपसंहरन्नाह-'से तं' इत्यादि। स एषोऽनुगमः। सैषा नैगमव्यवहारयोरनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वीति ॥सू० ९०॥

गुणे हैं और प्रदेशार्थता की अपेक्षा करके आनुपूर्वीद्रव्य अनन्तगुणा हैं। इस प्रकार प्रत्येक पक्ष से विचार करने की अपेक्षा जो यह उभयार्थ पक्ष की अपेक्षा लेकर विचार करने में आया है उसमें यही विशेषता है —कि जैसे इस पक्ष में अनानुपूर्वी द्रव्य, द्रव्यार्थता को आश्रित करके अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा विशेषाधिक कहे गये हैं। वैसे वे प्रदेश होने के-कारण सर्वस्तोक प्रदेशार्थता असंभवता से नहीं लाये गये हैं। परन्तु जब प्रत्येक पक्षको लेकर इनका विचार होता है तब यह सर्वस्तोकता भी उनमें प्रकट की जाती है। इसी निमित्त से यहां यह तृतीय पक्षरूप उभयार्थता गृहीत की गई है। इस प्रकार नवविध अनुगम कह करके अब सूत्रकार इस प्रकरण का उपसंहार करने के अभिप्राय से (से तं अणुगमे, से तं णेगमववहाराणं अणोवणिहिया दव्वानुपुव्वी) इन पदों द्वारा यह प्रकट कर रहे हैं कि इस प्रकार

કરવામાં આવે છે-દ્રવ્યાર્થતાની અપેક્ષાએ આનુપૂર્વી દ્રવ્ય અસંખ્યાત ગણું અને પ્રદેશાર્થતાની અપેક્ષાએ આનુપૂર્વી દ્રવ્ય અનંત ગણું છે. આ પ્રકારે પ્રત્યેક પક્ષને અનુલક્ષીને વિચાર કરવાની અપેક્ષાએ જે અહીં ઉભયાર્થપક્ષની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવ્યો છે તેમાં એજ વિશેષતા છે કે-જેમ દ્રવ્યાર્થિકતાની દૃષ્ટિએ વિચાર કરીને અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો અવક્તવ્યક દ્રવ્યો કરતાં વિશેષાધિક પ્રકટ કરવામાં આવ્યા છે, એ પ્રમાણે પ્રદેશાર્થતાની અપેક્ષાએ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોને વિશેષાધિક બતાવવામાં આવ્યા નથી, કારણ કે તેઓ પ્રદેશરહિત હોવાને કારણે અવક્તવ્યક દ્રવ્યો કરતાં અલ્પપ્રમાણવાળા છે. પરન્તુ જો પ્રત્યેક પક્ષની અપેક્ષાએ તેમનો વિચાર કરવામાં આવે તો આ સર્વસ્તોકતા (સૌ કરતાં અલ્પપ્રમાણતા) પણ તેમનામાં પ્રકટ કરી શકાય છે. એજ નિમિત્તને લીધે અહીં તૃતીય પક્ષ રૂપ ઉભયાર્થતા ગૃહીત કરવામાં આવી છે આ પ્રમાણે નવ પ્રકારના અનુગમનું નિરૂપણ કરીને હવે સૂત્રકાર આ પ્રકરણનો ઉપસંહાર કરતા કહે છે કે-(से तं अणुगमे से तं णेगमववहाराणं अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी) અનુગમનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ છે. આ

इत्थं नैगमव्यवहारनयमतेन अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वीं व्याख्याय संग्रहनयमतेन सम्प्रति तामेव व्याख्यातुमाह-

मूलम्-से किं तं संगहस्स अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी? संगहस्स अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा-अट्ठपयपरूवणया१, भंगसमुक्कित्तणया२ भंगोवदंसणया३ समोयारे४ अणुगमे५॥सू० ९१॥

छाया—अथ का सा संग्रहस्य अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी? संग्रहस्य अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी पञ्चविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-अर्थपदप्ररूपणता१, भङ्गसमुत्कीर्तनता२, भङ्गोपदर्शनता३, समवतारः४, अनुगमः५ ॥सू०९१॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि-

व्याख्या निगद सिद्धा ॥सू० ९१॥

से यह अनुगम का स्वरूप है। इस प्रकार यहां तक नैगम व्यवहारनय संमत अनोपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी का कथन किया॥ सू० ९० ॥

अब सूत्रकार संग्रहनय के मतानुसार इस अनौपनिधि की द्रव्यानुपूर्वी का कथन करते हैं—'से किं तं' इत्यादि।

शब्दार्थ- हे भदन्त! (से किं तं संगहस्स अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी) 'संग्रहनय संमत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

उत्तर—(संगहस्स अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी पंचविहा पण्णत्ता) संग्रहनय संमत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी पांच प्रकार कही गई है। (तं जहा) उसके वे प्रकार ये हैं- (अट्ठपयरूपवणया १ भंगसमुक्कित्तणया ५ भंगोवदंसणया३ समोयारे ४, अणुगमे ५,) अर्थपद प्ररूपणता १, भंग

પ્રકારે અહીં સુધીમાં સૂત્રકારે નૈગમવ્યવહારનયસંમત અનૌપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વીના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કર્યું છે. ॥સૂ૦૯૦॥

હવે સૂત્રકાર સંગ્રહનયના મતાનુસાર આ અનૌપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વીના સ્વરૂપનું કથન કરે છે—" से किं तं " ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-પ્રશ્ન-(से किं तं संगहस्स अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी ?) હે ભગવન્! સંગ્રહનયસંમત અનૌપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(संगहस्स अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी पंचविहा पण्णत्ता) સંગ્રહનયસંમત અનૌપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વી પાંચ પ્રકારની કહી છે. (तं जहा) તે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે-(अत्थपयपरूवणया१, भंगसमुक्कित्तणया२, भंगोवदंसणया३, समोयारे४ अणुगमे५) (१)अर्थपदप्ररूपणता, (२) भंगसमुत्कीर्तनता

अथ संग्रहनयेनार्थपदप्ररूपणतामाह-

मूलम्-से किं तं संगहस्स अट्ठपयपरूवणया? संगहस्स अट्ठपयपरूवणया तिप्पएसिए आणुपुव्वी चउप्पएसिए आणुपुव्वी जाव दसपएसिए आणुपुव्वी संखिज्जपएसिए आणुपुव्वी असंखिज्जपएसिए आणुपुव्वी अणंतपएसिए आणुपुव्वी परमाणुपोग्गले अणाणुपुव्वी, दुप्पएसिए अवत्तव्वए। से तं संगहस्स अट्ठपयपरूवणया ॥सू० ९२॥

छाया-अथ का सा संग्रहस्य अर्थपदप्ररूपणता? संग्रहस्य अर्थपदप्ररूपणता-त्रिप्रदेशिक आनुपूर्वी चतुष्प्रदेशिक आनुपूर्वी यावद् दशप्रदेशिक आनुपूर्वी संख्येयप्रदेशि-

---

समुत्कीर्त्तनता२ भंगोपदर्शनता३ समवतार४ और अनुगम५। इस सूत्र की व्याख्या ७४ वें सूत्रकी व्याख्या के अनुसार जाननी चाहिये ॥सू०९१॥

संग्रहनय के मतानुसार अर्थपदप्ररूपणता का क्या स्वरूप है? इस बात को सूत्रकार प्रकट करते हैं। "से किं तं संगहस्स" इत्यादि

शब्दार्थ-हे भदन्त! (से किं तं संगहस्स अट्ठपयपरूवणया) पूर्व प्रक्रान्त उस संग्रहनय मान्य अर्थपदप्ररूपणता का क्या स्वरूप है?

उत्तर-(संगहस्स अट्ठपयपरूवणया) संग्रहनय मान्य अर्थपद प्ररूवणता का स्वरूप इस प्रकार से है-(तिप्पएसिए आणुपुव्वी चउप्पएसिए आणुपुव्वी, जाव दसपएसिए आणुपुव्वी संखिज्जपएसिए

---

(३) भंगोपदर्शनता, (४) समवतार अने (५) अनुगम आ सूत्रनी व्याख्या ७४ मां सूत्रनी व्याख्या प्रमाणे समजवी. ॥सू०९१॥

संग्रहनयना मतानुसार अर्थपद प्ररूपणतानुं स्वरूप केवुं होय छे ते हवे सूत्रकार प्रकट करे छे-"से किं तं संगहस्स" इत्यादि—

शब्दार्थ-प्रश्न-(से किं तं संगहस्स अत्थपयपरूवणया?) हे भगवन्! पूर्वप्रस्तुत संग्रहनयसंमत अर्थपदप्ररूपणतानुं स्वरूप केवुं कहुं छे?

उत्तर-(संगहस्स अत्थपयपरूवणया) संग्रहनयसंमत अर्थपद प्ररूपणतानुं स्वरूप आ प्रकारनुं छे-

(तिप्पएसिए आणुपुव्वी, चउप्पएसिए आणुपुव्वी, जाव दस पएसिए आणुपुव्वी, संखिज्जपएसिए आणुपुव्वी, असंखिज्जपएसिए आणुपुव्वी, अणंतप-

क आनुपूर्वी असंख्येयप्रदेशिक आनुपूर्वी, अनंतप्रदेशिक आनुपूर्वी परमाणुपुद्गलः अनानुपूर्वी, द्विप्रदेशिकः अवक्तव्यकम्। सैषा संग्रहस्य अर्थपदप्ररूपणता॥सू०९२॥

आणुपुव्वी असंखिज्जपएसिए आणुपुव्वी, अणंतपएसिए आणुपुव्वी, परमाणुपुग्गले अणाणुपुव्वी; दुप्पएसिए अवत्तव्वए) त्रिप्रदेशवाला स्कंध आनुपूर्वी है, चार प्रदेशवाला स्कंध आनुपूर्वी है, यावत दश प्रदेशवाला स्कंध आनुपूर्वी है' संख्यात प्रदेशवाला स्कंध आनुपूर्वी है, असंख्यात प्रदेश वाला स्कंध आनुपूर्वी है, अनन्त प्रदेश वाला स्कंध आनुपूर्वी है, परमाणुपुद्गल अनानुपूर्वी द्रव्य है, द्विप्रदेश वाला स्कन्ध अवक्तव्यक द्रव्य है यही संग्रहनय मान्य अर्थपद प्ररूपणता का स्वरूप है। तात्पर्य इसका यह है कि पहिले नैगम और व्यवहार नयकी अपेक्षा करके एक त्रिप्रदेशिक स्कंध एक आनुपूर्वी द्रव्य है, अनेक त्रिप्रदेशिक स्कंध अनेक आनुपूर्वी द्रव्य है इस प्रकार आनुपूर्वी में एकत्व और अनेकत्व का निर्देश किया गया है। परन्तु समान्यत्ववादी होने के कारण इस संग्रहनय के मतानुसार समस्त त्रिप्रदेशिक स्कंध एक ही आनुपूर्वी हैं। इस नय की मान्यता इस विषय में ऐसी है कि जितने भी त्रिप्रदेशिक स्कंध हैं वे यदि अपने त्रिप्रदेशिकत्व रूप सामान्य से भिन्न हैं तो द्विप्रदेशिक आदि स्कंध की तरह वे त्रिप्रदेशिक स्कंध ही नहीं

एसिए आणुपुव्वी, परमाणुपुग्गले अणाणुपुव्वी, दुप्पएसिए अवत्तव्वए) ત્રણ પ્રદેશવાળો સ્કંધ આનુપૂર્વી છે, ચાર પ્રદેશવાળો સ્કંધ આનુપૂર્વી છે, એજ પ્રમાણે દસ પર્યન્તના પ્રદેશવાળો સ્કંધ આનુપૂર્વી છે સંખ્યાત પ્રદેશવાળો સ્કંધ આનુપૂર્વી છે, અસંખ્યાત પ્રદેશવાળો સ્કંધ આનુપૂર્વી છે અને અનંત પ્રદેશવાળો સ્કંધ આનુપૂર્વી છે. પરમાણુ પુદ્ગલ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય છે અને બે પ્રદેશવાળો સ્કંધ અવક્તવ્યક દ્રવ્ય છે. સંગ્રહનય દ્વારા માન્ય અર્થપદ પ્રરૂપણતાનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ છે. આ કથનનું તાત્પર્ય નીચે પ્રમાણે છે– નૈગમ અને વ્યવહાર નયની માન્યતાને આધારે પહેલાં એવું કથન કરવામાં આવ્યું છે કે એક ત્રિપ્રદેશી સ્કંધ એક આનુપૂર્વી દ્રવ્ય રૂપ છે, અને અનેક ત્રિપ્રદેશી સ્કંધો અનેક આનુપૂર્વી દ્રવ્યો રૂપ છે. આ રીતે આનુપૂર્વીમાં એકત્વ અને અનેકત્વનો ત્યાં નિર્દેશ કરવામાં આવ્યો છે. પરન્તુ સામાન્ય તત્વવાદી હોવાને કારણે આ સંગ્રહનયની માન્યતા અનુસાર સમસ્ત ત્રિપ્રદેશી સ્કંધ એક જ આનુપૂર્વી રૂપ છે. આ વિષયને અનુલક્ષીને આ નયની

टीका—' से किं तं ' इत्यादि-

अथ का सा संग्रहनयसम्मता अर्थप्ररूपणता ? इति प्रश्नः। उत्तरमाह-संग्रहनयसम्मता अर्थपदप्ररूपणता तु त्रिप्रदेशिकः स्कन्ध आनुपूर्वी चतुष्प्रदेशिकः स्कन्ध आनुपूर्वी यावद् दशप्रदेशिकः स्कन्ध आनुपूर्वी, संख्येयप्रदेशिकः स्कन्ध आनुपूर्वी, असंख्येयप्रदेशिकः स्कन्ध आनुपूर्वी, अनन्तप्रदेशिकः स्कन्ध आनुपूर्वी, परमाणुपुद्गलः आनुपूर्वी, द्विप्रदेशिकः स्कन्धः अवक्तव्यकमिति। अत्रेदं बोध्यम्-पूर्वत्र नैगमव्यवहारनयापेक्ष्य 'त्रिप्रदेशिक आनुपूर्वी-त्रिप्रदेशिका आनुपूर्व्यः' इत्येवमेकत्वेन बहुत्वेन च निर्देशः कृतः। संग्रहनये तु संग्रहस्य सामान्यवादित्वात् सर्वेऽपि त्रिप्रदेशिकाः स्कन्धा एकैकानुपूर्वी। अत्र को हेतुः ?-त्रिप्रदेशिकाः स्कन्धाः त्रिप्रदेशिकत्वसामान्याद् भिन्नाः, अभिन्ना वा ?। यदि भिन्नास्तर्हि त्रिप्रदेशिकाः स्कन्धास्त्रिप्रदेशिका एव न स्युः, द्विप्रदेशिकादिवत्। अथऽभिन्नास्तर्हि यावन्तस्त्रिप्रदेशिकाः सन्ति, ते सर्वेऽप्येक स्वरूपा एवं च सर्वेऽपि त्रिप्रदेशिकाः स्कन्धा एकैवानुपूर्वी। तथा चतुष्प्रदेशिकतया सर्वेऽपि चतुष्प्रदेशिकाः स्कन्धा एकैवानुपूर्वी। एवं पञ्चप्रदेशिकादयः स्कन्धा अपि एका-एका आनुपूर्वी बोध्या। इदं च अविशुद्धसंग्रहनयमतेन बोध्यम्। विशुद्धसंग्रहनयमतेन तु सर्वेषां त्रिप्रदे-

---

कहला सकते हैं। यदि त्रिप्रदेशित्व रूप सामान्य से वे अभिन्न हैं, तो वे सब त्रिप्रदेशिक स्कंध एक स्वरूप ही हैं। इस प्रकार सब भी त्रिप्रदेशिक स्कंध एक ही आनुपूर्वी हैं अनेक आनुपूर्वी नहीं। इसी प्रकार चतुष्प्रदेशिकत्व रूप सामान्य को अपेक्षा समस्त चतुष्प्रदेशिक स्कंध एक ही आनुपूर्वी हैं। इसी प्रकार से पञ्च प्रदेशिक आदि स्कंध भी एक एक आनुपूर्वी हैं ऐसा जानना चाहिये। यह कथन अविशुद्ध संग्रहनय के मत से हैं। परन्तु जो विशुद्ध संग्रहनय हैं उसके मतानुसार तो

માન્યતા એવી છે કે જેટલા ત્રિપ્રદેશી સ્કંધો છે તેઓ જો પોતાના ત્રિપ્રદેશિકત્વ રૂપ સામાન્યથી ભિન્ન હોય તો તેમને ત્રિપ્રદેશિક સ્કંધો જ કહી શકાય નહીં જો તેઓ ત્રિપ્રદેશિકત્વ રૂપ સામાન્યથી અભિન્ન હોય, તો તે બધા ત્રિપ્રદેશિક સ્કંધો એક રૂપ જ છે આ રીતે બધા ત્રિપ્રદેશિક સ્કંધો એક જ આનુપૂર્વી રૂપ છે-અનેક આનુપૂર્વી રૂપ નથી એજ પ્રમાણે ચતુષ્પ્રદેશિકત્વ રૂપ સામાન્યની અપેક્ષાએ સમસ્ત ચતુષ્પ્રદેશિક સ્કંધ એક જ આનુપૂર્વી રૂપ છે, એજ પ્રમાણે પાંચ આદિ પ્રદેશોવાળા સ્કંધો પણ એક એક આનુપૂર્વી રૂપ છે, એમ સમજવું આ કથન તો અવિશુદ્ધ સંગ્રહનયની માન્યતા પ્રકટ કરે છે. પરન્તુ વિશુદ્ધ સંગ્રહનયની માન્યતા અનુસાર તો

शिकाद्यनन्तप्रदेशिकपर्यन्तानां स्कन्धानाम् आनुपूर्वीत्वसामान्याऽभेदात् सर्वाऽप्यानुपूर्वी एकैव। एवमनानुपूर्वीत्वसामान्याव्यतिरेकात् सर्वेऽपि परमाणुपुद्गला एकैवानानुपूर्वी, अवक्तव्यकत्वरूपसामान्याव्यतिरेकात् सर्वे द्विप्रदेशिकाः स्कन्धा अपि एकमेवावक्तव्यकम्, अतोऽत्र-'तिप्पएसिए आणुपुव्वी' इत्यादि एकत्वेनैव निर्दिष्टम्, न तु बहुत्वेनेति। प्रकृतमुपसंहरन्नाह-'से तं' इत्यादि। सैषा संग्रहनयसम्मताऽर्थपदप्ररूपणतेति १ ॥सू० ९२॥

समस्त त्रिप्रदेशिकादि स्कंध से लेकर अनंत प्रदेशिक स्कंध पर्यन्त के स्कंधों की जीतनी भी आनुपूर्वियां हैं वे सब आनुपूर्वीत्व रूप सामान्य से अभिन्न होने के कारण एकही अनानुपूर्वीरूप है। इसी प्रकार अनानुपूर्वीत्व रूप सामान्य से अभिन्न होने के कारण समस्त परमाणु पुद्गल रूप अनानुपूर्वीयां एकही अनानुपूर्वी रूप हैं। इसी प्रकार से अवक्तव्यक स्वरूप सामान्य से अव्यतिरिक्त होने के कारण समस्त द्विप्रदेशिक स्कंध भी एकही अवक्तव्यकरूप हैं। इसलिये यहां सूत्र में "तिप्पएसिए आणुपुव्वी" इत्यादि रूप से एकत्व का निर्देश सूत्रकारने किया है। बहुत्व का नहीं। (से तं संगहस्स अट्ठपयपरूवणया) इस प्रकार यह संग्रहनय मान्य अर्थपद प्ररूपणता का स्वरूप है।

भावार्थ—संग्रहनय दो प्रकार का है- १ अविशुद्ध संग्रहनय और दूसरा विशुद्ध संग्रहनय। अविशुद्ध संग्रहनय की मान्यतानुसार जितने भी त्रिप्रदेशिक वाले स्कंध हैं वे एक आनुपूर्वी हैं तथा जितने भी

સમસ્ત ત્રિપ્રદેશિક આદિ સ્કંધથી લઈને અનંત પ્રદેશિક પર્યન્તના સ્કંધોની જેટલી આનુપૂર્વીઓ છે, તે બધી આનુપૂર્વીઓ પણ આનુપૂર્વીત્વ રૂપ સામાન્યની અપેક્ષાએ અભિન્ન હોવાથી એક જ આનુપૂર્વી રૂપ છે. એજ પ્રમાણે અનાનુપૂર્વીત્વ રૂપ સામાન્યની અપેક્ષાએ અભિન્ન હોવાને કારણે સમસ્ત પરમાણુ પુદ્ગલરૂપ અનાનુપૂર્વીઓ પણ એક જ અનાનુપૂર્વી રૂપ છે. એજ પ્રમાણે અવકતવ્યક રૂપ સામાન્યની અપેક્ષાએ અભિન્ન હોવાને કારણે સમસ્ત દ્વિપ્રદેશી સ્કંધો પણ એક જ અવક્તવ્યક રૂપ છે. તેથી જ સૂત્રકારે આ સૂત્રમાં "तिप्पएसिए आणुपुव्वी" ત્રિપ્રદેશિક આનુપૂર્વી ઇત્યાદિ રૂપે એકત્વનો નિર્દેશ કર્યો છે, પણ બહુત્વનો નિર્દેશ કર્યો નથી. (से तं संगहस्स अत्थपयपरूवणया) આ પ્રકારનું સંગ્રહનયસંમત અર્થપદપ્રરૂપણતાનું સ્વરૂપ છે.

ભાવાર્થ-સંગ્રહનય બે પ્રકારનો છે-(૧) અવિશુદ્ધ સંગ્રહનય અને (૨) વિશુદ્ધ સંગ્રહનય અવિશુદ્ધ સંગ્રહનયની માન્યતા અનુસાર સમસ્ત ત્રિપ્રદેશી સ્કંધો એક આનુપૂર્વી રૂપ છે, એજ પ્રમાણે જેટલા ચાર પ્રદેશીથી લઈને

सम्मति भङ्गसमुत्कीर्त्तनतां निरूपयति—

मूलम्—एयाए णं संगहस्स अट्ठपयपरूवणयाए किं पओयणं? एयाएणं संगहस्स अट्ठपयपरूवणयाए संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया कज्जइ। से किं तं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया? संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया—अत्थि आणुपुव्वी १ अत्थि अणाणुपुव्वी २ अत्थि अवत्तव्वए३, अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य४, अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अवत्तव्वए य५, अहवा अत्थि अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य६, अहवा अत्थि आणुपुव्वी य

चतुष्प्रदेशिक यावत् अनन्ताणुक स्कंध हैं ये सब स्वतंत्र २ भिन्न २ चतुष्प्रदेशी आदि आनुपूर्वियां हैं। परन्तु विशुद्ध संग्रहनय की मान्यतानुसार ये सब जुदी २ अनेक आनुपूर्वियां भी एक आनुपूर्वित्व रूप सामान्य की अपेक्षा से एक ही हैं। इसी बात को प्रदर्शित करने के लिये सूत्रकार ने इस सूत्र में त्रिप्रदेशिक आनुपूर्वी आदि पदों में एकवचन का प्रयोग किया है। त्र्यणुक स्कंध आदिरूप अर्थ से युक्त अथवा त्र्यणुक स्कंध आदि रूप अर्थ को विषय करने वाले पद की प्ररूपणा करना यही अर्थपदप्ररूपणता है। नैगम और व्यवहारनय मान्य अनेकत्व का यह नय आनुपूर्वी में निषेध करके एकत्व स्थापन करता है। ॥सू० ९२॥

અનંત પ્રદેશી પર્યન્તના સ્કંધો છે તે પ્રત્યેક પણ એક એક સ્વતંત્ર ચતુષ્પ્રદેશી, પંચપ્રદેશી આદિ આનુપૂર્વી રૂપ છે. વિશુદ્ધ સંગ્રહનયની માન્યતા અનુસાર તો ત્રિપ્રદેશિક સ્કંધ રૂપ આનુપૂર્વીથી લઇને અનંત પ્રદેશિક સ્કંધ રૂપ આનુપૂર્વી પર્યન્તની સમસ્ત આનુપૂર્વીઓ પણ આનુપૂર્વીત્વ રૂપ સામાન્યની અપેક્ષાએ એક જ આનુપૂર્વી રૂપ છે. આ વાતને પ્રદર્શિત કરવાને માટે સૂત્રકારે ત્રિપ્રદેશિક આનુપૂર્વી આદિ પદોમાં એકવચનનો પ્રયોગ કર્યો છે. ત્રિઅણુક સ્કંધ આદિ રૂપ અર્થથીયુક્ત ત્રિઅણુક સ્કંધ આદિ રૂપ અર્થનું પ્રતિપાદન કરનારા પદની પ્રરૂપણા કરવી તેનું જ નામ અર્થપદ પ્રરૂપણતા છે. નૈગમ અને વ્યવહાર નયસંમત અનેકત્વનો આ નય (સંગ્રહ નય) આનુપૂર્વીઓમાં નિષેધ કરી એકત્વનું પ્રતિપાદન કરે છે. ॥સૂ૦૯૨॥

अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य७। एवं सत्त भंगा। से तं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया ॥सू० ९३॥

छाया—एतया खलु संग्रहस्य अर्थपदप्ररूपणतया किं प्रयोजनम्? एतया खलु संग्रहस्य अर्थपदप्ररूपणतया संग्रहस्य भङ्गसमुत्कीर्त्तनता क्रियते। अथ का सा संग्रहस्य भङ्गसमुत्कीर्त्तनता? संग्रहस्य भङ्गसमुत्कीर्त्तनता-अस्ति आनुपूर्वी १, अस्ति अनानुपूर्वी २ अस्ति अवक्तव्यकम् ३, अथवा-अस्ति आनुपूर्वी च अनानु-

अब सूत्रकार सप्तमभंगसमुत्कीर्तनता का निरूपण करते हैं-

"एयाए णं संगहस्स" इत्यादि।

शब्दार्थ-(एयाएणं संगहस्स अट्ठपयपरूवणयाए किं पओयणं?) हे भदन्त! संग्रहनय मान्य इस अर्थपदप्ररूपणता से कौनसा प्रयोजन सिद्ध होता है?

उत्तर—(एयाए णं संगहस्स अट्ठपयपरूवणयाए संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया कज्जइ) संग्रहनय मान्य इस अर्थपद प्ररूपणता से संग्रहनय मान्य भंगसमुत्कीर्त्तनता की जाती है। "से किं तं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया?) संग्रहनय मान्य वह भंगसमुत्कीर्तनता क्या है?

उत्तर— (संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया) संग्रहनय मान्य वह भंगसमुत्कीर्तनता इस प्रकार से है-(अत्थि आणुपुव्वी' अत्थि अणाणुपुव्वी) १ एक आनुपूर्वी है' दूसरा अनानुपूर्वी है (अत्थि अवत्तव्वए) तीसरा अवक्तव्यक है (अहवा अत्थि आणुपुव्वीय अणाणुपुव्वीय) चौथा

હવે સૂત્રકાર સાતમા ભંગ, ભંગસમુત્કીર્તનતાનું નિરૂપણ કરે છે—

"एयाएणं संगहस्स" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(एयाएणं संगहस्स अत्थपयपरूवणयाए किं पओयणं?) હે ભગવન્! સંગ્રહનયમાન્ય આ અર્થપદપ્રરૂપણા વડે કયું પ્રયોજન સિદ્ધ થાય છે?

ઉત્તર-(एयाएणं संगहस्स अत्थपयपरूवणयाए संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया कज्जइ) સંગ્રહનય સંમત આ અર્થપદપ્રરૂપણા વડે સંગ્રહનયમાન્ય ભંગસમુત્કીર્તનતાનું સ્વરૂપ જાણી શકાય છે.

"से किं तं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया" સંગ્રહનય માન્ય ભંગસમુત્કીર્તનતાનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया?) સંગ્રહનયસંમત તે ભંગસમુત્કીર્તનતા આ પ્રકારની કહી છે—

(अत्थि आणुपुव्वी, अत्थि अणाणुपुव्वी) (१) એક આનુપૂર્વી છે. (२) એક અનાનુપૂર્વી છે, (अत्थि अवत्तव्वए) (३) એક અવક્તવ્યક છે. (अहवा-अत्थि आणुपुव्वी य, अणाणुपुव्वी य) (४) આનુપૂર્વી છે, અનાનુપૂર્વી છે,

पूर्वी च ४, अथवा-अस्ति आनुपूर्वी च अवक्तव्यकं च ५, अथवा-अस्ति अनानुपूर्वी च अवक्तव्यकं च ६, अथवा-अस्ति आनुपूर्वी च अनानुपूर्वी च अवक्तव्यकं च ७। एवं सप्त भङ्गाः। सैषा संग्रहस्य भङ्गसमुत्कीर्त्तनता ॥सू० ९३॥

आनुपूर्वी है. अनानुपूर्वी है (अहवा-अत्थि आणुपुव्वीय अवत्तव्वएय) अथवा ५ आनुपूर्वी हैं अवक्तव्यक है (अहवा—अत्थि अणाणुपुव्वीय अवत्तव्वए य) अथवा-६ अनानुपूर्वी है अवक्तव्यक है, (अहवा—अत्थि आणुपुव्वीय अणाणुपुव्वी अवत्तव्वए य) अथवा ७ आनुपूर्वी है अनानुपूर्वी है अवक्तव्यक है। (एवं सत्त भंगा) इस प्रकार ये सात भंग हैं। (से तं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया) इस प्रकार संग्रहनय मान्य भंगसमुत्कीर्तनता है।

भावार्थ-संग्रहनय मान्य अर्थपद प्ररूपणता से क्या प्रयोजन सधता है? यह बात सूत्रकार ने इस सूत्रद्वारा स्पष्ट की है। इसमें उन्हों ने भंग समुत्कीर्त्तनता का प्रयोजन कहा है, इस भंगसमुत्कीर्तनता में मूल में ३ पद हैं १ आनुपूर्वी, २ अनानुपूर्वी और तीसरा अवक्तव्यक। आनुपूर्वी का वाच्यार्थ क्या है? यह सब पहिले स्पष्ट कर दिया गया है।

(अहवा-अत्थिआणुपुव्वी य अवत्तव्वए य) अथवा (५) आनुपूर्वी छे. अवक्तव्यक छे. (अहवा-अत्थि अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य) अथवा (६) अनानुपूर्वी छे, अवक्तव्यक छे. (अहवा-अत्थि आणुपुव्वी य, अणाणुपुव्वी य, अवत्तव्वए य) अथवा (७) आनुपूर्वी छे, अनानुपूर्वी छे अने अवक्तव्यक छे. (एवं सत्त भंगी) आ प्रकारे अहीं सात भांगा (विकल्पो) बने छे. (से तं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया) आ प्रकारनुं संग्रहनयसंमत भंगसमुत्कीर्तनतानुं स्वरूप छे.

भावार्थ-संग्रहनयसंमत अर्थपदप्ररूपणतानुं प्रयोजन: आ सूत्रद्वारा सूत्रकारे प्रकट कर्युं छे. तेमणे आ सूत्रमां एवुं प्रतिपादन कर्युं छे के अर्थपद प्ररूपणता वडे भंगसमुत्कीर्तनता रूप प्रयोजन सिद्ध थाय छे. आ भंगसमुत्कीर्तनामां मूळ त्रण पद छे. ते त्रण पद आ प्रमाणे छे- (१) आनुपूर्वी, (२) अनानुपूर्वी अने (३) अवक्तव्यक आनुपूर्वी आदिनो वाच्यार्थ पहेलां स्पष्ट करवामां आव्यो छे. आ त्रणे पदोने स्वतंत्र रूपे

टीका—'एयाएणं' इत्यादि-

अत्र-एकपदमाश्रित्य त्रयो भङ्गाः, पदद्वयसंयोगमाश्रित्य त्रयो भङ्गाः, पदत्रयसंयोगमाश्रित्य एको भङ्गः। इत्थं सप्त भङ्गा बोद्धव्याः। भङ्गस्थापना मूलोक्तक्रमेणैव बोध्या। अस्य सूत्रस्य व्याख्या कृतप्राया ॥सू० ९३॥

भङ्गोपदर्शनतां प्रदर्शयति-

मूलम्-एयाए णं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणयाए किं पओयणं? एयाए णं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणयाए संगहस्स भंगोवदंसणया कीरइ। से किं तं संगहस्स भंगोवदंसणया? संगहस्स भंगोवदंसणया-तिप्पएसिया आणुपुव्वी१ परमाणुपोग्गला अणाणुपुव्वी२ दुप्पएसिया अवत्तव्वए३। अहवा तिप्पएसिया य परमाणुपोग्गला य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य ४। अहवा तिप्पएसिया य दुप्पएसिया य आणुपुव्वी य अवत्तव्वए य ५। अहवा परमाणुपोग्गला य दुप्पएसिया य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य६। अहवा-तिपएसिया य परमाणुपोग्गला य दुप्पएसिया य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य७। से त्तं संगहस्स भंगोवदंसणया ॥सू० ९४॥

इनमें १ एक आनुपूर्वी २ अनानुपूर्वी और तीसरा अवक्तव्यक इन तीन पदों को स्वतंत्ररूप से आश्रित हो करके ३ भंग हो जाते हैं। तथा आनुपूर्वी अनानुपूर्वी, आनुपूर्वी अवक्तव्यक और अनानुपूर्वी अवक्तव्यक ये तीन भंग दो दो पदों के संयोग को लेकर बने हैं। और आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी' अवक्तव्यक यह सातवां भांगा तीन पदों के संयोग से बना है। इस प्रकार तीन पदों के स्वतंत्रता और संयोग से ये ७ भंग बने हुए हैं। ॥ सू० ९३ ॥

લઈને ત્રણ ભાંગા બને છે. દ્વિસંયોગી ત્રણ ભાંગા નીચેના બબ્બે પદોના સંયોગથી બને છે-આનુપૂર્વી અને અનાનુપૂર્વી, આનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક આનુપૂર્વી, અનાનુપૂર્વી, અને અવક્તવ્યક, ત્રણ પદોના સંયોગી સાતમો ભાંગો બને છે. આ રીતે ત્રણ પદોના અસંયોગી ત્રણ ભાંગા, દ્વિકસંયોગી ત્રણ ભાંગા અને ત્રિકસંયોગી એક ભાંગે મળીને કુલ સાત ભાંગા બને છે. ॥સૂ૦૯૩॥

छाया—एतया खलु संग्रहस्य भङ्गसमुत्कीर्त्तनतया किं प्रयोजनम्? एतया खलु संग्रहस्य भंगसमुत्कीर्त्तनतया संग्रहस्य भङ्गोपदर्शनता क्रियते। अथ का सा संग्रहस्य भङ्गोपदर्शनता? संग्रहस्य भङ्गोपदर्शनता त्रिप्रदेशिका आनुपूर्वी १ परमाणुपुद्गला अनानुपूर्वी २, द्विप्रदेशिका अवक्तव्यम् ३। अथवा—त्रिप्रदेशिकाश्च पर-

अब सूत्रकार भंगोपदर्शनता का कथन करते हैं—

"एयाएणं संगहस्स" इत्यादि।

शब्दार्थ—(एयाएणं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणयाए किं पओयणं) हे भदन्त संग्रहनय मान्य इस भंगसमुत्कीर्तनता से क्या प्रयोजन सिद्ध होता है?

उत्तर—(एयाएणं संगहस्स समुक्कित्तणयाए भंगोवदंसणया कीरइ) संग्रहनय मान्य इस भंग समुत्कीर्तनता से संग्रहनय मान्य भंगोपदर्शनता दिखलाई जाती है। (से किं तं संगहस्स भंगोवदंसणया?)हे भदन्त! संग्रनय मान्य भंगोपदर्शनता क्या है?

उत्तर—(संगहस्स भंगोवदंसणया) संग्रहनय मान्य भंगोपदर्शनता यह है (तिप्पएसिए आणुपुव्वी) यावन्मात्र त्रिप्रदेशी स्कन्ध है वे एक १ आनुपूर्वी हैं। इस प्रकार आनुपूर्वी इस शब्द के वाच्यार्थ से यावन्मात्र त्रिप्रदेशी स्कंध हैं वे सब संगृहीत हो जाते हैं। (परमाणुपोग्गला अणाणुपुव्वी) यावन्मात्र परमाणु पुद्गल हैं वे एक अनानुपूर्वी हैं— इस प्रकार

હવે સૂત્રકાર ભંગોપદર્શનતાનું નિરૂપણ કરે છે—

"एयाएणं संगहस्स" ઈત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(एयाएणं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणयाए किं पओयणं ? હે ભગવન્! સંગ્રહનયમાન્ય આ ભંગસમુત્કીર્તનતા વડે કયું પ્રયોજન સિદ્ધ થાય છે?

ઉત્તર—(एयाएणं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणयाए संगहस्स भंगोवदंसणया कीरइ) સંગ્રહનયમાન્ય આ ભંગસમુત્કીર્તનતા વડે સંગ્રહનય માન્ય ભંગોપદર્શનતા બતાવવામાં આવે છે. (से किं तं संगहस्स भंगोवदंसणया ?) હે ભગવન્! સંગ્રહનયમાન્ય ભંગોપદર્શનતાનું કેવું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર—(संगहस्स भंगोवदंसणया) સંગ્રહનયમાન્ય ભંગોપદર્શનતાનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે—

(तिप्पएसिया आणुपुव्वी) જેટલા ત્રિપ્રદેશી સ્કંધો છે, તેઓ એક જ આનુપૂર્વી રૂપ છે. આ રીતે જેટલા ત્રિપ્રદેશી સ્કંધો છે તેમને અહીં આનુપૂર્વી શબ્દના વાચ્યાર્થ રૂપે ગ્રહણ કરવા જોઇએ. (परमाणुपोग्गला अणाणु-

माणुपुव्वी च अनाणुपुव्वी च ४। अथवा-त्रिप्रदेशिकाश्च द्विप्रदेशिकाश्च आनुपूर्वी च अवक्तव्यकं च ५। अथवा-परमाणुपुद्गलाश्च द्विप्रदेशिकाश्च अनानुपूर्वी च अवक्तव्यकं च ६। अथवा-त्रिप्रदेशिकाश्च परमाणुपुद्गलाश्च द्विप्रदेशिकाश्च आनुपूर्वी च अनानुपूर्वी च अवक्तव्यकं च ७। सैषा संग्रहस्य भङ्गोपदर्शनता॥सू०९४॥

टीका—'एयाएणं' इत्यादि।

अत्रापि सप्त भङ्गा बोध्याः। अस्य सूत्रस्य व्याख्याकृतप्राया ३ ॥सू० ९४॥

अथ समवतारं प्रदर्शयति-

मूलम्—से किं तं संगहस्स समोयारे? संगहस्स समोयारे-संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं कहिं समोयरंति? किं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति? अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति? अवत्तव्वगदव्वेहिं समोयरंति? संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति नो अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति नो

अनानुपूर्वी इस शब्द के वाच्यार्थ से यावन्मात्र परमाणु पुद्गल हैं वे सब अनानुपूर्वी इस एक पद से संगृहीत हो जाते हैं। (दुप्पएसिया अवत्तव्वए) इसी प्रकार यावन्मात्र द्विप्रदेशी स्कंध हैं वे एक अवक्तव्यक हैं इस प्रकार अवक्तव्यक इस शब्द के वाच्यार्थ से यावन्मात्र द्विप्रदेशी स्कंध हैं वे सब अवक्तव्यक इस एक शब्द से संगृहीत हो जाते हैं। इसी प्रकार से द्विसंयोगी तीन पदों का और त्रिसंयोगी १ एक पद का भी वाच्यार्थ समझ लेना चाहिये। इसी विषय को सूत्रकार ने 'अहवा' आदि पदों द्वारा कहा है इन समस्त पदों की व्याख्या पहिले की जा चुकी है। ॥ सू० ९४ ॥

पुव्वी) જેટલાં પરમાણુ પુદ્ગલો છે, તેઓ એક અનાનુપૂર્વી રૂપ છે. આ રીતે સમસ્ત પરમાણુ પુદ્ગલોને અહીં અનાનુપૂર્વી પદના વાચ્યાર્થ રૂપે ગ્રહણ કરવામાં આવેલ છે. (दुप्पएसिया अवत्तव्वए) જેટલાં દ્વિપ્રદેશી સ્કંધો છે, તેઓ એક અવક્તવ્યક રૂપ છે. આ રીતે "अवक्तव्यक" આ પદનો વાચ્યાર્થ સમસ્ત દ્વિપ્રદેશી સ્કંધો છે તેથી "अवक्तव्यक" આ એક પદના પ્રયોગ દ્વારા સમસ્ત દ્વિપ્રદેશી સ્કંધો ગ્રહણ થઈ જાય છે. એજ પ્રમાણે દ્વિસંયોગી ત્રણ ભાંગાઓનો અને ત્રિસંયોગી એક ભાંગાનો વાચ્યાર્થ પણ સમજી લેવો જોઈએ. આ વિષયનું સૂત્રકારે "अहवा" આદિ પૂર્વોક્ત પદો દ્વારા કથન કર્યું છે. આ બધા પદોની વ્યાખ્યા પહેલાં આપવામાં આવી ચુકી છે. ॥સૂ०૯૪॥

अवत्तव्वगदव्वेहिं समोयरंति। एवं दोन्नि वि सट्ठाणे सट्ठाणे समोयरंति। से तं समोयारे ॥सू० ९५॥

छाया—अथ कः स संग्रहस्य समवतारः? संग्रहस्य समवतारः-संग्रहस्य आनुपूर्वीद्रव्याणि कुत्र समवतरन्ति ? किमानुपूर्वीद्रव्येषु समवतरन्ति ? अनानुपूर्वीद्रव्येषु समवतरन्ति ? अवक्तव्यकद्रव्येषु समवतरन्ति ? संग्रहस्य आनुपूर्वीद्रव्याणि

अब सूत्रकार संग्रहनय मान्य समवतार का स्वरूप कहते हैं—

"से किं तं" इत्यादि।

शब्दार्थ-(से किं तं संगहस्स समोयारे) हे भदन्त संग्रहनय मान्य समवतार का क्या स्वरूप है ?

उत्तर- (संगहस्स समोयारे) संग्रहनय मान्य समवतार का स्वरूप इस प्रकार से है समवतार का अर्थ समावेश- मिलना है। अर्थात् आनुपूर्वी आदि जो द्रव्य है उनका अन्तर्भाव मिलना स्वस्थान में होता है या परस्थान में होता है ? इस प्रकार चिन्तन प्रकार का जो उत्तर है वह समावेश है। यह विचार प्रकार इस प्रकार से होता है कि संग्रह नय संमत आनुपूर्वी द्रव्य कहांपर समाविष्ट होते हैं ? (किं आणुपुव्वेहिं समोयरंति ? अणाणुपुव्वेहिं-समोयरंति, अवत्तव्वगदव्वेहिं समोयरंति ?) क्या आनुपूर्वी द्रव्यों में समाविष्ट होते हैं? या अनानुपूर्वीद्रव्यों में समाविष्ट होते हैं या अवक्तव्यक द्रव्यों में समाविष्ट होते हैं।

હવે સૂત્રકાર સંગ્રહનયસંમત સમવતારના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે—

"से किं तं" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(से किं तं संगहस्स समोयारे ?) હે ભગવન્! સંગ્રહનય સંમત સમવતારનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર—"संगहस्स समोयारे" સંગ્રહનયમાન્ય સમવતારનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે-(સમવતાર એટલે સમાવેશ અથવા મિલન) એટલે કે "આનુપૂર્વી આદિ જે દ્રવ્યો છે તેમનો અન્તર્ભાવ (સમાવેશ) સ્વસ્થાનમાં થાય છે કે પરસ્થાનમાં થાય છે ?" આ પ્રકારની વિચારધારાનો જે ઉત્તર છે, તેનું નામ સમવતાર છે અ. વિચારધારા આ પ્રમાણે ચાલે છે-સંગ્રહનયસંમત આનુપૂર્વી દ્રવ્યોનો ક્યાં સમાવેશ થાય છે ? (किं आणुपुव्वी दव्वेहिं समोयरंति ? अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति ? अवत्तव्वगदव्वेहिं समोयरंति ?) શું આનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાં સમાવિષ્ટ થઈ જાય છે-મળી જાય છે ? કે અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાં સમાવિષ્ટ થઇ જાય છે ? કે અવક્તવ્યક દ્રવ્યોમાં સમાવિષ્ટ થઈ જાય છે.

आनुपूर्वीद्रव्येषु समवतरन्ति, नो अनानुपूर्वीद्रव्येषु समवतरन्ति नो अवक्तव्यक-द्रव्येषु समवतरन्ति। एवं द्वावपि स्वस्थाने स्वस्थाने समवतरतः। स एष समवतारः ॥सू० ९५॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि—

अस्य सूत्रस्य व्याख्या कृतप्रायैवेति ४॥सू० ९५॥

अथ पञ्चमं भेदमनुगमं निरूपयति—

मूलम्—से किं तं अणुगमे? अणुगमे अट्ठविहे पण्णत्ते, तं जहा—'संतपयपरूवणया, दव्वप्पमाणं च खित्तं फुसणा य। कालो य अंतरं भाग भावे अप्पाबहुं नत्थि॥१॥' संगहस्स आणुपुव्वी-दव्वाइं किं अत्थि णत्थि? नियमा अत्थि, एवं दोन्नि वि ॥१॥ संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं किं संखिज्जाइं असंखिज्जाइं अणंताइं? नो संखिज्जाइं नो असंखिज्जाइं नो अणंताइं, नियमा एगो

उत्तर—संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति, नो अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति, नो अवत्तव्वगदव्वेहिं समोयरंति) संग्रहनय संमत समस्त आनुपूर्वीद्रव्य स्वस्थान रूप आनुपूर्वीद्रव्यों में ही समाविष्ट होते हैं। परस्थान रूप अनानुपूर्वीद्रव्यों में या अवक्तव्यक द्रव्यों में समाविष्ट नहीं होते हैं। (एवं दोन्नि वि सट्ठाणेसट्ठाणे समोयरंति) इसी प्रकार से संग्रहनय संमत अनानुपूर्वीद्रव्य और अवक्तव्यक द्रव्य भी क्रमशः अपने अपने स्थानरूप अनानुपूर्वीद्रव्यों में और अवक्तव्यकद्रव्यों में समाविष्ट होते हैं। इसकी व्याख्या ८० सूत्र के समान जाननी चाहिये ॥ सू० ९५ ॥

उत्तर—(संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति, नो अवत्तगदव्वेहिं समोयरंति नो अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति) संग्रहनयसंमत समस्त आनुपूर्वी द्रव्यो स्वस्थान રૂપ આનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાં જ સમાવિષ્ટ થાય છે, પરસ્થાન રૂપ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાં કે અવક્તવ્યક દ્રવ્યોમાં સમાવિષ્ટ થતાં નથી. (एवं दोन्नि वि सट्ठाणे सट्ठाणे समोयरंति) એજ પ્રમાણે સંગ્રહનયસંમત અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય અને અવક્તવ્યક દ્રવ્ય પણ અનુક્રમે પોતપોતાના સ્થાનરૂપ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાં અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યોમાં સમાવિષ્ટ થાય છે. તેનું સ્પષ્ટીકરણ ૮૦માં સૂત્રમાં કહ્યા પ્રમાણે સમજવું. ॥સૂ૦૯૫॥

रासी, एवं दोन्नि वि ॥२॥ संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स कइभागे होज्जा ? किं संखेज्जइभागे होज्जा असंखेज्जइभागे होज्जा संखेज्जेसु भागेसु होज्जा असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा ? सव्वलोए होज्जा ? नो संखेज्जइभागे होज्जा नो असंखेज्जइ भागे होज्जा नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा नो असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा, नियमा सव्वलोए होज्जा, एवं दोन्नि वि ॥३॥ संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स किं संखेज्जइभागं फुसंति ? असंखेज्जइभागं फुसंति ? संखिज्जे भागे फुसंति ? असंखिज्जे भागे फुसंति ? सव्वलोगे फुसंति ? नो संखेज्जइभागं फुसंति जाव नियमा सव्वलोगं फुसंति। एवं दोन्नि वि ॥४॥ संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं कालओ केवच्चिरं होंति ? सव्वद्धा। एवं दोण्णि वि॥५॥ संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाणं कालओ केवच्चिरं अंतरं होई ? नत्थि अंतरं, एवं दोण्णि वि।६। संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं सेसदव्वाणं कइभागे होज्जा ? किं संखेज्जइभागे होज्जा ? असंखेज्जइभागे होज्जा ? संखेज्जेसु भागेसु होज्जा ? असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा ? नो संखेज्जइभागे होज्जा, नो असंखेज्जइभागे होज्जा नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा नो असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा, नियमा तिभागे होज्जा। एवं दोन्नि वि ।७। संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं कयरंमि भावे होज्जा ? नियमा साइपारिणामिए भावे होज्जा। एवं दोन्नि वि। ८। अप्पाबहुं नत्थि। से तं अणुगमे। से तं संगहस्स अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी। से तं अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी ॥सू० ९६॥

छाया—अथ कोऽसौ अनुगमः ? अनुगमः अष्टविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–'सत्पद-प्ररूपणता द्रव्यप्रमाणं च क्षेत्रं स्पर्शना च। कालश्च अन्तरं भागो भावः, अल्प-बहुत्वं नास्ति ॥१॥' संग्रहस्य आनुपूर्वीद्रव्याणि किं सन्ति न सन्ति ? नियमात् सन्ति। एवं द्वे अपि ॥१॥ संग्रहस्य आनुपूर्वीद्रव्याणि किं संख्येयानि असंख्येयानि अनन्तानि ? नो संख्येयानि नो असंख्येयानि नो अनन्तानि। नियमात् एको राशिः। एवं द्वे अपि ॥२॥ संग्रहस्य आनुपूर्वीद्रव्याणि लोकस्य कतिभागे भवन्ति ? किं संख्येयतमभागे भवन्ति ? असंख्येयतमभागे भवन्ति ? संख्येयेषु भागेषु भवन्ति ? असंख्येयेषु भागेषु भवन्ति ? सर्वलोके भवन्ति ? नो संख्येयतमभागे, भवन्ति नो असंख्येयतमभागे भवन्ति. नो संख्येयेषु भागेषु भवन्ति, नो असं-ख्येयेषु भागेषु भवन्ति। नियमात् सर्वलोकं भवन्ति। एवं द्वे अपि ॥३॥ संग्रहस्य आनुपूर्वीद्रव्याणि लोकस्य किं संख्येयतमभागं स्पृशन्ति ? असंख्येयतमभागं स्पृ-शन्ति ? संख्येयान् भागान् स्पृशन्ति ? असंख्येयान् भागान् स्पृशन्ति ? सर्वलोकं स्पृशन्ति ? नो संख्येयतमभागं स्पृशन्ति यावत् नियमात् सर्वलोकं स्पृशन्ति। एवं द्वे अपि ॥४॥ संग्रहस्य आनुपूर्वीद्रव्याणि कालतः कियच्चिरं भवन्ति ? सर्वाद्धा। एवं द्वे अपि ॥५॥ संग्रहस्य आनुपूर्वीद्रव्याणां कालतः कियच्चिरमन्तरं भवति ? नास्ति अन्तरम्। एवं द्वे अपि ॥६॥ संग्रहस्य आनुपूर्वीद्रव्याणि शेषद्रव्याणां कति-भागे भवन्ति ? किं संख्येयतमभागे भवन्ति ? असंख्येयतमभागे भवन्ति ? संख्येयेषु भागेषु भवन्ति ? असंख्येयेषु भागेषु भवन्ति ? नो संख्येयतमभागे भवन्ति, नो असं-ख्येयतमभागे भवन्ति नो संख्येयेषु भागेषु भवन्ति, नो असंख्येयेषु भागेषु भवन्ति, नियमात् त्रिभागे भवन्ति। एवं द्वे अपि ॥७॥ संग्रहस्य आनुपूर्वीद्रव्याणि कतर-स्मिन् भावे भवन्ति ? नियमात् सादिपारिणामिके भावे भवन्ति। एवं द्वे अपि ॥८॥ अल्पबहुत्वं नास्ति। स एषोऽनुगमः। सैषाऽनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी ॥सू० ९६॥

टीका—' से किं तं ' इत्यादि–

अथ कोऽसौ अनुगमः ?=संग्रहनयसम्मतोऽनुगमः कः ? इति प्रश्नः। उत्तर-माह–अनुगमोऽष्टविधः प्रज्ञप्तः। तद्यथा–सत्पदप्ररूपणता, द्रव्यप्रमाणं क्षेत्रं स्पर्शना-

---

अब सूत्रकार पांचवें भेद अनुगम का निरूपण करते हैं—

"से किं तं अणुगमे" इत्यादि।

शब्दार्थ–(से किं तं अणुगमे) हे भदन्त ! संग्रहनय संमत अनुगम का क्या स्वरूप है ?

હવે સૂત્રકાર સંગ્રહનય સંમત અનુગમના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે–

"से किं तं अणुगमे" ઇત્યાદિ

શબ્દાર્થ–(से किं तं अणुगमे ?) હે ભગવન્ ! સંગ્રહનયમાન્ય અનુગમનું સ્વરૂપ કેવું કહ્યું છે ?

कालः अन्तरं भागो भावश्चेति। अल्पबहुत्वरूपोऽनुगमस्तु संग्रहनयमते नास्ति, अस्य नयस्य सामान्यवादित्वात्। सम्प्रति सत्पदप्ररूपणतां प्ररूपयति–' संगहस्स आणुपुव्वी दव्वाइं किं अत्थि नत्थि ' इत्यादि। संग्रहसम्मतानि आनुपूर्वीद्रव्याणि

उत्तर– (अणुगमे अट्ठविहे पण्णत्ते) अनुगम आठ प्रकार का कहा गया है (तं जहा) वे प्रकार ये हैं— (संतपयपरूवणया दव्वप्पमाणं च खित्तं फुसणा य, कालोय अंतरं भाग भावे अप्पाबहुं नत्थि) सत्पदप्ररूपणता १, द्रव्यप्रमाण २, क्षेत्र ३, स्पर्शना ४, काल ५, अन्तर ६, भाग७ और भाव८ अल्पबहुत्व अनुगम का प्रकार यहां नहीं है क्योंकि संग्रहनय सामान्यवादी है। "संगहस्सआणुपुव्वी दव्वाइं किं अत्थि णत्थि णियमा अत्थि एवं दोन्नि वि" सत्पदप्ररूपणता के निमित्त सूत्रकार कहते हैं कि इस सत्पद प्ररूपणा में यह प्ररूपित किया जाता है कि जिस प्रकार से शशशृंग आदिपद असदर्थ को विषय करने वाले होते हैं उस प्रकार से ये आनुपूर्वी आदि पद असदर्थ विषयक नहीं हैं, किन्तु जैसे स्तंभआदि पद स्तंभ रूप अपने वास्तविक अर्थ को विषय करते हैं उसी प्रकार से ये आनुपूर्वी आदिपद भी वास्तविक आनुपूर्वी आदि को विषयक करते हैं, इसलिये (संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि ण·

उत्तर–(अणुगमे अट्ठविहे पण्णत्ते) अनुगम आठ प्रकारनो कह्यो छे. (तंजहा) ते प्रकारो नीचे प्रमाणे छे–

(संतपयपरूवणया, दव्वप्पमाणं च खित्तं फुसणा य, कालो य अंतरं भाग भावे अप्पाबहुं नत्थि) (१) सत्पदप्ररूपणुता, (२) द्रव्यप्रमाणु, (३) क्षेत्र, (४) स्पर्शना, (५) काळ, (६) अन्तर, (७) भाग अने (८) भाव. अल्पबहुत्व रूप अनुगमनो प्रकार अहीं नथी, कारणु के संग्रहनय सामान्यवादी छे. (संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि णत्थि ? णियमा अत्थि एवं दोन्नि वि) हवे सूत्रकार सत्पदप्ररूपणुतानुं स्वरूप समजावे छे– सत्पदप्ररूपणुतामां ओ वातनी प्ररूपणा करवामां आवे छे के जे प्रकारे शशशृंग (ससलाना शिंगडां) आदि पद असदर्थ (अविद्यमान पदार्थ)नुं प्रतिपादन करनारा होय छे, ओ प्रकारे आ आनुपूर्वी आदि पदो असदर्थनुं प्रतिपादन करनारा नथी परन्तु जेम स्तंभ आदि पदो स्तंभरूप पोताना वास्तविक अर्थने प्रतिपादित करे छे, एज प्रमाणे आनुपूर्वी आदि पद पणु वास्तविक आनुपूर्वी आदि सदर्थनुं (विद्यमान पदार्थनुं) प्रतिपादन करे छे. तेथी (संगहस्स आणुपुव्वी दव्वाइं किं अत्थि णत्थि ?) " संग्रहनयसंमत आनुपूर्वी द्रव्य छे के नहीं?"

किं सन्ति ? न वा सन्ति ? इति प्रश्नः । उत्तरमाह–नियमात् सन्ति=आनुपूर्वीद्रव्याणां सद्भावः संग्रहनयमतेऽस्त्येवेत्यर्थः ।

ननु संग्रहविचारे प्रक्रान्ते 'आनुपूर्वीद्रव्याणि' इति बहुत्वेन निर्देशोऽनुपपन्नः, संग्रहनयमते आनुपूर्वीसामान्यस्यैवाऽभ्युपगमादितिचेत्, उच्यते-संग्रहनयमते मुख्यतया सामान्यमेवाभ्युपगम्यते, तथापि गौणरीत्या व्यवहारनयमते द्रव्यबहुत्वमपेक्ष्य बहुत्वेन निर्देशः कृत इति नास्ति कश्चिद् दोषः । एवं संग्रहनयमते द्वयोरनानुपूर्व्यवक्तव्यकयोर्विषयेऽपि बोध्यम् । अनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्याणां सद्भावो नियमादस्तीत्यर्थः । अथ द्रव्यप्रमाणंनिरूपयितुमाह–'संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं किं संखिज्जाइं' इत्यादि-संग्रहनयसम्मतानि आनुपूर्वीद्रव्याणि किं संख्येयानि सन्ति ? किमसंख्येयानि सन्ति ? किंवा–अनन्तानि सन्ति ? इति प्रश्नः । उत्तरमाह–

त्थि" संग्रहनय संमत आनुपूर्वी द्रव्य हैं या नहीं हैं, इस प्रकार की शंका का समाधान यह है कि ये (नियमा अत्थि) नियम से हैं । इसी प्रकार से अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों के विषय में भी यही समझना चाहिये कि ये दोनों द्रव्य नियम से हैं । द्रव्यप्रमाण में आनुपूर्वी आदि पदों द्वारा जिन द्रव्यों को कहा गया है उनकी संख्या का निर्धारण होता है–जैसे (संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं किं संखिज्जाइं असंखिज्जाइं अणंताइं ?) संग्रहनय संमत आनुपूर्वीद्रव्य क्या संख्यात हैं या असंख्यात या अनंत हैं ?

उत्तर (नो संखिज्जाइं नो असंखिज्जाइं नो अणंताइं) न संख्यात हैं न असंख्यात हैं, और न अनंत हैं किन्तु (नियमा एगो रासी) नियम से एक राशिरूप हैं

આ પ્રશ્નનો આ પ્રમાણે ઉત્તર આપી શકાય. (णियमा अत्थि) "આનુપૂર્વી દ્રવ્યો અવશ્ય છે જ એજ પ્રમાણે અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યોના વિષયમાં પણ એવું સમજવું જોઈએ કે એ બ-ને દ્રવ્યો પણ અવશ્ય વિદ્યમાન છે.

દ્રવ્યપ્રમાણમાં એ વાતનો વિચાર કરવામાં આવે છે કે આનુપૂર્વી આદિ પદો દ્વારા જે દ્રવ્યોનું કથન કરવામાં આવે છે તે દ્રવ્યોની સંખ્યા કેટલી છે. જેમ કે (संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं किं संखिज्जाइं असंखिज्जाइं अणंताइं ?) હે ભગવન્! સંગ્રહનયસંમત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો શું સંખ્યાત છે, કે અસંખ્યાત છે કે અનંત છે ?

ઉત્તર–(नो संखिज्जाइं, नो असंखिज्जाइं नो अणंताइं) સંગ્રહનયસંમત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો સંખ્યાત પણ નથી, અસંખ્યાત પણ નથી અને અનંત પણ નથી, પરન્તુ (नियमा एगो रासी) નિયમથી એક જ રાશિરૂપ છે.

तंव्यवहनये आनुपूर्वीद्रव्याणि नो संख्येयानि नो असंख्येयानि नो अनन्तानि सन्ति। किन्तु नियमात् एको राशिरस्ति।

ननु आनुपूर्वीद्रव्याणां संख्येयादित्वाभावादेकराशित्वमपि नोपपद्यते, द्रव्यबाहुल्ये सत्येव तस्योपपद्यमानत्वात्, दृश्यते च लोके व्रीहिबाहुल्ये 'व्रीहिराशिः' इति व्यवहारः, ? इतिचेत्, उच्यते-संख्येयादित्वाभावेऽपि स्व स्वरूपात् आनुपूर्वीद्रव्यबाहुल्यं विद्यते। तेषामानुपूर्वीत्वसमान्यमाश्रित्य यदेकत्वं तदपेक्षया एकराशित्वमिति 'एकोराशिः' इत्यस्याभिप्रायः, इति नास्तिकश्चिद् दोषः। यद्वा-

---

शंका-जब आनुपूर्वीद्रव्य संख्यात आदिरूप नहीं हैं तो उनमें एकराशि रूपता भी कैसे बनसकती है ? क्योंकि यह राशिरूपता द्रव्य बहुलता में ही होती है। लोक में भी ऐसा ही देखा जाता है की जब धान्य बहुत होता है तब "यह व्रीहिराशि" है ऐसा व्यवहार होता है।

उत्तर-संख्यात आदि रूपता के अभाव में भी अपने स्वरूप को लेकर आनुपूर्वीद्रव्यों में बहुलता है। अतः आनुपूर्वीत्व सामान्य का आश्रय करके इनमें जो एकता है उसकी अपेक्षा ये एक राशिरूप है ऐसा कहने का अभिप्राय सूत्रकार का है। इसमें कोई दोष नहीं है। तात्पर्य कहने का यह है कि त्रिप्रदेशिक एक आनुपूर्वी है, चतुष्प्रदेशिक एक आनुपूर्वी है पंचप्रदेशिक एक आनुपूर्वी है इत्यादि अनंत प्रदेशिक एक आनुपूर्वी है। इस प्रकार से सब आनुपूर्वियों के स्वरूप

શંકા-જો આનુપૂર્વી દ્રવ્ય સંખ્યાત આદિ રૂપ ન હોય તો તેમાં એક રાશિરૂપતા કેવી રીતે સંભવી શકે છે? કારણ કે આ રાશિરૂપતા તો દ્રવ્યની બહુલતામાં જ સંભવી શકે છે. લોકમાં પણ એવું જ જોવામાં આવે છે કે જ્યારે ધાન્ય ઘણું જ હોય છે ત્યારે એમ કહેવામાં આવે છે કે "આ ચોખાનો ઢગલો (રાશિ) છે.

ઉત્તર-સંખ્યાત આદિ રૂપતાનો અભાવ હોવા છતાં પણ પોતાના સ્વરૂપની દૃષ્ટિએ આનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાં બહુલતા (વિપુલતા) છે. તેથી આનુપૂર્વીત્વ સામાન્યની અપેક્ષાએ તે દ્રવ્યોમાં જે એકતા છે તે એકતાને અનુલક્ષીને સૂત્રકારે અહીં એવું કહ્યું છે કે "આનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાં એકરાશિરૂપતા છે." તેથી આ પ્રકારના કથનમાં કોઈ દોષ નથી આ કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે ત્રિપ્રદેશિક એક આનુપૂર્વી ચાર પ્રદેશિક એક આનુપૂર્વી છે, પાંચ પ્રદેશિક પર્યન્તના સ્કંધોની એક એક આનુપૂર્વી છે. આ પ્રકારે બધી આનુપૂર્વીઓના સ્વરૂપ ભિન્ન ભિન્ન છે, પરન્તુ તે સઘળી આનુપૂર્વીઓમાં

यथा-यथा विशिष्टैकपरिणामपरिणते स्कन्धे तदारम्भकपरमाणूनां बाहुल्येऽपि तद्गतैकत्वमेव मुख्यतया विवक्ष्यते, तथैवात्राऽपि आनुपूर्वीद्रव्यबाहुल्येऽपि एकमानुपूर्वीत्वसामान्यमाश्रित्य एकत्वमेव मुख्यतया विवक्षितम्, अतो मुख्यमेकत्वमाश्रित्यैव संख्येयत्वादयो निषिध्यते। गुणभूतानि द्रव्याण्याश्रित्य तु राशित्वमपि न विरुध्यते इति न कश्चिद् दोषः। एवमनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्यविषयेऽपि बोध्यम्।

भिन्न २ है-सो इन सब में आनुपूर्वीत्वरूप सामान्य की अपेक्षा करके एकता मान ली जाती है-इस अपेक्षा इनमें एकराशिरूपता मानी गई है ? अथवा-जैसे विशिष्ट एक परिणाम स्कंध द्रव्य में तदारम्भक परमाणुओं की बहुलता होने पर भी तद्गत एकता ही मुख्य रूप से विवक्षित रूप से होती है, उसी प्रकार यहांपर भी राशिरूपता में भी आनुपूर्वीद्रव्यों की बहुलता होने पर भी एक आनुपूर्वीत्व रूप सामान्य को आश्रित करके एकत्व ही मुख्यतया विवक्षित हुआ है। और इसी कारण इस मुख्य एकत्व को लेकर के संख्येयत्व आदि निषिद्ध हुए हैं। अतः आनुपूर्वीद्रव्य में एक राशिरूपता विरुद्ध नहीं है। तथा गौण हुए व्यक्तिरूप द्रव्यों को आश्रित करके एक राशिपना भी विरुद्ध नहीं होता है। (एवं दोन्निवि) इसी प्रकार से आनुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्य में भी एकराशिता का उद्भवन कर लेना चाहिए।

આનુપૂર્વીત્વરૂપ સામાન્યની અપેક્ષાએ એકતા માની લેવામાં આવી છે. તેથી તે અપેક્ષાએ આનુપૂર્વીઓમાં એકરાશિરૂપતા માની લેવામાં આવી છે. અથવા-જેમ કોઈ એક વિશિષ્ટ પરિણામ સ્કંધદ્રવ્યમાં તદારંભક (તેનો આરંભ કરનારા) પરમાણુઓની બહુતા હોવા છતાં પણ તદ્ગત એકતા જ મુખ્ય રૂપે વિવક્ષિત થાય છે, એજ પ્રમાણે અહીં પણ-રાશિરૂપતામાં પણ આનુપૂર્વી દ્રવ્યોની બહુતા હોવા છતાં પણ એક આનુપૂર્વીત્વ રૂપ સામાન્યને આધારે એકત્વ જ મુખ્યત્વે વિવક્ષિત થયું છે, અને એજ કારણે આ મુખ્ય એકત્વને લીધે સંખ્યેયત્વ, અસંખ્યેયત્વ આદિનો નિષેધ થયો છે. તેથી આનુપૂર્વી દ્રવ્યમાં એકરાશિરૂપતા માનવામાં કોઈ દોષ નથી. તથા ગૌણ પદાર્થ રૂપ દ્રવ્યોને આશ્રિત કરીને એકરાશિત્વ પણ વિરુદ્ધ પડતું નથી. (एवं दोन्नि वि) એજ પ્રમાણે અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યમાં પણ એકરાશિત્વ ગ્રહણ કરવું જોઇએ અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યમાં પણ એકરાશિત્વ સમજી લેવું જોઇએ હવે સૂત્રકાર સંગ્રહનયસંમત ક્ષેત્રનું નિરૂપણ કરે છે—

अथ क्षेत्रं निरूपयितुमाह–'संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स कइभागे होज्जा?' इत्यादि–संग्रहनयसम्मतानि आनुपूर्वीद्रव्याणि लोकस्य कतिभागे=कियद्भागे भवन्ति ? किं संख्येयतमभागे भवन्ति ? किमसंख्येयतमभागे भवन्ति ? किं संख्येयेषु भागेषु भवन्ति? किमसंख्येयेषु भागेषु भवन्ति ? किं सर्वलोके भवन्ति ? इति प्रश्नः। उत्तरमाह-संग्रहनयसम्मतानि आनुपूर्वीद्रव्याणि लोकस्य संख्येयतमभागे नो भवन्ति, असंख्येयतमभागे नो भवन्ति, संख्येयेषु भागेषु नो भवन्ति, असंख्येयेषु भागेषु चापि नो भवन्ति, किन्तु नियमात् सर्वलोके भवन्ति। आनुपूर्वीसामान्यस्यैकत्वात् सर्वलोकव्यापित्वाच्च नियमात् सर्वलोके तत्सत्ता बोध्या।

अब सूत्रकार क्षेत्र का निरूपण करते हैं–

प्रश्न– (संगहस्स आणुपुव्वी दव्वाइं लोगस्स कइभागे होज्जा?) संग्रहनय संमत समस्त आनुपूर्वीद्रव्य लोक के कितने भाग में हैं ? (किं संखेज्जइभागे होज्जा, असंखेज्जइभागे होज्जा, संखेज्जेसु भागेसु होज्जा? असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा ? सव्वलोए होज्जा ?)क्या लोक के संख्यातवें भाग में हैं ? या लोक के असंख्यातवें भाग में हैं ? या लोक के संख्यात भागो में है ? या लोक के असंख्यात भागों में हैं या सर्वलोक में हैं ?

उत्तर–(नो संखेज्जइभागे होज्जा, नो असंखेज्जइभागे होज्जा, नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा, नो असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा, नियमा सव्वलोए होज्जा, एवं दोन्निवि) समस्त आनुपूर्वी द्रव्य लोक के न संख्यातवें भाग में हैं न असंख्यातवें भाग में हैं, न संख्यात भागों में हैं और न असंख्यात भागों में हैं किन्तु नियम से समस्त लोक में है।

પ્રશ્ન–(संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स कइभागे होज्जा ?) હે ભગવન્! સંગ્રહનયમાન્ય આનુપૂર્વી દ્રવ્યો લોકના કેટલા ભાગમાં છે ? (किं संखेज्जइभागे होज्जा, असंखेज्जइभागे होज्जा, संखेज्जेसु भागेसु होज्जा, असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा, सव्वलोए होज्जा ? શું લોકના સંખ્યાતમાં ભાગમાં છે ? કે અસંખ્યાતમાં ભાગમાં છે ? કે લોકના સંખ્યાતભાગોમાં છે ? કે લોકના અસંખ્યાત ભાગોમાં છે ? કે સર્વ લોકમાં છે ?

ઉત્તર–(नो संखेज्जइभागे होज्जा, नो असंखेज्जइभागे होज्जा, नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा, नो असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा, नियमा सव्वलोए होज्जा, एवं दोन्नि वि) સમસ્ત આનુપૂર્વી દ્રવ્ય લોકના સંખ્યાતમાં ભાગમાં પણ નથી, અસંખ્યાતમાં ભાગમાં પણ નથી, સંખ્યાત ભાગોમાં પણ નથી, અસંખ્યાત ભાગોમાં પણ નથી, પરન્તુ નિયમથી જ સમસ્ત લોકમાં છે, કારણ કે આનુ-

अनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्यविषयेऽप्येवमेव बोध्यम्। स्पर्शनाद्वारेऽपि एवमेव बोध्यम्। कालद्वारे तु-कालतः आनुपूर्वीत्वानानुपूर्वीत्ववक्तव्यत्वानामव्यवच्छित्तत्वेन सर्वदाऽवस्थायित्वात् कालत्रयेऽप्येषां सर्वाद्धाऽवस्थानं बोध्यम्। अत एवैषां कालतोऽन्तरमपि न भवति, आनुपूर्वीत्वादीनां कालत्रयेऽपि सत्त्वेन व्यवच्छेदाभावात्, इत्यन्तरद्वारे भावनीयम्। भागद्वारे त्वेवं विज्ञेयम्-आनुपूर्वीद्रव्येषु प्रत्येकद्रव्याणि=

क्योंकि आनुपूर्वीत्वरूप सामान्य एक है और वह सर्वलोक व्यापी है इसलिये नियमतः आनुपूर्वी द्रव्य की सत्ता सर्वलोक में हैं। इसी प्रकार से अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों के विषय में इसी प्रकार का कथन जानना चाहिये। तथा स्पर्शना द्वार में भी ऐसा ही मंतव्य जानना चाहिये। अर्थात् आनुपूर्वी आदि समस्त द्रव्य सर्वलोक का नियम से स्पर्श करते हैं। यही विषय प्रश्नोत्तर पूर्वक (संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स किं संखेज्जइभागं फुसंति? असंखेज्जइभागं फुसंति संखेज्जे भागे फुसंति, असंखेज्जे भागे फुसंति? सव्वलोगं फुसंति? नो संखेज्जइभागं फुसंति, जाव नियमा सव्वलोगं फुसंति, एवं दोन्निवि) सूत्रकार ने इन पदों द्वारा स्पष्ट किया है। (संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं कालओ केवच्चिरं होंति? सव्वद्धा एवं दोन्निवि)

प्रश्न- संग्रहनय मान्य समस्त आनुपूर्वी द्रव्य काल को आश्रित करके कितने समय तक आनुपूर्वी रूप से रहते हैं।

પૂર્વીત્વ રૂપ સામાન્ય એક છે અને તે સર્વલોકવ્યાપી છે, તેથી નિયમથી જ આનુપૂર્વી દ્રવ્યની સત્તા (અસ્તિત્વ) સર્વ લોકમાં છે. આ પ્રકારનું કથન અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક દ્રવ્ય વિષે પણ સમજવું એટલે કે તે બન્નેનું અસ્તિત્વ પણ નિયમથી જ સમસ્ત લોકમાં છે. સ્પર્શનાને અનુલક્ષીને પણ એવું જ કથન સમજી લેવું. એટલે કે આનુપૂર્વી આદિ સમસ્ત દ્રવ્ય નિયમથી જ સર્વલોકનો સ્પર્શ કરે છે. એજ વિષયનું સૂત્રકારે નીચેના પ્રશ્નોત્તરો દ્વારા સ્પષ્ટીકરણ કર્યું છે—

(संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स किं संखेज्जइभागं फुसंति? असंखेज्जइ भागं फुसंति, संखिज्जे भागे फुसंते, असंखिज्जे भागे फुसंति, सव्वलोगं फुसंति? नो संखेज्जइभागं फुसंति, जाव नियमा सव्वलोगं फुसंति, एवं दोन्नि वि.)

પ્રશ્ન-હે ભગવન્! સંગ્રહનયસંમત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો શું લોકના સંખ્યાતમાં ભાગને સ્પર્શે છે કે, અસંખ્યાતમાં ભાગને સ્પર્શે છે, કે સમસ્ત લોકને સ્પર્શે છે?

त्रिप्रदेशिकचतुष्प्रदेशिकादीनि-अनन्तप्रदेशिकपर्यन्तानि, नियमात् शेषद्रव्याणाम्= अनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्याणां त्रिभागे=त्रयाणां राशीनामेको राशिरूपो भागस्त्रि-भागस्तस्मिन् भवन्ति। अयमर्थः-अनानुपूर्वीद्रव्याणां सर्वेषां संकलनेन यावत्

उत्तर- आनुपूर्वीत्व अनानुपूर्वीत्व और अवक्तव्यकत्व सामान्य का कभी भी विच्छेद नहीं होता है इसलिये इनका अवस्थान सर्वाद्धा- सार्व कालिक- है। इसीलिए काल की अपेक्षा इनका विरह काल भी नहीं हैं। तात्पर्य कहने का यह है कि आनुपूर्वीत्व आदिकों का काल-त्रय में भी सत्व होने के कारण व्यवच्छेद नहीं होता है, इस कारण इनमें अन्तर नहीं माना जाता है ऐसा विचार अन्तरद्वार में किया गया जानना चाहिये। यही बात सूत्रकारने (संगहस्स आनुपुव्वीदव्वा-णं कालओ केवच्चिरं अंतरं होई? नत्थि अंतरं) इन पदों द्वारा कही गई है (संगहस्स आणुपुव्वी दव्वाइं सेसदव्वाणं कइभागे होज्जा)

प्रश्न-संग्रहनयमान्य समस्त आनुपूर्वीद्रव्य शेष द्रव्यों के कौन से भाग में हैं? (किं संखेज्जइभागे होज्जा? असंखेज्जइभागे होज्जा

उत्तर-आनुपूर्वी द्रव्य समस्त लोकने જ સ્પર્શે છે, લોકના સંખ્યા-તમાં ભાગને, અસંખ્યાતમાં ભાગને, સંખ્યાત ભાગોને કે અસંખ્યાત ભાગોને સ્પર્શતું નથી આ પ્રકારનું કથન અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યોની સ્પર્શના વિષે પણ સમજવું.

(संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं कालओ केवच्चिरं होंति? सव्वद्धा, एवं दोन्नि वि) પ્રશ્ન-હે ભગવન્! સંગ્રહનયમાન્ય સમસ્ત આનુપૂર્વી દ્રવ્ય કાળની અપેક્ષાએ કેટલા સમય સુધી આનુપૂર્વી રૂપે રહે છે?

ઉત્તર-આનુપૂર્વીત્વ, અનાનુપૂર્વીત્વ અને અવક્તવ્યકત્વસામાન્યનો કદિ પણ વિચ્છેદ થતો નથી તેથી તેમનું અવસ્થાન (અસ્તિત્વ) સાર્વકાલિક હોય છે તે કારણે કાળની અપેક્ષાએ તેમનો વિરહકાળ પણ નથી. આ કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે આનુપૂર્વી આદિનો ત્રણે કાળમાં સદ્ભાવ હોવાને કારણે વ્યવચ્છેદ (વિનાશ) સંભવી શકતો નથી. તે કારણે કાળની અપેક્ષાએ તેમના અન્તર (વિરહકાળ) નો પણ સદ્ભાવ હોતો નથી. આ પ્રકારે સૂત્રકારે અંત-રદ્વારની પ્રરૂપણા કરી છે, એમ સમજવું એજ વાત સૂત્રકારે નીચેના સૂત્રપાઠ દ્વારા વ્યક્ત કરી છે—

(संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाणं कालओ केवच्चिरं अंतरं होई? नत्थि अंतरं) આ સૂત્રપાઠનો ભાવાર્થ ઉપર આપ્યા પ્રમાણે સમજવો.

હવે ભાગદ્વારનું નિરૂપણ કરવામાં આવે છે-(संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं

राशिर्भवति तस्य भागत्रयकरणेन यस्तृतीयो भागः संपद्यते तत्संख्यकानि आनुपूर्वीद्रव्याणां प्रत्येकद्रव्याणि भवन्ति, संग्रहस्यानुपूर्वीद्रव्याणि कस्मिन् भावे भवन्ति ?, इति प्रश्नः। उत्तरमाह–नियमात् सादिपारिणामिके भावे भवन्ति।

संखेज्जेसु भागेसु होज्जा ? असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा ?) क्या संख्यातवें भाग में हैं या असंख्यातवें भाग में हैं ?–या संख्यात भागों में हैं ? या असंख्यात भागों में हैं ? —

उत्तर–(नो संखेज्जइभागे होज्जा, नो असंखेज्जइ भागे होज्जा, नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा, नो असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा, नियमा तिभागे होज्जा) संग्रहनय मान्य समस्त आनुपूर्वी द्रव्यों में से प्रत्येक आनुपूर्वीद्रव्य–त्रिप्रदेशिक, चतुष्प्रदेशिक आदि अनन्त प्रदेशिक द्रव्य–नियम से शेष द्रव्यों के त्रिभाग में हैं। अर्थात् अनानुपूर्वी द्रव्यों और अवक्तव्यकद्रव्यों को मिलाकर जो राशि उत्पन्न हो उस राशि के ३ भाग करो–इनमें जो तृतीय भाग आवे तत्प्रमाण आनुपूर्वी द्रव्यों में प्रत्येक आनुपूर्वी द्रव्य हैं। (एवं दोन्निवि)-इसी प्रकार आनुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों के विषय में जानना चाहिये। (संगहस्स आणुपुव्वी

सेसदव्वाणं कइभागे होज्जा ?) પ્રશ્ન–હે ભગવાન્ ! સંગ્રહનયસંમત સમસ્ત આનુપૂર્વી દ્રવ્ય બાકીના દ્રવ્યોના કેટલામાં ભાગપ્રમાણ હોય છે ? (किं संखेज्जइभागे होज्जा ? असंखेज्जइभागे होज्जा ? संखेज्जेसु भागेसु होज्जा ? असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा ?) શું સંખ્યાતમાં ભાગપ્રમાણ છે ? કે અસંખ્યાતમાં ભાગપ્રમાણ છે ? કે સંખ્યાત ભાગોપ્રમાણ સંખ્યાત ગણું છે ? કે અસંખ્યાત ભાગોપ્રમાણ–અસંખ્યાત ગણું છે ?

ઉત્તર–(नो संखेज्जइभागे होज्जा, नो असंखेज्जइभागे होज्जा, नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा, नो असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा, नियमा तिभागे होज्जा) સંગ્રહનયમાન્ય સમસ્ત આનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાંથી પ્રત્યેક આનુપૂર્વી દ્રવ્ય–ત્રિપ્રદેશિક ચતુષ્પ્રદેશિક પંચપ્રદેશિક આદિ અનંત પ્રદેશિક પર્યન્તના પ્રત્યેક આનુપૂર્વી દ્રવ્ય-નિયમથી જ બાકીના દ્રવ્યોના ત્રીજા ભાગ પ્રમાણ જ હોય છે. એટલે કે અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યોને એકત્ર કરવાથી જે રાશિ બને છે તે રાશિના જો ત્રણ ભાગ કરવામાં આવે તો તે પ્રત્યેક ભાગપ્રમાણ (તે બાકીના દ્રવ્યોની રાશિના રાશિના ત્રીજા ભાગપ્રમાણ) આનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાંના પ્રત્યેક આનુપૂર્વી દ્રવ્ય હોય છે. (एवं दोन्नि वि) એજ પ્રમાણે અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યોના વિષયમાં પણ સમજવું.

दव्वाइं कयरंमि भावे होज्जा ?) संग्रहनय मान्य आनुपूर्वी द्रव्य किस भाव वाले हैं ?

उत्तर- (नियमा साइपारिणामए भावे होज्जा) संग्रहनय मान्य आनुपूर्वीद्रव्य नियम से सादिपारिणामिक भाववाले हैं । (एवं दोन्निवि) इसीप्रकार से दोनों आनुपूर्वी और अवक्तव्यकद्रव्यों के विषय में जानना चाहिये। (अप्पा बहुनत्थि) राशिगत द्रव्यों में अल्प बहुत्व नहीं माना गया है । क्योंकि इस संग्रहनय में राशिगत द्रव्यों का अस्तित्व व्यवहारनयरूप कल्पना मात्र से ही मान्य हुआ है। तात्पर्य कहने का यह है कि संग्रहनय की दृष्टि आनुपूर्वी द्रव्यों में अनेकत्व काल्पनिक हैं। क्यों कि व्यवहारनय इस बात को स्वीकार करता है कि आनुपूर्वी द्रव्य प्रत्येक अनेक हैं । इसलिये यह अनेकत्व सामान्यरूप आनुपूर्वीत्व की दृष्टि में विलीन के कारण है ही नहीं ।

शंका-यदि यही बात है तो फिर सूत्रकार ने इस संग्रहनय मान्य अनुगम के प्रकरण में "संग्रहस्य आनुपूर्वी द्रव्याणि किं संख्येयानि" आदि बहुवचनान्त पद में आनुपूर्वीद्रव्य को क्यों रखा है ? "आनुपूर्वी-

---

પ્રશ્ન-(संगहस्स आणुपुव्वी दव्वाइं कयरंमि भावे होज्जा ?) संग्रहनय-मान्य आनुपूर्वी द्रव्यो कया भावथी युकत होय छे ?

ઉત્તર-(नियमा साइपारिणामिए भावे होज्जा) संग्रहनयसंमत आनुपूर्वी द्रव्यो नियमथी જ सादिपारिणामिक भाववाळां होय छे. (एवं दोन्नि वि) એજ પ્રમાણે संग्रहनयसंमत अनानुपूर्वी द्रव्यो अने अवकतव्यक द्रव्यो पण नियमथी જ सादिपारिणामिक भाववाळां होय छे (अप्पा बहुं नत्थि) राशिगत द्रव्योमां अल्पबहुत्व मानवामां आव्युं नथी, कारण के आ संग्रहनयमां राशिगत द्रव्योनुं अस्तित्व व्यवहार नयरूप कल्पना मात्रथी જ मान्य थयुं छे. आ कथननुं तात्पर्य એ छे के संग्रहनयनी दृष्टिએ आनुपूर्वी द्रव्योमां अनेकत्व काल्पनिक छे, कारण के व्यवहार नय એ वातनो स्वीकार करे छे, के प्रत्येक आनुपूर्वी द्रव्य अनेक छे. अने ते अनेकत्व सामान्य રૂપ आनुपूर्वीत्वनी दृष्टिमां विलीन थई જवाने कारणे छे જ नहीं.

शंका-जो એवी हकीकत होय तो सूत्रकारे आ संग्रहनयमान्य अनुगमना प्रकरणमां "संगहस्स आनुपूर्वी द्रव्याणि किं संख्येयानि" ઈत्यादि बहुवचनान्त पदमां आनुपूर्वी द्रव्यने केम मूकयुं छे ? "" आनुपूर्वी द्रव्यं"

अनादद् द्वयमपि पूर्ववद् बोध्यम्। राशिगतद्रव्याणां पूर्वोक्तबहुत्वमत्र नाश्रीयते, द्रव्याणां प्रस्तुतनये व्यवहारसंवृतिमात्रेणैव सत्त्वादिति। एवमनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्यविषयेऽपि बोध्यम्। अनुगमं समापयन्नाह–'से तं अणुगमे' इति। स

द्रव्यम्" ऐसा एक वचनान्त पद प्रयुक्त करना चाहिये। क्योंकि संग्रहनय मुख्यतया सामान्यत्व ही मानता है।

उत्तर–शंका ठीक है–परन्तु सूत्रकार ने जो बहुवचनान्त आनुपूर्वी पद को रखा है उसका कारण यह है कि वे यह प्रकट करना चाहते हैं व्यवहारनय से द्रव्यबहुत्व भी हैं। इसी बात की अपेक्षा करके उन्होंने यहां आनुपूर्वी में बहुवचन का निर्देश किया है।

शंका–व्यवहारनय की अपेक्षा सूत्रकारने जब नैगम व्यवहारसंमत अनुगम का प्रकरण प्रारंभ किया है तब वहां द्रव्यबहुत्व दिखला ही दिया है फिर इसे यहां इस एकत्व के प्रकरण में प्रदर्शित करने की क्या आवश्यकता थी ?

उत्तर–ठीक है–नहीं दिखलाना चाहिये, परन्तु जो शिष्य विस्मरण शील है उन्हे इस विषय को पुनः स्मृत कराना कोई पुनरुक्ति दोष की बात नहीं है। अतः सूत्रकारने ऐसा किया है। शिष्यजन जिस प्रकार से वस्तु का स्वरूप समझ सके उसी प्रकार से उन्हे समझाना गुरुका कर्त-

આ એક વચનાન્ત પદનો પ્રયોગ કેમ કર્યો નથી ? સંગ્રહનય મુખ્યત્વે સામાન્યતત્વને જ માને છે તેથી અહીં એકવચનના પદનો પ્રયોગ થવો જોઇતો હતો.

ઉત્તર–શંકાકર્તાની શંકા વ્યાજબી છે. પરંતુ સૂત્રકારે જે બહુવચનાન્ત પદનો પ્રયોગ કર્યો છે–'आनुपूर्वी द्रव्ये।' એવો પ્રયોગ કર્યો છે–તેનું કારણ એ છે કે તેઓ એ વાત પ્રકટ કરવા માગે છે કે વ્યવહાર નયની અપેક્ષાએ દ્રવ્યબહુત્વ પણ છે. એજ વાતને અનુલક્ષીને સૂત્રકારે અહીં આનુપૂર્વી પદમાં બહુવચનનો નિર્દેશ કર્યો છે.

શંકા–નૈગમવ્યવહાર નયસંમત અનુગમના પ્રકરણમાં જ સૂત્રકારે વ્યવહારનયની અપેક્ષાએ દ્રવ્યબહુત્વ પ્રકટ કર્યું છે. છતાં અહીં ફરીથી તેને એકત્વના પ્રકરણમાં પ્રદર્શિત કરવાની શી આવશ્યકતા હતી ?

ઉત્તર–વિસ્મરણશીલ શિષ્યને આ વિષયનું ફરી સ્મરણ કરાવવા માટે સૂત્રકારે અહીં તેનો ફરી ઉલ્લેખ કર્યો છે તેથી આ પ્રમાણે કરવામાં પુનરુક્તિ દોષની સંભાવના રહેતી નથી શિષ્યો જે પ્રકારે વસ્તુના સ્વરૂપને સમજી શકે એ પ્રકારે તેમને સમજાવવાનું તો ગુરુનું કર્તવ્ય થઇ પડે છે.

एषोऽनुगमः। इत्थं संग्रहसम्मताऽनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी समाप्तेतिसूचयितुमाह– 'से तं संगहस्स' इत्यादि। सैषा संग्रहसम्मताऽनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी। अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वीसमाप्तेति सूचयितुमाह–'से तं अणोवणिहिया' इत्यादि– सैषाऽनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वीति ॥सू० ९६॥

इत्यमनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी निरूप्य सम्प्रति प्राङ्निर्दिष्टामौपनिधिकीं द्रव्यानुपूर्वी प्राह–

मूलम्–से किं तं ओवणिहिया दव्वाणुपुव्वी? ओवणिहिया दव्वाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–पुव्वाणुपुव्वी१, पच्छाणुपुव्वी२, अणाणुपुव्वीय३॥सू० ९७॥

व्य हो जाता है। (से तं अणुगमे। से तं संगहस्स अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी, से तं अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी) इस प्रकार अनुगम के प्रकरण को समाप्त करते हुये सूत्रकार कहते हैं कि यह पूर्वोक्तरूप से संग्रहनय मान्य अनुगम का स्वरूप है। इसकी समाप्ति में संग्रहनय संमत अनौपनिधि की द्रव्यानुपूर्वी का कथन समाप्त हो चुका। यही प्रक्रान्त अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी का स्वरूप है। इसका विशेषरूप से खुलासा अर्थ नैगम व्यवहारनय संमत अनुगम के प्रकरण में लिखा जा चुका है।॥ सू० ९६ ॥

इस प्रकार से अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी का निरूपण करके अब सूत्रकार पूर्व कथित औपनिधि की द्रव्यानुपूर्वी का कथन करते हैं

(से तं अणुगमे! सेतं संगहस्स अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी, से तं अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी) હવે અનુગમના પ્રકરણનો ઉપસંહાર કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે આ પ્રકારનું (ઉપર વર્ણવ્યા પ્રમાણેનું) સંગ્રહનયમાન્ય અનુગમનું સ્વરૂપ છે. અનુગમના સ્વરૂપનું નિરૂપણ થઈ જવાથી સંગ્રહનયમાન્ય અનુગમનું સ્વરૂપ છે. અનુગમના સ્વરૂપનું નિરૂપણ થઈ જવાથી સંગ્રહનયસંમત અનૌપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વીનું કથન અહીં પૂરું થાય છે. આ પ્રકારનું પૂર્વપ્રસ્તુત અનૌપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ છે. તેનો વિશેષ ખુલાસો નૈગમવ્યવહાર નયસંમત અનુગમના પ્રકરણમાં આપવામાં આવેલો છે, ॥સૂ૯૬॥

આ પ્રમાણે અનૌપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વીનું નિરૂપણ કરીને હવે સૂત્રકાર પૂર્વકથિત ઔપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વીનું નિરૂપણ કરે છે—

छाया—अथ का सा औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी? औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-पूर्वानुपूर्वी१, पश्चानुपूर्वी२, अनानुपूर्वी३च ॥सू० ९७॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि—

अथ का सा औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी ? इति शिष्य प्रश्नः। उत्तरमाह-औपनिधिकी=उपनिधिः=स्थापनं निर्माणमित्यर्थः, स प्रयोजनमस्या सा, द्रव्यानुपूर्वी-द्रव्यविषयाऽऽनुपूर्वी त्रिप्रकारा प्रोक्ता। तद्यथा-पूर्वानुपूर्वी=विवक्षितधर्मास्तिकायादिद्रव्यविशेषसमुदाये यः पूर्वः=प्रथमस्तस्मादारभ्य या आनुपूर्वी=अनुक्रमः परिपाटो वा निक्षिप्यते सा पूर्वानुपूर्वी१। पश्चानुपूर्वी-तत्रैव द्रव्यविशेष-

---

"से किं तं ओवणिहिया" इत्यादि

शब्दार्थ-से किं तं ओवणिहिया दव्वाणुपुव्वी) हे भदन्त ! औपनिधि द्रव्यानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

उत्तर- (ओवणिहिया दव्वाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता) औपनिधि द्रव्यानुपूर्वी तीन प्रकार की कही गई है। (तंजहा) वे उसके ३ प्रकार ये हैं-(पुव्वाणुपुव्वी १, पच्छाणुपुव्वी२, अणाणुपुव्वी ३ य) १ पूर्वानुपूर्वी२ पश्चानुपूर्वी और ३,अनानुपूर्वी उपनिधि का अर्थ स्थापन या निर्माण है। यह जिसका प्रयोजन हो उसका नाम औपनिधिकी है। यह द्रव्य विषयक औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी-पूर्वोक्तरूप से३तीन प्रकार की हैं। विवक्षित धर्मास्तिकाय आदि द्रव्य विशेष के समुदाय में जो पूर्व प्रथम द्रव्य है उससे लेकर जो आनुपूर्वी -अनुक्रम-परिपाटी निक्षिप्त की

"से किं तं ओवणिहिया" इत्यादि—

शब्दार्थ-(से किं तं ओवणिहिया दव्वाणुपुव्वी ?) हे भगवन! औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वीनुं स्वरूप केवु छे ?

उत्तर-(ओवणिहिया दव्वाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता) औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी त्रण प्रकारनी कही छे. (तंजहा) ते त्रण प्रकारो नीचे प्रमाणे छे—(पुव्वाणुपुव्वी, पच्छाणुपुव्वी, अणाणुपुव्वी य) (१) पूर्वानुपूर्वी, (२) पश्चानुपूर्वी, अने (३) अनानुपूर्वी.

उपनिधि एटले स्थापना अथवा निर्माण ते स्थापना अथवा निर्माण जेनुं प्रयोजन होय छे तेने औपनिधिकी कहे छे. आ द्रव्यविषयक औपनिधिकीना उपर मुजब त्रण प्रकार छे. विवक्षित धर्मास्तिकाय आदि द्रव्यविशेषना समुदायमां जे पूर्व (प्रथम द्रव्य) छे त्यांथी शरू करीने जे आनुपूर्वी (अनुक्रम, परिपाटी) निक्षिप्त करवामां आवे छे-राखवामां आवे छे

समुदाये यः पाश्चात्यः=अन्तिमस्तस्मादारभ्य व्यतिक्रमेण या ऽऽनुपूर्वी निक्षिप्यते सा पश्चानुपूर्वी २। अनानुपूर्वी–पूर्वानुपूर्वीपश्चानुपूर्वीभ्यां भिन्नस्वरूपा याऽऽनुपूर्वी साऽनानुपूर्वी ॥ सू० ९७॥

पूर्वानुपूर्व्यादिभेदत्रयं निरूपयितुमाह–

मूलम्–से किं तं पुव्वानुपुव्वी? पुव्वाणुपुव्वी–धम्मत्थिकाये अधम्मत्थिकाये, आगासत्थिकाये, जीवत्थिकाये, पोग्गलत्थिकाये, अद्धासमये। से तं पुव्वाणुपुव्वी। से किं तं पच्छाणुपुव्वी? पच्छाणुपुव्वी–अद्धासमए, पोग्गलत्थिकाए, जीवत्थिकाए, आगासत्थिकाए, अहम्मत्थिकाए, धम्मत्थिकाए। से तं पच्छाणुपुव्वी। से किं तं अणाणुपुव्वी? अणाणुपुव्वी–एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए छगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवूणो। से तं अणाणुपुव्वी ॥सू० ९८॥

छाया—अथ का सा पूर्वानुपूर्वी? पूर्वानुपूर्वी–धर्मास्तिकायः अधर्मास्तिकायः आकाशास्तिकायो जीवास्तिकायः पुद्गलास्तिकायः अद्धासमयः। सैषा पूर्वा-

की जाती है–रखी जाती है वह पूर्वानुपूर्वी है। तथा उसी द्रव्य विशेष के समुदाय में जो पाश्चात्य–अंतिमद्रव्य है–उससे लेकर व्यक्तिक्रम से जो आनुपूर्वी निक्षिप्त की जाती है वह पश्चानुपूर्वी है। पूर्वानुपूर्वी एवं पश्चानुपूर्वी इन दोनों से भिन्न स्वरूप वाली जो आनुपूर्वी है वह अनानुपूर्वी है। ॥ सू० ९७ ॥

पूर्वानुपूर्वी आदि जो तीन भेद हैं उनका स्वरूप क्या है इस बात को सूत्रकार प्रकट करते हैं—"से किं तं पुव्वानुपुव्वी" इत्यादि।

તેનું નામ પૂર્વાનુપૂર્વી છે. તથા એજ દ્રવ્યવિશેષના સમુદાયમાં જે પાશ્ચાત્ય–અંતિમ દ્રવ્ય છે, ત્યાંથી શરૂ કરીને એટલે કે ઉલટા ક્રમથી જે આનુપૂર્વી રાખવામાં આવે છે તેને પશ્ચાનુપૂર્વી કહે છે. પૂર્વાનુપૂર્વી પશ્ચાનુપૂર્વી, આ બન્નેથી ભિન્ન સ્વરૂપવાળી જે આનુપૂર્વી છે તેને અનાનુપૂર્વી કહે છે. ॥સૂ૦૯૭॥

હવે સૂત્રકાર પૂર્વાનુપૂર્વી આદિ ત્રણ ભેદોના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે–

"से किं तं पुव्वानुपुव्वी" ઇત્યાદિ—

नुपूर्वी। अथ का सा पश्चानुपूर्वी? पश्चानुपूर्वी-अद्धासमयः, पुद्गलास्तिकायः, जीवास्तिकायः, आकाशास्तिकायः, अधर्मास्तिकायः, धर्मास्तिकायः। सेषा पश्चानुपूर्वी। अथ का सा अनानुपूर्वी? अनानुपूर्वी-एतस्यामेव एकादिकायामेकोत्तरिकायां षड्गच्छतायां श्रेण्यामन्योन्याभ्यासो द्विरूपोनः। सैषाऽनानुपूर्वी॥सू.९८॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि-

अथ का सा पूर्वानुपूर्वी? इति शिष्य प्रश्नः। उत्तरमाह-'पुव्वाणुपुव्वी' इत्यादि। पूर्वानुपूर्वी-धर्मास्तिकायः१, अधर्मास्तिकायः२, आकाशास्तिकायः३, जीवास्तिकायः४, पुद्गलास्तिकायः५, अद्धासमयः६। धर्मास्तिकायादीनां व्याख्याऽऽचाराङ्गसूत्रस्य प्रथमश्रुतस्कन्धे मत्कृताचारचिन्तामणिटीकायां द्रष्टव्या। तथा-अद्धासमयः-अद्धारूपः समय इति समासः। अद्धाशब्दः कालवाचकः।

शब्दार्थ- (से किं तं पुव्वानुपुव्वी?) हे भदन्त। पूर्वानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

उत्तर-(पुव्वाणुपुव्वी) पूर्वानुपूर्वी का स्वरूप इस प्रकार से है-(धम्मत्थिकाये, अधम्मत्थिकाये, आगासत्थिकाये जीवत्थिकाये, पोग्गलत्थिकाये' अद्धासमये) १ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ जीवास्तिकाय ५ पुद्गलास्तिकाय और ६ अद्धा समय इस प्रकार की परिपाटी से इन छह द्रव्यों का निक्षेपण करना यह पूर्वानुपूर्वी है। इन धर्मास्तिकाय आदि कों का क्या स्वरूप है इस बात को जानने के लिये आचाराङ्ग-सूत्र के प्रथम स्कंध में मत्कृत आचारचिन्तामणि टीका देखनी चाहिये। अद्धारूप जो समय है उसका नाम अद्धा समय है। अद्धा शब्द

શબ્દાર્થ-(से किं तं पुव्वानुपुव्वी?) હે ભગવન્! પૂર્વાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(पुव्वाणुपुव्वी) પૂર્વાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે. (धम्मत्थिकाये, अधम्मत्थिकाये, आगासत्थिकाये, जीवत्थिकाये, पोग्गलत्थिकाये, अद्धासमये) (१) ધર્માસ્તિકાય, (२) અધર્માસ્તિકાય, (३) આકાશાસ્તિકાય, (४) જીવાસ્તિકાય, (५) પુદ્ગલાસ્તિકાય અને (६) અદ્ધાસમય (કાળ), આ પ્રકારની પરિપાટીથી (અનુક્રમથી) ૬ દ્રવ્યોનું નિક્ષેપણ કરવું તેનું નામ પૂર્વાનુપૂર્વી છે.

આચારાંગ સૂત્રની આચારચિન્તામણિ નામની મેં જે ટીકા લખી છે તેના પહેલા સ્કંધમાં ધર્માસ્તિકાય આદિના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું છે તો જિજ્ઞાસુ પાઠકોએ ત્યાંથી તે વાંચી લેવું. અદ્ધા રૂપ જે સમય છે તેનું નામ અદ્ધાસમય છે. અદ્ધા શબ્દ કાળવાચક છે, અને સમય શબ્દ

समयशब्दोऽनेकार्थकः शपथादिष्वपि वर्तते, अतः कालमर्थं बोधयितुम्-'अद्धा' इति विशेषणोपादानम्। पट्टसाटिकादिपाटनदृष्टान्तसिद्धः सर्वसूक्ष्मः पूर्वापरकोटिविप्रमुक्तो वर्तमानः एकः कालांश इति 'अद्धासमय' शब्दार्थो बोध्यः, अत एवात्र अस्तिकायत्वाभावः, बहुप्रदेशवति द्रव्य एव तस्य सद्भावात्। इह तु नास्ति प्रदेशबाहुल्यम्,-अतीतानागतयोर्विनष्टानुत्पन्नत्वेन एकमात्रस्य वर्तमानरूपस्य समयस्य प्रदेशस्य सद्भावात्। ननु समयबहुत्वाभावे 'समया वलियमुहुत्ता

काल वाचक है और समय शब्द अनेकार्थक है। क्योंकि समय शब्द का प्रयोग शपथ आदि अनेक अर्थों में भी होता है। अतः कालरूपअर्थ का वह यहां बोधक है, इस बात को बोध कराने के निमित्त सूत्रकार ने उसका विशेष अद्धापद रखा है। वर्तमान एक कालांश का नाम अद्धा समय है। यह अत्यंत सूक्ष्म है। पूर्व और अपर कोटि से यह रहित होता है। इसकी सिद्धि पट्ट साटिकादि के फाड़ने रूप दृष्टान्त से होती है। अर्थात् सर्व सूक्ष्मातिसूक्ष्म जो वर्तमान कालांश है वही अद्धा समय का वाच्यार्थ है। इसे अस्तिकाय में परिगणित नहीं किया गया है। क्यों कि इसमें बहुप्रदेशत्व का अभाव है। जो बहुप्रदेश वाले-होते हैं उन्हे ही अस्तिकाय कहा गया है। अतीतकाल विनष्ट हो जाने के और भविष्यत् काल अनुत्पन्न होने के कारण एकमात्र वर्तमानरूपसमय प्रदेश का सद्भाव है इसलिये उसमें प्रदेशबाहुल्य नहीं है।

शंका-समय की बहुता के आभाव में "समयावलियमुहुत्ता दिव-

અનેકાર્થક છે, કારણ કે સમય શબ્દનો પ્રયોગ શપથ આદિ અનેક અર્થોમાં પણ થાય છે. તેથી તે પદ અહીં કાળરૂપ અર્થનું બોધક છે, તે વાતને સમજાવવાને માટે સૂત્રકારે તેનું વિશેષ અદ્ધાપદ રાખ્યું છે. વર્તમાન એક સમયનું નામ અદ્ધાસમય છે. તે અત્યંત સૂક્ષ્મ છે. પૂર્વ અને અપર કોટિથી તે રહિત હોય છે. તેની સિદ્ધિને માટે પટ્ટ સાટિકા આદિ ફાડવાનું દૃષ્ટાન્ત આપવામાં આવે છે એટલે કે સર્વસૂક્ષ્માતિસૂક્ષ્મ જે વર્તમાન કાલાંશ છે એજ અદ્ધાસમયના વાચ્યાર્થ રૂપ છે. તેને અસ્તિકાયમાં ગણાવવામાં આવેલ નથી કારણ કે તેમાં બહુ પ્રદેશત્વનો અભાવ છે. જે બહુ પ્રદેશવાળાં હોય છે તેમને જ અસ્તિકાય કહેવાય છે. અતીતકાળ (વ્યતીત થઈ ગયેલો કાળ) વિનષ્ટ થઈ જવાને કારણે અને ભવિષ્યકાળ અનુત્પન્ન હોવાને કારણે એક માત્ર વર્તમાન રૂપ સમયપ્રદેશનો જ સદ્ભાવ છે, તેથી તેમાં પ્રદેશબાહુલ્ય નથી.

શંકા-સમયની બહુતાનો જો અભાવ માનવામાં આવે, તો "समयाव-

दिवसमहोरत्तपक्खमासा य' इत्यागमसिद्ध आवलिकादिकालः कथमुपपद्येत ? इति चेत्, उच्यते-व्यवहारनयमाश्रित्य-आवलिकादिसत्ता स्वीक्रियते। निश्चयनयमते तु तदसत्त्वमेव। नहि पुद्गलस्कन्धे परमाणुसङ्घात इवावलिकादिषु समयसङ्घातः कश्चिदवस्थितोऽस्ति, अतो व्यवहारनयमतेन तत्कथनमस्तीति न कश्चिद् दोष इति। तदेतदुपसंहरन्नाह-'से तं' इत्यादि, सैषा पूर्वानुपूर्वीति। अथ पश्चानुपूर्वीं निरूपयितुमाह-'से किं तं' इत्यादि। अथ का सा पश्चानुपूर्वी ? इति शिष्य प्रश्नः। उत्तरमाह-'पच्छानुपुव्वी' इत्यादिना। पश्चानुपूर्वीति-'अद्धासमयः, पुद्गलास्तिकायः, जीवास्तिकायः, आकाशास्तिकायः, अधर्मास्ति-

स महोरत्तपक्खमासाय" इत्यादि आवलिकारूप काल जो कि आगम सिद्ध है कैसे संगत माना जा सकता है ?

उत्तर—व्यवहारनय को लेकर ही आवलिकादिरूप की सत्ता स्वीकृत हुई है। निश्चयनय के मत को लेकर नहीं। क्योंकि इस मत में तो आवलिकादि रूप कालका सत्व नहीं माना गया है। जिस प्रकार से पुद्गलस्कंध में परमाणुओं का संघात अवस्थित है उस प्रकार से आवलिकादिकों में कोई समय संघात अवस्थित नहीं है। इसलिये मानना चाहिये यह आवलिकादिरूप काल का कथन व्यवहारनय के मत से है। इसलिये इसमें कोई दोष नहीं है। (से तं पुव्वानुपुव्वी) इस प्रकार यह पूर्वानुपूर्वी का स्वरूप है। "से किं तं पच्छानुपुव्वी" पश्चानुपूर्वी क्या है ?

उत्तर-(पच्छाणुपुव्वी) पश्चानुपूर्वी इस प्रकार से हैं-(अद्धासमए

लियमुहुत्ता दिवसमहोरत्तपक्खमासा य" આવલિકા, મુહૂર્ત, દિવસ, રાત, પક્ષ, માસ આદિ રૂપ કાળ કે જે આગમ દ્વારા સિદ્ધ થયેલ છે, તેને કેવી રીતે સંગત માની શકાય ?

ઉત્તર-વ્યવહાર નયની દૃષ્ટિએ જ આવલિકાદિ રૂપ કાળની સત્તા (સમયનું અસ્તિત્વ) સ્વીકૃત થઇ છે-નિશ્ચયનયની માન્યતા અનુસાર તો આવલિકા આદિ રૂપ કાળનું અસ્તિત્વ જ સ્વીકારવામાં આવ્યું નથી જે પ્રકારે પુદ્ગલસ્કંધમાં પરમાણુઓનો સંઘાત (સંયોગ) અવસ્થિત (વિદ્યમાન) છે, એ પ્રમાણે આવલિકાદિકોમાં કોઈ સમયનો સંઘાત અવસ્થિત નથી તેથી એવું માનવું જોઈએ કે આ આવલિકાદિ રૂપ કાળનું કથન વ્યવહાર નયના મતાનુસારનું કથન છે. તે કારણે આ પ્રકારના કથનમાં કોઈ દોષ નથી. (से तं पुव्वानुपुव्वी) આ પ્રકારનું પૂર્વાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ છે.

પ્રશ્ન-હે ભગવન્ ! પશ્ચાનુપૂર્વીનું કેવું સ્વરૂપ છે ?

ઉત્તર-(पच्छाणुपुव्वी) પશ્ચાનુપૂર્વી આ પ્રકારની કહી છે-(अद्धासमए,

कायः, धर्मास्तिकायः, इति व्युत्क्रमेण निर्दिष्टा। तदेतदुपसंहरन्नाह-'से तं' इत्यादि, सेषा पश्चानुपूर्वीति। अथानानुपूर्वीं निरूपयति-'से किं तं' इत्यादिना। अथ का सा अनानुपूर्वी?-न विद्यते आनुपूर्वी=पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वीद्वयरूपा यस्यां सा तथा विवक्षितपदानामनन्तरोक्तक्रमद्वयमुल्लङ्घ्य परस्परसाद्यैः संभवद्भिर्भङ्गकैर्यस्यां विरचना क्रियते साऽनानुपूर्वीत्यर्थः। सा हि-एतस्याम्=अनन्तराधिकृतधर्मास्तिकायादिसम्बन्धिन्याम्, एकादिकायाम्=एक आदिर्यस्यां सा तथा तस्याम्, पुनः-एकोत्तरिकायाम्-एकैक उत्तरः प्रवर्धमानो यस्यां सा तथा

पोग्गलत्थिकाए, जीवत्थिकाए आगासत्थिकाए, अहम्मत्थिकाए धम्मत्थिकाए) अद्धासमय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, धर्मास्तिकाय। इस प्रकार जो धर्मादिक द्रव्यों का व्युत्क्रम से निर्देश है (से तं पच्छाणुपुव्वी) वह पश्चानुपूर्वी है। (से किं अणाणुपुव्वी) हे भदन्त! अनानुपूर्वी का क्या स्वरूप है? (अणाणुपुव्वी)

उत्तर- अनानुपूर्वी का स्वरूप इस प्रकार है- (एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए छ गच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दूरूवूणो) जिस में पूर्वानुपूर्वी और पश्चानुपूर्वी ये दोनों नहीं हैं उसका नाम अनानुपूर्वी है। इसमें विवक्षित धर्मादिक पदों के अनन्तरोक्त क्रमद्वय को उल्लंघन करके परस्पर संभवित भंगों से उन पदों की विरचना की जाती है इस अनानुपूर्वी मे जो श्रेणी स्थापित की जाती है उसमें सबसे पहिले एक संख्या रखी जाती हैं। बाद में एक एक की उत्तरोत्तर वृद्धि

पोग्गलत्थिकाए, जीवत्थिकाए, आगासत्थिकाए, अहम्मत्थिकाए, धम्मत्थिकाए) અદ્ધાસમય (કાળ), પુદ્ગલાસ્તિકાય, જીવાસ્તિકાય, આકાશાસ્તિકાય, અધર્માસ્તિકાય અને ધર્માસ્તિકાય, આ પ્રકારે ધર્માસ્તિકાય આદિ દ્રવ્યોનો જે ઉલ્ટાક્રમપૂર્વક નિર્દેશ થાય છે, (से तं पच्छाणुपुव्वी) તેનું નામ પશ્ચાનુપૂર્વી છે!

પ્રશ્ન-(से किं अणाणुपुव्वी) હે ભગવન્! અનાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે!

ઉત્તર-(अणाणुपुव्वी) અનાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે-(एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए छगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दूरूवूणो) જેમાં પૂર્વાનુપૂર્વી અને પશ્ચાનુપૂર્વી એ બન્ને નથી, તેનું નામ અનાનુપૂર્વી છે. તેમાં ધર્માસ્તિકાય આદિ પદોના ઉપર્યુક્ત બન્ને ક્રમનું ઉલ્લંઘન કરીને પરસ્પર સંભવિત ભંગો વડે તે પદોની વિરચના કરાય છે. આ અનાનુપૂર્વીમાં જે શ્રેણી સ્થાપિત કરવામાં આવે છે તેમાં સૌથી પહેલાં એક સંખ્યા રાખવામાં આવે છે, ત્યાર બાદ છ સંખ્યા સુધી ઉત્તરોત્તર એકની વૃદ્ધિ

तस्याम्, पुनः-षड्गच्छगतायाम्-षण्णां गच्छः=समुदायः-षड्गच्छस्तं गता=प्राप्ता षड्गच्छगता तस्यां-धर्मास्तिकायादिद्रव्यषट्कविषयायां, श्रेण्यां=पङ्क्तौ अन्योन्याभ्यासः-अन्योऽन्यं परस्परम्-अभ्यासो=गुणनम्, अन्योऽन्याभ्यासः-परस्परगुणनरूपः, तथा-द्विरूपोनः=आद्यन्तविवक्षारहितः, एवंरूपाऽनानुपूर्वी बोध्या। अयमभिप्रायः-प्रथमं व्यवस्थापितैककाया अन्ते च स्थापितषट्संख्यायाः (१-२-३-४-५-६) धर्मास्तिकायादि द्रव्यषट्कविषयायाः षड्क्यां परस्परगुणने भङ्गकसंख्या भवति, सा आद्यन्तभङ्गकद्वयरहिता अनानुपूर्वी बोध्येति। अस्य सूत्रस्येदं तात्पर्यम्- पूर्वानुपूर्व्यां हि-प्रथमं तावद् धर्मास्तिकायः स्थापयितव्यः, तदनु-अधर्मास्तिकायः तत आकाशास्तिकायः, इत्येवं क्रमेण 'अद्धासमयः' इत्येतत्पर्यन्तं स्थापना कर्तव्या। पश्चानुपूर्व्यां तु प्रथमम् अद्धासमयो व्यवस्थापनीयः, तदनु पुद्गलास्तिकायः, ततो जीवास्तिकायः, इत्येवं व्युत्क्रमेण 'धर्मास्तिकायः'

छह संख्या तक होती चली जाती है,जैसे १-२-३-४-५-६,फिर इनमें परस्पर में गुणा किया जाता है जैसे १×२=२×३=६ ६×४=२४,×५=१२०, १२०×६=७२०, इस प्रकार अन्योन्याभ्यस्तराशि बन जाती है। इसमें से आदि अन्त के दो भंग करने पर अनानुपूर्वी बन जाती है इस सूत्र का तात्पर्य यह है कि पूर्वानुपूर्वी में पहिले धर्मास्तिकाय स्थापित हो जाता है, उसके बाद अधर्मास्तिकाय, उसके बाद आकाशास्तिकाय' उसके बाद जीवास्तिकाय, फिर पुद्गलास्तिकाय और फिर अद्धा समय। इस क्रमसे यहां छह द्रव्यों का स्थापन होता है। तथा पश्चानुपूर्वी में पहिले अद्धा समय 'फिर पुद्गलास्तिकाय, बाद में जीवास्तिकाय, फिर अकाशास्तिकाय

થતી રહે છે, જેમ કે ૧-૨-૩-૪-૫-૬ ત્યાર બાદ તેમાં પરસ્પરનો ગુણાકાર કરવામાં આવે છે. જેમ કે ૧×૨=૨। ૨×૩=૬ । ૬×૪=૨૪ ।, ૨૪×૫=૧૨૦, ૧૨૦×૬=૭૨૦ આ રીતે અન્યોન્યાભ્યસ્ત રાશિ બની જાય છે. તેમાંથી શરૂઆતનો એક ભંગ અને અન્ત્ય એક ભંગ ઓછો કરી નાખવાથી અનાનુપૂર્વી બની જાય છે આ સૂત્રનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—

પૂર્વાનુપૂર્વીમાં પહેલાં ધર્માસ્તિકાય સ્થાપિત થાય છે, ત્યાર બાદ અધર્માસ્તિકાય, ત્યારબાદ આકાશાસ્તિકાય, ત્યાર બાદ જીવાસ્તિકાય, ત્યાર બાદ પુદ્ગલાસ્તિકાય અને ત્યાર બાદ અદ્ધાસમય (કાળ) સ્થાપિત થાય છે. આ ક્રમે છ દ્રવ્યોનું પૂર્વાનુપૂર્વીમાં સ્થાપન થાય છે.

પશ્ચાનુપૂર્વીમાં પહેલાં અદ્ધા સમય, ત્યાર બાદ પુદ્ગલાસ્તિકાય, ત્યાર બાદ જીવાસ્તિકાય, ત્યાર બાદ આકાશાસ્તિકાય, ત્યાર બાદ અધર્માસ્તિકાય

इत्येतत्पर्यन्तं स्थापना कर्तव्या। अनानुपूर्व्यां तु पूर्वानुपूर्वीपश्चानुपूर्वीस्वरूप व्युत्क्रमोभयं परित्यज्य यथारुचि स्थापनाकर्तव्येति। प्रस्तुतसूत्रमुपसंहरन्नाह— 'से तं' इत्यादि। सैषाऽनानुपूर्वीति ॥सू० ९८॥

इत्थं धर्मास्तिकायादीनि षडपि द्रव्याणि पूर्वानुपूर्व्यादित्वेनोदाहृतानि। साम्प्रत्येकं पुद्गलास्तिकायमधिकृत्याह—

मूलम्—अहवा ओवणिहिया दव्वाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी अणाणुपुव्वी। से किं तं पुव्वाणुपुव्वी? पुव्वाणुपुव्वी परमाणुपोग्गले दुप्पएसिए तिप्पएसिए जाव दसपएसिए संखिज्जपएसिए असंखिज्जपएसिए अणंतपएसिए। से तं पुव्वाणुपुव्वी। से किं तं पच्छाणुपुव्वी? पच्छाणुपुव्वी अणंतपएसिए असंखिज्जपएसिए संखिज्जपएसिए जाव दसपएसिए जाव तिप्पएसिए दुप्पएसिए परमाणुपोग्गले। से तं पच्छाणुपुव्वी। से किं तं अणाणुपुव्वी? अणाणुपुव्वी एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए अणंतगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवूणो। से तं अणाणुपुव्वी। से तं ओवणिहिया दव्वाणुपुव्वी। से तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता

बाद अधर्मास्तिकाय और फिर धर्मास्तिकाय इस व्युत्क्रम से ६ द्रव्यों का स्थापन किया जाता है। परन्तु अनानुपूर्वी में इन दोनों प्रकार के पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वीरूप क्रम व्युत्क्रम का परित्यागकर यथारुचि ६ द्रव्य स्थापित किये जाते हैं। (से तं अणाणुपुव्वी) इस प्रकार यह अनानुपूर्वी का स्वरूप है। ॥ सू० ९८ ॥

અને ત્યાર બાદ ધર્માસ્તિકાય, આ પ્રકારના ઉલટા ક્રમથી ૬ દ્રવ્યોનું સ્થાપન કરાય છે પરન્તુ અનાનુપૂર્વીમાં તો પૂર્વાનુપૂર્વીની જેમ છ દ્રવ્યોના સીધા ક્રમનો અને પશ્ચાનુપૂર્વીની જેમ તેમના ઉલટા ક્રમનો અને યથારુચિ (મનને ગમે તે રીતે) છ દ્રવ્યોનું સ્થાપન કરવામાં આવે છે (से तं अणाणुपुव्वी) આ પ્રકારનું અનાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ છે. ॥સૂ૦૯૮॥

दव्वाणुपुव्वी। से तं नो आगमओ दव्वाणुपुव्वी। से तं दव्वाणुपुव्वी ॥सू० ९९॥

छाया—अथवा-औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी अनानुपूर्वी। अथ का सा पूर्वानुपूर्वी? पूर्वानुपूर्वी-परमाणुपुद्गलो द्विप्रदेशिकः त्रिप्रदेशिको यावत् दशप्रदेशिकः संख्येयप्रदेशिकः असंख्येयप्रदेशिकः अनन्तप्रदेशिकः। सैषा पूर्वानुपूर्वी। अथ का सा पश्चानुपूर्वी? पश्चानु-

---

अब सूत्रकार एक पुद्गलास्तिकाय के ऊपर तीनों की घटना करते हैं-"अहवा ओवणिहिया" इत्यादि।

शब्दार्थ-(अहवा) अथवा- (ओवणिहिया दव्वाणुपुव्वी)औपनिधि की द्रव्यानुपूर्वी (तिविहा पण्णत्ता) तीन प्रकार की कही गई हैं। (तं जहा) वे प्रकार ये हैं- (पुव्वाणुपुव्वी) पूर्वानुपूर्वी (पच्छाणुपुव्वी) पश्चानुपूर्वी (अणाणुपुव्वी) और अनानुपूर्वी। (से किं तं पुव्वाणुपुव्वी ?) हे भदन्त! पूर्व प्रक्रान्त पूर्वानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ? (पुव्वाणुपुव्वी)

उत्तर-पूर्वानुपूर्वी इस प्रकार से हैं-(परमाणुपुग्गले दुप्पएसिए तिप्पएसिए जाव दसपएसिए संखिज्जपएसिए असंखिज्जपएसिए अणंतपएसिए) परमाणुपुद्गल, द्विप्रदेशी, त्रिप्रदेशी यावत् दशप्रदेशी, संख्यातप्रदेशी, असंख्यात प्रदेशी, अनंतप्रदेशी स्कंध-इस क्रमसे यह पुद्गला-

---

હવે સૂત્રકાર એક પુદ્ગલાસ્તિકાય ઉપર આ ત્રણેની ઘટના (સ્થાપના) કરે છે-"अहवा ओवणिहिया" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(अहवा) અથવા (ओवणिहिया दव्वाणुपुव्वी) ઔપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વી (तिविहा पण्णत्ता) ત્રણ પ્રકારની કહી છે. (तंजहा) તે ત્રણ પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે-(पुव्वाणुपुव्वी, पच्छाणुपुव्वी अणाणुपुव्वी) (૧) પૂર્વાનુપૂર્વી (૨) પશ્ચાનુપૂર્વી (૩) અનાનુપૂર્વી.

પ્રશ્ન-(से किं तं पुव्वाणुपुव्वी ?) હે ભગવન્! પૂર્વાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(पुव्वाणुपुव्वी) પૂર્વાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું પણ કહ્યું છે-(परमाणुपुग्गले, दुप्पएसिए तिप्पएसिए जाव दसपएसिए, संखिज्जपएसिए, असंखिज्जपएसिए, अणंतपएसिए) પરમાણુ પુદ્ગલ, દ્વિપ્રદેશીસ્કંધ, ત્રિપ્રદેશિસ્કંધ, દસ પ્રદેશી પર્યન્તના સ્કંધ, સંખ્યાત પ્રદેશીસ્કંધ, અસંખ્યાત પ્રદેશી સ્કંધ અને અનંત પ્રદેશી સ્કંધ આ ક્રમપૂર્વકની પુદ્ગલાસ્તિકાય સંબંધી જે આનુપૂર્વી છે, (से तं पुव्वाणुपुव्वी) તેને પૂર્વાનુપૂર્વી કહે છે.

पूर्वी-अनन्तप्रदेशिकः असंख्येयप्रदेशिकः संख्येयप्रदेशिको यावद् दशप्रदेशिको यावत् त्रिप्रदेशिको द्विप्रदेशिकः परमाणुपुद्गलः। सैषा पश्चानुपूर्वी। अथ का सा अनानुपूर्वी? अनानुपूर्वी एतस्यामेव एकादिकायामेकोत्तरिकायामनन्तगच्छगतायां श्रेण्याम् अन्योऽन्याभ्यासो द्विरूपोनः। सैषाऽनानुपूर्वी। सैषा औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी। सैषा ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्ता द्रव्यानुपूर्वी। सैषा नोआगमतो द्रव्यानुपूर्वी। सैषा द्रव्यानुपूर्वी ॥सू० ९९॥

टीका—'अहवा' इत्यादि-

अथवा=पुनः पुद्गलास्तिकायमाश्रित्य औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्व्यनानुपूर्वी भेदैस्त्रिविधा प्रज्ञप्ता। तत्र-परमाणुपुद्गलो द्विप्रदेशिक इत्यादिक्रमेण-'अनन्तप्रदेशिकः' इति पर्यन्तं पूर्वानुपूर्वी। तथा-व्युत्क्रमेण 'अनन्तप्रदेशिकः' इत्यारभ्य 'परमाणुपुद्गलः' इति पर्यन्तं पश्चानुपूर्वी। अनानु-

---

स्तिकाय संबंधी (से तं पुव्वाणुपुव्वी) पूर्वानुपूर्वी है। (से किं तं पच्छाणुपुव्वी) हे भदन्त! पश्चानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

उत्तर- (पच्छाणुपुव्वी) पश्चानुपूर्वी इस प्रकार से है-(अणंतपएसिए असंखिज्जपएसिए, संखिज्जपएसिए जाव दसपएसिए जाव तिप्पएसिए दुप्पएसिए परमाणुपोग्गले) जब पुद्गलास्तिकाय अनंत प्रदेशिक, असंख्यात प्रदेशिक, संख्यात प्रदेशिक, यावत् दशप्रदेशिक यावत् त्रिप्रदेशिक द्विप्रदेशिक और परमाणुपुद्गल इस व्युत्क्रम से परिगणित हो तब (से तं पच्छाणुपुव्वी) वह पश्चानुपूर्वी है। (से किं तं अणाणुपुव्वी) हे भदन्त! अनानुपूर्वी क्या है?

उत्तर-(अणाणुपुव्वी) अनानुपूर्वी इस प्रकार से है-(एयाएचेव एगाइयाए एगुत्तरियाए अणंतगच्छगयाए सेढीए-अण्णमण्णब्भासो दुरू-

---

પ્રશ્ન-(से किं तं पच्छाणुपुव्वी?) હે ભગવન્! પશ્ચાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(पच्छाणुपुव्वी) પશ્ચાનુપૂર્વીનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ છે-(अणंतपएसिए, असंखिज्जपएसिए, संखिज्जपएसिए जाव दसपएसिए जाव तिप्पएसिए, दुप्पएसिए, परमाणुपोग्गले) જ્યારે પુદ્ગલાસ્તિકાયને અનંત પ્રદેશિક, અસંખ્યાત પ્રદેશિક, સંખ્યાતપ્રદેશિક, દસપ્રદેશિક, નવપ્રદેશિક આદિ ત્રણ પ્રદેશિક પર્યન્તના સ્કન્ધરૂપે અને દ્વિપ્રદેશિક સ્કંધ અને પરમાણુ પુદ્ગલ, આ પ્રકારે ઉલ્ટા ક્રમથી પરિગણિત થાય છે, ત્યારે (से तं पच्छाणुपुव्वी તેને પશ્ચાનુપૂર્વી કહેવાય છે.

પ્રશ્ન-(से किं तं अणाणुपुव्वी?) હે ભગવન્! અનાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું હોય છે?

ઉત્તર-(अणाणुपुव्वी) અનાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે-(एयाए चेव

पूर्वी तु एकादिकायामेकोत्तरिकायाम् अनन्तगच्छगतायाम्–एकोत्तरवृद्धिमत्स्कन्धानामनन्तत्वात् स्कन्धा अनन्तास्तेषां गच्छः समुदायस्तं गता=प्राप्ता तस्यां तथाभूतायाम् एतस्यां=परमाणुपुद्गलादारभ्य अनन्तप्रदेशपर्यन्तायामेव श्रेण्यां=पंक्तौ, सा अन्योऽन्याभ्यासः=परस्परगुणनरूपा द्विरूपोनः=आद्यन्तस्थभङ्गद्वयरहिता च बोध्या।

ननु यथैकः पुद्गलास्तिकायः पूर्वानुपूर्व्यादित्वेनोदाहृतः, तथैवान्येऽपि कथं नोदाहृताः? इति चेत्, उच्यते–इह पूर्वानुपूर्व्यादिविचारे परमाण्वादिद्रव्याणां

वृणो) जिसमें पुर्वानुपूर्वी और पश्चानुपूर्वी ये दोनों नहीं हैं उसका नाम अनानुपूर्वी है यह बात पहिले कह दी गई है। इसमें विवक्षित पदों के अनन्तरोक्त क्रमद्वय को उलंघन करके परस्पर संभवित भंगों से उन पदों की विरचना की जाती है। उसमें सबसे पहिले एकप्रदेशी परमाणुपुद्गल की स्थापना की जाती है। फिर बादमें द्विप्रदेशी स्कंध आदि की। इस प्रकार एक एक २ प्रदेश की वृद्धि करते २ जब अनंत प्रदेशी स्कंधतक स्थापना हो चुकती है–तब इन सबकी श्रेणी बन जाती है। इस श्रेणी–पंक्ति में एकोत्तर वृद्धिवाले स्कंध अनंत हो जाते हैं। फिर इनमें परस्पर में गुणा किया जाता है। जो महाराशिरूप संख्या आती है उसमें आदि और अन्त के दो भंग करनेपर अनानुपूर्वी बन जाती है।

शंका–जैसे एक पुगद्लास्तिकाय पूर्वानुपूर्वी आदि रूपसे उदाहृत

एगाइयाए एगुत्तरियाए अणंतगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवूणो) જેમાં પૂર્વાનુપૂર્વી અને પશ્ચાનુપૂર્વી, એ બન્ને નથી, તેનું નામ અનાનુપૂર્વી છે, એ વાત પહેલાં પ્રકટ કરવામાં આવી ચુકી છે તેમાં વિવક્ષિત પદોના (પરમાણુ પુદ્ગલ આદિના) ઉપર્યુક્ત બન્ને ક્રમનો પરિત્યાગ કરીને પરસ્પર સંભવિત ભંગો વડે તે પદોની વિરચના કરવામાં આવે છે. તેમાં સૌથી પહેલાં એક પ્રદેશી પરમાણુ પુદ્ગલની સ્થાપના કરવામાં આવે છે અને ત્યાર બાદ દ્વિપ્રદેશી સ્કંધ આદિની સ્થાપના કરાય છે. આ રીતે એક એક પ્રદેશની વૃદ્ધિ કરતાં કરતાં જ્યારે અનંત પ્રદેશી સ્કંધ સુધીની સ્થાપના થઇ જાય છે, ત્યારે તે બધાની એક શ્રેણી બની જાય છે. આ શ્રેણી–પંક્તિમાં ઉત્તરોત્તર એકની વૃદ્ધિવાળા સ્કંધ અનેક થઇ જાય છે. ત્યાર બાદ પરસ્પરનો ગુણાકાર કરવામાં આવે છે. આ આ રીતે જે મહારાશિ રૂપ સંખ્યા આવે છે તેમાંથી પહેલો અને છેલ્લો, એ બે ભંગ કમી કરવાથી અનાનુપૂર્વી બની જાય છે.

પ્રશ્ન–જે રીતે એક પુદ્ગલાસ્તિકાયને ઉદાહરણ રૂપે લઇને તેની પૂર્વા-

परिपाटयादिलक्षणः क्रमः प्रक्रान्तः। स च द्रव्यबाहुल्ये सत्येव संभवति। न चास्ति धर्मास्तिकाये, अधर्मास्तिकाये, आकाशास्तिकाये च पुद्गलास्तिकायवद् द्रव्यबाहुल्यम्, एकैक द्रव्यत्वात्तेषाम्। जीवास्तिकाये त्वनन्तजीवद्रव्याणां सत्त्वाद् यद्यप्यस्ति द्रव्यबाहुल्यम्, तथापि परमाणुद्विप्रदेशिकादिषु यथा पूर्वानुपूर्वीत्वादिहेतुः पूर्वपश्चाद्भावो विद्यते, न तथा जीवद्रव्येषु, प्रत्येकजीवस्यासंख्येयप्रदेशत्वेन सर्वजीवानां तुल्यप्रदेशत्वात्। परमाणुद्विप्रदेशिकादिद्रव्याणां तु विषमप्रदेशिकत्वात् पूर्वपश्चाद्भावो विद्यते। तथा–अद्धासमयस्यापि एकसमयरूपत्वादेव

हुआ है–उदाहरण से उपस्थित किया गया—है वैसे ही अन्य धर्मास्तिकाय आदि द्रव्य क्यों नहीं उदाहृत किये गये हैं।

उत्तर–यहां पूर्वानुपूर्वी आदि के विचार में परमाणु आदि द्रव्योंका परिपाटीरूपक्रम प्रक्रान्त कथन में चलरहा–है, सो वह क्रम द्रव्यकी बहुलता मे संभवित होता है–बन सकता है धर्मास्तिकाय में, अधर्मास्तिकाय में और आकाशास्तिकाय में पुगद्लास्तिकाय की तरह यह द्रव्यबाहुल्य नहीं है क्योंकि सब एकएक द्रव्यरूप माने गये हैं। यह यद्यपि जीवास्तिकाय में अनंत जीवद्रव्यों की सत्ता होने के कारण द्रव्यबाहुल्य है, परन्तु फिरभी परमाणुओं में एवं द्विप्रदेशी स्कंध आदिकों में जैसा पूर्वानुपूर्वी आदि कारणभूत पूर्व पश्चाद्भाव विद्यमान है वैसा जीवद्रव्यों में नहीं है। क्योंकि प्रत्येक जीव असंख्यात प्रदेशवाला है। इसलिये समस्त जीवों में तुल्य प्रदेशता है परमाणुओं एवं द्विप्रदेशिक

નુપૂર્વી આદિનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું છે, એજ પ્રમાણે ધર્માસ્તિકાય આદિ અન્ય દ્રવ્યોને ઉદાહરણરૂપે કેમ લેવામાં આવ્યાં નથી ?

ઉત્તર–અહીં પૂર્વાનુપૂર્વી આદિનો વિચાર કરતાં પરમાણુ આદિ દ્રવ્યોનો પરિપાટી રૂપ ક્રમ (અનુક્રમ) પ્રસ્તુત કથનમાં પ્રતિપાદિત થઈ રહ્યો છે. તેથી આ કથન દ્રવ્યની બહુતામાં જ સંભવી શકે છે. ધર્માસ્તિકાય અધર્માસ્તિકાય અને આકાશાસ્તિકાયમાં પુદ્ગલાસ્તિકાયની જેમ આ દ્રવ્યબાહુલ્યનો સદ્ભાવ નથી. કારણ કે તેમને તો એક એક દ્રવ્યરૂપ માનવામાં આવેલ છે. જો કે જીવાસ્તિકાયમાં અનંત જીવદ્રવ્યોની સત્તા (અસ્તિત્વ) હોવાને કારણે દ્રવ્યબાહુલ્ય છે, પરન્તુ પરમાણુઓમાં અને દ્વિપ્રદેશી સ્કંધ આદિકોમાં જેવો પૂર્વાનુપૂર્વી આદિના કારણભૂત પૂર્વપશ્ચાત્ ભાવ વિદ્યમાન છે, એવો જીવ દ્રવ્યોમાં નથી, કારણ કે પ્રત્યેક જીવ અસંખ્યાત પ્રદેશવાળો છે તેથી સમસ્ત જીવોમાં તુલ્ય (સમાન) પ્રદેશતા છે. પરમાણુઓ અને દ્વિપ્રદેશિક આદિ દ્રવ્યોમાં તો વિષમ

पूर्वानुपूर्वीत्वाद्यसंभवः, अतोऽत्र पुद्गलास्तिकाय एव पूर्वानुपूर्वीत्वादिकोदाहृतः, नत्वन्ये धर्मास्तिकायादय इति।

तदेतदुपसंहरन्नाह-'से तं' इत्यादि। सैषा अनानुपूर्वीति। औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी सम्पूर्णेति सूचयितुमाह-'से तं ओवणिहिया' इत्यादि। सैषा औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वीति। ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्ता द्रव्यानुपूर्वीसंपूर्णेति सूचयितुमाह-'से तं जाणयसरीरभवियसरीर वइरित्ता' इत्यादि-सैषा ज्ञायक-

---

आदि द्रव्यों में तो विषमप्रदेशिकता है इसलिये वहां पूर्वपश्चाद्भाव है। तथा जो अद्धासमय है वह एकसमयरूप है इसलिये उसमें भी पूर्वानुपूर्वी आदि संभवित नहीं हैं इसलिये पुगदलास्तिकाय ही पूर्वानुपूर्वी आदिरूप से उदाहृत किये गये हैं अन्य धर्मास्तिकाय आदि द्रव्य नहीं। (से तं अणाणुपुव्वी) इस प्रकार यह अनानुपूर्वी है। (से तं ओवणिहिया दव्वाणुपुव्वी) यहांतक पूर्व प्रक्रान्त औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी का कथन किया गया है। (से तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वाणुपुव्वी) इस प्रकार औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी का कथन समाप्त होते ही ज्ञायक शरीर भव्य शरीरव्यतिरिक्त द्रव्यानुपूर्वी समाप्त हो जाती है। (से तं नो आगमओ दव्वाणुपुव्वी-से तं दव्वाणुपुव्वी) इस कथन की समाप्ति होते ही नोआगम को आश्रित करके जायमान द्रव्यानुपूर्वीका स्वरूप समाप्त हो जाता है। इसप्रकार यह द्रव्यानुपूर्वी है।

પ્રદેશિકતા છે, તેથી ત્યાં પૂર્વપશ્ચાદ્ભાવ છે. તથા જે અદ્ધા સમય સંભવિત નથી તેથી પુદ્ગલાસ્તિકાયનું જ પૂર્વાનુપૂર્વી આદિ રૂપે ઉદાહરણ આપવામાં આવ્યું છે, અન્ય ધર્માસ્તિકાય આદિ દ્રવ્યોનું તે પ્રકારે ઉદાહરણ આપવામાં આવ્યું નથી. (से तं अणाणुपुव्वी) આ પ્રકારનું અનાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ છે. (से तं ओवणिहिया दव्वाणुपुव्वी) અહીં સુધીમાં પૂર્વપ્રસ્તુત ઔપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વીનું કથન કરવામાં આવ્યું છે. (से तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वाणुपुव्वी) આ રીતે ઔપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વીનું કથન પૂરું થતાં જ, જ્ઞાયક શરીર અને ભવ્યશરીરથી ભિન્ન એવી દ્રવ્યાનુપૂર્વીનું વર્ણન પણ અહીં સમાપ્ત થાય છે.

(से तं नोआगमओ दव्वाणुपुव्वी-से तं दव्वाणुपुव्वी) આ કથનની સમાપ્તિ થઈ જવાથી નોઆગમને આધારે જે દ્રવ્યાનુપૂર્વી બને છે તેના સ્વરૂપના નિરૂપણની પણ સમાપ્તિ થઈ જાય છે. આ પ્રકારનું આ દ્રવ્યાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ છે.

शरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्ता द्रव्यानुपूर्वीति। नोआगमतो द्रव्यानुपूर्वी संपूर्णेति सूचयितुमाह–'से तं नो आगमओ' इत्यादि–सैषा नो आगमतो द्रव्यानुपूर्वीति। द्रव्यानुपूर्वी सम्पूर्णेति सूचयितुमाह–'से तं' इत्यादि–सैषा द्रव्यानुपूर्वीति॥सू.९९॥

भावार्थ–इस सूत्रद्वारा सूत्रकारने पुद्गल द्रव्य को लक्ष्य करके औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी की त्रिविधता उसपर घटित की है। यह तो पहिले से ही ज्ञात हो चुका है कि विवक्षित द्रव्य विशेष के समुदाय में जो प्रथम द्रव्य है उससे लेकर क्रमशः अन्तिम द्रव्यतक जो परिपाटी स्थापित की जाती है वह आनुपूर्वी है। यहां पुद्गलद्रव्य के ऊपर सूत्रकार को यह घटित करनी है, अतः वे उसके एकप्रदेश से लेकर क्रमशः अनन्त प्रदेशी स्कंध तक बनाते हैं। इस प्रकार एकप्रदेशी पुद्गलपरमाणु यह पुद्गलास्तिकाय द्रव्य का प्रथम द्रव्य जानना चाहिये। इसके बाद एक प्रदेशोत्तर वृद्धि करते चला जाना चाहिये। इससे द्विप्रदेशी स्कंध त्रिप्रदेशी स्कंध, चतुष्प्रदेशी स्कंध पंच प्रदेशी स्कंध, आदि अनंत प्रदेशी स्कंध तक अनंत पौद्गलिक स्कंध बन जाते हैं। तब इनकी स्थापना इस प्रकार से की जाती है–एक प्रदेशी परमाणु पुद्गल, द्विप्रदेशी स्कंध द्व्यणुक, त्रिप्रदेशी त्र्यणुक चतुष्प्रदेशी स्कंध चतुरणुक इत्यादि। इस प्रकार की यथाक्रम की गई यह स्थापना पूर्वानुपूर्वी है। तथा इसी स्थापना

ભાવાર્થ–આ સૂત્રમાં સૂત્રકારે પુદ્ગલ દ્રવ્યને અનુલક્ષીને ઔપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વીની ત્રિવિધતાનું પ્રતિપાદન કર્યું છે એ વાત તો પહેલાં પ્રકટ થઈ ચુકી છે કે વિવક્ષિત દ્રવ્યસમુદાયમાં જે પહેલું દ્રવ્ય હોય તે દ્રવ્યથી શરૂ કરીને અનુક્રમે છેલ્લા દ્રવ્ય સુધીની જે પરિપાટી (અનુક્રમ) સ્થાપિત કરવામાં આવે છે, તેનું નામ આનુપૂર્વી છે. અહીં પુદ્ગલ દ્રવ્ય સાથે સૂત્રકાર તે આનુપૂર્વીને ઘટાવવા માગે છે તેથી તેમણે તેના એક પ્રદેશથી લઈને અનંતપ્રદેશ સુધીના અનંત સ્કંધ બનાવ્યાં છે. આ રીતે એક પ્રદેશી પુદ્ગલ પરમાણુને પુદ્ગલાસ્તિકાયનું પ્રથમ દ્રવ્ય સમજવું જોઈએ ત્યાર બાદ એક એક પ્રદેશની વૃદ્ધિ કરતાં કરતાં આગળ વધવું જોઈએ. આ રીતે દ્વિપ્રદેશી સ્કંધ, ત્રિપ્રદેશી સ્કંધ, ચાર પ્રદેશી સ્કંધ, પાંચ પ્રદેશી સ્કંધ આદિ અનંત પ્રદેશી પર્યન્તના અનંત પૌદ્ગલિક સ્કંધ બની જાય છે. ત્યારે તેમની સ્થાપના આ પ્રમાણે કરવામાં આવે છે–એક પ્રદેશીપરમાણુ પુદ્ગલ, દ્વિપ્રદેશી સ્કંધ દ્વ્યણુક, ત્રિપ્રદેશી સ્કંધ ત્રિઅણુક, ચતુષ્પ્રદેશી સ્કંધ ચતુરણુક, ઇત્યાદિ.

આ પ્રકારના સીધા ક્રમપૂર્વક જે સ્થાપના કરવામાં આવે છે તેનું નામ પૂર્વાનુપૂર્વી છે. એજ સ્થાપનામાં છેલ્લા દ્રવ્યને (અનંતપ્રદેશી સ્કંધને) પહેલો

में जब अन्तिमादि द्रव्य को प्राथमिक रूप देकर व्युत्क्रम से स्थापित किया जाता है तो वही पश्चानुपूर्वी कहलाती है तथा स्वेच्छानुसार क्रम-व्युत्क्रम का उल्लंघन करके पुद्गलास्तिकाय के द्रव्यों का जो स्थापना करना होता है वह अनानुपूर्वी है। जैसे इसे यों समझना चाहिये कि चतुरणुक के बाद एकप्रदेशीपुद्गल परमाणु का, इसके बाद षट्प्रदेशी पुद्गलस्कंध का इसके बाद असंख्यात प्रदेशी स्कंध आदि का स्थापन करना आदि। ज्ञायकशरीरभव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्यानुपूर्वी पहिले दो प्रकार की सूत्रकार ने कही है इसमें अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी के विषय में सूत्रकार ने बहुत अधिक विस्तृत विवेचन किया है। औपनिधि की द्रव्यानुपूर्वी पूर्वानुपूर्वी आदि के भेद से यह तीन प्रकार की कही गई है। एक पुद्गलास्तिकाय के ऊपर जो पूर्वानुपूर्वी आदि की घटना सूत्रकार ने कही है उसका कारण यह है कि उनमें ही द्रव्यबहुलता है। "आकाशादेकद्रव्याणि" अर्थात्–आकाश पर्यन्तके तीन द्रव्य–अर्थात् धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, और आकाशास्तिकाय ये तीनों द्रव्य एक द्रव्य वाले होते हैं, तदनुसार धर्मास्तिकाय आदि तीन

મૂકીને ઉલટા ક્રમથી જ્યારે દ્રવ્યોને સ્થાપિત કરવામાં આવે છે, ત્યારે તેને પશ્ચાનુપૂર્વી કહે છે તથા ઉપરના બન્ને ક્રમનું ઉલ્લંઘન કરીને પોતાની ઇચ્છાનુસાર પુદ્ગલાસ્તિકાયના દ્રવ્યોની જે સ્થાપના કરવામાં આવે છે તેને અનાનુપૂર્વી કહે છે. જેમ કે ચતુરણુક સ્કંધની પહેલાં સ્થાપના કરવી, ત્યાર બાદ એક પ્રદેશી પુદ્ગલ પરમાણુની, ત્યાર બાદ છ પ્રદેશી પુદ્ગલ સ્કંધની સ્થાપના કરવી, ત્યાર બાદ અસંખ્યાત પ્રદેશી સ્કંધ આદિની સ્થાપના કરવી તેનું નામ અનાનુપૂર્વી છે. જ્ઞાયક શરીર અને ભવ્યશરીરથી ભિન્ન એવી દ્રવ્યાનુપૂર્વીના સૂત્રકારે બે પ્રકાર પહેલાં પ્રકટ કર્યા છે. તેમાંના અનૌપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વી નામના બીજા પ્રકારનું તો ખૂબજ વિસ્તારપૂર્વક પહેલાં વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે.

ઔપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વીના પૂર્વાનુપૂર્વી આદિ ત્રણ ભેદોનું નિરૂપણ પણ પહેલાં સૂત્રોમાં કરવામાં આવ્યું છે. ત્યાર બાદ સૂત્રકારે એક પુદ્ગલાસ્તિકાયના પૂર્વાનુપૂર્વી આદિ સ્વરૂપોનું નિરૂપણ કર્યું છે, પણ ધર્માસ્તિકાય આદિ દ્રવ્યોમાં એ પ્રમાણે કરવામાં આવ્યું નથી, કારણ કે પુદ્ગલાસ્તિકાયમાં જ દ્રવ્યબાહુલ્યનો સદ્ભાવ–ધર્માસ્તિકાય આદિમાં દ્રવ્યબાહુલ્ય નથી. "आकाशादेकद्रव्याणि" આ કથન અનુસાર ધર્માસ્તિકાય આદિ ત્રણ દ્રવ્યોમાં

इत्थं द्रव्यानुपूर्वीमुक्त्वा सम्प्रति क्षेत्रानुपूर्वीमाह—

मूलम्—से किं तं खेत्ताणुपुव्वी ? खेत्ताणुपुव्वी दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—ओवणिहिया य अणोवणिहिया य। तत्थ णं जा सा ओवणिहिया सा ठप्पा। तत्थ णं जा सा अणोवणिहिया सा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—णेगमववहाराणं १, संगहस्स २ य ॥सू० १००॥

छाया—अथ का सा क्षेत्रानुपूर्वी ? क्षेत्रानुपूर्वी द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—औपनिधिकी च अनौपनिधिकी च। तत्र खलु या सा औपनिधिकी सा स्थाप्या।

द्रव्यों में द्रव्य बहुलता नहीं है। जीवास्तिकाय में यद्यपि द्रव्य बाहुल्य है—परन्तु पुद्गल की तरह वह द्रव्य बाहुल्य एक २ जीव द्रव्य में क्रमशः नहीं है, क्योंकि प्रत्येक जीवद्रव्य असंख्यात प्रदेशी हैं। इस प्रकार इस कथन के समाप्त होते ही नो आगम की अपेक्षा लेकर द्रव्यानुपूर्वी का स्वरूप कथन समाप्त हो जाता है ॥ सू० ९९ ॥

अब सूत्रकार क्षेत्रानुपूर्वी का कथन करते हैं—

"से किं तं खेत्ताणुपुव्वी" इत्यादि।

शब्दार्थ—(से किं तं खेत्ताणुपुव्वी) हे भदन्त ! क्षेत्रानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—(खेत्ताणुपुव्वी दुविहा पण्णत्ता) क्षेत्रानुपूर्वी दो प्रकार की कही गई है। (तं जहा) जैसे (ओवणिहिया य अणोवणिहिया य) १ औपनिधिकी

દ્રવ્યબાહુલ્યનો અભાવ છે. જીવાસ્તિકાયમાં જો કે દ્રવ્યબાહુલ્ય છે ખરું, પરન્તુ પુદ્ગલની જેમ તે દ્રવ્યબાહુલ્ય એક એક જીવદ્રવ્યમાં ક્રમશઃ નથી, કારણ કે જીવદ્રવ્ય અસંખ્યાત પ્રદેશી છે. આ રીતે આ કથન સમાપ્ત થઈજતા નોઆગમની અપેક્ષાએ દ્રવ્યાનુપૂર્વીના સ્વરૂપનું કથન સમાપ્ત થઈ જાય છે. ॥સૂ૦૯૯॥

હવે સૂત્રકાર ક્ષેત્રાનુપૂર્વીનું નિરૂપણ કરે છે—

" से किं तं खेत्ताणुपुव्वी " ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(से किं तं खेत्ताणुपुव्वी ?) હે ભગવન્! ક્ષેત્રાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર—(खेत्ताणुपुव्वी दुविहा पण्णत्ता) ક્ષેત્રાનુપૂર્વી બે પ્રકારની કહી છે—(तंजहा) તે બે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે—(ओवणिहिया य अणोवणिहिया) (१)

तत्र खलु या सा अनौपनिधिकी सा द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-नैगमव्यवहारयोः१, संग्रहस्य २ च ॥सू० १००॥

टीका—' से किं तं ' इत्यादि-

व्याख्या पूर्ववद् बोध्या ॥सू० १००॥

क्षेत्रानुपूर्वी, दूसरी अनौपनिधि की क्षेत्रानुपूर्वी। (तत्थ णं जा सा ओवणिहियासा ठप्पा) इनमें जो औपनिधि की क्षेत्रानुपूर्वी है वह अल्प विषय वाली होने के कारण अर्थात् उसका विषय विशेष विवेचना करने के योग्य न होने से-इस समय व्याख्या नहीं की जाती है। तात्पर्य कहने का यह है कि प्रथम नंबर की होने के कारण सूत्रकार को सबसे पहिले औपनिधि की क्षेत्रानुपूर्वी का विवेचन करना कर्तव्य है। परन्तु ऐसा न करके वे पहिले अनौपनिधि की क्षेत्रानुपूर्वी का जो विवेचन करेंगे उसका कारण यह है कि औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी का विषय विशेष वक्तव्य के योग्य नहीं है। क्यों कि उसका विषय अल्प है। इसलिये (तत्थ णं जा सा अणोवणिहिया सा दुविहा पण्णत्ता) इनदोनों आनुपूर्वियों में जो अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी है उसका विस्तृत विवेचन करने के अभिप्राय से सूत्रकार कहते हैं कि वह दो प्रकार की कही गई है। (तं जहा) वे उसके प्रकार ये हैं-(णेगमववहाराणं १ संगहस्स २) एक

ઔપનિધિકી ક્ષેત્રાનુપૂર્વી', અને (૨) અનૌપનિધિકી ક્ષેત્રાનુપૂર્વી' (तत्थणं जा सा ओवणिहिया सा ठप्पा) તેમાંથી જે ઔપનિધિકી ક્ષેત્રાનુપૂર્વી' છે તે અલ્પ વિષયવાળી હોવાને કારણે એટલે કે તેનો વિષય, વિશેષ વિવેચન કરવા યોગ્ય નહીં હોવાને કારણે, તેનું નિરૂપણ સૂત્રકાર આ સૂત્રમાં કરશે નહીં પણ પાછળના સૂત્રમાં કરશે જો કે ક્રમ અનુસાર તો તે પહેલી હોવાથી તેનું નિરૂપણ પહેલાં થવું જોઇએ પરન્તુ સૂત્રકારે અહીં અનૌપનિધિકી ક્ષેત્રાનુપૂર્વીનું નિરૂપણ પહેલાં કર્યું છે કારણ કે ઔપનિધિકી ક્ષેત્રાનુપૂર્વીનો વિષય અલ્પ હોવાથી તેનું વિશેષ વક્તવ્ય કરવાનું નથી. પરન્તુ અનૌપનિધિકી ક્ષેત્રાનુપૂર્વીનો વિષય વિસ્તૃત વિવેચન કરવા યોગ્ય છે. તેથી સૂત્રકાર અહીં પહેલાં અનૌપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વીનું નિરૂપણ કહે છે કે-(तत्थ णं जा सा अणोवणिहिया सा दुविहा पण्णत्ता) તે બન્ને આનુપૂર્વીઓમાંની જે અનૌપનિધિકી ક્ષેત્રાનુપૂર્વી' છે તેના બે પ્રકાર કહ્યા છે. (तंजहा) તે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે- (णेगमववहाराणं, संगहस्स) (૧) નૈગમવ્યવહાર નયસંમત અનૌપનિધિકી ક્ષેત્રા-

तत्र नैगमव्यवहारसम्मतां क्षेत्रानुपूर्वीं निरूपयितुमाह-

मूलम्-से किं तं णेगमववहाराणं अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी? णेगमववहाराणं अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी पंचविहा पण्णत्ता, तंजहा-अत्थपयपरूवणया१, भंगसमुक्कित्तणया२, भंगोवदंसणया३, समोयारे४, अणुगमे ॥सू० १०१॥

छाया-अथ का सा नैगमव्यवहारयोः अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी? नैगमव्यवहारयोः अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी पञ्चविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-अर्थपदप्ररूपणता१, भंगसमुत्कीर्त्तनता२, भंगोपदर्शनता३, समवतारः४, अनुगमः५॥सू.१०१॥

टीका-'से किं तं' इत्यादि-

अथ का सा नैगमव्यवहारसम्मता अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी? इति शिष्य प्रश्नः। उत्तरमाह-'नेगमववहाराणं अणोवणिहिया' इत्यादि। नैगमव्यवहारयोः

नैगमव्यवहारनयसंमत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी और दूसरी संग्रहनयसंमत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी। इस सूत्र की व्याख्या पहिले की तरह जाननी चाहिये॥ सू० १००॥

अब नैगमव्यवहारनयसंमत क्षेत्रानुपूर्वी का कथन सूत्रकार करते हैं-"से किं तं णेगमववहाराणं" इत्यादि।

शब्दार्थ-हे भदन्त! नैगम और व्यवहारनय संमत अनौपनिधि की क्षेत्रानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

उत्तर-(अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी) अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वीका स्वरूप इस प्रकार से है-(पंचविहा पण्णत्ता) यह नैगमव्यवहारनयसंमत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी पांच प्रकार की कही गई है। (तं जहा) वे प्रकार ये हैं-(अत्थपयपरूवणया १ भंगसमुक्कित्तणया

नुपूर्वी (२) संग्रहनयसंमत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी आ सूत्रनी व्याख्या आगळ कह्या प्रमाणे समजवी. ॥सू०१००॥

हवे सूत्रकार नैगमव्यवहारसंमत क्षेत्रानुपूर्वीनुं निरूपण करे छे-"से किं तं णेगमववहाराणं" इत्यादि—

शब्दार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! नैगम अने व्यवहार नयसंमत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वीनुं स्वरूप केवुं छे?

उत्तर-(अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी) अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वीनुं स्वरूप आ प्रकारनुं छे-(पंचविहा पण्णत्ता) आ नैगम अने व्यवहारनयसंमत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी पांच प्रकारनी कही छे. (तंजहा) ते प्रकारो नीचे प्रमाणे छे-(अत्थपयपरूवणया, भंगसमुक्कित्तणया, भंगोवदंसणया, समोयारे, अणु-

अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी=क्षेत्रविषया आनुपूर्वी पञ्चविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-अर्थपदप्ररूपणता १, भङ्गसमुत्कीर्त्तनता २, भङ्गोपदर्शनता ३, समवतारः ४, अनुगम ५, इति ॥सू० १०१॥

मूलम्-से किं तं णेगमववहाराणं अत्थपयपरूवणया? णेगमववहाराणं अट्ठपयपरूवणया तिप्पएसोगाढे आणुपुव्वी जाव दसपएसोगाढे आणुपुव्वी जाव संखिज्जपएसोगाढे आणुपुव्वी असंखिज्जपएसोगाढे आणुपुव्वी। एगपएसोगाढे अणाणुपुव्वी। दुप्पएसोगाढे अवत्तव्वए तिप्पएसोगाढा आणुपुव्वीओ जाव दसपएसोगाढा आणुपुव्वीओ जाव असंखिज्जपएसोगाढा आणुपुव्वीओ। एगपएसोगाढा अणाणुपुव्वीओ। दुप्पएसोढा अवत्तव्वयाइं। से तं णेगमववहाराणं अत्थपयपरूवणया॥सू० १०२॥

छाया-अथ का सा नैगमव्यवहाराणाम् अर्थपदपरूपणता? नैगमव्यवहाराणाम् अर्थपदप्ररूपणता-त्रिप्रदेशावगाढ आनुपूर्वी यावद् दशप्रदेशावगाढ आनु-

---

२, भंगोवदंसणया ३, समोयारे ४, अणुगमे) अर्थपदप्ररूपणता भंगसमुत्कीर्तनता, भंगोपदर्शनता, समावतार और अनुगम इन सब शब्दों की व्याख्या पीछे ७४ वें सूत्रमें की जा चुकी है॥ सू० १०१॥

अब सूत्रकार नैगमव्यहारनय संमत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी का जो प्रथम भेद अर्थपदप्ररूपणता है उसका कथन करते हैं-

"से किं तं णेगमववहाराणं" इत्यादि।

शब्दार्थ-'से किं तं णेगमववहाराणं अत्थपयपरूवणया?' हे भदन्त! नैगमव्यवहारनय संमत अर्थपदप्ररूपणता का क्या स्वरूप है?

गमे) (१) अर्थपद प्ररूपणता, (२) भंगसमुत्कीर्तनता, (३) भंगोपदर्शनता, (४) समवतार, अने (५) अनुगम आ पांचे शब्दोनी व्याख्या आगळ ७४मां सूत्रमां आपवामां आवी छे तो त्यांथी वांची लेवी. ॥सू०१०१॥

हवे सूत्रकार नैगमव्यवहारनयसंमत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वीना अर्थपदप्ररूपणता नामना पहेला भेदनुं निरूपण करे छे—

"से किं तं णेगमववहाराणं" इत्यादि—

शब्दार्थ-(से किं तं णेगमववहाराणं अत्थपयपरूवणया?) हे भगवन्! नैगम अने व्यवहार नयसंमत अर्थपदप्ररूपणतानुं स्वरूप केवुं छे?

पूर्वी यावत्संख्येयप्रदेशावगाढः-आनुपूर्वी असंख्येयप्रदेशावगाढ आनुपूर्वी। एकप्रदेशावगाढः अनानुपूर्वी। द्विप्रदेशावगाढः अवक्तव्यकम्। त्रिप्रदेशावगाढा आनुपूर्व्यो यावद् दशप्रदेशावगाढा आनुपूर्व्यो यावद् असंख्येयप्रदेशावगाढा आनुपूर्व्यः।

(णेगमववहाराणं अत्थपयपरूवणया)

उत्तर-नैगमव्यवहारनयसंमत अर्थपद प्ररूपणता का स्वरूप इस प्रकार से है-(तिप्पएसोगाढे आणुपुव्वी, जाव दसपएसोगाढे आणुपुव्वी जाव संखिज्जपएसोगाढे आणुपुव्वी, असंखिज्जपएसोगाढे आणुपुव्वी) त्र्यणुक स्कंध आदि रूप अर्थ से युक्त अथवा त्र्यणुक स्कंध आदिरूप अर्थ को विषय करनेवाला जो पद है उसका नाम अर्थपद है। इस अर्थकी प्ररूपणता करने का नाम अर्थपदप्ररूपणा है। तीन आकाश प्रदेश में स्थित द्रव्यस्कंध आनुपूर्वी है। यावत् दश आकाश प्रदेशों में स्थित द्रव्यस्कंध आनुपूर्वी है यावत् संख्यात आकाश प्रदेशों में स्थित द्रव्यस्कंध आनुपूर्वी है। असंख्यात आकाश प्रदेशों में स्थित द्रव्यस्कंध आनुपूर्वी है। (एगपएसोगाढे अणाणुपुव्वी, दुप्पएसोगाढे-अवत्तव्वए) एक प्रदेश में स्थित परमाणु द्रव्य अनानुपूर्वी है। दो प्रदेश में स्थित द्वयणुक स्कंध अवक्तव्यक द्रव्य हैं। (तिप्पएसोगाढा आणुपुव्वीओ जाव दसपएसोगाढा आणुपुव्वीओ जाव असंखिज्जपएसोगाढा आणुपुव्वीओ) तीन आकाश प्रदेशों में स्थित समस्त द्रव्यस्कंध तीन

उत्तर-(णेगमववहाराणं अत्थपयपरूवणया) नैगमव्यवहार नयसंमत अर्थपदप्ररूपणानुं स्वरूप आ प्रकारनुं छे—

(तिप्पएसोगाढे आणुपुव्वी, जाव दसपएसोगाढे आणुपुव्वी जाव संखिज्जपएसोगाढे आणुपुव्वी, असंखिज्जपएसोगाढे आणुपुव्वी) त्रिअणुक स्कंध आदि रूप अर्थ (विषय) थी युक्त अथवा त्रिअणुक स्कंध आदि रूप अर्थनुं प्रतिपादन करनारुं जे पद छे तेनुं नाम अर्थपदप्ररूपणता छे. त्रण आकाश प्रदेशोमां रहेलो द्रव्यस्कंध आनुपूर्वी रूप छे. एज प्रमाणे दश पर्यन्तना, संख्यात पर्यन्तना अने असंख्यात पर्यन्तना आकाशप्रदेशोमां रहेल द्रव्यस्कंध पण आनुपूर्वी रूप छे. (एगपएसोगाढे अणाणुपुव्वी, दुप्पएसोगाढे अवत्तव्वए) एक आकाशप्रदेशोमां स्थित परमाणु द्रव्य अनानुपूर्वी रूप छे. बे आकाशप्रदेशोमां स्थित परमाणु स्कंध अवक्तव्यक द्रव्य रूप छे.

(तिप्पएसोगाढा आणुपुव्वी जाव दसपएसोगाढा आणुपुव्वीओ, जाव असंखिज्जपएसोगाढा आणुपुव्वीओ) त्रण आकाशप्रदेशोमां रहेला समस्त द्रव्य-

एकप्रदेशावगाढा अनानुपूर्व्यः। द्विप्रदेशावगाढा अवक्तव्यकानि। सैषा नैगमव्यवहारयोः अर्थपदप्ररूपणता ॥सू० १०२॥

टीका–तत्रार्थपदप्ररूपणतां निरूपयितुमाह–'से किं तं' इत्यादि–अथ का सा नैगमव्यवहारसम्मताऽर्थपदप्ररूपणता? इति। उत्तरमाह–'णेगमववहाराणं' इत्यादि। नैगमव्यवहारयोरर्थपदप्ररूपणता–'त्रिप्रदेशावगाढ आनुपूर्वी यावद् दशप्रदेशावगाढ आनुपूर्वी' इत्यारभ्य 'द्विप्रदेशावगाढा अवक्तव्यकानि' इत्यन्ता बोध्या। द्रव्यानुपूर्वीवदत्रापि व्याख्या विज्ञेया। अयमत्र विशेषः–त्रिप्रदेशावगाढः= त्रिषु नभः प्रदेशेषु अवगाढः=स्थितः, त्रिप्रदेशावगाढः–त्रिप्रदेशावगाही द्रव्यस्कन्धः। स त्र्यणुकादिकोऽनन्ताणुकपर्यन्तो द्रव्यस्कन्ध आनुपूर्वी।

ननु यदि द्रव्यस्कन्ध एवानुपूर्वी, कथं तर्हि तस्य क्षेत्रानुपूर्वीत्वम्? इति चेत्, उच्यते–क्षेत्रप्रदेशत्रयावगाहपर्यायविशिष्टोऽसौ द्रव्यस्कन्धो गृह्यते, न तु

आनुपूर्वी है। यावत् दश प्रदेशों में स्थित समस्त द्रव्यस्कंध दश आनुपूर्वियां हैं। यावत् असंख्यात प्रदेशों में स्थित द्रव्यस्कंध असंख्यात आनुपूर्वियां हैं। (एगपएसोगाढा अणाणुपुव्वीओ! दुप्पएसोगाढा अवत्तव्वयाइं) आकाश के एक २ प्रदेश में स्थित एक पुद्गलपरमाणु संघात आदि अनानुपूर्वियां हैं। दो प्रदेश में स्थित द्व्यणुक द्रव्यस्कंध आदि अवक्तव्यक द्रव्य हैं। यह सूत्रपदों का अर्थ हैं इनकी व्याख्या के लिये देखो ७५ वां सूत्र।

शंका–त्रिप्रदेशावगाही द्रव्यस्कंध से लेकर अनंताणुक पर्यन्त स्कंधद्रव्य आदि अनानुपूर्वी रूप है तो उसमें क्षेत्रानुपूर्वी रूपता कैसे बन

સ્કંધો ત્રણ આનુપૂર્વીઓ રૂપ હોય છે, એજ પ્રમાણે દસ પર્યન્તના પ્રદેશોમાં સ્થિત સમસ્ત દ્રવ્યસ્કંધો દશ પર્યન્તની આનુપૂર્વીઓ રૂપ હોય છે, સંખ્યાત પ્રદેશોમાં સ્થિત સમસ્ત દ્રવ્યસ્કંધો સંખ્યાત આનુપૂર્વીઓ રૂપ અને અસંખ્યાત આકાશપ્રદેશોમાં સ્થિત સમસ્ત દ્રવ્યસ્કંધો અસંખ્યાત આનુપૂર્વીઓ રૂપ હોય છે. (एगपएसोगाढा अणाणुपुव्वीओ, दुप्पएसोगाढा अवत्तव्वयाइं) આકાશના એક એક પ્રદેશમાં સ્થિત પ્રત્યેક પુદ્ગલપરમાણુ રૂપ સમુદાય અનાનુપૂર્વીઓ રૂપછે. બે આકાશપ્રદેશોમાં રહેલા દ્વયણુક દ્રવ્ય સ્કંધો અવક્તવ્યક દ્રવ્યો રૂપ છે. આ પ્રકારનો સૂત્રપદોનો અર્થ થાય છે. તેમની વ્યાખ્યા ૭૫માં સૂત્રમાં આપી છે.

શંકા–ત્રિપ્રદેશાવગાહી દ્રવ્યસ્કંધથી લઇને અનંતાણુક પર્યન્તના દ્રવ્યસ્કંધો આનુપૂર્વી રૂપ હોય તો તેમાં ક્ષેત્રાનુપૂર્વી રૂપતા કેવી રીતે ઘટી

तद्विशिष्टः, अतोऽत्र क्षेत्रानुपूर्व्यधिकारात् क्षेत्रावगाहपर्यायस्य प्राधान्यात् सोऽपि क्षेत्रानुपूर्वीति न दोषः। अयं भावः-क्षेत्रानुपूर्व्यधिकारादेवात्र प्रदेशत्रयलक्षणस्य क्षेत्रस्यैव मुख्यं क्षेत्रानुपूर्वीत्वम्। एवं च तदवगाढं द्रव्यमपि तत्पर्यायस्य प्राधान्येन विवक्षितत्वात् क्षेत्रानुपूर्वीत्वेन न विरुध्यते, इति।

सकती है? क्योंकि क्षेत्रानुपूर्वी रूपता तो प्रदेश त्र्यादिरूप क्षेत्रके साथ संबन्ध रखती है त्र्यणुकादि पुद्गल स्कंधों के साथ नहीं। शंकाकार का अभिप्राय यह है क्षेत्रानुपूर्वीका जब यहां प्रकरण चलरहा है तो उसमें पुद्गल द्रव्यानुपूर्वी के विचार करने की क्या आवश्यकता है?

उत्तर-यहां जो त्रिप्रदेशावगाढ द्रव्यस्कंध को अनानुपूर्वी कहा है। सो उसका तात्पर्य आकाश के तीन प्रदेशों में अवगाहरूप पर्याय से विशिष्ट द्रव्यस्कंध से हैं। तीन पुद्गलपरमाणुवाले द्रव्यस्कंध अकाशरूप क्षेत्र के तीन प्रदेशों को रोक कर रहते हैं। अतः आकाशके तीन प्रदेशमें अवगाही द्रव्यस्कंध आनुपूर्वी है, ऐसा जानना चाहिये। वैसे तो क्षेत्रानुपूर्वी का अधिकार चला आरहा है इसलिये मुख्य रूप से क्षेत्रानुपूर्वी तो तीन प्रदेशरूप क्षेत्र ही है। इस प्रकार मुख्यरूप से क्षेत्रानुपूर्वी रूपता तीन प्रदेशरूप क्षेत्र में विवक्षित होने पर भी जो तदवगाढ-तीन प्रदेश रूप क्षेत्रावगाही-द्रव्य को क्षेत्रानुपूर्वी कहा है वह क्षेत्रावगाह रूप पर्याय

શકે છે? ક્ષેત્રાનુપૂર્વીરૂપતા તો પ્રદેશત્રયાદિરૂપ ક્ષેત્રની સાથે સંબંધ રાખે છે-ત્રિઅણુક પુદ્ગલસ્કંધોની સાથે સંબંધ રાખતી નથી શંકાકર્તાનો એવો અભિપ્રાય છે કે અહીં જ્યારે ક્ષેત્રાનુપૂર્વીનો અધિકાર ચાલી રહ્યો છે, ત્યારે પુદ્ગલ દ્રવ્યાનુપૂર્વીનો વિચાર કરવાની શી આવશ્યકતા છે?

ઉત્તર-અહીં જે ત્રણ પ્રદેશની અવગાહનાવાળા દ્રવ્યસ્કંધને આનુપૂર્વી રૂપ કહેવામાં આવ્યો છે, તેનો અર્થ અહીં આ પ્રમાણે સમજવો જોઇએ-ત્રણ પ્રદેશોમાં અવગાહના રૂપ પર્યાયથી યુક્ત દ્રવ્યસ્કંધને અહીં આનુપૂર્વી રૂપ કહેલ છે-ત્રણ પુદ્ગલ પરમાણુવાળા દ્રવ્યસ્કંધને નહીં તે ત્રણ પુદ્ગલ પરમાણુવાળા દ્રવ્યસ્કંધો આકાશ રૂપ ક્ષેત્રના ત્રણ પ્રદેશોને રોકીને રહે છે. તેવી આકાશના ત્રણ પ્રદેશોમાં અવગાહી (રહેલો) દ્રવ્યસ્કંધ આનુપૂર્વી રૂપ છે, એમ સમજવું. જો કે અત્યારે તો અહીં ક્ષેત્રાનુપૂર્વીનો અધિકાર ચાલી રહ્યો છે, અને મુખ્યત્વે ક્ષેત્રાનુપૂર્વી તો ત્રણ પ્રદેશરૂપ ક્ષેત્ર જ છે. આ રીતે ક્ષેત્રાનુપૂર્વી રૂપતા મુખ્યત્વે ત્રણ પ્રદેશ રૂપ ક્ષેત્રમાં વિવક્ષિત હોવા છતાં પણ જે ત્રણ પ્રદેશરૂપ ક્ષેત્રાવગાહી દ્રવ્યને ક્ષેત્રાનુપૂર્વી રૂપ કહેવામાં આવ્યું છે, તે

ननु यदि क्षेत्रस्यैव मुख्यं क्षेत्रानुपूर्वीत्वं तर्हि कथं तत् परित्यज्य तदवगाढ द्रव्यस्यानुपूर्वीत्वादिकं चिन्त्यते ? इति चेत्, उच्यते–' संतपयपरूवणया ' इत्यादि वक्ष्यमाणबहुतरविचारविषयत्वेन द्रव्यस्य शिष्यमतिव्युत्पादनार्थत्वात्, क्षेत्रस्य तु नित्यत्वेन सदावस्थितमानत्वादचलत्वाच्च प्रायस्तत्रानुपूर्व्यादिकल्पनाकरणे शिष्यबुद्धेः सम्यक् प्रवेशाभावात् तत्रानुपूर्वीत्वादिकं न चिन्त्यते, अतोऽत्र क्षेत्रावगाढद्रव्यमेव क्षेत्रानुपूर्वीत्वेनोक्तमिति नास्ति कश्चिद् दोषः। एवं चतुष्प्रदेशाऽवगाढद्रव्यादिष्वपि बोध्यम्। 'असंख्येयप्रदेशावगाढ आनुपूर्वी ' इत्यस्य असंख्येय-

---

को प्रधानता से विवक्षित होनेके कारण से कहा है। अतः द्रव्य में भी उपचार से क्षेत्रानुपूर्वी रूपता विरुद्ध नहीं पड़ती है।

शंका–जब क्षेत्र में ही मुख्य रूप से क्षेत्रानुपूर्वी रूपता है तो फिर क्या ऐसा कारण है जो इस मुख्य रूपता का परित्याग कर उपचार को शरण करके तदवगाही द्रव्य में क्षेत्रानुपूर्वी का विचार किया जारहा है?

उत्तर (संतपयपरूवणया) आदि रूप वक्ष्यमाण बहुतर विचार का विषय द्रव्य होता है और इसी के विचार से शिष्यों की मति व्युत्पन्न बनती है। क्षेत्र तो नित्य है तथा सदा अवस्थित है अचल है इसलिये प्रायः करके उसमें आनुपूर्वी आदि की कल्पना करने में शिष्यजन की बुद्धिका अच्छी तरह प्रवेश नहीं हो सकता है। इसलिये वहां पर आनुपूर्वी आदि का विचार नहीं किया है। अतः यहां पर क्षेत्रावगाही द्रव्य

ક્ષેત્રાવગાહ રૂપ પર્યાય મુખ્યત્વે વિવક્ષિત હોવાને કારણે કહ્યું છે. તેથી દ્રવ્યમાં પણ ઔપચારિક રૂપે ક્ષેત્રાનુપૂર્વી રૂપતા વિરૂદ્ધ પડતી નથી.

શંકા–જો ક્ષેત્રમાં જ મુખ્યત્વે ક્ષેત્રાનુપૂર્વીતાનો સદ્ભાવ હોય તો શા કારણે આ મુખ્યરૂપતાનો પરિત્યાગ કરીને ઔપચારિકતાનો આધાર લઈને તદવગાહી (તેમાં અવગાહિત થયેલા-રહેલા) દ્રવ્યમાં ક્ષેત્રાનુપૂર્વીનો વિચાર કરવામાં આવી રહ્યો છે ?

ઉત્તર–સત્પદપ્રરૂપણતા આદિ રૂપ નીચે દર્શાવેલા ઘણા વિચારોનો વિષય દ્રવ્ય હોય છે, અને તેના જ વિચારથી શિષ્યોની મતિ વ્યુત્પન્ન બને છે. ક્ષેત્ર તો નિત્ય છે તથા સદા અવસ્થિત છે, અને અચલ છે. તેથી સામાન્યતઃ તેમાં આનુપૂર્વી આદિની કલ્પના કરવાથી એ વાત શિષ્યોના મગજમાં સારી રીતે ઉતરી શકતી નથી તેથી તેને અનુલક્ષીને આદિનો વિચાર કરવામાં આવ્યો નથી અહીં તો ક્ષેત્રાવગાહી દ્રવ્યને ક્ષેત્રાનુપૂર્વી રૂપે પ્રકટ કરવામાં

प्रदेशेषु अवगाढोऽसंख्येयाणुकोऽनन्ताणुको वा द्रव्यस्कन्धः, इत्यर्थो बोद्धव्यः। अयमिदं बोध्यम्–एकः परमाणुः आकाशस्य एकस्मिन्नेव प्रदेशेऽवगाहते, द्विप्रदेशिकादयोऽसंख्यातप्रदेशिकान्तास्तु स्कन्धाः प्रत्येकं जघन्यत एकस्मिन्नाकाशप्रदेशेऽवगाहन्ते, उत्कृष्टतस्तु यत्र स्कन्धे यावन्तः परमाणवो भवन्ति स स्कन्धस्तावत्स्वेव नभःप्रदेशेष्ववगाहते। अनन्ताणुकस्कन्धोऽपि जघन्यत एकस्मिन्नभःप्रदेशेऽवगाहते, उत्कृष्टतस्तु–असंख्येयेष्वेव आकाशप्रदेशेष्ववगाहते, नत्वनन्तेषु, लोकाकाशस्यासंख्येयप्रदेशत्वात्, अलोकाकाशे च द्रव्यस्यावगाहाभावादिति। तथा

ही क्षेत्रानुपूर्वी से कहा है। इसमें कोई दोष नहीं हैं। इसी प्रकार से चतुष्प्रदेशावगाढ द्रव्य आदिकों के विषय में भी ऐसा ही जानना चाहिये।

"असंख्येयप्रदेशावगाढ आनुपूर्वी" इस पद का अर्थ आकाश के असंख्यात प्रदेशों में असंख्यात अणुवाला अथवा अनंत अणुवाला द्रव्यस्कंध आनुपूर्वी है ऐसा जानना चाहिये। तात्पर्य इसका यह है कि एक पुद्गलपरमाणु आकाश के एकही प्रदेश में अवगाही होता है। परन्तु दो प्रदेशवाले पुद्गलस्कंध से लेकर असंख्यात प्रदेशवाले जो पुद्गलस्कंध है उनमें प्रत्येक पुद्गल स्कंध कमसे कम एक आकाश प्रदेश में रहता है और अधिक से अधिक जिस स्कंध में जितने प्रदेश हैं–जितने परमाणुओं का बना हुआ है–वह उतने ही आकाश के प्रदेशों में ठहरता है। अनन्त आकाश प्रदेशों में नहीं। क्योंकि द्रव्यों का अवगाह असंख्यात प्रदेशवाले लोकाकाश में ही हैं। अनन्त प्रदेश वाले अलोकाकाश में

આવેલ છે તેથી તે કથનમાં કોઈ દોષ નથી એજ પ્રમાણે ચાર પ્રદેશાવગાઢ-દ્રવ્ય વગેરેના વિષયમાં પણ એમ જ સમજવું જોઈએ.

"અસંખ્ય પ્રદેશાવગાઢ આનુપૂર્વી" આ પદનો અર્થ નીચે પ્રમાણે સમજવો–આકાશના અસંખ્યાત પ્રદેશોમાં અસંખ્યાત અણુવાળો અથવા અનંત અણુવાળો દ્રવ્યસ્કંધ આનુપૂર્વી છે એમ સમજવું આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે–એક પુદ્ગલપરમાણુ આકાશના એક જ પ્રદેશમાં અવગાહી હોય છે. પરન્તુ બે પ્રદેશવાળા પુદ્ગલસ્કંધથી લઈને અસંખ્યાત પ્રદેશવાળા જે પુદ્ગલ સ્કંધો છે, તેમાંનો પ્રત્યેક પુદ્ગલ સ્કંધ ઓછામાં ઓછા એક આકાશપ્રદેશમાં રહે છે અને વધારેમાં વધારે તે સ્કંધના જેટલા પ્રદેશો હોય–જેટલા પરમાણુઓનો તે સ્કંધ બનેલો હોય–એટલાજ આકાશપ્રદેશોમાં તે રહે છે, અનંત આકાશપ્રદેશોમાં તે રહેતો નથી, કારણ કે દ્રવ્યોનો અવગાહ અસંખ્યાત પ્રદેશોવાળા લોકાકાશમાં જ છે–અનંત પ્રદેશ-

एकप्रदेशावगाढः-एकस्मिन्नेव नभःप्रदेशे अवगाढः=स्थितः परमाणुसङ्घातः स्कन्धसङ्घातश्च क्षेत्रतोऽनानुपूर्वीति। तथा-द्विप्रदेशावगाढः-आकाशस्य प्रदेशद्वयेऽवगाढः=स्थितो द्विप्रदेशिकादिस्कन्धः क्षेत्रतोऽवक्तव्यकमिति। प्रकृतमुपसंहरन्नाह-'से तं' इत्यादि। सैषा नैगमव्यवहारयोरर्थप्ररूपणतेति॥सू० १८२॥

नहीं। तात्पर्य यह है कि आधारभूत क्षेत्र के प्रदेशों कि संख्या आधेय-पुद्गल द्रव्य के परमाणुओं की संख्या से न्यून या उसके बराबर हो सकती है, अधिक नहीं। इसलिये एक परमाणु एकही आकाश प्रदेश स्थित रहता है पर द्व्यणुक एक प्रदेश में भी ठहर सकता है और दो में भी इसी प्रकार उत्तरोत्तर संख्या बढते २ त्र्यणुक चतुरणुक-यावत् संख्यातागुक स्कंध एक प्रदेश दो प्रदेश तीन प्रदेश यावत् संख्यात प्रदेश क्षेत्र में ठहर सकते हैं संख्यातागुक द्रव्य की स्थिति के लिए असंख्यात प्रदेश वाले क्षेत्र की आवश्यकता नहीं पड़ती। असंख्यातागुक स्कंध एक प्रदेश से लेकर अधिक से अधिक अपने बराबर की अधिक संख्यावाले प्रदेश के क्षेत्र में ठहर सकता है। अनन्तागुक और अनंतानंतागुक स्कंध भी एकप्रदेश दो प्रदेश इत्यादि क्रम से बढते २ संख्यात प्रदेश और असंख्यात प्रदेशवाले क्षेत्र में ठहर सकते हैं, उनकी स्थिति के लिये अनंत प्रदेशात्मक क्षेत्र जरूरी नहीं है। तथा एकही आकाश-

---

વાળા અલોકાકાશમાં નથી આ કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે આધારભૂત ક્ષેત્રના પ્રદેશોની સંખ્યા આધેયભૂત પુદ્ગલદ્રવ્યના પરમાણુઓની સંખ્યા કરતાં ઓછી પણ હોઈ શકે છે અને બરાબર પણ હોઈ શકે છે, પરન્તુ અધિક હોઇ શકતી નથી તેથી એક પરમાણુ એક જ આકાશપ્રદેશમાં રહી શકે છે પણ બે અણુવાળો સ્કંધ એક આકાશપ્રદેશમાં પણ રહી શકે છે અને બે આકાશપ્રદેશોમાં પણ રહી શકે છે એજ પ્રમાણે ઉત્તરોત્તર અણુઓની સંખ્યા વધતાં વધતાં જે ત્રિઅણુક, ચતુરણુક આદિ સંખ્યાતાણુક પર્યન્તના સ્કંધો પણ એક પ્રદેશમાં, બે પ્રદેશમાં, ત્રણપ્રદેશમાં અને સંખ્યાત સુધીના આકાશપ્રદેશોમાં રહી શકે છે. સંખ્યાતાણુક દ્રવ્યને રહેવાને માટે અસંખ્યાત પ્રદેશોવાળા ક્ષેત્રની જરૂર પડતી નથી અસંખ્યાતાણુક સ્કંધ એક પ્રદેશથી લઇને વધારેમાં વધારે પોતાના બરાબરની અધિક સંખ્યાવાળા પ્રદેશના ક્ષેત્રમાં રહી શકે છે. અનંતાણુક સ્કંધ અને અનંતાનતાણુક સ્કંધ પણ એક પ્રદેશમાં, બે પ્રદેશમાં, ત્રણ પ્રદેશમાં અને એજ ક્રમે વધતાં વધતાં સંખ્યાત પ્રદેશવાળા ક્ષેત્રમાં રહી શકે છે. તેમની સ્થિતિને માટે (તેમને રહેવાને માટે) અનંત પ્રદેશવાળા ક્ષેત્રની જરૂર પડતી નથી તથા એક જ આકાશપ્રદેશમાં

मूलम्–एयाए णं णेगमववहाराणं अत्थपयपरूवणयाए किं पओयणं? एयाए णं णेगमववहाराणं अत्थपयपरूवणयाए णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया कज्जइ ॥सू० १०३॥

छाया—एतया खलु नैगमव्यवहारयोः अर्थपदप्ररूपणतया किं प्रयोजनम्? एतया खलु नैगमव्यवहारयोरर्थपदप्ररूपणतायां नैगमव्यवहारयोः भङ्गसमुत्कीर्त्तनता क्रियते ॥सू० १०३॥

टीका—'एयाए णं' इत्यादि—

नैगमव्यवहारसम्मतया एतया अर्थपदप्ररूपणतया किं प्रयोजनम्? इति प्रश्नः। एतया हि भङ्गसमुत्कीर्त्तनता क्रियते इत्युत्तरम् ॥सू० १०३॥

प्रदेश में स्थित परमाणु संघात और स्कंध संघात क्षेत्रकी अपेक्षा अनानुपूर्वी है तथा द्विप्रदेशावगाढ-आकाशके दो प्रदेशों में स्थित–द्विप्रदेशिक आदि स्कंध, क्षेत्र की अपेक्षा अवक्तव्यक है। इस प्रकार यह नैगमव्यवहारनय संमत अर्थपद प्ररूपणता है ॥ सू० १०२॥

"एयाएणं णेगमववहाराणं" इत्यादि।

शब्दार्थ-(एयाएणं णेगमववहाराणं अत्थपयपरूवणयाए किं पओयणं?) हे भदन्त! नैगम व्यवहारनय संमत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी के प्रथम भेद रूप इस अर्थपदप्ररूपणता से क्या प्रयोजन सिद्ध होता है?

उत्तर-(एयाएणं णेगमववहाराणं अत्थपयपरूवणयाए णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया कज्जइ) नैगमव्यवहारनयसंमत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी के प्रथम भेद रूप इस अर्थपद प्ररूपणता से भंग-

---

સ્થિત પરમાણુ સંઘાત અને સ્કંધ સંઘાતક્ષેત્રની અપેક્ષાએ અનાનુપૂર્વી છે તથા દ્વિપ્રદેશાવગાઢ (આકાશના બે પ્રદેશોમાં રહેલા) દ્વિપ્રદેશિક આદિ સ્કંધ ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ અવક્તવ્યક છે, એમ સમજવું નૈગમવ્યવહાર નયસંમત અર્થપ્રરૂપણતાનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ છે. ॥સૂ૦૧૦૨॥

"एयाएणं णेगमववहाराणं" इत्यादि—

શબ્દાર્થ–(एयाएणं णेगमववहाराणं अत्थपयपरूवणयाए किं पओयणं?) હે ભગવન્! નૈગમ વ્યવહારનયસંમત અનૌપનિધિકી ક્ષેત્રાનુપૂર્વીના પ્રથમ ભેદ રૂપ આ અર્થપદપ્રરૂપણતાથી કયું પ્રયોજન સિદ્ધ થાય છે?

ઉત્ત–(एयाए णं णेगमववहाराणं अत्थपयपरूवणयाए णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया कज्जइ) નૈગમવ્યવહારનયસંમત અનૌપનિધિકી ક્ષેત્રાનુપૂર્વીના પ્રથમ ભેદ રૂપ આ અર્થપદપ્રરૂપણતા વડે ભંગસમુત્કીર્તનતા રૂપ પ્રયોજન

मूलम्–से किं तं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया? णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया–अत्थि आणुपुव्वी, अत्थि अणाणुपुव्वी, अत्थि अवत्तव्वए। एवं दव्वाणुपुव्विगमेणं खेत्ताणुपुव्वीए वि ते चेव छव्वीसं भंगा भाणियव्वा, जाव से तं भंगसमुक्कित्तणया ॥सू० १०४॥

छाया—अथ का सा नैगमव्यवहारयोः भङ्गसमुत्कीर्त्तनता? नैगमव्यवहारयोः भङ्गसमुत्कीर्त्तनता–अस्ति आनुपूर्वी, अस्ति अनानुपूर्वी, अस्ति अवक्तव्यकम्। एवं द्रव्यानुपूर्वीगमेन क्षेत्रानुपूर्व्यामपि त एव षड्विंशतिर्भङ्गा भणितव्याः, यावत् सैषा नैगमव्यवहारयोः भङ्गोपदर्शनता ॥सू० १०४॥

टीका—अथ भङ्गसमुत्कीर्त्तनतां प्ररूपयितुमाह–'से किं तं' इत्यादि। अथ का सा नैगमव्यवहारसम्मता भङ्गसमुत्कीर्त्तनता? इति प्रश्नः। उत्तरमाह—'णेगमववहाराणं' इत्यादि। नैगमव्यवहारसम्मता भङ्गसमुत्कीर्तनता–अस्ति आनुपूर्वी,

---

समुत्कीर्तनता रूप प्रयोजन सिद्ध होता है। इसके भावार्थ के लिये पीछे ७६ वें सूत्र के भावर्थ को देखो। ॥ १०३ ॥

अब सूत्रकार इसी भंगसमुत्कीर्तनता का निरूपण करते हैं–

"से किं तं णेगमववहाराणं" इत्यादि।

शब्दार्थ– (से किं तं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया?) हे भदन्त! नैगमव्यवहारनयसंमत वह भंग समुत्कीर्तनता क्या है?

उत्तर–(णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया अत्थि आणुपुव्वी अत्थि अणाणुपुव्वी, अत्थि अवत्तव्वए) नैगमव्यवहारनयसंमत वह भंग-समुत्कीर्तनता इस प्रकार से है–आनुपूर्वी है, अनानुपूर्वी है अवक्त-

---

સિદ્ધ થાય છે આ પદના ભાવાર્થ માટે આગળના ૭૬માં સૂત્રનો ભાવાર્થ વાંચી જવો. ॥સૂ૦૧૦૩॥

હવે સૂત્રકાર એજ ભંગસમુત્કીર્તનતાનું નિરૂપણ કરે છે—

"से किं तं णेगमववहाराणं" ઇત્યાદિ—

ઉત્તર—(णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया अत्थि आणुपुव्वी, अत्थि अणाणुपुव्वी, अत्थि अवत्तव्वए) નૈગમવ્યવહારનયસંમત તે ભંગસમુત્કીર્તનતાનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ છે–આનુપૂર્વી છે, અનાનુપૂર્વી છે, અને અવક્તવ્યક છે.

अस्ति अनानुपूर्वी, अस्ति अवक्तव्यकम्। एवं द्रव्यानुपूर्वीगमेन=द्रव्यानुपूर्वीपाठवत् क्षेत्रानुपूर्व्यामपि त एव=द्रव्यानुपूर्वीप्रकरणे ७७-७८ सूत्रे प्रोक्ता एव, षड्विंशति भंगा भणितव्याः। किमवधि भणितव्याः? इत्याह-'जाव से तं' इत्यादि। यावत् सैषा नैगमव्यवहारसम्मता भङ्गसमुत्कीर्त्तनतेति ॥सू० १०४॥

मूलम्-एयाएणं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए किं पओयणं? एयाएणं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया कज्जइ ॥सू० १०५॥

छाया—एतया खलु नैगमव्यवहारयोः भङ्गसमुत्कीर्त्तनतया किं प्रयोजनम्? एतया खलु नैगमव्यवहारयोः भङ्गसमुत्कीर्त्तनतया नैगमव्यवहारयो भङ्गोपदर्शनता क्रियते ॥सू० १०५॥

व्यक है। (एवं दव्वाणुपुव्विगमेणं खेत्ताणुपुव्वीए वि ते चेव छव्वीसं भंगा भाणियव्वा अत्थि से तं भंगसमुक्कित्तणया) इस प्रकार द्रव्यानुपूर्वी के पाठ की तरह क्षेत्रानुपूर्वी में भी द्रव्यानुपूर्वी के प्रकरण में कहे गये २६ भंग जानना चाहिये। इन भंगो के विषय को स्पष्ट करनेवाला पाठ ७७ -७८ सूत्रों में पीछे कहा गया है-सो वहांतक इस भंग विषयक पाठ को ग्रहण करना चाहिये। यह पाठ "से तं भंगसमुक्कित्तणया" यहीं तक है। इस सूत्र की व्याख्या के लिये इन्हीं सूत्रों की व्यख्या को देखनी चाहिये। ॥ सू० १०४ ॥

अब सूत्रकार इस भंगसमुत्कीर्तनता का क्या प्रयोजन है? इसबात को स्पष्ट करते हैं-'एयाए णं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए' इत्यादि।

शब्दार्थ-(एयाए णं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए किं पओ-

(एवं दव्वाणुपुव्विगमेणं खेत्ताणुपुव्वीए वि ते चेव छव्वीसं भंगा भाणियव्वा जाव से तं भंगसमुक्कित्तणया) આ પ્રકારે દ્રવ્યાનુપૂર્વીના પાઠની જેમ ક્ષેત્રાનુપૂર્વીમાં પણ દ્રવ્યાનુપૂર્વીના પ્રકરણમાં કહેવામાં આવેલા ૨૬ ભાંગાઓ કહેવા જોઇએ. આ ભંગોના (ભાંગાઓના) વિષયની સ્પષ્ટતા ૭૭ તથા ૭૮ માં સૂત્રોમાં કરવામાં આવી ચુકી છે, "से तं भंगसमुक्कित्तणया" આ સૂત્રપાઠ પર્યન્તનો સૂત્રપાઠ ત્યાંથી ગ્રહણ કરવો જોઇએ. આ સૂત્રની વ્યાખ્યાને માટે ઉપર્યુક્ત બન્ને સૂત્રોની વ્યાખ્યા વાંચી લેવી. ॥સૂ૦ ૧૦૪॥

"एयाए णं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए" इत्यादि—

શબ્દાર્થ-(एयाए णं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए किं पओयणं? હે ભગવન્! નૈગમ અને વ્યવહારનયસંમત આ ભંગસમુત્કીર્તનતાનું શું પ્રયોજન છે?

टीका-'एयाए णं' इत्यादि। व्याख्या सुगमा सा अष्ट सप्ततितम ७८ सूत्रे विलोकनीया ॥सू. १०५॥

मूलम्-से किं तं णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया? णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया तिप्पएसोगाढे आणुपुव्वी, एगपएसोगाढे अणाणुपुव्वी, दुप्पएसोगाढे अवत्तव्वए, तिप्पएसोगाढा आणुपुव्वीओ, एगपएसोगाढा अणाणुपुव्वीओ, दुप्पएसोगाढा अवत्तव्वयाइं ॥सू० १०६॥

छाया-अथ का सा नैगमव्यवहारयोः भङ्गोपदर्शनता ? नैगमव्यवहारयोर्भङ्गोपदर्शनता-त्रिप्रदेशावगाढ आनुपूर्वी, एकप्रदेशावगाढः अनानुपूर्वी, द्विप्रदेशावगाढः

यणं ?) हे भदन्त ! नैगमव्यवहारनय संमत इस भंगसमुत्कीर्तनता का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर-(एयाएणं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया कज्जइ) नैगमव्यवहारनय संमत इस भंगसमुत्कीर्तनता से नैगमव्यवहारनय संमत भंगों को दिखाया जाता है-अर्थात् उनकी प्ररूपणा की जाती है। इसलिये भंगसमुत्कीर्तनताका भंगों को दिखलाना यही प्रयोजन है। इसकी व्याख्या के लिये पीछे का ७८ अठहत्तर वां सूत्र देखो। ॥ सू० १०५ ॥

"से किं तं णेगमववहाराणं" इत्यादि।

शब्दार्थ-(से किं तं णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया) हे भदन्त ! नैगमव्यवहारनय संमत वह भंगोपदर्शनता क्या है ?

उत्तर-(णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया) नैगमव्यवहारनय संमत

उत्तर-(एयाएणं णं णेगममहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया कज्जइ) नैगमव्यवहारनयसंमत आ भंगसमुत्कीर्तनता वडे नैगमव्यवहारनयसंमत भांगाओ बताववामां आवे छे, अटले के तेमनी प्ररूपणा करवामां आवे छे. तेथी भंगोने (भांगाओने) प्रकट करवानुं ज प्रयोजन छे. आ सूत्रनी व्याख्याने माटे आगळनुं ७८मुं सूत्र वांची जवुं. ॥सू०१०५॥

"से किं तं णेगमववहाराणं" इत्यादि—

शब्दार्थ-(से किं तं णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया?) हे भगवन् ! नैगमव्यवहार नयसंमत ते भंगोपदर्शनतानुं स्वरूप केवुं छे?

उत्तर-(णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया) नैगमव्यवहारनयसंमत भंगोपदर्शनतानुं स्वरूप आ प्रकारनुं छे—

अवक्तव्यकम्। त्रिप्रदेशावगाढा आनुपूर्व्यः, एकप्रदेशावगाढा अनानुपूर्व्यः, द्विप्रदेशावगाढा अवक्तव्यकानि ॥सू० १०६॥

टीका—सम्प्रति भङ्गोपदर्शनतां निरूपयितुमाह-'से किं तं' इत्यादि। टीका सुगमा ॥सू० १०६॥

भंगोपदर्शनता इस प्रकार से है-(तिप्पएसोगाढे आणुपुव्वी एगपएसोगाढे अणाणुपुव्वी दुप्पएसोगाढे अवत्तव्वए) आकाश के तीन प्रदेशों में रहा हुआ त्र्यणुक आदि स्कंध आनुपूर्वी इस शब्दका वाच्यार्थ है। एकप्रदेश में स्थित परमाणु संघात, और स्कंध संघात क्षेत्र की अपेक्षा अनानुपूर्वी है तथा आकाश के दो प्रदेशों में स्थित द्विप्रदेशिक आदि स्कंध क्षेत्र की अपेक्षा अवक्तव्यक है। (तिप्पएसोगाढा आणुपुव्वीओ, एगपएसोगाढा अणाणुपुव्वीओ, दुप्पएसोगाढा अवत्तव्वयाइं) आकाश के तीन प्रदेशों में रहे हुए बहुत से त्र्यणुक आदि स्कंध आनुपूर्वियां इस बहुवचनान्त शब्द के वाच्यार्थ हैं। आकाशके एक प्रदेश में रहे हुए अनेक परमाणु संघात आदि द्रव्य, अनानुपूर्वियां इस शब्दके वाच्यार्थ हैं। तथा द्विप्रदेश में स्थित अनेक द्विप्रदेशिक आदि स्कंध अवक्तव्यक इस बहुवचनान्त शब्द के वाच्यार्थ हैं। इसकी व्याख्या के लिये पीछे ७९ वें सूत्र की व्याख्या देखनी चाहिये ॥ सू० १०६ ॥

(तिप्पएसोगाढे आणुपुव्वी एगपएसोगाढे अणाणुपुव्वी दुप्पएसोगाढे अवत्तव्वए) આકાશના ત્રણ પ્રદેશોમાં રહેલા ત્ર્યણુક (ત્રણ અણુવાળા) આદિ સ્કંધ 'આનુપૂર્વી' આ શબ્દના વાચ્યાર્થ રૂપ છે. એકપ્રદેશમાં સ્થિત પરમાણુ સંઘાત, અને સ્કંધ સંઘાત ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ અનાનુપૂર્વી છે

તથા આકાશના બે પ્રદેશોમાં રહેલ દ્વિપ્રદેશિક આદિ સ્કંધ ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ અવક્તવ્યક છે (तिप्पएसोगाढा आणुपुव्वीओ एगपएसोगाढा अणाणुपुव्वीओ, दुप्पएसोगाढा अवत्तव्वयाइं) ઘણાં જ ત્રિઅણુક આદિ સ્કંધો "આનુપૂર્વીઓ" આ બહુવચનાન્ત શબ્દના વાચ્યાર્થ રૂપ છે. આકાશના એક પ્રદેશમાં રહેલા અનેક પરમાણુ સંઘાત આદિ દ્રવ્યો "અનાનુપૂર્વીઓ" આ પદના વાચ્યાર્થ રૂપ છે. બે પ્રદેશોમાં સ્થિત અનેક દ્વિપ્રદેશિક આદિ સ્કંધો "અવક્તવ્યકો" આ બહુવચનાન્ત પદના વાચ્યાર્થ રૂપ છે. આ સૂત્રની વ્યાખ્યા સમજવા માટે ૭૯ માં સૂત્રની વ્યાખ્યા વાંચી લેવી. ॥ સૂ. ૧૦૬ ॥

मूलम्–अहवा तिप्पएसोगाढे य एगपएसोगाढे य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य, एवं तहा चेव दव्वाणुपुव्विगमेणं छव्वीसं भंगा भाणियव्वा जाव से तं णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया ॥सू० १०७॥

छाया—अथवा-त्रिप्रदेशावगाढश्च एकप्रदेशावगाढश्च आनुपूर्वी च अनानुपूर्वी च। एवं तथाचैव द्रव्यानुपूर्वीगमेन षड्विंशतिर्भङ्गा भणितव्या यावत् सैषा नैगमव्यवहारयोः भङ्गोपदर्शनता ॥सू० १०७॥

टीका—'अहवा' इत्यादि। व्याख्या सुगमा ॥सू० १०७॥

"अहवा तिप्पएसोगाढे य" इत्यादि।

शब्दार्थ-(अहवा तिप्पएसोगाढे य एगपएसोगाढे य आणुपुव्वीय) अणाणुपुव्वीय) अथवा-त्रिप्रदेशावगाढ स्कंध और एकप्रदेशावगाढ स्कंध एक आनुपूर्वी और एक अनानुपूर्वी हैं। (एवं तहाचेव दव्वाणुपुव्विगमेणं छव्वीसं भंगा भाणियव्वा जाव से तं णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया) इस तरह द्रव्यानुपूर्वी के पाठ की तरह २६, भंग समझ लेना चाहिये। इस प्रकार यह नैगम व्यवहारनयसंमत भंगोपदर्शनता है।

सूत्रकारने यह बात पहिले द्रव्यानुपूर्वी के प्रकरण में स्पष्ट करदी है कि एकवचनान्त और बहुवचनान्त आनुपूर्वी आदि-३-३ पदों के असंयोग और संयोगपक्ष में २६, भंग किस प्रकार से बनते हैं और इन सबका वाच्यार्थ क्या २ है। उस द्रव्यानुपूर्वी के प्रकरणगत आनुपूर्वी,

---

"अहवा तिप्पएसोगाढे" इत्यादि—

शब्दार्थ—(अहवा तिप्पएसोगाढे य एगपएसोगाढे य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य) अथवा-त्रिप्रदेशावगाढ स्कंध (आकाशना त्रण प्रदेशोमां रहेलो स्कंध) अने એક प्रदेशावगाढ स्कंध એક आनुपूर्वी अने એક अनानुपूर्वी छे. (एवं तहाचेव दव्वाणुपुव्विगमेणं छव्वीसं भंगा भाणियव्वा जाव से तं णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया) એજ પ્રમાણે દ્રવ્યાનુપૂર્વીના પાઠની જેમ ૨૬ ભાંગાઓ સમજી લેવા જોઇએ.

આ પ્રકારનું નૈગમવ્યવહાર નયસંમત ભંગોપદર્શનતાનું સ્વરૂપ છે.

સૂત્રકારે પહેલાં દ્રવ્યાનુપૂર્વીના પ્રકરણમાં એ વાત સ્પષ્ટ કરી છે કે એકવચનાન્ત અને બહુવચનાન્ત આનુપૂર્વી આદિ ત્રણ-ત્રણ પદોના અસંયોગ અને સંયોગ પક્ષે ૨૬ ભાંગાઓ કેવી રીતે બને છે, અને તેમનો વાચ્યાર્થ શો થાય છે.

તે દ્રવ્યાનુપૂર્વીના પ્રકરણમાં બતાવેલાં આનુપૂર્વી, અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક આદિ પદોના વાચ્યાર્થમાં ત્રિપ્રદેશિક આદિ સ્કંધ, એક પ્રદેશી

अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक आदि पदों के वाच्यार्थ में त्रिप्रदेशिक आदि स्कंध एक प्रदेशी पुद्गल परमाणु और द्विप्रदेशी स्कंध आदि आते हैं। तब कि इस क्षेत्रानुपूर्वी के प्रकरण गत भंगोपदर्शनता में आकाश के तीन प्रदेशों में स्थित त्रिप्रदेशिक आदि स्कंध ही आनुपूर्वी शब्द के वाच्यार्थ माने गये हैं। एक दो आकाश के प्रदेशों में स्थित त्रिप्रदेशिक स्कंध आनुपूर्वी शब्दके वाच्यार्थ नहीं माने गये हैं। क्योंकि यह पहिले कहा जा चुका है कि त्रिप्रदेशिक स्कंध आकाशके एकप्रदेश में भी अवगाही हो सकता है, दो प्रदेश में भी अवगाही हो सकता है और तीन प्रदेशों में भी ठहर सकता है। त्रिप्रदेशिक स्कंध के लिये आकाश के चार प्रदेशों की ठहरने के लिये आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार जो चतुष्प्रदेशिक स्कंध होगा उसे अपने को अवगाहित होने के लिये आकाश के एक दो, तीन, एवं चार प्रदेश आपेक्षिक होंगे। पांच प्रदेश नहीं। इसलिये क्षेत्रानुपूर्वी में यदि त्रिप्रदेशिक स्कंध आकाश के एक प्रदेश में अथवा दो प्रदेश में स्थित है, तो वह क्षेत्र की अपेक्षा अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक शब्द का वाच्यार्थ होगा। क्षेत्रकी अपेक्षा आनुपूर्वी तीनप्रदेश से ही प्रारंभ होती है। इसी तरह जो असंख्यात प्रदे-

---

પુદ્ગલપરમાણુ અને દ્વિપ્રદેશી સ્કંધ આદિ આવે છે. પરન્તુ આ ક્ષેત્રાનુપૂર્વીના પ્રકરણગત ભંગોપદર્શનતામાં આકાશના ત્રણ પ્રદેશોમાં સ્થિત ત્રિપ્રદેશિક આદિ સ્કંધ જ આનુપૂર્વી શબ્દના વાચ્યાર્થ રૂપે માનવામાં આવેલ છે. એક પ્રદેશમાં કે બે પ્રદેશોમાં સ્થિત ત્રિપ્રદેશિક સ્કંધને અહીં આનુપૂર્વી શબ્દના વાચ્યાર્થ રૂપે માનવામાં આવેલ નથી, કારણ કે એ વાત તો આગળ પ્રકટ કરવામાં આવી ચુકી છે કે ત્રિપ્રદેશી સ્કંધ આકાશના એકપ્રદેશમાં પણ અવગાહી થઈ શકે છે–રહી શકે છે, બે પ્રદેશોમાં પણ અવગાહી થઈ શકે છે અને ત્રણ પ્રદેશોમાં પણ અવગાહી થઈ શકે છે. ત્રિપ્રદેશી સ્કંધને રહેવા માટે આકાશના ચાર પ્રદેશોની આવશ્યકતા રહેતી નથી. એજ પ્રમાણે ચાર પ્રદેશિક સ્કંધને રહેવા માટે આકાશના એક બે, ત્રણ અથવા ચાર પ્રદેશોની આવશ્યકતા રહે છે. તેને રહેવા માટે પાંચ પ્રદેશોની જરૂર પડતી નથી. તેથી જ એવું કહેવામાં આવ્યું છે કે 'જો ત્રિપ્રદેશિક સ્કંધ આકાશના એક પ્રદેશમાં અથવા બે પ્રદેશોમાં રહેલો હોય, તો ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ તેને અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક શબ્દના વાચ્યાર્થ રૂપ જ ગણવો જોઈએ ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ આનુપૂર્વીનો પ્રારંભ ત્રણ પ્રદેશોથી જ થાય છે, એજ પ્રમાણે જે

मूलम्–से किं तं समोयारे? समोयारे णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कहिं समोयरंति? किं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति? अवत्तव्वगदव्वेहिं समोयरंति?, आणुपुव्वीदव्वाइं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति नो अणाणुपुव्वीदव्वेहिं नो अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति। एवं तिण्णि वि सट्ठाणे समोयरंतित्ति भाणियव्वं। से तं समोयारे ॥सू० १०८॥

छाया—अथ कोऽसौ समवतारः? समवतारो नैगमव्यवहारयोः आनुपूर्वी द्रव्याणि कुत्र समवतरन्ति? किम् आनुपूर्वीद्रव्येषु समवतरन्ति? अनानुपूर्वीद्रव्येषु

शवाला–स्कंध होगा–वह भी आकाशके एक, दो, तीन आदि प्रदेशों में अवगाही हो सकता है और असंख्यात प्रदेशों में भी अवगाही हो सकता है। अतः क्षेत्र की अपेक्षा यह असंख्यातागुक स्कंध भी एकप्रदेश में स्थित होनेपर अनानुपूर्वी और दो प्रदेश में अवक्तव्यक अवगाहित होने पर माना जावेगा। तथा तीन आदि असंख्यात प्रदेशों में स्थित होनेपर आनुपूर्वी माना जावेगा। इस प्रकार से चित्तमें अवधारित कर २६ भंगों का वाच्यार्थ क्षेत्रकी अपेक्षा आनुपूर्वी अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक इन एकवचनान्त बहुवचनान्त पदों के असंयोग और संयोग पक्ष में द्रव्यानुपूर्वी के भंगोपदर्शन की तरह कर लेना चाहिये। ॥सू० १०७॥

અસંખ્યાત પ્રદેશવાળો સ્કંધ હશે તે પણ આકાશના એક, બે, ત્રણ આદિ પ્રદેશોમાં પણ અવગાહી હોઇ શકે છે, અને અસંખ્યાત પ્રદેશોમાં પણ અવગાહી હોઇ શકે છે, જ્યારે તે અસંખ્યાતાણુક સ્કંધ આકાશના એક જ પ્રદેશમાં રહેલો હોય ત્યારે ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ તેને અનાનુપૂર્વી રૂપ ગણવો જોઇએ, પરન્તુ જ્યારે તે ત્રણથી લઇને અસંખ્યાત પર્યન્તના આકાશના પ્રદેશોમાં રહેલો હોય ત્યારે ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ તેને આનુપૂર્વી રૂપ ગણવો જોઇએ, આ પ્રકારનો અર્થ મનમાં ધારણ કરીને ૨૬ ભંગોનો વાચ્યાર્થ સમજી લેવો જોઇએ, ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ આનુપૂર્વી, અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક આ એકવચનાન્ત અને બહુવચનાન્ત પદોના અસંયોગ અને સંયોગ પક્ષે દ્રવ્યાનુપૂર્વીના ભંગોપદર્શનની જેમ અહીં પણ ૨૬ ભાંગાઓ સમજી લેવા જોઇએ. ॥ સૂ૦ ૧૦૭ ॥

समवतरन्ति ? अवक्तव्यकद्रव्येषु समवतरन्ति ? आनुपूर्वीद्रव्याणि आनुपूर्वीद्रव्येषु समवतरन्ति, नो अनानुपूर्वीद्रव्येषु नो अवक्तव्यकद्रव्येषु समवतरन्ति । एवं त्रीण्यपि स्वस्थाने समवतरन्तीति भणितव्यम् । स एष समवतारः ॥सू० १०८॥

टीका—अथ समवतारं प्ररूपयितुमाह-'से किं तं' इत्यादि । अथ कोऽसौ समवतारः ? इत्यारभ्य 'स एष समवतारः' इति पर्यन्तस्य पाठस्य व्याख्या अशीतिसूत्रवद् द्रव्यानुपूर्वीवद् बोध्या ॥सू० १०८॥

अब सूत्रकार समवतार की प्ररूपणा करते हैं-

"से किं तं समोयारे ?" इत्यादि ।

शब्दार्थ-हे भदन्त ! (से किं तं समोयारे) पूर्वप्रक्रान्त समवतार का क्या स्वरूप है ?

उत्तर-(समोयारे) पूर्वप्रक्रान्त समवतार का स्वरूप इस प्रकार से है-(णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कहिं समोयरंति ?) शिष्य पूछता है कि नैगमव्यवहारनयसंमत आनुपूर्वी द्रव्य कहां समाविष्ट होते हैं (किं आणुपुव्वी दव्वेहिं समोयरंति ? अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति) क्या आनुपूर्वी द्रव्यों में समाविष्ट होते हैं ? या अनानुपूर्वी द्रव्यों में समाविष्ट होते हैं ? या (अवत्तव्वगदव्वेहिं समोयरंति) अवक्तव्यक द्रव्यों में समाविष्ट होते हैं ?

उत्तर-(आणुपुव्वीदव्वाइं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति) नैगमव्यहारनय संमत आनुपूर्वी द्रव्य आनुपूर्वी द्रव्यों में ही समाविष्ट होते हैं।

હવે સૂત્રકાર સમવતારની પ્રરૂપણા કરે છે—

"से किं तं समोयारे" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(से किं तं समोयारे ?) હે ભગવન્ ! આગળ જે સમવતાર નામનો પ્રકાર કહ્યો છે તેનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર-(समोयारे) સમવતારનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે-(णेगमववहाराणं आणुपुव्वी दव्वाइं कहिं समोयरंति ?)

શિષ્યનો પ્રશ્ન-નૈગમવ્યવહાર નયસંમત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો કયાં સમાવિષ્ટ થાય છે ? (किं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति ? अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति, अवत्तव्वगदव्वेहिं समोयरंति ?) શું આનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાં સમાવિષ્ટ થાય છે ? કે અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાં સમાવિષ્ટ થાય છે ? કે અવક્તવ્યક દ્રવ્યોમાં સમાવિષ્ટ થાય છે ?

ઉત્તર-(आणुपुव्वीदव्वाइं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति) નૈગમવ્યવહાર નયસંમત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો આનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાં જ સમાવિષ્ટ થાય છે, (નો

मूलम्–से किं तं अणुगमे? अणुगमे नवविहे पण्णत्ते, तं जहा–संतपयपरूवणया जाव अप्पाबहुं चेव ॥सू० १०९॥

छाया—अथ कोऽसौ अनुगमः? अनुगमो नवविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–सत्पदप्ररूपणता यावत् अल्पबहुत्वं चैव ॥सू० १०९॥

टीका—अथ अनुगमं प्ररूपयितुं प्राह—'से किं तं' इत्यादि। अथ कोऽसौ अनुगमः? इति प्रश्नः। अनुगमो नवविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा- सत्पदप्ररूपणता १,

---

(नो अणाणुपुव्वीदव्वेहिं नो अवत्तव्वगदव्वेहिं समोयरंति) अनानुपूर्वी द्रव्यों में एवं अवक्तव्यक द्रव्यों में समाविष्ट नहीं होते हैं। (एवं तिण्णि वि सट्ठाणे समोयरंति त्ति भाणियव्वं–से तं समोयारे) इसी प्रकार से यह समझना चाहिये कि अवक्तव्यक और अनानुपूर्वी द्रव्य भी आनुपूर्वी द्रव्य की तरह अपनी ५ जातिरूप की अवक्तव्यक और अनानुपूर्वी द्रव्यरूप स्वस्थान में ही अन्तर्भूत होते हैं इस प्रकार से ये तीनों ही स्व स्व स्थान में ही समाविष्ट होते हैं,। परस्थान में नहीं यही समवतार का स्वरूप है इस सूत्र की व्याख्या पहिले ८० सूत्र की व्याख्या की तरह जाननी चाहिये ॥ सू० १०८ ॥

अब सूत्रकार अनौपनिधि की क्षेत्रानुपूर्वी के पंचम भेदरूप अनुगम के स्वरूप का कथन करते हैं—"से किं तं अणुगमे?" इत्यादि।

शब्दार्थ–(से किं तं अणुगमे?) हे भदन्त! अनुगम का क्या स्वरूप है?

उत्तर–(अणुगमे नवविहे पण्णत्ते) अनुगम नौ प्रकार कहा है (तंज-

अणाणुपुव्वी दव्वेहिं, नो अवत्तव्वगदव्वेहिं समोयरंति) પણ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાં અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યોમાં સમાવિષ્ટ થતાં નથી. (एवं तिण्णि वि सट्ठाणे समोयरंति त्ति भाणियव्वं–से तं समोयारे) એજ પ્રમાણે અવક્તવ્યક અને અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો પણ પોતપોતાની જાતિના દ્રવ્યોમાં જ (અનુક્રમે અવક્તવ્યક અને અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો રૂપ સ્વસ્થાનમાં જ) અંતર્ભૂત થાય છે. અન્ય સ્થાનમાં અંતર્ભૂત થતાં નથી આ પ્રકારનું સમવતારનું સ્વરૂપ છે. આ સૂત્રની વ્યાખ્યા ૮૦ માં સૂત્રની વ્યાખ્યા પ્રમાણે સમજવી. ॥સૂ૦૧૦૮॥

હવે સૂત્રકાર અનૌપનિધિકી ક્ષેત્રાનુપૂર્વીના પાંચમાં ભેદ રૂપ અનુગમના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે—"से किं तं अणुगमे?" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ–(से किं तं अणुगमे?) હે ભગવન્! અનુગમનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર–(अणुगमे नवविहे पण्णत्ते) અનુગમના નવ પ્રકાર કહ્યા છે.

यावत् अल्पबहुत्वं चेवेति। इह-यावत्करणेन-द्रव्यप्रमाणं२, क्षेत्रं ३, स्पर्शना ४, कालः ५, अन्तरं ६, भागः ७, भावः ८ इति बोध्यम्। व्याख्या एकाशीतितमसूत्रवत् द्रव्यानुपूर्वीवत् बोध्या ॥सू० १०९॥

मूलम्-णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि णत्थि? णियमा अत्थि। एवं दुण्णि वि ॥सू० ११०॥

छाया—नैगमव्यवहारयोः आनुपूर्वीद्रव्याणि किं सन्ति न सन्ति ? नियमात् सन्ति। एवं द्वे अपि ॥सू० ११०॥

टीका—तत्र-सत्पदप्ररूपणाद्वारं प्ररूपयति-'णेगमववहाराणं' इत्यादि। अस्य द्वारस्य व्याख्या द्रव्यतीति सूत्रवत् द्रव्यानुपूर्वीवद् बोध्या ॥सू० ११०॥

हा) जैसे-(संतपयपरूवणया जाव अप्पाबहुंचेव) सत्पदप्ररूपणता यावत् अल्प बहुत्व ,। यहां यावत् शब्द से इस अनुक्तपाठका संग्रह हुआ है-"दव्वप्पमाणं खित्त, फुसणा, कालोय, अंतरं, भाग, भाव," द्रव्य प्रमाण क्षेत्र स्पर्शना, काल, अंतर, भाग और भाव, इस सूत्र की व्याख्या के लिये देखो पीछेका ८१, वां सूत्र ॥ १०९ ॥

अब सूत्रकार अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी के अनुगम के भेदरूप प्रथम सत्पदप्ररूपणता का कथन करते हैं—

"णेगमववहाराणं" इत्यादि।

शब्दार्थ-(णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि णत्थि ? णियमा अत्थि। एवं दुण्णिवि) नैगमव्यवहारनय संमत आनुपूर्वीद्रव्य हैं या नहीं?

(तंजहा) તે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે-(संतपयपरूवणया जाव अप्पाबहुं चेव) સત્પદપ્રરૂપણતાથી લઈને અલ્પબહુત્વ પર્યન્તના નવ પ્રકારો અહીં પર્યન્ત પદ દ્વારા "दव्वप्पमाणं खित्त, फुसणा, कालोय, अंतरं, भाग, भाव" દ્રવ્ય-પ્રમાણ, ક્ષેત્ર, સ્પર્શના, કાળ, અંતર, ભાગ અને ભાવ, આ સાત પ્રકારો ગ્રહણ કરવામાં આવ્યા છે. આ સૂત્રની વ્યાખ્યા માટે ૮૧મું સૂત્ર વાંચી જવું ॥સૂ૦૧૦૯॥

હવે સૂત્રકાર અનૌપધિકી ક્ષેત્રાનુપૂર્વીના અનુગમના પ્રથમ ભેદ રૂપ સત્પદપ્રરૂપણતાનું નિરૂપણ કરે છે-

"णेगमववहाराणं," ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि णत्थि ? णियमा अत्थि, एवं दुण्णि वि)

પ્રશ્ન-નૈગમવ્યવહાર નયસંમત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો છે કે નહી ?

मूलम्–णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं संखिज्जाइं असंखिज्जाइं अणंताइं? नो संखिज्जाइं असंखिज्जाइं नो अणंताइं। एवं दुण्णि वि ॥सू० १११॥

छाया—नैगमव्यवहारयोः आनुपूर्वीद्रव्याणि किं संख्येयानि असंख्येयानि अनन्तानि? नो संख्येयानि, असंख्येयानि, नो अनन्तानि। एवं द्वे अपि ॥सू० १११॥

टीका—अथ द्रव्यप्रमाणद्वारं प्ररूपयितुमाह-'णेगमववहाराणं' इत्यादि। नैगमव्यवहारसम्मतानि आनुपूर्वीद्रव्याणि किं संख्येयानि भवन्ति? किं वा असंख्येयानि भवन्ति? उत वा अनन्तानि भवन्ति? इति त्रिविधः प्रश्नः। उत्तरमाह–'नो संखिज्जाइं' इत्यादि। नो संख्येयानि भवन्ति, नो अनन्तानि भवन्ति, अपि तु असंख्येयानि भवन्तीत्यर्थः। इति। अयं भावः–त्रिप्रदेशावगाढादीनि द्रव्याणि

उत्तर–नियमतः हैं। इसी प्रकार नैगमव्यवहारनयसंमत अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्य भी नियम से हैं। इस सूत्र की व्याख्या के लिये देखो पीछे का ८२, वां ॥ सू० ११० ॥

"णेगमववहाराणं आणुपुव्वी दव्वाइं" इत्यादि।

शब्दार्थ-(णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं संखिज्जाइं, असंखिज्जाइं, अणंताइं?) हे भदन्त! नैगमव्यवहारनयसंमत आनुपूर्वी द्रव्य क्या संख्यात हैं? या असंख्यात हैं? या अनंत हैं?

उत्तर–(नो संखिज्जाइं, असंखिज्जाइं, नो अणंताइं। एवं दुण्णिवि) नैगमव्यवहारनय संमत आनुपूर्वीद्रव्य न संख्यात हैं न अनंत हैं किन्तु असंख्यात हैं। इसका तात्पर्य यह है–आकाश के तीन प्रदेश में स्थित

ઉત્તર–અવશ્ય છે જ એજ પ્રમાણે નૈગમવ્યવહાર નયસંમત અનાનુપૂર્વી અને અવકતવ્યક દ્રવ્યો પણ અવશ્ય છે જ આ સૂત્રની વ્યાખ્યા સમજવા માટે ૮૨માં સૂત્રની વ્યાખ્યા વાંચી લેવી. ॥સૂ૦૧૧૦॥

"णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं संखिज्जाइं, असंखिज्जाइं, अणंताइं?) હે ભગવન્! નૈગમવ્યવહાર નયસંમત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો શું સંખ્યાત છે, કે અસંખ્યાત છે, કે અનંત છે?

ઉત્તર-(नो संखिज्जाइं असंखिज्जाइं, नो अणंताइं, एवं दुण्णि वि) નૈગમવ્યવહાર નયસંમત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો સંખ્યાત પણ નથી, અનંત પણ નથી, પરન્તુ અસંખ્યાત જ છે.

क्षेत्रत आनुपूर्वीत्वेन निर्दिष्टानि, त्रिप्रदेशादि स्कन्धाधारभूताः क्षेत्रविभागाश्च असंख्येयप्रदेशात्मके लोकेऽसंख्याता भवन्ति, अतो द्रव्यतया बहूनामप्यानुपूर्वी-द्रव्याणां क्षेत्रावगाहमपेक्ष्य क्षेत्रैक्यमाश्रित्य तुल्यप्रदेशावगाढानामेकत्वात् क्षेत्रानुपूर्व्यामसंख्यातान्येवानुपूर्वी द्रव्याणि भवन्तीति। अथानानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्यविषये आह—'एवं' इत्यादि। एवम्=आनुपूर्वीद्रव्यवत् द्वे अपि=अनानुपूर्व्यवक्तव्यक द्रव्याणि असंख्येयानि बोध्यानि। अयं भावः-एकैकप्रदेशावगाढं बहूपि द्रव्यं क्षेत्रत एकैकानानुपूर्वी। लोकस्य प्रदेशा असंख्याताः सन्ति, अतस्तत्तुल्यमसंख्य-

हुए द्रव्य क्षेत्र की अपेक्षा आनुपूर्वीरूप से कहे गए हैं। तीन आदि प्रदेशवाले स्कंधों के आधारभूत क्षेत्र विभाग असंख्यात प्रदेशी लोक में असंख्यात हैं। इसलिये द्रव्य की अपेक्षा बहुत भी आनुपूर्वीद्रव्य तुल्य प्रदेशवाले क्षेत्र में अवगाह की अपेक्षा करके एक मान लिये जाते हैं-अर्थात् आकाशरूप क्षेत्र के तीन प्रदेशों में त्रिप्रदेशवाले, चार प्रदेशवाले, पांच प्रदेशवाले छह आदि अनंत प्रदेशवाले अनेक आनुपूर्वीद्रव्य अवगाहित होकर रहते हैं। परन्तु ये सब द्रव्य तुल्यप्रदेशावगाही होने के कारण एक हैं। क्षेत्रानुपूर्वी में लोक के ऐसे त्रिप्रदेशात्मक विभाग असंख्यात हैं। इसलिये आनुपूर्वीद्रव्य भी तत्तुल्य संख्यावाले होने के कारण असंख्यात होते ही हैं। इसी प्रकार-आनुपूर्वी द्रव्य की तरह-अनानुपूर्वी, अवक्तव्यक द्रव्य भी असंख्यात ही हैं। तात्पर्य कहने का यह है कि लोक के एक एक प्रदेश में अवगाही अनेक द्रव्य क्षेत्र की

આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે-આકાશના ત્રણ આદિ પ્રદેશોમાં રહેલા દ્રવ્યોને ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ આનુપૂર્વી રૂપ કહેવામાં આવે છે. ત્રણ આદિ પ્રદેશોવાળા સ્કંધોના આધારભૂત ક્ષેત્રવિભાગો અસંખ્યાત પ્રદેશી લોકમાં અસંખ્યાત છે. તેથી દ્રવ્યની અપેક્ષાએ ઘણાં જ આનુપૂર્વી દ્રવ્યોને તુલ્ય-પ્રદેશવાળા ક્ષેત્રમાં અવગાહની અપેક્ષાએ એક માનવામાં આવેલ છે એટલે કે આકાશરૂપ ક્ષેત્રના ત્રણ પ્રદેશોમાં ત્રણ પ્રદેશવાળાં, ચાર પ્રદેશવાળાં, પાંચ પ્રદેશવાળાં અને છ આદિ અનંત પ્રદેશવાળાં અનેક આનુપૂર્વી દ્રવ્યો અવગા-હિત થઇને રહે છે, પરન્તુ તે સઘળાં દ્રવ્યો તુલ્યપ્રદેશાવગાહી હોવાને કારણે એક છે. ક્ષેત્રાનુપૂર્વીમાં લોકના એવાં ત્રિપ્રદેશાત્મક વિભાગ અસંખ્યાત છે. આનુપૂર્વી દ્રવ્યો પણ તેના જેટલી જ સંખ્યાવાળા હોવાથી અસંખ્યાત જ હોય છે. એજ પ્રમાણે (આનુપૂર્વી દ્રવ્યોની જેમ) અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યો પણ અસંખ્યાત જ છે. આ કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે લોકના એક એક પ્રદેશમાં અવગાહી અનેક દ્રવ્યો પણ ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ

स्यादनानुपूर्वी द्रव्याण्यपि असंख्येयानि भवन्ति। तथा–प्रदेशद्वयेऽवगाढं बहूपि द्रव्यं क्षेत्रत एकमेवावक्तव्यकद्रव्यम्। लोकस्य द्विप्रदेशात्मका विभागा असंख्याताः सन्ति, अतो द्विप्रदेशात्मकान्यवक्तव्यकद्रव्याण्यप्यसंख्यातानि भवन्तीति ॥सू० १११॥

अपेक्षा एक ही अनानुपूर्वीरूप हैं। ये असंख्यात इसलिए माने गये हैं कि इस प्रकार से असंख्यात प्रदेशवाले लोक में एक एक प्रदेश में ये एक २ रहते हैं। तथा आकाश के दो प्रदेशों में स्थित बहुत भी द्रव्य क्षेत्र की अपेक्षा एक ही अवक्तव्यक द्रव्य हैं। आकाश के दो प्रदेश रूप विभाग असंख्यात होते हैं इसलिये तदवगाहीद्रव्य भी असंख्यात हैं।

भावार्थ–नैगमव्यवहारनय संमत आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्य कितने हैं? सूत्रकारने इस सूत्रद्वारा इन प्रश्नों का समाधान किया है। उन्होंने कहा है कि–आकाश के त्रिप्रदेशात्मक, द्विप्रदेशात्मक और एकप्रदेशात्मक विभाग असंख्यात हैं। क्योंकि आकाश स्वयं असंख्यात प्रदेश वाला है। यद्यपि आकाश के प्रदेश अलोकाकाश की अपेक्षा अनंत कहे गये हैं, फिर भी इस अनंत अलोकाकाश में कोई द्रव्य नहीं रहता है। असंख्यात प्रदेशवाले लोकाकाश–में ही द्रव्योंका अवगाह है। लोकाकाशके उन विभागों में आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी, और अवक्तव्यक द्रव्य प्रत्येक असंख्यात २ रहते हैं।

એક જ અનાનુપૂર્વી રૂપ છે. તેમને અસંખ્યાત માનવાનું કારણ એ છે કે આ પ્રકારે અસંખ્યાત પ્રદેશવાળા લોકના એક એક પ્રદેશમાં એક એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય રહે છે. તથા આકાશના બે પ્રદેશોમાં સ્થિત ઘણાં દ્રવ્યો પણ ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ એક જ અવક્તવ્ય દ્રવ્ય રૂપ છે. આકાશના બે પ્રદેશ રૂપ વિભાગ અસંખ્યાત હોય છે, તે કારણે તેમાં અવગાહી દ્રવ્યો પણ અસંખ્યાત છે.

ભાવાર્થ–સૂત્રકારે આ સૂત્ર દ્વારા એ પ્રશ્નનું સમાધાન કર્યું છે કે નૈગમવ્યવહાર નયસંમત આનુપૂર્વી, અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યો કેટલાં છે. સૂત્રકારે આ સૂત્રમાં એ વાતનું પ્રતિપાદન કર્યું છે કે આકાશના ત્રિપ્રદેશાત્મક, દ્વિપ્રદેશાત્મક અને એક પ્રદેશાત્મક વિભાગ અસંખ્યાત છે, કારણ કે આકાશ પોતે જ અસંખ્યાત પ્રદેશવાળું છે. જો કે અલોકાકાશની અપેક્ષાએ આકાશના પ્રદેશો અનંત કહ્યા છે, પરન્તુ આ અનંત અલોકાકાશમાં તો કોઇ પણ દ્રવ્યનો સદ્ભાવ જ નથી અસંખ્યાત પ્રદેશવાળા લોકાકાશમાં જ દ્રવ્યોનો અવગાહ છે. લોકાકાશના તે વિભાગોમાં અસંખ્યાત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો, અસંખ્યાત અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો અને અસંખ્યાત અવક્તવ્યક

क्योंकि यहांपर क्षेत्र की अपेक्षा-आनुपूर्वी आदि का विचार चल रहा है। अतः एक प्रदेशात्मक असंख्यात विभागों में एक एक विभागों में एक २ आनुपूर्वी आदि द्रव्य रहता है। यद्यपि एक प्रदेश में द्रव्य की अपेक्षा अनेक आनुपूर्वी आदि द्रव्य रहते हैं-परन्तु वे सब एक प्रदेश में आधारभूत होने के कारण एक माने जाते हैं। अतः इस प्रकार से एक प्रदेशरूप विभाग में रहे हुए ये अनेक द्रव्य एक प्रदेशरूप आधार की अपेक्षा एक प्रदेशावगाही होने के कारण एक अनानुपूर्वी द्रव्य रूप पड़ते हैं। इस प्रकार लोक के एकप्रदेशात्मक असंख्यात विभागों में अनानुपूर्वी द्रव्य असंख्यात ही हो जाते हैं। इसी प्रकार से अवक्तव्यक द्रव्य और अनानुपूर्वी द्रव्य भी असंख्यात सध जाते हैं। क्योंकि लोक के द्विप्रदेशात्मक विभाग जब असंख्यात हैं तो इनमें जितने भी द्विप्रदेशी आदि द्रव्य रहेंगे वे सब द्विप्रदेशावगाही होने के कारण एक द्विप्रदेशात्मक विभाग में एक अवक्तव्यक द्रव्य रूप से स्वीकृत माने जावेगें। इस द्विप्रदेशात्मक एक विभाग में जब अवक्तव्यक द्रव्य रहता है तो द्विप्रदेशात्मक असंख्यात विभागों में असंख्यात ही अवक्तव्यक द्रव्य रहेगें।

દ્રવ્યો રહે છે. અહીં ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ આનુપૂર્વી આદિનો વિચાર ચાલી રહ્યો છે, તેથી એકપ્રદેશાત્મક અસંખ્યાત વિભાગોમાંના પ્રત્યેક વિભાગમાં એક એક આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્ય રહે છે. જો કે પ્રત્યેક પ્રદેશમાં દ્રવ્યની અપેક્ષાએ અનેક આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્યો રહે છે, પરન્તુ તેઓ બધાં એક પ્રદેશમાં આધારભૂત હોવાને કારણે તેમને એક માનવામાં આવેલ છે. આ રીતે એકપ્રદેશ રૂપ વિભાગમાં રહેલાં અનેક દ્રવ્યો એક પ્રદેશરૂપ આધારની અપેક્ષાએ એક પ્રદેશાવગાહી હોવાને કારણે એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય રૂપ ગણવાને યોગ્ય બને છે. આ રીતે લોકના એક પ્રદેશાત્મક અસંખ્યાત વિભાગોમાં અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો અસંખ્યાત હોવાની વાત સિદ્ધ થઇ જાય છે. એજ પ્રમાણે અવક્તવ્યક દ્રવ્યો અને આનુપૂર્વી દ્રવ્યો પણ અસંખ્યાત હોવાની વાત સિદ્ધ થઇ જાય છે, કારણ કે લોકના દ્વિપ્રદેશાત્મક વિભાગ અસંખ્યાત હોવાથી તેમાં જેટલા દ્વિપ્રદેશી આદિ દ્રવ્યો રહેશે તે સૌ પણ દ્વિપ્રદેશાવગાહી હોવાને કારણે એક દ્વિપ્રદેશાત્મક વિભાગમાં એક અવક્તવ્યક દ્રવ્ય રૂપે સ્વીકૃત થયેલાં માની શકાશે. આ દ્વિપ્રદેશાત્મક એક વિભાગમાં જો એક અવક્તવ્યક દ્રવ્ય રહેતું હોય, તો દ્વિપ્રદેશાત્મ અસંખ્યાત પ્રદેશોમાં અસંખ્યાત અવક્તવ્યક દ્રવ્યો રહી શકે, એ વાત પણ સિદ્ધ થઇ જાય છે. આ રીતે અવક્તવ્યક દ્રવ્યો અસંખ્યાત હોવાનું કથન પણ સિદ્ધ થઇ જાય છે.

मूलम्—णेगमववहाराणं खेत्ताणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स किं संखिज्जइभागे होज्जा ? असंखिज्जइभागे होज्जा ? जाव सव्वलोए होज्जा ?, एगं दव्वं पडुच्च लोगस्स सांखिज्जइभागे वा होज्जा, असंखिज्जइभागे वा होज्जा, संखेज्जेसु भागेसु वा होज्जा, असंखेज्जेसु भागेसु वा होज्जा, देसूणे वा लोए होज्जा। नाणादव्वाइं पडुच्च नियमा सव्वलोए होज्जा। णेगमववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाणं पुच्छा एगदव्वं पडुच्च नो संखेज्जइभागे होज्जा, असंखेज्जइभागे होज्जा, नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा नो असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा नो सव्वलोए होज्जा, नाणादव्वाइं पडुच्च णियमा सव्वलोए होज्जा। एवं अवत्तव्वगदव्वाणि वि भाणियव्वाणि ॥सू० ११२॥

इसी प्रकार अवक्तव्यकद्रव्य भी असंख्यात-सधजाते हैं। इसी प्रकार से लोक के जब त्रिप्रदेशात्मक विभाग असंख्यात हैं तो इनमें जितने भी त्रिप्रदेशी आदि द्रव्य रहेंगे वे सब त्रिप्रदेशावगाही होने के कारण एक त्रिप्रदेशात्मक विभाग में एक आनुपूर्वी द्रव्य रूप से स्वीकृत हुए माने जावेंगे। इस त्रिप्रदेशात्मक एक विभाग में जब एक आनुपूर्वी-द्रव्य रहता है तो लोक के त्रिप्रदेशात्मक असंख्यात विभागों में द्रव्य कितने आनुपूर्वी रहेंगे। इस प्रकार गणना के अनुसार आनुपूर्वी द्रव्य असंख्यात सध जाते हैं ॥ सू० १११ ॥

એજ પ્રમાણે લોકના ત્રિપ્રદેશી વિભાગો પણ જો અસંખ્યાત હોય તો તેમાં જેટલાં ત્રિપ્રદેશી આદિ દ્રવ્યો રહેશે તેઓ બધાં પણ ત્રિપ્રદેશાવગાહી હોવાને કારણે એક ત્રિપ્રદેશાત્મક વિભાગમાં એક આનુપૂર્વી દ્રવ્ય રૂપે સ્વીકૃત થયેલા મનાશે આ ત્રિપ્રદેશાત્મક એક વિભાગમાં જો એક આનુપૂર્વી દ્રવ્ય રહેતું હોય, તો લોકના ત્રિપ્રદેશાત્મક અસંખ્યાત વિભાગોમાં અસંખ્યાત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો રહેતા હશે આ પ્રકારે આનુપૂર્વી દ્રવ્યોની સંખ્યા પણ અસંખ્યાત હોવાની વાત સિદ્ધ થઈ જાય છે. ॥સૂ૦૧૧૧॥

छाया—नैगमव्यवहारयोः क्षेत्रानुपूर्वीद्रव्याणि लोकस्य किं संख्येयतमभागे भवन्ति ? असंख्येयभागे भवन्ति यावत् सर्वलोके भवन्ति ?। एकं द्रव्यं प्रतीत्य लोकस्य संख्येयतमभागे वा भवति, असंख्येयतमभागे वा भवति, संख्येयेषु भागेषु वा भवति, असंख्येयेषु भागेषु वा भवति, देशोने वा लोके भवति। नाना द्रव्याणि प्रतीत्य नियमात् सर्वलोके भवन्ति। नैगमव्यवहारयोः अनानुपूर्वीद्रव्याणां पृच्छायामेकद्रव्यं प्रतीत्य नो संख्येयतमभागे भवति, असंख्येयतमभागे भवति, नो संख्येयेषु भागेषु भवति, नो सर्वलोके भवति। नाना द्रव्याणि प्रतीत्य नियमात् सर्वलोके भवन्ति। एवम् अवक्तव्यकद्रव्याण्यपि भणितव्यानि ॥सू० ११२॥

टीका—अथ क्षेत्रद्वारं निरूपयितुमाह—' णेगमववहाराणं ' इत्यादि।

नैगमव्यवहारसम्मतानि क्षेत्रानुपूर्वीद्रव्याणि लोकस्य किं संख्येयतमभागे भवन्ति ? असंख्येयतमभागे भवन्ति ? यावत् सर्वलोके भवन्ति ? इति प्रश्नः। उत्तरमाह—एकं द्रव्यं प्रतीत्य आनुपूर्वी द्रव्यं लोकस्य संख्येयतमभागे वा भवति, असंख्येयतमभागे वा भवति, संख्येयेषु वा भागेषु भवति, असंख्येयेषु वा भागेषु भवति।

(णेगमववहाराणं खेत्ताणुपुव्वी) इत्यादि।

शब्दार्थ–(णेगमववहाराणं खेत्ताणुपुव्वी–दव्वाइं लोगस्स किं संखिज्जइभागे होज्जा ?)

प्रश्न–नैगमव्यवहारनय संमत क्षेत्रानुपूर्वी द्रव्य क्या लोक के संख्यातवें भाग में होते हैं ? (असंखिज्जइभागे होज्जा ?) या असंख्यातवें भागमें रहते हैं ? (जाव सव्वलोए होज्जा) यावत् समस्त लोकमें होते हैं ?

उत्तर–(एगं दव्वं पडुच्च लोगस्स संखिज्जइभागे वा होज्जा असंखेज्जइभागे वा होज्जा संखेज्जेसु भागेसु वा होज्जा, असंखेज्जेसु भागेसु वा होज्जा देसूणे वा लोए होज्जा) एकद्रव्यकी अपेक्षा लेकर आनुपूर्वीद्रव्य लोक के संख्यातवें भाग में भी रहता है असंख्यातवें

" णेगमववहाराणं खेत्ताणुपुव्वी " इत्यादि—

शब्दार्थ–(णेगमववहाराणं खेत्ताणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स किं संखिज्जइभागे होज्जा) हे भगवन्! नैगमव्यवहार नयसंमत क्षेत्रानुपूर्वी द्रव्यो शुं लोकना संख्यातमां भागमां छे ? के (असंखिज्जइभागे होज्जा ?) असंख्यातमां भागमां होय छे ? (जाव सव्वलोए होज्जा ?) के समस्त लोकमां होय छे ?

उत्तर–(एगं दव्वं पडुच्च लोगस्स संखिज्जइभागे वा होज्जा, असंखिज्जइभागे वा होज्जा, संखेज्जेसु भागेसु वा होज्जा, असंखेज्जेसु भागेसु वा होज्जा, देसूणे वा लोए होज्जा) એક દ્રવ્યની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો આનુપૂર્વી દ્રવ્ય લોકના સંખ્યાતમાં ભાગમાં પણ રહે છે, અસંખ્યાતમાં

स्कन्धद्रव्याणां विचित्रपरिणमनशक्तिमत्वात् संख्येयादिप्रदेशावगाहित्वं बोध्यम्। विशिष्टक्षेत्रावगाहोपलक्षितानां स्कन्धद्रव्याणामेव क्षेत्रानुपूर्वीत्वेनोक्तत्वात्। तथा एकं द्रव्यं प्रतीत्य देशोने वा लोके आनुपूर्वीद्रव्यं भवति।

ननु–अचित्तमहास्कन्धस्य सर्वलोकव्यापकत्वं पूर्वमुक्तम्। तस्य च समस्तलोकवर्त्यसंख्येयप्रदेशलक्षणायां क्षेत्रानुपूर्व्यामवगाढत्वात् परिपूर्णस्यापि क्षेत्रानुपूर्वीत्वं न किंचिद् विरुध्यते, अतस्तदपेक्षया क्षेत्रतोऽप्यानुपूर्वीद्रव्यं सर्वलोकव्यापि

भाग में भी रहता है, संख्यात भागों में भी रहता है असंख्यात भागों में भी रहता है। क्योंकि स्कंध द्रव्यों की परिणमन शक्ति विचित्र प्रकार की है। अतः विचित्रप्रकार की परिणमन शक्तिवाले होने के कारण स्कंध द्रव्योंका अवगाहलोक के संख्यातवें आदि भागों में होता है। क्यों कि विशिष्ट क्षेत्र में अवगाह से उपलक्षित हुए स्कन्ध द्रव्यों को ही क्षेत्रानुपूर्वीरूप से कहागया है। तथा एक द्रव्य की अपेक्षा लेकर आनुपूर्वी द्रव्य कुछ कम–देशोन लोक में भी अवगाहित होता है।

शंका–पहिले द्रव्यानुपूर्वी में अचित्त महास्कंध, कि जो पुद्गलद्रव्य सबसे बड़ा स्कंध होता है और जो अनंतानंत परमाणुओं से निष्पन्न होता है। सर्व लोक व्यापी कहा है। इस प्रकार अचित्त महास्कंध की अपेक्षा एक आनुपूर्वी द्रव्य समस्त लोक में व्यापक होकर जब रहता है–तब यह बात आपकी कैसे मानी जा सकती है कि आनुपूर्वी द्रव्य

ભાગમાં પણ રહે છે, સંખ્યાત ભાગોમાં પણ રહે છે, અસંખ્યાત ભાગોમાં પણ રહે છે, કારણ કે સ્કંધ દ્રવ્યોની પરિણમનશક્તિ વિચિત્ર હોય છે. વિચિત્ર પ્રકારની પરિણમનશક્તિવાળા હોવાને કારણે સ્કંધ દ્રવ્યોનો અવગાહ લોકના સંખ્યાતમાં આદિ ભાગોમાં હોય છે. કારણ કે વિશિષ્ટ ક્ષેત્રમાં અવગાહથી ઉપલક્ષિત થયેલાં સ્કંધદ્રવ્યોને જ ક્ષેત્રાનુપૂર્વી રૂપે ગણવામાં આવે છે. તથા એક દ્રવ્યની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો આનુપૂર્વી દ્રવ્ય અમુક ન્યૂન દેશપ્રમાણ–દેશોન–લોકમાં પણ અવગાહિત હોય છે.

શંકા–દ્રવ્યાનુપૂર્વીનું નિરૂપણ કરતાં પહેલાં આપે એવું કહ્યું છે કે "પુદ્ગલ દ્રવ્યનો સૌથી મોટો સ્કંધ કે જે અનંતાનંત પરમાણુઓમાંથી બને છે, અને જેને અચિત્ત મહાસ્કંધ કહેવામાં આવે છે, તે સર્વલોકવ્યાપી છે." આ પ્રકારે આ અચિત્ત મહાસ્કંધની અપેક્ષાએ એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય જો સમસ્ત લોકમાં વ્યાપક હોય તો આપની એ વાત કેવી રીતે માની શકાય કે આનુપૂર્વી દ્રવ્યનો એક દ્રવ્યની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો તે અમુક દેશોન (દેશ ન્યૂન) લોકમાં વ્યાપીને રહે છે? કારણ કે સમસ્ત લોક-

प्राप्यते, कथं तर्हि देशोनलोकव्यापिता प्रोच्यते ? इति चेत्, उच्यते—अयं लोक आनुपूर्व्यनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्यैः सर्वदैवाशून्य एव भवतीति सिद्धान्तः। यदिचात्राऽऽनुपूर्व्याः सर्वलोकव्यापिता निर्दिश्येत, तदाऽनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्याणां निरवकाशतयाऽभावः प्रतीयेत, अतश्च—अचित्तमहास्कन्धपूरितेऽपि लोके जघन्यतोऽप्येकः प्रदेशोऽनानुपूर्वीविषयत्वेन विवक्षितः। प्रदेशद्वयं चावक्तव्यकद्रव्यविषय-

---

एक द्रव्य की अपेक्षा करके कुछ कम लोक में व्यापक होकर रहता है। क्योंकि समस्त लोकवर्ती असंख्यात प्रदेशरूप क्षेत्रानुपूर्वी है सो उसमें अवगाढ-अवगाही होने से- परिपूर्ण अचित्त महास्कंध का क्षेत्रानुपूर्वीपना भी कुछ भी विरुद्ध नहीं पड़ता है। इसलिये आनुपूर्वी द्रव्य में एक आनुपूर्वी, द्रव्य की अपेक्षा करके जो देशोन लोक में अवगाहिता प्रकट की है वह ठीक नहीं है।

उत्तर-यह सिद्धान्त है कि यह लोक आनुपूर्वी अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों से सदा ही अशून्य है। यदि आनुपूर्वी द्रव्य को-सर्वलोक व्यापी माना जावे तो फिर अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों को ठहरने के लिये स्थान न होने के कारण उनका अभाव प्रसक्त होगा। और जब देशोन लोक में एक आनुपूर्वीद्रव्य व्यापक होकर रहता है। ऐसा माना जाता है तो इस प्रकार से अचित्त महास्कंध से पूरित हुए भी लोक में कम से कम एक प्रदेश ऐसा भी आजाता है कि जो अनानुपूर्वीद्रव्य का विषय रूप से विवक्षित हो जाता है। तथा दो प्रदेश

वर्ती असंख्यात प्रदेशરૂપ क्षेत्रानुपूर्वी छे, अने तेमां अवगाही (रहेलो) होवाथी परिपूर्ण अचित्त महास्कंधमां पण क्षेत्रानुपूर्वीत्व मानवामां कोई पण वांधो जणातो नथी.

उत्तर-એવો સિદ્ધાંત છે કે આ લોક આનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યોથી રહિત કદી હોતો નથી જો આનુપૂર્વી દ્રવ્યને સર્વલોકવ્યાપી માનવામાં આવે, તો અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યોને રહેવાનું સ્થાન જ બાકી ન રહે! અને તે કારણે તેમનો અભાવ જ માનવાનો પ્રસંગ ઉપસ્થિત થશે જો એવું માનવામાં આવે કે દેશોન (દેશ ન્યૂન) લોકમાં એક આનુપૂર્વી દ્રવ્ય વ્યાપીને રહે છે, તો અચિત્ત મહાસ્કંધ વડે પૂરિત થયેલા લોકમાં પણ ઓછામાં ઓછો એક પ્રદેશ એવો પણ બાકી રહેશે કે જેમાં અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યનો સદ્ભાવ હોઈ શકે, તથા તે લોકમાં બે પ્રદેશ એવા

त्वेन विवक्षितम्, आनुपूर्वीद्रव्यस्य तत्र सत्त्वेऽपि तस्याऽप्राधान्येन विवक्षणात्, अनानुपूर्व्यवक्तव्यकयोस्तु प्राधान्येन विवक्षणादिति, अतोऽत्र देशोनो लोकोऽत्र विवक्षितइति। उक्तं च—

" महखंधापुण्णे वि य अवत्तव्वगऽणाणुपुव्विदव्वाइं।
जद्देसोगाढाइं तद्देसेणं स लोगूणो " ॥१॥

छाया—महास्कन्धाऽऽपूर्णेऽपि च अवक्तव्यकाऽनानुपूर्वीद्रव्याणि।
यद्देशावगाढानि तद्देशेन स लोकोनः ॥इति।

ननु यद्येवं तर्हि द्रव्यानुपूर्व्यामपि सर्वलोकव्यापित्वमानुपूर्वीद्रव्यस्य यदुक्तं तद् विरुध्यते, अनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्याणामनवकाशत्वेन तत्राप्यभाव प्रतीति-

ऐसे भी आ जाते हैं कि जो अवक्तव्यक द्रव्य के विषयरूप से विवक्षित हो जाते हैं। इन एक और दो प्रदेशों में आनुपूर्वी द्रव्य का भी सद्भाव रहता है तो भी अप्रधान होने से उसकी वहां विवक्षा नहीं होती है। अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक इन द्रव्यों की ही प्रधानता होने से विवक्षा की जाती है। इसलिये आनुपूर्वी द्रव्य एक आनुपूर्वीद्रव्य की अपेक्षा से देशोन लोक में अवगाहित कहा गया है। यही बात उक्तंच—"महाखंधा पुण्णेविय इत्यादि" करके इस गाथा द्वारा प्रकट की गई है।

शंका—यदि यही बात है कि एक अनानुपूर्वी द्रव्य क्षेत्रानुपूर्वी में देशोन लोक व्यापी है फिर द्रव्यानुपूर्वीमें भी यही बात माननी चाहिये परन्तु वहां ऐसी बात नहीं मानी गई है वहां तो आनुपूर्वी द्रव्य को सर्व लोक व्यापी कहा गया है। क्षेत्रानुपूर्वी में अनानुपूर्वी द्रव्य को सर्व—

પણ બાકી રહેશે કે જેમાં અવક્તવ્યક દ્રવ્યનો અવગાહ સંભવી શકશે તે એક અને બે પ્રદેશોમાં આનુપૂર્વી દ્રવ્યનો પણ સદ્ભાવ રહે છે, છતાં પણ તે ત્યાં અપ્રધાન હોવાને કારણે તેની વિવક્ષા અહીં કરી નથી અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક, આ બે દ્રવ્યોની જ ત્યાં પ્રધાનતા હોવાથી તેમની જ વિવક્ષા કરવામાં આવી છે. તેથી જ એવું કહેવામાં આવ્યું છે કે આનુપૂર્વી દ્રવ્યનો એક આનુપૂર્વી દ્રવ્યની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો તેની અવગાહના દેશોન લોકમાં છે. એજ વાતને " महाखंधा पुण्णेविय " ઇત્યાદિ સૂત્રપાઠ દ્વારા અહીં પ્રકટ કરવામાં આવી છે.

શંકા—જો એક આનુપૂર્વી દ્રવ્ય ક્ષેત્રાનુપૂર્વીમાં દેશોન (દેશ ન્યૂન) લોકવ્યાપી હોય, તો દ્રવ્યાનુપૂર્વીમાં પણ એવી જ વાતનો સ્વીકાર થવો જોઇએ પરન્તુ દ્રવ્યાનુપૂર્વીમાં એવી વાતનો સ્વીકાર કરવાને બદલે આનુપૂર્વી દ્રવ્યને સર્વલોકવ્યાપી કહેવામાં આવેલ છે. ક્ષેત્રાનુપૂર્વીમાં આનુપૂર્વી દ્રવ્યને

प्रसङ्गात्, सर्वकालं च तेषामप्यवस्थितिप्रतिपादना? इति चेत्? उच्यते-द्रव्यानुपूर्व्यां हि द्रव्याणामेवानुपूर्व्यादिभाव उक्तः, न तु क्षेत्रस्य, तस्य तत्रानधिकृतत्वात्। आनुपूर्व्यादिद्रव्याणां परस्परभेदेऽपि एकस्मिन्नपि क्षेत्रे तदवस्थानं न किंचिद् विरुध्यते, यथा एकापवरकान्तर्गतानेक प्रदीपप्रमाणामवस्थिति र्न विरुध्यते। इत्थं च द्रव्यानुपूर्व्यामानुपूर्वीद्रव्याणां समस्तलोके विद्यमानत्वेऽपि न तत्र कस्या

लोक व्यापी मानने में जो आपने अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यको ठहरने के लिये स्थान होने के कारण उनमें अभाव के प्रसंग प्राप्त होने का कथन किया है, सो वही अभाव के प्रसंग प्राप्त होने के कारण उन अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्योंके लिये द्रव्यानुपूर्वी में भी आनुपूर्वी द्रव्य को सर्वलोकव्यापी मानने पर उपस्थित होता है। परन्तु ऐसा तो है नहीं-क्योंकि सर्वकाल उन दोनों का भी अवस्थान माना गया है।

उत्तर-द्रव्यानुपूर्वी में द्रव्यों के ही आनुपूर्वी आदि भाव का कथन किया गया है। आकाश रूप क्षेत्र को आनुपूर्वी आदि भाव का नहीं। क्योंकि वहां पर द्रव्यानुपूर्वी में-आकाश रूप क्षेत्र का विचार अधिकृत नहीं है। आनुपूर्वी आदि द्रव्यों का परस्पर में भेद होने पर भी उनका अवस्थान एक भी आकाश प्रदेश रूप क्षेत्र में थोड़ा सा भी विरुद्ध नहीं पड़ता है, जैसे एक कोठे के अन्तर्गत अनेक प्रदीप प्रभाओं की अवस्थिति में कोई विरोध नहीं होता है। इस प्रकार द्रव्यानुपूर्वी मे आनुपूर्वीद्रव्यों

સર્વલોકવ્યાપી માનવામાં આવે એવો પ્રસંગ પ્રાપ્ત થવાનો ભય બતાવ્યો છે કે એ પ્રકારની માન્યતાનો સ્વીકાર કરવામાં આવે તો અનાનુપૂર્વી અને અવકતવ્યક દ્રવ્ય ને રહેવાના સ્થાનનો જ અભાવ રહેવાને કારણે તે દ્રવ્યોનો અભાવ મનવાનો પ્રસંગ પ્રાપ્ત થશે. તો આનુપૂર્વી દ્રવ્યને સર્વલોકવ્યાપી માનવામાં આવે તો અનાનુપૂર્વી અને અવકતવ્યક દ્રવ્યોનો પણ અભાવ માનવાનું કારણ અહીં પણ ઉપસ્થિત થશે પરન્તુ એવી વાત તો સંભવિત નથી, કારણ કે તે બન્નેનો સદ્ભાવ સદા માનવામાં આવેલો જ છે.

ઉત્તર-દ્રવ્યાનુપૂર્વીમાં દ્રવ્યોના જ આનુપૂર્વી આદિ ભાવનું કથન કરવામાં આવ્યું છે-આકાશરૂપ ક્ષેત્રના આનુપૂર્વી આદિ ભાવનું કથક થયું નથી, કારણ કે દ્રવ્યાનુપૂર્વીમાં આકાશ રૂપ ક્ષેત્રનો વિચાર અધિકૃત નથી. આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્યોનો પરસ્પરમાં ભેદ હોવા છતાં પણ તેમનું અવસ્થાન એક પણ આકાશપ્રદેશ રૂપ ક્ષેત્રમાં સહેજ પણ વિરૂદ્ધ પડતું નથી જેવી રીતે એક કોઠાની અંદર પ્રદીપો (દીવા) ની પ્રભાઓની અવસ્થિતિમાં કોઇ વિરોધ પડતો નથી, એજ પ્રમાણે દ્રવ્યાનુપૂર્વીમાં આનુપૂર્વી દ્રવ્યોને સમસ્ત લોકમાં

प्यनवकाश इति, न कश्चिद् दोषः। क्षेत्रानुपूर्व्यां तु द्रव्याणामौपचारिक एवानुपूर्व्यादिभावः, मुख्यतस्तु क्षेत्रस्यैवानुपूर्व्यादिभावो विवक्षितः, तस्यैवात्राधिकारात्। तस्मादत्र यदि सर्वेऽपि लोकप्रदेशा आनुपूर्व्या व्याप्ता भवेयुस्तर्हि अनानुपूर्व्यवक्तव्यकतया किमन्यत् क्षेत्रं क्षेत्रानुपूर्वीस्यात्?। येषु नभःप्रदेशेष्वानुपूर्व्यस्तेष्वेवानानुपूर्व्यवक्तव्ययोरपि सद्भावः स्यादिति तु न वक्तुं शक्यते, द्रव्यावगाहभेदेन

को समस्त लोक में व्यापक मानने पर भी वहां अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों के ठहरने में अनवकाश रूप दोष की आपत्ति का प्रसंग प्राप्त थोड़ा भी नहीं होता है। परन्तु क्षेत्रानुपूर्वी में जो द्रव्यों का आनुपूर्वी आदि भाव कहा गया है वह तो औपचारिक ही हैं। क्योंकि इस क्षेत्रानुपूर्वी में क्षेत्र में, ही आनुपूर्वी आदि रूप भाव मुख्य रूप से विवक्षित हुआ है, इसका कारण यह है कि उसका यहां अधिकार चल रहा है, इसलिये क्षेत्रानुपूर्वी में यदि सब भी लोक के प्रदेश आनुपूर्वी से व्याप्त हो जावे तो फिर अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक रूप से और कौन से दूसरे प्रदेशरूपी क्षेत्र क्षेत्रानुपूर्वी रूप से व्यवहृत होंगे कि जिससे जिन आकाश के प्रदेशों में आनुपूर्वियों का सद्भाव है उन्हींमें अनानुपूर्वी और अवक्तव्यकों का सद्भाव हो सके? नहीं हो सकेगा। अतः फिर यह कैसे कहा जा सकता है, कि जिन आकाश प्रदेशों में आनुपूर्वी का सद्भाव है उन्हींमें अनानुपूर्वियों और अवक्तव्यकों का भी सद्भाव हैं। यदि इसपर यों कहा जावे कि इस प्रकार से मानने में कि जिन आकाश

વ્યાપક માનવા છતાં પણ ત્યાં અનાનુપૂર્વી અને અવકતવ્યક દ્રવ્યોને રહેવામાં અવકાશ રૂપ દોષની આપત્તિનો પ્રસંગ બિલકુલ પ્રાપ્ત થતો નથી. પરન્તુ ક્ષેત્રાનુપૂર્વીમાં દ્રવ્યોના જે આનુપૂર્વી આદિ ભાવ કહેવામાં આવ્યા છે તે તો ઔપચારિક જ છે, કારણ કે આ ક્ષેત્રાનુપૂર્વીમાં ક્ષેત્રમાં જ આનુપૂર્વી આદિ રૂપ ભાવ મુખ્ય રૂપે વિવક્ષિત થયા છે તેનું કારણ એ છે કે તેનો જ અધિકાર અહીં ચાલી રહ્યો છે તેથી ક્ષેત્રાનુપૂર્વીમાં જો લોકના સમસ્ત પ્રદેશો આનુપૂર્વી વડે વ્યાપ્ત થઈ જાય, તો અનાનુપૂર્વી અને અવકતવ્યક દ્રવ્યોનો જેમાં સદ્ભાવ હોય એવાં અન્ય પ્રદેશો રૂપ ક્ષેત્રનો સદ્ભાવ જ કયાંથી રહે! આ પ્રકારની પરિસ્થિતિમાં એવું કેવી રીતે કહી શકાય કે જે આકાશપ્રદેશોમાં આનુપૂર્વીઓનો સદ્ભાવ છે, એજ આકાશપ્રદેશોમાં અનાનુપૂર્વીઓ અને અવકતવ્યકોનો પણ સદ્ભાવ છે! જો આ બાબતને અનુલ-

क्षेत्रभेदस्य विवक्षणात्। तस्मादनानुपूर्व्यवक्तव्यकयो र्विषयं प्रदेशत्रयं विहाय शेष-प्रदेशा एवानुपूर्व्या विषयो भवतीति प्रदेशत्रयलक्षणेन देशेन लोकस्योनता विवक्षिता, अतः क्षेत्रानुपूर्व्यामेकं द्रव्यं प्रतीत्य आनुपूर्वीद्रव्य देशोने लोके भवति।

प्रदेशों में आनुपूर्वी द्रव्य अवगाहित होते हैं, उन्हीं प्रदेशों में शेष दो द्रव्य भी अवगाहित होते हैं। अतः अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों से अधिष्ठित वे कुछ प्रदेश अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक रूप से कहें जावेंगे। सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है कारण इस प्रकार के कथन से द्रव्य के अवगाह की भिन्नता से क्षेत्र में भेद आजाता है। जिसकी यहां विवक्षा है। तात्पर्य कहने का यह है कि द्रव्यानुपूर्वी में आनुपूर्वी द्रव्यों का समस्त लोक में अवस्थान न होने पर भी अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों के अवस्थान होनेपर वहां कोई दोष नहीं आता है। परन्तु क्षेत्रानुपूर्वी में यदि आनुपूर्वीद्रव्य को समस्त लोक व्यापी माना जावे अर्थात् लोक के समस्त प्रदेश आनुपूर्वी रूप मान लिये जावें तो इस स्थिति में अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक प्रदेश कौनसे माने जावेंगे कि जिनमें अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्य ठहर सकें। अतः यह मानना चाहिये कि इस क्षेत्रानुपूर्वी में एक प्रदेश अनानुपूर्वी क्षेत्रानुपूर्वी का विषय है और दो प्रदेश अवक्तव्यक क्षेत्रानुपूर्वी के विषय

क्षीने એવી દલીલ કરવામાં આવે કે "જે આકાશપ્રદેશોમાં આનુપૂર્વી દ્રવ્યો અવગાહિત હોય છે, એજ પ્રદેશોમાં બાકીના બન્ને દ્રવ્યો અવગાહિત હોય છે, અને તે કારણને લીધે અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યોથી અધિષ્ઠિત એવાં એજ અમુક પ્રદેશોને અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક રૂપે કહી શકાશે." આ પ્રકારની માન્યતા પણ બરાબર નથી, કારણ કે આ પ્રકારની માન્યતાનો સ્વીકાર કરવાથી દ્રવ્યના અવગાહની ભિન્નતાને લીધે ક્ષેત્રમાં પણ ભિન્નતા આવી જાય છે. તેની જ અહીં વિવક્ષા ચાલી રહી છે આ સમસ્ત કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે દ્રવ્યાનુપૂર્વીમાં આનુપૂર્વી દ્રવ્યોનું સમસ્ત લોકમાં અવસ્થાન હોવા છતાં પણ અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યોનું ત્યાં અવસ્થાન માનવામાં કોઇ દોષ નથી પરન્તુ ક્ષેત્રાનુપૂર્વીમાં જો આનુપૂર્વી સમસ્ત લોક-વ્યાપી માનવામાં આવે એટલે કે લોકના સમસ્ત પ્રદેશોને જો આનુપૂર્વી રૂપ માનવામાં આવે, તો અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યો જેમાં અવગાહિત થઈ શકે એવાં અનાનુપૂર્વી પ્રદેશો કોને માનવા? તેથી એવું જ માનવું પડશે કે આ ક્ષેત્રાનુપૂર્વીમાં એકપ્રદેશ અનાનુપૂર્વી ક્ષેત્રાનુપૂર્વીનો વિષય છે અને બે પ્રદેશ અવક્તવ્યક ક્ષેત્રાનુપૂર્વીનો વિષય છે. આ

तथा–नानाद्रव्याणि प्रतीत्य आनुपूर्वीद्रव्याणि नियमात् सर्वलोके भवन्ति। त्र्यादिप्रदेशावगाढ भेदतो नानाविधैः=विभिन्नप्रकारैरानुपूर्वीद्रव्यैः सर्वोऽपि लोको व्याप्त इति भावः।

हैं। इस प्रकार अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों को ठहरने के लिये ये तीन प्रदेश लोक के हैं। इन प्रदेशों में यद्यपि आनुपूर्वीद्रव्य भी अवगाहित होकर रहता है–परन्तु उसकी यहां गौणता है, और शेष दो द्रव्यों की मुख्यता है, इस प्रकार अवगाहियों के भेद से अवगाहरूप आकाश में भेद आजाता है। अतः अनानुपूर्वी और अवक्तव्यकद्रव्यों के विषयभूत प्रदेशत्रय को छोड़ कर बाकी के समस्त प्रदेश लोक के आनुपूर्वी रूप हैं। तथा एकप्रदेश अनानुपूर्वी और दो प्रदेश अवक्तव्यक हैं। इसी कारण तीन प्रदेशरूप देशरूप देश से न्यूनता लोक में विवक्षित की गई है। अर्थात् लोक के ये ३ प्रदेश आनुपूर्वी नहीं हैं और बाकी के समस्त प्रदेश आनुपूर्वीरूप हैं। इस प्रकार क्षेत्रानुपूर्वी में एक आनुपूर्वी द्रव्य को आश्रित करके तीन प्रदेश न्यून समस्त लोक में आनुपूर्वी द्रव्य अवगाही हैं। यह कथन सिद्ध हो जाता है। तथा (नाणादव्वाइं पडुच्च नियमा) नाना द्रव्यों की अपेक्षा लेकर समस्त आनुपूर्वी द्रव्य नियम से सर्वलोक में अवगाही है। अर्थात् लोक के त्र्यादिप्रदेशों में

રીતે અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યોને રહેવા માટે લોકના આ ત્રણ પ્રદેશો છે. તે પ્રદેશોમાં જો કે આનુપૂર્વી દ્રવ્ય પણ અવગાહિત થઇને રહે છે, પરન્તુ તેની ત્યાં ગૌણતા છે અને બાકીના બે દ્રવ્યોની પ્રધાનતા છે. આ પ્રકારે અવગાહિત દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ અવગાહરૂપ આકાશમાં પણ ભેદ આવી જાય છે. તેથી અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યોના વિષય રૂપ ત્રણ પ્રદેશો સિવાયના લોકના બાકીના સમસ્ત પ્રદેશો આનુપૂર્વી રૂપ છે. તથા એક પ્રદેશ અનાનુપૂર્વી રૂપ અને બે પ્રદેશો અવક્તવ્યક રૂપ છે. આ કારણે ત્રણ પ્રદેશરૂપ દેશની અપેક્ષાએ લોકમાં ન્યૂનતા પ્રકટ કરવામાં આવી છે. એટલે કે લોકના તે ત્રણ પ્રદેશો આનુપૂર્વી રૂપ નથી અને બાકીના સમસ્ત પ્રદેશો આનુપૂર્વી રૂપ છે. આ રીતે એ કથન સિદ્ધ થાય છે કે ક્ષેત્રાનુપૂર્વીમાં એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યને આશ્રિત કરીને ત્રણ પ્રદેશ ન્યૂન સમસ્ત લોકમાં આનુપૂર્વી દ્રવ્યની અવગાહના છે.

તથા (नाणादव्वाइं पडुच्च नियमा) વિવિધ દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો સમસ્ત આનુપૂર્વી દ્રવ્ય નિયમથી જ સર્વલોકમાં અવગાહી

तथा-नैगमव्यवहारसम्मतानाम् अनानुपूर्वीद्रव्याणां पृच्छायां=प्रश्ने तु एवं विज्ञेयम्-एकं द्रव्यं प्रतीत्य अनानुपूर्वीद्रव्यं नो संख्येयतमभागे भवति, नो संख्येयेषु भागेषु भवति, नो असंख्येयेषु भागेषु भवति, नापि च सर्वलोके भवति, किन्तु-असंख्येयतमभागे भवति। अयं भावः-एकं द्रव्यमाश्रित्यानानुपूर्वीद्रव्यं

स्थित आनुपूर्वी द्रव्यों के भेद से विभिन्न प्रकार के आनुपूर्वी द्रव्यों से समस्त लोक व्याप्त हैं। (णेगमववहाराणं) नेगम व्यवहारनयसंमत (अणाणुपुव्वीदव्वाइं) अनानुपूर्वी द्रव्यों के (पुच्छाए) प्रश्नों में तो इस प्रकार समझना चाहिये (एगं दव्वं) एक द्रव्य की (पडुच्च) प्रतीति करके अर्थात् एक अनानुपूर्वीद्रव्य की अपेक्षा करके-(नो संखेज्जइभागे होज्जा) अनानुपूर्वी द्रव्य लोक के संख्यातवें भाग में अवगाही नहीं हैं (नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा संख्यात भागों में अवगाही नहीं हैं(नो-असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा,असंख्यात भागों में अवगाही नहीं हैं) (नो सव्वलोए होज्जा)और न सर्वलोक मे अवगाही हैं किन्तु (असंखेज्जइ भागे होज्जा) लोक के असंख्यातवें भाग में अवगाही हैं। अयं भावः-एक आनानुपूर्वीद्रव्य को लेकर जब यह विचार किया जाता है कि अनानुपूर्वीद्रव्य लोक के कौन से भाग में अवगाहित है? तब यह उत्तर मिलता है कि असंख्यातवें भाग में ही अवगाही है। क्योंकि अनानुपूर्वी द्रव्य

(રહેલું) છે. એટલે કે લોકના ત્રણ આદિ પ્રદેશોમાં રહેલા આનુપૂર્વી દ્રવ્યોના ભેદથી વિભિન્ન પ્રકારના આનુપૂર્વી દ્રવ્યો વડે સમસ્ત લોક વ્યાપ્ત છે. (णेगमववहाराणं) નૈગમવ્યવહાર નયસંમત (अणाणुपुव्वी दव्वाणं) અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોના (पुच्छाए) પ્રશ્નોમાં (વિષયમાં) તો આ પ્રમાણે સમજવું જોઈએ-(एगं दव्वं पडुच्च) જો એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે, તો (नो संखिज्जइभागे होज्जा) અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય લોકના સંખ્યાતમાં ભાગમાં અવગાહી નથી, (नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा), લોકના સંખ્યાત ભાગોમાં પણ અવગાહી નથી, (नो असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा) અસંખ્યાત ભાગોમાં પણ અવગાહી નથી, (नो सव्वलोए होज्जा) અને સમસ્ત લોકમાં પણ અવગાહી નથી, પરંતુ (असंखेज्जइभागे होज्जा) લોકના અસંખ્યાતમાં ભાગમાં અવગાહી છે. આ સઘળા કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યની બાબતમાં એવો વિચાર કરવામાં આવે કે "એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય લોકના કેટલા ભાગમાં અવગાહી છે? આ પ્રશ્નનો ઉત્તર એ છે કે તે લોકના અસંખ્યાતમાં ભાગમાં જ અવગાહી છે. કારણ કે અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય

लोकस्य संख्येयतमे भाग एव वर्तते, एकप्रदेशावगाढस्यैवानानुपूर्वीत्वेन विवक्षणात्, एकप्रदेशस्य च लोकाऽसंख्येयभागवर्त्तित्वादिति। नानाद्रव्याण्याश्रित्य तु अनानुपूर्वीद्रव्याणि नियमात् सर्वलोकव्यापीनि भवन्ति, एकैकप्रदेशावगाढद्रव्यभेदानां समस्तलोकव्यापित्वादिति भावः।

एवम्=अनानुपूर्वीद्रव्यवत् अवक्तव्यकद्रव्याण्यपि भणितव्यानि=वक्तव्यानि। अयं भावः—एकं द्रव्यमाश्रित्यावक्तव्यकद्रव्यमपि असंख्येयतमभागे एव भवति, द्विप्रदेशावगाढस्यैवावक्तव्यकद्रव्यत्वेनाभिधानात् प्रदेशद्वयस्य च लोकासंख्येय-

---

रूप से वही द्रव्य विवक्षित हुआ है, जो लोक के एकप्रदेश में ही-अवगाढ होता है। लोक का एकप्रदेश लोक के असंख्यातवें भाग में रहने वाला है। इसलिये अनानुपूर्वी द्रव्य लोक के असंख्यातवें भाग में ही अवगाही माना गया है। (नाणा दव्वाइं) नाना अनानुपूर्वी द्रव्यों की (पडुच्च) अपेक्षा लेकर अनेक अनानुपूर्वी द्रव्य (णियमा) नियम से (सव्वलोए होज्जा) सर्वलोक व्यापी माने गये हैं। क्योंकि एक एकप्रदेश में अवगाढ अनानुपूर्वीद्रव्यों के भेद समस्त लोक को व्याप्त किये हुए रहते हैं। (एवं अवत्तव्वगदव्वाणि वि भाणियव्वाणि) इसी प्रकार अनानुपूर्वी द्रव्य की तरह अवक्तव्यक द्रव्यों के विषय में भी जानना चाहिये। तात्पर्य कहने का यह है कि एक अवक्तव्यक द्रव्य की अपेक्षा से एक अवक्तव्यकद्रव्य भी लोक के असंख्यातवें भाग में ही अवगाही रहता है, क्योंकि लोक के प्रदेशद्वय में अवगाढ हुए द्रव्य को अवक्त-

---

રૂપે એજ દ્રવ્ય વિવક્ષિત થયું છે કે જે લોકના એક પ્રદેશમાં જ રહેલું હોય છે. લોકનો એક પ્રદેશ લોકના અસંખ્યાતમાં ભાગમાં રહેલો હોય છે. તે કારણે અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યને લોકના અસંખ્યાતમાં ભાગમાં જ અવગાહી માનવામાં આવ્યું છે.

(नाणादव्वाइं पडुच्च) વિવિધ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે, તો (णियमा सव्वलोए होज्जा) તો તેમને નિયમથી જ સર્વલોકવ્યાપી માનવામાં આવેલ છે, કારણ કે એક એક પ્રદેશમાં અવગાઢ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોના જોટો સમસ્ત લોકને વ્યાપ્ત કરીને રહેલાં હોય છે. (एवं अवत्तव्वगदव्वाणि वि भाणियव्वाणि) અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોના જેવું જ કથન અવક્તવ્યક દ્રવ્યો વિષે પણ અહીં ગ્રહણ કરવું જોઈએ એટલે કે એક અવક્તવ્યક દ્રવ્યની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે, તો એમ કહેવું જોઈએ કે એક અવક્તવ્યક દ્રવ્ય લોકના અસંખ્યાતમાં ભાગમાં જ અવગાહી હોય છે, કારણ કે લોકના બે પ્રદેશોમાં જ અવગાહિત થયેલા દ્રવ્યને અવક્તવ્યક

भागवर्तित्वात्। नानाद्रव्याण्याश्रित्य तु अवक्तव्यकद्रव्याणि सर्वलोके सन्ति, नानाद्रव्यापेक्षया द्विप्रदेशावगाढानामवक्तव्यकद्रव्याणां समस्तलोकव्यापित्वादिति भावः।

ननु–आनुपूर्व्यादीनि त्रीण्यपि द्रव्याणि सर्वलोकव्यापीनि प्रोच्यन्ते, इत्थं च येष्वाकाशप्रदेशेषु आनुपूर्वी, तेष्वेवाकाशप्रदेशेषु अनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्ययोरपि सद्भावः प्रतिपादितो भवति, एवं च कथमेकस्यैव क्षेत्रस्य परस्परविरुद्धं भिन्नविषयम् आनुपूर्व्यादिव्यपदेशत्रयं स्यात्? इति चेत्, अत्रोच्यते–व्यादिप्रदेशाव-

---

व्यक द्रव्यरूप से कहा गया है। लोक के असंख्यात प्रदेशों की अपेक्षा से असंख्यातवें भाग रूप पड़ते हैं। इसलिये अवक्तव्यक द्रव्य को लोक के असंख्यातवें भागवर्ती माना गया है। तथा नाना अवक्तव्यकद्रव्यों की अपेक्षा से जितने भी अवक्तव्यक द्रव्य हैं, वे सब लोक के दो २ प्रदेशों में व्यापक रहने के कारण सर्वलोकव्यापी माने गये हैं।

शंका–आनुपूर्वी आदि जो द्रव्य हैं वे सब ही लोकव्यापी हैं ऐसा आप कहते हैं। सो जिन आकाश प्रदेशों में आनुपूर्वी द्रव्य रहते हैं। उन्हीं आकाश प्रदेशों में इतर दो अनानुपूर्वी अवक्तव्यक द्रव्य भी रहते हैं। यही बात इस कथन से प्रतिपादित होती है। अतः इस प्रकार के कथन से एक ही क्षेत्र में परस्पर विरुद्ध आनुपूर्वी आदि व्यपदेशत्रय जो कि भिन्न भिन्न विषय से संबंधित है, कैसे संगत हो सकता है?

દ્રવ્ય કહેવામાં આવે છે. લોકના તે બે પ્રદેશોને લોકના અસંખ્યાત પ્રદેશોની સાથે સરખાવવામાં આવે તો લોકના અસંખ્યાતમાં ભાગની બરાબર જ હોય છે. તે કારણે જ એક અવક્તવ્યક દ્રવ્યને લોકના અસંખ્યાતમાં ભાગમાં જ રહેલું માનવામાં આવ્યું છે. વિવિધ અવક્તવ્યક દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ વિચારવામાં આવે તો તે સઘળાં અવક્તવ્યક દ્રવ્યો લોકના બધ્ધે પ્રદેશોમાં વ્યાપ્ત હોવાને કારણે તેમને સર્વલોકવ્યાપી માનવામાં આવ્યાં છે.

શંકા—આપે અહીં એવું પ્રતિપાદન કર્યું છે કે આનુપૂર્વી આદિ જે દ્રવ્યો છે તેઓ સમસ્ત લોકવ્યાપી છે. આપના આ કથન વડે તો એવું પ્રતિપાદિત થાય છે કે જે આકાશપ્રદેશોમાં આનુપૂર્વી દ્રવ્યો રહે છે, એજ પ્રદેશોમાં અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યો પણ રહે છે, આ પ્રકારનું કથન સંગત લાગતું નથી, કારણ કે એક જ ક્ષેત્રમાં પરસ્પરથી વિરૂદ્ધ એવાં આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્યોનો અવગાહ કેવી રીતે સંભવી શકે? ભિન્ન ભિન્ન વિષયો સાથે સંબંધિત આ ત્રણેનો એક જ ક્ષેત્રમાં કેવી રીતે સદ્ભાવ હોઈ

गाढाद् द्रव्याद् भिन्नमेव तावदेकप्रदेशावगाढम्, ताभ्यां च भिन्नं द्विप्रदेशावगाढम्। इत्थं च आधेयस्यावगाहकद्रव्यस्य भेदादाधारस्याप्यवगाह्यस्य क्षेत्रस्य भेदः

शंकाकार की इस शंका का भाव यह है कि एकही क्षेत्र में आनुपूर्वी अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक इन तीनों की संगति कैसे हो सकती है? क्योंकि यह आनुपूर्वी आदि का भाव एक दूसरे से सर्वथा विरुद्ध है। क्योंकि इनका विषय अपना २ भिन्न २ है। यदि ये तीनों व्याप्त रूप होते तो एक क्षेत्र में घटित भी हो जाते-परन्तु ऐसे तो ये-नहीं हैं। ये तो तीनों व्यापक द्रव्य हैं। इस प्रकार जो आकाशप्रदेश आनुपूर्वी रूप से कहें जावेगें वे ही अनानुपूर्वी और अवक्तव्यकरूप से कैसे व्यपदिष्ट हो सकते हैं? इसलिये अनानुपूर्वी आदि भाव को व्यापक मानने पर एक ही आकाशरूप क्षेत्र में आनुपूर्वी आदि व्यपदेश भिन्न विषयवाला होने के कारण परस्पर विरुद्ध पडता है।

उत्तर-आकाशरूप क्षेत्र यदि एकही माना जाता तो इस प्रकार की शंका संगत हो सकती-परन्तु ऐसा नहीं है। क्योंकि त्र्यादिप्रदेशों में अवगाढ जो आनुपूर्वीद्रव्य है उससे एक प्रदेशागाढ द्रव्य भिन्न है, और इन दोनों से द्विप्रदेशावगाढ द्रव्य भिन्न है। इस प्रकार आधेय रूप जो

શકે? શંકાકારની શંકાનો ભાવાર્થ એવો છે કે આનુપૂર્વી, અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યોનું અસ્તિત્વ એક જ ક્ષેત્રમાં કેવી રીતે સંભવી શકે? આ આનુપૂર્વી આદિ ભાવો પરસ્પરથી બિલકુલ વિરૂદ્ધ ગુણધર્મો ધરાવે છે, તે પ્રત્યેકનો વિષય પરસ્પરથી ભિન્ન ભિન્ન છે, છતાં તેમને આપ સર્વલોક વ્યાપી કેવી રીતે કહો છો? જો તે ત્રણે વ્યાપ્ય રૂપ હોત તો એક ક્ષેત્રમાં તેમનો સદ્ભાવ માની શકાત, પરન્તુ તેઓ વ્યાપ્ય રૂપ નથી તે ત્રણે વ્યાપક દ્રવ્ય રૂપ છે. આ પરિસ્થિતિમાં જે આકાશપ્રદેશોને આનુપૂર્વી રૂપે ઓળખવામાં આવશે, એજ આકાશપ્રદેશોને આનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક રૂપે કેવી રીતે કહી શકાશે? તેથી અનાનુપૂર્વી આદિ ભાવોને વ્યાપક માનવામાં આવે તો એક જ આકાશરૂપ ક્ષેત્રમાં આનુપૂર્વી આદિ વ્યપદેશ ભિન્ન વિષયવાળો હોવાને કારણે પરસ્પરથી વિરૂદ્ધ પડે છે.

ઉત્તર—આકાશ રૂપ ક્ષેત્ર જો એક જ માનવામાં આવ્યું હોત તો આ પ્રકારની શંકા સંગત ગણી શકાત. પરન્તુ એવું નથી કારણ કે ત્રણ આદિ પ્રદેશોમાં અવગાઢ જે આનુપૂર્વી દ્રવ્ય છે, તેના કરતાં એક પ્રદેશાવગાઢ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય ભિન્ન છે અને તે બન્ને કરતાં દ્વિપ્રદેશાવગાઢ અવક્તવ્યક દ્રવ્ય ભિન્ન છે. આ રીતે આધેય રૂપ જે અવગાહક દ્રવ્ય છે, તેના ભેદથી

स्यादेव। तथा च व्यपदेशभेदो युक्त एव। दृश्यते चानन्तधर्माध्यासिते वस्तूनि तत्तत्सहकारि सन्निधानात्तत्तद्धर्माभिव्यक्तौ समकालं व्यपदेशभेदः, यथा खड्गकुन्तकवचादियुक्ते देवदत्ते खड्गी कुन्ती कवचीत्यादिव्यपदेशभेद इति नास्ति कश्चिद् दोषः। इति क्षेत्रद्वारम् ॥सू० ११२॥

अथ स्पर्शनाद्वारं प्ररूपयितुमाह—

मूलम्—णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स किं संखेज्जइभागं फुसंति? असंखिज्जइभागं फुसंति? संखेज्जे भागे फुसंति जाव सव्वलोयं फुसंति? एगं दव्वं पडुच्च संखिज्जइभागं वा फुसइ, असंखिज्जइभागं वा संखेज्जे भागे वा असंखेज्जे भागे वा देसूणं वा लोगं फुसइ। नाणादव्वाइं पडुच्च णियमा सव्वलोयं फुसंति। अणाणुपुव्वीदव्वाइं अवत्तव्वगदव्वाइं च जहा खेत्तं नवरं फुसणा भाणियव्वा ॥सू०११३॥

अवगाहकद्रव्य है उसके भेद से आधाररूप अवगाह्य क्षेत्रमें भेद हो जाता ही है। इसप्रकार होने से व्यपदेश भेद वहां होना युक्त ही है। असंगत नहीं। भिन्न २ सहकारियों की सन्निधानता से तत्तद्धर्म की अभिव्यक्ति होनेपर अनन्त धर्मात्मक एक ही वस्तु में युगपत् व्यपदेश भेद होना देखा जाता है। जैसे खड्ग, कुन्त, कवच, आदि से युक्त एक ही-देवदत्त व्यक्ति में खड्गी, कुन्ती कवची इत्यादि व्यपदेश भेद देखा जाता है अतः अनानुपूर्वी आदि भाव को एक क्षेत्र में व्यापक माननेपर उसमें आनुपूर्वी आदिरूप से व्यपदेश निर्दोष है। ॥ सू० ११२ ॥

આધારરૂપ અવગાહ્ય ક્ષેત્રમાં ભેદ આવી જ જાય છે. આ પ્રમાણે થવાથી ત્યાં વ્યપદેશ ભેદ થવો તે યુક્ત જ લાગે છે—અસંગત લાગતો નથી જુદા જુદા સહકારીઓની સન્નિધાનતા વડે તે તે ધર્મની અભિવ્યક્તિ થાય ત્યારે અનન્ત ધર્માત્મક એક જ વસ્તુમાં યુગપત્ (એક સાથે) વ્યપદેશ ભેદ થતો જોવામાં આવે છે, જેમકે ખડ્ગ, કુન્ત, કવચ આદિ વડે યુક્ત એક જ દેવદત્ત આદિ વ્યક્તિમાં ખડ્ગી, કુન્તી, કવચી ઇત્યાદિ વ્યપદેશ-ભેદ જોવામાં આવે છે. તેથી અનાનુપૂર્વી આદિ ભાવોને એક ક્ષેત્રમાં વ્યાપક માનવામાં આવે તો તેમાં આનુપૂર્વી આદિ રૂપે વ્યપદેશ નિર્દોષ છે. ॥ સૂ૦ ૧૧૨ ॥

छाया—नैगमव्यवहारयोः आनुपूर्वीद्रव्याणि लोकस्य किं संख्येयतमभागं स्पृशन्ति ? असंख्येयतमभागं स्पृशन्ति ? संख्येयान् भागान् स्पृशन्ति ? यावत् सर्वलोकं स्पृशन्ति ? एकं द्रव्यं प्रतीत्य संख्येयतमभागं वा स्पृशति, असंख्येयतमभागं वा संख्येयान् भागान् वा असंख्येयान् भागान् वा देशोनं वा लोकं स्पृशति। नानाद्रव्याणि प्रतीत्य नियमात् सर्वलोकं स्पृशन्ति। अनानुपूर्वीद्रव्याणि अवक्तव्यकद्रव्याणि च यथाक्षेत्रं नवरं स्पर्शना भणितव्या ॥सू० ११३॥

टीका—'णेगमववहाराणं' इत्यादि। नैगमव्यवहारसम्मतानि आनुपूर्वीद्रव्याणि किं लोकस्य संख्येयतमभागं स्पृशन्ति ? असंख्येयतमभागं स्पृशन्ति ? इत्येवं पूर्ववदेव प्रश्ना विज्ञेयाः। उत्तरमाह—'एगं दव्वं' इत्यादि। एकं द्रव्यं प्रतीत्य आनुपूर्वी द्रव्यं संख्येयतमभागं वा स्पृशति, असंख्येयतमभागं वा स्पृशति, संख्येयान् वा भागान्, असंख्येयान् वा भागान् स्पृशति, देशोनं वा

अब सूत्रकार स्पर्शनाद्वार की प्ररूपणा करते हैं

"णेगमववहाराणं" इत्यादि।

शब्दार्थ-प्रश्न-(णेगमववहाराणं आणुपुव्वी दव्वाइं लोगस्स किं संखेज्जइभागं फुसंति ?) नैगमव्यवहारनय संमत समस्त आनुपूर्वी द्रव्य क्या लोक के संख्यातवें भाग का स्पर्श करते हैं ? (असंखेज्जइभागं फुसंति ?) या असंख्यातवें भाग का स्पर्श करते हैं ? (संखेज्जे भागे फुसंति) या संख्यात भागों का स्पर्श करते हैं ? (जाव सव्वलोयं फुसंति) या यावत् सर्वलोक का स्पर्श करते हैं ? (एगं दव्वं पडुच्च)

उत्तर-एक द्रव्य को आश्रित करके (संखिज्जइभागं वा) आनुपूर्वी द्रव्य लोक के संख्यातवें भाग को (फुसइ) स्पर्श करता है—(असंखिज्जइभागं वा) असंख्यातवें भाग का स्पर्श करता है (संखिज्जे

હવે સૂત્રકાર સ્પર્શનાદ્વારની પ્રરૂપણા કરે છે—

"णेगमववहाराणं" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-પ્રશ્ન-(णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स किं संखेज्जइभागं फुसंति, असंखिज्जइभागं फुसंति, संखेज्जे भागे फुसंति, जाव सव्वलोयं फुसंति?) નૈગમવ્યવહારનયસંમત સમસ્ત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો શું લોકના સંખ્યાતમાં ભાગનો સ્પર્શ કરે છે? કે અસંખ્યાતમાં ભાગનો સ્પર્શ કરે છે? કે સંખ્યાત ભાગોનો સ્પર્શ કરે છે? કે અસંખ્યાત ભાગોનો સ્પર્શ કરે છે? કે સમસ્ત લોકનો સ્પર્શ કરે છે?

ઉત્તર-(एगं दव्वं पडुच्च) એક દ્રવ્યની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે, તો (संखिज्जइभागं वा फुसइ) આનુપૂર્વી દ્રવ્ય લોકના સંખ્યાતમાં ભાગનો પણ સ્પર્શ કરે છે, (असंखिज्जइभागं वा) અસંખ્યાતમાં ભાગનો પણ

लोकं स्पृशति। अनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्योर्निरवकाशतामसङ्गात् पूर्ववत् लोकस्य देशोनानुपूर्वीद्रव्यस्पर्शना बोध्येति भावः। नानाद्रव्याण्याश्रित्य तु आनुपूर्वीद्रव्याणि नियमात् सर्वलोकं स्पृशन्ति। अनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्याणां स्पर्शना तु अत्रैवाव्यवहितपूर्वोक्तक्षेत्रद्वारवद् बोध्या। इति स्पर्शनाद्वारम् ॥सू० ११३॥

भागे वा असंखेज्जे भागे वा) संख्यात भागों को स्पर्श करता है, असंख्यात भागों को स्पर्श करता है' (देसूणं वा लोगं फुसइ) देशोन लोक का भी स्पर्श करता है। (नाणादव्वाइं पडुच्च णियमा सव्वलोयं फुसंति) नाना द्रव्यों की अपेक्षा करके तो आनुपूर्वीद्रव्य नियम से सर्वलोक का स्पर्श करते हैं (अणाणुपुव्वीदव्वाइं अवत्तव्वगदव्वाइं च जहा खेत्तं नवरं फुसणा भाणियव्वा) अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों की स्पर्शना तो यहीं पर अव्यवहित पूर्वोक्त क्षेत्रद्वार की तरह जानना चाहिये।

भावार्थ–नैगमव्यवहारनय संमत आनुपूर्वी द्रव्य लोक के संख्यातवें भाग की कोई एक लोक के असंख्यातवें भाग की कोई एक लोक के संख्यात भागों की, कोई एक असंख्यात भागों की, और कोई एक देशोन सर्वलोक की स्पर्शना करते हैं। यहां पर जो कोई एक आनुपूर्वी द्रव्य को देशोन लोक की स्पर्शना करने का कथन किया है सो उसका कारण यह है कि यदि आनुपूर्वी द्रव्य समस्त लोक की स्पर्शना करें तो अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों को अवकाश प्राप्ति का अभाव होगा।

સ્પર્શ કરે છે, (संखेज्जे भागे वा, असंखेज्जे भागे वा) સંખ્યાત ભાગોના પણ સ્પર્શ કરે છે, અસંખ્યાત ભાગોના પણ સ્પર્શ કરે છે, (देसूणं वा लोगं फुसइ) અને દેશોન લોકનો પણ સ્પર્શ કરે છે. (नाणादव्वाइं पडुच्च णियमा सव्वलोयं फुसंति) વિવિધ દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે, તો આનુપૂર્વી દ્રવ્યો નિયમથી સર્વલોકનો સ્પર્શ કરે છે. (अणाणुपुव्वी दव्वाइं अवत्तव्वगदव्वाइं च जहा खेत्तं नवरं फुसणा भाणियव्वा) અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યોની સ્પર્શના વિષેનું કથન પૂર્વોક્ત ક્ષેત્રદ્વારના કથન મુજબ જ સમજવું જોઇએ.

ભાવાર્થ–નૈગમવ્યવહાર નયસંમત આનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાંનું કોઈ એક આનુપૂર્વી દ્રવ્ય લોકના સંખ્યાતમાં ભાગની, કોઇ એક આનુપૂર્વી દ્રવ્ય લોકના સંખ્યાત ભાગોની, કોઈ એક આનુપૂર્વી દ્રવ્ય લોકના અસંખ્યાત ભાગોની અને કોઈ એક આનુપૂર્વી દ્રવ્ય દેશોન સર્વલોકની સ્પર્શના કરે છે. અહીં "એક આનુપૂર્વી દ્રવ્ય દેશોન સર્વલોકની સ્પર્શના કરે છે." આ પ્રકારનું જે કથન થયું છે તેનું કારણ એ છે કે જો એક આનુપૂર્વી દ્રવ્ય સમસ્ત લોકની સ્પર્શના કરતું હોય, તો અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક

अथ कालद्वारमरूपयति-

मूलम्-णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कालओ केवच्चिरं होई? एगं दव्वं पडुच्च जहन्नेणं एगं समयं उक्कोसेणं असंखिज्जं कालं। नाणादव्वाइं पडुच्च णियमा सव्वद्धा। एवं दोण्णि वि ॥सू०११४॥

छाया—नैगमव्यवहारयोः आनुपूर्वीद्रव्याणि कालतः कियच्चिरं भवन्ति? एकं द्रव्यं प्रतीत्य जघन्येन एकं समयम्, उत्कर्षेण असंख्येयं कालम्। नानाद्रव्याणि प्रतीत्य नियमात् सर्वाद्धा। एवं द्वे अपि ॥सू० ११४॥

टीका—'णेगमववहाराणं' इत्यादि।

नैगमव्यवहारसम्मतानि आनुपूर्वीद्रव्याणि कालतः कियच्चिरं भवन्ति? इति प्रश्नः। क्षेत्रावगाहपर्यायस्य प्राधान्यविवक्षया त्र्यादिप्रदेशावगाढद्रव्याणामेवानु-

---

अतः इन दोनों द्रव्यों को भी अवकाश प्राप्त हो इसलिये आनुपूर्वी द्रव्य की स्पर्शना देशोन लोक की कही गई है। नाना द्रव्यों की अपेक्षा ये तीनों ही द्रव्य नियम से सर्वलोक की स्पर्शना करते हैं।॥सू० ११३॥

अब सूत्रकार कालद्वार की प्ररूपणा करते हैं—

"णेगमववहाराणं आणुपुव्वी" इत्यादि।

शब्दार्थ-(णेगमववहाराणं) नैगमव्यवहारनयसंमत (आणुपुव्वीदव्वाइं) समस्त आनुपूर्वी द्रव्य (कालओ) कालकी अपेक्षा (केवच्चिरं होई) कितने समयतक आनुपूर्वी रूप से रहते हैं? पूछने वाले का यह आशय है कि अनानुपूर्वी आदि द्रव्यों का क्षेत्र में त्र्यादि प्रदेशों में अव-

---

द्रव्योने स्पर्शना કરવા માટેના સ્થાનનો અવકાશ જ ન રહે. તે બન્ને દ્રવ્યની સ્પર્શના પણ અવકાશ મળી રહે તે માટે આનુપૂર્વી દ્રવ્યની સ્પર્શના સમસ્ત લોકમાં કહેવાને બદલે દેશોન લોકમાં કહી છે. વિવિધ દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે, તો આનુપૂર્વી આદિ ત્રણે દ્રવ્યો નિયમથી જ સર્વલોકની સ્પર્શના કરે છે. ॥સૂ૦૧૧૩॥

હવે સૂત્રકાર કાળદ્વારની પ્રરૂપણા કરે છે—

"णेगमववहाराणं आणुपुव्वी" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(णेगमववहाराणं) નૈગમવ્યવહાર નયસંમત (आणुपुव्वीदव्वाइं) સમસ્ત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો (कालओ) કાળની અપેક્ષાએ (केवच्चिरं होई?) કેટલા સમય સુધી આનુપૂર્વી રૂપે રહે છે? એટલે કે આનુપૂર્વી દ્રવ્યોનો ક્ષેત્રમાં-ત્રણ આદિ પ્રદેશોમાં અવગાહિત થઈને રહેવાનો કાળ કેટલો છે? કારણ કે

पूर्व्यादिभावः पूर्वमुक्तः, तेषामानुपूर्व्यादिद्रव्याणामवगाहस्थितिकालः कियान् भवतीति प्रष्टुराशयः। उत्तरमाह-'एगं दव्वं' इत्यादि। एकं द्रव्यं प्रतीत्य कालतः= कालमाश्रित्य आनुपूर्वीद्रव्यं जघन्येन एकं समयं वर्तते। इह द्विप्रदेशावगाढस्य वा एक प्रदेशावगाढस्य वा द्रव्यस्य परिणामवैचित्र्यात् प्रदेशत्रयाद्यवगाहभवने आनुपूर्वीद्रव्यप्रदेशः संजातः। एकं समयं तद्भावेन स्थित्वा पुनः पूर्ववदेव द्विप्रदेशावगाढमेकप्रदेशावगाढं वा तद् द्रव्यं संजातम्, अतो जघन्यत आनुपूर्वीद्रव्याणामेकं समयमवस्थिति र्बोध्येति भावः। तथा-उत्कर्षेण असंख्येयं कालं भवति। अयं

गाह रूप से रहने का समय कितना है? क्यों कि यह पहिले कहा जा चुका है कि क्षेत्र में अवगाह पर्याय की प्रधानता रूप से विवक्षा है। और इसलिये त्र्यादि प्रदेशोंमें अवगाढ हुए द्रव्योंमें ही आनुपूर्वी आदि भाव का कथन क्षेत्रानुपूर्वी में किया गया है। अतः पूछने वाले ने यहां यह पूछा है कि वे आनुपूर्वी आदि द्रव्य त्र्यादि प्रदेश रूप क्षेत्रमें कितने समय तक आनुपूर्वी आदि रूप से अवगाहित रहते हैं?

उत्तर-(एगं) एक द्रव्य की (पडुच्च) अपेक्षा लेकर (जहन्नेणं) कम से कम (एगं समयं) एकसमय तक और (उक्कोसेणं) उत्कृष्ट-ज्यादा से ज्यादा (असंखिज्जं कालं) असंख्यात काल तक एक आनुपूर्वीद्रव्य क्षेत्र में अवगाहित रहता है। तात्पर्य कहने का यह है कि द्विप्रदेश में अवगाहित या एक प्रदेश में अवगाहित हुआ द्रव्य परिणमन की विचित्रता से जब प्रदेश आदि में अवगाहित होता है उस समय उसमें आ-

---

એ વાત તો પહેલાં જ પ્રકટ કરવામાં આવી ચુકી છે કે ક્ષેત્રમાં અવગાહ પર્યાયની પ્રધાન રૂપે વિવક્ષા છે. અને તેથી જ ત્રણ આદિ પ્રદેશોમાં અવગાહિત થયેલાં દ્રવ્યોમાં જ આનુપૂર્વી આદિ ભાવનું કથન ક્ષેત્રાનુપૂર્વીમાં કરવામાં આવ્યું છે. તેથી અહીં પ્રશ્નકર્તાનો એવો પ્રશ્ન છે કે તે આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્ય ત્રણ આદિ પ્રદેશરૂપ ક્ષેત્રમાં કેટલા સમય સુધી આનુપૂર્વી આદિ રૂપે અવગાહિત રહે છે?

ઉત્તર-(एगं दव्वं पडुच्च) એક દ્રવ્યની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે, તો (जहन्नेणं एगं समयं) એક આનુપૂર્વી દ્રવ્ય ઓછામાં ઓછા એક સમય સુધી અને (उक्कोसेणं असंखिज्जं कालं) વધારેમાં વધારે અસંખ્યાત કાળ સુધી ક્ષેત્રમાં અવગાહિત રહે છે. આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે-બે પ્રદેશોમાં અવગાહિત થયેલું અથવા એક પ્રદેશમાં અવગાહિત થયેલું દ્રવ્ય પરિણમનની વિચિત્રતાથી જ્યારે ત્રણ આદિ પ્રદેશોમાં અવગાહિત થાય છે,

भावः—यदा तदेव द्रव्यमसंख्येयं कालं तद्भावेन स्थित्वा पुनस्तथैव द्विप्रदेशावगाढमेकप्रदेशावगाढं वा जायते तदाऽऽनुपूर्वीद्रव्यस्य उत्कर्षतोऽसंख्येयं कालं स्थितिर्भवति। अनन्तं कालं तु स्थितिर्न भवति, एकप्रदेशावगाढस्यैकद्रव्यस्य उत्कर्षतोऽसंख्येयकालमेवावस्थानात्। तथा नानाद्रव्याणि प्रतीत्य आनुपूर्वीद्रव्याणि नियमात् सर्वाद्धा=सर्वकालमेव भवन्ति—वर्तन्ते इत्यर्थः त्र्यादिप्रदेशावगाढद्रव्य-

---

नुपूर्वी ऐसा व्यपदेश हो जाता है। सो वह द्रव्य एक समय तक आनुपूर्वी रूप से वहां अवगाहित रहकर बाद में पहिले की तरह ही या तो द्विप्रदेश में अवगाहित हो जाता है या एक प्रदेश में अवगाहित हो जाता है इसलिये आनुपूर्वी द्रव्यों की त्र्यादि प्रदेशों में रहने की स्थिति एक समय की कही गई है। इसी प्रकार से जब आनुपूर्वी द्रव्य—असंख्यात काल तक तद्भाव से स्थित रहकर पुनः द्विप्रदेशावगाही बन जाता है तब आनुपूर्वी द्रव्य की उत्कृष्ट रूप से असंख्यात काल की स्थिति होती है ऐसा जानना चाहिये। अनन्त काल तक वहां पर रहने की, उसकी स्थिति नहीं होती है। क्योंकि एक अवगाहमें एक द्रव्य असंख्यात काल तक ही ज्यादा से ज्यादा रह सकता है। तथा (णाणादव्वाइं पडुच्च) अनेक आनुपूर्वी द्रव्यों की अपेक्षा से आनुपूर्वी द्रव्यों का अवस्थान (णियमा सव्वद्धा) नियम से सार्वकालिक है। अर्थात्

ત્યારે તેમાં 'આનુપૂર્વી' પદનો વ્યપદેશ થાય છે-તેને આનુપૂર્વી રૂપે કહી શકાય છે. તે દ્રવ્ય ઓછામાં ઓછું એક સમય સુધી ત્યાં આનુપૂર્વી રૂપે અવગાહિત રહીને ત્યાર બાદ પહેલાની જેમ જ બે પ્રદેશોમાં કે એક પ્રદેશમાં અવગાહિત થઈ જાય છે. તેથી આનુપૂર્વી દ્રવ્યોની ત્રણ આદિ પ્રદેશોમાં રહેવાની જઘન્ય સ્થિતિ એક સમયની કહી છે. એજ પ્રમાણે આનુપૂર્વી દ્રવ્ય અસંખ્યાત કાળ સુધી આનુપૂર્વી દ્રવ્ય રૂપે અવગાહિત રહીને ત્યાર બાદ બે પ્રદેશાવગાહી કે એક પ્રદેશાવગાહી બની જાય છે. આ પ્રકારે આનુપૂર્વી દ્રવ્યની આનુપૂર્વી દ્રવ્ય રૂપે રહેવાની ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ અસંખ્યાત કાળની થઈ જાય છે. તે અનંત કાળ સુધી ત્યાં આનુપૂર્વી દ્રવ્ય રૂપે રહી શકતું નથી, કારણ કે એક દ્રવ્ય એક અવગાહમાં વધારેમાં વધારે અસંખ્યાત કાળ સુધી જ રહી શકે છે.

તથા (णाणादव्वाइं पडुच्च) અનેક આનુપૂર્વી દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે, તો આનુપૂર્વી દ્રવ્યોની આનુપૂર્વી દ્રવ્યો રૂપે રહેવાની સ્થિતિ (णियमा सव्वद्धा) નિયમથી સાર્વકાલિક કહી છે. એટલે કે

भेदानां सर्वदैवावस्थानात्। एवं द्वे अपि। अयं भावः-यदा एकं द्रव्यमेकस्मिन् प्रदेशेऽवगाढमेकं समयं स्थित्वा ततो द्व्यादिप्रदेशावगाढं भवति, तदा अनानुपूर्वी-द्रव्यस्य जघन्यत एकं समयं स्थितिः। यदा तु तदेवासंख्यातं कालं तद्रूपेण स्थित्वा ततो द्व्यादिप्रदेशावगाढं भवति, तदा-उत्कर्षतोऽसंख्येयोऽवगाहस्थितिकालः।

द्व्यादिप्रदेशों में अवगाढ आनुपूर्वीद्रव्यों के जो भेद हैं उनका अवस्थान सर्वदा ही रहता है। (एवं दोण्णिवि) इसी प्रकार से जब एक अनानुपूर्वी द्रव्य एक प्रदेश में एक समय तक अवगाढ रहकर बाद में द्व्यादिप्रदेशों में अवगाढ हो जाता है तब उस अनानुपूर्वी द्रव्य की जघन्य से एक समय की स्थिति मानी जाती है। तथा जब वही अनानुपूर्वीद्रव्य असंख्यात समय तक अनानुपूर्वी द्रव्यरूप से एक प्रदेश में अवगाढ रहकर बाद में द्व्यादि प्रदेशों में अवगाढ-स्थित-हो जाता है तब उत्कृष्ट से असंख्यात काल तक ही उस अनानुपूर्वीद्रव्यकी उस एक प्रदेश में रहने की स्थिति मानी जाती है, तथा अनेक अनानुपूर्वी द्रव्योंकी अपेक्षा अनानुपूर्वी द्रव्यों की स्थिति का काल एकप्रदेश में अवगाढ हुए अनानुपूर्वी द्रव्यके भेदों का सर्वदा ही सद्भाव होने से सार्वकालिक माना गया है। द्विप्रदेश में अवगाढ अवक्तव्यकद्रव्य का एक समय के बाद एक प्रदेश में अथवा त्र्यादि प्रदेशों में अवगाहित हो जाने पर जघन्य से अवगाह

ત્રણ આદિ પ્રદેશોમાં અવગાહિત જે આનુપૂર્વી દ્રવ્યોના ભેદો છે તેમનું અસ્તિત્વ સદા રહે છે જ (एवं दोण्णि वि) એજ પ્રમાણે એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યની જઘન્ય સ્થિતિ પણ એક સમયની કહી છે. એટલે કે એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય ઓછામાં ઓછું એક સમય સુધી એક પ્રદેશમાં અવગાહિત રહીને ત્યાર બાદ બે આદિ પ્રદેશોમાં અવગાહિત થઈ જાય છે. તેથી જ એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યની જઘન્ય સ્થિતિ એક સમયની કહી છે. પરન્તુ જ્યારે એજ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય અસંખ્યાત સમય સુધી એક પ્રદેશમાં અવગાહિત રહીને ત્યાર બાદ બે આદિ પ્રદેશોમાં અવગાઢ (સ્થિત) થઇ જાય છે, ત્યારે તે અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યની તે એક પ્રદેશમાં રહેવાની ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ અસંખ્યાત કાળની મનાય છે. જો અનેક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે, તો અનેક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોની સ્થિતિનો કાળ એક પ્રદેશમાં અવગાહિત થયેલા અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યના ભેદોનો સર્વદા સદ્ભાવ હોવાથી સાર્વકાલિક માનવામાં આવ્યો છે.

બે પ્રદેશોમાં અવગાઢ (સ્થિત) અવક્તવ્યક દ્રવ્ય એક સમય પછી એક પ્રદેશમાં અથવા ત્રણ આદિ પ્રદેશોમાં અવગાહિત થઈ જાય, તો જઘન્યની

नानाद्रव्याण्याश्रित्य तु सर्वकालम्, एकं प्रदेशावगाढद्रव्यभेदानां सर्वदैव सद्भावात्।

अवक्तव्यकद्रव्यस्य तु द्विप्रदेशावगाढस्य समयादूर्ध्वमेकस्मिन् प्रदेशे त्र्यादिषु वा प्रदेशेष्ववगाहप्रतिपत्तौ जघन्यत एकः समयोऽवगाहस्थितिकालः असंख्येयकालादूर्ध्वं द्विप्रदेशावगाहं परित्यजतस्तस्यावक्तव्यकद्रव्यस्य उत्कर्षतोऽसंख्येयोऽवगाहस्थितिकालः सिध्यति। नाना द्रव्याण्याश्रित्य तु सर्वकालं, द्विप्रदेशावगाढद्रव्यभेदानां सदैव सद्भावादिति। समानवक्तव्यत्वादाह–'एवं दोण्णि वि'–त्ति–एवं द्वे अपि बोध्ये ॥सू० ११४॥

स्थिति का काल एक समय है। तथा असंख्यात काल के बाद द्विप्रदेशों में अपने अवगाह को छोड़ने वाले उस अवक्तव्यकद्रव्य का उत्कृष्ट रूप से अवगाह स्थिति का काल असंख्यातकाल हैं। तथा नाना अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा द्विप्रदेश में अवगाढ अवक्तव्यक द्रव्य के भेदों का सर्वदा ही सद्भाव रहने के कारण उनका अवगाह–स्थितिका काल सर्वकाल माना गया है। इसप्रकार आनुपूर्वी द्रव्य की तरह इन दोनों द्रव्य की अवगाह–स्थिति का समय जानना चाहिये।

भावार्थ– इस सूत्र द्वारा सूत्रकार ने यह स्पष्ट किया है कि आनुपूर्वी आदि द्रव्य त्र्यादि प्रदेशरूप क्षेत्र में अपने २ रूप में कब तक स्थित रहते हैं। इन बातों का उत्तर उन्होंने एक द्रव्य और अनेक द्रव्य को आश्रित करके दिया है। जिसका निष्कर्षार्थ यह है कि आनुपूर्वी द्रव्य त्र्यादि प्रदेशों में एक समय तक स्थित रहकर यदि एक या द्विप्रदेश

અપેક્ષાએ તેની અવગાહસ્થિતિનો કાળ એક સમયનો કહ્યો છે. તથા અસંખ્યાત કાળ બાદ બે પ્રદેશોમાંના પોતાના અવગાહને છોડનારા તે અવક્તવ્યક દ્રવ્યની વધારેમાં વધારે અવગાહસ્થિતિ અસંખ્યાતકાળની કહી છે. તથા અનેક અવક્તવ્યક દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે, તો બે પ્રદેશોમાં અવગાઢ અવક્તવ્યક દ્રવ્યોના ભેદોનો સર્વદા સદ્ભાવ જ રહેવાને કારણે તેમની અવગાહસ્થિતિ સાર્વકાલિક માનવામાં આવી છે. આ પ્રકારે આ બન્ને દ્રવ્યોની અવગાહસ્થિતિનો કાળ આનુપૂર્વી દ્રવ્યોની અવગાહસ્થિતિ કાળ પ્રમાણે જ સમજવો જોઇએ.

ભાવાર્થ–આ સૂત્રમાં સૂત્રકારે એ વાત સ્પષ્ટ કરી છે કે આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્યો ત્રણ આદિ પ્રદેશોરૂપ ક્ષેત્રમાં પોતપોતાના મૂળ રૂપે કેટલા કાળ સુધી અસ્તિત્વમાં રહે છે? આ વાતનો ઉત્તર સૂત્રકારે એક દ્રવ્ય અને અનેક દ્રવ્યોને અનુલક્ષીને આપ્યો છે. આ સમસ્ત સૂત્રનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે–આનુપૂર્વી દ્રવ્ય ત્રણ આદિ પ્રદેશોમાં એક સમય સુધી આનુપૂર્વી દ્રવ્ય-

अथान्तरद्वारं प्रतिपादयितुमाह—

मूलम्—णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाणमंतरं कालओ केवच्चिरं होई? तिण्हंपि एगं दव्वं पडुच्च जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं, नाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं ॥सू० ११५॥

में अवगाहित हो जाता है तो वहां पर एक अनानुपूर्वी द्रव्य की अपेक्षा आनुपूर्वी द्रव्य का स्थिति काल माना जाता है। और यही एक आनुपूर्वीद्रव्य उन त्र्यादि प्रदेशों में असंख्यात काल तक अवगाहित रहकर बाद में एकप्रदेश या दो प्रदेश में अवगाहित हो जाता है तो इस स्थिति में इसका समय असंख्यात काल का माना जाता है। यह संख्यात काल का समय उत्कृष्ट है। और एक समय का काल जघन्य है, नाना आनुपूर्वी द्रव्यों की अपेक्षा से यह समय सर्वदा का है क्योंकि त्र्यादि में ऐसा कोई सा भी समय नहीं है कि जिसमें कोई न कोई आनुपूर्वी द्रव्य का भेद अवगाहित न हो। इसी प्रकार से अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों के विषय में भी ऐसा ही वक्तव्य निर्धारित कर लेना चाहिये ॥ सू० ११४ ॥

રૂપે સ્થિત રહીને જો એક પ્રદેશમાં અથવા બે પ્રદેશોમાં અવગાહિત થઈ જાય છે, તો એ પરિસ્થિતિમાં એક આનુપૂર્વી દ્રવ્યની અપેક્ષાએ આનુપૂર્વી દ્રવ્યનો સ્થિતિકાળ એક સમયનો ગણાય છે. પરન્તુ એજ આનુપૂર્વી દ્રવ્ય જો તે ત્રણ આદિ પ્રદેશોમાં અસંખ્યાત કાળ સુધી અવગાહિત રહીને ત્યાર બાદ એક પ્રદેશમાં અથવા બે પ્રદેશોમાં અવગાહિત થઈ જાય, તો એવી પરિસ્થિતિમાં તેનો સ્થિતિકાળ અસંખ્યાતકાળનો માનવામાં આવે છે આ અસંખ્યાતકાળના સમયને તેનો ઉત્કૃષ્ટ કાળ સમજવો અને એક સમયના પૂર્વોકત કાળને તેનો જઘન્ય કાળ સમજવો. અનેક આનુપૂર્વી દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો તે સમય સાર્વકાલિક છે, કારણ કે ત્રણ આદિ પ્રદેશોમાં એવો કોઈ પણ સમય નથી કે જેમાં કોઇને કોઈ આનુપૂર્વી દ્રવ્યનો ભેદ અવગાહિત ન હોય અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યોના એક અને બે પ્રદેશોમાં રહેવાના કાળના સંબંધમાં પણ આનુપૂર્વી દ્રવ્યોના કાળના જેવું જ કથન સમજવું ॥સૂ૦૧૧૪॥

छाया—नैगमव्यवहारयोः आनुपूर्वीद्रव्याणामन्तरं कालतः कियच्चिरं भवति? त्रयाणामपि एकं द्रव्यं प्रतीत्य जघन्येन एकं समयम्, उत्कर्षेण असंख्येयं कालम्। नानाद्रव्याणि प्रतीत्य नास्ति अन्तरम् ॥सू० ११५॥

टीका—'णेगमववहाराणं' इत्यादि। नैगमव्यवहारसम्मतानामानुपूर्वीद्रव्याणाम् अन्तरं कालतः कियच्चिरं भवति? इति शिष्य प्रश्नः। उत्तरमाह-'तिण्हं पि' इत्यादि। त्रयाणाम्=आनुपूर्व्यनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्याणाम् एकं समयं प्रतीत्य जघन्येन एकं समयमन्तरम्। उत्कर्षेण असंख्येयं कालमन्तरम्। नानाद्रव्याणि प्रतीत्य तु नास्ति अन्तरम्। प्रश्नकोटौ आनुपूर्वीद्रव्याण्याश्रित्य प्रश्नः क्रियते

अब सूत्रकार अन्तरद्वार का प्रतिपादन करते हैं—

"णेगमववहाराणं" इत्यादि।

शब्दार्थ—(णेगमववहाराणं) नैगम व्यवहारसंमत (आणुपुव्वीदव्वाणं) आनुपूर्वी द्रव्यों का (अंतरं) अन्तर-व्यवधान-(कालओ) कालकी अपेक्षा (कियच्चिरं होई) कितने समय का होता है?

उत्तर-(तिण्हं पि एगं दव्वं पडुच्च) आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी, और अवक्तव्यक इन द्रव्यों के एक समय को आश्रित करके (जहन्नेणं) जघन्य से (एक्कं समयं) एक समयका अंतर है (उक्कोसेणं) उत्कृष्ट से (असंखेज्जं कालं) असंख्यातकाल का अंतर है। (नाणा दव्वाइं पडुच्च) तथा नाना द्रव्यों की अपेक्षा करके (णत्थि अंतरं) कोई अन्तर नहीं है।

शंका-प्रश्न कोटि में आनुपूर्वी द्रव्यों को आश्रित करके प्रश्न किया गया

હવે સૂત્રકાર અન્તરદ્વારનું નિરૂપણ કરે છે—

"णेगमववहाराणं" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(णेगमववहाराणं) નૈગમવ્યવહાર નયસંમત (आणुपुव्वी दव्वाणं) આનુપૂર્વી દ્રવ્યોનું (अन्तरं) અન્તર (વ્યવધાન, આંતરો) (कालओ कियच्चिरं होई) કાળની અપેક્ષાએ કેટલા સમયનું હોય છે?

ઉત્તર-(तिण्हं पि एगं दव्वं पडुच्च) આનુપૂર્વી, અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક આ ત્રણેના એક એક દ્રવ્યની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો (जहन्नेणं एक्कं समयं) ઓછામાં ઓછું એક સમયનું અને (उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं) ઉત્કૃષ્ટથી અસંખ્યાત કાળનું અંતર હોય છે. (नाणादव्वाइं पडुच्च) અનેક દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે, તો (णत्थि अंतरं) કોઈ અન્તર નથી.

શંકા-પ્રશ્નમાં તો આનુપૂર્વી દ્રવ્યો વિષે પ્રશ્ન પૂછવામાં આવ્યો છે.

परन्तु त्रयाणामपि द्रव्याणां समानान्तरत्वेन प्रतिपाद्यतया उत्तरकोटौ 'तिण्हं पि' इति मोक्तम्। अस्य द्वारस्यायं भावः-यदा त्र्यादिप्रदेशावगाढं किमप्यानुपूर्वीद्रव्यम् एकस्माद् विवक्षितक्षेत्रात् समयमेकम् अन्यत् क्षेत्रमवगाह्य पुनरपि केवलम्, अन्यद्रव्यसंयुक्तं वा भूत्वा तमेव विवक्षितत्र्याद्याकाशप्रदेशम् अवगाहते, तदैकानुपूर्वी द्रव्यस्य समयमेकं जघन्यतोऽन्तरकालो बोध्यः। तथा—तदेव द्रव्यं यदाऽन्येषु क्षेत्रप्रदेशेषु असंख्येयं कालं परिभ्रम्य केवलम्, अन्यद्रव्यसंयुक्तं वा भूत्वा प्रथममेव क्षेत्रप्रदेशमवगाहते, तदा उत्कृष्टतोऽसंख्येयं कालमन्तरं भवति। न च पुन-

है, परन्तु उत्तरकोटि में "तिण्हं पि" तीनों द्रव्यों को क्यों पकड़ा गया है?

उत्तर—इसका कारण यह है कि इन तीनों द्रव्यों का अन्तर समान है। इस द्वार का भाव इस प्रकार से है-जिस समय कोई एक त्र्यादि प्रदेशावगाढ आनुपूर्वी द्रव्य किसी एक विवक्षित क्षेत्र से एक समय तक किसी दूसरे क्षेत्र में अवगाहित होकर पुनः अकेला या किसी दूसरे द्रव्य से संयुक्त होकर उसी विवक्षित त्र्यादि आकाशरूप प्रदेश में अवगाढ होता है तो उस समय उस एक आनुपूर्वी द्रव्य का अन्तर काल-विरहकाल जघन्य से एक समय का है-ऐसा जानना चाहिये। तथा जब वही द्रव्य अन्य क्षेत्र प्रदेशो में असंख्यातकाल तक घूमकर केवल या अन्य द्रव्यों से संयुक्त होकर पहिले के ही अवगाहित प्रथम क्षेत्र प्रदेश में अवगाहित होता है तब विरहकाल उत्कृष्ट से असंख्यात

પરન્તુ ઉત્તર રૂપે તો ત્રણે દ્રવ્યોની વાત કરવામાં આવી છે તેનું કારણ શું છે? ઉત્તર-તે ત્રણે દ્રવ્યોનું અન્તર સમાન હોવાથી ત્રણે દ્રવ્યોના અન્તરની વાત સાથે જ કરવામાં આવી છે.

ઉત્તર-આ અન્તરદ્વારનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે-આ સૂત્રમાં અન્તર એટલે વિરહકાળ ગ્રહણ કરવો જોઈએ કોઈ એક ત્રણ આદિ પ્રદેશાવગાઢ આનુપૂર્વી દ્રવ્ય કોઇ એક વિવક્ષિત (અમુક) ક્ષેત્રમાંથી નીકળીને એક સમય સુધી કોઇ બીજા ક્ષેત્રમાં અવગાહિત થઇને ફરીથી પોતે એકલું અથવા કોઈ અન્ય દ્રવ્યની સાથે સંયુક્ત થઇને એજ વિવક્ષિત ત્રણ આદિ આકાશ રૂપ પ્રદેશોમાં અવગાઢ થાય, તો તે પરિસ્થિતિમાં તે એક આનુપૂર્વી દ્રવ્યનું અંતર કાળની અપેક્ષાએ (વિરહકાળ) એક સમયનું ગણાય છે, આ અન્તરને કાળની અપેક્ષાએ જઘન્ય અન્તર સમજવું તથા એજ દ્રવ્ય અન્ય ક્ષેત્ર પ્રદેશોમાં અસંખ્યાતકાળ સુધી ફરીને પોતે એકલું અથવા અન્ય દ્રવ્યો સાથે સંયુક્ત થઇને પહેલાં જે ક્ષેત્રમાં અવગાહિત થયું હતું એજ ક્ષેત્રમાં અવગાહિત થઇ જાય, તો તે પરિસ્થિતિમાં તેનો ઉત્કૃષ્ટ વિરહકાળ અસંખ્યાતકાળનો ગણાય

द्रव्यानुपूर्व्यामिव अनन्तं कालमन्तरं भवति, यतो द्रव्यानुपूर्व्यां विवक्षितद्रव्यादन्ये द्रव्यविशेषा अनन्ता भवन्ति। तैश्च सह क्रमेण तस्य संयोगे पुनःस्वरूपप्राप्तौ अनन्तं कालमन्तरं भवति। अत्र तु विवक्षितावगाहक्षेत्रादन्यत् क्षेत्रमसंख्येयमेव। प्रतिस्थानं च अवगाहनामाश्रित्य असंख्येयकालं संयोगस्थितिः। ततश्चासंख्येये क्षेत्रे परिभ्रमद् द्रव्यं पुनरपि केवलम्, अन्यसंयुक्तं वाऽसंख्येयकालानन्तरं तस्मिन् विवक्षितप्रदेश एवावगाहनां कुर्यात्।

काल का माना जाता है। जिस प्रकार द्रव्यानुपूर्वी में विरहकाल माना गया है उस प्रकार से यहां विरहकाल अनन्त कालका नहीं माना गया है। क्यों कि द्रव्यानुपूर्वी में विवक्षित द्रव्य से दूसरे जो द्रव्य हैं वे अनन्त हैं। अतः उनके साथ क्रम क्रम से उसका संयोग होने पर फिर से अपने स्वरूप की प्राप्ति में उसे अनन्त काल लग जाता है। इस प्रकार पुनः स्वरूप प्राप्ति में अन्तर अनंत काल का सध जाता है। परन्तु यहां विवक्षित-अवगाह क्षेत्र से अन्य क्षेत्र असंख्यातप्रदेश प्रमाण ही है, अनंत प्रदेश प्रमाण नहीं। इसलिये प्रतिस्थान में, अवगाहना को आश्रित करके जो उसकी संयोग स्थिति है वह असंख्यातकाल की है। अतः विवक्षित प्रदेश से अन्य असंख्यात क्षेत्र में परिभ्रमण करता हुआ द्रव्य पुनः उसी विवक्षित प्रदेश में अन्य द्रव्य से संयुक्त होकर या एकाकी ही असंख्यातकाल के बाद अवगाहित हो जाता है।

છે. અહીં એ વાત ધ્યાનમાં રાખવા જેવી છે કે દ્રવ્યાનુપૂર્વીમાં ઉત્કૃષ્ટ (વધારેમાં વધારે) અનન્ત કાળનો વિરહકાળ કહ્યો છે, પરન્તુ ક્ષેત્રાનુપૂર્વીમાં ઉત્કૃષ્ટ વિરહકાળ અનન્તકાળનો કહેવાને બદલે અસંખ્યાતકાળનો કહ્યો છે. તેનું કારણ નીચે પ્રમાણે છે—

દ્રવ્યાનુપૂર્વીમાં વિવક્ષિત દ્રવ્ય સિવાયના જે અન્ય દ્રવ્યો છે તે અનંત છે. તેથી તેમની સાથે તેનો ક્રમશઃ સંયોગ થઈને ફરીથી પોતાના સ્વરૂપની પ્રાપ્તિ થવામાં તેને અનંતકાળનું અન્તર પડી જાય છે. આ પ્રકારે પુનઃ સ્વરૂપ પ્રાપ્તિમાં અનન્તકાળનું અન્તર પડવાની વાત સિદ્ધ થઈ જાય છે. પરન્તુ અહીં (ક્ષેત્રાનુપૂર્વીમાં) વિવક્ષિત અવગાહક્ષેત્ર સિવાયનાં અન્યક્ષેત્રો તો અસંખ્યાતપ્રદેશ પ્રમાણ જ છે-અનંત પ્રદેશપ્રમાણ નથી તેથી પ્રત્યેક સ્થાનમાં અવગાહનાને આશ્રિત કરીને જે તેની સંયોગસ્થિતિ છે, તે અસંખ્યાતકાળની જ છે તેથી કોઇ વિવક્ષિત પ્રદેશમાંથી નીકળીને અન્ય અસંખ્યાત ક્ષેત્રોમાં પરિભ્રમણ કરીને તે દ્રવ્ય પોતે એકલું અથવા અન્ય દ્રવ્યની સાથે સંયુક્ત થઇને તે વિવક્ષિત પ્રદેશમાં અસંખ્યાતકાળ વ્યતીત થયા બાદ જ અવગાહિત થઈ જાય છે.

नन्वु भवत्वसंख्येयः प्रदेशः, परन्तु तत्रैव प्रदेशे द्रव्यस्य पुनः पुनः परिभ्रमणेन अनन्तकालान्तर्यमपि प्राप्यते, तदेह कथमनन्तकालमन्तरं नोच्यते ? इति चेत्, उच्यते, विवक्षितप्रदेशादसंख्येयप्रदेशे क्षेत्रेऽसंख्येयकालमेव द्रव्यं परिभ्रमति, तदनन्तरं पुनर्विवक्षितक्षेत्र एव तद् द्रव्यं नियमादागच्छति, वस्तुस्थितिस्वाभाव्यादिति। अतो नास्ति कश्चिद्दोषः। यद्वा त्र्यादि प्रदेशलक्षणाद् विवक्षितक्षेत्रात् तदानुपूर्वीद्रव्यमन्यत्रगतं, ततस्तत् क्षेत्रम् असंख्येयकालादूर्ध्वं स्वभावादेव तेनैव आनुपूर्वीद्रव्येण, वर्णगन्धरसस्पर्शसंख्यादिधर्मैः सर्वथा तुल्येन अन्येन वा आनुपूर्वी-

---

शंका—अवगाहना क्षेत्र से अन्यक्षेत्र भले ही असंख्यातप्रदेशवाला हो-इस में कोई बाधा नहीं है। परन्तु उसी प्रदेशों में बार २ परिभ्रमण करने से द्रव्य को इस परिभ्रमण में अनन्त काल का भी अन्तर लग सकता है। अतः सूत्रकारने यहां अनन्तकाल का अन्तर क्यों नहीं कहा ?

उत्तर—विवक्षित प्रदेशरूप क्षेत्र से अन्य असंख्यात प्रदेशरूप क्षेत्र में द्रव्य का परिभ्रमण असंख्यातकाल तक ही होता है। इसके बाद वह द्रव्य नियम से फिर विवक्षित क्षेत्र में ही आजाता है। क्यों कि ऐसा ही वस्तुस्थिति का स्वभाव है। अथवा—जब त्र्यादि प्रदेशरूप विवक्षित क्षेत्र से वह आनुपूर्वी द्रव्य अन्य प्रदेश में चला जाता है' बाद में वह क्षेत्र स्वभाव से ही असंख्यातकाल के पश्चात् उसी आनुपूर्वी द्रव्य से या वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, एवं संख्या आदि धर्मों से

શંકા—અવગાહના ક્ષેત્ર સિવાયનું જે અન્ય ક્ષેત્ર છે તે ભલે અસંખ્યાત પ્રદેશોવાળું હોય તે વાત માનવામાં અમને કોઈ વાંધો નથી પરન્તુ એજ પ્રદેશોમાં વારંવાર પરિભ્રમણ કરવામાં તે દ્રવ્યને અનન્તકાળનું અન્તર પણ લાગી શકે છે. છતાં સૂત્રકારે અહીં અનન્તકાળના અન્તરને બદલે અસંખ્યાતકાળનું અન્તર શા માટે કહ્યું છે ?

ઉત્તર-વિવક્ષિત પ્રદેશરૂપ ક્ષેત્રમાંથી નીકળીને અન્ય અસંખ્યાત પ્રદેશ રૂપ ક્ષેત્રમાં દ્રવ્યનું પરિભ્રમણ અસંખ્યાત કાળ સુધી જ થાય છે. ત્યાર બાદ તે દ્રવ્ય નિયમથી જ તે વિવક્ષિત ક્ષેત્રમાં જ આવી જાય છે, કારણ કે તેનો એવો જ સ્વભાવ છે.

અથવા-ત્રણ આદિ પ્રદેશો રૂપ કોઈ વિવક્ષિત ક્ષેત્રમાંથી નીકળીને તે આનુપૂર્વી દ્રવ્ય અન્ય પ્રદેશમાં ચાલ્યું જાય છે, અને ત્યારબાદ તે ક્ષેત્ર સ્વભાવથી જ અસંખ્યાતકાળ બાદ એજ આનુપૂર્વી દ્રવ્ય આવે, અથવા વર્ણ,

द्रव्येण संयुज्यते इति नियमात् असंख्येयकालोत्तरं तथाविधानुपूर्वीद्रव्येण तत्क्षेत्रं संयुज्यते एवेति असंख्येयकालमेव अन्तरं भवतीति नास्ति कश्चिद् दोषः। तथा-नानाद्रव्याणि प्रतीत्य नास्ति अन्तरम्। त्र्यादिप्रदेशावगाढानि सर्वाण्यपि आनुपूर्वीद्रव्याणि युगपत् स्वभावं विहाय पुनस्तथैव जायन्ते इति तु न कदाचिदपि संभवति, असंख्येयानां तेषां सर्वदैव विद्यमानत्वादिति नानाद्रव्याश्रयपक्षे नास्ति अन्तरमिति भावः। एवमनानुपूर्व्यवक्तव्यक द्रव्यविषयेऽपि अन्तरभावना कर्त्तव्या। सू. ११५।

उसी के तुल्य किसी दूसरे आनुपूर्वी द्रव्य से संयुक्त हो जाता है। ऐसा नियम है। इस नियम के अनुसार असंख्यात काल का ही अन्तर होता है। नाना द्रव्यों की अपेक्षा से अन्तर नहीं है ऐसा जो कहा गया है उसका तात्पर्य यह है कि त्र्यादिप्रदेशों में अवगाढ हुए समस्त भी आनुपूर्वी द्रव्य एक साथ अपने स्वभाव को छोडकर पुनः उन्हीं त्र्यादिप्रदेशों में अवगाहित हो जाते हों ऐसी बात किसी भी समय में संभवित नहीं होती है। क्यों कि असंख्यात आनुपूर्वी द्रव्य सदा ही विद्यमान रहते हैं। इसलिये नाना द्रव्यों की अपेक्षा अन्तर नहीं है। इसी प्रकार से अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्य के विषय में भी अन्तर भावना जाननी चाहिये ॥सू० ११५॥

ગંધ, રસ, સ્પર્શ અને સંખ્યા આદિ ધર્મોની અપેક્ષાએ તેના જેવાં જ કોઇ બીજા આનુપૂર્વી દ્રવ્ય સાથે સંયુક્ત થઇ જાય છે એવો નિયમ છે. આ નિયમ પ્રમાણે અસંખ્યાતકાળનું અન્તર વ્યતીત થયા બાદ તે પ્રકારના આનુપૂર્વી દ્રવ્ય વડે તે ક્ષેત્ર અવશ્ય સંયુક્ત થઈ જાય છે. આ રીતે અસંખ્યાતકાળનું જ અન્તર પડવાની વાત સિદ્ધ થઈ જાય છે.

અનેક દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો કાળની અપેક્ષાએ કોઈ અન્તર જ પડતું નથી, આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે-ત્રણ આદિ પ્રદેશોમાં અવગાહિત થયેલાં સમસ્ત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો એક સાથે પોતાના સ્વભાવને છોડીને ફરી એજ ત્રણ આદિ પ્રદેશોમાં અવગાહિત થઈ જતાં હોય એવી વાત કોઇ પણ સમયે સંભવી શકતી નથી, કારણ કે અસંખ્યાત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો સદા વિદ્યમાન રહે જ છે. તે કારણે અનેક દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ અન્તરનો અભાવ કહ્યો છે. એજ પ્રમાણે અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યોના વિષયમાં પણ અન્તર (વિરહકાળ)નું કથન સમજી લેવું જોઇએ. ॥સૂ૦૧૧૫॥

इत्थमन्तरद्वारं व्याख्याय सम्प्रति भागद्वारं व्याख्यातुमाह—

मूलम्—णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं सेसदव्वाणं कइभागे होज्जा? तिण्णि वि जहा दव्वाणुपुव्वीए ॥सू०११६॥

छाया—नैगमव्यवहारयोः आनुपूर्वीद्रव्याणि शेषद्रव्याणां कियद् भागे भवन्ति? त्रीण्यपि यथा द्रव्यानुपूर्व्याम् ॥सू० ११६॥

टीका—'णेगमववहाराणं' इत्यादि—

नैगमव्यवहारसम्मतानि आनुपूर्वीद्रव्याणि शेषद्रव्याणाम्=अनानुपूर्व्यवक्तव्यक द्रव्याणां कतिभागे=कियति भागे भवन्ति? इति प्रश्नः। उत्तरयति—त्रीण्यपि यथा द्रव्यानुपूर्व्याम्। यथा द्रव्यानुपूर्व्यां भागद्वारे प्रतिपादितं तथैवात्रापि त्रयाणामपि द्रव्याणां विषये बोध्यम्। अयं भावः—आनुपूर्वीद्रव्याणि अनानुपूर्व्यवक्तव्यकरूपशेषद्रव्येभ्योऽसंख्येयैर्भागैरधिकानि। शेषद्रव्याणि तु तेषामसंख्येयभागे वर्तन्ते।

अब सूत्रकार भागद्वार का व्याख्यान करते हैं—

"णेगम ववहाराणं इत्यादि"

शब्दार्थ– (णेगमववहाराणं) नैगमव्यवहारनय संमत (आणुपुव्वीदव्वाइं) समस्त आनुपूर्वीद्रव्य (सेसदव्वाणं) शेष द्रव्यों के–अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों के (कइभागे) कितने भागों में हैं? (तिण्णिवि जहा दव्वाणुपुव्वीए)

उत्तर–जिस प्रकार द्रव्यानुपूर्वी में भागद्वार में प्रतिपादन किया है उसी प्रकार से यहां पर तीनों ही द्रव्यों के विषय में जानना चाहिये। इसका भाव यह है–अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा आनुपूर्वी द्रव्य उनके असंख्यात भागों से अधिक है। तथा शेष द्रव्य आनुपूर्वीद्रव्यों के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

હવે સૂત્રકાર ભાગદ્વારનું નિરૂપણ કરે છે—

(णेगमववहाराणं) નૈગમવ્યવહાર નયસંમત (आणुपुव्वीदव्वाइं) સમસ્ત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો (सेसदव्वाणं) બાકીનાં દ્રવ્યોના (અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યોના) (कइभागे) કેટલામાં ભાગપ્રમાણ હોય છે?

ઉત્તર–(तिण्णि वि जहा दव्वाणुपुव्वीए) દ્રવ્યાનુપૂર્વી ભાગ દ્વારમાં જેવું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે, એવું જ કથન અહીં પણ ત્રણે દ્રવ્યો વિષે સમજવું એટલે કે અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યો કરતાં આનુપૂર્વી દ્રવ્ય તેમના અસંખ્યાતમાં ભાગપ્રમાણ વધારે છે તથા બાકીના દ્રવ્યો આનુપૂર્વી દ્રવ્યો કરતાં અસંખ્યાતમાં ભાગપ્રમાણ છે.

ननु 'त्र्यादिप्रदेशावगाढानि द्रव्याणि आनुपूर्व्यः, एकैकप्रदेशावगाढानि द्रव्याणि अनानुपूर्व्यः, द्वि द्वि प्रदेशावगाढानि द्रव्याणि अवक्तव्यकानि' इति पूर्वं प्रतिपादितम्। तान्येतानि त्रिविधान्यपि द्रव्याणि सर्वलोकव्यापीनि। तेषां मध्ये युक्त्या विचारणायां कृतायामानुपूर्वीद्रव्याणां सर्वस्तोकता प्राप्यते। तथाहि-लोके किल असत्कल्पनया त्रिंशत्प्रदेशाः कल्प्यन्ते। तेषु त्रिंशत्प्रदेशेषु अनानुपूर्वीद्रव्याणि त्रिंशत्संख्यकानि भवन्ति एकैकप्रदेशावगाढत्वात्। अवक्तव्यकद्रव्याणि तु पञ्चदश, द्वि द्वि प्रदेशावगाढत्वात्। आनुपूर्वीद्रव्याणि तु यदि त्रिप्रदेशनिष्पन्नान्येव गण्यन्ते

शंका-यह पहिले ही कहा जा चुका है। कि त्र्यादिप्रदेशों में स्थित द्रव्य आनुपूर्वी हैं एक एक प्रदेशों में स्थित अनानुपूर्वी हैं, और दो दो प्रदेशों में स्थित द्रव्य अवक्तव्यक द्रव्य हैं। ये तीनों ही द्रव्य सर्वलोक व्यापी हैं। इनके बीच में, युक्ति से विचारणा होने पर आनुपूर्वी द्रव्य सबसे थोड़े आते हैं। इसका खुलासा इस प्रकार से है-"लोक असंख्यात प्रदेशी है-सो असंख्यात प्रदेश को असत्कल्पना से ३०, मानकर उनप्रदेशों के स्थानपर ३०,तीस रखलेना चाहिये-इन ३०, प्रदेशों में एक एक प्रदेश पर अनानुपूर्वी द्रव्य अवगाहित हैं इसलिये अनानुपूर्वीद्रव्य ३० हो जाते हैं। तथा अवक्तव्यक द्रव्य लोक के दो दो प्रदेशों में एक२ अवगाढ होने के कारण १५,आते हैं। तथा आनुपूर्वीद्रव्य लोक के ३-३ तीन २ प्रदेशों में अवगाढ हैं इसलिये उनकी संख्या १०

શંકા-આગળ એવું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે કે ત્રણ, ચાર આદિ પ્રદેશોમાં સ્થિત દ્રવ્યને આનુપૂર્વી કહે છે, એક એક પ્રદેશમાં સ્થિત દ્રવ્યને અનાનુપૂર્વી કહે છે અને બબ્બે પ્રદેશોમાં સ્થિત દ્રવ્યને અવકતવ્યક કહે છે. આ ત્રણે દ્રવ્ય સર્વલોક વ્યાપી છે જો બુદ્ધિપૂર્વક વિચાર કરવામાં આવે તો તે ત્રણે દ્રવ્યોમાંથી આનુપૂર્વી દ્રવ્યનું પ્રમાણ સૌથી ઓછું હોવું જોઈએ તેનો ખુલાસો આ પ્રમાણે છે-"લોક અસંખ્યાત પ્રદેશોવાળો છે." હવે અહીં અસત્કલ્પનાનો આધાર લઈને એવું માની લઈએ કે લોકના ૩૦ પ્રદેશો છે. આ ૩૦ પ્રદેશોમાંના પ્રત્યેક પ્રદેશ પર અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય અવગાહિત છે. તેથી ૩૦ પ્રદેશોમાં ૩૦ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોની અવગાહના માની લઈએ. લોકના બબ્બે પ્રદેશોમાં એક એક અવકતવ્યક દ્રવ્ય અવગાહિત હોવાથી ૩૦ પ્રદેશોમાં અવગાહિત અવક્તવ્ય દ્રવ્યોની સંખ્યા ૧૫ માની લઈએ તથા આનુપૂર્વી દ્રવ્ય લોકના ઓછામાં ઓછા ત્રણ ત્રણ પ્રદેશોમાં અવગાહિત હોવાથી ૩૦ પ્રદેશોમાં અવગાહિત આનુપૂર્વી દ્રવ્યોની

तानि दशसंख्यकान्येव भवन्ति त्रिप्रदेशावगाढत्वात्। अत एव तानि सर्वस्तोकान्येव वाच्यानि। इति चेदाह-यदि ये नवप्रदेशा एकस्मिन्न नुपूर्वीद्रव्ये उपयुक्ता भवन्ति ते यद्यस्मिन्नोपयुक्ता भवेयुस्तदैवं स्यात्, नचैवमस्ति, यतः त्रिभिःप्रदेशैः सम्पद्यमाने एकस्मिन् आनुपूर्वीद्रव्ये ये त्रयः प्रदेशा उपयुक्ता भवन्ति, त एव त्रयः प्रदेशा अन्यान्यरूपतया परिणतैरन्यैरप्यानुपूर्वीद्रव्यैरुपयुज्यन्ते। अत एकैकः प्रदेशोऽनेकेषां त्रिक संयोगानामानुपूर्वीद्रव्याणामाधारो भवति। एवं चतुष्कसंयोग-पञ्चकसंयोग यावदसंख्येयसंयोगानुपूर्वीद्रव्यविषयेऽपि बोध्यम्। ततश्च एकैको नभः

आती है। आनुपूर्वीद्रव्य तीनप्रदेशों से प्रारंभ होकर निष्पन्न होते है। इसलिये इन्हे त्रिप्रदेशावगाढ माना गया है। इस प्रकार ये अनानुपूर्वी और अवक्तव्यकद्रव्यों की अपेक्षा पूर्वोक्तरीति से विचार करनेपर कम ही आते हैं" यदि कोई इस प्रकार से कहे तो इसका उत्तर इस प्रकार से हैं कि जो आकाशप्रदेश एक आनुपूर्वीद्रव्य में उपयुक्त होते हैं, वे यदि अन्य आनुपूर्वी द्रव्य में उपयुक्त नहीं होते तो ऐसा कहना बन सकता था परन्तु ऐसा नहीं है। क्योंकि तीन प्रदेशों से जायमान एक आनुपूर्वीद्रव्य में जो तीनप्रदेश उपयुक्त होते हैं, वे ही तीन प्रदेश अन्य अन्य रूप से परिणत हुए अन्य आनुपूर्वी द्रव्यों द्वारा भी अपने २ उपयोग में लाये जाते हैं। इसलिये लोक का एक २ प्रदेश अनेक त्रिक संयोगी आनुपूर्वी द्रव्यों का आधार होता है। इसी प्रकार से चतुष्क संयोगी यावत् असंख्यात संयोगी आनुपूर्वी द्रव्यों के विषय में भी जानना

સંખ્યા ૧૦ માની લઈએ આનુપૂર્વી દ્રવ્ય ત્રણથી લઈને અસંખ્યાત પર્યન્તના પ્રદેશોમાંથી નિષ્પન્ન થાય છે. તેથી અહીં તેને ત્રિપ્રદેશાવગાઢ માનીને ઉપર પ્રમાણેની ગણતરી કરવામાં આવી છે. આ રીતે વિચાર કરવામાં આવે તો અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યો કરતાં તેનું પ્રમાણ ઓછું દેખાય છે.

આ પ્રકારની માન્યતા બરાબર નથી તે હવે સ્પષ્ટ કરવામાં આવે છે– જે આકાશપ્રદેશો એક આનુપૂર્વી દ્રવ્યમાં ઉપયુક્ત થાય છે તેઓ જો અન્ય આનુપૂર્વી દ્રવ્યમાં ઉપયુક્ત થતા ન હોત તો એવું બની શકત. પરન્તુ એવું તો બનતું નથી કારણ કે ત્રણ પ્રદેશોમાં અવગાહિત એક આનુપૂર્વી દ્રવ્યમાં જે ત્રણ પ્રદેશો ઉપયુક્ત થાય છે, એજ ત્રણ પ્રદેશો અન્ય અન્ય રૂપે પરિણત થયેલા અન્ય આનુપૂર્વી દ્રવ્યો દ્વારા પણ પોતપોતાના ઉપયોગમાં લેવામાં આવે છે. આ રીતે લોકનો પ્રત્યેક પ્રદેશ અનેક ત્રિકસંયોગી આનુપૂર્વી દ્રવ્યોનો આધાર થાય છે, એજ પ્રમાણે ચતુષ્ક સંયોગીથી લઇને

प्रदेशः अनेकेषु त्र्यादि संयोगात्मकेषु आनुपूर्वीद्रव्येषु उपयुज्यते। इत्थं च त्र्यादि संयोगात्मकानुपूर्वीद्रव्यरूपाधेयभेदेन प्रतिप्रदेशरूपाधारस्यापि भेदो विवक्षितो भवति। नहि नभःप्रदेशा येन स्वरूपेणैकस्मिन् आधेये उपयुक्ता भवन्ति, तेनैव स्वरूपेण आधेयान्तरेऽपि। तथा सत्येकस्मिन् आधारस्वरूपे तदवगाहनाद् आधेयानाम् एकता प्रसज्येत, घटे तत्स्वरूपवत्। ततश्च असंख्येयप्रदेशात्मके स्वस्थित्या व्यवस्थिते लोके यावन्तस्त्रिकसंयोगाद्यसंख्येयसंयोगपर्यन्ता संयोगा जायन्ते तावन्त्यानुपूर्वीद्रव्याणि भवन्ति। तानि च त्र्यादि संयोगानां बहुत्वाद् बहुसंख्य-

---

चाहिये। इस प्रकार एक २ आकाश प्रदेश अनेक त्र्यादि संयोगात्मक आनुपूर्वीद्रव्यों में उपयुक्त होता है। अतः त्र्यादि संयोगात्मक आनुपूर्वी द्रव्य रूप आधेय के भेद से, हर एक प्रदेश रूप आधार का भी भेद, विवक्षित हो जाता है। क्योंकि आकाश प्रदेश जिस स्वरूप से एक आधेय मे उपयुक्त होते हैं। उसी स्वरूप से वे दूसरे आधेय में उपयुक्त नहीं होते हैं। यदि ऐसी ही बात मानी जावे कि आकाश प्रदेश जिस स्वरूप से एक आधेय में उपयुक्त होते हैं उसी स्वरूप से वे अन्य आधेय मेंभी उपयुक्त होते हैं तो एक आधार स्वरूप में उनकी अवगाहना होने से उन अनेक आधेयों में घट में घट के स्वरूप की तरह एकता प्रसक्त होगी। इसलिये अपने स्वरूप की अपेक्षा से असंख्यात प्रदेशी लोक में जितने भी त्रिक संयोगादि रूप असंख्यात संयोग पर्यन्त तक के संयोग हैं उतनेही आनुपूर्वीद्रव्य हैं। ये आनुपूर्वीद्रव्य त्र्यादिसंयोगों

અસંખ્યાત સંયોગી પર્યન્તના આનુપૂર્વી દ્રવ્યોના વિષયમાં પણ સમજવું આ પ્રકારે પ્રત્યેક આકાશપ્રદેશ અનેક ત્રિ આદિ સંયોગાત્મક આનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાં ઉપયુક્ત થાય છે. તેથી ત્રિ આદિ સંયોગાત્મક આનુપૂર્વી દ્રવ્ય રૂપ આધેયના ભેદને લીધે દરેક પ્રદેશ રૂપ આધારનો પણ ભેદ પડી જાય છે. કારણ કે જે સ્વરૂપે આકાશપ્રદેશો એક આધેયમાં ઉપયુક્ત થાય છે, એજ સ્વરૂપે તેઓ બીજા આધેયમાં પણ ઉપયુક્ત થતા નથી જો એવી વાત માનવામાં આવે કે આકાશપ્રદેશો જે સ્વરૂપે એક આધેયમાં ઉપયુક્ત થાય છે એજ સ્વરૂપે તેઓ અન્ય આધેય વસ્તુમાં પણ ઉપયુક્ત થાય છે, તો એક આધારસ્વરૂપમાં તેમની અવગાહના હોવાથી તે અનેક આધેયોમાં પણ ઘટમાં ઘટના સ્વરૂપની જેમ એકતા માનવાનો પ્રસંગ પ્રાપ્ત થશે, તેથી પોતાના સ્વરૂપની અપેક્ષાએ અસંખ્યાત પ્રદેશી લોકમાં ત્રિકસંયોગથી લઈને અસંખ્યાત સંયોગ પર્યન્તના જેટલા સંયોગો છે એટલાં જ આનુપૂર્વી દ્રવ્યો છે ત્રિ

कानि वक्ष्यानि। अवक्तव्यकद्रव्याणि तु द्विकसंयोगानां स्तोकत्वात् स्तोकानि। अनानुपूर्वीद्रव्याण्यपि लोकप्रदेशसंख्यासमानसंख्यत्वात् स्तोकान्येव। अत्र सुखेनावबोधार्थं किंचिन्निर्दिश्यते। तथाहि–लोके किल पञ्चाकाशप्रदेशाः कल्प्यन्ते, तद्यथा— ∴ इति। अत्र अनानुपूर्वीद्रव्याणि तावत् पञ्चैव भवन्ति।

यथा– ∴ इति।

अवक्तव्यकद्रव्याणि तु अष्टौ, अष्टानामेव द्विकसंयोगानामिहाभ्युपगमात्।

यथा– इति।

आनुपूर्वीद्रव्याणि तु षोडश संभवन्ति। तत्र–दशत्रिकसंयोगाः, पञ्च चतुष्कसंयोगाः,

---

को बहुत होने के कारण बहुसंख्यक हैं। और जो अवक्तव्यक द्रव्य हैं वे द्विक् संयोगों के कम होने के कारण कम हैं। तथा जो अनानुपूर्वी द्रव्य हैं। वे भी लोक प्रदेशों की संख्या के बराबर होने के कारण–कम ही है। यह बात अच्छी तरह से समझ में आ जावे इसलिये यों समझना चाहिये–लोक में पांच आकाशप्रदेश कल्पित करो, और उसका आकार ∴ इस प्रकार से करो। प्रत्येक आकाश प्रदेश में एक अनानुपूर्वी द्रव्य है इसलिये इस हिसाब से पांच अनानुपूर्वी द्रव्य हैं। ऐसा मान लो तथा द्विप्रदेश संयोगी जो अवक्तव्यक द्रव्य हैं वे द्विकप्रदेश संयोगों को यहां आठ ही होनेसे आठ आते हैं। जैसे–संस्कृत टीका में आकार देकर कहा गया है। आनुपूर्वीद्रव्य १६, संभवित होते हैं–वे इसप्रकार से १०, त्रिक प्रदेश संयोग के १०, ५ चतुष्प्रदेशि संयोग के पांच, और

આદિ સંયોગો ઘણા હોવાને કારણે તે આનુપૂર્વી દ્રવ્યો બહુસંખ્યક છે, અને દ્વિકસંયોગો ઓછાં હોવાને કારણે અવક્તવ્યક દ્રવ્યો તેના કરતાં અલ્પ સંખ્યામાં છે. તથા જે અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો છે તેઓ પણ લોકના પ્રદેશોની સંખ્યાની બરાબર હોવાથી આનુપૂર્વી દ્રવ્યો કરતાં અલ્પ સંખ્યામાં છે. આ વાતને સ્પષ્ટ રીતે સમજવા માટે આ પ્રમાણેની કલ્પના કરો–ધારો કે આકાશપ્રદેશો પાંચ છે અને તેમનો આકાર આ પ્રમાણે છે– ∴ પ્રત્યેક પ્રદેશમાં એક એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો રહી શકે છે. તેથી પાંચ પ્રદેશોમાં પાંચ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો રહી શકે એમ માની લો.

તથા દ્વિપ્રદેશ સંયોગી જે અવક્તવ્યક દ્રવ્યો છે, તેમની સંખ્યા અહીં આઠની આવે છે, કારણ કે અહીં દ્વિકપ્રદેશ સંયોગો આઠ આવે છે તે વાત ટીકામાં આપવામાં આવેલ આકૃતિ દ્વારા સ્પષ્ટ કરવામાં આવી છે.

આ પાંચ પ્રદેશોમાં આનુપૂર્વી દ્રવ્યો ૧૬ સંભવી શકે છે. તેનો હિસાબ આ પ્રમાણે સમજવો–ત્રિકપ્રદેશ સંયોગના ૧૦, ચતુષ્પ્રદેશ સંયોગના

पञ्चकसंयोगस्त्वेक इति षोडश। तत्र दशत्रिकसंयोगा एवं बोध्याः-षट् तावत्त्रिक-संयोगा मध्यव्यवस्थापितेन सह लभ्यन्ते, यथा— इति।

तथा मध्यनिरपेक्षैर्दिग्व्यवस्थापितैश्चतुर्भिश्चत्वारस्त्रिकसंयोगाः, यथा- 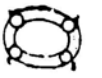 इति। इत्थं दश त्रिकसंयोगा भवन्ति।

पञ्च च चतुष्कसंयोगा एवं विज्ञेयाः-चत्वारस्तावन्मध्यव्यवस्थापितेन सह भवन्ति, यथा- इति।

एकस्तु चतुष्कसंयोगो मध्यनिरपेक्षैर्दिग्व्यवस्थापितैश्चतुर्भिः, यथा- इति। इत्थं पञ्च चतुष्कसंयोगा भवन्ति।

एक पांच प्रदेश संयोगका एक। इनमें त्रिकप्रदेश संयोग जो दस हैं-वे इस प्रकार हैं-मध्य में जो प्रदेश व्यवस्थापित है, उसके साथ त्रिकप्रदेश संयोग ६ आते हैं-जैसे टीका में आकार देकर कहे गये हैं-तथा मध्य प्रदेश निरपेक्ष जो दिग्व्यवस्थापित चार प्रदेश हैं उनके साथ त्रिकप्रदेश संयोग ४ चार आते हैं जो टीका में दिये हुए चित्र द्वारा स्पष्ट किये गये हैं इस प्रकार से तीन २ प्रदेशों के संयोग दश होते हैं-ये तीन तीन प्रदेशों के संयोग ही १० अनानुपूर्वीद्रव्यों के आधार क्षेत्र हैं। तथा चार२ प्रदेशों के संयोग ५ इसप्रकार हैं-मध्य में जो प्रदेश व्यवस्थापित है उसके साथ चतुष्क संयोगचार होते हैं, ये चतुष्क संयोग ही चार आनुपूर्वी द्रव्यों के आधाररूप क्षेत्र हैं। जो टीका में दिये हुवे चित्र द्वारा कहे गये हैं। तथा मध्य प्रदेश निरपेक्ष जो चार दिग्व्यवस्थापित चारप्रदेश हैं उनसे एक चतुष्कसंयोगरूप आधार चारप्रदेशी आनुपूर्वी द्रव्य निष्पन्न होता है। जो संस्कृत टीका में दिया हुवा चित्रद्वारा स्पष्ट

५, अने पांचप्रदेश संयोगनुं १, आ रीते कुल ११ आनुपूर्वी द्रव्यो थाय छे. तेमना जे १० त्रिकप्रदेश संयोग कह्या छे ते नीचे प्रमाणे समजवा-मध्यमां जे प्रदेश व्यवस्थापित (रहेलो) छे, तेनी साथे त्रिकप्रदेश संयोग ६ आवे छे. एज वात टीकामां आपवामां आवेल आकृतिद्वारा समजावामां आवी छे. मध्यप्रदेश सिवायना जे चार प्रदेशो चार दिशामां आवेला छे. तेमनी साथे त्रिकप्रदेशसंयोग चार आवे छे तेमने पण आ आकृति द्वारा स्पष्ट करवामां आवेल छे. आ प्रकारे आ त्रण त्रण प्रदेशोना संयोग १० थाय छे आ त्रण त्रण प्रदेशोना संयोग ज १० आनुपूर्वी द्रव्योना आधारक्षेत्रो छे. तथा चार चार प्रदेशोना पांच संयोग आ प्रमाणे थाय छे-मध्यमां जे प्रदेश व्यवस्थापित छे तेनी साथे चतुष्कसंयोग चार थाय छे. ते चतुष्कसंयोग ज चार आनुपूर्वी द्रव्योनां आधाररूप क्षेत्रो छे. तेमने संस्कृत टीकामां आपवामां आवेल आकृति द्वारा बताववामां आवेल छे तथा मध्यप्रदेश सिवायना चार दिशामां व्यवस्थापित जे चार प्रदेशो छे तेमना द्वारा चार

पञ्चकसंयोगस्तु सुगम एव यथा– इति

इत्थं पञ्चप्रदेशप्रस्तारेऽप्यानुपूर्वीद्रव्याणाम् अनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्यापेक्षया बाहुल्यं दृश्यते। ततः स्वस्थित्या व्यवस्थितेऽसंख्येयप्रदेशात्मके लोके आनुपूर्वीद्रव्याणाम् अनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्यापेक्षयाऽसंख्यातगुणत्वं स्पष्टमेवेति ॥सू० ११६॥

किया गया है। इस प्रकार चतुष्कसंयोग रूप आधार क्षेत्र के आनुपूर्वी द्रव्य पांच होते हैं। तथा इन पांच प्रदेशों के संयोग से जायमान एक पांच प्रदेशी आनुपूर्वी द्रव्य का समझना सुगम है। जो संस्कृत टीका में दिया हुवा चित्र में समझाया गया है। इस प्रकार से पांच प्रदेशों के प्रस्तार में भी इन आनुपूर्वी द्रव्यों का अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा बाहुल्य देखा जाता है। तब इससे अपनी स्थिति के अनुसार सुव्यवस्थित इस असंख्यात प्रदेशवाले लोक में आनुपूर्वी द्रव्यों में अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा से असंख्यातगुणता स्पष्ट ही है।

भावार्थ–सूत्रकारने इस सूत्रद्वारा यह समझाया है कि नैगमव्यवहार नयसंमत आनुपूर्वीद्रव्य अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा असंख्यात गुणे अधिक हैं और शेष द्रव्य आनुपूर्वीद्रव्यों के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। इस बात को सुनते ही किसी शंकाकार ने इस-

---

પ્રદેશી આનુપૂર્વી દ્રવ્યના એક ચતુષ્કસંયોગ રૂપ આધાર નિષ્પન્ન થાય છે, તેને પણ સંસ્કૃત ટીકામાં આપવામાં આવેલ આકૃતિ દ્વારા સ્પષ્ટ કરવામાં આવેલ છે. આ પ્રકારે ચતુષ્કસંયોગ રૂપ આધાર ક્ષેત્રના આનુપૂર્વી દ્રવ્ય પાંચ થાય છે. તથા તે પાંચ પ્રદેશના સંયોગથી નિષ્પન્ન પાંચપ્રદેશી એક આનુપૂર્વી દ્રવ્યને સમજવું સુગમ છે. ટીકામાં આપવામાં આવેલ આકૃતિમાં તેને સમજાવવામાં આવેલ છે. આ પ્રકારે પાંચ પ્રદેશોના પ્રસ્તારમાં પણ અનાનુપૂર્વી અને અવકતવ્યક દ્રવ્યો કરતાં આનુપૂર્વી દ્રવ્યોની અધિકતા જોવામાં આવે છે, તો પછી અસંખ્યાત પ્રદેશોવાળા લોકમાં અનાનુપૂર્વી અને અવકતવ્યક દ્રવ્યો કરતાં આનુપૂર્વી દ્રવ્યો અસંખ્યાત ગણાં હોય એમાં નવાઈ પામવા જેવું શું છે?

ભાવાર્થ–આ સૂત્ર દ્વારા સૂત્રકારે એ વાતનું પ્રતિપાદન કર્યું છે કે નૈગમવ્યવહાર નયસંમત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો અનાનુપૂર્વી અને અવકતવ્યક દ્રવ્યો કરતાં અનેક ગણાં વધારે છે. અને આનુપૂર્વી દ્રવ્ય સિવાયના દ્રવ્યો આનુપૂર્વી દ્રવ્યો કરતાં અસંખ્યાતમાં ભાગપ્રમાણ છે. સૂત્રકારના આ કથન સામે કોઈ વ્યક્તિ એવી શંકા પ્રકટ કરે કે આપનું આ કથન બુદ્ધિગમ્ય

पर शंका की–कि आपका यह कथन युक्ति से संगत नहीं बैठता है–कारण असंख्यात प्रदेशी इस लोक में सबसे अधिक संख्या आनुपूर्वी द्रव्यों की ही आती है बाद में इनसे कम अवक्तव्यक द्रव्यों की और इनसे भी कम आनुपूर्वीद्रव्यों की। इस बात को हम इसप्रकार से समझा सकते हैं। लोक असंख्यातप्रदेशी माना गया है–सो लोकके असंख्यात प्रदेशों के स्थान में ३० संख्या रख लो–ये ३० ही असंख्यात प्रदेश हैं। अनानुपूर्वीद्रव्य लोकाकाश के एक २ प्रदेश रूप आधार पर अवगाहित हैं इस अपेक्षा से अनानुपूर्वी द्रव्यों की संख्या ३० आती है। और अवक्तव्यक द्रव्य जो द्विप्रदेशी होता है, वह दो दो प्रदेशों में अवगाहित होता है–इसलिये उसकी संख्या १५ आती है। तथा आनुपूर्वी द्रव्य त्रिप्रदेशावगाढ होता है। इसलिये इनकी संख्या दश आती है। तब सिद्धान्तकार ने इस शंका का उत्तर बहुत सुन्दररीति से किया है–उन्होंने उसे समझाया कि जैसा तुम कह रहे हो वैसा नहीं है। क्योंकि आकाशका एक२ प्रदेश भिन्न२ रूपसे परिणत अनेक त्र्यणुकादि रूप अनानुपूर्वी द्रव्यों का आधारस्थल है एक आनुपूर्वी द्रव्य में आकाश

લાગતું નથી પોતાની શંકાના સમર્થનમાં તે એવી દલીલ કરે કે–અસંખ્યાત પ્રદેશોવાળા આ લોકમાં અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોની સંખ્યા સૌથી વધારે છે, અવક્તવ્યક દ્રવ્યોની સંખ્યા અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો કરતાં ઓછી છે અને આનુપૂર્વી દ્રવ્યોની સંખ્યા તો અવક્તવ્યક દ્રવ્યો કરતાં પણ ઓછી છે. નીચેની કલ્પના દ્વારા તે પોતાની આ માન્યતાનું સમર્થન કરે છે. લોકના અસંખ્યાત પ્રદેશો માનવામાં આવ્યા છે. ધારો કે લોકના ૩૦ પ્રદેશો છે અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય લોકાકાશના એક એક પ્રદેશ રૂપ આધાર પર અવગાહિત છે. તેથી ૩૦ પ્રદેશોમાં અવગાહિત અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોની સંખ્યા ૩૦ ત્રીસ થાય છે અવક્તવ્યક દ્રવ્ય કે જે બેપ્રદેશી હોય છે તે લોકાકાશના બબ્બે પ્રદેશોમાં અવગાહિત હોય છે. તેથી તેમની સંખ્યા ૧૫ ની થાય છે. તથા આનુપૂર્વી દ્રવ્ય લોકાકાશના ત્રણ ત્રણ પ્રદેશોમાં અવગાહિત હોવાથી ૩૦ પ્રદેશોમાં અવગાઢ આનુપૂર્વી દ્રવ્યોની સંખ્યા બાકીના બન્ને દ્રવ્યો કરતાં ઓછી થવા છતાં આપ શા કારણે એવું કહો છો કે આનુપૂર્વી દ્રવ્યો બાકીના બન્ને દ્રવ્યો કરતાં અસંખ્યાત ગણાં હોય છે?

આ શંકાનું અહીં નીચે પ્રમાણે સમાધાન કરવામાં આવ્યું છે–તમે કહો છો એવી વાત નથી, કારણ કે આકાશનો એક એક પ્રદેશ ભિન્ન ભિન્ન રૂપે પરિણત થયેલ અનેક ત્રણ આદિ અણુરૂપ આનુપૂર્વી દ્રવ્યોનું આધારસ્થાન છે. એક આનુપૂર્વી દ્રવ્યમાં આકાશના જે ત્રણ પ્રદેશો ઉપયુક્ત થાય

के जो तीन प्रदेश उपयुक्त होते हैं वे यदि अन्य अनानुपूर्वी द्रव्यों के उपयोग में न आते, तो यह बात बन भी जाती कि आनुपूर्वी द्रव्य शेष द्रव्यों की अपेक्षा बहुत कम हैं, परन्तु जो आकाश के त्र्यादि प्रदेश एक आनुपूर्वी द्रव्य में काम आते हैं, वे ही अन्य आनुपूर्वी द्रव्यों के भी उपयोग में आते हैं। जो आकाश के ३ प्रदेश जिस स्वभाव से त्र्यणुक रूप एक आनुपूर्वी द्रव्य के उपयोग में आते हैं। वे तीन प्रदेश उसी स्वभाव से त्र्यणुकादि एवं चतुष्प्रदेशिक आदि अनेक आनुपूर्वी द्रव्यों के उपयोग में नहीं आते हैं। उनके स्वभाव में भिन्नता आजाती है। इसलिये आकाश को स्वभाव की भिन्नता के कारण असंख्यात प्रदेशी माना गया है। त्र्यणुकादिरूप आनुपूर्वीद्रव्य भी तो एक २ की ही संख्या में नहीं हैं किन्तु एक २ आनुपूर्वी द्रव्य अनेक हैं। तभी तो ये समस्त आनुपूर्वियां लोकव्यापी हैं। अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्य भी इसी प्रकार से हैं। इनमें आनुपूर्वी द्रव्य ही इन दो द्रव्यों की अपेक्षा असंख्यात गुणा है। क्योंकि अनानुपूर्वी द्रव्य के लिये एकप्रदेश रूप आधार की और अवक्तव्यक द्रव्य के लिये दो प्रदेशरूप आधार की ही

છે, તે ત્રણ પ્રદેશો બે અન્ય આનુપૂર્વી દ્રવ્યોના ઉપયોગમાં આવી શકતા ન હોત તો એવી વાત સંભવી શકત કે આનુપૂર્વી દ્રવ્યો બાકીના બન્ને દ્રવ્યો કરતાં બહુ જ અલ્પ સંખ્યામાં છે. પરન્તુ પરિસ્થિતિ એવી છે કે આકાશના જે ત્રણ આદિ પ્રદેશો એક આનુપૂર્વી દ્રવ્યના કામમાં આવે છે, એજ પ્રદેશો અન્ય આનુપૂર્વી દ્રવ્યોના ઉપયોગમાં પણ આવે છે. જે આકાશના ત્રણ પ્રદેશો જે સ્વભાવને લીધે ત્રણ અણુવાળી એક આનુપૂર્વીના ઉપયોગમાં આવ્યા છે, તે ત્રણ પ્રદેશો એજ સ્વભાવથી ત્રણ અણુવાળાં, અને ચાર પ્રદેશવાળાં આદિ અનેક આનુપૂર્વી દ્રવ્યોના ઉપયોગમાં આવતાં નથી. તેમના સ્વભાવમાં આધેયની ભિન્નતાને લીધે ભિન્નતા આવી જાય છે. તેથી આકાશને સ્વભાવની ભિન્નતાને કારણે અસંખ્યાત પ્રદેશી માનવામાં આવેલ છે. ત્રિ અણુક આદિ રૂપ આનુપૂર્વી દ્રવ્યો પણ એક એકની સંખ્યામાં જ નથી, પરન્તુ પ્રત્યેક આનુપૂર્વી દ્રવ્ય અનેક હોય છે.–ત્રિ અણુક આદિ પ્રત્યેક આનુપૂર્વી અનેક હોય છે–અને તેથી જ તે સમસ્ત આનુપૂર્વીઓ લોકવ્યાપી છે. અનાનુપૂર્વી અને અવકતવ્યક દ્રવ્યો પણ લોકવ્યાપી છે આ ત્રણેમાંથી આનુપૂર્વી દ્રવ્ય જ તે બન્ને દ્રવ્યો કરતાં અસંખ્યાત ગણું છે, કારણ કે અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યને માટે એક પ્રદેશ રૂપ આધારની અને અવકતવ્યક દ્રવ્યને

आवश्यकता पड़ती है, तब कि आनुपूर्वीद्रव्य के लिये एक दो तीन आदि समस्त रूप आधार की अपेक्षा पड़ती है- तथा एक २ प्रदेश में भी अनेक आनुपूर्वी द्रव्य अवगाहित हैं। तब कि अनेक अनानुपूर्वी और अनेक अवक्तव्यकद्रव्य एक प्रदेश और दो दो प्रदेशों में ही अवगाहित हैं। इसी विषय को लोक में पांचप्रदेशों की कल्पना कर निर्णय किया गया है। इनमें चारों दिशाओं में चार प्रदेश स्थापित- करना चाहिये और एक प्रदेश बीच में। अनानुपूर्वीद्रव्य जैसा की कहा गया है, कि एक प्रदेशावगाही होता है इसलिये एक२ प्रदेश में एक एक रहने के कारण पांचप्रदेश रूप आधार संबन्धी वे ५ ही ज्ञात होते हैं। न्यून और अधिक नहीं। इन पांच प्रदेशों में जब दो२ प्रदेशों का संयोग-किया जाता है तो वे द्विक संयोग यहां आठ बनते हैं-जैसे टीकामें दिया हुवा चित्र में प्रदर्शित किये गये हैं। यहां जो एक दो आदि अंक-लिखे हुए हैं वे दो दो प्रदेशों के संयोग के प्रदर्शक हैं। इस प्रकार ये दो दो प्रदेशों के संयोगरूप जो आधार हैं वे उतने ही अवक्तव्यक द्रव्यों के आधार हैं।

માટે બે પ્રદેશ રૂપ આધારની આવશ્યકતા પડે છે, પરન્તુ આનુપૂર્વી દ્રવ્યને માટે એક, બે, ત્રણ આદિ સમસ્ત પ્રદેશરૂપ આધારની આવશ્યકતા રહે છે. તથા એક એક પ્રદેશમાં પણ અનેક આનુપૂર્વી દ્રવ્યો અવગાહિત છે, જ્યારે અનેક અનાનુપૂર્વી અને અનેક અવક્તવ્યક દ્રવ્યો તો અનુક્રમે એક એક પ્રદેશમાં અને બબ્બે પ્રદેશોમાં જ અવગાહિત છે. હવે સૂત્રકાર લોકના પાંચ પ્રદેશો હોવાની કલ્પના કરીને આ વિષયનું સ્પષ્ટીકરણ કરે છે-ચાર દિશાઓમાં ચાર પ્રદેશની અને વચ્ચે એક પ્રદેશની સ્થાપના કરવી જોઇએ. તેની આકૃતિ આ પ્રમાણે બનશે-

અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય એક પ્રદેશાવગાહી હોય છે, તેથી એક એક પ્રદેશમાં એક એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય હોવાને કારણે પાંચ પ્રદેશ રૂપ આધારમાં પાંચ જ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો સંભવી શકે છે. તેથી ઓછાં કે વધારે સંભવી શકતાં નથી. આ પાંચ પ્રદેશોમાં જો બબ્બે પ્રદેશોનો સંયોગ કરવામાં આવે, તો એવાં દ્વિકસંયોગ અહીં આઠ બને છે તે ઉપરની સંસ્કૃત ટીકામાં આપવામાં આવેલ આકૃતિમાં બતાવવામાં આવેલ છે-

આ આકૃતિમાં જે એક, બે આદિ અંકો લખ્યા છે, તે બબ્બે પ્રદેશોના સંયોગના પ્રદર્શક છે. આ રીતે તે બબ્બે પ્રદેશોના સંયોગ રૂપ જે આધાર છે, તેઓ એટલાં જ અવક્તવ્યક દ્રવ્યોના આધાર રૂપ છે આ રીતે

इत्थं भागद्वारमभिधाय सम्प्रति भावद्वारमाह-

मूलम्-णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कयरंमि भावे होज्जा? णियमा साइपारिणामिए भावे होज्जा। एवं दोण्णि वि ॥सू० ११७॥

छाया—नैगमव्यवहारयोरानुपूर्वीद्रव्याणि कतरस्मिन् भावे भवन्ति? नियमात् सादिपारिणामिके भावे भवन्ति। एवं द्वयोरपि ॥सू० ११७॥

इस प्रकार से यहां द्विकप्रदेश संयोगरूप आधारवर्ती ८ अवक्तव्यकद्रव्य हैं। यह बोध हो जाता है। क्योंकि जितने आधार हैं उतने ही वहां अनानुपूर्वी आदि द्रव्य हैं ऐसा यहां कहा गया है। आनुपूर्वी द्रव्य इन पांच प्रदेशों के संयोग रूप आधार १६ होने से १६ होते हैं। चतुष्क-संयोग पांच और पांच प्रदेशों का एक संयोग यहां होता है। इन चतुष्क (चार) संयोग रूप पांच आधारों में पांच आनुपूर्वी द्रव्य और पांच प्रदेशों के संयोगरूप एक आधार में एक पांच प्रदेशवाला आनुपूर्वी द्रव्य रहता है। पांच प्रदेशों में दो दो प्रदेशों के संयोग ८, तीन तीन प्रदेशों के संयोग १०, चार चार प्रदेशों के संयोग-से पांच बनते हैं। औरपांच प्रदेशोंका संयोग एक ये सब द्विकादि संयोगरूप आधार कैसे बने यह सब संस्कृत टीकामें दिया हुवा चित्रोंद्वारा स्पष्ट किया गया है ॥सू. ११६॥

અહીં દ્વિકપ્રદેશ સંયોગરૂપ આધારવર્તી આઠ અવક્તવ્યક દ્રવ્યો હોવાનો બોધ થઈ જાય છે, કારણ કે જેટલા આધાર છે એટલાં જ ત્યાં આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્યો છે એવું અહીં કહેવામાં આવ્યું છે.

આ પાંચ પ્રદેશોના સંયોગરૂપ આધાર ૧૬ હોવાથી આનુપૂર્વી દ્રવ્ય અહીં ૧૬ હોય છે. ચતુષ્કસંયોગ પાંચ અને પાંચ પ્રદેશોનો એક સંયોગ અહીં થાય છે. આ ચતુષ્કસંયોગ રૂપ પાંચ આધારોમાં પાંચ આનુપૂર્વી દ્રવ્યો અને પાંચ પ્રદેશોના સંયોગ રૂપ એક આધારમાં પાંચ પ્રદેશવાળું એક આનુપૂર્વી દ્રવ્ય રહે છે. પાંચ પ્રદેશોમાં બબ્બે પ્રદેશોના સંયોગ આઠ, ત્રણ ત્રણ પ્રદેશોના સંયોગ ૧૦, ચાર ચાર પ્રદેશોના સંયોગ પાંચ અને પાંચ પ્રદેશોનો સંયોગ એક બને છે, આ બધાં દ્વિકાદિ સંયોગ રૂપ આધાર કેવી રીતે બને છે, તે બધું સૂત્રાર્થમાં આકૃતિઓ દ્વારા સ્પષ્ટ કરવામાં આવ્યું છે. ॥સૂ૦૧૧૬॥

टीका—' णेगमववहाराणं ' इत्यादि—

नैगमव्यवहारसम्मतानि आनुपूर्वीद्रव्याणि कतरस्मिन् भावे भवन्ति ? इति शिष्य प्रश्नः। उत्तरयति–आनुपूर्वीद्रव्याणि नियमात् सादिपारिणामिके भावे भवन्ति। एवं द्वे अपि=अनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्याण्यपि सादिपारिणामिके भावे भवन्तीति। अयं भावः–त्र्यादिप्रदेशावगाहपरिणामस्य एकप्रदेशावगाहपरिणामस्य द्विप्रदेशावगाहपरिणामस्य चेति त्रयाणामपि द्रव्याणां सादिपारिणामिकत्वात् सादिपारिणामिकभाववर्तित्वं बोध्यमिति ॥सू० ११७॥

अब सूत्रकार भावद्वार का कथन करते हैं–

" णेगमववहाणं " इत्यादि ।

शब्दार्थ–(णेगमववहाराणं आणुपुव्वी दव्वाइं) नैगम व्यवहारनय-संमत समस्त आनुपूर्वी द्रव्य–(कयरंमि भावे होज्जा) कौन से भाव में वर्तते हैं ।

उत्तर– (णियमा) नैगमव्यहारनयसंमत समस्त आनुपूर्वी द्रव्य नियम से (साइपारिणामिए भावे होज्जा) सादि पारिणामिक भाव में–वर्तते हैं । (एवं दोण्णिवि) इसी प्रकार से अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों के विषय में भी–जानना चाहिये । तात्पर्य इसका यह है कि त्र्यादि प्रदेशों में आनुपूर्वी द्रव्यों का अवगाह, परिणाम एक प्रदेश अनानुपूर्वी द्रव्यों का अवगाह परिणाम और अवक्तव्यक द्रव्यों का द्विप्रदेशों में अवगाह परिणाम सादि है । इसलिये–ये सब द्रव्य सादि पारिणामिक भाववर्ती– हैं । ॥ सू०११७ ॥

હવે ભાવદ્વારનું કથન કરવામાં આવે છે.—

" णेगमववहाराणं " ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ–(णेगमववहाराणं आणुपुव्वी दव्वाइं) નૈગમવ્યવહારનયસંમત સમસ્ત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો (कयरंमि भावे होज्जा ?) કયા ભાવમાં વર્તમાન હોય છે ? ઉત્તર–(णियमा साइपारिणामिए भावे होज्जा) નૈગમવ્યવહાર નયસંમત સમસ્ત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો નિયમથી જ સાદિપારિણામિક ભાવવર્તી હોય છે (एवं दोण्णि वि) એવું જ કથન અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો અને અવકતવ્યક દ્રવ્યોના વિષયમાં પણ સમજવું આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે–ત્રણ આદિ પ્રદેશોમાં આનુપૂર્વી દ્રવ્યોનું અવગાહપરિણામ, એક પ્રદેશમાં અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોનું અવગાહપરિણામ અને બે પ્રદેશોમાં અવકતવ્યક દ્રવ્યોનું અવગાહપરિણામ સાદિ (આદિ સહિત) હોય છે. તેથી જ આ ત્રણે દ્રવ્યોને સાદિપારિણામિક ભાવવર્તી કહ્યાં છે. ॥સૂ૦૧૧૭॥

इत्थं भावद्वारमभिधाय अल्पबहुत्वद्वारं प्ररूपयति–

मूलम्–एएसि णं भंते! णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाणं अणाणुपुव्वीदव्वाणं अवत्तव्वगदव्वाणं य दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुगा वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा? गोयमा! सव्वत्थोवाइं णेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाइं दव्वट्ठयाए, अणाणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए विसेसाहियाइं, आणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं। पएसट्ठयाए सव्वत्थोवाइं णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं अपएसट्ठयाए। अवत्तव्वगदव्वाइं पएसट्ठयाए विसेसाहियाइं। आणुपुव्वीदव्वाइं पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं। दव्वट्ठपएसट्ठयाए सव्वत्थोवाइं णेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाइं दव्वट्ठयाए। अणाणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए अपएसट्ठयाए विसेसाहियाइं। अवत्तव्वगदव्वाइं पएसट्ठयाए विसेसाहियाइं। आणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं ताइं चेव पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं। से तं अणुगमे। से तं णेगमववहाराणं अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी॥सू० ११८॥

छाया—एतेषां खलु भदन्त! नैगमव्यवहारयोः आनुपूर्वीद्रव्याणाम् अनानुपूर्वीद्रव्याणाम् अवक्तव्यकद्रव्याणां च द्रव्यार्थतया प्रदेशार्थतया कानि केभ्यः अल्पानि वा बहुकानि वा तुल्यानि वा विशेषाधिकानि वा?। गौतम! सर्वस्तोकानि नैगमव्यवहारयोः अवक्तव्यकद्रव्याणि द्रव्यार्थतया। अनानुपूर्वीद्रव्याणि द्रव्यार्थतया विशेषाधिकानि। आनुपूर्वी द्रव्याणि द्रव्यार्थतया असंख्येयगुणानि। प्रदेशार्थतया–सर्वस्तोकानि नैगमव्यवहारयोः अनानुपूर्वीद्रव्याणि अप्रदेशार्थतया। अवक्तव्यकद्रव्याणि प्रदेशार्थतया विशेषाधिकानि। आनुपूर्वीद्रव्याणि प्रदेशार्थतया असंख्येयगुणानि। द्रव्यार्थप्रदेशार्थतया सर्वस्तोकानि नैगमव्यवहारयोः अवक्तव्यक द्रव्याणि द्रव्यार्थतया। अनानुपूर्वी–द्रव्याणि द्रव्यार्थतया अप्रदेशार्थतया

विशेषाधिकानि। अवक्तव्यकद्रव्याणि प्रदेशार्थतया विशेषाधिकानि। आनुपूर्वी द्रव्याणि द्रव्यार्थतयाऽसंख्येयगुणानि तान्येव प्रदेशार्थतया असंख्येयगुणानि। स एषोऽनुगमः। सैषा नैगमव्यवहारयोः अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी ॥सू० ११८॥

टीका—' एएसि णं ' इत्यादि।

हे भदन्त! एतेषां खलु नैगमव्यवहारसम्मतानाम् आनुपूर्वीद्रव्याणाम् अनानुपूर्वीद्रव्याणाम् अवक्तव्यकद्रव्याणां मध्ये कानि द्रव्याणि कतरेभ्यो द्रव्येभ्यो द्रव्यार्थतया प्रदेशार्थतया द्रव्यार्थप्रदेशार्थतया च अल्पानि वा बहुकानि वा तुल्यानि वा विशेषाधिकानि वा भवन्ति? इति प्रश्नः। उत्तरयति-'गोयमा' इत्यादिना। अस्य व्याख्या नवतितमसंख्यकसूत्रवद् बोध्या।

अब सूत्रकार अल्प बहुत्व द्वार की प्ररूपणा करते हैं-

"एएसिं णं भंते" इत्यादि।

शब्दार्थ- (भंते) हे भदन्त! (णेगमववहाराणं एएसिं आणुपुव्वी दव्वाणं) नैगमव्यवहारनय-संमत इन आनुपूर्वी द्रव्यों के (अणाणुपुव्वी दव्वाणं) अनानुपूर्वी द्रव्यों के (य) और (अवत्तव्वगदव्वाणं) अवक्तव्यकद्रव्य के बीच (कयरे कयरेहिंतो) कौन कौन से द्रव्यों से (दव्वट्ठयाए, पएसट्ठयाए, दव्वट्ठपएसट्ठयाए) द्रव्यार्थता, प्रदेशार्थता और द्रव्यार्थता प्रदेशार्थता की अपेक्षा (अप्पावा बहुगावा तुल्लावा विसेसाहियावा) अल्प हैं-कौन२ किन२ द्रव्यों से बहुत हैं कौन२ किन२-के समान हैं और कौन २ किन २ द्रव्यों से विसेष अधिक हैं? (गोयमा) हे गौतम! (णेगमववहाराणं) नैगमव्यवहारनय संमत (अवत्तव्वगदव्वाइं) अवक्तव्यक

હવે સૂત્રકાર અલ્પબહુત્વ દ્વારની પ્રરૂપણા કરે છે—

" एएसिं णं भंते ! " ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(भंते !) હે ભગવન્! (णेगमववहाराणं एएसिं आणुपुव्वीदव्वाणं अणाणुपुव्वीदव्वाणं, अवत्तव्वगदव्वाणं) નૈગમવ્યવહાર નયસંમત આ આનુપૂર્વી દ્રવ્યો, અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યોમાંનાં (कयरे कयरेहिंतो) કયા કયા દ્રવ્યો (दव्वट्ठयाए, पएसट्ठयाए, दव्वट्ठपएसट्ठयाए) દ્રવ્યાર્થતા, પ્રદેશાર્થતા અને દ્રવ્યાર્થતા પ્રદેશાર્થતાની અપેક્ષાએ (अप्पा वा बहुगा वा, तुल्ला वा, विसेसाहिया वा?) કયા કયા દ્રવ્યો કરતાં અલ્પ પ્રમાણ છે? કયા કયા દ્રવ્યો કયા કયા દ્રવ્યો કરતાં અધિક છે, કયા કયા દ્રવ્યો કયા કયા દ્રવ્યોના જેટલાં જ છે અને કયા કયા દ્રવ્યો કયા કયા દ્રવ્યો કરતાં વિશેષાધિક છે?

ઉત્તર-(गोयमा !) હે ગૌતમ! (णेगमववहाराणं) નૈગમવ્યવહાર નયસંમત (अवत्तव्वगदव्वाइं) અવક્તવ્યક દ્રવ્યો (दव्वट्ठयाए) દ્રવ્યાર્થતાની અપેક્ષાએ

द्रव्य (दव्वट्ठयाए) द्रव्यार्थता की अपेक्षा (सव्वत्थोवाइं) सर्वस्तोक हैं। (अणाणुपुव्वीदव्वाइं) अनानुपूर्वीद्रव्य (दव्वट्ठयाए) द्रव्यार्थता की अपेक्षा (विसेसाहिआइं) विशेष अधिक हैं। (आणुपुव्वीदव्वाइं) आनुपूर्वी-द्रव्य (दव्वट्ठयाए) द्रव्यार्थता की अपेक्षा (असंखेज्जगुणाइं) असंख्यात गुणे हैं। (पएसट्ठयाए) प्रदेशार्थताकी अपेक्षा (णेगमववहाराणं) नैगम-व्यवहारनय संमत (अणाणुपुव्वी दव्वाइं) अनानुपूर्वी द्रव्य (सव्वत्थोवाइं सर्वस्तोक हैं। क्योंकि (अपएसट्ठयाए) अनानुपूर्वीद्रव्य में प्रदेशरूप अर्थ का अभाव है। तात्पर्य यह है, कि परमाणु रूप अनानुपूर्वी द्रव्यों में भी यदि द्वितीय आदि प्रदेश हो तो द्रव्यार्थता की तरह प्रदेशार्थता में भी अवक्तव्यकद्रव्यों की अपेक्षा से उनकी अधिकता हो जाती। परन्तु ऐसा तो है नहीं, क्योंकि परमाणु अप्रदेशी होता है। ऐसा सिद्धान्त का वचन है इसलिये प्रदेशता की अपेक्षा से ये अनानुपूर्वी द्रव्य सर्वस्तोक कहे गये हैं। (अवत्तव्वगदव्वाइं) अवक्तव्यक द्रव्य (पएसट्ठयाए) प्रदेशार्थता की अपेक्षा (विसेसाहियाइं) विशेष अधिक हैं। (आणुपुव्वी दव्वाइं) आनुपूर्वी द्रव्य (पएसट्ठयाए) प्रदेशार्थता की अपेक्षा (असंखेज्जगुणाइं) असंख्यात गुणे हैं। (दव्वट्ठपएसट्ठयाए) द्रव्यार्थता और-

(सव्वत्थोवाइं) સૌથી અલ્પ પ્રમાણમાં છે. (अणाणुपुव्वी दव्वाइं दव्वट्ठयाए विसेसाहियाइं) દ્રવ્યાર્થતાની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો અવક્તવ્યક દ્રવ્યો કરતાં વિશેષાધિક છે. (आणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं) અને દ્રવ્યાર્થતાની અપેક્ષાએ આનુપૂર્વી દ્રવ્યો અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો કરતાં પણ અસંખ્યાત ગણાં છે. (पएसट्ठयाए) પ્રદેશાર્થતાની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો (णेगमववहाराणं) નૈગમવ્યવહાર નયસંમત (अणाणुपुव्वीदव्वाइं) અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો (सव्वत्थोवाइं) સૌથી આછાં છે, કારણ કે (अपएसट्ठयाए) અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યમાં પ્રદેશરૂપ અર્થનો અભાવ છે. આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે પરમાણુ રૂપ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યમાં પણ જો બે આદિ પ્રદેશોનો સદ્ભાવ હોત તો દ્રવ્યાર્થતાની જેમ પ્રદેશાર્થતાની અપેક્ષાએ પણ અવક્તવ્યક દ્રવ્યો કરતાં અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોની અધિકતા જ સંભવી શકત, પરન્તુ એવી વાતનો તો અહીં અવકાશ નથી, કારણ કે પરમાણુ અપ્રદેશી હોય છે, એવું સિદ્ધાન્તનું વચન છે. તેથી જ પ્રદેશાર્થતાની અપેક્ષાએ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યને સર્વસ્તોક (સૌથી અલ્પ પ્રમાણ) કહ્યું છે. (अवत्तगदव्वाइं) અવક્તવ્યક દ્રવ્યો (पएसट्ठयाए) પ્રદેશાર્થતાની અપેક્ષાએ આનુપૂર્વી દ્રવ્યો કરતાં વિશેષાધિક છે. (आणुपुव्वीदव्वाइं पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं) પ્રદે-

प्रदेशार्थता इन दोनों की अपेक्षा से (णेगमववहाराणं) नैगम व्यवहारनय संमत-(अवत्तव्वगदव्वाइं) अवक्तव्यक द्रव्य (सव्वत्थोवाइं) सर्वस्तोक हैं। क्योंकि (दव्वट्ठयाए) अवक्तव्यक द्रव्यों में द्रव्यार्थता की अपेक्षा पहिले-सर्वस्तोकता प्रकट की गई है। (अणाणुपुव्वी दव्वाइं दव्वट्ठयाए अपएसट्ठयाए विसेसाहियाइं) अनानुपूर्वी द्रव्य द्रव्यार्थता से और अप्रदेशार्थता से अवक्तव्यक द्रव्य की अपेक्षा कुछ अधिक हैं। (अवत्तव्वगदव्वाइं पएसट्ठयाए विसेसाहियाइं।) अवक्तव्यक द्रव्य प्रदेशार्थता की अपेक्षा-अनानुपूर्वी द्रव्यों से कुछ अधिक हैं। (आणुपुव्वी दव्वाइं दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं) उभयार्थता को आश्रित करके द्रव्यार्थता की अपेक्षा से आनुपूर्वी द्रव्य असंख्यात गुणें हैं और (पएसट्ठयाए) प्रदेशार्थता की अपेक्षा से भी (ताइंचेव) वे ही आनुपूर्वीद्रव्य (असंखेज्जगुणाइं) असंख्यात गुणें हैं (से तं अणुगमे) इस प्रकार यह अनुगम का स्वरूप है (से तं णेगमववहाराणं अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी) इस प्रकार यहां तक नैगम व्यवहारनय संमत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी के स्वरूप का कथन किया। सूत्र पदों का यह अर्थ है। इसकी व्याख्या ९० वें सूत्र के

शार्थतानी अपेक्षाओ आनुपूर्वी द्रव्यो अवक्तव्यक द्रव्यो करतां असंख्यात गणुं छे. (दव्वट्ठपएसट्ठयाए) द्रव्यार्थता अने प्रदेशार्थतानी अपेक्षाओ विचार करवामां आवे तो (णेगमववहाराणं) नैगमव्यवहार नयसंमत (अवत्तव्वगदव्वाइं) अवक्तव्यक द्रव्यो सौथी ओछां छे, कारण के (दव्वट्ठयाए) द्रव्यार्थतानी अपेक्षाओ अवक्तव्यक द्रव्योमां पहेलां सर्वस्तोकता (सौथी अल्प प्रमाणु) बतावामां आवेल छे. (अणाणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए अपएसट्ठयाए विसेसाहियाइं) द्रव्यार्थता अने अप्रदेशार्थतानी अपेक्षाओ अनानुपूर्वी द्रव्यो अवक्तव्यक द्रव्यो करतां विशेषाधिक छे. (आणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं) द्रव्यार्थतानी अपेक्षाओ विचार करवामां आवे तो आनुपूर्वी द्रव्यो असंख्यात गणुं छे. (पएसट्ठयाए) प्रदेशार्थतानी अपेक्षाओ विचार करवामां आवे तो (ताइं चेव) ते आनुपूर्वी द्रव्यो ज (असंखेज्जगुणाइं) असंख्यात गणुं छे. (से तं अणुगमे) आ प्रकारनुं अनुगमनुं स्वरूप छे. (से तं णेगमववहाराणं अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी) आ रीते अहीं सुधीनां सूत्रोमां नैगमव्यवहार नयसंमत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वीना स्वरूपनुं कथन करवामां आव्युं छे. सूत्रपदोनो आ अर्थ छे तेनी व्याख्या ९०मां सूत्र प्रमाणे समजवी.

अत्रेदं बोध्यम्-द्रव्यगणनं द्रव्यार्थता, प्रदेशगणनं प्रदेशार्थता, उभयगणनं तूभयार्थता। तत्रानुपूर्व्यां विशिष्टद्रव्यावगाहोपलक्षितास्त्र्यादिनभःप्रदेशसमुदाया द्रव्याणि, समुदायारम्भकास्तु प्रदेशाः। अनानुपूर्व्यां तु एकैकप्रदेशावगाहिद्रव्योपलक्षिताः सकलनभःप्रदेशाः प्रत्येकं द्रव्याणि, प्रदेशास्त्वत्र न संभवन्ति, एकैकप्रदेशद्रव्ये हि प्रदेशान्तरायोगात्। अवक्तव्यकेषु तु

समान जाननी चाहिये। "अत्रेदं बोध्यं-द्रव्यों की गिनती करना इसका नाम द्रव्यार्थता है। प्रदेशों की गिनती करना इसका नाम प्रदेशार्थता है। द्रव्यों और प्रदेशों की दोनों की गिनती-गणना करना उभयार्थता है। आनुपूर्वी में विशिष्ट द्रव्यों के अवगाह से उपलक्षित हुए जो नभःप्रदेश हैं उन नभःप्रदेशों के यह तीन नभःप्रदेशों का समुदाय है यह चार नभः प्रदेशो का समुदाय है "इत्यादि जो समुदाय हैं-वे समस्त त्र्यादि नभःप्रदेश समुदाय द्रव्य हैं। और इस समुदायों के जो आरंभक हैं वे प्रदेश हैं। अनानुपूर्वी में, एक एकप्रदेश अवगाही हुए द्रव्य से उपलक्षित जो सकल आकाशप्रदेश हैं वे अलग २ प्रत्येक द्रव्य हैं। प्रदेश यहां संभवित नहीं हैं। क्योंकि एक २ प्रदेश रूप द्रव्य में अन्य प्रदेशों का रहना असंभव है अवक्तव्यकों में लोक में जितने द्विक-दो दो प्रदेशों के योग हैं उतने वे प्रत्येक द्रव्य हैं। और इन द्विक योगों को

"अत्रेदं बोध्यं" અહીં એવું સમજવાનું છે કે દ્રવ્યોની ગણતરી કરવી તેનું નામ દ્રવ્યાર્થતા છે અને પ્રદેશોની ગણતરી કરવી તેનું નામ પ્રદેશાર્થતા છે. દ્રવ્યોની અને પ્રદેશોની (ઉભયની) ગણતરી કરવી તેનું નામ ઉભયાર્થતા છે. આનુપૂર્વીમાં, વિશિષ્ટ દ્રવ્યોના અવગાહથી ઉપલક્ષિત (યુકત) એવાં જે આકાશપ્રદેશોના "આ ત્રણ આકાશપ્રદેશોનો સમુદાય છે, આ ચાર આકાશપ્રદેશોનો સમુદાય છે," ઇત્યાદિ રૂપ જે સમુદાયો છે તે સમસ્ત ત્રણ આદિ આકાશપ્રદેશોમાં રહેલાં દ્રવ્યસમુદાયો આવી જાય છે. અને તે સમુદાયોના જે આરંભકો છે તેમનું નામ પ્રદેશ છે.

અનાનુપૂર્વીમાં, એક એક પ્રદેશમાં અવગાહિત થયેલા દ્રવ્યથી ઉપલક્ષિત જે સમસ્ત આકાશપ્રદેશો છે તેઓ અલગ અલગ પ્રત્યેક દ્રવ્ય છે અહીં પ્રદેશ સંભવિત નથી, કારણ કે એક એક પ્રદેશ રૂપ દ્રવ્યમાં અન્ય પ્રદેશોનું અસ્તિત્વ અસંભવિત છે. અવક્તવ્યકોની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે, તો લોકમાં જેટલાં દ્વિકયોગ (બબ્બે પ્રદેશોના યોગ) છે, એટલાં તે પ્રત્યેક દ્રવ્ય છે, અને તે દ્વિકયોગોનો આરંભ કરનારા પ્રદેશો છે.

यावन्तो लोके द्विकयोगाः संभवन्ति तावन्ति प्रत्येकं द्रव्याणि, तदारम्भकास्तु प्रदेशा इति। किंच 'सव्वत्थोवाइं णेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाइं इत्यादि यदुक्तं तत्रोच्यते–ननु यदा पूर्वोक्तयुक्त्या एकैको नभःप्रदेशोऽनेकेषु द्विकसंयोगेषूपयुज्यते, तदा अनानुपूर्वी द्रव्येभ्योऽवक्तव्यकद्रव्याणामेव बाहुल्यमुपलभ्यते, पञ्चप्रदेशनभःकल्पनायामपि पञ्चसंख्यकेभ्योऽनानुपूर्वीद्रव्येभ्योऽष्टसंख्यकानामवक्तव्यकद्रव्याणामेव आधिक्यदर्शनात्, तत् कथमिहोक्तं 'सव्वत्थोवाइं णेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाइं' इति? अत्रोच्यते–लोकमध्यमात्रमाश्रित्य अवक्तव्यकद्रव्याणामाधिक्यमुक्तम्। परन्तु लोकपर्यन्तस्थितनिष्कुटगता ये कण्ट-

---

आरंभ करने वाले प्रदेश हैं। किंच– "सव्वत्थोवाइं णेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाइं" इत्यादि जो कहा है उसके विषय में शंकाकार का ऐसा कहना है कि पहिले प्रदर्शित युक्तिके अनुसार जब एक एक आकाशप्रदेश अनेक द्विक संयोगों में उपयुक्त होता है तब अनानुपूर्वी द्रव्यों से अवक्तव्यक द्रव्यों की ही बहुलता मालुम देती है जैसा पहिले कहा गया है कि आकाश के कल्पित पांच प्रदेशों में एक २ प्रदेश पर अनानुपूर्वी द्रव्य रहता है और आठ अवक्तव्यक द्रव्य रहते हैं। अतः इस कथन से अनानुपूर्वी द्रव्यों की अपेक्षा अवक्तव्यक द्रव्यों की बहुलता पाई जाती है। तो फिर यहां ऐसे कैसे कहा कि नैगमव्यहारनय संमत अवक्तव्यक द्रव्य सर्वस्तोक हैं?

उत्तर–लोकके मध्यभाग मात्र को आश्रित करके अवक्तव्यक द्रव्यों में अधिकता कही गई है। परन्तु जो एक २ प्रदेश लोक के अन्त तक

શંકા–"सव्वत्थोवाइं णेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाइं" આપે એવું જે કહ્યું છે કે નૈગમવ્યવહારનયસંમત અવક્તવ્યક દ્રવ્યો સૌથી ઓછાં છે, પરન્તુ આપનું આ કથન બરાબર લાગતું નથી પહેલાં આપે જ એ વાતનું પ્રતિપાદન કર્યું છે કે એક એક આકાશપ્રદેશ અનેક દ્વિકસંયોગોમાં ઉપયુક્ત થાય છે, અને તેથી જ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો કરતાં અવક્તવ્યક દ્રવ્યોની જ અધિકતા હોવી જોઇએ આપે પહેલાં એવું કહ્યું છે કે લોકના પાંચ પ્રદેશો હોય તો દરેક પ્રદેશમાં એક એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યની અવગાહના હોય તો પાંચ પ્રદેશોમાં પાંચ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો હોઇ શકે અને તે પાંચ પ્રદેશોમાં આઠ અવક્તવ્યક દ્રવ્યો રહી શકે આપના પૂર્વોક્ત આ કથન દ્વારા તો અવક્તવ્યક દ્રવ્યો અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો કરતાં અધિક હોવાની વાતને જ પુષ્ટિ મળે છે. છતાં અહીં આપે શા કારણે એવું કથન કર્યું છે કે નૈગમવ્યવહાર નયસંમત અવક્તવ્યક દ્રવ્યો સર્વસ્તોક છે?

ઉત્તર–લોકના મધ્યભાગ માત્રને અનુલક્ષીને અવક્તવ્ય દ્રવ્યોની અધિકતા બતાવવામાં આવી છે. પરન્તુ જે એક એક પ્રદેશ લોકના અન્ત પર્યન્ત

काकृतयो विभेण्या निर्गता एकाकिनः प्रदेशास्ते विश्रेणिव्यवस्थितत्वादवक्तव्यकत्वादवक्तव्यकत्वायोग्या इति तेषामनानुपूर्वीसंख्यायामेवान्तर्भावो भवति। अतो लोकमध्यस्थितां निष्कुटगतां च अनानुपूर्वीद्रव्यसंख्यां मीलयित्वा यदा केवली निर्दिशति, तदाऽवक्तव्यकद्रव्याण्येव स्तोकानि, अनानुपूर्वीद्रव्याणि तु ततो विशेषाधिकानि। अत्र निष्कुटस्थापना ४४४ इति। अत्र विश्रेणिलिखितौ द्वौ अवक्तव्यकायोग्यौ द्रष्टव्यौ। इत्थम्भूताश्चामी सर्वलोकपर्यन्तेषु तु बहवः सन्ति, इत्यनानुपूर्वीद्रव्याणाम् अवक्तव्यकद्रव्यापेक्षया बाहुल्यं बोध्यम्। अतएवोक्तम्-'सव्वत्थोवाइं णेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाइं' इति। आनुपूर्वीद्रव्याणां तु तेभ्यो-

---

स्थित एवं निष्कुट स्थान में हैं और जिनका आकार कण्टक जैसा है, श्रेणि से जो निकले हुए नहीं हैं, ऐसे वे प्रदेश विश्रेणि में व्यवस्थित होने के कारण अवक्तव्यक के योग्य नहीं माने गये हैं। अतः इनका अन्तर्भाव अनानुपूर्वी की संख्या में ही हुआ है। इसलिये लोक के मध्य में स्थित और निष्कुट जो अनानुपूर्वी द्रव्यों की संख्या है उसको मिलाकर जिस समय-केवली भगवान् इसका कथन करते हैं। तब वे-ऐसा ही कहते हैं कि अवक्तव्यक द्रव्यही स्तोक हैं और अनानुपूर्वीद्रव्य उनसे कुछ अधिक हैं। निष्कुट की स्थापना यहां ४ ४ ४ इस प्रकार से है। इसमें विश्रेणि लिखित दो अवक्तव्यक के अयोग्य हैं। इस प्रकार के तो ये समस्त लोक के अन्त तक बहुत हैं। इसलिये अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा अनानुपूर्वी द्रव्यों की अधिकता जाननी चाहिये?

સ્થિત (રહેલો) છે અને નિષ્કુટસ્થાનમાં છે અને જેનો આકાર કંટક (કાંટા) જેવો છે, શ્રેણિમાંથી જેઓ નીકળેલા નથી, એવા તે પ્રદેશો વિશ્રેણિમાં વ્યવસ્થિત હોવાને કારણે તેમને અવક્તવ્યક કહેવાને યોગ્ય ગણ્યા નથી તેથી તેમનો સમાવેશ અનાનુપૂર્વીની સંખ્યામાં જ થયો છે. તેથી લોકની મધ્યમાં સ્થિત અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો અને નિષ્કુટગત અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોની સંખ્યાનો સરવાળો કરીને જ્યારે કેવલીભગવાન તેમનું કથન કરે છે ત્યારે તેઓ એવું જ કહે છે કે અવક્તવ્યક દ્રવ્યો જ ઓછાં છે અને અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો તેમના કરતાં વિશેષાધિક છે નિષ્કુટની સ્થાપના (આકૃતિ) અહીં આ પ્રમાણે છે-'૪૪૪' તેમાં વિશ્રેણિ લિખિત બે અવક્તવ્યને યોગ્ય નથી. આમ તો તેઓ સમસ્ત લોકના અન્ત સુધીમાં ઘણાં જ છે. આ પ્રકારની પરિસ્થિતિને કારણે જ અવક્તવ્યક દ્રવ્યો કરતાં અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોની અધિકતા સમજવી જોઇએ.

ऽसंख्यातगुणत्वमुक्तमेव। विशेषस्त्वत्र-उभयार्थताविचारे आनुपूर्वीद्रव्याणि स्वद्रव्येभ्यः प्रदेशार्थतयाऽसंख्येयगुणानि, एकैकस्य तावद् द्रव्यस्य त्र्यादिभिरसंख्येयैर्नभःप्रदेशैरारब्धत्वात्, नभःप्रदेशानां च संमिलितानामपि असंख्येयत्वादिति। प्रस्तुतविषयमुपसंहरन्नाह-'से तं' इत्यादि स एषोऽनुगमः-अनुगमविषयोऽत्रसम्पूर्णः। तत्समाप्तौ नैगमव्यवहारसम्मताऽनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी उपसंहृतेति तदुपसंहारमाह-'से तं णेगम०' इत्यादि-सैषा नैगमव्यवहारसम्मताऽनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी सम्पूर्णा ॥सू० ११८॥

इसलिये अब सूत्रकारने "सव्वत्थोवाइं णेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाइं" ऐसा कहा है। अनानुपूर्वी द्रव्य उनसे असंख्यात गुणे हैं यह बात पहिले स्पष्ट की जा चुकी है। यहां इतनी विशेषता और है कि जिस प्रकार आनुपूर्वी द्रव्य अनानुपूर्वी द्रव्यों से असंख्यात गुणे हैं। उसी प्रकार वे उभयार्थता से विचरित होने पर प्रदेशार्थता की अपेक्षा अपने २ द्रव्यों से भी असंख्यात गुणे हैं। क्योंकि एक २ आनुपूर्वी द्रव्य तीन आदि असंख्यात नभः प्रदेशों (आकाश) से निष्पन्न होता है और संमिलित हुए भी वे नभःप्रदेश असंख्यात ही होते हैं। इस प्रकार अनुगम का विषय समाप्त होते ही नैगमव्यवहारनयसंमत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी का कथन समाप्त हो गया-इस विषय की सूचना "से तं", इत्यादि पदों द्वारा सूत्रकार ने दी है॥ सू० ११८॥

તેથી જ સૂત્રકારે એવું કહ્યું છે કે " सव्वत्थोवाइं णेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाइं " " નૈગમવ્યવહાર નયસંમત અવક્તવ્યક દ્રવ્યો સૌથી ઓછાં છે. " આનુપૂર્વી દ્રવ્યો તેમના કરતાં (અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય કરતાં) અસંખ્યાત ગણાં છે, એ વાત તો પહેલાં સ્પષ્ટ કરવામાં આવી ચુકી છે. અહીં એટલી વધુ વિશેષતા છે કે જે પ્રકારે આનુપૂર્વી દ્રવ્યો અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો કરતાં અસંખ્યાત ગણાં છે, એજ પ્રમાણે ઉભયાર્થતાની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો પણ આનુપૂર્વી દ્રવ્યો અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો કરતાં અસંખ્યાત ગણાં જ છે કારણ કે પ્રદેશાર્થતાની અપેક્ષાએ પણ એજ પ્રકારની પરિસ્થિતિ છે કારણ કે પ્રત્યેક આનુપૂર્વી દ્રવ્ય ત્રણ આદિ અસંખ્યાત આકાશપ્રદેશો વડે નિષ્પન્ન થાય છે, અને તે આકાશપ્રદેશોની એકંદર સંખ્યા પણ અસંખ્યાત જ થાય છે. આ પ્રકારે અનુગમનું વિષય નિરૂપણ અહીં સમાપ્ત થાય છે. અને અનુગમનું વર્ણન સમાપ્ત થવાથી નૈગમવ્યવહાર નયસંમત અનૌપનિધિકી ક્ષેત્રાનુપૂર્વીનું કથન પણ પૂરું થાય છે. " से तं " ઇત્યાદિ સૂત્ર દ્વારા સૂત્રકારે એજ વાત સૂચિત કરી છે. ॥સૂ૦૧૧૮॥

इत्थं नैगमव्यवहारसम्मतामनौपनिधिकीं क्षेत्रानुपूर्वीमुक्त्वा सम्प्रति संग्रहनयसंमतामनौपनिधिकीं क्षेत्रानुपूर्वीमाह-

मूलम्-से किं तं संगहस्स अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी ? संगहस्स अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा अत्थपयपरूवणया१, भंगसमुक्कित्तणया२, भंगोवदंसणया३, समोयारे४, अणुगमे५। से किं तं संगहस्स अत्थपयपरूवणया ?, संगहस्स अत्थपयपरूवणया-तिपएसोगाढे आणुपुव्वी, चउप्पएसोगाढे आणुपुव्वी, जाव दसपएसोगाढे आणुपुव्वी, संखिज्जपएसोगाढे आणुपुव्वी, असंखिज्जपएसोगाढे आणुपुव्वी, एगपएसोगाढे अणाणुपुव्वी, दुप्पएसोगाढे अवत्तव्वए। से तं संगहस्स अत्थपयपरूवणया। एयाए णं संगहस्स अत्थपयपरूवणयाए किं पओयणं ?, संगहस्स अत्थपयपरूवणयाए संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया कज्जइ। से किं तं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया ?, संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया अत्थि आणुपुव्वी, अत्थि अणाणुपुव्वी अत्थि अवत्तव्वए। अहवा अत्थि आणुपुव्वी अणाणुपुव्वी य, एवं जहा दव्वाणुपुव्वीए संगहस्स तहा भाणियव्वं जाव से तं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया। एयाए णं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणयाए किं पओयणं? एयाए णं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणयाए संगहस्स भंगोवदंसणया कज्जइ। से किं तं संगहस्स भंगोवदंसणया ?, संगहस्स भंगोवदंसणया-तिप्पएसोगाढे आणुपुव्वी, एगपएसोगाढे अणाणुपुव्वी, दुप्पएसोगाढे अवत्तव्वए। अहवा तिप्पएसोगाढे य एगपएसोगाढे य आणु-

पुव्वी य अणाणुपुव्वी य, एवं जहा दव्वाणुपुव्वीए संगहस्स तहा खेत्ताणुपुव्वीए वि भाणियव्वं जाव से तं संगहस्स भंगोवदंसणया। से किं तं समोयारे? समोयारे–संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं कहिं समोयरंति? किं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति? अणाणुपुव्वीदव्वेहिं? अवत्तव्वगदव्वेहिं? तिण्णिवि सट्ठाणे समोयरंति। से तं समोयारे। से किं तं अणुगमे? अणुगमे अट्ठविहे पण्णत्ते, तं जहा–संतपयपरूवणया जाव अप्पाबहुं नत्थि। संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि णत्थि? णियमा अत्थि। एवं तिण्णि वि। सेसगदाराइं जहा दव्वाणुपुव्वीए संगहस्स तहा खेत्ताणुपुव्वीए वि भाणियव्वाइं जाव से तं अणुगमे। से तं संगहस्स अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी। से तं अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी ॥सू० ११९॥

छाया–अथ का सा संग्रहस्य अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी? संग्रहस्य अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी पञ्चविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा–अर्थपदप्ररूपणता १, भंगसमुत्कीर्त्त-

---

इस प्रकार नैगमव्यवहारनयसंमत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी का कथन करके अब सूत्रकार संग्रहनय मान्य अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी का कथन करते हैं– से किं तं इत्यादि

शब्दार्थ–(से किं तं संगहस्स अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी?)

प्रश्न–हे भदन्त! पूर्वप्रक्रान्त पहिले प्रारंभ की हुई उस संग्रहनय मान्य अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

આ પ્રકારે નૈગમવ્યવહાર નયસંમત અનૌપનિધિકી ક્ષેત્રાનુપૂર્વીનું નિરૂપણ કરીને હવે સૂત્રકાર સંગ્રહનયસંમત અનૌપનિધિકી ક્ષેત્રાનુપૂર્વીનું નિરૂપણ કરે છે—"से किं तं" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ–(से किं तं संगहस्स अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी?) હે ભગવન્! पूर्वप्रक्रान्त–પહેલાં જેનો પ્રારંભ થઇ ચુકયો છે એવી–સંગ્રહનયસંમત અનૌપનિધિકી ક્ષેત્રાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે?

नता२, भंगोपदर्शनता३, समवतार:४, अनुगमः ५। अथ का सा संग्रहस्य अर्थपदप्ररूपणता ? संग्रहस्य अर्थपदप्ररूपणता–त्रिप्रदेशावगाढ आनुपूर्वी, चतुष्प्रदेशावगाढ-आनुपूर्वी, यावद् दशप्रदेशावगाढ आनुपूर्वी, संख्येयप्रदेशावगाढ आनुपूर्वी,

उत्तर–(संगहस्स अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी पंचविहा पण्णत्ता) संग्रहनयमान्य अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी पांच प्रकार की कही गई है। (तं जहा) उसके वे प्रकार ये हैं–(अत्थपयपरूवणया) १ अर्थपदप्ररूपणता (भंगसमुक्कित्तणया) २ भंगसमुत्कीर्तनता (भंगोवदंसणया) ३ भंगोपदर्शनता (समोयारे) ४ समवतार (अणुगमे) और अनुगम।

प्रश्न–(से किं तं संगहस्स अत्थपयपरूवणया) संग्रहनय मान्य अर्थपदप्ररूपणता क्या है ?

उत्तर (संगहस्स अत्थपयपरूवणया) संग्रहनयमान्य अर्थपदप्ररूपणता इस प्रकार से है-(तिप्पएसोगाढे आणुपुव्वी) तीन प्रदेश में अवगाढ–स्थित–त्र्यणुक आदि द्रव्य आनुपूर्वी है (चउप्पएसोगाढे आणुपुव्वी) चार प्रदेशों में अवगाढ चतुरणुक आदि आनुपूर्वी है–

(जाव दसपएसोगाढे आणुपुव्वी) यावत् दशप्रदेशावगाढ द्रव्य आनुपूर्वी है (संखिज्जपएसोगाढे आणुपुव्वी) संख्यात प्रदेशावगाढ द्रव्य आनुपूर्वी है। (असंखिज्जपएसोगाढे आणुपुव्वी) असंख्यात प्रदे-

उत्तर–(संगहस्स अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी पंचविहा पण्णत्ता) संग्रहनय-संमत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी पांच प्रकारनी कही छे. (तंजहा) ते प्रकारो नीचे प्रमाणे छे–(अत्थपयपरूवणया) (१) अर्थपदप्ररूपणता, (भंगसमुक्कित्तणया) (२) भंगसमुत्कीर्तनता, (भंगोवदंसणया) (३) भंगोपदर्शनता, (समोयारे) (४) समवतार अने (अणुगमे) (५) अनुगम.

प्रश्न–(संगहस्स अत्थपयपरूवणया ?) संग्रहनयमान्य अर्थपदप्ररूपणतानुं स्वरूप केवुं छे ?

उत्तर–(संगहस्स अत्थपयपरूवणया) संग्रहनयमान्य अर्थपदप्ररूपणता आ प्रकारनी छे–(तिपएसोगाढे आणुपुव्वी) त्रण प्रदेशोमां अवगाढ (रहेलुं) त्रण अणुवाणुं द्रव्य आनुपूर्वी रूप छे, (चउप्पएसोगाढे आणुपुव्वी) चार प्रदेशोमां अवगाढ चार अणुवाणुं द्रव्य पण आनुपूर्वी छे, (जाव दसपएसोगाढे आणुपुव्वी) दश पर्यन्तना प्रदेशोमां अवगाढ द्रव्य आनुपूर्वी छे, (संखिज्जपएसोगाढे आणुपुव्वी) संख्यात प्रदेशोमां अवगाढ द्रव्य आनुपूर्वी छे, (असंखिज्जपएसोगाढे आणुपुव्वी) अने असंख्यात प्रदेशोमां अवगाढ द्रव्य पण

असंख्येयप्रदेशावगाढ आनुपूर्वी, एकप्रदेशावगाढ अनानुपूर्वी, द्विप्रदेशावगाढः अवक्तव्यकम्। सैषा संग्रहस्य अर्थपदप्ररूपणता। एतस्याः खलु संग्रहस्य अर्थप्ररूपणतायाः किं प्रयोजनम्? संग्रहस्य अर्थप्ररूपणतया संग्रहस्य भङ्गसमुत्कीर्त्तनता क्रियते। कोऽसौ संग्रहस्य भङ्गसमुत्कीर्त्तनता? भङ्गसमुत्कीर्त्तनता अस्ति आनुपूर्वी, अस्ति अनानुपूर्वी, अस्ति अवक्तव्यकम्। अथवा अस्ति आनुपूर्वी च अनानुपूर्वी च।

शावगाढ द्रव्य आनुपूर्वी हैं। (एगपएसोगाढे अणाणुपुव्वी) एक प्रदेशावगाढ द्रव्य अनानुपूर्वी है। (दुप्पएसोगाढे अवत्तव्वए) दो प्रदेशावगाढ द्रव्य अवक्तव्यक है। (से तं संगहस्स अत्थपयपरूवणया) इस प्रकार यह संग्रहनय मान्य अर्थपदप्ररूपणता है। (एयाएणं संगहस्स अत्थपयपरूवणयाए किं पओयणं) इस संग्रहनयमान्य अर्थपदप्ररूपणता से क्या प्रयोजन सिद्ध होता है? (संगहस्स अत्थपयपरूवणयाए संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया कज्जई)

उत्तर–इस संग्रहनयमान्य अर्थपदप्ररूपणता से संग्रहनयमान्य भंगसमुत्कीर्तनता की जाती है। यही इसका प्रयोजन है (से किं तं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया) हे भदन्त! संग्रहनय मान्य यह भंगसमुत्कीर्तनता क्या है? (संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया अत्थि आणुपुव्वी अत्थि अणाणुपुव्वी अत्थि अवत्तव्वए) संग्रहनय मान्य भंगसमुत्कीर्तनता ऐसी है कि आनुपूर्वी है अनानुपूर्वी है अवक्तव्यक द्रव्य है। (अहवा अत्थि आणु

આનુપૂર્વી છે. (एगपएसोगाढे अणाणुपुव्वी) એક પ્રદેશમાં અવગાઢ દ્રવ્ય અનાનુપૂર્વી રૂપ છે, (दुप्पएसोगाढे अवत्तव्वए) બે પ્રદેશોમાં અવગાઢ દ્રવ્ય અવક્તવ્યક છે. (से तं संगहस्स अत्थपयपरूवणया) સંગ્રહનયમાન્ય અર્થપદપ્રરૂપણતાનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ છે.

પ્રશ્ન–(एयाएणं संगहस्स अत्थपयपरूवणयाए किं पओयणं?) આ સંગ્રહનયમાન્ય અર્થપદપ્રરૂપણતા વડે કયા પ્રયોજનની સિદ્ધિ થાય છે?

ઉત્તર–(संगहस्स अत्थपयपरूवणयाए संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया कज्जइ) આ સંગ્રહનયસંમત અર્થપદપ્રરૂપણતા દ્વારા સંગ્રહનયમાન્ય ભંગસમુત્કીર્તનતા કરવામાં આવે છે. એટલું જ તેનું પ્રયોજન છે.

પ્રશ્ન–(से किं तं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया?) હે ભદન્ત! સંગ્રહનયસંમત તે ભંગસમુત્કીર્તનતાનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર–(संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया अत्थि आणुपुव्वी, अत्थि अणाणुपुव्वी अत्थि अवत्तव्वए) સંગ્રહનયસંમત ભંગસમુત્કીર્તનતા આ પ્રકારની છે–આનુપૂર્વી છે, અનાનુપૂર્વી છે અને અવક્તવ્યક દ્રવ્ય છે. (अहवा अत्थि आणुपुव्वी,

एवंयथा द्रव्यानुपूर्व्याः संग्रहस्य तथा भणितव्यं यावत् सैषा संग्रहस्य भङ्गसमुत्कीर्त्तनता। एतस्याः खलु संग्रहस्य भङ्गसमुत्कीर्त्तनतायाः किं प्रयोजनम्? एतया खलु संग्रहस्य भङ्गसमुत्कीर्त्तनतया संग्रहस्य भङ्गोपदर्शनता क्रियते। अथ काऽसौ संग्रहस्य भङ्गोपदर्शनता? संग्रहस्य भङ्गोपदर्शनता-त्रिप्रदेशावगाढः

पुव्वी, अणाणुपुव्वीय एवं जहा दव्वाणुपुव्वीए संगहस्स तहा भाणियव्वं जाव से तं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया) अथवा-आनुपूर्वी है अनानुपूर्वी है इस प्रकार जिस रीति से द्रव्यानुपूर्वी के प्रकरण में संग्रहनय मान्य भंगसमुत्कीर्तनता का स्वरूप कहा गया है, उसी प्रकार से इस क्षेत्रानुपूर्वी में भी संग्रनयमान्य भंगसमुत्कीर्तनता का स्वरूप जानना चाहिये। यह स्वरूप कथन का संग्रह "से तं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया" इसपाठ तक करना चाहिये। (एयाएणं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणयाए किं पओयणं? कज्जइ) इस संग्रहनय मान्य भंगसमुत्कीर्तनता का क्या प्रयोजन है?

उत्तर-(एयाएणं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणयाए संगहस्स भंगोवदंसणया कज्जइ) इस संग्रहनय मान्य भंगसमुत्कीर्तनता से संग्रहनय मान्य भंगोपदर्शनता की जाती है। (से किं तं संगहस्स भंगोवदंसणया?) हे भदन्त! संग्रहनय मान्य वह भंगोपदर्शनता क्या है?

अणाणुपुव्वी य, एवं जहा दव्वाणुपुव्वीए संगहस्स तहा भाणियव्वं जाव से तं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया) अथवा "आनुपूर्वी छे, अनानुपूर्वी छे" इत्यादि जे प्रकारनुं कथन द्रव्यानुपूर्वीना प्रकरणमां संग्रहनयसंमत भंगसमुत्कीर्तनता विषयमां करवामां आव्युं छे एज प्रकारनुं कथन आ क्षेत्रानुपूर्वीमां पण संग्रहनयमान्य भंगसमुत्कीर्तनताना विषयमां पण समजवुं जोइओ आ कथन "से तं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया" आ सूत्रपाठ पर्यन्त करवुं जोइओ.

प्रश्न-(एयाएणं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणयाए किं पओयणं?) आ संग्रहनयमान्य भंगसमुत्कीर्तनतानुं प्रयोजन शुं छे?

उत्तर-(एयाएणं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणयाए संगहस्स भंगोवदंसणया कज्जइ) आ संग्रहनयमान्य भंगसमुत्कीर्तनता वडे संग्रहनयमान्य भंगोपदर्शनता करवामां आवे छे.

प्रश्न-(से किं तं संगहस्स भंगोवदंसणया?) हे भगवन्! संग्रहनयसंमत ते भंगोपदर्शनतानुं स्वरूप केवुं छे?

आनुपूर्वी, एकप्रदेशावगाढः आनुपूर्वी द्विप्रदेशावगाढः अवक्तव्यकम्। अथवा-त्रिप्रदेशावगाढश्च एकप्रदेशावगाढश्च आनुपूर्वी च अनानुपूर्वी च, एवं यथा द्रव्यानुपूर्व्यां संग्रहस्य तथा क्षेत्रानुपूर्व्यामपि भणितव्यं यावत् सैषा संग्रहस्य भङ्गोपदर्शनता। अथ कोऽसौ समवतारः? समवतारः-संग्रहस्य आनुपूर्वी द्रव्याणि कुत्र समवतरन्ति? किमानुपूर्वी द्रव्येषु समवतरन्ति?, अनानुपूर्वी द्रव्येषु? अवक्तव्यकद्रव्येषु? त्रीण्यपि स्वस्थाने समवतरन्ति, सोऽसौ समवतारः। अथ कोऽसावनुगमः? अनुगमः अष्टविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-यावत् अल्पबहुत्वं नास्ति। संग्रहस्य आनुपूर्वीद्रव्याणि किं सन्ति न सन्ति? नियमात् सन्ति। एवं त्रीण्यपि। शेषकद्वाराणि यथा द्रव्यानुपूर्व्यां संग्रहस्य तथा क्षेत्रानुपूर्व्यामपि भणितव्यानि यावत् स एषोऽनुगमः। सैषा संग्रहस्य अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी। सैषा अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी ॥सू० ११९॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि। संग्रहनयाभिमत द्रव्यानुपूर्वीवदेव माय इदमपि सूत्रम्। अतो व्याख्यातप्रायमेव, अस्य व्याख्या चतुर्नवतितमसूत्रादारभ्य सप्तनवतिपर्यन्तसूत्रे विलोकनीया ॥सू० ११९॥

इत्थमनौपनिधिकीं क्षेत्रानुपूर्वीमभिधाय सम्प्रत्यौपनिधिकीं क्षेत्रानुपूर्वीमाह-

मूलम्-से किं तं ओवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी? ओवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा, पुव्वाणुपुव्वी, पच्छाणुपुव्वी, अणाणुपुव्वी। से किं तं पुव्वानुपुव्वी? पुव्वाणुपुव्वी-अहोलोए तिरियलोए उड्ढलोए। से तं पुव्वाणुपुव्वी। से किं तं

उत्तर-(संगहस्स भंगोवदंसणया) संग्रहनय मान्य भंगोपदर्शनता इस प्रकार से है-(तिपएसोगाढे आणुपुव्वी) त्रिप्रदेशावगाढ आनुपूर्वी इत्यादि आगेके समस्त पदों का अर्थ संग्रहनय मान्य द्रव्यानुपूर्वी में कथित भंगसमुत्कीर्तनता आदि के सूत्रों की व्याख्या के अनुसार ही है। इसलिये इनमें पदों की व्यख्या के लिये पिछे ९४ वें सूत्र से लेकर ९७ वें तक के सूत्रों को देखना चाहिये ॥ सू० ११९ ॥

उत्तर-(संगहस्स भंगोवदंसणया) संग्रहनयमान्य भंगोपदर्शनतानुं स्वरूप आ प्रकारनुं छे—

(तिपएसोगाढे आणुपुव्वी) त्रिप्रदेशावगाढ आनुपूर्वी इत्यादि पूर्वोक्त समस्त पदोनो अर्थ संग्रहनयमान्य द्रव्यानुपूर्वीना प्रकरणमां कहेवामां आवेल भंगसमुत्कीर्तनता आदिना सूत्रोनी व्याख्या प्रमाणे ज छे. तेथी तेमां जे पदो आवे छे तेमनी व्याख्या जाणवा माटे ९४ थी ९७ सुधीना सूत्रो वांची जवानी भलामण करवामां आवे छे. ॥सू०११९॥

पच्छाणुपुव्वी? पच्छाणुपुव्वी उड्ढलोए तिरियलोए अहोलोए। से त्तं पच्छाणुपुव्वी। से किं तं अणाणुपुव्वी? अणाणुपुव्वी एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए तिगच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दुरूवूणो। से तं अणाणुपुव्वी ॥सू० १२०॥

छाया—अथ का सा औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी ? औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा–पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी, अनानुपूर्वी। अथ का सा पूर्वानुपूर्वी? पूर्वानुपूर्वी–अधोलोकः, तिर्यग्लोकः ऊर्ध्वलोकः। सैषा पूर्वानुपूर्वी। अथ का

इस प्रकार अनौपनिधि की क्षेत्रानुपूर्वी का कथन करके अब सूत्रकार औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी का कथन करते हैं–

"से किं तं ओवणिहिया" इत्यादि।

शब्दार्थ– (से किं तं ओवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी ?) हे भदन्त ! संग्रहनय मान्य औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?–

उत्तर–(ओवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता) औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी तीन प्रकार की कही गई है–(तं जहा) वे उसके प्रकार ये हैं–(पुव्वाणुपुव्वी, पच्छाणुपुव्वी अणाणुपुव्वी) १ पूर्वानुपूर्वी २ पश्चानुपूर्वी (३) अनानुपूर्वी (से किं तं पुव्वाणुपुव्वी) पूर्वानुपूर्वी क्या है ?

उत्तर– (पुव्वाणुपुव्वी) पूर्वानुपूर्वी इस प्रकार से है– (अहो लोए, तिरियलोए, उड्ढलोए) अधोलोक तिर्यग्लोक ऊर्ध्वलोक। (से तं पुव्वाणुपुव्वी) यह पूर्वानुपूर्वी है। (से किं तं पच्छाणुपुव्वी) पश्चानुपूर्वी क्या है ?

આ પ્રમાણે અનૌપનિધિકી ક્ષેત્રાનુપૂર્વીનું કથન કરીને હવે સૂત્રકાર ઔપનિધિકી ક્ષેત્રાનુપૂર્વીનું કથન કરે છે—"से किं तं ओवणिहिया" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ–(से किं तं ओवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी ?) હે ભગવન્ ! સંગ્રહનયમાન્ય ઔપનિધિકી ક્ષેત્રાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર–(ओवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता) ઔપનિધિકી ક્ષેત્રાનુપૂર્વી ત્રણ પ્રકારની કહી છે. (तंजहा) તે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે–(पुव्वाणुपुव्वी, पच्छाणुपुव्वी, अणाणुपुव्वी) (१) પૂર્વાનુપૂર્વી, (२) પશ્ચાનુપૂર્વી (३) અનાનુપૂર્વી.

પ્રશ્ન–(से किं तं पुव्वाणुपुव्वी) પૂર્વાનુપૂર્વી એટલે શું ?

ઉત્તર–(पुव्वाणुपुव्वी) પૂર્વાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે–(अहोलोए, तिरियलोए, उड्ढलोए) અધોલોક, તિર્યગ્લોક અને ઊર્ધ્વલોક, (से तं पुव्वाणुपुव्वी) આ ક્રમે કહેવું તેનું નામ પૂર્વાનુપૂર્વી છે.

सा पश्चानुपूर्वी-पश्चानुपूर्वी ऊर्ध्वलोकः, तिर्यग्लोकः, अधोलोकः। सैषा पश्चानुपूर्वी। अथ का सा अनानुपूर्वी? अनानुपूर्वी-एतस्यामेव एकादिकायामेकोत्तरिकायां त्रिगच्छगतायां श्रेण्यामन्योन्याभ्यासो द्विरूपन्यूनः। सैषा अनानुपूर्वी ॥सू० १२०॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि। व्याख्याकृतप्राया। ऊर्ध्वलोकादि लोकत्रय-विषये किंचिदुच्यते-औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वीप्रस्तावे द्रव्यानुपूर्व्यधिकारात् धर्मा-

---

उत्तर-(पच्छाणुपुव्वी) पश्चानुपूर्वी इसप्रकार से है-उड्ढलोए तिरियलोए अहोलोए) उर्ध्वलोक, तिर्यग्लोक, अधोलोक, (से त्तं पच्छाणुपुव्वी) यह पश्चानुपूर्वी है। (से किं तं अणाणुपुव्वी) अनानुपूर्वी क्या है? (अणाणुपुव्वी) अनानुपूर्वी इस प्रकार से हैं। (एयाएचेव एगइयाए एगुत्तरियाए तिगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवणो-से तं अणाणुपुव्वी) जिसमें पूर्वानुपूर्वी और पश्चानुपूर्वी ये दोनों नहीं हैं उसका नाम अनानुपूर्वी है इसमें विवक्षित अधोलोक आदि क्रमद्वय को उल्लंघनकरके परस्पर संभवित भंगों से उन पदों की विरचना की जाती है। इस अनानुपूर्वी में जो श्रेणी स्थापित की जाती है, उसमें सब से पहिले १ एक संख्या स्थापित की जाती है-बाद में एक २ की उत्तरोत्तर वृद्धि तीन संख्या तक होती चली जाती है। फिर इनमें परस्पर में गुणा किया जाता है। इस प्रकार अन्योन्याभ्यस्त राशि बन जाती है। इसमें से आदि अंत के

પ્રશ્ન-(से किं तं पच्छाणुपुव्वी) પશ્ચાનુપૂર્વી કોને કહે છે?

ઉત્તર-(पच्छाणुपुव्वी) પશ્ચાનુપૂર્વી આ પ્રકારની હોય છે-(उड्ढलोए, तिरियलोए, अहोलोए) ઉર્ધ્વલોક, તિર્યગ્લોક અને અધોલોક, આ પ્રમાણે ઊલટા ક્રમે કહેવું (से तं पच्छाणुपुव्वी?) તેનું નામ પશ્ચાનુપૂર્વી છે.

પ્રશ્ન-(से किं तं अणाणुपुव्वी) અનાનુપૂર્વી એટલે શું?

ઉત્તર-(अणाणुपुव्वी) અનાનુપૂર્વી આ પ્રકારની હોય છે-(एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए तिगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवूणो-से तं अणाणुपुव्वी) જેમાં પૂર્વાનુપૂર્વી અને પશ્ચાનુપૂર્વી એ બન્નેનો અભાવ હોય છે, એવા ક્રમપૂર્વક કથન કરવું તેનું નામ અનાનુપૂર્વી છે. તેમાં ઉપર્યુક્ત બન્ને ક્રમનું ઉલ્લંઘન કરીને પરસ્પરની સાથે સંભવિત ભંગો (ભાંગાઓ) વડે તે પદોની વિરચના કરવામાં આવે છે. આ અનાનુપૂર્વીમાં જે શ્રેણી સ્થાપિત કરવામાં આવે છે, ત્યાર બાદ ત્રણ સંખ્યા સુધી ઉત્તરોત્તર એક એક સંખ્યાની વૃદ્ધિ થતી રહે છે. ત્યાર બાદ તેમનો પરસ્પરમાં ગુણાકાર કરાય છે. આ પ્રકારે અન્યોન્ય અભ્યસ્ત રાશિ બની જાય છે તેમાંથી આદિ અને

स्तिकायादीनि द्रव्याणि पूर्वानुपूर्व्यादित्वेन ९८ अष्टनवति सूत्रे उदाहृतानि। अत्र तु क्षेत्रानुपूर्व्याः प्रस्तावात् अधोलोकादयः पूर्वानुपूर्व्यादित्वेनोक्ताः। अधोलोकादिविभागास्तु–ऊर्ध्वाधश्चतुर्दशरज्ज्वायतस्य अनियतविस्तारस्य पञ्चास्ति-

---

દો ભંગ કમ કર ને પર અનાનુપૂર્વી બન જાતી હૈ। યહી અનાનુપૂર્વી હૈ। ઇસ સૂત્ર કી વ્યાખ્યા કે લિયે ૯૮ વાં સૂત્ર દેખો। ઊર્ધ્વલોક આદિ જો તીન લોક હૈં, ઉનકે વિષય મેં યહાં કુછ–કહા જાતા હૈ।–ઔપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વી કે પ્રકરણ મેં દ્રવ્યાનુપૂર્વી કા અધિકાર હોને સે વહાં ધર્માસ્તિકાય આદિ દ્રવ્યોં કો પૂર્વાનુપૂર્વી આદિરૂપ સે ઉદાહૃત કિયા ગયા હૈ। પરન્તુ યહાં ક્ષેત્રાનુપૂર્વી કા પ્રકરણ ચલ રહા હૈ ઇસલિયે અધોલોક આદિ પૂર્વાનુપૂર્વી આદિ રૂપ સે ઉદાહૃત હુએ હૈં। લોક કે યે જો ઊર્ધ્વલોક અધોલોક આદિ તીન વિભાગ કિયે ગયે હૈં સો ઉસકા કારણ યહ હૈ કિ મધ્યલોક કે બીચોંબીચ મેરુ પર્વત હૈ। ઇસકે નીચે કા ભાગ અધોલોક ઔર ઊપર કા ભાગ ઊર્ધ્વલોક હૈ। તથા બરાબર રેખા મેં તિરછા ફૈલા હુઆ મધ્યલોક હૈ। મધ્યલોક કા તિરછા વિસ્તાર અધિક હૈ ઇસલિયે ઇસે તિર્યગ્લોક ભી કહતે હૈં। લોક ઊપર સે નીચેતક–લંબાઈ મેં ૧૪ રાજૂ હૈ। વિસ્તાર ઇસકા અનિયત હૈ। યહ પાંચ અસ્તિ-

---

અન્તના બે ભંગો ઓછાં કરી નાખવાથી અનાનુપૂર્વી બની જાય છે. અનાનુપૂર્વીનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ છે. આ સૂત્રની વ્યાખ્યા સમજવા માટે ૯૮મું સૂત્ર વાંચી જવું.

ઊર્ધ્વલોક આદિ જે ત્રણ લોક છે તેમના વિષે હવે અહીં થોડું કથન કરવામાં આવે છે–

ઔપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વીના પ્રકરણમાં દ્રવ્યાનુપૂર્વીનો અધિકાર હોવાથી ત્યાં ધર્માસ્તિકાય આદિ દ્રવ્યોનું પૂર્વાનુપૂર્વી આદિ રૂપે કથન કરવામાં આવ્યું હતું. પરન્તુ અહીં ક્ષેત્રાનુપૂર્વીનો અધિકાર ચાલી રહ્યો છે તેથી અહીં અધોલોક આદિ ક્ષેત્રોનું પૂર્વાનુપૂર્વી આદિ રૂપે કથન કરવામાં આવ્યું છે. લોકના ઊર્ધ્વલોક અધોલોક (તિર્યગ્લોક) આદિ જે ત્રણ વિભાગ કરવામાં આવ્યા છે તેનું કારણ એ છે કે મધ્યલોકની વચ્ચોવચ મેરુપર્વત છે. તેની નીચેના ભાગને અધોલોક અને ઉપરના ભાગને ઊર્ધ્વલોક કહે છે તથા બરાબર રેખામાં તિરછો ફેલાયેલો મધ્યલોક છે. મધ્યલોકનો તિરછો વિસ્તાર અધિક હોવાને કારણે તેને તિર્યગ્લોક પણ કહે છે લોકની ઉપરથી નીચે સુધીની લંબાઈ ૧૪ રાજૂપ્રમાણ છે. અને તેનો વિસ્તાર અનિયત છે તે પાંચ અસ્તિકાયોથી

कायमयस्य त्रिधा परिकल्पनया सम्पद्यन्ते। तत्रास्यां रत्नप्रभायां बहुसमभूभागे मेरुमध्ये नभःप्रदेशद्वयेऽष्टप्रदेशो रुचकोऽस्ति। तस्य प्रतरद्वयस्य मध्ये एकस्मादधस्तनप्रतरादारभ्याधोऽभिमुखं नव योजनशतानि परिहृत्य परतः सातिरेकसप्तरज्ज्वायतोऽधोलोकः। अथवा-अधः शब्दोऽशुभार्थकः तत्र च क्षेत्रप्रभावाद् बाहुल्येनाशुभएव द्रव्याणां परिणामो भवति। अशुभपरिणामिद्रव्यवत्त्वादेव स लोकः अधोलोक इत्युच्यते। उक्तं च-

'अहव अहोपरिणामो खेत्ताणुभावेण जेण ओसण्णं प्रायः।
असुभो अहोत्ति भणिओ दव्वाणं तेणऽहोलोगो॥"

छाया-अथवा अधः परिणामः क्षेत्रानुभावेन येनोत्सन्नम्।
अशुभोऽध इति भणितो द्रव्याणां तेनाधोलोकः॥इति॥

कायों से व्याप्त है लोक के अधः मध्य और ऊर्ध्व इस प्रकार से ये तीन विभाग हैं। इस रत्नप्रभा पृथिवीपर बहु समभूभागवाले मेरु पर्वत के मध्य में आकाश के दोप्रतरों में अर्थात् दो दो प्रदेशों के वर्ग में आठ रुचक प्रदेश हैं। उस प्रतरद्वय में से एक अधस्तन प्रतर से ले कर नीचे की नौ सौ योजन की गहराई को छोड़कर उसके आगेनीचे कुछ अधिक सात राजू विस्तारवाला अधोलोक है। अथवा-अधः शब्द अशुभ अर्थ का वाचक है। उस अधोलोक में क्षेत्र के प्रभाव से अधिकतर अशुभ ही द्रव्यों का परिणाम होता है। इसलिये अशुभ परिणामवाले द्रव्यों से युक्त होने से कहा जाता है यही बात उक्तंच करके "अहव अहो परिणामो" इत्यादि गाथा द्वारा निर्दिष्ट की गई है। तथा उसी प्रकार द्रव्यमें से एक उपरितन प्रतर से लेकर ऊंचे नौ सौ

વ્યાપ્ત છે. લોકના ત્રણ વિભાગ નીચે પ્રમાણે છે-(૧) અધઃ (૨) મધ્ય અને (૩) ઉર્ધ્વ આ રત્નપ્રભા પૃથ્વી પર બહુસમભૂભાગવાળા મેરુ પર્વતના મધ્યમાં આકાશના બે પ્રતરોમાં-એટલે કે બબ્બે પ્રદેશોના વર્ગમાં આઠ રુચકપ્રદેશ છે. તે બે પ્રતરમાંના એક અધસ્તન પ્રતરથી લઈને નીચે ૯૦૦ યોજનની ઊંડાઈને પાર કરવાથી સાત રાજૂ કરતાં અધિક વિસ્તારવાળો અધોલોક આવે છે અથવા 'અધઃ' પદ અશુભ અર્થનું વાચક છે. તે અધોલોકમાં ક્ષેત્રના પ્રભાવને લીધે અધિકતર અશુભ દ્રવ્યપરિણામ જ હોય છે. આ રીતે અશુભ પરિણામવાળાં દ્રવ્યોથી યુક્ત હોવાને કારણે તે લોકને અધોલોકને નામે ઓળખવામાં આવે છે. એજ વાત સૂત્રકારે "अहव अहो परिणामो" ઇત્યાદિ ગાથા દ્વારા પ્રકટ કરી છે.

तथाच-तस्यैव रुचकप्रतरद्वयस्य मध्ये एकस्मादुपरितनप्रतरादारभ्योर्ध्वं नव योजनशतानि परिहृत्य परतः किंचिन्न्यूनसप्तरज्ज्वायतऊर्ध्वलोकः। ऊर्ध्वम्-उपरिव्यवस्थापितो लोक ऊर्ध्वलोकः। अथवा-ऊर्ध्वशब्दः शुभपर्यायः। तत्र क्षेत्रप्रभावाद् द्रव्याणां प्रायः शुभाएव परिणामा भवन्ति। अतः शुभपरिणामि द्रव्ययोगादूर्ध्वः शुभो लोकः-

उक्तंच-" उड्ढंति उवरि जंचिय सुभखित्तं खेत्तओ य दव्वगुणा।
उप्पज्जंति सुभा वा तेण तओ उड्ढलोगोत्ति॥"

छाया-ऊर्ध्वमिति उपरि यदेव शुभं क्षेत्रं क्षेत्रतश्च द्रव्यगुणाः।
उत्पद्यन्ते शुभा वा तेन स ऊर्ध्वलोक इति॥ इति।

तथा च-पूर्वोक्तयोरधोलोकोर्ध्वलोकयोरन्तराले ऽष्टादश योजनशतानि तिर्यग्लोकः। समयपरिभाषया तिर्यग् मध्ये व्यवस्थितो लोकः तिर्यग्लोकः। अथवा-तिर्यक्छब्दो

योजन छोड़कर ऊसके आगेऊपर कुछ कम सात राजू लंबा ऊर्ध्वलोक है। ऊपर रहा हुआ जो लोक है उसका नाम ऊर्ध्वलोक है। अथवा-ऊर्ध्वशब्द यहां शुभ अर्थ का वाचक है। उस ऊर्ध्वलोक में क्षेत्र के प्रभाव से द्रव्यों के परिणाम प्रायः शुभ ही होते हैं इसलिये शुभ परिणामवाले द्रव्यों के संबन्ध से शुभलोक का नाम ऊर्ध्वलोक है। यही बात यहा उक्तंच करके " उड्ढंति उवरि " इत्यादि गाथा द्वारा प्रकट की गई है। इन पूर्वोक्त अधोलोक और ऊर्ध्वलोक के बीच में १८ सौ योजन प्रमाणवाला तिर्यग्लोक-मध्यलोक है। सिद्धान्त की परिभाषा के अनुसार यहां तिर्यग् शब्द का अर्थ मध्य है। इसलिये मध्य में व्यवस्थित हुए लोक का नाम तिर्यग् मध्य-लोक है। अथवा-तिर्यग्

ઉપર જે બે પ્રતરની વાત કરી છે તેમાંના એક ઉપરિતન પ્રતરથી લઈને ૯૦૦ યોજન ઊંચે જવાથી સાત રાજૂ કરતાં સહેજ ઓછા વિસ્તારવાળો ઉર્ધ્વલોક આવે છે. તે લોક ઊંચે આવેલો હોવાથી તેનું નામ ઉર્ધ્વલોક છે. અથવા 'ઉર્ધ્વ' શબ્દ અહીં શુભ અર્થનો વાચક છે તે ઉર્ધ્વલોકમાં ક્ષેત્રના પ્રભાવથી દ્રવ્યોનું પરિણામ સામાન્ય રીતે શુભ જ હોય છે આ રીતે શુભ પરિણામવાળાં દ્રવ્યોથી યુક્ત હોવાને કારણે તે લોકનું નામ ઉર્ધ્વલોક પડયું છે. એજ વાત સૂત્રકારે નીચેની ગાથા દ્વારા વ્યક્ત કરી છે- "उड्ढंति उवरि" ઇત્યાદિ આ પૂર્વોકત અધોલોક અને ઉર્ધ્વલોકની વચ્ચે ૧૮ સો યોજનના પ્રમાણવાળો તિર્યગ્લોક-મધ્યલોક છે. સિદ્ધાંતની પરિભાષા પ્રમાણે અહીં 'તિર્યગ્' પદનો અર્થ 'મધ્ય' થાય છે. તેથી મધ્યમાં રહેલા લોકનું નામ તિર્યગ્ (મધ્ય) લોક પડયું છે અથવા 'તિર્યગ્' આ પદ

मध्यमपर्यायः। तत्र च क्षेत्रप्रभावात् प्रायो मध्यमपरिणामवन्त्येव द्रव्याणि संजायन्ते, अतस्तद्योगात् तिर्यक्-मध्यमो लोकस्तिर्यग्लोकः। यद्वाऽस्य लोकस्य ऊर्ध्वाधोभागापेक्षया तिर्यग्लोक एव विशालतया प्रधानम्। 'प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति'। इति न्यायमनुसृत्यायं लोकोऽपि 'तिर्यग्लोकः' इत्युच्यते। उक्तंच-

"मज्झणुभावं खेत्तं जं तं तिरियंति वयणपज्जवओ।
भण्णइ तिरियं विसालं अतो व तं तिरियलोगोत्ति॥"

छाया-मध्यानुभावं क्षेत्रं यत् तत्तिर्यगिति वचनपर्यवात्।
भण्यते तिर्यग् विशालमतो वा स तिर्यग्लोक इति॥इति।

अत्र जघन्यपरिणामि द्रव्ययोगात् जघन्यतया चतुर्दशगुणस्थानकेषु मिथ्यादृष्टेरिव आदावेव अधोलोकस्योपन्यासः। ततो मध्यमपरिणामि द्रव्ययोगान्मध्यमत्वेन

शब्द यहां मध्यम पर्याय का वाचक है। इस मध्यलोक में क्षेत्र के प्रभाव से प्रायः मध्य परिणामवाले ही द्रव्य होते हैं। इसलिये इन मध्यम परिणामवाले द्रव्यों के संयोग से तिर्यग्-मध्यम-जो लोक है उसका नाम तिर्यग्लोक है। अथवा-इस लोक में अपने ऊर्ध्व और अधो भाग की अपेक्षा से तिर्यक् लोक ही विशाल है इसलिये विशालता की अपेक्षा वही प्रधान है। और ऐसा न्याय है कि जो प्रधान होता है उसी के अनुसार व्यपदेश-नाम चलता है। इसलिये इस लोक को तिर्यग् लोक इस नाम से कह दिया गया है। उक्तंच करके यही बात "मज्झणुभावं इत्यादि गाथा द्वारा स्पष्ट किया गया है। यहां जो सूत्र में सर्वप्रथम अधोलोक का उपन्यास किया गया है सो उसका कारण यह है कि वहांपर प्रायः जघन्य परिणाम वाले द्रव्यों का ही संबंध रहा करता-है। इसलिये

મધ્યમપર્યાયનું વાચક છે આ મધ્યલોકમાં ક્ષેત્રના પ્રભાવથી સામાન્ય રીતે મધ્યમ પરિણામવાળાં દ્રવ્યો જ હોય છે. આ મધ્યમ પરિણામવાળાં દ્રવ્યોથી યુક્ત હોવાને કારણે તિર્યગ્-મધ્યમ જે લોક છે તેનું નામ તિર્યગ્લોક પડયું છે. અથવા આ લોકના ઉર્ધ્વ અને અધોભાગ કરતાં તિર્યગ્લોક જ વધારે વિશાળ છે તે કારણે તિર્યગ્લોકને જ મુખ્ય ગણી શકાય એવો નિયમ છે કે જે પ્રધાન હોય તેને નામે જ વ્યવહાર ચાલે છે. તેથી આ લોકને "તિર્યગ્લોક" આ પ્રકારનું નામ આપવામાં આવ્યું છે. સૂત્રકારે "मज्झणुभावं" ઇત્યાદિ ગાથા દ્વારા એજ વાત વ્યક્ત કરી છે.

અહીં સૂત્રકારે સૌથી પહેલાં અધોલોકનું કથન કર્યું છે, કારણ કે અધોલોકમાં સામાન્યતઃ જઘન્ય પરિણામવાળાં દ્રવ્યોનો જ સદ્ભાવ રહે છે.

तिर्यग्लोकस्योपन्यासः। ततश्च उत्कृष्ट द्रव्यवत्त्वादूर्ध्वलोकस्योपन्यासः, इति पूर्वानुपूर्व्याः क्रमो बोध्यः। पश्चानुपूर्व्यां तु पूर्वानुपूर्व्या व्युत्क्रमो बोध्यः। अनानुपूर्व्यां तु पदत्रयस्य षड्भङ्गा भवन्ति, ते च पूर्वं दर्शिता एव। शेषभावना त्विह प्राग्वदेव बोध्या ॥सू० १२०॥

सम्प्रति शिष्यबुद्धिवैशद्यार्थम् अधोलोक क्षेत्रानुपूर्व्यादि दर्शयितुमाह-

मूलम्-अहोलोअ खेत्ताणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा-पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी अणाणुपुव्वी। से किं तं पुव्वाणुपुव्वी! पुव्वाणुपुव्वी-रयणप्पभा सक्करप्पभा वालुअप्पभा पंकप्पभा धूमप्पभा तमप्पभा तमतमप्पभा। से तं पुव्वाणुपुव्वी? से किं तं पच्छाणुपुव्वी! पच्छाणुपुव्वी-तमतमा जाव

जिस प्रकार चौदह गुण स्थानों में जघन्य होने से मिथ्यादृष्टि गुणस्थान का सर्व प्रथम उपन्यास करने में आया है इसीप्रकार यहांपर भी जघन्य होने से अधोलोक का उपन्यास करने में आया है। तथा मध्यम परिणाम वाले द्रव्यों के संबंध को लेकर मध्यम होने के कारण तिर्यग् लोक का और उत्कृष्ट द्रव्यवाला होने के कारण ऊर्ध्वलोक का क्रमशः उपन्यास किया गया है यह पूर्वानुपूर्वी का क्रम है। और जो पश्चानुपूर्वी है उसमें पूर्वानुपूर्वी का व्युत्क्रम रहा करता है। तथा अनानुपूर्वी में इन तीन पदों के ६ भंग होते हैं ये पहिले दिखला ही दिये गये हैं। शेष भावना यहां पहिले की तरह ही जाननी चाहिये॥ सू० १२०॥

જેવી રીતે ૧૪ ગુણસ્થાનોનું વર્ણન કરતી વખતે જઘન્ય એવાં મિથ્યાદૃષ્ટિ ગુણસ્થાનનું વર્ણન સૌથી પહેલાં કરવામાં આવે છે, એજ પ્રમાણે જઘન્ય હોવાને કારણે અધોલોકનું વર્ણન પણ સૌથી પહેલાં કરવામાં આવ્યું છે. મધ્ય પરિણામવાળાં દ્રવ્યોથી યુક્ત હોવાને કારણે તિર્યગ્લોકનો ઉપન્યાસ (વર્ણન) ત્યાર બાદ કરવામાં આવ્યો છે, અને ઉત્કૃષ્ટ દ્રવ્યપરિણામવાળા ઉર્ધ્વલોકનો ઉપન્યાસ (વર્ણન) ત્યાર બાદ કરવામાં આવ્યો છે. આ પૂર્વાનુપૂર્વીનો ક્રમ છે પશ્ચાનુપૂર્વીમાં પૂર્વાનુપૂર્વી કરતાં ઉલટો ક્રમ રહે છે, તથા અનાનુપૂર્વીમાં આ ત્રણ પદોના ૬ ભંગ (વિકલ્પો) થાય છે, તે ભંગો પહેલા બતાવવામાં આવ્યા છે બાકીનું કથન પહેલાના કથન પ્રમાણે જ અહીં સમજવું જોઇએ. ॥સૂ૦ ૧૨૦॥

रयणप्पभा। से तं पच्छाणुपुव्वी। से किं तं अणाणुपुव्वी? अणाणुपुव्वी एयाए चेव एगाइयाए इगुत्तरियाए सत्तगच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दुरूवूणो। से तं अणाणुपुव्वी ॥सू० १२१॥

छाया—अधोलोक क्षेत्रानुपूर्वी त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी अनानुपूर्वी। अथ का सा पूर्वानुपूर्वी? पूर्वानुपूर्वी-रत्नप्रभा शर्कराप्रभा वालुकाप्रभा पङ्कप्रभा धूमप्रभा तमःप्रभा तमस्तमःप्रभा। अथ का सा पश्चानुपूर्वी? पश्चानुपूर्वी-तमस्तमा यावद् रत्नप्रभा सैषा पश्चानुपूर्वी। अथ का सा अनानुपूर्वी? अनानुपूर्वी एतस्यामेव एकादिकायामेकोत्तरिकायां सप्तगच्छगतायां श्रेण्याम् अन्योऽन्याभ्यासो द्विरूपोनः ॥सू० १२१॥

अब सूत्रकार शिष्यजनों की बुद्धि की विशदता के निमित्त अधोलोक क्षेत्रानुपूर्वी आदि को दिखलाते हैं—'अहोलोए खेत्ताणुपुव्वी' इत्यादि।

शब्दार्थ-(अहोलोअ खेत्ताणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता) अधोलोक क्षेत्रानुपूर्वी तीन प्रकार की कही गई है-(तंजहा) जैसे (पुव्वाणुपुव्वी, पच्छाणुपुव्वी, अणाणुपुव्वी) पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी और अनानुपूर्वी (से किं तं पुव्वाणुपुव्वी) हे भदन्त! पूर्वानुपूर्वी क्या है?

उत्तर-(पुव्वाणुपुव्वी) अधोलोक पूर्वानुपूर्वी इस प्रकार है-(रयणप्पभा, सक्करप्पभा, वालुअप्पभा, पंकप्पभा, धूमप्पभा, तमप्पभा, तम तमप्पभा) रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा, और तमस्तमःप्रभा, इनमे जो पहिली नरक पृथवी

શિષ્યોને આ વાત બરાબર સમજાય તે ઉદ્દેશથી સૂત્રકાર હવે અધોલોક ક્ષેત્રાનુપૂર્વી આદિનું નિરૂપણ કરે છે—"अहोलोअ खेत्ताणुपुव्वी" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(अहोलोअ खेत्ताणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता) અધોલોક ક્ષેત્રાનુપૂર્વી ત્રણ પ્રકારની કહી છે (तंजहा) તે ત્રણ પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે-(पुव्वाणुपुव्वी, पच्छाणुपुव्वी, अणाणुपुव्वी) પૂર્વાનુપૂર્વી, પશ્ચાનુપૂર્વી, અને અનાનુપૂર્વી.

પ્રશ્ન-(से किं तं पुव्वाणुपुव्वी?) હે ભગવન્! અધોલોક પૂર્વાનુપૂર્વી કેવી છે?

ઉત્તર-(पुव्वाणुपुव्वी) અધોલોક પૂર્વાનુપૂર્વી આ પ્રકારની છે-(रयणप्पभा सक्करप्पभा, वालुअप्पभा, पंकप्पभा, धूमप्पभा, तमप्पभा, तमतमप्पभा) રત્નપ્રભા, શર્કરાપ્રભા, વાલુકાપ્રભા, પંકપ્રભા, ધૂમપ્રભા, તમઃપ્રભા તમસ્તમઃપ્રભા, આ ક્રમે સાતે પૃથ્વીઓનો ઉપન્યાસ કરવો તેનું નામ અધોલોક પૂર્વાનુપૂર્વી છે. પહેલી નરકપૃથ્વીનું નામ રત્નપ્રભા પડવાનું કારણ એ છે કે ત્યાં નારકોનાં

टीका—'अहोलोअखेत्ताणुपुव्वी' इत्यादि।

अधोलोक क्षेत्रानुपूर्वी हि-पूर्वानुपूर्व्यादि भेदैस्त्रिविधा प्रज्ञप्ता। तत्र पूर्वानुपूर्वी-नारकजीवनिवासस्थानातिरिक्तस्थानेषु इन्द्रनीलादि बहुविधरत्नानां प्रभायाः सत्त्वात् प्रथमा नरकपृथिवी रत्नप्रभेत्युच्यते। द्वितीया शर्कराप्रभा। इयं हि शर्कराणाम्-उपलखण्डानां प्रभावत् प्रभावत्त्वेन शर्कराप्रभेत्युच्यते। तृतीया-वालुकाप्रभा। वालुकायाः-सिकतायाः प्रभावत् प्रभावत्त्वेनैषा वालुकाप्रभेत्युच्यते। एवमेव-पङ्कस्य='कीचड' इति लोकप्रसिद्धस्य, धूमस्य='धूँआ' इति लोकप्रसिद्धस्य, तमसः=अन्धकारस्य कृष्णद्रव्यस्य, तमस्तमसः=महान्धकारस्य-निबिडकृष्णवर्णद्रव्यस्य च प्रभावत् प्रभावत्त्वेन तत्तत्पृथिवी पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा, तम-

---

है उसका नाम रत्नप्रभा इसलिये हुआ है कि नारक जीवों के निवास स्थानों के अतिरिक्त स्थानों में वहां इन्द्रनील आदि अनेक प्रकार के रत्नों की कान्तिका सद्भाव है। शर्कराप्रभा, नाम की जो द्वितीय भूमि है उसकी प्रभा शर्करों-पाषाण खंडों की प्रभा जैसी है। वालुकाप्रभा नाम की जो तृतीय भूमि है उसकी कान्ति रेत की प्रभा के समान है। पंकप्रभा नाम की चौथी भूमि है उसकी प्रभा कीचड़ की प्रभा के समान है। धूमप्रभा नाम की पांचवी भूमि की प्रभा धूमां की प्रभा जैसी है। तमः प्रभा नामकी छट्ठी भूमि की प्रभा कृष्ण द्रव्यरूप जो अंधकार है उसकी प्रभा के जैसी है। और जो सातवीं भूमि तमस्तमःप्रभा है, उसकी कान्तिगाढ कृष्ण द्रव्यरूप जो महांधकार है उसकी कान्ति जैसी है इस प्रकार पूर्वानुपूर्वी में रत्नप्रभा शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पंक

નિવાસસ્થાનો સિવાયનાં સ્થાનોમાં ઈન્દ્રનીલ આદિ અનેક પ્રકારનાં રત્નોની કાન્તિનો સદ્ભાવ છે. બીજી નરકપૃથ્વીની કાન્તિ કાંકરાઓની કાન્તિ જેવી હોવાથી તેનું નામ શર્કરાપ્રભા છે. ત્રીજી નરકપૃથ્વીની કાન્તિ રેતીની કાન્તિના જેવી હોવાથી તેનું નામ વાલુકાપ્રભા છે. ચોથી પૃથ્વીની પ્રભા પંક (કાદવ)ના જેવી હોવાથી તેનું નામ પંકપ્રભા પડયું છે. પાંચમી પૃથ્વીની પ્રભા ધુમાડાના જેવી હોવાથી તેનું નામ ધૂમપ્રભા પડયું છે. છઠ્ઠી પૃથ્વીની પ્રભા કૃષ્ણદ્રવ્ય રૂપ અંધકારના જેવી હોવાથી તેનું નામ તમઃપ્રભા છે. સાતમી પૃથ્વીની કાન્તિ ગાઢ-અતિશય કૃષ્ણદ્રવ્ય રૂપ મહાન્ધકારની કાન્તિ જેવી હોવાથી તેનું નામ તમસ્તમઃપ્રભા છે આનુપૂર્વીમાં આ ક્રમે સાતે પૃથ્વીઓનો ઉપન્યાસ થાય છે.

रतमः-प्रभेति क्रमेण नाम्ना व्यपदिश्यते। एषा पूर्वानुपूर्वी। पश्चानुपूर्व्यां तु तमस्तमा इत्यारभ्य रत्नप्रभेत्यन्तं व्युत्क्रमेण व्यवस्थापना बोध्या। अनानुपूर्व्यां तु एषां सप्तानां पदानामन्योन्याभ्यासे चत्वारिंशदधिकाः पञ्चसहस्रसंख्यकाः पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वीरूपाऽऽद्यन्तभङ्गद्वयविवक्षारहिता भङ्गा बोध्याः ॥सू० १२१॥

मूलम्-तिरियलोय खेत्ताणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा-पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी अणाणुपुव्वी। से किं तं पुव्वाणुपुव्वी? पुव्वाणुपुव्वी-"जंबुद्दीवे लवणे, धायइ कालोय पुक्खरे वरुणे। खीर घय खोय नंदी, अरुणवरे कुंडले रुअगे ॥१॥ आभरणवत्थगंधे, उप्पलतिलए य पुढविनिहिरयणे। वासहरदहनईओ, विजयावक्खारकप्पिंदा ॥२॥ कुरुमंदर आवासा, कूडा नक्खत्त-

प्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और तमस्तमः प्रभा, इस प्रकार इन सात भूमियों का उपन्यास होता है। तथा पश्चानुपूर्वी में तमस्तमःप्रभा से लेकर रत्नप्रभा तक व्युत्क्रम से इन भूमियों का उपन्यास किया जाता है। अनानुपूर्वी में इन सात पदों का १-२-३-४-५-६-७ इस रूप से उपन्यास किया जाता है। फिर बाद में आपस में इनका गुणा किया जाता है। इस प्रकार गुणा करने पर जो राशि उत्पन्न होती है उसमें से आदि अन्त दो भंग कर दिये जाते हैं। इन सात पदों का परस्पर गुणा होने पर ५०४० भंग होते हैं। इनमें से पूर्वानुपूर्वी और पश्चानुपूर्वीरूप दो आदि अन्त के भंग कम कर दिये जाते हैं। इस प्रकार यह अधोलोक संबंधी अनानुपूर्वी है। ॥ सू० १२१ ॥

પશ્ચાનુપૂર્વીમાં તમસ્તમઃપ્રભાથી લઇને રત્નપ્રભા સુધીના ઊલટા ક્રમે સાતે પૃથ્વીઓનો ઉપન્યાસ કરવામાં આવે છે. અનાનુપૂર્વીમાં આ સાત પદોનો ૧, ૨, ૩, ૪, ૫, ૬, ૭ આ રૂપે વર્ણન કરવામાં આવે છે, ત્યાર બાદ પરસ્પરમાં તેમનાં ગણું કરવામાં આવે છે આ પ્રમાણે ગણું કરવાથી જે રાશિ ઉત્પન્ન થાય છે તેમાંથી આદિ અને અન્તના બે ભંગો (વિકલ્પો) બાદ કરવામાં આવે છે આ સાત પદોનો પરસ્પર ગુણાકાર થવાથી ૫૦૪૦ ભંગ થાય છે તેમાંથી પૂર્વાનુપૂર્વી અને પશ્ચાનુપૂર્વી રૂપ આદિ અન્તના બે ભંગ ઓછાં કરવામાં આવે છે. અધોલોક સંબંધી અનાનુપૂર્વી આ પ્રકારની છે. ॥સૂ૦ ૧૨૧॥

चंदसूराय । देवे नागे जक्खे भूए य सयंभूरमणे य ॥३॥ से तं पुव्वाणुपुव्वी। से किं तं पच्छाणुपुव्वी? पच्छाणुपुव्वी–सयंभूरमणे य जाव जंबुद्दीवे। से तं पच्छाणुपुव्वी। से किं तं अणाणुपुव्वी? अणाणुपुव्वी एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए असंखेज्जगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवूणो। से तं अणाणुपुव्वी॥सू० १२२॥

छाया—तिर्यग्लोक क्षेत्रानुपूर्वी त्रिविधा प्रज्ञप्ता तद्यथा–पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी, अनानुपूर्वी। अथ का सा पूर्वानुपूर्वी? पूर्वानुपूर्वी जम्बूद्वीपो लवणो धातकी कालोदः पुष्करः वरुणः। क्षीरः घृतः क्षोदः नन्दी अरुणवरः कुण्डलः रुचकः। आभरणवस्त्रगन्धाः उत्पलतिलकं च पृथिवीनिधिरत्नम्। वर्षधरह्रदनद्यो विजया

"तिरियलोयखेत्ताणुपुव्वी" इत्यादि

शब्दार्थ–(तिरियलोयखेत्ताणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता) तिर्यग्लोक क्षेत्रानुपूर्वी तीन प्रकार की कही गई है। (तं जहा) वे प्रकार ये हैं–(पुव्वाणुपुव्वी, पच्छाणुपुव्वी, अणाणुपुव्वी) पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी और अनानुपूर्वी। (से किं तं पुव्वाणुपुव्वी?) हे भदन्त! पूर्वानुपूर्वी क्या है? (पुव्वाणु पुव्वी)

उत्तर–पूर्वानुपूर्वी इस प्रकार से है–जंबुद्दीवे लवणे, धायई कालोय पुक्खरे वरुणे। खीर–घय–खोय नंदी–अरुणवरे कुंडले रुअगे ॥ १ ॥

"आभरणवत्थगंधे, उप्पलतिलए य पुढवि निहिरयणे। वासहरदह-नईओ, विजया वक्खारकप्पिंदा ॥ २ ॥ जंबुद्वीप, लवणसमुद्र धातकी

" तिरियलोयखेत्ताणुपुव्वी " ઇત્યાદિ

શબ્દાર્થ-(तिरियलोयखेत्ताणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता) તિર્યગ્લોક ક્ષેત્રાનુપૂર્વી ત્રણ પ્રકારની કહી છે. (तंजहा) તે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે–(पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी, अणाणुपुव्वी) પૂર્વાનુપૂર્વી, પશ્ચાનુપૂર્વી અને અનાનુપૂર્વી.

પ્રશ્ન-(से किं तं पुव्वाणुपुव्वी ?) હે ભગવન્! પૂર્વાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર–(पुव्वाणुपुव्वी) તિર્યગ્લોક સંબંધી પૂર્વાનુપૂર્વી આ પ્રકારની છે–

(जंबुद्दीवे लवणे, धायई कालो य पुक्खरे वरुणे।
खीर–घयखोय–नंदी–अरुणवरे कुंडले रुअगे ॥१॥
आभरणवत्थगंधे, उप्पलतिलए य पुढविनिहिरयणे।
वासहर दहनईओ, विजयावक्खारकप्पिंदा ॥२॥

જંબૂદ્વીપ, લવણસમુદ્ર, ધાતકી ખંડ, કાલોદસમુદ્ર, પુષ્કરદ્વીપ,

वक्षस्कारकल्पेन्द्राः। कुरुमन्दरआवासा कूटा नक्षत्रचन्द्रसूर्याश्च। देवो नागो यक्षो भूतश्च स्वयम्भूरमणश्च। सैषा पूर्वानुपूर्वी। अथ का सा पश्चानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी–स्वयंभूरमणश्च यावज्जम्बूद्वीपः। सैषा पश्चानुपूर्वी। अथ का सा अनानुपूर्वी? अनानुपूर्वी–एतस्यामेव एकादिकायामेकोत्तरिकायामसंख्येयगच्छगतायां श्रेण्या मन्योन्याभ्यासो द्विरूपोनः। सैषा अनानुपूर्वी ॥सू० १२१॥

टीका—'तिरियलोअ' इत्यादि।

तिर्यग्लोकक्षेत्रानुपूर्वी अपि पूर्वानुपूर्व्यादिभेदेन त्रिविधा विज्ञेया। तत्र जम्बूद्वीपेत्यारभ्य स्वयंभूरमणेत्यन्तं पूर्वानुपूर्वी बोध्या। तत्र–जम्बूद्वीपो जम्बूवृक्षोपलक्षितो द्वीपो बोध्यः ततस्तं परिवेष्टय स्थितो लवणरसवज्जलपूरितो लवणसमुद्रः। लवणसमुद्रं परिवेष्टय धातकीवृक्षोपलक्षितो धातकीद्वीपः। ततस्तं परिवेष्टय शुद्धजलरसास्वादवान् कालोदः समुद्रः। तं परिवेष्टय स्थितः पुष्करैरुपलक्षितः पुष्करद्वीपः। पुष्करद्वीपं परिवेष्टय स्थितः शुद्ध जलरसास्वादवान् पुष्करोदः समुद्रः। तं परिवेष्टय स्थितो वरुणो द्वीपः। ततो वारुणीरसास्वादो वारुणोदः समुद्रः। ततः क्षीरद्वीपः। ततश्च क्षीरोदः समुद्रः। ततश्च घृतद्वीपः। ततो घृतोदः समुद्रः। तत इक्षुद्वीपः। ततश्च इक्षुरसास्वाद इक्षुरसोदः समुद्रः। ततो नन्दी–नन्दीश्वरद्वीपः। ततो नन्दीश्वरसमुद्रः। ततोऽरुणवरो

खंड, कालोदसमुद्र पुष्करद्वीप, पुष्करोदसमुद्र, वरुणद्वीप, वारुणोदसमुद्र क्षीरद्वीप, क्षीरोदसमुद्र, घृतद्वीप' घृतोदसमुद्र, इक्षुद्वीप, इक्षुरसोदसमुद्र, नन्दीद्वीप नन्दीसमुद्र अरुणवरद्वीप अरुणवरसमुद्र कुण्डलद्वीप, कुन्डलसमुद्र, रुचकद्वीप, रुचकसमुद्र,। इसके बाद असंख्यातद्वीप और असंख्यात समुद्र हैं। सब से अन्तिम द्वीप स्वयंभूरमण द्वीप और सबसे अन्तिमसमुद्र स्वयंभूरमण समुद्र हैं। अनुक्त इन द्वीपसमुद्रों के नाम आभरण, वस्त्र, गंध, उत्पल तिलक आदि से उपलक्षित हैं अर्थात् स्वयंभूरमणसमुद्र पर्यन्त जो और द्वीप और समुद्र

પુષ્કરોદસમુદ્ર, વરુણદ્વીપ, વારુણોદસમુદ્ર, ક્ષીરદ્વીપ, ક્ષીરોદસમુદ્ર, ઘૃતદ્વીપ, ઘૃતોદસમુદ્ર, ઇક્ષુદ્વીપ, ઇક્ષુરસોદસમુદ્ર, નન્દીદ્વીપ, નન્દીસમુદ્ર, અરુણવરદ્વીપ, અરુણવરસમુદ્ર, કુંડલદ્વીપ, કુંડલસમુદ્ર, રુચકદ્વીપ, રુચકસમુદ્ર, ત્યાર બાદ અસંખ્યાત દ્વીપો અને અસંખ્યાત સમુદ્રો છે. સૌથી છેલ્લો દ્વીપ સ્વયંભૂરમણદ્વીપ, અને સૌથી છેલ્લો સમુદ્ર સ્વયંભૂરમણસમુદ્ર છે. અનુક્ત (જેનાં નામો અહીં કહ્યાં નથી એવા) દ્વીપસમુદ્રોનાં નામ આભરણ, વસ્ત્ર, ગંધ, ઉત્પલ, તિલક આદિથી ઉપલક્ષિત છે. એટલે કે રુચકસમુદ્રથી લઈને સ્વયંભૂરમણ સમુદ્ર સુધીમાં અનુક્રમે આભરણદ્વીપ, આભરણસમુદ્ર, વસ્ત્રદ્વીપ, વસ્ત્રસમુદ્ર, ગંધદ્વીપ, ગંધસમુદ્ર, ઉત્પલદ્વીપ, ઉત્પલસમુદ્ર, તિલકદ્વીપ, તિલક-

द्वीपः। ततश्चारुणवरसमुद्रः। ततः कुण्डलद्वीपः। ततश्च कुण्डलसमुद्रः। ततो रुचकद्वीपः। ततश्च रुचकसमुद्रः। तथा-असंख्येयानाम् असंख्येयानाम् द्वीपानामन्ते आभरणवस्त्रगन्धोत्पलतिलकादिपलक्षिताः आभरणवस्त्रगन्धोत्पलतिलकादि स्वयम्भूरमणान्ताः द्वीपाः, तत्तन्नामानः समुद्राश्च सन्ति। स्वयम्भूरमणसमुद्रः-शुद्धोदकरसास्वादः। मूले पुष्कराद्यारभ्य स्वयम्भूरमणान्ताः शब्दा द्वीपसमुद्रोभयवाचका

हैं उनके नाम आभरण आदि के ऊपर हैं। जो द्वीप का नाम है वही नाम बेढे हुए समुद्र का है। स्वयंभूरमण समुद्र के जलका स्वाद शुद्धोदक रसास्वाद जैसा है मूल में-पुष्कर से लेकर स्वयंभूरमण तक के शब्द द्वीप और समुद्र के वाचक हैं। तात्पर्य कहनेका यह है। कि रुचकद्वीप और रुचकसमुद्र के आगे आभरण द्वीप और आभरणसमुद्र है। इसके बाद-वस्त्र द्वीप और वस्त्र समुद्र है। इसके आगे गंध द्वीप और गंध समुद्र है इसी प्रकार से उत्पल, तिलक पृथिवी निधि, रत्न वर्षधर, ह्रद, नदी, विजय वक्षस्कार, कल्पेन्द्र (कूरु मंदर आवासा कूडा-नक्खत्तचंदसूरा य देवे नागे जक्खे भूए य सयंभूरमणे य ३) कुरु, मन्दर आवासकूट, नक्षत्र, चन्द्र सूर्य देव, नाग यक्ष भूत, और स्वयंभूरमण इन नामों वाले असंख्यात द्वीप और असंख्यात समुद्र है। जंबूद्वीप नाम का जो द्वीप है, वह जंबूवृक्ष से युक्त है। इसलिये इसका नाम जंबूद्वीपहुआ है। इस जंबूद्वीप को वेष्टित हुए गोल चूड़ी के आकार के आकार जैसा लवण-

---

સમુદ્ર આદિ અસંખ્યાત દ્વીપસમુદ્રો આવેલા છે. દ્વીપોનાં જે નામો છે, એજ નામો તેમને વીંટળાયેલા સમુદ્રોના માટે પણ વપરાયાં છે.

સ્વયંભૂરમણ સમુદ્રનું પાણી શુદ્ધ પાણીના જેવાં સ્વાદવાળું છે. પુષ્કરથી લઈને સ્વયંભૂરમણ પર્યન્તના શબ્દો દ્વીપો અને સમુદ્રો-બન્નેનાં વાચક છે એમ સમજવું આ કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે રુચકદ્વીપ અને રુચકસમુદ્રથી આગળ જતાં આભરણદ્વીપ અને આભરણસમુદ્ર આવે છે, ત્યાર બાદ વસ્ત્રદ્વીપ અને વસ્ત્રસમુદ્ર આવે છે, ત્યાર બાદ ગંધદ્વીપ અને ગંધસમુદ્ર આવે છે, ત્યાર બાદ ઉત્પલ, તિલક, પૃથ્વીનિધિ, રત્નવર્ષધર, હ્રદનદી, વિજયવક્ષસ્કાર, કલ્પેન્દ્ર (કુરુમંદર આવાસા કૂડાનક્ખત્તચંદસૂરા ય, દેવે નાગે જક્ખે ભૂએ ય સયંભૂરમણે ય ॥૩॥) કુરુ, મન્દર, આવાસકૂટ, નક્ષત્ર, ચન્દ્ર, સૂર્ય, દેવ, નાગ, યક્ષ, ભૂત અને સ્વયંભૂરમણ આ નામોવાળાં અસંખ્યાત દ્વીપો અને અસંખ્યાત સમુદ્રો આવે છે. જંબૂદ્વીપ નામનો જે દ્વીપ છે તે જંબૂવૃક્ષથી યુક્ત હોવાને કારણે તેનું નામ જંબૂદ્વીપ છે. આ જંબૂદ્વીપને વેરીને વલયના

बोध्याः ननु मूले असंख्येयानसंख्येयान् द्वीपसमुद्रानुल्लङ्घ्य ये ये द्वीपसमुद्रादयः सन्ति, तेषां नामानि निर्दिष्टानि, किन्त्वन्तरालस्थिता अतिक्रम्यमाणा ये द्वीपा उक्तास्ते किं नामकाः ? इति चेदाह-लोके पदार्थानां शङ्खध्वजकलशस्वस्तिक

समुद्र हैं, इस समुद्र का जल लवण के स्वाद जैसा खारा है। लवणसमुद्र को घेरे हुये धातकी खंडद्वीप है। यह धातकी वृक्ष से उपलक्षित है। इस धातकी द्वीप को घेरे हुए कालोदसमुद्र है। इस जल का स्वाद शुद्ध जल के स्वाद जैसा है, खारा नहीं हैं। इस समुद्र को घेर कर पुष्कर-द्वीप है। यह पुष्करद्वीप को घेर कर उस की चारों ओर पुष्करोद-समुद्र है इसके जल का स्वाद शुद्ध जल के स्वाद जैसा है। इस समुद्र को वेष्टितहुए वरुणद्वीप है। वरुणद्वीप को घेरकर स्थित हुआ वारुणोद समुद्र है। इसके जलका स्वाद वारुणी रस के आस्वाद जैसा है। इसके बाद क्षीरद्वीप है, क्षीरसमुद्र को घेरे हुए घृतद्वीप है। इसके बाद घृतोद-समुद्र है। घृतोदसमुद्र को घेरे हुए इक्षु-द्वीप है। इसके बाद इक्षुरसोद समुद्र है। इक्षुरसोद समुद्र के बाद नन्दीश्वर द्वीप है। और उस द्वीप को घेरे हुए नन्दीश्वरसमुद्र है। फिर अरुणवरद्वीप और अरुणवरसमुद्र है। फिर कुन्डलद्वीप और कुन्डल समुद्र है। बाद में रुचक द्वीप और रुचक समुद्र है। इस प्रकार से आभरण वस्त्र आदि-शुभनाम वाले असंख्यात द्वीप और असंख्यात समुद्र स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त-तक है।—

આકારનો લવણસમુદ્ર આવેલો છે. તે સમુદ્રનું પાણી લવણ (મીઠા)ના જેવાં ખારા સ્વાદવાળું છે. લવણસમુદ્રને ઘેરીને ધાતકીખંડ દ્વીપ આવેલો છે તે ધાતકીદ્વીપ ધાતકી નામના વૃક્ષની યુક્ત હોવાને કારણે તેનું નામ ધાતકીદ્વીપ પડયું છે. આ ધાતકીદ્વીપને ઘેરીને કાલોદસમુદ્ર રહેલો છે. તેનું પાણી ખારું નથી પણ શુદ્ધ જળ જેવા સ્વાદવાળું છે લવણસમુદ્રને ઘેરીને પુષ્કર-દ્વીપ આવેલો છે પુષ્કરોથી યુકત હોવાને કારણે તેનું નામ પુષ્કરદ્વીપ પડયું છે. પુષ્કરદ્વીપને ઘેરીને તેની ચારે તરફ પુષ્કરોદસમુદ્ર આવેલો છે. તેના જળનો સ્વાદ શુદ્ધ જળના સ્વાદ જેવો છે આ સમુદ્રને ઘેરીને વરુણદ્વીપ રહેલો છે અને વરુણદ્વીપને ઘેરીને વારુણોદ સમુદ્ર આવેલો છે. તેના જલનો સ્વાદ વારુણીરસના સ્વાદ જેવો છે. ત્યાર બાદ ક્ષીરદ્વીપ છે, તેને ઘેરીને ક્ષીરોદસમુદ્ર આવેલો છે ક્ષીરસમુદ્રને ઘેરીને ઘૃતદ્વીપ આવેલો છે અને ઘૃતદ્વીપને ઘેરીને ઘૃતોદ સમુદ્ર રહેલો છે. ત્યાર બાદ ઘૃતોદ સમુદ્રને ઘેરીને ઇક્ષુદ્વીપ આવેલો છે અને ઇક્ષુદ્વીપને ઘેરીને ઇક્ષુરસોદ સમુદ્ર આવેલો છે. ઇક્ષુ-સોદ સમુદ્રને ઘેરીને નન્દીશ્વર દ્વીપ રહેલો છે અને નન્દીશ્વર દ્વીપની ચોમેર નન્દીશ્વર સમુદ્ર રહેલો છે ત્યાર બાદ અરુણવરદ્વીપ અને અરુણવર સમુદ્ર આવે છે. ત્યાર બાદ કુંડલદ્વીપ અને કુંડલસમુદ્ર આવે છે ત્યાર બાદ રુચકદ્વીપ અને રુચક સમુદ્ર આવે છે ત્યાર બાદ આભરણ દ્વીપ, આભરણ-

श्रीवत्सादीनि यावन्ति शुभनामानि सन्ति तैः सर्वैरप्युपलक्षिता अन्तरालस्थिता द्वीपसमुद्राः सन्ति।

उक्तंच-"दीवसमुद्दाणं भंते! केवइया नामधिज्जेहिं पण्णत्ता? गोयमा! जावइया लोए सुभा नामा सुभा रूवा सुभा गंधा सुभा रसा सुभा फासा एवइया णं दीवसमुद्दा नामधिज्जेहिं पण्णत्ता।" (जीवा. ३ प्र. ४ उ.)

छाया-द्वीपसमुद्राः खलु भदन्त! कियन्तो नामधेयैः प्रज्ञप्ताः? गौतम! यावन्ति लोके शुभानि नामानि शुभानि रूपाणि शुभाः गन्धाः शुभा रसाः शुभाः स्पर्शाः इयन्तो द्वीपसमुद्रा नामधेयैः प्रज्ञप्ताः। इति। एते हि-असंख्येयसंख्यकाः अनुपदवक्ष्यमाणगाथया प्रतिपादिता द्रष्टव्याः।

शंका-मूल में असंख्यात २ द्वीप समुद्रों को उल्लंघन करके जो जो द्वीप और समुद्र आदि है उनके नाम तो कहे हैं परन्तु जो अंन्तराल में स्थित द्वीप कहे हैं उनके क्या नाम हैं?

उत्तर-लोक में पदार्थोंके शंख, ध्वज, कलश स्वतिक, श्रीवत्स आदि जितने शुभ नाम हैं-उन सबसे उपलक्षित अन्तराल में स्थित हुए द्वीप और समुद्र हैं। उक्तंच करके "दीवसमुद्दाणं इत्यादि" जो सूत्र पाठ दिया गया है उसका यही भाव है-इसमें यही कहा गया है कि लोक में जितने शुभ नाम हैं जितने शुभ रूप हैं, जितने शुभ गंध हैं जितने शुभ रस हैं और जितने शुभ स्पर्श हैं इतने ही द्वीप समुद्र इतने ही

સમુદ્ર, વસ્ત્રદ્વીપ, વસ્ત્રસમુદ્ર, આદિ શુભનામવાળા અસંખ્યાત દ્વીપો અને સમુદ્રો આવે છે છેવટે લવણદ્વીપ અને લવણસમુદ્ર આવે છે.

પ્રશ્ન-મૂળમાં અસંખ્યાત સમુદ્રોને પાર કરિને આગળ વધતાં છેવટે સ્વયંભૂરમણ દ્વીપ અને સ્વયંભૂરમણ સમુદ્ર આવે છે, એવું કહેવામાં આવ્યું છે તેમાંથી કેટલાક દ્વીપો અને સમુદ્રોનાં નામ આપે આ સૂત્રમાં પ્રગટ કર્યાં છે. પરન્તુ ત્યાર પછીના સ્વયંભૂરમણદ્વીપ પર્યન્તમાં જે દ્વીપસમુદ્રો છે તેમનાં નામો આપે અહીં પ્રગટ કર્યા નથી તેમના નામો જણાવવા કૃપા કરશો?

ઉત્તર-લોકમાં પદાર્થોનાં શંખ, ધ્વજ, કલશ, સ્વસ્તિક, શ્રીવત્સ આદિ જેટલાં શુભ નામો છે, એ સઘળાં નામોથી ઉપલક્ષિત (ઓળખાતાં) તે અન્તરાલમાં રહેલા દ્વીપો અને સમુદ્રો છે. કહ્યું પણ છેકે-"दीवसमुद्दाणं" ઇત્યાદિ આ સૂત્રપાઠ દ્વારા એ વાત પ્રગટ કરવામાં આવી છે કે લોકમાં જેટલા શુભ નામ છે, જેટલાં શુભ રૂપ છે, જેટલા શુભ ગંધો છે, જેટલાં શુભ સ્પર્શ છે, તેમનાં વડે આ દ્વીપસમુદ્રો ઉપલક્ષિત છે. તેઓ અસંખ્યાત હોવાને કારણે પ્રત્યેકનાં નામ અહીં આપી શકાય એમ નથી દ્વીપસમુદ્રો

तथाहि–"उद्धारसागराणं अड्ढाइज्जाण जत्तिया समया।
दुगुणादुगुणपवित्थर दीवोदहि रज्जु एवइया॥"
छाया—उद्धारसागराणामर्धतृतीयानां यावन्तः समयाः।
द्विगुणद्विगुणप्रविस्ताराः द्वीपोदधयो रज्ज्वामियन्तः॥ इति
तदेषा पूर्वानुपूर्वी। पश्चानुपूर्वी तु व्युत्क्रमेण बोध्या। अनानुपूर्वी तु–अमीषाम-संख्येयानां पदानामन्योऽन्याभ्यासे ये ऽसंख्येया भङ्गा भवन्ति, तत आद्यन्त विवक्षारहिता भङ्गा बोध्याः॥सू० १२२॥

नाम वाले हैं। तात्पर्य कहने का यह है कि द्वीप और समुद्र असंख्यात संख्या वाले हैं। द्वीप समुद्र कितने हैं? इसका उत्तर, उद्धारसागराणं" गाथा द्वारा दिया गया है जिसका भावार्थ ऐसा है कि अढाइ उद्धार सागरों के जितने समय होते हैं उतने एक दूसरे से दूने२ विस्तार वाले द्वीप और समुद्र हैं। इस प्रकार जंबूद्वीप आदि के क्रम से स्वयंभूरमण द्वीप और स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त द्वीप समुद्रों का उपन्यास करना सो पूर्वानुपूर्वी है। तथा इन्हीं द्वीपसमुद्रों का व्युत्क्रम से अर्थात् स्वयंभूरमण से प्रारंभ कर जंबूद्वीप तक–न्यास–उपन्यास–करना सो पश्चानुपूर्वी है। और इन्हीं असंख्यात पदोंका स्थापन करके फिर उनका परस्पर में गुणा करना और प्राप्त गुणन राशि में से आदि अन्त के दो भंग कम कर–देना इस प्रकार करने से असंख्यात भंग–होते हैं वह अनानुपूर्वी है। ॥ सू० १२२ ॥

કેટલાં છે? આ પ્રશ્નનો ઉત્તર નીચેની ગાથા દ્વારા આપવામાં આવ્યો છે– "उद्धार सागराणं" ઇત્યાદિ– આ ગાથાનો ભાવાર્થ એવો છે કે "અઢી ઉદ્ધાર સાગરોના જેટલા સમય થાય છે એટલા એક બીજાથી બમણાં બમણાં વિસ્તારવાળા દ્વીપો અને સમુદ્રો છે." આ પ્રકારે જંબૂદ્વીપથી શરૂ કરીને સ્વયંભૂરમણ દ્વીપ અને સ્વયંભૂરમણ સમુદ્ર પર્યન્તના દ્વીપો અને સમુદ્રોનો ઉપન્યાસ કરવો તેનું નામ તિર્યગ્લોક સંબંધી પૂર્વાનુપૂર્વી છે.

ઉપર્યુક્ત દ્વીપસમુદ્રોનો ઊલટા ક્રમમાં એટલે કે સ્વયંભૂરમણ સમુદ્રથી લઈને જંબૂદ્વીપ પર્યન્તના પદોનો ઉપન્યાસ કરવો તેનું નામ પશ્ચાનુપૂર્વી છે. અને એજ અસંખ્યાત પદોનું સ્થાપન કરીને તેમનો પરસ્પરની સાથે ગુણાકાર કરવો અને એ રીતે જે ગુણનરાશિ (ગુણાકાર) પ્રાપ્ત થાય તેમાંથી આદિ અને અન્તના બે ભંગોને કાઢી નાખવા આ પ્રમાણે કરવાથી જે અસંખ્યાત ભંગો થાય છે તેમને અનાનુપૂર્વી રૂપ સમજવા. ॥સૂ૦૧૨૨॥

सम्प्रति ऊर्ध्वलोकक्षेत्रानुपूर्वीं निरूपयति—

मूलम्—उड्ढलोयखेत्ताणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा-पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी अणाणुपुव्वी। से किं तं पुव्वाणुपुव्वी? पुव्वाणुपुव्वी सोहम्मे१, ईसाणे२, सणंकुमारे३, माहिंदे४, बंभलोए५, लंतए६, महासुक्के७, सहस्सारे८, आणए९, पाणए१०, आरणे११ अच्चुए१२, गेवेज्जगविमाणे१३, अणुत्तरविमाणे१४, ईसिपब्भारा१५, से तं पुव्वाणुपुव्वी। से किं तं पच्छाणुपुव्वी? पच्छाणुपुव्वी ईसिपब्भारा जाव सोहम्मे। से तं पच्छाणुपुव्वी। से किं तं अणाणुपुव्वी? अणाणुपुव्वी—एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए पन्नरसगच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दुरूवूणो। से णं अणाणुपुव्वी। अहवा ओवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—पुव्वाणुपुव्वी, पच्छाणुपुव्वी, अणाणुपुव्वी। से किं तं पुव्वाणुपुव्वी? पुव्वाणुपुव्वी—एगपएसोगाढे, दुप्पएसोगाढे, तिप्पएसोगाढे संखिज्जपएसोगाढे जाव असंखिज्जपएसोगाढे। से तं पुव्वाणुपुव्वी। से किं तं पच्छाणुपुव्वी? पच्छाणुपुव्वी—असंखिज्जपएसोगाढे संखिज्जपएसोगाढे जाव एगपएसोगाढे। से तं पच्छाणुपुव्वी। से किं तं अणाणुपुव्वी? अणाणुपुव्वी—एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए असंखिज्जगच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दुरूवूणो। से तं अणाणुपुव्वी से तं ओवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी से तं खेत्ताणुपुव्वी ॥सू० १२३॥

छाया—ऊर्ध्वलोकक्षेत्रानुपूर्वी त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी, अनानुपूर्वी। अथ का सा पूर्वानुपूर्वी? पूर्वानुपूर्वी-सौधर्मः१, ईशानः२, सनत्कुमारो३, माहेन्द्रः४, ब्रह्मलोकः५, लान्तकः६, महाशुक्रः७, सहस्रारः८, आनतः९,

माणतः१०, आरणः११, अच्युतो१२, ग्रैवेयकविमानं१३, अनुत्तरविमानं१४, ईषत्प्राग्भारा।१५। सैषा पूर्वानुपूर्वी। अथ का सा पश्चानुपूर्वी? पश्चानुपूर्वी-ईषत्प्राग्भारा यावत्सौधर्मः। सैषा पश्चानुपूर्वी। अथ का सा अनानुपूर्वी? अनानुपूर्वी-एतस्यामेव एकादिकायामेकोत्तरिकायां पञ्चदशगच्छगतायां श्रेण्यामन्योन्याभ्यासो द्विरूपोनः। सैषा अनानुपूर्वी। अथवा-औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा- पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी, अनानुपूर्वी। अथ का सा पूर्वानुपूर्वी? पूर्वानुपूर्वी-एकप्रदेशावगाढो द्विप्रदेशावगाढो दशप्रदेशावगाढः संख्येयप्रदेशावगाढो यावत् असंख्येयप्रदेशावगाढः। सैषा पूर्वानुपूर्वी। अथ का सा पश्चानुपूर्वी? पश्चानुपूर्वी-असंख्येयप्रदेशावगाढः संख्येय प्रदेशावगाढो यावत् एकप्रदेशावगाढः। सैषा पश्चानुपूर्वी? अथ का सा अनानुपूर्वी? अनानुपूर्वी-एतस्यामेव एकादिकायामेकोत्तरिकायामसंख्येयगच्छगतायां श्रेण्यामन्योऽन्याभ्यासो द्विरूपोनः। सैषा अनानुपूर्वी। सैषा औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी सैषा क्षेत्रानुपूर्वी ॥सू० १२३॥

टीका—'उड्ढलोयखेत्ता०' इत्यादि।

ऊर्ध्वलोकक्षेत्रानुपूर्वी हि पूर्वानुपूर्व्यादिभेदैस्त्रिविधा विज्ञेया। तत्र-पूर्वानुपूर्वी सौधर्मादीषत्प्राग्भारान्ता। प्रज्ञापकप्रत्यासत्त्या प्रथमं सौधर्मोपन्यासः। ततस्तत्त

अब सूत्रकार ऊर्ध्वलोक क्षेत्रानुपूर्वी का-निरूपण करते हैं:—

"उड्ढलोयखेत्ताणुपुव्वी" इत्यादि।

शब्दार्थ-(उड्ढलोयखेत्ताणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता) ऊर्ध्वलोक क्षेत्रानुपूर्वी तीन प्रकार की कही गई है। (तं जहा) जैसे—(पुव्वाणुपुव्वी) पूर्वानुपूर्वी (पच्छाणुपुव्वी) पश्चानुपूर्वी (अणाणुपुव्वी) और अनानुपूर्वी (से किं तं पुव्वाणुपुव्वी?) हे भदन्त! पूर्वानुपूर्वी क्या है?

(पुव्वाणुपुव्वी) पूर्वानुपूर्वी इस प्रकार से है। (सोहम्मे १) सौधर्म १ ईसाणे २, सणंकुमारे ३, माहिंदे ४, बंभलोए ५, लंतए ६, महासु-

---

હવે સૂત્રકાર ઊર્ધ્વલોક ક્ષેત્રાનુપૂર્વીનું નિરૂપણ કરે છે—

"उड्ढलोयखेत्ताणुपुव्वी" इत्यादि—

શબ્દાર્થ-(उड्ढलोयखेत्ताणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता) ઊર્ધ્વલોક ક્ષેત્રાનુપૂર્વી ત્રણ પ્રકારની કહી છે. (तंजहा) તે ત્રણ પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે-(पुव्वाणुपुव्वी, पच्छाणुपुव्वी, अणाणुपुव्वी) (१) પૂર્વાનુપૂર્વી (૨) પશ્ચાનુપૂર્વી અને (૩) અનાનુપૂર્વી.

પ્રશ્ન-(से किं तं पुव्वाणुपुव्वी?) હે ભગવન્! પૂર્વાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું હોય છે?

ઉત્તર-ઊર્ધ્વલોક સંબંધી પૂર્વાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે (सोहम्मे) (૧) સૌધર્મ, ઈસાણે, સણંકુમારે, માહિંદે, બંભલોએ, લંતએ, મહાસુક્કે, સહસ્સારે,

लोकव्यपदेशस्तथा तत्तल्लोकोपन्यासः। सौधर्मनामकं विमानं हि तत्क्षेत्रविमानेषु सर्वतः श्रेष्ठम्, अतः सः लोकः सौधर्मेति व्यपदिश्यते। एवमेव ईशानाद्यच्युत-विमानानां तत्तल्लोके श्रेष्ठत्वमवस्तत्तन्नाम्ना स स लोको व्यपदिश्यते। लोकपुरुषस्य ग्रीवाविभागे भवानि विमानानि ग्रैवेयकविमानानीत्युच्यन्ते। अनुत्तरविमानस्य-लोकापेक्षयाऽन्यानि उत्तराणि विमानानि न सन्तीति तानि विमानानि अनुत्तर-

---

क्के ७, सहस्सारे ८, आणए ९, पाणए १०. आरणे ११, अच्चुए १२, गेवेज्जगविमाणे १३, अणुत्तरविमाणे १४, ईसिपब्भारा १५) ईशान २ सनत्कुमार ३, माहेद्र ४. ब्रह्मलोक ५, लान्तक ६, महाशुक्र ७, सहस्रार-८. आनत ९, प्राणत १०, आरण ११ अच्युत १२, ग्रैवेयकविमान १३, अनुत्तरविमान १४, और ईषत्प्राग्भारा १५ (से तं पुव्वाणुपुव्वी) यह पूर्वानुपूर्वी है। यहां पर प्रज्ञापक-की प्रत्यासत्तिसे सबसे पहिले सौधर्म का उपन्यास किया गया है। बाद में तत्तत् लोक की प्रत्यासत्ति से उन ५ लोगों का उपन्यास हुआ है। सौधर्म नाम का विमान है। यह विमान तत्क्षेत्र सबन्धी विमानों में सर्वश्रेष्ट है इसलिये उसके संबन्ध से उस लोक का नाम सौधर्मलोक हुआ है। इसी प्रकार ईशान से लेकर अच्युत तक के विमानों में उन २ लोकों में श्रेष्टता है। इस-लिये उस २ नाम से वह २ लोक कहा गया है। लोक रूप पुरुष की ग्रीवा के स्थानापन्न जो विमान हैं वे ग्रैवेयक विमान कहलाते हैं।

आणए, पाणए, आरणे, अच्चुए (२) ईशान, (३) सनत्कुमार, (४) माहेन्द्र, (५) ब्रह्मलोक, (६) लान्तक, (७) महाशुक्र, (८) सहस्रार, (९) आनत, (१०) प्राणत, (११) आरण, (१२) अच्युत (गेवेज्जगविमाणे, अणुत्तरविमाणे ईसि-पब्भारा) (१३) ग्रैवेयक विमानो, (१४) ईषत्प्राग्भारा. (से तं पुव्वाणुपुव्वी) આ ક્રમે ઉર્ધ્વલોકગત ક્ષેત્રોનો ઉપન્યાસ કરવો તેનું નામ પૂર્વાનુપૂર્વી છે. અહીં પ્રજ્ઞાપકની વધારે નજીકમાં આવેલા ઇશાનકલ્પનો ઉપન્યાસ પહેલાં કરવામાં આવ્યો છે, ત્યાર બાદ ત્યાંથી વધારેને વધારે દૂર આવેલાં ક્ષેત્રોનો ઉપન્યાસ અનુક્રમે કરવામાં આવ્યો છે. સૌધર્મ કલ્પમાં જે વિમાનો છે તેમાં સર્વશ્રેષ્ઠ સૌધર્મ નામનું વિમાન હોવાથી તે દેવલોકનું નામ સૌધર્મકલ્પ પડયું છે. એજ પ્રમાણે ઇશાનથી લઇને અચ્યુત પર્યન્તના કલ્પોમાં પણ એજ નામનાં (ઇશાન, સનત્કુમાર) વિમાનોની શ્રેષ્ઠતા છે, એમ સમજવું કે કારણે તેમનાં નામો પણ તે વિમાનો જેવાં જ રાખવામાં આવ્યાં છે. લોકરૂપ પુરુષની ગ્રીવાના સ્થાનમાં જે વિમાનો રહેલાં છે તેમને ગ્રૈવેયક વિમાનો કહે છે.

विमानान्युच्यन्ते। ईषत्प्राग्भारा-भाराक्रान्तपुरुषवदीषन्नतत्वात् एषा ईषत्प्राग्भारेत्युच्यते। इयं सौधर्मादीषत्प्राग्भारान्ता पूर्वानुपूर्वी। तथा ईषत्प्राग्भारा यावत् सौधर्म इति पश्चानुपूर्वी। तथा-अनानुपूर्व्या तु सौधर्मादिषञ्चदशपदानामन्योऽन्या-

अनुत्तरविमानस्थ लोक की-अपेक्षा और दूसरे विमान-उत्तर-श्रेष्ट नहीं है-इसलिये वे विमान अनुत्तर विमान कहे गये हैं। भार आक्रान्त पुरुष की तरह कुछ झूकी हुई होने-से यह ईषत्प्राग्भारा इस नाम से कही गई है। सौधर्म से लेकर ईषत् प्राग्भारा भूमि तक पूर्वानुपूर्वी है। (से किं तं पच्छाणुपुव्वी) हे भदन्त पश्चानुपूर्वी क्या है?

उत्तर-(पच्छाणुपुव्वी) पश्चानुपूर्वी इस प्रकार हैं-(ईसिपब्भारा जाव सोहम्मे) इषत् प्राग्भारा भूमि से लेकर जो सौधर्म देवलोक तक व्युत्क्रम से गणना है। (से तं पच्छाणुपुव्वी) वह पश्चानुपूर्वी है। (से किं तं अणाणुपुव्वी?) हे भदन्त ऊर्ध्वलोक सबन्धी अनानुपूर्वी क्या है?

उत्तर-(अणाणुपुव्वी) ऊर्ध्वलोक सबन्धी अनानुपूर्वी इस प्रकार से हैं। (एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए पन्नरसगच्छगयाए सेढीए अन्न मन्न ब्भासो दूरूवूणो) इस अनानुपूर्वी में जो श्रेणी स्था-

અનુત્તર વિમાનસ્થ લોકના કરતાં અન્ય કોઇ પણ વિમાન શ્રેષ્ઠ નથી તે કારણે તે શ્રેષ્ઠ વિમાનોને અનુત્તર વિમાનો કહ્યાં છે. જેમ કે ભારને વહન કરતો પુરુષ સહેજ ઝૂકી જાય છે એજ પ્રમાણે આ ઇષત્પ્રાગ્ભારા પૃથ્વી પણ સહેજ ઝૂકેલી હોવાને કારણે તેનું નામ ઇષત્પ્રાગ્ભારા પડયું છે. સૌધર્મથી લઇને ઇષત્પ્રાગ્ભારા પર્યન્તનાં પદોનો ક્રમપૂર્વક ઉપન્યાસ કરવો તેનું નામ પૂર્વાનુપૂર્વી છે

પ્રશ્ન-(से किं तं पच्छाणुपुव्वी?) હે ભગવન્! પશ્ચાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(पच्छाणुपुव्वी) પશ્ચાનુપૂર્વી આ પ્રકારની છે-(ईसिपब्भारा जाव सोहम्मे) ઇષત્પ્રાગ્ભારા ભૂમિથી શરૂ કરીને સૌધર્મકલ્પ પર્યન્તના ક્ષેત્રોનો ઊલટા ક્રમમાં જે ઉપન્યાસ કરવામાં આવે છે-ગણતરી કરવમાં આવે છે (से तं पच्छाणुपुव्वी) તેનું નામ પશ્ચાનુપૂર્વી છે.

પ્રશ્ન (से किं तं अणाणुपुव्वी?) ઊર્ધ્વલોક સંબંધી અનાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(अणाणुपुव्वी) ઊર્ધ્વલોક સંબંધી અનાનુપૂર્વી આ પ્રકારની છે-(एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए पन्नरसगच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दूरूवूणो) આ અનાનુપૂર્વીમાં જે શ્રેણી સ્થાપિત કરવામાં આવે છે તેમાં સૌથી

भ्यासे यावन्तो भङ्गका भवन्ति, ते आद्यन्तविवक्षारहिता भङ्गा बोध्याः सम्प्रति-औपनिधिकीं क्षेत्रानुपूर्वीं प्रकारत्रयेण प्रदर्शयितुमाह-'अहवा' इत्यादि। अथवा-औपनिधिकीक्षेत्रानुपूर्वी पूर्वानुपूर्व्यादिभेदैस्त्रिविधा विज्ञेया। तत्र-पूर्वानुपूर्वी

पित की जाती है उसमें सबसे प्रथम में १ संख्या रखी जाती है बाद में एक २ की उत्तरोत्तर वृद्धि होती चली जाती इस प्रकार की वृद्धि यहां १५ संख्या तक होती है! फिर इनमें परस्पर में गुणा किया जाता है। जो गुणन फल आता है उसमें आदि अन्त के दो भंग कम कर दिये जाते हैं। क्योंकी आदिका भङ्ग आनुपूर्वी में आजाता है और अन्तका भङ्ग पश्चानुपूर्वी में आजाता है। इसलिये अनानुपूर्वी में आदि अंत के दो भंग छोडने को कहा है। इस प्रकार (से णं अणाणुपुव्वी) यह ऊर्ध्वलोक संबन्धी अनानुपूर्वी बन जाती है। (अहवा) अथवा-ओवणिहिया-खेत्ताणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता) औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी-तीन प्रकार की प्रज्ञप्त हुई है। (तं जहा) जैसा-(पुव्वाणुपुव्वी, पच्छाणुपुव्वी, अणाणुपुव्वी) पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी और अनानुपूर्वी (से किं तं पुव्वाणुपुव्वी) पुर्वानुपूर्वी क्या है?

उत्तर-(पुव्वाणुपुव्वी) पूर्वानुपूर्वी इस प्रकार से है-(एगपएसोगाढे दुप्पएसोगाढे दसपएसोगाढे संखिज्जपएसोगाढे जाव असंखिज्जपएसो

પડેલાં એક સંખ્યા રાખવામાં આવે છે, ત્યારબાદ ઉત્તરોઉત્તર એક એકની વૃદ્ધિ થતી જાય છે. આ પ્રકારની વૃદ્ધિ અહીં ૧૫ સંખ્યા સુધી કરાય છે. ત્યાર બાદ તેમાં પરસ્પરનો ગુણાકાર આવે છે. જે ગુણનફળ આવે તેમાંથી આદિનો એક અને અન્તનો એક એમ બે ભંગ બાદ કરવામાં આવે છે. કેમકે-આદિનો ભંગ આનુપૂર્વીમાં આવી જાય છે, અને અંતનો ભંગ પશ્ચાનુપૂર્વીમાં આવી જાય છે. તેથી અનાનુપૂર્વીમાં આદિ અને અંતનો એમ બે ભંગો છોડવાનું કહ્યું છે. (से णं अणाणुपुव्वी) આ પ્રકારે ઉર્ધ્વલોક સંબંધી અનાનુપૂર્વી બની જાય છે. (अहवा) અથવા-(ओवणिहिया-खेत्ताणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता) ઔપનિધિકી ક્ષેત્રાનુપૂર્વી ત્રણ પ્રકારની કહી છે. (तंजहा) તે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે-(पुव्वाणुपुव्वी, पच्छाणुपुव्वी, अणाणुपुव्वी) (૧) પૂર્વાનુપૂર્વી, (૨) પશ્ચાનુપૂર્વી અને (૩) અનાનુપૂર્વી.

પ્રશ્ન-(से किं तं पुव्वाणुपुव्वी) હે ભગવન્! પૂર્વાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(पुव्वाणुपुव्वी) પૂર્વાનુપૂર્વી આ પ્રકારની છે. (एगपएसोगाढे, दुप्पएसोगाढे, दसपएसोगाढे, संखिज्जपएसोगाढे जाव असंखिज्जपएसोगाढे) એક

एकप्रदेशावगाढादारभ्यासंख्येयप्रदेशावगाढान्ता बोध्या। पश्चानुपूर्वी तु असंख्येयप्रदेशावगाढमारभ्य एकप्रदेशावगाढान्ता बोध्या। अनानुपूर्वी तु-एकप्रदेशावगाढादारभ्य असंख्येयप्रदेशावगाढानामन्योऽन्याभ्यासेऽसंख्येया भङ्गा भवन्ति। तेषु आद्यन्तविवक्षा नास्ति, औपनिधिकीक्षेत्रानुपूर्वी समाप्तेति सूचयितुमाह-

---

गाढे) एक प्रदेशावगाढ, दो प्रदेशावगाढ, दशपएसावगाढ संख्यात प्रदेशावगाढ यावत् असंख्यात प्रदेशावगाढ (से किं तं पच्छाणुपुव्वी) पश्चानुपूर्वी क्या है ?

उत्तर- (पच्छाणुपुव्वी) पश्चानुपूर्वी इस प्रकार से है। (असंखिज्ज पएसोगाढे संखिज्जपएसोगाढे जाव एगपएसोगाढे) असंख्यातप्रदेशाव गाढ, संख्यात प्रदेशावगाढ यावत् एकप्रदेशावगाढ (से तं पच्छाणुपुव्वी) इस प्रकार यह पश्चानुपूर्वी है। (से किं तं अणाणुपुव्वी) हे भदन्त ! अनानुपूर्वी क्या है ?

उत्तर- (अणाणुपुव्वी) अणाणुपूर्वी इस प्रकार से है—(एगाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए संखिज्जगच्छगयाए सेढीये अन्नमन्नब्भासो दूरूवूणो) इन पदों का अर्थ पहले दिया गया है। तात्पर्य यह है कि यहां जो श्रेणी मांडी जावेगी वह एक से प्रारंभ कर एक की वृद्धि होते २ असंख्यात तक होती जावेगी फिर उन सबका परस्पर में गुणा करने पर जो असंख्यात भंग रूप महाराशि उत्पन्न होगी उसमें से आदि

પ્રદેશાવગાઢ, બે પ્રદેશાવગાઢ, દસ પર્યન્તના પ્રદેશાવગાઢ, સંખ્યાત પ્રદેશાવગાઢ અને અસંખ્યાત પ્રદેશાવગાઢ (से तं पुव्वाणुपुव्वी) આ ક્રમની જે ક્ષેત્રાનુપૂર્વી છે તેને પૂર્વાનુપૂર્વી કહે છે.

પ્રશ્ન-(से किं तं पच्छाणुपुव्वी?) હે ભગવન્! પશ્ચાનુપૂર્વી કેવી હોય છે?

ઉત્તર-(पच्छाणुपुव्वी) પશ્ચાનુપૂર્વી આ પ્રકારની હોય છે-(असंखिज्जपएसोगाढे, संखिज्जपएसोगाढे जाव एगपएसोगाढे) અસંખ્યાત પ્રદેશાવગાઢ, સંખ્યાત પ્રદેશાવગાઢ અને એજ પ્રકારના ઉલ્ટા ક્રમમાં એકપ્રદેશાવગાઢ પર્યન્તના પદોનો ઉપન્યાસ કરવો. (से तं पच्छाणुपुव्वी) તેનું નામ પશ્ચાનુપૂર્વી છે.

પ્રશ્ન-(से किं तं अणाणुपुव्वी) અનાનુપૂર્વી આ પ્રકારની હોય છે-(एगाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए असंखिज्जगच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासोदरूवूणो) આ પદોનો અર્થ પહેલાં આપવામાં આવ્યો છે. એટલે કે અહીં જે શ્રેણી સ્થાપિત કરવામાં આવશે તે એકથી શરૂ કરીને એક એકની વૃદ્ધિ કરતાં કરતાં અસંખ્યાત પર્યન્તની થઇ જશે ત્યાર બાદ તે સૌનો પરસ્પરની સાથે ગુણાકાર કરવાથી જે અસંખ્યાત ભંગરૂપ મહારાશિ ઉત્પન્ન થશે તેમાંથી

'से तं ओवणिहिया' इत्यादि। सैषा औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी। इत्थं क्षेत्रानुपूर्वी समाप्तेति सूचयितुमाह-'से तं' इत्यादि। सैषा क्षेत्रानुपूर्वी ॥सू० १२३॥

उक्ता क्षेत्रानुपूर्वी, सम्प्रति पूर्वोद्दिष्टामेव क्रमप्राप्तां कालानुपूर्वीं विवृणोति-

मूलम्-से किं तं कालाणुपुव्वी? कालाणुपुव्वी दुविहा पण्णत्ता, तंजहा-ओवणिहिया अणोवणिहिया य ॥सू० १२४॥

छाया—अथ का सा कालानुपूर्वी? कालानुपूर्वी द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-औपनिधिकी अनौपनिधिकी च ॥सू० १२४॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि। व्याख्या स्पष्टा ॥सू० १२४॥

मूलम्-तत्थ णं जा सा ओवणिहिया सा ठप्पा। तत्थ णं जा सा अणोवणिहिया सा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-णेगमववहाराणं संगहस्स य ॥सू०१२५॥

छाया—तत्र खलु या सा औपनिधि सा स्थाप्या। तत्र खलु या सा अनौपनिधिकी सा द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-नैगमव्यवहारयोः संग्रहस्य च॥सू.१२५॥

टीका—'तत्थ णं' इत्यादि। व्याख्यातप्रायमिदं सूत्रम् ॥सू० १२५॥

अंत के दो भंग कम कर दिये जावेंगे-(से तं अणाणुपुव्वी) इस प्रकार से क्षेत्र संबन्धी अनानुपूर्वी बनती है। (से तं ओवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी) इस प्रकार औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी है इस प्रकरण के समाप्त होते ही क्षेत्रानुपूर्वी का स्वरूप समाप्त हो जाता है। ॥ सू० १२३॥

अब सूत्रकार पूर्वोद्दिष्ट ही क्रमप्राप्त कालानुपूर्वी का कथन करते हैं-"से किं तं" इत्यादि।

शब्दार्थ-इस सूत्र की व्याख्या स्पष्ट की है। ॥ सू० १२४ ॥

આદિનો એક ભંગ અને અન્તનો એક ભંગ એમ બે ભંગ કમી કરવામાં આવશે (से किं तं अणाणुपुव्वी) આ પ્રકારે ક્ષેત્રસંબંધી અનાનુપૂર્વી બને છે. (से तं ओवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी) આ પ્રકારનું ઔપનિધિકી ક્ષેત્રાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ છે. (से तं खेत्ताणुपुव्वी) ઔપનિધિકી ક્ષેત્રાનુપૂર્વીનું કથન સમાપ્ત થવાથી ક્ષેત્રાનુપૂર્વીના સ્વરૂપનું નિરૂપણ અહીં પૂરું થાય છે. ॥સૂ०૧૨૩॥

હવે સૂત્રકાર પૂર્વોદ્દિષ્ટ ક્રમપ્રાપ્ત કાલાનુપૂર્વીનું કથન કરે છે—

"से किं तं" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-આ સૂત્રની વ્યાખ્યા સ્પષ્ટ છે. ॥સૂ०૧૨૪॥

मूलम्–से किं तं णेगमववहाणं अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी? अणोवणिहियाकालाणुपुव्वी पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–अत्थपयपरूवणया, भंगसमुक्कित्तणया, भंगोवदंसणया, समोयारे, अणुगमे ॥सू० १२६॥

छाया—अथ का सा नैगमव्यवहारयोरनौपनिधिकी कालानुपूर्वी ? अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी पञ्चविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा–अर्थपदप्ररूपणता, भङ्गसमुत्कीर्त्तनता, भङ्गोपदर्शनता, समवतारः, अनुगमः ॥सू० १२६॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि। व्याख्याऽस्य स्पष्टा ॥सू० १२६॥

'तत्थणं' इत्यादि।

शब्दार्थ–इन में जो औपनिधि कालानुपूर्वी है वह अल्पवक्तव्य विषय वाली होने से स्थाप्य है–अभी उसका विषय प्रतिपादन करने योग्य नहीं है। तथा जो अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी है वह दो प्रकार की है। एक नैगमव्यवारनयसंमत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी और दूसरी संग्रहनयसंमत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी। यह सूत्र पहले व्याख्यात हो चुका है। ॥ सू० १२५ ॥

"से किं तं णेगमववहाराणं" इत्यादि।

(से किं तं णेगमववहाराणं अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी ?) हे भदन्त ! नैगमव्यहारनयसंमत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी क्या है ? (अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी पंचविहा पण्णत्ता)

"तत्थणं" इत्यादि—

शब्दार्थ–तेमां जे औपनिधिकी कालानुपूर्वी छे, ते अल्प वक्तव्यविषयवाळी होवाथी स्थाप्य छे–एटले के हमणां तेना विषयनुं प्रतिपादन करवुं ते योग्य नथी तेमांनी जे अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी छे तेना बे प्रकार छे–(१) नैगमव्यवहार नयसंमत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी अने (२) संग्रहनयसंमत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी आ सूत्रना विषयनी प्ररूपणा पहेलां थई चुकी छे. ॥सू०१२५॥

"से किं तं णेगमववहाराणं" इत्यादि—

शब्दार्थ–(से किं तं णेगमववहाराणं अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी?) हे भगवन्! नैगमव्यवहार नयसंमत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वीनुं स्वरूप केवुं छे?

उत्तर–(अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी पंचविहा पण्णत्ता) अनौपनिधिकी

मूलम्—से किं तं णेगमववहाराणं अत्थपयपरूवणया? णेगमववहाराणं अत्थपयपरूवणया—तिसमयाट्ठइए आणुपुव्वी जाव दससमयट्ठिइए आणुपुव्वी संखिज्जसमयट्ठिइए आणुपुव्वी, असंखिज्जसमयट्ठिइए आणुपुव्वी। एगसमयट्ठिइए अणाणुपुव्वी। दुसमयट्ठिइए अवत्तव्वगं। तिसमयट्ठिइयाओ आणुपुव्वीओ। एगसमयट्ठिइयाओ अणाणुपुव्वीओ। दुसमयट्ठिइयाओ अवत्तव्वगाइं। से त्तं णेगमववहाराणं अत्थपयपरूवणया। एयाए णं णेगमववहाराणं अत्थपयपरूवणयाए किं पओयणं? एयाए णं णेगमववहाराणं अत्थपयपरूवणयाए णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया कज्जइ ॥सू० १२७॥

छाया—अथ का सा नैगमव्यवहारयोः अर्थपदप्ररूपणता? नैगमव्यवहारयोः अर्थपदप्ररूपणता—त्रिसमयस्थितिक आनुपूर्वी यावद् दशसमयस्थितिक आनुपूर्वी,

---

उत्तर—अनौपनिधि की कालानुपूर्वी पांच प्रकार की कही गई है। (तं जहा) वे प्रकार ये हैं-(अत्थपयपरूवणया भंगसमुक्कित्तणया, भंगोवदंसणया, समोयारे अणुगमे) अर्थपदप्ररूपणता भंगसमुत्कीर्तनता समवतार और अनुगम। इस सूत्र की व्याख्या स्पष्ट है। ॥सू० १२६॥

"से किं तं णेगमववहाराणं" इत्यादि।

शब्दार्थ-(से किं तं णेगमववहाराणं अत्थपयपरूवणया?) हे भदन्त! नैगमव्यहारनयसंमत अर्थपदप्ररूपणता क्या है? (णेगमववहाराणं अत्थपयपरूवणया)

કાલાનુપૂર્વી પાંચ પ્રકારની કહી છે. (तंजहा) તે પાંચ પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે-(अत्थपयपरूवणया, भंगसमुक्कित्तणया, भंगोवदंसणया समोयारे अणुगमे) (१) અર્થપદપ્રરૂપણતા, (२) ભંગસમુત્કીર્તનતા, (३) ભંગોપદર્શનતા, (४) સમવતાર અને (५) અનુગમ આ સૂત્રની વ્યાખ્યા સ્પષ્ટ છે. ॥સૂ०१२६॥

"से किं तं णेगमववहाराणं" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(से किं तं णेगमववहाराणं अत्थपयपरूवणया?) હે ભગવાન્! નૈગમવ્યવહાર નયસંમત અર્થપદ પ્રરૂપણતાનું સ્વરૂપ કેવું છે?

संख्येयसमयस्थितिक आनुपूर्वी, असंख्येयसमयस्थितिकआनुपूर्वी। एकसमयस्थितिक अनानुपूर्वी। द्विसमयस्थितिक अवक्तव्यकम्। त्रिसमयस्थितिका आनुपूर्व्यः। एकसमयस्थितिका अनानुपूर्व्यः। द्विसमयस्थितिका अवक्तव्यकानि। सैषा नैगमव्यवहारयोः अर्थपदप्ररूपणता। एतस्याः खलु नैगमव्यवहारयोः अर्थपदप्ररूपणतायाः किं प्रयोजनम्? एतस्याः खलु नैगमव्यवहारयोरर्थपदप्ररूपणतायां नैगमव्यवहारयोर्भङ्गसमुत्कीर्त्तनता क्रियते ॥सू० १२७॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि—

अथ का सा नैगमव्यवहारसम्मता अर्थपदप्ररूपणता? इति प्रश्नः। उत्तरयति-इत्थं च पर्यायपर्यायिणोरभेदोपचारमाश्रित्य, तत्र च कालपर्यायस्यैव प्राधान्यमाश्रित्य कालपर्यायविशिष्टस्य द्रव्यस्यापि कालानुपूर्वीत्वं बोध्यम्। अनन्तसमयावधिद्रव्यस्य स्थितिः स्वभावादेव न भवति, अतोऽनन्तसमयस्थितिकः

उत्तर=नैगमव्यहारनयसंमत अर्थपदप्ररूपणता इस प्रकार से है-(ति समयट्ठिइए आणुपुव्वी, जाव दससमयपएट्ठिइए आणुपुव्वी) जिस द्रव्य विशेष की स्थिति तीन समय की हैं-अर्थात् तीन समय की स्थिति-वाला जो द्रव्य विशेष है-वह त्रिसमयस्थितिक है। ऐसा त्रिसमय स्थितिक जो द्रव्य विशेष है वह आनुपूर्वी है, ऐसा द्रव्य विशेष एकपरमाणु भी हो सकता है द्विपरमाणुक स्कंध भी हो सकता तीन परमाणु वाला स्कंध भी हो सकता है, चार परमाणु वाला भी स्कंध हो सकता है, पांच आदि परमाणु वाले स्कंध से लेकर अनंत परमाणुओं वाला स्कंध तक भी हो सकता है। इस प्रकार एक परमाणु रूप द्रव्य से लेकर द्विपरमाणुक त्रिपरमाणुक आदि अनन्त परमाणुक स्कंध पर्यन्त जितने भी द्रव्य

उत्तर-(णेगमववहाराणं अत्थपयपरूवणया) नैगमव्यवहार नयसंमत अर्थपदप्ररूपणता આ પ્રકારની છે-(तिसमयट्ठिइए आणुपुव्वी, जाव दससमयट्ठिइए आणुपुव्वी) જે દ્રવ્યવિશેષની સ્થિતિ ત્રણ સમયની હોય છે, તે દ્રવ્યવિશેષને ત્રિસમયસ્થિતિ કહે છે એવું ત્રણ સમયની સ્થિતિવાળું જે દ્રવ્યવિશેષ છે, તેને અહીં આનુપૂર્વી રૂપ સમજવું જોઈએ એવું દ્રવ્યવિશેષ એક પરમાણુ પણ હોઈ શકે છે, બે પરમાણુવાળો સ્કન્ધ પણ હોઈ શકે છે, ત્રણ પરમાણુવાળો સ્કન્ધ પણ હોઈ શકે છે, ચાર પરમાણુવાળો સ્કન્ધ પણ હોઈ શકે છે, અને પાંચથી લઈને અનંત સુધીના પરમાણુઓવાળા સ્કન્ધો પણ હોઈ શકે છે.

આ રીતે એક પરમાણુ રૂપ દ્રવ્યથી લઈને દ્વિપરમાણુક, ત્રિપરમાણુક અનંત પરમાણુક સ્કન્ધ પર્યન્તના જેટલાં દ્રવ્યવિશેષ છે, તે ત્રણ સમયની સ્થિતિ-

कालानुपूर्वी न प्रोक्ता। तथा-एकसमयस्थितिकः परमाण्वाद्यनन्तपरमाणुकस्कन्धपर्यन्तो द्रव्यविशेषः अनानुपूर्वी। द्विसमयस्थितिकः परमाण्वाद्यनन्तपरमाणुकस्कन्धपर्यन्तो द्रव्यविशेषः अवक्तव्यकम्। तथा त्रिसमयस्थितिकाः परमाण्वाद्यनन्तपरमाणुकस्कन्धात्मका द्रव्यविशेषा यावदसंख्येयसमयस्थितिकाः पूर्वोक्तद्रव्यविशेषा

विशेष तीन समय की स्थिति वाले हैं वे सब अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी के भेद रूप अर्थपदप्ररूपणा के विषय भूत है। और ये सब एक २ अनानुपूर्वी है। इसी प्रकार से चार समय की स्थिति वाला-जितना भी द्रव्य है उससे लेकर असंख्यात समय-की स्थिति वाले द्रव्यों तक जितने द्रव्य विशेष हैं उन में प्रत्येक द्रव्यविशेष आनुपूर्वी है।

शंका-यदि द्रव्य विशेष को ही यहां आनुपूर्वी पना है तो फिर कालानुपूर्वी ऐसा कहना विरुद्ध पड़ता है। क्योंकि कालानुपूर्वी में काल में आनुपूर्वीपना कहना चाहिये द्रव्य विशेष में नहीं। यहां तो आनुपूर्वीपना द्रव्यविशेषों में कहा जारहा है।

उत्तर-यहां जो द्रव्य विशेषों में आनुपूर्वी पना कहा जारहा है सो केवल-द्रव्यों में नहीं कहा जारहा है किन्तु जो-द्रव्य समयत्रय आदि रूप काल पर्याय से विशिष्ट है उसमें ही कहा जारहा है। इसलिये-यहां समयत्रय आदिरूप कालपर्याय से युक्त ही द्रव्य ग्रहण किया गया है। इस प्रकार काल की पर्याय जो समयत्रय आदि

વાળાં છે, તે સઘળા અનૌપનિધિકી કાલાનુપૂર્વીના ભેદ રૂપ અર્થપદપ્રરૂપણાના વિષયરૂપ છે. અને તેઓ બધાં એક એક અનાનુપૂર્વી રૂપ છે એજ પ્રમાણે ચાર સમયની સ્થિતિવાળાં જેટલાં દ્રવ્યો છે તે દ્રવ્યોથી લઈને અસંખ્યાત પર્યન્તની સ્થિતિવાળાં જેટલાં દ્રવ્યો છે, તેમાંનું પ્રત્યેક દ્રવ્યવિશેષ પણ આનુપૂર્વી રૂપ જ છે.

શંકા-જો દ્રવ્યવિશેષમાં જ આનુપૂર્વીતા માનવામાં આવે, તો "કાલાનુપૂર્વી" આ પ્રકારનું કથન વિરુદ્ધ પડે છે, કારણ કે કાલાનુપૂર્વીના કથનમાં તો કાળમાં આનુપૂર્વીતા કહેવી જોઈએ-દ્રવ્યવિશેષમાં આનુપૂર્વીતા કહેવી જોઇએ નહીં. અહીં તો આપે દ્રવ્યવિશેષોમાં આનુપૂર્વીતા બતાવી છે. તો આ બાબતનો આપ શો ખુલાસો કરો છો?

ઉત્તર-અહીં જે દ્રવ્યવિશેષોમાં આનુપૂર્વીતા પ્રકટ કરવામાં આવી છે, તે કેવળ દ્રવ્યોમાં જ પ્રકટ કરવામાં આવી નથી, પરન્તુ જે દ્રવ્ય સમયત્રય આદિ રૂપ કાળપર્યાયથી વિશિષ્ટ (યુક્ત) છે તેમાં જ પ્રકટ કરવામાં આવેલ છે. તેથી અહીં સમયત્રય આદિ રૂપ કાળપર્યાયથી યુક્ત દ્રવ્ય જ ગ્રહણ કર-

पर्यायी जो तद्विशिष्ट द्रव्य हैं सो इन दोनों में अभेद के उपचारका आश्रय करके और कालपर्यायकी ही प्रधानता-मानकर के काल पर्याय विशिष्ट द्रव्य में भी कालानुपूर्वीपना जानना चाहिये। अनन्त समय तक रहनेवाले द्रव्य की स्थिति स्वभाव से ही नहीं होती है। अर्थात् कोई भी द्रव्य ऐसा नहीं है कि जिसकी स्थिति स्वभाव से अनन्त समयवाली हो। इसीलिये अनन्त समय की स्थितिवाली कालानुपूर्वी नहीं कही है। (संखिज्जसमयट्ठिइए आणुपुव्वी असंखिज्जसमयट्ठिइए आणुपुव्वी) इन पदोंका अर्थ विषयक खुलासा भी इसी कथन में हो चुका है। (एगसमयट्ठिइए अणाणुपुव्वी) तथा जो परमाणुरूप द्रव्य, द्वयणुक द्रव्य, त्र्यणुकद्रव्य यावत् संख्यातानुक द्रव्य, असंख्यातानुक और अनंतानुक द्रव्य एक समय की स्थितिवाला है वह अनानुपूर्वी है। (दुसमयट्ठिइए अवत्तव्वगं) तथा जो दो समयकी स्थितिवाला परमाणुरूप द्रव्य, द्वयणुक द्रव्य त्र्यणुक द्रव्य यावत् संख्यातानुक द्रव्य, असंख्याणुक द्रव्य और अनंतानुक पर्यन्त तक का द्रव्य है वह सब अवक्तव्यक द्रव्य है। (तिसमयट्ठिइयाओ आणुपुव्वीओ) तीन समयकी

વામાં આવેલ છે. આ પ્રકારે કાળની ત્રણ પર્યાયો અને તે ત્રણપર્યાયોવાળા દ્રવ્યમાં અભેદનો ઉપચાર કરીને અને કાળપર્યાયની જ પ્રધાનતા માનીને કાળપર્યાયવિશિષ્ટ દ્રવ્યમાં પણ કાલાનુપૂર્વીપણું સમજવું જોઇએ દ્રવ્યની અનન્ત સમય સુધી રહેવાની સ્થિતિ સ્વભાવથી જ હોતી નથી એટલે કે કોઈ પણ દ્રવ્ય એવું નથી કે જેની સ્થિતિ સ્વભાવથી જ અનંત સમયની હોય તેથી જ અનંત સમયની સ્થિતિવાળી કાલાનુપૂર્વી હોતી નથી તે કારણે અનંત સમયની સ્થિતિવાળી કાલાનુપૂર્વી અહીં પ્રકટ કરવામાં આવી નથી.

(संखिज्जसमयट्ठिइए आणुपुव्वी असंखिज्जसमयट्ठिइए आणुपुव्वी) આ સૂત્રપાઠનો અર્થ પણ ઉપર્યુક્ત કથનમાં સ્પષ્ટ થઇ ચુકયો છે.

(एगसमयट्ठिइए अणाणुपुव्वी) તથા જે પરમાણુ રૂપ દ્રવ્ય, બે અણુવાળું દ્રવ્ય, ત્રણ અણુવાળું દ્રવ્ય, ચારથી લઇને સંખ્યાત પર્યન્તના અણુવાળું દ્રવ્ય, અસંખ્યાત અણુક દ્રવ્ય અને અનંતાણુક દ્રવ્ય એક સમયની સ્થિતિવાળું હોય છે, તેને અનાનુપૂર્વી રૂપ સમજવું (दुसमयट्ठिइए अवत्तव्वगं) તથા બે સમયની સ્થિતિવાળું જે પરમાણુ રૂપ દ્રવ્ય, બે અણુવાળું દ્રવ્ય, ત્રણથી લઇને સંખ્યાત પર્યન્તના અણુવાળું દ્રવ્ય, અસંખ્યાત અણુક દ્રવ્ય અને અનંત અણુક દ્રવ્ય હોય છે તેને અવક્તવ્યક દ્રવ્યરૂપ સમજવું.

आनुपूर्व्यः। एकसमयस्थितिका अनानुपूर्व्यः। द्विसमयस्थितिका अवक्तव्यकानि। सैषा नैगमव्यवहारसम्मता-अर्थपदप्ररूपणता। एतस्याः खलु नैगमव्यवहारयोरर्थ प्ररूपणतायाः किं प्रयोजनम्? इति प्रश्नः। उत्तरयति-एतया खलु नैगमव्यवहार-सम्मतयाऽर्थप्ररूपणतया नैगमव्यवहारयोः भङ्गसमुत्कीर्त्तनता क्रियते ॥सू० १२७॥

स्थितिवाले जितने भी परमाणु आदि से लेकर अनंताणुक पर्यन्त तक के स्कंधात्मक द्रव्य विशेष हैं वे तथा संख्यात असंख्यातसमयकी स्थिति-वाले परमाणुरूप द्रव्य से लेकर अनंताणुक पर्यन्त तक के जितने भी द्रव्य विशेष हैं वे सब बहुवचनान्त आनुपूर्वी शब्द के वाच्यार्थ हैं। (एगसमयट्ठिइयाओ अणाणुपुव्वीओ) तथा जितने भी एक परमाणुरूप द्रव्य से लेकर अनंताणुक पर्यन्त तक के द्रव्य विशेष एक समय की स्थितिवाले हैं वे सब बहुवचनान्त अनानुपूर्वी शब्द के वाच्यार्थ हैं। (दुसमयट्ठिइयाओ अवत्तव्वयाइं) तथा दो समय की स्थितिवाले जितने भी ये पूर्वोक्त द्रव्य हैं वे सब बहुवचनान्त अवक्तव्यक शब्द के वाच्यार्थ हैं, (से तं णेगमववहाराणं अत्थपयपरूवणया) इस प्रकार नैगमव्यवहार-नयसंमत अर्थपदप्ररूपणता है। (एयाएणं णेगमववहाराणं अत्थपयपरूव-णाए किं पओयणं)

प्रश्न-इस नैगमव्यवहारनयसंमत अर्थपदप्ररूपणता का क्या प्रयोजन है?

(ति समयट्ठिइयाओ आणुपुव्वीओ) ત્રણ સમયની સ્થિતિવાળાં જેટલાં પરમાણુ આદિથી લઇને અનંતાણુક પર્યન્તના સ્કન્ધાત્મક દ્રવ્યવિશેષો છે, તેમને તથા સંખ્યાત, અસંખ્યાત સમયની સ્થિસ્તિવાળા પરમાણુરૂપ દ્રવ્યથી લઈને અનંતાણુક પર્યન્તના જેટલાં દ્રવ્યવિશેષો છે તેઓ બહુવચનાન્ત આનુપૂર્વી શબ્દના વાચ્યાર્થ રૂપ છે.

(एग समयट्ठिइयाओ अणाणुपुव्वीओ) તથા એક પરમાણુરૂપ દ્રવ્યથી લઇને અનંતાણુક પર્યન્તના જેટલાં દ્રવ્યવિશેષો એક સમયની સ્થિતિવાળા છે, તેઓ બધાં બહુવચનાન્ત અનાનુપૂર્વી શબ્દના વાચ્યાર્થ રૂપ છે.

(दुसमयट्ठिइयाओ अवत्तव्वगाइं) તથા બે સમયની સ્થિતિવાળાં જેટલાં પૂર્વોકત દ્રવ્યો છે, તેઓ બધાં બહુવચનાન્ત અવકતવ્યક શબ્દના વાચ્યાર્થ રૂપ છે. (से तं णेगमववहाराणं अत्थपयपरूवणया) નૈગમવ્યવહાર નયસંમત અર્થપદપ્રરૂપણતાનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ છે.

પ્રશ્ન-(एयाएणं णेगमववहाराणं अत्थपयपरूवणाए किं पओयणं?) આ નૈગમ-વ્યવહાર નયસંમત અર્થપદપ્રરૂપણતાનું પ્રયોજન શું છે?

उत्तर–एयाएणं णेगमववहाराणं अत्थपयपरूवणाए णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया कज्जइ) नैगमव्यवहारनयसंमत इस अर्थपदप्ररूपणता से नैगमव्यवहारनयसंमत भंगसमुत्कीर्तनता की जाती है।

भावार्थ–सूत्रकार यहां कालानुपूर्वी का कथन कर रहे हैं। अतः उस विषयका सांगोपांग वर्णन करने के लिये उन्होंने इस आनुपूर्वी को औपनिधिकी और अनौपनिधिकी इस प्रकार के दो विभागो में विभक्त किया है। इन का शब्दार्थ क्या है? यह सब पीछे द्रव्यानुपूर्वी के प्रकरणमें स्पष्ट कर दिया गया है। औपनिधिकी आनुपूर्वी के स्वरूप आदिका कथन सूत्रकार अनौपनिधिकी आनुपूर्वी के कथन करने के बाद करेंगे। अतः उसे पहिले न कहकर वे अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी का सर्व प्रथम विवेचन करने के अभिप्राय से उसे नैगमव्यवहारनय संमत अनौपनिधिकी और संग्रहनय संमत अनौपनिधिकी इन दो विभागो में विभक्त कर रहे हैं। इन में जो नैगमव्यवहारनय संमत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी है वह अर्थपदप्ररूपणता, भंगसमुत्कीर्तनता, भंगोपदर्शनता, समवतार और अनुगम के भेद से ५ पांच प्रकार की है। अर्थपदप्ररूपणता में तीन समय से लेकर असंख्यात

उत्तर–(एयाएणं णेगमववहाराणं अत्थपयपरूवणयाए णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया कज्जइ) नैगमव्यवहारनयसंमत आ अर्थपद प्ररूपणताने आधारे नैगमव्यवहार नयसंमत भंगसमुत्कीर्तनता कराय छे.

भावार्थ–सूत्रकारे आ सूत्रमां कालानुपूर्वीनुं कथन कर्युं छे. आ विषयनुं सांगोपांग वर्णन करवाने माटे सूत्रकारे कालानुपूर्वीना औपनिधिकी अने अनौपनिधिकी नामना बे विभाग पाड्यां छे. आ बन्नेनो अर्थ द्रव्यानुपूर्वीना प्रकरणमां पहेलां बतावी देवामां आवेल छे अनौपनिधिकी आनुपूर्वीना स्वरूपनुं कथन कर्या बाद सूत्रकार औपनिधिकी आनुपूर्वीना स्वरूपनुं कथन करशे आ प्रकारे सूत्रकार पहेलां तो अनौपनिधिकी आनुपूर्वीनुं निरूपण करे छे–ते माटे तेमणे अनौपनिधिकी आनुपूर्वीने नीचेना बे विभागोमां विभक्त करी नाखी छे–(१) नैगमव्यवहारनयसंमत अनौपनिधिकी अने (२) संग्रहनयसंमत अनौपनिधिकी तेमांनी जे नैगमव्यवहारनयसंमत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी छे तेना नीचे प्रमाणे पांच भेद पडे छे–(१) अर्थपद प्ररूपणता, (२) भंगसमुत्कीर्तनता, (३) भंगोपदर्शनता, (४) समवतार अने (५) अनुगम,

समय तक की स्थितिवाला जितना भी एक परमाणु आदि द्रव्य है-वह सब आनुपूर्वी शब्द का वाच्यार्थ है। क्योंकि यहां कालानुपूर्वी का प्रकरण है इसलिये तीन आदि समयों में रहनेवाले द्रव्य को ही आनुपूर्वी माना गया है। एक परमाणु भी तीन समयकी स्थितिवाला होता है, दो आदि परमाणुवाला द्रव्य भी तीन समय की स्थितिवाला होता है। अतः ये सब आनुपूर्वी शब्द के वाच्य हैं। इसी प्रकार से चार आदि समयों से लेकर संख्यात समय और असंख्यात समय तक की भी स्थितिवाले ये पूर्वोक्त द्रव्य होते हैं। इसलिये ये सब स्वतंत्र आनुपूर्वी हैं। एक समयकी स्थितिवाला एक पुद्गलपरमाणु द्रव्य और द्वयणुक आदि अनंत परमाणुक पर्यन्त तक का द्रव्य अनानुपूर्वी है। दो समयकी स्थितिवाला एक पुद्गलपरमाणुरूप द्रव्य और द्वयणुक आदि अनंत परमाणु युक्त तकका द्रव्य अवक्तव्यक द्रव्य हैं। यहां एक वचनांत और बहुवचनान्त जो आनुपूर्वी आदिपद सूत्रकारने कहे हैं उन का कारण यह है कि तीन आदि समयों की स्थितिवाले आनुपूर्वी द्रव्य एक २ व्यक्तिरूप भी है और अनेक अनंत-व्यक्तिरूप भी हैं। इसी

અર્થપદ પ્રરૂપણતામાં ત્રણ સમયથી લઈને અસંખ્યાત સમય પર્યન્તની સ્થિતિવાળાં જેટલાં એક પરમાણુથી લઈને અનંત પર્યન્તના પરમાણુવાળાં દ્રવ્યો છે, તે બધા દ્રવ્યોને આનુપૂર્વી રૂપ ગણવામાં આવે છે, કારણ કે અહીં કાલાનુપૂર્વીનો અધિકાર ચાલી રહ્યો છે તેથી ત્રણ આદિ સમયોની સ્થિતિવાળાં દ્રવ્યોને જ આનુપૂર્વી રૂપ માનવામાં આવ્યાં છે. એક પરમાણુ પણ ત્રણ સમયની સ્થિતિવાળું હોઈ શકે છે, બે આદિ પરમાણુવાળું દ્રવ્ય પણ ત્રણ સમયની સ્થિતિવાળું હોઈ શકે છે. તેથી એવાં ત્રણ સમયની સ્થિતિવાળાં દ્રવ્યો આનુપૂર્વી રૂપ છે એજ પ્રમાણે ચારથી લઈને સંખ્યાત સમયો, અને અસંખ્યાત પર્યન્તના સમયોની સ્થિતિવાળાં એક પરમાણુંવાળાં, અને બેથી લઈને અનંત પર્યન્તના પરમાણુવાળાં દ્રવ્યો પણ હોઈ શકે છે એવાં બધાં દ્રવ્યો પણ સ્વતંત્ર આનુપૂર્વી રૂપ જ ગણાય છે. એક સમયની સ્થિતિવાળું એક પુદ્ગલ પરમાણુ રૂપ દ્રવ્ય અને બે અણુકથી લઈને અનંત અણુક પર્યન્તનું દ્રવ્ય અનાનુપૂર્વી રૂપ ગણાય છે. બે સમયની સ્થિતિવાળું એક પુદ્ગલપરમાણુ રૂપ દ્રવ્ય અને બે અણુવાળાથી લઈને અનંત પર્યન્તના અણુવાળું દ્રવ્ય અવક્તવ્યક રૂપ ગણાય છે. અહીં સૂત્રકારે જે એકવચનાન્ત અને બહુવચનાન્ત આનુપૂર્વી આદિ પદ બતાવ્યાં છે તેનું કારણ એ છે કે ત્રણ આદિ સમયોની સ્થિતિવાળાં આનુપૂર્વી દ્રવ્યો એક એક વ્યક્તિ (પદાર્થ)

मूलम्–से किं तं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया? णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया–अत्थि आणुपुव्वी, अत्थि अणाणुपुव्वी, अत्थि अवत्तव्वगं। एवं दव्वाणुपुव्वीगमेणं कालाणुपुव्वीए वि ते चेव छव्वीसं भंगा भाणियव्वा जाव से तं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया। एयाएणं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए किं पओयणं? एयाए णं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया कज्जइ॥सू०१२८॥

प्रकार से अवक्तव्यक और अनानुपूर्वी द्रव्यों के विषय में भी जानना चाहिये। इसके खुलासा के लिये द्रव्यानुपूर्वी के प्रकरणमें नैगमव्यवहारनयसंमत अर्थपदप्ररूपणतारूप आनुपूर्वी का अर्थ देखना चाहिये। यहां द्रव्यानुपूर्वी का प्रकरण होने से तीन आदि प्रदेशवाले द्रव्य को आनुपूर्वी, एक प्रदेशवाले द्रव्य को अनानुपूर्वी और दो प्रदेशवाले द्रव्य को अवक्तव्यक द्रव्य कहा है। तब कि यहां कालानुपूर्वी के सबन्ध से तीन आदि समय स्थित द्रव्यको आनुपूर्वी, एक समय स्थित द्रव्य को अनानुपूर्वी और दो समयस्थित द्रव्य को अवक्तव्यक द्रव्य कहा है। इस एक वचनान्त और बहुवचनान्त आनुपूर्वी आदि अर्थपद प्ररूपणता का प्रयोजन क्या है? इस बात को सूत्रकार प्रकट करते हैं ॥सू० १२७॥

રૂપ પણ હોય છે. એજ પ્રમાણે અવક્તવ્યક અને અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોના વિષયમાં પણ સમજવું તેના સ્પષ્ટીકરણ માટે દ્રવ્યાનુપૂર્વીના પ્રકરણમાં નૈગમવ્યવહાર નયસંમત અર્થપદપ્રરૂપણા રૂપ આનુપૂર્વીનું પ્રકરણ વાંચી જવાની ભલામણ કરવામાં આવે છે તે પ્રકરણમાં દ્રવ્યાનુપૂર્વીનું નિરૂપણ કરેલું હોવાથી, ત્રણ આદિ પ્રદેશોવાળાં દ્રવ્યોને આનુપૂર્વી રૂપ, એક પ્રદેશવાળા દ્રવ્યને અનાનુપૂર્વી રૂપ અને બે પ્રદેશવાળા દ્રવ્યને અવક્તવ્યક રૂપ કહેવામાં આવેલ છે. પરન્તુ અહીં કાલાનુપૂર્વીનું કથન ચાલતું હોવાથી ત્રણ આદિ સમયની સ્થિતિવાળા દ્રવ્યને આનુપૂર્વી રૂપ, એક સમયની સ્થિતિવાળા દ્રવ્યને અનાનુપૂર્વી રૂપ અને બે સમયની સ્થિતિવાળા દ્રવ્યને અવક્તવ્યક રૂપ કહેવામાં આવેલ છે. આ એકવચનાન્ત અને બહુવચનાન્ત અર્થપદપ્રરૂપણતાનું પ્રયોજન શું છે? તે હવે સૂત્રકાર પ્રકટ કરે છે. ॥સૂ૦૧૨૭॥

छाया—अथ का सा नैगमव्यवहारयो र्भङ्गसमुत्कीर्त्तनता? नैगमव्यवहारयो र्भङ्गसमुत्कीर्त्तनता-अस्ति आनुपूर्वी, अस्ति अनानुपूर्वी, अस्ति अवक्तव्यकम्। एवं सप्तसप्ततिसूत्रोक्तद्रव्यानुपूर्वीगमेन कालानुपूर्व्यामपि त एव षड्विंशतिर्भङ्गा भणितव्या यावत् सैषा नैगमव्यवहारयोर्भङ्गसमुत्कीर्त्तनता। एतस्याः खलु भङ्ग-

---

"से किं तं णेगमववहाराणं" इत्यादि।

शब्दार्थः-(से किं तं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया?) हे भदन्त! नैगमव्यवहारनयसंमत वह भंगसमुत्कीर्तनता क्या है?

उत्तरः-(णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया) नैगमव्यवहारनय-संमत भंगसमुत्कीर्तनता इस प्रकार से है-(अत्थि आणुपुव्वी, अत्थि अणाणुपुव्वी अत्थि अवत्तव्वगं) आनुपूर्वी है, अनानुपूर्वी है, अवक्तव्यक है (एवं दव्वाणुपुव्वीगमेणं कालाणुपुव्वीए वि ते चेव छव्वीसं भंगा भाणियव्वा) इस प्रकार द्रव्यानुपूर्वी में कथित भंगसमुत्कीर्तनता के अनुरूप इस कालापूर्वी में भी वे ही २६ भंग बना लेना चाहिये। और-इस पाठ को "से तं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया" इस पाठ तक समास हुआ जानना चाहिये। (एयाए णं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए किं पओयणं?) नैगमव्यवहारनयसंमत इस भंग-समुत्कीर्तनता का क्या प्रयोजन है?

"से किं तं णेगमववहाराणं" इत्यादि—

शब्दार्थ-(से किं तं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया?) हे भगवन्! नैगमव्यवहार नयसंमत ते भंगसमुत्कीर्तनतानुं स्वरूप केवुं छे?

उत्तर-(णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया) नैगमव्यवहार नयसंमत भंगसमुत्कीर्तनतानुं स्वरूप आ प्रकारनुं छे-

(अत्थि आणुपुव्वी, अत्थि अणाणुपुव्वी, अत्थि अवत्तव्वगं) आनुपूर्वी छे, अनानुपूर्वी छे अने अवक्तव्यक छे, (एवं दव्वाणुपुव्वीगमेणं कालाणुपुव्वीए वि ते चेव छव्वीसं भंगा भाणियव्वा) आ प्रकारे द्रव्यानुपूर्वीना प्रकरणमां जेवां २६ भंग (भांगाओ) कहेवामां आव्या छे, एवां ज २६ भांगाओ आ कालानुपूर्वीना विषयमां पण कहेवा जोइओ. "से तं णेगमववहाराणं भंग-समुक्कित्तणया" आ सूत्रपाठ पर्यन्तनुं समस्त कथन अहीं पण करवुं जोइओ.

प्रश्न-(एयाएणं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए किं पओयणं?) नैगम-व्यवहार नयसंमत आ भंगसमुत्कीर्तनतानुं शुं प्रयोजन छे?

समुत्कीर्त्तनतायाः किं प्रयोजनम्? एतया खलु नैगमव्यवहारयोः भङ्गसमुत्कीर्त्तनतया नैगमव्यवहारयोर्भङ्गोपदर्शनता क्रियते ॥सू० १२८॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि। व्याख्याऽस्य स्पष्टा ॥सू० १२८॥

उत्तर-(एयाए णं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया कज्जइ) इस नैगमव्यवहारनयसंमत भंगसमुत्कीर्तनता से नैगमव्यवहारनयसंमत भंगोपदर्शनता की जाती है। इस सूत्र की व्याख्या स्पष्ट है।—

भावार्थः-यहां इस प्रकार से जानना चाहिये-कि जो ये आनुपूर्वी आदि तीन पद एकवचनान्त हैं उनसे तीन भंग बनते हैं। और जो आनुपूर्वी आदि तीन पद बहुवचनान्त हैं उनसे भी तीन भंग बनते हैं। इस प्रकार असंयोग पक्ष में ये जुदे २ छ भंग हो जाते हैं। और संयोग पक्ष में इन तीन पदों के द्विसंयोगी भंग तीन होते हैं। इनमें एक २ भंग में दो दो का संयोग होने पर एकवचन और बहुवचन को लेकर चार चार भंग हो जाते हैं। इस प्रकार तीन भंग के द्विकसंयोगी भंग चार २ होने से ये १२ बन जाते हैं। तथा त्रिकसंयोग में एकवचन और बहुवचन को लेकर ८ भंग बनते हैं। इस प्रकार सब भंग मिलकर २६ भंग होते हैं। इन भंगों की स्थापना के लिये द्रव्यानुपूर्वी के प्रकरण का ७७ वां सूत्र देखना चाहिये। ॥सू० १२८॥

ઉત્તર-(एयाएणं णेगमववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया कज्जइ) આ નૈગમવ્યવહાર નયસંમત ભંગસમુત્કીર્તનતાને આધારે નૈગમવ્યવહાર નયસંમત ભંગોપદર્શનતા કરવામાં આવે છે. આ સૂત્રની વ્યાખ્યા સ્પષ્ટ છે.

ભાવાર્થ—અહીં ૨૬ ભંગ કેવી રીતે બને છે, તે હવે સમજાવવામાં આવે છે—આનુપૂર્વી આદિ ત્રણ એકવચનાન્ત પદોના ત્રણ ભંગ (ભાંગા) બને છે. અને જે આનુપૂર્વી આદિ બહુવચનાન્ત ત્રણ પદો છે તેમના પણ ત્રણ ભંગ બને છે આ રીતે કુલ ૬ ભંગ અસંયોગ પક્ષમાં થાય છે.

સંયોગ પક્ષમાં આ ત્રણ પદના દ્વિસંયોગી ભંગ ત્રણ થાય છે. તેમાં પ્રત્યેક ભંગમાં બબ્બેનો સંયોગ થવાથી એકવચન અને બહુવચનવાળા ચાર ચાર ભંગ બને છે. આ રીતે ત્રણ ભંગોના દ્વિસંયોગી ચાર ચાર ભંગ થતા હોવાથી કુલ દ્વિકસંયોગી ભંગ ૧૨ થાય છે. અને ત્રિકસંયોગમાં એકવચન અને બહુવચનાન્ત પદોનાં કુલ ૮ ભંગ થાય છે. આ પ્રકારે કુલ ૨૬ ભંગ થઈ જાય છે આ ભંગોની રચના સ્પષ્ટ રીતે સમજવા માટે દ્રવ્યાનુપૂર્વીના પ્રકરણનું ૭૭મું સૂત્ર વાંચી લેવાની ભલામણ કરવામાં આવે છે. ॥સૂ૦૧૨૮॥

मूलम्–से किं तं णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया? णेगम० भंगोवदंसणया–तिसमयट्ठिइए आणुपुव्वी, एगसमयट्ठिइए अणाणुपुव्वी, दुसमयट्ठिइए अवत्तव्वगं। तिसमयट्ठिइया अणाणुपुव्वीओ एगसमयट्ठिइया अणाणुपुव्वीओ, दुसमयट्ठिइया अवत्तव्वयाइं, अहवा–तिसमयट्ठिइए य एगसमयट्ठिइए य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य। एवं तहा चेव दव्वाणुपुव्वी गमेणं छव्वीसं भंगा भाणियव्वा जाव से तं णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया ॥सू० १२९॥

छाया—अथ का सा नैगमव्यवहारयो भङ्गोपदर्शनता? नैगम. भङ्गोपदर्शनता–त्रिसमयस्थितिक आनुपूर्वी, एकसमयस्थितिक अनानुपूर्वी, द्विसमयस्थितिक अवक्तव्यकम्। त्रिसमयस्थितिका आनुपूर्व्यः। एकसमयस्थितिका आनुपूर्व्यः।

"से किं तं णेगमववहाराणं" इत्यादि।

शब्दार्थः–(णेगमववहाराणं) हे भदन्त! नैगमव्यवहारनयसंमत (तं) पूर्वप्रक्रान्त (से) वह–(भंगोवदंसणया) भंगोपदर्शनता (किं) क्या है?

उत्तरः–(णेगम. भंगोवदंसणया) नैगमव्यवहारनयसंमत भंगोपदर्शनता इस प्रकार से है–(तिसमयट्ठिइए आणुपुव्वी) तीन समय की स्थितिवाला एक एक परमाणु आदि द्रव्य आनुपूर्वी है। (एगसमयट्ठिइए अणाणुपुव्वी) एक समय की स्थितिवाला एक परमाणु आदि द्रव्य अनानुपूर्वी है। (दुसमयट्ठिइए अवत्तव्वगं) दो समय की स्थितिवाला एक परमाणु आदि द्रव्य अवक्तव्यक है। (तिसमयट्ठिइया आणुपुव्वीओ)

"से किं तं णेगमववहाराणं" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ–(णेगमववहाराणं) હે ભગવન્! નૈગમવ્યવહાર નયસંમત (तं) પૂર્વપ્રકાન્ત (से) તે (भंगोवदंसणया) ભંગોપદર્શનતાનું (किं) કેવું સ્વરૂપ છે?

ઉત્તર–(णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया) નૈગમવ્યવહારનયસંમત ભંગોપદર્શનતા આ પ્રકારની છે—

(तिसमयट्ठिइए आणुपुव्वी) ત્રણ સમયની સ્થિતિવાળું પ્રત્યેક પરમાણુ આદિ દ્રવ્ય આનુપૂર્વી રૂપ છે. (एगसमयट्ठिइए अणाणुपुव्वी) એક સમયની સ્થિતિવાળું એક પરમાણુ આદિ દ્રવ્ય અનાનુપૂર્વી રૂપ છે. (दुसमयट्ठिइए अवत्तव्वगं) બે સમયની સ્થિતિવાળું એક પરમાણુ આદિ દ્રવ્ય અવક્તવ્યક રૂપ છે. (तिसमयट्ठिइया आणुपुव्वीओ) ત્રણ સમયની સ્થિતિવાળાં અનેક

द्विसमयस्थितिका अवक्तव्यकानि । अथवा–त्रिसमयस्थितिकश्च एकसमयस्थितिकश्च आनुपूर्वीच अनानुपूर्वीच । एवं तथैव द्रव्यानुपूर्वीगमेन षड्विंशतिर्भङ्गा भणितव्याः, यावत् सैषा नैगमव्यवहारयो र्भङ्गोपदर्शनता ॥सू० १२९॥

टीका–'से किं तं इत्यादि । व्याख्या द्रव्यानुपूर्वीवदभ्यूहनीया । सू० १२९॥

तीन समय की स्थितिवाले अनेक अपनी २ एक सी जातिवाले पदार्थ आनुपूर्वियां हैं। (एगसमयट्ठिइया अणाणुपुव्वीओ) एक समय में स्थितिवाले अनेक अपनी २ एक सी जातिवाले पदार्थ अनानुपूर्वियां हैं। (दुसमयट्ठिइया अवत्तव्वयाइं) दो समय की स्थितिवाले अनेक अपनी २ एक सी जातिवाले पदार्थ अवक्तव्यक हैं। इस प्रकार ये एकवचनान्त बहुवचनान्त पक्ष में ३–३ भंग हैं। इस प्रकार से असंयोग पक्ष में इन छ भंगों का अर्थ कथन है। संयोगपक्ष में एकवचन और बहुवचन संबन्धी प्रथम और द्वितीय भंग को संयुक्त करने पर त्रिसमय की स्थितिवाला पदार्थ एक आनुपूर्वी और एक समय की स्थितिवाला पदार्थ एक अनानुपूर्वी का वाच्यार्थ जानना चाहिये। यही बात (अहवा तिसमयट्ठिइए य एगसमयट्ठिइए य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य) इस पाठ द्वारा स्पष्ट की गई है। यह प्रथम चतुर्भंगी का प्रथम भंग है (एवं तहाचेव दव्वाणुपुव्वीगमेणं छव्वीसं भंगा भाणियव्वा जाव से तं णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया) इस प्रकार द्रव्यानुपूर्वी के पाठ के

પોતપોતાની એક સરખી જાતિવાળા પદાર્થો અનાનુપૂર્વીઓ રૂપ છે. (દુસમયટ્ઠિઇયા અવત્તવ્વયાઇં) બે સમયની સ્થિતિવાળા અનેક પોતપોતાની એક સરખી જાતિવાળા પદાર્થો અવક્તવ્યકો રૂપ છે. આ પ્રકારે એકવચનાન્ત અસંયોગ પક્ષમાં ત્રણ ભંગ અને બહુવચનાંત અસંયોગ પક્ષમાં પણ ત્રણ ભંગ બને છે. આ રીતે અસંયોગપક્ષે કુલ ૬ ભંગ બને છે. સંયોગપક્ષે એકવચન અને બહુવચન સંબંધી પ્રથમ અને દ્વિતીય ભંગને સંયુક્ત કરવાથી ત્રણ સમયની સ્થિતિવાળો પદાર્થ એક આનુપૂર્વી રૂપ અને એક સમયની સ્થિતિવાળો પદાર્થ એક અનાનુપૂર્વી રૂપ સમજવો જોઈએ, એજ વાત નીચેના સૂત્રપાઠ દ્વારા પ્રકટ કરવામાં આવી છે–

(અહવા તિસમયટ્ઠિઇએ ય એગસમયટ્ઠિઇએ ય આણુપુવ્વી ય અણાણુપુવ્વી ય) આ પ્રકારે પહેલી ચતુર્ભંગીનો પહેલો ભંગ ઉપર પ્રકટ કરવામાં આવ્યો છે. (એવં તહા ચેવ દવ્વાણુપુવ્વીગમેણં છવ્વીસં ભંગા ભાણિયવ્યા જાવ સે તં ણેગમવવહારાણં ભંગોવદંસણયા) આ પ્રકારે દ્રવ્યાનુપૂર્વીના પાઠમાં કહ્યા અનુસા-

अनुसार यहां पर "से तं णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया" इस पाठ पर्यन्त २६ भंग जानना चाहिये। यही भंगोपदर्शनता है। यहां २६ भंग इस प्रकार से बनते हैं—

(१) त्रिसमयस्थितिक-एकपरमाणु आदि से लेकर अनंताणुक स्कंध पर्यंत द्रव्य विशेष आनुपूर्वी, (२) एक समय स्थितिक-एक परमाणु आदि से लेकर अनंताणुक स्कंध पर्यन्त द्रव्यविशेष अनानुपूर्वी (३) द्विसमयस्थितिक-एकपरमाणु द्रव्य आदि से लेकर अनंताणुक स्कंध पर्यंत द्रव्य विशेष-अवक्तव्यक ये ३ तीन भंग एकवचनान्त हैं-

(१) त्रिसमयस्थितिक-अनेक एक २ परमाणु आदि से लेकर अनेक अनंताणुक स्कंधद्रव्यविशेष-आनुपूर्वियां, (२) एक समयस्थितिक-अनेक एक २ परमाणु आदि द्रव्य से लेकर अनेक अनंताणुक स्कंध पर्यंत अनानुपूर्वियां, (३) द्विसमयस्थितिक-अनेक एक २ परमाणु आदि से लेकर अनेक अनंताणुक स्कंध पर्यंत समस्त अवक्तव्यक ये तीन भंग बहुवचनान्त हैं।

दो २ भंगो के संयोग से प्रथम चतुर्भंगी इस प्रकार से बनती हैं-(१) आनुपूर्वी अनानुपूर्वी (२) आनुपूर्वी अनानुपूर्वियां (३) आनुपूर्वियां

२ना २१ भंग अही पण समजवा लेवाओ. "से तं णेगमववहाराणं भंगोवदंसणया" नैगमव्यवहार नयसंमत भंगोपदर्शनतानुं स्वरूप आ प्रकारनुं छे, आ सूत्रपाठ पर्यन्तनुं समस्त कथन अही ग्रहण करवुं लेवाओ. आ प्रकारनुं भंगोपदर्शनतानुं स्वरूप समजवुं अही आ प्रकारना २१ भंग बने छे-

એકવચનાન્ત ત્રણ ભંગો-

(૧) ત્રિસમયસ્થિતિક-એક પરમાણુ દ્રવ્યથી લઈને અનંતાણુક સ્કન્ધ પર્યન્તના દ્રવ્યવિશેષરૂપ-આનુપૂર્વી (૨) એક સમયસ્થિતિક એક પરમાણુ દ્રવ્ય આદિથી લઈને અનંત અણુક સ્કન્ધ પર્યન્તના દ્રવ્યવિશેષ રૂપ આનુપૂર્વી (૩) બે સમયની સ્થિતિવાળા એક પરમાણુ દ્રવ્ય આદિથી લઈને અનંતાણુક સ્કન્ધ પર્યન્તના દ્રવ્યવિશેષ રૂપ અવક્તવ્યક બહુવચનાન્ત ત્રણ ભંગો-

(૧) ત્રણ સમયની સ્થિતિવાળાં અનેક એક એક પરમાણુ રૂપ દ્રવ્યોથી લઈને અનેક અનંતાણુક સ્કંધ પર્યન્તના દ્રવ્યવિશેષ આનુપૂર્વીઓ છે.

(૨) એક સમયની સ્થિતિવાળાં એક એક પરમાણુ રૂપ દ્રવ્યોથી લઈને અનેક અનંતાણુક સ્કન્ધો પર્યન્તના દ્રવ્યવિશેષો અનાનુપૂર્વીઓ છે.

(૩) બે સમયની સ્થિતિવાળાં અનેક એક એક પરમાણુ રૂપ દ્રવ્યોથી લઈને અનેક અનંતાણુક સ્કન્ધો પર્યન્તના દ્રવ્યવિશેષો અવક્તવ્યકો રૂપ છે. બે પદોના સંયોગથી પહેલી ચતુર્ભંગી (ચારભાંગા) નીચે પ્રમાણે બને છે-

(૧) આનુપૂર્વી અનાનુપૂર્વી, (૨) આનુપૂર્વી અનાનુપૂર્વીઓ, (૩) આનુ-

अनानुपूर्वी, (४) आनुपूर्वियां अनानुपूर्वियां। द्वितीय चतुर्भंगी-इस प्रकार से है (१) आनुपूर्वी अवक्तव्यक (२) आनुपूर्वी बहु अवक्तव्यक (३) आनुपूर्वियां एक अवक्तव्यक (४) अनेक आनुपूर्वियां अनेक अवक्तव्यक। तृतीय चतुर्भंगी इस प्रकार से है-(१) अनानुपूर्वी अवक्तव्यक (२) अनानुपूर्वी बहु अवक्तव्यक (३) अनानुपूर्वियां एक अवक्तव्यक (४) अनेक आनुपूर्वियां अनेक अवक्तव्यक। इस प्रकार दो २ के संयोग पक्ष में द्विसंयोगी भंग इन एकवचनान्त बहुवचनान्त आनुपूर्वी आदि पदों के ये १२ भंग हैं। तीन २ के संयोग से जो आठ भंग बनते हैं वे इस प्रकार से हैं-(१) एक आनुपूर्वी एक अनानुपूर्वी एक अवक्तव्यक, (२) एक आनुपूर्वी एक अनानुपूर्वी अनेक अवक्तव्यक (३) एक आनुपूर्वी अनेक अनानुपूर्वियां एक अवक्तव्यक (४) एक आनुपूर्वी अनेक अनानुपूर्वी अनेक अवक्तव्यक (५) अनेक आनुपूर्वियां एक अनानुपूर्वी एक अवक्तव्यक, (६) अनेक आनुपूर्वियां एक अनानुपूर्वी अनेक अवक्तव्यक (७) अनेक आनुपूर्वियां अनेक अनानुपूर्वियां एक अवक्तव्यक (८) अनेक आनुपूर्वियां अनेक अनानुपूर्वियां अनेक अवक्त-

---

पूर्वीओ अनानुपूर्वी अने (४) आनुपूर्वीओ अनानुपूर्वीओ.

બે પદોના સંયોગથી બીજી ચતુર્ભંગી નીચે પ્રમાણે બને છે-

(૧) આનુપૂર્વી અવક્તવ્યક, (૨) આનુપૂર્વી ઘણા અવક્તવ્યકો, (૩) આનુપૂર્વીઓ એક અવક્તવ્યક, (૪) અનેક આનુપૂર્વીઓ અનેક અવક્તવ્યકો.

બે પદોના સંયોગથી ત્રીજી ચતુર્ભંગી આ પ્રમાણે બને છે-

(૧) એક આનુપૂર્વી એક અવક્તવ્યક, (૨) એક અનાનુપૂર્વી ઘણા અવક્તવ્યકો, (૩) ઘણી અનાનુપૂર્વી એક અવક્તવ્યક (૪) ઘણી અનાનુપૂર્વીઓ ઘણા અવક્તવ્યકો.

આ પ્રકારે એકવચનાન્ત અને બહુવચનાન્ત આનુપૂર્વી આદિ પદોના સંયોગથી કુલ ૧૨ દ્વિકસંયોગી ભંગો થાય છે. હવે ત્રણ પદોના સંયોગથી જે ૮ ભંગો બને છે, તે પ્રકટ કરવામાં આવે છે,

(૧) એક આનુપૂર્વી એક અનાનુપૂર્વી અને એક અવક્તવ્યક (૨) એક આનુપૂર્વી, એક અનાનુપૂર્વી અને ઘણા અવક્તવ્યકો (૩) એક આનુપૂર્વી, અનેક અનાનુપૂર્વીઓ અને એક અવક્તવ્યક (૪) એક આનુપૂર્વી, અનેક અનાનુપૂર્વીઓ અને અનેક અવક્તવ્યકો (૫) અનેક આનુપૂર્વીઓ, એક અનાનુપૂર્વી અને એક અવક્તવ્યક (૬) અનેક આનુપૂર્વીઓ, એક અનાનુપૂર્વી અને અનેક અવક્તવ્યકો (૭) અનેક આનુપૂર્વીઓ, અનેક અનાનુપૂર્વીઓ અને એક અવક્તવ્યક (૮) અનેક આનુપૂર્વીઓ, અનેક અનાનુપૂર્વીઓ

मूलम्—से किं तं समोयारे? समोयारे णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कहिं समोयरंति? किं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति? अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति? अवत्तव्वगदव्वेहिं समोयरंति? एवं तिण्णिवि सट्ठाणे समोयरंति भाणियव्वं से तं समोयारे ॥सू० १३०॥

छाया—अथ कोऽसौ समवतारः? नैगमव्यवहारयोरानुपूर्वीद्रव्याणि क्व समवतरन्ति? किमानुपूर्वीद्रव्येषु समवतरन्ति? अनानुपूर्वीद्रव्येषु समवतरन्ति

व्यक। इस प्रकार ये सब भंग २६ हो जाते हैं। इनकी विशेष जानकारी के लिये द्रव्यानुपूर्वी प्रकरणगत भंगोपदर्शनता को देखना चाहिये। ॥सू० १२९॥

"से किं तं समोयारे?" इत्यादि।

शब्दार्थः-(से किं तं समोयारे) हे भदंत! पूर्वप्रक्रान्त समवतार का क्या स्वरूप हैं?—

उत्तर-(समोयारे) पूर्वप्रक्रान्त (पहले प्रारंभ किया हुवा) समवतार का स्वरूप इस प्रकार से है।-(णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कहिं समोयरंति) नैगमव्यवहारनयसंमत जो अनेक आनुपूर्वी द्रव्य हैं उनका अन्तर्भाव कहां होता है? इस प्रकार के चिन्तन प्रकार का जो उत्तर देता है वही समवतार है। यह विचार इस प्रकार से होता है कि

अने अनेक अवक्तव्यको आ प्रकारे असंयोगी ६, द्विकसंयोगी १२ अने त्रिकसंयोगी ८ भांगाओ मळीने कुल २६ भांगा थई जाय छे. तेमना विषे वधु माहिती मेळववी होय तो द्रव्यानुपूर्वीना प्रकरणमां जे भंगोपदर्शनतानुं निरूपण करवामां आव्युं छे ते वांची जवानी भलामण करवामां आवे छे. ॥सू १२९॥

"से किं तं समोयारे" इत्यादि—

शब्दार्थ-प्रश्न-(से किं तं समोयारे?) हे भगवन्! पूर्वप्रक्रान्त (अनौपनिधिकी कालानुपूर्वीना एक प्रकार ३५) समवतारनुं स्वरूप केवुं छे?

उत्तर-(समोयारे) पूर्वप्रक्रान्त समवतारनुं स्वरूप आ प्रकारनुं छे-(णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कहिं समोयरंति) नैगमव्यवहार नयसंमत जे अनेक आनुपूर्वी द्रव्यो छे तेमनो अन्तर्भाव (समावेश) क्यां थाय छे? शुं स्वस्थानमां तेमनो समावेश थाय छे के परस्थानमां थाय छे? आ प्रकारनी विचारधारानो जे उत्तर देवो तेनुं नाम समवतार छे. अहीं आ

अवक्तव्यकद्रव्येषु समवतरन्ति ? एवं त्रीण्यपि स्वस्थाने समवतरन्ति इति भणितव्यम्। स एष समवतारः ॥सू० १३०॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि। अशीतितमसूत्रे द्रव्यानुपूर्वीविषयस्य सूत्रस्य व्याख्या बोध्या ॥सू० १३०॥

नैगमव्यवहारनयसंमत समस्त आनुपूर्वी द्रव्य (किं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति, अणाणुपुव्वी दव्वेहिं-समोयरंति, अवत्तव्वगदव्वेहिं समोयरंति) क्या आनुपूर्वी द्रव्यों में अन्तर्भूत होते हैं ? या अनानुपूर्वी द्रव्यों में अन्तर्भूत होते हैं ? या अवक्तव्यक द्रव्यों में अन्तर्भूत होते हैं ? (एवं तिण्णिवि सट्ठाणे समोयरंति इति भाणियव्वं)

उत्तर-नैगमव्यवहारनयसंमत जो आनुपूर्वी द्रव्य हैं वे आनुपूर्वी द्रव्यों में ही समाविष्ट नहीं होते हैं और न अवक्तव्यक द्रव्यों में समाविष्ट होते हैं। इसी प्रकार से जितने भी नैगमव्यवहारनयमान्य अनानुपूर्वी द्रव्य हैं वे अपनी जाति में अन्तर्भूत होते हैं, भिन्न जाति में नहीं। नैगमव्यवहारनयसंमत अवक्तव्यक द्रव्य भी अवक्तव्यक द्रव्यों में ही अन्तर्भूत होते हैं अन्य आनुपूर्वी आदि द्रव्यों में नहीं। इस प्रकार आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक ये तीनों भी द्रव्य

પ્રકારની વિચારધારા ચાલે છે-નૈગમવ્યવહાર નયસંમત સમસ્ત આનુપૂર્વી દ્રવ્ય (किं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति, अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति, अवत्तव्वगदव्वेहिं समोयरंति ?) શું આનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાં અન્તર્ભૂત થાય છે ? કે અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાં અંતર્ભૂત થાય છે ? કે અવક્તવ્યક દ્રવ્યોમાં અન્તર્ભૂત થાય છે ?

ઉત્તર-(एवं तिण्णि वि सट्ठाणे समोयरंति इति भाणियव्वं) નૈગમવ્યવહાર નયસંમત જે આનુપૂર્વી દ્રવ્યો છે તેઓ આનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાં જ સમાવિષ્ટ થાય છે, તેઓ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાં સમાવિષ્ટ થતાં નથી અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યોમાં પણ સમાવિષ્ટ થતાં નથી. એજ પ્રમાણે નૈગમવ્યવહાર નયસંમત જેટલાં અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો છે, તેઓ પણ પોતાની જાતિમાં જ (અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાં જ) સમાવિષ્ટ થાય છે, તેમનાથી ભિન્ન એવાં આનુપૂર્વી દ્રવ્યોમાં અથવા અવક્તવ્યક દ્રવ્યોમાં સમાવિષ્ટ થતાં નથી એજ પ્રમાણે નૈગમવ્યવહાર નયસંમત અવક્તવ્યક દ્રવ્યો પણ અવક્તવ્યક દ્રવ્યોમાં જ સમાવિષ્ટ થાય છે-અન્ય આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્યોમાં સમાવિષ્ટ થતાં નથી આ પ્રકારે આનુપૂર્વી, અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક, આ ત્રણે પ્રકારનાં દ્રવ્યો પોતપોતાના

मूलम्–से किं तं अणुगमे? अणुगमे णवविहे पण्णत्ते, तं जहा–संतपयपरूवणया जाव अप्पाबहुं चेव। णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि णत्थि ३? नियमा तिण्णि वि अत्थि। णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं संखिज्जाइं असंखिज्जाइं अणंताइं३? तिण्णि वि नो संखिज्जाइं, असंखिज्जाइं, नो अणंताइं॥ सू० १३१॥

छाया—अथ कोऽसावनुगमः? अनुगमो नवविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-सत्पदप्ररूपणता यावदल्पबहुत्वं चैव। नैगमव्यवहारयोरानुपूर्वी द्रव्याणि किं सन्ति न

अपने २ स्थान रूप जाति में हीं अन्तर्भूत होते हैं इस सूत्र की व्याख्या के लिये देखो पीछे का ८० वां सूत्र ॥ ॥सू०१३०॥

"से किं तं अणुगमे" इत्यादि।

शब्दार्थ-(से किं तं अणुगमे?) हे भदंत! अनुगम का क्या स्वरूप है?

उत्तर-(अणुगमे णवविहे पण्णत्ते) अनुगम नौ प्रकार का कहा गया है। (तंजहा) जैसे (संतपयपरूवणया, जाव अप्पाबहुं चेव) संतपदप्ररूपणता से लेकर अल्पबहुत्व तक–

अर्थात्-(१) सत्पदप्ररूपणता, (२) द्रव्यप्रमाण, (३) क्षेत्र (४) स्पर्शना (५) काल (६) अन्तर, (७) भाग (८) भाव (९) अल्पबहुत्व। विद्यमान पदार्थ विषयक पद की प्ररूपणा का नाम सत्पदप्ररूपणता है। इस में (णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि णत्थि ३) जो

સ્થાન રૂપ જાતિમાં જ અન્તર્ભૂત થાય છે. આ સૂત્રની વ્યાખ્યા માટે પાછળ ૮૦મું સૂત્ર વાંચી જવું જોઈએ ॥સૂ૦૧૩૦॥

"से किं तं अणुगमे" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(से किं तं अणुगमे?) હે ભગવન્! અનુગમનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(अणुगमे णवविहे पण्णत्ते) અનુગમ નવ પ્રકારનો કહ્યો છે. (तंजहा) તે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે–

(संतपयपरूवणया, जाव अप्पाबहुं चेव) સંતપદ પ્રરૂપણતાથી લઈને અલ્પબહુત્વ પર્યન્તના નવ પ્રકારો અહીં ગ્રહણ કરવા જોઇએ. તે નવ પ્રકારો હવે ગણાવવામાં આવે છે—

(૧) સત્પદ પ્રરૂપણતા, (૨) દ્રવ્યપ્રમાણ, (૩) ક્ષેત્ર, (૪) સ્પર્શના, (૫) કાળ, (૬) અન્તર, (૭) ભાગ (૮) ભાવ અને (૯) અલ્પબહુત્વ.

વિદ્યમાન પદાર્થવિષયક પદની પ્રરૂપણતાનું નામ સત્પદપ્રરૂપણતા છે. તેમાં (णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि णत्थि ?) કોઈ એવો પ્રશ્ન

सन्ति३? नियमात् त्रीण्यपि सन्ति। नैगमव्यवहारयोरानुपूर्वी द्रव्याणि किं संख्येयानि असंख्येयानि अनन्तानि३? त्रीण्यपि नो संख्येयानि, असंख्येयानि, नो अनन्तानि ॥सू० १३१॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि—

शिष्यः पृच्छति-अथ कोऽसावनुगमः? इति। उत्तरयति-अनुगमो नवविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-सत्पदप्ररूपणतेत्याद्यल्पबहुत्वान्तः। तथाहि-सत्पदप्ररूपणता१, द्रव्यप्रमाणं२, क्षेत्रं३, स्पर्शना४, कालः५, अन्तरम् ६, भागः७, भावः८, अल्पबहुत्वं ९ चेति। तत्र—सत्पदप्ररूपणतां निरूपयितुमाह-'णेगमववहाराणं' इत्यादि-नैगमव्यवहारसम्मतान्याऽऽनुपूर्वी द्रव्याणि किं सन्ति? न सन्ति वा? एवमनानुपूर्व्यवक्तव्यकविषयेऽपि प्रश्नो बोध्यः। उत्तरयति-नियमात् त्रीण्यपि=आनु-

कोई ऐसा प्रश्न करते हैं कि "नैगमव्यवहारनयसंमत आनुपूर्वी द्रव्य हैं या नहीं हैं" इसी प्रकार का प्रश्न अनानुपूर्वी द्रव्यों और अवक्तव्यक द्रव्यों के भी विषय में होता है-तब इसका उत्तर-(णियमा तिण्णि वि अत्थि) "नियमतः ये तीनों द्रव्य हैं" ऐसा दिया जाता है। (णेगमववहाराणं आणुपुव्वी दव्वाइं किं संखिज्जाइं असंखिज्जाइं अणंताइं ३?) द्रव्यप्रमाण में आनुपूर्वी आदि पदों द्वारा जिन द्रव्यों को कहा जाता है उनकी संख्या कितनी है इसका विचार होता है-जिसे इस पाठ द्वारा व्यक्त किया गया है-प्रश्नकर्त्ता पूछता है कि नैगमव्यवहारनयसंमत आनुपूर्वी द्रव्य क्या संख्यात हैं, या असंख्यात हैं या अनंत हैं? इसी प्रकार का प्रश्न प्रश्नकर्त्ता का अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों के विषय में भी है। इसका उत्तर सूत्रकार ने (तिण्णि

પૂછે કે "નૈગમવ્યવહાર નયસંમત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો છે કે નથી? અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો છે કે નથી? અવક્તવ્યક દ્રવ્યો છે કે નથી?" તો તે પ્રશ્નનો ઉત્તર આ પ્રમાણે આપવામાં આવે છે-(णियमा तिण्णि वि अत्थि) "આ ત્રણે દ્રવ્યો અવશ્ય વિદ્યમાન છે. આ પ્રકારે આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્યોના અસ્તિત્વ વિષયક જે પ્રરૂપણા કરવામાં આવે છે તેનું નામ સત્પદપ્રરૂપણતા છે.

હવે દ્રવ્યપ્રમાણનું સ્વરૂપ સમજાવવામાં આવે છે-જે દ્રવ્યોને આનુપૂર્વી આદિ રૂપે ઓળખવામાં આવે છે, તે દ્રવ્યોની સંખ્યાનો દ્રવ્યપ્રમાણમાં વિચાર કરવામાં આવે છે એજ વાતને નીચેના સૂત્રપાઠ દ્વારા સ્પષ્ટ કરવામાં આવી છે-

પ્રશ્ન-(णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं संखिज्जाइं, असंखिज्जाइं, अणंताइं?) નૈગમવ્યવહાર નયસંમત સમસ્ત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો શું સંખ્યાત છે, અસંખ્યાત છે, કે અનંત છે? આ પ્રકારનો પ્રશ્ન અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યો વિષે પણ પૂછવો જોઇએ.

पूर्वानानुपूर्व्यवक्तव्यकाभिधेयानि त्रीण्यपि सन्ति। अथ द्रव्यप्रमाणं निरूपयति-'णेगमववहाराणं' इत्यादि। नैगमव्यवहारसम्मतानि आनुपूर्वीद्रव्याणि किं संख्येयानि असंख्येयानि अनन्तानि? एवमनानुपूर्वीद्रव्यावक्तव्यकद्रव्यविषयेऽपि प्रश्नो बोध्यः। उत्तरयति-त्रीण्यपि नो संख्येयानि नो अनन्तानि, किन्तु असंख्येयानि। अत्रेदं बोध्यम्-त्र्यादिसमयस्थितिकानि परमाण्वादि द्रव्याणि यद्यपीह लोके प्रत्येकमनन्तानि, तथापि समयत्रयलक्षणस्थितिरेकैव, कालस्य प्राधान्याद् द्रव्यबहुत्वस्य गुणीभूतत्वाच्च। एवं च त्रिसमयस्थितिकैरनन्तैरपि एकमेवानुपूर्वी द्रव्यम्। इत्थमेव चतुःसमयादि स्थितिकानन्तेषु यावद्दशसमयसंख्येयसमया

वि नो संखिज्जाइं, असंखिज्जाइं, नो अणंताइं) यों दिया है। वे कहते हैं कि ये तीनों ही द्रव्य न संख्यात हैं और न अनंत हैं, किन्तु असंख्यात हैं। तात्पर्य कहने का यह है कि-तीन समय की स्थितिवाले प्रत्येक परमाणु आदि द्रव्य यद्यपि इसलोक में अनंत हैं तो भी उनकी समयत्रयरूपस्थिति एक ही है। क्योंकि काल की यहां प्रधानता है और द्रव्यबहुत्व की गौणता है। इसलिये समयत्रय की स्थितिवाले जितने भी वे परमाणु आदि अनंत द्रव्य हैं वे सब अपनी २ तीन समय की स्थितिकी अपेक्षा से एक ही आनुपूर्वी द्रव्य रूप हैं। इसी प्रकार से यद्यपि चार समय आदि की स्थितिवाले प्रत्येक परमाणु आदि द्रव्य अनंत हैं, यावत् दश समय की स्थितिवाले, संख्यात समय की

उत्तर-(तिण्णि वि नो संखिज्जाइं, असंखिज्जाइं, नो अणंताइं) आनुपूर्वी આદિ ત્રણે પ્રકારના દ્રવ્યો સંખ્યાત પણ નથી, અનંત પણ નથી, પરન્તુ અસંખ્યાત છે. આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે ત્રણ સમયની સ્થિતિવાળાં પ્રત્યેક પરમાણુ આદિ દ્રવ્યો જો કે આ લોકમાં અનંત છે, છતાં પણ તેમની સમયત્રય રૂપ સ્થિતિ એક જ છે, કારણ કે કાળની અહીં પ્રધાનતા ગ્રહણ કરવાની છે અને દ્રવ્યબહુત્વની ગૌણતા સમજવાની છે તેથી ત્રણ સમયની સ્થિતિવાળાં જેટલાં પરમાણુથી લઈને અનંત પર્યન્તના પુદ્ગલ પરમાણુવાળાં સ્કન્ધ રૂપ દ્રવ્યો છે, તેઓ બધાં પોતપોતાની ત્રણ સમયની સ્થિતિની અપેક્ષાએ એક જ આનુપૂર્વી દ્રવ્ય રૂપ છે. એજ પ્રમાણે જો કે ચાર આદિ સમયની સ્થિતિવાળાં પ્રત્યેક પરમાણુ આદિ દ્રવ્ય અનંત છે, દસ સમય પર્યન્તની સ્થિતિવાળાં, સંખ્યાત સમયની સ્થિતિવાળાં અને અસંખ્યાત સમયની સ્થિતિવાળાં પરમાણુ આદિ દ્રવ્યો અનંત છે, છતાં પણ તેઓ પોતપોતાની ચાર આદિ સમય, દસ પર્યન્તના સમય, સંખ્યાત અને અસં-

संख्येयसमयस्थितिकानन्तेषु एकैकेषामेकैकानुपूर्वीत्वं बोध्यम्। द्रव्यस्यानन्तसमयस्थितिरेव न भवति तथाविधस्वभावत्वात्। एवमेव अनानुपूर्वी द्रव्याणि अवक्तव्यकद्रव्याणि चाप्यसंख्येयानि बोध्यानि। ननु एकसमयस्थितिकस्य द्रव्यस्य अनानुपूर्वीत्वं, द्विसमयस्थितिकस्य द्रव्यस्यावक्तव्यकत्वमुच्यते, तत्र यद्यपि लोके

स्थितिवाले, असंख्यात समय की स्थितिवाले परमाणु आदि द्रव्य अनंत हैं तो भी वे अपनी २ चार आदि समय, दश समय, संख्यात समय, और असंख्यात समयरूप स्थिति को एक होने की अपेक्षा से एक एक आनुपूर्वीरूप हैं। अर्थात् चार आदि समय की स्थितिवाले जितने भी अनन्त परमाणु द्रव्य एवं अनन्त स्कंध द्रव्य हैं वे अपनी चार समय की स्थिति को एक होने के कारण एक आनु र्वी द्रव्य हैं। इसी प्रकार से दश आदि समयोंकी स्थितिवाले अनंत परमाणु द्रव्य से लेकर अनंत परमाणुक स्कंधों में भी एक २ को एक २ आनुपूर्वीरूपता अपनी २ स्थितिको एक होने की अपेक्षा से जानना चाहिये। द्रव्य की स्थिति अनंत समय की नहीं होती है, क्योंकि ऐसा कोई द्रव्य ही नहीं है कि जिसकी स्थिति अनन्त समय की हो। इसलिये आनुपूर्वी द्रव्यों को असंख्यात माना गया है। इसी प्रकार से अनानुपूर्वी द्रव्य और अवक्तव्यक द्रव्य भी असंख्यात २ हैं ऐसा जानना चाहिये।

शंका–एक समय की स्थितिवाला द्रव्य अनानुपूर्वी है और दो समय की स्थितिवाला द्रव्य अवक्तव्यक है। इनमें यद्यपि लोक में एक

ખ્યાત સમય રૂપ સ્થિતિ એક સરખી હોવાને કારણે એક એક આનુપૂર્વી રૂપ છે. એટલે કે ચાર સમયની સ્થિતિવાળાં જેટલાં અનંત પરમાણુ દ્રવ્યો અને અનંત સ્કન્ધ દ્રવ્યો છે. તેઓ ચાર સમયની એક સરખી સ્થિતિવાળાં હોવાને કારણે એક આનુપૂર્વી દ્રવ્યરૂપ છે એજ પ્રમાણે પાંચથી લઈને દસ પર્યન્તના સમયની સ્થિતિવાળાં, સંખ્યાત સમયની સ્થિતિવાળાં અને અસંખ્યાત સમયની સ્થિતિવાળાં અનંત પરમાણુ દ્રવ્યોથી લઈને અનંત પરમાણુ સ્કંધોમાં પણ, તે પ્રત્યેકની પોતપોતાની સ્થિતિની એકરૂપતાને કારણે તે પ્રત્યેકમાં પણ એક એક આનુપૂર્વી રૂપતા સમજવી જોઇએ દ્રવ્યની સ્થિતિ અનંત સમયની હોતી નથી–એટલે કે એવું કોઈ પણ દ્રવ્ય નથી કે જેની સ્થિતિ અનંત સમયની હોય તેથી આનુપૂર્વી દ્રવ્યોને અસંખ્યાત જ માનવામાં આવેલ છે. એજ પ્રમાણે અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો પણ અસંખ્યાત જ છે અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યો પણ અસંખ્યાત જ છે એમ સમજવું.

શંકા–એક સમયની સ્થિતિવાળું દ્રવ્ય અનાનુપૂર્વી છે, અને બે સમયની સ્થિતિવાળું દ્રવ્ય અવક્તવ્યક છે જો કે લોકમાં એક સમયની સ્થિતિવાળાં

एकसमयस्थितिकानि द्विसमयस्थितिकानिच परमाण्वादिद्रव्याणि प्रत्येकमनन्तानि सन्ति, तथापि पूर्वोक्तरीत्या एकसमयलक्षणाया द्विसमयलक्षणायाश्च स्थितिरेकैकरूपत्वाद् द्रव्यबाहुल्यस्य च गुणीभूतत्वादेकमेवानानुपूर्वीद्रव्यमेकमेव चावक्तव्यकद्रव्यं वक्तुमुचितं, न तु प्रत्येकमसंख्येयम्। ननु यदि च द्रव्यभेदेन भेदोऽङ्गीक्रियते तर्हि प्रत्येकमनन्तं वक्तुमुचितम्, एकसमयस्थितीनां द्विसमयस्थितीनां च द्रव्याणां

एक समय की स्थितिवाले और दो समय की स्थितिवाले परमाणु आदि प्रत्येक द्रव्य अनंत हैं, तो भी पूर्वोक्त रीति से एक समय की और दो समय की स्थिति को एक रूप होने से और द्रव्यबाहुल्य को गौण होने से एक ही अनानुपूर्वी द्रव्य और एक ही अवक्तव्यक द्रव्य है ऐसा कथन करना ही उचित है। प्रत्येक असंख्यात है ऐसा कहना उचित नहीं है। शंकाकार का तात्पर्य यह है कि कालानुपूर्वी में द्रव्य बाहुल्य गौण माना गया है और काल प्रधान-इसलिये एकसमय की स्थितिवाले जितने द्रव्य होंगे वे सब अपनी अपनी एक २ समय की स्थिति में एकरूपता होने के कारण एक ही अनानुपूर्वी द्रव्य कहे जावेंगे भिन्न २ असंख्यात अनानुपूर्वी द्रव्य नहीं। इस प्रकार जितने भी दो समय की स्थितिवाले द्रव्य होंगे वे सब अपनी २ दो २ समय की स्थिति को एक रूप होने से एक ही अवक्तव्यक द्रव्य माने जावेंगे भिन्न भिन्न असंख्यात अवक्तव्यक द्रव्य नहीं। यदि द्रव्य के भेद से इनमें भेद माना जावे तो फिर

અને બે સમયની સ્થિતિવાળાં પરમાણુ આદિ પ્રત્યેક દ્રવ્ય અનંત છે, છતાં પણ પૂર્વોકત રીતે એક સમયની અને બે સમયની સ્થિતિની એકરૂપતા હોવાથી અને દ્રવ્યબાહુલ્યની ગૌણતા હોવાથી "એક જ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય અને એક જ અવકતવ્યક દ્રવ્ય છે," એવું કથન કરવું ઉચિત ગણાત પ્રત્યેક અસંખ્યાત છે, એવું કથન કરવું ઉચિત લાગતું નથી શંકાકરનારના કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે- કાલાનુપૂર્વીમાં દ્રવ્યબાહુલ્યને ગૌણ માનવામાં આવ્યું છે અને કાળને પ્રધાન માનવામાં આવેલ છે. તેથી એક સમયની સ્થિતિવાળાં જેટલાં દ્રવ્યો હશે, તેમનામાં એક એક સમયની સ્થિતિ રૂપ એકતા હોવાને કારણે, એક જ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય રૂપ ગણવા જોઈએ- ભિન્ન ભિન્ન અસંખ્યાત અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો રૂપ ગણવા જોઈએ નહીં એજ પ્રમાણે બે સમયની સ્થિતિવાળાં જેટલાં દ્રવ્યો હશે તે બધાંને પણ, પોતપોતાની બન્ને સમયની સ્થિતિની એકરૂપતાને કારણે, એક જ અવકતવ્યક દ્રવ્ય રૂપ માનવા પડશે-ભિન્ન ભિન્ન અસંખ્યાત અવકતવ્યક દ્રવ્યો રૂપ માની

प्रत्येकमानन्त्यादितिचेदाह-लोके हि असंख्येया अवगाहभेदाः सन्ति। एवं च एकसमयस्थितिकद्विसमयस्थितिकयोर्द्रव्ययोः एकैकस्य अवगाहनाभेदेन भिन्नतया विवक्षितत्वात्प्रत्येकमसंख्येयं बोध्यम्। प्रत्यवगाहंच एकसमयस्थितिकद्विसमयस्थितिकानेकद्रव्यसंभवादनानुपूर्व्यवक्तव्यकद्रव्याणामाधारक्षेत्रभेदात्प्रत्येकमसंख्येयत्वं न विरुध्यते ॥इति॥सू० १३१॥

इस प्रकार से तो इनमें प्रत्येक में असंख्यातता न कहकर यहां सूत्रकार को अनंतता प्रत्येक में कहना उचित था क्यों कि एक समय की स्थितिवाले द्रव्यों में और दो समय की स्थितिवालेद्रव्यों में प्रत्येक द्रव्य अनन्त है?

उत्तर-लोक में अवगाह भेद असंख्यात हैं। इसलिये एक समय की स्थितिवाले जितने द्रव्य हैं और दो समय की स्थितिवाले जितने द्रव्य हैं उनमें से एक २ द्रव्य में अवगाहना के भेद से भिन्नता है। इस भिन्नता की विवक्षा की वजह से प्रत्येक द्रव्य असंख्यात है-ऐसा जानना चाहिये। हरएक अवगाहमें एक समय की स्थितिवाले और दो समय की स्थितिवाले अनेक द्रव्यों का रहना संभवित होता है। इसलिये असंख्य अवगाह में अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों के रहने के कारण उनके आधारभूत क्षेत्र में भेद हो जाता है। इसलिये इनमें

શકાશે નહીં જો દ્રવ્યના ભેદને લીધે તેમની વચ્ચે ભેદ માનવામાં આવે, તો તે પ્રત્યેકમાં અસંખ્યાતતા આવવાને બદલે અનંતતા જ આવવાનો પ્રસંગ ઉપસ્થિત થશે તેથી સૂત્રકારે અહીં જે અસંખ્યાતતા કહી છે તેને બદલે પ્રત્યેકમાં અનંતતા જ કહેવી જોઈતી હતી, કારણ કે એક સમયની સ્થિતિવાળાં દ્રવ્યોમાં અને બે સમયની સ્થિતિવાળાં દ્રવ્યોમાં-બે પ્રત્યેકમાં-અનંતતા જ હોય છે.

ઉત્તર-લોકમાં અવગાહભેદ અસંખ્યાત છે તેથી એક સમયની સ્થિતિવાળાં જેટલાં દ્રવ્યો છે અને બે સમયની સ્થિતિવાળા જેટલાં દ્રવ્યો છે, તેમાંના પ્રત્યેક દ્રવ્યમાં અવગાહનાના ભેદને લીધે ભિન્નતા છે. આ ભિન્નતાની અપેક્ષાએ પ્રત્યેક દ્રવ્ય અસંખ્યાત છે, એમ સમજવું જોઈએ. દરેક અવગાહમાં એક સમયની સ્થિતિવાળાં અને બે સમયની સ્થિતિવાળાં અનેક દ્રવ્યોની વિદ્યમાનતા (રહેવાનું) સંભવિત હોય છે. તેથી અસંખ્ય અવગાહમાં અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યોના રહેવાને કારણે તેમના આધારભૂત ક્ષેત્રમાં ભેદ પડી જાય છે તેથી તે દ્રવ્યોમાં-પ્રત્યેકમાં-અસંખ્યાતતાનું કથન વિરુદ્ધ

अथ क्षेत्रद्वारं स्पर्शनाद्वारं च वक्तुमाह—

मूलम्—णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं अणाणुपुव्वीदव्वाइं अवत्तव्वगदव्वाइं लोगस्स किं संखिज्जइभागे होज्जा? असंखिज्जइभागे होज्जा? संखेज्जेसु भागेसु वा होज्जा? असंखेज्जेसु भागेसु वा होज्जा? सव्वलोए वा होज्जा? आणुपुव्वीदव्वाइं एगं दव्वं पडुच्च संखेज्जइभागे वा होज्जा, असंखेज्जइ भागे वा होज्जा, संखेज्जेसु वा, भागेसु होज्जा, असंखेज्जेसु वा भागेसु होज्जा, देसूणे वा लोए होज्जा? नाणादव्वाइं पडुच्च नियमा सव्वलोए होज्जा। एवं अणाणुपुव्वीदव्वाइं। आएसंतरेण वा सव्वपुच्छासु

प्रत्येक में असंख्यातता का कथन विरुद्ध नहीं है। निर्दोष है। तात्पर्य कहने का यह है कि लोक में एक समय की स्थितिवाले द्रव्यों को रहने के स्थान असंख्यात है क्यों कि लोकाकाश स्वयं असंख्यात प्रदेशी है। इन द्रव्यों को रहने का एक ही एक प्रदेश रूप या दो प्रदेश रूप आधार स्थान नहीं है। अतः एक प्रदेश रूप और दो आदि रूप आधार अनेक होने के कारण उन असंख्यात आधार रूप स्थानों में ये प्रत्येक द्रव्य असंख्यात रूप में रहते हैं इसलिये ये प्रत्येक असंख्यात ही हैं अतः भिन्न २ स्थानों में रहे हुवे इन एक समय की और दो समय की स्थिति वाले द्रव्यों में प्रत्येक में असंख्यातता का कथन निर्दोष है। ॥सू०१३१॥

પડતું નથી, પણ નિર્દોષ કથન રૂપ જ ગણી શકાય છે. આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે લોકમાં એક સમયની સ્થિતિવાળાં દ્રવ્યોને તથા બે સમયની સ્થિતિવાળાં દ્રવ્યોને રહેવાનાં સ્થાન અસંખ્યાત છે, કારણ કે લોકાકાશ પોતે જ અસંખ્યાત પ્રદેશોવાળું છે આ દ્રવ્યોને રહેવાનું એક જ પ્રદેશ રૂપ અથવા બે પ્રદેશરૂપ આધારસ્થાન હોતું નથી તેથી એક પ્રદેશરૂપ અને બે પ્રદેશ આદિ રૂપ આધાર અનેક હોવાને કારણે તે અસંખ્યાત આધાર રૂપ સ્થાનોમાં તે પ્રત્યેક દ્રવ્ય અસંખ્યાત રૂપે રહે છે. (તેથી તે પ્રત્યેક અસંખ્યાત જ છે. આ રીતે ભિન્ન ભિન્ન સ્થાનોમાં રહેલા એક સમયની અને બે સમયની સ્થિતિવાળાં તે પ્રત્યેક દ્રવ્યમાં અસંખ્યાતનું કથન દોષરહિત જ છે.) ॥સૂ૦૧૩૧॥

होज्जा। एवं अवत्तव्वगदव्वाणि वि जहा खेत्ताणुपुव्वीए। फुसणा कालाणुपुव्वीए वि तहा चेव भाणियव्वा ॥सू० १३२॥

छाया— नैगमव्यवहारयोः आनुपूर्वीद्रव्याणि अनानुपूर्वीद्रव्याणि अवक्तव्यकद्रव्याणि लोकस्य किं संख्येयभागे भवन्ति? असंख्येयभागे भवन्ति? संख्येयेषु भागेषु वा भवन्ति? असंख्येयेषु भागेषु वा भवन्ति? सर्वलोके वा भवन्ति? आनुपूर्वीद्रव्याणि एकं द्रव्यं प्रतीत्य संख्येयभागे वा भवन्ति, असंख्येयभागे वा भवन्ति, संख्येयेषु वा भागेषु भवन्ति? असंख्येयेषु वा भागेषु भवन्ति? देशोने वा लोके भवन्ति। नानाद्रव्याणि प्रतीत्य नियमात् सर्वलोके भवन्ति। एवमनानुपूर्वीद्रव्यम्। आदेशान्तरेण वा सर्ववृच्छासु भवन्ति। एवमवक्तव्यकद्रव्याण्यपि यथा क्षेत्रानुपूर्व्याम्। स्पर्शनाकालानुपूर्व्यामपि तथैव भणितव्या ॥सू० १३२॥

टीका—'णेगमववहाराणं' इत्यादि—

नैगमव्यवहारसम्मतानि आनुपूर्वीद्रव्याणि लोकस्य किं संख्येयभागे भवन्ति= तिष्ठन्ति? इत्यादि प्रश्नः। उत्तरयति-'एगं दव्वं' इत्यादि। आनुपूर्वीद्रव्याणि एकं

अब सूत्रकार क्षेत्रद्वार और स्पर्शनद्वार का कथन करते हैं—

"णेगमववहाराणं" इत्यादि—

शब्दार्थ-(णेगमववहाराणं) नैगमव्यवहारनयमान्य (आणुपुव्वी दव्वाइं) समस्त आनुपूर्वी द्रव्य (अणाणुपुव्वी दव्वाइं) समस्त अनानुपूर्वी द्रव्य (अवत्तव्वगदव्वाइं) और समस्त अवक्तव्यक द्रव्य (लोगस्स) लोक के (किं) क्या (संखिज्जइभागे होज्जा) संख्यात भाग में रहते हैं? (असंखिज्जइ भागे होज्जा) या असंख्यात भाग में रहते हैं (संखेज्जेसु-भागेसु वा होज्जा) या संख्यात भागों में रहते हैं? (असंखेज्जेसु भागेसु वा होज्जा) या असंख्यात भागों में रहते हैं? (सव्वलोए वा होज्जा) या समस्त लोक में रहते हैं?

હવે સૂત્રકાર ક્ષેત્રદ્વાર અને સ્પર્શનદ્વારનું કથન કરે છે.—

" णेगमववहाराणं " ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(णेगमववहाराणं) નૈગમવ્યવહાર નયસંમત (आणुपुव्वीदव्वाइं) સમસ્ત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો, (अणाणुपुव्वीदव्वाइं) સમસ્ત અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો, (अवत्तव्वगदव्वाइं) અને સમસ્ત અવકતવ્યક દ્રવ્યો (लोगस्स किं संखिज्जइ भागे होज्जा) શું લોકના સંખ્યાતમાં ભાગમાં રહે છે, (असंखिज्जइभागे होज्जा) કે અસંખ્યાત ભાગમાં રહે છે, (संखेज्जेसु भागेसु वा होज्जा) કે

द्रव्यं प्रतीत्य=आश्रित्य लोकस्य संख्येयभागे 'होज्जा' भवन्ति=तिष्ठन्ति, असंख्येयभागे वा तिष्ठन्ति, संख्येयेषु भागेषु वा तिष्ठन्ति, असंख्येयेषु भागेषु वा तिष्ठन्ति, देशोने वा लोके तिष्ठन्ति। अत्र त्र्यादिसमयस्थितिकद्रव्यस्य संख्येयादिभागवर्त्तित्वं तत्तद्भवगाहसंभवाद् बोध्यम्। तथा-यदा त्र्यादिसमयस्थितिकः सूक्ष्मपरिणामः स्कन्धो देशोने लोकेऽवगाहते, तदा एकस्य आनुपूर्वीद्रव्यस्य

उत्तर-(आणुपुव्वीदव्वाइं एगं दव्वं पडुच्च संखेज्जइभागे वा होज्जा, असंखेज्जइ भागे वा होज्जा, संखेज्जेसु भागेसु वा होज्जा, असंखेज्जेसु वा भागेसु होज्जा, देसूणे वा लोए होज्जा) एक द्रव्य की अपेक्षा करके कोई एक आनुपूर्वीद्रव्य लोक के संख्यात भाग में रहता है, कोई एक आनुपूर्वीद्रव्य लोक के असंख्यात भाग में रहता है, कोई एक आनुपूर्वी द्रव्य लोकके संख्यात भागों में रहता है और कोई एक आनुपूर्वीद्रव्य लोक के असंख्यात भागों में रहता है। तथा कोई एक आनुपूर्वीद्रव्य देशोन लोक में रहता है। यहां पर जो त्र्यादि समय की स्थितिवाले द्रव्य का लोक के इन संख्यात आदि भागों में रहना कहा गया है वह उन २ भागों में अवगाह उनका संभवित है इस अपेक्षा से कहा गया है ऐसा जानना चाहिये। तथा-जिस समय त्र्यादि समय की स्थितिवाला सूक्ष्म परिणाम युक्त स्कंध देशोन लोक में अवगाहित होता है-ठहरता है उस समय एक आनुपूर्वीद्रव्य देशोन लोकवर्ती होता है ऐसा समझना चाहिये।

સંખ્યાત ભાગોમાં રહે છે, (असंखेज्जेसु भागेसु वा होज्जा) કે અસંખ્યાત ભાગોમાં રહે છે, (सव्वलोए वा होज्जा ?) કે સમસ્ત લોકમાં રહે છે?

ઉત્તર-(आनुपुव्वीदव्वाइं एगं दव्वं पडुच्च संखेज्जइभागे वा होज्जा, असंखेज्जइभागे वा होज्जा, संखेज्जेसु भागेसु वा होज्जा, असंखेज्जेसु वा भागेसु होज्जा, देसूणे वा लोए होज्जा) એક દ્રવ્યની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો કોઈ એક આનુપૂર્વી દ્રવ્ય લોકના સંખ્યાત ભાગમાં રહે છે, કોઈ એક આનુપૂર્વી દ્રવ્ય લોકના અસંખ્યાત ભાગમાં રહે છે, કોઈ એક આનુપૂર્વી દ્રવ્ય લોકના સંખ્યાત ભાગોમાં રહે છે, તથા કોઈ એક આનુપૂર્વી દ્રવ્ય દેશોનલોકમાં રહે છે.

અહીં "આનુપૂર્વી દ્રવ્ય (ત્રણ આદિ સમયની સ્થિતિવાળું દ્રવ્ય) લોકના સંખ્યાત આદિ ભાગોમાં રહે છે." એવું જે કથન કરવામાં આવ્યું છે તેનું કારણ એ છે કે તે સંખ્યાત આદિ ઉપર્યુક્ત ભાગોમાં તેની અવગાહના સંભવિત હોય છે. તથા જે સમયે ત્રણ આદિ સમયની સ્થિતિવાળો સૂક્ષ્મ પરિણામયુકત સ્કન્ધ દેશોનલોકમાં અવગાહિત થાય છે-રહે છે-તે સમયે એક આનુપૂર્વી દ્રવ્ય દેશોનલોકવર્તી હોય છે, એવું સમજવું જોઈએ.

देशोनलोकवर्त्तित्वं भावनीयम्। ननु सम्पूर्णेऽपि लोके कस्मादिदं न तिष्ठति? इति चेदुच्यते–सर्वलोकव्यापी अचित्तमहास्कन्ध एव भवति, स च सर्वलोकव्यापितया एकमेव समयमेव तिष्ठते, ततःपरं तदुपसंहारात्। न चैकसमयस्थितिक आनुपूर्वीद्रव्यं भवति, त्र्यादिसमयस्थितिकत्वेनैव तत्संभवात्। तादृशं द्रव्यं तु नियमादेकेनापि प्रदेशेनोन एव लोकेऽवगाहते। अतः त्र्यादिसमयस्थितिकद्रव्यस्य देशोनव्यापित्वं बोध्यम्। ननु–अचित्तमहास्कन्धस्यैकसमयस्थितिकत्वं नोपपद्यते,

शंका:–आप जो सूक्ष्म परिणाम युक्त त्र्यादि समय की स्थितिवाले स्कंध रूप एक आनुपूर्वीद्रव्य को देशोन लोक व्यापी बतला रहे हो सो यह समस्त लोक में क्यों नहीं रहता है?

उत्तर:–यह तो पहिले ही कहा जा चुका है कि सर्वलोक व्यापी अचित्त महास्कंध ही होता है और यह अचित्त महास्कंध सर्वलोक में व्यापक रूप से एक ही समय तक रहता है–बाद में उसका संकोच–उपसंहार–हो जाता है। एक समय की स्थितिवाला तो आनुपूर्वीद्रव्य होता नहीं है। वह तो त्र्यादि समय की स्थितिवाला ही होता है। अतः ऐसा जो द्रव्य होता है वह नियम से एक प्रदेश ऊन ही लोक में अवगाहित होता है। इसलिये त्र्यादि समय की स्थितिवाला जो द्रव्य होता है वह देशोनलोक व्यापी होता है ऐसा समझना चाहिये।

शंका–आपने जो अचित्त महास्कंध को एक समय की स्थितिवाला प्रकट किया है, सो वह एक समय की स्थितिकता उसमें घटित नहीं

શંકા–આપ જે સૂક્ષ્મ પરિણામયુક્ત ત્રણ આદિ સમયની સ્થિતિવાળા સ્કન્ધ રૂપ એક આનુપૂર્વી દ્રવ્યને દેશોનલોકવ્યાપી કહ્યો છે, તો અમારો પ્રશ્ન એ છે કે તે સમસ્ત લોકમાં કેમ વ્યાપેલો (અવગાહિત) નથી?

ઉત્તર–એ વાત તો પહેલાં સ્પષ્ટ થઈ ચુકી છે કે અચિત્ત મહાસ્કન્ધ જ સર્વ લોકવ્યાપી હોય છે, અને તે અચિત્ત મહાસ્કન્ધ સર્વ લોકમાં વ્યાપક રૂપે એક સમય સુધી જ રહે છે. ત્યાર બાદ તેનો સંકોચ (ઉપસંહાર) થઈ જાય છે. આનુપૂર્વી દ્રવ્ય એક સમયની સ્થિતિવાળું હોતું નથી. તે તો ત્રણ આદિ સમયની સ્થિતિવાળું હોય છે. તેથી એવું જે દ્રવ્ય હોય છે તે તો દેશોન લોકમાં (એક પ્રદેશ પ્રમાણ ન્યૂન લોકમાં) જ અવગાહિત થાય છે, એવો નિયમ છે. તેથી જ એવું કહેવામાં આવ્યું છે કે ત્રણ આદિ સમયની સ્થિતિવાળું જે દ્રવ્ય હોય છે, તે દ્રવ્ય દેશોન લોકમાં અવગાહિત હોય છે.

શંકા–આપે કહ્યું તે અચિત્ત મહાસ્કન્ધની સ્થિતિ એક સમયની હોય છે, પરન્તુ આપનું તે કથન દોષયુક્ત લાગે છે, કારણ કે દંડ, કપાટ, મન્થાન

दण्डकपाटमन्थानाद्यवस्थागणनेन तस्याप्यष्टसमयस्थितित्वात्। असौ हि-केवलि समुद्घातन्यायेन विस्रसापरिणामवशाच्चतुर्भिः समयैर्लोकस्य पूरणं करोति। संहरणमपि प्रतिलोमं-तस्याचित्तमहास्कन्धस्य तैरेव चतुर्भिः समये द्रष्टव्यम्। एवं च सत्यष्टौ समयान् कालमानेन भवतीति। एवं चाचित्त महास्कन्धस्याप्यानुपूर्वीत्वात् आनुपूर्वीद्रव्यस्यापि सर्वलोकव्यापित्वं वक्तव्यं, न तु देशोनलोकव्यापित्वमिति चेदाह-अत्र हि दण्डकपाटमन्थानाद्यभिन्ना भिन्ना अवस्थाः। अवस्थाभेदेन वस्तुनोऽपि भेदः। इत्थं च दण्डकपाटमन्थानाद्यवस्थद्रव्येभ्यो भिन्न एवाचित्त-

होती है। क्यों कि दण्ड, कपाट और मन्थान आदि अवस्था की गणना से उसमें भी आठ समय की स्थितिकता आती है। यह अचित्त महास्कंध केवलिसमुद्घातन्याय से विस्रसापरिणामवशात् चार समयों में लोक को पूरित करता है। अर्थात् सकल लोक को व्याप्त करलेता है और चार ही समयों में फिर वह अपना संहार करता है-अर्थात् अपने आपमें समाजाता है। इस प्रकार इसकी स्थिति आठ समय की कालप्रमाण से होती है। फिर एक समय की स्थिति आप इसकी कैसे कहते हो? तथा यह अचित्त महास्कंध भी आनुपूर्वी रूप है और जब यह इस प्रकार से सर्वलोक व्यापी है तो आनुपूर्वीद्रव्य को जो आप देशोनलोक व्यापी कह रहे हो वह कैसे संगत माना जा सकता है? अतः आनुपूर्वी द्रव्य सर्वलोक व्यापी है ऐसा कहना चाहिये?—

उत्तर-दण्ड, कपाट और मन्थान आदि अवस्थाएँ हैं वे भिन्न २ हैं। और अवस्थाओं के भेद से अवस्थावाली वस्तु में भी भेद होता है। इस

આદિ અવસ્થાઓની ગણતરી કરતાં તેની સ્થિતિ આઠ સમયની થાય છે આ આ અચિત્ત મહાસ્કન્ધ, કેવલિસમુદ્ઘાતને ન્યાયે વિસ્રસાપરિણામને લીધે ચાર સમયોમાં સકળ લોકને વ્યાપ્ત કરી દે છે, અને ત્યાર બાદ ચાર સમયોમાં જ તે પોતાનો ઉપસંહાર કરે છે એટલે કે પોતાનામાં અંદર જ સમાઈ જાય છે. આ રીતે કાળપ્રમાણનો વિચાર કરવામાં આવે તો તેની સ્થિતિ આઠ સમયની થાય છે. છતાં આપ તેની સ્થિતિ એક સમયની શા કારણે કહો છો? આ અચિત્ત સ્કન્ધ આઠ સમયોની સ્થિતિવાળો હોવાથી આનુપૂર્વી રૂપ જ છે. જો આનુપૂર્વી દ્રવ્ય રૂપ આ અચિત્ત સ્કન્ધ સર્વલોકવ્યાપી હોય, તો આનુપૂર્વી દ્રવ્યને આપ કેવી રીતે દેશોન લોકવ્યાપી બતાવો છો? આ રીતે આનુપૂર્વી દ્રવ્યને દેશોન લોકવ્યાપી કહેવું તે સંગત લાગતું નથી. તેને સર્વલોકવ્યાપી જ કહેવું જોઇએ.

ઉત્તર-દંડ, કપાટ અને મન્થાન આદિ જે અવસ્થાઓ છે તે ભિન્ન ભિન્ન છે, અને અવસ્થાઓના ભેદને લીધે અવસ્થાવાળી વસ્તુમાં પણ ભિન્નતા આવી

महास्कन्धः। स चैकसमयस्थितिक एव। एवं च तस्यानुपूर्वीत्वाभावादानुपूर्वी-द्रव्यस्य देशोनलोकव्यापित्वं न विरुध्यते, इति। यद्वा-यथा क्षेत्रानुपूर्व्यां तथाऽत्रापि सर्वलोकव्यापिनोऽप्यचित्तमहास्कन्धस्य विवक्षया एकस्मिन्नभःप्रदेशे-ऽप्राधान्याश्रयणेन देशोनलोकवर्तित्वं बोध्यम्। तत्र प्रदेशे हि एकसमयस्थितिकस्य

प्रकार दण्ड, कपाट और मन्थान अवस्थावाले द्रव्यों से भिन्न ही अचित्त महास्कंध है। एक समय की स्थितिवाला द्रव्य आनुपूर्वी रूप नहीं माना गया है। अतः इसमें आनुपूर्वीत्व का अभाव है। इसलिये जो आनुपूर्वीद्रव्य में अचित्त महास्कंध को लक्षित करके सर्वलोक व्यापिता बतलाने की शंका उठाई है वह निर्मूल है। अतः यही कथन सत्य है कि आनुपूर्वीद्रव्य देशोनलोकव्यापी होता है यद्वा-क्षेत्रानुपूर्वी की तरह यहां पर भी सर्वलोक व्यापी भी अचित्त महास्कंध की विवक्षा से एक आनुपूर्वीद्रव्य को एक आकाश के प्रदेश में अप्रधानता के आश्रय से उसे देशोन लोकवर्ती जानना चाहिये-तात्पर्य कहने का यह है कि अचित्त महास्कंध रूप एक आनुपूर्वीद्रव्य को देशोन लोकव्यापी न मानकर यदि केवल सर्वलोकव्यापी ही माना जावे तो फिर अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों को ठहरने के लिये स्थान न होने के कारण उनका अभाव प्रसक्त होगा और जब देशोन लोक में अचित्त महास्कंध रूप एक आनुपूर्वीद्रव्य व्यापक होकर रहता है ऐसा माना जाता

જાય છે. આ પ્રકારે દંડ, કપાટ અને મન્થાન અવસ્થાવાળાં દ્રવ્યોથી અચિત્ત મહાસ્કન્ધમાં ભિન્નતા છે. અને તે એક જ સમયની સ્થિતિવાળો છે. એક સમયની સ્થિતિવાળા દ્રવ્યને આનુપૂર્વી રૂપ ગણાતું નથી પણ અનાનુપૂર્વી રૂપ જ ગણાય છે. આ પ્રકારે તે અચિત્ત મહાસ્કન્ધમાં આનુપૂર્વીતાનો અભાવ જ છે તેથી શંકા કર્તાએ એવી જે શંકા ઉઠાવી છે કે "અચિત્ત મહાસ્કન્ધ સર્વલોકવ્યાપી હોવાથી આનુપૂર્વી દ્રવ્યને પણ સર્વલોકવ્યાપી કહેવું જોઈએ" તે વાત ઉચિત નથી તે સાબિત થઈ જાય છે. અચિત્ત મહાસ્કન્ધ અનાનુપૂર્વી રૂપ હોવ થી તેની સર્વલોકવ્યાપિતાનો આધાર લઈને આનુપૂર્વી દ્રવ્યમા સર્વલોકવ્યાપિતા માની શકાય નહીં. તેથી એજ કથન સત્ય સિદ્ધ થાય છે કે આનુપૂર્વી દ્રવ્ય દેશોન લોકવ્યાપી હોય છે.

અથવા-ક્ષેત્રાનુપૂર્વીની જેમ અહીં પણ સર્વલોકવ્યાપી અચિત્ત મહાસ્કન્ધની વિવક્ષાની અપેક્ષાએ એક આનુપૂર્વી દ્રવ્યને એક આકાશના પ્રદેશમાં અપ્રધાનતાનો આશ્રય લઈને દેશોન લોકવ્યાપી સમજવું જોઇએ. આ કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે અચિત્ત મહાસ્કન્ધ રૂપ એક આનુપૂર્વી દ્રવ્યને દેશોન લોકવ્યાપી માનવાને બદલે સર્વ લોકવ્યાપી માનવામાં આવે, તો અનાનુપૂર્વી અને અવકતવ્યક દ્રવ્યોને રહેવાનું સ્થાન જ ન રહેવાને કારણે તેમનો અભાવ માનવાનો પ્રસંગ ઉપસ્થિત થશે અને જો એવું માનવામાં આવે કે અચિત્ત મહાસ્કન્ધ રૂપ એક આનુપૂર્વી દ્રવ્ય દેશોન લોકમાં વ્યાપ્ત થઈ ને રહેલું હોય

अनानुपूर्वीद्रव्यस्य द्विसमयस्थितिकस्यावक्तव्यकद्रव्यस्य च प्राधान्यात्। एवमन्यदपि आगमाविरोधतो वक्तव्यम्। तथा-नानाद्रव्याणि=अनेकानुपूर्वीद्रव्याणि भवन्त्यि नियमात् सर्वलोके भवन्ति। त्र्यादिसमयस्थितिकद्रव्याणां सर्वलोकेऽपि सत्त्वान्नानाद्रव्याणि नियमात् सर्वलोकव्यापीनि भवन्तीति भावः। एवमेव मनानु-

है तो इस प्रकार से अचित्त महास्कंध से पूरित हुए भी लोक में कम से कम एकप्रदेश ऐसा भी आजाता है कि जिसमें अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्य को ठहरने के लिये स्थान मिलजाता है यद्यपि इस एक प्रदेश में भी आनुपूर्वीद्रव्य रहता है-तो भी उसकी प्रधान रूप से वहां विवक्षा नहीं मानी जाती है। वहां तो एक समय की स्थितिवाले अनानुपूर्वीद्रव्य और दो समय की स्थितिवाले अवक्तव्यक द्रव्य की ही प्रधानता मानीजाती है इस प्रकार और भी बातें आगम में विरोध न आवे इस प्रकार से समझ लेनी चाहिये। तथा-(नाणादव्वाइं पडुच्च नियमा सव्वलोए होज्जा) अनेक आनुपूर्वीद्रव्यों की विवक्षा करके नियम से आनुपूर्वीद्रव्य समस्त लोक में रहते हैं अर्थात् त्र्यादि समय की स्थितिवाले अनेक आनुपूर्वीद्रव्यों की सत्ता समस्त लोक में भी पायी जाती है इसलिये नाना आनुपूर्वीद्रव्यों की अपेक्षा से अनेक आनुपूर्वीद्रव्य समस्त लोक व्यापी होकर रहते हैं। (एवं अणाणुपुव्वीदव्वं) इसी प्रकार

છે, તો આ રીતે અચિત્ત મહાસ્કન્ધ વડે પૂરિત (વ્યાપ્ત) થયેલા લોકમાં પણ ઓછામાં ઓછો એક પ્રદેશ એવો હોય છે કે જેમાં અનાનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યને રહેવાને માટે સ્થાન મળી જાય છે. જો કે તે એક પ્રદેશમાં પણ આનુપૂર્વી દ્રવ્ય રહે છે, છતાં પણ તેમાં તેમને પ્રધાનરૂપે ગણી શકાય નહીં તે એક પ્રદેશમાં તો એક સમયની સ્થિતિવાળા અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યની અને બે સમયની સ્થિતિવાળા અવક્તવ્યક દ્રવ્યની જ પ્રધાનતા માનવી પડે છે. એજ પ્રમાણે બીજી વાતોને પણ આગમની વિરુદ્ધ ન પડે એવી રીતે સમજી લેવી જોઇએ.

तथा-(नाणादव्वाइं पडुच्च नियमा सव्वलोए होज्जा) અનેક આનુપૂર્વી દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો તેઓ નિયમથી જ સર્વલોકમાં રહેલાં હોય છે, એમ સમજવું જોઈએ. એટલે કે ત્રણ આદિ સમયની સ્થિતિવાળાં અનેક આનુપૂર્વી દ્રવ્યોનું અસ્તિત્વ સમસ્ત લોકમાં પણ હોય છે. તેથી જ અનેક આનુપૂર્વી દ્રવ્યોની અવગાહના બાબતમાં એવું કથન કરવામાં આવ્યું છે કે અનેક આનુપૂર્વી દ્રવ્યો સમસ્ત લોકમાં વ્યાપ્ત થઇને રહે છે.

पूर्वीं द्रव्यमाश्रित्य अनानुपूर्वीद्रव्यमपि लोकस्यासंख्येयभागव्यापि भवति। अत्रेदं बोध्यम्–यथा क्षेत्रानुपूर्व्यामनानुपूर्वीद्रव्यं लोकस्यासंख्येयभागे भवति, तथा कालानुपूर्व्यामपि तस्यासंख्येयभागवर्त्तित्वं बोध्यम्। यतो यत्कालत एकसमयस्थितिकं तत्क्षेत्रतोऽप्येकप्रदेशावगाढं भवति। तच्च लोकस्यासंख्येयभागे एव भवति। प्रकारान्तरमुपश्रित्याह–'आएसंतरेण वा' इत्यादि। आदेशान्तरेण=प्रकारान्तरमाश्रित्य अनानुपूर्वी द्रव्यं सर्वपृच्छासु=संख्येयभागे, असंख्येयभागे, संख्येयभागेषु असंख्येयभागेषु सर्वलोके वा, भवति। अयं भावः–अचित्तमहास्क-

से अनानुपूर्वीद्रव्य के विषय में भी जानना चाहिये–अर्थात् एक अनानुपूर्वीद्रव्य को आश्रित करके एक अनानुपूर्वी द्रव्य भी लोक के असंख्यात भाग में रहता है–यहां ऐसा समझना चाहिये–जैसे क्षेत्रानुपूर्वी में एक अनानुपूर्वी द्रव्य लोक के असंख्यातवें भाग में रहता है, उसी प्रकार से कालानुपूर्वी में भी वह लोक के असंख्यातवें भाग में रहता है। क्यों कि काल की अपेक्षा जिसकी एकसमय की स्थिति है वह क्षेत्र की अपेक्षा भी एक प्रदेश में स्थित होता है। यह एकप्रदेश में रहना ही लोक के असंख्यातवें भाग में उसका रहना है। (आएसंतरेण वा सव्वपुच्छासु होज्जा) अथवा सूत्रकार प्रकारान्तर को आश्रित करके अनानुपूर्वीद्रव्य के विषय में इस प्रकार से कहते हैं कि यदि कोई ऐसा पूछे कि अनानुपूर्वी द्रव्य लोक के संख्यात भाग में अथवा असंख्यातभाग में अथवा संख्यात भागों में अथवा सर्वलोक मे रहता

(एवं अणाणुपुव्वी दव्वं) એવું જ કથન અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યના વિષયમાં પણ સમજવું જોઇએ એટલે કે એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે, તો એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય પણ લોકના અસંખ્યાત ભાગમાં રહે છે. આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે સમજવો–જેવી રીતે ક્ષેત્રાનુપૂર્વીમાં એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય લોકનાં અસંખ્યાત ભાગમાં રહે છે, એજ પ્રમાણે કાલાનુપૂર્વીમાં પણ તે લોકના અસંખ્યાતમાં ભાગમાં રહે છે, કારણ કે કાળની અપેક્ષાએ જેની એક સમયની સ્થિતિ હોય છે, તે ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ પણ એક પ્રદેશમાં અવગાહિત (રહેલું) હોય છે. આ એક પ્રદેશમાં રહેવું, તેનું નામ જ લોકના અસંખ્યાતમાં ભાગમાં રહેવું છે.

(आएसंतरेण वा सव्वपुच्छासु होज्जा) અથવા સૂત્રકાર અન્ય પ્રકારે આનુપૂર્વી દ્રવ્યના વિષયમાં નીચે પ્રમાણે કથન કરે છે–જો કોઈ એવો પ્રશ્ન પૂછે કે અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય લોકના સંખ્યાત ભાગમાં રહે છે, કે અસંખ્યાત ભાગોમાં રહે છે, કે સમસ્ત લોકમાં રહે છે?

न्यस्य दण्डाद्यवस्थाः परस्परं भिन्नाः, आकारादि भेदात्, द्वित्रिचतुःप्रदेशिकादि स्कन्धवत्। ततश्च ता दण्डाद्यवस्था एकैकसमयवृत्तित्वात् पृथगनानुपूर्वीद्रव्याणि। तेषु च मध्ये किमपि कियत्यपि क्षेत्रे वर्त्तते, इत्यनया विवक्षया किल एकमनानुपूर्वीद्रव्यं प्रकारान्तरेण एतत्सूत्रोक्तसंख्येयभागादिकासु पञ्चस्वपि पृच्छासु लभ्यते। तथा नानाद्रव्याणि प्रतीत्याऽनानुपूर्वीद्रव्याणि सर्वस्मिन्नपि लोके भवन्ति। एक

है? तो उसका उत्तर इस प्रकार से है-दो तीन चारप्रदेशवाले स्कंध आदि की तरह अचित्त महास्कंध की दण्ड, कपाट और मन्थान अवस्थाएँ आकार आदि के भेद से परस्पर में भिन्न २ हैं। इस प्रकार वे दण्डादिक अवस्थाएँ एक एक समयवर्ती होने के कारण पृथक् २ अनानुपूर्वी द्रव्य हैं। इनके बीच में कोई एक अनानुपूर्वी द्रव्य लोक के किनने भी क्षेत्र में रहता है जब इस प्रकार की विवक्षा होती है तब-इस विवक्षा से एक अनानुपूर्वी द्रव्य प्रकारान्तर से इस सूत्रोक्त संख्येय भागादिक पांचों ही पृच्छाओं में लभ्य हो जाता है-तात्पर्य कहने का यह है कि एक समय की स्थितिवाला अनानुपूर्वी द्रव्य होता है और इस अनानुपूर्वी द्रव्य में से कोई एक द्रव्य लोक के संख्यात भाग में रहता है कोई एक द्रव्य असंख्यात भाग में रहता है, कोई एक द्रव्य संख्यात भागों में रहता है। कोई एक असंख्यात भागों में रहता है और कोई एक सर्वलोक में रहता है। तथा नाना अनानुपूर्वीद्रव्यों

તો આ પ્રશ્નનો એવો ઉત્તર આપી શકાય કે બે, ત્રણ, ચાર પ્રદેશવાળાં સ્કન્ધ આદિની જેમ અચિત્ત મહાસ્કન્ધની દંડ, કપાટ અને મન્થાન અવસ્થાઓ આકાર આદિની અપેક્ષાએ એક બીજીથી ભિન્ન ભિન્ન હોય છે આ પ્રકારે તે દંડાદિક અવસ્થાઓ એક એક સમયવર્તી હોવાને કારણે અલગ અલગ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય રૂપ હોય છે. તેમાંનું કોઈ એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય લોકના કેટલા ય ક્ષેત્રમાં રહે છે. જ્યારે આ પ્રકારની વિવક્ષા થાય છે, ત્યારે આ વિવક્ષાની અપેક્ષાએ એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય પ્રકારાન્તરની અપેક્ષાએ આ સૂત્રોક્ત સંખ્યેય ભાગાદિ પાંચે પ્રકારના ભાગોમાં ઉપલબ્ધ થાય છે. આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે એક સમયની સ્થિતિવાળા અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યની અવગાહનાનો વિચાર કરવામાં આવે, તો કોઈ એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય લોકના સંખ્યાત ભાગમાં રહે છે, કોઈ એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય લોકના અસંખ્યાત ભાગમાં રહે છે, કોઈ એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય લોકના સંખ્યાત ભાગોમાં રહે છે, કોઈ એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય લોકના અસંખ્યાત ભાગોમાં રહે છે અને કોઈ એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય સર્વલોકમાં પણ રહે છે, અનેક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોની

समयस्थितिकानां द्रव्याणां सर्वत्र सत्त्वादिति। एवम्-अवक्तव्यकद्रव्याण्यपि यथा क्षेत्रानुपूर्व्याम्। अयं भावः-अवक्तव्यकद्रव्यं क्षेत्रानुपूर्व्यामिव कालानुपूर्व्यामपि लोकस्यासंख्येयभागे एव भवति। यतो यत्कालतो द्विसमयस्थितिकं तत्क्षेत्रतो ऽपि द्विप्रदेशावगाढम्, तच्च लोकस्यासंख्येयभागमेव व्याप्नोति। अथवा-द्विसमयस्थितिकं द्रव्यं स्वभावादेव लोकासंख्येयभागव्यापि भवति, न ततोऽधिकव्यापि। तथा-आदेशान्तरेण वा-'महाखंधवज्जमन्नदव्वेसु आइल्लचउपुच्छासु होज्जा" इति प्रोक्तम्।

की अपेक्षा करके नाना अनानुपूर्वी द्रव्य सर्वलोक में भी रहते हैं। क्योंकि एक समय की स्थितिवाले अनानुपूर्वीद्रव्यों का सर्वत्र सत्त्व रहता है। (एवं अवत्तव्वगदव्वाणि वि जहा खेत्ताणुपुव्वीए) इसी प्रकार क्षेत्रानुपूर्वी की तरह अवक्तव्यक द्रव्य भी हैं। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार से क्षेत्रानुपूर्वी में अवक्तव्यक द्रव्य लोक के असंख्यात भागवर्ती बतलाया गया है उसी प्रकार से यहां कालानुपूर्वी में भी वह लोक के असंख्यातवें भाग में रहनेवाला बतलाया गया है। क्यों कि कालकी अपेक्षा जिसकी स्थिति दो समय की होती है वह लोक के दो प्रदेशों में ही अवगाढ होता है। दो प्रदेशों में अवगाढ होना ही लोक के असंख्यातवें भाग में व्याप्त करना है। अथवा दो समय की स्थितिवाला द्रव्य स्वभाव से ही लोक के असंख्यातवें भाग में व्याप्त होना है इस से अधिक भाग को

અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો તેઓ સર્વલોકવ્યાપી હોય છે, એમ સમજવું, કારણ કે એક સમયની સ્થિતિવાળાં અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોનું અસ્તિત્વ સર્વત્ર હોય છે. (एवं अवत्तगदव्वाणि वि जहा खेत्ताणुपुव्वीए) ક્ષેત્રાનુપૂર્વીમાં અવક્તવ્યક દ્રવ્યોની અવગાહના વિષે જેવું કથન કરવામાં આવ્યું છે, એવું જ કથન અહીં પણ સમજવું જોઈએ આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે- ક્ષેત્રાનુપૂર્વીમાં અવક્તવ્યક દ્રવ્યને લોકના અસંખ્યાત ભાગવર્તી બતાવ્યું છે, એજ પ્રમાણે અહીં કાલાનુપૂર્વીમાં પણ તેને લોકના અસંખ્યાત ભાગમાં રહેલું જ બતાવવામાં આવ્યું છે, કારણ કે કાળની અપેક્ષાએ જેની સ્થિતિ બે સમયની હોય છે, તે દ્રવ્ય લોકના બે પ્રદેશોમાં જ અવગાઢ હોય છે. આ પ્રકારે બે પ્રદેશમાં રહેવું તેનું નામ જ લોકના અસંખ્યાતમાં ભાગને વ્યાપ્ત કરવો અથવા બે સમયની સ્થિતિવાળું દ્રવ્ય સ્વભાવથી જ લોકના અસંખ્યાતમાં ભાગને વ્યાપ્ત કરે છે, તેનાં કરતાં અધિક ભાગને તે વ્યાપ્ત કરતું નથી.

अत्रेदमनुमन्वेयम्-किमपि द्विसमयस्थितिकं द्रव्यं लोकस्य संख्येयतमभागमवगाहते, किमप्यसंख्येयतमभागम् किमपि संख्येयान् भागान्, किमपि तु असंख्येयान् भागान् न तु सर्वलोकमवगाहते। सर्वलोकव्यापित्वं तु महास्कन्धस्य। स चाष्टसमये निष्पद्यते, न तु द्वाभ्यां समयाभ्याम्। अतो द्विसमयस्थितिकत्वाभावेन महास्कन्धस्यावक्तव्यकत्वाभावादवक्तव्यकद्रव्य विषये पञ्चमपृच्छा न भवति। अत एव-' महाखंधवज्जं ' इत्युक्तम्। नानाद्रव्याणि तु सर्वलोकव्यापीनि भवन्तीति। इति क्षेत्रद्वारम्। स्पर्शनाद्वारं निरूपयितुमाह-'फुसणा' इत्यादि। स्पर्शनाद्वारमपि तथैव=क्षेत्रानुपूर्वीवदेव विज्ञेयम् ॥सू०१३२॥

वह व्याप्त नहीं करता है। तथा-"आदेशान्तरेण वा-महाखंधवज्जमन्नदव्वेसु आइल्लचउ पुच्छासु होज्जा" ऐसा जो कहा है उसका भाव इस प्रकार से है-कि दो समय की स्थितिवाला कोई एक अवक्तव्यक द्रव्य लोक के संख्यातवें भाग में अवगाढ होता है कोई असंख्यातवें भाग में अवगाढ होता है, कोई संख्यात भागों में अवगाढ होता है, और कोई असंख्यात भागों में अवगाढ होता है परन्तु सर्वलोक में अवगाढ नहीं होता है। सर्वलोक में अवगाढतो महास्कंध होता है। यह महास्कंध आठ समयों से निष्पन्न होता है। दो समयों से नहीं। इसलिये इस महास्कंध में द्विसमयस्थितिकता का अभाव होने से अवक्तव्यकद्रव्यत्व का अभाव है। इसलिये अवक्तव्यक द्रव्य के विषय में पांचवां प्रश्न नहीं होता है। इसीलिये "महाखंधवज्ज" ऐसा कहा है। तथा नाना अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा करके नाना अवक्तव्यक द्रव्य सर्व-

---

तथा-" आदेशान्तरेण वा-महाखंधवज्जमन्नदव्वेसु आइल्लचउपुच्छासु होज्जा " આ પ્રમાણે જે કહ્યું છે તેનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે-બે સમયની સ્થિતિવાળું કોઇ એક અવક્તવ્યક દ્રવ્ય લોકના સંખ્યાત ભાગમાં અવગાઢ (રહેલું) હોય છે, કોઇ અસંખ્યાતમાં ભાગમાં અવગાઢ હોય છે, કોઇ સંખ્યાત ભાગોમાં અવગાઢ હોય છે, કોઇ અસંખ્યાત ભાગોમાં અવગાઢ હોય છે, પરન્તુ કોઈ પણ અવક્તવ્યક દ્રવ્ય સમસ્ત લોકમાં અવગાઢ હોતું નથી. મહાસ્કન્ધ જ સર્વલોકમા અવગાઢ હોય છે. આ મહાસ્કન્ધ આઠ સમયોમાં નિષ્પન્ન થાય છે-બે સમયોમાં નિષ્પન્ન થતો નથી આ રીતે આ મહાસ્કન્ધમાં બે સમયની સ્થિતિનો અભાવ હોવાને કારણે તેને અવક્તવ્યક દ્રવ્ય રૂપ ગણી શકાય નહીં આ રીતે અવક્તવ્યક દ્રવ્યની અવગાહનાનાં બાબતમાં પાંચમી વાત (સર્વલોકવ્યાપતા) સંભવી શકતી નથી તેથી જ " महाखंधवज्जं " આ સૂત્રાંશ મૂકવામાં આવ્યો છે. અનેક અવક્તવ્યક દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો એવું કથન ગ્રહણ કરવું જોઈએ કે-

अथ कालद्वारमाह—

मूलम्--णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कालओ केवच्चिरं होंति ? एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं तिण्णि समया उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं। नाणादव्वाइं पडुच्च सव्वद्धा। णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कालओ केवच्चिरं होइ? एगं दव्वं पडुच्च अजहन्नमणुक्कोसेणं एक्कं समयं, नाणादव्वाइं पडुच्च सव्वद्धा। अवत्तगदव्वाणं पुच्छा, एगं दव्वं पडुच्च अजहण्णमणुक्कोसेणं दो समया, णाणादव्वाइं पडुच्च सव्वद्धा ॥सू०१३३॥

छाया—नैगमव्यवहारयोरानुपूर्वी द्रव्याणि कालतः कियच्चिरं भवन्ति ? एकं द्रव्यं प्रतीत्य जघन्येन त्रीन् समयान् उत्कर्षेण-असंख्येय कालम्। नानाद्रव्याणि प्रतीत्य सर्वाद्धा। नैगमव्यवहारयोः अनानुपूर्वीद्रव्याणि कालतः कियच्चिरं भवन्ति ? एकं द्रव्यं प्रतीत्य अजघन्यानुत्कर्षेण एकं समयं, नानाद्रव्याणि प्रतीत्य सर्वाद्धा। अवक्तव्यकद्रव्याणां पृच्छा। एकं द्रव्यं प्रतीत्य अजघन्यानुत्कर्षेण द्वौ समयौ, नानाद्रव्याणि प्रतीत्य सर्वाद्धा ॥सू० १३३॥

टीका—' णेगमववहाराणं ' इत्यादि।

नैगमव्यवहारसम्मतानि आनुपूर्वी द्रव्याणि कालतः कियच्चिरं भवन्ति ? इति प्रश्नः। उत्तरयति-एकं द्रव्यं प्रतीत्य आनुपूर्वीद्रव्याणां जघन्यतः त्रीन्

लोक व्यापी होते हैं। इस प्रकार यहां तक क्षेत्रद्वार की प्ररूपणा हुई है। (फुसणा कालाणुपुव्वीए वि तहा चेव भाणियव्वा) स्पर्शना द्वार भी इसका कालानुपूर्वी में क्षेत्रानुपूर्वी की तरह जानना चाहिये ॥सू० १३२॥

अब सूत्रकार कालद्वार का कथन करते हैं—

' णेगमववहाराणं ' इत्यादि।

शब्दार्थ—(णेगमववहाराणं) नैगमव्यवहारनयसंमत (आणुपुव्वीदव्वाइं) समस्त आणुपूर्वीद्रव्य (कालओ) कालकी अपेक्षा करके (केवच्चिरं होई) कितने समयतक रहते हैं ?—

અનેક અવક્તવ્યક દ્રવ્યો સર્વલોકવ્યાપી હોય છે. આ પ્રકારે આ સૂત્રમાં ક્ષેત્રદ્વારની પ્રરૂપણા કરવામાં આવી છે. (फुसणा कालाणुपुव्वीए वि तहा चेव भाणियव्वा) આ કાલાનુપૂર્વીમાં સ્પર્શના દ્વારનું કથન પણ ક્ષેત્રાનુપૂર્વીની જેમ જ સમજવું જોઇએ. ॥સૂ૦૧૩૨॥

समयान् स्थितिः, उत्कर्षेण चासंख्येयं कालं स्थितिः। अयं भावः आनुपूर्वी द्रव्याणां मध्ये त्रिसमयस्थितिकं द्रव्यं सर्वतो जघन्यं, तच्च त्रीन् समयानेव तिष्ठति। अतो जघन्यतस्त्रिसमयं यावदानुपूर्वीद्रव्याणां स्थितिः। उत्कृष्टतस्तु असंख्येयं कालं स्थितिर्बोध्या। ततः परमेकेन तद्रूपेण परिणामेन द्रव्यावस्थान-

---

उत्तर—(एगं दव्वं पडुच्च) एक आनुपूर्वीद्रव्य की अपेक्षा करके आनुपूर्वीद्रव्यों की (जहण्णेणं) जघन्य से (तिण्णि समया) तीन समयकी स्थिति है, और (उक्कोसेणं) उत्कृष्ट से (असंखेज्जं कालं) असंख्यात-काल की स्थिति है। इसका तात्पर्य यह है। आनुपूर्वीद्रव्यों के बीच में तीन समय की स्थितिवाला द्रव्य सब से कम है यह तीन समय तक ही ठहरता है-रहता है। इसलिये आनुपूर्वीद्रव्यों की स्थिति जघन्य से तीन समय तक की कही गई है। और उत्कृष्ट से जो असंख्यात काल की स्थिति कही गई है उसका तात्पर्य यह है कि द्रव्य असंख्यात काल के बाद आनुपूर्वीरूप परिणाम से परिणमित

હવે સૂત્રકાર કાલદ્વારનું કથન કરે છે—

"णेगमववहाराणं" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(णेगमववहाराणं) નૈગમવ્યવહાર નયસંમત (आणुपुव्वीदव्वाइं) સમસ્ત આનુપૂર્વી દ્રવ્યો (कालओ) કાળની અપેક્ષાએ (केवच्चिरं होई?) કેટલા સમય સુધી રહે છે?

ઉત્તર—(एगं दव्वं पडुच्च) એક આનુપૂર્વી દ્રવ્યની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે, તો આનુપૂર્વી દ્રવ્યની (जहण्णेणं तिण्णि समया) જઘન્ય (ઓછામાં ઓછી) સ્થિતિ ત્રણ સમયની કહી છે અને (उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं) ઉત્કૃષ્ટ (વધારેમાં વધારે) સ્થિતિ અસંખ્યાત કાળની કહી છે. આ કથનનો ભાવ એ નીચે પ્રમાણે છે—જે આનુપૂર્વી દ્રવ્યો છે તેમાં ત્રણ સમયની સ્થિતિવાળું દ્રવ્ય સૌથી ઓછું છે. તે ત્રણ સમય સુધી જ રહે છે, તે કારણે આનુપૂર્વી દ્રવ્યોની જઘન્ય સ્થિતિ ત્રણ સમયની કહી છે. તેની ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ અસંખ્યાત કાળની કહેવાનું કારણ એ છે કે તે દ્રવ્ય અસંખ્યાત કાળ બાદ આનુપૂર્વી રૂપ પરિણામ રૂપે પરિણમિત રહેતું જ નથી,

स्यैवाभावादिति। नानाद्रव्याणि प्रतीत्य तु आनुपूर्वीद्रव्याणां सर्वाद्धा=सर्वकालं स्थिति र्भवति। लोकस्य प्रत्येकस्मिन् प्रदेशे तेषां सर्वदा सद्भावात्। तथा-नैगम-व्यवहारसम्मतानि अनानुपूर्वीद्रव्याणि कालतः कियच्चिरं भवन्ति=तिष्ठन्ति? इति प्रश्नः। उत्तरयति-एकं द्रव्यं प्रतीत्य अजघन्यानुत्कर्षेण एकं समयं तिष्ठन्ति।

रहता ही नहीं है। (नाणादव्वाइं पडुच्च सव्वद्धा) तथा नाना आनुपूर्वी द्रव्यों की अपेक्षा को आश्रित करके आनुपूर्वीद्रव्योंकी स्थिति सार्वकालिक है। क्योंकि लोक के प्रत्येक प्रदेश में नाना आनुपूर्वी द्रव्योंका सद्भाव रहता है (णेगमववहाराणं) नैगमव्यवहारनयसंमत (अणाणुपुव्वीदव्वाइं) समस्त अनानुपूर्वीद्रव्य (कालओ) काल की अपेक्षा से (केवच्चिरं) कितने समय तक रहते हैं।

उत्तर—(एगं दव्वं पडुच्च) एक अनानुपूर्वीद्रव्य की अपेक्षा करके-(अजहन्नमणुक्कोसेणं) अनानुपूर्वीद्रव्य अजघन्य और अनुत्कर्ष से एक समय तक रहते हैं (नाणादव्वाइं पडुच्च सव्वद्धा) और नाना-द्रव्यों की अपेक्षा करके समस्त अनानुपूर्वी द्रव्य सर्वकाल रहते हैं। क्योंकि लोक के हरएक प्रदेश में इनका सद्भाव रहता है। (अवत्तव्वगदव्वाणं पुच्छा) अवक्तव्यकद्रव्यों के विषय में भी इसी प्रकार से प्रश्न हैं कि नैगमव्यवहारनयसंमत अवक्तव्यक द्रव्य काल की अपेक्षा से कितने समय तक रहते है?

(नाणादव्वाइं पडुच्च सव्वद्धा) અનેક આનુપૂર્વી દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે, તો આનુપૂર્વી દ્રવ્યોની સ્થિતિ સાર્વકાલિક છે, કારણ કે લોકના પ્રત્યેક પ્રદેશમાં વિવિધ આનુપૂર્વી દ્રવ્યોનો સદા સદ્ભાવ જ રહે છે.

પ્રશ્ન-(णेगमववहाराणं) નૈગમવ્યવહાર નયસંમત (अणाणुपुव्वीदव्वाइं) સમસ્ત અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો (कालओ) કાળની અપેક્ષાએ (केवच्चिरं) કેટલા સમય સુધી રહે છે?

ઉત્તર-(एगं दव्वं पडुच्च) એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો (अजहन्नमणुक्कोसेणं) અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય અજઘન્ય અને અનુત્કૃષ્ટ કાળની અપેક્ષાએ એક સમય સુધી રહે છે. (नाणादव्वाइं पडुच्च सव्वद्धा) અને અનેક દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોની સ્થિતિ સાર્વકાલિક છે, કારણ કે લોકના દરેક પ્રદેશમાં તેમનો સદ્ભાવ રહે છે.

પ્રશ્ન-(अवत्तगदव्वाणं पुच्छा) અવક્તવ્યક દ્રવ્યોના વિષયમાં પણ એવો પ્રશ્ન પૂછવામાં આવ્યો છે કે નૈગમવ્યવહાર નયસંમત અવક્તવ્યક દ્રવ્ય કાળની અપેક્ષાએ કેટલા સમય સુધી રહે છે?

नानाद्रव्याणि तु प्रतीत्य सर्वकालम्, लोकस्य प्रतिप्रदेशे तेषां सद्भावात्। अवक्तव्यकद्रव्याणि तु एकं द्रव्यं प्रतीत्य अजघन्यानुत्कर्षेण द्वौ समयौ तिष्ठन्ति। नानाद्रव्याणि प्रतीत्य तु सर्वकालम्। लोकस्य प्रतिप्रदेशे तेषां सर्वदावस्थानात्॥ एकसमयस्थितिकस्यैवानानुपूर्वीत्वं, द्विसमयस्थितिकस्यैवावक्तव्यकत्वमभ्युपगम्यतेऽतो नानयोर्द्वयोर्विषये जघन्योत्कृष्टचिन्तासंभव इति भावः ॥सू० १३३॥

अथान्तरद्वारमाह—

मूलम्—णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाणमंतरं कालओ केवच्चिरं होई? एगं दव्वं पडुच्च जहन्नेणं एगं समयं, उक्कोसेणं दो समया। नाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं। णेगमववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाणमंतरं कालओ केवच्चिरं होई? एगं दव्वं पडुच्च जहन्नेणं दो समया, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं णाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं। णेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाणं

उत्तर—(एगं दव्वं पडुच्च अजहण्णमणुक्कोसेणं दो समया णाणा दव्वाइं पडुच्च सव्वद्धा) एक द्रव्य की अपेक्षा करके अजघन्य और अनुत्कृष्ट से अवक्तव्यक द्रव्य दो समय तक रहते हैं। और नाना द्रव्यों की अपेक्षासे सर्वकाल रहते हैं। क्योंकि लोक के प्रतिप्रदेश में इनका सर्वदा अवस्थान रहता है। एक समय की स्थिति वाला द्रव्य अनानुपूर्वी है और दो समय की स्थितिवाला द्रव्य अवक्तव्यक है इसलिये इन दोनों के विषय में जघन्य और उत्कृष्ट को लेकर विचार नहीं किया गया है॥ सू० १३३॥

ઉત્તર–(एगं दव्वं पडुच्च अजहण्णमणुक्कोसेणं दो समया, णाणा दव्वाइं पडुच्च सव्वद्धा) એક દ્રવ્યની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો અજઘન્ય અને અનુત્કૃષ્ટ કાળની અપેક્ષાએ અવક્તવ્યક દ્રવ્ય બે સમય સુધી રહે છે. અને જો અનેક દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો અવક્તવ્યક દ્રવ્યોની સ્થિતિ સાર્વકાલિક છે, કારણ કે લોકના દરેક પ્રદેશમાં તેમનો સદા સદ્ભાવ રહે છે. એક સમયની સ્થિતિવાળું દ્રવ્ય અનાનુપૂર્વી રૂપ છે અને બે સમયની સ્થિતિવાળું દ્રવ્ય અવક્તવ્યક રૂપ છે. તે કારણે તે બન્ને જઘન્ય અને ઉત્કૃષ્ટની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવ્યો નથી. ॥સૂ૦૧૩૩॥

पुच्छा, एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं। णाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं। भाग भाव अप्पाबहुं चेव जहा खेत्ताणुपुव्वीए तहा भाणियव्वाइं जाव से तं अणुगमे। से तं णेगमववहाराणं अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी ॥सू० १३४॥

छाया—नैगमव्यवहारयोः आनुपूर्वीद्रव्याणामन्तरं कालतः कियच्चिरं भवति? एकं द्रव्यं प्रतीत्य जघन्येन एकं समयम्, उत्कर्षेण द्वौ समयौ। नानाद्रव्याणि प्रतीत्य नास्ति अन्तरम्। नैगमव्यवहारयोरनानुपूर्वीद्रव्याणामन्तरं कालतः कियच्चिरं भवति? एकं द्रव्यं प्रतीत्य जघन्येन द्वौ समयौ उत्कर्षेण असंख्येयं कालम्। नानाद्रव्याणि प्रतीत्य नास्ति अन्तरम्। नैगमव्यवहारयोरवक्तव्यकद्रव्याणां पृच्छा। एकं द्रव्यं प्रतीत्य जघन्येनैकं समयम्, उत्कर्षेणासंख्येयं कालम्। नानाद्रव्याणि प्रतीत्य नास्ति अन्तरम्। भागोभावोऽल्पबहुत्वं चैव यथा क्षेत्रानुपूर्व्यां तथा भणितव्यानि, यावत्सोऽसावनुगमः। सैषा नैगमव्यवहारानौपनिधिकीकालानुपूर्वी ।सू.१३४।

टीका—'णेगमववहाराणं' इत्यादि—

नैगमव्यवहारसम्मतानामानुपूर्वीद्रव्याणामन्तरं कालतः कियच्चिरं भवति? इति प्रश्नः। उत्तरयति—एकं द्रव्यं प्रतीत्यानुपूर्वीद्रव्याणामन्तरं कालतो जघन्ये-

---

अब सूत्रकार अन्तरद्वार की प्ररूपणा करते हैं।

"णेगमववहाराणं" इत्यादि।

शब्दार्थ—(णेगमववहाराणं) नैगमव्यवहारनयसंमत (आणुपुव्वी दव्वाणं) समस्त आनुपूर्वीद्रव्यों का (अंतरं) अंतर (कालओ) कालकी अपेक्षा से (कियच्चिरं) कितने समयका होता है?

उत्तर—(एगं दव्वं पडुच्च) एक द्रव्य की अपेक्षा लेकर (जहन्नेणं) आनुपूर्वीद्रव्यों का अंतर-विरहकाल—जघन्य से (एगं समयं) एक समय का

હવે સૂત્રકાર અન્તરદ્વારની પ્રરૂપણા કરે છે—

"णेगमववहाराणं" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ (णेगमववहाराणं) નૈગમવ્યવહાર નયસંમત (आणुपुव्वी दव्वाणं) સમસ્ત આનુપૂર્વી દ્રવ્યોનું (अंतरं) અંતર (વિરહકાળ) (कालओ) કાળની અપેક્ષાએ (कियच्चिरं) કેટલા સમયનું હોય છે?

ઉત્તર—(एगं दव्वं पडुच्च) એક દ્રવ્યની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો (जहण्णेणं) આનુપૂર્વી દ્રવ્યોનું જઘન્ય અંતર—જઘન્ય વિરહકાળ—(एगं

नैकं समयं भवति, उत्कर्षेण तु द्वौ समयौ। नानाद्रव्याणि प्रतीत्य तु नास्ति अन्तरम्। अयं भावः-त्र्यादिसमयस्थितिकं विवक्षितं किंचिदेकमानुपूर्वीद्रव्यं तं परिणामं परित्यज्य परिणामान्तरेण समयमेकं स्थित्वा पुनःपूर्वोक्तेनैव परिणामेन त्र्यादि समयस्थितिकं जायते तदा जघन्यत एकं समयमन्तरं भवति। यदा तदेव द्रव्यं द्वौ समयौ परिणामान्तरेण स्थित्वा पुनस्तेनैव परिणामेन त्र्यादि समयस्थितिकं जायते तदा तत्रोत्कर्षतो द्वौ समयौ अन्तरं भवति। यदि पुनः परिणामान्तरेण क्षेत्रादिभेदतः समयद्वयात् परतोऽपि तिष्ठेत् तदा तत्राऽप्यानु-

और (उक्कोसेणं) उत्कृष्ट से (दो समया) दो समय का होता है। (णाणादव्वाइं पडुच्च) तथा नाना द्रव्यों की अपेक्षा लेकर इनमें (णत्थि अंतरं) अंतर नहीं है) तात्पर्य इसका इस प्रकार से है कि त्र्यादि समय की स्थितिवाला कोई विवक्षित एक आनुपूर्वीद्रव्य आनुपूर्वीरूप अपने परिणाम को छोडकर के किसी दूसरे परिणाम से एक समय तक परिणमित रहकर पुनः उसी परिणाम से त्र्यादिसमय की स्थितिवाला बन जाता है तो ऐसी स्थिति में जघन्य से वहां अंतर एक समय का होता है। और जिस समय वही द्रव्य दो समय तक परिणामान्तर से परिणमित बना रहकर फिर बाद में उसी परिणाम से त्र्यादिसमय की स्थितिवाला बनता है तो ऐसी दशा में वहां उत्कृष्ट से दो समय का अन्तर माना जाता है। यदि परिणामान्तर से परिणमित बना हुआ वह द्रव्य क्षेत्रादि संबन्ध के भेद से दो समय से अधिक

समयं) એક સમયનું અને (उक्कोसेणं) વધારેમાં વધારે અંતર (दो समया) બે સમયનું હોય છે. (णाणादव्वाइं पडुच्च) અનેક દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો (णत्थि अंतरं) અંતર (વિરહકાળ) નથી આ કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે ત્રણ આદિ સમયની સ્થિતિવાળું દ્રવ્ય પોતાના આનુપૂર્વી રૂપ પરિણામને છોડીને કોઇ અન્ય પરિણામ રૂપે એક સમય સુધી પરિણમિત રહીને ફરી ત્રણ આદિ સમયની સ્થિતિવાળા આનુપૂર્વી દ્રવ્ય રૂપે પરિણમિત થઈ જતું હોય, તો એવી પરિસ્થિતિમાં ત્યાં જઘન્ય અન્તર (વિરહકાળ) એક સમયનો ગણાય છે. પણ ત્રણ આદિ સમયની સ્થિતિવાળું કોઇ આનુપૂર્વી દ્રવ્ય પોતાના આનુપૂર્વી રૂપ પરિણામને છોડીને કોઇ અન્ય પરિણામ રૂપે બે સમય સુધી પરિણમિત રહીને ફરી ત્રણ આદિ સમયની સ્થિતિવાળા આનુપૂર્વી દ્રવ્ય રૂપે પરિણમિત થઈ જતું હોય, તો એવી પરિસ્થિતિમાં ત્યાં ઉત્કૃષ્ટ અન્તર બે સમયનું ગણાય છે. જો અન્ય પરિણામ રૂપે પરિણમિત થયેલું તે આનુપૂર્વી દ્રવ્ય ક્ષેત્રાદિ સંબંધના ભેદથી બે સમય

पूर्वीत्वमनुभवेत्, ततोऽन्तरमेव न स्यात्। नानाद्रव्याणि प्रतीत्य तु नास्त्यन्तरम्, त्रिसमयस्थितिकद्रव्याणां लोके सर्वदा सद्भावादिति। तथा-नैगमव्यवहारसम्मतानामनानुपूर्वीद्रव्याणां कालतः कियच्चिरमन्तरं भवति ? इति प्रश्नः। उत्तरयति-एकं द्रव्यं प्रतीत्य जघन्येन द्वौ समयौ अन्तरम्, उत्कर्षतः असंख्येयं कालम्। नानाद्रव्याणि प्रतीत्य तु नास्ति अन्तरम्। अयं भावः एकं द्रव्यं प्रतीत्य एकसमय-

---

समय तक भी रहता है तो उस समय वह उस स्थिति में भी आनुपूर्वीत्वका अनुभवन करता है और इस स्थिति में वहां अन्तर ही नहीं आता है। नाना द्रव्यों की अपेक्षा से जो अन्तर नहीं कहा है उसका कारण यह है कि त्रिसमय की स्थितिवाले कोई न कोई द्रव्य लोक में सर्वदा रहते ही हैं।

प्रश्न—(णेगमववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाणं अंतरं कालओ केवच्चिरं होई) नैगमव्यवहारनयसंमत अनानुपूर्वीद्रव्यों का अन्तर काल की अपेक्षा कितनेक समय का होता है ?

उत्तर—(एगं दव्वं पडुच्च) एक द्रव्य की अपेक्षा लेकर (जहन्नेणं) जघन्य से (दो समया) दो समय का और (उक्कोसेणं) उत्कृष्ट से (असंखेज्जं कालं) असंख्यातकाल का अन्तर होता है। (णाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं) तथा नानाद्रव्यों की अपेक्षा करके अन्तर नहीं

કરતાં અધિક સમય સુધી પણ રહે તો તે પરિસ્થિતિમાં પણ ત્યારે તે આનુપૂર્વીત્વનો અનુભવ કરે છે, અને આ સ્થિતિમાં ત્યાં અંતર જ સંભવી શકતું નથી વિવિધ દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ અંતર (વિરહકાળ)નો અભાવ જ કહેવાનું કારણ એ છે કે ત્રણ સમયની સ્થિતિવાળાં કોઈને કોઇ દ્રવ્યો લોકમાં સર્વદા મોજૂદ જ રહે છે.

પ્રશ્ન-(णेगमववहाराणं अणाणुपुव्वी दव्वाणं अंतरं कालओ केवच्चिरं होई?) નૈગમવ્યવહાર નયસંમત અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોનું અંતર કાળની અપેક્ષાએ કેટલા સમયનું હોય છે ?

ઉત્તર-(एगं दव्वं पडुच्च) એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે, તો (जहन्नेणं दो समया) જઘન્ય અન્તર (ઓછામાં ઓછો વિરહકાળ) બે સમયનું (उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं) ઉત્કૃષ્ટ અંતર (વધારેમાં વધારે વિરહકાળ) અસંખ્યાત કાળનું હોય છે. (णाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं) અનેક દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે, તો અંતર (વિરહકાળ) હોતું નથી આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે-એક સમયની સ્થિતિ-

स्थितिकान्यनानुपूर्वीद्रव्याणि यदा परिणामान्तरेण समयद्वयमनुभूय पुनः पूर्वामेव स्थितिं लभेरन् तदा जघन्यतः समयद्वयमन्तरं लभ्यते। यदि तु परिणामान्तरेण एकमेव समयं तिष्ठेयुस्तदा अन्तरमेव न भवति, तत्राप्यनानुपूर्वीत्वस्यैव सद्भावात्। अथ समयद्वयात्परतो यदि परिणामान्तरेण तिष्ठेयुस्तदा जघन्यत्वमेव न स्यात्। यदा तु तान्येव द्रव्याणि असंख्येयं कालं परिणामान्तरेण स्थित्वा पुनरेकस्थितिकं परिणामं लभेरन्, तदा उत्कृष्टतोऽसंख्येयं कालमन्तरं भवति। ननु अन्यान्यद्रव्य-क्षेत्रसम्बन्धेऽनन्तमपि कालम् अन्तरं भवितुमर्हति, ततः कथमुक्तम् 'उक्कोसेणं

होता है। इसका भाव यह है कि एक समय की स्थितिवाले अनानुपूर्वीद्रव्य जिस समय दूसरे परिणाम से दो समय तक परिणमित बने रहते हैं और बादमें पुनः उसी अपनी पूर्व स्थिति में आजाते हैं तब वहां जघन्य से दो समय का अन्तर माना जाता है। और यदि वे परिणामान्तर से परिणमित बने हुए एक समय तक ही रहते हैं तो ऐसी दशा में वहां अन्तर ही नहीं होता है क्यों कि उसस्थिति में भी वहां अनानुपूर्वीत्व का सद्भाव है। और यदि वे दो समय के बाद तक भी परिणामान्तर से परिणमित बने रहते हैं तो वहां जघन्यता नहीं मानी जाती है। और जब वे ही द्रव्य असंख्यात काल तक परिणामान्तर से परिणमित रहकर पुनः एक स्थिति वाले अपने परिणाम को पाते हैं— तब उत्कृष्ट से असंख्यात काल अन्तर होता है।—

વાળું કોઇ એક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્ય જ્યારે અન્ય પરિણામ રૂપે પરિણમિત થઈને બે સમય સુધી તે પરિણામ રૂપે પરિણમિત થયેલું રહીને ત્યાર બાદ પોતાની એજ પૂર્વસ્થિતિમાં આવી જાય, તો એવી સ્થિતિમાં ત્યાં જઘન્ય વિરહકાળ બે સમયનો ગણાય છે. અને જો તે એક સમય સુધી જ અન્ય પરિણામ રૂપે પરિણમિત થયેલું રહે છે, તો એવી પરિસ્થિતિમાં ત્યાં અંતર જ હોતું નથી, કારણ કે એવી દશામાં તે દ્રવ્યમાં અનાનુપૂર્વીત્વનો સદ્ભાવ જ રહે છે. અને બે સમય બાદ પણ જો અન્ય પરિણામ રૂપે પરિણમિત થયેલું જ રહે, તો ત્યાં જઘન્યતા માનવામાં આવતી નથી પરન્તુ જો તે દ્રવ્ય અસંખ્યાત કાળ સુધી અન્ય પરિણામ રૂપે પરિણમિત થયેલું રહીને, ત્યાર બાદ એક સમયની સ્થિતિવાળા પોતાના પૂર્વ પરિણામને પ્રાપ્ત કરે તો એવી પરિસ્થિતિમાં તે અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યનો ઉત્કૃષ્ટ વિરહકાળ અસંખ્યાતકાળનો ગણાય છે.

असंखेज्जं कालं' इति ? इति चेदाह-कालानुपूर्वीप्रक्रमात् कालस्यैवात्र प्राधान्यं विवक्षितम्, यदि चात्र अन्यान्यद्रव्यक्षेत्रसंबन्धादन्तरकालबाहुल्यं क्रियते, तदा तद् द्वारेणैवान्तरकालस्य बहुत्वं स्यात्, तदा द्रव्यक्षेत्रयोरेव प्राधान्यं स्यात्, न तु कालस्य। तस्मादेकस्मिन्नेव परिणामन्तरे यावान् कश्चिदुत्कृष्टः कालो लभ्यते स एवान्तरे चिन्त्यते, स चासंख्येय एव। ततः परमेकेन परिणामेन वस्तुनोऽवस्थानस्यैव निषिद्धत्वात्। इदं च सूत्रस्य विवक्षावैचित्र्यात् सर्वं पूर्वमुत्तरत्र

शंका—अन्य२ द्रव्य और क्षेत्र के साथ संबन्ध होने पर अनन्तकाल का भी अन्तर हो सकता है, तो फिर सूत्रकार ने "उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं" ऐसा क्यों कहा?

उत्तर—कालानुपूर्वी के प्रकरण से काल में ही यहां प्रधानता विवक्षित हुई है, यदि यहां पर अन्य २ द्रव्य और क्षेत्र के संबन्ध से अंतरकाल में बाहुल्य किया जाता है तो यह बाहुल्य उसमें द्रव्य और क्षेत्र के द्वारा ही आया माना जावेगा तबतो द्रव्य और क्षेत्र की ही प्रधानता हो जावेगी काल की नहीं। इसलिये एक ही परिणामान्तर में जितना कुछ उत्कृष्ट काल लभ्य होता है वही अन्तर में विचारा जाता है और वह इस प्रकार से असंख्यात ही लभ्य होता है। इसके बाद वस्तु का एक परिणाम रूप से अवस्थित रहना ही निषिद्ध है। यह सब कथन सूत्र की विवक्षा की विचित्रता से आगे पीछे आगम में विरोध न

શંકા—જુદાં જુદાં દ્રવ્ય અને ક્ષેત્રની સાથે સંબંધ થતો હોય તો અનંતકાળનું પણ અંતર સંભવી શકે છે. છતાં સૂત્રકારે ઉત્કૃષ્ટ અંતર અસંખ્યાતકાળનું શા કારણે કહ્યું છે?

ઉત્તર—કાલાનુપૂર્વીનું પ્રકરણ ચાલતું હોવાને કારણે અહીં કાળમાં જ પ્રધાનતા માનીને કથન કરવામાં આવ્યું છે. જો અહીં જુદાં જુદાં દ્રવ્ય અને ક્ષેત્રના સંબંધને લીધે અંતરકાળમાં બાહુલ્ય માનવામાં આવે, તો તે બાહુલ્ય તેમાં દ્રવ્ય અને ક્ષેત્રના દ્વારા જ આવેલું માનવું પડશે જો એ પ્રમાણે કરવામાં આવે તો કાળની પ્રધાનતાને બદલે દ્રવ્ય અને ક્ષેત્રની જ પ્રધાનતા માનવાનો પ્રસંગ ઉપસ્થિત થશે તેથી એક જ પરિણામાન્તરમાં જેટલો ઉત્કૃષ્ટકાળ થાય છે, તેને જ ઉત્કૃષ્ટ અંતર રૂપ માનવામાં આવે છે, અને તે ઉત્કૃષ્ટ અંતર ઉપર બતાવ્યા પ્રમાણે અસંખ્યાતકાળનું જ હોય છે. ત્યાર બાદ (અસંખ્યાત કાળ બાદ) વસ્તુ એક પરિણામ રૂપે અવસ્થિત (મોજૂદ) રહેવાનો જ નિષેધ છે. આ સમસ્ત કથન, સૂત્રની વિવક્ષાની વિચિત્રતાને લીધે, એવી રીતે અહીં લગાડવું જોઈએ કે આગમના આગળપાછળના કથ-

गमाविरोधेन भावनीयम्। नानाद्रव्याण्याश्रित्य तु नास्त्यन्तरम्, लोकस्य प्रतिप्रदेशे सर्वदा तस्य सद्भावादिति। तथा-नैगमव्यवहारसम्मतानामवक्तव्यकद्रव्याणामपि अन्तरविषये पृच्छा=प्रश्नोऽनानुपूर्वीवद् बोध्यः। उत्तरस्तु-एकं द्रव्यं प्रतीत्य जघन्येनैकं समयमन्तरम्, उत्कर्षेण असंख्येयं कालम्। नानाद्रव्याणि प्रतीत्य नास्ति अन्तरमिति। अयं भावः-द्विसमयस्थितिकं किंचिदवक्तव्यकद्रव्यं परिणामान्तरेण समयमेकं स्थित्वा ततः पुनर्द्विसमयस्थितिकत्वमेव यदा लभते तदा

आवे इस प्रकार लगा लेना चाहिये। नानाद्रव्यों की अपेक्षा करके जो अन्तर नहीं कहा गया है उसका कारण यह है कि लोक के प्रति प्रदेश में सर्वदा उसका सद्भाव रहा करता है। (णेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाणं पुच्छा) नैगमव्यवहारनयसंमत अवक्तव्यक द्रव्यों के अन्तर के विषय में प्रश्न-अनानुपूर्वीद्रव्य की तरह ही जानना चाहिये।

उत्तर—उसका इस प्रकार से है-(एगं दव्वं पडुच्च) एक अवक्तव्यक द्रव्य की अपेक्षा करके (जहण्णेणं) जघन्य से अन्तर (एगं समयं) एक समय का है और (उक्कोसेणं) उत्कृष्ट से अन्तर (असंखेज्जं कालं) असंख्यात काल का है। तथा (णाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं) नाना द्रव्यों की अपेक्षा से अन्तर नहीं है। इसका तात्पर्य यह है कि दो समय की स्थितिवाला कोई अवक्तव्यक द्रव्य परिणामान्तर से परि-

નમાં કોઇ વિરોધ સંભવે નહીં અનેક અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ અંતર-વિરહકાળ-નો અભાવ કહેવાનું કારણ એ છે કે લોકના પ્રત્યેક પ્રદેશમાં તેનો સદા સદ્ભાવ જ રહ્યા કરે છે.

પ્રશ્ન-(णेगमववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाणं पुच्छा) નૈગમવ્યવહાર નયસંમત અવક્તવ્યક દ્રવ્યોના અંતરના વિષયમાં પણ અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યના જેવો જ પ્રશ્ન સમજવો.

ઉત્તર-(एगं दव्वं पडुच्च) એક અવક્તવ્યક દ્રવ્યની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે, તો (जहण्णेणं एगं समयं) જઘન્યની અપેક્ષાએ એક સમયનું, અને (उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं) ઉત્કૃષ્ટની અપેક્ષાએ અસંખ્યાત કાળનું અંતર હોય છે. એટલે કે ઓછામાં ઓછો એક સમયનો અને વધારેમાં વધારે અસંખ્યાત કાળનો વિરહકાળ હોય છે. (णाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं) વિવિધ અવક્તવ્યક દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે, તો વિરહકાળ રૂપ અંતરનો અભાવ હોય છે.

હવે આ કથનનો ભાવાર્થ બતાવવામાં આવે છે, ધારો કે બે સમયની સ્થિતિવાળું કોઇ અવક્તવ્યક દ્રવ્ય પોતાના પરિણામનો ત્યાગ કરીને કોઇ

जघन्यत एकं समयमन्तरम्। यदा च परिणामान्तरेणासंख्येयं कालं स्थित्वा तदः पुनर्द्विसमयस्थितिकत्वं लभते तदा उत्कर्षेण असंख्येयं कालमन्तरं भवति। अनानुपूर्व्यां यथाऽऽक्षेपपरिहारौ तथाऽत्रापि बोध्यौ। तथा–नानाद्रव्याणि प्रतीत्य तु नास्ति अन्तरम्, लोके सर्वदा तेषां सद्भावात्। इत्थमन्तरद्वारमुक्त्वा सम्प्रति–भागद्वारं भावद्वारमल्पबहुत्वद्वारं च वक्तुकाम आह–'भाग–भाव अप्पाबहुं चेव' इत्यादि। अयं भावः–अत्रापि भागद्वारं क्षेत्रानुपूर्वीवद् बोध्यम्। क्षेत्रानुपूर्व्यां यथाऽऽनुपूर्वीद्रव्याणि शेषद्रव्यापेक्षयाऽसंख्येयैर्भागैरधिकानि, शेषद्रव्याणि तदपेक्षयाऽसंख्येयभागन्यूनानि तथाऽत्रापि बोध्यम्। इदमत्र बोध्यम्–अनानुपूर्वीद्रव्यं

णमित हुआ एक समय तक रहता है और बाद में फिर वह दो समय की अपनी पूर्वस्थिति को प्राप्त करलेता है तब इस स्थिति में विरहकाल जघन्यरूप से एक समय का माना जाता है और जब दो समय की स्थितिवाला कोई अवक्तव्यक द्रव्य परिणामान्तर से परिणमित असंख्यात काल तक बना रहकर फिर दो समय की अपनी पूर्वस्थिति में आ जाता है तब इस दशा में वहां उसका अन्तर असंख्यात काल का माना जाता है। अनानुपूर्वी में जिस प्रकार से आक्षेप और उसका परिहार किया गया है उसी प्रकार से यहीं पर भी अक्षेप और उसका परिहार उसी पद्धति से किया गया जानना चाहिये। तथा नाना अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा जो अन्तर नहीं कहा गया है उसका कारण यह है कि लोक में सर्वदा अवक्तव्यक द्रव्यों का सद्भाव रहता है। (भाग, भाव, अप्पाबहुं चेव जहा खेत्ताणुपुव्वीए तहा भाणियव्वाइं

અન્ય પરિણામ રૂપે પરિણમિત થઈ જાય છે. ત્યાર બાદ તે એક સમય સુધી એજ દશામાં રહીને ફરી બે સમયની પોતાની પૂર્વસ્થિતિને પ્રાપ્ત કરી લે છે. તો એવી પરિસ્થિતિમાં જઘન્ય વિરહકાળ એક સમયનો ગણાય છે. પરન્તુ કોઈ અવક્તવ્યક દ્રવ્ય અન્ય પરિણામ રૂપે પરિણમિત થઈને અસંખ્યાત કાળ સુધી તે અન્ય પરિણામ રૂપે જ રહીને ત્યાર બાદ બે સમયની પોતાની પૂર્વસ્થિતિમાં આવી જાય છે, તો એવી પરિસ્થિતિમાં તે અવક્તવ્યક દ્રવ્યનું ઉત્કૃષ્ટ અંતર અસંખ્યાત કાળનું માનવામાં આવે છે. અનાનુપૂર્વીમાં જે પ્રકારની શંકા ઉઠાવવામાં આવી છે તે પ્રકારની શંકા અહીં પણ ઉઠાવી શકાય છે આ શંકાનું ત્યાં જે પ્રકારે નિવારણ કરવામાં આવ્યું છે એજ પ્રકારે અહીં પણ નિવારણ કરી શકાય છે,

વિવિધ દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ અંતરનો અભાવ કહેવાનું કારણ એ છે કે લોકમાં અવક્તવ્યક દ્રવ્યોનો સદા સદ્ભાવ રહે છે. (भाग, भाव, अप्पाबहुं

हि एकसमयस्थितिलक्षणमेकं स्थानं लभते, अवक्तव्यकद्रव्यं तु द्विसमयस्थितिलक्षणमेकं स्थानं लभते। आनुपूर्वीद्रव्यं तु त्रिसमयचतुःसमयपञ्चसमयस्थितिलक्षणानि स्थानान्यारभ्यासंख्येयस्थितिलक्षणपर्यन्तेषु स्थानेषु एकैकं स्थानं लभते। इत्थं चानुपूर्वीद्रव्यं शेषद्रव्यापेक्षयाऽसंख्येयभागाधिकम्। शेषद्रव्याणि तदपेक्षयाऽसं-

---

जाव से तं अणुगमे) भागद्वार, भावद्वार और अल्पबहुत्वद्वार क्षेत्रानुपूर्वी की तरह यहां पर भी जानना चाहिये। अर्थात् क्षेत्रानुपूर्वी में जैसे समस्त आनुपूर्वी द्रव्य शेष द्रव्यों की अपेक्षा असंख्यात भागों से अधिक-असंख्यातगुणित-माने गये हैं और शेष द्रव्य-अनानुपूर्वी एवं अवक्तव्यक द्रव्य-इनकी अपेक्षा असंख्यातभागन्यून माने हैं उसी प्रकार यहां पर भी भागद्वार के विषय में कथन जानना चाहिये। यहां ऐसा जानना अनानुपूर्वी द्रव्य एक समय की स्थितिरूप एक स्थान को प्राप्त करता है और जो अवक्तव्यक द्रव्य है वह द्विसमय की स्थितिरूप एक स्थान को पाता है, तथा जो आनुपूर्वी द्रव्य है, वह तीन समय, चार समय पांच समय की स्थितिरूप स्थानों से लेकर असंख्यात समय तक की स्थितिरूप स्थानों में एक एक स्थान को प्राप्त करता है। इस प्रकार आनुपूर्वी द्रव्य शेष द्रव्यों की अपेक्षा असंख्यात भागों से अधिक

चेव जहा खेत्ताणुपुव्वीए तहा भाणियव्वाइं जाव से तं अणुगमे) भागद्वार, भावद्वार अने अल्पबहुत्वद्वारनुं कथन क्षेत्रानुपूर्वीनी जेम ज अहीं पण समजवुं जोईओ एटले के क्षेत्रानुपूर्वीमां जेवी रीते समस्त आनुपूर्वी द्रव्यने बाकीनां द्रव्यो करतां असंख्यातगणुं कहेवामां आव्युं छे, अने बाकीनां द्रव्योने (अनानुपूर्वी अने अवक्तव्यक द्रव्योने) आनुपूर्वी द्रव्यो करतां असंख्यात भागप्रमाणु कहेवामां आवेल छे, एज प्रमाणे अहीं पण भागद्वारना विषयमां कथन ग्रहणु थवुं जोईओ आ कथननुं वधु स्पष्टीकरणु नीचे प्रमाणे समजवुं.

अनानुपूर्वी द्रव्य एक समयनी स्थिति रूप एक स्थानने प्राप्त करे छे, अने जे अवक्तव्यक द्रव्य छे ते बे समयनी स्थिति रूप एक स्थानने प्राप्त करे छे, तथा जे आनुपूर्वी द्रव्य छे ते त्रणु, चार, पांच आदि समयनी स्थिति रूप स्थानोथी लईने असंख्यात समय पर्यन्तनी स्थिति रूप स्थानोमांना एक एक स्थानने प्राप्त करे छे. आ प्रकारे आनुपूर्वी द्रव्य बाकीनां बे द्रव्यो करतां असंख्यातगणुं अधिक संभवी शके छे अने बाकीना

ख्येयभागन्यूनानीति। तथा–भावद्वारे आनुपूर्व्यनानुपूर्व्यवक्तव्यकानां त्रयाणामपि द्रव्याणां सादिपारिणामिकभाववर्त्तित्वं पूर्ववद् बोध्यम्। तथा–एषां त्रयाणां द्रव्याणामल्पबहुत्वद्वारमेवं बोध्यम्–अवक्तव्यकद्रव्याणि हि सर्वस्तोकानि, तेषां स्वभावत एव स्तोकत्वात्। अनानुपूर्वीद्रव्याणि तु ततो विशेषाधिकानि, अनानुपूर्वीद्रव्याणामवक्तव्यकद्रव्यापेक्षया विशेषाधिकत्वात्। आनुपूर्वीद्रव्याणि तु उक्तोभयद्रव्यापेक्षया असंख्येयभागाधिकानि। असंख्येयभागाधिकत्वं त्वेषाम् उपरिभागद्वारे निर्दिष्टं तथैवात्राऽपि बोध्यम्। भागादि विषये क्षेत्रानुपूर्वीवत् सर्वं बोध्यमिति। इत्थं नैगमव्यवहारसम्मताऽनौपनिधिकी कालानुपूर्वीवत् उपसंहृतेति

लभ्य होता है। और शेष दो द्रव्य उसकी अपेक्षा असंख्यातभागन्यून लभ्य होते हैं। भावद्वार में आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक ये तीनों भी द्रव्य पूर्व के जैसे सादि पारिणामिक भाववर्ती हैं। तथा–इन तीनों द्रव्यों का अल्पबहुत्वद्वार इस प्रकार से जानना चाहिये–समस्त अवक्तव्यक द्रव्य स्वभाव से ही कम होने से शेष दो द्रव्यों की अपेक्षा से कम हैं। अनानुपूर्वी द्रव्य अवक्तव्यक द्रव्यों की अपेक्षा से कुछ–विशेष अधिक हैं। तथा जो आनुपूर्वी द्रव्य हैं वे इन दोनों द्रव्यों की अपेक्षा असंख्यात गुणा अधिक हैं। असंख्यात भागाधिकता जिस प्रकार से ऊपर भागद्वार में प्रकट की गई है उसी प्रकार से यहां पर भी जानना चाहिये। तात्पर्य कहने का यह है कि इन भागादिद्वारों के विषय में सब कथन क्षेत्रानुपूर्वी की तरह ही जानना चाहिये। इस प्रकार (जाव से तं अ.) यावत् यह अनुगम का स्वरूप

બે પ્રકારનાં દ્રવ્યો આનુપૂર્વી દ્રવ્યો કરતાં અસંખ્યાત ભાગપ્રમાણ ન્યૂન હોઇ શકે છે.

ભાવદ્વારમાં આનુપૂર્વી અને અવક્તવ્યક, આ ત્રણે દ્રવ્યોને આગળ કહ્યા પ્રમાણે સાદિપારિણામિક ભાવવર્તી કહ્યાં છે.

આ ત્રણેના અલ્પબહુત્વદ્વારનું કથન આ પ્રમાણે સમજવું–સમસ્ત અવક્તવ્યક દ્રવ્ય સ્વાભાવિક રીતે જ ઓછું હોવાને કારણે બાકીનાં બન્ને દ્રવ્યો કરતાં ઓછું છે. અવક્તવ્યક દ્રવ્યો કરતા અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો વિશેષાધિક છે અનાનુપૂર્વી દ્રવ્યો અને અવક્તવ્યક દ્રવ્યો કરતાં આનુપૂર્વી દ્રવ્ય અસંખ્યાત ભાગપ્રમાણ અધિકતાનું સ્પષ્ટીકરણ ઉપર ભાગદ્વારમાં જે પ્રમાણે કરવામાં આવ્યું છે તે પ્રમાણે અહીં પણ સમજી લેવું આ સમસ્ત કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે આ ભાગાદિ દ્વારોના વિષયમાં સમસ્ત કથન ક્ષેત્રાનુપૂર્વીના જેવું જ સમજવું (જાવ સે તં અણુગમે) "આ પ્રકારનું અનુગમનું સ્વરૂપ

सूचयितुमाह-'से तं' इत्यादि। सैषा नैगमव्यवहारसम्मता अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी ॥सू० १३४॥

अथ संग्रहनयमतेन अनौपनिधिकीं कालानुपूर्वीमाह—

मूलम्—से किं तं संगहस्स अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी ? संगहस्स अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—अत्थपयपरूवणया, भंगसमुक्कित्तणया, भंगोवदंसणया, समोयारे, अणुगमे ॥सू०१३५॥

छाया—अथ का सा संग्रहस्य अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी ? संग्रहस्य अनौ-

है। इसको समाप्त होते ही नैगमव्यवहारनयसंमत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वीका यह प्रकरण समाप्त हो रहा है इस बात को सूचित करने के लिये सूत्रकार कहते हैं कि (से तं णेगमववहाराणं अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी) इस प्रकार से यह नैगमव्यवहारनयसंमत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी है ॥सू० १३४॥

अब सूत्रकार संग्रहनय के मन्तव्यानुसार अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी का कथन करते हैं —"से किं तं संगहस्स" इत्यादि।

शब्दार्थ -- (से किं तं संगहस्स अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी) हे भदंत। संग्रहनयमान्य अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी क्या है ?

उत्तर -- (संगहस्स अणोवणिहिया) संग्रहनय मान्य अनौपनिधिकी (कालाणुपुव्वी) कालानुपूर्वी (पंचविहा पण्णत्ता) पांच प्रकार की

छे." આ કથન પર્યન્તનું ક્ષેત્રાનુપૂર્વીના પ્રકરણમાંનું સમસ્ત કથન અહીં ગ્રહણ કરવું જોઈએ તેની સમાપ્તિ થતાં જ નૈગમવ્યવહાર નયસંમત અનૌપનિધિકી કાલાનુપૂર્વીનું આ પ્રકરણ સમાપ્ત થઈ રહ્યું છે, એ વાતને સૂચિત કરવાને માટે સૂત્રકાર આ પ્રમાણે કહે છે-(से तं णेगमववहाराणं अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी) "નૈગમવ્યવહાર નયસંમત અનૌપનિધિકી કાલાનુપૂર્વીનું ઉપર બતાવ્યા પ્રમાણેનું સ્વરૂપ છે." ॥સૂ૦૧૩૪॥

હવે સૂત્રકાર સંગ્રહનયના મંતવ્ય અનુસાર અનૌપનિધિકી કાલાનુપૂર્વીનું કથન કરે છે—"से किं तं संगहस्स" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(से किं तं संगहस्स अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी ?) હે ભગવન્! સંગ્રહનયમાન્ય અનૌપનિધિકી કાલાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર-(संगहस्स अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी पंचविहा पण्णत्ता) સંગ્રહનય-

पनिधिकी कालानुपूर्वी पञ्चविधा प्रज्ञप्ता. तद्यथा-अर्थपदप्ररूपणता, भङ्गसमुत्कीर्तनता, भङ्गोपदर्शनता, समवतारः अनुगमः ॥सू० १३५॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि। व्याख्याऽस्य पूर्ववद् बोध्या ।सू० १३५॥

अर्थपदप्ररूपणतादीनां निरूपणायाह—

मूलम्—से किं तं संगहस्स अत्थपयपरूवणया? एयाइं पंच वि दाराइं जहा खेत्ताणुपुव्वीए संगहस्स तहा कालाणुपुव्वीए वि भाणियव्वाणि, णवरं ठिई अभिलावो, जाव से तं अणुगमे से तं संगहस्स अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी ॥सू०१३६॥

छाया—अथ का सा संग्रहस्य अर्थपदप्ररूपणता ? एतानि पञ्चापि द्वाराणि यथा क्षेत्रानुपूर्व्यां संग्रहस्य तथा कालानुपूर्व्यामपि भणितव्यानि, नवरं स्थित्यभिलापः, यावत् स एषोऽनुगमः। सैषा संग्रहस्य अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी ॥सू.१३६॥

टीका—"से किं तं" इत्यादि।

अथ का सा संग्रहसम्मताऽर्थपदप्ररूपणता ? इति प्रश्नः। उत्तरयति-एतानि= अर्थप्ररूपणतादीनि पञ्चापि द्वाराणि संग्रहमते क्षेत्रानुपूर्व्यामेकोत्तरशततमे सूत्रे

कही गई है (तं जहा) जैसे-(अट्ठपयपरूवणया भंगसमुक्कित्तणया, भंगोवदंसणया 'समोयारे' अणुगमे) अर्थपदप्ररूपणता, भंगसमुत्कीर्तनता, भंगोपदर्शनता समवतार और अनुगम इस सूत्र की व्याख्या पहिले की गई व्याख्या के अनुसार ही जाननी चाहिये ॥सू० १३५॥

"से किं तं संगहस्स" इत्यादि।

शब्दार्थ—(से किं तं संगहस्स अट्ठपयपरूवणया) हे भदंत ! संग्रहनयमान्य अर्थपद प्ररूपणता क्या है ? (एयाइं पंच वि दाराइं जहा खेत्ताणुपुव्वीए संगहस्स तहा कालाणुपुव्वीए वि भाणियव्वाणि)

સંમત અનૌપનિધિકી કાલાનુપૂર્વી પાંચ પ્રકારની કહી છે. "तं जहा" તે પાંચ પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે-(अट्ठपयपरूवणया भंगसमुक्कित्तणया, भंगोवदंसणया, समोयारे, अणुगमे) (१) અર્થપદ પ્રરૂપણતા, (२) ભંગસમુત્કીર્તનતા, (३) ભંગોપદર્શનતા, (४) સમવતાર અને (५) અનુગમ આ સૂત્રની વ્યાખ્યા પહેલાં કહ્યા પ્રમાણે સમજવી ।।સૂ०१३५।।

"से किं तं संगहस्स" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(से किं तं संगहस्स अट्ठपयपरूवणया ?) હે ભગવન્! સંગ્રહનયસંમત અર્થપદ પ્રરૂપણતાનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર-(एयाइं पंच वि दाराइं जहा खेत्ताणुपुव्वीए संगहस्स तहा कालाणुपुव्वीए वि भाणियव्वाणि) સંગ્રહનયસંમત ક્ષેત્રાનુપૂર્વીમાં આ પાંચે દ્વારોનું

यथा सन्ति तथा कालानुपूर्व्यामपि संग्रहमते भणितव्यानि। नवरं=विशेषस्त्वयमेव-यदत्र स्थित्यभिलापः कर्त्तव्यः। अयं भावः-क्षेत्रानुपूर्व्यां "तिप्पएसोगाढे आणुपुव्वी, चउप्पएसोगाढे आणुपुव्वी" इत्याद्युक्तम्, एतस्मिन्-"तिसमयट्ठिइए आणुपुव्वी, चउसमयट्ठिइए आणुपुव्वी" इत्यादि वक्तव्यमिति। क्षेत्रानुपूर्वीवत् किय्दवधिवक्तव्यम्? इत्याह-'जाव से तं' इति। यावत्स एषोऽनुगम इति पर्यन्तं क्षेत्रानुपूर्वीवदेव वक्तव्यमिति। प्रकृतमुपसंहरन्नाह-'से तं संगहस्स' इत्यादि। सैषा संग्रहनयसम्मता अनौपनिधिकी कालानुपूर्वीति ॥सू० १३६॥

उत्तर--संग्रहनय मान्य इन पांचों द्वारों का कथन जिस प्रकार का क्षेत्रानुपूर्वी में किया गया है उसी प्रकार का कथन संग्रहनयसंमत इन पांचों द्वारों का इस कालानुपूर्वी में भी जानना चाहिये। (णवरं ठिई अभिलावो जाव से तं अणुगमे) परन्तु विशेषता केवल इतनी है कि क्षेत्रानुपूर्वी में "त्रिप्रदेशावगाढ आनुपूर्वी चतुष्प्रदेशावगाढ आनुपूर्वी" इस प्रकार से भंगों का आलाप करने में आया है तब यहां पर "तिसमयट्ठिइए आणुपुव्वी चउसमयट्ठिइए आणुपुव्वी" इत्यादि प्रकार से भंगों का आलाप करना चाहिये। क्षेत्रानुपूर्वी की तरह इन आनुपूर्वी आदि भंगों का संग्रह कहां तक करना चाहिये इसके लिये सूत्रकार कहते हैं कि "से तं अणुगमे" इस प्रकार यह क्षेत्रानुपूर्वी संबन्धी अनुगम का स्वरूप है" यहां तक संग्रह करना चाहिये।(सेतं संगहस्स अणोवणिहिया कालानुपुव्वी) इस प्रकार यह संग्रहनय संमत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी है।

જેવું કથન કરવામાં આવ્યું છે, એવું જ કથન સંગ્રહનયસંમત આ કાલાનુપૂર્વીના પાંચે દ્વારોના વિષયમાં પણ સમજી લેવું. (णवरं ठिई अभिलावो जाव से तं अणुगमे) પરન્તુ ક્ષેત્રાનુપૂર્વીના કથન કરતાં આ કથનમાં નીચે પ્રમાણે વિશિષ્ટતા રહેલી છે-ક્ષેત્રાનુપૂર્વીના પ્રકરણમાં "त्रिप्रदेशावगाढ आनुपूर्वी, चतुष्प्रदेशावगाढ आनुपूर्वी," (આ પ્રકારે ભંગોનું કથન કરવામાં આવ્યું છે, ત્યારે સંગ્રહનયસંમત કાલાનુપૂર્વીમાં "तिसमयट्ठिइए आणुपुव्वी, चउसमयट्ठिइए आणुपुव्वी," ઇત્યાદિ પ્રકારે ભંગોનું કથન કરવું જોઈએ ક્ષેત્રાનુપૂર્વીના પ્રકરણગત પાઠનું કથન, "से तं अणुगमे" "આ પ્રકારનું અનુગમનું સ્વરૂપ છે. આ સૂત્રપાઠ પર્યન્ત કરવું જોઈએ. (से तं संगहस्स अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी) આ પ્રકારનું સંગ્રહનયસંમત અનૌપનિધિકી કાલાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ છે.

अथ औपनिधिकीं कालानुपूर्वीं प्ररूपयितुमाह-

मूलम्-से किं तं ओवणिहिया कालाणुपुव्वी ? ओवणिहिया कालाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा-पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी अणाणुपुव्वी। से किं तं पुव्वाणुपुव्वी ? पुव्वाणुपुव्वी समए, आवलिया, आण, पाणू, थोवे, लवे, मुहुत्ते, अहोरत्ते, पक्खे, मासे, उऊ, अयणे, संवच्छरे, जुगे, वाससए, वाससहस्से, वाससयसहस्से, पुव्वंगे, पुव्वे, तुडियंगे, तुडिए, अडडंगे, अडडे, अववंगे, अववे, हुहुअंगे, हुहुए, उप्पलंगे, उप्पले, पउमंगे, पउमे, णलिणंगे, णलिणे, अत्थनिऊरंगे, अत्थनिऊरे, अउअंगे, अउए, नउअंगे, नउए, पउअंगे, पउए, चूलिअंगे, चूलिया, सीसपहेलिअंगे, सीसपहेलिया, पलिओवमे, सागरोवमे, ओस्सप्पिणी,

भावार्थ-- सूत्रकार ने इस सूत्र द्वारा संग्रहनय मान्य अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी के अर्थपदप्ररूपणता आदि पांच द्वारों के स्वरूप कथन के विषय में यह समझाया है कि इन पांच द्वारों के स्वरूप का कथन क्षेत्रानुपूर्वी में संग्रहनय की मान्यता के प्रकरण में जिस प्रकार से किया गया है वैसा ही स्वरूप कथन इनका इस कालानुपूर्वी में इस प्रकरण में जानना चाहिये। परन्तु उस प्रकरण में प्रदेशों को लेकर आनुपूर्वी आदि भंगों का स्वरूप कथन करने में आया है-तब कि यहां पर समयों को लेकर आनुपूर्वी आदि भंगों का स्वरूप दिखाया गया है। सू० १३६॥

ભાવાર્થ-સૂત્રકારે આ સૂત્રમાં સંગ્રહનયસંમત અનૌપનિધિકી કાલાનુપૂર્વીના અર્થપદ પ્રરૂપણતા આદિ પાંચ દ્વારોના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કર્યું છે-સંગ્રહનયસંમત ક્ષેત્રાનુપૂર્વીના પ્રકરણમાં આ પાંચ દ્વારો વિષે જેવું કથન કરવામાં આવ્યું છે, એવું જ કથન અહીં પણ ગ્રહણ કરવાનું કહ્યું છે. તે પ્રકરણના કથન કરતાં આ પ્રકરણના કથનમાં એટલી જ વિશેષતા છે કે તે પ્રકરણમાં પ્રદેશોની અપેક્ષાએ ભંગોનું કથન કરવામાં આવ્યું છે, પરન્તુ અહીં સમયોની અપેક્ષાએ આનુપૂર્વી આદિ દ્રવ્યોના ભંગોનું કથન કરવામાં આવ્યું છે, એમ સમજવું. ।।સૂ૦૧૩૬।।

उस्सप्पिणी, पोग्गलपरियट्टे, अईयद्धा, अणागयद्धा, सव्वद्धा। से किं तं पच्छाणुपुव्वी? पच्छाणुपुव्वी–सव्वद्धा अणागयद्धा जाव समए। से तं पच्छाणुपुव्वी। से किं तं अणाणुपुव्वी? अणाणुपुव्वी–एयाए चेव एगाइयाए इगुत्तरियाए अणंतगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवूणो। से तं अणाणुपुव्वी। अहवा ओवणिहिया कालाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–पुव्वाणुपुव्वी, पच्छाणुपुव्वी, अणाणुपुव्वी। से किं तं पुव्वाणुपुव्वी? पुव्वाणुपुव्वी–एगसमयट्ठिइए, दुसमयट्ठिइए, तिसमयट्ठिइए जाव दससमयट्ठिइए संखिज्जसमयट्ठिइए असंखिज्जसमयट्ठिइए से तं पुव्वाणुपुव्वी। से किं तं पच्छाणुपुव्वी? पच्छाणुपुव्वी–असंखिज्जसमयट्ठिइए जाव एगसमयट्ठिइए। से तं पच्छाणुपुव्वी। से किं तं अणाणुपुव्वी? अणाणुपुव्वी–एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए असंखिज्जगच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दुरूवूणो, से तं अणाणुपुव्वी। से तं ओवणिहिया कालाणुपुव्वी। से तं कालाणुपुव्वी ॥सू० १३७॥

छाया—अथ का सा औपनिधिकी कालानुपूर्वी? औपनिधिकी कालानुपूर्वी त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा–पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी अनानुपूर्वी। अथ का सा पूर्वानुपूर्वी? पूर्वानुपूर्वी–समयः आवलिका आनः प्राणः स्तोकः लवः मुहूर्त्तः अहोरात्रः पक्षः मासः ऋतुः अयनं संवत्सरः युगं वर्षशतं वर्षसहस्रं वर्षशतसहस्रं पूर्वाङ्गं पूर्वं त्रुटिताङ्गं त्रुटितम् अटटाङ्गम् अटटम् अववाङ्गम् अववम् हुहुकाङ्गं हुहुकम् उत्पलाङ्गम् उत्पलं पद्माङ्गं पद्मं, नलिनाङ्गं नलिनम् अर्थनिपूराङ्गम् अर्थनिपूरम् अयुताङ्गम् अयुतं नयुताङ्गं नयुतं प्रयुताङ्गं प्रयुतं चूलिकाङ्गं चूलिका शीर्षप्रहेलिकाङ्गं शीर्षप्रहेलिका पल्योपमं सागरोपमम् अवसर्पिणी उत्सर्पिणी पुद्गलपरिवर्तः अतीताद्धा अनागताद्धा सर्वाद्धा। सेषा पूर्वानुपूर्वी। अथ का सा पश्चानुपूर्वी? पश्चानुपूर्वी–सर्वाद्धा अनागताद्धा

यावत् समयः। सैषा पश्चानुपूर्वी। अथ का सा अनानुपूर्वी? अनानुपूर्वी-एतस्यामेव एकादिकायामेकोत्तरिकायामनन्तगच्छगतायां श्रेण्यामन्योऽन्याभ्यासो द्विरूपोनः। सैषाऽनानुपूर्वी। अथवा-औपनिधिकी कालानुपूर्वी त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी अनानुपूर्वी। अथ का सा पूर्वानुपूर्वी? पूर्वानुपूर्वी-एकसमयस्थितिको द्विसमयस्थितिकः त्रिसमयस्थितिको यावद् दशसमयस्थितिकः संख्येयसमयस्थितिकः असंख्येयसमयस्थितिकः। सैषा पूर्वानुपूर्वी। अथ का सा पश्चानुपूर्वी? पश्चानुपूर्वी-असंख्येयसमयस्थितिको यावत् एकसमयस्थितिकः। सैषा पश्चानुपूर्वी। अथ का सा अनानुपूर्वी? अनानुपूर्वी-एतस्यामेव एकादिकायामेकोत्तरिकायामसंख्येयगच्छगतायां श्रेण्यामन्योऽन्याभ्यासो द्विरूपोनः। सैषा अनानुपूर्वी। सैषा औपनिधिकी कालानुपूर्वी। सैषा कालानुपूर्वी ॥सू० १३७॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि—

अथ का सा औपनिधिकी कालानुपूर्वी? इति प्रश्नः। उत्तरयति-औपनिधिकी कालानुपूर्वी पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्व्यनानुपूर्वीभेदेन त्रिविधा प्रज्ञप्ता। तत्र पूर्वानुपूर्वी-समयः=वक्ष्यमाणस्वरूपः सर्वसूक्ष्मः कालांशः एष हि सर्वप्रमाणानां प्रभव-

---

अब सूत्रकार औपनिधिकी कालानुपूर्वी की प्ररूपणा करते हैं-

"से किं तं ओवणिहिया" इत्यादि।

शब्दार्थ — (से किं तं ओवणिहिया कालाणुपुव्वी?) हे भदन्त! औपनिधिकी कालानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

उत्तर— (ओवणिहिया कालाणुपुव्वी) औपनिधिकी कालानुपूर्वी (तिविहा पण्णत्ता) तीन प्रकार की कही गई है (तं जहा) वे प्रकार ये हैं (पुव्वाणुपुव्वी, पच्छाणुपुव्वी, अणाणुपुव्वी)१ पूर्वानुपूर्वी२ पश्चानुपूर्वी३ अनानुपूर्वी। (से किं तं पुव्वाणुपुव्वी) हे भदन्त! पूर्वानुपूर्वी क्या है?

उत्तर—"समए, आवलिया, आण, पाणू, थोवे, लवे, मुहुत्ते, अहो

હવે સૂત્રકાર ઔપનિધિકી કાલાનુપૂર્વીની પ્રરૂપણા કરે છે-

"से किं तं ओवणिहिया" इत्यादि—

શબ્દાર્થ-(से किं तं ओवणिहिया कालाणुपुव्वी?) હે ભગવન્! ઔપનિધિકી કાલાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(ओवणिहिया कालाणुपुव्वी) ઔપનિધિકી કાલાનુપૂર્વીના (तिविहा पण्णत्ता, तंजहा) નીચે પ્રમાણે ત્રણ પ્રકાર કહ્યા છે-(पुव्वाणुपुव्वी, पच्छाणुपुव्वी, अणाणुपुव्वी) (१) પૂર્વાનુપૂર્વી, (२) પશ્ચાનુપૂર્વી, અને (३) અનાનુપૂર્વી.

પ્રશ્ન-(से किं तं पुव्वाणुपुव्वी?) હે ભગવન્! પૂર્વાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(समए, आवलिया, आण, पाणू, थोवे, लवे, मुहुत्ते, अहोरत्त,

रत्ते, पक्खे, मासे, उऊ, अयणे", समय आवलिका, आन, प्राण, स्तोक लव, मुहूर्त्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन (संवच्छरे) संवत्सर (जुगे) युग, (वाससए) वर्षशत (वाससहस्से) वर्ष सहस्र, (वाससयसहस्से) वर्षशतसहस्र, (पुव्वंगे) पूर्वाङ्ग (पुव्वे) पूर्व (तुडियंगे) त्रुटितांग) (तुडिए) त्रुटित, (अडडंगे) अटटाङ्ग (अडडे) अटट (अववंगे) अववाङ्ग (अववे) अवव (हुहुअंगे) हुहुकाङ्ग (हुहुए) हुहुक (उप्पलंगे) उत्पलाङ्ग (उप्पले) उत्पल (पउमंगे) पद्माङ्ग (पउमे) पद्म (णलिणंगे) नलिनाङ्ग (णलिणे) नलिन (अत्थनिऊरंगे) अर्थ निपूराङ्ग (अत्थनिऊरे) अर्थ निपूर (अउअंगे) अयुताङ्ग (अउए) अयुत (नउअंगे) नयुताङ्ग (नउए) नयुत (पउअंगे) प्रयुताङ्ग (पउए) प्रयुत (चूलिअंगे) चूलिकांग (चूलिया) चूलिका (सीस पहेलिअंगे) शीर्षप्रहेलिकाङ्ग (सीसपहेलिया) शीर्षप्रहेलिका (पलिओवमे) पल्योपम (सागरोवमे) सागरोपम (ओसप्पिणी) अवसर्पिणी (उस्सप्पिणी) उत्सर्पिणी (पोग्गलपरियट्टे) पुद्गलपरिवर्त्त (अईयद्धा) अतीताद्धा (अणागयद्धा) अनागताद्धा (सव्वद्धा) सर्वाद्धा। यह पूर्वानुपूर्वी हैं। समय का स्वरूप आगे स्वयं सूत्रकार कहेंगे। यह काल का सब से सूक्ष्म अंश है। इनसे ही समस्त प्रमाणों की आवलिका आदिकों की – उ-

---

पक्खे, मासे, उऊ, अयणे,) समय, आवलिया, आन, प्राण, स्तोक, लव, मुहूर्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, (संवच्छरे, जुगे) संवत्सर, युग, (वाससए) वर्षशत, (वाससहस्से) वर्षसहस्र, (वाससयसहस्से) वर्षशत सहस्र (लाखवर्ष) (पुव्वंगे, पुव्वे) पूर्वांग, पूर्व (तुडियंगे, तुडिए,) त्रुटितांग, त्रुटित, (अडडंगे, अडडे) अटटांग, अटट, (अववंगे, अववे) अववांग, अवव, (हुहुअंगे, हुहुए) हुहुकांग, हुहुक, (उप्पलंगे, उप्पले) उत्पलांग, उत्पल (पउमंगे, पउमे) पद्मांग, पद्म, (णलिणंगे, णलिणे) नलिनांग, नलिन, (अत्थनिऊरंगे) अर्थनिपूरांग, (अत्थनिऊरे) अर्थनिपूर, (अउअंगे) अयुतांग, (अउए) अयुत, (नउअंगे, नउए) नयुतांग, नयुत, (पउअंगे) प्रयुतांग, (पउए) प्रयुत, (चूलिअंगे) चूलिकांग, (चूलिया) चूलिका, (सीसपहेलिअंगे) शीर्षप्रहेलिकांग, (सीसपहेलिया) शीर्षप्रहेलिका, (पलिओवमे) पल्योपम, (सागरोवमे) सागरोपम, (ओसप्पिणी) अवसर्पिणी, (उस्सप्पिणी) उत्सर्पिणी, (पोग्गलपरियट्टे) पुद्गलपरिवर्त्त, (अईयद्धा) अतीताद्धा, (अणागयद्धा) अनागताद्धा, (सव्वद्धा) सर्वाद्धा, આ ક્રમે પદોનો ઉપન્યાસ કરવો તેનું નામ પૂર્વાનુપૂર્વી છે. કાળના સૌથી સૂક્ષ્મ અંશનું નામ 'સમય' છે. સૂત્રકાર પોતે જ તેનું સ્વરૂપ આગળ સમજાવવાના છે. તે સમયને આધારે જ આવલિકા આદિ કાળપ્રમાણોની

त्वात् प्रथमं निर्दिष्टः, आवलिका इयं हि असंख्येयैः समयैर्निष्पद्यते। आनः=एक उच्छ्वासः संख्येयाऽऽवलिकारूपः, उपलक्षणात्संख्येयावलिकारूपो निःश्वासोऽपि-ग्राह्यः। प्राणः=संख्येयावलिकारूपयोरुच्छ्वासनिःश्वासयोः कालः, स्तोकः=सप्त-प्राणात्मकः, लवः=सप्तस्तोकात्मकः, मुहूर्त्तः=सप्तसप्ततिलवात्मकः, अहोरात्रः=त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकः, पक्षः=पञ्चदशाहोरात्ररूपः, मासः=पक्षद्वयरूपः, ऋतुः=मास-द्वयरूपः, अयनम्=ऋतुत्रयात्मकम्, संवत्सरः=अयनद्वयात्मकः, युगं=पञ्चवर्षात्म-कम्, वर्षशतं=विंशतियुगात्मकम्, वर्षसहस्रम्, वर्षशतसहस्रम्-शतगुणितं सहस्रं-शतसहस्रं-वर्षाणां शतसहस्रं वर्षशतसहस्रं-लक्षवर्षाणि, पूर्वाङ्गम्=चतुरशीतिलक्ष-

त्पत्ति होती है इसलिये सूत्रकार ने सर्व प्रथम इसका उपन्यास किया है। असंख्यात समयों की एक आवलिका होती है। संख्यात आवलिकाओं का एक उच्छ्वास होता है। इसी प्रकार संख्यात आवलिका रूप एक निश्वास होता है। संख्यात आवलिका रूप जो उच्छ्वास निःश्वास का काल है वही प्राण है सात प्राणों का एक स्तोक होता है। सात स्तो-कों का एक लव होता है। सतहत्तरलवों का एक मुहूर्त्त होता है। ती-स मुहूर्त्तों का एक अहोरात्र होता है। १५ अहोरात्र का एक पक्ष हो-ता है। दो पक्षों का एक मास होता है। दो महीनों की एक ऋतु होती है। तीन ऋतुओं का एक अयन होता है। दो अयनों का एक संवत्सर होता है। पांच वर्ष का एक युग होता है। बीस युगों का एक सौ वर्ष होता है। दशसौ वर्षों का एक वर्षसहस्र होता है। सौ हजार वर्षों का एक लाख वर्ष होता है। चौरासी लाख वर्षों का १ पूर्वाङ्ग होता है।

ગણતરી કરી શકાય છે, તેથી જ સૂત્રકારે સૌથી પહેલાં સમયનો ઉપન્યાસ કર્યો છે. અસંખ્યાત સમયોની એક આવલિકા થાય છે. સંખ્યાત આવલિ-કાઓનો એક નિઃશ્વાસ (નિઃશ્વાસ પ્રમાણ કાળ) થાય છે. સંખ્યાત આવલિ-કાઓ રૂપ જે ઉચ્છ્વાસ નિઃશ્વાસનો કાળ છે. તેનું નામ જ પ્રાણ છે. સાત પ્રાણોનો એક સ્તોક થાય છે સાત સ્તોકનો એક લવ થાય છે. ૭૭ લવનું એક મુહૂર્ત થાય છે. ૩૦ મુહૂર્તનું એક અહોરાત્ર (દિનરાત્રિ) થાય છે ૧૫ અહોરાત્રનું એક પક્ષ (પખવાડિયું) થાય છે. બે પક્ષોનો એક માસ થાય છે. બે માસની એક ઋતુ થાય છે. ત્રણ ઋતુનું એક અયન થાય છે. બે અયનોનું એક સંવત્સર (વર્ષ) થાય છે પાંચ સંવત્સરનો એક યુગ થાય છે. વીસ યુગના શતવર્ષ થાય છે દસ સો વર્ષપ્રમાણ કાળને વર્ષસહસ્ર કહે છે. સો હજાર (લાખ) વર્ષપ્રમાણ કાળને લાખવર્ષ કહે છે ૮૪ લાખ વર્ષોનું એક

वर्षात्मकम्, पूर्वम्=चतुरशीत्या लक्षैर्गुणिते चतुरशीतिलक्षात्मकेऽङ्के यावती संख्या लभ्यते तत्प्रमाणम्, सा संख्या च-सप्ततिकोटिलक्षाणि षट्पञ्चाशच्च कोटिसहस्राणि (७०५६०००००००००) वर्षाणाम्। उक्तंच—

"पुव्वस्स उ परिमाणं, सयरी खलु हुंति कोडिलक्खाउ।
छप्पण्णं च सहस्सा, बोद्धव्वा वासकोडीणं॥"

छाया—पूर्वस्य तु परिमाणं सप्ततिः खलु भवन्ति कोटिलक्षाः।
षट्पञ्चाशच्च सहस्राणि बोद्धव्या वर्षकोटीनाम्॥इति॥

इदमपि चतुरशीत्यालक्षैर्गुणितं त्रुटिताङ्गं भवति। त्रुटिताङ्गं हि चतुरशीत्यालक्षैर्गुणितं सदेकं त्रुटितं भवति। त्रुटितं च चतुरशीत्यालक्षैर्गुणितं सदेकम् अटटाङ्गं भवति। चतुरशीत्यालक्षैर्गुणितं च अटटाङ्गमेकमटटं भवति। एवमेव इतः प्रभृति

चौरासी लाखपूर्वाङ्ग का१ पूर्व होता है। इसमें वर्षों का संख्या ७०५६०००,०००,०००० इतनी आती है। यही बात "पुव्वस्स उ परिमाणं" इत्यादि गाथा द्वारा प्रकट की है। इन वर्षों में ८४ लाख का गुणा करने पर जो संख्या आती है वह त्रुटिताङ्ग का परिमाण है। त्रुटितांग परिमाण में चौरासीलाख का गुणा करने पर एक त्रुटित होता है। एक त्रुटित को ८४ लाख से गुणा करने पर १ अटटाङ्ग होता है। एक अटटाङ्ग को चौरासी लाख से गुणा करने पर एक अटट होता है। १ अटट प्रमाण में चौरासी लाख से गुणा करने पर १ एक अववाङ्ग होता है। १ अववाङ्ग में ८४ लाख का गुणा करने पर एक अवव होता है। इसी प्रकार आगे२ शीर्षप्रहेलिका तक के प्रमाणों में ऐसे ही करते चले जाना चाहिये। अर्थात् १ अवव में चौरासी लाख से गुणा करने पर १ हुहुकाङ्ग, १ हुहुकाङ्ग में चौरासी लाख से गुणा करने पर१ हुहुक, १ हुहुक में चौरासी

પૂર્વાંગ થાય છે, અને ૮૪ લાખ પૂર્વાંગોનું એક પૂર્વ થાય છે. એક પૂર્વના ૭૦૫૬૦૦૦૦૦૦૦૦૦ વર્ષ થાય છે. એજ વાત સૂત્રકારે "पुव्वस्स उ परिमाणं" ઇત્યાદિ સૂત્રપાઠ દ્વારા પ્રકટ કરી છે. ૮૪ લાખ પૂર્વનું એક ત્રુટિતાંગ થાય છે એટલે કે ૭૦૫૬૦૦૦૦૦૦૦૦૦ વર્ષને ૮૪ લાખ વડે ગુણવાથી જેટલાં વર્ષ આવે છે, તેટલાં વર્ષપ્રમાણ કાળને એક ત્રુટિતાંગ કહે છે ૮૪ લાખ ત્રુટિતાંગનું એક ત્રુટિત થાય છે. ૮૪ લાખ ત્રુટિતોનું એક અટટાંગ થાય છે. ૮૪ લાખ અટટનું એક અવવાંગ થાય છે. ૮૪ લાખ અવવાંગોનું એક અવવ થાય છે. એક અવવના ૮૪ લાખ ગણાં કરવાથી એક હુહુકાંગપ્રમાણ કાળ બને છે. ૮૪ લાખ હુહુકાંગનું એક હુહુક બને છે

पूर्वं पूर्वं चतुरशीत्यालक्षैश्चतुरशीत्यालक्षैश्च गुणितम् उत्तरोत्तरमेकैकंकालप्रमाणं यावत् शीर्षप्रहेलिकान्तं बोध्यम्। शीर्षप्रहेलिकायाः स्वरूपमङ्कत एवं बोध्यम्-७५,८२-

---

लाख से गुणा करने पर १ उत्पलाङ्ग एक उत्पलाङ्ग में चौरासी लाख से गुणा करने पर एक उत्पल, १ उत्पल में ८४ लाख से गुणा करने पर १ पद्माङ्ग, १ पद्माङ्ग में चौरासी लाख से गुणा करने पर एक पद्म एक पद्म में ८४ लाख से गुणा करने पर १ नलिनाङ्ग, १ नलिनाङ्ग में चौरासी लाख से गुणा करने पर १ नलिन १ नलिन में ८४ से गुणा करने पर १ अर्थ निपूराङ्ग एक अर्थ निपूराङ्ग में चौरासी लाख से गुणा करने पर १ अर्थ निपूर १ अर्थनिपूर में ८४ लाख से गुणा करने पर एक अयुतांग १ अयुतांग में ८४ लाख से गुणा करने पर १ अयुत, १ अयुत में ८४ लाख से गुणा करने पर १ नयुतांग १ नयुताङ्ग में ८४ लाख से गुणा करने पर १ नयुत १ नयुत में ८४ लाख से गुणा करने पर १ प्रयुताङ्ग १ प्रयुताङ्ग में ८४ लाख से गुणा करने पर १ प्रयुत, १ प्रयुत में ८४ लाख से गुणा करने पर एक चूलिकाङ्ग, १ चूलिकाङ्ग में चौरासी लाख से गुणा करने पर चूलिका एक एक चूलिका में ८४ लाख से गुणा करने पर १ शीर्ष प्रहेलिकाङ्ग और एक शीर्ष प्रहेलिकाङ्ग में चौरासी लाख से गुणा करने पर १ शीर्षप्रहेलिका का प्रमाण होता है। इस शीर्षप्रहेलिका के अंको

હુહુકને ૮૪ લાખ વડે ગુણવાથી એક ઉત્પલાંગ થાય છે. ૮૪ લાખ ઉત્પલાંગોનો એક ઉત્પલ કાળ થાય છે ૮૪ લાખ ઉત્પલનું એક પદ્માંગ થાય છે અને ૮૪ લાખ પદ્માંગોનું એક પદ્મ થાય છે. તેના ૮૪ લાખ ગણું કરવાથી એક નલિનાંગ થાય છે. એક નાલિનાંગના ૮૪ લાખ ગણું કરવાથી એક નલિન આવે છે. નલિનના ૮૪ લાખ ગણું કરવાથી એક અર્થનિપૂરાંગ આવે છે એક અર્થનિપૂરાંગના ૮૪ લાખ ગણું કરવાથી એક અર્થનિપૂર આવે છે. એક અર્થનિપૂરના ૮૪ લાખ ગણું કરવાથી એક અયુતાંગ, એક અયુતાંગના ૮૪ લાખ ગણું કરવાથી એક અયૂત, એક અયૂતના ૮૪ લાખ ગણું કરવાથી એક નયુતાંગ, એક નયુતાંગના ૮૪ લાખ ગણું કરવાથી એક નયુત, એક નયુતના ૮૪ લાખ ગણું કરવાથી એક પ્રયુતાંગ, એક પ્રયુતાંગના ૮૪ લાખ ગણું કરવાથી એક પ્રયુત, એક પ્રયુતના ૮૪ લાખ ગણું કરવાથી એક ચૂલિકાંગ, એક ચૂલિકાંગના ૮૪ લાખ ગણું કરવાથી એક ચૂલિકા, એક ચૂલિકાના ૮૪ લાખ ગણું કરવાથી એક શીર્ષપ્રહેલિકાંગ અને એક શીર્ષપ્રહેલિકાંગના ૮૪ લાખ ગણું કરવાથી એક શીર્ષપ્રહેલિકા નામના કાળનું પ્રમાણ આવે છે.

६३,२५,३०,७३०,१०,२४,११,५७,९७,३५,६१,९७,५६,९६,४०,६२,१८, ९६,६८,४८०,८०१८,३२,९६, एतदग्रे चत्वारिंशदुत्तरैकशतसंख्यकानि शून्यानि (१४०) निक्षेप्तव्यानि। तदेवं शीर्षप्रहेलिकायां चतुर्नवत्यधिकशतसंख्यकानि अङ्कस्थानानि भवन्ति। अनेन पूर्वोक्तेन कालमानेन केषांचिद् रत्नप्रभानारकाणां भवनपतिव्यन्तरसुराणां सुषमदुष्षमारकसम्भविनां नरतिरश्चां च यथासंभवमायुषो मानं भवति। एतस्माच्च परतोऽपि संख्येयः कालोऽस्ति, किन्तु तस्य अतिशयज्ञानवर्जितानां छद्मस्थानामसंव्यवहार्यत्वात्, सर्षपाद्युपमयाऽत्रैव वक्ष्यमाणत्वाच्च नेहोक्तः। किं तर्हि? उपमामात्रप्रतिपाद्यानि पल्योपमादीन्येव। तत्र पल्योपमसा-

---

का प्रमाण ७५८२६३२५३०७३०१०२४११, ५७९७३५६९,,९७५६९६४-०६२१८९६६८४८०८०१८३२९६, और इसके १४० शून्य रखने से इतना होता है! इस समस्त अंको की संख्या का योग १९४ अंक प्रमाण होता है। इस पूर्वोक्त काल प्रमाण से किननेक रत्नप्रभागत नारकों की तथा भवनपति, व्यन्तर देवों की और सुषमदुष्षमारक में उत्पन्न हुए मनुष्य तिर्यञ्चो की यथासंभव आयु का प्रमाण कहा जाता है। इससे आगे भी संख्यात काल है। परन्तु वह यहां जो नहीं कहा गया है। उसका कारण यह है कि एकतो वह अतिशयज्ञान वर्जित जो छद्मस्थ प्राणी हैं उनके द्वारा असंव्यवहार्य है। तथा दूसरे सर्षप आदि की उपमा देकर सूत्रकार आगे उसे इसी शास्त्र में स्वयं कहेंगे भी। उपमा मात्र देकर जिसका स्वरूप समझाया जा सकता है ऐसे पल्योपम

ઉપરના કોષ્ટકને આધારે એક શિર્ષપ્રહેલિકાનાં વર્ષોની ગણતરી કરવામાં આવે તો ૧૯૪ આંકડાની સંખ્યા આવે છે. તે સંખ્યા નીચે પ્રમાણે છે– ७५८२६३२५३०७३०१०२४११५७९७३५६९७५६९६४०६२१८९६६८४८०८ ०१८३२९६ આ ૫૪ આંકડા ઉપર જમણી તરફ ૧૪૦ શૂન્ય મૂકવાથી જે ૧૯૪ આંકડાની સંખ્યા આવે છે, તે સંખ્યા એક શિર્ષપ્રહેલિકાનાં વર્ષો બતાવે છે. આ પૂર્વોક્ત કાળપ્રમાણને આધારે કેટલાક રત્નપ્રભા નરકના નારકોના, ભવનપતિ દેવોના, વ્યન્તર દેવોના, અને સુષમદુષ્પમ આરામાં ઉત્પન્ન થયેલા મનુષ્યોના યથાસંભવ આયુનું પ્રમાણ કહી શકાય છે. શીર્ષપ્રહેલિકાની આગળ પણ સંખ્યાત કાળ છે. પરન્તુ અહીં તેનું કથન કરવામાં આવ્યું નથી કારણ કે તે અતિશય જ્ઞાનવર્જીત છદ્મસ્થ જીવો દ્વારા અસંવ્યવહાર્ય છે–છદ્મસ્થ જીવો દ્વારા તેનો વ્યવહારમાં ઉપયોગ થઈ શકે તેમ નથી સૂત્રકાર સર્ષપ (સરસવ) આદિની ઉપમા દ્વારા તે કાળપ્રમાણોનું આગળ ઉપર નિરૂપણ કરવાના છે. ઉપમા દ્વારા જ જેના સ્વરૂપને સમજાવી શકાય

गरोपमे वक्ष्यमाणस्वरूपे। दशसागरोपमकोटाकोटिप्रमाणात्त्ववसर्पिणी, तावन्मानैव उत्सर्पिणी। अनन्ता अवसर्पिण्युत्सर्पिण्यः पुद्गलपरिवर्त्तः। अनन्ताः पुद्गलपरावर्त्ता अतीताद्धा। अनागताद्धाऽप्यनन्तपुद्गलपरावर्त्तमानैव बोध्या। अतीताऽनागतवर्त्तमानकालस्वरूपा सर्वाद्धा। इयं पूर्वानुपूर्वी। पश्चानुपूर्वी तु 'सर्वाद्धा' इत्यारभ्य 'समयः' इत्यन्ता बोध्या। अनानुपूर्वी तु–'समयः' इत्याद्यारभ्य 'सर्वाद्धा'

और सागरोपम जो काल हैं उन्हें सूत्रकार आगे प्रगट करेंगे। दश सागरोपम कोटि कोटि का १एक अवसर्पिणी काल और इतने ही प्रणाम वाला एक उत्सर्पिणी काल होता है। एक पुद्गल परावर्त काल अनन्त अवसर्पिणी उत्सर्पिणी काल का होता है। तथा जो अतीताद्धा–काल होता है उसमें अनन्त पुद्गल परावर्त होते हैं। अर्थात् अनन्त पुद्गलपरावर्तों का एक अतीताद्धा काल होता है। इसी प्रकार जो अनागताद्धा काल होता है वह भी अनन्त पुद्गल परावर्तों का होता है। तथा जो सर्वाद्धा काल है वह अतीत अनागत और वर्तमान काल इन तीनों का संमिलित रूप होता है। इस प्रकार यह पूर्वानुपूर्वी है। तथा सर्वाद्धा से लेकर समय पर्यन्त जो व्युत्क्रम से इनकी स्थापना–विन्यास–करना है वह पश्चानुपूर्वी है। यही बात (से किं तं पच्छाणुपुव्वी?) हे भदन्त! पश्चानुपूर्वी क्या है इस प्रश्न के उत्तर में (सव्वद्धा अणागयद्धा जाव समए) इन पदों द्वारा प्रगट की गई है। (से तं पच्छाणुपुव्वी) इस प्रकार

એમ છે એવાં પલ્યોપમકાળ અને સાગરોપમ કાળનું સ્વરૂપ સૂત્રકાર આગળ પ્રકટ કરવાના છે. દસ સાગરોપમ કોટિકોટિનો એક અવસર્પિણીકાળ થાય છે અને ઉત્સર્પિણી કાળનું પણ એટલું જ પ્રમાણ કહ્યું છે. અનંત અવસર્પિણીકાળનો એક પુદ્ગલપરાવર્ત કાળ થાય છે. અનંત પુદ્ગલપરાવર્તનો એક અતીતાદ્ધા–કાળ થાય છે એટલે કે અતિતાદ્ધામાં અનંત પુદ્ગલપરાવર્તકાળ હોય છે. એજ પ્રમાણે અનંત પુદ્ગલપરાવર્તોનો એક અનાગતાદ્ધાકાળ થાય છે. જે સર્વાદ્ધા કાળ છે તે અતીત, અનાગત અને વર્તમાન, આ ત્રણે કાળના સંમિલિતકાળ રૂપ હોય છે. આ પ્રકારનું પૂર્વાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ છે.

હવે પશ્ચાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ પ્રકટ કરવામાં આવે છે—

પ્રશ્ન–(से किं पच्छाणुपुव्वी?) હે ભગવન્! પશ્ચાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર–(सव्वद्धा, अणागयद्धा जाव समए) સર્વાદ્ધા, અનાગતાદ્ધા ઇત્યાદિ ઊલટા ક્રમે સમય પર્યન્તના પદોનો વિન્યાસ (સ્થાપના) કરવો, તેનું નામ પશ્ચાનુપૂર્વી છે. (से तं पच्छाणुपुव्वी) આ પ્રકારનું પશ્ચાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ છે.

इत्यन्तानामन्योऽन्याभ्यासे ये अनन्ता भङ्गा भवन्ति, तेषु आद्यन्तरूपभङ्गद्वय-विवक्षामपहाय सर्वभङ्गगणनात्मिका बोध्या। अत्र कालविचारस्य प्रस्तुतत्वात् समयादेश्चकालत्वेन प्रसिद्धत्वात् अनुषङ्गतो विनेयानां समयादिकालज्ञानं भवेत्, इति प्रकारान्तरेण कालानुपूर्वीमाह-'अहवा' इत्यादिना। अथवा औपनिधिकी कालानुपूर्वी पूर्वानुपूर्व्यादिभेदेन त्रिविधा प्रज्ञप्ता। तत्र-पूर्वानुपूर्वी-एकसमय-

यह पश्चानुपूर्वी का स्वरूप है। (से किं तं अणाणुपुव्वी?) हे भदन्त? अनानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—(एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए अणंतगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दूरूवूणो) अनानुपूर्वी में समयादि पदों का एक२ की वृद्धिपूर्वक उपन्यास किया जाता है, फिर बाद में आपस में इनका गुणा किया जाता है। इस प्रकार गुणा करने पर जो अनन्त भंगरूप राशि उत्पन्न होती है उसमें से आदि और अन्त के दो भंग घटा दिये जाते हैं। इस प्रकार से अनानुपूर्वी अनन्त भंगात्मक होती है। यहां काल का विचार प्रस्तुत है और समयादिक कालरूप से प्रसिद्ध हैं। इस लिये शिष्यों को समयादिरूप कालका आनुषंगिकरूप से ज्ञान हो जावे इसलिये सूत्रकार प्रकारान्तर से कालानुपूर्वीका कथन करते है-(अहवा ओवणिहिया कालाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता) अथवा औपनिधिकी कालानुपूर्वी तीन प्रकार की कही गई है (तं जहा) जैसे (पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी, अणाणुपुव्वी) पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी और अनानुपूर्वी।

उत्तर-(एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए अणंतगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दूरूवूणो) અનાનુપૂર્વીમાં સમયાદિ પદોનો એક એકની વૃદ્ધિથી ઉપન્યાસ કરવામાં આવે છે. ત્યાર બાદ આપસમાં (અંદરો અંદર) તેમના ગણું (તેમનો ગુણાકાર) કરવામાં આવે છે. આ પ્રકારે ગુણાકાર કરવાથી જે અનંત ભંગરૂપ રાશિ ઉત્પન્ન થાય છે તેમાંથી શરૂઆતનો અને અન્તનો એક, એમ બે ભંગો ઓછાં કરવામાં આવે છે. આ પ્રકારે અનાનુપૂર્વી અનંત ભંગરૂપ હોય છે. અહીં કાળનો અધિકાર ચાલી રહ્યો છે અને સમયાદિક કાળરૂપે પ્રસિદ્ધ છે. તેથી શિષ્યોને સમયાદિ રૂપ કાળનું આનુષંગિક રૂપે જ્ઞાન થઈ જાય તે હેતુથી સૂત્રકાર કાલાનુપૂર્વીના સ્વરૂપનું અન્ય પ્રકારે નિરૂપણ કરે છે-(અહવા ઓવણિહિયા કાલાણુપુવ્વી તિવિહા પણ્ણત્તા) અથવા-ઔપનિધિકી કાલાનુપૂર્વી ત્રણ પ્રકારની કહી છે. (તંજહા) તે ત્રણ પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે-(પુવ્વાણુપુવ્વી, પચ્છાણુપુવ્વી, અણાણુપુવ્વી) પૂર્વાનુપૂર્વી, પશ્ચાનુપૂર્વી અને અનાનુપૂર્વી.

स्थितिकः-एकः समयः स्थितिर्यस्य द्रव्यविशेषस्य स तथाभूतो द्रव्यविशेषो बोध्यः। एवमेव-द्विसमयस्थितिकस्त्रिसमयस्थितिको यावद्दशसमयस्थितिकः संख्येयसमयस्थितिकोऽसंख्येयसमयस्थितिकश्च द्रव्यविशेषः पूर्वानुपूर्वी बोध्या। पश्चानुपूर्वीं तु-असंख्येयसमयस्थितिको यावदेकसमयस्थितिकश्च। अनानुपूर्वी तु-एकसमयस्थितिकाद्यारभ्य असंख्येयसमयस्थितिकानामन्योन्याभ्यासेऽसंख्येया भङ्गा भवन्ति, तेषु आद्यन्तरूपभङ्गकद्वयविवक्षामपहाय सर्वभङ्गगुणनात्मिका बोध्या। इयमौपनिधिकी कालानुपूर्वी बोध्या। एतदेवाह-' से तं ओवणिहिया' इत्यादि। सैषा औपनिधि-

(से किं तं पुव्वाणुपुव्वी) हे भदन्त! पूर्वानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

उत्तर—(पुव्वाणुपुव्वी) पूर्वानुपूर्वी का स्वरूप इस प्रकार से है-(एगसमयट्ठिइए, दुसमयट्ठिइए, तिसमयट्ठिइए जाव दस समयट्ठिइए संखिज्जसमयट्ठिइए असंखिज्जसमयट्ठिइए) एक समय की स्थितिवाला, दो समय की स्थितिवाला, तीन समय की स्थितिवाला यावत् दश समय की स्थितिवाला संख्यातसमय की स्थितिवाला असंख्यातसमय की स्थितिवाला जितना भी द्रव्य विशेष है वह सब पूर्वानुपूर्वी है। (से किं तं पच्छाणुपुव्वी) हे भदन्त! पश्चानुपूर्वी का क्या स्वरूप है? (असंखिज्जसमयट्ठिइए जाव एगसमयट्ठिइए पच्छाणुपुव्वी) असंख्यातसमय की स्थितिवाले द्रव्य से लेकर एकसमय तक की स्थितिवाला जो द्रव्य विशेष है वह पश्चानुपूर्वी है। (से तं पच्छाणुपुव्वी) यह पश्चानुपूर्वी का स्वरूप है। (से किं तं अणाणुपुव्वी?) हे भदन्त अनानुपूर्वी का

પ્રશ્ન-(से किं तं पुव्वाणुपुव्वी) હે ભગવન્! પૂર્વાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(पुव्वाणुपुव्वी) પૂર્વાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે-(एगसमयट्ठिइए, दुसमयट्ठिइए, तिसमयट्ठिइए जाव दससमयट्ठिइए, संखिज्जसमयट्ठिइए, असंखिज्जसमयट्ठिइए) એક સમયની સ્થિતિવાળાં, બે સમયની સ્થિતિવાળાં, ત્રણથી લઈને દસ પર્યન્તની સ્થિતિવાળાં, સંખ્યાત સમયની સ્થિતિવાળાં અને અસંખ્યાત સમયની સ્થિતિવાળાં જેટલાં દ્રવ્યવિશેષો તેઓ પૂર્વાનુપૂર્વી રૂપ છે.

પ્રશ્ન-(से किं तं पच्छाणुपुव्वी?) હે ભગવન્! પશ્ચાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(असंखिज्जसमयट्ठिइए जाव एगसमयट्ठिइए पच्छाणुपुव्वी) અસંખ્યાત સમયની સ્થિતિવાળાથી લઈને એક સમય પર્યન્તની સ્થિતિવાળાં જે દ્રવ્યવિશેષો છે, તે પશ્ચાનુપૂર્વી રૂપ છે. (से तं पच्छाणुपुव्वी) આ પ્રકારનું પશ્ચાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ છે.

પ્રશ્ન-(से किं तं अणाणुपुव्वी?) હે ભગવન્! અનાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે?

की कालानुपूर्वी । इत्थं कालानुपूर्वी समाप्तेति सूचयितुमाह-' से तं ' इत्यादि-सेत्तं कालानुपूर्वीति ॥सू० १३७॥

अथ पूर्वोक्तामुत्कीर्तनानुपूर्वीं प्रतिपादयितुमाह-

मूलम्-से किं तं उक्कित्तणाणुपुव्वी ? उक्कित्तणाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा-पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी अणाणुपुव्वी । से किं तं पुव्वाणुपुव्वी ? पुव्वाणुपुव्वी-उसभे अजिए संभवे अभिणंदणे सुमई पउमप्पहे सुपासे चंदप्पहे सुविहा सीयले सेज्जंसे वासु-

---

क्या स्वरूप है ? (एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए असंखिज्जगच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दुरूवूणो अणाणुपुव्वी)

उत्तर-एक से लेकर असंख्यात तक एक२ की वृद्धि करते हुए असंख्यातश्रेणि मांडो, फिर इन श्रेणियों में परस्पर में गुणा कर दो और उस उत्पन्न असंख्यात भंग रूप महाराशि में से आदि अंत के दो भंगों-पूर्वानुपूर्वी और पश्चानुपूर्वी रूप दो भंगों और अवक्तव्यक भंगों को कम कर दो-यही अनानुपूर्वी का स्वरूप है । (से तं ओवणिहिया कालाणुपुव्वी-से तं कालाणुपुव्वी) इस प्रकार औपनिधिकी कालानुपूर्वी है । इसके समाप्त होते ही पूर्वप्रक्रान्त कालानुपूर्वी का कथन समाप्त हो गया ॥सू० १३७॥

उत्तर-(एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए असंखिज्जगच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दुरूवूणो अणाणुपुव्वी) એકથી લઈને અસંખ્યાત પર્યન્ત એક એકની વૃદ્ધિ કરતાં કરતાં અસંખ્યાત શ્રેણી સુધીનાં દ્રવ્યોનો ઉપન્યાસ કરવામાં આવે છે ત્યાર બાદ તે શ્રેણીઓનો પરસ્પરમાં ગુણાકાર કરવામાં આવે છે અને આ પ્રકારે જે અસંખ્યાત ભંગ રૂપ મહારાશિ ઉત્પન્ન થાય છે, તેમાંથી આદિ અને અન્તના બે ભાંગાઓ-પૂર્વાનુપૂર્વી અને પશ્ચાનુપૂર્વી રૂપ બે ભાંગાઓ-બાદ કરવામાં આવે છે આ પ્રકારનું અનાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ છે (से तं अणाणुपुव्वी) આ ઔપનિધિકી અનાનુપૂર્વી છે. (से तं ओवणिहिया कालाणुपुव्वी-से तं कालाणुपुव्वी) આ પ્રકારનું ઔપનિધિકી કાલાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ છે. તેના સ્વરૂપનું કથન સમાપ્ત થતાની સાથે જ પૂર્વપ્રકાન્ત કાલાનુપૂર્વીના સ્વરૂપનું કથન પણ સમાપ્ત થાય છે. ॥સૂ૦૧૩૭॥

पुज्जे विमले अणंते धम्मे संती कुंथू अरे मल्ली मुणिसुव्वए णमी अरिट्ठणेमी पासे वद्धमाणे। से तं पुव्वाणुपुव्वी। से किं तं पच्छाणुपुव्वी? पच्छाणुपुव्वी-वद्धमाणे जाव उसभे। से तं पच्छाणुपुव्वी। से किं तं अणाणुपुव्वी? अणाणुपुव्वी-एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए चउवीसगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवूणो। से तं अणाणुपुव्वी। से तं उक्कित्तणाणुपुव्वी ॥सू० १३८॥

छाया—अथ का सा उत्कीर्तनानुपूर्वी? उत्कीर्त्तनानुपूर्वी त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी अनानुपूर्वी। अथ का सा पूर्वानुपूर्वी? पूर्वानुपूर्वी-ऋषभः अजितः संभवः अभिनन्दनः सुमतिः पद्मप्रभः सुपार्श्वः चन्द्रप्रभः सुविधिः शीतलः श्रेयांसः वासुपूज्यः विमलः अनन्तः धर्मः शान्तिः कुन्थुः अरः मल्लिः मुनिसुव्रतः नमिः अरिष्टनेमिः पार्श्वो वर्द्धमानः। सैषा पूर्वानुपूर्वी। अथ का सा अनानुपूर्वी? अनानुपूर्वी-एतस्यामेव एकादिकायामेकोत्तरिकायां चतुर्विंशतिगच्छगतायां श्रेण्यामन्योन्याभ्यासो द्विरूपोनः। सैषा अनानुपूर्वी। सैषा उत्कीर्त्तनानुपूर्वी ॥सू० १३८॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि—

अथ का सा उत्कीर्त्तनानुपूर्वी? इति शिष्यप्रश्नः। उत्तरयति-उत्कीर्त्तनं=कथनम् अभिधानोच्चारणमिति यावत्, तस्य आनुपूर्वी=अनुपरिपाटिः पूर्वानुपूर्व्यादि-

---

अब सूत्रकार पूर्वोक्त उत्कीर्तनानुपूर्वी का प्रतिपादन करते हैं-

'से किं तं उक्कित्तणाणुपुव्वी? इत्यादि।

शब्दार्थ—हे भदन्त! (से किं तं उक्कित्तणाणुपुव्वी?) पूर्व प्रकान्त उत्कीर्तनानुपूर्वी का स्वरूप क्या है?

उत्तर—(उक्कित्तणाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता) उत्कीर्तनानुपूर्वी तीन

હવે સૂત્રકાર પૂર્વોક્ત ઉત્કીર્તનાનુપૂર્વીના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે-

"से किं तं उक्कित्तणाणुपुव्वी" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(से किं तं उक्कित्तणाणुपुव्वी?) હે ભગવન્! પૂર્વપ્રકાન્ત ઉત્કીર્તનાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(उक्कित्तणाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता-तंजहा) ઉત્કીર્તનાનુપૂર્વીના

भेदेन त्रिविधा प्रज्ञप्ता। तत्र-पूर्वानुपूर्वी-ऋषभादि वर्द्धमानान्ता। सर्वप्रथमोत्पन्नाद् ऋषभस्य प्रथममुपादानम्। तदनन्तरं क्रमेण अजितादय उक्ताः। पश्चानुपूर्वी तु-

प्रकार की कही गई है। (तं जहा) उसके वे प्रकार ये हैं-(पुव्वाणुपुव्वी, पच्छाणुपुव्वी, अणाणुपुव्वी) पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी और अनानुपूर्वी। उत्कीर्तन शब्द का अर्थ नाम का उच्चारण करना ऐसा है। इस उत्कीर्तन की जो परिपाटी है उसका नाम उत्कीर्तनानुपूर्वी है। (से किं तं पुव्वाणुपुव्वी) पूर्व प्रक्रान्त पूर्वानुपूर्वी क्या है?

उत्तर—(उसभे अजिए संभवे अभिणंदणे, सुमई, पउमप्पहे, सुपासे, चंदप्पहे, सुविही, सीयले, सेज्जंसे, वासुपुज्जे, विमले, अणंते, धम्मे, संती, कुंथू, अरे, मल्ली, मुणिसुव्वए, णमी, अरिट्ठणेमी, पासे, वद्धमाणे, से तं पुव्वाणुपुव्वी) ऋषभ, अजित, संभव, अभिनंदन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चंद्रप्रभ, सुविधि, शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म, शान्ति, कुन्थु, अर, मल्ली, मुनिसुव्रत, नमि, अरिष्टनेमि, पार्श्व, और वर्द्धमान। इस प्रकार परिपाटिरूप से नामोच्चारण करना इसका नाम उत्कीर्तनानुपूर्वी का प्रथम भेद पूर्वानुपूर्वी है। ऋषभनाथ सब से प्रथम उत्पन्न हुए हैं। इसलिये उनका प्रथम नामोच्चारण किया है। तदनन्तर क्रमशः अन्य अजित आदि हुए हैं इसलिये उनका नामोच्चारण हुआ है। पश्चानुपूर्वी में वर्द्धमान को

નીચે પ્રમાણે ત્રણ પ્રકાર કહ્યા છે-(पुव्वाणुपुव्वी, पच्छाणुपुव्वी, अणाणुपुव्वी) (૧) પૂર્વાનુપૂર્વી, (૨) પશ્ચાનુપૂર્વી અને (૩) અનાનુપૂર્વી.

"નામનું ઉચ્ચારણ કરવું" એટલે ઉત્કીર્તન આ ઉત્કીર્તનની (નામનું ઉચ્ચારણ કરવાની) જે પરિપાટી (પદ્ધતિ) છે, તેનું નામ ઉત્કીર્તનાનુપૂર્વી છે.

પ્રશ્ન-(से किं तं पुव्वाणुपुव्वी?) હે ભગવન્! પૂર્વાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(उसभे, संभवे, चंदप्पहे, सुविही, सीयले, सेज्जंसे, वासुपुज्जे, विमले, अणंते, धम्मे, संती, कुंथू, अरे, मल्ली, मुणिसुव्वए, णमी, अरिट्ठणेमी, पासे, वद्धमाणे, से तं पुव्वाणुपुव्वी) ઋષભ, અજિત, સંભવ, અભિનંદન, સુમતિ, પદ્મપ્રભ, સુપાર્શ્વ ચંદ્રપ્રભ, સુવિધિ, શીતલ, શ્રેયાંસ, વાસુપૂજ્ય, વિમલ, અનન્ત, ધર્મ, શાન્તિ, કુન્થુ, અર, મલ્લી, મુનિસુવ્રત, નમિ, અરિષ્ટનેમિ, પાર્શ્વ અને વર્ધમાન, આ પ્રકારે પરિપાટી રૂપે નામોચ્ચારણ કરવું તેનું નામ પૂર્વાનુપૂર્વી છે. તે ઉત્કીર્તનાનુપૂર્વીના પ્રથમ ભેદ રૂપ છે. ઋષભનાથ ભગવાન સૌથી પહેલાં થઇ ગયાં હોવાથી તેમના નામનું ઉચ્ચારણ સૌથી પહેલાં કરવામાં આવ્યું છે. ત્યાર બાદ અજિત આદિ તીર્થંકરો ક્રમશઃ થઇ ગયા હોવાથી તેમનાં નામોનું ક્રમશઃ ઉચ્ચારણ કરાયું છે.

वर्द्धमानादि ऋषभान्ता बोध्या। अनानुपूर्वी तु-ऋषभादिवर्धमानान्तानां चतुर्विंशतिपदानामन्योऽन्याभ्यासे आद्यन्तरूपभङ्गकद्वयविवक्षामपहाय भङ्गा विधातव्यास्तदात्मिका बोध्या। ननु औपनिधिक्या द्रव्यानुपूर्व्या अस्याश्च को भेदः? उच्यते, तत्र हि द्रव्याणां विन्यासमात्रमेव पूर्वानुपूर्व्यादिभावेन चिन्तितम्। अत्र तु तेषामेव तथैवोत्कीर्त्तनं क्रियते-इत्येतावन्मात्रेण एतयोर्भेदो बोध्यः। ननु अस्त्येवं तथाऽप्यत्र शास्त्रे आवश्यकस्य प्रस्तुतत्वादत्रापि सामायिकाद्यध्ययनानामेवोत्कीर्त्तनं युक्तम्,

---

आदि करके-ऋषभपद को अन्त में उच्चरित किया जाता है। तथा अनानुपूर्वी आदि के ऋषभपद से लेकर अन्तिम वर्द्धमान तक के चौबीस पदों का परस्पर में गुणा करने पर और गुणितराशि में से आदि अन्त रूप भंग द्वय की विवक्षा को कम करने पर जितने भंग बचते हैं उन भंग स्वरूप होती है।

शंका—औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी से इस में क्या भेद है?

उत्तर—औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी में द्रव्यों का केवल विन्यास ही पूर्वानुपूर्वी आदिरूप से विचारित होता है और इस उत्कीर्तनानुपूर्वी में उन्ही द्रव्यों का आनुपूर्वी आदिरूप से नामोच्चारण किया जाता है।

शंका--इस शास्त्र में आवश्यक का प्रकरण होने से इस आनुपूर्वी में भी सामायिक आदि अध्ययनों का ही उत्कीर्तन करना उचित था-

---

પશ્ચાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે–ઉપર જે ક્રમે નામોચ્ચારણ કરાયું છે તેના કરતાં ઊલટા ક્રમે નામોચ્ચારણ કરવાથી પશ્ચાનુપૂર્વી બને છે. તેમાં વર્ધમાનથી લઈને ઋષભ પર્યન્તના પદોનું ઉચ્ચારણ કરાય છે આ રીતે 'વર્ધમાન' પદ પહેલું અને 'ઋષભ' પદ છેલ્લું આવે છે. અનાનુપૂર્વીમાં શરૂઆતના ઋષભ પદથી લઈને છેલ્લા વર્ધમાન પર્યન્તના ૨૪ પદોનો પરસ્પરની સાથે ગુણાકાર કરવામાં આવે છે અને તેથી જે મહારાશિ આવે છે તેમાંથી આદિ અને અન્ત રૂપ બે ભંગોને બાદ કરવામાં આવે છે. આ બે ભંગો બાદ કરવાથી જે ભંગો બાકી રહે છે, તે ભંગોરૂપ અનાનુપૂર્વી હોય છે.

શંકા–ઔપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વી કરતાં આ ઉત્કીર્તનાનુપૂર્વીમાં શો તફાવત છે?

ઉત્તર–ઔપનિધિકી દ્રવ્યાનુપૂર્વીમાં દ્રવ્યોનો કેવળ વિન્યાસ જ પૂર્વાનુપૂર્વી આદિ રૂપે કરવામાં આવે છે, પરન્તુ આ ઉત્કીર્તનાનુપૂર્વીમાં તો એજ દ્રવ્યોનું આનુપૂર્વી આદિ રૂપે ઉચ્ચારણ કરવામાં આવે છે.

શંકા–આ શાસ્ત્રમાં આવશ્યકોનો અધિકાર ચાલતો હોવાથી આ આનુપૂર્વીમાં સામાયિક આદિ અધ્યયનોનું જ ઉત્કીર્તન (ઉચ્ચારણ) કરાયું હોત

कथमपक्रान्तानामृषभादीनामुत्कीर्त्तनं कृतम् ? इति चेदाह–इदं शास्त्रं सर्वव्यापकमित्यादावेवम् उक्तम् । तत्समर्थयितुमेव ऋषभादीनामुपादानं कृतम् । ऋषभादीनां तीर्थकर्तृत्वात्तन्नामोच्चारणे सकलमपि श्रेयः प्राप्नोति जन इति युक्तमेव तेषां भगवतां नामोच्चारणम् । एवं विधस्थलेऽन्यत्राप्येवमेव समाधेयमिति । प्रकृतमुपसंहरन्नाह–' से तं ' इत्यादि । सैषा उत्कीर्त्तनानुपूर्वी ॥सू०१३८।

अथ पूर्वोक्तामेव गणनानुपूर्वीं निरूपयितुमाह–

मूलम्–से किं तं गणणाणुपुव्वी ? गणणाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी अणाणुपुव्वी। से किं तं पुव्वाणुपुव्वी ? पुव्वाणुपुव्वी–एगो, दस, सयं, सहस्सं, दस सहस्साइं,

---

तो फिर अपक्रान्त–प्रकरण बाह्य-ऋषभ आदिकों का उत्कीर्तन सूत्रकारने क्यों किया ?

उत्तर––यह तो पहिले ही कहा जा चुका है कि यह शास्त्र सर्व व्यापक है। सो इसी बात का समर्थन करने के लिये यहां ऋषभादिकों का उत्कीर्तन किया है। ये ऋषभ आदि तीर्थ कर्ता हैं। इनके नाम का उच्चारण करने वाला मनुष्य समस्त श्रेयको पा लेता है। अतः उनके नाम का उच्चारण करना युक्त ही है। दूसरे और भी इसी प्रकार के स्थलों में ऐसा ही समाधान समझना चाहिये। इस प्रकार से यह उत्कीर्तनानुपूर्वी है। सूत्रस्थ बाकी पद सुगम्य हैं अतः उनका भिन्न भिन्न रूप से अर्थ नहीं लिखा है ॥सू० १३८॥

તે ઉચિત ગણાત તેને બદલે અપ્રક્રાન્ત (પ્રકરણના વિષયથી બાહ્ય એવાં) ઋષભ આદિકોનું ઉત્કીર્તન સૂત્રકારે શા કારણે કર્યું છે ?

ઉત્તર–એ વાત તો પહેલાં જ કહેવામાં આવી ચુકી છે કે શાસ્ત્ર સર્વવ્યાપક છે. એજ વાતનું સમર્થન કરવાને માટે અહીં ઋષભાદિકોનું ઉત્કીર્તન (નામોનું ઉચ્ચારણ) કરવામાં આવ્યું છે. આ ઋષભ આદિ તીર્થંકરોએ તીર્થની સ્થાપના કરી હતી. તેમનાં નામનું ઉચ્ચારણ કરનાર મનુષ્યનું દરેક પ્રકારે શ્રેય જ થાય છે. તેથી તેમનાં નામોનું ઉચ્ચારણ કરવું ઉચિત જ ગણી શકાય આ પ્રકરનાં બીજાં સ્થાનોમાં પણ આ પ્રકારનું જ સમાધાન સમજવું.

આ પ્રકારનું ઉત્કીર્તનાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ છે આ સૂત્રમાં આવેલાં બાકીનાં પદોનો અર્થ સુગમ હોવાથી અહીં તેમનું, વધુ સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવ્યું નથી. ॥સૂ૦૧૩૮॥

सयसहस्सं, दस सयसहस्साइं, कोडी, दस कोडीओ, कोडीसयं, दस कोडिसयाइं। से तं पुव्वाणुपुव्वी। से किं तं पच्छाणुपुव्वी? पच्छाणुपुव्वी–दस कोडिसयाइं जाव एगो से तं पच्छाणुपुव्वी। से किं तं अणाणुपुव्वी? अणाणुपुव्वी–एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए दसकोडिसयगच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दुरूवूणो। से तं अणाणुपुव्वी। से तं गणणाणुपुव्वी ॥सू० १३९॥

छाया—अथ का सा गणनानुपूर्वी? गणनानुपूर्वी त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा–पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी अनानुपूर्वी। अथ का सा पूर्वानुपूर्वी? पूर्वानुपूर्वी–एको, दश, शतं, सहस्रं, दश सहस्राणि, शतसहस्रं, दश शतसहस्राणि, कोटिः, दशकोटयः, कोटिशतं, दशकोटिशतानि। सैषा पूर्वानुपूर्वी। अथ का सा पश्चानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी दशकोटिशतानि यावदेकः। सैषा पश्चानुपूर्वी। अथ का सा अनानुपूर्वी? अनानुपूर्वी एतस्यामेव एकादिकायामेकोत्तरिकायां दशकोटिशतगच्छगतायां श्रेण्यामन्योन्याभ्यासो द्विरूपोनः। सैषा अनानुपूर्वी। सैषा गणनानुपूर्वी ॥सू० १३९॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि—

अथ का सा गणनानुपूर्वी? इति प्रश्नः। उत्तरयति–गणनानुपूर्वी पूर्वानुपूर्व्यादिभेदेन त्रिविधा। तत्र–एकादिदशकोटिशतान्तापूर्वानुपूर्वी। दशकोटिशताद्ये-

---

गणनानुपूर्वी का क्या स्वरूप है–इस बात को अब सूत्रकार स्पष्ट करते हैं—"से किं तं गणणाणुपुव्वी?" इत्यादि।

शब्दार्थ— (से किं तं गणणाणुपुव्वी)

प्रश्न–– हे भदन्त? गणनानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

उत्तर––(गणणाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता) गणनानुपूर्वी तीन प्रकार की कही गई है। (तंजहा) जैसे (पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी, अणाणुपुव्वी)

હવે સૂત્રકાર ગણનાનુપૂર્વીના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે–

"से किं तं गणणाणुपुव्वी" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ–(से किं तं गणणाणुपुव्वी?) હે ભગવન્! ગણનાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર–(गणणाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता) ગણનાનુપૂર્વી ત્રણ પ્રકારની કહી છે–(तंजहा) તે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે–(पुव्वाणुपुव्वी, पच्छाणुपुव्वी, अणाणुपुव्वी) (૧) પૂર્વાનુપૂર્વી, (૨) પશ્ચાનુપૂર્વી અને (૩) અનાનુપૂર્વી.

कान्ता पश्चानुपूर्वी। तथा-एतस्यामेव एकादिकायामेकोत्तरिकायां दशकोटिशतगच्छगतायां श्रेण्यामन्योन्याभ्यासो द्विरूपोनः-अनानुपूर्वी, व्याख्या पूर्ववत्।

पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी, अनानुपूर्वी (से किं तं पुव्वाणुपुव्वी) हे भदन्त! पूर्वानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

उत्तर-- (पुव्वाणुपुव्वी) पुर्वानुपूर्वी का स्वरूप इस प्रकार से है- (एगो) एक (दस) दश, (सयं) सौ (सहस्सं) हजार (दससहस्साइं) दश हजार (सयसहस्साइं) लाख (दससयसहस्साइं) दश लाख (कोडी) करोड़ (दस कोडीओ) दस करोड़ (कोडीसयं) अर्ब, (दस कोडिसयाइं) दस अर्ब (से तं पुव्वाणुपुव्वी) यह पूर्व प्रक्रान्त पूर्वानुपूर्वी है। (से किं तं पच्छाणुपुव्वी?) हे भदन्त! गणनानुपूर्वी के भेद रूप पश्चानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

उत्तर-- (पच्छाणुपुव्वी) पश्चानुपूर्वी का स्वरूप इस प्रकार से है। (दस कोडिसयाइं जाव एगो) दस अर्ब से लेकर व्युत्क्रम से एक तक गिनना (से तं पच्छाणुपुव्वी) सो पश्चानुपूर्वी है। (से किं तं अणाणुपुव्वी) हे भदन्त! अनानुपूर्वी का क्या स्वरूप है? (अणाणुपुव्वी) अनानुपूर्वी का स्वरूप इस प्रकार से है--(एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए दस कोडिसयगच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दुरूवूणो) एक से लेकर

પ્રશ્ન-(से किं तं पुव्वाणुपुव्वी?) હે ભગવન્! પૂર્વાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(पुव्वाणुपुव्वी) પૂર્વાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે-(एगो) એક, (दस) દસ, (सयं) સો, (सहस्सं) હજાર, (दससहस्साइं) દસ હજાર, (सयसहस्साइं) લાખ, (दससयसहस्साइं) દસ લાખ, (कोडी) કરોડ, (दस कोडीओ) દસ કરોડ, (कोडीसयं) અબજ, (दस कोडीसयाइं) દસ અબજ, (से तं पुव्वाणुपुव्वी) ઇત્યાદિ રૂપે ગણના કરવી તેનું નામ પૂર્વાનુપૂર્વી છે.

પ્રશ્ન-(से किं तं पच्छाणुपुव्वी?) હે ભગવન્ ગણનાનુપૂર્વીના બીજા ભેદ રૂપ પશ્ચાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(पच्छाणुपुव्वी) પશ્ચાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે-(दसकोडीसयाइं जाव एगो) દસ અબજથી લઈને ઊલટા ક્રમે એક સુધીની ગણતરી કરવી (से तं पच्छाणुपुव्वी) તેનું નામ પશ્ચાનુપૂર્વી છે.

પ્રશ્ન-(से किं तं अणाणुपुव्वी?) હે ભગવન્! ગણનાનુપૂર્વીના ત્રીજા ભેદ રૂપ અનાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(अणाणुपुव्वी) અનાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે-(एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए दसकोडिसयगच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दूरूवूणो)

अत्रोक्ताः संख्या उपलक्षणमात्रम्, अत इतोऽन्या अपि संभाव्यमानाः संख्या अवगन्तव्याः। उत्कीर्त्तनानुपूर्व्या नाममात्रोत्कीर्त्तनं कृतम्, अत्र गणनानुपूर्व्यां तु-एकादि संख्यानामभिधानं कृतमिति बोध्यम्। प्रकृतमुपसंहरन्नाह-'से तं' इत्यादि। सैषा गणनानुपूर्वी ॥सू० १३९॥

अथ प्रागुद्दिष्टामेव संस्थानानुपूर्वीमाह-

मूलम्-से किं तं संठाणाणुपुव्वी? संठाणाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा-पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी अणाणुपुव्वी। से किं तं पुव्वाणुपुव्वी? पुव्वाणुपुव्वी-समचउरंसे निग्गोहमंडले सादी खुज्जे वामणे हुंडे। से तं पुव्वाणुपुव्वी। से किं तं पच्छाणुपुव्वी? पच्छाणुपुव्वी-हुंडे जाव समचउरंसे। से तं पच्छाणुपुव्वी। से किं तं अणाणुपुव्वी? अणाणुपुव्वी एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए छ गच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दुरूवूणो। से तं अणाणुपुव्वी। सा एसा संठाणाणुपुव्वी ॥सू० १४०॥

छाया-अथ का सा संस्थानानुपूर्वी? संस्थानानुपूर्वी त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी अनानुपूर्वी। अथ का सा पूर्वानुपूर्वी? पूर्वानुपूर्वी-समचतुरस्रं न्यग्रोधमण्डलं सादि कुब्जं वामनं हुण्डम्। सैषा पूर्वानुपूर्वी। अथ का सा पश्चानुपूर्वी? पश्चानुपूर्वी-हुण्डं यावत् समचतुरस्रम्। सैषा पश्चानुपूर्वी। अथ का

दश कोटिशतक की एक एक की वृद्धिवाली श्रेणी में स्थापित संख्या का परस्पर में गुणा करने पर और उत्पन्न उस महाराशि में से भंग त्रय की विवक्षा को कम करने पर अवशिष्टभंगात्मक (से तं अणाणुपुव्वी) अनानुपूर्वी है (से तं गणणाणुपुव्वी) इस प्रकार यह गणनानुपूर्वी का स्वरूप है ॥सू० १३९॥

એકથી લઇને દસ અબજ પર્યન્તની એક એકની વૃદ્ધિવાળી શ્રેણીમાં સ્થાપિત સંખ્યાનો પરસ્પરની સાથે ગુણાકાર (સંયોજન) કરીને જે ભંગોની મહારાશિ ઉત્પન્ન થાય છે તેમાંથી આદિ અને અન્તના બે ભંગોને બાદ કરવાથી જે ભંગો બાકી રહે છે, તે ભંગોને (से तं अणाणुपुव्वी) અનાનુપૂર્વી રૂપ કહેવામાં આવે છે, (से तं गणणाणुपुव्वी) આ પ્રકારનું ગણનાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ છે. ॥સૂ૦ ૧૩૯॥

सा अनानुपूर्वी? अनानुपूर्वी-एतस्यामेव एकादिकायामेकोत्तरिकायां षड्गच्छतायां श्रेण्यामन्योन्याभ्यासो द्विरूपोनः। सैषा अनानुपूर्वी। सैषा संस्थानानुपूर्वी॥सू.१४०॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि—

अथ का सा संस्थानानुपूर्वी? इति प्रश्नः। उत्तरयति-संस्थानानुपूर्वी संस्थानानि=आकृतिविशेषाः, तेषामानुपूर्वी=परिपाटी संस्थानानुपूर्वी आकृतिविशेषरूपाणि। संस्थानानि जीवाजीवभेदेन यद्यपि द्विविधानि तथापि 'समचउरंसे' इत्याद्यभिधानेन जीवसम्बन्धीन्येव तानि बोध्यानि। इयं संस्थानानुपूर्व्यपि पूर्वानुपूर्व्यादिभेदेन त्रिविधा प्रोक्ता तत्र-पूर्वानुपूर्वी-समचतुरस्रम्-समं=नाभेरुपर्यधश्च सकलपुरुषलक्षणोपेतावयवतया चतुरस्रम्, अन्यूनाधिकाश्चतस्रः अस्रयः-कोणा यस्य तत्

अब सूत्रकार पूर्वोक्त संस्थानानुपूर्वी का स्वरूप कथन करते हैं--

"से किं तं संठाणाणुपुव्वी" इत्यादि।

शब्दार्थ-- (से किं तं संठाणाणुपुव्वी?) हे भदंत! पूर्वप्रक्रान्त संस्थानानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

उत्तर-- (संठाणाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता) संस्थानानुपूर्वी तीन प्रकार की कही गई है (तं जहा) वे प्रकार ये हैं -- (पुव्वाणुपुव्वी, पच्छाणुपुव्वी, अणाणु पुव्वी,) पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी और अनानुपूर्वी से किं तं पुव्वाणुपुव्वी) पूर्वानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

उत्तर—(पुव्वाणुपुव्वी) पूर्वानुपूर्वी का स्वरूप इस प्रकार से है-(समचउरंसे, निग्गोहमंडले, सादी खुज्जे वामणे हुंडे) समचतुरस्र संस्थान, न्यग्रोधमंडल संस्थान, सादिसंस्थान, कुब्ज संस्थान, वामन संस्थान,

હવે સૂત્રકાર પૂર્વોક્ત સંસ્થાનાનુપૂર્વીનું નિરૂપણ કરે છે-

"से किं तं संठाणाणुपुव्वी?" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(से किं तं संठाणाणुपुव्वी?) હે ભગવન્! પૂર્વોક્ત સંસ્થાનાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(संठाणाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता) સંસ્થાનાનુપૂર્વી ત્રણ પ્રકારની કહી છે. (तं जहा) તે ત્રણ પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે-(पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी अणाणुपुव्वी) (૧) પૂર્વાનુપૂર્વી (૨) પશ્ચાનુપૂર્વી અને (૩) અનાનુપૂર્વી

પ્રશ્ન-(से किं तं पुव्वाणुपुव्वी?) હે ભગવન્! પૂર્વાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(पुव्वाणुपुव्वी) પૂર્વાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે-(समचउरंसे, निग्गोहमंडले, सादी, खुज्जे, वामणे, हुंडे) સમચતુરસ્ર સંસ્થાન, ન્યગ્રોધમંડલ સંસ્થાન, સાદિ સંસ્થાન, કુબ્જ સંસ્થાન, વામન સંસ્થાન અને હુંડ સંસ્થાન,

चतुरस्रम्। अनयोः कर्मधारयः। तुल्यारोहपरिणाहः सम्पूर्णलक्षणोपेताङ्गोपाङ्गावयवः स्वाङ्गुलाष्टाधिकशतोच्छ्रायः सर्वसंस्थानेषु मुख्यः पञ्चेन्द्रियजीवशरीराकारविशेष

और हुंड संस्थान। आकृति विशेष का नाम संस्थान है। इन संस्थानों की जो परिपाटी है उसका नाम आनुपूर्वी है। यद्यपि ये संस्थान जीव और अजीव के संबन्धी होने से दो प्रकार के हैं तो भी " इस प्रकार के कथन से यहां जीवसंबन्धी ही ग्रहण किये गये हैं। जिस संस्थान में नाभि से ऊपर के और नीचे के समस्त अवयव सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार अपने २ प्रमाण से युक्त हों, हीनाधिक न हों उसका नाम समचतुस्र है," समं चतुस्रम् यस्य तत् समचतुरस्रम् " यह इसकी व्युत्पत्ति है। इसका तात्पर्य यह है कि इस संस्थान में जितने भी शरीर के नाभि से ऊपर नीचे के अंग उपांग रूप अवयव होते हैं वे सब समस्त लक्षणों से सहित होते हैं। न्यूनाधिक भाव इनमें नहीं होता है शरीर के चारों कोने इसमें बराबर होते हैं। इस संस्थान में आरोह और परिणाह-उतार चढाव-एकसा होता है। सामुद्रिक शास्त्र में सुहावने शरीर के जितने भी लक्षण कहे गये हैं वे सब लक्षण इस संस्थान वाले शरीर के अंग और

આ ક્રમે સંસ્થાનોનો વિન્યાસ કરવો તેને સંસ્થાનાનુપૂર્વીના પ્રથમ ભેદ રૂપ પૂર્વાનુપૂર્વી કહે છે.

સંસ્થાન એટલે આકાર આ આકારોની જે પરિપાટી તેનું નામ આનુપૂર્વી છે જો કે આ સંસ્થાન જીવ અને અજીવ વિષયક હોવાને કારણે મુખ્ય બે પ્રકારનું હોય છે, પરન્તુ " समचउरंसे " ઇત્યાદિ પદો દ્વારા અહીં જીવસંબંધી સંસ્થાનોને ગ્રહણ કરવામાં આવેલ છે,

સમચતુરસ્ર સંસ્થાન જે સંસ્થાનમાં (આકાર વિશેષમાં) નાભિની નીચેના અને નાભિની ઉપરનાં સમસ્ત અવયવો સામુદ્રિક શાસ્ત્રમાં બતાવ્યા પ્રમાણેના પોતપોતાનાં પ્રમાણવાળાં હોય છે-હીન અથવા અધિક પ્રમાણવાળાં હોતાં નથી, તે સંસ્થાનને સમચતુરસ્ર સંસ્થાન કહે છે. તેની વ્યુત્પત્તિ આ પ્રમાણે થાય છે-

" समं चतुस्रम् यस्य तत् समचतुरस्रम् " આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે-આ સંસ્થાનમાં નાભિની ઉપરનાં અને નીચેનાં સમસ્ત અંગ ઉપાંગો સમસ્ત લક્ષણોથી યુક્ત હોય છે. કોઈ પણ અંગ ઉપાંગ ન્યૂન અથવા અધિકપ્રમાણવાળું હોતું નથી. પણ સપ્રમાણ હોય છે તેમાં શરીરના ચારે ખૂણા બરાબર હોય છે આ સંસ્થાનમાં આરોહ અને અવરોહ-ચઢાવ અને ઉતાર-એક સરખો હોય છે. સામુદ્રિક શાસ્ત્રમાં સુંદર શરીરના જેટલાં લક્ષણો કહ્યાં છે, તે બધાં લક્ષણો આ શરીરના અંગઉપાંગોમાં જોવામાં આવે છે. આ સંસ્થા-

इत्यर्थः। न्यग्रोधमण्डलम्=न्यग्रोधो वटवृक्षस्तद्वन्मण्डलं यस्य तत्तथा, यथा–न्यग्रोध उपरि सम्पूर्णावयवोऽधस्तनभागे पुनर्न तथा, तथेदमपि नाभेरुपरि विस्तरबहुलं शरीरलक्षणोक्तप्रमाणभागम्, अधस्तु हीनाधिकप्रमाणं विज्ञेयम्। सादि–आदिरिह उत्सेधाख्यो नाभेरधस्तनो देहभागो गृह्यते। आदिना=नाभेरधस्तनकायलक्षणेन सह वर्तते इति सादिः। यद्यपि सर्वशरीरमादिना सह वर्तते तथापि सादित्वविशेषणान्यथाऽनुपपत्त्या विशिष्ट एव प्रमाणलक्षणोपपन्न आदिरिह गृह्यते, तत

उपांगों में रहा करतें हैं। अपने अंगुल से इस संस्थान वाला शरीर १०८ अंगुल की ऊँचाईवाला होता है। यह संस्थान समस्त संस्थानों में मुख्य होता है। और यह पंचेन्द्रिय जीव के शरीरका एक विशेष आकाररूप होता है। न्यग्रोधमण्डल–न्यग्रोध नाम वटवृक्ष का है। इसके समान जिसका मंडल हो-अर्थात् जिस प्रकार न्यग्रोध–वटवृक्ष–ऊपर में संपूर्ण अवयवोंवाला होता है और नीचे वैसा नहीं होता, उसी प्रकार यह संस्थान भी नाभि से ऊपर में बहुत विस्तारवाला होता है और नाभि से नीचे हीनाधिक प्रमाणवाला होता है ऐसे संस्थान का नाम न्यग्रोध मंडल है। सादि–नाभि से नीचे का जो उत्सेध नाम का देह भाग है वह यहां आदि से ग्रहण किया है। नाभि से नीचे का भाग कायरूप आदि के साथ जो रहता है उसका नाम सादि है। यद्यपि समस्त शरीर आदि सहित होते हैं तो भी संस्थान का जो सादि विशेषण

નવાળા મનુષ્યની ઊંચાઈ તેના ૧૦૮ આંગળપ્રમાણ હોય છે. આ સંસ્થાન બધાં સંસ્થાનોમાં મુખ્ય (૪) ગણાય છે. અને આ સંસ્થાન પંચેન્દ્રિય જીવના શરીરના એક આકારવિશેષ રૂપ હોય છે.

ન્યગ્રોધમંડલસંસ્થાન–વડના વૃક્ષને ન્યગ્રોધ કહે છે. તે વડના જેવું જે સંસ્થાન (આકાર) હોય છે તે સંસ્થાનનું નામ ન્યગ્રોધમંડલસંસ્થાન છે. જેમ વડનો ઉપરનો ભાગ સંપૂર્ણ અવયવોવાળો હોય છે, પણ નીચે એવો હોતો નથી, એજ પ્રમાણે આ સંસ્થાન નાભિથી ઉપરના ભાગમાં ઘણા વિસ્તારવાળું હોય છે, પરન્તુ નાભિની નીચેનો ભાગમાં ન્યૂનાધિક પ્રમાણવાળું હોય છે. માટે આ પ્રકારના સંસ્થાનનું નામ ન્યગ્રોધમંડલ સંસ્થાન છે.

સાદિસંસ્થાન–નાભિની નીચેનો જે ઉત્સેધ નામનો શરીરનો ભાગ છે, તેને અહીં "આદિ" પદ વડે ગ્રહણ કરવામાં આવેલ છે. નાભિથી નીચેનો જે ભાગ કાયરૂપ આદિની સાથે રહે છે તેનું નામ 'સાદિ' છે. જો કે સમસ્ત શરીરો આદિ સહિત જ હોય છે, છતાં પણ અહીં જે સાદિ વિશેષણ લગા-

उक्तम्-उत्सेधबहुलमिति। अत्रेदमुक्तं भवति-यत्स्थानं नाभेरधः प्रमाणोपपन्नमुपरि च हीनं तत्सादीति बोध्यम्। कुब्जं-यत्र संस्थाने शिरो ग्रीवं हस्तपादादिकं च यथोक्तप्रमाणलक्षणोपेतम्, उदरादिमण्डलं च यथोक्तप्रमाणरहितं तत् कुब्जमित्युच्यते। वामनम्-यत्र तु हृदयोदरपृष्ठं सर्वलक्षणोपेतं शेषं तु हीनलक्षणं तद् वामनम्-कुब्जविपरीतमित्यर्थः। हुण्डम्=यत्र संस्थाने सर्वेऽप्यवयवाः प्रायो लक्षणविरुद्धा भवन्ति, तत्संस्थानं हुण्डमित्युच्यते। चतुरस्रसंस्थानस्य समस्तलक्ष-

---

रखा है वह अन्यथानुपपत्ति के बल से विशिष्ट प्रमाणलक्षणोपेत आदि से ही संबंधित होता है। इसीलिये उत्सेधबहुल ऐसा कहा है। इसका तात्पर्य यह है कि नाभि से नीचे का भाग जिस संस्थान में बहुत विस्तारवाला होता है और नाभि से ऊपर का भाग हीन होता है वह संस्थान सादि है। कुब्ज जिस संस्थान में शिर, ग्रीवा, हाथ, पग आदि यथोक्त प्रमाणवाले हों और उदर आदि का मंडल यथोक्त प्रमाण से विहीन हो वह कुब्ज संस्थान है। वामन-जिस संस्थान में हृदय, उदर और पीठ ये समस्त लक्षणों से युक्त हों और बाकी के अवयव हीन लक्षणवाले हों उसका नाम वामन संस्थान है। यह संस्थान कुब्ज से विपरीत होता है। हुण्ड संस्थान-जिस संस्थान में समस्त अवयव प्रायः लक्षणहीन होते हैं उसका नाम हुण्ड संस्थान है। समचतुस्र संस्थान समस्त लक्षणों से

ડવામાં આવ્યું છે, તે અન્યથાનુપપત્તિના બળથી વિશિષ્ટ પ્રમાણ લક્ષણોપેત આદિ વડે જ સંબંધિત હોય છે. તેથી જ તેને ઉત્સેધ બહુલ કહ્યું છે. આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે-જે સંસ્થાનમાં નાભિની નીચેનો ભાગ ઘણા વિસ્તારવાળો હોય, પરન્તુ નાભિની ઉપરનો ભાગ હીનપ્રમાણવાળો હોય છે, તે સંસ્થાનને સાદિ સંસ્થાન કહે છે.

કુબ્જસંસ્થાન-જે સંસ્થાનમાં શિર, ગ્રીવા, હાથ, પગ આદિ અંગો શાસ્ત્રોક્ત પ્રમાણવાળાં હોય, પરન્તુ ઉદર આદિ અંગો યથોક્ત પ્રમાણથી વિહીન હોય છે, તે સંસ્થાનને કુબ્જસંસ્થાન કહે છે.

વામનસંસ્થાન-જે સંસ્થાનમાં હૃદય, પેટ, અને પીઠ, આ અંગો સમસ્ત લક્ષણોથી યુક્ત હોય છે, પરન્તુ બાકીનાં અવયવો હીન લક્ષણવાળાં હોય છે, તે સંસ્થાનને વામનસંસ્થાન કહે છે. આ સંસ્થાન કુબ્જસંસ્થાન કરતાં વિપરીત લક્ષણોવાળું હોય છે.

હુંડસંસ્થાન-જે સંસ્થાનમાં શરીરનાં બધા અવયવો યથોક્ત લક્ષણોવાળાં હોવાને બદલે વિપરીત લક્ષણોવાળાં હોય છે, તે સંસ્થાનને હુંડસંસ્થાન કહે છે.

बोपेतत्वात् मुख्यत्वम्। ततः शेषाणां यथाक्रमं हीनत्वाद् द्वितीयादित्वं बोध्यम्। तेषा पूर्वानुपूर्वी बोध्या। पश्चानुपूर्वी तु, हुण्डादि चतुरस्रान्ता बोध्या। तथा–चतुरस्रादि हुण्डान्तानां पदानामन्योन्याभ्यासो द्विरूपोनः। आद्यन्तरूपद्वयभङ्गकविवक्षामपहाय ये भङ्गास्ते–अनानुपूर्वीति। ननु यदीत्थं संस्थानानुपूर्वी प्रोच्यते, तर्हि संहननवर्णरसस्पर्शाद्यानुपूर्व्योऽपि वक्तव्याः स्युः, तथा सति आनुपूर्व्याः प्राग् द्वासप्ततितमसूत्रोक्तदशसंख्यकत्वमेव परिहीयेत, एवं च आनुपूर्व्याः दशविधत्व

युक्त होता है इसलिये उस में मुख्यता है। शेष प्रमाणोपेत-लक्षणों से यथाक्रम हीन हैं इसलिये उन में अमुख्यता द्वितीयता आदि है। यही पूर्वप्रकान्त पूर्वानुपूर्वी है। हुण्ड संस्थान से लेकर समचतुरस्र संस्थान तक पश्चानुपूर्वी होती है। तथा समचतुरस्र से लेकर हुण्ड संस्थान तक के पदों का परस्पर में गुणाकरने पर और उस गुणित राशि में आदि अंत के भंगद्वय की विवक्षा कम करने पर जो भंग होते हैं उन भंग स्वरूप अनानुपूर्वी होती है। शंका–यदि इस प्रकार से संस्थानानुपूर्वी आप कहते हैं तो संहनन, वर्ण, रस, स्पर्श आदि कों की भी आनुपूर्वियां आपको कहनी चाहिये। इस प्रकार से आनुपूर्वियां कहने पर जो ७२ वें सूत्र में " आनुपूर्वियां दश होती हैं " ऐसा कहा है सो उस संख्या में ही आती है।

સમચતુરસ્ર સંસ્થાન સમસ્ત લક્ષણોથી યુક્ત હોય છે. તેથી તેમાં પ્રધાનતા માનીને તેનું કથન પહેલાં કરવામાં આવ્યું છે. બાકીનાં સંસ્થાનો શાસ્ત્રોક્ત લક્ષણો કરતાં ક્રમશઃ ઓછાં ઓછાં લક્ષણો ધરાવે છે તેથી તે સંસ્થાનોને ગૌણ ગણીને તેમનું કથન સમચતુરસ્રસંસ્થાનનું કથન કર્યા બાદ કરવામાં આવ્યું છે. આ પ્રકારનો કથનનો જે ક્રમ છે તેને જ અહીં પૂર્વાનુપૂર્વી રૂપ ગણવામાં આવેલ છે. હુંડ સંસ્થાનથી લઇને ઊલટા ક્રમે સમચતુરસ્ર પર્યન્તના સંસ્થાનોનો ક્રમ રાખવાથી પશ્ચાનુપૂર્વી રૂપ બીજી સંસ્થાનાનુપૂર્વી બને છે

અનાનુપૂર્વી–સમચતુરસ્ર સંસ્થાનથી લઇને હુંડસંસ્થાન પર્યન્તની એક એકની વૃદ્ધિવાળી શ્રેણિમાં સ્થાપિત સંસ્થાનોનો પરસ્પરની સાથે ગુણાકાર (સંયોજન) કરવાથી જે ગુણિતરાશિ આવે તેમાંથી આદિ અને અન્તના બે ભંગોને બાદ કરવાથી જે ભંગસમૂહ બાકી રહે છે, તે ભંગસમૂહ રૂપ અનાનુપૂર્વી હોય છે.

શંકા–જો આ પ્રકારે આપ સંસ્થાનાનુપૂર્વીનું કથન કરો છો, તો સંહનન, વર્ણ, રસ, સ્પર્શ આદિકોની આનુપૂર્વીઓનું આપે કથન કરવું જોઇએ આ પ્રકારે આનુપૂર્વીઓ કહેવામાં આવે તો ૭૨માં સૂત્રમાં " આનુપૂર્વીઓ દસ હોય છે, " આ પ્રકારનું જે કથન કર્યું છે તે કેવી રીતે સંમત માની શકાય ?

कथनमसंगतम् ? इति चेदाह पूर्वोक्तमानुपूर्व्या दशविधत्वं नो संख्याया नियामकम् अपि तु उपलक्षणमात्रम्। अतो दशविधानुपूर्व्यतिरिक्ता अन्या अपि संभाव्यमाना आनुपूर्व्यः सुधिया स्वधिया विभावनीयाः ॥सू० १४०॥

अथ सामाचार्यानुपूर्वीमाह-

मूलम्–से किं तं सामायारी आणुपुव्वी ? सामायारी आणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी अणाणुपुव्वी। से किं तं पुव्वाणुपुव्वी ? पुव्वाणुपुव्वी–इच्छागारो, मिच्छागारो, तहक्कारो, आवस्सिया, निसीहिया, आपुच्छणा, पडिपुच्छणा, छंदणा, निमंतणा, उवसंपया। से तं पुव्वाणुपुव्वी। से किं तं पच्छाणुपुव्वी ? पच्छाणुपुव्वी–उवसंपया जाव इच्छागारो। से तं पच्छाणुपुव्वी। से किं तं अणाणुपुव्वी ? अणाणुपुव्वी–एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए दसगच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दुरूवूणो। से तं अणाणुपुव्वी। से तं सामायारी आणुपुव्वी। सू. १४१।

छाया–अथ का सा सामाचार्यानुपूर्वी ? सामाचार्यानुपूर्वी त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा–पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी अनानुपूर्वी। अथ का सा पूर्वानुपूर्वी–इच्छाकारः, मिथ्याकारः, तथाकारः, आवश्यकी, नैषेधिकी, आपच्छना, प्रतिपच्छना, छन्दना,

---

उत्तर — पहिले जो आनुपूर्वी में दश प्रकारता प्रकट की है वह संख्यात की नियामकता रूप से प्रकट की है, किन्तु वह तो उपलक्षण मात्र से कही है। इसलिये दश प्रकार की आनुपूर्वियों से भी अतिरिक्त और भी आनुपूर्वियां संभवित होती हैं ऐसा इससे भाव निकलता है। इसलिये ऐसी आनुपूर्वियों को बुद्धि शाली जन अपनी बुद्धि से उद्भावित करलें। सूत्र " १४० "

ઉત્તર–પહેલાં આનુપૂર્વીમાં જે દસ વિધતા પ્રકટ કરવામાં આવી છે તે સંખ્યાતની નિયામકતા રૂપે પ્રકટ કરવામાં આવી નથી, પણ તે તો ઉપલક્ષણ માત્રની અપેક્ષાએ પ્રકટ કરવામાં આવેલ છે, તેથી દસ પ્રકારની આનુપૂર્વીઓ સિવાયની બીજી આનુપૂર્વીઓ પણ સંભવિત હોય છે, એવો તે કથનનો ભાવાર્થ સમજવો તેથી બુદ્ધિશાળી માણસોએ એવી આનુપૂર્વીઓને પોતાની બુદ્ધિથી જ ઉદ્ભાવિત કરી લેવી જોઈએ. ॥સૂ૦૧૪૦॥

निमन्त्रणा, उपसंपत्। सैषा पूर्वानुपूर्वी। अथ का सा पश्चानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी-उपसंपद् यावदिच्छाकारः। सैषा पूर्वानुपूर्वी। अथ का सा अनानुपूर्वी ? अनानुपूर्वी-एतस्यामेव एकादिकायामेकोत्तरिकायां दशगच्छगतायां श्रेण्यामन्योन्याभ्यासो द्विरूपोनः। सैषा अनानुपूर्वी। सैषा सामाचार्यानुपूर्वी ॥सू० १४१॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि—

अथ का सा सामाचार्यानुपूर्वी ? इति शिष्यप्रश्नः। सामाचार्यानुपूर्वी-समाचरणं समाचारः शिष्टजनाचरितः क्रियाकलापः, स एव सामाचारी, स्वार्थेष्यञ्, पित्वान्ङीप्, तद्रूपा आनुपूर्वी सामाचार्यानुपूर्वी। सा हि पूर्वानुपूर्व्यादि

अब सूत्रकार सामाचारी आनुपूर्वी का कथन करते हैं --

"से किं तं सामायारी आणुपुव्वी" इत्यादि।

शब्दार्थ--(से किं तं सामायारी आणुपुव्वी) हे भदन्त ! पूर्वप्रक्रान्त सामाचारी आनुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

उत्तर-(सामायारी आणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता) सामाचारी आनुपूर्वी का तात्पर्य है शिष्यजनों द्वारा आचरित क्रियाकलाप रूप समाचार। यह समाचार ही स्वार्थ में ष्यञ् प्रत्यय और ङीप् होने से सामाचारी ऐसा बन जाता है। इस सामाचारी रूप जो आनुपूर्वी है। वह सामाचारी आनुपूर्वी कही जाती है। यह आनुपूर्वी तीन प्रकार की कही गई है। (तं जहा) जैसे (पुव्वाणुपुव्वी, पच्छाणुपुव्वी, अणाणुपुव्वी) पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी और अनानुपूर्वी। (से किं तं पुव्वाणुपुव्वी) हे भदन्त ! पूर्वानुपूर्वी सामाचारी क्या है?

હવે સૂત્રકાર સામાચારી આનુપૂર્વીનું નિરૂપણ કરે છે-

"से किं तं सामायारी आणुपुव्वी" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(से किं तं सामायारी आणुपुव्वी ?) હે ભગવન્ ! પૂર્વોક્ત સામાચારી આનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર-(सामायारी आणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता, तंजहा) શિષ્યજનો દ્વારા આચરિત ક્રિયાકલાપ રૂપ સમાચારને સામાચારી આનુપૂર્વી કહે છે. તે સમાચાર જ સામાચારી રૂપ હોવાથી તેનું નામ સામાચારી પડયું છે. આ સામાચારી રૂપ જે આનુપૂર્વી છે તેને સામાચારી આનુપૂર્વી કહે છે. તેના નીચે પ્રમાણે ત્રણ પ્રકાર કહ્યા છે-(पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी, अणाणुपुव्वी) (૧) પૂર્વાનુપૂર્વી, (૨) પશ્ચાનુપૂર્વી અને (૩) અનાનુપૂર્વી.

પ્રશ્ન-(से किं तं पुव्वाणुपुव्वी ?) હે ભગવન્ ! પૂર્વાનુપૂર્વી સામાચારીનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

भेदेन त्रिविधा प्रज्ञप्ता। तत्र पूर्वानुपूर्वी इच्छाकारः, मिथ्याकारः, तथाकारः, तत्र-इच्छाकारः-इच्छाया बलाभियोगमन्तरेण करणम्॥१॥मिथ्याकारः=मिथ्या= यदेतन्मयाऽऽचरितं तदसदिति मनसि करणम्। कस्मिंश्चिदकृत्ये कर्मणि कृते सति भव्येनैवं विचिन्त्यते -यदिदं मया कृतं तद् भगवताऽनुक्तत्वात् मिथ्याभूतम्, अतो मयेदं दुष्कृतं कृतमित्येवं यदसत्क्रियातो निवृत्तिः स मिथ्याकार इति भावः॥२॥

उत्तर — (पुव्वाणुपुव्वी) पूर्वानुपूर्वी सामाचारी इस प्रकार से है-(इच्छागारो मिच्छागारो, तहक्कारो आवस्सिया निसीहिया, आपुच्छणा' पडिपुच्छणा छंदणा' निमंतणा, उवसंपया) इच्छाकार, मिथ्याकार, तथाकार, आवश्यकी, नैषेधिकी, आप्रच्छना, प्रतिप्रच्छना, छन्दना, निमंत्रणा, और उपसंपत्। किसी की जबर्दस्ती विना व्रतादिक आचरण करने की इच्छा करना इसका नाम इच्छाकार है। मेरे प्रमाद आदि से अकृत्य का सेवन हो गया है वह मेरा निष्फल हो-असत् हो ऐसा मन में विचार करना इसका नाम मिथ्याकार है। कोई अकृत्य कर्म जब बन जाता है। तब भव्यपुरुष मन में ऐसा चिन्तवन करता है कि जो यह मैंने किया है वह भगवान् द्वारा अनुक्त होने से मिथ्याभूत है। इसलिये यह दुष्कृत्य है और यह मैंने किया है-अब आगे नहीं करूंगा-इस प्रकार

ઉત્તર-(पुव्वाणुपुव्वी) પૂર્વાનુપૂર્વી સામાચારીનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે-(इच्छागारो, मिच्छागारो, तहक्कारो, आवस्सिया, निसीहिया, आपुच्छणा, पडिपुच्छणा, छंदणा, निमंतणा, उवसंपया) ઇચ્છાકાર, મિથ્યાકાર, તથાકાર, આવશ્યકી, નૈષેધિકી, આપ્રચ્છના, પ્રતિપ્રચ્છના, છન્દના, નિમંત્રણા અને ઉપસંપત્, આ ક્રમે પદોનો વિન્યાસ (સ્થાપના) કરવો તેનું નામ પૂર્વાનુપૂર્વી સામાચારી છે. હવે ઇચ્છાકાર આદિ પદોનો અર્થ સ્પષ્ટ કરવામાં આવે છે-કોઇની બળજબરી વિના-અહારના કોઇ પણ દબાણ વિના-વ્રતાદિક આચરવાની ઇચ્છા કરવી તેનું નામ ઇચ્છાકાર છે.

"મારા દ્વારા પ્રમાદ આદિને કારણે આ અકૃત્યનું જે સેવન થઈ ગયું છે, તે મારું અકૃત્ય નિષ્ફલ (મિથ્યા) હો," આ પ્રકારનો મનમાં વિચાર કરવો તેનું નામ મિથ્યાકાર છે. જ્યારે કોઇ અકૃત્યનું સેવન થઇ જાય છે ત્યારે ભવ્યપુરુષ મનમાં એવું ચિન્તવન કરે છે કે "આ મેં જે કર્યું છે તે ભગવાન દ્વારા અનુક્ત હોવાથી મિથ્યાભૂત છે. તેથી તે દુષ્કૃત્ય રૂપ જ છે. એવું દુષ્કૃત્ય મારા વડે સેવાઈ ગયું છે, પરન્તુ હવેથી હું તેનું સેવન નહીં કરું," આ પ્રકારનો વિચાર કરીને અસત્ ક્રિયાઓથી દૂર રહેવું-એની ક્રિયાઓ કરતાં પાછાં હઠવું, તેનું નામ મિથ્યાકાર છે.

तथाकारश्च-सूत्रव्याख्यानादौ प्रस्तुते गुरुभिः कस्मिंश्चिद् वचस्युदीरिते सति यथा भवन्तः प्रतिपादयन्ति तथैवेत" दित्येवं करणम्-वितर्कमकृत्वैव गुर्वाज्ञाऽभ्युपगम इत्यर्थः ॥३॥ आवश्यकी-ज्ञानाद्यर्थमुपाश्रयादवश्यं बहिर्गमने समुपस्थिते 'अवश्यमिदं कर्तव्यमतोऽहं गच्छामि' इत्येवं या गुरुं प्रति निवेदना सा आवश्यकीति तात्पर्यम् ॥२॥ नैषेधिकी-निषेधे भवा-नैषेधिकी=उपाश्रयाद् बहिः कर्तव्यव्यापारं परिसमाप्य पुनस्तत्रैव प्रविशतः साधोः शेषसाधूनामुत्त्रासादि-दोषपरिजिहीर्षया बहिर्व्यापारनिषेधेन उपाश्रयप्रवेशसूचनम् ॥५॥ आमच्छना="भदन्त ! करोमीद"

विचार कर अशुभ क्रियाओं से पीछे हटना उनसे दूर रहना इसका नाम मिथ्याकार है। सूत्र व्याख्यान आदि जब हो रहा हो तब उस समय गुरुजन जो कोई भी वचन उच्चरित करें तब ऐसा कहना कि जिस प्रकार आप कहते हैं यह वैसा ही है। इसका नाम तथाकार है। तात्पर्य यह है कि वितर्क किये बिना ही गुरुदेव की आज्ञा का स्वीकार करना तथाकार है। आवश्यक कर्तव्य करने के लिये उपाश्रय से बहिर्गमन यदि अवश्य कर्तव्य रूप में उपस्थित हो तब " अवश्यं कर्तव्यमिदम् अतो गच्छामि" ऐसा ख्याल करके गुरु से बाहर जाने की आज्ञा प्राप्त करने के लिये निवेदन करना इसका नाम आवश्यकी है। उपाश्रय से बाहिर कर्तव्य कर्म को समाप्त करके जब साधु उपाश्रय में प्रवेश करे, तब शेष साधु जनों को मेरे द्वारा कोई उत्त्रास आदि न हो इस प्रकार के ख्याल से उपाश्रय में अपने प्रवेश की सूचना देना इसका नाम नैषेधिकी है।

સૂત્રનું વ્યાખ્યાન આદિ જ્યારે ચાલી રહ્યું હોય, ત્યારે ગુરુ જે વચનો કહે તેને સ્વીકારી લેવાં-" હે ગુરુદેવ! આપ જે કહો છો તે ખરું જ છે- આપની વાત યથાર્થ છે," આ પ્રકારનાં વચનોનું ઉચ્ચારણ કરવું તેનું નામ તથાકાર છે. એટલે કે વિતર્ક કર્યા વિના જ ગુરુની આજ્ઞાનો સ્વીકાર કરવો તેનું નામ તથાકાર છે.

આવશ્યકી-આવશ્યક કર્તવ્ય કરવાને માટે ઉપાશ્રયમાંથી બહાર જવાનું જો અવશ્ય કર્તવ્ય રૂપે ઉપસ્થિત થાય, તો " अवश्यं कर्तव्यमिदम् अतो गच्छामि" "આ કાર્ય અવશ્ય કરવા યોગ્ય છે," આ પ્રકારનો વિચાર કરીને બહાર જવાની આજ્ઞા પ્રાપ્ત કરવા માટે ગુરુની આગળ નિવેદન કરવું તેનું નામ આવશ્યકી છે. ઉપાશ્રયની બહારના કાર્યને પતાવીને જ્યારે સાધુ ઉપાશ્રયમાં પ્રવેશ કરે, ત્યારે તે પોતાના ઉપાશ્રયમાં પાછાં ફરવાની સૂચના આપે છે. આ પ્રકારે ઉપાશ્રયમાં પુનઃપ્રવેશની જે સૂચના અપાય છે તેને નૈષેધિકી કહે છે. આમ કરવાનું કારણ એ છે કે તેના આગમનની પ્રતીક્ષા કરતા બાકીના

मित्येवं गुरुं प्रति प्रच्छनम् ॥६॥ प्रतिप्रच्छना=किंचित्कर्त्तव्यमुद्दिश्य शिष्येण पृष्टो गुरुः तत्कार्यं कर्तुं दत्ताज्ञोऽपि पुनः कार्यारंभसमये कथयति-सा प्रतिप्रच्छना। अथवा-ग्रामान्तरगमनाय गुरुणादिष्टः शिष्यो गमनकाले यत्पुनर्गुरुं प्रतिपृच्छति सा प्रतिप्रच्छना 'एवं प्रत्येककार्येऽपि बोध्यम्' ॥७॥ छन्दना=साधुः स्वानीताशनाद्युपभोगविषये गुर्वाज्ञया 'परिभुङ्क्ष्वेदं कुरु मयि कृपाम्' इत्येवं-यथारात्निकमन्यसाधून् प्रति आग्रहं करोति, सा छन्दना ॥८॥ निमन्त्रणा=' इमं-पदार्थमुप-

---

हे भदन्त ! मैं यह काम करता हूँ इस प्रकार से गुरु महाराज से पूछना इसका नाम आप्रच्छना है। किसी कर्तव्य कार्य को उद्देश्य करके जब शिष्य गुरुजन से उस कार्य को करने की आज्ञा प्राप्त करने के लिये पूछता है, और कार्य की आज्ञा होने पर भी कार्य करने के समय में गुरु से पुनः पूछना इसका नाम प्रतिप्रच्छना है। अथवा दूसरे ग्राम में जाने के लिये गुरुद्वारा आदिष्ट हुआ शिष्य जब जाने लगे तो उसका कर्तव्य है कि वह जाते समय पुनः गुरु महाराज से पूछे-इस प्रकार के पूछने का नाम भी प्रतिप्रच्छना है। यह प्रतिप्रच्छना प्रत्येक कार्य में भी हो सकती है। साधु अपने भाग का आहार आदि के लिये यथा रात्निक अन्य साधुओं से गुरु की आज्ञा प्राप्त कर जो ऐसा आग्रह

સાધુઓને તેના આગમનની ખબર પડે છે અને તેના દ્વારા કોઇને ઉત્ત્રાસ ઉત્પન્ન થવાની સંભાવના રહેતી નથી.

આપ્રચ્છના-"હે ભગવન્! હું આ કામ કરું છું" આ પ્રકારે ગુરુ મહાજને પૂછવું તેનું નામ આપ્રચ્છના છે.

પ્રતિપ્રચ્છના-કોઈ કામ કરવા માટે શિષ્ય ગુરુ પાસે આજ્ઞા માગે, અને તે કાર્યની ગુરુએ આજ્ઞા આપ્યા છતાં પણ કાર્ય કરતી વખતે આ પ્રમાણે ગુરુને ફરીથી પૂછવું તેનું નામ પ્રતિપ્રચ્છના છે

અથવા-બીજે ગામ જવાની ગુરુ દ્વારા આજ્ઞા મળી હોય. છતાં પણ બીજે ગામ ગમન કરતી વખતે શિષ્યે ફરીથી ગુરુની આજ્ઞા લેવી જોઇએ આ પ્રકારે પૂર્વે આજ્ઞા પ્રાપ્ત થઇ ગયા બાદ ગમન કરતી વખતે ગુરુને ફરી જે પૂછવામાં આવે છે તેનું નામ પ્રતિપ્રચ્છના છે પ્રત્યેક કાર્યમાં પણ આ પ્રતિપ્રચ્છના સંભવી શકે છે.

છંદના-પોતાના ભાગના આહારાદિને ભોજનાદિ રૂપે ગ્રહણ કરવાની અન્ય સાંભોગિક સાધુઓને વિનંતિ કરવી તેનું નામ છંદના છે. ગુરુની આજ્ઞા લઇને તે સાધુ યથારાત્નિક અન્ય સાધુઓને આ પ્રમાણે આગ્રહ કરે

लभ्याहं तुभ्यं दास्यामीति मे भावो वर्तते ' इत्येवं पदार्थप्राप्तेः पूर्वमेव यत्साधूनामामन्त्रणं सा निमन्त्रणा। उक्तं च —

"पुव्वग्गहिएण छंदण निमंतणा होई अग्गहिएणं"

छाया—पूर्वगृहीतेन छन्दना निमन्त्रणा भवत्यगृहीतेनेति ॥९॥

तथा-उपसम्पत्=''त्वदीयोऽहं'' मित्येवं रूपेण श्रुताद्यर्थमन्यदीयसत्ताऽभ्युपगमः ॥१०॥ इह धर्मस्य परानुपतापमूलत्वात् इच्छाकारस्य आज्ञाबलाभियोगलक्षणपरोपतापवर्जकत्वात् प्राधान्येन प्रथममुपन्यासः। परानुपतापकेनापि च कथंचित्स्खलने

करता है कि मुझ पर कृपा करके इसे आप ग्रहण करिये–अपने उपयोग में लाइये उसका नाम छंदना है। पदार्थ प्राप्ति के पहिले ही जो अन्य साधुजनों से ऐसा कहना कि इस पदार्थ को लाकर मैं तुम्हें दूँगा इसका नाम निमंत्रणा है। उक्तं च करके (पुव्वग्गहिएण) इत्यादि गाथा द्वारा यही बात कही गई है। श्रुतादिके अर्थ को सीखने के लिये मैं आपका ही हूँ इस प्रकार से अन्य साधु आदि की आधीनता स्वीकार करना इसका नाम उपसंपत् है। धर्म परानुपतापमूलक होता है–अर्थात् धर्म वही है कि जिस से–किसी भी प्राणी को कष्ट न हो। इच्छाकार इसी प्रकार का धर्म है। क्योंकि इसमें जिनव्रतादिकों को आचरण करनेकी इच्छा की जाती है उसमें पर की आज्ञा और बलाभियोग काम नहीं करता है। क्योंकि इन से दूसरे प्राणियों को संताप

છે-"કૃપા કરીને આપ આ આહારાદિને ગ્રહણ કરો અને તેનો ઉપયોગ કરો." આ પ્રકારની સાધુ સામાચારીનું નામ છંદના છે.

નિમંત્રણા–પદાર્થની પ્રાપ્તિ થયાં પહેલાં કોઇ પણ સાધુને કોઈ પણ અન્ય સાધુ દ્વારા એવું જે કહેવામાં આવે છે કે અમુક પદાર્થ વહોરી લાવીને હું આપને આપીશ, આ પ્રમાણે કોઇ પણ વસ્તુ લાવી આપવાનો ભાવ છે તેમ કહેવું તેનું નામ નિમંત્રણા છે. "પુવ્વગ્ગહિએણ" ઇત્યાદિ સૂત્રપાઠ દ્વારા આ વાત જ પ્રકટ કરવામાં આવી છે.

ઉપસંપત્–શ્રુતાદિનો અર્થ શીખવાને માટે "હું આપનો જ છું," આ પ્રકારનાં વચનો દ્વારા અન્ય સાધુની આધીનતાનો સ્વીકાર કરવો તેનું નામ ઉપસંપત છે.

ધર્મ પરાનુપતાપમૂલક હોય છે. એટલે કે ધર્મ તેને જ કહી શકાય કે જેના દ્વારા કોઇ પણ પ્રાણીને કષ્ટ ન થાય ઇચ્છાકાર એજ પ્રકારનો ધર્મ છે, કારણ કે તેમાં જે વ્રતાદિકોનું આચરણ કરવાની ઇચ્છા કરાય છે, તેમાં અન્યની આજ્ઞા અથવા બળજબરી ચાલી શકતી નથી, કારણ કે એવી આજ્ઞા

मिथ्यादुष्कृतं दातव्यमिति तदनन्तरं मिथ्याकारस्योपन्यासः। एतौ च गुरुवचनप्रतिपत्तावेव ज्ञातुं शक्यौ, गुरुवचनं च तथाकारकरणेनैव सम्यक् प्रतिपन्नं भवतीति तदनन्तरं तथाकारस्योपन्यासः। गुरुवचनं स्वीकृत्यापि शिष्य उपाश्रयाद् बहिर्निर्गमनकाले गुरुं पृष्ट्वैव निर्गच्छेत्, अतस्तथाकारानन्तरं गुरुपृच्छारूपाया आवश्यक्याः कथनम्। बहिर्निर्गतः शिष्यो नैषेधिकीपूर्वकमेवोपाश्रये प्रविशेदिति आवश्यक्या अनन्तरं नैषेधिक्याः कथनम्। उपाश्रये प्रविष्टः साधुर्गुरुमापृच्छ्यैव सर्व-

होता है या हो सकता है। अतः व्रतादिकों की चाहना में आत्मा की निज इच्छा ही काम करती हैं। इसलिये इच्छाकार में प्रधानता होने से उसका यहां सर्व प्रथम उपन्यास किया है। दूसरों को अनुपतापक होने वाले भी गुरुजन द्वारा कथंचित् व्रतादिक से स्खलित होने पर शिष्यादिजनों के लिये मिथ्यादुष्कृत दिया जाता है इसलिये इच्छाकार के बाद में मिथ्या दुष्कृत का पाठ रखा है। इच्छाकार और मिथ्यादुष्कृत ये दोनों गुरुवचनों पर विश्वास रखने पर या उनकी स्वीकृति करने पर ही ज्ञातुं शक्य हैं इसलिये गुरुमहाराज के वचनों का स्वीकार किया जाना तथाकार से ही जाना जाता है इसलिये मिथ्याकारके बाद तथाकार का पाठ रखा है। गुरुवचन को स्वीकार करके भी शिष्य का कर्तव्य है कि जब वह उपाश्रय से बाहर जावे तो गुरु से पूछकर ही जावे इस बात को स्पष्ट करने के लिये तथाकार के बाद आवश्यकी

અને બળજબરી કરવામાં આવે તો અન્ય જીવને સંતાપ થાય છે કે થઈ શકે છે. તેથી વ્રતાદિકોની ચાહનામાં આત્માની પોતાની જ ઈચ્છા કાર્યસાધક બને છે. આ પ્રકારે ઈચ્છાકારમાં પ્રધાનતા હોવાને કારણે અહીં સૌથી પહેલાં ઉચ્છાકારનો ઉપન્યાસ કરવામાં આવ્યો છે. જ્યારે કોઈ સાધુ કોઈ અકૃત્યનું સેવન કરે છે અથવા વ્રતાદિકોનો ભંગ કરે છે ત્યારે અન્ય જીવોને કષ્ટ નહીં આપનારા એવાં ગુરુજનો દ્વારા મિથ્યાદુષ્કૃત દેવામાં આવે છે, તેથી ઇચ્છાકારનો ઉપન્યાસ કર્યા બાદ મિથ્યાકારનો ઉપન્યાસ કરવામાં આવ્યો છે. ઇચ્છાકાર અને મિથ્યાદુષ્કૃત, આ બન્નેનો સદ્ભાવ ત્યારે જ હોઈ શકે છે કે જ્યારે ગુરુનાં વચનો પર શિષ્યને વિશ્વાસ હોય છે ગુરુના વચનોનો શિષ્ય સ્વીકાર કરે છે, એ વાત તથાકાર વડે જ જાણી શકાય છે. તે કારણે મિથ્યાકાર પછી તથાકારનો પાઠ રાખવામાં આવ્યો છે.

ગુરુના વચનનો તથાકાર દ્વારા સ્વીકાર કરનાર શિષ્યે ઉપાશ્રયમાંથી કોઈ આવશ્યક કાર્ય નિમિત્તે બહાર જવા માટે ગુરુની આજ્ઞા લેવી જોઈએ, એજ વાતને સ્પષ્ટ કરવાને માટે તથાકાર પછી આવશ્યકીનો પાઠ રાખવામાં આવ્યો

मनुतिष्ठेदिति नैषेधिक्या अनन्तरमापृच्छनायाः कथनम्। किंचित्कार्यं कर्तुमध्यवसितः प्राप्ताज्ञोऽपि शिष्यः कार्यकरणसमये गुरुं पुनः पृच्छेदिति गुरोरनुमतिं प्राप्तुकामः कारणमदर्शनपूर्वकं पुनःपृच्छेदिति आपृच्छनानन्तरं प्रतिपृच्छनायाः कथनम्। प्रतिपृष्टेन गुरुणाऽनुज्ञातः शिष्यो स्वसंविभागप्राप्ताशनाद्याहारपरिभोगार्थं पर्यायज्येष्ठक्रमेण साधूनानन्त्रयेदिति प्रतिपृच्छनानन्तरं छन्दनाया उपन्यासः।

का पाठ रखा है। बाहर गया हुआ शिष्य नैषेधिकीपूर्वक ही उपाश्रय में प्रवेश करे इस विषय को बताने के लिये आवश्यकी के बाद नैषेधिकी का पाठ रखा है। उपाश्रय में प्रविष्ट हुआ शिष्य जो कुछ भी करे वह गुरुमहाराज की आज्ञा लेकर ही करे इस विषय को कहने के लिये नैषेधिकी के बाद आपृच्छना का पाठ रखा है। किसी कर्तव्य कार्य को करने के लिये शिष्य गुरु महाराज से पूछे परन्तु वे यदि उस कार्य को करने की आज्ञा देवें शिष्य तदनन्तर पुनः आवश्यक कार्य को करने के लिये गुरु महाराज से आवेदन करे और उस कार्य को करने की उनसे आज्ञा प्राप्त करने के लिये पूछे यह संबंध बताने के लिये आपृच्छना के बाद प्रतिपृच्छना का पाठ रखा है। गुरु महाराज से आज्ञा प्राप्त कर अशनादिक को लाया हुआ शिष्य उसके परिभोग के लिये बादर [illegible] साधुओं को आमंत्रित करे इस बात को

છે. ઉપાશ્રયની બહાર ગયેલા સાધુએ નૈષેધિકીપૂર્વક જ ઉપાશ્રયમાં પ્રવેશ કરવો જોઈએ, એ વાતને પ્રકટ કરવા માટે આવશ્યકીના પાઠ પછી નૈષેધિકીનો પાઠ રખવામાં આવ્યો છે. ઉપાશ્રયમાં પ્રવિષ્ટ થયેલો શિષ્ય જે કામ કરે તે કામ તેણે ગુરુમહારાજની આજ્ઞા લઈને જ કરવું જોઈએ, એ વાત પ્રકટ કરવાને માટે નૈષેધિકીના પાઠ પછી આપૃચ્છનાનો પાઠ રાખવામાં આવ્યો છે. કોઈ પણ કાર્ય કરવા માટે શિષ્ય ગુરુની આજ્ઞા માગે અને ગુરુ તે કાર્ય કરવાની આજ્ઞા આપે, તે પછી થોડીવાર થોભીને તેણે ફરીથી કાર્યનો આરંભ કરતી વખતે ગુરુની ફરીથી આજ્ઞા માગવી તે બતાવવા માટે પ્રતિપૃચ્છના (ફરી પૂછવા)નો પ્રસંગ ઉપસ્થિત થાય છે, તે કારણે સૂત્રકારે આપૃચ્છના પછી પ્રતિપૃચ્છનાનો પાઠ મૂકયો છે. ગુરુમહારાજની આજ્ઞા લઈને જે આહારાદિ સાધુ લાવ્યો હોય તેના ઉપભોગને માટે અન્ય સાધુઓને માનપૂર્વક બોલાવવા જોઈએ, એ વાતને પ્રકટ કરવા માટે પ્રતિપૃચ્છના પછી છન્દનાનો પાઠ રાખવામાં આવ્યો છે.

छन्दना तु गृहीत एवाशनादौ संभवेत्, अगृहीते तु निमन्त्रणैव, अतच्छन्दनाया अनन्तरं निमन्त्रणाया उपन्यासः। १ गुरूपसत्तिमन्तरेण=गुरुसामीप्यं विना इच्छाकारादिनिमन्त्रणान्ता सर्वाऽपि सामाचारी गुरूपसत्तिमन्तरेण=गुरुसामीप्यं विना न ज्ञायते इति सर्वान्ते उपसम्पद उपन्यासः १। इति पूर्वानुपूर्वीत्वे हेतुर्बोध्यः। उपसंहरन्नाह–सैषा पूर्वानुपूर्वीति। पश्चानुपूर्वी तु उपसम्पदादीच्छाकारान्ता बोध्या।

कहने के लिये प्रतिप्रच्छना के बाद छन्दना का पाठ रखा है। गृहीत अशनादिक में ही छन्दना होती है परन्तु जो अगृहीत अशनादिक हैं उनमें तो निमंत्रणा ही होती है। इसलिये छन्दना के बाद निमंत्रणा का पाठ रखा है। इच्छाकार से लगाकर निमंत्रणा तक की जितनी भी सामाचारी हैं वे सब गुरु महाराज की निकटता के विना नहीं जानी जा सकती है इस बात को कहने के लिये अन्त में उपसंपत् का उपन्यास किया है। इस प्रकार इस सामाचारी के पूर्वानुपूर्वीत्व में यह सब हेतु जानना चाहिये।

(से तं पुव्वाणुपुव्वी) इस प्रकार यह पूर्वानुपूर्वी है। (से किं तं पच्छाणुपुव्वी) हे भदन्त! पश्चानुपूर्वी सामाचारी क्या है?

उत्तर—(उवसंपया जाव इच्छागारो) उपसंपदा से इच्छाकार पर्यन्त (पच्छाणुपुव्वी) पश्चानुपूर्वी है। (से किं तं अणाणुपुव्वी?) हे भदन्त!

ગૃહીત અશનાદિના વિષયમાં જ છન્દના સંભવી શકે છે, પરન્તુ અગૃહીત અશનાદિકના વિષયમાં નિમંત્રણા સંભવી શકે છે, તે કારણે છન્દનાના પાઠ પછી નિમંત્રણાનો પાઠ રાખવામાં આવ્યો છે ઇચ્છાકારથી લઈને નિમંત્રણા પર્યન્તની જેટલી સામાચારી છે, તેમને જાણવાને માટે ગુરુની નિકટતાની જરૂર રહે છે, એ વાતને પ્રકટ કરવા માટે સૌથી છેલ્લો ઉપસંપત્નો ઉપન્યાસ કરવામાં આવ્યો છે. સામાચારીમાં ઇચ્છાકાર આદિ ક્રમે પદોની જે સ્થાપના કરવામાં આવે છે તેનું નામ પૂર્વાનુપૂર્વી છે. આ પદોને આ પ્રકારનો ક્રમ આપવાનું કારણ ઉપર પ્રકટ કરવામાં આવ્યું છે. (से तं पुव्वाणुपुव्वी) આ પ્રકારનું પૂર્વાનુપૂર્વી સામાચારીનું સ્વરૂપ છે.

પ્રશ્ન–(से किं तं पच्छाणुपुव्वी?) હે ભગવન્! પશ્ચાનુપૂર્વી સામાચારીનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર–(उवसंपया जाव इच्छागारो) ઉપસંપદાથી લઈને ઇચ્છાકાર પર્યન્તના ઊલટા ક્રમમાં પદોનો ઉપન્યાસ (સ્થાપના) કરવો (पच्छाणुपुव्वी) તેનું નામ પશ્ચાનુપૂર્વી છે.

तथा-इच्छाकाराद्युपसम्पदन्तानां पदानामन्योऽन्याभ्यासो द्विरूपोनः-आद्यन्तपद-द्वयविवक्षामपहाय ये भङ्गास्ते-अनानुपूर्वी बोध्याः। पक्कतमुपसंहरन्नाह-सैषा सामाचर्यानुपूर्वीति ॥सू० १४१॥

अथ भावानुपूर्वीमाह—

मूलम्—से किं तं भावाणुपुव्वी? भावाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी अणाणुपुव्वी। से किं तं पुव्वाणुपुव्वी? पुव्वाणुपुव्वी—उदए १, उवसमिए २, खाइए ३, खओवसमिए ४, पारिणामिए ५, संनिवाइए ६,। से तं पुव्वाणुपुव्वी। से किं तं पच्छाणुपुव्वी? पच्छाणुपुव्वी संनिवाइए जाव उदइए। से तं पच्छाणुपुव्वी। से किं तं अणाणुपुव्वी? अणा-

---

अनानुपूर्वी क्या है? (अणाणुपुव्वी) अनानुपूर्वी सामाचारी इस प्रकार से है (एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए दस गच्छगयाए सेढीए अण्णमन्नब्भासो दुरूवूणो) इच्छाकार से लेकर उपसंपदा तक के दश पदों का एक एक अधिक संख्या कर के परस्पर में गुणा करना चाहिये और इस प्रकार से जो राशि उत्पन्न होवे उसमें से आदि अन्त के भंग द्वय की विवक्षा को कम कर देना चाहिये। अन्त में जितने भंग बचते हैं उन भंगात्मक यह अनानुपूर्वी सामाचारी होती है। (से तं सामायारी आणुपुव्वी) इस प्रकार यह सामाचारी आनुपूर्वी है ॥सू० १४१॥

પ્રશ્ન-(से किं त अणाणुपुव्वी) હે ભગવન્! અનાનુપૂર્વી સામાચારીનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(अणाणुपुव्वी) અનાનુપૂર્વી સામાચારીનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે-(एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए दसगच्छगयाए सेढीए अण्णमन्नब्भासोदुरूवूणो) ઇચ્છાકારથી લઈને ઉપસંપદા પર્યન્તના દસ પદોનો એક એક અધિક સંખ્યા લઈને પરસ્પરમાં ગુણાકાર કરવો જોઇએ આ પ્રકારે જે રાશિ પ્રાપ્ત થાય તેમાંથી આદિ અને અન્તના બે ભંગોની વિવક્ષા બાદ કરી નાખવી જોઇએ. આ બે ભંગો બાદ જતાં જેટલા ભંગો બાકી રહે છે તેટલા ભંગોરૂપ આ અનાનુપૂર્વી સામાચારી હોય છે. (से तं सामायारी आणुपुव्वी) સામાચારી આનુપૂર્વીનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ છે. ॥સૂ૦૧૪૧॥

णुपुव्वी-एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए छ गच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दुरूवूणो। से तं अणाणुपुव्वी। से तं भावाणुपुव्वी। से तं आणुपुव्वी। आणुपुव्वीति पयं समत्तं ॥सू.१४२॥

छाया—अथ का सा भावानुपूर्वी ? भावानुपूर्वी त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी अनानुपूर्वी। अथ का सा पूर्वानुपूर्वी ? पूर्वानुपूर्वी-औदयिकः१, औपशमिकः२, क्षायिकः३, क्षायोपशमिकः४, पारिणामिकः५, सान्निपातिकः६। सैषा पूर्वानुपूर्वी। अथ का सा पश्चानुपूर्वी ? पश्चानुपूर्वी-सान्निपातिको यावदौदयिकः। सैषा पश्चानुपूर्वी। अथ का सा अनानुपूर्वी ? अनानुपूर्वी-एतस्यामेव एकादिकायाम् एकोत्तरिकायां षड्गच्छगतायां श्रेण्यामन्योऽन्याभ्यासो द्विरूपोनः। सैषा अनानुपूर्वी। सैषा भावानुपूर्वी। सैषा आनुपूर्वी। आनुपूर्वीति पदं समाप्तम् ॥सू० १४२॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि—

अथ का सा भावानुपूर्वी ? इति शिष्यप्रश्नः। उत्तरयति-भावानुपूर्वी-भावाः=भाव्यन्ते विन्त्यंते पदार्था यैस्ते भावाः-अन्तःकरणपरिणतिविशेषाः। भूयते तेन तेन रूपेणाऽऽत्मना यैस्ते भावाः जीवस्य परिणामविशेषा औदयिकादयः, तेषामानुपूर्वी=भावानुपूर्वी। सा पूर्वानुपूर्व्यादिभेदैस्त्रिविधा प्रज्ञप्ता। तत्र-पूर्वानु-

---

अब सूत्रकार भावानुपूर्वी का कथन करते हैं—

'से किं तं भावाणुपुव्वी ?' इत्यादि

शब्दार्थ—(से किं तं भावाणुपुव्वी ?) हे भदन्त ! पूर्वप्रक्रान्त भावानुपूर्वी क्या है ?

उत्तर—(भावाणुपुव्वी) भावानुपूर्वी (तिविहा) तीन प्रकार की (पण्णत्ता) कही गई है। (तं जहा) उसके वे तीन प्रकार ये हैं-(पुव्वाणुपुव्वी) १ पूर्वानुपूर्वी (पच्छाणुपुव्वी) २ पश्चानुपूर्वी और (अणाणुपुव्वी)

હવે સૂત્રકાર ભાવાનુપૂર્વીનું નિરૂપણ કરે છે—

"से किं तं भावाणुपुव्वी" इत्यादि—

શબ્દાર્થ-(से किं तं भावाणुपुव्वी?) હે ભગવન્! પૂર્વોક્ત ભાવાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે.

ઉત્તર-(भावाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता-तंजहा) ભાવાનુપૂર્વીના નીચે પ્રમાણે ત્રણ પ્રકાર કહ્યા છે-(पुव्वाणुपुव्वी) (૧) પૂર્વાનુપૂર્વી, (पच्छाणुपुव्वी (૨) પશ્ચાનુપૂર્વી અને (अणाणुपुव्वी) (૩) અનાનુપૂર્વી.

पूर्वा–औदयिकः औपशमिकः क्षायिकः क्षायोपशमिकः पारिणामिकः सान्निपातिकश्चेति षट्। औदयिकादिस्वरूपस्य पुरस्ताद् वक्ष्यमाणत्वेनात्र तेषां स्वरूपनिरूपणं न क्रियते। अत्र शास्त्रे नारकादिगतिरौदयिको भाव इति वक्ष्यते।

३ अनानुपूर्वी। जिनके द्वारा पदार्थों का विचार किया जाता है उनका नाम भाव है। और ये भाव अन्तःकरण की परिणति विशेषरूप हैं। अथवा आत्मा उस २ रूप से होता है वे भाव हैं। ऐसे वे भाव जीव के परिणाम विशेषरूप हैं। और ये परिणाम विशेष औदयिक आदि रूप होते हैं। इन परिणाम रूप भावों की आनुपूर्वी का नाम भावानुपूर्वी है। (से किं तं पुव्वाणुपुव्वी?) हे भदन्त! भावानुपूर्वी का भेद जो पूर्वानुपूर्वी है उसका क्या स्वरूप है अर्थात् वह क्या है?

उत्तर–(पुव्वाणुपुव्वी) वह पूर्वानुपूर्वी इस प्रकार से है–(उदइए) औदयिक (उवसमिए) औपशमिक (खाइए) क्षायिक (खओवसमिए) क्षायोपशमिक (पारिणामिए) पारिणामिक (संनिवाइए) और सान्निपातिक इन औदयिक आदिकों का स्वरूप आगे कहा जायगा, इसलिये यहां उसका स्वरूप निरूपण नहीं किया है। इस शास्त्र में नारकादि रूप चारों गतियां औदयिक भाव रूप से कही जावेंगी इसलिये औद-

જેમના દ્વારા પદાર્થોનો વિચાર કરવામાં આવે છે, તેમનું નામ ભાવ છે. આ ભાવો અન્તઃકરણની પરિણતિવિશેષ રૂપ (પરિણામ રૂપ) હોય છે. અથવા આત્મા જે જે રૂપે હોય છે તે તે રૂપનું નામ ભાવ છે. એવાં તે ભાવો જીવના પરિણામવિશેષ રૂપ હોય છે. અને તે પરિણામવિશેષ ઔદયિક આદિ રૂપ હોય છે. તે પરિણામો રૂપ ભાવોની આનુપૂર્વીનું નામ ભાવાનુપૂર્વી છે.

પ્રશ્ન–(से किं तं पुव्वाणुपुव्वी?) હે ભગવન્! ભાવાનુપૂર્વીનો જે પૂર્વાનુપૂર્વી નામનો પહેલો ભેદ છે, તેનું સ્વરૂપ કેવું હોય છે?

ઉત્તર–(पुव्वाणुपुव्वी) તે પૂર્વાનુપૂર્વી આ પ્રકારની છે–(उदइए) ઔદયિક, (उवसमिए) ઔપશમિક, (खाइए) ક્ષાયિક, (खओवसमिए) ક્ષાયોપશમિક, (पारिणामिए) પરિણામિક, (संनिवाइए) અને સાન્નિપાતિક, આ ક્રમે પદોનો ઉપન્યાસ કરવો તેનું નામ પૂર્વાનુપૂર્વી ભાવાનુપૂર્વી છે.

આ ઔદયિક આદિ પદોનો અર્થ સૂત્રકાર દ્વારા આગળ પ્રકટ કરવામાં આવશે, તેથી અહીં તેમના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કર્યું નથી. આ શાસ્ત્રમાં નરકાદિ રૂપ ચારે ગતિઓનું ઔદયિક ભાવ રૂપે પ્રતિપાદન કરવામાં આવશે તેથી ઔદયિક ભાવ રૂપ નરકાદિ ગતિઓનો સદ્ભાવ હોય, તો જ બાકીના

औदायिकभावरूपनारकादिगतौ सत्यामेव औपशमिकादयः शेषभावा यथासम्भवं प्रादुर्भवन्तीति शेषभावाधारत्वेन औदयिकस्य प्राधान्यम्। अत एव प्रथमं तदुपन्यासः। ततः शेषाणां पञ्चानामपि भावानां मध्ये औपशमिकस्य स्तोकविषयत्वात् स्तोकतया प्रतिपादयिष्यते इति सूचीकटाहन्यायेन औदायिकानन्तरमवशिष्टेषु पञ्चसु मध्ये पूर्वमौपशमिकस्योपन्यासः। औपशमिकापेक्षयाऽधिकविषयत्वात्क्षायिकस्य तदनन्तरमुपन्यासः। ततश्च विषयाणां तारतम्यमाश्रित्य क्रमेण क्षायोपशमिकस्य पारिणामिकस्य चोपन्यासः। सान्निपातिकभावो हि पूर्वोक्तभावानां द्विकादिसंयोगेन समुत्पद्यते इति सर्वान्ते सान्निपातिकभावोपन्यासः। इयं भावानां

यिक भावरूप नरकादि गतियों के होने पर ही शेष औपशमिक आदि भाव यथासंभव उत्पन्न होते हैं। इसलिये शेष भावों का आधारभूत होने से औदयिक भाव में प्रधानता है। इसी कारण उसका सर्वप्रथम सूत्रकारने विन्यास किया है। इस के बाद अवशिष्ट पांचों भावों के बीच में औपशमिक भाव स्तोक विषयवाला है इसलिये वह स्वयं स्तोक है इस प्रकार से आगे प्रतिपादित किया जावेगा, अतः सूचीकटाहन्याय से औदयिक के अनन्तर अवशिष्ट पांच भावों के बीचमें से पहिले औपशमिक का पाठ किया गया है। औपशमिक की अपेक्षा अधिक विषयवाला होने से क्षायिक का पाठ औपशमिक के बाद किया गया है। इस के अनन्तर विषयों की तारतमता का आश्रय करके क्रम से क्षायोपशमिक और पारिणामिक का पाठ किया गया है। इन पूर्वोक्त भावों के द्विकादि संयोग से सान्निपातिक भाव उत्पन्न होता है इसलिये

ઔપશમિક આદિ ભાવો ઉત્પન્ન થઈ શકે છે આ પ્રકારે બાકીના ભાવોના આધાર રૂપ હોવાને લીધે ઔદયિક ભાવમાં પ્રધાનતા છે. તેથી જ સૂત્રકારે તેનો વિન્યાસ સૌથી પહેલાં કર્યો છે–એટલે કે તેને સૌથી પહેલું સ્થાન આપ્યું છે. બાકીના પાંચ ભાવોમાંનો ઔપશમિક ભાવ સ્તોક (અલ્પ) વિષયવાળો હોવાથી તે પોતે જ સ્તોક છે. (આ વાતનું સૂત્રકાર આગળ પ્રતિપાદન કરશે) તેથી સૂચીકટાહ ન્યાયે ઔદયિક ભાવ પછી ઔપશમિક ભાવને મૂકવામાં આવ્યો છે. ઔપશમિક ભાવ કરતાં અધિક વિષયવાળો હોવાને કારણે ક્ષાયિકભાવને ઔપશમિક ભાવ પછી મૂકવામાં આવેલ છે. વિષયોની અધિકતરતા અને અધિકતમતાને કારણે ક્ષાયિક ભાવ પછી અનુક્રમે ક્ષાયોપશમિક અને પારિણામિક ભાવોને મૂકવામાં આવ્યા છે. આ પૂર્વોક્ત ભાવોના દ્વિકસંયોગ આદિથી સાન્નિપાતિક ભાવ ઉત્પન્ન થાય છે, તેથી સૌથી છેલ્લો

पूर्वानुपूर्वी। सैषा पूर्वानुपूर्वीति। पश्चानुपूर्वी तु सान्निपातिकाद्यौदयिकान्ता बोध्या। तथा-औदयिकादि सान्निपातिकान्तानां षण्णां पदानामन्योन्याभ्यासो द्विरूपोनः-आद्यन्तपदद्वयविवक्षामपहाय ये भङ्गास्तदात्मिकाऽनानुपूर्वी बोध्या।

सब के अन्त में सान्निपातिक भाव का उपन्यास किया गया है। (से तं पु०) इस प्रकार यह भावों की पूर्वानुपूर्वी है। (से किं तं पच्छाणुपुव्वी) हे भदन्त! पश्चानुपूर्वी क्या है? (पच्छाणुपुव्वी) पश्चानुपूर्वी इस प्रकार से है-(संनिवाइए जाव उदइए) सान्निपातिक भाव से लेकर औदयिक भाव तक पश्चानुपूर्वी है। (से तं पच्छाणुपुव्वी) यही पूर्वप्रक्रान्त भावों की पश्चानुपूर्वी है। (से किं तं अणाणुपुव्वी?) हे भदन्त! भावों की अनानुपूर्वी क्या है? (एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए छ गच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दुरूवूणो) औदयिकादि सान्निपातिकान्त छह पदों को परस्पर में गुणा करना और गुणित राशिरूप भागों में से आदि अन्त के पदद्वय की विवक्षा को कम करना इस प्रकार जो भंग बचते हैं उन भंग स्वरूप यह भावो की (अणाणु पु०) अनानुपूर्वी है। (से तं अणाणुपुव्वी) यही पूर्वप्रक्रान्त अनानुपूर्वी है। (से तं भावाणुपुव्वी) इस प्रकार यह भावानुपूर्वी है। (से तं आणुपुव्वी)

સાન્નિપાતિક ભાવનો ઉપન્યાસ કરવામાં આવ્યો છે. (से तं पुव्वाणुपुव्वी) આ પ્રકારની આ ભાવોની પૂર્વાનુપૂર્વી છે.

પ્રશ્ન-(से किं तं पच्छाणुपुव्वी?) હે ભગવન્! ભાવાનુપૂર્વીની પશ્ચાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(पच्छाणुपुव्वी) પશ્ચાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે-(संनिवाइए जाव उदइए) પૂર્વાનુપૂર્વી કરતાં ઊલટા ક્રમના-એટલે કે સાન્નિપાતિક ભાવથી લઈને ઔદયિકભાવ પર્યન્તના-ભાવે ને પશ્ચાનુપૂર્વી કહે છે.

પ્રશ્ન-(से किं तं अणाणुपुव्वी?) હે ભગવન્! ભાવોની અનાનુપૂર્વીનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए छ गच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दुरूवूणो) ઔદયિકથી લઈને સાન્નિપાતિક પર્યન્તના છ પદોનો પરસ્પરની સાથે ગુણાકાર કરવો, અને તેને લીધે જે રાશિરૂપ ભાંગાઓ આવે તેમાંથી આદિ અને અન્તના બે ભાંગાઓ બાદ કરવાથી જે ભાંગાઓ બાકી રહે છે, તે ભાંગાઓ રૂપ (अणाणुपुव्वी) અનાનુપૂર્વી સમજવી.

(से तं भावाणुपुव्वी) આ પ્રકારની ભાવાનુપૂર્વી હોય છે (से तं आणुपुव्वी) આ પ્રકારે નામાનુપૂર્વીથી લઈને ભાવાનુપૂર્વી પર્યન્તની દસે આનુપૂર્વીઓના સ્વરૂપનું નિરૂપણ અહીં પૂરું થાય છે, એ વાત સૂચિત કરવા માટે

प्रकृतमुपसंहरन्नाह-सैषा भावानुपूर्वीति। नामानुपूर्व्यादि भावानुपूर्व्यन्ता दशाऽप्यानुपूर्व्यः समुद्दिष्टा इति सूचयितुमाह-सैषा आनुपूर्वीति। इत्थमुपक्रमस्य आनुपूर्वीनामकः प्रथमो भेदः समुद्दिष्ट इति सूचयितुमाह-आनुपूर्वीति पदं समाप्तमिति ॥सू० १४२॥

सम्प्रत्युपक्रमस्य नामाभिधेयं द्वितीयं भेदं व्याख्यातुमाह—

मूलम्-से किं तं णामे? णामे दसविहे पण्णत्ते, तं जहा-एगणामे, दुणामे तिणामे, चउणामे, पंचणामे, छणामे, सत्तणामे, अट्ठणामे, नवणामे, दसणामे ॥सू०१४३॥

छाया-अथ किं तन्नाम? नाम दशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-एकनाम, द्विनाम, त्रिनाम, चतुर्नाम, पञ्चनाम, षण्णाम, सप्तनाम, अष्टनाम, नवनाम, दशनाम ॥सू० १४३॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि—

शिष्यःपृच्छति—अथ किं तन्नाम? इति। उत्तरयति-नाम-जीवगतज्ञानादिपर्यायाजीवगतरूपादिपर्यायानुसारेण प्रतिवस्तुभेदेन नमति=तदभिधायकत्वेन वर्त्तते

यहां तक नामानुपूर्वी से लेकर भावानुपूर्वी तक जो दश आनुपूर्वियां हैं वे सब प्रतिपादित हो चुकी इसकी सूचना के लिये सूत्रकारने "से तं आणुपुव्वी" यह कहा है। (आणुपुव्वीतिपयं समत्तं) इस प्रकार यहां तक उपक्रम का यह आनुपूर्वी नाम का प्रथम भेद कथित हो चुका अर्थात् समाप्त हुआ ॥सू० १४२॥

अब सूत्रकार उपक्रम का जो द्वितीय भेद नाम नाम का है उसकी व्याख्या करने के लिये कहते हैं कि-"से किं तं णामे?" इत्यादि।

शब्दार्थ — (से किं तं णामे) हे भदन्त! पूर्वप्रकान्त नाम क्या है? (णामे दसविहे पण्णत्ते)

સૂત્રકારે "से तं आणुपुव्वी" આ પ્રકારનો સૂત્રપાઠ મૂક્યો છે (आणुपुव्वीतिपयं समत्तं) આ પ્રકારે ઉપક્રમના આનુપૂર્વી નામના પ્રથમ ભેદનું નિરૂપણ અહીં સમાપ્ત થાય છે. ॥સૂ०१४२॥

ઉપક્રમનો બીજો ભેદ 'નામ' છે હવે સૂત્રકાર તે નામનું નિરૂપણ કરે છે-"से किं तं णामे?" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(से किं तं णामे?) હે ભગવન્! ઉપક્રમના બીજા પ્રકાર રૂપ નામ શું છે?

इति नाम-वस्त्वभिधानमित्यर्थः। उक्तंच-

"जं वत्थुणोऽभिहाणं पज्जयभेयाणुसारि तं णामं।
पइभेअं जं नमई, पइभेयं जाइ जं भणिअं" ॥१॥

छाया—यद्वस्तुनोऽभिधानं, पर्ययभेदानुसारि तन्नाम।
प्रतिभेदं यन्नमति, प्रतिभेदं याति यद् भणितम् ॥इति॥

एवंविधमिदं नाम दशविधं प्रज्ञप्तम्। दशविधत्वमाह-तद्यथा-एकनाम द्विनाम त्रिनामेत्यादि। तत्र-येन केन एकेनापि सता नाम्ना सर्वेऽपि विवक्षितपदार्था अभिधातुं शक्यन्ते, तदेकनाम बोध्यम्। एवं याभ्यां द्वाभ्यां नामभ्यां सर्वेऽपि

उत्तर — यह नाम दश प्रकार का कहा गया है। जीवगत ज्ञानादिक पर्यायों और अजीवगत रूपादिक पर्यायों के अनुसार जो प्रतिवस्तु के भेद से नमता है — झुकता है — अर्थात् उनका अभिधायक-वाचक होता है वह नाम है। उक्तंच-करके "जं वत्थुणोऽभिहाणं" इत्यादि गाथा द्वारा यही नाम शब्द की व्युत्पत्ति स्पष्ट की है। (तं जहा) नाम के दस प्रकार ये हैं —(एगणामे दुणामे तिणामे चउणामे,पंचणामे, छणामे, सत्तणामे, अट्ठणामे 'नवणामे, दसणामे) एक नाम, दो-नाम, तीन नाम, चार नाम, पांच नाम, छह नाम, सात नाम, आठ-नाम, नौ नाम, और दश नाम! जिस एक नाम से समस्त पदार्थों का कथन हो जाता है वह एक नाम है। जैसे सत्, सत् इस नाम से समस्त पदार्थों का युगपत् कथन हो जाता है क्यों कि ऐसा कोई भी पदार्थ

ઉત્તર-(णामे दसविहे पण्णत्ते) તે નામના દસ પ્રકાર કહ્યા છે જીવગત જ્ઞાનાદિક પર્યાયો અને અજીવગત રૂપાદિક પર્યાયો પ્રમાણે જે પ્રત્યેક વસ્તુના ભેદથી નમે છે-ઝૂકે છે-એટલે કે તેમનું અભિધાયક (વાચક) હોય છે, તેનું નામ "નામ" છે. "जं वत्थुणोऽभिहाणं" ઇત્યાદિ ગાથા દ્વારા 'નામ' શબ્દની ઉપર પ્રમાણેની વ્યુત્પત્તિ જ પ્રકટ કરવામા આવી છે.

(तंजहा) નામના દસ પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે-(एगणामे, दुणामे, तिणामे, चउणामे, पंचणामे, छणामे, सत्तणामे, अट्ठणामे, नवणामे, दसणामे) (૧) એક નામ, (૨) બે નામ, (૩) ત્રણ નામ, (૪) ચાર નામ, (૫) પાંચ નામ, (૬) છ નામ, (૭) સાત નામ, (૮) આઠ નામ, (૯) નવ નામ અને (૧૦) દસ નામ.

જે એક નામથી સમસ્ત પદાર્થોનું કથન થઈ જાય છે, તેને "એકનામ" કહે છે. જેમ કે "सत्" "सत्" આ નામથી સમસ્ત પદાર્થોનું એક સાથે કથન થઈ જાય છે, કારણ કે એવો કોઇ પણ પદાર્થ નથી કે જે આ सत्

विवक्षितपदार्थाः अभिधातुं शक्यन्ते तद् द्विनाम। तथा-यैस्तु त्रिभिर्नामभिः सर्वेऽपि विवक्षितपदार्था अभिधातुं शक्यन्ते तत् त्रिनाम। एवं रीत्या चतुर्नामादि-दशनामान्तविषयेऽपि बोध्यम् ॥सू० १४३॥

तत्रोद्देशक्रमेण निर्दिशन् प्रथममेकनामस्वरूपं निर्दिशति—

मूलम्—से किं तं एगणामे? एगणामे-णामाणि जाणि काणि वि, दव्वाण गुणाण पज्जवाण च। तेसिं आगमनिहसे, नामंनि परूविया सण्णा॥१॥ से तं एगणामे ॥सू०१४४॥

छाया—अथ किं तदेक नाम? एकनाम-नामानि यानि कान्यपि द्रव्याणां गुणानां पर्यवाणां च। तेषामागमनिकषे-नामेति प्ररूपिता संज्ञा। तदेत-देकनाम ॥सू० १४४॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि

अथ किं तदेकनाम? इति शिष्यप्रश्नः। उत्तरयति-एकनाम-एकं सद् नामेति विग्रहः। तत्स्वरूपमेवाह-'णामाणि जाणि' इति गाथया। अयं भावः=द्रव्याणां=

नहीं है जो इस सत् नाम रहित हो। अतः सत् यह एक नाम है। इसी प्रकार जिन दो नामों से समस्त विवक्षित पदार्थ अभिधातुं शक्य होते हों वह दो नाम है। तथा जिन तीन नामों से समस्त विवक्षित पदार्थ कहने में आ जाते हों वह त्रि नाम हैं। इसी प्रकार से चतुर्नामादि से लेकर दशनाम तक के विषय में भी जानना चाहिये। सू० १४३॥

उद्देश क्रम से निर्देश करने वाले सूत्रकार सर्व प्रथम एक नाम के स्वरूप का कथन करते हैं-"से किं तं एगणामे?" इत्यादि।

शब्दार्थ-(से किं तं एगणामे) हे भदन्त! पूर्वप्रक्रान्त एक नाम क्या है?

નામથી રહિત હોય તેથી 'सत्' એક નામરૂપ છે. એજ પ્રમાણે જે બે નામોથી સમસ્ત વિવક્ષિત પદાર્થોનું કથન થઈ જાય છે, તેમને બે નામ રૂપ સમજવા તથા જે ત્રણ નામોથી સમસ્ત વિવક્ષિત પદાર્થોનું કથન થઈ જાય છે, તે ત્રણ નામોને ત્રિનામ કહે છે. એજ પ્રમાણે ચતુર્નામથી લઈને દસ નામ પર્યન્તના નામના પ્રકારો વિષે પણ સમજવું. ॥સૂ०१४३॥

પૂર્વસૂત્રમાં નામના પ્રકારો પ્રકટ કરવામાં આવ્યાં હવે સૂત્રકાર નામના પ્રથમ પ્રકાર રૂપ એકનામના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે—

"से किं तं एगणामे?" इत्यादि—

શબ્દાર્થ-(से किं तं एगणामे?) હે ભગવન્! પૂર્વપ્રકાન્ત એકનામ શું છે? એટલે કે એકનામનું સ્વરૂપ કેવું છે?

जीवाजीवभेदानां, गुणानां=ज्ञानादीनां रूपादीनां च, तथा–पर्यायाणां=नारकत्वादीनामेकगुणकृष्णत्वादीनां च नामानि=अभिधानानि यानि कानिचिल्लोके रूढानि, तद्यथा–जीवो जन्तुरात्मा प्राणीत्यादि, आकाशं नभस्तारापथो व्योमाम्बरमित्यादि। तथा–ज्ञानं बुद्धिर्बोध इत्यादि, तथा–रूपं रसो गन्ध इत्यादि, तथा–नारकस्तिर्यङ्मनुष्य इत्यादि, एकगुणकृष्णो द्विगुणकृष्ण इत्यादि। तेषां सर्वेषामप्यभिधानानाम्–आगमनिकषे–आगम एव निकषः=हेमरजतसदृश जीवादिपदार्थस्वरूपपरिज्ञानहेतुत्वात् कषपट्टस्तस्मिन् 'नाम' इत्येवंरूपा संज्ञा=आख्या

उत्तर — (णामाणि जाणि काणि वि, दव्वाण, गुणाण, पज्जवाण च। तेसिं आगमनिहसे नामंति परूविया सण्णा "१" से तं एगणामे) एक होकर जो नाम होता है वह एक नाम है। इसी का स्वरूप इस गाथा द्वारा सूत्रकार ने कहा है—जीव अजीव भेद विशिष्ट द्रव्यों के, ज्ञानादिक गुणों के, रूपादि गुणों के तथा नारकत्व आदि पर्यायों के लोक में जितने भी नाम रूढ हैं — जैसे–जीव-जन्तु, आत्मा' प्राणी इत्यादि, आकाश, नभस तारापथ, व्योमन् (व्योम) अम्बर इत्यादि'तथा ज्ञान बुद्धि, बोध इत्यादि, तथा रूप, रस, गंध, इत्यादि तथा नारक तिर्यङ् मनुष्य इत्यादि एक गुण कृष्ण, दो गुण कृष्ण इत्यादि—इन सब अभिधानों की "नाम" ऐसी एक संज्ञा आगम रूप निकष (कसौटी) कही गई है। सो ये सब जीव जन्तु आदि अभिधान एक नामत्व

उत्तर-(णामाणि जाणिकाणि वि, दव्वाण, गुणाण, पज्जवाण च तेसिं आगम निहसे नामंति परूविया सण्णा ॥१॥ से तं एगणामे) એક જ અર્થને પ્રકટ કરનારૂં જે નામ હોય છે તેને 'એકનામ' કહે છે. તે એકનામનું સ્વરૂપ સૂત્રકારે ઉપરની ગાથા દ્વારા પ્રકટ કર્યું છે. તેનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે–

જીવ અજીવ રૂપ ભેદવાળાં દ્રવ્યોના જ્ઞાનાદિક ગુણોના, રૂપાદિ ગુણોના, તથા નારકત્વ આદિ પર્યાયોના લોકમાં જેટલાં નામો રૂઢ (પ્રચલિત) છે, તે બધાં અભિધાનોની (નામોની) 'નામ' એવી એક સંજ્ઞા આગમ રૂપ નિકષ (કસોટી) કહેવામાં આવી છે. જેમ કે જીવ–જન્તુ, આત્મા, પ્રાણી ઇત્યાદિ. તથા જ્ઞાન, બુદ્ધિ, બોધ ઇત્યાદિ તથા નભ, તારાપથ, વ્યોમ, આકાશ, અંબર ઇત્યાદિ તથા રૂપ, રસ, ગંધ ઇત્યાદિ તથા નારક, તિર્યંચ, મનુષ્ય ઇત્યાદિ એક ગુણ કૃષ્ણ, બે ગુણ કૃષ્ણ ઇત્યાદિ આ બધાં અભિધાનોની "નામ" એવી એક સંજ્ઞા–આગમરૂપ કસોટી–કહી છે. તેથી તે સઘળા જીવ–જન્તુ આદિ અભિધનને એક નામત્વ સામાન્યની અપેક્ષાએ "એકનામ"

प्रूपिता=व्यवस्थापिता। अयं भावः-सर्वाण्यपि जीवो जन्तुरित्याद्यभिधानानि नामत्वसामान्यमाश्रित्यैकेन नाम शब्देनोच्यन्ते इति। इत्थं च एकेनाप्येकेन नामशब्देन लोकरूढाभिधानानि सर्वाण्यपि वस्तूनि प्रतिपाद्यन्ते इत्येतदेकनामोच्यते। तदेव उपसंहरन्नाह तदेतदेकनामेति॥सू० १४४॥

सामान्य के आश्रय से एक नाम शब्द से कहे जाते हैं। इस प्रकार एक भी इस नाम शब्द से वस्तुओं के, गुणों के और पर्यायों के जो भी लोक रूढ नाम हैं वे सब" नामत्व" इस एक सामान्य पद से गृहीत हो जाते हैं। इसलिये इस एक भी नाम शब्द से लोकरुढाभिधान वाली सब भी वस्तुएँ प्रतिपादित हो जाती हैं। अतः एक नाम कहलाता है। (से तं एगनामे) इस प्रकार यह एक नाम है।—

भावार्थ— एक नाम क्या है इस जिज्ञासा का समाधान करने के निमित्त सूत्रकार ने यहां उसी का वर्णन किया है। इसमें उन्होंने समझाया है की जितने संसार में द्रव्यों के, पर्यायों के और गुणों के लोक रूढ नाम हैं-यद्यपि वे सब जुदे २ हैं। फिर भी नामत्व सामान्य के आश्रयभूत होने के कारण वे सब एक ही हैं। इस प्रकार नामत्व सामान्य की दृष्टि से ये सब नाम एक है-क्यों कि जितने अभिधानरूप व्यक्ति हैं उन सब में नामत्व रूप सामान्य रहता है। यही बात आगमरूप

શબ્દ દ્વારા પ્રકટ કરવામાં આવે છે આ રીતે એક પણ આ નામ વડે-શબ્દ વડે-વસ્તુઓના ગુણોનાં અને પર્યાયોનાં જે નામો લોકમાં રૂઢ થયેલા હોય છે, તે બધાંને " નામત્વ " આ એક સામાન્ય પદ વડે ગ્રહણ કરી શકાય છે. તેથી આ એક નામ શબ્દથી પણ લોકમાં રૂઢ એવા અભિધાનવાળી બધી વસ્તુઓ પ્રતિપાદિત થઇ જાય છે. તેથી તેને એક નામ કહે છે. (से तं एगणामे) આ પ્રકારનું એક નામનું સ્વરૂપ છે

ભાવાર્થ-સૂત્રકારે આ સૂત્રમાં, ' એક નામ શું છે, " આ પ્રશ્નનું સ્પષ્ટીકરણ કર્યું છે. તેમણે આ સૂત્રમાં એ વાત સમજાવી છે કે સંસારમાં દ્રવ્યોનાં, પર્યાયોનાં અને ગુણોનાં જેટલાં લોકરૂઢ (લોકમાં પ્રચલિત) નામો છે, તે નામો ભલે કે જુદાં જુદાં છે, છતાં પણ નામત્વ સામાન્યના આશ્રયભૂત હોવાને કારણે તેઓ સૌ એક જ છે. આ રીતે નામત્વ સમાન્યની દૃષ્ટિએ વિચાર કરવામાં આવે તો તે બધાં નામો એકનામ રૂપ જ છે, કારણ કે જેટલા અભિધાન રૂપ પદાર્થો છે, તે સઘળા પદાર્થોમાં નામત્વ રૂપ સામાન્યનો સદ્ભાવ રહે છે. એજ વાત આગમ રૂપ કસોટીની ઉપમા દ્વારા

मूलम्-से किं तं दुनामे? दुनामे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-एगक्खरिए य अणेगक्खरिए य। से किं तं एगक्खरिए? एगक्खरिए अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा-ही, सी, धी, थी, । से तं एगक्खरिए। से किं तं अणेगक्खरिए? अणेगक्खरिए अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा-कन्ना वीणा लया माला। से तं अणेगक्खरिए। अहवा-दुनामे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-जीवनामे य अजीवनामे य। से किं तं जीवनामे? जीवनामे अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा-देवदत्तो जण्णदत्तो विण्हुदत्तो सोमदत्तो। से तं जीवनामे। से किं तं अजीवनामे? अजीवनामे अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा-घडो पडो कडो रहो। से त्तं अजीवनामे। अहवा दुनामे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा विसेसिए य अविसेसिए य। अविसेसिए दव्वे, विसेसिए जीवदव्वे अजीवदव्वे य। अविसेसिए जीवदव्वे, विसेसिए णेरइए तिरिक्खजोणिए मणु-

---

कसौटी से प्रसिद्ध की गई है। यहां पर आगम को जो कसौटी की उपमा दी गई है उसका कारण यह है कि जिस प्रकार हेम रजत आदि के वास्तविक स्वरूप का परिज्ञान निकषपट्ट से होता है उसी प्रकार हेम रजत के सदृश जो जीवादि पदार्थ हैं उन के स्वरूप का परिज्ञान शास्त्र-आगम-से ही होता है। अतः उनके स्वरूप के परिज्ञान का हेतु होने से आगम को यहां सूत्रकार ने निकष की उपमा से उपमित किया है॥सू० १४४॥

વ્યક્ત કરવામાં આવી છે. અહીં આગમને કસોટી ઉપમા દેવાનું કારણ એ છે કે જેવી રીતે સોનું, ચાંદી આદિના વાસ્તવિક સ્વરૂપનું પરિજ્ઞાન નિકષપટ્ટ (કસોટી કરવાનો પત્થર) વડે થાય છે, એજ પ્રમાણે સોનાચાંદી જેવાં જીવાદિ પદાર્થો છે તેમના વાસ્તવિક સ્વરૂપનું પરિજ્ઞાન આગમ (શાસ્ત્ર) વડે જ થાય છે. તેથી તેમના સ્વરૂપના પરિજ્ઞાનના હેતુભૂત હોવાને કારણે સૂત્રકારે આગમને અહીં નિકષ (કસોટી પત્થર)ની ઉપમા આપી છે ॥સૂ૦૧૪૪॥

स्से देवे। अविसेसिए णेरइए, विसेसिए रयणप्पहाए सक्करप्पहाए वालुअप्पहाए पंकप्पहाए धूमप्पहाए तमाए तमतमाए। अविसेसिए रयणप्पहापुढवीणेरइए, विसेसिए पज्जत्तए य अपज्जत्तए य। एवं जाव अविसेसिए तमतमापुढवी नेरइए, विसेसिए पज्जत्तए य अपज्जत्तए य। अविसेसिए तिरिक्खजोणिए, विसेसिए एगिंदिए बेइंदिए तेइंदिए चउरिंदिए पंचिंदिए। अविसेसिए एगिंदिए, विसेसिए पुढविकाइए आउकाइए तेउकाइए वाउकाइए वणस्सइकाइए। अविसेसिए पुढविकाइए, विसेसिए सुहुमपुढविकाइए य बादरपुढविकाइए य। अविसेसिए सुहुमपुढविकाइए, विसेसिए पज्जत्तयसुहुमपुढविकाइए य अपज्जतयसुहुमपुढविकाइए य। अविसेसिए य बादरपुढविकाइए, विसेसिए पज्जत्तयबादरपुढविकाइए य अपज्जत्तयबादरपुढविकाइए य। एवं आउकाइए तेउकाइए वाउकाइए वणस्सइकाइए अविसेसिए, विसेसिए य पज्जत्तय अपज्जत्तय भेएहिं भाणियव्वा। अविसेसिए बेइंदिए, विसेसिए पज्जत्तय बेइंदिए य अपज्जत्तय बेइंदिए य। एवं तेइंदियचउरिंदियावि भाणियव्वा। अविसेसिए पंचिंदियतिरिक्खजोणिए, विसेसिए जलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए थलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए खहयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए। अविसेसिए जलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए विसेसिए संमुच्छिमजलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए य गब्भवक्कंतियजलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए य। अविसेसिए संमुच्छिमजलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए, विसेसिए पज्जत्तयसंमुच्छिमजलयरपंचिंदियतिरिक्ख-

जोणिए य। अपज्जत्तयसंमुच्छिमजलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए य। अविसेसिए गब्भवक्कंतियजलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए, विसेसिए पज्जत्तयगब्भवक्कंतियजलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए य, अपज्जत्तगब्भवक्कंतिजलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए य। अविसेसिए थलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए, विसेसिए चउप्पयथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए य परिसप्पथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए य अविसेसिए चउप्पयथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए, विसेसिए सम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए य गब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए य। अविसेसिए सम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए, विसेसिए पज्जत्तयसंमुच्छिमचउप्पयथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए य अपज्जत्तयसंमुच्छिमचउप्पयथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए य। अविसेसिए गब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए, विसेसिए पज्जत्तयगब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए य अपज्जत्तयगब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए य। अविसेसिए परिसप्पथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए, विसेसिए उरपरिसप्पथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए य भुयपरिसप्पथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए य। एए वि सम्मुच्छिमा पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य, गब्भवक्कंतिया वि पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य भाणियव्वा।

अविसेसिए खहयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए, विसेसिए सम्मुच्छिमखहयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए य गब्भवक्कंतियखहयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए य। अविसेसिए संमुच्छिमखहयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए, विसेसिए पज्जत्तयसंमुच्छिमखहयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए य अपज्जत्तयसंमुच्छिमखहयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए य। अविसेसिए गब्भवक्कंतियखहयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए, विसेसिए पज्जत्तयगब्भवक्कंतियखहयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए य अपज्जत्तयगब्भवक्कंतियखहयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिए य। अविसेसिए मणुस्से, विसेसिए संमुच्छिममणुस्से गब्भवक्कंतियमणुस्से। अविसेसिए संमुच्छिममणुस्से, विसेसिए पज्जत्तगसंमुच्छिममणुस्से य अपज्जत्तसंमुच्छिममणुस्से य। अविसेसिए गब्भवक्कंतियमणुस्से, विसेसिए कम्मभूमिओ य अकम्मभूमिओ य अंतरदीवओ य संखिज्जवासाउय असंखिज्जवासाउय पज्जत्तापज्जत्तओ। अविसेसिए देवे विसेसिए भवणवासी वाणमंतरे जोइसिए वेमाणिए य। अविसेसिए भवणवासी, विसेसिए असुरकुमारे नागकुमारे सुवण्णकुमारे विज्जुकुमारे अग्गिकुमारे दीवकुमारे उदहिकुमारे दिसीकुमारे वाउकुमारे थणियकुमारे। सव्वेसिंपि अविसेसियविसेसिय पज्जत्तग अपज्जत्तगभेया भाणियव्वा। अविसेसिए वाणमंतरे, विसेसिए पिसाए, भूए, जक्खे, रक्खसे, किन्नरे, किंपुरिसे, महोरगे, गंधव्वे, एएसिं पि अविसेसियविसेसियपज्जत्तयअपज्जत्तयभेया भाणि-

यव्वा। अविसेसिए जोइसिए, विसेसिए चंदसूरे गहगणे नक्खत्ते तारारूवे। एएसिं पि अविसेसियविसेसियपज्जत्तयअपज्जतय-भेया भाणियव्वा अविसेसिए वेमाणिए, विसेसिए कप्पोवगे य कप्पातीयगे य। अविसेसिए कप्पोवगे, विसेसिए सोहम्मए ईसाणए सणंकुमारए माहिंदए बंभलोए लंतयए महासुक्कए सहस्सारए आणयए पाणयए आरणए अच्चुयए। एएसिंपि अविसेसियविसेसियपज्जत्तगअपज्जत्तगभेया भाणियव्वा। अविसेसिए कप्पातीयए, विसेसिए गेवेज्जगे य अणुत्तरोववाइए य अविसेसिए गेवेज्जए, विसेसिए हेट्ठिमे, मज्झिमे, उवरिमे। अविसेसिए हेट्ठिमगेवेज्जए, विसेसिए हेट्ठिमहेट्ठिमगेवेज्जए, हेट्ठिममज्झिमगेवेज्जए, हेट्ठिम उवरिमगेवेज्जए। अविसेसिए मज्झिमगेविज्जए, विसेसिए मज्झिमहेट्ठिमगेवेज्जए, मज्झिममज्झिमगेवेज्जए, मज्झिम उवरिमगेवेज्जए। अविसेसिए उवरिमगेवेज्जए, विसेसिए उवरिमहेट्ठिमगेवेज्जए उवरिममज्झिमगेवेज्जए उवरिम उवरिमगेवेज्जए य। एएसिंपि सव्वेसिं अविसेसियविसेसियपज्जत्तगापज्जत्तगभेया भाणियव्वा। अविसेसिए अणुत्तरोववाइए, विसेसिए विजयए वेजयंतए जयंतए अपराजियए सव्वट्ठसिद्धए य। एएसिंपि सव्वेसिं अविसेसियविसेसियपज्जत्तगापज्जगभेया भाणियव्वा। अविसेसिए अजीवदव्वे, विसेसिए धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए पोग्गलत्थिकाए अद्धासमए य। अविसेसिए पोग्गलत्थिकाए, विसेसिए

परमाणुपोग्गले दुप्पएसिए तिप्पएसिए जाव अणंतपएसिए य। से तं दुनामे ॥सू० १४५॥

छाया—अथ किं तद् द्विनाम? द्विनाम द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-एकाक्षरिकं च अनेकाक्षरिकं च। अथ किं तदेकाक्षरिकम्? एकाक्षरिकम् अनेकविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-ह्रीः श्रीः धीः स्त्री। तदेतदेकाक्षरिकम्। अथ किं तदनेकाक्षरिकम्? अनेकाक्षरिकमनेकविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-कन्या वीणा लता माला। तदेतदनेकाक्षरिकम्। अथवा-द्विनाम द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा जीवनाम च अजीवनाम च। अथ किं तद् जीवनाम? जीवनाम अनेकविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-देवदत्तो यज्ञदत्तो विष्णुदत्तः सोमदत्तः। तदेतद् जीवनाम। अथ किं तदजीवनाम? अजीवनाम अनेकविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-घटः पटः कटो रथः। तदेतदजीवनाम। अथवा-द्विनाम द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-विशेषितं च अविशेषितं च। अविशेषितं द्रव्यम्, विशेषितं जीवद्रव्यमजीवद्रव्यं च। अविशेषितं जीवद्रव्यम्, विशेषितम्-नैरयिकः, तिर्यग्योनिकः, मनुष्यो देवः। अविशेषितम् नैरयिकः, विशेषितम् रत्नप्रभाकः, शर्कराप्रभाको, वालुकाप्रभाकः, पङ्कप्रभाको, धूमप्रभाकः, तमस्कः, तमस्तमस्कः। अविशेषितम्-रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकः, विशेषितम्-पर्याप्तकश्च अपर्याप्तकश्च। एवं यावत् अविशेषितम्-तमस्तमः पृथिवी-नैरयिको, विशेषितम्-पर्याप्तकश्च अपर्याप्तकश्च। अविशेषतम्-तिर्यग्योनिकः, विशेषितम्-एकेन्द्रियो द्वीन्द्रियस्त्रीन्द्रियश्चतुरिन्द्रियः पञ्चेन्द्रियः। अविशेषितम्-एकेन्द्रियः, विशेषितम्-पृथिवीकायिकः, अप्कायिकः, तेजस्कायिकः, वायुकायिकः, वनस्पतिकायिकः। अविशेषितम्-पृथिवीकायिकः, विशेषितम्-सूक्ष्मपृथिवीकायिकश्च बादरपृथिवीकायिकश्च। अविशेषितम्-सूक्ष्मपृथिवीकायिकः, विशेषितम्-पर्याप्तकसूक्ष्मपृथिवीकायिकश्च अपर्याप्तकसूक्ष्मपृथिवीकायिकश्च। अविशेषितं च-बादरपृथिवीकायिकः, विशेषितम्-पर्याप्तकबादरपृथिवीकायिकश्च अपर्याप्तकबादरपृथिवीकायिकश्च। एवम्-अप्कायिकः, तेजस्कायिको वायुकायिको वनस्पतिकायिकः, अविशेषितं विशेषितं पर्याप्तकापर्याप्तकभेदाभ्याम्ः भणितव्ये अविशेषितम्-द्वीन्द्रियः, विशेषितम्-पर्याप्तकद्वीन्द्रियश्च अपर्याप्तकद्वीन्द्रियश्च। एवं त्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियावपि भणितव्यौ। अविशेषितम्-पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकः, विशेषितम्-जलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकः. स्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकः खेचरपञ्चेन्द्रितिर्यग्योनिकः। अविशेषितम्-जलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकः, विशेषितम्-संमूर्च्छिमजलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकश्च गर्भव्युत्क्रान्तिकजलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकश्च। अविशेषितम्-संमूर्च्छिमजलचरपञ्चे-

न्द्रियतिर्यग्योनिकः, विशेषितम् पर्याप्तक-संमूर्च्छिमजलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकश्च अपर्याप्तकसंमूर्च्छिमजलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकश्च। अविशेषितम्–गर्भव्युत्क्रान्तिकजलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकः, विशेषितम्–पर्याप्तकगर्भव्युत्क्रान्तिकजलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकश्च अपर्याप्तकगर्भव्युत्क्रान्तिकजलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकश्च। अविशेषितम् स्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकः, विशेषितम्–चतुष्पदस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकश्च परिसर्पस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकश्च। अविशेषितम्–चतुष्पदस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकः, विशेषितम्–संमूर्च्छिमचतुष्पदस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकश्च गर्भव्युत्क्रान्तिकचतुष्पदस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकश्च। अविशेषितम्–संमूर्च्छिमचतुष्पदस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकः, विशेषितम्–पर्याप्तकसंमूर्च्छिमचतुष्पदस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकश्च अपर्याप्तकसंमूर्च्छिमचतुष्पदस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकश्च। अविशेषितम्–गर्भव्युत्क्रान्तिकचतुष्पदस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकः, विशेषितम्–पर्याप्तकगर्भव्युत्क्रान्तिकचतुष्पदस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकश्च अपर्याप्तकगर्भव्युत्क्रान्तिकचतुष्पदस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकश्च। अविशेषितम्–परिसर्पस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकः, विशेषितम्–उरःपरिसर्पस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकश्च भुजपरिसर्पस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकश्च। एतेऽपि संमूर्च्छिमाः पर्याप्तका अपर्याप्तकाश्च, गर्भव्युत्क्रान्तिका अपि पर्याप्तका अपर्याप्तकाश्च भणितव्याः। अविशेषितम् खेचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकविशेषितम् संमूर्च्छिमखेचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकश्च गर्भव्युत्क्रान्तिकखेचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकश्च। अविशेषितम्–संमूर्च्छिमखेचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकः, विशेषितम्-पर्याप्तकसंमूर्च्छिमखेचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकश्च। अपर्याप्तकसंमूर्च्छिमखेचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकश्च। अविशेषितम्–गर्भव्युत्क्रान्तिकखेचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकः विशेषितम् पर्याप्तकगर्भव्युत्क्रान्तिकखेचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकश्च अपर्याप्तकगर्भव्युत्क्रान्तिकखेचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकश्च। अविशेषितम्–मनुष्यः, विशेषितम्–संमूर्च्छिममनुष्यश्च गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्यश्च। अविशेषितम्–सम्मूर्च्छिममनुष्यः, विशेषितम्–पर्याप्तकसम्मूर्च्छिममनुष्यश्च अपर्याप्तकसम्मूर्च्छिममनुष्यश्च। अविशेषितम्–गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्यः, विशेषितम्–कर्मभूमिजश्च अकर्मभूमिजश्च अन्तरद्वीपजश्च, संख्येयवर्षायुष्कः असंख्येयवर्षायुष्कः पर्याप्तकः अपर्याप्तकः। अविशेषितम्–देवः, विशेषितम्–भवनवासी वानव्यन्तरः ज्यौतिषिको वैमानिकश्च। अविशेषितम्–भवनवासी, विशेषितम्–असुरकुमारो नागकुमारः सुपर्णकुमारो विद्युत्कुमारः अग्निकुमारो द्वीपकुमारः उदधिकुमारो दिक्कुमारो वायुकुमारः स्तनितकुमारः। सर्वेषामपि अविशेषितविशेषितपर्याप्तापर्याप्तकभेदा भणितव्याः। अविशेषितवानव्यन्तरः,

विशेषितम्-पिशाचो भूतो यक्षो राक्षसः किन्नरः किंपुरुषो महोरगो गन्धर्व । एतेषामपि अविशेषितविशेषितपर्याप्तापर्याप्तकभेदा भणितव्याः । अविशेषितम्-ज्योतिषिकः, विशेषितम्-चन्द्रः सूर्यः ग्रहगणः नक्षत्रं तारारूपम् । एतेषामपि अविशेषितविशेषितपर्याप्तापर्याप्तकभेदा भणितव्याः । अविशेषितम् वैमानिकः, विशेषितम्-कल्पोपगश्च कल्पातीतकश्च । अविशेषितम्-कल्पोपगः, विशेषितम्-सौधर्मकः ईशानकः सनत्कुमारको माहेन्द्रको ब्रह्मलोकको लान्तकको महाशुक्रकः सहस्रारक आनतकः प्राणतकः आरणकः अच्युतकः । एतेषामपि अविशेषितविशेषितपर्याप्तकापर्याप्तकभेदा भणितव्याः । अविशेषितम्-कल्पातीतकः, विशेषिम्-ग्रैवेयकश्च अनुत्तरोपपातिकश्च । अविशेषितम्-ग्रैवेयकः, विशेषितम्-अधस्तनः, मध्यमः, उपरितनः । अविशेषितम्-अधस्तनग्रैवेयकः, विशेषितम्-अधस्तनाधस्तनग्रैवेयकः, अधस्तनमध्यमग्रैवेयकः, अधस्तनोपरितनग्रैवेयकः । अविशेषितम्-मध्यमग्रैवेयकः, विशेषितम्-मध्यमाधस्तनग्रैवेयकः, मध्यममध्यमग्रैवेयकः, मध्यमोपरितनग्रैवेयकः । अविशेषितम्-उपरितनग्रैवेयकः, विशेषितम्-उपरितनाधस्तनग्रैवेयकः, उपरितनमध्यमग्रैवेयकः, उपरितनोपरितनग्रैवेयकश्च । एतेषामपि सर्वेषां अविशेषितविशेषितपर्याप्तकापर्याप्तकभेदा भणितव्याः । अविशेषितम्-अनुत्तरोपपातिकः, विशेषितम्-विजयको वैजयन्तको जयन्तकः अपराजितकः सर्वार्थसिद्धकश्च । एतेषामपि सर्वेषाम् अविशेषितविशेषितपर्याप्तकापर्याप्तकभेदा भणितव्याः । अविशेषितम्-अजीवद्रव्यम्, विशेषितम्-धर्मास्तिकायः, अधर्मास्तिकायः, आकाशास्तिकायः, पुद्गलास्तिकायः, अद्धासमयश्च । अविशेषितम्-पुद्गलास्तिकायः, विशेषितम्-परमाणुपुद्गलो द्विप्रदेशिकः त्रिप्रदेशिको यावदनन्तप्रदेशिकश्च । तदेतद् द्विनाम ॥सू० १४५॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि—

अथ किं तद् द्विनाम ? इति शिष्यप्रश्नः । उत्तरयति-द्विनाम-द्विविधं नाम-द्विनाम । द्विनामत्वादेवेदं द्विप्रकारकं बोध्यम् । द्विप्रकारकत्वमेवाह-तद्यथा-एका-

---

अब सूत्र कार द्विनाम की प्ररूपणा करते हैं—

"से किं तं दुनामे ?" इत्यादि

शब्दार्थ—(से किं तं दुनामे) हे भदन्त ! वह द्विनाम क्या है ?

હવે સૂત્રકાર દ્વિનામના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે—

"से किं तं दुनामे" इत्यादि—

શબ્દાર્થ-(से किं तं दुनामे ?) હે ભગવન્ ! નામના બીજા પ્રકાર રૂપ દ્વિનામનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

एकाक्षरिकं च अनेकाक्षरिकं च। तत्रैकाक्षरिकम्–एकं च तदक्षरं चेति एकाक्षरम्, तेन निर्वृत्तमेकाक्षरिकम्, तद्धि–ह्रीः–लज्जा, श्रीः–लक्ष्मीः, धीः–बुद्धिः, इत्यादिकमेकाक्षरिकं द्विनाम बोध्यम्। तथा–अनेकाक्षरिकम्–अनेकानि च तान्यक्षराणि–अनेकाक्षराणि तैर्निर्वृत्तमनेकाक्षरिकम्, तद्धि–कन्या वीणा लता मालेत्यादिकमनेकाक्षरिकं द्विनाम बोध्यम्। एवं 'बलाका पताका' इत्यादि त्र्याद्यक्षरनिष्पन्नमपि

उत्तर—(दुनामे दुविहे पण्णत्ते) द्विनाम–द्विविधनाम–दो प्रकार का है। यहां द्विनाम का तात्पर्य दो प्रकार के नाम से है। दो प्रकार का जो नाम है वह द्विनाम है (तं जहा) नाम के दो प्रकार ये है–(एगक्खरिए य अणेगक्खरिए य) एकाक्षरिक और अनेकाक्षरिक एक अक्षर से जो नाम निष्पन्न हो वह एकाक्षरिक नाम है और जो अनेक अक्षरों से निष्पन्न होता है वह अनेकाक्षरिक नाम है। जैसे 'ह्री' लज्जा, 'श्री' लक्ष्मी, 'धी' बुद्धि, स्त्री, ये सब एकाक्षरिक द्विनाम हैं। कन्या, वीणा, लता, माला ये सब अनेकाक्षरिक द्विनाम हैं। यही बात (से किं तं एगक्खरिए? एगक्खरिए अणेगविहे पण्णत्ते,) तं जहा–ही, सी, धी, थी, से तं एगक्खरिए–से किं तं अणेगक्खरिए? अणेगक्खरिए–अणेगविहे पण्णत्ते–तं जहा–कण्णा, वीणा, लया, माला, से तं अणेगक्खरिए) इस सूत्रपाठ द्वारा प्रश्नोत्तरपूर्वक सूत्रकारने प्रदर्शित की है। इसी प्रकार "बलाका पताका" इन तीन अक्षरों से निष्पन्न हुआ नाम

ઉત્તર–(दुनामे दुविहे पण्णत्ते) द्विनाम–द्विविधनाम બે પ્રકારનું છે–અહીં દ્વિનામ પદ બે પ્રકારના અર્થમાં વપરાયું છે. તેથી બે પ્રકારનું જે નામ છે તેનું નામ દ્વિનામ છે. (तंजहा) નામના બે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે–(एगक्खरिए य अणेगक्खरिए य) (१) એકાક્ષરિક અને (२) અનેકાક્ષરિક જે નામ એક અક્ષર વડે નિષ્પન્ન થાય છે, તે નામને એકાક્ષરિક નામ કહે છે. અને જે નામ અનેક અક્ષરો વડે નિષ્પન્ન થાય છે, તેને અનેકાક્ષરિક નામ કહે છે.

જેમ કે "ह्री" (લજ્જા), "श्री" (લક્ષ્મી), "धी" બુદ્ધિ, 'स्त्री' આદિ એકાક્ષરિક દ્વિનામ છે. કન્યા, વીણા, લતા, માલા, આદિ અનેકાક્ષરિક દ્વિનામ છે. એજ વાત સૂત્રકારે આ સૂત્રપાઠ દ્વારા પ્રશ્નોત્તરપૂર્વક પ્રકટ કરી છે–

(से किं तं एगक्खरिए? एगक्खरिए अणेगविहे पण्णत्ते, तंजहा–ही, सी, धी, थी, से तं एगक्खरिए। से किं तं अणेगक्खरिए? अणेगक्खरिए अणेगविहे पण्णत्ते–तंजहा–कण्णा, वीणा, लया, माला, से तं अणेगक्खरिए) આ સૂત્રપાઠનો ભાવાર્થ ઉપર પ્રકટ કરવામાં આવ્યો છે. એજ પ્રમાણે "बलाका,

बोध्यम्। इत्थमेकाक्षरानेकाक्षरेति द्विप्रकारेण नाम्ना विवक्षितस्य समस्तस्यापि वस्तुजातस्य प्रतिपादनाद् द्विनामेत्युच्यते। द्विरूपं सत् सर्वस्य नामेति द्विनाम। द्वयोर्नाम्नोः समाहार इति पक्षे तु द्विनामेतिच्छाया बोध्या। अथ प्रकारान्तरेण द्विनाम निरूपयति-अथवा-द्विनाम द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-जीवनाम च अजीवनाम चेति। तत्र-देवदत्तयज्ञदत्तादिभेदेन जीवनाम अनेकविधम्। तथा-घटपटादिभेदेना-

भी अनेकाक्षर निष्पन्न नाम में अन्तर्हित जानना चाहिये। इस प्रकार एकाक्षर और अनेकाक्षर से निष्पन्न दो प्रकारवाले नाम से, विवक्षित समस्त भी वस्तु समूह का प्रतिपादन होता है इससे दो नाम ऐसा कहा जाता है। "द्विरूपं सत् सर्वस्य नामेति द्विनाम" सर्व का नाम दो रूपवाला होता है। इसलिये वह द्विनाम है। एकाक्षरिक और अनेकाक्षरिक ये ही नाम के दो रूप है। "द्वयोः नाम्नोः, समाहारः इति द्विनाम" इस पक्ष में भी द्विनाम ऐसी ही छाया जाननी चाहिये।

अब सूत्रकार प्रकारान्तर से द्विनाम का निरूपण करते हैं-(अहवा-दुनामे दुविहे पण्णत्ते) अथवा-द्विनाम दो प्रकार का प्रज्ञप्त-हुआ है (तं जहा) जैसे (जीव नामे य अजीव नामे य) जीव नाम और अजीव नाम (से किं तं जीवनामे?) हे भदन्त! जीव नाम क्या है?-(जीवनामे अणेगविहे पण्णत्ते) जीव नाम अनेक प्रकार का प्रज्ञप्त हुआ

पताका" આ ત્રણ અક્ષરોથી નિષ્પન્ન થતા નામનો અનેકાક્ષર નિષ્પન્ન નામમાં જ સમાવેશ કરવો જોઇએ આ પ્રકારે એકાક્ષર અને અનેકાક્ષર વડે નિષ્પન્ન થતા બે પ્રકારવાળા નામ વડે વિવક્ષિત સમસ્ત વસ્તુસમૂહનું પ્રતિપાદન થાય છે, તેથી તેને દ્વિનામ રૂપ ગણવામાં આવે છે. "द्वि रूपं सत् सर्वस्य नामेति द्विनाम" સર્વનું નામ બે રૂપવાળું હોય છે, તેથી તે દ્વિનામ રૂપ છે એકાક્ષરિક અને અનેકાક્ષરિક, આ બે જ, નામનાં બે રૂપો છે. "द्वयोः नाम्नोः समाहारः इति द्विनाम" આ પક્ષે પણ 'દ્વિનામ' એવી જ છાયા સમજવી જોઇએ હવે સૂત્રકાર બીજી રીતે દ્વિનામનું નિરૂપણ કરે છે—

(अहवा-दुनामे दुविहे पण्णत्ते) અથવા-દ્વિનામ બે પ્રકારના કહ્યા છે-(तंजहा) તે બે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે-(जीवनामे य, अजीवनामे य) (૧) જીવનામ અને (૨) અજીવ નામ.

પ્રશ્ન-(से किं तं जीवनामे?) હે ભગવન્! જીવનામ એટલે શું?

ઉત્તર-(जीवनामे अणेगविहे पण्णत्ते) જીવનામના અનેક પ્રકાર કહ્યા છે. (तंजहा) જેમ કે...(देवदत्तो जण्णदत्तो विण्हुत्तो सोमदत्तो) દેવદત્ત, યજ્ઞદત્ત, વિષ્ણુદત્ત, સોમદત્ત, વગેરે.

जीवनामाप्यनेकविधम्। जीवाजीवेति द्वाभ्यां नामभ्यामेव विवक्षितसमस्तपदार्थानां संग्रहाद् द्विनामेत्युच्यते। पुनरेतदेव प्रकारान्तरेणाह–अथवा द्विनाम द्विविधं प्रज्ञप्तम्–अविशेषितं च विशेषितं च। तत्र–अविशेषितं द्रव्यम्। विशेषितं–जीवद्रव्यमजीवद्रव्यं च। प्रत्येकमिदमविशेषितविशेषितभेदात् पुनर्भेदान्तराच्चानेकप्रकारकं भवतीति मूलादेव विज्ञेयम्। सौगम्याच्च मूलस्य व्याख्या न क्रियते। अत्रेदं बोध्यम्–

है। (तं जहा) जैसे (देवदत्तो जण्णदत्तो विण्हुदत्तो सोमदत्तो) देवदत्त, यज्ञदत्त, विष्णुदत्त, सोमदत्त आदि। (से किं तं अजीव नामे) वह अजीव नाम क्या है? (अजीवनामे अणेगविहे पण्णत्ते)

उत्तर— अजीव नाम अनेक प्रकार का प्रज्ञप्त हुआ है (तं जहा) जैसे (घडो, पडो, कडो, रहो,) घट, पट, कट, रथ, आदि। (से तं अजीव नामे) यह अजीव नाम है। (अहवा दुनामे दुविहे पण्णत्ते) अथवा— द्विनाम दो प्रकार का प्रज्ञप्त हुआ है। (तं जहा) जैसे (विसेसिए य अविसेसिए य) विशेषित और अविशेषित (अविसेसिए दव्वे विसेसिए जीवदव्वे अजीवदव्वे य) अविशेषित द्रव्य कहलाता है और विशेषित उसके भेद कहलाते हैं। द्रव्य ऐसा नाम अविशेषित द्विनाम है। और द्रव्य दो प्रकार का होता है–१ जीव द्रव्य और दूसरा अजीव द्रव्य ऐसा नाम विशेषित द्विनाम है। इनमें जीव द्रव्य और अजीव द्रव्य ये अविशेषित और विशेषित के भेद से तथा और भी भेदान्तरों से अनेक प्रकार के हो जाते हैं यह बात मूल से

પ્રશ્ન-(से किं तं अजीवनामे?) હે ભગવન્! અજીવનામ એટલે શું?

ઉત્તર-(अजीवनामे अणेगविहे पण्णत्ते) અજીવનામના અનેક પ્રકારો કહ્યા છે. (तंजहा) જેમ કે (घडो, पडो, कडो, रहो) ઘટ પટ, કટ (ચટાઇ), રથ વગેરે (से तं अजीवनामे) આ પ્રકારનું અજીવનામ હોય છે. (अहवा दुनामे दुविहे पण्णत्ते) અથવા દ્વિનામના બે પ્રકાર કહ્યા છે. (तंजहा) જેમ કે.... (विसेसिए य अविसेसिए य) (१) વિશેષિત અને (२) અવિશેષિત (अविसेसिए दव्वे, विसेसिए जीवदव्वे अजीवदव्वे य) દ્રવ્યને વિશેષિત રૂપ કહેવાય છે અને દ્રવ્યના જીવ અજીવ રૂપ ભેદોને વિશેષિત કહેવાય છે. 'દ્રવ્ય' એવું નામ અવિશેષિત દ્વિનામ છે. દ્રવ્ય બે પ્રકારનું હોય છે-(१) જીવ દ્રવ્ય અને (२) અજીવદ્રવ્ય આ જીવદ્રવ્ય અને અજીવદ્રવ્ય રૂપ નામને વિશેષિત દ્વિનામ કહે છે. વળી જીવ દ્રવ્ય અને અજીવ દ્રવ્યના અવિશેષિત અને અવિશેષિત નામના બે ભેદો તથા બીજા પણ ઘણા ભેદો પડતા હોવાથી તે દ્રવ્યોના અનેક પ્રકાર હોય છે, આ વાત મૂળ સૂત્રમાંથી જ જાણી લેવી જેમ કે-

ये तु संमूर्च्छन्ति=तथाविधकर्मोदयाद् गर्भमन्तरेणैवोत्पद्यन्ते ते सम्मूर्छिमाः। येषां तु गर्भे व्युत्क्रान्तिः=उत्पत्तिस्ते गर्भव्युत्क्रान्तिकाः। परिसर्पन्ति ये ते परिसर्पाः। ते हि-उरःपरिसर्प-भुजपरिसर्पभेदाभ्यां द्विप्रकाराः। तत्र-उरःपरिसर्पाः-सर्पादयः। भुजपरिसर्पास्तु गोधानकुलादयः। इति। प्रकृतमुपसंहरन्नाह-तदेतद् द्विनामेति ॥सू० १४५॥

ही जान लेनी चाहिये जैसे— (अविसेसिए जीवदव्वे, विसेसिए णेरइए तिरिक्खजोणिए, मणुस्से देवे) जीव द्रव्य ऐसा नाम अविशेषित द्विनाम है तथा नारक, तिर्यग्योनिक, मनुष्य, देव ये विशेषित द्विनाम हैं। (णेरइए अविसेसिए) नैरयिक यह अविशेषित द्विनाम है और (रयणप्पहाए सक्करप्पहाए, वालुअप्पहाए, पंकप्पहाए, धूमप्पहाए तमाए, तमतमाए विसेसिए) रत्नप्रभागत नैरयिक, शर्करा प्रभागत नैरयिक, वालुका प्रभागत नैरयिक, पंक प्रभागत नैरयिक, धूम प्रभागत नैरयिक, तमःप्रभागत नैरयिक तमस्तमःप्रभागत नैरयिक ये विशेषित द्विनाम हैं। आगे भी इसी प्रकार से सूत्र के अन्त तक प्रत्येक भेद में अविशेषित और विशेषित द्विनाम की योजना कर लेनी चाहिये। सूत्र सुगम होने से आगे के पदों की व्याख्या नहीं की है। संमूर्च्छिम वे जीव हैं जो तथाविध कर्म के उदय से गर्भ के विना ही उत्पन्न हो जाते हैं। व्युत्क्रान्ति का तात्पर्य उत्पत्ति है। जिन जीवों की उत्पत्ति

(अविसेसिए जीवदव्वे, विसेसिए णेरइए तिरिक्खजोणिए मणुस्से, देवे) 'જીવદ્રવ્ય' આ નામ અવિશેષિત દ્વિનામ છે, તથા નારક, તિર્યંચ, મનુષ્ય અને દેવ, આ ચારે વિશેષિત દ્વિનામો છે.

(णेरइए अविसेसिए) 'નારક' આ નામને જો અવિશેષિત દ્વિનામ કહેવામાં આવે, તો (रयणप्पहाए, सक्करप्पहाए, वालुअप्पहाए, पंकप्पहाए धूमप्पहाए, तमाए, तमतमाए विसेसिए) રત્નપ્રભાના નારક, શર્કરાપ્રભાના નારક, વાલુકાપ્રભાના નારક, પંકપ્રભાના નારક, ધૂમપ્રભાના નારક, તમઃપ્રભાના નારક, અને તમસ્તમઃપ્રભાના નારકને વિશેષિત દ્વિનામ કહે છે. એજ પ્રકારે સૂત્રના અન્ત સુધીના પ્રત્યેક ભેદમાં અવિશેષિત અને વિશેષિત દ્વિનામની યોજના કરી લેવી જોઈએ સૂત્ર સુગમ હોવાથી પછીનાં પદોની વ્યાખ્યા આપવામાં આવી નથી જે જીવો તથાવિધ કર્મના ઉદયથી ગર્ભ વિના જ ઉત્પન્ન થઈ જાય છે, તે જીવોને સંમૂર્ચ્છિમ જીવો કહે છે. 'व्युत्क्रान्ति' પદનો અર્થ 'ઉત્પત્તિ' થાય છે. જે જીવોની ઉત્પત્તિ ગર્ભજન્મથી થાય છે,

त्रिनाम निरूपयितुमाह—

मूलम्—से किं तं तिनामे? तिनामे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा दव्वणामे गुणणामे पज्जवणामे य। से किं दव्वणामे? दव्वणामे छव्विहे—पण्णत्ते, तं जहा—धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए जीवत्थिकाए पुग्गलत्थिकाए अद्धासमए य। से तं दव्वनामे। से किं तं गुणनामे? गुणनामे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—वण्णणामे गंधणामे रसणामे फासणामे संठाणणामे। से किं तं वण्णणामे? वण्णणामे पञ्चविहे पण्णत्ते, तं जहा—कालवण्णणामे नीलवण्णणामे लोहियवण्णनामे हालिद्दवण्णनामे सुक्किल्लवण्णनामे। से त्तं वण्णनामे। से किं तं गंधनामे—गंधनामे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—सुरभिगंधनामे य दुरभिगंधनामे य। से त्तं गंधनामे। से किं तं रसनामे? रसनामे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—तित्तरसणामे कडुयरसणामे कसायरसणामे अंबिलरसणामे महुररसणामे य। से त्तं रसणामे। से किं तं

गर्भ जन्म से होती है वे गर्भव्युत्क्रान्ति जीव हैं। जो सरकते है वे परिसर्प हैं। उरःपरिसर्प और भुजपरिसर्प के भेद से परिसर्प जीव दो प्रकार के हैं! सर्पादिक जीव जो कि छाती से सरकते हैं—उरः परिसर्प हैं। और गोधा, नकुल आदि जीव जो भुजाओं से सरकते—चलते हैं वे भुजपरिसर्प हैं। इस प्रकार यह त्रिनाम हैं ॥सू० १४६॥

તે જીવોને ગર્ભવ્યુક્રાન્તિક જીવો કહે છે, જે જીવો સરકતાં સરકતાં ચાલે છે તે જીવોને પરિસર્પ કહે છે. પરિસર્પ જીવોના ઉરઃપરિસર્પ અને ભુજપરિસર્પ નામના બે ભેદ પડે છે. સર્પાદિક જે જીવો છાતીના બળથી સરકે તે જીવોને ઉરઃપરિસર્પ કહે છે. ગરોળી, નોળિયા આદિ જીવો ભુજાઓના બળથી સરકે (ચાલે) છે, તેથી તેમને ભુજપરિસર્પ કહે છે. આ પ્રકારનું આ ત્રિનામનું સ્વરૂપ છે. ॥સૂ૦૧૪૬॥

फासणामे ? फासणामे अट्ठविहे पण्णत्ते, तं जहा—कक्खडफासणामे मउयफासणामे गरुयफासणामे लहुयफासणामे सीयफासणामे उसिणफासणामे णिद्धफासणामे लुक्खफासणामे। से तं फासणामे। से किं तं संठाणनामे ? संठाणनामे—पंचविहे पण्णत्ते तं जहा परिमंडलसंठाणनामे वट्टसंठाणनामे तंससंठाणनामे चउरंसठाणनामे आययसंठाणनामे। से तं संठाणनामे से तं गुणनामे ॥सू० १४६॥

छाया—अथ किं तत् त्रिनाम ? त्रिनाम त्रिविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—द्रव्यनाम, गुणनाम पर्यवनाम च। अथ किं तद् द्रव्यनाम ? द्रव्यनाम षड्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—धर्मास्तिकायः अधर्मास्तिकायः आकाशास्तिकायो जीवास्तिकायः पुद्गलास्तिकायः अद्धासमयश्च। तदेतद् द्रव्यनाम। अथ किं तद् गुणनाम ? गुणनाम पञ्चविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—वर्णनाम गन्धनाम रसनाम स्पर्शनाम संस्थाननाम। अथ किं तद् वर्णनाम ? वर्णनाम पञ्चविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—कालवर्णनाम नीलवर्णनाम लोहितवर्णनाम हारिद्रवर्णनाम शुक्लवर्णनाम तदेतद्वर्णनाम। अथ किं तत् गन्धनाम ? गन्धनाम द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—सुरभिगन्धनामच दुरभिगन्धनाम च। तदेतद् गन्धनाम। अथ किं तद् रसनाम ? रसनाम पञ्चविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—तिक्तरसनाम, कटुकरसनाम, कषायरसनाम अम्लरसनाम मधुररसनाम च। तदेतद् रसनाम। अथ किं तत् स्पर्शनाम ? स्पर्शनाम—अष्टविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—कर्कशस्पर्शनाम मृदुकस्पर्शनाम गुरुकस्पर्शनाम लघुकस्पर्शनाम शीतस्पर्शनाम उष्णस्पर्शनाम स्निग्धस्पर्शनाम रूक्षस्पर्शनाम। तदेतत् स्पर्शनाम। अथ किं तत् संस्थाननाम ? संस्थाननाम पञ्चविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—परिमण्डलसंस्थाननाम वृत्तसंस्थाननाम त्र्यंससंस्थाननाम चतुरंससंस्थाननाम आयतसंस्थाननाम। तदेतत् संस्थाननाम। तदेतद् गुणनाम ॥सू० १४६॥

टीका—'से किं तत् त्रिनाम ? इति शिष्यप्रश्नः। उत्तरयति-त्रिनाम=त्रिरूपं नाम त्रिनाम तत् त्रिविधं प्रज्ञप्तम्। यत एवेदं त्रिनाम अत एवेदं त्रिविधं

अब त्रिनाम का सूत्रकार निरूपण करते हैं—
"से किं तं तिनामे" इत्यादि।

હવે સૂત્રકાર ત્રિનામનું નિરૂપણ કરે છે—
"से किं तं तिनामे" ઇત્યાદિ—

बोध्यम्। त्रैविध्यमेवाह-तद्यथा-द्रव्यनाम-द्रवति=गच्छति तांस्तान् पर्यायान् प्राप्नोतीति द्रव्यं, तस्य नाम-द्रव्यनाम। गुणनाम-गुण्यन्ते=संख्यायन्ते इति गुणास्तेषां नाम-गुणनाम। तथा-वर्णनाम-वर्ण्यते=अलङ्क्रियते वस्त्वनेनेति वर्णः, तस्य नाम वर्णनाम। एषु त्रिविधेषु नामसु प्रथमं द्रव्यनाम जिज्ञासमानः शिष्यः पृच्छति-अथ किं तद् द्रव्यनाम? उत्तरयति-द्रव्यनाम हि धर्मास्तिकायादिभेदैः षड्विधम्। धर्मास्तिकायादीनां व्याख्या पूर्वं कृता। गुणनामतु वर्णगन्धरसस्पर्श-

शब्दार्थ—(से किं तं तिनामे ?) हे भदन्त! त्रिनाम क्या है ? उत्तर— (तिनामे तिविहे पण्णत्ते) त्रिनाम तीन प्रकार का कहा गया है तीन रूप वाला जो नाम है वह त्रिनाम है! त्रिनाम से ही यह त्रिविध है। (तं जहा) वे तीन प्रकार ये हैं— (दव्वणामे, गुणनामे,पज्जवणामे) द्रव्यनाम, गुणनाम, पर्यव नाम। उन २ पर्यायों को जो प्राप्त करता है उसका नाम द्रव्य है। इस द्रव्य का जो नाम है वह द्रव्यनाम है। जो गिने जावें उनका नाम गुण है यह गुण शब्द की व्युत्पत्ति है। इनका जो नाम है वह गुण नाम हैं। पर्याय का जो नाम है वह पर्याय नाम है। पर्याय नाम का वर्णन सूत्रकार १४७ वें सूत्र में करेंगे। (से किं तं दव्वनामे) वह द्रव्य नाम क्या है ?

उत्तर— (दव्वणामे छव्विहे पण्णत्ते) द्रव्य नाम ६ प्रकार का कहा है। (तं जहा) जैसे—(धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए

શબ્દાર્થ-(से किं तं तिनामे ?) હે ભગવન્! ત્રિનામ એટલે શુ ?

ઉત્તર-(तिनामे तिविहे पण्णत्ते) ત્રિનામના ત્રણ પ્રકાર કહ્યા છે. ત્રણ રૂપવાળું જે નામ છે, તેને ત્રિનામ કહે છે ત્રિનામ હોવાને લીધે જ તે ત્રણ પ્રકારનું છે. (तंजहा) તે ત્રણ પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે-(दव्वणामे, गुणनामे, पज्जवणामे) (૧) દ્રવ્યનામ, (૨) ગુણનામ અને (૩) પર્યાયનામ (પર્યાયનામ.)

જુદી જુદી પર્યાયોને જે પ્રાપ્ત કરે છે, તેનું નામ દ્રવ્ય છે. આ દ્રવ્યનું જે નામ છે તેને દ્રવ્ય નામ કહે છે. ગુણ શબ્દની વ્યુત્પત્તિ આ પ્રમાણે છે. "જે ગણાય તે ગુણ છે." તે ગુણનું જે નામ છે તેને ગુણનામ કહે છે. પર્યાયનું જે નામ છે, તેનું નામ પર્યાયનામ છે. આગળ ૧૪૭માં સૂત્રમાં સૂત્રકાર આ પર્યાયનામનું વર્ણન કરવાના છે.

પ્રશ્ન-(से किं तं दव्वनामे?) તે દ્રવ્યનામ શું છે ?

ઉત્તર-(दव्वणामे छव्विहे पण्णत्ते) દ્રવ્યનામ છ પ્રકારનું કહ્યું છે. (तंजहा) જેમ કે....(धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, जीवत्थिकाए, पुग्गलत्थि-

संस्थानभेदैः पञ्चविधम्। तत्र वर्णनाम-कृष्णनीललोहितहारिद्रशुक्लनामभेदैः पञ्चविधम्। धूसरारुणरूप कपिशादयस्तु वर्णा संयोगेनैवोत्पद्यन्ते, नत्वेते तेभ्यो भिन्ना इति न पृथगुपात्ताः। तथा-गन्धनाम-गन्ध्यते=आघ्रायते इति गन्धस्तस्य नाम=गन्धनाम। तद्धि-सुरभिदुरभिभेदाद् द्विविधम्। तत्र-सौमुख्यकृत् सुरभिः, वैमुख्य-

---

जीवत्थिकाए, पुग्गलत्थिकाए, अद्धासमए य) धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और अद्धा समय। इन सबकी व्याख्या पहिले की जा चुकी है। अतः यहां नहीं की है। (से तं दव्वनामे) इस प्रकार यह द्रव्य नाम है। (से किं तं गुणनामे) वह गुण नाम क्या है?

उत्तर—(गुणनामे पंचविहे पण्णत्ते) गुणानाम पांच प्रकार का कहा गया है। (तं जहा) जैसे-- (वण्णणामे, गंधणामे रसणामे, फास णामे, संठाणणामे) वर्णनाम, गंध नाम, रस नाम, स्पर्श नाम, संस्थान नाम। वस्तु जिससे अलंकृत की जाती है वह वर्ण शब्द की व्युत्पत्ति है। इस वर्ण का जो नाम है वह वर्ण नाम है। जो सूंघी जावे वह गंध है। इस गंध का जो नाम है वह गंधनाम है। जो चखा जाता है वह रस है। रस का जो नाम है वह रस नाम है। जो स्पर्श से जाना जाता है वह स्पर्श है। संस्थान नाम आकार का है। इस संस्थान का जो नाम है वह संस्थान नाम है।

काए, अद्धासमए य) ધર્માસ્તિકાય, અધર્માસ્તિકાય, આકાશાસ્તિકાય, જીવાસ્તિકાય, પુદ્ગલાસ્તિકાય અને અદ્ધાસમય (કાળ) આ બધાં પદોની વ્યાખ્યા પહેલાં આપવામાં આવી છે, તેથી અહીં તેમની વ્યાખ્યા આપવામાં આવી નથી (से तं दव्वनामे) આ પ્રકારનું તે દ્રવ્યનામ છે.

પ્રશ્ન-(से किं तं गुणनामे?) હે ભગવન્! ગુણનામ કોને કહે છે?

ઉત્તર-(गुणनामे पंचविहे पण्णत्ते-तंजहा) ગુણનામ પાંચ પ્રકારનું કહ્યું છે. તે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે-(वण्णणामे, गंधणामे, रसणामे, फासणामे, संठाणणामे) વર્ણનામ, ગંધનામ, રસનામ, સ્પર્શનામ અને સંસ્થાનનામ વસ્તુને જેના વડે અલંકૃત કરાય છે, તેને વર્ણ કહે છે. તે વર્ણનું જે નામ છે તેને વર્ણનામ કહે છે. સૂંઘવાથી જેનો અનુભવ થાય છે, તે ગંધ છે. આ ગંધનું જે નામ છે તેને ગંધનામ કહે છે. ચાખવાથી જેનો અનુભવ થાય તે રસ છે. એવા રસનું જે નામ છે, તે રસનામ છે. કોઈ પણ વસ્તુને અડકવું તેનું નામ સ્પર્શ છે. આ સ્પર્શનું જે નામ છે તેને સ્પર્શનામ કહે છે. સંસ્થાન એટલે આકાર આ સંસ્થાનના નામને સંસ્થાનનામ કહે છે.

कृद्दुरभिः। तथा-रसनाम-रस्यते=आस्वाद्यते इति रसस्तस्य नाम रसनाम। तच्च-तिक्तकटुककषायाम्लमधुरनाम भेदात् पञ्चविधं प्रज्ञप्तम्। तत्र-तिक्तरसनाम--श्लेष्मादिदोषहन्ता रसः, तस्य नाम तिक्तरसनाम। तिक्तरससेवनफलमुक्तमायुर्वेदशास्त्रे-"श्लेष्मामरुचिः पित्तं तृषं कुष्ठं विषं ज्वरम्। हन्यात्तिक्तो रसो बुद्धेः कर्त्ता

(से किं तं वण्णणामे) वह वर्णनाम क्या है ?

उत्तर-(वण्णणामे पंचविहे पण्णत्ते) वर्णनाम पांच प्रकार का कहा गया है। (तं जहा) जैसे-(कालवण्णणामे, नीलवण्णनामे, लोहियवण्णनामे, हालिद्दवण्णनामे, सुक्किल्लवण्णनामे) काल कृष्ण-वर्ण नाम, नीलवर्णनाम, लोहितवर्णनाम, हारिद्रवर्णनाम, शुक्लवर्णनाम। धूसर, अरुण रूप जो कपिशादि वर्ण हैं-वे संयोग से ही उत्पन्न होते हैं, इसलिये ये स्वतंत्रवर्ण नहीं हैं इसलिये इनका स्वतंत्र रूप से सूत्र में पाठ नहीं किया है। सुरभिगंध और दुरभिगंध के भेद से गन्ध गुण दो प्रकार का है। जो गंध अपनी ओर आकृष्ट करती है वह सुरभि गंध और जो अपने से विमुख करती है वह दुरभिगंध है। तिक्त, कटुक, कषाय, अम्ल और मधुर नाम के भेद से रस पांच प्रकार है। श्लेष्म आदि दोषों को नष्ट करनेवाला जो रस है वह तिक्त रस है। तिक्त रस के सेवन का फल आयुर्वेद शास्त्र में ऐसा कहा है-मात्रा से

પ્રશ્ન-(से किं तं वण्णणामे) હે ભગવન્! વર્ણનામનું સ્વરૂપ કેવું હોય છે?

ઉત્તર-(वण्णणामे पंचविहे पण्णत्ते) વર્ણનામ પાંચ પ્રકારના કહ્યાં છે. (तं जहा) જેમ કે....(कालवण्णणामे, नीलवण्णणामे, लोहियवण्णणामे, हालिद्दवण्णणामे, सुक्किल्लवण्णणामे) (૧) કૃષ્ણવર્ણનામ, (૨) નીલવર્ણનામ, (૩) લોહિત (રક્ત) વર્ણનામ, (૪) હારિદ્ર (પીળો) વર્ણનામ, અને (૫) શુક્લવર્ણનામ.

આ સિવાયના જે ધૂસર આદિ વર્ણો છે, તેઓ ઉપર્યુક્ત વર્ણોના સંયોગથી જ ઉત્પન્ન થાય છે, તેથી તેમને સ્વતંત્ર વર્ણ રૂપ ગણી શકાય નહીં, તેથી અહીં તેમને સ્વતંત્ર પ્રકારો રૂપે બતાવવામાં આવેલ નથી સુરભિગંધ (સુગંધ) અને દુરભિગંધ (દુર્ગંધ)ના ભેદથી ગંધગુણના બે પ્રકાર પડે છે. જે ગંધ જીવોને પોતાની તરફ આકર્ષે છે તે ગંધને સુરભિગંધ અને જે ગંધ જીવોને પોતાની તરફ ખેંચવાને બદલે વિમુખ કરે છે એવી ગંધને દુરભિગંધ કહે છે. રસના નીચે પ્રમાણે પાંચ પ્રકાર છે-(૧) તિક્ત (તીખો), (૨) કટુક (કડવો), (૩) કષાય (તુરો), (૪) અમ્લ (ખાટો) અને (મધુર) કફ આદિ દોષોનો નાશ કરનાર જે રસ છે તેનું નામ તિક્તરસ છે. આયુર્વેદ શાસ્ત્રમાં તિક્તરસના સેવનના નીચે પ્રમાણે લાભો બતાવ્યા છે-યોગ્ય માત્રામાં

मात्रोपसेवितः" । इति। तथा-कटुकरसनाम-गलरोगप्रशमनो मरिचनागराद्याश्रितो रसः-कटुकरसः-तस्य नाम-कटुकरसनाम । कटुकरससेवनफलमुक्तमायुर्वेदे-कटुर्गलामयं शोफं, हन्ति युक्त्योपसेवितः। दीपनः पाचको रुच्यो बृंहणोऽतिश्लेष्मापहः। इति॥ तथा-कषायरसनाम-रक्तदोषाद्यपनेताविभीतकामलकश्लेष्मित्थाद्याश्रितो रसः-कषायरसः, तस्य नाम कषायरसनाम । उक्तं चास्य सेवनफलम्-"रक्तदोषं कफं पित्तं, कषायो हन्ति सेवितः । रूक्षः शीतो गुणग्राही रोचकश्च स्वरूपतः" ॥इति॥

सेवन किया तिक्तरस *लेष्मा-कफ अरुचि, पित्त, तृषा, कुष्ठ, विष, ज्वर, इनका नाश करता है और बुद्धि को बढाता है। इस तिक्तरस का जो नाम है वह तिक्तरस नाम है। गले के रोग को प्रशान्त करनेवाला एवं मरिच और नागर आदि में-रहनेवाला जो रस है वह कटुकरस है। इस कटुकरस के सेवन का फल आयुर्वेदशास्त्र में ऐसा कहा है-युक्ति से सेवन किया गया कटुक रस....शोफ—सूजन को नष्ट करता है, दीपक, पाचक, रुच्य और वृंहण होता है। बढे हुए कफ को नष्ट करता है। रक्त दोष आदि का नाशक-विभीतक-बहेड़ा आमलक -आँवला एवं कपित्थ आदि के आश्रित जो रस है वह कषाय रस है। इसका जो नाम है वह कषाय रस नाम है। इसके सेवन का फल ऐसा कहा है—सेवित हुआ यह कषाय रस रक्तदोष, कफ, पित्त, को नाश करता है। यह स्वरूप से रूक्ष, शीत और गुणग्राही होता है तथा

તિક્તરસનું જો સેવન કરવામાં આવે, તો કફ, અરુચિ, પિત્ત, તૃષા, કુષ્ઠ, વિષ અને જ્વરનો નાશ થાય છે અને બુદ્ધિની વૃદ્ધિ થાય છે. આ તિક્તરસનું જે નામ છે, તે તિક્તરસ નામ છે.

ગળાના રોગોને પ્રશાન્ત કરનારો અને મરિચ અને નાગર આદિમાં રહેનારો જે રસ છે, તે રસનું નામ કટુકરસ (કડવોસ્વાદ) છે. આયુર્વેદ શાસ્ત્રમાં આ કટુક રસના સેવનનું ફળ નીચે પ્રમાણે કહ્યું છે-જો યોગ્ય માત્રામાં જો કટુક રસનું સેવન કરવામાં આવે, તો શરીરના કોઈ પણ ભાગનો સોજો ઉતરી જાય છે, દીપક (પાચનક્રિયામાં મદદ રૂપ) હોય છે, રુચ્ય અને બૃંહણ (શક્તિવર્ધક) હોય છે તે વધારાના કફનો નાશ કરે છે.

રક્તદોષ આદિનો નાશક, બહેડા, આમળાં, કોઠાં આદિમાં રહેલો જે રસ છે તેને કષાય (તુરો) રસ કહે છે. તેનું જે નામ છે તે કષાયરસ નામ છે. આયુર્વેદમાં કષાયરસના સેવનનું ફળ નીચે પ્રમાણે કહ્યું છે-જો યોગ્ય રીતે સેવન કરવામાં આવે તો કષાયરસ રક્તદોષ, કફ, અને પિત્તનો નાશ કરે છે. તે રૂક્ષ, શીત, ગુણગ્રાહી અને રોચક હોય છે.

तथा-अम्लरसनाम-अग्निदीपनादिकृदम्लीकाद्याश्रितो रसः-अम्लरसः, तस्य नाम-अम्लरसनाम। उक्तं चास्य फलम्-"अम्लोऽग्निदीप्तिकृत् स्निग्धः, शोफपित्तकफापहः। क्लेदनः पाचनो रुच्यो, गूढवातानुलोमकः ॥इति॥ तथा-मधुररसनामपित्तादिप्रशमनः खण्डशर्कराद्याश्रितो रसो मधुररसः, तस्य नाम-मधुररसनाम। उक्तं चास्य फलम्-"पित्तं वातं विषं हन्ति, धातुवृद्धिकरो गुरुः। जीवनः केशकृद् बालवृद्ध क्षीणौजसां हितः" ॥इति॥ अन्यत्र हि सिन्धुलवणाद्याश्रितो लवण-

---

रोचक होता है। अम्लीक-इमली आदि में रहा हुआ जो रस है वह अम्लरस है। यह अग्निदीपन आदि का करने वाला होता है। इस रस का जो नाम है वह अम्ल रस नाम है। इसका फल इस प्रकार कहा है—यह रस अग्निदीपक होता है, स्निग्ध होता है। शोफ, पित्त और कफ को नाश करता है। क्लेदन, (पसीना उत्पन्न करनेवाली शरीरका अग्निविशेष) पाचन करता है—और रुच्य होता है तथा गूढ वायु का अनुलोमक होता है। पित्तादिका प्रशमन करने वाला जो रस है वह मधुर रस है। यह मधुर रस खांड़, शक्कर आदि का आश्रित रहता है। इसका जो नाम है वह मधुररसनाम है। इसका फल ऐसा कहा है कि मधुररस पित्त, वात, और विषका नाशक होता है, धातु की वृद्धि करता है गुरु होता है। बालक, वृद्ध और क्षीण शक्ति वालों का यह हित कर्त्ता होता है। जीवनप्रद और केशवर्धक होता है। दूसरी जगह सिन्धु लवण सैन्धव-आदि के आश्रित लवण रस भी

આમલી આદિમાં રહેલા રસને અમ્લરસ (ખાટોરસવાહ) કહે છે. તે અગ્નિદીપન (જઠરાગ્નિને સતેજ કરનારો) આદિ કરનારો હોય છે. આ રસનું જે નામ છે તે અમ્લરસ નામ છે. અમ્લરસના સેવનનું ફળ આ પ્રકારનું કહ્યું છે-આ રસ અગ્નિદીપક અને સ્નિગ્ધ હોય છે. સોજા પિત્ત અને કફનો નાશક હોય છે ક્લેદન, પાચન કરે છે. અને રુચ્ય (રુચિકર) હોય છે વળી આ રસ ગૂઢ વાયુનો અનુલોમક હોય છે.

પિત્તાદિકનું શમન કરનારો જે રસ છે તેનું નામ મધુરરસ છે. તે ખાંડ, સાકર, ગોળ આદિમાં રહેલો હોય છે. તેનું જે નામ છે તે મધુરરસ નામ છે તેના સેવનનું ફળ આ પ્રકારનું કહ્યું છે-મધુર રસ વાત, પિત્ત અને વિષનો નાશક હોય છે, ધાતુની વૃદ્ધિ કરનારો અને ગુરુ હોય છે બાલકો, વૃદ્ધો અને કમજોર માણસોને લાભકારી હોય છે, જીવનપ્રદ અને કેશવર્ધક હોય છે કેટલાક લોકો લવણરસ (ખારો રસવાહ) ને પણ એક પ્રકારના સ્વતંત્ર રસ

रसोऽपि पठ्यते। अयं रसो हि स्तम्भिताहारबन्धविध्वंसादिकर्ता भवति। अयं रसो हि मधुरादिरससंसर्गजत्वात्तदभिन्नत्वेन विवक्ष्यते। यतो लवणरसयोगादेवान्येऽपि रसाः स्वादीयस्त्वं भजन्ते, अतस्तिक्तादिषु पञ्चसु रसेषु लवणरसस्यान्तर्भावः, अत एव न तस्य पृथगुपादानम्। प्रकृतमुपसंहरन्नाह-तदेतद्रसनामेति। अथ गुणनाम्नश्चतुर्थभेदं जिज्ञासितुकामः पृच्छति-अथ किं तत् स्पर्शनाम ? इति। उत्तरयति-स्पर्शनाम-स्पृश्यते=त्वगिन्द्रियेणावबुध्यते इति स्पर्शः, तस्य नाम स्पर्शनाम। तद्धि अष्टविधम्=अष्टसंख्यकं बोध्यम्। अष्ट विधत्वमेवाह-तद्यथा-कर्कश स्पर्शनाम-

एक-एक स्वतंत्र रस कहा गया है। यह रस स्तंभित आहार आदि का विध्वंस कर्त्ता होता है आहार वर्धक एवं मलबद्धता नाशक होता है। यह रस मधुर आदि रस के संसर्ग से उत्पन्न होने के कारण उनसे-अभिन्न ही माना गया है। क्यों कि लवण रस के भोग से ही अन्य दूसरे रस स्वादिष्ट लगते हैं। इसलिये तिक्तादि पांच रसों में ही लवण रस का अन्तर्भाव हो जाता है। इसलिये इस रस का स्वतंत्र रूप से सूत्रकार ने कथन नहीं किया है। यह अर्थ "से किं तं गंधनामे" यहां सेलेकर" "महुररसणामे" यहां तक के पाठ का किया है। (से तं रसणामे) इस प्रकार यह रस नाम है। (से किं तं फासणामे) हे भदन्त ! गुणनाम का जो चतुर्थ भेद स्पर्श नाम है वह क्या है ?

उत्तर--(फासणामे अट्ठविहे पण्णत्ते) स्पर्श नाम आठ प्रकार का प्रज्ञप्त हुआ है। स्पर्शन इन्द्रिय से जो जाना जाता है वह स्पर्श है।

રૂપે ગણાવે છે. સિધ્ધાલુણ, નમક, આદિમાં આ રસનો સદ્ભાવ હોય છે. આ રસ સ્તંભિત આહાર આદિનો વિધ્વંસ કરવાવાળા હોય છે. આહારવર્ધક અને બંધકોશનો નાશક હોય છે. આ રસ મધુર આદિ રસના સંસર્ગથી ઉત્પન્ન થતો હોવાને કારણે, તે રસોથી અભિન્ન જ ગણીને અહીં તેને સ્વતંત્ર પ્રકાર રૂપે ગણવામાં આવેલ નથી કારણ કે લવણરસના યોગથી જ અન્ય રસો સ્વાદિષ્ટ લાગે છે. તેથી તિક્તાદિ પાંચે રસોમાં લવણરસનો સમાવેશ થઇ જાય છે. તેથી જ સૂત્રકારે આ રસનું સ્વતંત્ર રૂપે કથન કર્યું નથી "से किं तं गंधनामे" આ સૂત્રથી લઇને "महुररसणामे" આ સૂત્ર પર્યન્તના સૂત્રપાઠનો ભાવાર્થ ઉપર પ્રકટ કરવામાં આવ્યો છે. (से तं रसणामे) આ પ્રકારનું રસનામનું સ્વરૂપ સમજવું.

પ્રશ્ન-(से किं तं फासणामे ?) હે ભગવન્ ! ગુણનામના ચોથા ભેદ રૂપ જે સ્પર્શનામ છે, તેનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર-(फासणामे अट्ठविहे पण्णत्ते) સ્પર્શનામ આઠ પ્રકારનું પ્રજ્ઞપ્ત થયું છે. સ્પર્શેન્દ્રિયની મદદથી જે અનુભવ થાય છે, તેનું નામ સ્પર્શ છે

स्तब्धताकारणं पाषाणादिगतः स्पर्शः-कर्कशस्पर्शः-तस्य नाम कर्कशस्पर्शनाम। मृदुकस्पर्शनाम-कोमलस्पर्शकारणं तिनिशलतादिगतः स्पर्शः-मृदुकस्पर्शस्तस्य नाम। गुरुकस्पर्शनाम-अधःपतनहेतुरयोगोलकादिगतः स्पर्शः-गुरुकस्पर्शस्तस्य नाम। लघुकस्पर्शनामयायस्तिर्यगूर्ध्वाधोगमनहेतुरर्कतूलादि निश्रितः स्पर्शः-लघु-

इस स्पर्श का जो नाम है वह स्पर्श नाम है। (तंजहा) इसके आठ प्रकार ये हैं-(कक्खडफासणामे, मउयफासणामे, गरुयफासणामे, लहुयफासणामे, सीयफासणामे, उसिणफासणामे, णिद्धफासणामे, लुक्खफासणामे) कर्कश स्पर्श नाम मृदुक स्पर्श नाम, गुरुकस्पर्श नाम, लघुकस्पर्श नाम, शीतस्पर्श नाम, उष्णस्पर्श नाम, स्निग्धस्पर्श नाम, रूक्षस्पर्श नाम। कर्कशस्पर्श पाषाण आदि में रहता है। यह स्पर्श स्तब्धता का कारण होता है। इसका जो नाम है वह कर्कशस्पर्श नाम है। कोमलस्पर्श का जो कारण होता है तथा तिनिशलता-वेत्र लता आदि में जो रहता है वह मृदुकस्पर्श है। इसका जो नाम है वह मृदुकस्पर्श नाम है। जो अधःपतन का कारण होता है और अयोगोलक आदि में रहता है वह गुरुकस्पर्श है। इसका जो नाम है वह गुरुकस्पर्श नाम है। जो स्पर्श प्रायः तिर्यग् ऊर्ध्व, अधः गमन में कारण होता है और जो अर्कतूल आदि के आश्रय रहता है वह लघुक स्पर्श है। उसका जो

આ સ્પર્શનું જે નામ છે તે સ્પર્શનામ છે. (तंजहा) તે સ્પર્શનામના આઠ પ્રકાર નીચે પ્રમાણે છે-(कक्खडफासणामे, मउयफासणामे, गरुयफासणामे, लहुयफासणामे, सीयफासणामे, उसिणफासणामे, णिद्धफासणामे, लुक्खफासणामे) (૧) કર્કશસ્પર્શનામ, (૨) મૃદુસ્પર્શનામ, (૩) ગુરુસ્પર્શનામ, (૪) લઘુસ્પર્શનામ, (૫) શીતસ્પર્શનામ, (૬) ઉષ્ણસ્પર્શનામ, (૭) સ્નિગ્ધસ્પર્શનામ (૮) રૂક્ષસ્પર્શનામ.

પાષાણ આદિમાં કર્કશ સ્પર્શનો સદ્ભાવ હોય છે. આ સ્પર્શ સ્તબ્ધતાના કારણભૂત બને છે. તેનું જે નામ છે તે કર્કશસ્પર્શનામ છે કોમલસ્પર્શનો અનુભવ કરાવનાર તિનિશલતા (વેત્રલતા) આદિના સ્પર્શને મૃદુસ્પર્શ કહે છે તેનું જે નામ છે. તે મૃદુકસ્પર્શનામ છે. જે વસ્તુના અધઃપતનમાં કારણભૂત બને છે એવા લોઢાના ગોળા આદિના સ્પર્શને ગુરુકસ્પર્શ કહે છે. આ સ્પર્શ દ્વારા વસ્તુ ભારે છે એવો અનુભવ થાય છે. આ ગુરુક સ્પર્શનું જે નામ છે તે ગુરુકસ્પર્શનામ છે. આંકડા તેલ આદિ હલકી વસ્તુઓના સ્પર્શને લઘુકસ્પર્શ કહે છે આ સ્પર્શ વસ્તુના તિર્યગ્ગમન, ઉર્ધ્વગમન અને અધોગમનમાં કારણભૂત બને છે, તેનું જે નામ છે તે

कस्पर्शस्तस्य नाम। शीतस्पर्शनाम-देहस्तम्भादि हेतुः हिमाद्याश्रितः स्पर्शः शीतस्पर्शस्तस्य नाम। उष्णस्पर्शनाम-आहारपाकादिकारणं वह्न्याद्यनुगतः स्पर्शः उष्णस्पर्शस्तस्य नाम। स्निग्धस्पर्शनाम-पुद्गलद्रव्याणां मिथः संयुज्यमानानां बन्धनिबन्धनं तैलादिस्थितः स्पर्शः स्निग्धस्पर्शस्तस्य नाम। तथा-रूक्षस्पर्शनामपुद्गलद्रव्याणामबन्धनिबन्धनं भस्मादिस्थितः स्पर्शः रूक्षस्पर्शस्तस्य नाम। इत्यष्टविधं स्पर्शनाम बोध्यम्। तदेतदुपसंहरन्नाह-तदेतत्स्पर्श नामेति। अथ किं तत् संस्थाननाम? इति प्रश्नः। उत्तरयति-संस्थाननाम हि परिमण्डलसंस्थाननामादिभेदैः

नाम है वह लघुक स्पर्श नाम है। देहस्तम्भ आदि का जो हेतु होता है एवं जो हिम आदि के सहारे रहता है वह शीतस्पर्श है। इसका जो नाम है वह शीतस्पर्श नाम है। आहार के पकाने आदि का जो कारण होता है ऐसा अग्नि आदि के सहारे रहा हुआ जो स्पर्श है वह उष्णस्पर्श है। इसका जो नाम है वह उष्णस्पर्श नाम है। परस्पर मिले हुए पुद्गल द्रव्यों के संश्लिष्ट होने का कारण होता है ऐसा तैलादिक पदार्थ के सहारे रहा हुआ स्पर्श-स्निग्धस्पर्श है। इसका जो नाम है वह स्निग्धस्पर्श नाम है। जो पुद्गल द्रव्यों के अबन्ध का कारण होता है ऐसा भस्मादि स्थित स्पर्श रूक्षस्पर्श है। इसका जो नाम है वह रूक्षस्पर्श नाम है। (से तं फासणामे) इस प्रकार यह आठ प्रकार का स्पर्शनाम है। (से किं तं संठाणणामे) वह संस्थान नाम क्या है?

લઘુકસ્પર્શનામ છે હિમ, બરફ આદિના સ્પર્શથી જે સ્પર્શનો અનુભવ થાય છે તે સ્પર્શને શીતસ્પર્શ કહે છે. શરીર ઠુંઠવાઇ જવામાં કે અકડાઈ જવામાં આ સ્પર્શ કારણભૂત બને છે. તેનું જે નામ છે, તે શીતસ્પર્શનામ છે. આહારને રાંધવા આદિમાં જે કારણભૂત થાય છે અને અગ્નિ આદિમાં જેનો સદ્ભાવ હોય છે, તે સ્પર્શને ઉષ્ણસ્પર્શ કહે છે તેનું જે નામ છે તે ઉષ્ણસ્પર્શનામ છે. તેલ, ઘી આદિ પદાર્થોમાં જે સ્પર્શનો સદ્ભાવ હોય છે તે સ્પર્શને સ્નિગ્ધસ્પર્શ કહે છે. પરસ્પર મળેલાં પુદ્ગલ દ્રવ્યોના એક બીજા સાથે સંશ્લિષ્ટ રહેવામાં આ સ્પર્શ કારણભૂત બને છે. તેનું જે નામ છે તે સ્નિગ્ધસ્પર્શનામ છે જે સ્પર્શ પુદ્ગલ દ્રવ્યોના સંબન્ધમાં કારણભૂત બને છે તે સ્પર્શને રૂક્ષસ્પર્શ કહે છે ભસ્મ આદિમાં આ સ્પર્શનો સદ્ભાવ હોય છે. તેનું જે નામ છે તે રૂક્ષસ્પર્શનામ છે (से तं फासणामे) આ પ્રકારનું આઠ પ્રકારના સ્પર્શનામનું સ્વરૂપ છે.

પ્રશ્ન-(से किं तं संठाणणामे? હે ભગવન્! સંસ્થાન નામનું સ્વરૂપ કેવું છે?

पंचविधं प्रज्ञप्तम्। संस्थानमाकारविशेषस्तत्स्वरूपं प्रसिद्धमेव। तदेतदुपसंहरन्नाह-तदेतत् संस्थाननामेति। इत्थं गुणनाम प्ररूपितमिति सूचयितुमाह-तदेतत् गुणनामेति ॥सू० १४६॥

मूलम्-से किं तं पज्जवणामे? पज्जवणामे अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा-एगगुणकालए दुगुणकालए तिगुणकालए जाव दसगुणकालए संखिज्जगुणकालए असंखिज्जगुणकालए अणंतगुणकालए। एवं नीललोहियहालिद्दसुक्किल्ला वि भाणियव्वा। एगगुणसुरभिगंधे दुगुणसुरभिगंधे तिगुणसुरभिगंधे

(संठाणनामे पंचविहे पण्णत्ते) संस्थान नाम पांच प्रकार का प्रज्ञप्त हुआ है (परिमंडलसंठाणनामे, वट्टसंठाणनामे, तंस संठाणनामे, चउरंस-संठाणनामे आययसंठाणनामे) संस्थान नाम आकार विशेष का है। यह संस्थान नाम परिमंडल संस्थान नाम आदि के भेद से पांच प्रकार का है। इन संस्थानों का स्वरूप प्रसिद्ध ही है। संस्थान के नाम इस प्रकार से हैं-परिमंडल संस्थान, वृत्त संस्थान, त्र्यस्रसंस्थान, चतुरस्र-संस्थान, और आयतसंस्थान। (से तं संठाणनामे) इस प्रकार यह संस्थान नाम है। (से तं गुणनामे) इस प्रकार से यहांतक यह गुणनाम का वर्णन है। द्रव्यों के नाम द्रव्यनाम, वर्ण रस आदिकोंके नाम गुणनाम है। ॥सू०१४६॥

उत्तर-(संठाणनामे पंचविहे पण्णत्ते) संस्थाननामना पांच प्रकार कहा छे. (तंजहा) ते प्रकारो नीचे प्रमाणे छे-(परिमंडलसंठाणनामे, वट्टसंठाणणामे, तं ससंठाणनामे, चउरंससंठाणनामे, आययसंठाणनामे) आकार विशेषनुं नाम संस्थान छे आ संस्थाननामना परिमंडल संस्थान नाम आदि पांच प्रकारो छे. आ संस्थानोनुं स्वरूप जाणीतुं होवाथी अहीं तेमनुं वर्णन करवामां आव्युं नथी संस्थाननां नाम आ प्रमाणे छे-(१) परिमंडलसंस्थान (२) वृत्तसंस्थान, (३) त्र्यस्रसंस्थान, (४) चतुरस्रसंस्थान अने (५) आयत-संस्थान. (से तं संठाणनामे) आ प्रकारनुं संस्थान नामनुं स्वरूप छे. (से तं गुणनामे) वर्ण, रस, गंध, स्पर्श अने संस्थाननाम रूप गुणनामनुं आ प्रकारनुं स्वरूप छे द्रव्योनां नामने द्रव्यनाम कहे छे अने वर्ण रस गंध, स्पर्श अने संस्थानना नामने गुणनाम कहे छे. ॥सू०१४६॥

जाव अणंतगुणसुरभिगंधे। एवं दुरभिगंधोऽवि भाणियव्वो। एगगुणतित्ते जाव अणंतगुणतित्ते। एवं कडुयकसाय अंबिल-महुरावि भाणियव्वा। एगगुणकक्खडे। जाव अणंतगुणकक्खडे एवं मउयगरुयलहुयसीतउसिणणिद्धलुक्खावि भाणियव्वा। से तं पज्जवणामे ॥सू. १४७॥

छाया—अथ किं तत् पर्यवनाम ? पर्यवनाम अनेकविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—एकगुणकालकः, द्विगुणकालकः, त्रिगुणकालको यावद् दशगुणकालकः संख्येयगुणकालकः असंख्येयगुणकालकः अनन्तगुणकालकः। एवं नीललोहितहारिद्रशुक्ला अपि भणितव्याः। एकगुणसुरभिगन्धो द्विगुणसुरभिगन्धः त्रिगुणसुरभिगन्धो यावदनन्तगुणसुरभिगन्धः। एवं दुरभिगन्धोऽपि भणितव्यः। एकगुणतिक्तो यावदनन्तगुणतिक्तः। एवं कटुककषायाम्लमधुरा अपि भणितव्याः। एकगुणकर्कशो यावदनन्तगुणकर्कशः। एवं मृदुकगुरुकलघुकशीतोष्ण स्निग्धरूक्षा अपि भणितव्याः। तदेतत् पर्यवनाम ॥सू० १४७॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि—

सम्प्रति पर्यवनाम परिज्ञातुं पृच्छति—अथ किं तत् पर्यवनाम ? इति। उत्तरयति—पर्यवनाम—परि=समन्तात् अवन्ति=अपगच्छन्ति न तु द्रव्यवत् सर्वदैवावतिष्ठन्ते इति पर्यवाः। अथवा—परि=समन्तात् अवनानि=गमनानि=द्रव्यस्यावस्थान्तरप्राप्तिरूपाणीति पर्यवाः=एकगुणकालत्वादयस्तेषां नाम—पर्यवनाम। पर्याय-

---

"से किं तं पज्जवणामे" ? इत्यादि।

शब्दार्थ—(से किं तं पज्जवणामे) हे भदन्त ! पर्यव नाम क्या है ?

उत्तर—(पज्जवणामे अणेगविहे पण्णत्ते) पर्यवनाम अनेक प्रकार का प्रज्ञप्त हुआ है। द्रव्य के जैसी जो सर्वदा नहीं ठहरती हैं—किंतु बदलती रहती हैं वे पर्यव हैं। अथवा जो द्रव्य की भिन्न २ अवस्थारूप हों वे पर्यव हैं। ये पर्यव एक गुणकालत्व आदि हैं। इनका नाम पर्यव-

---

હવે પર્યવનામની પ્રરૂપણા કરવામાં આવે છે—

"से किं तं पज्जवणामे" इत्यादि—

શબ્દાર્થ—(से किं तं पज्जवणामे?) હે ભગવન્! પર્યવનામનું સ્વરૂપ કેવું કહ્યું છે?

ઉત્તર—(पज्जवणामे अणेगविहे पण्णत्ते) પર્યવનામ અનેક પ્રકારના કહ્યાં છે. દ્રવ્યની જેમ જેનું અસ્તિત્વ સદા રહેતું નથી, પણ જે બદલાતી જ રહે છે તેનું નામ પર્યાય અથવા પર્યવ છે અથવા તે દ્રવ્યની ભિન્ન ભિન્ન અવ-

नामेति पाठान्तरपक्षे-परि=समन्तात् अयन्ते=अपगच्छन्तीति पर्यायाः। यद्वा-परि=सामस्त्येन यन्ति=अभिगच्छन्ति वस्तुतामिति पर्यायास्तेषां नाम पर्यायनाम। अत्रपक्षेऽप्यर्थः पूर्वोक्त एव बोध्यः। पर्यवनाम हि अनेकविधं प्रज्ञप्तम्। अनेकविधत्वमेवाह-तद्यथा-एकगुणकालकः-अत्र गुणशब्दोंऽशार्थकः। एकगुणेन=एकांशेन कालकः=कृष्णः परमाण्वादिरेकगुणकालक इत्युच्यते। समस्तस्यापि त्रैलोक्य-

---

नाम हैं। जब "पज्जवणामे" इसकी संस्कृत छाया पर्यायनाम ऐसी होती है तब इस पाठान्तर पक्ष में भी यही पर्यव नामोक्त अर्थ ही निकलता है (तंजहा) यह पर्यवनाम अनेक प्रकार का इस प्रकार से है-(एगगुणकालए, दुगुणकालए, तिगुणकालए, जाव दसगुणकालए संखिज्जगुणकालए, असंखिज्जगुणकालए अणंतगुणकालए) एक गुणकालक, द्विगुणकालक, त्रिगुणकालक, यावत् दशगुणकालक, संख्यातगुणकालक, असंख्यातगुणकालक, अनंतगुणकालक। यहां गुण शब्द अंश का वाचक है। जिस परमाणु आदि द्रव्य में कृष्ण गुण का एक अंश हो वह परमाणु आदि द्रव्य एक गुणकालक है। इसी प्रकार जिस परमाणु आदि द्रव्य में कृष्ण गुण के दो अंश हैं वह द्विगुणकालक है तीन अंश कृष्ण गुण के हैं वह त्रिगुणकालक है यावत् संख्यात अंश कृष्णगुण के हैं वह संख्यातगुणकालक है असंख्यात

સ્થાઓ રૂપ હોય છે. દ્રવ્યની એક ગણી, બે ગણી કાળાશ આદિ રૂપ આ પર્યાય હોય છે. "पज्जवणामे" આ પદની સંસ્કૃત છાયા 'પર્યાયનામ' થાય છે. તે પર્યાયનામનો અર્થ પણ પર્જવનામ થાય છે. આ રીતે પર્યાય અને પર્જવ, આ બન્ને સમાન અર્થી પદો છે.

(तं जहा) તે પર્યવનામના અનેક પ્રકારો છે જેમ કે (एगगुणकालए, दुगुणकालए, तिगुणकालए, जाव दसगुणकालए, संखिज्जगुणकालए, असंखिज्जगुणकालए, अणंतगुणकालए) એક ગુણકાલક, દ્વિગુણકાલક, ત્રિગુણથી લઇને દસગુણ પર્યન્તનું કાલક, સંખ્યાત ગુણકાલક, અસંખ્યાત ગુણકાલક અને અનંતગુણકાલક અહીં 'ગુણ' શબ્દ અંશનો વાચક છે. જે પરમાણુ આદિ દ્રવ્યમાં કાળાશનો એક અંશ હોય છે તે પરમાણુ આદિ દ્રવ્યને એકગુણ કાલક દ્રવ્ય કહે છે. એજ પ્રમાણે જે પરમાણુ આદિ દ્રવ્યમાં કાળાશના બે અંશ હોય છે તે પરમાણુ આદિ દ્રવ્યને દ્વિગુણકાલક દ્રવ્ય કહે છે એજ પ્રમાણે દસગુણકાલક પર્યન્તના દ્રવ્યોનો અર્થ પણ સમજવો જે દ્રવ્યમાં કાળાશના સંખ્યાત અંશ હોય છે તે દ્રવ્યને સંખ્યાત ગુણકાલક કહે છે જે દ્રવ્યમાં

गतकालकस्य असत्कल्पनया पिण्डितस्य च एकः=सर्वजघन्यो गुणः=अंशस्तेन कालकः-एकगुणकालकः-सर्वजघन्य-कृष्ण इत्यर्थः। एवं द्विगुणकालकप्रभृत्यनन्तगुणकालकान्ताः परमाणवो बोध्याः। एवमेव एकगुणनीलकादय एकगुणलोहित-

---

अंश कृष्णगुण के हैं वह असंख्यात गुणकालक है और अनंत अंश कृष्ण गुण के हैं वह अनंतगुणकालक है। एक गुण से जो काला है ऐसा परमाण्वादि द्रव्य एक गुणकालक शब्द का वाच्यार्थ है। इसी प्रकार से अन्यत्र भी-द्विगुणकालक आदि में भी समझना चाहिये। तात्पर्य कहने का यह है कि तीन लोक में जितना भी कालक गुण है उसको असत् कल्पना से एकत्रित करलो, फिर उसमें से उस कृष्ण वर्ण का सबसे जघन्य अंश लेलो-इस जघन्य कृष्णांश से जो काला हो-वह एक गुणकालक परमाणु आदि द्रव्य है। (एवं) इसी प्रकार (नीललोहियहालिद्दसुक्किल्ला वि भाणियव्वा) एक गुण-अंश नीलवर्ण का जिसमें है वह एक गुणनीलक परमाणु आदि द्रव्य है। दो गुण-अंश-नीलवर्ण के जिसमें हैं वह द्विगुणनीलक है। इसी प्रकार से तीन चार आदि संख्यात, असंख्यात और अनन्त अंश नीलवर्ण के जिसमें हैं वे तीन गुणनीलक, चार गुणनीलक यावत् संख्यात गुणनीलक

કાળાશના અસંખ્યાત અંશ હોય છે, તે દ્રવ્યને અસંખ્યાત ગુણ કાલક કહે છે અને જે દ્રવ્યમાં કાળાશના અનંત અંશ હોય છે તે દ્રવ્યને અનંતગુણ કાલક કહે છે. આ રીતે કાળાશના એક ગુણ અથવા અંશવાળું પરમાણુ આદિ દ્રવ્ય "એકગુણકાલક"નું સમાનાર્થી પદ છે. એજ પ્રમાણે દ્વિગુણ-કાલક આદિના વિષયમાં પણ સમજવું આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે-ત્રણે લોકમાં જેટલો કાલકગુણ (કાળાશ) છે તેને ધારો કે અસત્કલ્પનાને આધારે એકત્ર કરવામાં આવે ત્યાર બાદ તેમાંથી તે કૃષ્ણ વર્ણનો જઘન્ય (સૌથી નાનો) અંશ લઇ લો. આ જઘન્ય કૃષ્ણઅંશ પ્રમાણ કાળા દ્રવ્યને એક ગુણ કાલક પરમાણુ આદિ દ્રવ્ય કહે છે. (एवं) એજ પ્રમાણે (नील, लोहिय, हालिद्दसुक्किल्ला वि भाणियव्वा) જે પરમાણુ આદિ દ્રવ્યમાં નીલ વર્ણનો એક અંશ હોય છે તેને એક ગુણ નીલક પરમાણુ આદિ દ્રવ્ય કહે છે જેમાં નીલવર્ણના બે અંશ હોય છે તેને દ્વિગુણનીલક દ્રવ્ય કહે છે એજ પ્રમાણે ત્રણ, ચાર આદિ દસ પર્યન્તના નીલવર્ણના અંશ જેમાં હોય છે તે દ્રવ્યોને ત્રણગુણ નીલક, ચારગુણનીલક, (યાવત્) દસ ગુણનીકલ દ્રવ્ય કહે છે એજ પ્રમાણે સંખ્યાત, અસંખ્યાત અને અનંત અંશ નીલવર્ણ ધરાવતાં દ્રવ્યોને

कादय एकगुणहारिद्रादय एकगुणशुक्लादयश्च परमाणवो बोध्याः। तथा-एकगुणसुरभिगन्धाद्यनन्तगुणसुरभिगन्धान्ताः परमाणवो बोध्याः। एवमेकगुणदुरभिगन्धाद्य-

असंख्यात गुणनीलक एवं अनन्त गुणनीलक परमाणु आदि द्रव्य हैं। इसी प्रकार एक आदि अंश लोहितवर्ण का जिसमें है वह एक गुण लोहितक परमाणु आदि द्रव्य है, एक गुण आदि पीतवर्ण का जिसमें है वह एक गुण पीतवर्णवाला दो गुण पीत वर्णवाला परमाणु आदि द्रव्य है। इसी प्रकार से एक गुण आदि शुल्क वर्णवाले परमाणु आदि द्रव्य भी जानना चाहिये। (एकगुणसुरभिगंधे दुगुणसुरभिगंधे, तिगुणसुरभिगंधे जाव अणंतगुणसुरभिगंधे-एवं दुरभिगंधोऽवि भाणियव्वो) एक-जघन्य-अंश सुरभिगंधवाला परमाणु आदि दो अंश सुरभिगंधवाले परमाणु आदि यावत् अनंत अंश सुरभि गंधवाले परमाणु आदि भी जानना चाहिये! एक जघन्य अंश दुरभिगंध का जिसमें है वह एक गुण दुरभिगंधवाला परमाणु आदि द्रव्य है यावत् अनंत अंश दुरभिगंध के जिसमें हैं वे अनन्त गुण दुरभिगंधवाले परमाणु आदि हैं।

અનુક્રમે સંખ્યાત ગુણનીકલ, અસંખ્યાત ગુણનીકલ અને અનંતગુણનીકલ દ્રવ્યો કહે છે. એજ પ્રમાણે જે પરમાણુ આદિ દ્રવ્યમાં લાલવર્ણનો એક અંશ હોય છે, તે પરમાણુ આદિ દ્રવ્યને એક ગુણ લોહિતક દ્રવ્ય કહે છે એજ પ્રમાણે દ્વિગુણલોહિતકથી લઈને અનંતગુણ લોહિતક પર્યન્તના પદોનો અર્થ જાતે જ સમજી શકાય એવો છે જે પરમાણુ આદિ દ્રવ્યમાં પીળાવર્ણનો એક અંશ હોય છે, તેને એક ગુણ પીતવર્ણવાળું કહે છે એજ પ્રમાણે દ્વિગુણ પીત વર્ણવાળાં દ્રવ્યોથી લઈને અનંતગુણપીતવર્ણવાળાં દ્રવ્યો વિષે પણ સમજવું એજ પ્રમાણે શુકલ વર્ણના એકથી લઈને અનંત પર્યન્તના અંશવાળા પરમાણુ આદિ દ્રવ્ય વિષે પણ સમજવું.

પર્યવનામના વધુ પ્રકારોને હવે પ્રકટ કરવામાં આવે છે—

(एकगुणसुरभिगंधे, दुगुणसुरभिगंधे, तिगुणसुरभिगंधे, जाव अणंतगुण सुरभिगंधे, एवं दुरभिगंधोऽवि भाणियव्वो) એક સુરભિગુણવાળું પરમાણુ આદિ (ઓછામાં ઓછા સુરભિના અંશવાળું પરમાણુ આદિ દ્રવ્ય), સુરભિના બે અંશવાળું, અને ત્રણથી લઈને અનંત પર્યન્તના સુરભિગંધના અંશોવાળાં પરમાણુ આદિ દ્રવ્યો પણ હોય છે એજ પ્રમાણે એકથી લઈને અનંત પર્યન્તના દુરભિગન્ધના અંશોવાળાં પરમાણુ આદિ દ્રવ્યો હોય છે જે પરમાણુ આદિ દ્રવ્યમાં દુર્ગંધનો ઓછામાં ઓછો અંશ-એક અંશ-હોય તે દ્રવ્યને એક ગુણ દુરભિગંધવાળું કહે છે. એજ પ્રમાણે બાકીનાં પદોનો અર્થ પણ સમજી લેવો.

नन्तगुणदुरभिगन्धान्ताः परमाणवो बोध्याः। तथा–एकगुणतिक्ताद्यनन्तगुणतिक्तपर्यन्ताः परमाणवो बोध्याः। एवमेव–एकगुणकटुकादयः, एकगुण कषायादयः, एकगुणाम्लादयः, एकगुणमधुरादयश्चापि परमाणवो बोध्याः। तथा–एकगुणकर्कशप्रभृत्यनन्तगुणकर्कशान्ताः बोध्याः। एवमेव–एकगुणमृदुकादयः, एकगुणगुरुकादयः, एकगुणलघुकादयश्च–कर्कशमृदु–गुरुलघुस्पर्शाः परमाणुषु न लभ्यन्ते, एषां बादरानन्तप्रदेशिस्कन्धेष्वेव सद्भावात्, ततोऽत्रपरमाणवो न ग्राह्य इति। तथा एकगुणशीतादयः, एकगुणोष्णादयः, एकगुणस्निग्धादयः, एकगुणरूक्षादयश्च

तथा एक गुण तिक्त का जिसमें है वह एक गुण तिक्तवाला परमाणु आदि है यावत् अनंत अंश तिक्त गुण के जिसमें हैं वे अनंत गुण तिक्तवाले परमाणु आदि हैं ऐसा जानना चाहिये। इसी प्रकार से एक गुण कटुकादिवाले, एक गुण कषाय आदिवाले, एक गुण अम्लादिवाले और एक गुण मधुरादि रसवाले परमाणु आदि भी जानना चाहिये तथा एक गुण कर्कश स्पर्शवाले से लेकर अनंत कर्कशांशवाले भी ऐसे ही जानना चाहिये! इसी प्रकार एक गुण मृदुक आदिवाले, एक गुण गुरु स्पर्श आदिवाले एक गुण लघु स्पर्श आदिवाले भी जानना चाहिये। कर्कश मृदु–गुरु लघु ये चार स्पर्श परमाणु में नहीं होते हैं, क्यों कि ये चार स्पर्श बादर अनन्तप्रदेशी स्कंध में ही होते हैं। तथा एक गुण

રસની અપેક્ષાએ પર્યાયના નીચે પ્રમાણે પ્રકારો છે–એક ગુણતિક્ત રસવાળું પરમાણુ આદિ દ્રવ્ય એજ પ્રમાણે અનંત પર્યન્તના તિક્તગુણવાળાં પરમાણુ આદિ દ્રવ્યો પણ હોય છે. એજ પ્રમાણે એક ગુણ કટુકથી લઈને અનંતગુણ કટુક પર્યન્તના, એક ગુણ કષાયથી લઈને અનંત ગુણ કષાય એક ગુણ અમ્લરસથી લઈને અનંતગુણ પર્યન્તના અમ્લ રસવાળાં અને એક ગુણ મધુરથી લઈને અનંત પર્યન્તના મધુરગુણવાળાં દ્રવ્યો પણ હોય છે.

સ્પર્શની અપેક્ષાએ પર્યાયના નીચે પ્રમાણે પ્રકારો છે–એક ગુણ કર્કશ સ્પર્શવાળાથી લઈને અનંતગુણ કર્કશ સ્પર્શવાળા, એજ પ્રમાણે એક ગુણ મૃદુકથી લઈને અનંત ગુણ મૃદુક પર્યન્તના, એક ગુણથી લઈને અનેક ગુણ પર્યન્તના ગુરુ સ્પર્શવાળાં, એક ગુણથી અનેક ગુણ પર્યન્તના લઘુ સ્પર્શવાળાં, એક ગુણથી લઈને અનેક ગુણ શીતસ્પર્શવાળાં, એકથી લઈને અનેક ગુણ ઉષ્ણ-સ્પર્શવાળાં, એકથી લઈને અનેક ગુણ પર્યન્તના સ્નિગ્ધ સ્પર્શવાળાં અને એકથી અનેક ગુણ પર્યન્તના રૂક્ષસ્પર્શવાળાં, દ્રવ્યો પણ હોય છે કર્કશ, મૃદુ,

बोध्याः। ननु–गुणपर्याययोः को भेदः? इति चेदुच्यते–सर्वदा सहवर्त्तिनो गुणाः, क्रमवर्त्तिनः पर्यायाः, एवं च–सदैव सहवर्त्तित्वाद् वर्णगन्धरसादयः सामान्येन गुणा उच्यन्ते, न हि मूर्त्ते वस्तुनि कदाचिदपि वर्णगन्धरसादयो निवर्त्तन्ते। एकगुणकालकत्वादयस्तु पर्यायाः। द्विगुणकालकत्वावस्थायामेकगुणकालत्वस्याभावेन

शीतादिवाले, एक गुण उष्णादिवाले, एक गुणस्निग्धादिवाले और एक गुण रूक्षादिवाले भी जानना चाहिये।

शंका–गुण और पर्याय में क्या भेद हैं? शंकाकार का यह अभिप्राय है कि द्रव्य में गुण और पर्यायें युगपत् रहा करती हैं तब ये दोनों एक ही हैं–फिर गुण और पर्यायों को सूत्रकार ने अलग अलग क्यों कहा?

उत्तर–गुण और पर्यायें यद्यपि द्रव्य में एकसाथ रहती हैं–फिर भी इनमें यह भेद है कि गुण तो द्रव्य के सहवर्ती होते हैं और पर्यायें क्षण विध्वंसी होने के कारण द्रव्य की सहवर्ती नहीं होती हैं। ये तो क्रमवर्तिनी ही होती हैं। इसलिये सर्वदा सहवर्ती होने के कारण वर्ण गंध, और रसादिक सामान्य से गुण कहे जाते हैं और उनकी एक गुण कालकत्वादि क्रमवर्ती अवस्थाएँ पर्याय कही जाती हैं। ये वर्ण, गंध, आदि गुण मूर्त वस्तु जो पुद्गल हैं उससे कभी भी निवृत्त नहीं होते हैं।

ગુરુ અને લઘુ, આ ચાર સ્પર્શોનો પરમાણુમાં સદ્ભાવ હોતો નથી, કારણ કે તે ચાર સ્પર્શોનો સદ્ભાવ બાદર અનંત પ્રદેશી સ્કન્ધમાં જ હોય છે.

શંકા–ગુણ અને પર્યાય વચ્ચે શો ભેદ છે? (આ પ્રશ્નનો ભાવાર્થ એ છે કે દ્રવ્યમાં ગુણ અને પર્યાયો એક સાથે જ રહેતાં હોય છે આ રીતે તે બન્ને એક જ હોવા છતાં પણ સૂત્રકારે ગુણ અને પર્યાયોનું જુદા જુદા વિષય રૂપે શા માટે કથન કર્યું છે?)

ઉત્તર–ગુણ અને પર્યાયો જો કે દ્રવ્યમાં એક સાથે રહે છે, છતાં પણ તે બન્નેમાં આ પ્રમાણે ભેદ છે–

ગુણતો દ્રવ્યોનો સહવર્તી હોય છે, પરન્તુ પર્યાયો ક્ષણ વિધ્વંસી હોવાને કારણે દ્રવ્યના સહવર્તી હોતા નથી વર્ણ, ગંધ, રસ આદિ સર્વદા સહવર્તી હોવાને કારણે તેમને ગુણ કહેવામાં આવે છે. પણ તેમની એક ગુણકાલત્વ આદિ ક્રમવર્તી અવસ્થાઓને પર્યાય કહેવામાં આવે છે. વર્ણ, ગંધ આદિ જે ગુણો છે તેમનો મૂર્ત વસ્તુમાંથી–પુદ્ગલમાંથી–કદી પણ નાશ (નવૃત્તિ) થતો નથી ગુણોના અંશોનું નામ પર્યાય છે. ગુણનો એક અંશ બે અંશોની

एकगुणकालकत्वावस्थायां द्विगुणकालकत्वस्याभावेन च एकगुणकालकत्वादीनां क्रमवृत्तित्वात् पर्यायत्वं बोध्यम्। उक्तंच—

"सहवर्त्तिनो गुणाः, यथा जीवस्य चैतन्यामूर्त्तत्वादयः।

क्रमवर्त्तिनः पर्यायाः यथा तस्यैव नारकत्वतिर्यक्त्वादयः॥" इति।

ननु यद्येवं तर्हि वर्णादिसामान्यस्य भवतु गुणत्वम्, तद्विशेषाणां कृष्णादीनां तु गुणत्वं न स्यात्, तेषामनियमितत्वात्, इति चेदाह–कृष्णादीनां वर्णसामान्यभेदा-

---

गुणों के गुणांश पर्याय हैं। गुण का एक अंश दो अंशों को अवस्था में निवृत्त हो जाती–हैं। इसलिये ये गुणांश पर्याय हैं। तात्पर्य कहने का यह है कि जब परमाणु द्रव्य में सर्व जघन्य रूप कृष्णादि गुण रहते हैं तब वे, दो अंश कृष्णादि गुणों के आने पर निवृत्त हो जाते हैं। इसी प्रकार कृष्णादि गुणों के दो अंश एक अंश कृष्णादि गुणों की अवस्था में निवृत्त हो जाते हैं। इसलिये कृष्णादि गुणों के ये एक, दो तीन यावत् संख्यात असंख्यात और अनंत अंश सब पर्याय हैं। क्योंकि ये क्रमवर्ती हैं। उक्तंच–"सहवर्ती" इत्यादि गुण सहवर्ती होते हैं–जैसे जीव के चैतन्य अमूर्तत्व आदि। पर्यायें क्रमवर्ती होती हैं–जैसे जीव की नारक तिर्यक् आदि पर्यायें।

शंका–यदि यही बात है तो फिर वर्णादि सामान्य में ही गुणपना होना चाहिये–वर्णादिकों के विशेष जो कृष्ण आदि हैं उनमें गुणपना

અવસ્થામાં નિવૃત્ત થઈ જાય છે અને બે અંશ એક અંશની અવસ્થામાં પણ નિવૃત્ત થઇ જાય છે. તેથી તે ગુણાંશને પર્યાય રૂપ ગણવામાં આવે છે. આ કથનનું તાત્પર્ય નીચે પ્રમાણે છે–ધારો કે કોઇ દ્રવ્યમાં ઓછામાં ઓછા પ્રમાણવાળા એટલે કે એક ગુણ (અંશ) કાળાશ આદિ ગુણ રહેલો હોય પરન્તુ બે અંશ (ગુણ) કૃષ્ણાદિ ગુણોનું તે દ્રવ્યમાં આગમન થતાં જ તે એક ગુણ કૃષ્ણાદિ ગુણોની નિવૃત્તિ થઇ જાય છે એજ પ્રમાણે કૃષ્ણાદિ ગુણોના બે અંશ રહેલા હોય, તો એક ગુણકૃષ્ણાદિ અવસ્થાની પ્રાપ્તિ થતાં જ તે બે અંશોની નિવૃત્ત થઈ જાય છે તેથી કૃષ્ણાદિ ગુણોના એક, બે, ત્રણ, ચાર, આદિથી લઈને સંખ્યાત, અસંખ્યાત અને અનંત પર્યન્તના બધા અંશો પર્યાય રૂપ છે, કારણ કે તેઓ ક્રમવર્તી હોય છે. કહ્યું પણ છે કે–("सहवर्ती") ઈત્યાદિ આ કથન દ્વારા એ વાત પ્રકટ કરવામાં આવી છે કે ગુણ સહવર્તી હોય છે. જેમ કે જીવના ચૈતન્ય, અમૂર્તત્વ આદિ ગુણો સહવર્તી છે. પર્યાયો ક્રમવર્તી હોય છે. જેમ કે જીવની નારક, તિર્યંચ આદિ પર્યાયો.

શંકા–જો એવું હોય, તો વર્ણાદિ સામાન્યમાં જ ગુણપણું હોવું જોઇએ પરન્તુ કાળાશ આદિ જે વર્ણવિશેષો છે તેમાં ગુણપણાનો અભાવ હોવો જોઇએ,

नामपि प्रभूतकालं प्रायः सहावस्थायित्वमिति तेषामपि गुणत्वं बोध्यम्। नन्वेते गुणपर्यायाः पुद्गलास्तिकायस्यैव भवताऽभिहिताः, न तु धर्मास्तिकायादीनाम्। दृश्यन्ते च धर्मास्तिकायादीनामपि गुणा गतिस्थित्यवगाहोपयोगवर्त्तनादयः, पर्यायाश्च प्रत्येकमनन्ता अगुरुलघ्वादय इति चेदाह-इन्द्रियप्रत्यक्षगम्यत्वात् सुप्रति-

---

नहीं होना चाहिये। क्योंकि ये अनियमित हैं। शंकाकार की इस शंका का अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार गुण के एक अंश दो-अंश आदि अनियमित है इसलिये ये पर्याय हैं उसी प्रकार कृष्णादि भी अनियमित है अतः इन्हें भी-पर्याय ही मानना चाहिये-गुण नहीं। सो इस शंका का उत्तर यह है कि वर्ण सामान्य के भेद जो ये-कृष्णादि हैं वे प्रायः बहुत समय तक द्रव्य के साथ अवस्थित रहते हैं। इसलिये इनमें गुणता मानी गई है। पर्यायें इस प्रकार से द्रव्य के साथ नियमित प्रभूतकाल तक-नहीं रहती हैं। इसलिये अचिरस्थायी होने से उन में गुणता नहीं मानी गई है।

शंका-ये गुण पर्यायें आपने पुद्गलास्तिकाय की ही कही हैं धर्मास्तिकायादिकों की नहीं कहीं हैं। सो ऐसा तो है नहीं क्योंकि पुद्गलास्तिकाय के जैसा धर्मास्तिकायादिकों में भी गतिहेतुत्व, स्थितिहेतुत्व, अवगाहहेतुत्व, उपयोग एवं वर्त्तनादि गुण और इनमें प्रत्येक में अनन्त अगुरुलघु आदि रूप पर्यायें देखी जाती हैं-

---

કારણ કે તેઓ અનિયમિત છે, અહીં શંકા કરનાર વ્યક્તિ એવું કહેવા માગે છે કે જેમ ગુણના એક અંશ, બે અંશ આદિ અનિયમિત હોવાથી તેમને પર્યાય રૂપ ગણવામાં આવે છે, એજ પ્રમાણે કૃષ્ણાદિ ગુણો પણ અનિયમિત હોય છે, તેથી તેમને પણ ગુણરૂપ માનવાને બદલે પર્યાય રૂપ જ માનવા જોઈએ.

આ શંકાનું સમાધાન આ પ્રમાણે કરી શકાય—

વર્ણસામાન્યના ભેદ રૂપ જે કૃષ્ણાદિ વર્ણો છે, તેઓ સામાન્ય રીતે ઘણા સમય સુધી દ્રવ્યની સાથે અવસ્થિત રહે છે (વિદ્યમાન રહે છે) તેથી કૃષ્ણાદિ વર્ણને દ્રવ્યના ગુણરૂપ માનવામાં આવેલ છે પરન્તુ પર્યાયો એ રીતે દ્રવ્યની સાથે લાંબા સમય સુધી રહેતા નથી આ રીતે અચિરસ્થાયી હોવાને કારણે તેમને દ્રવ્યના ગુણરૂપ માનવાને બદલે દ્રવ્યની પર્યાયો રૂપ માનવામાં આવે છે.

શંકા-આપે અહીં પુદ્ગલાસ્તિકાયના જ ગુણો અને પર્યાયોનું પ્રતિપાદન કર્યું છે. ધર્માસ્તિકાય આદિના ગુણો અને પર્યાયોનું તો આપે કથન જ કર્યું નથી પુદ્ગલાસ્તિકાયની જેમ ધર્માસ્તિકાય આદિકોમાં પણ ગતિ હેતુત્વ, સ્થિતિહેતુત્વ, અવગાહહેતુત્વ, ઉપયોગ અને વર્ત્તનાદિ ગુણોનો અને અનંત અગુરુલઘુ આદિ પર્યાયોનો અહીં શા કારણે ઉલ્લેખ કરાયો નથી ?

पाद्यतया पुद्गलद्रव्यस्यैव गुणपर्याया उक्ताः, न तु शेषाणां धर्मास्तिकायादीनाम्। तस्माद् यत् किमपिनाम तेन सर्वेणापि द्रव्यनाम्ना गुणनाम्ना पर्यायनाम्ना वा भवितव्यम्, नातः परं किमपि नामास्ति। ततः सर्वस्यैवानेन संग्रहात् त्रिनामैतदुच्यते इति ॥सू० १४७॥

उत्तर-पुद्गल द्रव्य को गुण पर्यायें इन्द्रिय प्रत्यक्ष द्वारा गम्य होने से सुप्रतिपाद्य हैं इसलिये सूत्रकारने उसकी ही गुण और पर्यायें यहां कही हैं शेष धर्मास्तिकायादिकों की नहीं। इसलिये जो भी कोई नाम है वह या तो द्रव्य का नाम होगा, या पर्याय का नाम होगा या गुण का नाम होगा। इससे आगे और कोई नाम नहीं होगा अतः समस्त नामों का इस त्रिनाम से संग्रह हो जाने से यह त्रिनाम कहलाता है।

भावार्थ-सूत्रकार ने इस सूत्र द्वारा त्रिनाम की व्याख्या की है-उसमें उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि तीन प्रकार का जो नाम है वह त्रिनाम है। नाम के तीन प्रकार द्रव्य गुण और पर्याय नाम हैं। जो भी नाम होगा वह या तो द्रव्य को लेकर होगा, या गुण को लेकर होगा या पर्याय को लेकर होगा। धर्मास्तिकाय आदि जो नाम हैं वे द्रव्याश्रित नाम है। अर्थात्-द्रव्यों के जो नाम हैं वे द्रव्य नाम हैं। गुणों के जो

ઉત્તર-પુદ્ગલદ્રવ્યના ગુણો અને પર્યાયો ઇન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ દ્વારા અનુભવી શકાય તેવાં હોવાથી તેમનું પ્રતિપાદન સરળતાપૂર્વક કરી શકાય છે પરન્તુ ધર્માસ્તિકાયાદિના ગુણ પર્યાયોનો ઇન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ દ્વારા અનુભવ કરી શકતો નથી તેથી જ સૂત્રકારે અહીં પુદ્ગલ દ્રવ્યના જ ગુણો અને પર્યાયોનું પ્રતિપાદન કર્યું છે, બાકીનાં ધર્માસ્તિકાય આદિકોના ગુણો અને પર્યાયોનું પ્રતિપાદન કર્યું નથી તેથી જ જે કોઈ પણ નામ હશે તે કાં તો દ્રવ્યનું નામ હશે, કાં તો ગુણનું નામ હશે કાં તો પર્યાયનું નામ હશે તેનાં કરતાં આગળ બીજું કોઈ પણ નામ નહીં હોય તેથી સમસ્ત નામોનો આ ત્રિનામ વડે સંગ્રહ થઈ જવાથી, તેમને અહીં ત્રિનામ રૂપ કહેવામાં આવેલ છે.

ભાવાર્થ-સૂત્રકારે આ સૂત્ર દ્વારા ત્રિનામનું નિરૂપણ કર્યું છે આ સૂત્રમાં તેમણે એ વાત સ્પષ્ટ કરી છે કે ત્રણ પ્રકારનું જે નામ છે તે ત્રિનામ છે. નામના ત્રણ પ્રકાર નીચે પ્રમાણે છે-(૧) દ્રવ્યનામ, (૨) ગુણનામ, અને (૩) પર્યાયનામ જે કોઈ પણ નામ હશે કાં તો દ્રવ્યને આધારે હશે, કાં તો ગુણને આધારે હશે, કાં તો પર્યાયને આધારે હશે ધર્માસ્તિકાય આદિ જે નામો છે તેઓ દ્રવ્યાશ્રિત નામો છે એટલે કે દ્રવ્યોનાં જે નામ

नाम हैं वे गुणनाम हैं-इसीलिये गुणनाम पांच प्रकार का कहा गया है। यद्यपि गुण रूप रसादि के भेद से चार प्रकार का होता है परन्तु संस्थान को भी पुद्गल द्रव्याश्रित सर्वदा होने के कारण गुणरूप मान लिया गया है इसलिये गुणनाम में पंचविधता कही गई है। पांच प्रकार के वर्णों का, दो प्रकार के गंधों का, पांच प्रकार के रसों का और आठ प्रकार के स्पर्शों का तथा पांच प्रकार के परिमंडल आदि आकारों का जो २ नाम है वह गुण नाम होकर भी भिन्न २ रूप से वर्णादि नाम है। इस प्रकार ये गुणनाम २५ प्रकार के होकर भी एक गुणनाम में ही अन्तर्भूत हैं। पर्याय नाम नियमित नहीं हैं।-क्योंकि पर्यायें स्वयं अनेकविध हैं। रूप, रस, गंध आदि जितने भी गुण हैं उन सब में उनके एक दो तीन चार आदि संख्यात, असंख्यात अनंत अंश हैं एक कृष्ण गुण को ही ले लीजिये-कोई पदार्थ कम कृष्ण है, कोई उससे अधिक कृष्ण है और कोई उससे भी अधिक कृष्ण हैं। यह कृष्ण गुण की तरतमता उसके अंशों के ऊपर निर्भर है। कृष्ण गुण का सबसे कम जो एक

છે તે દ્રવ્યનામ છે. ગુણોનાં જે નામ છે તે ગુણનામ છે. તે ગુણનામ પાંચ પ્રકારના કહ્યા છે જો કે વર્ણ, રસ, ગંધ, અને સ્પર્શ રૂપ ચાર ગુણ હોય છે, પરન્તુ સંસ્થાન (આકાર)નો પણ પુદ્ગલ દ્રવ્યમાં સદા સદ્ભાવ રહે છે, તે કારણે અહીં સંસ્થાનને પણ ગુણ રૂપ ગણીને ગુણનામમાં પંચવિધતા પ્રકટ કરવામાં આવી છે. પાંચ પ્રકારના વર્ણોના, બે પ્રકારના ગંધોનાં, પાંચ પ્રકારના રસોના, આઠ પ્રકારના સ્પર્શોનાં અને પાંચ પ્રકારના સંસ્થાનોનાં (આકારોનાં) જે જે નામો છે તે ગુણનામ હોવા છતાં પણ જુદાં જુદાં વર્ણાદિ નામ રૂપ છે. આ પ્રકારે આ ગુણનામ ૨૫ પ્રકારના હોવા છતાં પણ એક ગુણનામમાં જ સમાવિષ્ટ થઈ જાય છે. પર્યાયનામ નિયમિત નથી, કારણ કે પર્યાયો અનેકવિધ હોય છે રૂપ, રસ, ગંધ આદિ જેટલા ગુણો છે તેમાં વર્ણાદિના એક, બે, ત્રણ, ચાર, આદિથી લઇને ૧૦ પર્યન્તના અંશોનો, સંખ્યાત અંશોનો, અસંખ્યાત અંશોનો અને અનેક અંશોનો સદ્ભાવ હોઈ શકે છે. એકલા કૃષ્ણ વર્ણ રૂપ ગુણનો જ દાખલો લઈએ કોઈ પદાર્થમાં ઘણી ઓછી કાળાશ હોય છે, કોઇકમાં અધિક કાળાશ હોય છે, કોઈમાં અધિકતર કાળાશ હોય છે, તો કોઇમાં અધિકતમ કાળાશ હોય છે. આ કૃષ્ણ ગુણની ન્યૂનાધિકતાનો આધાર તેમાં રહેલી કાળાશના અંશો પર આધાર રાખે છે. કૃષ્ણ ગુણનો જે સૌથી જઘન્ય (ન્યૂનમાં ન્યૂન) અંશ છે તે એક અંશ રૂપ

पुनःप्रकारान्तरेण त्रिनाम प्रोच्यते-

मूलम्-तं पुण णामं तिविहं, इत्थी पुरिसं णपुंसगं चेव।
एएसिं तिण्हंपि य, अंतंमि य परूवणं वोच्छं ॥१॥
तत्थ पुरिसस्स अंता, आई ऊओ हवंति चत्तारि।
ते चेव इत्थियाओ, हवंति ओकारपरिहीणा ॥२॥

अंश है वह कृष्ण गुण का जघन्य अंश है। यह कृष्ण गुणांश कृष्ण-गुण का पर्याय है। इस पर्यायवाला जो परमाणु आदि द्रव्य है वह कृष्ण गुण की एक अंश रूप पर्यायवाला होने से एक गुण कृष्णवाला-एक गुणकालक-परमाणु आदि इस नाम से कहा जाता है। इसी प्रकार से अन्य द्विगुण आदि कालक द्रव्य पर्याय नाम में जानना चाहिये। इसी प्रकार से अन्य गंधादि गुणों के एकादि अंशोपेत परमाणु आदि द्रव्यों के नाम के विषय में जानना चाहिये। यहां पर कृष्णादि गुणों की एक अंश दो अंश आदि पर्यायें कही हैं और इन पर्यायों के आश्रित एक गुण कालक परमाणु ऐसा जो नाम है वह पर्यायाश्रित नाम है। पर्यायाश्रित नाम में पर्याय की मुख्यता रहती है। गुण और पर्यायों में सहवर्त्तित्व और क्रमवर्तित्व अनियमितत्व-को लेकर भेद हैं। तात्पर्य यह है कि सहवर्ती गुण और क्रमवर्ती पर्यायें हैं। ॥सू०१४७॥

ગણાય છે તે કૃષ્ણ ગુણાંશ કૃષ્ણ ગુણની પર્યાય રૂપ ગણાય છે. આ પર્યાયવાળું જે પરમાણુ આદિ દ્રવ્ય હોય છે તે કૃષ્ણ ગુણના એક અંશ રૂપ પર્યાયવાળું હોવાથી તેને એક ગુણ કૃષ્ણતાવાળું અથવા એક ગુણ કાલક પરમાણુ આદિ રૂપ કહેવામાં આવે છે. દ્વિગુણ આદિ કાલક દ્રવ્યપર્યાયના વિષયમાં પણ એજ પ્રકારનું સ્પષ્ટીકરણ સમજવું એજ પ્રમાણે અન્ય ગંધાદિ ગુણોના એક આદિ અંશોવાળા પરમાણુ આદિ દ્રવ્યોના નામ વિષેનું કથન પણ સમજવું જોઇએ.

અહીં કૃષ્ણાદિ ગુણોના એક અંશ, બે અંશ આદિને પર્યાયો રૂપ કહેવામાં આવેલ છે. અને તે પર્યાયોને આધારે એક ગુણ કાલક પરમાણુ, આદિ જે નામો આપવામાં આવ્યાં છે, તે પર્યાયાશ્રિત નામો છે પર્યાયાશ્રિત નામનાં પર્યાયની પ્રધાનતા રહે છે ગુણ અને પર્યાયમાં સહવર્તિત્વ અને ક્રમવર્તિત્વ (અનિયમિતત્વ)ની અપેક્ષાએ ભેદ હોય છે એટલે કે ગુણ સહવર્તી હોય છે અને પર્યાય ક્રમવર્તી હોય છે. ॥સૂ૦૧૪૭॥

अंतिअ इंतिय उंतिय–अंताउ णपुंसगस्स बोद्धव्वा।
एएसिं तिण्हंपि य, वोच्छामि निदंसणे एत्तो ॥३॥
आगारंतो राया, ईगारंतो गिरी य सिहरी य।
ऊगारंतो विण्हू, दुमो य अंतो उ पुरिसाणं ॥४॥
आगारंता माला, ईगारंतो सिरी य लच्छी य।
ऊगारंता जंबू, बहू य अंता उ इत्थीणं ॥
अंकारंतं धन्नं, इंकारंतं नपुंसगं अत्थि।
उंकारंतं पीलुं महुं च अंता णपुंसाणं॥से त्तं तिणामे॥सू.१४८॥

छाया—तत्पुनर्नाम त्रिविधम्, स्त्री पुरुषो नपुंसकं चैव।
एतेषां त्रयाणामपि च, अन्ते च प्ररूपणां वक्ष्ये ॥
तत्र पुरुषस्य अन्ताः, आईऊओ भवन्ति चत्वारः।
तएव स्त्रियाः, भवन्ति ओकारपरिहीनाः ॥
अं इति च इं इति च, उं इति च अन्तास्तु नपुंसकस्य बोधव्याः।
एतेषां त्रयाणामपि, वक्ष्यामि निदर्शनमितः ॥
आकारान्तो 'राया' ईकारान्तो 'गिरी' च 'सिहरी' च।
ऊकारान्तो 'विण्हू' 'दुमो' च अन्तस्तु पुरुषाणाम् ॥
आकारान्ता 'माला' ईकारान्ता 'सीरी' च 'लच्छी' च।
ऊकारान्ता 'जंबू' 'बहू' च अन्यस्तु स्त्रीणाम् ॥
अंकारान्तं 'धन्नं' इंकारान्तं नपुंसकम् 'अत्थि'।
उंकारान्तः 'पीलुं' 'महुं' च अन्तो नपुंसकानाम् ॥
तदेतत् त्रिनाम ॥सू० १४८॥

टीका—'तं पुण' इत्यादि—

द्रव्यसम्बन्धि तत्पुनर्नाम स्त्रीपुंनपुंसकभेदेन त्रिविधं विज्ञेयम्। एषां त्रयाणामपि च नाम्नाम् अन्ते यान्याकारादीन्यक्षराणि तद्द्वारा नाम्नः प्ररूपणां करि-

---

प्रकारान्तर से पुनः इसी त्रिनाम को सूत्रकार कहते हैं–
"तं पुण णामं तिविहं" इत्यादि–

હવે સૂત્રકાર ત્રિનામનું બીજા પ્રકારે કથન કરે છે—
" तं पुण णामं तिविहं " ઇત્યાદિ—

ष्यामि ॥१॥ तत्र=त्रिविधनाम्नो मध्ये पुरुषस्य=पुँल्लिङ्गनाम्नः अन्ताः=अन्तस्थिता वर्णा 'आई ऊओ' इति भवन्ति। तथा-स्त्रीलिङ्ग नाम्नः अन्तस्थिता वर्णा ओकारवर्जिताः पूर्वोक्ता एव वर्णा बोध्याः। आकारान्ता ईकारान्ता ऊकारान्ताश्च शब्दा स्त्रीलिङ्गा बोध्याः ॥२॥ तथा-नपुंसकशब्दानाम् 'अं' इति च 'इं' इति च 'उं' इतिच अन्ता बोध्याः। अयं भावः-अंकारान्ता इंकारान्ता उंकारान्ताश्च शब्दा नपुंसकलिङ्गे बोध्याः। इतोऽग्रे एतेषां त्रयाणामपि निदर्शनम्=उदाहरणं वक्ष्यामि=

शब्दार्थ—द्रव्य संबन्धी (तं पुणणामं) वह नाम (तिविहं) तीन प्रकारका है (इत्थी पुरिसं णपुंसगं चेव) स्त्रीनाम पुरुषनाम और नपुंसक नाम। (एएसिं तिण्हंपि अंतमियपरूवणं वोच्छं) मैं इन तीनों भी नामों की अन्त में आगत आकारादि अक्षरों द्वारा प्ररूपणा करूँगा। (तत्थ) तीन प्रकार के नाम के बीच में (पुरिसस्स) पुल्लिङ्ग नाम के (अंतो) अन्त में (आईउ ओ चत्तारि हवंति) आ ई ऊ, ओ, ये चार वर्ण होते हैं। (इत्थियाओ) स्त्रीलिङ्ग नाम के अन्त में (ओकार परिहीणा) ओकार वर्ण से रहित ये पूर्वोक्त ही वर्ण (हवंति) होते हैं। अर्थात् आकारान्त, ईकारान्त और ऊकारान्त शब्द स्त्रीलिङ्गवाले होते हैं। तथा (अन्ताः) जिनके अन्त में (अंतिअ इंतिय उंतिय) अं, इं, उं ये वर्ण होते हैं वे (णपुंसगस्स) शब्द नपुंसकलिङ्ग, के (बोद्धव्वा) जानना चाहिये। तात्पर्य यह है कि प्राकृत भाषा में अं, इं, उं, अन्तवाले शब्द नपुंसकलिङ्ग,

---

શબ્દાર્થ-દ્રવ્ય વિષયક (तं पुण णामं) તે નામ (तिविहं) ત્રણ પ્રકારનું હોય છે. જેમ કે (इत्थी पुरिसं णपुंसगं चेव) (૧) સ્ત્રીનામ, (૨) પુરુષનામ (૩) નપુંસકનામ (एएसिं तिण्हं पि अंतमियपरूवणं वोच्छं) હવે આ ત્રણે પ્રકારનાં નામોની તેમના અંત્યાક્ષરો દ્વારા પ્રરૂપણા કરવામાં આવે છે એટલે કે સ્ત્રીલિંગ, આદિનાં નામોને અન્તે કયા કયા અક્ષરો આવે છે, તે પ્રકટ કરવામાં આવે છે-(तत्थ पुरिसस्स अंता आ, ई, ऊ, ओ चत्तारि हवंति) પુરુષનામો (પુલ્લિંગનામો, નરજાતિનાં નામો) ને અન્તે આ, ઇ, ઊ કે ઓ, આ ચારમાંનો કોઈ પણ વર્ણ (અક્ષર) હોય છે. (इत्थियाओ ओकारपरिहीणा) સ્ત્રીનામો (નારી જાતિનાં નામો) ને અન્તે 'ઓ' સિવાયના પૂર્વોક્ત વર્ણો એટલે કે આ, ઈ કે ઊ (हवंति) હોય છે એટલે કે આકારાન્ત, ઈકારાન્ત અને ઊકારાન્ત શબ્દો નારી જાતિનાં (સ્ત્રીલિંગ) હોય છે, તથા (अन्ताः) જે શબ્દને અન્તે (अंतिअ इंतिय उंतिय) અં, ઇં કે ઉં હોય છે, તે શબ્દોને (णपुंसगस्स) નપુંસક લિંગના (નાન્યેતર જાતિના) (बोद्धव्वा) સમજવા આ કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે પ્રાકૃત ભાષામાં અં, ઇં અને ઉં અન્તવાળા શબ્દોને નપુંસ-

कथयिष्यामि ॥३॥ अथ पुँल्लिङ्गशब्दोदाहरणमाह–'राया' इति आकारान्तः शब्दो बोध्यः। 'गिरी' 'सिहरी' च शब्दौ ईकारान्तौ,। 'विण्हू' इति ऊकारान्तः 'दुमो' इति ओकारान्तः। एते पुँल्लिङ्गशब्दाः ॥४॥ अथ स्त्रीलिङ्गशब्दोदाहरणान्याह– 'माला' इति आकारान्तः शब्दः। 'सिरीलच्छी' शब्दौ ईकारान्तौ। 'जंबू बहू' शब्दौ च ऊकारान्तौ। आकारान्ता ईकारान्ता ऊकारान्ताश्च मालादयः शब्दाः स्त्रीलिङ्गा बोध्याः ॥५॥ अथ नपुंसकलिङ्गशब्दोदाहरणान्याह–'अंकारं तं धन्नं'

माने गये हैं। (एतेसिं तिण्हंपि य एतो णिदंसणे वोच्छामि) अब मैं यहां से आगे इन तीनों के उदाहरण कहता हूँ–(आगारंतो राया, ईगारंतो गिरी, य सिहरी य, ऊगारंतो विण्हू दुमो य अंतो उ पुरिसाणं) "राया" यह पुल्लिङ्गके आकारान्त शब्द का उदाहरण है "गिरी" एवं "सिहरी" ये दो शब्द पुल्लिङ्ग, के ईकारान्त शब्द के उदाहरण हैं। "विण्हू" यह पुल्लिङ्ग के ओकारान्त शब्द का उदाहरण है। और "दुमो" यह पुल्लिङ्गके ऊकारान्त शब्द का उदाहरण हैं। (इत्थीण) स्त्रीलिङ्ग शब्द के उदाहरण ये हैं—(आगारंता माला) आकारान्त "माला" शब्द (ईगारंता) ईकारान्त (सिरी य लच्छी य) "सिरी" और "लच्छी" ये दो शब्द (ऊगारंता जंबू बहूय) ओकारांत "जंबू" और "बहू" ये दो शब्द। इस प्रकार आकारान्त, ईकारान्त और ऊकारान्त मालादिकशब्द स्त्रीलिङ्ग जानना चाहिये। अब सूत्रकार नपुंसक लिङ्ग शब्दों के उदाहरण

સકલિંગના નામો ગણુવામાં આવે છે. (एतेसिं तिण्हंपि य एतो णिदंसणे वोच्छामि) હવે આ ત્રણે લિંગના પદોના ઉદાહરણો આપવામાં આવે છે– (आगारंतो राया, ईगारंतो गिरी, य सिहरी य, ऊगारंतो विण्हू, ओगारंतो दुमो, अंतो उ पुरिसाणं) પુલ્લિંગના આકારાન્ત પદનું ઉદાહરણ "राया" (રાજા), છે. "गिरी" (ગિરિ) અને "सिहरी" (શિખરી) આ બે પદો ઈકારાન્ત નરજાતિનાં પદો છે. "विण्हू (વિષ્ણુ)" આ પદ ઊકારાન્ત નરજાતિનું પદ છે. "दुमो (વૃક્ષ, દ્રુમ)" આ પ્રાકૃત પદ ઓકારાન્ત નરજાતિનું પદ છે. (इत्थीण) સ્ત્રીલિંગ (નારીજાતિનાં) પદોના નીચે પ્રમાણે ઉદાહરણ છે–(आगारंता माला) "माला" આ પદ આકારાન્ત નારીજાતિનું છે, (ईगारंता सिरी य लच्छी य "सिरी" અને "लच्छी" આ બે પ્રાકૃત પદો ઈકારાન્ત–નારી જાતિનાં પદો છે, (ऊगारंता जंबू, बहूय) "જંબૂ" અને "બહૂ" આ બે પદો ઊકારાન્ત નારીજાતિનાં પદો છે. આ પ્રકારે આકારાન્ત, ઈકારાન્ત અને ઊકારાન્ત માલા આદિ પદોને સ્ત્રીલિંગ સમજવા જોઇએ હવે સૂત્રકાર નપુંસક

अंकारान्तः शब्दः 'धन्नं' इति विज्ञेयः। 'अत्थि' इति शब्द इंकारान्तो बोध्यः। 'पीलुं महुं' चेति शब्द द्वयं उंकारान्तं बोध्यम्। एते अंकारान्तादयः शब्दा नपुंसकलिङ्गा बोध्याः। लिङ्गत्रये य एते शब्दा उक्तास्ते सविभक्तिकाः प्राकृतशब्दा विज्ञेयाः प्रकृतमुपसंहरन्नाह–तदेतत् त्रिनामेति ॥सू० १४८॥

कहते हैं–(अंकारंतं धन्नं) अंकारान्त शब्द "धन्नं" हैं। (इंकारंतं नपुंसगं अत्थि) इंकारान्त शब्द "अत्थि" है (उंकारंतं पिलुं महुं च) और उंकारान्त "पीलुं" "महुं" हैं ये अंकारान्तादि शब्द (अन्ता) कि जिनके अन्त में "अं" "इं" "उं" ये वर्ण हैं वे (नपुंसगाणं) नपुंसकलिङ्ग हैं। तीनों लिङ्गों में जो ये उदाहरण कहे गये हैं वे विभक्तियुक्त प्राकृत शब्द हैं। (से तं तिणामे) इस प्रकार यह त्रिनाम है।

भावार्थ–प्राकृत भाषा में तीन लिङ्ग हैं। उनमें जिन शब्दों के अन्त में "आ ई ऊ ओ" ये चार वर्ण हों वे पुल्लिङ्ग हैं–जैसे "राया" यह शब्द "संस्कृत में "राया" की छाया "राजन्" है। और यह वहां हलन्तपुल्लिङ्ग में नकारान्त शब्द है। "गिरी और सिहरी" ये दो शब्द इकारान्तपुल्लिङ्ग के उदाहरण हैं। संस्कृत में इन की छाया "गिरि"

લિંગના (નાન્યતર જાતિનાં) પદોના ઉદાહરણો આપે છે-(अंकारान्तं धन्नं) "धन्नं" આ પ્રાકૃત પદ અંકારાન્ત નપુંસક લિંગનું પદ છે. (इंकारान्तं नपुंसगं अत्थि) "अत्थि" આ પ્રાકૃત પદ ઇકારાન્ત નપુંસક લિંગનું પદ છે. (उंकारान्तं पीलुं महुं च) "पीलुं" અને "महुं" આ પદો ઉંકારાન્ત નપુંસક લિંગના પદો છે. જે શબ્દોને અન્તે "अं, ई, કે उं" છે તે પદો (नपुंसगाणं) નપુંસકલિંગના હોય છે, આ વાત તો પહેલાં પ્રકટ કરવામાં આવી ચુકી છે. ત્રણે લિંગોનાં (જાતિના) આ જે પદોના ઉદાહરણો આપવામાં આવ્યા છે, તે વિભક્તિયુક્ત પ્રાકૃત શબ્દો છે. (से तं तिणामे) આ પ્રકારનું ત્રિનામનું સ્વરૂપ સમજવું.

ભાવાર્થ–પ્રાકૃત ભાષામાં ઉપર્યુક્ત ત્રણ લિંગ હોય છે. જે શબ્દને અન્તે "आ, ई, ऊ કે ओ" આ ચાર વર્ણોમાંનો કોઈ પણ વર્ણ હોય છે તે પદો પુલ્લિંગ હોય છે જેમ કે આકારાન્ત "राया" પદ આ શબ્દની સંસ્કૃત છાયા "राजन्," થાય છે તેને ગુજરાતીમાં "રાજા" કહે છે. આ શબ્દ આકારાન્ત પુલ્લિંગનું ઉદાહરણ છે. "गिरी" અને "सिहरी" આ બે પદો ઇકારાન્ત પુલ્લિંગના ઉદાહરણો રૂપે અહીં વપરાયાં છે. "गिरी" આ પ્રાકૃત પદની સંસ્કૃત છાયા "गिरी" થાય છે, "सिहरी" આ પદની

और "शिखरी" ऐसी होती है-गिरि शब्द वहां अजन्त पुल्लिङ्ग और शिखरिन् शब्द हलन्तपुल्लिङ्ग है। "विण्हू" यह शब्द ऊकारान्त पुल्लिङ्ग का है। इसकी संस्कृत छाया "विष्णु" ऐसी है। विष्णु शब्द यहां अजन्त पुल्लिङ्ग है। "दुमो" यह शब्द ओकारान्त पुल्लिङ्ग का है। इसकी छाया "द्रुमः" ऐसी है। यह शब्द वहां अकारान्त पुल्लिङ्ग है। स्त्रीलिङ्ग में प्राकृत आकारान्त माला शब्द है। संस्कृत छाया इसकी माला ही है। संस्कृत में भी यह शब्द अजन्त स्त्रीलिङ्ग ही है। प्राकृत भाषा में ओकारान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग नहीं माना जाता है। जैसे देवों आदि शब्द। ओकारान्त शब्द सब ही पुल्लिङ्ग है। लच्छी सिरी-कि जिनकी संस्कृ छाया लक्ष्मीः और श्री ऐसी होती है दोनों शब्द ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग हैं। ऊकारान्त जंबू बहू शब्द प्राकृत में स्त्रीलिङ्ग हैं। संस्कृत में भी ये दोनों स्त्रीलिङ्ग में हैं। प्राकृत भाषा में नपुंसकलिङ्ग की निशानी अं इं उं है। जिनके अन्त में ये अं इं उं होते हैं वे नपुंसकलिङ्ग माने जाते हैं। जैसे अत्थि=अस्थि, महुं-मधु पीलुं-पीलु। इस प्रकार

સંસ્કૃત છાયા "शिखरी" થાય છે, ગુજરાતીમાં તેનો અર્થ પર્વત થાય છે "विण्हू" આ પદ ઊકારાન્ત પુલ્લિંગના ઉદાહરણ રૂપ છે. તેની સંસ્કૃત છાયા "विष्णु" થાય છે. "दुमो" આ પદ ઓકારાન્ત પુલ્લિંગના ઉદાહરણ રૂપ છે. તેની સંસ્કૃત છાયા "द्रुमः થાય છે તેને ગુજરાતીમાં "વૃક્ષ" કહે છે સંસ્કૃતમાં 'द्रुम' પદ અકારાન્તપુલ્લિંગ છે. આકારાન્ત સ્ત્રીલિંગ પદનું ઉદાહરણ "माला" પદ છે. તેની સંસ્કૃત છાયા પણ 'माला' જ થાય છે સંસ્કૃતમાં પણ આ શબ્દ આકારાન્ત સ્ત્રીલિંગ જ છે પ્રાકૃતમાં ઓકારાન્ત શબ્દને સ્ત્રીલિંગવાળો ગણવામાં આવતો નથી જેમ કે "देवो" બધાં ઓકારાન્ત પદો પુલ્લિંગ જ હોય છે "सिरी અને लच्छी" આ બન્ને પદો ઈકારાન્ત સ્ત્રીલિંગનાં ઉદાહરણો છે તેમની સંસ્કૃત છાયા અનુક્રમે "श्री" અને "लक्ष्मी" છે. સંસ્કૃતમાં પણ આ બન્ને પદો સ્ત્રીલિંગનાં જ પદો છે. ઊકારાન્ત "जंबू" અને "बहू" આ બન્ને પ્રાકૃતમાં સ્ત્રીલિંગના શબ્દો છે સંસ્કૃત ભાષામાં પણ આ બન્ને શબ્દો સ્ત્રીલિંગ જ છે. જે શબ્દોના અન્ત્યાક્ષરો "अं" "इं" "उं" હોય છે, તે શબ્દો નપુંસકલિંગના હોય છે જેમ કે "अत्थि" આ પદ ઇંકારાન્ત, "महुं" પદ ઉંકારાન્ત અને "पीलुं" આ પદ ઉંકારાન્ત અને 'धन्नं' આ પદ અંકારાન્ત નપુંસકલિંગના પદો છે સંસ્કૃતમાં તેમના અર્થના વાચક અનુક્રમે "मधु", 'पीलु'

अथ चतुर्नाम निरूपयितुमाह --

मूलम्-से किं तं चउणामे? चउणामे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा-आगमेणं लोवेणं पयईए विगारेणं। से किं तं आगमेणं? आगमेणं वंकं, वयंसे, अइमुत्तए। से तं आगमेणं। से किं तं लोवेणं? लोवेणं ते एत्थ=तेऽत्थ, पडो एत्थ=पडोऽत्थ, घडो एत्थ=घडोऽत्थ। से तं लोवेणं। से किं तं पगईए? पगईए-होइ इह गड्डे आवडंती, आलिक्खामो एण्हिं, अहो अच्छरियं। से तं पगईए। से किं तं विगारेणं? विगारेणं-दंडस्स अग्गं=दंडग्गं, सा आगया=साऽऽगया, दहि इणं=दहीणं, नईइह=नईह, महु उदगं-महूदगं वहू ऊहो-वहूहो। से तं विगारेणं। से तं चउणामे ॥सू० १४९॥

छाया—अथ किं तच्चतुर्नाम? चतुर्नाम चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-आगमेन, लोपेन, प्रकृत्या, विकारेण। अथ किं तदागमेन? आगमेन-वक्रम्, वयस्यः, अतिमुक्तकः। तदेतदागमेन। अथ किं तद् लोपेन? लोपेन-ते अत्र=तेऽत्र, पटो अत्र=पटोऽत्र, घटो अत्र=घटोऽत्र। तदेतद् लोपेन। अथ किं तत् प्रकृत्या? प्रकृत्या-भवति-इह, गर्ते आपतन्ती आलेक्ष्याम इदानीम्, अहो आश्चर्यम् तदेतत् प्रकृत्या। अथ किं तद् विकारेण विकारेण दण्डस्य अग्रम्=दण्डाग्रम्, सा आगता=साऽऽगता, दधि इदम्=दधीदम्, नदी इह=नदीह, मधु उदकम्=मधूदकम्, वधू ऊढः=वधूढः। तदेतद् विकारेण। तदेतच्चतुर्नाम ॥सू० १४९॥

स्त्रीलिङ्ग, पुलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग संबन्धी शब्दों से निष्पन्न स्त्रीनाम-पुल्लिङ्ग नाम और नपुंसक नाम हैं। इस प्रकार लिङ्गानुसार यह त्रिनाम स्वरूप है ॥सू० १४८॥

અને "વન" છે આ પ્રકારનાં સ્ત્રીલિંગ, પુલ્લિંગ અને નપુંસકલિંગના શબ્દોમાંથી બનતાં નામોને અનુક્રમે સ્ત્રીનામ, પુલ્લિંગનામ અને નપુંસકનામ કહે છે. લિંગ (જાતિ) અનુસાર ત્રિનામનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ સમજવું. ॥સૂ૦૧૪૮॥

टीका—' से किं तं ' इत्यादि—

शिष्यः पृच्छति-अथ किं तच्चतुर्नाम ? इति उत्तरयति-चतुर्नाम-चतुष्प्रकारकं नाम-चतुर्नाम, तद्धि चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्। चतुर्विधत्वमेवाह-आगमेन, लोपेन, प्रकृत्या, विकारेण चेति आगमेनेत्यादिषु सर्वत्र 'निष्पन्नं'-मित्यध्याहार्यम्। तत्र-आगमेन निष्पन्नम्-'वंकं, वयंसे, अइमुंतए' वक्रं, वयस्यः, अतिमुक्तकः, अत्र प्राकृते आगमरूपोऽनुस्वारः, "वक्रादावन्तः" (८।१।२६) तथा लोपेन निष्पन्नं नाम-'ते

अब सूत्रकार चार प्रकार के नाम की प्ररूपणा करते हैं—

"से किं तं चउणामे" इत्यादि।

शब्दार्थ-(से किं तं चउणामे) हे भदन्त ! वह चतुर्नाम क्या है।

उत्तर-(चउणामे चउव्विहे पण्णत्ते) चतुर्नाम-चार प्रकार का प्रज्ञप्त हुआ है। (तं जहा) जैसे (आगमेण, लोवेणं पयईए, विगारेणं) एक आगम निष्पन्न नाम, दूसरा लोपनिष्पन्न नाम तीसरा प्रकृत निष्पन्न नाम और चौथा विकार निष्पन्न नाम। (से किं तं आगमेणं) हे भदंत! आगम निष्पन्न नाम क्या है?

उत्तर—(आगमेणं वंकं वयंसे, अइमुंतए) आगमनिष्पन्न नाम वक्र वयस्य और अतिमुक्तक हैं। (से तं आगमेणं) इस प्रकार ये सब आगम से निष्पन्न नाम हैं। (से किं तं लोवेणं) हे भदन्त ! लोप निष्पन्न नाम क्या है?

હવે સૂત્રકાર ચતુર્નામની પ્રરૂપણા કરે છે—

" से किं तं चउणामे " ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(से किं तं चउणामे) હે ભગવન્! નામના ચોથાભેદ રૂપ ચતુર્નામનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(चउणामे चउव्विहे पण्णत्ते) ચતુર્નામ ચાર પ્રકારનું કહ્યું છે-(तंजहा) તે ચાર પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે-(आगमेण, लोवेणं, पयईए, विगारेणं) (૧) આગમનિષ્પન્ન નામ, (૨) લોપનિષ્પન્ન નામ, (૩) પ્રકૃતિનિષ્પન્ન નામ (૪) વિકારનિષ્પન્ન નામ.

પ્રશ્ન-(से किं तं आगमेणं) હે ભગવન્! આગમનિષ્પન્ન નામ કોને કહે છે? ઉત્તર-(आगमेणं वंकं, वयंसे, अइमुंतए) વક્ર, વયસ્ય અને અતિમુક્તક, આ પદો આગમનિષ્પન્ન નામો છે. (से तं आगमेणं) આ પ્રકારનાં આગમનિષ્પન્ન નામો હોય છે

પ્રશ્ન-(से किं तं लोवेणं) હે ભગવન્! લોપનિષ્પન્ન નામ કેવું હોય છે?

एत्थ तेत्थ, पडो एत्थ पडोत्थ' ते अत्र=तेऽत्र, पटो अत्र=पटोऽत्र इत्यादि, अत्र प्राकृतप्रयोगे 'एत्थ' इत्यस्य एकारस्य लोपः "त्यदाद्यव्ययात् तत्स्वरस्य लुक्" (८।१।४०)। तथा-प्रकृत्या निष्पन्नं नाम-'गड्डे-आवडंती, आलेक्खमो-एण्हिं, होइ-इह' गर्त्ते आपतन्ती, आलेक्ष्याम इदानीम्, भवति-इह, इत्यादि। अत्र "एदोतोःस्वरे" (८।१।७) "त्यादेः" (८।१।९) एतत्सूत्रानुसारेण प्राकृते प्रकृतिभावो भवति। तथा-विकारेण निष्पन्नं नाम-'दंडस्स अग्गं दंडग्गं, सा आगया-

---

उत्तर—(लोवेणं) लोप निष्पन्न नाम इस प्रकार से हैं—(ते एत्थ=तेऽत्थ, पडो एत्थ=पडोऽत्थ, घडो एत्थ=घडोऽत्थ) ते अत्र=तेऽत्र पटो अत्र=पटोऽत्र घटो अत्र=घटोऽत्र (से तं लोवेणं) इस प्रकार ये लोपसे निष्पन्न नाम हैं। (से किं तं पगईए?) हे भदन्त! प्रकृति भाव से निष्पन्न नाम क्या है? (पगईए) प्रकृति भाव से निष्पन्न नाम इस प्रकार से है (होइ इह, गड्डे आवडंती आलिक्खामो एण्हिं अहो अच्छरियं) भवति इह गर्त्ते आपतन्ती, आलेक्ष्याम इदानीम्, अहो आश्चर्यम् (से तं पगईए) इस प्रकार ये प्रयोग प्रकृति भाव से निष्पन्न नाम हैं। (से किं तं विगारेणं) हे भदन्त! विकार से निष्पन्न नाम क्या है?

उत्तर—(विगारेणं) विकार से निष्पन्न नाम इस प्रकार से है—(दंडस्स+अग्गं=दडग्गं, सा+आगया=साऽऽगया, दहि+इणं=दहीणं, नई+

उत्तर-(लोवेणं) લોપનિષ્પન્ન નામ આ પ્રકારના હોય છે-(ते एत्थ=तेऽत्थ, पडो एत्थ=पडोऽत्थ, घडो एत्थ=घडोऽत्थ) तेअत्र=तेऽत्र(तेत्र, ते अने त्र વચ્ચે 'ऽ" આવું જે નિશાન છે તેને અવગ્રહચિહ્ન કહે છે. આ પ્રકારનું નિશાન પછીના પદના 'अ' નો લોપ થયો છે એમ સૂચવે છે) पटोअत्र=पटोऽत्र, અને घटोअत्र=घटोऽत्र (આ પદોમાં अत्रના अ નો લોપ થવાથી અવગ્રહચિહ્ન મૂકવામાં આવ્યાં છે. (से तं लोवेणं) આ પ્રકારે લોપથી નિષ્પન્ન જે નામો હોય છે તેમને લોપનિષ્પન્ન નામો કહે છે.

પ્રશ્ન-(से किं तं पगईए?) હે ભગવન્! પ્રકૃતિભાવથી નિષ્પન્ન નામ કેવું હોય છે?

ઉત્તર-(पगईए) પ્રકૃતિભાવથી નિષ્પન્ન નામ આ પ્રકારનું હોય છે-(होइ इह, गड्डे आवडंती, आलिक्खामो एण्हिं, अहो अच्छरियं) भवति इह, गर्त्ते आपतन्ती, आलेक्ष्याम इदानीम्, अहो आश्चर्यम् (से तं पगईए), આ પ્રકારના આ પ્રયોગો પ્રકૃતિભાવનિષ્પન્ન નામના ઉદાહરણો પૂરાં પાડે છે.

પ્રશ્ન-(से किं तं विगारेणं) હે ભગવન્! વિકારનિષ્પન્ન નામ કેવું હોય છે?

ઉત્તર-(विगारेणं) વિકારનિષ્પન્ન નામ આ પ્રકારનું હોય છે-(दंडस्स×

सागया' दण्डस्य-अग्रं दण्डाग्रम्, सा-आगता साऽऽगता' इत्यादि बोध्यम्। विकारो हि वर्णस्य स्थाने वर्णान्तरापादनरूपः। नामत्वंचात्र तेन तेन रूपेण नमनात्= परिणमनाद् बोध्यम्। लोके हि यावन्तः शब्दास्ते आगमाद्यन्यतमनिष्पन्ना एव सन्ति। ये च डित्थ डवित्थादयः कैश्चिदव्युत्पन्नत्वेनाभिमतास्तेऽपि शाकटायनमते व्युत्पन्ना एव। उक्तंच—

"नाम च धातुजमाह निरुक्ते, व्याकरणे शकटस्यच स्तोकम् (अपत्यम्)।
यन्न पदार्थविशेषसमुत्थं, प्रत्ययतः प्रकृतेश्च तदूह्यम्" ॥इति॥

इत्थं च सर्वेषां शब्दानामागमादिभिश्चतुर्भिः संग्रहादिदमागमादिकं चतुर्नामेत्युच्यते। प्रकृतमुपसंहरन्नाह-तदेतच्चतुर्नामेति ॥सू० १४९॥

इह=नईह महु+उदगं+महूदगं, बहू+ऊहो=बहूहो। दण्ड+अग्र=दण्डाग्र सा+आगता=सागता दधि+इदं=दधीदं नदी+ईह=नदीह, मधु+उदक=मधूदक, बधू+ऊह बधूहः (से त विगारेणं) इस प्रकार के ये शब्द विकार निष्पन्न नाम हैं। (से तं चउणामे) ये पूर्वोक्त चतुर्नाम हैं।

भावार्थ--आगम निष्पन्न, लोप निष्पन्न, प्रकृति निष्पन्न और विकार निष्पन्न इस प्रकार से चतुर्नाम चार प्रकार के होते हैं। आगम रूप अनुस्वार से जो शब्द निष्पन्न होते हैं वे आगम निष्पन्न चतुर्नाम है+जैसे प्राकृत भाषा में वंकं, वयंसे, अइमुंतए ये शब्द हैं। "वक्रादावन्तः" इस सूत्र से प्राकृत भाषा में वक्रादि शब्दों में आगमरूप अनुस्वार होता है। "वंकं" शब्दकी संस्कृत छाया "वक्रम्" है। वयंसे "शब्द की

अग्गं=दंडग्गं, सा+आगया=साऽऽगया, दहि+इणं=दहीणं, नई×ईह=नईह, महु×उदगं=महूदगं, बहू×ऊहो=बहूहो) दंड+अग्र=दंडाग्र, सा+आगता=सागता, दधि×इदं=दधीदं, नदी×ईह=नदीह, मधु+उदक=मधूदक, बधू×ऊह=बधूहः (से तं विगारेणं) આ બધાં શબ્દો વિકારનિષ્પન્ન નામો છે. (से तं चउणामे) આ બધાં નામો પૂર્વોક્ત ચતુર્નામ રૂપ ગણાય છે.

ભાવાર્થ-ચતુર્નામના ચાર પ્રકાર છે-આગમનિષ્પન્ન, લોપનિષ્પન્ન, પ્રકૃતિનિષ્પન્ન, અને વિકારનિષ્પન્ન આગમ રૂપ અનુસ્વાર વડે જે જે શબ્દો બને તેમને આગમનિષ્પન્ન ચતુર્નામ રૂપ સમજવા જેમ કે પ્રાકૃત ભાષાના "वंकं, वयंसे અને अइमुंतए" આ શબ્દો આગમનિષ્પન્ન ચતુર્નામો છે. "वक्रादावन्तः" આ સૂત્ર એ વાત પ્રકટ કરે છે કે પ્રાકૃત ભાષામાં વક્રાદિ શબ્દોમાં આગમ રૂપ અનુસ્વાર હોય છે. "वंकं" આ પ્રાકૃત શબ્દની સંસ્કૃત છાયા "वक्रम्" છે. "वयंसे" આ પ્રાકૃત પદની સંસ્કૃત છાયા

संस्कृत छाया " वयस्यः " है। " अइमुंतए की जगह पर अइमुत्तए भी रूप होते हैं। परन्तु वंकं आदि जो ये नाम-प्रतिपादिक संज्ञक शब्द हैं वे आगम निष्पन्न नाम हैं अर्थात् अनुस्वार के आगम से बने हुए नाम हैं। ते+एत्थ, पडो+एत्थ, इन प्राकृत प्रयोगो में "एत्थ" शब्द के एकार का लोप "त्यदाद्यव्ययात् तत्स्वरस्य लुक्" इस सूत्र से होता है। इसलिये "तेत्थ पडोत्थ" ये लोप निष्पन्न नाम हैं। "गड्डे आवडंती, आलेक्खमो एहिं होइ इह" इन प्रकृतिभाव निष्पन्न नामों में "एदेतोः स्वरे स्यादेः इन सूत्रों के अनुसार प्राकृत भाषा में प्रकृतिभाव होता है। जो प्रयोग जैसे हैं उनका वैसा ही रूप रहना इसका नाम प्रकृति भाव है। प्रकृति भाव में मूल रूप में कोई विकार नहीं होता है। गर्त्ते+आपतन्ती यहां पर संस्कृत व्याकरण के अनुसार ए के स्थान में अव् होना चाहिये, आलेख्याम+इदानीम् यहां पर "आद्गुण" से ए गुण होना चाहिये, भवति+इह यहां पर अकः सवर्णे दीर्घः" से दीर्घ होना चाहिये-परन्तु प्रकृति भाव होने पर इन नामों में कोई भी संधिरूप विकार नहीं हुआ है।

" वयस्यः " छे. " अइमुंतए " आ प्राकृत पदनी संस्कृत छाया " अतिमुक्तकः " छे. " वंकं " आ पदनी જગ્યાએ " वल्कं, " " वयंसे " આ પદની જગ્યાએ " वयस्से " અને " अइमुंतए " આ પદની જગ્યાએ " अइमुत्तए " આ રૂપોનો પણ પ્રયોગ થાય છે. પરન્તુ વંકં આદિ ઉપર્યુક્ત નામો-પ્રતિપાદન કરનારા ઉદાહરણ રૂપ શબ્દો-આગમનિષ્પન્ન નામો છે, કારણ કે આ નામો અનુસ્વારના આગમથી બનેલાં છે. " त्यदाद्यव्ययात् तत्स्वरस्य लुक् " આ સૂત્રમાં બતાવેલા નિયમ અનુસાર " ते+एत्थ " અને " पडो+एत्थ " આ પ્રાકૃત પદોમાં " एत्थ " પદના " ए " નો લોપ થવાથી " तेत्थ " અને " पडोत्थ ", આ લોપનિષ્પન્ન નામો બન્યાં છે. " एदेतोः स्वरे स्यादेः " આ સૂત્રમાં બતાવેલા નિયમ પ્રમાણે "गड्डे आवडंती" અને " आलेक्खमो एहिं, होइ इह " આ પ્રકૃતિભાવ નિષ્પન્ન નામોમાં પ્રકૃતિભાવનો સદ્ભાવ રહે છે પ્રકૃતિભાવમાં મૂળરૂપમાં કોઈ પણ પ્રકારનો વિકાર થતો નથી પરન્તુ જે પ્રયોગ જેવા સ્વરૂપે હોય એવાં જ સ્વરૂપે રહે છે. " गर्त्ते+आपतन्ती " આ બે પદોની સન્ધિ થતાં સંસ્કૃત વ્યાકરણના નિયમ પ્રમાણે " ए " નો ' अव् ' થવો જોઈએ, અને " आलेक्ष्याम+इदानीम् " આ પદોની સન્ધિ કરતાં अ+इ=ए આ નિયમ અનુસાર " आलेक्ष्यामेदानीम् " થવું જોઈએ, "भवति+इह" આ પદોમાં इ+इ=ई થવાથી ' भवतीह ' થવું જોઈએ; પરન્તુ આ પદો પ્રકૃતિભાવ નિષ્પન્ન નામો હોવાથી, તે નામોમાં કોઈ પણ પ્રકારનો સન્ધિ રૂપ વિકાર થયો નથી.

अथ पञ्चनाम निरूपयितुमाह–

मूलम्–से किं तं पंचनामे? पंचनामे–पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–नामियं णेवाइयं अक्खाइयं ओवसग्गियं मिस्सं। आसे

दण्ड+अग्गं दण्ड+अग्रम् सा आगया, दहि+इणं, नई+ईह महु+उदगं, बहू+ऊहो, इन विकार निष्पन्न नामों में सर्वत्र दीर्घरूप विकार हुआ है। वर्ण के स्थान में दूसरे वर्ण का होना इसका नाम विकार है तथा उस उस रूप से परिणमन होना इसका नाम नाम है। विकार होने पर इनका "दंडग्गं साऽऽगया, दहीणं, नईह महूदगं, बहूहो" ऐसा रूप हो जाता है। लोक में जितने भी शब्द हैं वे आगम आदि किसी एक से निष्पन्न हुए ही होते हैं। तथा "डित्थ डवित्थ आदि जो शब्द अव्युत्पन्न किन्हीं२ के द्वारा माने हुए हैं वे भी शाकटायन के मत में व्युत्पन्न ही माने गये हैं। उक्तंच–नाम च धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे शाकटस्य च तोकम्। यन्न पदार्थविशेषसमुत्थं, प्रत्ययतः प्रकृतेश्च तद्ज्ञेयम्" इस प्रकार समस्त शब्दों का इन आगमादि चारों से संग्रह हो जाता है इसलिये आगमादिक चतुर्नाम कहे जाते हैं ॥सू० १४९॥

"दंड+अग्गं सा+आगया दहि+इणं, नई+इह, महु+उदगं, अने बहू+ऊहो" આ બધાં પદોમાં સન્ધિ રૂપ વિકાર થઈને "दंडाग्रम्, सागया, दहीणं, नईह, महूदगं, बहूहो" ઇત્યાદિ વિકારનિષ્પન્ન નામો બન્યાં છે. કોઈ એક વર્ણને સ્થાને બીજા વર્ણનો પ્રયોગ થવો તેનું નામ વિકાર છે. જે નામોમાં આ પ્રકારનું પરિણમન થયું હોય છે, તે નામોને વિકારનિષ્પન્ન નામો કહે છે. "दंड+अग्गं" આદિ ઉપર્યુક્ત પદોમાં સન્ધિને કારણે વિકાર થઈ જવાથી "दण्डाग्र, साऽऽगया, दहीणं, नईह, महूदगं बहूहो આ પ્રકારનાં રૂપો બની ગયાં છે. લોકમાં જેટલાં શબ્દો છે, તેઓ આગમ આદિ પૂર્વોક્ત ચાર પ્રકારોમાંના કોઈ એક પ્રકારે નિષ્પન્ન થયેલાં હોય છે. તથા "डित्थ डवित्थ" આદિ જે શબ્દોને કોઈ કોઈ લોકો દ્વારા અવ્યુત્પન્ન માનવામાં આવે છે, પરન્તુ શાકટાયનના મત અનુસાર તેમને પણ વ્યુત્પન્ન જ માનવામાં આવેલ છે. કહ્યું પણ છે કે–"नाम च धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे शकटस्य च तोकम् यन्न पदार्थविशेषसमुत्थं, प्रत्ययतः प्रकृतेश्च तदूह्यम्" આ પ્રકારે સમસ્ત પદોનો આ આગમ આદિ ચારેમાં સમાવેશ થઈ જાય છે. તેથી આગમાદિ રૂપ ચતુર્નામ રૂપે અહીં તેમને પ્રતિપાદિત કરવામાં આવેલ છે. ॥સૂ૦૧૪૯॥

त्ति नामियं, खलु त्ति नेवाइयं, धावइत्ति अक्खाइयं, परित्ति ओवसग्गियं, संजए त्ति मिस्सं। से तं पंचनाम ॥सू० १५०॥

छाया—अथ किं तत् पञ्चनाम? पञ्चनाम पञ्चविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—नामिकं, नैपातिकम्, आख्यातिकम्, औपसर्गिकं, मिश्रम्। अश्व इति नामिकम्। 'खलु' इति नैपातिकम्। 'धावति' इति आख्यातिकम्। 'परि' इति औपसर्गिकम्। संयत इति मिश्रम्। तदेतत् पञ्चनाम ॥सू० १५०॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि—

शिष्यः पृच्छति—अथ किं तत् पञ्चनाम? इति। उत्तरयति—पञ्चनाम—पञ्चप्रकारकं नाम—पञ्चनाम, तद्धि पञ्चविधं प्रज्ञप्तम्। पञ्चविधत्वमेवाह—नामिकमित्यादि। तत्र—अश्व इति नामिकम्—वस्तुवाचकत्वात्। 'खलु' इति नैपातिकम्—निपातेषु पठितत्वात्। धावतीति आख्यातिकं क्रियाप्रधानत्वात्। 'परि' इति

अब सूत्रकार पञ्चनाम का निरूपण करते हैं—

"से किं तं पंचनामे" इत्यादि।

शब्दार्थ—(से किं तं पंचनामे?) हे भदन्त! पंचनाम क्या है?

उत्तर—(पंचनामे पंचविहे पण्णत्ते) पंच नाम पांच प्रकार का प्रज्ञप्त हुआ है। (तं जहा) उस के पांच प्रकार ये हैं—(नामियं, णेवाइयं, अक्खाइयं, ओवसग्गियं मिस्सं) नामिक नैपातिक, आख्यातिक, औपसर्गिक, और मिश्र। वस्तु का वाचक होने से (आसेत्ति नामियं)—अश्व यह शब्द नामिक है। (खलुत्ति नेवाइयं) खलु शब्द निपातों में पठित होने के कारण नैपातिक है। क्रियाप्रधान होने से (धावइत्ति अक्खाइयं) धावति" यह तिङन्त पद आख्यातिक है। (परित्ति ओवसग्गियं) परि

હવે સૂત્રકાર પંચનામનું નિરૂપણ કરે છે—

"से किं तं पंचनामे" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(से किं तं पंचनामे?) હે ભગવન્! પંચનામ કોને કહે છે?

ઉત્તર—(पंचनामे पंचविहे पण्णत्ते) પંચનામ પાંચ પ્રકારના કહ્યા છે. (तंजहा) તે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે—(नामियं, णेवाइयं, ओवसग्गियं, मिस्सं) (૧) નામિક, (૨) નૈપાતિક, (૩) આખ્યાતિક, (૪) ઔપસર્ગિક અને (૫) મિશ્ર.

વસ્તુનું વાચક હોવાને કારણે (आसेत्ति नामियं) "अश्व" પદ નામિકના ઉદાહરણ રૂપ સમજવું (खलुत्ति नेवाइयं) "खलु" પદ નિપાતોમાં વપરાતું હોવાને કારણે નૈપાતિકના ઉદાહરણ રૂપ સમજવું (धावइत्ति अक्खाइयं) "धावति" આ પદ ક્રિયાપ્રધાન હોવાને કારણે આખ્યાતિકના ઉદાહરણ

औपसर्गिकम् उपसर्गेषु पठितत्वात्। 'संयतः' इति मिश्रम्–उपसर्गनामोभयनिष्पन्नत्वात्। एतैर्नामिकादिभिः पञ्चभिः सकलशब्दसंग्रहणात् पञ्चनामत्वं बोध्यम्। प्रकृतमुपसंहरन्नाह–तदेतत् पञ्चनामेति ॥सू० १५०॥

अथ षण्णामं निरूपयति—

मूलम्–से किं तं छण्णामे? छण्णामे छव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–उदइए, उवसमिए खइए खओवसमिए पारिणामिए संनिवाइए ॥सू० १५१॥

छाया—अथ किं तत् षण्णाम ? षण्णाम षड्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–औदयिकः, औपशमिकः, क्षायिकः, क्षायोपशमिकः, पारिणामिकः, सान्निपातिकः॥सू० १५१॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि—

अथ किं तत् षण्णाम? इति शिष्यप्रश्नः। उत्तरयति–षण्णाम षट्प्रकारकं नाम–षण्णाम, तद्धि–औदयिकादिभेदेन षड्विधं विज्ञेयम्। नन्वत्र प्रकृतं

यह उपसर्ग, उपसर्गों में पठित होने से औपसर्गिक है। (संजए त्ति मिस्सं) संयत यह सुबन्त पद उपसर्ग और नाम इन दोनों से निष्पन्न होने के कारण मिश्र है। इन नामिक आदि पांचों से समस्त शब्दों का संग्रह हो जाता हैं इसलिये ये पांच नाम कहे जाते हैं। (से तं पंचनाम) इस प्रकार यह पंचनाम का स्वरूप है ॥सू० १५०॥

अब सूत्रकार छहनाम का निरूपण करते हैं–'से किं तं छण्णामे' इत्यादि।

शब्दार्थ—(से किं तं छण्णामे?) हे भदन्त! छह नाम क्या है?

उत्तर—(छण्णामे छव्विहे पण्णत्ते) छह नाम छह प्रकार का प्रज्ञप्त

---

३५ छे. (परित्ति ओवसग्गियं) "परि" आ उपसर्ग छे. उपसर्ग ३पे तेनो प्रयोग थाय छे, ते ४।२णे तेने औपसर्गिक ४हे छे (संजए त्ति मिस्सं) संयत ५६ 'सम्' उपसर्ग अने 'यत' ५६ना संयोगथी ०न्यु होवाथी तेने मिश्रना उ६।हरणु ३५ ग०ी शकाय आ नामिक आदि पांचे पंचनामो वडे समस्त शब्दोनो संग्रह थई जाय छे, तेथी तेमने पंचनाम ४हे छे. (से तं पंचनाम) आ प्र४।२नुं पंचनामनुं स्व३५ समज्वुं. ॥सू०१५०॥

हवे सूत्र४।२ छनामनी प्र३पणा ४रे छे—

"से किं तं छण्णामे" इत्यादि—

शब्दार्थ-(से किं तं छण्णामे?) हे भगवन्! नामना छ। प्र४।२ ३५ छनामनुं स्व३५ केवुं ४ह्युं छे?

उत्त२-(छण्णामे छव्विहे पण्णत्ते) छनामना ६ प्र४।२ो ४ह्या छे (ते नामना

नाम, न तु पदार्थाः, एवं च नाम्नः प्रकरणे तदर्थानां भावलक्षणानां प्ररूपणमयुक्तमिति चेदाह, नाम नामवतोरभेदोपचाराद् नामार्थप्ररूपणमप्ययदुष्टमेवेति न कश्चिद् दोषः। तत्र ज्ञानावरणादीनामष्टानां स्व स्वरूपेण विपाकतोऽनुभवनम् उदयः, स एव औदयिकः। अथवा-उदयेन निष्पन्न औदयिकः। औदयिकश्च भाव एव सामर्थ्याद् गम्यते। एवमग्रेऽपि भाव इत्याक्षेप्यः सामर्थ्यात्। उपशम-

हुआ है। छह प्रकारवाला जो नाम है वह छह नाम है। यह नाम छह प्रकारवाला है इसीलिये यह छह भेदवाला है। (तं जहा) उसके वे छह प्रकार ये हैं-(उदइए, उवसमिए, खइए, खओवसमिए, पारिणामिए, संनिवाइए) औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशामिक पारिणामिक और सान्निपातिक।

शंका-यहां प्रकरण नाम का चल रहा है। नाम के अर्थों का नहीं इस प्रकार नाम्नके प्रकरणमें उसके अर्थरूप भावों की प्ररूपणा करना युक्त नहीं है?

उत्तर—नाम और नामवाले अर्थ में अभेद के उपचार से नामार्थ की प्ररूपणा करना अयुक्त नहीं है। औदयिक भाव-ज्ञानावरण आदि आठ प्रकार के कर्मों के अपने२ रूप से विपाक का अनुभव करना इस का उदय है। इस उदय का नाम ही औदयिक हैं। अथवा उदय से निष्पन्न हुआ जो भाव है वह औदयिक है। औदयिक पद की सामर्थ्य से यहां औदयिक भाव ही लिया गया है। इसी प्रकार से आगे भी

१ પ્રકારો હોવાને લીધે જ અહીં તેને ષડ્નામ (છનામ કહ્યું છે) તે ૧ બેહો નીચે પ્રમાણે છે-

(उदइए, उवसमिए खइए, खओवसमिए, पारिणामिए, संनिवाइए) (१) औदयिक, (२) औपशमिक, (३) क्षायिक, (४) क्षायोपशमिक, (५) पारिणामिक अने (६) सान्निपातिक.

શંકા-અહીં નામનું પ્રકરણ ચાલી રહ્યું છે. નામના અર્થોનું આ પ્રકરણ નથી આ પ્રકારના નામના પ્રકરણમાં તેના અર્થરૂપ ભાવોની પ્રરૂપણા કરવી તે ઉચિત લાગતું નથી છતાં આપે શા કારણે અહીં અર્થરૂપ ભાવોની પ્રરૂપણા કરી છે ?

ઉત્તર-નામ અને નામવાળા અર્થમાં અભેદ માનીને આ પ્રકારે નામાર્થની પ્રરૂપણા કરવી અયુક્ત નથી.

औदयिकभाव-જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ પ્રકારનાં કર્મોના ફળ રૂપ વિપાકનો-અનુભવ કરવો, તેનું નામ ઉદય છે આ ઉદયનું નામ જ औदयिक છે. અથવા ઉદયથી નિષ્પન્ન થયેલો જે ભાવ છે તેનું નામ औदयिक છે. औदयिक પદ અહીં औदयिक ભાવનું જ વાચક છે. એજ પ્રમાણે औपश-

नम्-उपशमः-कर्मणोऽनुदयाक्षीणावस्था भस्मराश्यन्तरालस्थितवह्निवत्, स एव, तेन वा निर्वृत्त औपशमिकः। क्षयः=कर्मणोऽपगमः, स एव तेन वा निर्वृत्तः-क्षायिकः। क्षायोपशमिकः-क्षय उपशमश्च उक्त एव, तदेव भावः क्षायोपशमिकः, तेन निर्वृत्तो वा क्षायोपशमिकः। अयं च-ईषद्विध्यातभस्मवह्निवद् बोध्यः।

औपशमिक भाव क्षायिक भाव, क्षायोपशमिक भाव, पारिणामिक भाव, और सान्निपातिक भाव उन २ पदों से जानना चाहिये। औपशमिक-कर्मों का उदय में नहीं रहना, किन्तु उनकी उपशमावस्था का होना इसी का नाम अनुदयाक्षीणावस्था है। इसी अवस्था का नाम उपशम है। जैसे भस्मराशि के भीतर अग्नि छुपी रहती है उसी प्रकार से इस उपशम अवस्था में कर्मों का उदय नहीं है किन्तु वे सत्ता में बैठे रहते हैं। इस उपशम का नाम ही औपशमिक भाव है। अथवा इस उपशम से जो भाव निवृत्त (बनता) होता है वह औपशमिक भाव है। कर्मों का अत्यंत विनाश होना इसका नाम क्षय है। यह क्षय ही क्षायिक है। अथवा इस क्षय से जो उत्पन्न होता है-वह क्षायिक है। कर्मों का क्षय और उपशम होना इसका नाम क्षयोपशम है। यह क्षयोपशम ही क्षायोपशमिक है। अथवा क्षयोपशम से जो भाव उत्पन्न होता है वह क्षायोपशमिक भाव है। यह भाव कुछ बुझी हुई अग्नि के जैसा जानना चाहिये। तात्पर्य कहने का यह है कि इस क्षयो-

---

મિકભાવ, ક્ષાયિકભાવ, ક્ષાયોપશમિકભાવ, પારિણામિકભાવ અને સાન્નિપાતિક ભાવને પણ ઔપશમિક આદિ પદો વડે નિષ્પન્ન થયેલા સમજવા જોઇએ.

ઔપશમિક-કર્મો ઉદયાવસ્થામાં રહેલાં ન હોય, પણ ઉપશમાવસ્થામાં રહેલાં હોય, ત્યારે તે અવસ્થાને અનુદયાક્ષીણાવસ્થા કહે છે એજ અવસ્થાનું નામ ઉપશમ છે. જેમ રાખના ઢગલા નીચે અગ્નિ છુપાયેલો રહે છે, એજ પ્રમાણે ઉપશમ અવસ્થામાં કર્મોનો ઉદય હોતો નથી પણ તેમનું અસ્તિત્વ તો હોય છે જ આ ઉપશમનું નામ જ ઔપશમિક ભાવ છે અથવા આ ઉપશમ વડે જે ભાવ નિષ્પન્ન થાય છે તે ભાવનું નામ ઔપશમિક ભાવ છે કર્મોનો અત્યંત વિનાશ થવો તેનું નામ ક્ષય છે. તે ક્ષય જ ક્ષાયિક રૂપ સમજવો, અથવા આ ક્ષયથી જે ભાવ ઉત્પન્ન થાય છે તે ભાવને ક્ષાયિકભાવ કહે છે કર્મોનો ક્ષય અને ઉપશમ થવો તેનું નામ ક્ષયોપશમ છે. તે ક્ષયોપશમ જ ક્ષાયોપશમિક છે. અથવા ક્ષયોપશમ વડે જે ભાવ ઉત્પન્ન થાય છે, તે ભાવનું નામ ક્ષાયોપશમિક ભાવ છે આ ભાવને થોડી થોડી બુઝાયેલી અગ્નિ જેવો

परिणामः-तेन तेन रूपेण वस्तूनां परिणमनं-भवनम्, स एव, तेन वा निर्वृत्तः पारिणामिकः। सन्निपातः=अनन्तरोक्तानां भावानां द्वयादिरूपेण मेलनं स एव, तेन वा निर्वृत्तः सान्निपातिकः ॥इति॥सू० १५१॥

सम्प्रति एतेषां भावानां स्वरूपं निरूपयितुमाह—

मूलम्—से किं तं उदइए? उदइए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-उदइए य उदयनिप्फण्णे य। से किं तं उदइए? उदइए-अट्ठण्हं कम्मपयडीणं उदएणं से तं उदइए। से किं तं उदयनिप्फण्णे? उदयनिप्फण्णे-दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-जीवोदय-

---

पशम में कितनेक सर्वघाति स्पर्द्धकों (अंशों) का उदयाभावी क्षय और कितनेक सर्वघातिस्पर्द्धकों का सदवस्थारूप उपशम होता है और देशघाति प्रकृतिरूप जो सम्यक् प्रकृति है उसका उदय रहता है। इसलिये इस भाव को कुछ बुझी हुई और कुछ नहीं बुझी हुई अग्नि की उपमा दी गई है। उस २ रूप से वस्तुओं का जो परिणमन होता है वह परिणाम है। वह परिणाम ही पारिणामिक भाव है। अथवा इस परिणाम से जो भाव उत्पन्न होता है वह पारिणामिक भाव है। इन पांच भावों का द्वयादि संयोगरूप से जो मिलना है वह सन्निपात है। यह सन्निपात ही सान्निपातिक भाव है। अथवा इस सन्निपात से जो भाव उत्पन्न होता है वह सान्निपातिक भाव है ॥सू० १५१॥

સમજવો આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે આ ક્ષયોપશમમાં કેટલાક સર્વઘાતિ સ્પર્દ્ધકોનો (અંશોનો) ઉદયાભાવી ક્ષય અને કેટલાક સર્વઘાતિ સ્પર્દ્ધકોનો સદવસ્થા રૂપ (વિદ્યમાનતા રૂપ) ઉપશમ થાય છે, અને દેશઘાતિ પ્રકૃતિ રૂપ જે સમ્યક્ પ્રકૃતિ છે તેનો ઉદય રહે છે તેથી આ ભાવને થોડી બુઝાયેલી અને થોડી ન બુઝાયેલી અગ્નિની ઉપમા આપવામાં આવી છે. તે તે રૂપે વસ્તુઓનું જે પરિણમન થાય છે તેને પરિણામ કહે છે. તે પરિણામ જ પારિણામિક ભાવ છે. અથવા તે પરિણામ વડે જે ભાવ ઉત્પન્ન થાય છે, તેને પારિણામિકભાવ કહે છે આ પાંચ ભાવોનું જે દ્વિકસંયોગ આદિ સંયોગ રૂપે મિલન (સંયોગ) થાય છે, તેનું નામ સન્નિપાત છે. તે સન્નિપાત જ સાન્નિપાતિક ભાવ રૂપ છે અથવા તે સન્નિપાત વડે જે ભાવ ઉત્પન્ન થાય છે, તેનું નામ સાન્નિપાતિક ભાવ છે. ॥સૂ૦૧૫૧॥

निप्फण्णे य अजीवोदयनिप्फण्णे य। से किं तं जीवोदयनिप्फण्णे ? जीवोदयनिप्फण्णे-अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा-णेरइए तिरिक्खजोणिए मणुस्से देवे पुढविकाइए जाव तसकाइए कोहकसाई जाव लोहकसाई, इत्थीवेदए पुरिसवेदए णपुंसगवेदए कण्हलेसे जाव सुक्कलेसे मिच्छादिट्ठी सम्मदिट्ठी मीसदिट्ठी अविरए असण्णी अण्णाणी आहारए छउमत्थे सजोगी संसारत्थे असिद्धे। से त्तं जीवोदयनिप्फण्णे। से किं तं अजीवोदयनिप्फण्णे? अजीवोदयनिप्फण्णे-अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा-उरालियं वा सरीरं, उरालियसरीरपओगपरिणामियं वा दव्वं, वेउव्वियं वा सरीरं, वेउव्वियसरीरपओगपरिणामियं वा दव्वं, एवं आहारगं सरीरं, तेयगं सरीरं, कम्मगं सरीरं च भाणियव्वं। पओगपरिणामिए वण्णे गंधे रसे फासे। से तं अजीवोदयनिप्फण्णे। से तं उदयनिप्फण्णे से तं उदइए ॥सू० १५२॥

छाया—अथ कोऽसौ औदयिकः ? औदयिको द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-औदयिकश्च उदयनिष्पन्नश्च। अथ कोऽसौ औदयिकः ? औदयिकः-अष्टानां कर्मप्रकृतीनामुदयः खलु। स एष औदयिकः। अथ कोऽसौ उदयनिष्पन्नः ? उदयनिष्पन्नो द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-जीवोदयनिष्पन्नश्च अजीवोदयनिष्पन्नश्च। अथ कोऽसौ जीवोदयनिष्पन्नः ? जीवोदयनिष्पन्नः अनेकविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-नैरयिकः तिर्यग्योनिको मनुष्यो देवः पृथिवीकायिको यावत् त्रसकायिकः क्रोधकषायी यावद् लोभकषायी स्त्रीवेदकः पुरुषवेदको नपुंसकवेदकः कृष्णलेश्यो यावत् शुक्ललेश्यो मिथ्यादृष्टिः सम्यग्दृष्टिः मिश्रदृष्टिः अविरतः असंज्ञी अज्ञानी आहारकः छद्मस्थः सयोगी संसारस्थः असिद्धः। स एष जीवोदयनिष्पन्नः। अथ कोऽसौ अजीवोदयनिष्पन्नः ? अजीवोदयनिष्पन्नः-अनेकविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-औदारिकं वा शरीरम्, औदारिकशरीरप्रयोगपरिणामितं वा द्रव्यम्, वैक्रियिकं वा शरीरं वैक्रियिकशरीरप्रयोगपरिणामितं वा एवमूद्रव्यम्, -आहारकं शरीरम्, तैजस्कं

शरीरं कार्मकं शरीरं च भणितव्यम्। प्रयोगपरिणामितो वर्णो गन्धो रसः स्पर्शः। स एषोऽजीवोदयनिष्पन्नः। स एष उदयनिष्पन्नः। स एष औदयिकः ॥सू० १५२॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि

अथ कोऽसौ औदयिकः? इति प्रश्नः। उत्तरयति—औदयिको द्विविधः प्रज्ञप्तः। द्वैविध्यमेवाह—औदयिकः उदयनिष्पन्नश्च। तत्र औदयिकः—ज्ञानावरणीयादीनामष्टकर्मप्रकृतीनामुदयः। 'णं' इति वाक्यालङ्कारे। अयं प्रथमो भेदः। द्वितीयश्च भेद उदयनिष्पन्नः। स हि—जीवोदयनिष्पन्नः, अजीवोदयनिष्पन्नश्च।

अब सूत्रकार इन्हीं भावों का स्वरूपनिरूपण करते हैं—

'से किं तं उदइए' इत्यादि।

शब्दार्थ—(से किं तं उदइए?) हे भदन्त! पूर्वप्रक्रान्त औदयिक भाव क्या है?

उत्तर—(उदइए दुविहे पण्णत्ते) औदयिक भाव दो प्रकार का प्रज्ञप्त हुआ है। (तं जहा) उसके वे दो प्रकार ये हैं—(उदइए य उदय निप्फण्णे य) एक औदयिक और दूसरा उदयनिष्पन्न (से किं तं उदइए?) हे भदन्त! औदयिक भाव क्या है? (अट्ठण्हं कम्मपयडीणं उदएणं उदइए)

उत्तर—ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्म प्रकृतियों का उदय औदयिक है। (से तं उदइए) इस प्रकार यह औदयिक है।

(से किं तं उदयनिप्फण्णे?) हे भदन्त! उदयनिष्पन्न क्या है?

આગલા સૂત્રમાં ઔદયિક આદિ જે ભાવો પ્રકટ કરવામાં આવ્યા છે, તે ભાવોના સ્વરૂપનું હવે સૂત્રકાર નિરૂપણ કરે છે—

"से किं तं उदइए" इत्यादि—

શબ્દાર્થ—(से किं तं उदइए?) હે ભગવન્! નામના છ ભેદમાંના પહેલા ભેદ રૂપ ઔદયિક ભાવનું સ્વરૂપ કેવું હોય છે?

ઉત્તર—(उदइए दुविहे पण्णत्ते) ઔદયિક ભાવ બે પ્રકારનો કહ્યો છે. (तं जहा) તે બે પ્રકાર નીચે પ્રમાણે સમજવા—(उदइए य उदयनिप्फण्णे य) (૧) ઔદયિક અને (૨) ઉદયનિષ્પન્ન.

પ્રશ્ન—(से किं तं उदइए?) હે ભગવાન્! ઔદયિકનું સ્વરૂપ કેવું હોય છે.

ઉત્તર—(अट्ठण्हं कम्मपयडीणं उदएणं उदइए) જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ કર્મપ્રકૃતિઓનો ઉદય ઔદયિક રૂપ સમજવો (से तं उदइए) આ રીતે ઔદયિકનું સ્વરૂપ સમજવું.

પ્રશ્ન—(से किं तं उदयनिप्फण्णे?) હે ભગવન્! ઉદયનિષ્પન્નનું સ્વરૂપ કેવું હોય છે?

तत्र-जीवोदयनिष्पन्नः-जीवे उदयेन निष्पन्नः। औदयिकभावोऽनेकविधःप्रज्ञप्तः। अनेकविधत्वमेवाह-'णेरइए' इत्यादि। नैरयिकादिरसिद्धान्तो जीवोदयनिष्पन्न औदयिको भावो बोध्यः। नैरयिकादयः शब्दा भावपरा बोध्याः। नारकत्वादयः पर्यायाः कर्मणामुदयेनैव जीवे निष्पद्यन्ते इत्यत एते जीवोदयनिष्पन्ना इति भावः।

उत्तर—(उदयनिप्फण्णे-दुविहे पण्णत्ते) उदयनिष्पन्न दो प्रकार का कहा गया है। (तं जहा) वे दो प्रकार ये हैं-(जीवोदयनिप्फण्णे य अजीवोदयनिप्फण्णे य)-एक जीवोदय निष्पन्न और दूसरा अजीवोदय-निष्पन्न। (से किं तं जीवोदयनिप्फण्णे?) हे भदन्त! जीव में उदय से जो भाव निष्पन्न होता है वह क्या है?

उत्तर—(जीवोदयनिप्फण्णे अणेगविहे पण्णत्ते) जीव में उदय से जो औदयिक भाव निष्पन्न होता है वह अनेक प्रकार का कहा है (तं जहा) जैसे-(णेरइए, तिरिक्खजोणीए, मणुस्से, देवे, पुढविकाइए जाव तसकाइए, कोहकसाई, जाव लोहकसाई, इत्थीवेदए, पुरिसवेदए, णपुंसगवेदए, कण्हलेसे, जाव सुक्कलेसे मिच्छादिट्ठी, सम्मदिट्ठी; मीसदिट्ठी, अविरए, असण्णी, अण्णाणी, आहारए, छउमत्थे, सजोगी, संसार-त्थे, असिद्धे) नैरयिक, तिर्यग्योनिक, मनुष्य, देव, पृथिवीकायिक यावत् त्रसकायिक, क्रोधकषायी, यावत् लोभकषायी, स्त्रीवेदक, पुरुषवेदक, नपुंसकवेदक, कृष्णलेश्या, यावत् शुक्ललेश्या, मिथ्यादृष्टि, सम्यक्दृष्टि,

---

उत्तर-(उदयनिप्फण्णे दुविहे पण्णत्ते) उदयनिष्पन्नना बे प्रकार पडे छे. (तंजहा) ते प्रकारो नीचे प्रमाणे छे-(जीवोदयनिप्फण्णे य, अजीवोदयनिप्फण्णे य) (१) जीवोदय निष्पन्न, (२) अजीवोदय निष्पन्न.

प्रश्न-(से किं तं जीवोदयनिप्फण्णे?) हे भगवान्! जीवमां उदयथी जे भाव निष्पन्न थाय छे, ते भावनुं स्वरूप केवुं होय छे?

उत्तर-(जीवोदयनिप्फण्णे अणेगविहे पण्णत्ते) जीवमां उदयथी जे औदयिक-भाव उत्पन्न थाय छे, ते अनेक प्रकारनो होय छे (तंजहा) जेम के....(णेर-इए, तिरिक्खजोणीए, मणुस्से, देवे, पुढविकाइए जाव तसकाइए, कोह कसाई जाव लोहकसाइ, इत्थीवेदए, पुरिसवेदए, णपुंसगवेदए, कण्हलेसे जाव सुक्कलेसे, मिच्छादिट्ठी, सम्मदिट्ठी, मीसदिट्ठी, अविरए, असण्णी, अण्णाणी, आहा-रए, छउमत्थे, सजोगी, संसारत्थे, असिद्धे) नारक, तिर्यग्योनिक, मनुष्य, देव, पृथ्वीकायिक आदि स्थावर, त्रसकायिक, क्रोधकषायीथी लईने लोभकषायी पर्यं-न्तना, स्त्रीवेदक, पुरुषवेदक, नपुंसकवेदक, कृष्णलेश्याथी लईने शुक्ललेश्या

ननु नारकत्वादिभ्योऽन्येऽपि निद्रापञ्चक वेदनीयहास्यादयो बहवः कर्मोदयजन्याः पर्यायाः सन्ति, कथं तर्हि नारकत्वादयः कतिपय एवोदाहृताः ? इति चेदाह-नारकत्वादयोऽत्रोपलक्षणत्वेनोदाहृताः, अत एभ्योऽन्येऽपि सम्भविनः पर्याया बोध्याः। ननु कर्मोदयजनितानां नारकत्वादीनां भवत्वत्रोपन्यासः, परन्तु लेश्यास्तु

मिश्रदृष्टि अविरत, असंज्ञी, अज्ञानी, आहारक, छद्मस्थ, सयोगी संसारस्थ, असिद्ध। ये सब नैरयिक से लेकर असिद्ध पर्यन्त जीवोदय-निष्पन्न औदयिक भाव हैं। नैरयिक आदि शब्द भाव परक जानना चाहिये। नारकत्व आदि पर्यायें कर्मों के उदय से ही जीव में निष्पन्न होती हैं इसलिये ये जीवोदय निष्पन्न हैं।

शंकाः-नारकत्व आदि से भिन्न और भी निद्रापञ्चक-निद्रा निद्रा, प्रचला, प्रचला प्रचला, स्त्यानगृद्धि वेदनीय और हास्यादि अनेक कर्मोदय जन्य पर्यायें हैं। तो फिर सूत्रकार ने यहां इन नारक आदि थोड़ी सी पर्यायों को ही उदाहृत क्यों किया है ?

उत्तरः-सूत्रकार ने जो यहां इन नारक आदि पर्यायों को उदाहृत किया है वह केवल उपलक्षण रूप से किया है। इसलिये इन से भी अतिरिक्त जितनी भी पर्यायें कर्मोदय जन्य हैं वे सब इनसे गृहीत हो जाती हैं।

शंका-कर्मोदय जनित इन नारक आदि पर्यायों का औदयिक भाव

પર્યન્તની લેશ્યાવાળા, મિથ્યાદૃષ્ટિ, સમ્યગ્દૃષ્ટિ, મિશ્રદૃષ્ટિ, અસંજ્ઞી, અજ્ઞાની, આહારક, છદ્મસ્થ, સયોગી, સંસારસ્થ અને અસિદ્ધ, આ બધાં જીવોદય-નિષ્પન્ન ઔદયિક ભાવો છે. નૈરયિક આદિ શબ્દોને ભાવપરક સમજવા જોઇએ નારકત્વ આદિ પર્યાયો કર્મોના ઉદયથી જ જીવમાં નિષ્પન્ન (ઉત્પન્ન) થાય છે, તેથી તેમને જીવોદયનિષ્પન્ન કહેવામાં આવેલ છે.

શંકા-નારકત્વ આદિ ઉપર્યુક્ત પર્યાયો સિવાયની નિદ્રાપંચક (નિદ્રા, નિદ્રાનિદ્રા, પ્રચલા, પ્રચલાપ્રચલા, સ્ત્યાનગૃદ્ધિ), વેદનીય અને હાસ્યાદિક અનેક કર્મોદય જન્ય પર્યાયો છે. છતાં સૂત્રકારે તે પર્યાયોને ગણાવવાને બદલે માત્ર નારકાદિ પર્યાયોને જ કેમ ગણાવેલ છે?

ઉત્તર-સૂત્રકારે તો અહીં ઉદાહરણ રૂપે નારકાદિ પર્યાયોને જીવોદય-નિષ્પન્ન ઔદયિક ભાવ રૂપે ગણાવેલ છે. કેવળ ઉપલક્ષણ રૂપે જ આ પ્રમાણે કરવામાં આવ્યું છે. પરન્તુ તે સિવાયની કર્મોદય જન્ય જેટલા પર્યાયો છે, તેમને પણ અહીં ગ્રહણ કરી શકાય છે.

શંકા-કર્મોદય જનિત આ નારક આદિ પર્યાયોને ઔદયિક ભાવમાં ભલે

कस्यचित् कर्मण उदये भवन्तीत्येतन्नप्रसिद्धम्, तत् कथमिह कृष्णलेश्यादयः पठयन्ते ? इति चेदाह–लेश्यास्तु योगपरिणामः त्रिविधोऽपि योगः कर्मोदयजन्य एव, ततो लेश्यानामपि योगकर्मोदयेत्युभयजन्यत्वं न विरुध्यते इति नास्ति लेश्यानाम पाठे कश्चिद् दोषः। केचित्त्वेवं मन्यन्ते–यथा कर्माष्टकोदयात् संसारस्थत्वमसिद्धत्वं च जायते, तथैव लेश्यावत्त्वमपि जायते, इति। प्रकृतमुपसंहरन्नाह–स एष जीवोदयनिष्पन्न इति। अथ कोऽसौ अजीवोदयनिष्पन्नः ?

में उपन्यास भले रहो, परन्तु लेश्याएँ औदयिक हैं यहबात संभवित नहीं होती, क्योंकि लेश्याएँ किसी कर्म के उदय से होती हों यह बात प्रसिद्ध नहीं है। अतः जब ऐसी बात है, तो फिर सूत्रकार ने औदयिक भाव में इनका पाठ क्यों रखा है ?

उत्तरः–लेश्याएँ योगों के परिणाम–प्रवृत्ति रूप हैं। और तीनों प्रकार का जो योग है वह शरीर नाम कर्मोदय जन्य है। इसलिए लेश्याओं को योग और शरीर नामकर्मोदय इन दोनों द्वारा जन्य के होने के कारण इनका पाठ–औदयिक भाव में रखना निर्दोष है। कोई २ इस विषय में ऐसा मानते हैं–कि जैसे आठ कर्मों के उदय से संसार-स्थत्व और असिद्धत्व होता है, उसी प्रकार लेश्यावत्व भी होता है, (से तं जीवोदयनिप्फण्णे) इस प्रकार यह जीवोदय निष्पन्न औदयिक भाव हैं। (से किं तं अजीवोदय-निप्फण्णे) हे भदन्त ! अजीवोदय-निष्पन्न औदायिक भाव क्या है ?।

સમાવિષ્ટ કરવામાં આવે, પરન્તુ લેશ્યાઓ ઔદયિક હોવાનું સંભવી શકતું નથી, કારણ કે લેશ્યાઓને કર્મોદયજન્ય માનવામાં આવતી નથી છતાં પણ સૂત્રકારે શા કારણે ઔદયિક ભાવમાં તેનો સમાવેશ કર્યો છે ?

ઉત્તર–લેશ્યાઓ યોગોના પરિણામ–પ્રવૃત્તિ–રૂપ હોય છે અને ત્રણે પ્રકારના યોગ શરીરનામ કર્મજન્ય હોય છે. તેથી યોગ અને શરીરનામ કર્મોદય આ બન્ને દ્વારા જન્ય હોવાને કારણે લેશ્યાઓનો ઉપર્યુક્ત ઔદયિક ભાવમાં સમાવેશ કરવામાં કોઇ દોષ જણાતો નથી કોઈ કોઈ લોકો એવું માને છે કે–જેવી રીતે આઠ કર્મોના ઉદયથી સંસારીપણાની અને અસિદ્ધ-ત્વની પ્રાપ્તિ થાય છે, એજ પ્રમાણે લેશ્યાયુક્તત્વ પણ પ્રાપ્ત થાય છે. (से तं जीवोदयनिप्फण्णे) આ પ્રકારનું જીવોદય નિષ્પન્ન ઔદયિક ભાવનું સ્વરૂપ છે.

પ્રશ્ન–(से किं तं अजीवोदयनिप्फण्णे?) હે ભગવન્! અજીવોદય નિષ્પન્ન ઔદયિક ભાવનું સ્વરૂપ કેવું હોય છે?

इति शिष्यप्रश्नः। उत्तरयति-अजीवोदयनिष्पन्नः-अजीवे उदयेन निष्पन्न औदयिक भावः अनेकविधः प्रज्ञप्तः। अनेकविधत्वमेवाह-तद्यथा-औदारिकं वा शरीरम्= विशिष्टाकारपरिणतं तिर्यङ्मनुष्यदेवरूपमौदारिकं शरीरकम्। औदारिकशरीरप्रयोगपरिणामितं वा द्रव्यम्-औदारिकशरीरस्य प्रयोगेण=व्यापारेण परिणामितं= निष्पादितं वा द्रव्यम्। एतद्द्वयमपि अजीवे=पुद्गलद्रव्ये औदारिकशरीरनामकर्मोदयेन निष्पद्यते, अत एतद् द्वयम् अजीवोदयनिष्पन्न औदयिको भाव उच्यते। एवं वैकुर्विकादिचतुःशरीरविषयेऽपि बोध्यम्। औदारिकादि शरीरप्रयोगेण यत्

उत्तर-(अजीवोदयनिप्फण्णे अणेगविहे पण्णत्ते) अजीव में उदय से निष्पन्न औदयिक भाव अनेक प्रकार का कहा गया है। (तं जहा) जैसे-(उरालियं वा सरीरं उरालियसरीरं पओगपरिणामियं वा दव्वं) विशिष्ट आकार परिणत हुआ तिर्यञ्चों और मनुष्यों का देहरूप औदारिक शरीर, अथवा औदारिक शरीर के व्यापार से निष्पादित द्रव्य, ये दोनों भी अजीवपुद्गलद्रव्य-में औदारिक शरीर नामकर्म के उदय से निष्पन्न होते हैं। इसलिये ये दोनों अजीवोदय निष्पन्न औदयिक भाव कहे जाते हैं। (वेउव्वियं वा सरीरं, वेउव्वीयसरीरपओगपरिणामियं वा दव्वं एवं आहारगं सरीरं, तेयगं सरीरं कम्मगं सरीरं च भाणियव्वं) इसी प्रकार से वैक्रिय शरीर, अथवा वैक्रिय शरीर के व्यापार से निष्पादित द्रव्य, आहारक शरीर अथवा आहारक शरीर के व्यापार से निष्पादित द्रव्य, तैजस शरीर अथवा तैजस शरीर के व्यापार से निष्पादित द्रव्य, कार्मण

ઉત્તર-(अजीवोदयनिप्फण्णे अणेगविहे पण्णत्ते) અજીવમાં ઉદયથી નિષ્પન્ન ઔદયિકભાવ અનેક પ્રકારનો કહ્યો છે. (तंजहा) જેમ કે...(उरालियं वा सरीरं उरालियसरीरं-पओगपरिणामियं वा दव्वं) વિશિષ્ટ આકારમાં પરિણત થયેલું તિર્યંચો અને મનુષ્યોના દેહરૂપ ઔદારિક શરીર, અથવા ઔદારિક શરીરના વ્યાપારથી નિષ્પાદિત દ્રવ્ય આ બન્ને અજીવ-પુદ્ગલ દ્રવ્ય-માં ઔદારિક શરીર નામકર્મના ઉદયથી નિષ્પન્ન (ઉત્પન્ન) થાય છે. તેથી તે બન્નેને અજીવોદય નિષ્પન્ન ઔદયિકભાવ કહેવામાં આવે છે. (वेउव्वियं वा सरीरं, वेउव्वियसरीरपओगपरिणामियं वा दव्वं, एवं आहारगं सरीरं, तेयगं सरीरं, कम्मगं सरीरं च भाणियव्वं) એજ પ્રકારે વૈક્રિય શરીર, અથવા વૈક્રિય શરીરના વ્યાપારથી નિષ્પાદિત દ્રવ્ય, આહારક શરીર અથવા આહારક શરીરના વ્યાપારથી નિષ્પાદિત દ્રવ્ય, તૈજસ શરીર અથવા તૈજસ શરીરના વ્યાપારથી નિષ્પાદિત

परिणम्यते द्रव्यं तत् स्वयमेव दर्शयति सूत्रकारः-'पओगपरिणामिए' इत्यादि। प्रयोगपरिणामितो वर्णो गन्धो रसः स्पर्शः। अयं भाव-औदारिकादीनां पञ्चानामपि शरीराणां प्रयोगेण निष्पादितं वर्णगन्धरसस्पर्शस्वरूपं द्रव्यं बोध्यम्। एतद्भिन्नमानप्राणादिकमपि यच्छरीरे उत्पद्यते तदप्युपलक्षणत्वाद् ग्राह्यमिति। ननु यथा नारकत्वादयः पर्याया जीवे भवन्तीति जीवोदयनिष्पन्ने औदयिके पठ्यन्ते, एवं शरीराण्यपि जीवे एव भवन्ति, अत एतान्यपि जीवोदयनिष्पन्ने औदयिक एव पठनीयानि, कथं पुनरजीवोदयनिष्पन्ने औदयिके पठ्यन्ते ? इति

शरीर अथवा कार्माण शरीर के व्यापार से निष्पादित द्रव्य के विषय में भी जानना चाहिये। औदारिकादि शरीर के व्यापार से जो द्रव्य औदारिकादि रूप परिणामित होता है उसे सूत्रकार स्वयं दिखलाते है-(पओगपरिणामए वण्णे, गंधे, रसे, फासे,) प्रयोग परिणामित वर्ण, गंध, रस, और स्पर्श हैं। इसका तात्पर्य यह है-कि औदारिक आदि पाँचों भी शरीरों के व्यापार से जो द्रव्य निष्पादित होता है वह वर्ण, गंध, रस, और स्पर्शरूप है। इनसे भिन्न आन प्राण आदिक भी जो शरीर में उत्पन्न होते हैं वे भी उपलक्षण से यहां ग्रहण कर लेना चाहिये!

शंका-जैसे नारकत्व आदि पर्यायें जीव में होती हैं इस अभिप्राय से वे जीवोदय निष्पन्न औदयिक भाव में कही गई है, इसी प्रकार शरीर भी जीव में ही होते हैं-अतः वे भी जीवोदयनिष्पन्न औदयिक

દ્રવ્ય અને કાર્માણ શરીર અથવા કાર્માણ શરીરના વ્યાપારથી નિષ્પાદિત દ્રવ્યના વિષયમાં પણ સમજવું ઔદારિક આદિ શરીરના વ્યાપારથી જે દ્રવ્ય ઔદારિક આદિ રૂપે પરિણમિત થાય છે, તેને સૂત્રકાર પોતે જ બતાવે છે-(पओगपरिणामिए वण्णे, गंधे, रसे, फासे) પ્રયોગપરિણામિત વર્ણ, ગંધ, રસ અને સ્પર્શ છે. આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે-ઔદારિક આદિ પાંચે શરીરોના વ્યાપારથી જે દ્રવ્ય નિષ્પાદિત થાય છે, તે વર્ણ, ગંધ, રસ અને સ્પર્શ રૂપ હોય છે. આ સિવાય જે આન, પ્રાણાદિકની શરીરમાં ઉત્પત્તિ થાય છે તેમને પણ ઉપલક્ષણની અપેક્ષાએ અહીં ગ્રહણ કરવા જોઈએ.

શંકા-જેવી રીતે નારકત્વ આદિ પર્યાયોનો જીવમાં સદ્ભાવ હોય છે, અને તે કારણે તો તે પર્યાયોનો જીવોદય નિષ્પન્ન ઔદયિક ભાવમાં સમાવેશ કરવામાં આવ્યો છે, એજ પ્રમાણે શરીરનો પણ જીવમાં સદ્ભાવ હોય છે, તેથી તેમનો પણ જીવોદય નિષ્પન્ન ઔદયિક ભાવોમાં સમાવેશ થવો જોઈતો હતો

चेदाह–यद्यप्यौदारिकादिशरीराणि जीवे भवन्ति, तथापि औदारिकादिशरीरनामकर्मोदयस्य मुख्यतया शरीरपुद्गलेष्वेव विपाको भवति, अत एतानि औदारिकादीनि पञ्चशरीराणि अजीवोदयनिष्पन्ने औदयिक एव भावे पठ्यन्ते, अतो नास्ति कश्चिद् दोषः। इत्थमजीवोदयनिष्पन्न औदयिकभावः प्ररूपित इति सूचयितुमाह–स एषोऽजीवोदयनिष्पन्न इति। उदयनिष्पन्नो भावः सकलोऽपि प्ररूपित इति सूचयितुमाह–स एष उदय निष्पन्न इति। एतावता औदयिको भावः प्ररूपित इति सूचयितुमाह–स एष औदयिक इति। इत्थं द्विविधोऽप्यौदयिकभावः प्ररुपित इति विज्ञेयम् ॥सू० १५२॥

भाव में ही कहना चाहिये थे, फिर क्यों–उन्हे अजीवोदयनिष्पन्न औदयिक भाव में रखा है?

उत्तर–यद्यपि औदारिक आदि शरीर जीव में होते हैं, तो भी औदारिक आदि शरीर नाम कर्मका विपाकमुख्यतया शरीर पुद्गलों में ही होता है, इसलिये इन औदारिक आदि पांच शरीरों को अजीवोदय निष्पन्न औदारिक भाव में ही रखा है। इसलिये इसमें कोई दोष नहीं है। (से तं अजीवोदयनिष्फण्णे) इस प्रकार से यह अजीवोदय निष्पन्न औदयिक भाव का कथन है। (से तं उदयनिष्फण्णे, से तं उदइए) एतावता औदयिक भाव प्ररूपित हो चुका। और इस प्ररूपणा से दोनों प्रकार का भी औदयिक भाव कथित हो चुका ऐसा जानना चाहियें।

भावार्थ–सूत्रकार ने इस सूत्र द्वारा औदयिक भाव का कथन किया है। इसमें उन्होंने यह समझाया है कि अष्टविध कर्मों का जो उदय है

છતાં અહીં તેને અજીવોદય નિષ્પન્ન ઔદયિક ભાવ રૂપે શા કારણે ગણાવવામાં આવેલ છે?

ઉત્તર–જો કે ઔદારિક આદિ શરીરોનો જીવમાં સદ્ભાવ હોય છે, છતાં પણ ઔદારિક આદિ શરીર નામકર્મનો વિપાક મુખ્યત્વે શરીર પુદ્ગલોમાં જ થાય છે. તેથી ઔદારિક આદિ પાંચ શરીરોને અજીવોદય નિષ્પન્ન ઔદયિક ભાવ રૂપ કહેવામાં આવેલ છે. તેથી તે પ્રકારનું કથન નિર્દોષ જ ગણી શકાય. (से तं अजीवोदयनिष्फण्णे) આ પ્રકારનું અજીવોદય નિષ્પન્ન ઔદયિક ભાવનું સ્વરૂપ સમજવું (से तं उदयनिष्फण्णे, से तं उदइए) આ પ્રકારે ઔદયિક ભાવની પ્રરૂપણા અહીં સમાપ્ત થાય છે આ પ્રરૂપણા દ્વારા બન્ને પ્રકારના ઔદયિક ભાવોની પ્રરૂપણા સમાપ્ત થઈ જાય છે.

ભાવાર્થ–સૂત્રકારે આ સૂત્ર દ્વારા ઔદયિક ભાવનું કથન કર્યું છે. આ સૂત્ર દ્વારા તેમણે એ વાતનું પ્રતિપાદન કર્યું છે કે આઠ પ્રકારનાં કર્મોનો

एक तो वह औदयिक भाव है, दूसरा अष्टविध कर्मों के उदय से जो भाव उत्पन्न होता है वह औदयिक भाव है। यह कर्मोदय निष्पन्न औदयिकभाव जीवोदय निष्पन्न और अजीवोदय निष्पन्न के भेद से दो प्रकार का कहा गया है। कर्मों के उदय से जो भाव जीव में उदित होता है वह जीवोदय निष्पन्न और जो अजीव में उदित होता है वह अजीवोदय निष्पन्न औदयिक भाव है। वह जीवोदय निष्पन्न औदयिक भाव में चारों गतियां चारों कषाय, तीनों वेद मिथ्या दर्शन अज्ञान छहों लेश्याएँ असंयम, असिद्धभाव आदि परिणमित किये गये हैं। क्योंकि ये सब जीव में ही विवक्षित अपने कर्म के उदय से निष्पन्न होते हैं–जैसे मनुष्यगति नाम के उदय से मनुष्य गति, तिर्यञ्चगतिनामकर्म के उदय से तिर्यञ्चगति, देवगति नामकर्म के उदय से देवगति और नरकगति नामकर्म के उदय से नरक गति उत्पन्न होती है। इसी प्रकार से चारों कषाय वेदनीय के उदय से होता है। तात्पर्य यह है कि मोहनीय कर्म-दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय के भेद से दो प्रकार का है।

જે ઉદય છે તે ઔદયિક ભાવ રૂપ છે અને બીજું એ પણ પ્રકટ કર્યું છે કે આઠ પ્રકારના કર્મોના ઉદયથી જે ભાવ ઉત્પન્ન થાય છે તે પણ ઔદયિક ભાવ રૂપ છે તે કર્મોદય નિષ્પન્ન ઔદયિક ભાવના નીચે પ્રમાણે બે ભેદ કહ્યા છે–(૧) જીવોદય નિષ્પન્ન અને (૨) અજીવોદય નિષ્પન્ન. કર્મોના ઉદયથી જે ભાવ જીવનાં ઉદિત થાય છે તેને જીવોદયનિષ્પન્ન ઔદયિક ભાવ કહે છે. અને કર્મોના ઉદયથી જે ભાવ અજીવોમાં ઉત્પન્ન (ઉદિત) થાય છે, તેને અજીવોદય નિષ્પન્ન ઔદયિક ભાવ કહે છે. જીવોદયનિષ્પન્ન ઔદયિક ભાવમાં ચારે ગતિઓ, ચારે કષાયો, ત્રણે વેદ, મિથ્યાદર્શન અજ્ઞાન, છએ લેશ્યાઓ, અસંયમ, અસિદ્ધભાવ આદિને ગણવામાં આવેલ છે, કારણ કે એ બધાં ભાવોનો જીવમાં જ સદ્ભાવ હોય છે. અને જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મોના ઉદયથી આ ભાવો નિષ્પન્ન થતા હોય છે જેમ કે મનુષ્યગતિ નામકર્મના ઉદયથી મનુષ્યગતિ, તિર્યંચગતિ નામ કર્મના ઉદયથી તિર્યંચગતિ, દેવગતિ નામકર્મના ઉદયથી દેવગતિ અને નરકગતિ નામકર્મના ઉદયથી નરકગતિ ઉત્પન્ન થાય છે. ચારે કષાયોની ઉત્પત્તિ પણ કષાયવેદનીયના ઉદયથી થાય છે આ કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે–મોહનીય કર્મના બે પ્રકાર છે–ચારિત્ર-મોહનીય અને દર્શનમોહનીય દર્શનમોહનીયના નીચે પ્રમાણે ત્રણ ભેદ પડે

दर्शन मोहनीय के, सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और तदुभय-सम्यक्त्व मिथ्यात्व ये तीन भेद हैं। चारित्र मोहनीय के कषाय वेदनीय और नो कषाय वेदनीय ये दो भेद हैं। इनमें जो कषाय वेदनीय है, उसके उदय होने पर क्रोध मान, माया और लोभ ये चारों कषायें उत्पन्न होते है। और नोकषाय चारित्र मोहनीय के उदय होने पर तीन वेद निष्पन्न होते हैं। मिथ्यात्व मोहनीय के उदय से मिथ्या दर्शन होता है। किसी ज्ञानावरण कर्म के उदय से अज्ञान भी होता है। लेश्याएँ योग परिणाम रूप हैं। इसलिये ये योग जनक शरीर नामकर्म उदय के फल है। चारित्रमोहनीय के सर्वघाति स्पर्धकों (कर्मों के अंश) के उदय से असंयत भाव होता है। किसी भी कर्म के उदय से असिद्ध भाव होता है इस प्रकार जो भी जीव में कर्मोदय से पर्याय निष्पन्न होती है वह सब औदयिक भाव है ऐसा जानना चाहिए। अजीव में उदय से निष्पन्न जो भाव है वह अजीवोदय निष्पन्न औदयिक भाव है। यह अजीवोदय निष्पन्न औदयिक भाव अनेक प्रकार का कहा गया है। जैसे औदारिक आदि शरीर अथवा औदारिक शरीर आदि के व्यापार से निष्पादित द्रव्य। ये शरीरादि अजीवोदय निष्पन्न औद-

---

छे-सम्यक्त्व, मिथ्यात्व अने तदुभय (सम्यक्त्व मिथ्यात्व) चारित्र मोहनीयना नीचे प्रमाणे बे भेद पडे छे-(१) कषायवेदनीय अने (२) नोकषायवेदनीय ज्यारे कषायवेदनीयनो उदय थाय छे त्यारे क्रोध, मान, माया अने लोभ रूप चारे कषायो उत्पन्न थाय छे अने नोकषायचारित्र मोहनीयनो उदय थाय त्यारे त्रणु वेद (स्त्री, पुरुष अने नपुंसक रूप त्रणु वेद) निष्पन्न थाय छे मिथ्यात्व मोहनीयना उदयथी मिथ्यादर्शन उत्पन्न थाय छे. ज्ञानावरणीय कर्मना उदयथी अज्ञानभाव उत्पन्न थाय छे लेश्याओ योगपरिणाम रूप गणाय छे तेथी योगजनक शरीर-नामकर्मना उदयना फलरूप तेमने गणी शकाय छे. चारित्रमोहनीयना सर्वघाति स्पर्द्धकोना (कर्मोना अंशोना) उदयथी असंयत भाव उत्पन्न थाय छे कोई पणु कर्मना उदयथी असिद्धभाव उत्पन्न थाय छे. आ रीते कर्मोदयने कारणे जीवमां जे पर्यायो उत्पन्न थाय छे ते बधी पर्यायोने औदयिक भाव रूप समजवी जोइओ.

अजीवमां कर्मोदयने लीधे जे भाव उत्पन्न थाय छे ते भावने अजीवोदय निष्पन्न औदयिक भाव कहे छे. आ अजीवोदय निष्पन्न औदयिकभाव अनेक प्रकारनो बताव्यो छे जेम के औदारिक आदि शरीरो अथवा औदारिक आदि शरीरोना व्यापारथी निष्पादित द्रव्य आ शरीरादिने अजीवोदय

अथ औपशमिकं भावं निर्दिशति—

मूलम्—से किं तं उवसमिए? उवसमिए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—उवसमे य उवसमनिप्फण्णे य। से किं तं उवसमे? उवसमे—मोहणिज्जस्स कम्मस्स उवसमेणं। से तं उवसमे। से किं तं उवसमनिप्फण्णे? उवसमनिप्फण्णे अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा—उवसंतकोहे जाव उवसंतलोहे उवसंतपेज्जे उवसंतदोसे उवसंतदंसणमोहणिज्जे उवसंतमोहणिज्ज उवसमिया सम्मत्तलद्धी उवसमिया चरित्तलद्धी उवसंतकसाय छउमत्थवीयरागे। से तं उवसमनिप्फण्णे। से तं उवसमिए ॥सू० १५३॥

छाया—अथ कोऽसौ औपशमिकः? औपशमिको द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—उपशमश्च उपशमनिष्पन्नश्च। अथ कोऽसावुपशमः—मोहनीयस्य कर्मण उपशमः खलु। सोऽसावुपशमः। अथ कोऽसावुपशमनिष्पन्नः? उपशमनिष्पन्नः अनेकविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—उपशान्त-क्रोधो यावदुपशान्तलोभ, उपशान्तप्रेम उपशान्तद्वेष उपशान्तदर्शनमोहनीय उपशान्तमोहनीयः औपशमिकी सम्यक्त्वलब्धिः औपशमिकी चारित्रलब्धिः उपशान्तकषायछद्मस्थवीतरागः। स एष उपशमनिष्पन्नः। स एष औपशमिकः ॥सू० १५३॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि।

यिक भाव इसलिये कहे गये हैं कि औदारिक आदि शरीर नाम कर्म का विपाक मुख्यतया इन शरीर पुद्गलों में ही होता है। इसीलिये इन्हें पुद्गल विपाकी प्रकृतियों में परिणमित किया गया है। ॥सू०१५२॥

अब सूत्रकार औपशमिक भाव का कथन करते हैं—

"से किं तं उवसमिए" इत्यादि।

નિષ્પન્ન ઔદયિક ભાવ રૂપે પ્રકટ કરવાનું કારણ એ છે કે ઔદારિક આદિ શરીર નામકર્મનો વિપાક મુખ્યત્વે આ શરીરપુદ્ગલોમાં જ થાય છે. તેથી તેમને પુદ્ગલવિપાકી પ્રકૃતિઓમાં પરિણમિત કરાયેલ છે. ॥સૂ૦૧૫૨॥

હવે સૂત્રકાર ઔપશમિક ભાવનું પ્રતિપાદન કરે છે—

"से किं तं उवसमिए" ઇત્યાદિ—

शिष्यः पृच्छति-अथ कोऽसौ औपशमिकः ? इति । उत्तरयति-औपशमिकः-उपशमोपशमनिष्पन्नभेदेन द्विविधः प्रज्ञप्तः । तत्र-मोहनीयस्य कर्मण उपशम एव उपशम इत्युच्यते । 'णं' इति वाक्यालङ्कारे । अयं प्रथमो भेदोऽष्टाविंशतिविधस्य मोहनीयस्यैव कर्मण उपशमश्रेण्यां द्रष्टव्यः, 'मोहस्सेवोवसमो' (मोहस्यैवोपशमः) इति वचनात् । अथ द्वितीयं भेदमाह-अथ कोऽसौ उपशमनिष्पन्नः ? इति प्रश्नः । उत्तरयति-उपशमनिष्पन्न उपशान्तक्रोधाद्युपशान्तकषायछद्मस्थवीतरागान्तो

हे भदन्त! (से किं तं उवसमिए ?) वह औपशमिकभाव क्या है ? (उवसमिए दुविहे पण्णत्ते).

उत्तर-औपशमिक भाव दो प्रकार का कहा गया है। (तंजहा) उसके वे दो प्रकार ये हैं-(उवसमे य उवसमनिप्फण्णे य) एक उपशम और दूसरा उपशम निष्पन्न है। (से किं तं उवसमे?) हे भदन्त! वह उपशम क्या है ?

उत्तर-(उवसमे मोहणिज्जस्स कम्मस्स उवसमेणं) अट्ठाईस प्रकार के समस्त मोहनीय कर्मका जो उपशम है वही उपशम है।

यह उपशम ८ वें ९ वें १० वें ११ वें गुणस्थान रूप उपशमश्रेणी में होता है। (से तं उवसमे) इस प्रकार यह उपशम है। (से किं तं उवसमनिप्फण्णे ?) हे भदन्त! वह उपशम निष्पन्न क्या है ?

उत्तर-(उवसमनिप्फण्णे अणेगविहे पण्णत्ते) उवशम निष्पन्न

शब्दार्थ-(से किं तं उवसमिए ?) હે ભગવન્! તે ઔપશમિકભાવનું સ્વરૂપ કેવું કહ્યું ?

ઉત્તર-(उवसमिए दुविहे पण्णत्ते) ઔપશમિક ભાવ બે પ્રકારનો કહ્યો છે (तंजहा) તે પ્રકારો આ પ્રમાણે છે-(उवसमे य उवसमनिप्फण्णे य) (૧) ઉપશમ અને (૨) ઉપશમનિષ્પન્ન.

પ્રશ્ન-(से किं तं उवसमे ?) હે ભગવન્! તે ઉપશમનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર-(उवसमे मोहणिज्जस्स कम्मस्स उवसमेणं) ૨૮ પ્રકારના સમસ્ત મોહનીય કર્મના ઉપશમને જ અહીં ઉપશમ ભાવ કહેવામાં આવ્યો છે. આઠ, નવ, દસ અને અગિયારમાં ગુણસ્થાન રૂપ ઉપશમ શ્રેણીમાં આ ઉપશમ ભાવનો સદ્ભાવ રહે છે (से तं उवसमे) આ પ્રકારનું ઉપશમનું સ્વરૂપ હોય છે.

પ્રશ્ન-(से किं तं उवसमनिप्फण्णे ?) હે ભગવન્! ઔપશમિક ભાવના બીજા ભેદ રૂપ ઉપશમ નિષ્પન્નનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર-(उवसमनिप्फण्णे अणेगविहे पण्णत्ते) ઉપશમ નિષ્પન્ન ઔપશમિક

बोध्यः। अत्रेदं बोध्यम्-मोहनीयस्योपशमेन दर्शनमोहनीयं चारित्रमोहनीयं चोपशान्तं भवति, एतद्द्वये उपशान्ते क्रोधादय उपशान्ता भवन्तीति। स एषोऽनन्तरोक्तो द्वितीयो भेदो बोध्यः। प्रकृतमुपसंहरन्नाह-स एष औपशमिक इति। इत्थं निर्दिष्टो द्विविधोऽप्यौपशमिको भावः ॥सू० १५३॥

औपशमिक भाव अनेक प्रकार का कहा गया है। (तंजहा) जैसे-(उवसंत कोहे) क्रोध का उपशान्त होना (जाव उवसंतलोहे) यावत् लोभ का उपशान्त होना, (उवसंतपेमे) प्रेम-राग-का उपशान्त होना (उवसंत दोसे) द्वेष का उपशान्त होना (उवसंत दंसणमोहणिज्जे) दर्शनमोहनीय का उपशांत होना (उवसंतमोहणिज्जे) मोहनीय कर्म का उपशान्त होना (उपसमिया सम्मत्तलद्धी) औपशमिकी सम्यक्त्व लब्धि, (उवसमिया चरित्तलद्धी) औपशमिकी चारित्रलब्धि (उवसंत कसाय छउमत्थवीयरागे) उपशान्त कषाय, छद्मस्थवीत राग (से तं उपसमनिप्फण्णे) इस प्रकार यह उपशम निष्पन्न औपशमिक भाव हैं। (से तं उवसमिए) इस प्रकार दोनों प्रकार का औपशमिक निर्दिष्ट हो चुका।

भावार्थ-इस सूत्र द्वारा सूत्रकारने औपशमिक भाव का स्वरूप दिखलाया है। उसमें उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि उपशम से होनेवाला औपशमिक भाव दो प्रकार का होता है। एक प्रकार का औपशमिक

ભાવ અનેક પ્રકારના કહ્યા છે. (तंजहा) જેમ કે-(उवसंते कोहे जाव उवसंते लोहे) ક્રોધ ઉપશાન્ત થવો, માનઉપશાન્ત થવું, માયાઉપશાન્ત થવી, લોભ ઉપશાન્ત થવો, (उवसंत पेमे) પ્રેમ (રાગ) ઉપશાન્ત થવો, (उवसंतदोसे) દ્વેષ ઉપશાન્ત થવો, (उवसंत दंसण मोहणिज्जे) દર્શનમોહનીયનું ઉપશાન્ત થવું, (उवसंतमोहणिज्जे) મોહનીય કર્મનું ઉપશાન્ત થવું, (उपसमिया सम्मत्तलद्धी) ઔપશમિકી સમ્યક્ત્વલબ્ધિ, (उवसमिया चरित्तलद्धी) ઔપશમિકી ચારિત્રલબ્ધિ (उवसंत कसाय छउमत्थवीयरागे) ઉપશાન્ત કષાય, છદ્મસ્થવીતરાગ, (से तं उपसमनिप्फण्णे) ઇત્યાદિ રૂપ આ ઉપશમનિષ્પન્ન ઔપશમિક ભાવ છે. (से तं उवसमिए) આ પ્રકારનું બન્ને પ્રકારના ઔપશમિક ભાવોનું સ્વરૂપ સમજવું.

ભાવાર્થ-આ સૂત્ર દ્વારા સૂત્રકારે ઔપશમિક ભાવના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કર્યું છે. સૂત્રકારે ઉપશમ જનિત ઔપશમિક ભાવના બે પ્રકારો બતાવ્યા છે. એક પ્રકારનો ઔપશમિક ભાવ એવો હોય છે કે જે માત્ર મોહનીયકર્મના

भाव वह है जो केवल मोहनीय कर्म के ही उपशम स्वरूप होता है। तात्पर्य इस कथन का यह है कि कर्मों की दस अवस्थाओं में एक उपशान्त अवस्थाभी है। जिन कर्म परमाणुओं की उदीरणा संभव नहीं अर्थात् जो उदीरणा के अयोग्य होते हैं वे उपशान्त कहलाते हैं। यह अवस्था आठों कर्मों में सम्भवित है। प्रकृत में इस उपशान्त अवस्था से प्रयोजन नहीं है। किन्तु अधः करण आदि परिणामों से जो मोहनीय कर्म का उपशम होता है प्रकृत में उसी से प्रयोजन है। इसीलिये "मोहनीयस्यैवोपशमः" ऐसा पाठ यहां जानना चाहिये क्यों कि अन्यत्र ऐसा ही पाठ है। मोहनीय कर्म दर्शनमोहनीय के ३ भेदों और चरित्र मोहनीय ने २५ भेदों को लेकर २८ प्रकार का है, इस सम्पूर्ण मोहनीय कर्म का उपशम, उपशम श्रेणी में होता है, इसलिये मोहनीय कर्म का उपशम रूप औपशमिक भाव उपश्रेणी में होना कहा गया है। दूसरा-उपशम निष्पन्न औपशमिक भाव अनेक प्रकार का कहा गया है सो उसका तात्पर्य यह है कि मोहनीय के उपशम से दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय ये दोनों उपशान्त हो जाते हैं। इनके उपशान्त होने पर क्रोधादिक भी उपशान्त हो जाते हैं इस प्रकार यह औपशमिक भाव का विवेचन है। ॥सू०१५३॥

ઉપશમ રૂપ હોય છે. આ કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે-કર્મોની દસ અવસ્થાઓમાંની એક ઉપશમ અવસ્થા પણ છે. જે કર્મપરમાણુઓની ઉદીરણા શકય હોતી નથી, એટલે કે જે કર્મપરમાણુઓ ઉદીરણાને માટે અયોગ્ય હોય છે, તેમને ઉપશાન્ત કહે છે આ અવસ્થાનો આઠે પ્રકારનાં કર્મોમાં સંભવ હોય છે. પ્રકૃતમાં (અહીં) આ ઉપશાન્ત અવસ્થાનું પ્રયોજન નથી, પરન્તુ અધઃકરણ આદિ પરિણામોથી જે મોહનીય કર્મનો ઉપશમ થાય છે, તેનું જ અહીં પ્રયોજન છે. તેથી જ "मोहनीयस्यैवोपशमः" આ પ્રકારનો પાઠ અહીં સમજવો જોઈએ કારણ કે અન્યત્ર એવો જ પાઠ આવે છે.

દર્શન મોહનીયકર્મના ત્રણ ભેદો અને ચારિત્રમોહનીયના પચીશ ભેદો મળીને મોહનીયકર્મના કુલ ૨૮ પ્રકાર છે આ સંપૂર્ણ મોહનીયકર્મનો ઉપશમ, ઉપશમ શ્રેણીમાં થાય છે તેથી મોહનીય કર્મના ઉપશમ રૂપ ઔપશમિક ભાવ ઉપશમ શ્રેણીમાં હોવાનું કહેવામાં આવ્યું છે. બીજા પ્રકારનો જે ઉપશમનિષ્પન્ન ઔપશમિક ભાવ છે, તે અનેક પ્રકારનો કહ્યો છે. આ કથનનું તાત્પર્ય નીચે પ્રમાણે છે-મોહનીયના ઉપશમથી દર્શનમોહનીય અને ચારિત્રમોહનીય, એ બન્ને ઉપશાન્ત થઈ જાય છે તેઓ ઉપશાન્ત થઈ જવાથી ક્રોધાદિક પણ ઉપશાન્ત થઈ જાય છે આ પ્રકારનું ઔપશમિક ભાવના સ્વરૂપનું વિવેચન અહીં કરવામાં આવ્યું છે. ॥સૂ૦૧૫૩॥

अथ क्षायिकं नाम निरूपयति–

मूलम्–से किं तं खइए? खइए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–खइए य खयनिप्फण्णे य। से किं तं खइए? खइए–अट्ठण्हं कम्मपयडीणं खए णं से तं खइए। से किं तं खयनिप्फण्णे? खयनिप्फण्णे अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा–उप्पण्णणाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली, खीण आभिणिबोहियणाणावरणे, खीण सुयणाणावरणे, खीण ओहिणाणावरणे, खीणमणपज्जवणाणावरणे, खीणकेवलणाणावरणे, अणावरणे, निरावरणे, खीणावरणे, णाणावरणिज्जकम्मविप्पमुक्के, केवलदंसी, सव्वदंसी, खीणनिद्दे, खीणनिद्दानिद्दे, खीणपयले, खीणपयलापयले, खीण थीणगिद्धी, खीणचक्खुदंसणावरणे, खीणअचक्खुदंसणावरणे खीणओहिदंसणावरणे, अणावरणे, निरावरणे, खीणावरणे, दरिसणावरणिज्जकम्मविप्पमुक्के, खीणसायावेयणिज्जे खीणअसायावेयणिज्जे, अवेयणे, निव्वेयणे खीणवेयणे, सुभासुभवेयणिज्जकम्मविप्पमुक्के, खीणकोहे, जाव खीणलोहे, खीणपेज्जे, खीणदोसे, खीणदंसणमोहणिज्जे, खीणचरित्तमोहणिज्जे, अमोहे, निम्मोहे, खीणमोहे, मोहणिज्जकम्मविप्पमुक्के, खीणणेरइयाउए, खीणतिरिक्खजोणिआउए, खीणमणुस्साउए, खीणदेवाउए, अणाउए, निराउए, खीणाउए, आउकम्मविप्पमुक्के, गइजाइसरीरंगोवंगबंधणसंघायणसंघयणसंठाण अणेगबोंदिविंदसंघायविप्पमुक्के, खीणसुभणामे, खीण असुभणामे, अणामे निण्णामे, खीणनामे, सुभासुभ-

णामकम्मविप्पमुक्के, खीणउच्चागोए, खीणणीयागोए, अगोए, निग्गोए, खीणगोए, उच्चणीयगोत्तकम्मविप्पमुक्के, खीणदाणंतराए, खीणलाभंतराए, खीणभोगंतराए, खीणउवभोगंतराए, खीणवीरियंतराए, अणंतराए, णिरंतराए, खीणंतराए, अंतरायकम्मविप्पमुक्के, सिद्धे, बुद्धे, मुत्ते, परिणिव्वुए, अंतगडे, सव्वदुक्खप्पहीणे। से तं खयनिप्फण्णे। से तं खइए ॥सू० १५४॥

छाया—अथ कोऽसौ क्षायिकः? क्षायिको द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-क्षायिकश्च क्षयनिष्पन्नश्च। अथ कोऽसौ क्षायिकः? क्षायिकः-अष्टानां कर्मप्रकृतीनां क्षयः खलु। सोऽसौ क्षायिकः। अथ कोऽसौ क्षयनिष्पन्नः? क्षयनिष्पन्नोऽनेकविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-उत्पन्नज्ञानदर्शनधरः अरहा जिनः केवली क्षीणाभिनिबोधिकज्ञानावरणः क्षीणश्रुतज्ञानावरणः क्षीणावधिज्ञानावरणः क्षीणमनःपर्यवज्ञानावरणः क्षीणकेवलज्ञानावरणः अनावरणः निरावरणः क्षीणावरणो ज्ञानावरणीयकर्मविप्रमुक्तः केवलदर्शी सर्वदर्शी, क्षीणनिद्रः क्षीणनिद्रानिद्रः क्षीणप्रचलः क्षीणप्रचलाप्रचलः क्षीणस्त्यानगृद्धिः, क्षीणचक्षुर्दर्शनावरणः क्षीणाचक्षुर्दर्शनावरणः क्षीणावधिदर्शनावरणः क्षीणकेवलदर्शनावरणः अनावरणः निरावरणः क्षीणावरणः दर्शनावरणीयकर्मविप्रमुक्तः। क्षीणसातावेदनीयः क्षीणासातावेदनीयः अवेदनो निर्वेदनः क्षीणवेदनः शुभाशुभवेदनीयकर्मविप्रमुक्तः। क्षीणक्रोधो यावत् क्षीणलोभः क्षीणप्रेमा क्षीणद्वेषः क्षीणदर्शनमोहनीयः क्षीणचारित्रमोहनीयः अमोहो निर्मोहः क्षीणमोहो मोहनीयकर्मविप्रमुक्तः। क्षीण नैरयिकायुष्कः क्षीणतिर्यग्योनिकायुष्कः क्षीणमनुष्यायुष्कः क्षीणदेवायुष्कः अनायुष्को निरायुष्कः क्षीणायुष्कः आयुकर्मविप्रमुक्तो, गतिजातिशरीराङ्गोपाङ्गबन्धनसंघातनसंहननसंस्थानानेकशरीरवृन्दसंघातविप्रमुक्तः क्षीणशुभनामा क्षीणाशुभनामा अनामा निर्नामा क्षीणनामा शुभाशुभनामकर्मविप्रमुक्तः। क्षीणोच्चगोत्रः क्षीणनीचगोत्रः अगोत्रः निर्गोत्रः उच्चनीचगोत्रकर्मविप्रमुक्तः। क्षीणदानान्तरायः क्षीणलाभान्तरायः क्षीणभोगान्तरायः क्षीणवीर्यान्तरायः अनन्तरायो निरन्तरायः क्षीणान्तरायः अन्तरायकर्मविप्रमुक्तः। सिद्धो बुद्धो मुक्तः परिनिर्वृत्तः अन्तकृतः सर्वदुःखप्रहीणः। सोऽसौ क्षयनिष्पन्नः। सोऽसौ क्षायिकः॥सू० १५४॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि—

अथ कोऽसौ क्षायिकः? इति शिष्य प्रश्नः। उत्तरयति-क्षायिकः क्षय एव, क्षयेण निष्पन्नो वा क्षायिकः। स द्विविधः प्रज्ञप्तः। द्वैविध्यमेवाह-तद्यथा-क्षायिकश्च क्षयनिष्पन्नश्च। तत्र-क्षायिकः खलु अष्टानां कर्मप्रकृतीनां=ज्ञानावरणीयाद्यष्टविध-कर्मप्रकृतीनां क्षयः। क्षयनिष्पन्नस्तु अनेकविधः प्रज्ञप्तः। अनेकविधत्वमाह-

अब सूत्रकार क्षायिक भाव का निरूपण करते हैं—

"से किं तं खइए" इत्यादि—

शब्दार्थ-(से किं तं खइए?) हे भदन्त! वह क्षायिक क्या है?

उत्तर-(खइए दुविहे पण्णत्ते) क्षायिक दो प्रकार का कहा गया है।-(तंजहा) (जैसे-खइए य खयनिप्फण्णे य) एक क्षय रूप क्षायिक और दूसरा क्षय निष्पन्न। (से किं तं खइए) हे भदन्त! वह क्षायिक क्या है? (अट्ठण्हं कम्मपयडीणं खएणं) आठ कर्म प्रकृतियों का जो क्षय है वही क्षायिक है। (से तं खइए) इस प्रकार वह यह क्षायिक है (से किं तं खयनिप्फण्णे) हे भदन्त! वह क्षयनिष्पन्न क्षायिक क्या है? (खयनिप्फण्णे अणेगविहे पण्णत्ते),

उत्तर-क्षय निष्पन्न क्षायिक भाव अनेक प्रकार का है। (तंजहा) जैसे-(उप्पण्णणाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली) उत्पन्न ज्ञान दर्शन को

હવે સૂત્રકાર ક્ષાયિક ભાવનું નિરૂપણ કરે છે—

"से किं तं खइए" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(से किं तं खइए?) હે ભગવન્! પૂર્વપ્રકાન્ત ક્ષાયિક ભાવનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(खइए दुविहे पण्णत्ते) ક્ષાયિક ભાવ બે પ્રકારનો કહ્યો છે. (तंजहा) તે બે પ્રકારો નીચે પ્રમાણે છે-(खइए य खयनिप्फण्णे य) (૧) ક્ષય રૂપ ક્ષાયિક અને (૨) ક્ષયનિષ્પન્ન.

પ્રશ્ન-(से किं तं खइए?) હે ભગવન્! તે ક્ષાયિક ભાવનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(अट्ठण्हं कम्मपयडीणं खएणं) આઠ કર્મપ્રકૃતિઓના ક્ષયનું નામ જ ક્ષાયિક છે. (से तं खइए) ક્ષાયિકનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ છે.

પ્રશ્ન-(से किं तं खयनिप्फण्णे?) હે ભગવન્! ક્ષાયિક ભાવના બીજા ભેદ રૂપ ક્ષયનિષ્પન્ન ક્ષાયિક ભાવનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(खयनिप्फण्णे अणेगविहे पण्णत्ते) ક્ષયનિષ્પન્ન ક્ષાયિકભાવ અનેક પ્રકારનો કહ્યો છે. (तंजहा) જેમ કે...(उप्पण्णणाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली) ઉત્પન્ન જ્ઞાનદર્શનધારી અર્હંત જિન કેવલી ક્ષયનિષ્પન્ન ક્ષાયિક ભાવ રૂપ છે. જેવી

तद्यथा-उत्पन्नज्ञानदर्शनधरः-उत्पन्नयोः-अपनीतमलादर्शमण्डलप्रभावत् सकल-तदावरणापगमादभिव्यक्तयोः ज्ञानदर्शनयोर्धरः=धारकः, अरहाः-नास्ति रहः=रहस्यं यस्यासौ अरहाः-अविद्यमानरहस्यः, नास्य किंचिदपि गोप्यमस्तीति भावः, जिनः-आवरणशत्रुजेतृत्वात्, केवली-केवलं=संपूर्णं ज्ञानमस्यास्तीति केवली-केवलज्ञानवान्, क्षीणाभिनिबोधिकज्ञानावरणः-क्षीणमाभिनिबोधिकज्ञानावरणं

धारण करनेवाले अर्हंत जिन केवली-जिस प्रकार-मल के अपगम से आदर्श मण्डल की प्रभा में पदार्थ प्रतिबिम्बित होने लगते हैं, उसी प्रकार-मूलरूप ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्मों के विनाश से उत्पन्न निर्मल अनन्त ज्ञान और अनन्त दर्शन में त्रिकालवर्ति समस्त ज्ञेय झलकने लगते हैं ऐसे ज्ञान और दर्शन को जो धारण करते हैं तथा जो अरहा-जिनके लिये-कोई भी जगत का पदार्थ गोप्य नहीं हैं। आवरण रूप शत्रु के विजेता होने से जो जिन हैं, तथा जिनका ज्ञान संपूर्ण है, इसलिये जो केवली हैं, यहां केवल शब्द का अर्थ सम्पूर्ण ज्ञान है। इस सम्पूर्ण ज्ञान रूप केवल ज्ञान से जो युक्त हैं ऐसे वे उत्पन्न ज्ञानदर्शन को धारण करनेवाले अरहा जिन केवली क्षयनिष्पन्न क्षायिक भावरूप हैं। अब सूत्रकार प्रत्येक कर्म के नष्ट होने से जो २ नाम होते हैं उनका यहां पर कथन करते हैं-यह कथन सिद्धपरमेष्ठी की अपेक्षा से जानना चाहिये-क्यों कि वे ही प्रत्येक कर्म के क्षय से क्षायिकभाव रूप निष्पन्न होते हैं।-

રીતે અરીસા ઉપરનો મેલ દૂર કરી નાખવામાં આવે તો અરીસામાં પદાર્થનું સ્પષ્ટ પ્રતિબિંબ દેખાય છે, એજ પ્રમાણે જ્ઞાનાવરણ અને દર્શનાવરણ રૂપ કર્મ મળ દૂર થઇ જવાને લીધે ઉત્પન્ન થયેલા નિર્મળ, અનંત જ્ઞાન અને અનંત દર્શનમાં ત્રિકાળવર્તી સમસ્ત જ્ઞેય પદાર્થો સ્પષ્ટ રૂપે દેખવા માંડે છે. એવા જ્ઞાન અને દર્શનના ધારક અર્હંત જિન કેવલી ક્ષયનિષ્પન્ન ક્ષાયિક ભાવ રૂપ છે. 'અરહા'-જેમને માટે જગતનો કોઇ પણ પદાર્થ ગોપ્ય (અદૃશ્ય) નથી અથવા જેમણે કામ, ક્રોધાદિ શત્રુઓનો નાશ કરી નાખ્યો છે એવાં તીર્થંકર ભગવાનોને અરહા અથવા અર્હંત કહે છે. કર્માદિ રૂપ શત્રુઓ પર વિજય મેળવનારા હોવાથી તેમને જિન કહ્યા છે. તેમનું જ્ઞાન સંપૂર્ણ હોવાથી તેમને કેવલી કહ્યા છે કેવલજ્ઞાન એટલે સંપૂર્ણજ્ઞાન.

હવે સૂત્રકાર પ્રત્યેક કર્મનો નાશ થવાથી જે જે નામ થાય છે, તેમનું નિરૂપણ કરે છે આ કથન સિદ્ધ પરમાત્માની અપેક્ષાએ કરવામાં આવ્યું છે એમ સમજવું, કારણ કે તેમના પ્રત્યેક કર્મનો ક્ષય થવાને કારણે તેઓ જ ક્ષાયિક ભાવ રૂપે નિષ્પન્ન થાય છે.

यस्य स तथा, एवं-क्षीणश्रुतावधिमनःपर्यवकेवलज्ञानावरणरूपाणि चत्वारि पदानि बोध्यानि। तथा-अनावरणः-अविद्यमानमावरणं यस्य त तथा, विमलप्रकाशवत्वात् निर्मलाकाशस्थितचन्द्रवत्। निरावरणः-निर्गतम् आवरणं यस्य स तथा समस्तावरण-

ज्ञानावरण कर्म पांच प्रकार का है—

१ मति ज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्यवज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण जीव जब अर्हंत जिन केवली बनता है, तब उसका सम्पूर्ण ज्ञानावरणकर्म नष्ट हो जाता है-इसलिये (खीण आभिणिबोहियणाणावरणे) क्षीण हो गया है आभिनिबोधिक ज्ञनावरण जिसका (खीणसुयणाणावरणे) क्षीण हो गया है श्रुतज्ञानावरण कर्म जिसका (खीणओहियणाणावरणे) क्षीण हो गया हैं अवधि ज्ञानावरण कर्म जिसका (खीण मणपज्जवणाणावरणे) क्षीण हो गया है मनःपर्यवज्ञानावरण जिसका, (खीणकेवलणाणावरणे) क्षीण हो गया है केवलज्ञानावरण जिसका, ऐसा होने के कारण क्षीणाभिनिबोधिक ज्ञानावरण, क्षीण श्रतज्ञानावरण, क्षीणावधिज्ञानावरण, क्षीण मनःपर्यवज्ञानावरण, क्षीण केवलज्ञानावरण ये भिन्न २ नाम समस्त ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय हो जाने की अपेक्षा से निष्पन्न हो जाते हैं। इसी प्रकार से (अणावरणे निरावरणे, खीणावरणे, णाणावरणिज्जकम्मविप्पमुक्के) जब समस्त आवरण कर्म नष्ट हो जाता है तब वह आत्मा

જ્ઞાનાવરણ કર્મ પાંચ પ્રકારનાં છે-

(૧) મતિજ્ઞાનાવરણ, (૨) શ્રુતજ્ઞાનાવરણ, (૩) અવધિજ્ઞાનાવરણ, (૪) મનઃપર્યવજ્ઞાનાવરણ અને (૫) કેવળજ્ઞાનાવરણ.

જીવ જ્યારે અર્હંત જિન કેવલી બને છે, ત્યારે તેના સમસ્ત જ્ઞાનાવરણ કર્મોનો નાશ થઈ જાય છે, તેથી તે (खीण आभिणिबोहिय णाणावरणे) ક્ષીણ આભિનિબોધિક જ્ઞાનાવરણવાળો, (खीण सुयणाणावरणे) ક્ષીણ શ્રુતજ્ઞાનાવરણ કર્મવાળો, (खीण ओहियण णावरणे) ક્ષીણ અવધિજ્ઞાનાવરણ કર્મવાળો, (खीण मणपज्जवणाणावरणे) ક્ષીણ મનઃપર્યવજ્ઞાનાવરણ કર્મવાળો અને (खीण केवलणाणावरणे) ક્ષીણ કેવલજ્ઞાનાવરણ કર્મવાળો થઈ જાય છે તે કારણે સમસ્ત જ્ઞાનાવરણીય કર્મોનો ક્ષય થઈ જવાને કારણે તેના આ પાંચ નામો નિષ્પન્ન થાય છે. (૧) ક્ષીણાભિનિબોધિકજ્ઞાનાવરણ, (૨) ક્ષીણશ્રુતજ્ઞાનાવરણ, (૩) ક્ષીણાવધિજ્ઞાનાવરણ, (૪) ક્ષીણ મનઃપર્યવજ્ઞાનાવરણ અને (૫) ક્ષીણ કેવલજ્ઞાનાવરણ એજ પ્રમાણે (अणावरणे, निरावरणे, खीणावरणे, णाणावरणिज्जकम्मविप्पमुक्के) જ્યારે સમસ્ત આવરણ કર્મનો નાશ થઈ જાય છે ત્યારે તે આત્મા

रहितत्वात्। विगतमलस्वर्णवत्, क्षीणावरणः-क्षीणो निःसत्ताकीभूतः आवरणो यस्य स तथा, अपुनर्भावावरणरहितत्वात्। अपाकृतमलावरणजात्यमणिवत्। उपसंहरन्नाह-ज्ञानावरणीयकर्मविप्रमुक्तः-ज्ञानावरणीयेन कर्मणा विविधैः=अनेकप्रकारैः प्रकर्षेण मुक्तः। एषां पदानां नयमतभेदेन भेदो बोध्यः। इत्थं ज्ञानावरणीयक्षयापेक्षाणि नामान्युक्तानि।

निर्मल आकाश में स्थितपूर्ण चन्द्र के जैसा निर्मल प्रकाशवाला हो जाता है इसलिये अविद्यमान आवरणवाला होने से उसका "अनावरण" ऐसा नाम हो जाता है। अतः अनावरण यह उसकी नाम रूप अवस्था आवरण के क्षय से निष्पन्न होने के कारण क्षायिक भाव रूप है। आगे किसी भी प्रकार के आवरण कर्म का संबन्ध फिर उस आत्मा से होता नहीं है इसलिये वह निरावरण अवस्था विशिष्ट बन जाता है। तब उसका नाम "निरावरण" ऐसा हो जाता है। इसी प्रकार वह निःसत्ता की भूत आवरणवाला होने के कारण क्षीण मलावरणवाले जात्यमणि के जैसा "क्षीणावरण" इस नामवाला बनजाता है। इस प्रकार विविध प्रकार से ज्ञानावरणीय कर्म द्वारा विप्रमुक्त बने हुए उस आत्मा के ये पूर्वोक्त समस्त नाम ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय की अपेक्षा से कहे गये हैं। यद्यपि शब्दनय की अपेक्षा से इनमें कोई भी भेद नहीं है इसलिये

નિર્મળ આકાશમાં રહેલા પૂર્ણચન્દ્રના સમાન વિમલ પ્રકાશવાળો બની જાય છે. આ રીતે અવિદ્યમાન આવરણવાળો હોવાને લીધે તેનું "અનાવરણ" નામ નિષ્પન્ન થાય છે આ 'અનાવરણ' નામ રૂપ તેની અવસ્થા આવરણના ક્ષયથી ઉત્પન્ન થયેલી હોવાને કારણે ક્ષાયિક ભાવરૂપ ગણાય છે.

ભવિષ્યમાં કોઇ પણ પ્રકારનું આવરણ કર્મ તે આત્માને લાગવાનું નથી, તેથી તે આત્મા નિરાવરણ અવસ્થા સંપન્ન બની જાય છે. તેથી તેનું 'નિરાવરણ' નામ નિષ્પન્ન થઈ જાય છે એજ પ્રમાણે તે આત્મા નિઃસત્તાભૂત આવરણવાળો (આવરણના અસ્તિત્વ વિનાનો) બની જવાને કારણે ક્ષીણ મલાવરણવાળા ઉત્કૃષ્ટ મણિની જેમ "ક્ષીણાવરણ" આ નામવાળો બની જાય છે આ પ્રકારે વિવિધ પ્રકારે જ્ઞાનાવરણીય કર્મમાંથી વિપ્રમુક્ત થયેલા તે આત્માને પૂર્વોક્ત સમસ્ત નામો જ્ઞાનાવરણીય કર્મના ક્ષયની અપેક્ષાએ કહેવામાં આવ્યાં છે જો કે શબ્દનયની અપેક્ષાએ તે નામો વચ્ચે કોઇ પણ ભેદ ન હોવાને કારણે આ શબ્દોને પર્યાયવાચી શબ્દો જ ગણી શકાય છે, પરન્તુ

अथ दर्शनावरणीयक्षयापेक्षाणि नामान्याह- केवलदर्शी-केवलेन=क्षीणावरणेन दर्शनेन पश्यतीतिकेवलदर्शी-सर्वं पश्यतीति सर्वदर्शी-क्षीणदर्शनावरणत्वात् सकलपदार्थदर्शी। एवं क्षीणनिद्रादीनि पञ्चनामानि तथा दर्शनावरणचतुष्कक्षयसम्भवीन्यपराण्यपि क्षीणचक्षुर्दर्शनावरणादीनि नामानि बोध्यानि। तत्र निद्रापञ्चक लक्षणमेवमवगन्तव्यम्-

ये पर्यायवाची शब्द हैं। फिर भी समभिरूढनय की अपेक्षा से इनके वाच्यार्थ में भिन्नता होने से इनमें भेद है, ऐसा जानना चाहिये।

अब सूत्रकार दर्शनावरणीय कर्म के क्षय की अपेक्षा से जायमान नामों को कहते हैं-(केवलदंसी) आत्मा से जब दर्शनावरणीय कर्म सर्वथा निर्मूल हो जाता है, तब वह आत्मा, क्षीणावरणवाले दर्शन से, सामान्यरूप में समस्त ज्ञेयों को देखता है, इसलिये केवलदर्शी वह कहलाने लगता है। (सव्वदंसी) क्षीण दर्शनावरणवाला होने से समस्त पदार्थों का वह दृष्टा बन जाता है। इसलिये वह सर्वदर्शी कहलाता है। (खीणनिद्दे, खीणनिद्दानिद्दे, खीणपयले, खीणपयलापयले, खीणथीणगिद्धी, खीणचक्खुदंसणावरणे, खीण अचक्खुदंसणावरणे, खीण ओहिदंसणावरणे खीण केवलदंसणवरणे अणावरणे, निरावरणे, खीणावरणे) निद्रादर्शनावरणीय कर्म नष्ट होने से वह क्षीण निद्र हो जाता है; निद्रानिद्रा दर्शनावरणीयकर्म निर्मूल होने से क्षीणनिद्रानिद्र, प्रचला दर्शनावरणीय कर्म नष्ट होने से क्षीण प्रचल,

સમભિરૂઢ નયની અપેક્ષાએ તેમના વાચ્યાર્થમાં ભિન્નતા હોવાના કારણે તેમની વચ્ચે ભેદ (અંતર-તફાવત) છે, એમ સમજવું જોઈએ.

હવે સૂત્રકાર દર્શનાવરણીય કર્મના ક્ષયની અપેક્ષાએ જે નામો નિષ્પન્ન થાય છે તેમનું કથન કરે છે-(केवलदंसी) આત્મા પરથી જ્યારે દર્શનાવરણીય કર્મો સર્વથા નિર્મૂળ થઈ જાય છે ત્યારે તે આત્મા, ક્ષીણાવરણવાળા દર્શન વડે સામાન્ય રૂપે સમસ્ત જ્ઞેય પદાર્થોને દેખી શકે છે, તેથી તેને 'केवलदर्शी' કહેવામાં આવે છે. (सव्वदंसी) ક્ષીણદર્શનાવરણવાળો થઈ જવાને કારણે તે આત્મા સમસ્ત પદાર્થોનો દ્રષ્ટા બની જાય છે, તેથી તેને "सर्वदर्शी" કહેવામાં આવે છે. (खीणनिद्दे, खीणनिद्दा निद्दे, खीणपयले, खीणपयलापयले, खीण थीणगिद्धी, खीण चक्खुदंसणावरणे, खीण अचक्खुदंसणावरणे, खीण ओहिदंसणावरणे, खीण केवलदंसणावरणे, अणावरणे निरावरणे, खीणावरणे) તે આત્માના નિદ્રાવરણીય કર્મનો નાશ થઈ જવાને લીધે તે 'क्षीणनिद्र' કહેવાય છે, તેના નિદ્રાનિદ્રા દર્શનાવરણીય કર્મ નિર્મૂળ થઈ જવાથી તે 'क्षीणनिद्रानिद्र' કહેવાય છે. તેના પ્રચલા દર્શનાવરણીય કર્મ નષ્ટ થઈ જવાથી તેને 'क्षीण-

"सुह पडिबोहा निद्दा दुहपडिबोहा य निद्दनिद्दाय।
पयला होइ ठियस्स उ, पयलापयला य चंकमओ ॥१॥
अइसंकिलिट्ठकम्माणु वेयणो होइ थीणगिद्धी य।
महनिद्दा दिणचिंतियवावार पसाहणी पायं ॥२॥"

छाया—सुखप्रतिबोधा निद्रा दुःखप्रतिबोधा च निद्रानिद्रा च।
प्रचला भवति स्थितस्य प्रचलाप्रचला च चङ्क्रमतः॥१॥
अतिसंक्लिष्टकर्मानुवेदनो भवति स्त्यानगृद्धिस्तु।
महानिद्रा दिनचिन्तितव्यापार प्रसाधनीप्रायः ॥२॥इति।

प्रचला प्रचला दर्शनावरणीय कर्म नष्ट होने से क्षीण प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि दर्शनावरणीय कर्म क्षीण होने से क्षीण स्त्यानगृद्धि चक्षुर्दर्शनावरणीय कर्म नष्ट होने से क्षीण चक्षुर्दर्शनावरण, अचक्षुर्दर्शनावरण कर्मनष्ट होने से क्षीण अचक्षुर्दर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण कर्म नष्ट होने से क्षीणावधिदर्शनावरण, केवलदर्शनवरण कर्म नष्ट होने से क्षीण केवलदर्शनावरण कहलाने लगता है। अर्थात् दर्शनावरण कर्म के सर्वथा विगम क्षय हो जाने से उस आत्मा के ये पूर्वोक्त नाम निष्पन्न हो जाते हैं। निद्रा पंचक का लक्षण इस प्रकार से है-सुहपडिबोहा-इत्यादि-जिस कर्म के उदय से सुख पूर्वक जाग सके ऐसी निद्रा आवे वह निद्रा दर्शनावरण कर्म है। जिसके उदय से निद्रा से जागना अत्यन्त दुष्कर हो वह निद्रानिद्रा दर्शनावरण-

---

प्रचल' કહેવાય છે. તેના પ્રચલા પ્રચલા દર્શનાવરણીય કર્મ નષ્ટ થઈ જવાથી તેને ક્ષીણપ્રચલાપ્રચલ કહેવાય છે, તેના સ્ત્યાનગૃદ્ધિ દર્શનાવરણીય કર્મનો ક્ષય થઈ જવાથી તેને 'ક્ષીણસ્ત્યાનગૃદ્ધિ' કહેવાય છે. તે આત્માના ચક્ષુર્દર્શનાવરણીય કર્મનો નાશ થઇ જવાથી તેને 'ક્ષીણચક્ષુર્દર્શનાવરણ' કહેવાય છે. તેના અચક્ષુર્દર્શનાવરણ કર્મનો નાશ થઈ જવાથી તેને 'ક્ષીણઅચક્ષુર્દર્શનાવરણ' કહેવાય છે. તેના અવધિદર્શનાવરણ કર્મનો ક્ષય થઈ જવાથી તેને 'ક્ષીણાવધિદર્શનાવરણ' કહેવાય છે તેના કેવલ દર્શનાવરણ કર્મનો નાશ થઈ જવાથી તેને 'ક્ષીણકેવલદર્શનાવરણ' કહેવાય છે એટલે કે દર્શનાવરણ કર્મોનો સંપૂર્ણતઃ નાશ થઈ જવાને કારણે તે આત્માના પૂર્વોક્ત નામો નિષ્પન્ન થાય છે.

નિદ્રાપંચકનાં લક્ષણ નીચે પ્રમાણે સમજવાં—

"सुहपडिबोहा" ઇત્યાદિ-જે કર્મના ઉદયથી સુખપૂર્વક જાગી શકાય એવી નિદ્રા આવી જાય છે, તે કર્મને નિદ્રાદર્શનાવરણ કર્મ કહે છે જે કર્મના ઉદયથી નિદ્રામાંથી જાગવાનું અત્યંત દુષ્કર થઈ જાય છે, તે કર્મને નિદ્રાનિદ્રા

तथा-अनावरणादिशब्दाः पूर्वं ज्ञानावरणाभावापेक्षया प्रोक्ताः, अत्रतु दर्शनावरणाभावापेक्षया बोध्याः। उपसंहरन्नाह-दर्शनावरणीयकर्मविप्रमुक्त इति।

कर्म है। जिस कर्म के उदय से बैठे २ या खडे २ ही नींद आ जावे वह प्रचलादर्शनावरण कर्म है। जिस कर्म के उदय से चलते २ ही निद्रा आ जावे वह प्रचला प्रचला दर्शनावरण कर्म है। स्त्यानगृद्धि यह महानिद्रा है। इस निद्रावस्था में, जागृत अवस्था में सोचे हुए काम करने का सामर्थ्य प्रकट हो जाता है। जिस जीव को अति संक्लिष्ट कर्मका उदय होता है उसी जीव के यह स्त्यानगृद्धि होती है। इस निद्रा में सहज बल से कई अनेक गुण अधिक बल प्रकट होता है।- पहिले जिस प्रकार ज्ञानावरण कर्म के अभाव को लेकर अनावरण निरावरण, क्षीणावरण, इन शब्दों का अर्थ प्रकट किया गया है उसी प्रकार यहां पर दर्शनावरण कर्म के अभाव की अपेक्षा लेकर इन शब्दों का अर्थ लगा लेना चाहिये। (दरिसणावरणिज्जकम्मविप्पमुक्के इस प्रकार ये पूर्वोक्त नाम दर्शनावरणीय कर्म के क्षय की अपेक्षा से सूत्रकार ने कहे हैं।

દર્શનાવરણ કર્મ કહે છે જે કર્મના ઉદયથી બેઠાં બેઠાં કે ઊભાં ઊભાં નિદ્રા આવી જાય છે, તે કર્મને પ્રચલાદર્શનાવરણ કર્મ કહે છે. જે કર્મના ઉદયથી ચાલતાં ચાલતાં નિદ્રા આવી જાય છે, તે કર્મને પ્રચલાપ્રચલા દર્શનાવરણ કર્મ કહે છે 'સ્ત્યાનગૃદ્ધિ' આ પદ મહાનિદ્રાનું વાચક છે. આ પ્રકારની નિદ્રાવસ્થામાં જાગૃત અવસ્થામાં જે કામો કરવાનો વિચાર કરવામાં આવ્યો હોય તે કામ કરવાનું સામર્થ્ય પ્રકટ થઈ જાય છે. જે જીવમાં અતિ સંક્લિષ્ટ કર્મનો ઉદય હોય છે, એજ જીવમાં આ સ્ત્યાનગૃદ્ધિ દર્શનાવરણનો સદ્ભાવ રહે છે સ્વાભાવિક બળ કરતાં કેટલાય ગણું અધિક બળનો આ પ્રકારની નિદ્રામાં અનુભવ થાય છે.

આગળ જ્ઞાનાવરણ કર્મના અભાવની અપેક્ષાએ અનાવરણ, નિરાવરણ અને ક્ષીણાવરણ, આ પદોનો અર્થ પ્રકટ કરવામાં આવ્યો છે એજ પ્રકારે અહીં દર્શનાવરણ કર્મના અભાવને અનુલક્ષીને અનાવરણ, નિરાવરણ અને ક્ષીણાવરણનો અર્થ સમજી લેવો જોઈએ.

(दरिसणावरणिज्जकम्मविप्पमुक्के) સૂત્રકારે દર્શનાવરણીય કર્મના ક્ષયની અપેક્ષાએ કેવળદર્શીથી લઈને નિરાવરણ પર્યન્તના ઉપર્યુક્ત નામો પ્રકટ કર્યાં છે.

इत्थं दर्शनावरणीयक्षयापेक्षया नामान्युक्त्वा सम्प्रति वेदनीयकर्मक्षयापेक्षाणि नामानि प्रतिपादयितुमाह-'खीणसायावेयणिज्जे' इत्यादि। वेदनीयं द्विविधं भवति-सातम् असातं च, तत्र-सातं प्रीत्युत्पादकम्, असातम् अप्रीत्युत्पादकम्, तत्क्षये क्षीणसातावेदनीयः क्षीणासातावेदनीयश्च भवति। तथा-अवेदनः=वेदनारहितः-अयम् अल्पवेदनोऽपि व्यवहीयते। तथा-निर्वेदनः=सर्ववेदनाभ्यो रहितः। कालान्तरेऽपि वेदना न भवतीति सूचयितुमाह-क्षीणवेदनः-क्षीणा=अपुनर्भावितया

अब वे वेदनीय कर्म के क्षय की अपेक्षा से जायमान नामों को कहते हैं—

(खीणसायावेयणिज्जे खीण असायावेयणिज्जे) वेदनीय कर्म दो प्रकार का है-एक साता वेदनीय कर्म और दूसरा असाता वेदनीय कर्म-जिस कर्म के उदय से जीव को सुख का अनुभव हों वह साता वेदनीय और जिसके उदय से प्राणी को दुःख का अनुभव हो वह असाता वेदनीय है। इन दोनों प्रकार के वेदनीय कर्म के क्षय होने पर जीव क्षीणसातावेदनीय और क्षीणासातवेदनीय हो जाता है। (अवेयणे, निव्वेयणे) वेदनारहित हो जाता है। अवेदन शब्द का अर्थ अल्प वेदनावाला ऐसा भी होता है। क्योंकि अवेदन में जो "अ" है वह ईषदर्थ-में भी प्रयुक्त होता है। इसलिये निर्वेदन-सर्व प्रकार की वेदना से वह रहित बन जाता है। (खीणवेयणे) कालान्तर में भी वेदना इस जीव को नहीं होती है-इसलिये क्षीणवेदन अर्थात् अपुनर्भाविवेदन हो

હવે વેદનીય કર્મના ક્ષયની અપેક્ષાએ જે નામો નિષ્પન્ન થાય છે, તે પ્રકટ કરવામાં આવે છે-(खीणसायावेयणिज्जे खीण असायावेयणिज्जे) વેદનીય કર્મના બે પ્રકાર પડે છે-(૧) સાતાવેદનીય કર્મ અને (૨) અસાતાવેદનીય કર્મ જે કર્મના ઉદયથી જીવને સુખનો અનુભવ થાય છે, તે કર્મને સાતાવેદનીય કર્મ કહે છે જે કર્મના ઉદયથી જીવને દુઃખનો અનુભવ થાય છે, તે કર્મને અસતાવેદનીય કર્મ કહે છે આ બન્ને પ્રકારના વેદનીય કર્મોનો ક્ષય થઈ જવાથી જીવ "ક્ષીણસાતાવેદનીય" અને "ક્ષીણાસાતાવેદનીય" બની જાય છે. (अवेयणे, निव्वेयणे) વેદનીય કર્મનો ક્ષય થઇ જવાથી આત્મા વેદનારહિત બની જાય છે. "अवेदन" પદ અલ્પવેદનાનું પણ વાચક છે, કારણ કે 'अवेदन' પદમાં જે 'अ' ઉપસર્ગ છે તે અલ્પતાના અર્થમાં પણ પ્રયુક્ત થાય છે. તેથી સૂત્રકારે 'निर्वेदन' પદના પ્રયોગ દ્વારા એ વાત પ્રકટ કરી છે કે વેદનીય કર્મનો સર્વથા ક્ષય થવાથી આત્મા સર્વપ્રકારની વેદનાથી રહિત થઈ જાય છે. (खीणवेयणे) કાલાન્તરે (ભવિષ્યમાં) પણ તે જીવને વેદનાનો અનુભવ કરવો પડતો નથી તેથી તે જીવને "क्षीणवेदन" કહ્યો છે.

सर्वथा विनष्टा वेदना यस्य स तथा। एतदुपसंहरन्नाह–शुभाशुभवेदनीयकर्मविप्रमुक्त इति। अथ मोहनीयक्षयापेक्षाणि नामानि प्ररूपयितुमाह–'खीणकोहे' इत्यादि। मोहनीयं द्विविधं भवति-दर्शनमोहनीयं चारित्रमोहनीयं च। तत्र–दर्शनमोहनीयं सम्यक्त्वमिश्र मिथ्यात्वभेदात् त्रिविधं भवति। चारित्रमोहनीयं तु क्रोधादिकषाय हास्यादि नोकषायभेदात् द्विविधं भवति। एतत्क्षये यानि नामानि भवन्ति तान्याह सूत्रकारः–क्षीणक्रोधो यावत् क्षीणलोभः। एतानि नामानि सुबोध्यानि। तथा–क्षीणप्रेमा–क्षीणं प्रेम=मायालोभौ यस्य स तथा–अपगतमायालोभ इत्यर्थः।

जाता है, (सुभासुभवेयणिज्जकम्मविप्पमुक्कके) शुभ और अशुभवेदनीय कर्म से विप्रमुक्त हुए उस जीव के ये पूर्वोक्त क्षीण सातावेदनीय आदि नाम हैं।

अब सूत्रकार मोहनीय कर्म के क्षय से जो नाम होते हैं उन्हें कहते हैं—

(खीण कोहे जाव खीणलोहे) मोहनीय कर्म दो प्रकार का होता है एक दर्शन मोहनीय और दूसरा चारित्र मोहनीय–इनमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्वमिथ्यात्व और मिश्र के भेद से दर्शन मोहनीय तीन प्रकार का है–तथा चारित्र मोहनीय, क्रोधादिकषाय और हास्यादिक नोकषाय के भेद से दो प्रकार का है–इस दोनों प्रकार के मोहनीय के क्षय होने पर जो नाम होते हैं उन्हें सूत्रकारने क्षीण क्रोध यावत् क्षीण लोभ इन शब्दों द्वारा प्रकट किया है। ये नाम सुबोध्य हैं। (खीणपेज्जे) प्रेम शब्द

(सुभासुभवेयणिज्ज कम्मविप्पमुक्के) શુભ અને અશુભ વેદનીય કર્મથી વિમુક્ત થયેલા તે જીવના ક્ષીણસાતાવેદનીય આદિ પૂર્વોક્ત નામો સમજવાં.

હવે સૂત્રકાર મોહનીય કર્મના ક્ષયથી આત્માનાં જે જે નામો નિષ્પન્ન થાય છે તેમનું નિરૂપણ કરે છે—

(खीण कोहे जाव खीण लोहे) મોહનીય કર્મના નીચે પ્રમાણે બે પ્રકાર પડે છે–(૧) દર્શનમોહનીય અને (૨) ચારિત્ર મોહનીય મિથ્યાત્વ, સમ્યક્ત્વ-મિથ્યાત્વ અને મિશ્રના ભેદથી દર્શનમોહનીય કર્મ ત્રણ પ્રકારના કહ્યાં છે. ક્રોધાદિક કષાય અને હાસ્યાદિક નોકષાયના ભેદથી ચારિત્ર મોહનીય કર્મ બે પ્રકારનું કહ્યું છે. આ બન્ને પ્રકારના મોહનીય કર્મનો આત્મામાંથી ક્ષય થઇ જવાથી આત્માનાં નીચેનાં નામો નિષ્પન્ન થાય છે–ક્ષીણક્રોધ, ક્ષીણમાન, ક્ષીણમાયા અને ક્ષીણલોભ આ નામનો અર્થ સુગમ હોવાથી તેમના વિષે વધુ સ્પષ્ટતા કરવાની જરૂર નથી. (खीण पेज्जे) प्रेम

क्षीणद्वेषः=क्षीणो द्वेषः=क्रोधमानौ यस्य स तथा-अपगत क्रोधमान इत्यर्थः। तथा-अमोहः-अपगतमोहनीयकर्मा, अयं च अल्पमोहोदयोऽपि लोके व्यवहियते। तथा-निर्मोहः-निर्गतो मोहान्निर्मोहः। यतोऽयमोहः, अत एव निर्मोहो बोध्यः। निर्मोहस्तु कालान्तरे मोहोदययुक्तोऽपि स्यादुपशान्तमोहवदिति प्रत्ययो मा भवत्विति हेतोराह-क्षीणमोहः-अपुनर्भाविमोहोदयः इत्यर्थः, एतदुपसंहरन्नाह-मोह-

माया और लोभ का बोधक है। मोहनीय कर्म के-नष्ट होने पर माया और लोभ नष्ट हो जाते हैं। (खीण दोसे) इसी प्रकार द्वेष-मान और क्रोध-भी नष्ट हो जाता है। अतः क्षीण प्रेमा, क्षीण द्वेष ये नाम-होते हैं। (अमोहे निम्मोहे, खीणमोहे) अमोह निर्मोह क्षीण मोह-ये नाम भी मोहनीय कर्म के अभाव मे होते हैं। अल्प मोहवाले में भी अमोह शब्द का प्रयोग होता है सो ऐसा अमोह यहां नहीं लिया गया है किन्तु मोहनीय कर्म से जो अपगत है वही अमोह है, ऐसा अमोह ही यहां ग्रहण किया गया है। जिस कारण यह अमोह हैं इसलिये निर्मोह है। कोई ऐसी शंका भी कर सकता है कि जो निर्मोह होता है, वह कालान्तर में मोहोदय से युक्त भी बन सकता है-जैसे उपशान्त मोहवाला बन जाता है। सो इस आशंका को निर्मूल करने के लिये सूत्रकार ने क्षीणामोह यह पद रखा है। इससे उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि अपुनर्भाव मोहोदय जिस जीव के होते हैं, वही यहां अमोह

શબ્દ માયા અને લોભનો બોધક છે. મોહનીય કર્મનો નાશ થઈ જવાથી જીવના માયા અને લોભ નષ્ટ થઈ જાય છે, તેથી તે જીવને 'क्षीणप्रेमा' કહેવાય છે. (खीण दोसे) એજ પ્રમાણે મોહનીય કર્મનો નાશ થઈ જવાથી આત્માનો દ્વેષ ભાવ પણ નષ્ટ થઈ જાય છે તેથી તે આત્માનું "क्षीणद्वेष" નામ નિષ્પન્ન થાય છે. (अमोहे निम्मोहे, खीणमोहे) મોહનીય કર્મનો અભાવ થઈ જવાથી આત્માનાં 'અમોહ,' 'નિર્મોહ,' અને क्षीणमोह નામો પણ નિષ્પન્ન થાય છે અલ્પ મોહવાળામાં પણ અમોહ શબ્દનો પ્રયોગ થાય છે. પરન્તુ અમોહ શબ્દનો એવો અર્થ અહીં ગ્રહણ કરવાનો નથી. અહીં તો મોહનીય કર્મનો સર્વથા ક્ષય થઈ જવાને લીધે આત્મામાં મોહનો સર્વથા અભાવ જ ગ્રહણ કરવાનો છે. જે કારણે તે આત્મામાં આ અમોહનો સદ્ભાવ છે એજ કારણે નિર્મોહનો પણ સદ્ભાવ છે. કદાચ કોઇ એવી શંકા ઉઠાવે કે કાળાન્તરે નિર્મોહી આત્મામાં મોહનો ઉદય થઈ જવાથી તે મોહોદયયુક્ત પણ બની શકે છે, તો તે આશંકાનું નિવારણ કરવાને માટે સૂત્રકારે 'क्षीणमोह' પદનો પ્રયોગ કર્યો છે, આ પદ દ્વારા સૂત્રકારે એ વાત પ્રકટ

नीयकर्मविप्रमुक्त इति। नारकायुष्कादिभेदेन आयुष्कर्म चतुर्विधं बोध्यम्। सम्मति तत्क्षयोद्भवानि नामानि प्ररूपयति–क्षीणनैरयिकायुष्कः, क्षीणतिर्यग्योनिकायुष्कः, क्षीणमनुष्यायुष्कः, क्षीणदेवायुष्कः। एतानि चत्वार्यपि पदानि सुगमानि। तथा–अनायुष्कः=अविद्यमानायुष्कः। अविद्यमानायुष्कस्तु तद्भविकायुः

निरमोह नामवाला ग्रहण किया गया है। इस प्रकार (मोहणिज्जकम्म विप्पमुक्कके) मोहनीय कर्म से विप्रमुक्त बने हुए जीव के ये क्षीण क्रोध से लेकर क्षीण मोह तक के नाम हैं। अब आयुकर्म के क्षयापेक्ष जो नाम होते हैं, उन्हें सूत्रकार स्पष्ट करते हैं–आयु कर्म चार प्रकार का है–नरक आयु तिर्यगायु, मनुष्य आयु देव आयु सो इनमें से (खीणणेरइयाउए, खीणतिरिक्खजोणिआउए, खीण मणुस्साउए खीणदेवाउए) नरकायुष्क के क्षय होने से क्षीण नरकायुष्क, तिर्यग्योनिक आयुष्क के क्षय होने से क्षीणतिर्यग्योनिकायुष्क, मनुष्य आयुष्क-के नष्ट होने से क्षीण मनुष्यायुष्क और देवायुष्क के नष्ट होने से क्षीण देवायुष्क ये नाम होते हैं (अणाउए, निराउए, खीणाउए) अनायुष्क, निरायुष्क और और क्षीणायुष्क ये नाम भी होते हैं तद्भव संबन्धी आयु

કરી છે કે જે જીવમાં अपुनर्भाविमोहोदय (ભવિષ્યમાં ફરી ઉદયમાં ન આવે એવો અમોહ) હોય છે, તે જીવને જ અહીં 'અમોહ' અને 'નિર્મોહ' નામવાળો કહ્યો છે. (मोहणिज्जकम्मविप्पमुक्के) મોહનીય કર્મથી સંપૂર્ણતઃ વિમુક્ત થયેલા જીવના क्षीणक्रोधથી લઈને क्षीणमोह પર્યન્તનાં ઉપર્યુક્ત નામો સમજવાં.

હવે સૂત્રકાર આયુકર્મના ક્ષયથી આત્માના જે જે નામો નિષ્પન્ન થાય છે, તેમનું નિરૂપણ કરે છે—

આયુકર્મના ચાર પ્રકાર છે–(૧) નરકાયુ, (૨) તિર્યંગાયુ, (૩) મનુષ્યાયુ અને (૪) દેવાયું. (खीणणेरइयाउए, खीणतिरिक्खजोणि आउए, खीणमणुस्साउए, खीण देवाउए) નરકાયુષ્કનો ક્ષય થઈ જવાને લીધે જીવ 'क्षीणनरकायुष्क' બની જાય છે, તિર્યંગ્યોનિક આયુષ્યનો ક્ષય થઈ જવાથી જીવ "क्षीणतिर्यग्योनिकायुष्क" બની જાય છે, મનુષ્ય આયુષ્કનો ક્ષય થઈ જવાથી જીવ "क्षीणमनुष्यायुष्क" થઈ જાય છે અને દેવાયુષ્કનો ક્ષય થઈ જવાથી જીવ "क्षीणदेवायुष्क" થઈ જાય છે. આ પ્રકારે ચારે ગતિના આયુષ્યનો ક્ષય થઈ જવાથી જીવના ઉપર્યુક્ત ચાર નામો નિષ્પન્ન થાય છે. (अणाउए, निराउए, खीणाउए) આયુકર્મનો ક્ષય થઈ જવાથી જીવનાં "अनायुष्क," "निरायुष्क" અને "क्षीणायुष्क" આ ત્રણ નામોપણ નિષ્પન્ન થાય છે. तद्भव संबंधी (તે

क्षयमात्रेऽपि भवती, त्यत्राह–निरायुष्कः–निर्गतायुष्क इति। निरायुष्कस्तु शैलेशीमवस्थां किंचिदवतिष्ठमानायुः–शेषोऽपि उपचारतः स्यादत आह–क्षीणायुष्क इति। एतदुपसंहरन्नाह–आयुष्कर्मविप्रमुक्त इति। नामकर्म सामान्येन शुभाशुभभेदतो द्विविधम्, विशेषतस्तु गतिजातिशरीराङ्गोपाङ्गादि भेदाद् द्विचत्वारिंशदादिभेदं-

जिस जीव की नष्ट हो गई हो ऐसा जीव भी अनायुष्क कहलाता है–अतः ऐसा अनायुष्क यहां गृहीत नहीं है किन्तु जिसका आयुकर्म समाप्त हो चुका है ऐसा ही निरायुष्क अनायुष्क यहां लिया गया है। यदि इस पर ऐसी आशंका की जावे कि ऐसी निरायुष्क अवस्था जीव की शैलेशी अवस्था में हो जाती है–परन्तु यहां सम्पूर्णरूप से वह जीव निरायुष्क तो नहीं बनता है–फिर भी निरायुष्क इस नाम से किंचित आयु अवशिष्ट होने पर भी उपचार से कहा ही जाता है। अतः इस आशंका को दूर करने के लिये सूत्रकारने क्षीणायुष्क यह पद रखा है। इसलिये अनायुष्क निरायुष्क ये नाम तब ही जानना चाहिये कि जब सम्पूर्णरूप से आयुकर्म नष्ट हो चुका होता है। (आयुकम्मविप्पमुक्कके) इस प्रकार से आयुकर्म के सर्वथा अभाव होने पर क्षीणनरकायुष्क आदि ये नाम निष्पन्न होते हैं। (गहजाइ

ભવનુ) જેનું આયુષ્ય નષ્ટ થઈ ગયું હોય છે એવા જીવને પણ અનાયુષ્ક કહી શકાય છે. પરન્તુ એવા અનાયુષ્કની વાત અહીં કરવામાં આવી નથી અહીં તો એવા અનાયુષ્કની વાત કરવામાં આવી છે કે જેના આયુકર્મનો સદંતર ક્ષય થઈ ચુકયો હોવાને કારણે જે નિરાયુષ્ક બની ગયેલો છે એટલે કે અહીં નિરાયુષ્ક (આયુષ્યરહિત) જીવને જ અનાયુષ્ક પદ વડે ગ્રહણ કરવામાં આવેલ છે. કદાચ અહીં કોઈ એવી શંકા ઉઠાવે કે એવી નિરાયુષ્ક અવસ્થા તો જીવની શૈલેશી અવસ્થામાં થઈ જાય છે, પરન્તુ આ અવસ્થાવાળો જીવ સંપૂર્ણ રૂપે નિરાયુષ્ક બનતો નથી; છતાં પણ 'નિરાયુષ્ક' આ નામનો પ્રયોગ, થોડું આયુ બાકી હોવા છતાં પણ ઔપચારિક રૂપે કરવામાં આવે છે. આ આશંકાને દૂર કરવાને માટે સૂત્રકારે "क्षीणायुष्क" પદ મૂકયું છે તેથી આત્માને અનાયુષ્ક, અને નિરાયુષ્ક રૂપે ત્યારે જ ગણી શકાય કે જયારે આયુકર્મનો સંપૂર્ણપણે ક્ષય થઈ ગયો હોય છે. (आयुकम्मविप्पमुक्के) આ પ્રકારે આયુકર્મનો સર્વથા અભાવ થઈ જવાથી આત્માનાં ક્ષીણનરકાયુષ્ક આદિ ઉપર્યુક્ત નામો નિષ્પન્ન થાય છે.

હવે નામકર્મના ક્ષયથી આત્માના જે જે નામો નિષ્પન્ન થાય છે, તે નામોની સૂત્રકાર પ્રરૂપણા કરે છે—

स्थानान्तराद् विज्ञेयम्। अत्र तु तत्क्षयभावीनि कियन्त्यपि तन्नामानि आह-गति जातिशरीराङ्गोपाङ्गबन्धनसंघातनसंहननसंस्थानानेकशरीरवृन्दसंघातविप्रमुक्तः—तत्र गतिः=नारकादिगतिचतुष्टयहेतुभूतं गतिनाम, जातिः-एकेन्द्रियादि जातिपञ्चक-कारणं जातिनाम, शरीरम्-औदारिकादिशरीरपञ्चकनिबन्धनंशरीरनाम, अङ्गो-पाङ्गम्=औदारिकवैक्रियाहारकशरीरत्रयाङ्गोपाङ्गनिर्वृत्तिकारणम् अङ्गोपाङ्गनाम, बन्धनम्=काष्ठादिखण्डसंयोजकलाक्षादिद्रव्यमिव शरीरपञ्चकपुद्गलानां परस्परं

सरीरंगोवंगबंधणसंघायणसंठाणअणेगबोंदिबिंदसंघायविप्पमुक्के) नाम-कर्म सामान्य से शुभनामकर्म और अशुभनामकर्म इस प्रकार दो भेदवाला हैं और विशेषरूप से गति जाति शरीर अंगो-पाङ्ग आदि के भेद से ४२ प्रकार के हैं। तथा ४२ प्रकार से भी और अधिक भेदवाला है। इसके ये सब भेद अन्य शास्त्रों से जानलेना चाहिये। यहां पर तो सूत्रकारने इस नामकर्म के क्षय से जो नाम उत्पन्न होते हैं उन्हें कहा है। नारक आदि चार गतियों का हेतुभूत जो कर्म है वह गति नामकर्म है। एकेन्द्रिय आदि पांच जाति का जो कारण होता है वह जातिनामकर्म है। औदारिक आदि पांच शरीर का जो कारण होता है वह शरीर नामकर्म है। औदारिक अंगोपांग, वैक्रीय अंगोपांग और आहारक अंगोपांग की रचना का जो हेतु हो वह अंगोपांग नामकर्म है। जिस प्रकार काष्टादि खंडों

(गइजाइसरीरंगोवंगबंधणसंघायणसंठाणअणेगबोंदिबिंदसंघायविप्पमुक्के) नाम-કર્મના નીચે પ્રમાણે બે મુખ્ય ભેદ કહ્યા છે. (૧) શુભનામકર્મ અને (૨) અશુભનામકર્મ. પરન્તુ વિશેષ રૂપે વિચાર કરવામાં આવે તો ગતિ, જાતિ, શરીર, અંગોપાંગ આદિના ભેદથી નામ કર્મના ૪૨ ભેદ પડે છે, તથા આ ૪૨ ભેદો સિવાયના કેટલાક વધુ ભેદો પણ પડે છે તેના આ સઘળા ભેદો વિષેની માહિતી અન્ય શાસ્ત્રોમાંથી મેળવી લેવી અહીં તો સૂત્રકારે આ નામકર્મનો ક્ષય થઇ જવાથી આત્માના જે જે નામો નિષ્પન્ન થાય છે તેમનું જ કથન કર્યું છે. નારક આદિ ચાર ગતિઓની પ્રાપ્તિના કારણભૂત જે કર્મ છે તેનું નામ ગતિનામકર્મ છે એકેન્દ્રિય આદિ પાંચ જાતિના કારણભૂત જે કર્મ છે તેને જાતિનામકર્મ કહે છે. ઔદારિક આદિ શરીરના કારણરૂપ જે કર્મ છે તેનું નામ શરીરનામકર્મ છે. ઔદારિક અંગોપાંગ, વૈક્રિય અંગો-પાંગ અને આહારક અંગોપાંગની રચનાના કારણભૂત જે કર્મ છે તેને અંગોપાંગ નામકર્મ કહે છે. જેવી રીતે કાષ્ઠાદિના ટુકડાઓને લાખ આદિ

बन्धहेतुर्बन्धननाम, संघातनं=काष्ठसमुच्चयकारकः कर्मकर इव तेषामेव पुद्गलानां परस्परं बन्धनार्थमन्योऽन्य सांनिध्यरूप सङ्घातकारणं सङ्घातनाम, संहननम्=कपाटादीनां लोहपट्टादिरिव औदारिकशरीरास्थ्नां परस्परबन्धविशेषनिबन्धनं संहननाम, संस्थानम्=संस्थाननाम-संतिष्ठन्ते विशिष्टावयवरचनात्मिकया शरीराकृत्या जन्तवो भवन्ति येन तत् संस्थाननाम। इदं हि समचतुरस्रादिसंस्थानकारणम्। तथा-अनेकशरीरवृन्दसंघातः-अनेकानि शरीराणि-अनेकशरीराणि-

को परस्पर में जोडनेवाला लाख आदि द्रव्य होता है उसी प्रकार पांच औदारिक शरीर आदि के पुद्गलों को जो परस्पर में जोड़ता है। वह बंधन नामकर्म है। काष्टको चुन चुन २ कर रखने वाले कर्मकर की तरह जो उन्हीं पुद्गलों को परस्पर मे बन्धने के लिये अन्योन्यसांनिध्यरूप संघात का कारण होता है। अर्थात् बद्ध पुद्गलों को शरीर के नाना विध आकारों में व्यवस्थित करने वाला जो कर्म है वह संघात कर्म है। जैसे कपाट आदिकों को लोह पट्ट परस्पर में बांध देता है उसी प्रकार जो औदारिक शरीर की हड्डियों को परस्पर मे बांध देता है वह संहनन नामकर्म है। अर्थात् यह नामकर्म अस्थिबंध की विशिष्ट रचना रूप होता है। जिसकर्म से अवयवों की विशिष्ट रचनारूप शरीर की आकृति बने वह संस्थान नामकर्म समचतुरस्रादि संस्थान का कारण है। तथा-अनेक शरीरों का जो समूह रूप संघात है वह अनेक शरीरवृन्द संघात

દ્રવ્યો વડે પરસ્પરની સાથે જોડવામાં આવે છે, એજ પ્રમાણે પાંચ ઔદારિક શરીર આદિના પુદ્ગલોને પરસ્પરની સાથે જોડનારું જે કર્મ છે તેનું નામ બંધન નામ કર્મ છે, યોગ્ય કાષ્ઠને વીણી વીણીને ગોઠવનાર કારીગર (સુથાર)ની જેમ, એજ કર્મ પુદ્ગલોને પરસ્પરની સાથે બાંધવાને માટે અન્યોન્ય સાંનિધ્ય રૂપ સંઘાતમાં જે કર્મ કારણભૂત બને છે-એટલે કે બદ્ધ પુદ્ગલોને શરીરના વિવિધ આકારોમાં ગોઠવનારૂં (સ્થાપિત કરનારું) જે કર્મ છે તેનું નામ સંઘાત કર્મ છે. જેવી રીતે કબાડ આદિનાં પાટિયાંઓને લોઢાની પાટી પરસ્પરની સાથે બાંધી દે છે, એજ પ્રમાણે ઔદારિક શરીરનાં હાડકાંઓને પરસ્પરની સાથે બાંધી દેનારૂં જે કર્મ છે તેને સંહનન નામકર્મ કહે છે એટલે કે આ નામકર્મ અસ્થિબંધની વિશિષ્ટ રચના રૂપ હોય છે. જે કર્મ અવયવોની વિશિષ્ટ રચના રૂપ શરીરની આકૃતિ બનાવવામાં કારણભૂત બને છે તે કર્મનું નામ સંસ્થાન નામકર્મ છે. આ સંસ્થાન નામકર્મ સમચતુરસ્રાદિ સંસ્થાનમાં કારણભૂત બને

तेषां वृन्दं=समूहस्तदेव पुद्गलसंघातरूपत्वात् संघातः–अनेकशरीरवृन्दसंघातः, शरीरानेकत्वं जन्मान्तरीयशरीराण्यादाय। अस्मिन्नपि जन्मनि जघन्यत औदारिक-तैजसकार्मणरूपशरीरत्रयस्य सद्भावाद् वा शरीरानेकत्वं बोध्यम्। गत्यादिशब्दानां द्वन्द्वसमासः, तै र्विप्रमुक्तो यः स तथा। शरीरशब्देन शरीरनिबन्धनं नामकर्म गृहीतम्, 'शरीरवृन्दे' त्यत्र शरीरशब्देन तु तत्कार्यभूतशरीराण्येव गृह्यन्ते, इत्यनयो-र्भेदः, अतो न पौनरुक्त्यम्, तथा–क्षीणशुभनामा–क्षीणं=विनष्टं शुभनाम=तीर्थकर

शरीर की अनेकता है। अथवा जीव के दूसरे जन्म में तैजस और कार्मण ये दो शरीर साथ रहते हैं, इसलिये इन जन्मान्तरीय शरीरों को लेकर कम से कम एक जीव में इस जन्म में भी औदारिक तैजस और कार्मण ये तीन शरीर रहते हैं। इस अपेक्षा से भी शरीर की अनेकता रूप–अनेक शरीर वृन्द संघात सधजाता है। इन गत्यादिक शब्दों में द्वन्द्व समास है, इन गत्यादिकों से जो विप्रमुक्त है वह गति जाति–शरीर-अंगोपांग बन्धन–संघात संहनन संस्थान–अनेक शरीरवृन्दसंघात विप्रमुक्त शब्द का वाच्यार्थ है। गति जाति शरीर आदि में जो यह शरीर शब्द है उसका अर्थ शरीर नामकर्म है, इस नाम कर्म के उदय से औदारिक आदि शरीरों की रचना होती है तथा "अनेक शरीर वृन्द" में जो शरीर शब्द आया है, वह उस शरीर नामकर्म के कार्य-भूत उन औदारिक आदि शरीरों का वाचक है। इस प्रकार इनमें

છે અનેક શરીરોના સમૂહરૂપ જે સંઘાત છે તેને અનેક શરીરવૃંદ સંઘાત કહે છે. તે અનેક શરીરવૃંદ સંઘાત શરીરની અનેકતા રૂપ હોય છે અથવા જીવની સાથે રહે છે. તેથી આ જન્માન્તરીય શરીરોની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો એક જીવમાં ઔદારિક, તૈજસ અને કાર્મણ, આ ત્રણ શરીરોનો સદ્ભાવ હોય છે આ દૃષ્ટિએ વિચાર કરવામાં આવે તો શરીરની અનેકતા રૂપ અનેક શરીરવૃંદ સંઘાતનું પ્રતિપાદન થઈ જાય છે ઉપર્યુક્ત ગતિ આદિ શબ્દોમાં દ્વન્દ્વ સમાસ છે. આ ગતિ આદિથી જે જીવ વિપ્રમુક્ત થઈ ગયેલો હોય છે તે જીવને ગતિ, જાતિ, શરીર, અંગોપાંગ, બન્ધન, સંઘાત, સંહનન, સંસ્થાન અને અનેક શરીરવૃન્દસંઘાતવિપ્રમુક્ત ગણવામાં આવે છે. એટલે કે એવા જીવના ગતિવિપ્રમુક્ત જાતિવિપ્રમુક્ત આદિ નામો નિષ્પન્ન થાય છે. ગતિ, જાતિ, શરીર આદિમાં જે શરીર શબ્દ છે તેનો અર્થ શરીરનામકર્મ છે. આ નામકર્મના ઉદયથી ઔદારિક આદિ શરીરોની રચના થાય છે. તથા–"અનેક શરીરવૃન્દ" આ પદમાં જે 'શરીર' શબ્દ આવ્યો છે તે શરીર શબ્દ શરીર નામકર્મના કાર્યભૂત તે ઔદારિક આદિ શરીરોનો વાચક છે.

शुभसुभगसुस्वरादेययशःकीर्त्यादिकं यस्य स तथा। क्षीणाशुभनामा-क्षीणम् अशुभनाम=नरकगत्यशुभदुर्भगदुःस्वरानादेययशःकीर्त्यादिकं यस्य स तथा। अनामा निर्नामा क्षीणनामा इति त्रयोऽपि शब्दाः 'अमोहः' इत्यादिवद् भावनीयाः। उपसंहरन्नाह-शुभाशुभनामकर्मविप्रमुक्त इति। गोत्रम्-उच्चनीचभेदेन द्विविधं भवति। सम्प्रति तत्क्षयसंभवीनि नामान्याह-'क्षीणोच्चगोत्रः' इत्यारभ्य

भिन्नता जाननी चाहिये। (खीण सुभणामे) नामकर्म के नष्ट होने पर तीर्थकर, शुभ, सुगम, सुस्वर, आदेय और यशःकीर्ति आदि-जो शुभ नाम हैं ये सब विनष्ट हो जाते हैं इसलिये "क्षीणशुभनामा" यह नाम निष्पन्न होता है। (खीण असुभणामे) इसी प्रकार नामकर्म के नष्ट होने पर नरकगति, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर अनादेय, और अयशः कीर्ति आदिक अशुभ नाम नष्ट हो जाते हैं। इसलिये 'क्षीणाशुभनामा" यह नाम निष्पन्न हो जाता है। (अणामे, निण्णामे, खीणनामे) अनाम, निर्नाम और क्षीणनाम ये तीनों शब्द भी अमोह आदि शब्दों के जैसे समझना चाहिये। (सुभासुभणामकम्मविप्पमुक्के) इस प्रकार गति विप्रमुक्त से लेकर क्षीणनाम तक के ये नाम इस शुभाशुभनामकर्म से सर्वथा रहित हो जाने पर निष्पन्न होते हैं। (खीण उच्चागोए खीण नीयागो) अब सूत्रकार गोत्रकर्म से विप्रमुक्त

આ પ્રકારે તેમની વચ્ચે ભિન્નતા સમજવી જોઈએ. (खीणसुभणामे) નામકર્મનો નાશ થતાં જ તીર્થંકર, શુભ, સુભગ, સુસ્વર, આદેય, યશ કીર્તિ યુકત આદિ જે શુભ નામો હોય છે તેમનો પણ નાશ થઈ જાય છે, તેથી એવા જીવનું "क्षीणशुभनामा" આ નામ નિષ્પન્ન થાય છે. (खीण असुभणामे) એજ પ્રમાણે નામકર્મનો નાશ થતાં જ નરકગતિ, અશુભ, દુર્ભગ, દુઃસ્વર, અનાદેય, અયશઃકીર્તિક આદિ અશુભ નામોનો પણ નાશ થઈ જાય છે તેથી એવા જીવનું "क्षीणाशुभनामा" નામ નિષ્પન્ન થાય છે. (अणामे, निण्णामे, खीणनामे) વળી નામકર્મ નિર્મૂળ થઈ જવાથી જીવના "અનામ, નિર્નામ, અને ક્ષીણનામ" આ નામો પણ નિષ્પન્ન થાય છે. આ ત્રણે શબ્દોનો ભેદ અમોહ, નિર્મોહ અને ક્ષીણમોહના જેવો જ સમજવો. (सुभासुभणामकम्मविप्पमुक्के) જ્યારે આત્મા શુભાશુભ નામકર્મથી સર્વથા રહિત થઈ જાય છે ત્યારે તેના ગતિવિપ્રમુકતથી ક્ષીણનામ પર્યન્તના ઉપર્યુકત નામો નિષ્પન્ન થાય છે.

હવે સૂત્રકાર ગોત્રકર્મનો ક્ષય થઈ જવાથી આત્માના જે જે નામો નિષ્પન્ન થાય છે, તેમનું નિરૂપણ કરે છે—

'उच्चनीचकर्मविप्रमुक्तः' इत्यन्तैः पदैः। एषां व्याख्या पूर्ववद् भावनीया। अन्तरायकर्म हि दानान्तरायादिभेदैः पञ्चविधं बोध्यम्। सम्प्रति तत्क्षयनिष्पन्नानि नामानि प्राह–'क्षीणदानान्तरायः' इत्यारभ्य 'अन्तरायकर्मविप्रमुक्तः' इति। एषां

होने पर जो नाम निष्पन्न होते हैं उन्हें कहते हैं। गोत्र कर्म दो प्रकार का है–उच्च गोत्र और नीच गोत्र। संतान क्रम से चले आये हुए जीव के आचरण का नाम गोत्र है। प्रतिष्ठा प्राप्त हो ऐसे कुलमें जन्म दिलानेवाला कर्म उच्च गोत्र और शक्ति रहने पर भी प्रतिष्ठा न मिल सके ऐसे कुल में जन्म दाता कर्म, नीच गोत्र कहलाता है। गोत्र कर्म के अभाव होते ही उच्च और नीच दोनों प्रकार का गोत्र नष्ट हो जाता है–अतः क्षीणोच्चगोत्र और क्षीण नीचगोत्र ये नाम निष्पन्न होते हैं। (अगोए निग्गोए खीणगोए) इन अगोत्र निर्गोत्र क्षीणगोत्र शब्दों की व्याख्या पहिले जैसी ही जाननी चाहिये। अब सूत्रकार अन्तराय कर्म के अभाव में जो नाम निष्पन्न होते हैं उन्हें बताते हैं–दानान्तराय आदि के भेद से अन्तराय कर्म ५ प्रकार का है। इनमें (खीणदाणंतराए, खीणलाभंतराए खीणभोगंतराए, खीणउवभोगंतराए, खीण वीरियंतराए) दानान्तराय के क्षय होने से क्षीण दानान्तराय,

(खीण उच्चागोए खीण नीयागोए) गोत्रकर्मना नीचे प्रमाणे बे प्रकार पडे छे–(१) उच्चगोत्र, (२) नीचगोत्र जे कुळमां जन्म थवाथी प्रतिष्ठा मळे छे, एवा कुळमां जन्म अपावनार कर्मने उच्चगोत्र कर्म कहे छे शक्ति होवा छतां पण–योग्यता होवा छतां पण प्रतिष्ठा न मळे एवा कुळमां जन्म अपावनार कर्मने नीच गोत्रकर्म कहे छे गोत्रकर्मनो क्षय थतांनी साथे ज उच्च अने नीच, आ बन्ने प्रकारना गोत्रनो नाश थई जाय छे तेथी जेना गोत्रकर्मनो नाश थई गयो छे एवा जीवना "क्षीणोच्चगोत्र" अने "क्षीणनीचगोत्र" नामो निष्पन्न थाय छे. (अगोए, निग्गोए, खीणगोए) वळी एवा आत्माने "अगोत्र" "निर्गोत्र" अने "क्षीणगोत्र" पण कहेवामां आवे छे. आ पदोनी व्याख्या 'अमोह' आदिनी व्याख्याने आधारे समजी शकाय एवी छे.

हवे सूत्रकार अन्तराय कर्मना अभावथी आत्माना जे जे नामो निष्पन्न थाय छे, तेमनुं कथन करे छे—

दानान्तराय आदिना भेदथी अन्तरायकर्म पांच प्रकारना कह्या छे. (खीणदाणंतराए, खीणलाभंतराए, खीणभोगंतराए, खीणउवभोगंतराए, खीणवीरियंतराए) जीवना दानान्तरायकर्मनो क्षय थई जवाथी 'क्षीणदानान्तरायः'

व्याख्याऽपि पूर्ववदेव बोध्या। इत्थं ज्ञानावरणाद्यन्तरायकर्मान्ताष्टप्रकृतीनामेकैकक्षयेण निष्पन्नानि नामान्यभिधाय सम्प्रति समुदिताष्टकर्मप्रकृतिक्षये यानि नामानि निष्पद्यन्ते तान्याह-'सिद्धे' इत्यादि-सिद्धः=सिद्ध समस्तप्रयोजनत्वात् सिद्धः। बुद्धः=बोधस्वरूपत्वाद् बुद्धः। मुक्तः=बाह्याभ्यन्तरग्रन्थबन्धन मुक्तत्वाद् मुक्तः। परि-

---

लाभान्तराय के क्षय होने से क्षीण लाभान्तराय, भोगान्तराय के क्षय होने से क्षीण भोगान्तराय उपभोगान्तराय के नष्ट होने से क्षीण उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय के नष्ट होने से क्षीण वीर्यान्तराय ये नाम निष्पन्न होते हैं (अणंतराए णिरंताए खीणंतराए) तथा अनन्तराय निरन्तराय और क्षीणान्तराय ये नाम निष्पन्न होते हैं। इस प्रकार ये सब पूर्वोक्त नाम (अंतरायकम्मविप्पमुक्के) अन्तराय कर्म से विप्रमुक्त होने पर होते हैं। (सिद्धे बुद्धे मुत्ते परिणिव्वुए, अंतगडे, सव्वदुक्खप्पहीणे) अब सूत्रकार यह कहते हैं कि ये जो ज्ञानावरण आदि से लेकर अन्तराय कर्म पर्यन्त आठकर्म हैं उनमें से एक एक कर्म के नाश होने से जैसे ये भिन्न २ नाम कहे गये हैं उसी प्रकार से आठ कर्मों के सर्वथा नष्ट होने पर जो नाम होते हैं वे ये हैं-सिद्ध-समस्त प्रयोजन सिद्ध हो जाने से सिद्ध-यह नाम

લાભાન્તરાય કર્મનો ક્ષય થઈ જવાથી "ક્ષીણલાભાન્તરાય," ભોગાન્તરાયનો ક્ષય થઈ જવાથી "ક્ષીણભોગાન્તરાય," ઉપભોગાન્તરાયનો ક્ષય થઈ જવાથી "ક્ષીણઉપભોગાન્તરાય," અને વીર્યાન્તરાયનો ક્ષય થઈ જવાથી "ક્ષીણવીર્યાન્તરાય" આ પ્રકારનાં જીવનાં નામો નિષ્પન્ન થાય છે. (अणंतराए, णिरंतराए, खीणंतराए) તથા જીવના અન્તરાય કર્મનો ક્ષય થઇ જવાથી તેના "અનંતરાય," 'નિરન્તરાય' અને 'ક્ષીણાન્તરાય' આ નામો નિષ્પન્ન થાય છે. ક્ષીણજ્ઞાનાન્તરાયથી લઈને ક્ષીણાન્તરાય પર્યન્તના ઉપર્યુક્ત નામો આત્માને ત્યારે જ ઓળખી શકાય છે કે જ્યારે તેના અન્તરાય કર્મનો સંપૂર્ણતઃ ક્ષય થઇ ગયો હોય છે.

(सिद्धे, बुद्धे, मुत्ते, परिणिव्वुए, अंतगडे, सव्वदुक्खप्पहीणे) જ્ઞાનાવરણથી લઈને અન્તરાય પર્યન્તના પ્રત્યેક કર્મનો નાશ થવાથી જીવના જે ભિન્ન ભિન્ન નામો નિષ્પન્ન થાય છે. તેમનું નિરૂપણ કરીને હવે સૂત્રકાર, આઠે કર્મોનો સર્વથા વિનાશ થવાથી જીવના જે જે નામો નિષ્પન્ન થાય છે, તે નામોને પ્રકટ કરે છે-

આઠે પ્રકારના કર્મોનો જ્યારે સર્વથા ક્ષય થઈ જાય છે ત્યારે જીવના સમસ્ત પ્રયોજનો સિદ્ધ થઈ જાય છે તેથી એવા જીવનું "સિદ્ધ" 'સિદ્ધ'

निर्वृतः=परि=समन्तात्-सर्वप्रकारैः निर्वृतः=शीतीभूतः परिवृतिः परिनिर्वृतत्वं च सर्वोत्कृष्टसकलसमीहितमोक्षरूपार्थप्राप्त्या बोध्यम्। अन्तकृतः-अन्तकृतत्वं तु समस्तसंसारान्तकारित्वाद् बोध्यम्। तथा-सर्वदुःखप्रहीणः। सर्वदुःखप्रहीणत्वं तु शारीरमानसदुःखानामात्यन्तिकक्षयेण बोध्यम्। सम्प्रति प्रकृतमुपसंहरन्नाह-स एष क्षयनिष्पन्न इति। निरूपितः क्षायिको भाव इति सूचयितुमाह-स एष क्षायिक इति ॥सू० १५४॥

निष्पन्न होता है।-बुद्ध-बोध स्वरूप हो जाने से बुद्ध यह नाम निष्पन्न होता है। मुक्त-बाह्य और आभ्यन्तररूप परिग्रह बन्धन से छूटजाने से मुक्त यह नाम निष्पन्न होता है। परिनिर्वृत-सर्व प्रकार से, सब तरफ से शीती भूत हो जाने से परिनिर्वृत यह नाम निष्पन्न होता है। सकल समीहितो में सर्वोत्कृष्ट समीहित एक मोक्ष ही है-सो उसकी प्राप्ति से परिनिर्वृतपना-जानना चाहिये। अन्तकृत-समस्त संसार का अन्तकारी होने से अन्तकृत यह नाम निष्पन्न होता है सर्व दुःखप्रहीण-शारीरिक एवं मानसिक समस्त दुःखों के आत्यंतिक क्षय हो जाने से सर्व दुःख प्रहीण यह नाम निष्पन्न होता है।

अब सूत्रकार इस प्रकरण का उपसंहार करने के निमित्त कहते हैं

નામ નિષ્પન્ન થાય છે. એવો જીવ કેવળજ્ઞાન અને કેવળદર્શનથી મુકત થઇ જવાને કારણે "બુદ્ધ" ગણાય છે. એવો જીવ બાહ્ય અને આભ્યન્તર પરિગ્રહરૂપ બન્ધનમાંથી મુકત થઇ જાય છે તેથી તેને "મુકત" કહેવામાં આવે છે. એવો જીવ સર્વપ્રકારના પરિતાપોથી નિવૃત થઇને શીતલીભૂત થઈ જાય છે, તેથી તેનું 'પરિનિર્વૃત' નામ નિષ્પન્ન થાય છે. સકળ સમીહિતોમાં સર્વોત્કૃષ્ટ સમીહિત તો માત્ર મોક્ષ જ ગણાય છે, તે મોક્ષની પ્રાપ્તિ થઈ જવાના કારણે તે આત્મામાં પરિનિર્વૃતતા સમજવી એવો જીવ સમસ્ત સંસારનો અન્તકારી બને છે તેથી તેને "અન્તકૃત" કહે છે. એવા જીવના શારીરિક અને માનસિક સમસ્ત દુઃખોનો આત્યંતિક (સંપૂર્ણતઃ) ક્ષય થઈ જવાને કારણે તેને સર્વદુઃખ પ્રહીણ કહે છે. આ પ્રકારે આઠે કર્મોનો સર્વથા ક્ષય કરી નાખનાર જીવના નીચે પ્રમાણે નામો નિષ્પન્ન થાય છે-(૧) સિદ્ધ' (૨) બુદ્ધ, (૩) મુકત, (૪) પરિનિર્વૃત, (૫) અન્તકૃત અને (૬) સર્વદુઃખપ્રહીણ.

હવે આ સૂત્રનો ઉપસંહાર કરતા સૂત્રકાર કહે છે કે—

(से तं खयनिप्फण्णे) આ પ્રકારનું ક્ષયનિષ્પન્ન ક્ષાયિક ભાવનું સ્વરૂપ છે.

कि (से तं खयनिप्फण्णे) इस प्रकार यह क्षय निष्पन्न है। (से तं खइए) इस प्रकार यह क्षायिक भाव का निरूपण है—

भावार्थ—सूत्रकारने इस सूत्र द्वारा क्षायिक भाव का निरूपण किया है। उसमें उन्होंने यह कहा है कि ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकार के कर्मों का जो क्षय है एक तो वह क्षायिक भाव है—और दूसरा क्षायिक भाव वह है जो इन कर्मों के क्षय से निष्पन्न होता है। कर्मों के क्षय से निष्पन्न हुआ क्षायिक अनेक प्रकार का कहा है। उनमें पांच प्रकार के ज्ञानावरण कर्म के क्षय से नौ प्रकार के दर्शनावरण कर्म के क्षय से दो प्रकार के वेदनीय कर्म के क्षय से, २८ प्रकार के मोहनीय कर्म के क्षय से चार प्रकार के आयु कर्म के क्षय से, ४२ प्रकार के नाम-कर्म के क्षय से, दो प्रकार के गोत्रकर्म के क्षय से और पांच प्रकार के अन्तराय के क्षय से सूत्र प्रदर्शित जितने भी नाम निष्पन्न होते हैं वे सब क्षायिक हैं। क्योंकि ये भिन्न २ प्रकार के कर्मों के क्षय से निष्पन्न होते हैं। यहांपर क्षयनिष्पन्न क्षायिकभाव में क्षयनिष्पन्न क्षायिक नामों का कथन जो किया गया है वह आप्रासंगिक नहीं है, क्योंकि क्षायिक

(से तं खइए) क्षयनिष्पन्न क्षायिक भावनुं निरूपण समाप्त थवाथी क्षायिक भावना स्वरूपनुं निरूपण पण अहीं पूरुं थाय छे.

भावार्थ—सूत्रकारे आ सूत्रद्वारा क्षायिक भावनुं निरूपण कर्युं छे. तेमां तेमणे क्षायिक भावना बे प्रकार बताव्या छे. ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकारनां कर्मोनो जे क्षय छे तेने क्षायिक रूप पहेलो प्रकार गणवामां आवे छे. ज्ञानावरणीय आदि कर्मोना क्षयथी निष्पन्न थतां क्षायिक भावने क्षय-निष्पन्न रूप बीजा प्रकारनो क्षायिक भाव कह्यो छे. कर्मोना क्षयथी निष्पन्न थतो क्षायिक भाव अनेक प्रकारनो कह्यो छे. पांच प्रकारना ज्ञानावरण कर्मना क्षयथी, नव प्रकारना दर्शनावरण कर्मना क्षयथी, बे प्रकारना वेदनीय कर्मना क्षयथी, २८ प्रकारना मोहनीय कर्मना क्षयथी, चार प्रकारना आयुकर्मना क्षयथी, ४२ प्रकारना नामकर्मना क्षयथी, बे प्रकारना गोत्रकर्मना क्षयथी, अने पांच प्रकारना अन्तराय कर्मना क्षयथी सूत्रोक्त जेटलां नाम निष्पन्न थाय छे, तेमने क्षयनिष्पन्न क्षायिक भाव रूपे गणवा जोईओ, कारण के ते नामो भिन्न भिन्न प्रकारनां कर्मोना क्षयथी निष्पन्न थाय छे.

आ सूत्रमां क्षयनिष्पन्न क्षायिक भावोमां क्षयनिष्पन्न क्षायिक नामोनुं जे कथन करवामां आव्युं छे, ते अप्रासंगिक नथी. तेनुं कारण नीचे

भाव का तात्पर्य है क्षय से उत्पन्न हुई अवस्था के परिणाम। यह आत्मा की निज स्वाभाविक अवस्था है। इसमें जो भी परिणाम हैं वे सब शुद्ध आत्मस्वरूप हैं। इन्हीं परिणामों को लेकर-जो नाम कहे गये हैं। वे नाम, स्थापना या द्रव्यरूप नहीं हैं, किन्तु भावरूप हैं। कर्मों के नष्ट होने पर आत्मा का जो मौलिक रूप प्रकट हो जाता है, उसी मौलिकरूप के ये वाचक हैं इसलिये इन नामों का क्षायिकभाव के प्रकरण में विवेचन करना युक्ति युक्त ही है। अप्रासंगिक नहीं है। जैसे जब केवलज्ञानावरण नष्ट हो जाता है+तब आत्मा में केवलज्ञानगुण प्रकट हो जाता है केवलज्ञानावरण के नष्ट होते ही क्षायोपशमिक चार ज्ञान क्षायिकरूप हो जाते हैं-अर्थात् केवल ज्ञान में अन्तर्हित हो जाते हैं। तथ इस आत्मा का क्षीण केवल ज्ञानावरण ऐसा नाम जो होता है वह नाम, स्थापना या द्रव्यरूप नहीं है। किन्तु भावनिपेक्ष रूप है। कारण उस प्रकार की पर्याय उस आत्मा में निष्पन्न हो चुकी है, और उसी का यह वाचक है। इसी प्रकार से शेष कर्मों के क्षय से निष्पन्न हुए नामों में भी जनाना चाहिये। इसीलिये क्षायिक भाव के प्रकरण में सूत्रकार ने इनका निर्देशन किया है। ॥ सू० १५४ ॥

પ્રમાણે છે-ક્ષયથી ઉત્પન્ન થયેલી અવસ્થાના પરિણામને ક્ષાયિક ભાવ ગણાય છે. તે આત્માની નિજ સ્વાભાવિક અવસ્થા છે. તેમાં જે જે પરિણામો છે, તે બધાં પરિણામો શુદ્ધ આત્મસ્વરૂપ છે. તે પરિણામોનો વિચાર કરીને જે નામો બતાવવામાં આવ્યાં છે તેઓ નામ, સ્થાપના કે દ્રવ્યરૂપ નથી, પરન્તુ ભાવરૂપ છે. કર્મોનો ક્ષય થઇ જવાથી આત્માનું જે મૌલિક મૂલ રૂપ પ્રકટ થઇ જાય છે, એજ મૌલિક રૂપના તેઓ વાચક છે. તેથી તે નામોનું ક્ષાયિક ભાવના પ્રકરણમાં વિવેચન કરવું તે અનુચિત અથવા અપ્રાસંગિક નથી, પરન્તુ ઉચિત અને પ્રાસંગિક જ છે. જેમ કે કેવળજ્ઞાનાવરણ કર્મનો સંપૂર્ણ ક્ષય થઈ જતાં જ આત્મામાં કેવળજ્ઞાનગુણ પ્રકટ થઇ જાય છે. કેવળજ્ઞાનાવરણનો નાશ થતાં જ ક્ષાયોપશમિક ચાર જ્ઞાન ક્ષાયિક રૂપ થઈ જાય છે, એટલે કે આ ચારે જ્ઞાન કેવળજ્ઞાનમાં જ સમાવિષ્ટ થઈ જાય છે. ત્યારે તે આત્માનું "ક્ષીણકેવળજ્ઞાનાવરણ" આ નામ નિષ્પન્ન થઈ જાય છે. તે નામ, સ્થાપના અથવા દ્રવ્યરૂપ હોતું નથી, પરન્તુ ભાવનિક્ષેપ રૂપ જ હોય છે, કારણ કે તે પ્રકારની પર્યાય તે આત્મામાં નિષ્પન્ન થઈ ચુકી હોય છે, અને આ નામ તેનું જ વાચક છે. એજ પ્રમાણે બાકીનાં કર્મોના ક્ષયથી નિષ્પન્ન થયેલાં નામોના વિષયમાં પણ સમજવું. તેથી જ ક્ષાયિક ભાવના પ્રકરણમાં સૂત્રકારે તેમનો નિર્દેશ કર્યો છે. ॥ સૂ૦ ૧૫૪॥

अथ क्षायोपशमिकं नाम निरूपयति—

मूलम्—से किं तं खओवसमिए? खओवसमिए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—खओवसमे य, खओवसमनिप्फण्णे य। से किं तं खओवसमे? खओवसमे चउण्हं घाइकम्माणं खओवसमेणं, तं जहा—णाणावरणिज्जस्स, दंसणावरणिज्जस्स, मोहणिज्जस्स, अंतरायस्स, खओवसमेणं, से तं खओवसमे। से किं तं खओवसमनिप्फण्णे? खओवसमनिप्फण्णे अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा खओवसमिया आभिणिबोहियणाणलद्धी, जाव खओवसमिया मणपज्जवणाणलद्धी, खओवसमिया मइअण्णाणलद्धी, खओवसमिया सुयअण्णालद्धी, खओवसमिया विभंगणाणलद्धी, खओवसमिया चक्खुदंसणलद्धी, अचक्खुदंसणलद्धी ओहिदंसणलद्धी, एवं सम्मदंसणलद्धी मिच्छादंसणलद्धी, सम्ममिच्छादंसणलद्धी, खओवसमिया सामाइयचरित्तलद्धी, एवं छेयोवट्ठावणलद्धी, परिहारविसुद्धियलद्धी, सुहुमसंपरायचरित्तलद्धी, एवं चरित्ताचरित्तलद्धी, खओवसमिया दाणलद्धी, एवं लाभलद्धी, भोगलद्धी, उवभोगलद्धी, खओवसमिया वीरियलद्धी, एवं पंडियवीरियलद्धी, बालवीरियलद्धी, बालपंडियवीरियलद्धी, खओवसमिया सोइंदियलद्धी, जाव खओवसमिया फासिंदियलद्धी, खओवसमिए आयारंगधरे, एवं सुयगडंगधरे, ठाणंगधरे, समवायंगधरे, विवाहपण्णत्तिधरे, नायाधम्मकहाधरे, उवासगदसाधरे, अंतगडदसाधरे, अणुत्तरोववाइयदसाधरे, पण्हावागरणधरे, विवागसुयधरे

खओवसमिए दिट्ठिवायधरे, खओवसमिए णवपुव्वी, खओवसमिए जाव चउद्दस्सपुव्वी, खओवसमिए गणी, खओवसमिए वायए, से तं खओवसमनिप्फण्णे, से तं खओवसमिए॥सू०१५५॥

छाया—अथ कोऽसौ क्षायोपशमिकः ? क्षायोपशमिकः द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-क्षयोपशमश्च क्षयोपशमनिष्पन्नश्च । अथ कोऽसौ क्षयोपशमः ? क्षयोपशमः-चतुर्णां घातिकर्मणां क्षयोपशमः खलु तद्यथा-ज्ञानावरणीयस्य, दर्शनावरीयस्य मोहनीयस्य, अन्तरायस्य क्षयोपशमः खलु, स एष क्षयोपशमः । अथ कोऽसौ क्षयोपशमनिष्पन्नः ? क्षयोपशमनिष्पन्नः अनेकविधः प्रज्ञप्तः-तद्यथा-क्षायोपशमिकी आभिनिबोधिकज्ञानलब्धिः, यावत् क्षायोपशमिकी मनः पर्ययज्ञानलब्धिः, क्षायोपशमिकी मत्यज्ञानलब्धिः, क्षायोपशमिकी श्रुताज्ञानलब्धिः, क्षायोपशमिकी विभङ्गज्ञानलब्धिः, क्षायोपशमिकी चक्षुर्दर्शनलब्धिः अचक्षुर्दर्शनलब्धिः, अवधिदर्शनलब्धिः, एवं सम्यक्दर्शनलब्धिः, मिथ्यादर्शनलब्धिः, सम्यग्मिथ्यादर्शनलब्धिः, क्षायोपशमिकी सामायिकचारित्रलब्धिः, एवं छेदोपस्थापनलब्धिः परिहारविशुद्धिकलब्धिः, सूक्ष्मसंपरायचारित्रलब्धिः, एवं चरित्राचरित्रलब्धिः क्षायोपशमिकी दानलब्धिः, एवं लाभलब्धिः, भोगलब्धिः, उपभोगलब्धिः, क्षायोपशमिकी वीर्यलब्धिः, एवं पण्डितवीर्यलब्धिः, बालवीर्यलब्धिः बालपण्डितवीर्यलब्धिः, क्षायोपशमिकी श्रोत्रेन्द्रियलब्धिः, यावत् क्षायोपशमिकी स्पर्शेन्द्रियलब्धिः, क्षायोपशमिकः आचाराङ्गधरः, एवं सूत्रकृताङ्गधरः, स्थानाङ्गधरः समवायाङ्गधरः, व्याख्याप्रज्ञप्तिधरः, ज्ञाताधर्मकथाधरः, उपासकदशाधरः, अन्तकृद्दशाधरः, अनुत्तरोपपातिकदशाधरः, प्रश्नव्याकरणधरः, विपाकश्रुतधरः, क्षायोपशमिको दृष्टिवादधरः, क्षायोपशमिको नवपूर्वीधरः, क्षायोपशमिको यावत् चतुर्दशपूर्वीधरः, क्षायोपशमिको गणी, क्षायोपशमिको-वाचकः । स एष क्षयोपशमनिष्पन्नः । स एष क्षायोपशमिकः ॥सू० १५५॥

टीका—' से किं तं ' इत्यादि—

अथ कोऽसौ क्षायोपशमिकभावः ? इति शिष्यप्रश्नः । उत्तरयति-क्षायोपशमिकः

अब सूत्रकार क्षायोपशमिकभावका निरूपण करते हैं—

'से किं तं खओवसमिए' इत्यादि ।

शब्दार्थ—(से किं तं खओवसमिए ?) हे भदन्त ! वह क्षायोपशमिक क्या है ?

હવે સૂત્રકાર ક્ષાયોપશમિક ભાવનું નિરૂપણ કરે છે—

"से किं तं खओवसमिए" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(से किं तं खओवसमिए ?) હે ભગવન્ પૂર્વપ્રકાન્ત ક્ષાયોપશમિકનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

क्षयोपशम-क्षयोपशमनिष्पन्नेति द्विविधः। तत्र-क्षयोपशमः-केवलज्ञानप्रतिबन्धकस्य ज्ञानावरणीयदर्शनावरणीयमोहनीयान्तरायरूपघातिकर्मचतुष्टयस्य क्षयोपशमो बोध्यः। अयं भावः-विवक्षितज्ञानादिगुणविघातकस्य कर्मणः उदयप्राप्तस्य क्षयः=सर्वथाऽपगमः, अनुदीर्णस्य तस्यैव कर्मण उपशमः=विपाकत उदयाभावः। ततश्च क्षयोपलक्षितः उपशम इति। ननु औपशमिके भावे उदयप्राप्तस्य कर्मणः सर्वथा

उत्तर-खओवसमिए दुविहे पण्णत्ते) क्षयोपशमिक दो प्रकार का प्रज्ञप्त हुआ है। (तं जहा) जैसे-खओवसमे य खओवसमनिप्फण्णे य) एक क्षयोपशमरूप क्षायोपशमिक और दूसरा क्षयोपशमनिष्पन्न क्षायोपशमिक।

(से किं तं खओवसमे?) हे भदन्त! वह क्षायोपशम क्या है।

उत्तर-(खओवसमे चउण्हं घाइकम्माणं खओवसमेणं) केवल ज्ञान के प्रतिबन्धक ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय मोहनीय और अन्तराय इन चार घातिक कर्मों का जो क्षयोपशम है वह क्षायोपशम है। इसका तात्पर्य यह है कि विवक्षित ज्ञानादिक गुणों को घात करने वाले उदय प्राप्त कर्म का क्षय-सर्वथा अपगम-और अनुदीर्ण उसी कर्म का उपशम-विपाक की अपेक्षा से उदयाभाव इस प्रकार क्षय से उपलक्षित जो उपशम है वही क्षयोपशम है।

शंका-औपशमिक भाव में उदय प्राप्त कर्मका सर्वथा क्षय है और

उत्तर—(खओवसमिए दुविहे पण्णत्ते, तंजहा) क्षायोपशमिक भावना नीचे प्रमाणे બે પ્રકાર કહ્યા છે-(खओवसमे य खओवसमनिप्फण्णे य) (१) क्षयोपशम રૂપ क्षायोपशमिक અને (२) क्षयोपशम निष्पन्न क्षायोपशमिक.

प्रश्न—(से किं तं खओवसमे?) હે ભગવન્! તે क्षायोपशमનું સ્વરૂપ કેવું છે?

उत्तर—(खओवसमे चउण्हं घाइकम्माणं खओवसमेणं) કેવળજ્ઞાનના પ્રતિબન્ધક-કેવળજ્ઞાનને પ્રકટ થતું રોકનારાં-જ્ઞાનાવરણીય, દર્શનાવરણીય, મોહનીય અને અન્તરાય, આ ચાર ઘાતિયા કર્મોનો જે क्षयोपशम રૂપ ભાવ છે, તેને क्षयोपशम કહે છે. આ કથનનું તાત્પર્ય નીચે પ્રમાણે છે-વિવક્ષિત જ્ઞાનાદિક ગુણોનો ઘાત કરનારા ઉદય પ્રાપ્ત કર્મનો क्षय (सर्वथा अपगम) અને અનુદીર્ણ એજ કર્મનો ઉપશમ (વિપાકની અપેક્ષાએ ઉદયાભાવ), આ પ્રકારનો क्षयથી ઉપલક્ષિત જે ઉપશમ છે, તેનું નામ જ क्षयोपशम છે.

शंका—औपशमिक ભાવમાં ઉદયપ્રાપ્ત કર્મનો સર્વથા क्षय થાય છે અને

क्षयः, अनुदयप्राप्तं तु कर्म न क्षीणं नापि तस्योदयोऽतस्तस्योपशमश्च उच्यते, क्षायोपशमिकेऽस्मिन्नपि भावे उदीर्णस्य क्षयः, अनुदीर्णस्य चोपशम इत्युच्यते, इत्थमनयोः को भेदः? इति चेदाह-कर्मणः क्षयोपशमे तु विपाकत एवोदयाभावः, प्रदेशस्तु अस्त्येवोदयः, औपशमिके भावे तु कर्मणः प्रदेशतोऽप्युदयो नास्तीत्यनयोर्भेदो बोध्यः। क्षयोपशमस्तु ज्ञानावरणादि कर्मचतुष्टयस्यैव भवति, नान्येषां

अनुदय प्राप्त जो कर्म है उसका न क्षय है और न उदय है, किन्तु उपशम है, इसी प्रकार इस क्षायोपशमिक भाव में भी उदीर्ण कर्मका क्षय है और अनुदीर्ण कर्मका उपशम है। तब औपशमिक और क्षायोपशमिक में क्या भेद है?

उत्तर-क्षयोपयोशम भाव में जो कर्म का उपशम कहा गया है वह विपाक की अपेक्षा से ही उदयाभाव रूप उपशम कहा गया है, प्रदेश की अपेक्षा नहीं-प्रदेश की अपेक्षा से तो वहां कर्मका उदय है परन्तु औपशमिक भाव में जो उपशम कहा गया है वह विपाक और प्रदेश दोनों की अपेक्षा से कहा गया है। अर्थात् औपशमिक भाव में कर्म का न विपाकोदय है, और न प्रदेशोदय है। नीरस किये हुए कर्म दलिकों का वेदन प्रदेशोदय है और रस विशिष्ट दलिकों का विपाक वेदन विपाकोदय है। क्षयोपशम ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय और अंतराय इन चार कर्मों का ही होता है। निषिद्ध होने

અનુદય પ્રાપ્ત જે કર્મ છે તેનો ક્ષય પણ થતો નથી અને ઉદય પણ થતો નથી પરન્તુ ઉપશમ જ થાય છે. એજ પ્રકારે ક્ષાયોપશમિક ભાવમાં પણ ઉદીર્ણ કર્મનો ક્ષય અને અનુદીર્ણ કર્મનો ઉપશમ થતો હોય છે. તો પછી ઔપશમિક અને ક્ષાયોપશમિકમાં શો ભેદ છે?

ઉત્તર-ક્ષયોપશમ ભાવમાં કર્મનો જે ઉપશમ કહેવામાં આવ્યો છે તે વિપાકની અપેક્ષાએ જ ઉદયાભાવ (ઉદયનો અભાવ) રૂપ ઉપશમ બતાવવામાં આવ્યો છે, પ્રદેશની અપેક્ષાએ બતાવવામાં આવ્યો નથી. પ્રદેશની અપેક્ષાએ તો ત્યાં કર્મનો ઉદય જ છે. પરન્તુ ઔપશમિક ભાવમાં જે ઉપશમ બતાવવામાં આવ્યો છે, તે વિપાક અને પ્રદેશ, આ બન્નેની અપેક્ષાએ બતાવવામાં આવ્યો છે એટલે કે ઔપશમિક ભાવમાં કર્મનો વિપાકોદય હોતો નથી, પણ પ્રદેશોદય હોય છે. નીરસ કરાયેલાં કર્મદલિકોનું વેદન પ્રદેશોદય રૂપ છે અને રસવિશિષ્ટ દલિકોનું વિપાકવેદન વિપાકોદય રૂપ છે. જ્ઞાનાવરણીય, દર્શનાવરણીય, મોહ-

कर्मणां, निषिद्धत्वात्। सम्प्रति प्रथमं भेदमुपसंहरन्नाह–स एष क्षयोपशम इति। द्वितीयं भेदं पृच्छति–अथ कोऽसौ क्षयोपशमनिष्पन्नः? इति। उत्तरयति–क्षयोपशमनिष्पन्नः अनेकविधः प्रज्ञप्तः। अनेकविधत्वमेवाह–तद्यथा–क्षायोपशमिकी आभिनिबोधिकज्ञानलब्धिः क्षयोपशमेन निष्पन्ना क्षायोपशमिकी, सा का? इत्याह–आभिनिबोधिकज्ञानलब्धिरिति। आभिनिबोधिकज्ञानं=मतिज्ञानं तस्य लब्धिः=प्राप्तिः इयं हि–स्वावरणकर्मक्षयोपशमेनोपसम्पद्यते, अत एवेयं क्षायोपशमिकीत्युच्यते। इत आरभ्य क्षायोपशमिकी मनः पर्यवज्ञानलब्धिरिति यावद् वक्तव्यम्। तत्तज्ज्ञान

से अन्य कर्मों का नहीं होता है। (से तं खओसमे) इस प्रकार यह–क्षयोपशम है (से किं तं खओवसमणिप्फण्णे?) हे भदंत! क्षयोपशम निष्पन्न क्षायोपशमिक भाव क्या है?

उत्तर–(खओवसमनिप्फण्णे अणेगविहे पण्णत्ते) क्षयोपशम निष्पन्न क्षायोपशमिक भाव अनेक प्रकार का कहा गया है। (तं जहा) वे प्रकार ये हैं–

(खओव समिया आभिणिबोहियणाणलद्धी जाव खओवसमिया मणपज्जवणाणलद्धी) क्षयोपशमिकी आभिनिबोधिक ज्ञानलब्धि–अभिनिबोधक नाम मतिज्ञान है। इस मतिज्ञान की प्राप्ति का नाम आभिनिबोधिक ज्ञानलब्धि है। यह आभिनिबोधिकज्ञानलब्धि मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से होती है। इसलिये इसे क्षायोपशमिकी कही है, इसी प्रकार श्रुतज्ञानलब्धि श्रुतज्ञानावरणकर्म के क्षयोपशम से होती है। अवधि-

---

नीय अने अंतराय, आ चार प्रकारनां कर्मोनो ज क्षयोपशम थाय छे, अन्य कर्मोनो क्षयोपशम थतो नथी. (से तं खओवसमे) आ प्रकारनुं क्षयोपशमनुं स्वरूप छे.

प्रश्न–(से किं तं खओवसमणिप्फण्णे?) हे भगवन्! क्षयोपशमनिष्पन्न क्षायोपशमिक भावनुं स्वरूप केवुं छे?

उत्तर–(खओवसमनिप्फण्णे अणेगविहे पण्णत्ते) क्षयोपशमनिष्पन्न क्षायोपशमिक भाव अनेक प्रकारनो कह्यो छे. (तंजहा) जेम के....(खओवसमिया आभिणिबोहियाणणलद्धी जाव खओवसमिया मणपज्जवणाणलद्धी) क्षायोपशमिकी आभिनिबोधिक ज्ञानलब्धि मतिज्ञानने आभिनिबोधिक ज्ञान कहे छे. आ मतिज्ञाननी प्राप्तिनुं नाम आभिनिबोधिक ज्ञानलब्धि छे. मतिज्ञानावरण कर्मना क्षयोपशमथी आ आभिनिबोधिक ज्ञानलब्धिनी प्राप्ति थाय छे तेथी तेने क्षायोपशमिकी कहेवामां आवी छे. एज प्रमाणे श्रुतज्ञानावरण कर्मना क्षयोपशमथी श्रुतज्ञानलब्धिनी, अवधिज्ञानावरण कर्मना क्षयोपशमथी

प्राप्तिर्हि तत्तदावरणकर्मक्षयोपशमजन्या बोध्या। केवलज्ञानलब्धिस्तु तदावरण कर्मणः क्षय एवोत्पद्यते अतोऽत्र नोक्ता। तथा-क्षायोपशमिकी मत्यज्ञानलब्धिः-अज्ञानं-कुत्सितं ज्ञानम्-अज्ञानम्, कुत्सार्थेऽपि नञोवृत्तिः, कुत्सितं-शीलम्-अशीलम् इत्यादौ तथा दृष्टत्वात्, मतिरेवाज्ञानं मत्यज्ञानं तस्य लब्धिः=योग्यता स्वावरणक्षयोपशमेनैव निष्पद्यते। कुत्सितत्वं चास्य मिथ्यादर्शनोदयदूषितत्वाद् बोध्यम्। एवं क्षायोपशमिकी श्रुतज्ञानलब्धिरपि बोध्या। तथा-क्षायोपशमिकी विभङ्गज्ञानलब्धिः-भङ्गमकारो भेदइति पर्यायाः। भङ्गशब्दस्त्विह प्रक्रमादवधिवाचकः।

ज्ञानालब्धि अवधिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से होती है, और मनःपर्यवज्ञानलब्धि मनः पर्यवज्ञानावण कर्म के क्षयोपशम से होती है। इसलिये इन लब्धियों को क्षायोपशमिक कहा है। केवलज्ञानलब्धि को सूत्रकार ने जो यहां नहीं कहा है उसका कारण यह है कि यह केवलज्ञानावरणकर्म के क्षय से होती है। (खओवसमिया मइ अण्णाण लद्धी, खओवसमिया सुय अण्णाणलद्धी, खओवसमिया विभंगणाणलद्धी) मतिअज्ञानावरण के क्षयोपशम से मति अज्ञान, श्रुतअज्ञानावरण के क्षयोपशम से श्रुतज्ञान, विभंगज्ञानावरण के क्षयोपशम से विभंगज्ञान की प्राप्ति होती है, इसलिये इन्हें क्षायोपशिमिकी मत्यज्ञान लब्धि, क्षायोपशमिकी श्रुताज्ञानालब्धि और क्षायोपशमिकी विभंग ज्ञान लब्धि कहा है। कुत्सित ज्ञान का नाम अज्ञान है। कुत्सित अर्थ में भी नञ् होता है। जैसे कुत्सितशील अशील आदि (खओवसमिया

અવધિજ્ઞાન લબ્ધિની અને મનઃપર્યવજ્ઞાનાવરણના ક્ષયોપશમથી મનઃપર્યવજ્ઞાન લબ્ધિની પ્રાપ્તિ થાય છે. તે કારણે તે લબ્ધિઓને ક્ષયોપશમિક કહેવામાં આવી છે અહીં સૂત્રકારે કેવળજ્ઞાન લબ્ધિનો ઉલ્લેખ કર્યો નથી, કારણ કે કેવળજ્ઞાનાવરણ કર્મના ક્ષયથી જ કેવળજ્ઞાન લબ્ધિની પ્રાપ્તિ થાય છે, ક્ષયોપશમથી તેની પ્રાપ્તિ થતી નથી.

(खओवसमिया मइ अण्णाणलद्धी, खओवसमिया सुय अण्णाणलद्धी, खओवसमिया विभंगणाणलद्धी) મતિ અજ્ઞાનાવરણના ક્ષયોપશમથી મતિ અજ્ઞાન, શ્રુતઅજ્ઞાનાવરણના ક્ષયોપશમથી શ્રુતાજ્ઞાન અને વિભંગજ્ઞાનાવરણના ક્ષયોપશમથી વિભંગજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થાય છે. તેથી તેમને ક્ષાયોપશમિકી મત્યજ્ઞાનલબ્ધિ, ક્ષાયોપશમિકી શ્રુતાજ્ઞાનલબ્ધિ અને ક્ષાયોપશમિકી વિભંગજ્ઞાનલબ્ધિ કહેવામાં આવેલ છે. કુત્સિત જ્ઞાનનું નામ અજ્ઞાન છે. કુત્સિતના અર્થમાં પણ નઞ્ (નકાર વાચક) નો પ્રયોગ થાય છે. જેમ કે કુત્સિતશીલ, અશીલ આદિ.

विरूपः=कुत्सितो भङ्गो विभङ्गः, स एव ज्ञानं-विभङ्गज्ञानम्-ज्ञानत्वं चास्य अर्थपरिच्छेदात्मकत्वाद् बोध्यम्। मिथ्यादृष्टिदेवादेरवधिज्ञानं विभङ्गज्ञानमुच्यते। विभङ्गज्ञानस्य लब्धिः=विभङ्गज्ञानलब्धिः। इयमपि स्वावरणक्षयोपशमेनैव भवति, अतोऽस्या अपि क्षायोपशमिकीत्वं बोध्यम्। एवं मिथ्यात्वादिकर्मणः क्षयोपशमसाध्याः शेषा अपि सम्यग्दर्शनादिलब्धयो यथासम्भवं भावनीयाः। तथा-क्षायोपशमिकी वीर्यलब्धिः-इयं हि वीर्यान्तरायकर्मक्षयोपशमाद् भवति। एवं-पण्डितवीर्यलब्धिः, बालवीर्यलब्धिः,

चक्खुदंसणलद्धी) क्षायोपशमिकीचक्षुः दर्शन लब्धि, (अचक्खुदंसणलद्धी, ओहिदंसणलद्धी) अचक्षुदर्शनलब्धि अवधिदर्शनलब्धि है। इन में चक्षुर्दर्शनावरण के क्षयोपशम से चक्षुर्दर्शन लब्धि, अचक्षुर्दर्शनावरण के क्षायोपशम से अचक्षुर्दर्शनलब्धि और अवधिदर्शनावरण के क्षयोपशम से अवधिदर्शनलब्धि होती है। (एवं सम्मदंसणलद्धी, मिच्छादंसणलद्धी सम्ममिच्छादंसणलद्धी) इसप्रकार से सम्यक्दर्शनलब्धि, मिथ्यादर्शनलब्धि (खओवसमिया सामाइयचरित्तलद्धी, एवं छेओवट्ठावणलद्धी, परिहारविसुद्धिलद्धी सुहुमसंपरायचरित्तलब्धि एवं चरित्ताचरित्तलद्धी) क्षायोपशमिकी सामायिक चरित्रलब्धि छेदोपस्थापनालब्धि, परिहारविशुद्धिक लब्धि, सूक्ष्म संपरायचारित्रलब्धि, चारित्राचरित्रलब्धि (खओवसमिया दाणलद्धी, एवं लाभलद्धी, भोगलद्धी, उपभोगलद्धी) क्षायोपशमिकी दानलब्धि लाभलब्धि भोगलब्धि उपभोगलब्धि, (खओवसमिया

(खओवसमिया चक्खुदंसणलद्धी) क्षायोपशमिकी चक्षुः दर्शनलब्धि, (अचक्खुदंसणलद्धी, ओहिदंसणलद्धी) अचक्षुदर्शनलब्धि अने अवधिदर्शनलब्धि પણ क्षयोपशम निष्पन्न क्षायोपशमिक भावરૂપ છે, કારણ કે चक्षुःदर्शनावरण કર્મના क्षयोपशमथी चक्षुःदर्शनलब्धिनी प्राप्ति थाय छे, अचक्षुर्दर्शनावरण કર્મના क्षयोपशमथी अचक्षुर्दर्शनलब्धिनी प्राप्ति थाय छे अने अवधिदर्शनावरणुना क्षयोपशमथी अवधिदर्शनलब्धिनी प्राप्ति थाय छे. (एवं सम्मदंसणलद्धी, मिच्छादंसणलद्धी, सम्ममिच्छादंसणलद्धी) એજ પ્રમાણે सम्यक्दर्शनलब्धि, मिथ्यादर्शनलब्धि, सम्यग्मिथ्यादर्शनलब्धि, (खओवसमिया सामाइयचरित्तलद्धी, एवं छेओवट्ठावणलद्धी, परिहारविसुद्धिलद्धी) क्षायोपशमिकी सामायिक चारित्रलब्धि, छेदोपस्थापनालब्धि, परिहारविशुद्धिकलब्धि, (सुहुमसंपराय चरित्तलद्धी, एवं चरित्ताचरित्तलद्धी) सूक्ष्म संपराय चरित्रलब्धि, चारित्राचारित्रलब्धि, (खओवसमिया दाणलद्धी, एवं लाभलद्धी, भोगलद्धी, उपभोगलद्धी) क्षायोपशमिकी दानलब्धि, लाभलब्धि, भोगलब्धि अने उपभोगलब्धि, (खओवसमिया वीरियलद्धी) क्षायोपशमिकी वीर्यलब्धि, (एवं पंडियवीरियलद्धी,

बालपण्डितवीर्यलब्धिरिति बोध्यम्। अयं भावः-पण्डिताः=साधवः, बालाः=अविरताः, बालपण्डिताः=देशविरताः। एषां स्वस्ववीर्यान्तरायकर्मक्षयोपशमेन स्वस्ववीर्यलब्धिः प्रादुर्भवतीति। तथा-क्षायोपशमिकी श्रोत्रेन्द्रियलब्धिः यावत् क्षायोपशमिकी स्पर्शेन्द्रियलब्धिः। अत्र-इन्द्रियाणि लब्ध्युपयोगरूपाणि भावेन्द्रियाणि बोध्यानि, तेषां लब्धिः=मतिश्रुतज्ञानचक्षुरचक्षुर्दर्शनावरणक्षयोपशमजन्यत्वात् क्षायोपशमिकीति बोध्यम्। तथा-क्षायोपशमिक आचाराङ्गधर इत्यारभ्य क्षायोपशमिको वाचक इत्यन्तोऽपि श्रुतज्ञानावरणकर्मक्षयोपशमजन्यो बोध्यः। आचाराङ्गधरत्वादि पर्याया हि श्रुतज्ञानप्रभवाः, श्रुतज्ञानं च तदावरणकर्मक्षयोपशमेन निष्पद्यते, अत आचाराङ्गधरादयः क्षायोपशमिका बोध्या इति भावः।

वीरियलद्धी) क्षायोपशमिकी वीर्यलब्धि, (एवं पंडियवीरियलद्धी) पंडित वीर्यलब्धि (बाल वीरियलद्धी) बालवीर्यलब्धि (बालपंडियवीरियलद्धी) बालपंडित वीर्यलब्धि (खओवसमिया सोइंदियलद्धी) क्षायोपशमिकी श्रोत्रेन्द्रियलब्धि (जाव) यावत् (खओवसमिया फासिंदियलद्धी) क्षायोपशमिकी स्पर्शन इन्द्रिलब्धि (खओवसमिए आयारंगधरे) क्षायोपशमिक आचारांगधारी, (एवं सुयगडंगधरे, ठाणंगधरे, समवायंगधरे, विवाहपण्णत्तिधरे, नायाधम्मकहाधरे) सूत्रकृताङ्गधारी, स्थानांगधारी, समवायाङ्गधारी, विवाहप्रज्ञप्तिधारी ज्ञाताधर्मकथाधारी (उवासगदसाधरे) उपासकदशाधारी, (अंतगडदसाधरे) अन्तकृद्दशाधारी, (अणुत्तरोववाइयदसाधरे) अनुत्तरौपपातिक दशाधारी, (पण्हावागरणधरे) प्रश्नव्याकरणधारी, (विवाग सुयधरे) विपाक श्रुतधारी (खओवसमिए दिट्ठिवायधरे) क्षायोपशमिक दृष्टिवादधारी (खओवसमिए णवपुव्वी) क्षायोपशमिक नव-

---

बालवीरियलद्धी, बालपंडियवीरियलद्धी) क्षायोपशमिकी पंडितवीर्यलब्धि, बालवीर्यलब्धि अने बालपंडितवीर्यलब्धि.

(खओवसमिया सोइंदियलद्धी जाव खओवसमिया फासिंदियलद्धी) क्षायोपशमिकी श्रोत्रेन्द्रियलब्धिथी लईने क्षायोपशमिकी स्पर्शेन्द्रियलब्धिपर्यन्तनी पांच प्रकारनी लब्धिओ, (खओवसमिए आयारंगधरे) क्षायोपशमिक आचारांगधारी, (एवं सुयगडंगधरे, ठाणंगधरे, समवायंगधरे, विवाह पण्णत्तिधरे, नायाधम्मकहाधरे, उवासगदसाधरे, अणुत्तरोववाइयदसाधरे, पण्हावागरणधरे, विवागसुयधरे,) એજ પ્રમાણે क्षायोपशमिक सूत्रकृतांगधारी, स्थानांगधारी, समवायांगधारी, विवाहप्रज्ञप्ति (व्याख्याप्रज्ञप्ति)धारी, उपासकदशाधारी, अन्तकृतदशाधारी, अनुत्तरौपपातिकदशाधारी, प्रश्नव्याकरणधारी विपाकश्रुतधारी, (खओवसमिए दिट्ठिवायधरे)

प्रकृतमुपसंहरन्नाह-स एष क्षायोपशमनिष्पन्न इति। क्षायोपशमिको भावः प्ररूपित इति सूचयितुमाह-स एष क्षायोपशमिक इति ॥सू० १५५॥

पूर्वधारी (खओवसमिए जाव चउदस पुव्वी) क्षायोपशमिक यावत् चतुर्दशपूर्वधारी (खओवसमिए गणी) क्षायोपशमिक गणी खाओवसमिए वायए) क्षायोपशमिकवाचक (से तं खओवसम्मनिप्फण्णे) इसप्रकार ये सब क्षायोपशम निष्पन्न हैं (से तं खओवसमिए) यह वह क्षायोपशमिक है। –

भावार्थ–इस सूत्र द्वारा सूत्रकारने क्षायोपशमिक क्या है इसका विवेचन किया है। उन्होंने कहा–है कि एक तो क्षायोपशम ही क्षायोपशमिक है और दूसरा क्षयोपशम निष्पन्न क्षायोपशमिक है। इनमें चार घातिक कर्मों का क्षय उपलक्षित जो उपशम है वह क्षायोपशमिक है। क्षायोपशमिक ज्ञान के आवारक जो कर्म हैं उनमें सर्वघातिस्पर्द्धक (कर्मांश) और देशघातिस्पर्द्धक ये दोनों प्रकार के स्पर्द्धक पाये जाते हैं। इसलिये उनका क्षयोपशम होता है। नव नोकषायों में केवल देशघातिस्पर्द्धक ही पाये जाते हैं इसलिये उनका क्षयोपशम नहीं होता केवल ज्ञानावरण आदि प्रकृतियों में केवल सर्वघातिस्पर्द्धक पाये जाते हैं

क्षायोपशमिक दृष्टिवादधारी, (खओवसमिए णवपुव्वी) क्षायोपशमिक नवपूर्वधारीथी लईने (खओवसमिए जाव चउद्दसपुव्वी) क्षायोपशमिक चौद पूर्वधारी पर्यन्तना जीवो, (खओवसमिए गणी) क्षायोपशमिक गणी, (खओवसमिए वायए) अने क्षायोपशमिक वाचक (से तं खओवसमनिप्फण्णे) आ बधा क्षायोपशम निष्पन्न भावो छे. (से तं खओवसमिए) क्षायोपशमिकनुं आ प्रकारनुं स्वरूप छे.

भावार्थ–आ सूत्र द्वारा सूत्रकारे क्षायोपशमिक भावना स्वरूपनुं विवेचन कर्युं छे तेमां तेमणे एवुं प्रतिपादन कर्युं छे के एक तो क्षायोपशम ज क्षायोपशमिक छे अने बीजुं क्षयोपशमनिष्पन्न क्षायोपशमिक छे. चार घातिया कर्मोना क्षयथी उपलक्षित जे उपशम छे, तेनुं नाम क्षायोपशमिक छे. क्षायोपशमिक ज्ञाननुं आवरण करनारा जे कर्मो छे तेमां सर्वघाति स्पर्द्धको अने देशघाति स्पर्द्धको रूप बन्ने प्रकारना स्पर्द्धकोनो सद्भाव रहे छे.

इसलिये उनका भी क्षयोपशम नहीं होता है। यद्यपि प्रत्याख्यानावरण और अप्रत्याख्यानावरण कषाय सर्वघाति ही हैं–किन्तु उन्हें अपेक्षाकृत देशघाति मान लिया जाता है इसलिये अनंतानुबंधी आदि का क्षयोपशम बन जाता है। अघातिया कर्मों में तो देशघाति और सर्वघाति यह विकल्प ही संभव नहीं, इसलिये उनके क्षयोपशम का प्रश्न ही नहीं उठता। अतः सूत्रकारने यह तो क्षयोपशम की सामान्य योग्यता का विवेचन किया है। क्षयोपशम और उपशम में केवल अन्तर इतना ही है कि क्षयोपशम में कितनेक सर्वघातिस्पर्द्धकों का उदयाभावी क्षय रहता है और कितनेक उन्हीं सर्वघातिस्पर्द्धकों का सदवस्था रूप उपशम रहता है–तथा देशघातिस्पर्द्धकों का उदय रहता है। तब कि उपशम में किसी का भी उदय नहीं रहता है। सबका उपशम ही रहता है–

अब सूत्रकार यह कहते हैं कि किन २ कर्मों के क्षयोपशम से कौन २ से भाव प्रकट होते हैं–मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण अवधिज्ञानावरण, और मनःपर्यवज्ञानावरण के क्षयोपशम से मति, श्रुत,

---

તેથી તેમનો ક્ષયોપશમ થાય છે. નવ નોકષાયોમાં કેવળ દેશઘાતિ સ્પર્દ્ધકો (કર્મદલિકો)નો જ સદ્ભાવ હોય છે, તેથી તેમનો ક્ષયોપશમ થતો નથી કેવળજ્ઞાનાવરણ આદિ પ્રકૃતિઓમાં કેવળ સર્વઘાતિ સ્પર્દ્ધકોનો જ સદ્ભાવ હોય છે, તેથી તેમનો ક્ષયોપશમ પણ થતો નથી જો કે પ્રત્યાખ્યાનાવરણ અને અપ્રત્યાખ્યાનાવરણ કષાય સર્વઘાતિ જ છે, પરન્તુ તેમને અપેક્ષાકૃત દેશઘાતિ માની લેવામાં આવેલ છે, તેથી અનંતાનુબંધી આદિનો ક્ષયોપશમ સંભવિત બની જાય છે. અઘાતિયા કર્મોમાં તો દેશઘાતિ અને સર્વઘાતિ રૂપ વિકલ્પ જ સંભવી શકતો નથી, તેથી તેમના ક્ષયોપશમનો તો પ્રશ્ન જ ઉદ્ભવતો નથી આ પ્રકારે સૂત્રકારે ક્ષયોપશમની સામાન્ય યોગ્યતાનું અહીં વિવેચન કર્યું છે ક્ષયોપશમ અને ઉપશમ વચ્ચે નીચે પ્રમાણેનું અંતર સમજવું– ક્ષયોપશમમાં કેટલાક સર્વઘાતિ સ્પર્દ્ધકોનો ઉદયાભાવી ક્ષય રહે છે અને કેટલાક સર્વઘાતિ સ્પર્દ્ધકોના સદવસ્થારૂપ ઉપશમ રહે છે તથા દેશઘાતિ સ્પર્દ્ધકોનો ઉદય રહે છે પરન્તુ ઉપશમમાં તેમનો ઉદય રહેતો નથી પણ ઉપશમ જ રહે છે.

હવે સૂત્રકાર એ વાત પ્રકટ કરે છે કે કયાં કયાં કર્મોના ક્ષયોપશમથી કયા કયા ભાવ પ્રકટ થાય છે–મતિજ્ઞાનાવરણ, શ્રુતજ્ઞાનાવરણ, અવધિજ્ઞાનાવરણ અને મનઃપર્યવજ્ઞાનાવરણ કર્મોના ક્ષયોપશમથી અનુક્રમે મતિજ્ઞાન, શ્રુત-

अवधि और मनःपर्यवज्ञान प्रकट होते हैं। सूत्र में लब्धि शब्द का अर्थ प्राप्ति है। यह स्त्रीलिङ्ग है इसलिये "क्षायोपशमिकी" शब्द भी स्त्रीलिङ्ग में व्यवहृत किया गया है। अपने २ आवारक कर्मों के क्षयोपशम से मतिज्ञानादिकों की प्राप्ति होती है। इसलिये यह प्राप्ति क्षायोपशमिकी है। केवलज्ञान को क्षयोपशमिक नहीं माना गया है। वह तो क्षायिक है। क्यों कि यह केवलज्ञानावरण के क्षय से होता है।

शंका–यदि केवलज्ञान, केवलज्ञानावरण कर्म के क्षय से होता है–तो फिर उसे ऐसा क्यों कहा जाता है कि यह ज्ञानावरण कर्म के क्षय से होता है?

उत्तर–आत्मा का स्वभाव केवलज्ञान है। इसे केवलज्ञानावरण आवृत किये हुए हैं। तथापि वह पूरा आवृत नहीं हो-पाता, अतिमन्द ज्ञान प्रकट ही बना रहता है। जिसे मतिज्ञानावरण आदि कर्म आवृत करते हैं, इससे स्पष्ट है कि केवलज्ञान को प्रकट न होने देना ज्ञानावरण के पांचों भेदों का साक्षात् रोकता है और मतिज्ञानावरण आदि परंपरा से। इसलिये ज्ञानावरणकर्म के क्षय से केवलज्ञान होता है

જ્ઞાન, અવધિજ્ઞાન અને મનઃપર્યવજ્ઞાન પ્રકટ થાય છે. સૂત્રમાં જે 'લબ્ધિ' પદ વપરાયું છે તેનો અર્થ 'પ્રાપ્તિ' સમજવો. 'લબ્ધિ' પદ સ્ત્રીલિંગમાં હોવાથી તેની સાથે 'ક્ષાયોપશમિકી' આ પદનો પણ સ્ત્રીલિંગમાં જ પ્રયોગ કરવામાં આવ્યો છે મતિજ્ઞાન આદિકોની પ્રાપ્તિ ત્યારે જ થાય છે કે જ્યારે તે પ્રત્યેક જ્ઞાનના આવારક (આવરણ કરનારાં) કર્મોનો ક્ષયોપશમ થાય છે. તેથી તેમની તે પ્રાપ્તિને ક્ષાયોપશમિકી કહી છે. કેવળજ્ઞાનને ક્ષયોપશમિક ગણવામાં આવતું નથી, તેને તો ક્ષાયિક જ ગણવામાં આવે છે, કારણ કે કેવળજ્ઞાનાવરણ કર્મના ક્ષયથી જ કેવળજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થાય છે.

શંકા–જો કેવળજ્ઞાનાવરણ કર્મના ક્ષયને લીધે કેવળજ્ઞાન પ્રાપ્ત થતું હોય, તો એવું શા માટે કહેવામાં આવે છે કે જ્ઞાનાવરણ કર્મનો ક્ષય થવાથી કેવળજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે?

ઉત્તર–આત્માનો સ્વભાવ કેવળજ્ઞાન છે તેના ઉપર કેવળજ્ઞાનાવરણ કર્મનું આવરણ હોય છે છતાં પણ તે પૂરેપૂરું આવૃત થઈ શકતું નથી અતિ મન્દ જ્ઞાન પ્રકટ જ થતું રહે છે, કે જેને મતિજ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મ આવૃત કરે છે. તેથી એ વાત સ્પષ્ટ થાય છે કે કેવળજ્ઞાનને પ્રકટ ન થવા દેવામાં જ્ઞાનાવરણના પાંચે ભેદો કારણભૂત બને છે કેવળજ્ઞાનાવરણ કર્મ કેવળજ્ઞાનને સાક્ષાત રૂપે રોકે છે અને મતિજ્ઞાનાવરણ આદિ ચાર કર્મો તેને પરંપરા

ऐसा कहा जाता है। मतिअज्ञानावरण, श्रुतअज्ञानावरण, और विभंगज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान, और विभंगज्ञान प्रकट होते हैं। यहां अज्ञान से तात्पर्य ज्ञानाभाव से नहीं है, क्यों कि ज्ञानावरण रूप अज्ञान औदयिक भाव है। यह ज्ञानावरण कर्म के उदय से होता है। किन्तु कुत्सित ज्ञान का नाम अज्ञान है। जब मतिज्ञान आदि मिथ्यादर्शन के उदय से दूषित होते तब वे कुत्सितज्ञान कहलाते हैं। विभंग में भंगशब्द प्रकरणवश अवधि वाचक है। वैसे तो यह प्रकार भेद-का वाचक है। और "वि" शब्द विरूप-कुत्सित अर्थ का वाचक है। इस तरह विरूपः भंगः विभंगः विभंग एव ज्ञानम्" ऐसी इसकी व्युत्पत्ति है। इस विभंग में जो ज्ञान पना है, वह अर्थ परिज्ञानात्मक होने से है। मिथ्यादृष्टि देवादिकों का अवधिज्ञान विभंगज्ञान कहलाता है। चक्षुर्दर्शनावरण, अचक्षुर्दर्शनावरण, और अवधिदर्शनावरण के क्षयोपशम से चक्षुर्दर्शन अचक्षुर्दर्शन और अवधिदर्शन प्रकट होते हैं। इसलिये क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन

રૂપે રહે છે. તેથી "જ્ઞાનાવરણકર્મના ક્ષયથી કેવળજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે." એવું કહેવામાં આવે છે.

મતિઅજ્ઞાનાવરણ, શ્રુતઅજ્ઞાનાવરણ અને વિભંગજ્ઞાનાવરણ કર્મના ક્ષયોપશમથી અનુક્રમે મત્યજ્ઞાન, શ્રુતાજ્ઞાન અને વિભંગજ્ઞાન પ્રકટ થાય છે. અહીં "અજ્ઞાન" પદ દ્વારા જ્ઞાનાભાવ સમજવાનો નથી કારણ કે જ્ઞાનાભાવ રૂપ અજ્ઞાન તો ઔદયિક ભાવરૂપ છે, અને જ્ઞાનાવરણ કર્મના ઉદયથી તે ભાવ ઉત્પન્ન થાય છે. પરન્તુ કુત્સિતજ્ઞાનને અજ્ઞાન કહે છે. જ્યારે મતિજ્ઞાન આદિ મિથ્યાદર્શનના ઉદયથી દૂષિત હોય છે, ત્યારે તેમને કુત્સિત જ્ઞાનરૂપ ગણવામાં આવે છે. 'વિભંગ' પદમાં જે "ભંગ" પદ છે તે અહીં અવધિવાચક છે. આમ તો તે પદ પ્રકારભેદનું વાચક ગણાય છે. અને "વિ" પદ વિરૂપકુત્સિત અર્થનું વાચક છે. વિભંગજ્ઞાનની વ્યુત્પત્તિ આ પ્રમાણે થાય છે-"વિરૂપઃ ભંગઃ વિભંગઃ વિભંગ એવ જ્ઞાનં વિભંગજ્ઞાનમ્" આ વિભંગમાં જે જ્ઞાનપણું છે તે અર્થપરિજ્ઞાનાત્મકતાની અપેક્ષાએ છે. મિથ્યાદૃષ્ટિ દેવાદિકોના અવધિજ્ઞાનને વિભંગજ્ઞાન કહે છે. ચક્ષુર્દર્શનાવરણ, અચક્ષુર્દર્શનાવરણ અને અવધિદર્શનાવરણ કર્મના ક્ષયોપશમથી અનુક્રમે ચક્ષુર્દર્શન અચક્ષુર્દર્શન અને અવધિદર્શન પ્રકટ થાય છે. તેથી તેમને પણ ક્ષાયોપશમિક કહેવામાં આવેલ છે. મિથ્યાત્વકર્મના ક્ષયોપશમથી ક્ષયોપશમિક સમ્ય-

की प्राप्ति मिथ्यात्व कर्म के क्षयोपशम से होती है। इसी प्रकार से और भी लब्धियों में यथासंभव क्षायोपशमिकता जान लेनी चाहिये। वीर्य लब्धि वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से होती है। इसी प्रकार से पंडितवीर्य लब्धि बालवीर्य लब्धि, बालपंडितवीर्य लब्धि को भी जानना चाहिये। तात्पर्य यह है कि–पंडित से यहां साधुजन बाल से अविरतिजन, और बालपंडित से देशविरतजन लिये गये हैं। इनको अपने २ वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से अपनी २ वीर्यलब्धि प्रकट होती है।

सम्यग्मिथ्यादर्शनलब्धि सम्यक्त्व का भेद है। इसलिये यह लब्धि मिथ्यात्वकर्म के क्षयोपशम से होती है। सामायिकचारित्रलब्धि, छेदोपस्थापनलब्धि, परिहारविशुद्धिकलब्धि, सूक्ष्म संपरायचारित्रलब्धि और चारित्राचारित्रलब्धि ये सब चारित्रमोहनीय कर्म के क्षयोपशम से होती है इसीलिये इनमें क्षायोपशमिकता है। संयत के कर्मों को निवारण करने के लिये जो अन्तरंग और बहिरंग प्रवृति होती है वह चारित्र है–अर्थात् आत्मिक शुद्ध दशा में स्थिर रहने का प्रयत्न करना ही चारित्र है। परिणाम शुद्धि के तरतम भाव की अपेक्षा और निमित्त भेद से

ગ્દર્શનની પ્રાપ્તિ થાય છે. એજ પ્રમાણે બીજી બધી સૂત્રોક્ત લબ્ધિઓમાં પણ યથાસંભવ ક્ષાયોપશમિકતા સમજી લેવી. વીર્યાન્તરાય કર્મના ક્ષયોપશમથી વીર્યલબ્ધિ પ્રકટ થાય છે. એજ પ્રમાણે પંડિતવીર્ય લબ્ધિ, બાલ વીર્યલબ્ધિ અને બાલપંડિતવીર્ય લબ્ધિને પણ ક્ષાયોપશમિક જ સમજવી જોઇએ. પંડિતપદ અહીં સાધુજનનું, બાલપદ અવિરતયુક્તજનનું અને બાલપંડિતપદ દેશવિરત જનનું વાચક છે. તેમને પોતપોતાના વીર્યાન્તરાય કર્મનો ક્ષયોપશમ થવાથી પંડિતવીર્ય લબ્ધિ આદિની પ્રાપ્તિ થાય છે.

સમ્યગ્મિથ્યાદર્શન લબ્ધિ સમ્યકત્વના એક ભેદ રૂપ છે. તેથી મિથ્યાત્વ કર્મના ક્ષયોપશમથી તે લબ્ધિની પ્રાપ્તિ થાય છે, સામાયિક ચારિત્ર લબ્ધિ, છેદોપસ્થાપનલબ્ધિ, પરિહાર વિશુદ્ધિક લબ્ધિ, સૂક્ષ્મ સંપરાય લબ્ધિ અને ચારિત્રાચારિત્ર લબ્ધિ, આ બધી લબ્ધિઓની પ્રાપ્તિ ચારિત્રમોહનીય કર્મના ક્ષયોપશમને લીધે થાય છે, તેથી તેમનામાં ક્ષાયોપશમિકતા સમજવી જોઇએ. કર્મોનું નિવારણ કરવા માટે સંયત જે અન્તરંગ અને બહિરંગ પ્રવૃત્તિ કરે છે તેનું નામ ચારિત્ર છે. એટલે કે આત્મિક શુદ્ધ દશામાં સ્થિર રહેવાનો પ્રયત્ન કરવો તેનું જ નામ ચારિત્ર છે. પરિણામ શુદ્ધિના

चारित्र के सामायिक आदि पांच विभाग किये गये हैं। विशेष खुलासा इस प्रकार से है-सामायिक का अर्थ है सम्यक्त्व, ज्ञान, संयम और तप इनके साथ ऐक्य स्थापित करने की अर्थात् समभाव में स्थिर रहने के लिये सम्पूर्ण अशुद्ध प्रवृत्तियों को त्याग करने की आत्मपरिणामों की वृत्ति बनाये रखना। इस सामायिक चारित्र की प्राप्ति सामायिक चारित्र लब्धि है। सामायिक चारित्र में रागद्वेष का निरोध कर के सब आवश्यक कर्तव्यों में समता बनाये रखना ही होता है। इसके नियतकाल और अनियतकाल ऐसे दो भेद होते हैं। जिनका समय निश्चित है ऐसे स्वाध्याय आदि नियतकाल सामायिक है। और जिन का समय नियत नहीं है ऐसे ईर्यापथ आदि अनियतकाल सामायिक है। जैसे अहिंसाव्रत सब व्रतों का मूल है, वैसे ही सामायिक चारित्र सब चारित्रों का मूल है। मैं "सर्वसावद्ययोग से जीवन पर्यंत विरत हूँ" इस एक व्रत में समावेश हो जाने से एक सामायिक व्रत माना है और वही एक व्रत पांच रूप से विवक्षित होने के कारण छेदोपस्थापना चारित्र कहलाता है। प्रथम दीक्षा लेने के बाद विशिष्ट श्रुत का अभ्यास

તરતમ ભાવની અપેક્ષાએ અને નિમિત્ત ભેદની અપેક્ષાએ ચારિત્રના સામાયિક આદિ પાંચ વિભાગ પાડવામાં આવ્યા છે. તેનું વધુ સ્પષ્ટીકરણ આ પ્રમાણે છે– સમ્યકત્વ, જ્ઞાન, સંયમ અને તપની સાથે ઐકય સ્થાપિત કરવાની–એટલે કે સમભાવમાં સ્થિર રહેવાને માટે સમસ્ત અશુદ્ધ પ્રવૃત્તિઓનો ત્યાગ કરવાની આત્મપરિણામોની વૃત્તિ રાખવી તેનું નામ સામાયિક છે આ સામાયિક ચારિત્રની પ્રાપ્તિનું નામ સામાયિક ચારિત્ર લબ્ધિ છે. સામાયિક ચારિત્રની આરાધનામાં રાગદ્વેષનો નિરોધ કરીને સઘળાં આવશ્યક કર્તવ્યોમાં સદા સમભાવ જ રાખવો પડે છે. તેના નિયતકાળ અને અનિયતકાળ રૂપ બે ભેદો છે જેમનો સમય નિશ્ચિત છે એવાં સ્વાધ્યાય આદિને નિયતકાળ સામાયિક કહે છે. જેમનો સમય નિયત નથી એવા ઇર્યાપથ આદિને અનિયતકાળ સામાયિક કહે છે. જેમ અહિંસાવ્રતને સઘળાં વ્રતોનું મૂળ માનવામાં આવે છે, એજ પ્રમાણે સામાયિક ચારિત્રને સઘળાં ચારિત્રોનું મૂળ માનવામાં આવે છે. "હું જીવનપર્યન્ત સર્વ સાવદ્યયોગોથી વિરત થઉં છું" આ એક વ્રતમાં સમાવેશ થઇ જવાને કારણે સામાયિક વ્રતને એક જ વ્રત ગણવામાં આવ્યું છે. અને એજ એક વ્રત પાંચ રૂપે વિવક્ષિત થવાને કારણે છેદોપસ્થાપના ચારિત્ર કહેવાય છે. પ્રથમ દીક્ષા લીધા બાદ વિશિષ્ટ

कर चुकने पर विशेष शुद्धि के निमित्त जो जीवन पर्यन्त पुनः दीक्षा ली जाती है एवं प्रथम ली हुई दीक्षा का छेद करके फिर नयेसिरे से जो दीक्षा का आरोपण किया जाता है-वह छेदोपस्थापन चारित्र है। जिसमें खास विशिष्ट प्रकार के तपः प्रधान आचार का पालन किया जाता है वह परिहारविशुद्धि चारित्र है। जिसमें क्रोध आदि कषायों का तो उदय नहीं होता, सिर्फ लोभ का अंश अति सूक्ष्मरूप में रहता है, वह सूक्ष्म संपराय चारित्र है। यह चारित्र केवल दशवें गुणस्थान में होता है। चारित्राचारित्र का नाम देश चारित्र है। यह अनन्तानुबन्धी आदि अष्टविध कषाय के क्षयोपशम आदि से आविर्भूत होता है। तथा सर्वविरति रूप चारित्र अनन्तानुबन्धी आदि १२ प्रकार के कषाय के क्षायोपशम आदि से आविर्भूत होता है। दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य इनकी लब्धि वीर्यान्तराय कर्म के दानान्तराय आदि के क्षायोपशम आदि से होती है,,। श्रोत्रेन्द्रिय से लेकर जो स्पर्शनेन्द्रिय तक की लब्धियां कही हैं। वे द्रव्येन्द्रिय की अपेक्षा से नहीं कही हैं, किन्तु भावेन्द्रिय की अपेक्षा से कही हैं।

શ્રુતનો અભ્યાસ કરી લીધા બાદ વિશેષશુદ્ધિને નિમિત્તે જે જીવનપર્યન્તની પુનઃ દીક્ષા લેવામાં આવે છે અને પ્રથમ લીધેલી દીક્ષાનો છેદ કરીને (ત્યાગ કરીને) ફરી નવેસરથી જે દીક્ષાનું આરોપણ કરવામાં આવે છે, તેનું નામ છેદોપસ્થાપન ચારિત્ર છે. જેમાં વિશિષ્ટ પ્રકારના તપઃ પ્રધાન આચારનું પાલન કરવામાં આવે છે, તેનું નામ પરિહારવિશુદ્ધિ ચારિત્ર છે. જે ચારિત્રમાં ક્રોધાદિ કષાયોનો ઉદય રહેતો નથી, પરન્તુ લોભનો અંશ અતિ સૂક્ષ્મ પ્રમાણમાં બાકી રહી જાય છે એવા ચારિત્રનું નામ સૂક્ષ્મ સંપરાય ચારિત્ર છે. દસમાં ગુણસ્થાનમાં જ આ ચારિત્રનો સદ્ભાવ રહે છે અંશતઃ ચારિત્ર અથવા દેશચારિત્રને ચારિત્રાચારિત્ર કહે છે. અનન્તાનુબંધી આદિ આઠ પ્રકારના કષાયના ક્ષયોપશમ આદિથી તેનો આવિર્ભાવ થાય છે. સર્વવિરતિ રૂપ ચારિત્ર અનન્તાનુબંધી આદિ ૧૨ પ્રકારના કષાયના ક્ષયોપશમ આદિથી આવિર્ભૂત (પ્રકટ) થાય છે. અન્તરાય કર્મના પ્રકાર રૂપ દાનાન્તરાય, લાભાન્તરાય, ભોગાન્તરાય, ઉપભોગાન્તરાય અને વીર્યાન્તરાય કર્મના ક્ષયોપશમથી અનુક્રમે દાનલબ્ધિ, લાભલબ્ધિ, ઉપભોગલબ્ધિ અને વીર્યલબ્ધિની પ્રાપ્તિ થાય છે. એજ પ્રમાણે શ્રોત્રેન્દ્રિયથી લઈને સ્પર્શેન્દ્રિયલબ્ધિ પર્યન્તની પણ પાંચ લબ્ધિઓ કહી છે. આ પાંચે લબ્ધિઓ દ્રવ્યેન્દ્રિયની અપેક્ષાએ કહી નથી, પણ ભાવે-

सम्प्रति पारिणामिकं नाम निरूपयति—

मूलम्—से किं तं पारिणामिए ? पारिणामिए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—साइपारिणामिए य अणाइपारिणामिए य। से किं तं साइपारिणामिए? साइपारिणामिए अणेगविहे पण्णत्ते तं जहा—जुण्णसुरा, जुण्णगुलो जुण्णघयं जुण्णतंदुला चेव। अब्भा य अब्भरुक्खा संझागंधव्वणगरा य ॥१॥ उक्कावाया दिसादाहा

भावेन्द्रियलब्धि उपयोग के भेद से दो प्रकार की है। इनकी लब्धि मति ज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, चक्षुर्दर्शनावरण, अचक्षुर्दर्शनावरण, के क्षयोपशम से होती है। तात्पर्य यह है कि मतिज्ञानावरणीय कर्म आदि का क्षायोपशम जो एक प्रकार का आत्मिक परिणाम है वह लब्धीन्द्रिय हैं। और लब्धि, निवृत्ति, तथा उपकरण इन तीनों के मिलने से जो रूपादि विषयों का सामान्य और विशेषबोध होता है वह उपयोगेन्द्रिय है। मतिज्ञान तथा चक्षु अचक्षुर्दर्शनरूप है। इसी प्रकार आचाराङ्ग, आदि १२ अंगों को धारण करने रूप तथा वाचकरूप पर्याये हैं वे सब श्रुतज्ञान प्रभव हैं। श्रुतज्ञान, श्रुतज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से होता है। इसलिये ये आचाराङ्गधर आदि पर्यायें क्षायोपशमिक हैं। इस प्रकार क्षायोपशम निष्पन्न क्षायोपशमिक भाव का स्वरूप है ॥सू०१५५॥

न्द्रियની અપેક્ષાએ કહી છે ભાવેન્દ્રિયો લબ્ધિ ઉપયોગના ભેદથી બે પ્રકારની છે મતિજ્ઞાનાવરણ, શ્રુતજ્ઞાનાવરણ, ચક્ષુઃદર્શનાવરણ અને અચક્ષુઃદર્શનાવરણના ક્ષયોપશમથી તેમની લબ્ધિ થાય છે. આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે મતિજ્ઞાનાવરણીય કર્મ આદિના ક્ષયોપશમ રૂપ જે એક પ્રકારનું આત્મિક પરિણામ છે, તે લબ્ધીન્દ્રિય રૂપ છે અને લબ્ધિ, નિર્વૃત્તિ તથા ઉપકરણ, આ ત્રણે મળવાથી રૂપાદિ વિષયોનો જે સામાન્ય અને વિશેષ બોધ થાય છે તે ઉપયોગેન્દ્રિય રૂપ છે ઉપયોગેન્દ્રિય મતિજ્ઞાન તથા ચક્ષુ અચક્ષુ દર્શન-રૂપ છે એજ પ્રમાણે આચારાંગ આદિ ૧૨ અંગને ધારણ કરવા રૂપ તથા વાચક રૂપ જે પર્યાયો છે તે શ્રુતજ્ઞાન સ્વરૂપ છે શ્રુતજ્ઞાનાવરણ કર્મના ક્ષયોપશમથી શ્રુતજ્ઞાન પ્રાપ્ત થાય છે, તેથી આચારાંગધર આદિ ૧૨ પર્યાયો પણ ક્ષાયોપશમિક છે. આ પ્રકારનું ક્ષયોપશમ નિષ્પન્ન ક્ષાયોપશમિક ભાવનું સ્વરૂપ છે. ॥સૂ૦૧૫૫॥

गज्जियं विज्जू णिग्घाया जूवया जक्खादित्ता धूमिया महिया रयुग्घाया चंदोवरागा सूरोवरागा चंदपरिवेसा सूरपरिवेसा पडिचंदा पडिसूरा इंदधणू उदगमच्छा कविहसिया अमोहावासा वासधरा गामा णगरा घरा पव्वया पायाला भवणा निरया रयणप्पहा सक्करप्पहा वालुयप्पहा पंकप्पहा धूमप्पहा तमप्पहा तमतमप्पहा सोहम्मे जाव अच्चुए गेवेज्जे अणुत्तरे ईसिप्पभारा परमाणुपोग्गले दुपएसिए जाव अणंतपएसिए। से तं साइपारिणामए। से किं तं अणाइपारिणामए? अणाइपारिणामिए धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए जीवत्थिकाए पुग्गलत्थिकाए अद्धासमए लोए अलोए भवसिद्धिया अभवसिद्धिया। से तं अणाइपारिणामिए। से तं पारिणामिए॥सू०१५६॥

छाया—अथ कोऽसौ पारिणामिकः? पारिणामिको द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-सादिपारिणामिकश्च अनादिपारिणामिकश्च। अथ कोऽसौ सादिपारिणामिकः सादिपारिणामिकः-अनेकविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-जीर्णसुरा जीर्णगुडः जीर्णघृतम् जीर्णतण्डुलाश्चैव। अभ्राणि च अभ्रवृक्षाः संध्या गन्धर्वनगराणि च ॥१॥ उल्कापाताः, दिग्दाहाः, गर्जितं, विद्युत्, निर्घाताः, यूपकाः, यक्षा दीप्तकानि, धूमिका, मिहिका, रजउद्घाताः, चन्द्रोपरागाः, सूर्योपरागाः, चन्द्रपरिवेषाः, सूर्यपरिवेषाः, प्रतिचन्द्राः, प्रतिसूर्याः, इन्द्रधनुः, उदकमत्स्याः, कपिहसितानि, अमोघा, वर्षाणि, वर्षधराः, ग्रामाः, नगराणि, गृहाः, पर्वताः, पातालाः, भवनानि, निरया, रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा, तमस्तःप्रभा, सौधर्मो, यावत् अच्युतः, ग्रैवेयकः, अनुत्तरः, ईषत्प्राग्भारा, परमाणु पुद्गलो, द्विप्रदेशिको, यावत् अनन्तप्रदेशिकः। सएष सादिपारिणामिकः। अथ कोऽसौ अनादिपारिणामिकः? अनादिपारिणामिकः-धर्मास्तिकायः अधर्मास्तिकायः, आकाशास्तिकायः जीवास्तिकायः पुद्गलास्तिकायः अद्धासमयः, लोकः, अलोकः, भवसिद्धिकाः, अभवसिद्धिकाः, सएष अनादि पारिणामिकः। सएष पारिणामिकः॥ सू० १५६॥

टीका- 'से किं तं' इत्यादि-

अथ कोऽसौ पारिणामिकः ? इति शिष्यप्रश्नः । उत्तरयति-पारिणामिकः-परिणमनं=सर्वथाऽपरित्यक्तपूर्वावस्थस्य यद्रूपान्तरेण भवनं स परिणामः, उक्तंच-

"परिणामो ह्यर्थान्तरगमनं न च सर्वथा व्यवस्थानम् ।
न च सर्वथा विनाशः, परिणामस्तद्विदामिष्टः ॥ इति ।

स एव तेन वा निर्वृत्तः परिणामिकः। स सादि पारिणामिकानादि पारिणामिकेति भेद-द्वयविशिष्टः। तत्र सादिपारिणामिकः अनेकविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-जीर्णसुरा, जीर्णगुडो,

---

अब सूत्रकार पारिणामिक भाव का निरूपण करते हैं-

"से किं तं पारिणामिए ?" इत्यादि ।

शब्दार्थः- (से किं तं पारिमाणामिए) हे भदन्त ! पारिणामिक भाव क्या है ?

उत्तर-(पारिणामिए, दुविहे पण्णत्ते) पारिणामिक भाव दो प्रकार का-कहा गया है । (तं जहा) वे प्रकार ये हैं-(साइपारिणमिए य अणाइ पारिणामिए य सादि पारिणामिक और अनादि पारिणामिक । जिसमें द्रव्य की पूर्वअवस्था का तो सर्वथा परित्याग हो नहीं और एक अवस्था से दूसरी अवस्थाएँ होती रहें इसीका नाम परिणमन-परिणाम है । कहा भी है-"परिणामो" इत्यादि यही बात अन्यत्र कही है, कि एक अवस्था से दूसरी अवस्था का होना यही परिणाम है। अर्थात् स्व-रूप में स्थित रहकर उत्पन्न तथा नष्ट होना परिणाम है, सर्वथा व्यवस्थान

હવે સૂત્રકાર પારિણામિક ભાવના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે-

"से किं तं पारिणामिए" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(से किं तं पारिणामिए ?) હે ભગવન્! પારિણામિક ભાવનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર-(पारिणामिए दुविहे पण्णत्ते, तंजहा) પારિણામિક ભાવના નીચે પ્રમાણે બે પ્રકાર કહ્યા છે-(साइ पारिणामिए य अणाइ पारिणामिए य) (૧) સાદિ પારિણામિક અને (૨) અનાદિ પારિણામિક જે પરિણામમાં દ્રવ્યની પૂર્વ અવસ્થાનો સર્વથા પરિત્યાગ થતો ન હોય એવી રીતે એક અવસ્થામાંથી બીજી અવસ્થાઓ થતી રહે, એવા પરિણમનને સાદિપરિણામ કહે છે કહ્યું પણ છે કે-"परिणामो" ઇત્યાદિ એજ વાત બીજી જગ્યાએ પણ આ પ્રમાણે જ કહી છે-એક અવસ્થામાંથી બીજી અવસ્થા રૂપ પરિણમન થવું તેનું નામ પરિણામ છે

या सर्वथा विनाश परिणाम नहीं है। परिणाम का दूसरा नाम पर्याय है। जिस द्रव्य का जो स्वभाव है उसी के भीतर उसका परिणमन-परिवर्तन होता है। जैसे मनुष्य बालक से और युवा युवा से वृद्ध होता है पर वह मनुष्यत्व का परित्याग नहीं करता, वैसे ही प्रत्येक द्रव्य अपनी मर्यादा के भीतर रहता हुआ ही परिवर्तन करता रहता है। वह न तो सर्वथा नित्य है और न सर्वथा क्षणिक ही। नैयायिक आदि भेदवादी दर्शन जो गुण और द्रव्य का सर्वथा-एकान्त-भेद मानते हैं उनके मन्तव्यानुसार द्रव्य तो सर्वथा अविकृत रहता है और गुण उसमें उत्पन्न विनष्ट होते रहते हैं यही वह परिणाम है। तथा बौद्धलोग वस्तुमात्र को क्षणस्थायी और निरन्वय विनाशी मानते हैं, उनके मतानुसार परिणाम का अर्थ उत्पन्न होकर वस्तु का सर्वथा नाश हो जाना ऐसा निकलता है। इन्ही मन्तव्यों का निराकरण करने के निमित्त "न च सर्वथा व्यवस्थानम्" न च सर्वथा विनाशः परिणामः" ऐसा कहा है। अतः 'अर्थान्तरगमनपरिणामः' यही परिणाम का लक्षण युक्ति युक्त है। ऐसा जो परिणाम है वही पारिणामिक है अथवा इस

એટલે કે સ્વરૂપમાં સ્થિત રહિને ઉત્પન્ન તથા નષ્ટ થવું તેનું નામ પરિણામ છે સર્વથા વ્યવસ્થાન અથવા સર્વથા વિનાશને પરિણામ કહી શકાય નહીં પરિણામનું બીજું નામ પર્યાય છે. જે દ્રવ્યનો જે સ્વભાવ છે તે સ્વભાવમાં રહીને જ તેનું પરિણમન (પરિવર્તન) થાય છે. જેમ કે મનુષ્ય બાલકમાંથી યુવાન અને યુવાનમાંથી વૃદ્ધ બને છે, પરન્તુ તે મનુષ્યત્વનો પરિત્યાગ કરતો નથી. એજ પ્રમાણે પ્રત્યેક દ્રવ્ય પોતાની મર્યાદામાં રહીને જ પરિણમન પામતું રહે છે. તે સર્વથા નિત્ય પણ નથી અને સર્વથા ક્ષણિક પણ નથી. નૈયાયિક આદિ ભેદવાદી દર્શન જે ગુણ અને દ્રવ્યનો સર્વથા (એકાન્તતઃ) ભેદ માને છે તેમની માન્યતા પ્રમાણે દ્રવ્ય તો સર્વથા અવિકૃત જ રહે છે, અને તેમાં ગુણની ઉત્પત્તિ તથા વિનાશ થતો રહે છે. તેનું નામ જ પરિણામ છે. બૌદ્ધ મતવાદીઓ વસ્તુ માત્રને ક્ષણસ્થાયી અને નિરન્વય વિનાશી માને છે. તેમના મત પ્રમાણે પરિણામનો અર્થ આ પ્રમાણે થાય છે–"ઉત્પન્ન થઈને વસ્તુનો સર્વથા નાશ થઈ જવો તેનું નામ પરિણામ છે" આ માન્યતાઓનું ખંડન કરવા માટે સૂત્રકારે અહીં આ પ્રકારનું કથન કર્યું છે– "न च सर्वथा विनाशः परिणामः" તેથી "अर्थान्तरगमनपरिणामः" આ પરિણામનું લક્ષણ જ યુક્તિયુક્ત લાગે છે. એવું જે પરિણામ છે, એજ પારિણામિક છે. અથવા તે પરિણામથી જે નિષ્પન્ન છે, તેનું નામ જ પારિણામિક છે.

जीर्णघृतं, जीर्णतण्डुला इति । अत्र जीर्णत्वपरिणामस्य सादित्वात् सादिपारिणामिकता बोध्या सुरादि-द्रव्याणि नव्यजीर्णोभयावस्थयोरप्यनुगतानि । तत्र नव्यतायां निवृत्तायां जीर्णतारूपेण यः परिणामः स सुखावबोधो भवति, अतो जीर्णेति विशेषणविशिष्टाः सुरादयः शब्दा उक्ताः । सुरादिद्रव्याणां तु नव्यावस्थायामपि सादि पारिणामिकत्वमस्त्येव । कारणद्रव्यस्यैव नूतनसुरादिरूपेण परिणमनात्,

---

परिणाम से जो निर्वत्ति (निष्पन्न) है वह पारिणामिक है । (से किं तं साइपारिणामिए ?) हे भदन्त ! सादिपारिणामिक क्या है ?

उत्तर-(साइपारिणामिए अणेगविहे पण्णत्ते) सादि पारिणामिक अनेक प्रकार का कहा गया है । (तं जहा) जैसे-(जुण्णसुरा जुण्णगुलो, जुण्णघयं, जुण्णतंदुला चेव) जीर्णसुरा, जीर्णगुड़, जीर्णघृत, जीर्णतंदुल, सुरा में, गुड़ में घृत में, एवं तंदुलों में जो जीर्णपर्यायरूप परिणाम आया है वह सादि है । क्योंकि जीर्णता के काल की पूर्वकोटि ज्ञात हो सकती है । सुरादि द्रव्य नव्य पर्याय और जीर्ण पर्याय इन दोनों अवस्थाओं में भी अनुगतरूप से रहते हैं । जब नव्य-नवीनता-पर्याय इनसे निवृत्त हो जाती है-तब जीर्णता पर्याय आजाती है यह बात सभी के लिये स्पष्ट है । इसी कारण सूत्रकार ने यहां जीर्ण विशेषण से विशिष्ट इन सुरा आदि शब्दों को रखा है ।

शंका-यह बात हम मानते हैं कि सुरादिक द्रव्यों में जीर्ण अवस्था में सादि पारिणामिकता है क्योंकि इनमें जीर्णअवस्था के समय की

પ્રશ્ન—(से किं तं साइ पारिणामिए ?) હે ભગવન્ ! સાદિ પારિણામિકનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર—(साइपारिणामिए अणेगविहे पण्णत्ते) સાદિ પારિણામિક ભાવ અનેક પ્રકારનો કહ્યો છે. (तंजहा) જેમ કે-(जुण्णसुरा, जुण्णगुलो, जुण्णघयं, जुण्णतंदुला चेव) જીર્ણસુરા, જીર્ણગોળ, જીર્ણ ઘી, અને જીર્ણતંદુલ. જૂના સુરામાં, ગોળમાં, ઘીમાં અને તંદુલમાં જે જીર્ણપર્યાય રૂપ પરિણામ આવ્યું છે, તે સાદિ પારિણામિક ભાવ રૂપ છે, કારણ કે જીર્ણતાના કાળની પૂર્વ કોટિ જાણી શકાય છે. સુરાદિ દ્રવ્ય નવી પર્યાય અને જીર્ણપર્યાય, એ બન્ને અવસ્થાઓમાં પણ અનુગત રૂપે રહે છે જ્યારે નવીનતા પર્યાય આ દ્રવ્યોમાંથી નિવૃત્ત થઈ જાય છે ત્યારે તે દ્રવ્યોમાં જીર્ણતા પર્યાય આવી જાય છે, આ વાત સૌને માટે સ્પષ્ટ છે. તે કારણે જ સૂત્રકારે જીર્ણ વિશેષણ યુક્ત સુરાદિક દ્રવ્યોને સાદિ પારિણામિક ભાવના દૃષ્ટાન્તો રૂપે અહીં પ્રકટ કરેલ છે.

શંકા—એ વાત તો અમે માની લઇએ છીએ કે સુરાદિક દ્રવ્યોમાં જીર્ણાવસ્થામાં સાદિ પારિણામિકતા હોય છે, કારણ કે તે દ્રવ્યોમાં જીર્ણ

अन्यथा कार्यानुत्पत्तिः प्रसज्येत । तथा-अभ्राणि=मेघाः । अभ्रवृक्षाः=वृक्षाकारेण परिणतान्यभ्राण्येव । सन्ध्या=कृष्ण नीलाद्याकाशपरिणतिमान् अहोरात्रसन्धि-

पूर्वकोटि ज्ञात हो जाती है । परन्तु इनकी जो नव्य अवस्था है उसमें सादिपारिणामिकता कैसे मानी जा सकती है ? क्योंकि उसके समय की पूर्वकोटि तो ज्ञात नहीं है ?

उत्तर-ऐसी बात नहीं है-क्योंकि नव्य पर्याय के भी समय की पूर्वकोटि ज्ञात हो जाती है । वह इस प्रकार से-कि सुरादिरूप जो नव्य पर्याय है । वह सुरादिजनक कारण द्रव्यों से ही उद्भूत हुई है । अतः उसमें भी सादि पारिणामिकता है । तात्पर्य कहने का यह है, कि सुरादि जनक जो द्रव्य हैं वे ही सुरादिरूप परिणाम से परिणमित हो जाते हैं अतः यह सुरादिरूप पर्याय उनकी सादि पर्याय हैं और जब यह सादि-रूप पर्याय उनमें से कालान्तर में निवृत्त हो जाती है तब उसकी निवृत्ति होते ही उनमें जीर्णतारूप पर्याय आ जाती है । इस प्रकार सुरादिद्रव्यों में नव्यता जीर्णता सादि परिणाम है । यदि यह बात न मानी जावे कि उपादान कारण द्रव्य ही कार्यरूप से परिणमित होता है तो फिर कार्य की उत्पत्ति ही नहीं हो सकती है ।

અવસ્થાના સમયની પૂર્વકોટિ જ્ઞાત થઇ જાય છે, પરન્તુ તેમની જે નવ્ય (નવીન) અવસ્થા છે, તેમાં સાદિ પારિણામિકતા કેવી રીતે માની શકાય તેમ છે ? તેના સમયની પૂર્વકોટિ તો જ્ઞાત હોતી નથી ?

ઉત્તર—એવી વાત શકય નથી, કારણ કે નવીન પર્યાયના સમયની પૂર્વ કોટિ પણ જ્ઞાત થઈ જાય છે. તે આ પ્રકારે સમજવું-સુરાદિ દ્રવ્ય રૂપ જે નવીન પર્યાય છે તે સુરાદિજનક કારણ દ્રવ્યોમાંથી જ ઉદ્ભવી હોય છે. તેથી તેમાં પણ સાદિ પારિણામિકતાનો સદ્ભાવ રહે છે. આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે સુરાદિજનક જે દ્રવ્યો છે તેઓ જ સુરાદિરૂપ પરિણામમાં પરિણમિત થઈ જાય છે, તેથી તેમની આ સુરાદિરૂપ પર્યાય સાદિ પર્યાય રૂપ જ છે, અને જ્યારે કાલાન્તરે આ સાદિ રૂપ પર્યાય તે દ્રવ્યોમાંથી નિવૃત્ત થઈ જાય છે, ત્યારે તેની નિવૃત્તિ થતાં જ તે દ્રવ્યોમાં જીર્ણતા રૂપ પર્યાય આવી જાય છે, આ પ્રકારે સુરાદિ દ્રવ્યોમાં નવીનતા (નવ્યતા) અને જીર્ણતા સાદિ પરિણામ રૂપ જ ગણી શકાય છે, જો એ વાત માનવામાં ન આવે કે ઉપા-દાનકારણ દ્રવ્ય જ કાર્ય રૂપે પરિણમિત થાય છે, તો કાર્યની ઉત્પત્તિ જ થઇ શકે નહીં

तथा-(अब्भया य अब्भरुक्खा, संझा, गंधव्वणगरा य) अभ्र (मेघ),

कालः। गन्धर्व नगराणि=उत्तमोत्तम प्रासादोपशोभित नगराकृतितया परिणतास्तथाविधनभःपुद्गलाः। उल्कापाताः=आकाशप्रदेशतस्तेजः पुञ्जपतनानि। दिग्दाहाः=अन्यतरस्यां दिशि नभःप्रदेशे ज्वालामालाकरालित ज्वलनावभासनानि। तथा-गर्जितं विद्युत् एतौ प्रसिद्धावेव। निर्घाताः=विद्युत्पाताः। तथा-यूपकाः=शुक्लपक्षीयदिनत्रयावस्थायिनः संध्याच्छेदावरणा बालचद्रेति प्रसिद्धाः=॥उक्तंचावश्यके-

"संझाच्छेयावरणो य जूयओ सुक्कदिण तिन्नि" ॥

छाया—संध्याच्छेदावरणश्च यूपकः शुक्ले दिनानि त्रीणि-इति ॥

तथा-यक्षादीप्तानि=नभसि दृश्यमानाः पिशाचाकृतयोऽग्नयः धूमिका=नभसि रूक्षः प्रविरलो धूम इव दृश्यमानो 'धूमिका' इत्युच्यते। महिका-जलकणयुता

तथा-(अब्भा य अब्भरुक्खा, संझा गंधव्वणगरा य)अभ्र-मेघ अभ्रवृक्ष-वृक्षाकार में परिणमित हुए मेघ, संध्या-अहोरात्रका संधिकाल कि जिसमें आकाश कृष्ण, नीलादिरूप में परिणत हो जाता है। गंधर्व-नगर-उत्तमोत्तम प्रासाद से शोभित नगर की आकृति जैसे बने हुए आकाश पुद्गल (उक्कावाया) उल्कापात आकाश प्रदेश से गिरता हुआ तेजः पुंज (दिसा दाहा) दिग्दाह-किसी एक दिशाकी ओर आकाश में जलती हुई अग्नि का आभास-(दिखलाई देना) होना (गज्जिया) गर्जित मेघ की गर्जना, (विज्जू) विजली (णिग्घाया) निर्घात-बिजली का पात (जूवया) यूपक-शुक्लपक्षसंबन्धी तीन दिनका बालचन्द्र, (जक्खादित्ता) यक्षदीप्त-अकाश में दिखलाई देती हुई पिशाचाकृति जैसी अग्नि (धूमिया) धूमिका-आकाश में रूक्ष एवं विरल दिखलाई पड़ती हुई धूमकी तरह एक प्रकार की धूमस, (महिया) महिका-जलकण युक्त धूम जैसी भाप

અભ્રવૃક્ષ (વૃક્ષાકારે પરિણુમિત થયેલા મેઘ) સંધ્યા (દિવસ અને રાત્રિનો સંધિકાળ કે જેમાં આકાશ કૃષ્ણ, નીલાદિ રૂપે પરિણુમિત થઇ જાય છે), ગંધર્વનગર (ઉત્તમોત્તમ પ્રાસાદોથી શોભતા નગરની આકૃતિ જેવાં બનેલાં આકાશપુદ્ગલો), (उक्कावाया) ઉલ્કાપાત (આકાશખંડમાં સરકતો તેજઃપુંજ), (दिसादाहा) દિગ્દાહ (કોઈ એક દિશામાં આકાશની અંદર પ્રજ્વલિત અગ્નિનો આભાસ થવો), (गज्जिया) મેઘની ગર્જના, (विज्जू) વિજળી, (णिग्घाया), નિર્ઘાત (વિજલી પડવી), (जूवया) યૂપક (શુકલ પક્ષનો ત્રણ દિવસનો બાલચન્દ્ર), (जक्खादित्ता) યક્ષાદીપ્ત (આકાશમાં દેખાતી પિશાચાકૃતિ જેવી અગ્નિ), (धूमिया) ધૂમિકા (ધૂમસ) (महिया) મહિકા (જલકણ યુક્ત ધુમાડા જેવો ઘાટ ધૂમસ)

सैव। रजउद्घाताः=दिक्षु रजसामुत्थानानि। चन्द्रोपरागाः सूर्योपरागाः-चन्द्रसूर्याणां राहुग्रहणानि। अर्धतृतीयद्वीपसमुद्रवर्तिनोऽनेके चन्द्रसूर्याः सन्ति, अतः 'चन्द्रोपरागाः सूर्योपरागाः' इति पदद्वयं बहुत्वेन निर्दिष्टम्। तथा-चन्द्रपरिवेषाः सूर्यपरिवेषाः-चन्द्रसूर्ययोः परितोवलयाकारपुद्गलपरिणामाः। प्रतिचन्द्रः प्रतिसूर्यः-उत्पातसूचकं द्वितीयचन्द्रादिदर्शनम्। इन्द्रधनुः=नभसि नीलपीतादिवर्णविशिष्टं धनुराकारं यद् दृश्यते तदिन्द्रधनुरित्युच्यते। इदं च लोके प्रसिद्धम्। उदकमत्स्याः=इन्द्रधनुः खण्डानि। कपिहसितानि=यदा कदाचिन्नभसि जायमाना अत्युग्रशब्दाः श्रूयन्ते, त एव कपिहसितान्युच्यन्ते। अमोघाः=सूर्यस्य उदयास्तसमये तत्किरणैः समुत्पद्यमाना रेखाविशेषाः। वर्षाणि भरतादीनि। वर्षधराः=

कुहरा-(रयुग्घाया) रजउद्घात-दिशाओं में धूलि का उड़ना, (चंदोवराग-चन्द्रोपराग-चंद्रग्रहण (सूरोवरागा) सूर्यग्रहण (चंदपरिवेसा, सूरपरिवेसा) चन्द्र परिवेष-चन्द्रमा की चारों ओर गोलाकार में परिणत हुए पुद्गल परमाणुओं का चक्रवाल (गोल मंडल) सूर्य की चारों ओर गोल चूड़ी के जैसे आकार में परिणत हुए पुद्गल परमाणुओं का चक्रवाल (पडिचंदा) प्रतिचंद्र (पडिसूरा) प्रतिसूर्य-उत्पात सूचक द्वितीय चंद्र की ओर सूर्यका दिखलाई पड़ना (इंदधणू) इन्द्रधनुष-आकाश में नीलपीत आदि वर्ण विशिष्ट जो धनुष के आकार दिखलाई देता है वह कि जिसे भाषा में "मदान" कहते हैं (उदगमच्छा) उदक मत्स्य इन्द्र धनुष के खंड (कविहसिया) कपिहसित-यदा कदाचित्-जब कभी आकाश में सुनाई पड़नेवाले अत्युग्रशब्द (अमोहा) अमोघ सूर्य के उदय और अस्त के समय में उसकी किरणोंद्वारा उत्पन्न रेखा विशेष-(वासा) भरत

(रयुग्घाया) રજોદ્ઘાત (દિશાઓમાં ધૂળ ઉડવી તે) (चंदोवराग) ચન્દ્રોપરાગ (ચન્દ્રગ્રહણ), (सूरोवराग) સૂર્યગ્રહણ, (चंदपरिवेसा, सूरपरिवेसा) ચન્દ્રપરિવેષ (ચન્દ્રને ફરતું ગોળાકારમાં પરિણત થયેલા પુદ્ગલપરમાણુઓનું ગોળાકારનું મંડળ), સૂર્યપરિવેષ (સૂર્યની આસપાસ ચારે દિશામાં ગોળ ચૂડલીના આકારે પરિણત થયેલાં પુદ્ગલપરમાણુઓનું ગોળાકારનું મંડળ (पडिचंद) પ્રતિચન્દ્ર (ઉત્પાત સૂચક બીજા ચન્દ્રનું દેખાવું), (पडिसूरा) પ્રતિસૂર્ય (ઉત્પાત સૂચક બીજા સૂર્યનું દેખાવું), (इंदधणू) મેઘધનુષ (આકાશમાં ચોમાસામાં જે સપ્તરંગી કામઠી દેખાય છે તે), (उदगमच्छा) ઉદક મત્સ્ય (મેઘધનુષ્યના ખંડ), (कविहसिया) કપિહસિત (આકાશમાંથી કયારેક સંભળાતા અતિઉગ્ર કડાકા), (अमोहा) અમોઘ (સૂર્યોદય અને સૂર્યાસ્ત વખતે સૂર્યના કિરણો દ્વારા ઉત્પન્ન થતી

हिमवदादयः पर्वताः। ग्रामादयः प्रसिद्धाः। पातालाः=पातालकलशाः। शेषा भवनाद्यनन्तप्रदेशिकान्ताः प्रसिद्धा एव। ननु वर्षधरादयः शाश्वताः, न ते कदाचिदपि स्वकीयं भावं मुञ्चन्ति, तत्कथं पुनरेषां सादिपारिणामिकत्वमुक्तम्? इतिचेदाह–वर्षधरादीनां शाश्वतत्वं तदाकारमात्रेणैवावतिष्ठमानत्वाद् बोध्यम्। पुद्गला-

---

आदि क्षेत्र (वासधरा) हिमवत् आदि पर्वत (गामा, णगरा, घरा, पव्वया, पायाला) ग्राम, नगर, घर, पर्वत, पातालकलश (भवणा) भवन (निरया) नरक, (रयणप्पहा) रत्नप्रभा (सक्करप्पहा) शर्कराप्रभा (वालुयप्पहा) वालुका प्रभा (पंकप्पहा) पंक प्रभा (धूमप्पहा) धूमप्रभा (तमप्पहा) तमःप्रभा (तम तमप्पहा) तमस्तमः प्रभा (सोहम्मे) सौधर्म (जावअच्चुए) यावत् अच्युत (गेवेज्जे अणुत्तरे) ग्रैवेयक, अनुत्तर, (इसिप्पब्भारा) ईषत्प्राभारा (परमाणुपोग्गले) परमाणुपुद्गल (दुपएसिए) द्विप्रदेशिक (जाव अणंत पएसिए) यावत् अनंतप्रदेशिक (से तं साइपारिणामिए) इस प्रकार वह यह सादि पारिणामिक है।

शंका–वर्षधरादिक तो शाश्वत हैं। क्योंकि ये कभी भी अपने अस्तित्व का परित्याग नहीं करते हैं। फिर इन्हें सादि परिणामवाला कैसे सूत्रकारने कहा है?

उत्तर–वर्षधरादिकों में जो शाश्वतपना कहा है वह "वे अपने आकार मात्र से ही सदा अवस्थित रहते हैं" इसी ख्याल से कहा गया

રેખાવિશેષ), (वासा) ભરત આદિ ક્ષેત્ર. (वासधरा) હિમવાન્ આદિ પર્વત, (गामा, णगरा, घरा, पव्वया पायाला) ગ્રામ, નગર, ઘર, પર્વત, પાતાળકલશ, (भवणा) ભવન, (निरया) નરક, (रयणप्पभा) રત્નપ્રભા, (सक्करप्पभा) શર્કરાપ્રભા, (वालुयप्पभा) વાલુકાપ્રભા, (पंकप्पहा) પંકપ્રભા, (धूमप्पहा) ધૂમપ્રભા, (तमप्पहा) તમઃપ્રભા, (तमतमप्पहा) તમસ્તમઃપ્રભા, (सोहम्मे जाव अच्चुए) સૌધર્મથી લઈને અચ્યુત પર્યન્તના કલ્પો, (गेवेज्जे अणुत्तरे) ગ્રૈવેયકો, અનુત્તર વિમાનો, (इसिप्पब्भारा) ઇષત્પ્રાગ્ભારા, (परमाणु पोग्गले) પરમાણુ પુદ્ગલ (दुपएसिए जाव अणंतपएसिए) દ્વિપ્રદેશિકથી લઈને અનંતપ્રદેશિક પર્યન્તના સ્કંધો, (से तं साइ पारिणामिए) આ બધાંને સાદિપારિણામિક ભાવ રૂપ સમજવા.

શંકા–વર્ષધર આદિ પર્વતો તો શાશ્વત છે, કારણ કે તેઓ કદી પણ પોતપોતાના અસ્તિત્વનો પરિત્યાગ કરતા નથી છતાં સૂત્રકારે તેમને સાદિ પારિણામિક શા કારણે કહ્યા છે?

ઉત્તર–વર્ષધર આદિકોમાં જે શાશ્વતતા પ્રકટ કરવામાં આવી છે તેનું કારણ એ છે કે તેઓ તેમના આકાર માત્રની અપેક્ષાએ જ સદા અવસ્થિત

स्तु असंख्येयकालादूर्ध्वं परिणमन्त एव। साम्प्रति केषु वर्षधरादिषु ये पुद्गलाः सन्ति ते चोत्कृष्टतोऽसंख्येयकालादूर्ध्वमपगमिष्यन्त्येव (१) उक्तंचात्रविषयेऽत्रैवसूत्रे-" णेगमववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कालओ कियच्चिरं होइ? एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं" इति। सू० ६ पृ. ११३ मुद्रित पृष्ठ ५७ सू० ८५ तत्स्थाने अपरेऽपरे पुद्गलाः संगताः सन्तस्तद्भावेन परिणमिष्यन्ति, अतः पुद्गलपरिवृत्तिमादाय वर्षधरादीनां सादि पारिणामिकत्वं न विरुध्यते इति नास्ति दोषः। एतदुपसंहरन्नाह-स एष सादिपारिणामिक इति। द्वितीयभेदविषये शिष्यः पृच्छति-अथ कोऽसौ अनादिपारिणामिकः? इति। उत्तरयति-अनादिपारिणामिकः-धर्मास्तिकायाद्य-

---

है। इसका-तात्पर्य यह थोडे ही हो सकता है कि उनमें परिणमन नहीं होता है। वर्षधरादिक पौद्गलिक हैं। पुद्गल असंख्यातकाल के बाद परिणमन करते हैं। इस समय के वर्षधरादिको में जो पुद्गल हैं वे वहां ज्यादा से ज्यादा असंख्यात काल तक रहेंगे-बाद में वहां से च्युत हो जावेंगे। यह बात इसी सूत्र के ८५ वें सूत्र में पहिले स्पष्ट ही की जा चुकी है कि नैगमव्यवहारनयसंमत आनुपूर्वीद्रव्य कालकी अपेक्षा आनुपूर्वी रूप में जघन्य से एक द्रव्यको आश्रित करके एक समय तक और उत्कृष्ट से असंख्यात काल तक रहते हैं। च्युत हुए उन पुद्गलों के स्थान में और दूसरे दूसरे पुद्गल संगत होकर उस रूप से परिणम जावेंगे। इसलिये पुद्गल की इस परिवृत्ति-परिणमन को लेकर के वर्षधरादिकों में सादि पारिणामिकता का कथन विरुद्ध नहीं पडता है। (से किं तं अणाइपारिणामिए) हे भदन्त! वह अनादि पारिणामिक क्या है?

રહે છે. તેનો અર્થ એવો થતો નથી કે તેમનામાં પરિણમન જ થતું નથી તેમનામાં પરિણમન તો જરૂર થતું જ રહે છે વર્ષધરાદિક પૌદ્ગલિક છે પુદ્ગલો તો અસંખ્યાત કાળ બાદ પરિણમન કરે જ છે. હાલના વર્ષધર આદિકોમાં જે પુદ્ગલો હાલમાં છે. તેઓ ત્યાં વધારેમાં વધારે અસંખ્યાત કાળ સુધી રહેશે, ત્યાર બાદ તેઓ ત્યાંથી ચવીને જશે આગળ ૮૫માં સૂત્રમાં આ વાત સ્પષ્ટ કરવામાં આવી છે તે સૂત્રમાં એવું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે કે "નૈગમવ્યવહાર નયસંમત આનુપૂર્વી દ્રવ્ય કાળની અપેક્ષાએ એક દ્રવ્યની દૃષ્ટિએ વિચાર કરવામાં આવે તો ઓછામાં ઓછા એક સમય સુધી અને વધારેમાં વધારે અસંખ્યાત કાળ સુધી આનુપૂર્વી દ્રવ્ય રૂપે રહે છે." ચવેલા થયેલા તે પુદ્ગલોને સ્થાને અન્ય પુદ્ગલો સંગત થઈને તે રૂપે પરિણમી જશે તેથી પુદ્ગલોની આ પરિવૃત્તિ (પરિણમન)ને કારણે વર્ષધરાદિકોમાં પણ સાદિ પારિણામિકતાનું કથન વિરૂદ્ધ પડતું નથી.

भवसिद्धिकान्तो बोध्यः। धर्मास्तिकायादयोऽनादिकालादेव तत्तद्रूपतया परिणताः सन्ति, अत एषामनादिपारिणामिकत्वम्। एतदुपसंहरन्नाह–स एषोऽनादिपारिणामिक इति। पारिणामिको भावः प्ररूपित इति सूचयितुमाह–स एष पारिणामिक इति ॥सू० १५६॥

अथ सान्निपातिकं नाम प्ररूपयति—

मूलम्–से किं तं सण्णिवाइए? सण्णिवाइए एएसिं चेव उदइय उवसमिय–खइय–खओव समियपारिणामियाणं भावाणं दुगसंजोएणं तियसंजोएणं चउक्कसंयोएणं पंचगसंजोएणं जे

उत्तर–(अणाइपारिणामिए धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, जीवत्थिकाए, पुग्गलत्थिकाए, अद्धासमए, लोए, अलोए, भवसिद्धिया अभवसिद्धिया) अनादि पारिणामिक धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, अद्धासमय, लोक, अलोक भवसिद्धिक अभवसिद्धिक है। (से तं अणाइपारिणामिए) यह अनादि पारिणामिक है। तात्पर्य इसका यह है कि धर्मास्तिकायादिक अनादि काल से ही उस २ रूप से परिणत हैं। इसलिये इनमें अनादि पारिणामिकता है। (से तं पारिणामिए) इसप्रकार पारिणामिक भाव का निरूपण है ॥ सू० १५६ ॥

પ્રશ્ન–(से किं तं अणाइ पारिणामिए?) હે ભગવન્! અનાદિ પારિણામિક ભાવનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર–(अणाइ पारिणामिए धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, जीवत्थिकाए, पुग्गलत्थिकाए, अद्धासमए, लोए, अलोए, भवसिद्धिया, अभवसिद्धिया) ધર્માસ્તિકાય, અધર્માસ્તિકાય, આકાશાસ્તિકાય, જીવાસ્તિકાય, પુદ્ગલાસ્તિકાય, અદ્ધાસમય (કાળ), લોક, અલોક, ભવસિદ્ધિક અને અભવસિદ્ધિક, આ ભાવો અનાદિ પારિણામિક છે ધર્માસ્તિકાય આદિ અનાદિ કાળથી જ ધર્માસ્તિકાય આદિ રૂપે પરિણત હોવાને કારણે તેમને અનાદિ પારિણામિક ભાવો કહ્યા છે. (से तं अणाइ पारिणामिए) આ પ્રકારનું અનાદિ પારિણામિક ભાવનું સ્વરૂપ છે. (से तं पारिणामिए) સાદિ પારિણામિક અને અનાદિ પારિણામિક ભાવોનું નિરૂપણ સમાપ્ત થવાથી પારિણામિક ભાવનું કથન અહીં પૂરું થાય છે. ॥सू०१५६॥

निप्फज्जइ सव्वे से सन्निवाइए नामे। तत्थ णं दस दुयसंजोगा, दस तियसंजोगा, पंच चउक्कसंजोगा, एगे पंचगसंजोगे ॥सू.१५७॥

छाया—अथ कोऽसौ सान्निपातिकः? सान्निपातिकः-एतेषामेव औदयिकौपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकानां भावानां द्विकसंयोगेन त्रिकसंयोगेन चतुष्कसंयोगेन पञ्चकसंयोगेन यो निष्पद्यते सर्वः स सान्निपातको नाम। तत्र खलु दश द्विकसंयोगाः, दश त्रिकसंयोगाः, पञ्चचतुष्कसंयोगाः, एकः पञ्चकसंयोगः॥सू.१५७॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि—

अथ कोऽसौ सान्निपातिकः? इति शिष्यप्रश्नः। उत्तरयति-सान्निपातिकः-सन्निपतनम्=औदयिकादिभावानां द्व्यादिसंयोगेन संयोजनं सन्निपातः, स एव तेन निर्वृत्तो वा सान्निपातिकः। अमुमेवार्थमाह-सूत्रकारः-'एएसिं चेव' इत्यादिना। एतेषामेव औदयिकादीनां पञ्चानां भावानां द्विकत्रिकचतुष्कपञ्चकसंयोगेन जो यो भावः सम्पद्यते स सर्वोऽपि भावः सान्निपातिको बोध्यः। स सान्निपातिकभाव एव सान्निपातिकनामेत्युच्यते। तत्र हि दश द्विकसंयोगा भवन्ति, दश त्रिकसंयोगाः, पञ्च चतुष्कसंयोगाः, एकः पञ्चकसंयोग इति ॥सू० १५७॥

अब सूत्रकार सान्निपातिक भावकी प्ररूपणा करते हैं-

"से किं तं सण्णिवाइए" इत्यादि।

शब्दार्थ-(से किं तं सण्णिवाइए?) हे भदन्त! वह सान्निपातिक भाव क्या है? (सण्णिवाइए एएसिंचेव उदइए उवसमिय-खइय-खओवसमिय पारिणामियाणं भावाणं दुगसंजोएणं तिय संजोएणं चउक्कसंजोएणं पंचकसंजोएणं जे निप्फज्जइ)

उत्तर-इन औदयिक आदि पांच भावों के दो के, तीन के चार के और पांच के संयोग से जो जो भाव निष्पन्न होते हैं वे सब भी भाव सान्निपातिक भाव है। इस सान्निपातिक भावों में दश भाव द्विकसंयोगज,

---

હવે સૂત્રકાર સાન્નિપાતિક ભાવની પ્રરૂપણા કરે છે—

"से किं तं सण्णिवाइए" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(से किं तं सण्णिवाइए?) હેભગવન્! પૂર્વપ્રકાન્ત સાન્નિપાતિક ભાવનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(सण्णिवाइए एएसिं चेव उदइए उवसमिय-खइय-खओवसमिय-पारिणामियाणं भावाणं दुगसंजोएणं, तियसंजोएणं, चउक्कसंजोएणं, पंचकसंजोएणं जे निप्फज्जइ) ઔદયિક, ઔપશમિક, ક્ષાયિક, ક્ષાયોપશમિક, અને પારિણામિક, આ પાંચ ભાવોના દ્વિકસંયોગ, ત્રિકસંયોગ ચતુષ્કસંયોગ અને પંચક સંયોગથી જે ભાવો નિષ્પન્ન થાય છે તે બધા ભાવોને સાન્નિપાતિક ભાવો કહે છે આ રીતે દ્વિકસંયોગ જન્ય ૧૦ ભાવો, ત્રિકસંયોગ જન્ય ૧૦

द्विकादि पञ्चकान्ताः संयोगा ससंख्यका उक्ताः। तत्र द्विकादिसंयोगाः के? इति तान् प्रदर्शयितुमाह—

मूलम्—एत्थ णं जे ते दस दुगसंयोगा ते णं इमे—अत्थि णामे उदइयउवसमियनिप्फण्णे? अत्थि णामे उदइयखाइगनिप्फण्णे२, अत्थि णामे उदइयखओवसमियनिप्फण्णे३, अत्थि णामे उदइयपारिणामियनिप्फण्णे४, अत्थि णामे उवसमियखइयनिप्फण्णे५, अत्थि णामे उवसमिय खओवसमियनिप्फण्णे६, अत्थि णामे उवसमियपारिणामियनिप्फण्णे७, अत्थि णामे खइयखओवसमियनिप्फण्णे८, अत्थि णामे खइयपारिणामियनिप्फण्णे९, अत्थि णामे खओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे१०। कयरे से णामे उदइय उवसमियनिप्फण्णे? उदइय उवसमियनिप्फण्णे उदइएत्ति मणुस्से उवसंता कसाया। एसणं से णामे उदइय उवसमियनिप्फण्णे॥१॥ कयरे से णामे उदइयखाइयनिप्फण्णे? उदइयखाइयनिप्फण्णे—उदइएत्ति मणुस्से खइयं सम्मत्तं। एस णं से णामे उदइयखइयणिप्फण्णे॥२॥ कयरे से णामे उदइयखओवसमियनिप्फण्णे? उदइयखओवसमियनिप्फण्णे—उदइएत्ति मणुस्से खओवसमियाइं इंदियाइं। एस णं से णामे उदइयखओवसमियनिप्फण्णे॥३॥ कयरे से

दशभाव त्रिकसंयोगज, पांचभाव चतुष्क संयोग, और एक भाव पंचक संयोगज बनते हैं। इस प्रकार ये २६ सान्निपातिक भाव हैं।॥सू० १५७॥

ભાવો, ચતુષ્કસંયોગ જન્ય પાંચ ભાવો અને પંચકસંયોગ જન્ય એક ભાવ નિષ્પન્ન થાય છે. આ પ્રકારે કુલ ૨૬ સાન્નિપાતિક ભાવો થાય છે. ॥સૂ૦૧૫૭॥

णामे उदइयपारिणामियनिप्फण्णे? उदइयपारिणामियनिप्फण्णे-उदइएत्ति मणुस्से पारिणामिए जीवे। एस णं से णामे उदइय-पारिणामियनिप्फण्णे ॥४॥ कयरे से णामे उवसमियखइयनिप्फ-ण्णे? उवसमियखइयनिप्फण्णे–उवसंता कसाया-खइयं सम्मत्तं। एस णं से णामे उवसमियखइयनिप्फण्णे॥५॥ कयरे से णामे उवसमियखओवसमियनिप्फण्णे? उवसमियखओवसमियनि-निप्फण्णे–उवसंता कसाया खओवसमियाइं इंदियाइं एस णं से णामे उवसमियखओवसमियनिप्फण्णे॥६॥ कयरे से णामे उवसमियपारिणामियनिप्फण्णे? उवसमियपारिणामियनिप्फ-ण्णे–उवसंता कसाया पारिणामिए जीवे। एस णं से णामे उव-समियपारिणामियनिप्फण्णे॥७॥ कयरे से णामे खइयखओव-समियनिप्फण्णे? खइयखओवसमियनिप्फण्णे–खइयं सम्मत्तं खओवसमियाइं इंदियाइं। एस णं से णामे खइयखओवसामिय-निप्फण्णे॥८॥ कयरे से णामे खइयपारिणामियनिप्फण्णे? खइय-पारिणामियनिप्फण्णे–खइयं सम्मत्तं पारिणामिए जीवे। एस णं से णामे खइयपारिणामियनिप्फण्णे॥९॥ कयरे से णामे खओवस-मियपारिणामियनिप्फण्णे? खओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे-खओवसमियाइं इंदियाइं पारिणामिए जीवे। एस णं णामे खओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे ॥१०॥ ॥सू० १५८॥

छाया—अत्र खलु ये ते दश द्विकसंयोगास्ते खलु इमे-अस्ति नाम औद-यिकौपशमिकनिष्पन्नम् ॥१॥ अस्ति नाम औदयिकक्षायिकनिष्पन्नम् ॥२॥ अस्ति नाम औदयिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम् ॥३॥ अस्ति नाम औदयिकपारिणामिक-

निष्पन्नम्॥४॥ अस्ति नाम औपशमिकक्षायिकनिष्पन्नम्॥५॥ अस्ति नाम औपशमिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम्॥६॥ अस्ति नाम औपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्॥७॥ अस्ति नाम क्षायिक क्षायोपशमिकनिष्पन्नम्॥८॥ अस्ति नाम क्षायिकपारिणामिकनिष्पन्नम्॥९॥ अस्ति नाम क्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्॥१०॥ कतरत्तन्नाम औदयिकौपशमिकनिष्पन्नम्? औदयिकमिति मानुष्यम्, उपशान्ताः कषायाः। एतत् खलु तन्नाम औदयिकौपशमिकनिष्पन्नम्॥१॥ कतरत्तन्नाम औदयिकक्षायिकनिष्पन्नम्? औदयिकक्षायिकनिष्पन्नम् औदयिकमितिमानुष्यं, क्षायिकं सम्यक्त्वम्। एतत् खलु तन्नाम औदयिकक्षायिकनिष्पन्नम्॥२॥ कतरत्तन्नाम औदयिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम्? औदयिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम्–औदयिनमिति मानुष्यं क्षायोपशमिकानि इन्द्रियाणि। एतत् खलु तन्नाम औदयिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम्॥३॥ कत्तन्नामऔदयिकपरिणामिकनिष्पन्नम्? औदयिकपारिणामिक निष्पन्नम् औदयिकमिति मनुष्यम् पारिणामिको जीवः। एतत् खलु तन्नाम औदयिकपारिणामिकनिष्पन्नम्॥४॥ कतरत् तन्नाम औपशमिकक्षायिकनिष्पन्नम्? औपशमिकक्षायिकनिष्पन्नम्–उपशान्ताः कषायाः क्षायिकं सम्यक्त्वम्। एतत् खलु तन्नाम औपशमिकक्षायिकनिष्पन्नम्॥५॥ कतरत् तन्नाम औपशमिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम्? औपशमिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम्–उपशान्ताः कषायाः क्षायोपशमिकानि इन्द्रियाणि। एतत् खलु तन्नाम औपशमिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम्॥६॥ कतरत् तन्नाम औपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्? औपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्–उपशान्ताः कषायाः, पारिणामिको जीवः। एतत् खलु तन्नाम औपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्॥७॥ कतरत् तन्नाम क्षायिक क्षायोपशमिकनिष्पन्नम्? क्षायिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम्–क्षायिकं सम्यक्त्वं क्षायोपशमिकानि इन्द्रियाणि। एतत् खलु तन्नाम क्षायिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम्॥८॥ कतरत् तन्नाम क्षायिकपारिणामिकनिष्पन्नम्? क्षायिकपारिणामिकनिष्पन्नम्–क्षायिकं सम्यक्त्वं पारिणामिको जीवः। एतत् खलु तन्नाम क्षायिकपारिणामिकनिष्पन्नम्॥९॥ कतरत् तन्नाम क्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्? क्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्–क्षायोपशमिकानि इन्द्रियाणि, पारिणामिको जीवः। एतत् खलु तन्नाम क्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्॥१०॥सू०१५८॥

टीका—'एत्थ णं' इत्यादि—

अत्र=सान्निपातिके भावे दश द्विकसंयोगा उक्ताः, ते दश द्विकसंयोगाः

दो दो भावों के संयोग से जो १० भाव निष्पन्न होते हैं। सूत्रकार उन्हें कहते हैं–"एत्थ णं जे ते" इत्यादि

બબ્બે ભાવોના સંયોગથી જે ૧૦ ભાવો નિષ્પન્ન થાય છે, તેમને સૂત્રકાર પ્રકટ કરે છે—"एत्थणं जे ते" ઇત્યાદિ—

भङ्गा-'अस्त्ति नाम औदयिकौपशमिकनिष्पन्नम्' इत्यारभ्य 'अस्ति नाम 'अस्ति नाम क्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्' इत्यन्ता बोध्याः। एषु औदयिकेन सह औपशमिकादि भावचतुष्टयसंयोगात् चत्वारो भङ्गाः, औपशमिकेन सह क्षायिकादिभावत्रयस्य संयोगात् त्रयो भङ्गाः, क्षायिकेण सह क्षायोपशमिकादि भावद्वयसंयोगात् द्वौ भङ्गौ, तथा-क्षायोपशमिकेन सह

शब्दार्थ-(एत्थ णं जे ते दस दुगसंयोगा, ते णं इमे) यहां जो दो दो भावों के संयोग से भाव निष्पन्न-होते हैं वे इस प्रकार से है-(अत्थिणामे उदइयउवसमियनिप्फण्णे ?) पहिला औदयिक और औपशमिक के संयोग से निष्पन्न भाव एक, (अत्थिणामे उदइयखाइय निप्फण्णे २) दूसरा औदयिक और क्षायिक के संयोग से निष्पन्न भाव (अत्थिणामे उदइयखओवसमनिप्फण्णे) तीसरा-औदयिक और क्षायोपशमिक के संयोग से निष्पन्न भाव (अत्थिणामे उदइयपारिणामियनिप्फण्णे) चौथा औदयिक और पारिणामिक के संयोग से निष्पन्न भाव (अत्थिणामे उवसमियखइय निप्फण्णे) पांचवा-औपशमिक और क्षायिक के संयोग से निष्पन्न भाव (अत्थिणामे उवसमिय खओवसमियनिप्फण्णे) छठा-औपशमिक और क्षायोपशमिक के संयोग से निष्पन्न भाव (अत्थिणामे उवसमियपारिणामियनिप्फण्णे) सातवां-औपशमिक और पारिणामिक के संयोग से निष्पन्नभाव (अत्थिणामे खइय, खओवसमियनिप्फण्णे) आठवां-क्षायिक और क्षायोपशमिक के संबन्ध से निष्पन्नभाव (अत्थिणामे खइय पारि-

---

शब्दार्थ-(एत्थ णं जे ते दस दुगसंयोगा, तेणं इमे) બબ્બે ભાવોના સંયોગથી જે દસ ભાવો નિષ્પન્ન થાય છે તે નીચે પ્રમાણે છે-(अत्थिणामे उदइय उवसमिय निप्फण्णे) (१) औदयिक अने औपशमिकना संयोगथी निष्पन्न भाव (अत्थिणामे उदइयखाइयनिप्फण्णे२) (२) औदयिक अने क्षायिकना संयोगथी निष्पन्न थयेलो भाव (अत्थिणामे उदइय खओवसमनिप्फण्णे३) (३) औदयिक अने क्षायोपशमिकना संयोगथी निष्पन्न थयेलो भाव (अत्थिणामे उदइय पारिणामियनिप्फण्णे) (४) औदयिक अने पारिणामिकना संयोगथी निष्पन्न भाव (अत्थिणामे उवसमियखइयनिप्फण्णे) (५) औपशमिक अने क्षायिकना संयोगथी निष्पन्न भाव (अत्थिणामे उवसमियखओवसमियनिप्फण्णे) (६) औपशमिक अने क्षायोपशमिकना संयोगथी निष्पन्न थयेलो भाव (अत्थिणामे उवसमियपारिणामियनिप्फण्णे) (७) औपशमिक अने पारिणामिकना संयोगथी निष्पन्न भाव (अत्थिणामे खइयखओवसमियनिप्फण्णे) (८) क्षायिक

पारिणामिकभावस्य संयोगादेको भङ्गः। इति दश भङ्गा बोध्याः। इत्थं सामान्यतो दश भङ्गान् ज्ञात्वा विशेषतस्तान् जिज्ञासितुकामः शिष्यः पृच्छति–कतरत् तन्नाम औदयिकौपशमिकनिष्प-नम्–औदयिकौपशमिकभावेन यन्निष्पद्यते तन्नाम किम्? इति। उत्तरयति–औदयिकौपशमिकनिष्पन्नमेवं विज्ञेयम्–औदयिकमितिमानुष्यम्,

णामियनिप्फण्णे) ९वां-क्षाइक और पारिणामिक के संयोग से निष्पन्न भाव (अत्थिणामे खओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे) १० वां-क्षायोपशमिक और पारिणामिक के संयोग से निष्पन्न हुआ भाव। इस प्रकार ये औदायिक के साथ औपशमिक आदि चार भावों के संयोग से ४ भंग, औपशमिक के साथ क्षायिक आदि तीन भंगो के संयोग से तीनभंग, क्षायिक के साथ क्षायोपशमिक आदि दो भावों के संयोग से दो भंग तथा क्षायोपशमिक के साथ पारिणामिक भाव के संयोग से एक भंग ये दश भंग हो जाते हैं। इस प्रकार सामान्य से दश भंगों को जानकर विशेषरूप से शिष्य पूछता है। कि (कयरे से णामे उदइय उवसमिय निप्फण्णे? हे भदन्त! औदयिक एवं औपशमिक भाव के संयोग से जो सान्निपातिक भावरूप भंग निष्पन्न होता है वह कैसा है?

उत्तर–(उदइयउवसमियनिप्फण्णे) औदयिक एवं औपशमिक

અને ક્ષયોપશમિકના સંયોગથી નિષ્પન્ન ભાવ (अत्थिणामे खइय पारिणामियनिप्फण्णे) (૯) ક્ષાયિક અને પારિણામિકના સંયોગથી નિષ્પન્ન ભાવ (अत्थिणामे खओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे) (૧૦) ક્ષાયોપશમિક અને પારિણામિકના સંયોગથી નિષ્પન્ન ભાવ આ પ્રકારે ઔદયિકની સાથે ઔપશમિક આદિ ચારના સંયોગથી ૪ ભંગ, ઔપશમિક ભાવની સાથે ક્ષાયિક આદિ ત્રણ ભાવના સંયોગથી ૩ ભંગ, ક્ષાયિકભાવની સાથે ક્ષાયોપશમિક આદિ બે ભાવના સંયોગથી ૨ ભંગ તથા ક્ષાયોપશમિકની સાથે પારિણામિક ભાવના સંયોગથી એક ભંગ બને છે આ રીતે દ્વિકસંયોગી કુલ ૧૦ ભંગ બને છે.

આ પ્રકારે આ ભંગોનું સામાન્ય કથન કરીને હવે સૂત્રકાર દરેક ભંગના સ્વરૂપનું વિવેચન કરે છે–

પ્રશ્ન–(कयरे से णामे उदइयउवसमियनिप्फण्णे?) હે ભગવન્! ઔદયિક અને ઔપશમિક ભાવના સંયોગથી જે સાન્નિપાતિક ભાવ રૂપ ભંગ નિષ્પન્ન થાય છે, તેનું સ્વરૂપ કેવું હોય છે?

उपशान्ताः कषायाः, इति। अयं भावः–औदयिके भावे मनुष्यत्वं=मनुष्यगतिरुत्पद्यते। उपलक्षणमिदम्–तिर्यगादिगतिजातिशरीरनामादिकर्मणामपि, तेषामप्यत्र संभवात्। औपशमिके भावे तु कषाया उपशान्ता भवन्ति। इदमप्युदाहरणमात्रम्–दर्शनमोहनीयनोकषायमोहनीयावपि औपशमिके भावे समुत्पद्येते। एतदुपसंहरन्नाह–'एस णं' इत्यादि। एतत्=अनन्तरोक्तं, 'खलु' इति वाक्यालङ्कारे, तत्–प्रसिद्धम् औदयिकौपशमिकनिष्पन्नं नाम बोध्यमिति प्रथमद्विकयोगे यदिदमुक्तं तद् विवक्षामात्रम्। न पुनरीदृशो भङ्गः क्वचिज्जीवे संभवति तथाहि यस्य

भाव के संयोग से जो सान्निपातिक भावरूप भंग उत्पन्न होता है वह ऐसा है–(उदइएत्तिमणुस्से उवसंता कसाया) औदयिकभाव में मनुष्यत्व-मनुष्यगति–उपशांत कषाय यहां "मणुस्से" यह पद उपलक्षण है, इससे तिर्यगादि चारों गतियां, जाति और शरीरनामादिकर्मों का भी ग्रहण हुआ है। क्योंकि यहां पर उनका भी सद्भाव पाया जाता है। औपशमिकभाव में कषाय उपशान्त होती है। सो यह भी–उदाहरण मात्र है। क्योंकि औपशमिक भाव में दर्शनमोहनीय और नो कषायमोहनीय इन दोनों का भी उपशम रहता है। (एस णं से णामे उदइयउवसमियनिप्फण्णे) इस प्रकार यह औदयिकौपशमिक-नाम का प्रथम सान्निपातिकभावरूप भंग है। इस प्रथम भंगरूप सान्निपातिक भाव में मनुष्यगति उपशांत कषाय ऐसा जो कहा है वह केवल विवक्षामात्र है। क्योंकि ऐसा सान्निपातिक भाव किसी भी जीव में

ઉત્તર–(उदइयउवसमियनिप्फण्णे) ઔદયિક અને ઔપશમિક ભાવના સંયોગથી જે સાન્નિપાતિક ભાવરૂપ ભંગ ઉત્પન્ન થાય છે તે આ પ્રકારનો છે–(उदइएत्ति मणुस्से उवसंता कसाया) ઔદયિક ભાવમાં મનુષ્યત્વ–મનુષ્યગતિ અને ઔપશમિકભાવમાં ઉપશાન્ત કષાયને ગણાવી શકાય. અહીં 'મનુષ્યગતિ' આ પદ ઉદાહરણ રૂપે વપરાયેલું હોવાથી તેના દ્વારા તિર્યંચ આદિ ચારે ગતિઓ, જાતિ અને શરીરનામાદિ કર્મોને પણ ગ્રહણ કરવામાં આવેલ છે. કારણ કે અહીં તેમનો પણ સદ્ભાવ રહે છે ઔપશમિક ભાવમાં કષાય ઉપશાન્ત હોય છે આ વાત પણ ઉદાહરણ રૂપે જ આપવામાં આવી છે, કારણ કે ઔપશમિક ભાવમાં દર્શન મોહનીય અને નોકષાયમોહનીય, આ બન્ને પ્રકારના કર્મોનો પણ ઉપશમ રહે છે. (एसणं से णामे उदइय उवसमियनिप्फण्णे) આ પ્રકારનો આ ઔદયિકૌપશમિક નામનો પ્રથમ સાન્નિપાતિક ભાવ રૂપ ભંગ છે. આ પ્રથમ ભંગમાં "મનુષ્યગતિ અને ઉપશાન્ત કષાય" આ પ્રકારનું જે કથન કરવામાં આવ્યું છે, તે કથન માત્ર વિવક્ષારૂપ

जीवस्य औदयिकी मनुष्यगतिः, औपशमिकाः कषायाः भवन्ति, तस्य क्षायोपशमिकानीन्द्रियाणि पारिणामिकं जीवत्वं चापि भवन्ति। कस्यचित्तु क्षायिकं सम्यक्त्वमपि संभवति। एवं नवमभङ्गातिरिक्तसर्वेषु भङ्गेषु बोध्यम्। नवमो भङ्गस्तु सिद्धविषयो बोध्यः। सिद्धस्य क्षायिकं सम्यक्त्वं पारिणामिकं तु जीवत्वमित्येतद् भावद्वयं भवति। इतः परो न कोऽपि भावो भवति। तस्मात् सिद्धस्यायमेक एव भङ्गो भवतीति बोध्यम्। नवमातिरिक्ता नव भङ्गास्तु प्ररूपणामात्रमेव। यतः सिद्धाति-

---

संभवित नहीं होता है। जिस जीव को मनुष्यगति है और कषाय उपशमित हैं सो इस प्रकार से उसके औदयिक और औपशमिक इन दो भावों के संयोग से निष्पन्न औदयिकौपशमिक नाम का प्रथम सान्निपातिक भाव माना जाता तब कि जब उसके और दूसरे भाव नहीं होते। औदयिकौपशमिकभाव के साथ वहां क्षायोपशमिक भाव रूप इन्द्रियां पारिणामिक भाव रूप जीवत्व भी है। किसी २ जीव को इस औदयिकौपशमिक के साथ क्षायिकसम्यक्त्व भी संभवित होता है इस प्रकार का विचार नौवें-भंग के सिवाय समस्त भंगों में जानना चाहिये। क्योंकि जो नौवां भंग है वह सिद्ध भगवान् की अपेक्षा से है। सिद्ध भगवान् में क्षायिक सम्यक्त्व और पारिणामिक भाव रूप जीवत्व रहता है। इनके अतिरिक्त और भाव वहां नहीं रहते हैं। इसलिये सिद्ध में यह नौवां भंगरूप एक सान्निपातिक भाव ही है।

જ છે, કારણ કે એવો સાન્નિપાતિક ભાવ કોઈ પણ જીવમાં સંભવિત હોતો નથી જે જીવમાં મનુષ્યગતિ છે અને કષાય ઉપશમિત છે, આ પ્રકારે તેના ઔદયિક અને ઔપશમિક, આ બન્ને ભાવોના સંયોગથી નિષ્પન્ન ઔદયિકૌપશમિક નામનો પ્રથમ સાન્નિપાતિક ભાવ તો ત્યારે જ માની શકાય કે જ્યારે તે જીવમાં અન્ય કોઇ ભાવનો સદ્ભાવ જ ન હોય ઔદયિકૌપશમિક ભાવની સાથે ત્યાં ક્ષાયોપશમિક ભાવ રૂપ ઇન્દ્રિયો અને પારિણામિક ભાવ રૂપ જીવત્વનો પણ સદ્ભાવ રહે છે. કોઇ કોઈ જીવમાં આ ઔદયિકૌપશમિકની સાથે ક્ષાયિક સમ્યકત્વ પણ સંભવિત હોય છે. આ પ્રકારનો વિચાર નવમાં ભંગ સિવાયના સમસ્ત ભંગોમાં સમજવો જોઈએ, કારણ કે જે નવમો ભંગ છે તે સિદ્ધ ભગવાનની અપેક્ષાએ ગ્રહણ કરવાનો છે. સિદ્ધ ભગવાનમાં ક્ષાયિક સમ્યકત્વ અને પારિણામિક ભાવ રૂપ જીવત્વનો સદ્ભાવ રહે છે. તે સિવાયના અન્ય ભાવોનો તેમનામાં સદ્ભાવ હોતો નથી તેથી જ સિદ્ધ જીવોમાં નવમાં ભંગ રૂપ એક સાન્નિપાતિક ભાવનો સદ્ભાવ કહ્યો છે તે સિવાયના જે નવ

रिक्तानामन्येषां जीवानां न्यूनतोऽपि औदयिकी गतिः क्षायोपशमिकानीन्द्रियाणि पारिणामिकं तु जीवत्वम्, इत्येतद् भावत्रयं लभ्यते एवेति बोध्यम्। सू० १५८॥

इसके अतिरिक्त और जो नौ भंग हैं वे केवल प्ररूपणा मात्र ही हैं। क्योंकि सिद्धों के सिवाय जितने भी संसारी जीव हैं, उनको कम से कम तीन भाव तो होते ही हैं। जिस गति में वे हैं एक तो वह, तथा इन्द्रियां और जीवत्वगति औदयिक भाव है। इन्द्रियां क्षायोपशमिक भाव है और जीवत्व पारिणामिक भाव है।

भावार्थ–सूत्रकारने दो भावों के संयोग होने पर जो दश सान्निपातिक भाव होते हैं उनके विषय में इस सूत्रद्वारा विवेचन किया है। इसमें जहां पर औदयिक भाव प्रत्येक संयोग में प्रधान रूप से रहता है, और शेष औपशमिक आदि में से एक २ छूटता चला जाता है वह पहिला द्वि भाव संयोगी भेद होता है। इसके चार भंग बनाये गये हैं। उनमें औदयिक औपशमिक-सान्निपातिक भाव नाम का पहिला भंग है। जैसे यह मनुष्य उपशांत कषाय है। अर्थात् यह मनुष्य उपशान्त क्रोधी यावत् मनुष्य उपशान्त लोभी है– यहां पर उपशांत क्रोध होने से तो औपशमिक भाव और मनुष्य कहने से मनुष्यगति कर्म के उदय से

ભંગો છે તેમનો ઉલ્લેખ તો માત્ર પ્રરૂપણાની અપેક્ષાએ જ કરવામાં આવ્યો છે, કારણ કે સિદ્ધ જીવો સિવાયના જે સંસારી જીવો છે તે જીવોમાં તો ઓછામાં ઓછા ત્રણ ભાવો અવશ્ય હોય છે. જે ગતિમાં તેમનો સદ્ભાવ છે તે ગતિ તથા ઇન્દ્રિયો અને જીવત્વગતિ ઔદયિક ભાવ છે ઇન્દ્રિયો ક્ષાયોપશમિક ભાવ રૂપ અને જીવત્વ પારિણામિક ભાવ રૂપ છે.

ભાવાર્થ–બબ્બે ભાવોનો સંયોગ થવાથી જે દસ સાન્નિપાતિક ભાવો નિષ્પન્ન થાય છે, તેમના વિષયમાં સૂત્રકારે આ સૂત્રમાં વિવેચન કર્યું છે. પહેલા ચાર દ્વિભાવ સંયોગી સાન્નિપાતિક ભાવોમાં ઔદયિક ભાવ પ્રધાન રૂપે રહે છે. ઔદયિક ભાવની સાથે ઔપશમિકથી લઈને પારિણામિક પર્યન્તના ચાર ભાવોનો સંયોગ કરીને પહેલા ચાર ભંગ (ભાંગાઓ) બને છે. તેમાં ઔદયિક અને ઔપશમિક ભાવોના સંયોગથી પહેલો સાન્નિપાતિક ભાવ રૂપ ભંગ બન્યો છે જેમ કે...આ મનુષ્ય ઉપશાન્ત કષાય છે. એટલે કે આ મનુષ્ય ઉપશાન્ત ક્રોધી, ઉપશાન્ત માની, ઉપશાન્ત માયી અને ઉપશાન્ત લોભી છે. આ પ્રકારનું કથન કરવાથી પહેલો સાન્નિપાતિક ભાવ આ પ્રકારે ગ્રહણ થાય છે અહીં ક્રોધ ઉપશાન્ત થયેલો હોવાથી ઔપશમિક ભાવનો, અને મનુષ્ય

औदयिक भाव घटित होता है। इसी प्रकार से मनुष्य उपशांत मानी, मनुष्य उपशांत मायी और मनुष्य उपशांत क्रोधी इन इन वचनों में भी घटित कर लेना चाहिये। औदयिक क्षायिक सान्निपातिक नाम का दूसरा भंग है–इसका दृष्टान्त इस प्रकार सें जानना चाहिये कि जैसे यह मनुष्य क्षीणकषायी है। औदयिक क्षायोपशमिक नाम का तीसरा सान्निपातिक भंग है जैसे मनुष्य पंचेन्द्रिय है। औदयिक पारिणामिक नाम का चौथा सान्निपातिक भंग है जैसे मनुष्य जीव हैं। जहां पर औदयिक भाव को छोड़ कर औपशमिक भाव के साथ क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक भावों का संयोग कर भंग बनाये जाते हैं वहां ५वां ६ ठा और सातवां ये सान्निपातिक भाव बनते हैं। उनमें औपशमिक क्षायिक यह सान्निपातिक नाम का पहिला भंग है। जैसे यह उपशांत लोभी दर्शन मोहनीय के क्षीण होजाने से क्षायिक सम्यग्दृष्टि है। औपशमिक क्षायिक नामका दूसरा भंग है जैसे यह उपशांत मानी आभिनिबोधिक ज्ञानी है। औपशमिक पारिणामिक नाम का तीसरा भंग है–जैसे उपशान्त मायाकषाय वाला भव्य। जहां पर औपशमिक

કહેવાથી મનુષ્ય ગતિ કર્મના ઉદયને લીધે ઔદયિક ભાવનો સદ્ભાવ બતાવ્યો છે. એજ પ્રમાણે ઉપશાન્ત માની મનુષ્ય, ઉપશાન્ત માયી મનુષ્ય અને ઉપશાન્ત લોભી મનુષ્ય, આ ત્રણે પ્રકારના કથનમાં પણ ઔદયિક અને ઔપશમિક ભાવોના સંયોગથી નિષ્પન્ન સાન્નિપાતિક ભાવ જ ઘટિત થઈ જાય છે. "ઔદયિક ક્ષાયિક સાન્નિપાતિક ભાવ" નામના બીજા ભંગનું દૃષ્ટાન્ત નીચે પ્રમાણે છે–"આ મનુષ્ય ક્ષીણ કષાય છે."

"ઔદયિક ક્ષાયોપશમિક" નામના ત્રીજા સાન્નિપાતિક ભંગનું દૃષ્ટાન્ત–"મનુષ્ય પંચેન્દ્રિય છે." ઔદયિક પારિણામિક નામના ચોથા સાન્નિપાતિક ભંગનું દૃષ્ટાન્ત–"મનુષ્ય જીવ છે."

ઔપશમિક ભાવની સાથે અનુક્રમે ક્ષાયિક, ક્ષાયોપશમિક અને પારિણામિક ભાવના સંયોગથી પાંચમાં, છઠ્ઠા અને સાતમાં સાન્નિપાતિક ભાવ રૂપ ત્રણ ભંગો નિષ્પન્ન થાય છે.

"ઔપશમિક ક્ષાયિક" નામના પાંચમાં સાન્નિપાતિક ભંગનું દૃષ્ટાન્ત–"આ ઉપશાન્ત લોભી દર્શનમોહનીય કર્મનો ક્ષય થઈ જવાથી ક્ષાયિક સમ્યગ્દૃષ્ટિ છે."

"ઔપશમિક ક્ષાયોપશમિક" નામના છઠ્ઠા સાન્નિપાતિક ભંગનું દૃષ્ટાન્ત–"આ ઉપશાન્ત માની આભિનિબોધિક જ્ઞાની છે."

"ઔપશમિક પારિણામિક" નામના સાતમાં સાન્નિપાતિક ભંગનું દૃષ્ટાન્ત–"ઉપશાન્ત માયા કષાયવાળો ભવ્ય."

भाव भी छोड़दिया जाता है। वहां क्षायिकभाव के साथ क्षायोपशमिक और पारिणामिक भावका संबन्ध होनेपर तीसरा द्विभाव संयोगी भेद होता है-उसके दो भंग इसप्रकार से हैं-उनमें क्षायिक क्षायोपशमिक प्रथम सान्निपातिकभाव है और दूसरा क्षायिक पारिणामिक है। इनमें प्रथम का दृष्टान्त क्षायिक सम्यग्दृष्टि श्रुतज्ञानी है और दूसरे का दृष्टान्त क्षीणकषायी भव्य है। जहांपर क्षायिकभाव का भी परित्याग हो जाता है केवल क्षायोपशमिक पारिणामिक रूप संयोग रहता है, वहां पर एक ही क्षायोपशमिक पारिणामिक ऐसा भंग होता है। इसका दृष्टान्त-जैसे अवधिज्ञानी जीव है। इसप्रकार ये द्विभाव संयोगी भंग मिलकर १० हैं। इनमें जो नौवां भंग है कि जिसका नाम क्षायिक पारिणामिक है वह सिद्धजीवों की अपेक्षा से है और वही शुद्धनिर्दोष है बाकी के अवशिष्ट नौ भंग विवक्षा मात्र है-क्योंकि उनमें अन्य भावों का भी संबन्ध घटित होता है। जैसे यह मनुष्य उपशांत क्रोधी है यहां पर मनुष्य को मनुष्यगतिनाम कर्मको उदय है इसलिये औदयिक भाव है। क्रोध का उपशम है, इसलिये औपशमिक भाव है।

ક્ષાયિક ભાવની સાથે અનુક્રમે ક્ષાયોપશમિક અને પારિણામિક ભાવનો સંયોગ કરવાથી આઠમાં અને નવમાં સાન્નિપાતિક ભાવ રૂપ બે ભંગો બને છે.

"ક્ષાયિક ક્ષાયોપશમિક" નામના આઠમાં સાન્નિપાતિક ભંગનું દૃષ્ટાન્ત-ક્ષાયિક સમ્યગ્દૃષ્ટિ શ્રુતજ્ઞાની અને 'ક્ષીણકષાયી ભવ્ય' ક્ષાયિક પારિણામિક નામના નવમાં સાન્નિપાતિક ભંગના દૃષ્ટાન્ત રૂપ છે.

ક્ષાયોપશમિક ભાવ અને પારિણામિકભાવના સંયોગથી ૧૦ મો સાન્નિપાતિક ભંગ બને છે. "અવધિજ્ઞાની જીવ," આ ભંગના દૃષ્ટાન્ત રૂપ છે.

આ પ્રકારે બે ભાવોના સંયોગથી કુલ ૧૦ ભંગ બને છે. તેમાં જે નવમો ભંગ (ક્ષાયિક પારિણામિક નામનો ભંગ) છે, તે સિદ્ધ જીવોને લાગૂ પડે છે. આ ભંગ જ ખરી રીતે સંભવી શકે છે તેથી આ ભંગ જ શુદ્ધ નિર્દોષ ભંગ રૂપ છે. બાકીના જે નવ ભંગો છે તેમનું તો અહીં વિવક્ષા માત્ર રૂપે જ (પ્રરૂપણા કરવા માટે જ) કથન કરવામાં આવ્યું છે, કારણ કે તે ભાવોમાં અન્ય ભાવોનો સંબંધ પણ શક્ય હોય છે જેમ કે "આ મનુષ્ય ઉપશાન્ત ક્રોધી છે." અહીં મનુષ્યમાં મનુષ્યગતિ નામકર્મનો ઉદય છે, તેથી ઔદયિક ભાવનો સદ્ભાવ છે, અને ક્રોધનો ઉપશમ હોવાથી ઔપશમિક ભાવનો પણ સદ્ભાવ છે. પરન્તુ સાથે સાથે તે મનુષ્યમાં બીજા ભાવો પણ

अथ त्रिकयोगान्निरूपयितुमाह—

मूलम्—तत्थ णं जे ते दस तिगसंजोगा ते णं इमे—अत्थि णामे उदइयउवसमियखइयनिप्फण्णे१ अत्थि णामे उदइयउवसमियखओवसमियनिप्फण्णे२, अत्थि णामे उदइय उवसमियपारिणामियनिप्फण्णे३, अत्थि णामे उदइय खइयखओवसमियनिप्फण्णे४, अत्थि णामे उदइयखइयपारिणामियनिप्फण्णे५, अत्थि णामे उदइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे६, अत्थि णामे उवसमियखइयखओवसमियनिप्फण्णे७, अत्थि णामे उवसमियखइयपारिणामियनिप्फण्णे८, अत्थि णामे उवसमिय खओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे९, अत्थि णामे खइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे१०। कयरे से णामे उदइयउवसमियखइयनिप्फण्णे? उदइयउवसमियखइयनिप्फण्णे—उदइएत्ति मणुस्से उवसंता कसाया खइयं सम्मत्तं। एस णं से णामे उदइयउवसमियखइयनिप्फण्णे॥१॥ कयरे से णामे उदइयउवसमियखओवसमियनिप्फण्णे? उदइयउवसमियखओवसमियनिप्फण्णे-उदइएत्ति मणुस्से उवसंता कसाया खओवसमियाइं इंदियाइं। एस णं से णामे उदइयउवसमियखओवसमियनिप्फण्णे॥२॥ कयरे से णामे उदइयउवसमियपारिणामियनिप्फण्णे? उदइय-उवसमियपारिणामियनिप्फण्णे—उदइएत्ति मणुस्से उवसंता

परन्तु साथ २ उसके और भी भाव मौजूद हैं। क्योंकि समस्त संसारी जीवों में कम से कम तीन भाव तो होते ही हैं। ॥ सू० १५८ ॥

મોજૂદ હોય છે, કારણ કે સમસ્ત સંસારી જીવોમાં ઓછામાં ઓછા ત્રણ ભાવોનો તો અવશ્ય સદ્ભાવ હોય છે. ॥સૂ૦૧૫૮॥

कसाया पारिणामिए जीवे। एस णं से णामे उदइयउवसमियपारिणामियनिप्फण्णे॥३॥ कयरे से णामे उदइयखइयखओवसमियनिप्फण्णे? उदइयखइयखओवसमियनिप्फण्णे-उदइएत्ति मणुस्से खइयं सम्मत्तं खओवसमियाइं इंदियाइं। एस णं से णामे उदइयखइयखओवसमियनिप्फण्णे॥४॥ कयरे से णामे उदइयखइयपारिणामियनिप्फण्णे? उदइयखइयपारिणामियनिप्फण्णे-उदइएत्ति मणुस्से खइयं सम्मत्तं पारिणामिए जीवे। एस णं से णामे उदइएखइयपारिणामियनिप्फण्णे॥५॥ कयरे से णामे उदइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे? उदइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे-उदइएत्ति मणुस्से खओवसमियाइं इंदियाइं पारिणामिए जीवे। एसणं से णामे उदइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे॥६॥ कयरे से णामे उवसमियखइयखओवसमियनिप्फण्णे? उवसमियखइयखओवसमियनिप्फण्णे-उवसंता कसाया खइयं सम्मत्तं खओवसमियाइं इंदियाइं। एस णं से णामे उवसमियखइयखओवसमियनिप्फण्णे॥७॥ कयरे से णामे उवसमियखइयपारिणामियनिप्फण्णे? उवसमियखइयपारिणामियनिप्फण्णे-उवसंता कसाया खइयं सम्मत्तं पारिणामिए जीवे। एस णं णामे उवसमियखइयपारिणामियनिप्फण्णे॥८॥ कयरे से णामे उवसमियखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे? उवसमियखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे-उवसंता कसाया खओवसमियाइं इंदियाइं पारिणामिए जीवे। एस णं से णामे उव-

समियखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे॥९॥ कयरे से णामे खइय खओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे? खइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे–खइयं सम्मत्तं खओवसमियाइं इंदियाइं पारिणामिए जीवे। एस णं से णामे खइयखओवसमिय पारिणामियनिप्फण्णे॥१०॥सू०१५९॥

छाया—तत्र खलु ये ते दश त्रिकसंयोगास्ते खलु इमे–अस्ति नाम औदयिकौपशमिकक्षायिकनिष्पन्नम्१, अस्ति नाम औदयिकौपशमिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम्२ अस्ति नाम औदयिकौपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्३, अस्ति नाम औदयिकक्षायिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम्४, अस्ति नाम औदयिकक्षायिकपारिणामिकनिष्पन्नम्५, अस्ति नाम औदयिकक्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्६, अस्ति नाम औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम्७, अस्ति नाम औपशमिकक्षायिकपारिणामिकनिष्पन्नम्८, अस्ति नाम औपशमिकक्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्९, अस्ति नाम क्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्१०। कतरत् तन्नाम औदयिकौपशमिकक्षायिकनिष्पन्नम्? औदयिकौपशमिकक्षायिकनिष्पन्नम्–औदयिकमिति मानुष्यम् उपशान्ताः कषायाः क्षायिकं सम्यक्त्वम्। एतत्खलु तन्नाम औदयिकौपशमिकक्षायिकनिष्पन्नम्॥१॥ कतरत् तन्नाम औदयिकौपशमिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम्? औदयिकौपशमिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम्–औदयिकमिति मानुष्यं उपशान्ताः कषायाः क्षायोपशमिकानीन्द्रियाणि। एतत्खलु तन्नाम औदयिकौपशमिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम्॥२॥ कतरत् तन्नाम औदयिकौपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्? औदयिकौपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्–औदयिकमिति मानुष्यम् उपशान्ताः कषायाः पारिणामिको जीवः। एतत् खलु तन्नाम औदयिकौपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्॥३॥ कतरत् खलु औदयिकक्षायिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम्? औदयिकक्षायिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम्–औदयिकमिति मानुष्यम्, क्षायिकं सम्यक्त्वं क्षायोपशमिकानीन्द्रियाणि। एतत् खलु तन्नाम औदयिकक्षायिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम्॥४॥ कतरत् तन्नाम औदयिकक्षायिकपारिणामिकनिष्पन्नम्? औदयिकक्षायिकपारिणामिकनिष्पन्नम्–औदयिकमिति मानुष्यं क्षायिकं सम्यक्त्वं पारिणामिको जीवः। एतत् खलु तन्नाम औदयिकक्षायिकपारिणामिकनिष्पन्नम्॥५॥ कतरत् तन्नाम औदयिकक्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्? औदयिकक्षायोपशमिकपारिणारिकनिष्पन्नम्–औदयिकमितिमानुष्यं क्षायोपशमिकानि

इन्द्रियाणि पारिणामिको जीवः। एतत् खलु तन्नाम औदयिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम्॥६॥ कतरत् तन्नाम औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम्? औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम्-उपशान्ताः कषायाः क्षायिकं सम्यक्त्वं क्षायोपशमिकानि इन्द्रियाणि। एतत् खलु तन्नाम औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम्॥७॥ कतरत् तन्नाम औपशमिकक्षायिकपारिणामिकनिष्पन्नम्? औपशमिकक्षायिकपारिणामिकनिष्पन्नम्-उपशान्ताः कषायाः क्षायिकं सम्यक्त्वं पारिणामिको जीवः एतत् खलु तन्नाम औपशमिकक्षायिकपारिणामिकनिष्पन्नम्॥८॥ कतरत् तन्नाम औपशमिकक्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्? औपशमिकक्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्-उपशान्ताः कषायाः क्षायोपशमिकानि इन्द्रियाणि पारिणामिको जीवः। एतत् खलु तन्नाम औपशमिकक्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्॥९॥ कतरत् तन्नाम क्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्? क्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्-क्षायिकं सम्यक्त्वं क्षयोपशमिकानि इन्द्रियाणि पारिणामिको जीवः। एतत् खलु तन्नाम क्षायिक क्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्१०॥सू० १५९॥

टीका—'तत्थ णं जे ते दस' इत्यादि—

त्रिक संयोगेऽपि दश भङ्गा भवन्ति। तत्र आद्य भावद्वयं परिपाट्या निक्षिप्य अवशिष्टानां त्रयाणां मध्ये क्रमेण एकैकस्य तत्र संयोगे कृते सति त्रयो भङ्गा

अब सूत्रकार तीन भावों के संयोग से जो सान्निपातिक भाव बनते हैं उनका कथन करते हैं—"तत्थणं जे ते" इत्यादि।

शब्दार्थ-(तत्थ णं जे ते दस तिग संजोगा ते णं इमे) इन सान्निपातिक भावों में जो तीन २ भावों के संयोग से १० सान्निपातिक भाव के दश भंग बनते हैं-वे इस प्रकार से हैं-(अत्थिणामे उदइयउवसमिय खइयनिष्फण्णे१) औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, इन तीनों भावों के संयोग से निष्पन्न औदयिकौपशमिक क्षायिक सान्निपातिक भाव एक (अत्थि णामे उदइयउवसमियखओवसमियनिप्फण्णे २) दूसरा-

---

ત્રણ ભાવોના સંયોગથી જે સાન્નિપાતિક ભાવો બને છે તેમનું સૂત્રકાર હવે નિરૂપણ કરે છે—"तत्थ णं जे ते" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(तत्थ णं जे ते दसतिगसंजोगा तेणं इमे...) ત્રણ ત્રણ ભાવોના સંયોગથી જે દસ સાન્નિપાતિક ભાવો બને છે તે નીચે પ્રમાણે છે-(अत्थिणामे उदइयउवसमिय-खइयनिष्फण्णे१) (૧) ઔદયિક, ઔપશમિક અને ક્ષાયિક, આ ત્રણે ભાવોના સંયોગથી બનતો "ઔદયિકૌપશમિક ક્ષાયિક સાન્નિપાતિક ભાવ," (अत्थि णामे उदइयउवसमियखओवसमियनिप्फण्णे) (૨)

औदयिक औपशमिक, एवं क्षायोपशमिक इन तीनों भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ औदयिकौपशमिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक भाव (अत्थिणामे उदइय उवसमिय पारिणामिय निप्फण्णे) तीसरा-औदयिक, औपशमिक और पारिणामिक, इन तीन भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ औदयिक औपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक भाव (अत्थिणामे उदइयखइयखओवसमियनिप्फण्णे) चौथा-औदयिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक इन तीनों भावों के संयोग से निष्पन्न औदयिक क्षायिक, क्षायोपशमिक सान्निपातिक भाव (अत्थिणामे उदइय खइय पारिणामिय निप्फण्णे) पांचवां-औदयिक क्षायिक और पारिणामिक इन तीनों भावों के संयोग से निष्पन्न औदयिक क्षायिक पारिणामिक सान्निपातिक भाव (अत्थि णामे उदइय खओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे) छठा-औदयिक क्षायोपशमिक और पारिणामिक इन तीनों भावों के संयोग से निष्पन्न औदयिक क्षायोपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक भाव (अत्थिणामे उवसमियखइयखओवसमियनिप्फण्णे) सातवां-औपशमिक क्षायिक और क्षायोपशमिक इन तीनों भावों के संयोग से निष्पन्न औपशमिक, क्षायिक क्षायोपशमिक नाम का सान्निपातिक भाव

औदयिक, औपशमिक अने क्षायोपशमिक, आ त्रणु भावोना संयोगथी बनतो "औदयिकौपशमिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक भाव."

(अत्थिणामे उदइयउवसमियपारिणामियनिप्फण्णे३) (३) औदयिक, औपशमिक अने पारिणामिक आ त्रणु भावोना संयोगथी बनतो "औदयिकौपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक भाव."

(अत्थि णामे उदइयखइयखओवसमियनिप्फण्णे) (४) औदयिक, क्षायिक अने क्षायोपशमिक सान्निपातिक भाव."

(अत्थि णामे उदइयखइयपारिणामियनिप्फण्णे) (५) औदयिक, क्षायिक अने पारिणामिक, आ त्रणु भावोना संयोगथी निष्पन्न थतो "औदयिक क्षायिक पारिणामिक सान्निपातिक भाव."

(अत्थि णामे उदइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे) (६) औदयिक, क्षायोपशमिक अने पारिणामिक भावोना संयोगथी बनतो "औदयिक क्षायोपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक भाव."

(अत्थि णामे उवसमियखइयखओवसमियनिप्फण्णे) (७) औपशमिक, क्षायिक अने क्षायोपशमिक, आ त्रणु भावोना संयोगथी बनतो "औपशमिक क्षायिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक भाव."

(अत्थिणामे उवसमियखइयपारिणामियनिष्फण्णे) आठवां-औपशमिक क्षायिक और पारिणामिक इन तीन भावों के संयोग से निष्पन्न औपशमिक क्षायिक पारिणामिक नाम का सान्निपातिक भाव (अत्थिणामे उवसमियखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे) नौवां-औपशमिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक इन तीन भावों के संयोग से निष्पन्न औपशमिक क्षायोपशमिक पारिणामिक नाम का सान्निपातिक भाव, अत्थिणामे खइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे) दसवां-क्षायिक, क्षायोपशमिक, और पारिणामिक इन तीनों भावों के संयोग से निष्पन्न क्षायिक क्षायोपशमिक पारिणामिक नामका सान्निपातिक भाव। (कयरे से णामे उदइयउवसमियखइयनिप्फण्णे)

प्रश्न-हे भदन्त! औदयिकौपशमिक क्षायिक नाम का जो प्रथम त्रिक भाव संयोगी सान्निपातिक भाव है वह कैसा है?

उत्तर-(उदइय उवसमियखइयनिप्फण्णे) औदयिकौपशमिक क्षायिकनाम का जो प्रथम त्रिक संयोगी सान्निपातिक भाव है वह ऐसा है-उदइएत्तिमणुस्से उवसंता-कसाया खइयं संमत्तं) मनुष्यगति औदयिक भाव में है कषायों का उपशम औपशमिक भाव में हैं और क्षायिक

(अत्थि णामे उवसमियखइयपारिणामियनिप्फण्णे) (८) औपशमिक, क्षायिक अने पारिणामिक, आ त्रणु भावोना संयोगथी बनतो "औपशमिक क्षायिक पारिणामिक नामनो सान्निपातिक भाव."

(अत्थिणामे उवसमिय खओवसमिय पारिणामिय निप्फण्णे) (९) औपशमिक, क्षायोपशमिक अने पारिणामिक, आ त्रणु भावोना संयोगथी बनतो "औपशमिक क्षायोपशमिक पारिणामिक नामनो सान्निपातिक भाव."

(अत्थिणामे खइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे) (१०) क्षायिक, क्षायोपशमिक अने पारिणामिक, आ त्रणु भावोना संयोगथी बनतो "क्षायिक क्षायोपशमिक पारिणामिक नामनो सान्निपातिक भाव."

प्रश्न-(कयरे से णामे उदइयउवसमियखइयनिप्फण्णे?) हे भगवन्! औदयिकौपशमिक क्षायिक नामनो जे पहेलो त्रिकभाव संयोगी सान्निपातिक भाव छे ते केवो छे?

उत्तर-(उदइयउवसमियखइयनिप्फण्णे) औदयिक औपशमिक क्षायिक नामनो जे पहेलो त्रिकभावसंयोगी सान्निपातिक भाव छे ते आ प्रकारनो छे-(उदइए त्ति मणुस्से उवसंता कसाया खइयं संमत्तं) मनुष्य गति औदयिक भाव छे, कषायोनो उपशम औपशमिक भाव छे अने क्षायिक सम्यक्त्व

सम्यक्त्व क्षायिक भाव में है-(एसणं से णामे उदइयउवसमियखइय-निप्फण्णे) इस प्रकार यह औदयिक औपशमिक क्षायिक निष्पन्न नाम सान्निपातिक भाव है। (कयरे से णामे उदइयउवसमियखओव-समियनिप्फण्णे) हे भदन्त! औदयिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक भाव कैसा है?

उत्तर-(उदइय उवसमियखओवसमियनिप्फण्णे) औदयिक औप-शमिक क्षायोपशमिक नामका सान्निपातिकभाव ऐसा है (उदइए त्तिमणुस्से उवसंता कसाया खओवसमियाइं इंदियाइं) मनुष्यगति औद-यिक, उपशांतकषायें औपशमिक, और इन्द्रियां क्षायोपशमिक (एसणं से णामे उदइयउवसमियखओवसमियनिप्फण्णे) इस प्रकार यह औदयिकौपशमिक क्षायोपशमिक सान्निपतिक भाव है। (कयरे से णामे उदइयउवसमियपारिणामियनिप्फण्णे?) हे भदन्त! औद-यिकौपशमिक पारिणामिक नाम का तीसरा सान्निपातिक भाव कैसा है? (उदइयउवसमियपारिणामियनिप्फण्णे)

उत्तर-औदयिकौपशमिक पारिणामिक नामका जो तीसरा सान्नि-पातिक भाव है वह ऐसा है-(उदइयएत्ति मणुस्से उवसंता कसाया पारि-

---

क्षायिक भाव छे. (एसणं से णामे उदइयउवसमियखइयनिप्फण्णे) आ प्रकारनो आ औदयिकौपशमिक क्षायिक निष्पन्न नामनो सान्निपातिक भाव छे.

प्रश्न-कयरे से णामे उदइयउवसमियखओवसमियनिप्फण्णे? हे भगवन्! औदयिकौपशमिक सान्निपातिक भाव केवो छे?

उत्तर-(उदइयउवसमियखओवसमियनिप्फण्णे) औदयिकौपशमिक-क्षायोपशमिक नामनो सान्निपातिक भाव आ प्रकारनो छे-(उदएत्ति मणुस्से, उवसंता-कसाया, खओवसमियाइं इंदियाइं) मनुष्य गति औदयिक भाव छे, उपशान्त कषायो औपशमिक भाव छे अने इन्द्रियो क्षायोपशमिक भाव छे. (एसणं से णामे उदइयउवसमियखओवसमियनिप्फण्णे) आ प्रकारनो आ औदयिकौशमिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक भाव छे.

प्रश्न-(कयरे से णामे उदइयउवसमियपारिणामियनिप्फण्णे? हे भगवन्! औदयिकौपशमिक पारिणामिक नामनो त्रीजो सान्निपातिक भाव केवो छे?

उत्तर-(उदइयउवसमियपारिणामियनिप्फण्णे?) औदयिकौपशमिक पारिणा-मिक नामनो त्रीजो सान्निपातिक भाव आ प्रकारनो छे-(उदइयएत्ति मणुस्से, उवसंता कसाया, पारिणामिए जीवे) मनुष्य गति औदयिक भाव छे,

णामिए जीवे) मनुष्यगति औदयिक भाव है कषायों की उपशांति औपशमिक भाव है और जीव पारिणामिक भाव है। (एसणं से णामे उदइयउवसमियपारिणामियनिप्फण्णे) इस प्रकार यह औदयिकौपशमिकपारिणामिक नाम का सान्निपातिक भाव है। (कयरे से णामे-उदइयखइयखओवसमियनिप्फण्णे ?) हे भदन्त ! औदयिक क्षायिक और क्षायोपशमिक इन तीन भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ औदयिक क्षायिकक्षायोपशमिक नाम का सान्निपातिक भाव कैसा है ?

उत्तर-(उदइयखइयखओवसमियनिप्फण्णे) औदयिक क्षायिक क्षायोपशमिक नाम का सान्निपातिक भाव ऐसा है-

(उदएत्ति मणुस्से खइयं सम्मत्तं खओवसमियाइं इंदियाइं) मनुष्य गति औदयिक भाव में है। क्षायिक सम्यक्त्व यह क्षायिकभाव में है, और इन्द्रियां क्षायोपशमिकभाव में हैं। (एसणं से णामे उदइयखइयखओवसमियनिप्फण्णे) इस प्रकार यह औदयिकक्षायिकक्षायोपशमिक नामका सान्निपातिक भाव है।

(कयरे से णामे उदइयखइयपारिणामियनिप्फण्णे?) हे भदन्त ! औदयिक क्षायिक और पारिणामिक इन तीन भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ सान्निपातिक भाव कैसा है ? (उदइयखइयपारिणामियनिप्फन्ने)

કષાયોની ઉપશાન્તિ ઔપશમિક ભાવ છે અને જીવ પારિણામિક ભાવ છે. (एसणं से णामे उदइयउवसमियपारिणामियनिप्फण्णे) આ પ્રકારનું ઔદયિકૌપશમિક પારિણામિક નામના સાન્નિપાતિક ભાવનું સ્વરૂપ છે.

પ્રશ્ન-(कयरे से णामे उदइयखइयखओवसमियनिप्फण्णे) હે ભગવન્! ઔદયિક ક્ષાયિક અને ક્ષાયોપશમિક આ ત્રણે ભાવોના સંયોગથી બનતા ઔદયિક ક્ષાયિક ક્ષાયોપશમિક નામના ચોથા સાન્નિપાતિક ભાવનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર-(उदइयखइयखओवसमियनिप्फण्णे) ઔદયિક ક્ષાયિક ક્ષાયોપશમિક નામના ચોથા સાન્નિપાતિક ભાવનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે-(उदइए त्ति मणुस्से, खइयं सम्मत्तं, खओवसमियाइं इंदियाइं) મનુષ્ય ગતિ ઔદયિક ભાવ રૂપ છે, ક્ષાયિક સમ્યકત્વ ક્ષાયિક ભાવ રૂપ છે અને ઇન્દ્રિયો ક્ષાયોપશમિક ભાવ રૂપ છે. (एसणं से णामे उदइयखइयखओवसमियनिप्फण्णे) આ પ્રકારનું ઔદયિક ક્ષાયિક ક્ષાયોપશમિક નામના સાન્નિપાતિક ભેદનું સ્વરૂપ છે.

પ્રશ્ન-(कयरे से णामे उदइयखइयपारिणामियनिप्फण्णे ?) હે ભગવન્! ઔદયિક, ક્ષાયિક અને પારિણામિક ભાવોના સંયોગથી બનતા પાંચમાં સાન્નિપાતિક ભાવનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ऊत्तर–औदयिक क्षायिक और पारिणामिक इन तीन भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ सान्निपातिक नामका भाव इस प्रकार से है–(उदइएत्ति मणुस्से खइयं सम्मत्तं पारिणामिए जीवे) मनुष्य गति यह औदयिक भाव है, क्षायिक सम्यक्त्व यह क्षायिक भाव है और जीव यह पारिणामिक भाव है। (एसणं से णामे उदइयखइयपारिणामियनिप्फण्णे) इसप्रकार यह औदयिक क्षायिक पारिणामिक नामका सान्निपातिक भाव है। (कयरे से णामे उदइय खओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे ?) हे भदन्त ! औदयिक क्षयोपशमिक और पारिणामिक इन तीन भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ सान्निपातिक भाव कैसा है ?

उत्तर–(उदइय खओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे) औदयिक क्षायोपशमिक और पारिणामिक इन तीनों भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ सान्निपातिक भाव ऐसा है–(उदइएत्तिमणुस्से खओवसमियाइं इंदियाइं पारिणामिए जीवे) मनुष्यगति यह औदयिक भाव है। इन्द्रियां ये क्षायोपशमिक भाव हैं और जीव यह पारिणामिक भाव है। (एसणं से णामे उदइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे) इस प्रकार से यह औदयिक क्षायोपशमिक पारिणामिक नाम का सान्निपातिक भाव है।

ઉત્તર–(उदइयखइयपारिणामियनिप्फण्णे) औदयिक क्षायिक अने पारिणामिक, आ त्रणु भावोना संयोगथी बनतो पांचमो सान्निपातिक भाव आ प्रकारनो छे–(उदइए त्ति मणुस्से, खइयं सम्मत्तं, पारिणामिए जीवे) मनुष्य गति औदयिक भाव રૂપ છે, क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिक भाव રૂપ છે અને જીવ पारिणामिक भाव રૂપ છે. (एसणं से णामे खइयपारिणामियनिप्फण्णे) આ પ્રકારનું औदयिक क्षायिक पारिणामिक नामना सान्निपातिक भावनुं स्वरूप छे.

प्रश्न–(कयरे से णामे उदइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे ?) हे भगवन्! औदयिक, क्षायोपशमिक अने पारिणामिक, आ त्रणे भावोना संयोगथी बनता छठ्ठा सान्निपातिक भावनुं स्वरूप केवुं छे ?

ઉત્તર–(उदइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे) औदयिक, क्षायोपशमिक अने पारिणामिक, आ त्रणु भावोना संयोगथी बनता छठ्ठा सान्निपातिक भावनुं स्वरूप आ प्रकारनुं छे–(उदइए मणुस्से खओवसमिाइं इंदियाइं, पारिणामिए जीवे) मनुष्यगति औदयिक भावरूप छे, धन्द्रियो क्षायोपशमिक भाव રૂપ છે અને જીવ पारिणामिक भाव રૂપ છે. (एसणं से णामे उदइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे) આ પ્રકારનો औदयिक क्षायोपशमिक पारिणामिक नामनो सान्निपातिक भाव छे.

(कयरे से णामे उवसमियखइयखओवसमियनिप्फण्णे ?) हे भदन्त ! औपशमिक क्षायिक और क्षायोपशमिक इन तीनों भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ सान्निपातिक भाव कैसा है ?

उत्तर-(उवसमियखइयखओवसमियनिप्फण्णे) औपशमिक क्षायिक और क्षायोपशमिक इन तीन भावों से निष्पन्न हुआ-सान्निपातिकभाव इसप्रकार से है-(उवसंता कसाया खइयं सम्मत्तं खओवसमियाइं इंदियाइं) उपशमित हुई कषायें औपशमिक भाव हैं, क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिक भावरूप है और इन्द्रियां क्षायोपशमिक भाव है। (एसणं से णामे उवसमियखइयखओवसमियनिप्फण्णे) इस प्रकार यह औपशमिक क्षायिक क्षायोपशमिक इन तीन भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ सान्निपातिक भाव है, (कयरे से णामे उवसमिय खइयपारिणामियसन्निवाइए णिप्फण्णे) हे भदन्त ! औपशमिक क्षायिक और पारिणामिक इन तीन भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ सान्निपातिक भाव कैसा है ?

उत्तर-(उवसमियखइयपारिणामियनिप्फण्णे) औपशमिक क्षायिक और पारिणामिक इन तीनों भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ सान्निपातिक भाव इसप्रकार से है। (उवसंता कसाया, खइयं सम्मत्तं, पारि-

---

પ્રશ્ન-(कयरे से णामे उवसमियखइयखओवसमियनिप्फण्णे ?) હે ભગવન્ ! ઔપશમિક, ક્ષાયિક અને ક્ષાયોપશમિક, આ ત્રણેના સંયોગથી બનતા સાતમાં સાન્નિપાતિક ભાવનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર-(उवसमिय खइयखओवसमियनिप्फण्णे) ઔપશમિક, ક્ષાયિક અને ક્ષાયોપશમિક, આ ત્રણ ભાવોના સંયોગથી બનતા સાતમાં સાન્નિપાતિક ભાવનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે-(उवसंता कसाया, खइयं सम्मत्तं, खओवसमियाइं इंदियाइं) ઉપશમિત થયેલા કષાયો ઔપશમિક ભાવ રૂપ છે, ક્ષાયિક સમ્યક્ત્વ ક્ષાયિક ભાવ રૂપ છે અને ઇન્દ્રિયો ક્ષાયોપશમિક ભાવ રૂપ છે. (एसणं से णामे उवसमियखइयखओवसमियनिप्फण्णे?) આ પ્રકારનો ઔપશમિક ક્ષાયિક ક્ષાયોપશમિક નામનો સાન્નિપાતિક ભાવ હોય છે.

પ્રશ્ન-(कयरे से णामे उवसमिय खइयपारिणामियनिप्फण्णे?) હે ભગવન્ ! ઔપશમિક, ક્ષાયિક અને પારિણામિક, આ ત્રણ ભાવોના સંયોગથી બનતા આઠમાં સાન્નિપાતિક ભાવનું સ્વરૂપ કેવું છે ?

ઉત્તર-(उवसमियखइयपारिणामियनिप्फण्णे) ઔપશમિક, ક્ષાયિક અને પારિણામિક, આ ત્રણ ભાવોના સંયોગથી બનતો સાન્નિપાતિક ભાવ આ પ્રકારનો છે-(उवसंता कसाया, खइयं सम्मत्तं, पारिणामिए जीवे) ઉપશમિત

णामिए जीवे) उपशमित हुई कषायें औपशमिक भाव हैं क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिकभाव है और जीव पारिणामिकभाव है। (एसणं से णामे उवसमियखइयपारिणामियनिप्फण्णे) इसप्रकार यह औपशमिकक्षायिक और पारिणामिक इन तीन भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ सन्निपातिकभाव है। (कयरे से णामे उवसमियखओवसमिय पारिणामिय निप्फण्णे?) हे भदन्त! औपशमिक क्षायोपशमिक और पारिणामिक इनतीनों भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ सान्निपातिकभावकैसा है?

उत्तर—(उवसमिय खओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे) औपशमिक, क्षायोपशमिक, और पारिणामिक इन तीन भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ सान्निपातिक भाव इस प्रकार से है-(उवसंता कसाया खओवसमियाइं इंदियाइं पारिणामिए जीवे) उपशमित कषाय औपशमिक भाव है,इन्द्रियां क्षायोपशमिक भाव हैं और जीव यह पारिणामिक भाव है। (एसणं से णामे उवसमियखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे) इस प्रकार यह औपशमिक क्षायोपशमिक और पारिणामिक इन तीन भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ सान्निपातिक भाव है। (कयरे से णामे खइय खओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे) हे भदन्त! क्षायिक क्षायोपशमिक

थयेला કષાયો ઔપશમિક ભાવ ૩૫ છે, ક્ષાયિક સમ્યક્ત્વ ક્ષાયિક ભાવ ૩૫ છે અને જીવ પારિણામિક ભાવ ૩૫ છે. (एसणं से णामे उवसमियखइयपारिणामियनिप्फण्णे) આ પ્રકારનો ઔપશમિક ક્ષાયિક પારિણામિક નામનો સાન્નિપાતિક ભાવ છે.

પ્રશ્ન-(कयरे से णामे उवसमियखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे?) હે ભગવન્! ઔપશમિક, ક્ષાયોપશમિક અને પારિણામિક, આ ત્રણ ભાવોના સંયોગથી નિષ્પન્ન થતો નવમો સાન્નિપાતિક ભાવ કેવો છે?

ઉત્તર-(उवसमिय खओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे) ઔપશમિક, ક્ષાયોપશમિક અને પારિણામિક, આ ત્રણ ભાવોના સંયોગથી બનતો નવમો સાન્નિપાતિક ભાવ આ પ્રકારનો છે-(उवसंता कसाया, खओवसमियाइं इंदियाइं, पारिणामिए जीवे) ઉપશમિત કષાયો ઔપશમિક ભાવ ૩૫ છે, ઇન્દ્રિયો ક્ષાયોપશમિક ભાવ ૩૫ છે અને જીવ પારિણામિક ભાવ ૩૫ છે. (एसणं से णामे उवसमियखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे) આ પ્રકારનો ઔપશમિક ક્ષાયોપશમિક અને પારિણામિક નામનો સાન્નિપાતિક ભાવ છે.

પ્રશ્ન-(कयरे से णामे खइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे?) હે ભગવન્! ક્ષાયિક, ક્ષાયોપશમિક અને પારિણામિક, આ ત્રણ ભાવોના સંયોગથી બનતો દસમો સાન્નિપાતિક ભાવ કેવો છે?

और पारिणामिक इन तीन भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ सान्निपातिक भाव कैसा है ?

उत्तर—(खइयखओवसमिय पारिणामियनिप्फण्णे) क्षायिक क्षायोपशमिक और पारिणामिक इन तीन भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ सान्निपातिक भाव ऐसा है-(खइयं सम्मत्तं खओवसमियाइं इंदियाइं पारिणामिए जीवे) क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिक भाव है, इन्द्रियां क्षायोपशमिक भाव हैं तथा जीव यह पारिणामिक भाव है। (एस णं से णामे खइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे) इस प्रकार यह क्षायिक क्षायोपशमिक और पारिणामिक इन तीन भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ क्षायिकक्षायोपशमिक पारिणामिक नामका सान्निपातिक भाव है-

भावार्थ-सूत्रकार ने इस सूत्र द्वारा तीन भावों के संयोग से जो १० सान्निपातिक रूप भंग होते हैं उनका प्रदर्शन किया है। इनमें औदयिक और औपशमिक इन दो भावों को परिपाटी से निक्षिप्त कर के अवशिष्ट क्षायिक क्षायोपशमिक और पारिणामिक इन तीनों भावों में से एक एक भाव का उनके साथ संयोग किया है। इस प्रकार करने से तीन भंग निष्पन्न होते हैं, इनमें औदयिकौपशमिक क्षायिक सान्निपातिक भाव इस प्रकार से घटित करना चाहिये कि यह मनुष्य उपशांत क्रोधादि कषायवाला होकर क्षायिक सम्यक् दृष्टि है। मनुष्य से यहां

ઉત્તર-(खइय खओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे) क्षायिक, क्षायोपशमिक અને પારિણામિક, આ ત્રણ ભાવોના સંયોગથી બનતો દસમો સાન્નિપાતિક ભાવ આ પ્રકારનો છે-(खइयं सम्मत्तं, खओवसमियाइं इंदियाइं, पारिणामिए जीवे) क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिक भाव રૂપ છે, ઇન્દ્રિયો क्षायोपशमिक भाव રૂપ છે અને જીવ પારિણામિક ભાવ રૂપ છે. (एसणं से णामे खइय खओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे) આ પ્રકારનું क्षायिक, क्षायोपशमिक અને પારિણામિક, આ ત્રણ ભાવોના સંયોગથી બનતા દસમાં સાન્નિપાતિક ભાવનું સ્વરૂપ છે.

ભાવાર્થ-ત્રણ ભાવોના સંયોગથી જે દસ સાન્નિપાતિક ભાવ રૂપ ૧૦ ભંગ બને છે, તેમનું સૂત્રકારે આ સૂત્રમાં નિરૂપણ કર્યું છે औदयिक અને औपशमिक ભાવોની સાથે અનુક્રમે क्षायिक, क्षायोपशमिक અને પારિણામિક ભાવોનો સંયોગ કરવાથી પહેલા ત્રણ ભંગ બન્યા છે.

(૧) "औदयिकौपशमिक सान्निपातिक भाव" રૂપ પહેલા ભંગનું ઉદાહરણ આ પ્રમાણે છે-"આ મનુષ્ય ઉપશાન્ત ક્રોધાદિ કષાયવાળો છે અને क्षायिक सम्यक्दृष्टि छे." मनुष्य પદ અહીં મનુષ્યગતિનું વાચક છે. મનુષ્ય ગતિ औदयिक ભાવ રૂપ હોય છે, કારણ કે મનુષ્યગતિ નામકર્મના ઉદયથી

भवन्ति। तत आद्यं तृतीयं च परिपाट्या निक्षिप्य अवशिष्टयोर्द्वयोस्तत्र क्रमेण संयोगे भङ्गद्वयम्। ततः पयमचतुर्थपञ्चमभावानां संयोगे एको भङ्गः। इत्थं षट् भङ्गाः। ततो द्वितीयं च भावपरिपाट्या निक्षिप्य तत्र चतुर्थपञ्चमयोः क्रमेण योगे भङ्गद्वयम्। ततो द्वितीयचतुर्थपञ्चमभावानां च योगे एको भङ्गः। तथा-तृतीयचतु-

---

मनुष्यगति ली गई है। मनुष्यगति यह औदयिक भाव है। क्यों कि मनुष्यगति नामकर्म के उदय से मनुष्य होता है। उपशांत क्रोधादि कषायवाला कहने से औपशमिक भाव घटित होता है और क्षायिक सम्यक्त्व से क्षायिक भाव। इसी प्रकार से शेष दो भंगों में-औदयिकौपशमिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक भाव में यह मनुष्य उपशान्त कषायवाला पंचेन्द्रिय है यथा औदयिकौपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक भंग में यह मनुष्य उपशांत कषायवाला जीव है-घटित करलेना चाहिये। जहां पर औपशमिक भाव का परित्याग कर औदयिक और क्षायिक भाव का ग्रहण हो तथा क्षायोपशमिक एवं पारिणामिक भावों मे से एक २ का ग्रहण हो वह दूसरा त्रिभाव संयोगी सान्निपातिक भाव का भेद है-इसके दो भंग हैं-एक औदयिक क्षायिकक्षायोपशमिक और दूसरा औदयिक क्षायिक पारिणामिक, पहिलेका दृष्टान्त-क्षीण कषायी मनुष्य

મનુષ્ય ગતિની પ્રાપ્તિ થાય છે. ઉપશાન્ત ક્રોધાદિ કષાયવાળો કહેવાથી ઔપશમિક ભાવ ઘટિત થાય છે અને ક્ષાયિક સમ્યક્ત્વ યુક્ત કહેવાથી ક્ષાયિક ભાવ ઘટિત થાય છે એજ પ્રમાણે બીજા અને ત્રીજા ભંગોનો ભાવાર્થ પણ સમજી શકાય એવો છે.

(૨) "औदयिकौपशमिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक भाव" રૂપ બીજા ભંગનું ઉદાહરણ આ પ્રમાણે છે-

'આ મનુષ્ય ઉપશાન્ત કષાયવાળો પંચેન્દ્રિય જીવ છે.'

(૩) ઔદયિકૌપશમિક પારિણામિક સાન્નિપાતિક ભંગનું ઉદાહરણ.

"આ મનુષ્ય ઉપશાન્ત કષાયવાળો જીવ છે."

ત્યાર પછીનો ચોથો અને પાંચમો ભંગ આ પ્રમાણે બને છે-અહીં ઔદયિકભાવની સાથે ઔપશમિક ભાવ લેવાને બદલે ક્ષાયિક ભાવ લેવો અને ઔદયિક અને ક્ષાયિક ભાવની સાથે અનુક્રમે ક્ષાયોપશમિક અને પારિણામિક ભાવોનો સંયોગ કરવાથી ચોથો અને પાંચમો ભંગ બને છે.

(૪) ઔદયિક ક્ષાયિક ક્षાયોપશમિક સાન્નિપાતિક ભાવનું ઉદાહરણ "क्षीण कषायी मनुष्य श्रुतज्ञानि."

र्थपञ्चमभावानां च योगे एको भङ्गः। इत्थं सर्वे भङ्गा दश संख्यका भवन्ति। एतेषामेव स्वरूपविवरणाय प्राह-'कयरे से णामे' इत्यादि। एषां व्याख्या पूर्ववद् बोध्या। अत्र पञ्चमो भङ्गः केवलिनां संभवति। केवलिनां हि-औदयिकी

श्रुतज्ञानी और दूसरे का दृष्टान्त जिसका दर्शन मोहनीयादि कर्म क्षीण हो गया है ऐसा वह मनुष्य जीव है। जहांपर केवल औदयिक भावका ग्रहण है और औपशमिक एवं क्षायिक का परित्याग है वह तीसरा त्रिभाव संयोगी सान्निपातिकभाव है। उसका औदयिक क्षायोपशमिक पारिणामिक एक-ऐसा छठा भंग है। इसका दृष्टान्त-जिस प्रकार मनुष्य मनोयोगी जीव है। जहां पर औदयिक भाव को छोड़कर शेष औपशमिकादि चार भावों में एक २ का परित्याग किया जावे वह चौथा त्रिभाव संयोगी भेद है और उसके इस प्रकार से चार भंग माने गये हैं-पहला भंग-औपशमिक क्षायिक क्षायोपशमिक सान्निपातिक नाम का दूसरा भंग औपशमिक क्षायिकपारिणामिक सान्निपातिक नामका तीसरा भंग-औपशमिक क्षायोपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक नाम का। चौथा-क्षायिक क्षायोपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक नाम का इस प्रकार ये सब भंग १० हो जाते हैं। इनमें जो औदयिक क्षायिक एवं पारिणामिक भावों के संयोग से निष्पन्न ५वां सान्निपातिक भावका

(५) औदयिक क्षायिक पारिणामिक सान्निपातिक भावनुं दृष्टान्त-"जेना दर्शनमोहनीय आदि कर्म क्षीण थई गयां छे एवो मनुष्य जीव."

जे सान्निपातिकभावमां औदयिक भावनी साथे औपशमिक अने क्षायिक, आ बे भावोने लेवाने बदले बाकीना बे भावो लेवामां आवे छे एवो छठ्ठो भंग नीचे प्रमाणे छे-"औदयिक क्षायोपशमिक पारिणामिक सान्निपातिक भाव तेनुं दृष्टान्त नीचे प्रमाणे छे-"मनुष्य मनोयोगी जीव छे."

बाकीना चार भंग आ प्रकारे बन्या छे-आ चारे भंगमां औदयिकभाव सिवायना चार भावोमांना त्रण त्रण भावोना संयोगथी चार भंग बन्या छे,

औपशमिक अने क्षायिक, आ बे भावो साथे क्षायोपशमिक भावना संयोगथी सातमो भंग अने पारिणामिकभावना संयोगथी आठमो भंग बन्यो छे.

नवमां भंगमां औपशमिक क्षायोपशमिक अने पारिणामिक भावोना संयोगथी जे सान्निपातिक भाव बने छे ते ग्रहण करवो अने दसमां भंगमां क्षायिक क्षायोपशमिक अने पारिणामिक, आ त्रण भावोना संयोगथी बनतो सान्निपातिक भाव ग्रहण थयो छे. आ प्रकारे कुल १० भंग बने छे.

औदयिक, क्षायिक अने पारिणामिक भावोना संयोगथी निष्पन्न पांचमा सान्निपातिक भावनो तो मात्र केवलीओमां ज सद्भाव होय छे, कारण के

मनुष्यगतिः क्षायिकाणि ज्ञानदर्शनचारित्राणि पारिणामिकं जीवत्वमिति त्रयो भावा भवन्ति। औपशमिकस्तु तेषु नास्ति, औपशमिकस्य मोहनीयाश्रयत्वात्, केवलिषु मोहनीयस्यासंभवात्। क्षायोपशमिको भावोऽप्येषां नास्ति, क्षायोपशमिकानि इन्द्रियादिपदार्थत्वेनाभिमताः, इन्द्रियादिपदार्थास्तु केवलिषु न सन्ति, तेषामतीन्द्रियत्वात्। उक्तंचापि-'अतीन्द्रियाः केवलिनः' इति। इत्थं च औदयिकक्षायिकपारिणामिकेति भावत्रयनिष्पन्नः पञ्चमो भङ्गः केवलिनां संभवति। षष्ठो भङ्गस्तु नारकादिषु चतसृषु गतिषु बोध्यः। तथाहि-नारकाद्यन्यतमा गतिः औद-

भंग है वह केवलियों के संभवता है-क्योंकि केवलियों के औदयिक-मनुष्यगति है ज्ञानदर्शन और चारित्र ये क्षायिकरूप हैं। और पारिणामिक रूप जीवत्व है। वहां ये तीन भाव हैं। औपशमिक भाव उनमें नहीं है, क्योंकि औपशमिक मोहनीय के आश्रय से होता है। और मोहनीय केवलियों में है नहीं। क्षायोपशमिक भाव भी केवलियों में नहीं होता है। क्योंकि क्षायोपशमिकभाव इन्द्रिय आदि पदार्थरूप माने गये हैं। इन्द्रियादिरूप पदार्थ केवलियों में नहीं है। क्यों कि वे इन्द्रियातीत हैं। "अतीन्द्रिया केवलिनः" ऐसा अन्यत्र कहा है। तात्पर्य इसका यह है कि केवलियों का ज्ञान इन्द्रियातीत-अतीन्द्रिय-है। इस प्रकार औदयिक क्षायिक और पारिणामिक इन तीन भावों से निष्पन्न पंचम भंग केवलियों में संभवता है। तथा जो छठा औदयिक क्षायोपशमिक एवं

કેવલીઓમાં મનુષ્ય ગતિ રૂપ ઔદયિક ભાવનો, જ્ઞાનદર્શન રૂપ ક્ષાયિક ભાવનો અને જીવત્વ રૂપ પારિણામિક ભાવનો સદ્ભાવ રહે છે આ રીતે કેવલીઓમાં આ ત્રણ ભાવોનો જ સદ્ભાવ રહે છે. તેમનામાં ઔપશમિક ભાવનો સદ્ભાવ હોતો નથી કારણ કે ઔપશમિક ભાવ મોહનીય કર્મના ઉપશમ પર આધાર રાખે છે. કેવલીઓમાં મોહનીય કર્મનો સદ્ભાવ જ હોતો નથી કેવલીઓમાં ક્ષાયોપશમિક ભાવનો પણ સદ્ભાવ હોતો નથી કારણ કે ક્ષાયોપશમિક ભાવ ઇન્દ્રિયાદિ પદાર્થ રૂપ મનાય છે છે ઇન્દ્રિયાદિ રૂપ પદાર્થ કેવલીઓમાં હોતા નથી, કારણ કે તેઓ ઇન્દ્રિયાતીત હોય છે. "अतीन्द्रिया केवलिनः" એવું સિદ્ધાન્તકથન છે. આ કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે કેવલીઓનું જ્ઞાન ઇન્દ્રિયાતીત (અતીન્દ્રિય) હોય છે આ પ્રકારે ઔદયિક, ક્ષાયિક અને પારિણામિક, આ ત્રણે ભાવોના સંયોગથી નિષ્પન્ન થતો પાંચમો ભંગ માત્ર કેવલીઓમાં જ સંભવી શકે છે.

ઔદયિક, ક્ષાયોપશમિક અને પારિણામિક, આ ત્રણ ભાવોના સંયોગથી નિષ્પન્ન થતા સાન્નિપાતિક ભાવ રૂપ છઠ્ઠો ભંગ નારકાદિ ચારે ગતિઓમાં

यिकी, क्षायोपशमिकानि इन्द्रियाणि, पारिणामिकं जीवत्वम्, इति औदयिक-क्षायोपशमिकपारिणामिकेति भावत्रयनिष्पन्नः षष्ठो भङ्गो नारकादिगतिचतुष्टये संभवति। अत इतरेत्वष्टौ भङ्गाः प्ररूपणामात्रम्, तेषां क्वाऽप्यसंभवात् ॥सू.१५९॥

अथ चतुष्कसंयोगान्निरूपयितुमाह—

मूलम्—तत्थ णं जे ते पंच चउक्कसंजोगा ते णं इमे—अत्थि णामे उदइय—उवसमिय—खइय—खओवसमियनिप्फण्णे? अत्थि णामे उदइय—उवसमियखइयपारिणामियनिप्फण्णे२, अत्थि णामे उदइयउवसमियखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे३, अत्थि णामे उदइयखइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे४, अत्थि णामे उवसमियखइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे५। 'कयरे से णामे उदइयउवसमियखइयखओवसमियनिप्फण्णे?, उदइयउवसमियखइयखओवसमियनिप्फण्णे-उदइएत्ति मणुस्से,

---

पारिणामिक इन भावों से-निष्पन्न भंग है वह नारकादि चारों गतियों में होता है क्यों कि ये नारकादि गतियां औदयिकी मानी गई है और वहां जो इन्द्रियां हैं वे क्षायोपशमिक भावरूप है और जीवत्व वहां पारिणामिक भाव रूप है। इस प्रकार औदयिक क्षायोपशमिक और पारिणामिक इन तीन भावों से निष्पन्न यह छठा भंग नारक आदि चारों गतियों में संभवता है। तथा इनसे अतिरिक्त और जो आठ भंग हैं वे केवल प्ररूपणा मात्र हैं। क्यों कि इन भंगों की कहीं पर भी संभावना नहीं है! ॥सू० १५९॥

સંભવી શકે છે, કારણ કે નારકાદિ ગતિઓને ઔદયિક માનવામાં આવે છે. આ ગતિના જીવોમાં જે ઇન્દ્રિયો હોય છે તે ક્ષાયોપશમિક ભાવ રૂપ ગણાય છે. અને જીવત્વ પારિણામિક ભાવ રૂપ ગણાય છે આ રીતે ઔદયિક, ક્ષાયોપશમિક અને પારિણામિક, આ ત્રણ ભાવોના સંયોગથી નિષ્પન્ન થતો છઠ્ઠો ભંગ નારકાદિ ચારે ગતિઓમાં સંભવી શકે છે.

પાંચમાં અને છઠ્ઠા ભંગ સિવાયના આઠે ભંગોની કોઇ પણ જગ્યાએ શકયતા હોતી નથી તેથી માત્ર પ્રરૂપણા કરવા નિમિત્તે જ તે ભંગોનું કથન અહીં કરવામાં આવ્યું છે, એમ સમજવું.॥સૂ૦ ૧૫૯॥

उवसंता कसाया, खइअं सम्मत्तं, खओवसमियाइं इंदियाइं। एस णं से णामे उदइयउवसमियखइयखओवसमियनिप्फण्णे?, कयरे से णामे उदइयउवसमियखइयपरिणामियनिप्फण्णे?, उदइयउवसमियखइयपारिणामियनिप्फण्णे—उदइएत्ति मणुस्से, उवसंता कसाया, खइयं सम्मत्तं, पारिणामिए जीवे। एस णं से णामे उदइयउवसमियखइयपारिणामियनिप्फण्णे२। 'कयरे से णामे उदइयउवसमियखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे—उदइयउवसमियखओवसमियपारिणामियनिप्फन्ने उदइएत्ति मणुस्से, उवसंता कसाया, खओवसमियाइं इंदियाइं, पारिणामिए जीवे। एस णं से णामे उदइयउवसमियखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे३। कयरे से णामे उदइयखइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे? उदइयखइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे—उदइएत्ति मणुस्से, खइयं सम्मत्तं, खओवसमियाइं इंदियाइं, पारिणामिए जीवे। एस णं से नामे उदइयखइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे४। कयरे से नामे उवसमियखइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे?, उवसमियखइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे—उवसंता कसाया, खइयं सम्मत्तं, खओवसमियाइं इंदियाइं, पारिणामिए जीवे। एस णं से नामे उवसमियखइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे५॥सू०१६०॥

छाया—तत्र खलु ये ते पञ्च चतुष्कसंयोगाः, ते खलु इमे—अस्ति नाम औदयिकौपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम्? अस्ति नाम औदयिकौपशमिकक्षायिकपारिणामिकनिष्पन्नम्२, अस्ति नाम औदयिकौपशमिकक्षायोपशमिकपारिणा-

मिकनिष्पन्नम् ३, अस्ति नाम औदयिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम् ४, अस्ति नाम औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणारिणामिकनिष्पन्नम् ५, कतरत्

अब सूत्रकार—चार भावों के संयोग से निष्पन्न सान्निपातिक भावों की प्ररूपणा करते हैं—" तत्थ णं जे ते पंच " इत्यादि।

शब्दार्थ-(तत्थ णं जेते पंच चउक्कसंजोगा ते णं इमे) यहां जो चतुष्क संयोगी पांच भंग हैं वे इस प्रकार से हैं-(अत्थि णामे उदइय, उवसमिय-खइय-खओवसमियनिप्फण्णे १) औदयिक, औपशमिक क्षायिक और क्षायोपशमिक इन चार भावों के संयोग से निष्पन्न पहिला भंग है। (अत्थि णामे उदइय-उवसमिय-खइय-पारिणामियनिप्फण्णे २) औदयिक, औपशमिक, क्षायिक और पारिणामिक इन चार भावों के संयोग से निष्पन्न दूसरा भंग है। (अत्थिणामे उदइय उवसमिय, खओवसमिय-पारिणामिय निप्फण्णे ३) औदयिक, औपशमिक क्षायोपशमिक और पारिणामिक इन चारभावों के संयोग से निष्पन्न तीसरा भंग है। (अत्थि णामे उदइयखइयखओवसमिय पारिणामियनिप्फण्णे ४) औदयिक क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक इन चार भावों के संयोग से निष्पन्न चौथा भंग है (अत्थि णामे उवसमियखइयखओव-

ચાર ભાવોના સંયોગથી નિષ્પન્ન થતા સાન્નિપાતિક ભાવોનું સૂત્રકાર હવે નિરૂપણ કરે છે-" तत्थणं जे ते पंच " ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(तत्थणं जे ते पंच चउक्कसंजोगा ते णं इमे) ચાર ભાવોના સંયોગથી બનતા ચતુષ્કસંયોગી પાંચ ભંગ બને છે, તે ચતુષ્કસંયોગી પાંચ ભંગો નીચે પ્રમાણે છે-(अत्थिणामे उदइय-उवसमिय-खइय-खओवसमियनिप्फण्णे) પહેલો ભંગ-ઔદયિક, ઔપશમિક, ક્ષાયિક અને ક્ષાયોપશમિક, આ ચાર ભાવોના સંયોગથી બનતો સાન્નિપાતિક ભાવ (अत्थिणामे उदइय, उवसमिय, खइय, पारिणामिय, निप्फण्णे) બીજો ભંગ-ઔદયિક, ઔપશમિક, ક્ષાયિક અને પારિણામિક, આ ચાર ભાવોના સંયોગથી બનતો સાન્નિપાતિક ભાવ.

(अत्थिणामे उदइय-उवसमिय-खओवसमिय-पारिणामियनिप्फण्णे) ત્રીજો ભંગ-ઔદયિક, ઔપશમિક, ક્ષાયોપશમિક અને પારિણામિક, આ ચાર ભાવોના સંયોગથી બનતો સાન્નિપાતિક ભાવ.

ચોથો ભંગ-(अत्थिणामे उदइय-खइय-खओवसमिय-पारिणामियनिप्फण्णे) ઔદયિક, ક્ષાયિક, ક્ષાયોપશમિક અને પારિણામિક, આ ચાર ભાવોના સંયોગથી નિષ્પન્ન થતો સાન્નિપાતિક ભાવ.

પાંચમો ભંગ-(अत्थिणामे उवसमिय-खइय खओवसमिय-पारिणामिय

तन्नाम औदयिकौपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम् ? औदयिकौपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम्–औदयिकमिति मानुष्यम्, उपशान्ताः कषायाः क्षायिकं सम्यक्त्वं, क्षायोपशमिकानि इन्द्रियाणि। एतत् खलु तन्नाम औदयिकौपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम् ?। कतरत् तन्नाम औदयिकौपशमिक क्षायिक-

---

समिय-पारिणामियनिप्फण्णे ?) औपशमिक क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक इन चार भावो के संयोग से निष्पन्न ५वां भंग है। (कयरे से नामे उदइयउवसमियखइयखओवसमियनिप्फण्णे) हे भदन्त! औदयिक, औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक इन चार भंगो के संयोग से जो सान्निपातिक भाव रूप भंग निष्पन्न होता है वह कैसा है?

उत्तर—(उदइयउवसमियखइयखओवसमियनिप्फण्णे) औदयिक औपशमिक-क्षायिक और क्षायोपशमिक इन चार भावों के संयोग से जो सान्निपातिक भाव निष्पन्न होता है वह ऐसा है-(उदइएत्ति मणुस्से उवसंता कसाया खइयं सम्मत्तं खओवसमियाइं इंदियाइं) यहां मनुष्य गति यह औदयिक भावरूप है, उपशांत कषाय ये औपशमिक भावरूप है, क्षायिक सम्यक्त्व यह क्षायिक भावरूप है, इन्द्रियां क्षायोपशमिक भाव रूप हैं। (एस णं से णामे उदइयउवसमिय, खइयखओवसमियनिप्फण्णे) इस प्रकार यह औदयिकौपशमिक क्षायिक क्षायोपशमिक नाम का इन भावों से निष्पन्न सान्निपातिक भाव का प्रथम भंग है।

निप्फण्णे) औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक अने पारिणामिक, आ चार भावोना संयोगथी बनतो सान्निपातिक भाव.

प्रश्न-(कयरे से णामे उदइयउवसमियखइयखओवसमियनिप्फण्णे?) हे भगवन्! औदयिक, औपशमिक, क्षायिक अने क्षायोपशमिक, आ चार भावोना संयोगथी बनता सान्निपातिक भाव રૂપ પહેલા भंगनुं स्वरूप केवुं छे?

उत्तर-(उदइय उवसमियखइयखओवसमियनिप्फण्णे) औदयिक, औपशमिक, क्षायिक अने क्षायोपशमिक, आ चार भावोना संयोगथी જે सान्निपातिक भाव રૂપ भंग बने छे ते आ प्रकारनो छे-(उदइयत्ति मणुस्से, उवसंता कसाया, खइयं सम्मत्तं, खओवसमियाइं इंदियाइं) आ सान्निपातिक भावमां मनुष्य गति औदयिक भाव રૂપ छे, उपशान्त कषाय औपशमिक भाव રૂપ छे, क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिक भाव રૂપ छे अने इन्द्रियो क्षायोपशमिक भावરૂપ छे. (एस णं से णामे उदइय उवसमियखइयखओवसमियनिप्फण्णे) आ प्रकारनो ते औदयिक, औपशमिक, क्षायिक अने क्षायोपशमिक, आ चार भावोना संयोगथी बनतो सान्निपातिक भाव छे.

पारिणामिकनिष्पन्नम्? औदयिकौपशमिकक्षायिकपारिणामिकनिष्पन्नम्-औदयिकमिति मानुष्यं, उपशान्ताः कषायाः, क्षायिकं सम्यक्त्वं, पारिणामिको जीवः। एतत् खलु तन्नाम औदयिकौपशमिकक्षायिकपारिणामिकनिष्पन्नम्२, कतरत् तन्नाम औदयिकौपशमिकक्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्?, औदयिकौपश-

---

(कयरे से नामे उदइयउवसमियखइयपारिणामियनिप्फण्णे?) हे भदन्त! औदयिक औपशमिक, क्षायिक और पारिणामिक इन चार भावों के संयोग से निष्पन्न जो सान्निपातिक भाव रूप भंग है वह कैसा है?

उत्तर—(उदइयउवसमियखइयपारिणामियनिप्फण्णे) औदयिक औपशमिक, क्षायिक, एवं पारणामिक इन चार भावों के-संयोग से निष्पन्न हुआ भंग ऐसा है-(उदइएत्ति मणुस्से उवसंता कसाया, खइयं सम्मत्तं पारिणामिए जीवे) यहां मनुष्यगति यह औदयिक है, उपशांत हुई कषायें औपशमिक भावरूप है, क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिकरूप है। तथा जीवत्व यह पारिणामिक रूप है। (एसणं से णामे उदइयउवसमिय खइयपारिणामियनिप्फण्णे) इस प्रकार औदयिक, औपशमिक, क्षायिक और पारिणामिक इन चार भंगों से निष्पन्न हुआ इस नाम का यह-द्वितीय भंग है। (कयरे से णामे उदइय उवसमियखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे?) हे भदन्त! औदयिक, औपशमिक, क्षायो-

---

પ્રશ્ન-(कयरे से णामे उदइयउवसमियखइयपारिणामियनिप्फण्णे) હે ભગવન્! ઔદયિક, ઔપશમિક, ક્ષાયિક અને પારિણામિક, આ ચાર ભાવોના સંયોગથી નિષ્પન્ન થતો જે સાન્નિપાતિક ભાવરૂપ બીજો ભંગ છે તેનું સ્વરૂપ કેવું છે?

ઉત્તર-(उदइयउवसमियखइय पारिणामियनिप्फण्णे) ઔદયિક, ઔપશમિક ક્ષાયિક અને પારિણામિક, આ ચાર ભાવોના સંયોગથી બનતા સાન્નિપાતિક ભાવનું સ્વરૂપ આ પ્રકારનું છે-(उदइए त्ति मणुस्से, उवसंता कसाया, खइयं सम्मत्तं, पारिणामिए जीवे) આ સાન્નિપાતિક ભાવમાં મનુષ્યગતિ ઔદયિક ભાવ રૂપ છે, ઉપશાન્ત કષાયો ઔપશમિક ભાવ રૂપ છે, ક્ષાયિક સમ્યક્ત્વ ક્ષાયિક ભાવ રૂપ છે અને જીવત્વ પારિણામિક ભાવ રૂપ છે. (एसणं से णामे उदइयउवसमियखइयपारिणामियनिप्फण्णे) આ પ્રકારનું ઔદયિક ઔપશમિક ક્ષાયિક અને પારિણામિક આ ચાર ભાવોના સંયોગથી બનેલા સાન્નિપાતિક ભાવ રૂપ બીજા ભંગનું સ્વરૂપ છે.

मिकक्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्-औदयिकमितिमानुष्यम्, उपशान्ताः कषायाः, क्षायोपशमिकानि इन्द्रियाणि, पारिणामिको जीवः। एतत् खलु तन्नाम औदयिकौपशमिक क्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम् ३। कतरत् तन्नाम औदयिक क्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्? औदयिकक्षायिकक्षायोपशमिक-

पशमिक, और पारिणामिक इन चार भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ भंग कैसा है?

उत्तर-(उदइयउवसमियखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे) औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक एवं पारिणामिक इन चार भावों के संयोग से निष्पन्न तीसरा भंग ऐसा है-(उदएत्ति मणुस्से, उवसंता कसाया, खओवसमियाइं इंदियाइं, पारिणामिए जीवे) मनुष्य गति यह औदयिक भावरूप है, उपशांत हुई कषायें औपशमिक भाव हैं, इन्द्रियां क्षायोपशमिक भाव रूप है और जीवत्व यह पारिणामिक भाव रूप है। (एस णं से णामे उदइयउवसमियखओवसमिय पारिणामियनिप्फण्णे) इस प्रकार यह औदयिक, औपशमिक और पारिणामिक इन चारभावों के संयोग से निष्पन्न हुआ इस नामका तृतीय भंग है। (कयरे से णामे उदइय खइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे ?) हे भदन्त ! औदयिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक इन चार भावों के संयोग से निष्पन्न भंग कैसा है?

प्रश्न-(कयरे से णामे उदइयउवसमियखओवसमियपारिणामियनिप्फन्ने) हे भगवन्! औदयिक, औपशमिक,, क्षायोपशमिक अने पारिणामिक, आ चार भावोना संयोगथी बनता सान्निपातिक भाव रूप त्रीजा भंगनुं स्वरूप केवुं छे?

उत्तर-(उदइयउवसमियखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे) औदयिक, औपशमिक क्षायोपशमिक अने पारिणामिक, आ चार भावोना संयोगथी बनतो त्रीजो सान्निपातिक भाव आ प्रकारनो छे-(उदइएत्ति मणुस्से, उवसंता कसाया, खओवसमियाइं इंदियाइं, पारिणामिए जीवे) त्रीजा प्रकारना सान्निपातिक भावमां मनुष्यगति औदयिक भाव रूप छे, उपशान्त कषायो औपशमिक भाव रूप छे, इन्द्रियो क्षायोपशमिक भाव रूप छे अने जीवत्व पारिणामिक भाव रूप छे. (एसणं से णामे उदइयउवसमियखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे) आ प्रकारनो आ "औदयिकौपशमिक क्षायोपशमिक पारिणामिक" नामनो त्रीजो भंग छे.

प्रश्न-(कयरे से णामे उदइयखइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे ?) हे भगवन्! औदयिक, क्षायिक क्षायोपशमिक अने पारिणामिक, आ चार भावोना संयोगथी बनता चोथा प्रकारना सान्निपातिक भावनुं स्वरूप केवुं छे.

पारिणामिकनिष्पन्नम्-औदयिकमिति मानुष्यं, क्षायिकं सम्यक्त्वं, क्षायोपशमिकानि इन्द्रियाणि, पारिणामिको जीवः। एतत् खलु तन्नाम औदयिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्४। कतरत् तन्नाम औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकनिष्पन्नम्?, औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्-उपशान्ताः कषायाः, क्षायिकं सम्यक्त्वं, क्षायोपशमिकानि इन्द्रियाणि, पारिणा-

(उदइय खइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे) औदयिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक-और पारिणामिक इन चार भावो के संयोग से निष्पन्न-हुआ भंग ऐसा है-(उदइएत्ति मणुस्से खइयं सम्मत्तं, खओवसमियाइं इंदियाइं, पारिणामिए जीवे) मनुष्यगति यह औदयिक भावरूप है, क्षायिक सम्यक्त्व यह क्षायिक भावरूप है, इंद्रियां ये क्षायोपशमिक भावरूप है और जीवत्व यह पारिणामिक भावरूप है। (एस णं से नामे उदइय खइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे) इस प्रकार यह औदयिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक इनचार भावों से निष्पन्न हुआ इस नामका चतुर्थ भंग है। (कयरे से नामे उवसमिय खइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे?) हे भदन्त! औपशमिक क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक इन चार भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ पांचवां भंग कैसा है?

उत्तर—(उवसमियखइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे)

ઉત્તર-(उदइयखइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे) औदयिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक अने पारिणामिक, आ चार भावोना संयोगथी बनता सान्निपातिक भावनुं स्वरूप आ प्रकारनुं छे, એટલે કે ચોથો ભંગ આ પ્રકારનો છે-(उदइए त्ति मणुस्से, खइयं सम्मत्तं, खओवसमियाइं इंदियाइं, पारिणामिए जीवे) આ ચોથા પ્રકારના સાન્નિપાતિક ભાવમાં મનુષ્યગતિ औदयिक भाव રૂપ છે, क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिक भाव રૂપ છે, ઇન્દ્રિયો क्षायोपशमिक भाव-રૂપ છે અને જીવત્વ पारिणामिक भाव રૂપ છે. (एस णं से णामे उदइयखइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे) આ પ્રકારનું औदयिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक અને પારિણામિક, આ ચાર ભાવોના સંયોગથી બનતા "औदयिक क्षायोपशमिक पारिणामिक" નામના ચોથા ભંગનું સ્વરૂપ છે.

પ્રશ્ન-(कयरे से णामे उवसमियखइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे?) હે ભગવન્! औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक અને પારિણામિક, આ ચાર ભાવોના સંયોગથી બનતો પાંચમાં પ્રકારનો સાન્નિપાતિક ભાવ કેવો છે?

मिको जीवः। एतत् खलु तन्नाम औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिक-निष्पन्नम् ५ ॥सू० १६०॥

टीका—'तत्थ णं जे ते पंच' इत्यादि—

पञ्चसु भावेषु पञ्चमं भावं परिहाय अविशिष्टभावनिष्पन्नत्वेन प्रथमो भङ्गो बोध्यः। चतुर्थं परिहाय शेषनिष्पन्नत्वेन द्वितीयो भङ्गः। तृतीयं परिहाय शेष-

---

औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक इन चार भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ भंग ऐसा है-(उवसंता कसाया, खइयं सम्मत्तं, खओवसमियाइं इंदियाइं पारिणामिए जीवे) उपशांत हुई कषायें औपशमिकभाव है, क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिक भाव रूप है, इन्द्रियां क्षायोपशमिक भावरूप है, और जीवत्व यह पारिणामिक भाव रूप है (एस णं से नामे उवसमिय खइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे) इस प्रकार यह औपशमिकक्षायिक क्षायोपशमिक और पारिणामिक इन चार भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ इस नामका पांचवां भंग है।

भावार्थ—इस सूत्रद्वारा सूत्रकारने चार २ भावों के संयोग से ५ भंग निष्पन्न हुए हैं वे कहे हैं। इनमें पांचवां भाव जो पारिणामिक भाव है उसे छोड़कर बाकी के चार भावों के संयोग से प्रथम भंग निष्पन्न हुआ है। चौथा भाव जो क्षायोपशमिक भाव है उसे छोड़कर शेष चारभावों के संयोग से द्वितीय भंग निष्प-

---

ઉત્તર-(उवसमियखइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे) ઔપશમિક, ક્ષાયિક, ક્ષાયોપશમિક અને પારિણામિક, આ ચાર ભાવોના સંયોગથી બનતો પાંચમો ભંગ આ પ્રકારનો છે-(उवसंता कसाया, खइयं सम्मत्तं, खओवसमियाइं इंदियाइं' पारिणामिए जीवे) આ સાન્નિપાતિક ભાવમાં ઉપશાન્ત કષાયો ઔપશમિક ભાવ રૂપ છે, ક્ષાયિક સમ્યક્ત્વ ક્ષાયિક ભાવ રૂપ છે, ઈન્દ્રિયો ક્ષાયોપશમિક ભાવ રૂપ છે અને જીવત્વ પારિણામિક ભાવ રૂપ છે. (एसणं से नामे उवसमियखइयखओवसमिय, पारिणामियनिप्फण्णे) આ પ્રકારનો ઔપશમિક, ક્ષાયિક, ક્ષાયોપશમિક અને પારિણામિક, આ ચાર ભાવોના સંયોગથી બનતો "ઔપશમિક ક્ષાયિક ક્ષાયોપશમિક પારિણામિક" નામનો પાંચમો ભંગ સમજવો.

ભાવાર્થ-ચાર ચાર ભાવોના સંયોગથી બનતા પાંચ ભંગોનું સૂત્રકારે આ સૂત્ર દ્વારા નિરૂપણ કર્યું છે. પહેલો ભંગ આ પ્રકારે બન્યો છે-પાંચ ભાવોમાંના છેલ્લા પારિણામિક ભાવ સિવાયના સંયોગથી પહેલો ભંગ બન્યો છે.

निष्पन्नत्वेन तृतीयो भङ्गः। द्वितीयं परिहाय शेषनिष्पन्नत्वेन चतुर्थो भङ्गः। प्रथमं परिहाय अवशिष्टभावचतुष्टयनिष्पन्नत्वेन पञ्चमश्च भङ्गो बोध्यः। एतान् पञ्च भङ्गान् विवरीतुमाह-'कयरे से णामे' इत्यादि। एषां व्याख्या पूर्ववद् बोध्या। एषु पञ्चसु भङ्गेषु तृतीयो भङ्गो नारकादिगतिचतुष्टये भवति। तथाहि-औदयिकी नारकाद्यन्यतमा गतिः, नारकतिर्यग्देवगतिषु प्रथमसम्यक्त्वलाभकाले एव उपशमभावो भवति, मनुष्यगतौ तु तत्रोपशमश्रेण्यां चौपशमिकं सम्यक्त्वम्, क्षायोपशमिकानीन्द्रियाणी, पारिणामिकं जीवत्वम्, इत्येवमयं भङ्गकः सर्वासु

न्न हुआ है। तृतीय भाव जो क्षायिक भाव है उसे छोड़कर बाकी के चार भावों के संयोग से तृतीय भंग निष्पन्न हुआ है। द्वितीय जो औपशमिक भाव है उसे छोड़कर शेष भावों के संयोग से चतुर्थ भंग निष्पन्न हुआ है। प्रथम भाव जो औदयिक भाव है उसे छोड़कर शेष-भावों के संयोग से पंचम भंग निष्पन्न हुआ है। इन पांच भंगों में से जो औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक एवं पारिणामिक इन चार भावोंके संयोग से निष्पन्न तृतीयभंग है वह नारक आदि चारगतियों में होता है। वहां विवक्षितगति औदयिकी है। इनमें प्रथम सम्यक्त्व के लाभकाल में ही उपशमभाव होता है। मनुष्यगति में उपशमश्रेणी में औपशमिक सम्यक्त्व होता है। इंद्रियां यहां क्षायोपशमिक भावरूप हैं। जीवत्व पारिणामिक भाव है इस प्रकार यह तृतीयभंग सर्व गतियो

બીજો ભંગ-ક્ષાયોપશમિક ભાવ નામના ચોથા ભાવને છોડીને બાકીના ચાર ભાવોના સંયોગથી બીજો ભંગ બન્યો છે.

ત્રીજો ભંગ-ક્ષાયિક ભાવ નામના ત્રીજા ભાવ સિવાયના ચારે ભાવોના સંયોગથી ત્રીજો ભંગ બન્યો છે.

ચોથો ભંગ-ઔપશમિક નામના બીજા ભાવને છોડી દઈને બાકીના ચાર ભાવોના સંયોગથી ચોથો ભંગ બન્યો છે.

પાંચમો ભંગ-ઔદયિક નામના પહેલા ભાવને છોડી દઈને બાકીના ચાર ભાવોના સંયોગથી પાંચમો ભંગ બન્યો છે.

ઔદયિક, ઔપશમિક, ક્ષાયોપશમિક અને પારિણામિક, આ ચાર ભાવોના સંયોગથી જે ત્રીજો ભંગ બને છે-જે ત્રીજા પ્રકારનો સાન્નિપાતિક ભાવ નિષ્પન્ન થાય છે તેનો નારક આદિ ચારે ગતિઓમાં સદ્ભાવ હોય છે ત્યાં નારક આદિ ગતિ ઔદયિક ભાવરૂપ છે. આ ગતિઓમાં પ્રથમ સમ્યક્ત્વના પ્રાપ્તિ કાળે જ ઉપશમ ભાવનો સદ્ભાવ હોય છે, મનુષ્ય ગતિમાં તો ઉપશમ શ્રેણીમાં ઔપશમિક સમ્યક્ત્વનો સદ્ભાવ હોય છે ઇન્દ્રિયો ક્ષાયોપ-

गतिषूपलभ्यते। यदिह सूत्रे-'उदइएत्ति मणुस्से उवसंता कसाया' इत्युक्तम्, तन्मनुष्यगत्यपेक्षयोक्तम्। उपशमश्रेण्यां मनुष्यत्वोदयः कषायोपशमश्च भवतः। मूलोक्तं तूपलक्षणं बोध्यम्। एवम् औदयिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नश्चतुर्थभङ्गोऽपि नारकादिगतिचतुष्टयविषयो बोध्यः। तृतीयभङ्गवदेवात्रापि भावना कर्तव्या। विशेषस्त्वयमेव-तृतीयभङ्गे यदुपशमसम्यक्त्वमुक्तं तत्स्थानेत्विह क्षायिकसम्यक्त्वं वाच्यम्। क्षायिकसम्यक्त्वं तु सर्वास्वपि गतिषु जायते। नारकतिर्यग्देवगतिषु पूर्वप्रतिपन्नस्य प्रतिपद्यमानस्य चापि क्षायिकसम्यक्त्वं

में पाया जाता है। जो इस सूत्रमें "उदइएत्ति मणुस्से उवसंता कसाया" ऐसापाठ कहा है वह मनुष्यगति की अपेक्षा से कहा है। उपशमश्रेणी में मनुष्यत्व का उदय और कषायों का उपशम होता है। मूलोक्तपाठ उपलक्षण है ऐसाजानना चाहिये। इसीप्रकार औदयिक क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक इनचार भावों के संयोग से चौथा भंग बना है, वह भी नारक आदि चारगतियों में होता है ऐसा जानना चाहिये। तृतीय भंग की तरह ही यहां पर भी कथन समझना चाहिये। परन्तु इसमें विशेषता इतनी ही है कि तृतीय भंग में उपशम सम्यक्त्व कहा है सो उसके स्थान में यहां क्षायिक सम्यक्त्व समझना चाहिये। क्षायिकसम्यक्त्व चारों गतियों में होता है। नारक, तिर्यक् और देव इन गतियों में-पूर्व प्रतिपन्न जीव को ही क्षायिक सम्यक्त्व होता है। और मनुष्यगति

શમિક ભાવ રૂપ અને જીવત્વ પારિણામિક ભાવરૂપ હોય છે. આ પ્રકારે ત્રીજો ભંગ બધી ગતિઓમાં શકય બને છે. આ સૂત્રમાં "उदइएत्ति मणुस्से उवसंता कसाया" આ પ્રકારનો જે પાઠ આપવામાં આવ્યો છે તે મનુષ્ય ગતિની અપેક્ષાએ આપવામાં આવ્યો છે. ઉપશમ શ્રેણીમાં મનુષ્યત્વનો ઉદય અને કષાયોનો ઉપશમ હોય છે. મૂલોક્ત પાઠ ઉપલક્ષણ છે એવું સમજવું જોઇએ.

એજ પ્રમાણે ઔદયિક, ક્ષાયિક, ક્ષાયોપશમિક અને પારિણામિક, આ ચાર ભાવોના સંયોગથી જે ચોથો ભંગ બને છે, તેનો પણ નારક આદિ ચારે ગતિઓમાં સંભવ હોય છે, એમ સમજવું ત્રીજા ભંગના જેવું જ કથન અહીં પણ સમજવું જોઈએ, પરન્તુ ત્રીજા ભંગમાં જે ઉપશમ સમ્યક્ત્વ કહ્યું છે તેને બદલે અહીં ક્ષાયિક સમ્યક્ત્વ સમજવું જોઇએ ચારે ગતિઓમાં ક્ષાયિક સમ્યક્ત્વનો સદ્ભાવ સંભવી શકે છે. નારક, તિર્યંચ અને દેવ, આ ત્રણ ગતિઓમાં પૂર્વપ્રતિપન્ન જીવમાં જ ક્ષાયિક સમ્યક્ત્વ હોય છે. પરન્તુ મનુષ્યગતિમાં તો પૂર્વપ્રતિપન્નમાં અને પ્રતિપદ્યમાનમાં ક્ષાયિક

भवति। इत्थं चात्र तृतीयचतुर्थ भङ्गौ एव वस्तुगतत्वेन संभवतः। इतरे भङ्गास्तु प्रदर्शनमात्रम्। तद्रूपेण तेषां वस्तुन्यसंभवादिति ॥सू० १६०॥

अथ पञ्चकसंयोगं निरूपयति—

मूलम्–तत्थं णं जे से एक्के पंचगसंजोए से णं इमे–अत्थि नामे उदइय उवसमिय खइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे? कयरे से नामे उदइयउवसमियखइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे?, उदइय उवसमियखइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे–उदइएत्ति मणुस्से उवसंता कसाया खइयं सम्मत्तं खओवसमियाइं इंदियाइं पारिणामिए जीवे। एस णं से णामे जाव पारिणामियनिप्फण्णे। से तं सन्निवाइए। से तं छण्णामे ॥सू०१६१॥

छाया—तत्र खलु यः स एकः पञ्चकसंयोगः स खलु अयम्–अस्ति नाम औदयिकौपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्?। कतरत् तन्नाम

में पूर्व प्रतिपन्न को और प्रतिपद्यमान को भी होता है। इसप्रकार तृतीय और चतुर्थ ये दो भंग ही वास्तविक रूप में वस्तुगत संभवित होते हैं। इतर शेष–तीन भंग नहीं पाये जाते हैं ॥सू० १६०॥

अब सूत्रकार पांच भावों के संयोग से जो–भंग निष्पन्न होता है उसकी प्ररूपणा करते हैं–"तत्थ णं जे से एक्के" इत्यादि।

शब्दार्थ–(तत्थ णं जे से एक्के पंचक संयोगे से णं इमे) पांचोंभावों के संयोग से जो एक भंग उत्पन्न होता है वह इस प्रकार से है–

સમ્યક્ત્વ હોય છે. આ પ્રકારે અહીં ત્રીજો અને ચોથો, આ બે ભંગ જ વાસ્તવિક રૂપે વસ્તુગત સંભવિત હોય છે બાકીના ત્રણ ભંગો વાસ્તવિક રૂપે તો સંભવિત જ નથી છતાં પ્રરૂપણા કરવાના હેતુથી જ અહીં તે ભંગોનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું છે. ॥સૂ૦૧૬૦॥

પાંચ ભાવોના સંયોગથી જે સાન્નિપાતિક ભાવ નિષ્પન્ન થાય છે, તેની સૂત્રકાર હવે પ્રરૂપણા કરે છે—"तत्थ णं जे से एक्के" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ–(तत्थणं जे से एक्के पंचगसंजोगे से णं इमे) પાંચે ભાવોના સંયોગથી જે એક ભંગ બને છે તે આ પ્રમાણે છે-(अत्थिणामे उदइयउवस-

औदयिकौपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम्?, औदयिकौपशमिक-क्षायिक क्षायोपशमिकपारिणामिकनिष्पन्नम् औदयिकमितिमानुष्यम्, उपशान्ताः कषायाः, क्षायिकं सम्यक्त्वं, क्षायोपशमिकानि इन्द्रियाणि, पारिणामिको जीवः।

(अत्थि णामे उदइय उवसमियखइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे?) औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक इन पांचों भावों के संयोग से निष्पन्न-हुआ औदयिकौपशमिक क्षायिक क्षायोपशमिक पारिणामिक इस नामका सान्निपातिक भाव है। (कयरे से नामे उदइय उवसमियखइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे?) हे भदन्त! औदयिकौपशमिक क्षायिक क्षायोपशमिक पारिणामिक नाम का जो पांचों भावों के संयोग से निष्पन्न सान्निपातिक-भाव वह कैसा है?

उत्तर-(उदइयउवसमियखइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे) औदयिक, औपशमिक क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक इन पांचों भावों के संयोग से जो सान्निपातिक भाव निष्पन्न होता है वह ऐसा है-(उदइएत्ति मणुस्से उवसंता कसाया खइयं सम्मत्तं खओवसमियाइं इंदियाइं पारिणामिए जीवे) यहां इस सान्निपातिक भाव में मनुष्य गति यह औदयिकी है, उपशमित कषायें औपशमिक भाव है क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिकभाव है इन्द्रियां क्षायोपशमिकभाव है जीवत्व

मिय खइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे) औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक अने पारिणामिक, आ पांचे भावोना संयोगथी बनतो "औदयिकौपशमिक-क्षायिक क्षायोपशमिक" नामनो सान्निपातिक भाव, आ એક જ ભંગ બને છે.

प्रश्न-(कयरे से णामे उदइयउवसमियखइयखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे?) હે ભગવન્! औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक अने पारिणामिक, આ પાંચે ભાવોના સંયોગથી નિષ્પન્ન થતો સાન્નિપાતિક ભાવ કેવો છે?

उत्तर-(उदइयउवसमियखओवसमियपारिणामियनिप्फण्णे) औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक अने पारिणामिक, आ पांचे भावोना संयोगथी निष्पन्न थतो सान्निपातिक भाव आ प्रकारनो छे-(उदइएत्ति मणस्से, उवसंता कसाया, खइयं सम्मत्तं, खओवसमियाइं इंदियाइं, पारिणामिए जीवे) आ सान्निपातिक भावमां मनुष्यगति औदयिक भाव રૂપ છે, ઉપશાન્ત કષાયો औपशमिक भाव રૂપ છે, क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिक भाव રૂપ છે, ઇન્દ્રિયો क्षायोपशमिक भाव રૂપ છે અને જીવત્વ पारिणामिक भाव રૂપ છે.

एष खलु तन्नाम यावत् पारिणामिकनिष्पन्नम्। स एष सान्निपातिकः। तदेतत् षण्णाम ॥सू० १६१॥

टीका—'तत्थ णं' इत्यादि—

व्याख्या सुगमा। अयं पञ्चक संयोगस्तस्यैव संभवति यः क्षायिकसम्यग्दृष्टिः सन् उपशमश्रेणिं प्रतिपद्यते। अन्यस्य तु न संभवति। अन्यत्र हि समुदितभावपञ्चकस्यास्यासंभवादिति। अत्रेदं बोध्यम्—एकः क्षायिकपारिणामिकभावद्वयनिष्पन्नरूपो नवमो भङ्गो द्विकसंयोगे, औदयिकक्षायिकपारिणामिक भावत्रयनिष्पन्नरूपः पञ्चमः, औदयिकक्षायोपशमिकपारिणामिक भावत्रयनिष्पन्न-

---

यह पारिणामिक भाव है। (एसणं से णामे जाव पारिणामियनिप्फण्णे, से तं सन्निवाइए से तं छण्णामे) इस प्रकार यह पांच भावों के संयोग से निष्पन्न हुए इस नाम के सान्निपातिक भाव का स्वरूप है। यहां तक औदयिक भाव से लेकर पारिणामिक भाव तक के पांच भावों के संयोग-से जीतने सान्निपातिक भाव निष्पन्न होते हैं उनका प्रतिपादन किया-इस प्रकार यह छह प्रकार के नामका स्वरूप कथन समाप्त हुआ।-

भावार्थ-सूत्रकार ने इस सूत्रद्वारा पांचो भावों के संयोग से निष्पन्न हुए सान्निपातिक भाव का कथन किया है। यह पंचक संयोग रूप सान्निपातिक भाव उसी को संभवित होता है, जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि होकर उपशम श्रेणी पर चढता है। अन्यजीव को नहीं क्योंकि; उस को इस समुचित भाव पंचकरूप सान्निपातिक भावका अभाव होता है। यहां पर इस प्रकार से जानना चाहिये-द्विक संयोग में क्षायिक और

(एस णं से णामे जाव परिणामियनिप्फण्णे, से तं सन्निवाइए, से तं छण्णामे) આ પ્રમાણે આ પાંચે ભાવોના સંયોગથી નિષ્પન્ન થયેલ આ નામનું સાન્નિપાતિક સ્વરૂપ છે અહીં સુધી ઔદયિક ભાવથી માંડીને પારિણામિક ભાવ સુધીના પાંચ ભાવોના સંયોગથી જેટલા સાન્નિપાતિક ભાવો નિષ્પન્ન થાય છે. તેમનું પ્રતિપાદન કર્યું છે. આ પ્રમાણે આ છ પ્રકારના નામનું સ્વરૂપ-કથન પુરૂં થયું છે.

ભાવાર્થ-સૂત્રકારે આ સૂત્ર વડે પાંચે ભાવોના સંયોગથી નિષ્પન્ન થયેલ સાન્નિપાતિક ભાવનું કથન કર્યું છે. આ પંચક સંયોગ રૂપ સાન્નિપાતિક ભાવ તેમને જ સંભવે છે કે જે ક્ષાયિક સમ્યગ્દૃષ્ટિ થઈને ઉપશમ શ્રેણી પર ચઢે છે. બીજાઓને નહિ કારણ કે તેમને આ સમુચિતભાવ પંચક રૂપ સાન્નિપાતિક ભાવનો અભાવ હોય છે અહીં એમ સમજવું જોઈએ કે દ્વિક-સંયોગમાં ક્ષાયિક અને પારિણામિક આ બે ભાવોના સંયોગથી નિષ્પન્ન

षष्ठश्चेति द्वौ भङ्गौ त्रिकसंयोगे, औदयिकौपशमिक क्षायोपशमिकपारिणामिक भाव चतुष्टयनिष्पन्नरूपस्तृतीयः, औदयिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकभावचतुष्टय निष्पन्नरूपश्चतुर्थश्चेति द्वौ भङ्गौ चतुष्कसंयोगे, भावपञ्चकरूप एको भङ्गः पञ्चक-संयोगे। इत्येवमेते षड्भङ्गाः सम्भाव्यत्वेन बोध्याः। इतोऽपरेविंशतिर्भङ्गास्तु संभाव्यत्वरहिता अपि योगप्रदर्शनार्थमेव प्रोक्ताः। षण्णामसूत्रे ये द्विकसंयोग-

---

पारिणामिक, इन दो भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ जो इस नाम का नौवां भंग है वह, तथा त्रिक संयोग में औदयिक, क्षायिक और पारिणामिक, इन तीन भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ इस नाम का पांचवां-भंग और औदयिक, क्षायोपशमिक एवं पारिणामिक, इन तीन भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ इस नामका छठा भंग, तथा चतुष्क संयोग में औदयिक, औपशमिक क्षायोपशमिक और पारिणामिक इन चार भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ इस नाम का तृतीय भंग, और औदयिक क्षायिक, क्षायोपशमिक एवं पारिणामिक इन चार भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ इस नाम का चौथा भंग तथा पांचो भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ एक इस नाम का भंग ये छह भंग जीवों में वास्तविकरूप से पाये जाते हैं और इनसे अतिरिक्त जो २० भंग हैं; वे वास्तविक रूप से-नहीं पाये जाते हैं; ऐसा, जानना चाहिये। २० भंग जब कि भव्यत्व रहित है तो फिर ये क्यों कहे गये हैं ? तो इस

થયેલ જે આ નવમો ભંગ છે તે તેમજ ત્રિકસંયોગમાં ઔદયિક ક્ષાયિક, અને પારિણામિક આ ત્રણ ભાવોના સંયોગથી નિષ્પન્ન થયેલ આ નામનો પાંચમો ભંગ અને ઔદયિક, ક્ષાયોપશમિક અને પારિણામિક એ ત્રણ ભાવોના સંયોજથી નિષ્પન્ન થયેલ છઠો ભંગ તેમજ ચતુષ્ક સંયોગમાં ઔદયિક, ઔપશમિક, ક્ષાયોપશમિક અને પારિણામિક આ ચાર ભાવોના સંયોગથી નિષ્પન્ન થયેલ આ નામનો ત્રીજો ભંગ અને ઔદયિક, ક્ષાયિક, ક્ષાયોપશમિક અને પારિણામિક આ ચાર ભાવોના સંયોગથી નિષ્પન્ન થયેલ આ નામે ચોથો ભંગ તથા પાંચે ભાવોના સંયોગથી નિષ્પન્ન થયેલ એક આ નામે ભંગ એ છ ભંગો જીવોમાં વાસ્તવિક રૂપે મળે છે અને એમના સિવાય જે ૨૦ ભંગો છે. તે વાસ્તવિક રૂપે પ્રાપ્ત થતા નથી આમ સમજવું જોઈએ ૨૦ ભંગો જ્યારે ભવ્યત્વ રહિત છે તો પછી એમનું કથન શા માટે કરવામાં આવ્યું છે ? આ શંકાનું નિરાકરણ આ પ્રમાણે છે કે આ ૨૦

त्रिकसंयोगचतुष्कसंयोगपञ्चकसंयोगलक्षणा भङ्गास्ते किल सिद्धकेवलिगतिचतुष्टयोपशान्तमोहमनुष्यविषया विज्ञेयाः। इयमत्रभावना-द्विकसंयोगभङ्गेष्वेकः क्षायिकपारिणामिकभावद्वयनिष्पन्नरूपो नवमो भङ्गः सिद्धेषु भवति। त्रिकसंयोगभङ्गेषु औदयिकक्षायिकपारिणामिकभावत्रयनिष्पन्नरूपः पञ्चमो भङ्गः केवलिषु, औदयिकक्षायोपशमिकपारिणामिकभावत्रयनिष्पन्नरूपः षष्ठो भङ्गो गतिचतुष्टये भवति। चतुष्कसंयोगभङ्गेषु-औदयिकौपशमिकक्षायोपशमिकपारिणामिकभावचतु-

शंका का समाधान यह है कि-ये २० बीसभंग योग प्रदर्शन के निमित्त ही कहे गये हैं अर्थात् इन पांच भावों के योग से किस २ प्रकार से कितने भंग बन सकते हैं ? यह प्रकट करने के अभिप्राय से कहे गये हैं। षण्णाम सूत्र में जो द्विकसंयोग, त्रिकसंयोग, चतुष्कसंयोग और पंचकसंयोग रूप भंग हैं, वे सिद्धों में, केवलियों में, चारों गतियों में, और उपशांत मोहमनुष्यों में पायेजाते हैं; ऐसा जानना चाहिये-अर्थात् द्विकसंयोगवाले भंगों में जो क्षायिक पारिणामिक भावद्वय से निष्पन्न नौवां भंग है, वह सिद्धों में पाया जाता है। त्रिकसंयोगवाले भंगों में जो औदयिक, क्षायिक और पारिणामिक, इन तीन भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ पंचम भंग है, वह केवलियों में पाया जाता है। औदयिक क्षायोपशमिक, और पारिणामिक इन तीन भावों के संयोग से जन्य छठा भंग चार गतियों-में पाया जाता है। चतुष्क संयोगवाले भंगों में औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक-इन

ભંગો યોગ પ્રદર્શનના નિમિત્તથી કહેવામાં આવ્યા છે. એટલે કે આ પાંચ ભાવોના યોગથી કેવી રીતે કેટલા ભંગો થઈ શકે છે? આ સ્પષ્ટ કરવાના ઉદ્દેશથી જ કહેવામાં આવ્યાં છે. 'षण्णाम' સૂત્રમાં જે દ્વિકસંયોગ, ત્રિકસંયોગ, ચતુષ્ક સંયોગ અને પંચક સંયોગ રૂપ ભંગો છે તે સિદ્ધોમાં કેવલિઓમાં, ચારે ગતિઓમાં અને ઉપશાંત મોહવાળા માણસોમાં મળે છે. આમ સમજવું જોઈએ એટલે કે દ્વિકસંયોગવાળા ભંગોમાં જે ક્ષાયિક પારિણામિક ભાવદ્વયથી નિષ્પન્ન નવમો ભંગ છે. તે સિદ્ધોમાં પ્રાપ્ત થાય છે. ત્રિકસંયોગવાળા ભાગોમાં જે ઔદયિક, ક્ષાયિક અને પારિણામિક આ ત્રણ ભાવોના સંયોગથી નિષ્પન્ન થયેલ પંચમ ભંગ છે, તે કેવલિઓમાં પ્રાપ્ત થાય છે. ઔદયિક, ક્ષાયોપશમિક અને પારિણામિક આ ત્રણ ભાવોના સંયોગથી નિષ્પન્ન છઠો ભંગ ચારે ગતિઓમાં પ્રાપ્ત થાય છે ચતુષ્ક સંયોગવાળા ભંગોમાં ઔદયિક ઔપશમિક-ક્ષાયોપશમિક અને પારિણામિક આ ચાર ભાવોના સંયોગથી નિષ્પન્ન થયેલ ત્રીજો ભંગ તેમજ ઔદયિક, ક્ષાયિક,

तृयनिष्पन्नरूपस्तृतीयः, औदयिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकभावचतुष्टय-निष्पन्नरूपश्चतुर्थश्चेत्येतावपि द्वौ भङ्गौ गतिचतुष्टयेऽपि लभ्येते। भावपञ्चकनिष्पन्न-रूप एको भङ्ग उपशान्तमोहमनुष्येष्वेव लभ्यते। विस्तरतस्तु स्वस्वभङ्गस्वरूपे विलोकनीयम्। प्रकृतमुपसंहरन्नाह-स एष सान्निपातिक इति। इत्थमुक्तः सान्नि-पातिको भावः। उक्ते तस्मिंश्चोक्ताः षडपि भावाः। ते च तद्वाचकैर्नामभिर्विना प्ररूपयितुं न शक्यन्ते इति तद्वाचकान्यौदयिकादीनि नामान्यप्युक्तानि। एतैश्च षड्भि-रपि धर्मास्तिकायादेः समस्तस्यापि वस्तुनो ग्रहणात् इदं षट् प्रकारकं सत् समस्तस्या-पि वस्तुनो नाम षण्णामेत्युच्यते। एतदेवोपसंहरन्नाह-तदेतत् षण्णामेति॥सू.१६१॥

चार भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ तृतीय भंग तथा औदयिक क्षायिक, क्षायोपशमिक एवं-पारिणामिक इन चार भावों के संयोग से निष्पन्न हुआ चौथा भंग चारों गतियों में पाये जाते हैं, तथा पांचों भावो के संयोग से-निष्पन्न हुआ चौथाभंग ये दोनों भी भंग चारों गतियों में पाये जाते हैं तथा पांचों भावों के संयोग से-निष्पन्न हुआ एकभंग उप-शांतमोही मनुष्यों में ही पाया जाता है। विस्तार पूर्वक इनका कथन अपने २ भंग-स्वरूप में देखलेना चाहिये। इसप्रकार सान्निपातिकभाव का कथन है-इस भाव के कथित होने पर अब छहों भाव कथित हो चुके। इन भावोंका कथन उनके वाचक नामों के विना हो नहीं सकता है इसलिये उन भावों के वाचक औदयिक आदि नामों को-भी यहां कहा गया है। इन छह नामों से भी-धर्मास्तिकायादिक समस्त वस्तुओं का ग्रहण हो जाता है, इसलिये ये समस्त वस्तु के नाम छह प्रकार के होने से छह नाम इस प्रकार से कहलाये हैं। ॥सू० १६१॥

ક્ષાયોપશમિક અને પારિણામિક આ ચાર ભાવોના સંયોગથી નિષ્પન્ન થયેલ ચોથો ભંગ આ બન્ને ભંગો પણ ચારે ગતિઓમાં પ્રાપ્ત થાય છે. તેમજ પાંચે ભાવોના સંયોગથી નિષ્પન્ન થયેલ એક ભંગ ઉપશાંત મોહી મનુષ્યોમાં જ પ્રાપ્ત થાય છે. આ વિષે સવિસ્તર વિવેચન પોતપોતાના ભંગ-સ્વરૂપમાં જોઈ લેવું જોઇએ આ પ્રમાણે સાન્નિપાતિક ભાવનું કથન છે. આ ભાવને કહ્યા બાદ છએ છ ભાવો કથિત થઈ ગયા. આ ભાવોનું કથન તેમના વાચકનામો વગર સંભવે જ નહિ એટલા માટે તે ભાવોના વાચક ઔદયિક વગેરે નામોનું પણ અહીં કથન થયું છે. આ છ નામોથી પણ ધર્માસ્તિ-કાયાદિક સમસ્ત વસ્તુઓનું ગ્રહણ થઈ જાય છે એટલા માટે આ બધી વસ્તુઓના છ પ્રકારના નામો હોવાથી છ નામો આ પ્રમાણે કહેવામાં આવ્યાં છે. ॥સૂ૦૧૬૧॥

अथ सप्तनाम प्ररूपयति—

मूलम्—से किं तं सत्त नामे ? सत्तनामे—सत्त सरा पण्णत्ता, तं जहा—सज्जे रिसहे गंधारे, मज्झिमे पंचमे सरे। धेवए चेव निस्साए सरा सत्त वियाहिया॥१॥सू०१६२॥

छाया—अथ किं तत् सप्त नाम ? सप्त नाम—सप्त स्वराः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—षड्जः ऋषभः गान्धारः मध्यमः पञ्चमः स्वरः। धैवतश्चैव निषादः, स्वराः सप्त व्याख्याताः॥१॥सू०१६२॥

टीका—'से किं तं सत्तनामे' इत्यादि—

अथ किं तत् सप्तनाम ? इति शिष्यप्रश्नः। उत्तरयति—सप्तनाम=सप्तविधं नाम सप्तनाम, तच्च—सप्त=सप्त संख्यकाः स्वराः=ध्वनिविशेषाः प्रज्ञप्ताः। तानेव स्पष्टयति—तद्यथा—षड्ज ऋषभ इत्यादिना। तत्र—षड्जः—नासिकाकंठोरस्तालुजिह्वा-दन्तेति षट्स्थानसंजातत्वात् अयं स्वरः षड्ज इत्युच्यते। उक्तंच—

अब सूत्रकार सप्त नाम की प्ररूपणा करते हैं—

"से किं तं सत्तनामे ?" इत्यादि।

शब्दार्थ—(से किं तं सत्तनामे ?) हे भदन्त ! सप्तनाम क्या है ?

उत्तर—(सत्तनाम) सप्त प्रकार रूप—जो सप्तनाम है वह (सत्तसरा पण्णत्ता) सातस्वर स्वरूपप्रज्ञप्त हुआ है। अर्थात् सातस्वर ही सप्तनाम हैं। (तं जहा) वे सात स्वर इस प्रकार से हैं—(सज्जे रिसहे गंधारे, मज्झिमे, पंचमे सरे। धेवए—चेव निस्साए सरा सत्त वियाहिया) षड्ज ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत, और निषाद। नासिका, कंठ, उरस्थल, तालु, जिह्वा और दन्त इन छह स्थानों से उत्पन्न होने के कारण प्रथम स्वर 'षड्ज' कहलाता है। उक्तंच करके "नासां कण्ठ"

હવે સૂત્રકાર સપ્તનામની પ્રરૂપણા કરે છે.

"से किं तं सत्तनामे ?" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(से किं तं सत्तनामे ?) હે ભદંત ! સપ્તનામ શું છે ? તે બતાવતાં કહે છે તે (सत्त सरा पण्णत्ता) સાત સ્વર સ્વરૂપ પ્રજ્ઞપ્ત થયેલ છે. એટલે કે સાત સ્વર જ સપ્તનામો છે. (तंजहा) તે સાત સ્વરો આ પ્રમાણે છે-(सज्जे रिसहे, गंधारे, मज्झिमे, पंचमे, सरे। धेवए चेव निस्साए सरा सत्त वियाहिया) ષડ્જ ઋષભ, ગાંધાર, મધ્યમ, પંચમ ધૈવત અને નિષાદ. નાસિકા, કંઠ, ઉરસ્થાન, તાલુ, જિહ્વા અને દંત આ છ સ્થાનોથી ઉત્પન્ન થવાના કારણથી પ્રથમ સ્વર

"नासां कण्ठमुरस्तालुं जिह्वांदन्तौश्च संश्रितः ।
षड्भिः संजायते यस्मात्तस्मात् षड्ज इति स्मृतः ॥ इति ॥
तथा-ऋषभो-वृषभः, तद्वद् यो वर्तते स ऋषभः । उक्तंचास्य लक्षणम्-
"वायुः समुत्थितो नाभेः, कण्ठशीर्षसमाहतः ।
नर्दन वृषभवद् यस्तत्, तस्मात्, वृषभ उच्यते ॥ इति ॥
तथा-गान्धारः-गन्धम् इर्यति-प्राप्नोतीति गन्धारः, सएव गान्धारः गन्धप्रापकः स्वरविशेषः । उक्तंच -
वायुः समुत्थितो नाभे-र्हृदिकण्ठे समाहतः ।
नानागन्धवहः पुण्यो गान्धारस्तेन हेतुना ॥ इति ॥

इत्यादि श्लोक द्वारा यही बात कही गई है । ऋषभनाम बैल का है । बैल के स्वर के जैसे जो स्वर होता है, उसका नाम ऋषभ है । इसका लक्षण इस प्रकार कहा हुआ है-नाभि से जो वायु उठता है, वह कण्ठ और शीर्ष में जाकर टकराता है । इससे बैल के स्वर के जैसे आवाज होती है । इसलिये इस स्वर का नाम ऋषभ है । गंध को जो स्वर प्राप्त करता है उसका नाम 'गांधार' स्वर है । इस का लक्षण इस प्रकार कहा गया है-जो वायु नाभि से उत्थित होकर हृदय और कंठ में टकराता है तथा नाना प्रकार के गंधों को वहन करता है इसलिये हृदय और कंठ से टकराने पर जो आवाज उत्पन्न होता है, उसका नाम 'गान्धार' है । शरीर के बीच में जो स्वर होता है, उसका नाम 'मध्यम' स्वर है । इसका लक्षण इस प्रकार से है-नाभिप्रदेश से उत्पन्न हुआ

ષડ્જ જ કહેવાય છે ઉકતંચ પછી "नासा कण्ठ" વગેરે શ્લોક વડે એજ વાત સ્પષ્ટ કરવામાં આવી છે. ઋષભ બળદનું નામ છે. બળદના સ્વરની જેમ જે સ્વર હોય છે તેનું નામ ઋષભ છે. આનું લક્ષણ આ પ્રમાણે કહેવામાં આવ્યું છે-નાભિસ્થાનથી જે વાયુ ઉપર ઉઠે છે તે કંઠ અને શીર્ષમાં જઈને અથડાય અને તેથી બળદની જેમ અવાજ થાય છે. એટલા માટે જ આ સ્વરનું નામ ઋષભ છે. ગંધને જે સ્વર પ્રાપ્ત કરે છે તેનું નામ 'ગાંધાર' સ્વર છે. આનું લક્ષણ આ પ્રમાણે સ્પષ્ટ કરવામાં આવ્યું છે. જે વાયુ નાભિસ્થાનથી ઉપર ઉઠીને હૃદય અને કંઠ સ્થાનમાં અથડાય છે તેમજ વિવિધ જાતના ગંધોનું વહન કરે છે એટલા માટે હૃદય અને કંઠને અથડાયા પછી જે સ્વર ઉત્પન્ન થાય છે તેનું નામ ગાન્ધાર છે. શરીરની વચ્ચે જે સ્વર હોય છે તેનું નામ મધ્યમ સ્વર છે આનું લક્ષણ આ પ્રમાણે છે નાભિસ્થાનથી ઉત્પન્ન થયેલ વાયુ

तथा-मध्यमः-मध्ये कायस्य भवो मध्यमः । उक्तंच-

वायुः समुत्थितो नाभेरूरोहृदि समाहतः ।
नाभिं प्राप्तो महानादो, मध्यमत्वं समश्नुते ॥

यद्वा-"तद्वदेवोत्थितो वायु रुरः कण्ठसमाहतः । नाभिं प्राप्तो महानादो मध्यस्थस्तेन मध्यमः ॥ इति ॥

तथा-पञ्चमः-पञ्चानां=षड्जादिस्वरानुसारेण पञ्चसंख्यकानां स्वराणां पूरणः स्वरः पंचमः । यद्वा-पञ्चसु नाभ्यादि स्थानेषु मातीति पञ्चमः । उक्तंच-

"वायुः समुद्गतो नाभे रुरो हृत्कण्ठमूर्धसु ।
विचरन् पञ्चमस्थानप्राप्त्या पञ्चम उच्यते" ॥इति॥

वायु उरस्थल और हृदय में टकराता है और फिर नाभिस्थान में आकर बडी आवाज उत्पन्न करता है-इसलिये इस स्वर का नाम मध्यम स्वर है। अथवा-उसी प्रकार से उत्थित हुआ वायु उरस्थल और कण्ठ में टकराता है फिर नाभिस्थल में पहुँच कर बडे भारी शब्द को उत्पन्न करता है। इस प्रकार मध्यस्थ होने से यह स्वर मध्यम कहा गया है। षड्ज आदि स्वरों की यह स्वर पांचवी संख्या की पूर्ति करता है इसलिये इस स्वर का नाम 'पंचम' स्वर हुआ है। अथवा नाभि आदि पांच स्थानों में यह स्वर समा जाता है इसलिये यह-स्वर पंचम स्वर कहलाया है। इस का लक्षण इस प्रकार से कहा गया है-नाभिस्थान से जो वायु उत्पन्न होता है, वह वक्षस्थल हृदय कंठ और मस्तक में टकराता हुआ पंचमस्थान में उत्पन्न होता है। इसलिये इस

ઉરસ્થળ અને હૃદયમાં અથડાય છે અને પછી નાભિસ્થાનમાં આવીને મોટો અવાજ ઉત્પન્ન કરે છે, એટલા માટે આ સ્વરનું નામ મધ્યમસ્વર છે. અથવા પહેલાની જેમ જ ઉપરની તરફ ઉઠતો વાયુ ઉરસ્થળ અને કંઠમાં અથડાય છે પછી નાભિસ્થાનમાં પહોંચીને બહુ મોટો અવાજ ઉત્પન્ન કરે છે. આ પ્રમાણે મધ્યસ્થ હોવા બદલ આ સ્વર મધ્યમ કહેવાય છે. ષડ્જ વગેરે સ્વરોમાં આ સ્વર પાંચમી સંખ્યાને પૂરે છે એટલા માટે આ સ્વરનું નામ પંચમસ્વર છે. અથવા નાભિ વગેરે પાંચ સ્થાનોમાં આ સ્વર સમાવિષ્ટ થઈ જાય છે. એથી આ સ્વર પંચમસ્વર કહેવાય છે આનું લક્ષણ આ પ્રમાણે કહેવામાં આવ્યું છે નાભિસ્થાનમાંથી જે વાયુ ઉત્પન્ન થાય છે તે વક્ષસ્થળ હૃદય કંઠ અને મસ્તકમાં અથડાઈને પંચમસ્થાનમાં ઉત્પન્ન થાય છે. એટલા માટે આનું નામ આ પ્રમાણે રાખવામાં આવ્યું છે. જે સ્વર બાકી રહેલા

तथा-धैवतः-अभिसन्धयते=अनुसन्धयति शेषस्वरानिति धैवतः। यद्वा-धीमतामयं धैवतः। पक्षद्वयेऽपि पृषोदरादित्वात् साधुत्वम्। उक्तंचास्य लक्षणम्-

"अभिसन्धयते यस्मादेतान् पूर्वोदितान् स्वरान्।
तस्मादस्य स्वरस्यापि, धैवतत्वं विधीयते" ॥ इति।

तथा-निषादः-निषीदन्ति स्वरा यस्मिन् स निषादः। उक्तं चापि--

"निषीदन्ति स्वराः यस्मि,-न्निषादस्तेन हेतुना।
सर्वांश्चाभि भवत्येष, यदादित्योऽस्य दैवतम्" ॥ इति।

तदेवं सप्त=सप्तसंख्यकाः स्वराः=जीवाजीवाश्रयाः स्वराः व्याख्याताः=विविधप्रकारेण तीर्थङ्करगणधरैः कथिताः। ननु कार्यं हि कारणायत्तं, तच्च कारणं कार्यभूतानां स्वराणां जिह्वादिकं, तानि च द्वीन्द्रियादि त्रसजीवानामसंख्येयत्वादसंख्येयानि किमुताजीवनिसृतानां ततः कथं स्वराणां सप्तसंख्यकत्वं न विरुध्यते? उच्यते-

---

का नाम ऐसा कहा गया है। जो स्वर शेष स्वरों का अनुसंधान करता है वह 'धैवत' है। अथवा संगीत विशारदों का जो स्वर है वह 'धैवत' है। इस का लक्षण इस प्रकार से कहा है-" अभिसंधयते " इत्यादि इस श्लोक का अर्थ स्पष्ट है। जिस में स्वर ठहरता है उसका नाम निषाद स्वर है। यह स्वर समस्त स्वरों का पराभव करता है क्योंकि इसका देव आदित्य है। ये जो सात स्वर हैं वे जीव और अजीव दोनों के आश्रय रहते हैं। ऐसा तीर्थंकर भगवंतोने कहा है।

शंका—कार्य कारणो के आधीन होता है। इन सात स्वरस्वरूप कार्य के कारण जिह्वा आदिक हैं। ये जिह्वा आदि कारण द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवों के असंख्यात होने से असंख्यात हैं। अजीव निसृत स्वरों के विषय की तो बात ही क्या है! इसलिये स्वरों का सात प्रकार का कहना ठीक नहीं है।

સ્વરોનું અનુસંધાન કરે છે તે " ધૈવત " છે. અથવા સંગીત વિશારદોનો જે સ્વર છે. તે ધૈવત છે આનું લક્ષણ આ પ્રમાણે કહેવામાં આવ્યું છે. " अभिसन्धयते इत्यादि " આ શ્લોકનો અર્થ સ્પષ્ટ જ છે. જેમાં સ્વર સ્થિર થાય છે તેનું નામ નિષાદ સ્વર છે. આ સ્વર બધા સ્વરોને પરાભૂત કરે છે કેમ કે આનો દેવ આદિત્ય છે જે આ સાત સ્વર છે તે જીવ અને અજીવ બન્ને ને આશ્રિત રહે છે. આમ તીર્થંકર ભગવંતોએ કહ્યું છે.

શંકા-કાર્ય કારણોને અધીન હોય છે. આ સાત સ્વર રૂપ કાર્યના કારણો જિહ્વા વગેરે છે. આ જિહ્વા વગેરે કારણો દ્વીન્દ્રિય વગેરે ત્રસ જીવો અસંખ્યાત હોવાથી અસંખ્યાત છે અજીવ નિસૃત સ્વરોના વિષયની તો વાત જ શી કરવી? એટલા માટે સ્વરોના સાત પ્રકારો યોગ્ય કહેવાય નહિ.

विशेषमाश्रित्यासंख्येया अपि स्वराः सामान्येन सर्वेऽपि सप्तस्वेवान्तर्भवति। यद्वा सूत्रे स्वराणां यत् सप्तसंख्यकत्वमुक्तं तत् स्थूलस्वरान् गीतं चाश्रित्य प्रोक्तं, सर्वेषां स्वराणां सप्तस्वरानुपातित्वादतो नास्ति कोऽपि स्वराणां सप्तसंख्यागणने दोष इति ॥ सू० १६२॥

इत्थं स्वरान्नामतो निरूप्य संप्रति तानेव कारणत आह—

मूलम्—एएसिं णं सत्तण्हं सराणं सत्त सरट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—सज्जं च अग्गजीहाए, उरेण रिसहं सरं। कंठुग्गएण गंधारं, मज्झजीहाए मज्झिमं ॥१॥ नासाए पंचमं बूया, दंतोट्ठेण य धेवयं। मुद्धाणेण य णेसायं, सरट्ठाणा वियाहिया॥३॥ सत्तसरा जीवणिस्सिया पण्णत्ता, तं जहा—सज्जं रवइ मऊरो, कुक्कुडो रिसभं सरं। हंसो रवइ गंधारं, मज्झिमं च गवेलगा ॥४॥ अह कुसुमसंभवे काले, कोइला पंचमं सरं। छट्ठं च सरसा कोंचा, नेसायं सत्तमं गया ॥५॥ सत्तसरा अजीवनिस्सिया पण्णत्ता, तं जहा—सज्जं रवइ मुयंगो, गोमुही रिसहं सरं। संखो रवइ गंधारं,

---

उत्तर—विशेष की अपेक्षा लेकर स्वर यद्यपि असंख्यात हैं परन्तु, ये सब असंख्यात स्वर सामान्यरूप से इन सात स्वरों में ही अन्तर्भूत हो जाते हैं। अथवा सूत्रकारने जो "सात स्वर हैं" ऐसा सूत्र कहा है, वह स्थूल स्वरों से एवं गीत को लेकर कहा है ऐसा जानना चाहिये। क्योंकि और जितने भी स्वर हैं, वे सब इन्हीं सात स्वरों में समा जाया करते हैं। इसलिये स्वर सात हैं इस प्रकार के कथन में कोई दोष नहीं है। सू० १६२॥

ઉત્તર–વિશેષની અપેક્ષાથી સ્વર જો કે અસંખ્યાત છે છતાં એ આ બધા અસંખ્યાત સ્વરો સામાન્ય રૂપથી આ સાત સ્વરોમાં જ અન્તર્ભૂત થઇ જાય છે. અથવા સૂત્રકારે જે 'સાત સ્વરો છે' આમ કહ્યું તે સ્થૂલ સ્વરો અને ગીતને લઇને કહ્યું છે આમ જાણવું જોઈએ કેમ કે બીજા જેટલા સ્વરો છે તે બધા એજ સાત સ્વરોમાં સમાવિષ્ટ થઈ જાય છે એટલા માટે સ્વર સાત છે આ જાતના કથનમાં કોઈ પણ જાતનો દોષ નથી. ॥સૂ૦૧૬૨॥

मज्झिमं पुण झल्लरी ॥६॥ चउचरणपइट्ठाणा, गोहिया पंचमं सरं। आडंबरो धेवइयं, महाभेरी य सत्तमं ॥७॥सू०१६३॥

छाया—एतेषां खलु सप्तानां स्वराणां सप्त स्वरस्थानानि भवन्ति, तद्यथा—षड्जं च अग्रजिह्वया, उरसा ऋषभं स्वरम्। कण्ठाग्रेण गान्धारं, मध्ये जिह्वया मध्यमम् ॥२॥ नासिकया पञ्चमं ब्रूयात्, दन्तोष्ठेन च धैवतम्। मूर्ध्ना च निषादम्, स्वरस्थानानि व्याख्यातानि ॥३॥ सप्तस्वराः जीवनिश्रिताः भवन्ति, तद्यथा-षड्जं

इस प्रकार नाम से स्वरों का कथन करके अब सूत्रकार उन्हीं स्वरों का कारण की अपेक्षा लेकर कथन करते हैं—

'एएसिं णं सत्तण्हं' इत्यादि।

शब्दार्थ—(एएसिणं) इन (सत्तसराणं) सात स्वरों के (सप्त)सात (सरट्ठाणा) स्वरस्थान (पण्णत्ता) कहे गये हैं। (तं जहा) वे इस प्रकार से हैं।—(सज्जं च अग्गजीहाए) जिह्वा के अग्र भाग से षड्ज स्वर बोलना चाहिये (उरेण रिसहं सरं) वक्षस्थल से ऋषभस्वर बोलना चाहिये (कंठुग्गएणं गंधारं) कण्ठ के अग्रभाग से गांधार स्वर बोलना चाहिये। (मज्झजीहाए मज्झिमं) जिह्वा के मध्य भाग से मध्यम स्वर बोलना चाहिये। (नासाए पंचमं) नासिका से पंचम स्वर बोलना चाहिये (दंतोट्ठेण य धेवयं) दन्तोष्ठ से धैवत स्वर बोलना चाहिये (मुद्धाणेणं य णेसायं बूया) और मूर्धा से निषाद स्वर बोल-

---

આ પ્રમાણે સ્વરોનું નામની અપેક્ષાએ કથન કરીને હવે સૂત્રકાર તેજ સ્વરોનું કારણની અપેક્ષાએ કથન કરે છે–

"एएसिं णं सत्तण्हं" इत्यादि—

શબ્દાર્થ–(एएसिं णं) આ (सत्तसराणं) સાત સ્વરોના (सत्त) સાત (सरट्ठाणा) સ્વરસ્થાનો (पण्णत्ता) કહેવામાં આવ્યાં છે. (तंजहा) તે આ પ્રમાણે છે (सज्जं च अग्गजीहाए) જીભના અગ્રભાગથી ષડ્જ સ્વરનું ઉચ્ચારણ કરવું જોઇએ (उरेणं रिसहं सरं) વક્ષસ્થળથી ઋષભ સ્વરનું ઉચ્ચારણ કરવું જોઇએ. (कंठुग्गएणं गंधारं) કંઠના અગ્રભાગથી ગાંધાર સ્વરનું ઉચ્ચારણ કરવું જોઇએ (मज्झजीहाए मज्झिमं) જીભના મધ્યભાગથી મધ્યમ સ્વરનું ઉચ્ચારણ કરવું જોઇએ. (नासाए पंचमं) નાકથી પંચમસ્વરનું ઉચ્ચારણ કરવું જોઇએ. (दंतोट्ठेण य धेवयं) દન્તોષ્ઠથી ધૈવત સ્વરનું ઉચ્ચારણ કરવું જોઇએ (मुद्धाणेणं य णेसायं बूया) અને મૂર્ધાથી નિષાદ સ્વરનું ઉચ્ચારણ કરવું જોઇએ. (सरट्ठाणा वियाहिया) આ પ્રમાણે સાત સ્વર સ્થાનોનું કથન કરવામાં આવ્યું છે.

रौति मयूरः, कुक्कुटः ऋषभं स्वरम्। हंसो रौति गान्धारं, मध्यमं च गवेलकः (मेषाः) ॥४॥अथ कुसुमसंभवे काले, कोकिलाः पञ्चमं स्वरम्। षष्ठं च सारसाः क्रौञ्चाः, निषादं सप्तमं गजाः ॥५॥ सप्तस्वराः अजीवनिश्रिताः प्रज्ञप्ताः तद्यथा-षड्जं रौति मृदङ्गो, गोमुखी ऋषभं स्वरं। शंखो रौति गन्धारं, मध्यमं पुनर्झल्लरी ॥ ६ ॥चतुश्चरणप्रतिष्ठाना, गोधिका पञ्चमं स्वरं। आडम्बरो धैवतकं, महाभेरीश्च सप्तमम् ॥ सू० १६३ ॥

ना चाहिये। (सरट्ठाणा वियाहिया) इस प्रकार से सात स्वरस्थान व्याख्यात किये हैं। (सत्तसरा जीवणिस्सिया पण्णत्ता) सात स्वर जीवनिश्रित कहे गये हैं। (तंजहा) वे इस प्रकार से हैं—(सज्जं रवइ मउरो) षड्जस्वर मयूर बोलता है (कुक्कुडो रिसहं सरं) कुक्कुट—ऋषभस्वर बोलता है। (हंसो रवइ गंधारं) हंस गांधार स्वर बोलता है (मज्झिमं च गवेलगा) गवेलक-मेष मध्यम-स्वर बोलते हैं। (अह कुसुमसंभवे काले कोइला पंचमं सरं) पुष्पोत्पत्तिकाल में कोयल पंचम स्वर बोलती है (छट्ठं च सारसा कोंचा) छठा धैवत स्वर सारस और क्रौंच पक्षी बोलते हैं। (सत्तमं नेसायं गया) सातवां जो निषाद स्वर है उसे गज बोलते है। (सत्त सरा अजीवनिस्सिया पण्णत्ता) सात स्वर अजीवनिश्रित कहे गये हैं—(तं जहा) वे इस प्रकार से हैं—(सज्जं रवइ मुयंगो) षड्ज मृदंग बोलता है (गोमुही रिसहं सरं) गोमुखी-वाद्यविशेष-ऋषभ स्वर बोलता है। (संखो गंधारं रवइ) शंख-गांधार स्वर बोलता है। (झल्लरी-मज्झिमं) झल्लरी मध्यमस्वर बोलता है। (चउचरणपइट्ठाणा गोहिया)

(सत्तसरा जीवणिस्सिया पण्णत्ता) सात स्वरो જીવનિશ્રિત કહેવામાં આવ્યા છે (तंजहा) તે આ પ્રમાણે છે-(सज्जं रवइ मउरो) ષડ્જ સ્વર મયૂર-મોર-બોલે છે. (कुक्कुडो रिसहं सरं) કુકડો ઋષભ સ્વર બોલે છે. (मज्झिमं य गवेलगा) ગવેલક-મેષ-મધ્યમ સ્વર બોલે છે (अह कुसुमसंभवे काले कोइला पंचमं सरं) પુષ્પોત્પત્તિ કાલમાં-કોયલ પંચમસ્વર બોલે છે. (छट्ठं च सारसा कोंचा) છઠો ધૈવત સ્વર સારસ અને-ક્રૌંચપક્ષી વિશેષ બોલે છે. (सत्तमं नेसायं गया) સાતમો નિષાદ સ્વર હાથી બોલે છે (सत्तसरा अजीवनिस्सिया पण्णत्ता) સાત સ્વરો અજીવ નિશ્રિત કહેવામાં આવ્યા છે (तंजहा) તે આ પ્રમાણે છે-(सज्जं रवइ मुयंगो) ષડ્જ સ્વર મૃદંગમાંથી નીકળે છે. (गोमुही रिसहं सरं) ગોમુખી-વાદ્ય વિશેષમાંથી ઋષભ સ્વર નીકળે છે. (संखो गंधारं रवइ) શંખમાંથી ગાંધાર સ્વર નીકળે છે. (झल्लरी मज्झिमं) ઝાલરમાંથી મધ્યમ સ્વર નીકળે છે. (चउचरणपइट्ठाणा गोहिया) ચારે પગ જેના જમીન પર મૂકવામાં

टीका—'एएसि णं' इत्यादि—

एतेषां सप्तानां स्वराणां सप्त स्वरस्थानानि प्रज्ञप्तानि, अयं भावः एते षड्जादि सप्तस्वरा यस्मात् यस्मात् स्थानात् समुत्पद्यते तानि जिह्वाग्रभागादिस्वरस्थानान्यपि सप्तसंख्यकानि सन्ति । नाभेरुत्थितो ऽविकारी स्वर आभोगतोऽनाभोगतो वा जिह्वादिस्थानं प्राप्य विशेषमासादयतीति तत् स्वरस्योपकारकमतस्तत् स्वरस्थानमुच्यते, इति । तान्येव स्थानानि दर्शयति-तद्यथा-षड्जं स्वरम् अग्रजिह्वया-अग्रभूता जिह्वा-अग्रजिह्वा, तया जिह्वाग्रभागेन ब्रूयात् । षड्जस्वरस्य स्थानं जिह्वाग्र-

चारोंपैरों से जमीन ऊपर रखी गई ऐसी गोधिका-वाद्यविशेष-(पंचमं सरं) पंचम स्वर को बोलती है (आडंबरो धेवयं) आडंबर धेवत स्वर को बोलता है (महाभेरीय सत्तमं) और महाभेरी सप्तम जो निषाद स्वर है, उसे बोलती है।

भावार्थ—इस सूत्र द्वारा सूत्रकारने सात स्वरों के सात स्थानों का कथन किया है। षड्ज आदि सात स्वर जिस २ स्थान से उत्पन्न होते हैं, वे जिह्वाग्रभाग आदि स्वरोत्पादक स्थान सात हैं। नाभिस्थान से उत्थित अविकारी स्वर आभोग (अनजान) से जिह्वा आदि स्थान को प्राप्त हो करके अपने में विशेषता प्राप्त कर लेता है, इसलिये वह जिह्वा आदि स्थान उस स्वर का उपकारक होता है। अतः वह उस स्वर का स्थान कहा जाता है। सूत्रकारने इन्हीं सात स्वर स्थानों को यहां दिखलाया है। षड्ज स्वर जिह्वाग्रभाग से बोला जाता है। इसलिये उसका स्थान जिह्वाग्रभाग है।

આવે છે. એની ગોધિકા-વાદ્ય વિશેષમાંથી (पंचमं सरं) પંચમ સ્વર નીકળે છે (आडंबरो धेवयं) આડંબરમાંથી ધેવત સ્વર નીકળે છે. (महाभेरीय सत्तमं) અને મહાભેરીમાંથી સાતમો જે નિષાદ નામે સ્વર છે કે નીકળે છે.

ભાવાર્થ-આ સૂત્ર વડે સૂત્રકારે સાત સ્વરોના સ્થાનોનું કથન કર્યું છે. ષડ્જ વગેરે સાત સ્વર જે જે સ્થાન વિશેષથી ઉત્પન્ન થાય છે. તે જિહ્વાગ્ર ભાગ વગેરે સાત સ્વરોત્પાદક સ્થાનો છે નાભિસ્થાનથી ઉત્થિત થયેલ અવિકારી સ્વર આભોગ (જાણ) થી કે અનાભોગ (અજાણ)થી જિહ્વા વગેરે સ્થાન સુધી પહોંચીને પોતાની જાતમાં એક વિશેષતા મેળવી લે છે. એટલા માટે જિહ્વા વિગેરે સ્થાન તે સ્વર માટે ઉપકારક હોય છે. એથી તે તે સ્વરનું સ્થાન કહેવાય છે. સૂત્રકારે એજ સાત સ્વર સ્થાનોનું અહીં સ્પષ્ટીકરણ કર્યું છે ષડ્જ સ્વર જિહ્વાગ્ર ભાગથી ઉચ્ચરિત કરવામાં આવે છે તેથી તેનું નામ જિહ્વાગ્ર ભાગ છે.

भाग इत्यर्थः । ननु षड्जस्वरोच्चारणे कण्ठादीन्यपि स्थानान्याश्रीयन्ते, अग्रजिह्वा-चस्वरान्तरेष्वप्याश्रीयते तत्कथं षड्जादिष्वेकैकस्य स्वरस्य अग्रजिह्वादिरूपमेकैकं स्थानमुच्यते? इति चेदाह—यद्यपि षड्जादयः सर्वेऽपि स्वराः जिह्वाग्रभागादीनि सर्वाण्यपि स्थानान्यपेक्षन्ते, तथापि विशेषत एकैकस्वरो जिह्वाग्रभागादिष्वेकैकं स्थानमादायैव व्यज्यते । अतस्तत्तत्स्वरस्य तत्तत्स्थानमुक्तमिति बोध्यम् । तथा-उरसा=वक्षसा ऋषभं स्वरं ब्रूयात् । ऋषभस्वरस्य स्थानं वक्षो बोध्यम् । तथा-कण्ठोद्गतेन कण्ठादुद्गतम्-उद्गतिः=स्वरनिष्पत्तिहेतुभूताक्रिया तेन गान्धारं स्वरं ब्रूयात् । गान्धार-

शंका—षड्ज स्वर के उच्चारण करने में कण्ठोदिक स्थानों का भी सहारा लेना पड़ता है, तथा अग्रजिह्वा दूसरे स्वरों में भी उपयुक्त होती है, तो फिर षड्ज-आदि स्वरों में से एक २ स्वर का अग्रजिह्वा आदि रूप एक २ स्थान प्रतिनियत कैसे कहा जा सकता है ?

उत्तर—यद्यपि षड्ज आदि समस्त भी स्वर जिह्वाग्रभाग आदि रूप समस्त स्थानों की अपेक्षा करते हैं, तो भी विशेष रूप से एक २ स्वर जिह्वाग्रभागादिक रूप स्थानो में से एक २ स्थान को आश्रित करके ही अभिव्यक्त (प्रकट) होता है । इसलिये उस २ स्वर का वह-वह स्थान कहा जाता है । इसी अभिप्राय को लेकर यहां सूत्रकारने एक २ स्वर का एक एक स्थान कहा है । वक्षस्थल से ऋषभ स्वर बोलना चाहिये इस कथन से यही जाना जाता है कि-'ऋषभ स्वर का वक्षस्थल स्थान है । स्वर की निष्पत्ति की हेतुभूत जो क्रिया कंठ से होती

શંકા-ષડ્જ સ્વરનો ઉચ્ચાર કરતાં કંઠ વગેરે સ્થાનોના પણ આધાર લેવા પડે છે. તેમજ અગ્રજિહ્વા બીજા પણ કેટલાક સ્વરોના ઉચ્ચારણ માટે સહાયભૂત હોય છે. તો પછી ષડ્જ વગેરે સ્વરોમાંથી એક એક સ્વરનું અગ્રજિહ્વા વગેરે રૂપ એક એક સ્થાન પ્રતિનિયત કેવી રીતે કહેવાય?

ઉત્તર-જો કે ષડ્જ વગેરે બધા સ્વરો જિહ્વાગ્ર ભાગ વગેરે બધાં સ્થાનોનો ઉપયોગ કરે છે. છતાં એ વિશેષ રૂપથી દરેક સ્વર જિહ્વાગ્ર ભાગાદિક સ્થાનોમાંથી કોઈ એક સ્થાનને સમાશ્રિત કરીને જે વ્યક્ત (ઉચ્ચરિત) થાય છે. એટલા માટે તે સ્વરનું તે સ્થાન કહેવાય છે એજ અભિપ્રાયને લઈને અહીં સૂત્રકારે દરેક સ્વરનું એક એક સ્થાન કહ્યું છે. વક્ષસ્થળથી ઋષભ સ્વરનું ઉચ્ચારણ કરવું જોઈએ આ કથનથી એજ વાત સ્પષ્ટ થાય છે કે ઋષભ સ્વરનું સ્થાન વક્ષસ્થળ છે સ્વરની નિષ્પત્તિમાં હેતભૂત જે ક્રિયા કંઠથી થાય છે,

स्वरस्य स्थानं कण्ठो बोध्यम्' तथा-मध्य जिह्वयाजिह्वाया मध्यो भागो मध्यजिह्वा, तया-मध्यमं स्वरं ब्रूयात्। जिह्वाया मध्यभागो मध्यमस्वरस्य स्थानमितिभावः। तथा-नासया=नासिकया पञ्चमं स्वरं ब्रूयात्। पञ्चमस्वरस्य स्थानं नासिकेत्यर्थः। तथा-दन्तोष्ठेन=दन्तोष्ठक्रियया धैवतं स्वरं ब्रूयात्। धैवतस्वरस्य स्थानं दन्तोष्ठं बोध्यम्। तथा-मूर्ध्ना=मूर्धस्थानेन निषादं स्वरं ब्रूयात्। निषादस्वरस्य स्थानं मूर्धा बोध्यम्। एतानि जिह्वाग्रभागादीनि सप्त स्वरस्थानानि भगवता व्याख्यातानि। इत्थं स्वरस्थानान्युक्त्वा सम्प्रति 'को जीवः कं स्वरं ब्रूते' इति दर्शयति-'सत्त सरा जीवनिस्सिया' इत्यादिना 'णिसायं सत्तमं गया इत्यन्तेन। अर्थः स्पष्टः। नवरम्-गावश्च-एलकाश्चेति गवेलकाः, यद्वा गवेलकाः-मेषा एव। कुसुमसंभवे-

है, उसका नाम 'कंठोद्गत' है इससे गांधार स्वर बोला जाता है, अतः गांधार स्वर का स्थान -कंठ है। जिह्वा का जो मध्य भाग है-उससे मध्यम स्वर बोला जाता है; इस कारण मध्यम स्वर का स्थान जिह्वा का मध्य भाग है। 'नासिका से पंचम स्वर बोलना चाहिये' इस कथन से यही जाना जाता है-कि 'पंचम स्वर का स्थान नासिका है।' 'दन्तोष्ठ क्रिया से धैवत स्वर को बोलना चाहिये' इस कथन से यही स्पष्ट होता है कि 'धैवत स्वर का स्थान दन्तोष्ठ है'। 'मूर्धा से निषाद स्वर बोलना चाहिये' इससे यही जाना जाता है कि 'निषाद स्वर का स्थान मूर्धा है।' ये जिह्वाग्रभागादिक ससस्वरस्थान भगवान् ने कहे हैं। इस प्रकार सात स्वरों के स्थान कहकर सूत्रकारने पुनः यह बतलाया है कि-कौन २ जीव किस २ स्वर को बोलता है—? "गवेलक" में गौ और एलक ये दो प्राणी आये हैं। अथवा गवेलक का अर्थ मेष

તેનું નામ કંઠોદ્ગત છે. એનાથી ગાંધાર સ્વર ઉચ્ચરિત થાય છે એથી ગાંધાર સ્વરનું નામ કંઠ છે. જિહ્વાના મધ્ય ભાગથી મધ્યમ સ્વરનું ઉચ્ચારણ થાય છે. એથી જિહ્વાનો મધ્ય ભાગ મધ્યમ સ્વરનું સ્થાન છે નાકથી પંચમ સ્વરનું ઉચ્ચારણ કરવું જોઈએ આ કથનથી આ વાત સ્પષ્ટ થાય છે કે પંચમ સ્વરનું સ્થાન નાસિકા છે. દન્તોષ્ઠ ક્રિયાથી ધૈવત સ્વર બોલવો જોઈએ આ કથનથી એજ વાત જણાય છે કે ધૈવત સ્વરનું સ્થાન દન્તોષ્ઠ છે મૂર્ધાથી નિષાદ સ્વર બોલવો જોઈએ એથી એ વાત જણાય છે કે, નિષાદ સ્વરનું સ્થાન મૂર્ધા છે એ જિહ્વાગ્ર ભાગ વગેરે સપ્તસ્વર સ્થાનો ભગવાને કહ્યા છે.

આ પ્રમાણે સપ્તસ્વરોના સ્થાન વિષે માહિતી આપીને સૂત્રકાર ફરી એ બતાવે છે કે-કયા કયા જીવો કયા કયા સ્વરથી બોલે છે? "ગવેલક"માં ગૌ અને એલક એ બે પ્રાણીઓ છે અથવા ગવેલકનો અર્થ મેષ પણ છે.

काले=वसन्तसमये। अथ यस्मात् यस्मात् वाद्याद् यो यः स्वरो निर्गच्छति, तं तमाह-तद्यथा-तद्दर्शयति-'सत्त सरा अजीवनिस्सिया' इत्यादिना 'महाभेसे य सत्तमं' इत्यन्तेन। अर्थः स्पष्टः। नवरं-गोमुखी=यस्या मुखे गोशृङ्गादि वस्तु स्थाप्यते सा 'काहला' इत्यपरनाम्ना प्रसिद्धा। चतुश्चरणप्रतिष्ठाना गोधिका=चतुर्भिश्चरणैः प्रतिष्ठानं भुवि यस्याः सा तथाभूता गोधिका-गोधैव गोधिका चर्मावनद्धा दर्दरिकेत्यपरनाम्ना प्रसिद्धा वाद्यविशेषः। आडम्बरः=पटहः। सप्तमं=निषादम्। अत्रेदं बोध्यम्-यद्यपि मृदङ्गादि जनितेषु स्वरेषु नाभ्युरःकण्ठाद्युत्पद्यमानरूपो व्युत्पत्त्यर्थो न घटते, तथापि-मृदङ्गादि वाद्येभ्यः षड्जादिस्वरसदृशाः स्वरा उत्पद्यन्ते। अतएव तेषां मृदङ्गाद्यजीवनिश्रितत्वमुक्तम् ॥सू० १६३॥

संप्रति एषां सप्तस्वराणां लक्षणान्याह—

मूलम्-एएसिं णं सत्तण्हं सराणं सत्त सरलक्खणा पण्णत्ता, तं जहा-सज्जेण लहई वित्तिं, कयं च न विणस्सइ। गावो पुत्ता य मित्ता य, नारीणं होइ वल्लहो॥१॥ रिसहेण उ एसज्जं, सेणा-

---

भी है। कुसुमसंभवकाल का तात्पर्य वसन्त ऋतु से है। जिसके मुख पर गोशृंग आदि स्थापित किया जाता है तथा जिसका दूसरा नाम 'काहला' है, वह वाद्यविशेष 'गोमुखी' कहलाता है। चतुश्चरण प्रतिष्ठाना गोधिका भी एक प्रकार का वाद्यविशेष होता है इस का नाम 'दर्दरिका' है। यह चमड़े से मढा हुआ होता है। 'आडम्बर' पटह को कहते हैं। यद्यपि मृदङ्ग आदि जनित स्वरों में नाभि उरस् कण्ठ आदि से उत्पन्न होना रूप व्युत्पत्त्यर्थ घटित नहीं होता है, तो भी मृदंग आदि वाद्यों से षड्ज आदि स्वरों के सदृश स्वर उत्पन्न होते हैं, इसलिये उन्हें मृदंगरूप अजीव से निश्रित कहा है ॥सू० १६३॥

કુસુમ સંભવકાલ એટલે વસંત ઋતુ છે જેનાં મુખ પર ગોશ્રૃંગ, વગેરે સ્થાપિત કરવામાં આવે છે તેમજ જેનું બીજું નામ 'કાહલા' છે તે વાદ્યવિશેષ 'ગોમુખી' કહેવાય છે ચતુશ્ચરણ પ્રતિષ્ઠાના ગોધિકા પણ એક વાદ્યવિશેષ છે એનું નામ 'દર્દરિકા' છે. એ ચામડાથી બનાવેલું હોય છે 'આડંબર' પટહને કહે છે. જો કે મૃદંગ વગેરેથી ઉત્પન્ન સ્વરોમાં નાભિ, ઉરસ, કંઠ વગેરેથી ઉત્પત્તિ રૂપ વ્યુત્પત્યર્થ નીકળતો નથી, છતાં એ મૃદંગ વગેરે વાદ્યોથી ષડ્જ વગેરે સ્વરોની જેમ જ સ્વર ઉત્પન્ન થાય છે. એથી તેમને મૃદંગ રૂપ અજીવથી નિશ્રિત કહ્યા છે.॥સૂ૦૧૬૩॥

वच्चं धणाणि य। वत्थं गंधमलंकारं, इत्थिओ सयणाणि य॥२॥ गंधारे गीयजुत्तिण्णा, वज्जवित्ती कलाहिया। हवंति कइणो पण्णा, जे अण्णे सत्थपारगा॥३॥ मज्झिमस्सरसंपन्ना, हवंति सुहजीविणो। खायई पियई देई, मज्झिमस्सरमस्सिओ॥४॥ पंचमस्सरसंपन्ना हवंति पुढवीवई। सूरा संगहकत्तारो अणेग-गणनायगा॥५॥ धेवयस्सरसंपन्ना हवंति कलहप्पिया। साउणिया वग्गुरिया, सोयरिया मच्छबंधा य॥६॥ चंडाला मुट्ठिया मेया, जे अन्ने पावकम्मिणो। गोघातगा य जे चोरा, णिसायं सरमस्सिया॥७॥सू० १६४॥

छाया—एतेषां खलु सप्तानां स्वराणां सप्त स्वरलक्षणानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—षड्जेन लभते वृत्तिं, कृतं च न विनश्यति। गावः पुत्राश्च मित्राणि च, नारीणां

अब सूत्रकार इन सात स्वरों के लक्षणों को कहते हैं—
"एएसिं णं सत्तण्हं" इत्यादि।—

शब्दार्थ-(एएसिं सत्तण्हं सराणं) इन सात स्वरों के (सरलक्खणा) स्वर लक्षण-तत् तत्-फल की प्राप्ति के अनुसार स्वर तत्त्व-(सत्त) सात (पण्णत्ता) कहे गये हैं। (तंजहा) वे इस प्रकार से हैं-(सज्जेण वित्तिं लहई) षड्ज स्वर से मनुष्य-आजीविका प्राप्त करता है। (कयं च ण विणस्सइ) तथा षड्ज स्वरवाले व्यक्ति का कृतकर्म नष्ट नहीं होता है। (गावो पुत्ता य मित्ता य नारीणं होइ वल्लहो) इस को गायें पुत्र और

હવે સૂત્રકાર એ સાત સ્વરોના લક્ષણો કરે છે—
"एएसिं णं सत्तण्हं" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(एएसि णं सत्तण्हं सराणं) એ સાત સ્વરોના (सरलक्खणा) સ્વરલક્ષણ-તે તે ફળની પ્રાપ્તિની અપેક્ષાએ સ્વરતત્ત્વ (सत्त) સાત (पण्णत्ता) કહેવામાં આવ્યા છે (तंजहा) તેઓ આ પ્રમાણે છે (सज्जेण वित्तं लहई) ષડ્જ સ્વરથી માણસ આજીવિકા પ્રાપ્ત કરે છે (कयंच ण विणस्सइ) તેમજ ષડ્જ સ્વરવાળી વ્યક્તિઓના કૃતકર્મો નાશ પામતા નથી અર્થાત્ કાર્ય સિદ્ધ કરે છે. (गावो पुत्ता य मित्ता य नारीणं होइ वल्लहो) આને ગાયો પુત્ર અને મિત્ર હોય છે. સ્ત્રીઓને એ બહુજ

भवति वल्लभः॥१॥ ऋषभेण तु ऐश्वर्यं सेनापत्यं धनानि च। वस्त्रगन्धम् अलंकारम्, स्त्रियः शयनानि च ॥२॥ गान्धारे गीतयुक्तिज्ञाः वर्यवृत्तयः कलाधिकाः। भवन्ति कवयो प्राज्ञाः, ये अन्ये शास्त्रपारगाः ।३॥ मध्यम स्वरसम्पन्ना भवन्ति-सुख-जीविनः। खादति पिबति ददाति, मध्यमस्वरमाश्रितः ॥४॥ पञ्चमस्वरसम्पन्ना

मित्र होते हैं। यह स्त्रियों को बहुत प्यारा होता है। (रिसहेण उ एसज्जं) ऋषभ स्वर से मनुष्य ऐश्वर्य-ईशनशक्तिवाला-होता है (सेणावच्चं धणाणिय) इस स्वर के प्रभाव से वह सेनापतित्व को धन को, (वत्थगंधमलंकारं इत्थिओ सयणाणि य) वस्त्रों को गंधपदार्थों को, अलंकारों को, स्त्रियों को, और शयनों को पाता है। (गंधारे गीयजुत्तिण्णा) गान्धार स्वर से गाना गानेवाले मनुष्य (वज्जवित्ती कलाहिया) श्रेष्ठ आजीविकावाले होते हैं तथा कलाओं के ज्ञाताओं में शिरोमणि होते हैं। (कइणो पण्णा हवंति) कवि-काव्यकर्त्ता-होते हैं अथवा-"कइणो-कृतिनः" इस छाया पक्ष में कर्तव्यशील होते हैं। प्राज्ञः-सद्बोध संपन्न-होते हैं। (जे अण्णे सत्थपारगा) तथा जो पूर्वोक्त गीत युक्तिज्ञ आदि कों से जो भिन्न होते हैं-वे, सकलशास्त्रों में निष्णात होते हैं। (मज्झिमस्सरसंपन्ना) जो मध्यम स्वर से युक्त होते हैं, वे (सुहजीविणो हवंति) सुखजीवि होते हैं। (खायई पियई देई मज्झिमस्सरमस्सिओ) सुखजीवि कैसे होते हैं? इसी बात को सूत्रकार कहते हैं कि वे सुस्वादु भोजन को मनमाना खाते हैं, दुग्धादि का पान करते हैं। दूसरों को

પ્રિય હોય છે (रिसहेण उ एसज्जं) ऋषभ स्वरथी माणुस ऐश्वर्य-ઇશન शक्ति સંપન્ન-હોય છે. (सेणावच्चं धणाणि य) આ स्वरना प्रभावथी सेनापतित्वने, धनने, (वत्थगंधमलंकारं इत्थिओ सयणाणिय) वस्त्रो, गंधपदार्थो, अलंકારો, સ્ત્રીઓ, તેમજ शयनोने मेणवे छे. (गंधारे गीय जुत्तिण्णा) गान्धार स्वरथी गानारा माणुसो (वज्जवित्ती कलाहिया) श्रेष्ठ आजीविકावाળા હોય છે તેમજ કલાવિદોમાં શ્રેષ્ઠ ગણાય છે. (कइणोवण्णा हवंति) કાવ્યકાર હોય છે અથવા 'कइणो-कृतिनः' આ छाया પક્ષમાં कर्तव्यशील હોય છે प्राज्ञः-सद्बोध સંપન્ન હોય છે. (जे अण्णे सत्थपारगा) તેમજ પૂર્વોક્ત ગીત યુક્તિજ્ઞ વગેરેથી જે ભિન્ન હોય છે તેઓ સકલ શાસ્ત્રોમાં નિષ્ણાત છે. (मज्झिमस्सरसंपन्ना) જેઓ મધ્યમ સ્વર સંપન્ન હોય છે તેઓ (सुहजीविणो हवंति) સુખજીવિ હોય છે. (खायई पियई देई, मज्झिमस्सरमस्सिओ) સુખજીવી કેવી રીતે હોય છે? એજ વાતને સૂત્રકાર હવે સ્પષ્ટ કરે છે-કે તેઓ પોતાની ઇચ્છા

भवन्ति पृथिवीपतयः। शूराः संग्रहकर्तारः, अनेकगणनायकाः ॥५॥ धैवतस्वर-सम्पन्ना भवन्ति कलहप्रियाः। शाकुनिका वागुरिकाः सौकरिका मत्स्यबन्धाश्च ॥६॥ चाण्डालामौष्टिकाः सेया ये अन्ये पापकर्मणः। गोघातकाश्च ये चोरा निषादं स्वरमाश्रिताः ॥ ७ ॥ ॥ सू० १६४ ॥

भी इसी प्रकार से खिलाते पिलाते रहते हैं। (पंचमस्सरसंपन्ना हवंति पुढवीवई) जो पंचमस्वर से युक्त होते हैं वे पृथिवीपति होते हैं। (सूरा संगहकत्तारो अणेगगणनायगा) शूरवीर होते हैं, संग्रह करनेवाले होते हैं और अनेक गणों के नायक होते हैं। तथा जो (धेवयस्सरसंपन्ना हवंति कलहप्पिया) जो धैवतस्वरवाले होते हैं वे कलहप्रिय होते हैं-लड़ाई झगडा करना उन्हें बहुत पसन्द आता है। (साउणियावग्गुरिया सोयरिया, मच्छबंधा य) शाकुनिक-पक्षियों का शिकार करनेवाले, होते हैं, वागुरिक-हरिणों की हत्या करनेवाले, होते हैं, सौकरिक-सुअरों का शिकार करनेवाले, होते हैं, और मत्स्यबंध-मछलियों को मारनेवाले, होते हैं! (चंडाला) तथा जो चांडाल-रौद्रकर्मा हैं (मुट्ठिया) मुष्टि से प्रहार करनेवाले हैं (सेया) अधम जातीय हैं-(जे अन्ने पावकम्मिणो) तथा इनसे भिन्न जो पाप कर्मों में परायण बने हुए प्राणी हैं, तथा जो (गोघातगा) गोघात करनेवाले हैं (जे चोरा) जो चोरी करनेवाले हैं (णिसायं सरमस्सिया) वे सब निषाद स्वर से आश्रित

મુજબ તૃપ્તિદાયક સુસ્વાદુ ભોજન મેળવે છે. દૂધ વગેરે પીવે છે. બીજાઓને પણ એવી રીતે ખવડાવતા પીવડાવતા રહે છે. (पंचमस्सरसंपन्ना हवंति पुढवीवई) જેઓ પંચમ સ્વર સંપન્ન હોય છે તેઓ પૃથ્વીપતિ હોય છે. (सूरा संगहकत्तारो अणेगगणनायगा) શૂરવીર હોય છે, સંગ્રહ કરનાર હોય છે અને ઘણા ગણોના નેતા હોય છે (धेवयस्सरसंपन्ना) તેમજ જે ધૈવત સ્વર-વાળા હોય છે. (हवंति कलहप्रिया) તે કલહ પ્રિય હોય છે લડાઈ, ઝંઝાસ, તકરાર તેમને બહુ ગમે છે. (साउणिया वग्गुरिया सोयरिया, मच्छबंधा य) શાકુ-નિક-પક્ષીઓનો શિકાર કરનાર હોય છે વાગુરિક-હરણોની હત્યા કરનારા હોય છે સૌકરિક-સૂવરનો શિકાર કરે છે અને મત્સ્ય બંધ-માછલીઓને મારનાર હોય છે. (चंडाला) તેમજ ચાંડાલ-રૌદ્રકર્મા-છે, (मुट्ठिया) મુષ્ટિપ્રહાર કરનારા હોય છે. (सेया) અધમ જાતવાળા હોય છે (जे अन्ने पावकम्मिणो) તેમજ એમનાથી ભિન્ન જે પાપકર્મોમાં રત રહે છે તથા જે (गोघातगा) ગોવધ કરનાર હોય છે (जे चोरा) જેઓ ચોરી કરનારા છે. (णिसायं सर-

टीका—'एएसि णं' इत्यादि—

एतेषां सप्तानां स्वराणां सप्त स्वरलक्षणानि=तत्तत्फलप्राप्त्यनुसारीणि स्वरतत्त्वानि कथितानि। तान्येव फलत आह—तद्यथा–षड्जेन लभते वृत्तिम्' इत्यादिभिः सप्तभिः श्लोकैः। तथाहि—षड्जेन स्वरेण जनो वृत्तिं=जीविकां लभते। तथा षड्जस्वरवतो जनस्य कृतं कर्म विनष्टं न भवति सफलमेव भवतीत्यर्थः। तस्य गावः पुत्रा मित्राणि च भवन्ति। तथा स स्त्रीणां वल्लभः=प्रियश्च भवति। ऋषभेण स्वरेण तु ऐश्वर्यम्=ईशनशक्तिमत्त्वं, सैनापत्यं=सेनापतित्वं, धनानि, वस्त्रगन्धम्=वस्त्राणि गन्धांश्च, अलंकारं स्त्रियः शयनानि च लभते। तथा–गान्धारे=गान्धारस्वरे गीतयुक्तिज्ञाः=गीतयोजनावेत्तारः—गान्धारस्वरगानकर्त्तारः इत्यर्थः, वर्यवृत्तयः–वर्याः=श्रेष्ठा वृतिः=जीविका येषां ते तथा–श्रेष्ठजीविकावन्तः, कलाधिकाः–कलाभिरधिकाःकलाज्ञेषु मूर्धन्याश्च भवन्ति। तथा–कवयः=काव्यकर्त्तारः, 'कृतिनः' इतिच्छायापक्षे– कर्त्तव्यशीलाः, प्राज्ञाः=सद्बोधाश्च भवन्ति। ये अन्ये=पूर्वोक्तेभ्यो गीतयुक्तिज्ञादिभ्यो ये भिन्ना भवन्ति ते शास्त्रपारगाः=सकल शास्त्रनिष्णाता भवन्ति। तथा–मध्यमस्वरसम्पन्नास्तु सुखजीविनः=सुखेन जीवितुं शीला भवन्ति। सुखजीवित्वमेव प्रकटयति मध्यमस्वरमाश्रितो जनो हि खादति=सुस्वादु भोजनं भुङ्क्ते, पिबति=दुग्धादिपानं करोति, ददाति=अन्यानपि भोजयति पाययति च। पञ्चमस्वरसम्पन्नास्तु पृथिवीपतयो भवन्ति, तथा–शूराः संग्रहकर्त्तारः अनेकगणनायकाश्च भवन्ति। तथा–धैवतस्वरसम्पन्नास्तु कलहप्रियाः=क्लेशकारका भवन्ति तथा–शकुनिकाः–शकुनेन=श्येनेन पर्यटन्ति, शकुनान्=पक्षिणो घ्नन्ति वा शकुनिकाः=पक्षिघातका लुब्धकविशेषाः। वागुरिकाः–वागुरा=मृगबन्धिनी, तया चरन्तीति वागुरिकाः=हरिणघातका लुब्धकविशेषाः, सौकरिकाः=सूकरेण-सूकरवधार्थं चरन्ति, सूकरान् घ्नन्ति वा सौकरिकाः=सूकरघातका लुब्धकविशेषाः, तथा–मत्स्यबन्धाः=मत्स्यघातिनश्च भवन्तीति। तथा–ये चाण्डालाः चाण्डकर्माणः, मौष्टिकः–मुष्टिः प्रहरणं येषां ते तथा, मुष्टिभिः प्रहरणशीला इत्यर्थः, सेयाः=अधमजातीया मनुष्याश्च सन्ति, एभ्योऽन्ये च ये पापकर्माणः=पापकर्मपरायणाः सन्ति, तथा च ये गोघातकाः सन्ति, ये च चौराः सन्ति, ते सर्वे निषादस्वरमाश्रिता विज्ञेयाः इति। एष पाठः स्थानाङ्गानुसारेण व्यख्यातो गृहीतश्च ॥सू० १६४॥

हैं, ऐसा जानना चाहिये। यह पाठ स्थानाङ्ग के अनुसार व्याख्यात किया है–और वहीं से लिया है। ॥सू०१६४॥

મસ્તિઓ) તે નિષાદ સ્વરનું ઉચ્ચારણ કરે છે સ્થાનાંગ પ્રમાણે જ આ પાઠ અહીં વ્યાખ્યાત કરવામાં આવ્યો છે–અને ત્યાંથી જ લેવામાં આવ્યો છે. ॥સૂ૦૧૬૪॥

अथैषां स्वराणां ग्रामान् एकैकग्रामस्य मूर्च्छनाश्चाह—

मूलम्—एएसिं णं सत्तण्हं सराणं तओ गामा पण्णत्ता, तं जहा—सज्जगामे मज्झिमगामे गंधारगामे। सज्जगामस्स णं सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—मंगीकोरव्वीया हरी य, रयणी य सारकंता य। छट्ठी य सारसी नाम, सुद्धसज्जा य सत्तमा॥१॥ मज्झिमगामस्स णं सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—उत्तर मंदा रयणी, उत्तरा उत्तरा समा। समोकंता य सोवीरा, अभीरू हवइ सत्तमा॥२॥ गंधारगामस्स णं सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—नंदी य खुड्डिया पूरिमा य, चउत्थी य सुद्धगंधारा। उत्तरगंधारा वि य, पंचमिया हवइ मुच्छा उ॥३॥ सुट्ठुत्तर मायामा, सा छट्ठी नियमसो उ णायव्वा। अह उत्तराययाकोडिमा य सा सत्तमी मुच्छा॥४॥सू०१६५॥

छाया—एतेषां खलु सप्तानां स्वराणां त्रयो ग्रामा प्रज्ञप्ताः, तद्यथा षड्जग्रामः मध्यमग्रामः गान्धारग्रामः। षड्जग्रामस्य खलु सप्त मूर्च्छनाः प्रज्ञप्ताः,

---

अब सूत्रकार इन स्वरों के ग्रामों को और एक एक ग्राम की मूर्च्छनाओं को कहते हैं—"एएसिं णं सत्तण्हं सराणं" इत्यादि।

शब्दार्थ—(एएसि णं सत्तण्हं सराणं) इन सातस्वरों के (तओ गामा पण्णत्ता) तीन ग्राम कहे गये हैं। (तं जहा) वे इसप्रकार हैं—(सज्जगामे, मज्झिमगामे गंधारगामे) १ षड्जग्राम, २, मध्यमग्राम, ३ गान्धारग्राम,। (सज्जगामस्स णं सत्तमुच्छणाओ पण्णत्ताओ) षड्ज-ग्राम की सात

હવે સૂત્રકાર આ સ્વરોના ગ્રામો અને દરેકે દરેક ગ્રામની મૂર્ચ્છનાઓ વિષે કથન કરે છે—"एएसिं णं सत्तण्हं सराणं" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(एएसिं णं सत्तण्हं सराणं) આ સાત સ્વરોના (तओ गामा पण्णत्ता) ત્રણ ગ્રામો કહેવાય છે (तंजहा) તે આ પ્રમાણે છે. (सज्जगामे, मज्झिमगामे गंधारगामे) १ षड्जग्राम, २ मध्यम ग्राम, ३ गान्धारग्राम. (सज्ज-गामस्स णं सत्तमुच्छणाओ पण्णत्ताओ) षड्ज ग्रामની સાત મૂર્ચ્છનાઓ કહે-

तद्यथा –मङ्गी कौरवीया हरिश्च, रजनी च सारकान्ता च । षष्ठी च सारसीनाम, शुद्धषड्जा च सप्तमी ॥१॥ मध्यमग्रामस्य खलु सप्त मूर्च्छनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा– उत्तरमन्दा रजनी' उत्तरा उत्तरसमा । समवक्रान्ता च सौवीरा, अभीरुर्भवति सप्तमी ॥२॥ गान्धारग्रामस्य खलु सप्तमूर्च्छनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–नन्दी च क्षुद्रिका पूरिमा च चतुर्थी च शुद्धगान्धारा । उत्तरगान्धाराऽपि च सा पञ्चमिका भवति मूर्च्छा ॥३॥ सुष्ठूत्तरायामा सा षष्ठी नियमशस्तु ज्ञातव्या । अथ उत्तरायता कोटिमा च सा सप्तमीमूर्च्छा ॥४॥सूत्र०१६५॥

मूर्च्छनाएँ कही हैं । (तं जहा) वे इसप्रकार से हैं–(मंगी कोरव्वीया हरी य, रयणी य सारकंता य छट्ठी य सारसीनाम सुद्धसज्जा य सत्तमा)१ मंगी, २ कौरवीया, ३ हरि, ४ रजनी, ५ सारकान्ता, छठी सारसी और सातवीं शुद्ध षड्जा । (मज्झिमगामस्स णं सत्तमुच्छणाओ पण्णत्ताओ) मध्यम ग्राम की सात मूर्च्छनाएँ कही हैं । (तं जहा) वे इस प्रकार से हैं–(उत्तरमंदा रयणी उत्तरा उत्तरा समा समोकंता य सोवीरा, अभीरू हवइ सत्तमा) १ उत्तर मंदा, २ रजनी, ३ उत्तरा ४ उत्तरसमा, समवक्रान्ता, ६सौवीरा और सातवीं अभीरू । (गंधारगामस्स णं सत्तमुच्छणाओ पण्णत्ताओ) गांधार ग्रामकी सात मूर्छनाएँ कही हैं । (तं जहा–) वे इसप्रकार से हैं- (नंदी य खुड्डिया, पूरिमा य, चउत्थीय सुद्धगंधारा । उत्तरगंधारा विय पंचमिया हवइ मुच्छाउ) नन्दी, क्षुद्रिका, पूरिमा, चौथी, शुद्ध गान्धारा, पांचवीं उत्तरगांधारा (सुट्ठु त्तरमायासा छट्ठी नियमसो उ णा-

ગ્રામાં આવી છે. (तंजहा) તે આ પ્રમાણે છે (मंगी कोरव्वीया हरी य, रयणीय सारकंता य छट्ठीय सारसी नाम सुद्धसज्जा य सत्तमा) १ મંગી, २ કૌરવીયા, ३ હરિ, ४ રજની ५ સારકાન્તા, ६ સરસી અને ७ શુદ્ધષડ્જા (मज्झिम गामस्स णं सत्तमुच्छणाओ पण्णत्ताओ) મધ્યમ ગ્રામની સાત મૂર્ચ્છનાઓ કહેવાય છે. (तंजहा) તે આ પ્રમાણે છે (उत्तर-मंदा रयणी उत्तरा उत्तरा समा समोकंता य सोवीरा, अभीरू हवइ सत्तमा) १ ઉત્તરમંદા, २ રજની, ३ ઉત્તરા, ४ ઉત્તરસમા, ५ સમવક્રાંતા ६ સૌવીરા, ७ અને અભીરુ (गंधारग्रामस्सणं सत्तमुच्छणाओ पण्णत्ताओ) ગાંધાર ગ્રામની સાત મૂર્ચ્છનાઓ કહેવામાં આવી છે. (तंजहा) તે આ પ્રમાણે છેઃ-(नंदी य खुड्डिया, पूरिमा य, चउत्थीय, सुद्धगंधारा उत्तरगंधारा वि य पंचमिया हवइ मुच्छा) १ નન્દી, २ ક્ષુદ્રિકા, ३ પૂરિમા, ४ શુદ્ધ ગાંધાર, ५ ઉત્તર ગાંધાર (सुट्ठुत्तरायामा सा छट्ठी नियमसो उ णायव्वा अहं उत्तरायया कोडिमा य सा सत्तमी मुच्छा) ६ સુષ્ઠુત્તરાયામા અને ७ મૂર્ચ્છા ઉત્તરાયતા કોટિમા.

टीका—'एएसि णं' इत्यादि—

व्याख्या स्पष्टा।—अयं भावः-मूर्च्छनानां ससमूहः षड्जादिस्त्रिधा ग्रामो विज्ञेयः। एकैकस्मिन् ग्रामे तु सप्तसप्तमूर्च्छना भवन्ति। ततः सप्तस्वराणामन्यान्यस्वरविशेषान् उत्पादयतो गायकस्य एकविंशतिर्मूर्च्छना भणिताः। कर्ता च मूर्च्छित इव ताः करोतीति मूर्च्छना उच्यन्ते, मूर्च्छन्निव वासकर्ता ताः करोतीति मूर्च्छना उच्यन्ते इति। मङ्कीप्रभृतीनामेकविंशतिमूर्च्छनानां स्वरविशेषाः पूर्वगतस्वरप्राभृते भणिताः। इदानीं ते तद्विनिर्गतेभ्यो भरतादिनिर्मितशास्त्रेभ्यो विज्ञेयाः ॥सू० १६५॥

यव्वा। अह उत्तरायया कोडिमा य सा सत्तमी मुच्छा) छठी सुष्ठूत्तरायामा और सातवीं मूर्च्छा उत्तरायता कोटिमा।

भावार्थ-इसका भाव यह है कि मूर्च्छनाओं का जो समूह है उस समूह से युक्त जो षड्ज आदि ग्राम है, और वे तीन प्रकार के हैं। एक २ ग्राम में सात २ मूर्च्छनाएँ होती हैं। इस कारण सात स्वरों के अन्य अन्य विशेष स्वरों को उत्पन्न करने वाले गायक की २१ मूर्च्छनाएँ कही गइ हैं गायनकर्ता मूर्च्छित हुए अथवा मानों के जैसा मूर्च्छित सा होकर—उन्हे करता है इसलिये मूर्च्छना कहलाती हैं। मंगी आदि२१ मूर्च्छनाओं के स्वर विशेष पूर्व संबन्धी स्वर प्राभृत में कहे हुए हैं। इस समय वे, स्वर प्राभृत से निर्गत हुए शास्त्रों से जिन्हे कि भरत आदि-नाटयकारों ने बनाये हैं। उनसे जाने जा सकते हैं ॥सू० १६५॥

ભાવાર્થ—એનો ભાવાર્થ આ પ્રમાણે છે કે મૂર્ચ્છનાઓનો જે સમૂહ છે અને તે સમૂહથી યુક્ત જે ષડ્જ વગેરે ગ્રામો છે તે ત્રણ પ્રકારના કહેવામાં આવ્યા છે દરેકે દરેક ગ્રામમાં સાત મૂર્ચ્છનાઓ હોય છે. એથી સાતસ્વરોના જુદા જુદા વિશેષ સ્વરોને ઉત્પન્ન કરનારા ગાયકની જેમ ૨૧ મૂર્ચ્છનાઓ કહેવામાં આવી છે. ગાયક મૂર્ચ્છિત (બેભાન) થયેલાની જેમ અથવા જાણે કે મૂર્ચ્છિતની જેમ થઈને તમને કહે છે. એટલા માટે એઓ મૂર્ચ્છનાઓ કહેવાય છે મંગી વગેરે ૨૧ મૂર્ચ્છનાઓના સ્વર વિશેષ પૂર્વસંબંધી સ્વર પ્રાભૃતમાં કહેવામાં આવ્યા છે. હમણા તે સ્વર પ્રાભૃતથી નિર્ગત થયેલા શાસ્ત્રો વડે-કે જેમને ભરત વગેરે નાટ્યશાસ્ત્રકારોએ બનાવ્યા છે-જાણી શકાય છે. ॥સૂ૦૧૬૫॥

एते सप्तस्वराः कुतो भवन्ति ? इत्यादि प्रश्नचतुष्टयपूर्वाणि तदुत्तराणि प्रोच्यन्ते—

मूलम्–सत्त सरा कओ संभवंति ? गीयस्स का हवंति जोणी ?। कइ समया उस्सासा ? कइ वा गीयस्स आगारा ?॥१॥ सत्त सरा नाभीओ हवंति, गीयं च रुइयजोणियं । पायसमा ऊसासा, तिण्णि य गीयस्स आगारा ॥२॥ आइमिउ आरभंता समुव्वहंता य मज्झगारंमि । अवसाणे तज्जवितो, तिन्नि य गीयस्स आगारा ॥३॥सू० १६६॥

छाया— सप्त स्वराः कुतः संभवन्ति ? गीतस्य का भवन्ति योनयः ? कति समया उच्छ्वासाः ? कति वा गीतस्य आकाराः ?॥१॥ सप्तस्वरा नाभितो, भवन्ति, गीतं च रुदितयोनिकम् । पादसमाउच्छ्वासाः, त्रयश्च गीतस्य आ-

ये सात स्वर कहां से होते हैं इत्यादि जो चार प्रश्न हैं उनका उद्भावन करते हुए सूत्रकार उनका उत्तर देते हैं—

"सत्तसरा कओ" इत्यादि ।—

शब्दार्थ–(सत्तसरा कओ संभवंति) प्रश्न–सात स्वर कहां से उत्पन्न होते है ? (गीयस्स का हवंति जोणी) गीत की जातियां क्या हैं ? (कइ समया उस्सासा ?) गीत के उच्छ्वास कितने समय के प्रमाणवाले होते हैं (कति वा गीयस्स आगारा) गीत के आकार कितने होते है ?

उत्तर–(सत्तसरनाभीओ हवंति) सात स्वर नाभि से उत्पन्न होते हैं । (गीयं च रुयजोणियं) गीत रुदितयोनिक होता है । (पायसमा ऊसासा) पाद सम उच्छ्वास होते हैं । (गीयस्स तिण्णि आगारा) गीत के तीन

એ સાત સ્વરો કયાંથી પ્રગટ થાય છે વગેરે જે ચાર પ્રશ્નો છે તેમનું ઉદ્ભાવન કરતાં સૂત્રકાર તેમના જવાબમાં કહે છે કે—

"सत्तसरा कओ" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ–(सत्तसरा कओ संभवंति) પ્રશ્ન સાત-સ્વરો કયાંથી ઉત્પન્ન થાય છે ? (गीयस्स का हवंति जोणी) ગીતોના ઉત્પત્તિ સ્થાનો કયા છે ? (कइसमया उस्सासा?) ગીતના ઉચ્છ્વાસ કેટલા સમયના પ્રમાણવાળા હોય છે ? (कति वा गीयस्स आगारा) ગીતના આકારો કેટલા હોય છે ?

ઉત્તર–(सत्त सर नाभीओ हवंति) સાત સ્વરો નાભિયોથી ઉત્પન્ન થાય છે. (गीयं च रुयजोणियं) ગીત રુદિત યોનિક હોય છે (पायसमा उसासा)

कारा: ॥२॥ आदिमृदुम् आरभमाणाः समुद्वहन्तश्च मध्यकारे। अवसाने क्षपयन्तः, त्रयोऽपि गीतस्य आकाराः ॥३। सू१६६॥

टीका—'सत्त सरा' इत्यादि—

एते षड्जादिसप्तस्वराः कुतः संभवन्ति=उत्पद्यन्ते ? तथा-गीतस्य का योनयो=जातयो भवन्ति? तथा गीतस्य कति समयाः=कियत्काल-प्रमाणा उच्छ्वासा भवन्ति ? तथा-गीतस्य कति वा=कियन्तो वा आकाराः= आकृतयः-स्वरूपाणि भवन्ति ? इति चत्वारः प्रश्नाः। उत्तरयति-षड्जादयः सप्त स्वरा नाभितो भवन्ति=जायन्ते। गीतं च रुदितयोनिकम्-रुदितं योनिः समानरूपतया जाति र्यस्य तत्तथाविधं भवति, गीतं रोदनसमानं भवती त्यर्थः। उच्छ्वासाश्च पादसमा भवन्ति। यावता समयेन वृत्तस्य पादः समाप्यते

आकार होते हैं। (आइमिउ आरभंता, समुव्वहंता य मज्झगारंमि, अवसाणे तज्जविंतो तिन्निय गीयस्स आगारा) सर्व प्रथम गीत मृदुध्वनि-वाला होता है। मध्यभाग में वह तेजध्वनिवाला और अन्त में मन्द्र-ध्वनिवाला होता हैं।

भावार्थ-सूत्रकार ने इस सूत्र द्वारा "षड्ज आदि सात स्वर कहां से उत्पन्न होते हैं? गीत की जातियां क्या है? गीत के उच्छ्वासों के समय का प्रमाण कितने हैं, और गीत किस आकार का होता है?-" इन चार प्रश्नों के उत्तर दिये हैं। इसमें उन्हों ने यह प्रकट किया है कि-ये पूर्वोक्त षड्ज आदि सात स्वर नाभिस्थान से उत्पन्न होते हैं। गीत रोने की जाति के जैसा होता है। यहां योनि शब्द का अर्थ जाति है। छन्द का पाद जितने समय में समाप्त होता है उतना ही समय गीत के

પાદસમ ઉચ્છ્વાસ હોય છે. (गीयस्स तिण्णि आगारा) ગીતના ત્રણ આકાર હોય છે. (आइमिउ आरभंता, समुव्वहंता य मज्झगारंमि अवसाणे तज्जविंतो तिन्निय गीयस्स आगारा) સર્વ પ્રથમ ગીત મૃદુધ્વનિ યુક્ત હોય છે. મધ્ય-ભાગમાં તે તીવ્રધ્વનિ યુક્ત હોય છે અને છેવટે મન્દ્રધ્વનિ યુક્ત હોય છે.

ભાવાર્થ-સૂત્રકારે આ સૂત્ર વડે "ષડ્જ" વગેરે સાત સ્વરો કયાંથી ઉત્પન્ન થયા છે ? ગીતના ઉત્પત્તિ સ્થાનો કયા છે ? ગીતના ઉચ્છ્વાસોનું પ્રમાણ કેટલું છે ? અને ગીતનો આકાર કઈ જાતનો છે ? એ ચાર પ્રશ્નોના જવાબો આપવામાં આવ્યા છે આમાં તેમણે સ્પષ્ટ કર્યું છે કે પૂર્વોક્ત ષડ્જ વગેરે સાત સ્વરો નાભિસ્થાનમાંથી ઉત્પન્ન થયા છે ગીતની જાતિ રુદન જેવી હોય છે. અહીં યોનિ શબ્દનો

तावत्समया गीते उच्छ्वासा भवन्तीत्यर्थः। तथा-गीतस्य आकाराश्च त्रयो भवन्ति। तानेवाह-आदिमृदुम् आदौ प्रारम्भे मृदुं गीतध्वनिमारभमाणाः, मध्यकारे मध्यभागे समुद्वहन्तः=महतीं गीतध्वनिं कुर्वन्तः, च=पुनः अवसाने=अन्ते क्षपयन्तः=गीतध्वनिं मन्द्रीकुर्वन्तश्च गायका गीतं गायन्ति। अतो गाने स्वरः आदौ मृदुः, मध्ये तारः, अन्ते च मन्द्रो भवति। ततश्च मृदुतारमन्द्रध्वनिरूपास्त्रय आकारा गीतस्य विज्ञेयाः ॥सू०॥१६६॥

सम्प्रति गीते हेयोपादेयादिकं प्रवक्तुमुपक्रमते—

मूलम्—छद्दोसे अट्ठगुणे, तिण्णि य वित्ताइं दो य भणिईओ। जाणाहिइ सोगाहिइ, सुसिक्खिओ रंगमज्झंमि॥१॥ भीयं दुयं रहस्सं, गायंतो माय गाहि उत्तालं। काकस्सरमणुणासं, च होंति गीयस्स छद्दोसा॥२॥ पुण्णं रत्तं च अलंकियं च वत्तं तहा अविघुट्ठं। महुरं समं सुललियं अट्ठगुणा होंति गीयस्स॥३॥ उरकंठसिरपसत्थं, गिज्जइ मउयरिभियपदबद्धं। समतालपडुक्खेवं, सत्तस्सरसीभरं गीयं॥४॥ निद्दोसं सारमंतंच, हेउजुत्तमलंकियं। उवणीयं सोवयारं च, मियं महुरमेव य॥५॥ समं अद्ध-

---

उच्छ्वासों का है। गानेवाले सबसे पहिले गीत को मृदुध्वनि से प्रारंभ करते हैं, फिर बीच में उसे जोर की आवाज से गाते हैं बाद में अन्त में मन्द्रध्वनि से उसे समाप्त करते हैं। इसलिये गाने में स्वर आदि में मृदु, मध्य में तार, और अन्त में मंद होता है-अतः मृदु, तार, और मन्द्र इन तीन ध्वनिरूप आकार गाने के जानने चाहिये ॥ सू० १६६ ॥

અર્થ જાતિ છે. છન્દનો પાદ (ચરણ) જેટલા સમયમાં સમાપ્ત થાય છે તેટલો જ સમય ગીતના ઉચ્છ્વાસોનો છે ગાયકો સૌ પહેલાં ગીતને મૃદુધ્વનિથી પ્રારંભ કરે છે. પછી મધ્યમાં મોટા સ્વરે તેને ગાય છે ત્યાર પછી અંતે મંદ્રધ્વનિમાં તેને સમાપ્ત કરે છે. એટલા માટે ગાતી વખતે પ્રારંભમાં સ્વર મૃદુ મધ્યમાં સ્વર તાર અને અંતમાં સ્વર મંદ હોય છે એથી મૃદુ, તાર, અને મન્દ્ર આ ત્રણ ધ્વનિ રૂપ આકાર ગીતનો સમજવો જોઈએ. ॥સૂ૦૧૬૬॥

समं चेव, सठवत्थ विसमं च जं। तिण्णि वित्तपयाराइं, चउत्थं नोवलब्भइ ॥६॥ सक्कया पायया चेव, दुहा भणिईओ आहिया। सरमंडलंमि गिज्जंते, पसत्था इसिभासिया ॥७॥ केसी गायइ महुरं केसी गायइ खरं च रुक्खं च। केसी गायइ चउरं, केसी य विलंबियं दुतं केसी ? ॥८॥ विस्सरं पुण केरिसी—सामा गायइ महुरं, काली गायइ खरं च रुक्खं च। गोरी गायइ चउरं, काणा-विलम्बं दुतं च अंधा ॥९॥ विस्सरं पुण पिंगला, तंतिसमं तालसमं, पायसमं लयसमं गहसमं च। नीससिऊससियसमं, संचारसमं सरा सत्त ॥१०॥ सत्तसरा तओ गामा मुच्छणा एकवीसई। ताणा एगूणपण्णासं, सम्मत्तं सरमंडलं ॥११॥ से त्तं सत्तनामे ॥सू० १६७॥

छाया— षड्दोषान् अष्टगुणान् त्रीणि च वृत्तानि द्वेच भणितो। ज्ञास्यति स गास्यति सुशिक्षितो रङ्गमध्ये॥१॥ भीतं द्रुतं ह्रस्वं गायन् मा च गाय उत्तालम्। काकस्वरमनुनासं च भवन्ति गेयस्य षड्दोषाः॥२॥ पूर्णं रक्तं च अलंकृतं च व्यक्तं तथा अविघुष्टम्। मधुरं समं सुललितम् अष्टगुणा भवन्ति गेयस्य ॥३॥ उरः कण्ठशिरः प्रशस्तं च गीयते मृदुक-रिभित-पदबद्धम्। समताल प्रत्युत्क्षेपं सप्त-स्वरसीभरं गीतम् ॥४॥ निर्दोषं सारवच्च, हेतुयुक्तमलंकृतम्। उपनीतं सोपचारं च, मितं मधुरमेव च ॥५॥ समम् अर्धसमं चैव, सर्वत्र विषमं च यत्। त्रयो वृत्त-प्रकाराः, चतुर्थः नोपलभ्यते ॥६॥ संस्कृताः प्राकृताश्चैव द्विविधा भणितय आ-ख्याताः। स्वरमण्डले गीयन्ते प्रशस्ता ऋषिभाषिताः ॥७॥ कीदृशी गायति मधुरं? कीदृशी गायति खरं च रूक्षं च ? ॥ कीदृशी गायति चतुरं ?कीदृशी च विलम्बितं द्रुतं कीदृशी ? ॥८॥ विस्वरं पुनः कीदृशी ? श्यामा गायति मधुरं काली गायति खरं च रूक्षं च। गौरी गायति चतुरं काणा विलम्बं द्रुतं च अन्धा ॥९॥ विस्वरं पुनः पिङ्गला। तन्त्रीसमं तालसमं पादसमं लयसमं ग्रहसमं च। निःश्वसितोच्छ्व-सितसमं संचारसमं स्वराः सप्त॥१०॥सप्तस्वराः त्रयो ग्रामा मूर्च्छनाः एकविंशति। तानाः एकोनपञ्चाशत्, समाप्तं स्वरमण्डम् ॥ ११ ॥ तदेतत् सप्तनाम ॥ सू०१६७॥

टीका—'छद्दोसे' इत्यादि—

गीते हि षड् दोषाः, अष्टगुणाः, त्रीणि वृत्तानि, द्वे भणिती च भवन्ति। यो जन एतान् यथावद् ज्ञास्यति स एव सुशिक्षितः सन् रङ्गमध्ये=नाट्यशालायां गास्यति ॥संप्रति तानाह 'भीयं' इत्यादिना। हे गायक! भीतं माय च त्वं भीतं= भयपूर्वकं च मा गाय=गानं मा कुरु, द्रुतं=त्वरितं च मा गाय, ह्रस्वम्=अल्पस्वरेण च मा गाय, ॥३॥ उत्तालम्—उद्गत =औचित्यादूर्ध्वं गतस्तालो यत्र तत् उत्तालम्— अतितालमस्थानतालं चेत्यर्थः, तथा मा गाय। तालस्तु कांस्यादिशब्दो बोध्यः।

अब सूत्रकार गीत में हेय और उपादेय आदि को कहते हैं—

"छद्दोसे अट्ठगुणे" इत्यादि।

शब्दार्थ—(छद्दोसे अट्ठगुणे तिण्णिय वित्ताइं दो य भणिईओ) छह दोषों को, आठगुणों को, तीन वृत्तों को और दो भणितियों को (जाणाहिइ) जो यथावत् जानेगा (सो) वही (सुसिक्खिओ) सुशिक्षित—गान कला में निपुण हुआ व्यक्ति (रंगमज्झंमि) रंगशाला में (गाहिइ) गावेगा—। गीत के छहदोष—इस प्रकार से हैं (भीयं दुयं रहस्सं गायंतो मा य गाहि उत्तालं, कागस्सरमणुणासंच होंति गीयस्स छद्दोसा) जब गायक गाना गाने को तैयार होने लगता है, तब उससे कहा जाता है कि—'हे गायक! तुम गीत गाओ तो सही—परन्तु भीत—भय भीत होकर मत गाना, गाने में उतावली मत करना, अर्थात् जल्दी २ से मत गाना, अल्प स्वर से मत गाना—उत्ताल मत गाना—अर्थात् अतिताल होकर

હવે સૂત્રકાર ગીતમાં હેય અને ઉપાદેય વગેરેનું કથન કરે છે—

" छद्दोसे अट्ठगुणे " ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ—(छद्दोसे अट्ठगुणे तिण्णिय वित्ताइं दो य भणिईओ) છ દોષોને, આઠગુણોને, ત્રણ વૃત્તોને અને બે ભાણિતિયોને (जाणाहिइ) જે સારી રીતે જાણશે (सो) તે (सुसिक्खिओ) સુશિક્ષિત-ગાનકલામાં નિપુણ થયેલ કલાકાર (रंगमज्झंमि) રંગશાળામાં (गाहिइ) ગાશે ગીતમાં છ દોષો આ પ્રમાણે છે. (भीयं दुयं रहस्सं गायंतो माय गाहि उत्तालं कागस्सरमणुणासं च होंति गीयस्स छद्दोसा) જ્યારે ગાયક ગાવા માટે પ્રસ્તુત થાય છે ત્યારે તેને કહેવામાં આવે છે કે હે ગાયક! તમે ગીત ગાવો તે બરાબર છે પણ તમે બીતા બીતા ગાશો નહિ ગાવામાં ખોટી ઉતાવળ કરશો નહિ એટલે કે જલ્દી જલ્દી ગાશો નહિ, અલ્પ સ્વરમાં ગાશો નહિ, ઉત્તાલ (તાલવગર) ગાશો નહિ, એટલે કે અતિતાલ થઈને કે અસ્થાનતાલ થઈને ગાશો નહિ. કાગડાના સ્વર જેવા સ્વરથી ગીત

तथा-काकस्वरम्-काकस्य स्वरइव स्वरो यस्मिन् गीते तत्, श्लक्ष्णाश्रयस्वरमित्यर्थः, तथा मा गाय। अनुनासम्-सानुनासिकं च मा गाय। यत एते भीतादयः षट् गेयस्य दोषा भवन्तीति। इत्थं दोषानुक्त्वा सम्प्रति गुणानाह-'पुण्णं' इत्यादिना। पूर्णम्-यत्र गीते सर्वाः स्वरकलाः गायकैः प्रदर्श्यन्ते तत्र 'पूर्ण'-नामा गुणो भवति ॥१॥ रक्तम्-गायको गीतरागेण रक्तः=भावितः सन् यद् गीतं गायति तत्र 'रक्त' नामा गुणो भवति॥२॥ अलङ्कृतम्-यत्र गाने गायकोऽन्यान्यस्फुटशुभस्वरविशेषैर्गीतमलङ्करोति तत्र 'अलङ्कृत'-नामको गुणः॥३॥ व्यक्तम्-यत्र गाने गायकोऽक्षरान् स्वरांश्च स्फुटतयोच्चारयति तत्र 'व्यक्त'-नामा गुणः॥४॥ अविघुष्टम्-विक्रोशनमिव यद्विस्वरं भवति तद् विघुष्ट-मुच्यते, यत्र विघुष्टं न

या अस्थानताल होकर नहीं गाना, काक के स्वर के समान स्वर वाले होकर गान को मत गाना, सानुनासिक मत गाना। क्योंकि ये भीत आदि छ गान के दोष हैं।

इस प्रकार दोष को कहकर अब गुणों को सूत्रकार कहते हैं-(पुण्णं रत्तं च अलंकियं च वत्तं तहा अविघुट्ठं, महुरं समं सुललियं, अट्ठगुणा होंति गीयस्स) जिस गीत में समस्त स्वरकलाएँ गीतकार गायन कला को दिख लाते हैं, वहां पूर्ण नामका गुण होता है। गायक गीतराग-से भावित होता हुआ जिस गीत को गाता है' वहां 'रक्त' नामका गुण होता है। जिस गान में गायक अन्य अन्य स्फुटस्वर विशेषों द्वारा गीत को सजाता है, वहां 'अलंकृत' नाम का गुण होता है। — जिस गान में गायक अक्षरों एवं स्वरों को स्फुटरूप से उच्चारित करता है, वहां 'व्यक्त' नाम का गुण होता है। विक्रोशन-गुस्से में आये हुए व्यक्ति के स्वर के जैसा अथवा चिल्लाते हुए व्यक्ति के स्वर के जैसा

ગાશો। નહિ નાકમાં ગાશો। નહિ કેમકે આ ભીત વગેરે છ ગીતના દોષો છે. આ પ્રમાણે ગીતના દોષોનું સ્પષ્ટીકરણ કરીને હવે સૂત્રકાર ગુણો વિષે કહે છે કે (पुण्णं रत्तं च अलंकियं च वत्तं तहा अविघुट्ठं, महुरं समं सुललियं अट्ठ गुणा-होंति गीयस्स) જે ગીતમાં ગીતકાર સમસ્ત ગાયન કળાનું પ્રદર્શન કરે છે તે પૂર્ણ નામે ગુણ કહેવાય છે. ગાયક ગીત રાગથી ભાવિત થઈને જે ગીતને ગાય છે, તે રક્ત નામે ગુણ કહેવાય છે. જે ગીતમાં ગાયક બીજા વિશેષ સ્ફુટ સ્વરોથી ગીતને અલંકૃત કરે છે. તે અલંકૃત ગુણ કહેવાય છે. જે ગીતમાં ગાયક અક્ષરો અને સ્વરોને સ્ફુટ રૂપમાં ઉચ્ચારે છે તે વ્યક્ત નામે ગુણ કહેવાય છે વિક્રો-શન-ગુસ્સામાં ભરેલી વ્યક્તિની જેમ અથવા તો ઘાંટા પાડતી વ્યક્તિના સ્વરની જેમ જે ગાનારનો સ્વર હોય તે ગાન ' વિઘુષ્ટ ' કહેવાય છે. જે ગાનમાં વિઘુષ્ટ ન

भवति तत्र 'अविघुष्ट' नामा गुणो बोध्यः॥५॥ मधुरम्–मधुमत्तकोकिलकल काकलीवत् यत्र गाने गायकस्य मधुरः स्वरो भवति तत्र 'मधुरस्वर'–नामा गुणः॥६॥ समम्–तालवंशस्वरादिसमनुगतो यत्र स्वरो भवति, तत्र 'सम'–नामको गुणः॥७॥ सुललितम्–स्वरघोलनाप्रकारेण शुद्धातिशयेन शब्दस्पर्शनेन श्रोत्रेन्द्रियस्य सुखोत्पादनाद् वा, ललतीव यत् तत् सुललितम्–सुकुमारमित्यर्थः, अयं गेयस्याष्टमो गुणः॥८॥ एते अष्ट गुणा गीतस्य भवन्ति। एतद्विरहितं गीतं तु गीतमेव न भवति। तत्तु गीताभासं विज्ञेयम्॥ इतोऽन्येऽपि गीतगुणाः सन्ति, तान् प्रदर्शयितुमाह–'उरकंठ' इत्यादि। च=पुनः उरःकण्ठशिरःप्रशस्तम्–उरःकण्ठशिरसां द्वन्द्वः, ततः प्रशस्तेन सह तृतीयातत्पुरुषः। एवं च–उरः प्रशस्तं कण्ठप्रशस्तं शिरः प्रशस्तमिति शुद्धमिति पदत्रयं लभ्यते। तत्र–उरसि यदा विशालः स्वरो भवति,

---

जो गान स्वर विहीन होता है, वह 'विघुष्ट' गान कहलाता है। जिस गान में विघुष्ट नहीं होता वहां, 'अविघुष्ट' नाम का यह गुण होता है। वसन्त में मत्त कोकिलाकी कलकाकली के जैसा जिस गान में गायक का स्वर मधुर होता है, उस गान में 'मधुर' स्वर नाम का गुण होता है। जिस गान में ताल, वंश-स्वर आदि से समनुगत स्वर होता है उस गान में 'सम' नामका गुण होता है। स्वर घोलना प्रकार से शुद्धातिशय से अथवा शब्दस्पर्शन से जो श्रोत्रेन्द्रिय को सुखोत्पादक होता है और इसी कारण जो विशेष प्रिय लगता है वह सुललित है–यह गान का अष्टमगुण है। इस प्रकार ये गीत के ८ गुण हैं। इन गुणों से रहित हुआ गीत (गान) गीत ही नहीं कहलाता है। वह तो गीताभास है। इन गुणों से अन्य और भी गीत के गुण हैं, जो इस प्रकार से हैं (उरःकंठसिरपसत्थं) उरःप्रशस्त कंठप्रशस्त और शिरःप्रशस्त, गान का

હોય ત્યાં 'अविघुष्ट' નામક ગુણ કહેવાય છે. વસન્તમાં મત્ત કોયલની કલકાકલીની જેમ જે ગીતમાં ગાયકનો સ્વર મધુર હોય છે, તે ગીતમાં મધુર સ્વર નામે ગુણ હોય છે જે ગીતમાં તાલ, વંશ, સ્વર વગેરેથી સમનુગત સ્વર હોય છે તે ગીતમાં 'सम' નામક ગુણ હોય છે. સ્વરઘોલના પ્રકારથી, શુદ્ધાતિશયથી અથવા શબ્દ સ્પર્શનથી જે શ્રોત્રેન્દ્રિયને સુખ અર્પે છે અને એથી જે વિશેષ પ્રિય લાગે છે તે સુલલિત છે આ ગીતનો આઠમો ગુણ છે આ પ્રમાણે આ ગીતના આઠ ગુણો છે. આ ગુણોથી હીન ગીત ગીત કહી શકાય જ નહીં તે તો ગીતાભાસ છે. આ ગુણોની સાથે સાથે બીજા પણ કેટલાક ગીતના ગુણો છે તે આ પ્રમાણે છે–(उरकंठसिरपसत्थं) उरःप्रशस्त, કંઠપ્રશસ્ત અને શિરઃપ્રશસ્ત ગીતનો વિશાળ સ્વર જ્યારે વક્ષસ્થળમાં પૂરિત

तदा-उरःप्रशस्तं विज्ञेयम्। यदा च कण्ठे स्वरो वर्तितोऽतिस्फुटितश्च तदा कण्ठ प्रशस्तम्। यदा च शिरसि प्राप्तः स्वरः स चेदानुनासिक्यरहितस्तदा शिरःप्रशस्तम्। यद्वा-उरःकण्ठशिरस्तु कफरहितेषु सत्सु यत् प्रशस्तं गीतं भवति तत्-उरः कण्ठशिरःप्रशस्तम्। तथा-मृदुकरिभितपदबद्धम्-मृदुना=कोमलेन स्वरेण यद् गीयते तद् मृदुकम्, यत्र अक्षरेषु घोलनया संचरन् स्वरो रञ्जतीव तद् घोलनाबहुलं रिभितम्, पदैः=गेयपदैः बद्धम्=विशिष्टरचनया रचितं-पदबद्धम्। पदत्रयस्य कर्मधारयः। तथा च-समतालप्रत्युत्क्षेपम्-तालः=हस्ततालसमुत्थः शब्दः, प्रत्यु-

---

विशालस्वर जब वक्षःस्थल में भर जाता है तब वह उरःप्रशस्त गान कहलाता है, गान का यह उरःप्रशस्त गुण है। गान का स्वर जब कंठ में भर जाता है और वह अतिस्फुट होता है तब वह कण्ठ प्रशस्त गान कहलाता है। गान का यह कण्ठप्रशस्त गुण है। जब गान का स्वर शिर में जाकर यदि अनुनासिक से वह रहित हो जाता है तब वह गान शिरःप्रशस्त कहलाता है। गान का यह शिरःप्रशस्त गुण है। अथवा-कफ रहित होने पर उर, कंठ और शिर ये सब प्रशस्त रहते हैं, उस समय गाया गया गीत भी प्रशस्त होता है। ऐसा गीत उरः कंठ शिरःप्रशस्त कहलाता है। (मउयरिभियपदबद्धं) तथा मृदुक रिभित और पदबद्ध, भी गान के ३ तीन गुण हैं-जो गान कोमल स्वर से गाया जाता है, 'मृदुक' गुणवाला गाना है। जहां अक्षरों में घोलना से संचार करता हुआ स्वर चलता रहता है ऐसा वह घोलना बहुल गान 'रिभित' गुणवाला गान कहा जाता है। जिस गान

થઈ જાય છે ત્યારે તે ઉરઃપ્રશસ્ત ગીત કહેવાય છે. ગીતનો આ ઉરઃપ્રશસ્ત ગુણ છે ગાનનો સ્વર જ્યારે કંઠપ્રદેશમાં ભરાઈ જાય છે અને તે અતિસ્ફુટ હોય છે ત્યારે તે કંઠપ્રશસ્ત ગીત કહેવાય છે ગાન નો આ કંઠપ્રશસ્ત ગુણ છે. જ્યારે ગાનનો સ્વર મસ્તકમાં જઈને તે અનુનાસિક વિનાનો થઈ જાય છે ત્યારે તે ગાન શિરઃપ્રશસ્ત કહેવાય છે ગાનનો આ શિરઃપ્રશસ્ત ગુણ છે. અથવા કફ રહિત હોવા બાદ ઉર, કંઠ, અને શિર આ બધા પ્રશસ્ત રહે છે તે વખતે ગવાયેલ ગીત પણ પ્રશસ્ત હોય છે એવું ગીત ઉરઃ કંઠ, શિરઃપ્રશસ્ત કહેવાય છે. (મઉયરિભિયપદબદ્ધં) તેમજ મૃદુક રિભિત અને પદ બદ્ધ આ પ્રમાણે પણ ગીતના ત્રણ ગુણો છે જે ગાન કોમળ સ્વરમાં ગવાય છે તે મૃદુક ગુણ યુક્ત ગાન કહેવાય છે જ્યાં અક્ષરોમાં ઘોલનાથી સંચરણ કરતો સ્વર ચાલતો રહે છે એવું તે ઘોલન બહુલ ગીત 'રિભિત' ગુણ યુક્ત ગીત કહેવાય છે જે ગીતમાં પદોની રચના વિશિષ્ટ હોય છે, તે 'પદ-

त्क्षेपः=मुरजकांस्यादीनां गीतोपकारकाणां ध्वनिः, नर्त्तकीपदप्रक्षेपलक्षणो वा, समौ तालप्रत्युत्क्षेपौ यत्र तत् । तथा-सप्तस्वरसीभरम्-सप्त स्वराः सीभरन्ति=अक्षरादिभिः सह समा यत्र भवन्ति तत् । एवं विधं यद् गीतं गीयते तदेव सुगीतं भवति । इत्थं च उरःकण्ठ शिरःप्रशस्तत्वादयोऽपि गीतगुणा बोध्याः 'सप्तस्वरसीभरम्' इत्युक्तं, तत्र ये सप्त स्वरास्ते क्वचित् एवमुक्ताः—

"अक्खरसमं पदसमं तालसमं च लयसमं गहसमं ।
नीससिओससियसमं संचारसमं सरा सत्त ॥

छाया—अक्षरसमं पदसमं तालसमं च लयसमं ग्रहसमम् ।
निःश्वसितोच्छ्वसितसमं सञ्चारसमं स्वराः सप्त ।इति॥

अयमर्थः-अक्षरसमम्-यत्र दीर्घेऽक्षरे दीर्घो गीतस्वरः क्रियते, ह्रस्वे ह्रस्वः, प्लुते प्लुतः, सानुनासिके सानुनासिकः, तदक्षरसमम् ॥१॥ पदसमम्-यत् पदं=गीत-

---

में पदों की रचना विशिष्ट होती है, वह 'पदबद्ध' गान है । (समताल-पडुक्खेवं) जिस गान में ताल-हस्ततास से उत्पन्न हुआ शब्द और प्रत्युत्क्षेप-मृदंग कांस्य आदि का जो कि गीत के उपकारक होते है उनकी ध्वनि अथवा नर्तकीजन का पादप्रक्षेप ये दोनों जिस में एक साथ होते है वह समताल प्रत्युत्क्षेप गान है । यह गान का गुण है । (सत्तस्सरसीभरं गीयं) जिस गान में सात स्वर अक्षरों के साथ समान होते हैं वह गान 'सप्तस्वरसीभर' कहलाता है । इस प्रकार का जो गाना गाया जाता है वही सुगीत (गीत) कहलाता है । सप्तस्वर सीभर में जो सात स्वर कहे गये हैं, वे कहीं२ पर इस प्रकार से कहे गये हैं-अक्षरसम१, पदसम२, तालसम३, लयसम४, ग्रहसम५, निःश्वसितोच्छ्वसितसम६, और संचारसम ७, जिस गान में दीर्घ अक्षर पर दीर्घस्वर, ह्रस्व अक्षर पर ह्रस्व स्वर प्लुत अक्षर पर प्लुत स्वर और सानुनासिक

બદ્ધ' ગીત છે. (સમતાલ પડુક્ખેવં) જે ગીતમાં તાલ-હસ્તતાલથી ઉત્પન્ન થયેલ શબ્દ અને પ્રત્યુત્ક્ષેપ-મૃદંગ કાંસ્ય વગેરેનો કે જે ગીતના માટે ઉપકારક હોય છે તેમનો ધ્વનિ અથવા નર્તકીઓનું પાદપ્રક્ષેપણ એ બન્ને જેમાં એકી સાથે હોય છે તે સમતાલ પ્રત્યુત્ક્ષેપ ગીત છે. આ ગીતનો ગુણ છે. (સત્તસ્સરસીભરં ગીયં) જે ગીતમાં સાતસ્વર અક્ષરોની સાથે સમાન હોય છે તે ગીત 'સપ્તસ્વર સીભર' કહેવાય છે. આ પ્રમાણે જે ગીત ગવાય છે તે સુગીત (ગીત) કહેવાય છે 'સપ્તસ્વર સીભર'માં જે સાત સ્વરો કહેલા છે તેઓ કોઈક સ્થાને આ પ્રમાણે પણ કહેવામાં આવ્યા છે-૧ અક્ષરસમ, ૨ પદસમ, ૩ તાલસમ, ૪ લયસમ, ૫ ગ્રહસમ, ૬ નિઃશ્વસિતોચ્છ્વાસિતસમ, અને ૭ સંચારસમ, જે ગીતમાં દીર્ઘઅક્ષર પર દીર્ઘસ્વર, હ્રસ્વઅક્ષર પર હ્રસ્વસ્વર, પ્લુત અક્ષર પર પ્લુતસ્વર અને સાનુનાસિક પર સાનુનાસિક સ્વર

दम् यत्र स्वरे अनुपाति भवति तत्रैव यदा गीयते तदा पदसमं भवति॥२॥ तालसमम्–यत् परस्पराभिहतहस्ततालस्वरानुसारिणा स्वरेण गीयते तत्ताल-समम् ॥३॥ लयसमं शृङ्ग–दार्वाद्यन्यतमवस्तुमयेनाङ्गुलीकोशेन समाहते तन्त्र्यादौ यस्तत्स्वरप्रकारः स लयः, तमनुसरता स्वरेण यद् गीयते तद्लयसमम्॥४॥ ग्रहसमम्–प्रथमतो वंशतन्त्र्यादिभिर्यः स्वरो गृहीतः स ग्रहः, तत्समेन स्वरेण यद् गीयते तद् ग्रहसमम्॥५॥ निःश्वसितोच्छ्वसितसमम्–निःश्वसितोच्छ्वसितमान-मनतिक्रमतो यद् गेयं तद् निःश्वसितोच्छ्वसितसमम्॥६॥ संचारसमम्–वंशतन्त्र्या-दिष्वेव अङ्गुलीसंचारसमं यद् गीयते तत् संचारसमम्। एवमेते सप्तस्वरा भवन्ति।

पर सानुनासिक स्वर होता है वह अक्षरसम है। जिस स्वर में जो गीतपद अनुपाती होता है, वह गीत पद जब वहीं पर गाया जाता है तब पदसमस्वरवाला गीत होता है। जो गाना परस्पराभिहत हस्ततल के तालस्वर के अनुसारवाले स्वर से गाया जाता है वह गाना तालसम स्वरवाला कहलाता है। शृंग अथवा दारु काष्ठ आदि किसी एक वस्तु के बने हुए अंगुली कोश से तंत्री आदि के बजाने पर जो ध्वनि निक-लती है; उसका नाम लय है। उस लय का अनुसरण करनेवाले स्वर से जो गाना गाया जाता है वह लयसमस्वरवाला गाना कहलाता है। वंशतंत्री आदिकों द्वारा जो स्वर पहिले से गृहीत कर लिया जाता है उसका नाम ग्रह है। इस ग्रह के समान स्वर से जो गीत गाया जाता है वह ग्रहसम स्वरवाला गीत कहलाता है। निःश्वास उच्छ्वास के प्रमाणानुसार जो गानागाया जाता है वह निश्वसितोच्छ्वसित सम है। वंशतंत्री आदि कों

હોય છે તે અક્ષરસમ છે. જે સ્વરમાં જે ગીત પદ અનુપાતી હોય છે, તે ગીત પદ જ્યારે ત્યાંજ ગાવામાં આવે છે, ત્યારે પદ સમસ્વરવાળું ગીત કહેવાય છે. જે ગીત પર સ્વરાભિહત હસ્તતલના તાલસ્વર ને અનુસરતા સ્વરથી ગવાય છે. તે ગીત તાલસમ સ્વરવાળું કહેવાય છે શૃંગ અથવા દારુ-કાષ્ટ વગેરે કોઈ પણ એક વસ્તુના બનેલા અંગુલી કોશથી તંત્રી વગેરે વગાડવાથી જે ધ્વનિ નીકળે છે તેનું નામ લય છે. તે લયને અનુસરનાર સ્વરથી જે ગીત ગવાય છે તે લયસમસ્વરવાળું ગીત કહેવાય છે. વંશ તંત્રી વગેરે વડે જે સ્વર પહેલાથી જ ગૃહીત કરવામાં આવે છે તેનું નામ ગ્રહ છે. આ ગ્રહના સમાન સ્વરથી જે ગીત ગવાય છે તે ગ્રહસમ સ્વર યુક્ત ગીત કહેવાય છે. નિઃશ્વાસ ઉચ્છ્વાસના પ્રમાણ મુજબ જે ગીત ગવાય છે તે નિઃશ્વસિતોચ્છ્વ-

अत्रेदं बोध्यम्-एकोऽपि गीतस्वरोऽक्षरपदादिभिः सप्तभिः स्थानैः सह समत्वं प्रतिपद्यमानः सप्तधात्वं भजते, अतोऽक्षरसमादयः सप्तस्वरा भवन्तीति। अत्र तु सूत्रोपान्ते 'तंतिसमं तालसमं' इति गाथया सप्तस्वरा उच्यन्ते इति बोध्यम्। तथा गीते यः सूत्रबन्धः सोऽष्टगुण एव कर्त्तव्य इति तानाह-'निद्दोसं' इत्यादि। निर्दोषम्='अलियमुवघायजणयं' इत्यादि द्वात्रिंशद्दोषरहितम् १, सारवत्=विशिष्टार्थयुक्तम् २ हेतुयुक्तम्-गीतानामर्थबोधोऽनायासेन श्रोतॄणां भवतिति हेतुमुपलक्ष्य यद् रचितं गीतं तत्, प्रासादगुणयुक्तमित्यर्थः ३, अलङ्कृतम्-उपमाद्यलङ्कारयुक्तम्४,

के ऊपर ही जो अंगुली के संचार के साथ २ गाना गाया जाता है, वह संचारसम है। इस प्रकार ये सात स्वर होते हैं। यहां पर ऐसा जानना चाहिये कि-एक ही गीत स्वर अक्षर पद आदि सात स्थानों के साथ उनकी समानता को पाता हुआ सात प्रकार का हो जाता है। इसलिये अक्षरसम आदि सात स्वर होते हैं। यहां तो सूत्र के उपान्त में "तंतिसमं, तालसमं" इस गाथा द्वारा सातस्वर कहे गये हैं। तथा गीत में जो सूत्रबंध-किया जावे वह आठ गुणवाला ही किया जाना चाहिये। आठ गुण इस प्रकार से हैं-(निद्दोसं सारमंतंच हेउजुत्तमलंकियं उवणीयं सोवयारंच मियं महुरमेव य) निर्दोष-अलीक, उपघात जनक इत्यादि ३२ दोषों से रहित होना इसका नाम 'निर्दोष' है। सारवत्-विशिष्ट अर्थ से युक्त होना इसका नाम 'सारवान्' है। श्रोताजनों को अनायास ही गीत के अर्थ का बोध हो जावे, इस हेतु को ध्यान में रख कर जो गीत रचा गया हो वह 'हेतुयुक्त' है। तात्पर्य यह है कि

સ્મિત સમ છે વંશ તંત્રી વગેરેની ઉપર જ જે આંગળીના સંચારની સાથે સાથે ગવાય છે તે 'સંચારસમ' છે. આ પ્રમાણે આ બધા સાત થાય છે. અહીં એમ સમજવું જોઈએ કે દરેક ગીત સ્વર અક્ષર પદ વગેરે સાત સ્થાનોની સાથે સાથે તેમની સમાનતા મેળવતું સાત પ્રકારનું થઈ જાય છે. અહીં સૂત્રના ઉપાન્તમાં "तंतिसमं तालसमं" આ ગાથા વડે સાત સ્વરો કહેવામાં આવ્યા છે, તેમજ ગીતમાં જે સૂત્રબંધ કરવામાં આવે તે આઠ ગુણ યુક્ત જ હોવો જોઈએ આઠ ગુણો આ પ્રમાણે છે-(निद्दोसं सारमंतं च हेउ जुत्तमलंकियं उवणीयं सोवयारं च मियं महुरमेवयं) નિર્દોષ-અલીક, ઉપઘાતજનક વગેરે બત્રીશ દોષ રહિત થવું તે નિર્દોષ છે. સારવત્-વિશિષ્ટ અર્થથી યુક્ત હોય તે સારવત્ છે. સાંભળનારાઓને અનાયાસ જ ગીતના અર્થનું જ્ઞાન થાય એ વાતને ધ્યાનમાં રાખીને જે ગીતની રચના કરવામાં આવે છે તે 'હેતુયુક્ત' કહેવાય છે મતલબ એ છે કે ગીત પ્રાસાદ ગુણ યુક્ત હોવું જોઈએ

उपनीतम्-उपनयनिगमनयुक्तम्-उपसंहारयुक्तमित्यर्थः५, सोपचारम्-क्लिष्टविरुद्ध-लज्जास्पदार्थावाचकं सानुप्रासं वा गीतम् ६, मितम्-अतिवचनविस्तररहितं, संक्षिप्ताक्षरमित्यर्थः७, तथा-मधुरम्-माधुर्यगुणसमन्वितं-सुश्रव्यशब्दार्थयुक्त-मित्यर्थः८, एतादृशं यत् गीतं तदेव गानयोग्यं भवति। अथ यदुक्तं त्रीणि वृत्तानीति तान्याह-'समं' इत्यादि। यत्र वृत्ते चतुर्ष्वपि चरणेषु समानि अक्षराणि भवन्ति, तद् वृत्तं समम्। यत्र प्रथम तृतीययोर्द्वितीयचतुर्थयोश्च चरणयोः सामान्याक्षराणि भवन्ति तदर्धसमम्। तथा-यत्र=वृत्ते सर्वत्र=चतुर्ष्वपि चरणेषु अक्षराणां

गीत को प्रासाद गुण युक्त होना चाहिये। उपमा आदि अलंकारों से जो गीत सजा हुआ होता है वह गीत 'अलंकृत गुण वाला कहलाता है जो गीत उपसंहार से युक्त हो जाता है वह उपनीत गुण युक्त गीत माना जाता है। जो गीत क्लिष्ट विरुद्ध एवं लज्जास्पद पदार्थ का वाचक नहीं होता अथवा अनुप्रास युक्त होता है वह 'सोपचार' गीत कहलाता है। जिस गीत में वचनों का विस्तार अधिक नहीं होता है अर्थात् जो गीत संक्षिप्त अक्षरों वाला होता है, वह 'मित' गुण वाला गान है। जो गान सुश्राव्य शब्द और अर्थ वाला होता, है वह मधुर गुण युक्त गान कह लाता है। ऐसा जो गान — होता है वही गान योग्य होता है। गीत की तीन भणितियां इस प्रकार से हैं-(समं अद्धसमं चेव सव्वत्थविसमं च यं, तिण्णि वित्तपयाराइं चउत्थं नोवलब्भइ) जिस वृत्त में चारों चरणों में समान अक्षर होते हैं, वह 'समवृत्त' है। जिस वृत्त में प्रथम तृतीय पादों में और द्वितीय चतुर्थ पादों में समान अक्षर होते हैं वह अर्द्धसमवृत्त है। तथा

ઉપમા વગેરે અલંકારોથી જે ગીત અલંકૃત હોય છે તે ગીત અલંકૃત ગુણવાળું કહેવાય છે. જે ગીત ઉપસંહારથી યુક્ત હોય છે તે ઉપનીત ગુણ યુક્ત ગીત કહેવાય છે જે ગીત ક્લિષ્ટ, વિરૂદ્ધ, અને લજ્જાસ્પદ પદાર્થ વાચક ન હોય અને અનુપ્રાસ યુક્ત હોય છે તે 'સોપચાર' ગીત કહેવાય છે. જે ગીતમાં વચનવિસ્તાર વધારે ન હોય એટલે કે જે ગીત સંક્ષિપ્ત અક્ષરો યુક્ત હોય છે, તે 'મિત' ગુણયુક્ત ગીત છે. જે ગીત સુશ્રાવ્ય શબ્દ અને અર્થવાળું હોય છે તે મધુર ગુણ યુક્ત ગીત કહેવાય છે. એવું જે ગીત હોય છે તેજ ગીત ગાવાલાયક હોય છે ગીતની ત્રણ ભણિતીઓ આ પ્રમાણે છે-(समं अद्धसमं चेव सव्वत्थ विसमं च यं, तिण्णि वित्तपयाराइं चउत्थं नोवलब्भइ) જે વૃત્તમાં ચારે ચરણોમાં સમ અક્ષરો હોય છે તે 'સમવૃત' છે જે વૃતમાં પ્રથમ-તૃતીય પાદમાં અને દ્વિતીય ચતુર્થ પાદોમાં સમાન અક્ષર હોય છે તે

वैषम्यं तद्वृत्तं विषमम्। एते त्रय एव वृत्तप्रकारा भवन्ति, चतुर्थं वृत्तं तु नोपलभ्यते। तथा-भणितयः=भाषाः संस्कृताः प्राकृताश्च द्विविधा द्विप्रकारका एव आख्याताः=उक्ताः। एता ऋषिभाषिता अतएव प्रशस्ता भाषा बोध्याः। अत एव एताः स्वरमण्डले=षड्जादि स्वरसमूहे गीयन्ते॥ अत्र गीतविचारः प्रस्तुतः, अतः 'कीदृशी स्त्री कथं गायति?' इति पृच्छति-'केसी गायइ' इत्यादिना-कीदृशी स्त्री मधुरं=मधुरस्वरेण गायति? च=पुनः कीदृशी स्त्री खरं=खरस्वरेण रूक्षं=रूक्षस्वरेण च गायति? कीदृशी स्त्री चतुरं=चातुर्येण-गीतशास्त्रोक्तयथाविधि

जिस वृत्त में चारों ही पादों में अक्षरों की विषमता रहती है, वह 'विषमवृत्त' है। ये तीन वृत्तों के प्रकार हैं और चतुर्थ प्रकार वृत्त का कोई नहीं है। (सक्कया पायया चेव दुहा भणिईओ आहिया। सरमंडलंमि गिज्जंते पसत्था इसिभासिया) तथा-भणिति-भाषा-संस्कृत और प्राकृत के भेद से दो प्रकार की ही कही गई है। ये ऋषिजनों द्वारा भाषित हुई हैं, इसलिये इन्हें प्रशस्त भाषा जानना चाहिये। प्रशस्त भाषा होने के कारण ही ये दोनों प्रकार की भाषाएँ षड्ज आदि स्वर समूह में गाई जाती हैं। यहां पर गीत का विचार चल रहा है इसलिये पूछा जा रहा है कि-कैसी स्त्री किस प्रकार से गाती है? इसी बात को सूत्रकार-अब प्रकट कर रहे हैं-(केसी गायइ महुरं) कैसी स्त्री गीत को मधुर स्वर से गाती है? (केसी गायइ खरं च रुक्खं च) कैसी स्त्री गीत को खर स्वर से गाती है? कैसी स्त्री गीत को रूक्षस्वर से गाती है? (केसी गायइ चउरं? केसी य विलंबियं दुतं केसी?) कैसी स्त्री चतुराई

'अर्द्ध-समवृत्त' छे तेमज जे वृत्तमां चारेचार चरणोमां अक्षरोनी विषमता रहे छे ते 'विषमवृत्त' छे आ त्रणे वृत्तोना प्रकार छे એ शिवाय वृत्तनो चोथो प्रकार नथी. (सक्कया पायया चेव दुहा भणिईओ आहिया। सरमंडलंमि गिज्जंते पसत्था इसिभासिया) तेमज भणिति-भाषा-संस्कृत अने प्राकृतना भेदथी बे प्रकारनी कहेवामां आवी छे એ ऋषिओ वडे भाषित थयेली छे એथी तेने प्रशस्त भाषा जाणवी जोईએ એ प्रशस्त भाषा होवा બદલ જ आ બन्ने जातनी भाषाओ षड्ज वगेरे स्वर समूहोमां गवाय छे अहीं गीत संबंधी प्रकरण चाली रहुं छे એथी आ प्रमाणे पूछवामां आवी रहुं छे के કઈ स्त्री केवी रीते गाय छे? એज वातने सूत्रकार हवे प्रकट करे छे. (केसी गायइ महुरं) केवी स्त्री मधुर स्वरे गीत गाय छे? (केसी गायइ खरं च रुक्खं च) કઈ स्त्री गीतने खर स्वरथी गाय छे? કઈ स्त्री रुक्षस्वरथी गीत गाय छे? (केसी गायइ चउरं? केसी विलंबियं

स्वरविधानेन गायति ? कीदृशी च स्त्री विलम्बितं=मन्थर (मन्द) स्वरेण गायति ? कीदृशी स्त्री द्रुतं=द्रुतस्वरेण गायति ? तथा-कीदृशी च स्त्री विस्वरं=विकृतं स्वरं कृत्वा गायति ? उत्तरयति-'सामा' इत्यादिना। व्याख्या स्पष्टा। नवरं-पिङ्गला-कपिला। 'सप्तसीभरम्' इति यदुक्तम्, तत्र सप्त स्वराः के ? इति दर्शयति-'तंतीसमं' इत्यादि-तन्त्रीसमम्-तन्त्री-वीणा, तस्याः शब्देन समं=तुल्यं मिलितं

से अर्थात् गीत शास्त्र में कथित विधि के अनुसार स्वरविधान से गाती है ? कैसी स्त्री विलम्बित-मन्थर स्वर-से गाती है ? कैसी स्त्री द्रुतस्वर से गाती है ? (विस्सरं पुण केरिसी) और कैसी स्त्री विकृत स्वर से गाती है अर्थात् स्वर को विकृत कर गाती है ?

उत्तर-(सामा गायइ महुरं) श्यामा-षोडशवार्षिकी-स्त्री मधुर-स्वर से गाती है (काली गायइ खरं च रुक्खंच) काली कृष्णरूप-वाली स्त्री गीत को खर से और रूक्ष स्वर से गाती है। (गोरी गायइ चउरं) गौरवर्णसंपन्ना स्त्री गीत को चतुराई से गाती है। (काणा विलम्बं दुतंच अंधा) काणी स्त्री-एकाक्षी नारी गीत को मंद स्वर से गाती है। अंधी स्त्री गीत को द्रुतस्वर से गाती है। (विस्सरं पुण पिंगला) और जो कपिला-कपिल वर्ण वाली स्त्री होती है वह गीत को विकृत स्वर से गाती है। (तंतिसमं, तालसमं, पायसमं, लयसमं, गहसमं च नीससिऊस-सियसमं संचारसमं सरा सत्त) तंत्रीसम-तंत्री-वीणा के समान

दुतं केसी ?) કઈ સ્ત્રી ચતુરતાથી એટલે કે ગીતશાસ્ત્રમાં કથિત વિધિ મુજબ સ્વરવિધાનથી ગાય છે ? કઈ સ્ત્રી વિલંબિત-મન્થર-સ્વરથી ગીત ગાય છે ? કઈ સ્ત્રી દ્રુતતર સ્વરથી ગીત ગાય છે ? (विस्सरं पुण केरिसी) અને કઈ સ્ત્રી વિકૃત સ્વરથી ગીત ગાય છે એટલે કે સ્વરને વિકૃત કરીને ગાય છે ?

ઉત્તર-(सामा गायइ महुरं) श्यामा-षोडश वार्षिकी એટલે કે સોળ વર્ષની સ્ત્રી મધુર સ્વરથી ગીત ગાય છે. (काली गायइ खरं च रुक्खं च) કાળી કૃષ્ણ રૂપવાળી-કાળાવર્ણની-સ્ત્રી ખર અને રૂક્ષ સ્વરથી ગાય છે. (गोरी गायइ चउरं) गौरवर्णं संपन्ना એટલે કે ગોરી સ્ત્રી ચતુરાઇથી ગીત ગાય છે. (काणा विलम्बं दुतं च अंधा) કાણી સ્ત્રી-એક આંખવાળી-સ્ત્રી મંદ સ્વરથી ગીત ગાય છે આંધળી સ્ત્રી દ્રુતસ્વરથી-ઉતાવળથી-ગીત ગાય છે. (विस्सरं पुण पिंगला) અને જે કપિલા કપિલવર્ણવાળી સ્ત્રી હોય છે તે વિકૃત સ્વરથી ગીત ગાય છે. (तंतिसमं तालसमं, पायसमं, लयसमं गहसमं च नीससिउससियसमं संचार-समं सरा सत्त)-तंत्री सम-तंत्री वीणा-ના શબ્દ જેવો અથવા તેના સ્વરની

वा गेयम्। एवमग्रेऽपि गेयमिति संबन्धनीयम्। 'तालसमम्' इत्यारभ्य संचार-समम्' इत्यन्तं पदषट्कं पूर्वं व्याख्यातम्। गेयस्वरयोरनर्थान्तरत्वादाह-'सत्त सरा' इति। इत्थं स्वरा बोध्या इति भावः। सम्प्रति समस्तं स्वरमण्डलं संक्षेपेणाह-षड्जादयः सप्त स्वरा विज्ञेयाः, ग्रामाश्च त्रयः, मूर्च्छनाश्च एकविंशतिः तता, तन्त्री, तान इति पर्यायाः भण्यन्ते, तत्र षड्जादिषु स्वरेषु प्रत्येकं सप्तभिस्तानैर्गीयते इत्यतः सप्त तन्त्रिकायां वीणायामेकोनपञ्चाशत्तानाः भवन्ति। एवमेव एकतन्त्रिकायां त्रितन्त्रिकायां वा वीणायां कण्ठेनापि वा गीयमाना एकोनपञ्चाश-

---

अथवा उसके साथ मिला हुआ जो स्वर आता है, वह तंत्री समस्वर है। इसी प्रकार से ताल सम आदि के साथ भी "गेय" इसका संबंध कर लेना चाहिये। गेय और स्वर में अर्थ भेद नहीं है। इसलिये गेय से यहां स्वर लेना चाहिये। इस प्रकार ये सात स्वर हैं। तालसम से लेकर संचारसम तक के ६ पदों की व्याख्या पहिले करदी गई है। (सत्तसरा तओ गामा मुच्छणा एकवीसई, ताणा एगूणपण्णासं सम्मत्तं सरमंडलं) इस प्रकार संक्षेपसे समस्तस्वर मंडल सातस्वर, तीन ग्राम इक्कीस मूर्च्छना और ४९ तान इस प्रकार से हैं। तता, तंत्री, तान, ये सब पर्यायवाची-शब्द हैं। षड्ज आदि सात स्वरों में से प्रत्येक स्वर सात तानों से गाया जाता है। इसलिये सप्त तंत्रिका वाली वीणा में ४९ तानें होती हैं। इसी प्रकार एक तंत्रिका वाली अथवा त्रितंत्रिकावाली वीणा में कंठ से भी गाई गई तानें ४९ ही होती हैं। इस प्रकार सात-

---

સાથે મિશ્રિત થયેલો જે સ્વર છે તે 'તંત્રીસમ સ્વર' છે આ પ્રમાણે તાલ-સમ વગેરે માટે પણ 'ગેય' શબ્દનો સંબંધ સમજવો જોઈએ ગેય અને સ્વરમાં અર્થ-ભેદ નથી એટલા માટે ગેયથી અહીં સ્વર લેવો જોઈએ આ પ્રમાણે સ્વરો સાત છે 'તાલ સમ'થી લઈને 'સંચાર સમ' સુધીના ૬ પદોની વ્યાખ્યા પહેલા કરવામાં આવી છે. (सत्तसरा तओ गामा मुच्छणा एकवीसई, ताणा एगूणपण्णासं सम्मत्तं सरमंडलं) આ પ્રમાણે ટૂંકમાં સમસ્ત સ્વર-મંડળ-સાતસ્વર, ત્રણગ્રામ, એકવીશ મૂર્ચ્છના અને ૪૯ તાન-આ પ્રમાણે છે તતા-તંત્રી, તાન, આ બધા પર્યાયવાચી શબ્દો છે ષડ્જ વગેરે સાત સ્વરોમાંથી દરેકે દરેક સાત તાનોથી ગવાય છે. એથી સપ્ત તંત્રિકા યુક્ત વીણામાં ૪૯ તાનો હોય છે આમ એક તંત્રિકા યુક્ત વીણા અથવા ત્રિતંત્રિકા-વાળી વીણામાં કંઠથી ગવાયેલ તાનો પણ ૪૯ હોય છે આ પ્રમાણે સાત

देव ताना भवन्ति। इत्थं षड्जादिभिः सप्तभि र्नामभिः सर्वस्यापि स्वरमण्डलस्य ग्रहणादिदं सप्तनामेत्युच्यते। इदमेवोपसंहरन्नाह-'तदेतत् सप्तनामे'ति॥सू. १६७॥

अथाष्टनाम निरूपयितुमाह--

मूलम्-से किं तं अट्ठनामे? अट्ठनामे अट्ठविहा वयणविभत्ती पण्णत्ता, तं जहा-निद्देसे पढमा होइ, बिइया उवएसणे। तइया करणम्मि कया, चउत्थी संपयावणे॥१॥ पंचमी य अवायाणे, छट्ठी सस्सामिवायणे। सत्तमी सण्णिहाणत्थे, अट्ठमाऽऽमंतणी भवे॥२॥ तत्थ पढमा विभत्ती, निद्देसे सो इमो अहं वत्ति। बिइया पुण उवएसे भण कुणसु इमं व तंवत्ति॥३॥ तइया करणंमि कया, भणियं च कयं च तेण व मए वा। हंदि णमो साहाए, हवइ चउत्थी पयाणंमि॥४॥ अवणय गिण्ह य एत्तो, इउत्ति वा पंचमी अवायाणे। छट्ठी तस्स इमस्स व गयस्स वा सामिसंबंधे॥५॥ हवइ पुण सत्तमी तं, इमंमि आहारकाल-भावे य। आमंतणे भवे अट्ठमी उ जहा हे जुवाणत्ति॥६॥ से त्तं अट्ठणामे॥सू० १६८॥

छाया-अथ किं तत् अष्टनाम? अष्टनाम-अष्टविधाः वचनविभक्तयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-निर्देशे प्रथमा भवति, द्वितीया उपदेशने। तृतीया करणे कृता, चतुर्थी

नामों से समस्त भी स्वरमंडल का ग्रहण हो जाता है। इसलिये यह सप्तनाम ऐसा कहा जाता है। (सेत्तं सत्तनामे) इस प्रकार से यह सप्तनाम है। ॥सू० १६७॥

अब सूत्रकार अष्ट नाम का निरूपण करते हैं-

"से किं तं अट्ठनामे" इत्यादि।

નામોથી આખા સ્વરમંડળનું ગ્રહણ સમજવું જોઇએ એથી 'સપ્તનામ' આમ કહેવાય છે. (से त्तं सत्तनामे) આ પ્રમાણે આ સપ્તનામો છે ॥સૂ૦૧૬૭॥

હવે સૂત્રકાર અષ્ટ નામનું નિરૂપણ કરે છે—

"से किं तं अट्ठनामे" ઇત્યાદિ—

संप्रदानेऽपि॥१॥ पञ्चमी च अपादाने, षष्ठी स्वस्वामिवाचने। सप्तमी सन्निधानार्थे, अष्टमी आमन्त्रणी भवेत्॥२॥ तत्र प्रथमाविभक्तिः, निर्देशे सः अयम् अहं वा इति। द्वितीया पुनरुपदेशे भण कुरु इदम् वा तत् वा इति॥३॥ तृतीया करणे कृता

शब्दार्थ-(से किं तं अट्ठनामे) हे भदन्त! वह अष्ट नाम क्या है? (अट्ठ विहा वयणविभत्ती पण्णत्ता)

उत्तर-आठ प्रकार की जो वचनविभक्ति है वह अष्ट नाम है। जो कहे जाते हैं, वे 'वचन' हैं। तथा कर्त्ता, कर्म आदिरूप अर्थ जिसके द्वारा प्रकट किया जाता है वह 'विभक्ति' है। वचनों-पदों, की जो विभक्ति है वह 'वचनविभक्ति' है। ऐसा तीर्थंकर एवं गणधरों ने कहा है। वचनविभक्ति से यहां पर सुबन्त रूप प्रथमा आदि विभक्तियों को कहनेवाली वचनविभक्ति गृहीत हुई है। तिङन्तरूप आख्यात विभक्ति नहीं। (तंजहा) वचनविभक्ति के आठ प्रकार ये हैं-(निद्देसे पढमा होइ) (प्रातिपदिक अर्थमात्र का प्रतिपादन करना इसका नाम निर्देश है। इस निर्देश में "सु औ, जस्" यह प्रथमा विभक्ति होती है। (उवएसणे बिइया) किसी एक क्रिया में प्रवर्तन होने के लिये इच्छा के उत्पादन करने में "अम् औट् शस्" यह द्वितीया विभक्ति होती है। "उवएसण" यह पद उपलक्षण है। इससे "ग्रामं गच्छति" इत्यादि पद में इसके विना भी द्वितीया विभक्ति होती है। (करणम्मि

શબ્દાર્થ-(से किं तं अट्ठनामे) હે ભદંત! આ અષ્ટનામ શું છે? (अट्ठ विहा वयणविभत्ती पण्णत्ता.)

ઉત્તર-આઠ પ્રકારની જે વચન વિભક્તિ છે તે અષ્ટનામ છે. જે કહેવામાં આવે છે, તે 'વચન' છે તેમજ કર્ત્તા, કર્મ વગેરે રૂપ અર્થ જેના વડે પ્રકટ કરવામાં આવે છે તે 'વિભક્તિ' છે. વચનો-પદોની જે વિભક્તિ છે તે વચનવિભક્તિ છે. આમ તીર્થંકરોએ અને ગણધરોએ કહ્યું છે વચનવિભક્તિથી અહીં સુબન્ત રૂપ પ્રથમા વિભક્તિઓને પ્રકટ કરનારી વચન વિભક્તિ ગૃહીત થયેલી છે તિઙન્ત રૂપ આખ્યાત વિભક્તિ નથી (तंजहा) વચન વિભક્તિના આઠ પ્રકારો આ પ્રમાણે છે. (निद्देसे पढमा होइ) પ્રાતિપદિક અર્થ માત્રનું પ્રતિપાદન કરવું તેનું નામ નિર્દેશ છે. આ નિર્દેશમાં 'सु औ जस्' આ પ્રથમા વિભક્તિ હોય છે. (उवएसणे बिइया) કોઇ એક ક્રિયામાં પ્રવર્તિત થવા માટે ઇચ્છા ઉત્પન્ન કરવામાં 'अम्, औट् शस्' આ દ્વિતીયા વિભક્તિ હોય છે. "उवएसण" આ પદ ઉપલક્ષણ છે એનાથી "ग्रामं गच्छति" વગેરે પદોમાં

भणितं च कृतं च तेन वा मया वा। हन्दि नमः स्वाहायै भवति चतुर्थीप्रदाने॥४॥ अपनय गृहाण च अस्मात् इतः इति वा पञ्चमी अपादाने। षष्ठी तस्य अस्य व गतस्य वा स्वामिसम्बन्धे॥५॥ भवति पुनः सप्तमी सा अस्मिन् आधारकालभावे च। आमन्त्रणे भवेत् अष्टमी तु यथा हे युवन् इति॥६॥ तदेतद् अष्टनाम॥सू.१६८॥

टीका—'से किं तं' इत्यादि—

अथ किं तत् अष्टनाम? इति शिष्य प्रश्नः। उत्तरयति–अष्टनाम–अष्टविधं नाम–अष्टनाम, तथाहि–अष्टविधा=अष्टप्रकारा वचनविभक्तिः–उच्यन्ते इति वचनानि=पदानि, विभज्यते=प्रकटीक्रियते कर्त्तुकर्मादिरूपोऽर्थोऽनयेति विभक्तिः, वचनानां विभक्तिः–वचनविभक्तिः प्रज्ञप्ता=कथिता तीर्थंकरगणधरैः। वचनविभ-

---

तइया कया) करण में "टा, भ्याम् भिस्" यह तृतीया विभक्ति होती है। (संपयावणे चउत्थी) संप्रदान में चतुर्थी ङे, भ्याम् भ्यस्–यह विभक्ति होती है। (अवायाणे पंचमीच) अपादान में ङसि भ्याम्, भ्यस्, "यह पंचमी विभक्ति होती है। (सस्सामिवायणे छट्ठी) स्व स्वामी संबंध प्रतिपादन करने में "ङस् ओस् आम्" यह षष्ठी विभक्ति होती है। (सण्णिहाणत्थे सत्तमी) सन्निधान अर्थ में "ङि ओस् सुप्" यह सप्तमी विभक्ति होती है। (आमंतणी अट्ठमा भवे) सन्मुख करने के अर्थ में संबोधनरूप आठवीं विभक्ति होती है। तात्पर्य कहने का यह है कि–'यहां पर सूत्रकार ने अष्ट नाम क्या है? यह कहा है। नाम के विचार का प्रस्ताव होने से प्रथमादि विभक्त्यन्त नाम का ही ग्रहण किया गया है। यह नाम विभक्ति के भेद से आठ

એના વગર પણ દ્વિતીયા વિભક્તિ હોય છે. (करणम्मि तइया कया) કરણમાં "टा, भ्याम्, भिस्" આ તૃતીયા વિભક્તિ હોય છે (संपयावणे चउत्थी) સંપ્રદાનમાં ચતુર્થી "ङे, भ्याम्, भ्यस्" આ વિભક્તિ હોય છે. (अवायाणे पंचमी च) અપાદાનમાં "ङसि, भ्याम् भ्यस्," આ પાંચમી વિભક્તિ હોય છે (सस्सामिवायणे छट्ठी) સ્વ સ્વામી સંબંધ પ્રતિપાદન કરવામાં 'ङस् ओस् आम्' આ ષષ્ઠી વિભક્તિ હોય છે. (सण्णिहाणत्थे सत्तमी) સન્નિધાન અર્થમાં 'ङि ओस्, सुप्' આ સપ્તમી વિભક્તિ હોય છે. (आमंतणी अट्ठमाभवे) અભિમુખ કરવાના અર્થમાં સંબોધન રૂપ આઠમી વિભક્તિ હોય છે મતલબ આ છે કે 'અહીં સૂત્રકારે અષ્ટનામ એટલે શું? આ કહ્યું છે નામવિચાર વિષે જ પ્રસ્તાવ હોવા બદલ પ્રથમા વગેરે વિભક્ત્યંત નામનું જ ગ્રહણ કરવામાં આવ્યું છે આ નામ વિભક્તિ ભેદથી આઠ પ્રકારના હોય છે. પ્રથમા

क्तिस्तु नामविभक्तिः सुबन्तरूपा प्रथमादिका बोध्या, न तु तिङन्तरूपा-आख्यात-विभक्तिः। अष्टप्रकारां वचनविभक्तिमेवाह-तद्यथा-निर्देशे-प्रातिपदिकार्थमात्रस्य प्रतिपादनं निर्देशस्तस्मिन् 'सु औ जस्' इति प्रथमा विभक्तिर्भवति। उपदेशने-अन्यतरक्रियायां प्रवर्त्तनेच्छोत्पादने 'अम् औट् शस्' इति द्वितीया विभक्ति र्भवति। उपदेशनमित्युपलक्षणम्, तेन ग्रामं गच्छतीत्यादौ तदन्तरेणापि भवति। करणे 'टा भ्यां भिस्' इतितृतीया विभक्ति र्भवति। अत्र करण शब्दस्तन्त्रेण निर्दिष्टः। तेनात्र कर्तरि=क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितेऽर्थे देवदत्तादौ करणे= क्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपकारके च तृतीयाविभक्ति र्भवति। करोतीति करणः, 'कृत्य-ल्युटो बहुल' मिति बाहुलकात् कर्तरि ल्युट्। क्रियतेऽनेनेति करणम्, करणे

प्रकार का होना है। प्रथमा विभक्ति द्वितीया विभक्ति आदि के भेद से विभक्तियां आठ हैं। इनमें प्रातिपादिकार्थ मात्र के प्रतिपादन में प्रथमा विभक्ति होती है। संस्कृत में कारक विभक्तियों को प्रकट करने के लिये सु औ जस् आदि २१ विभक्तियां=प्रत्यय, हैं। ये सुप् प्रत्यय कह लाते हैं। ये सुप्प्रत्यय जिन शब्दों में जुड़ते हैं उन्हें 'प्राति-पदिक' कहते हैं। सुप्प्रत्यय जुड़ने पर ही प्रातिपादिक शब्दों का वाक्य में प्रयोग हो सकता है। करण में तृतीया विभक्ति होती है। ऐसा जो कहा है वह तंत्र (१) से कहा है। इसलिये तृतीया विभिक्तिकर्ता में-क्रिया में स्वतंत्ररूप से विवक्षित देवदत्त आदि रूप अर्थ में-एवं करण में-क्रिया की सिद्धि में प्रकृष्टतम उपकारक में-होती है। "कृत्य-ल्युटो बहुलम्" इस सूत्र के अनुसार कृत्य और ल्युट्प्रत्यय कर्ता और

વિભક્તિ દ્વિતીયા વિભક્તિ વગેરેના ભેદથી વિભક્તિઓ આઠ છે આમાં ફકત પ્રાતિપદિકાર્થના પ્રતિપાદનમાં પ્રથમા વિભક્તિ હોય છે સંસ્કૃતમાં કારક વિભક્તિઓને પ્રકટ કરવામાં માટે સુ, ઔ, જસ્ વગેરે ૨૧ વિભક્તિના પ્રત્યયો છે.- છે એ સુપ્ પ્રત્યયો કહેવાય છે એ સુપ્ પ્રત્યયો જે શબ્દોમાં ઉમેરાય છે તે પ્રાતિપદિક કહેવાય છે સુપ્ પ્રત્યય ઉમેરાયા પછી જ પ્રાતિપદિક શબ્દોનો વાકયમાં પ્રયોગ થઈ શકે છે. કરણમાં તૃતીયા વિભક્તિ હોય છે, એવું જે કહેવામાં આવ્યું છે તે તંત્ર (સિધ્ધાંત)થી કહેવામાં આવ્યું છે એટલા માટે તૃતીયા વિભક્તિ કર્ત્તામાં, ક્રિયામાં સ્વતંત્ર રૂપથી વિવક્ષિત દેવદત્ત વગેરે રૂપ અર્થમાં અને કરણમાં ક્રિયાની સિદ્ધિમાં પ્રકૃષ્ટતમ ઉપકારક હોય છે. 'कृत्यल्युटो बहुलम्' આ સૂત્ર મુજબ 'કૃત્ય' અને 'લ્યુટ્' પ્રત્યય કર્તા અને કરણ બન્નેમાં હોય છે આ પ્રમાણે 'करोति इति करणम्, क्रियते

ल्युट्। संप्रदापने–संप्रदाने–दानस्य कर्मणा योऽभिप्रेतस्तस्मिन् 'ङे भ्याम् भ्यस्' इति चतुर्थी विभक्ति र्भवति। अपादाने–अपायावधिभूते 'ङसि भ्याम् भ्यस्' इति पञ्चमी विभक्ति र्भवति। स्वस्वामिवाचने–स्वम्–भृत्यादि, स्वामी–राजादिस्तयोर्वाचने–तत्सम्बन्धप्रतिपादने 'ङस् ओस् आम्' इति षष्ठी विभक्ति र्भवति। सन्निधानार्थे वाच्ये 'ङि ओस् सुप्' इति सप्तमी विभक्ति र्भवति। तथा–अष्टमी=संबोधनविभक्तिः आमन्त्रणी=अभिमुखी करणार्था भवति। इत्थं सामान्येनोक्त्वा सम्प्रति सोदाहरणमाह–निर्देशे प्रथमा, विभक्ति र्भवति, यथा–सः अयम् अहं वेति। उपदेशे पुनः द्वितीया विभक्ति र्भवति। यथा–'भण कुरु इदं वा तद्वेति इदं प्रत्यक्षं यत् श्रुतं तद् भण, इदं प्रत्यक्षं कार्यं कुरु, तत्–परोक्षं वा यत् श्रुतं तद्

करण इन दोनों में होते हैं। इस प्रकार करोति इति करणः क्रियतेऽनेनेति करणम् "यहां दोनो जगह ल्युट प्रत्यय हुआ है। दान रूप क्रिया के कर्म का जिसके साथ संबन्धकर्ता को इष्ट हो उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है। अपाय की अवधिभूत पदार्थ का नाम अपादान है। इसमें पंचमी विभक्ति होती है। स्वस्वामी संबंध में सेव्य सेवक आदि भाव लिया गया है। स्व का तात्पर्य सेवक, भृत्यादि से है और स्वामी का सेव्य राजादि से। सन्निधान और आमन्त्रणी इन शब्दों का अर्थ स्पष्ट है। इस प्रकार सामान्य से कह कर अब सूत्रकार इस अष्ट नाम को उदाहरण देकर समझाते है–(तत्थ निद्देसे पढमा विभत्ती) निर्देश में प्रथमा विभक्ति होती है–जैसे (सो इमो अहं वत्ति) वह यह अथवा मैं। (बिइया पुण उवएसे) उपदेश में द्वितीयाविभक्ति होती है जैसे–(भण कुणसु इमं व तं वत्ति) जो तुमने प्रत्यक्ष में सुना है, उसे कहो, इस सामने के काम को करो, जो परोक्ष में तुमने सुना है उसे कहो अथवा उस

अनेन इति करणम्' અહીં બન્ને સ્થાને લ્યુટ્ પ્રત્યય થયેલ છે. દાનરૂપ ક્રિયાના કર્મનો જેની સાથે સંબંધ કર્તાને ઈષ્ટ હોય તેમાં ચતુર્થી વિભક્તિ થાય છે. અપાય (જુદા થવુ)ની અવધિભૂત પદાર્થનું નામ અપાદાન છે આમાં પંચમી વિભક્તિ થાય છે સ્વ સ્વામી સંબંધમાં સેવ્ય સેવક વગેરે ભાવ ગ્રહણ કરવામાં આવે છે સ્વનું તાત્પર્ય સેવક ભૃત્ય વગેરેથી છે અને સ્વામીનું સેવ્ય રાજા વગેરેથી સન્નિધાન અને આમન્ત્રણી આ સંબોધન શબ્દોનો અર્થ સ્પષ્ટ છે.

આ પ્રમાણે સૂત્રકાર સામાન્ય રૂપમાં ઉલ્લેખ કરીને હવે આ અષ્ટનામને સોદાહરણ સમજાવે છે. (तत्थ निद्देसे पढमा विभत्ति) નિર્દેશમાં પ્રથમા વિભક્તિ હોય છે. જેમ કે (सो इमो अहं वत्ति) 'તે,' 'આ' કે 'હું' (बिइया पुण उवएसे) ઉપદેશમાં બીજી વિભક્તિ હોય છે. જેમ કે (भण कुणसु इमं व तं वत्ति) જે તમે પ્રત્યક્ષમાં સાંભળ્યું છે, તેને કહો, આ સામેનું કામ

मम, तत्-परोक्षं कार्यं वा कुरु इति। तृतीया विभक्तिः करणे-कर्तरिकरणे च भवति। यथा-भणितं च कृतं च तेन वा मया वेति, कर्त्तरीदमुदाहरणम्। करणे तु 'रथेन याति' इत्यादिकं स्वबुद्धया विभावनीयम्। संप्रदाने चतुर्थी विभक्ति र्भवति, यथा-मुनये दानं ददाति। नमः शब्दयोगेऽपि चतुर्थी विभक्ति र्भवति, यथा-'हन्दि! नमो जिनेश्वराय' इति। 'हन्दि' इति कोमलामन्त्रणे। अपादाने पंचमी भवति, यथा-'उपनय गृहाण एतस्मादितो वे'ति। स्वामिसम्बन्धे=स्वस्वामि भावसंबन्धे वाच्ये षष्ठी भवति, तथा-'गतस्य तस्य, गतस्य अस्य वा इदमस्ति'

परोक्ष कार्य को करो। (तइया करणंमि-कया) तृतीया विभक्ति करण कर्ता और करण-में होती हैं जैसे-(भणियं च कयं च तेण मएवा) उसने और मैंने कहा अथवा उसने और मैंने किया। यह उदाहरणकर्त्ता में हैं। करण में उदाहरण "वह रथ से जाता है" आदि हैं। ऐसे उदाहरण अपनी बुद्धी से और भी कल्पित करलेना चाहिये। (चउत्थी संपयाणंमि हवइ) चतुर्थी विभक्ति संप्रदान में होती है-जैसे (हंदि णमो सहाए) हन्दि! जिनेश्वर के लिये नमस्कार हो, अग्नि के लिए स्वाहा हो (यहां पर 'हन्दि' यह शब्द कोमलामंत्रण में आया है। इसी प्रकार से 'दा' धातु के योग में चतुर्थी होती है-जैसे वह मुनि के लिये दान देता है। (अवायाणे पंचमी) अपादान में पंचमी होती है-जैसे (अवणय गिण्ह य एत्तो इ उत्तिवा) इससे दूर करो अथवा इससे लेलो (सामि संबंधे) जहां स्व-स्वामी संबन्ध वाच्य होता है यहां पर षष्ठी विभक्ति होती है, जैसे (गयस्स तस्स गयस्स इमस्स व) गये हुए

કરો. જે પરોક્ષમાં તમે સાંભળ્યું છે તેને કહો અથવા તે પરોક્ષકામને કરો. (तइया करणंमि कया) ત્રીજી વિભકિત કરણ કર્ત્તા અને કરણમાં હોય છે જેમ કે (भणियं च कयं तेण मएवा) તેણે અને મેં કહ્યું અથવા તેણે અને મેં કર્યું આ ઉદાહરણ કર્ત્તામાં છે કરણમાં ઉદાહરણ આ પ્રમાણે છે-તે રથથી જાય છે વગેરે છે એવા ઉદાહરણો પોતાની બુદ્ધિથી કલ્પિત કરી લેવા જોઈએ (चउत्थि संपयाणंमि हवइ) ચતુર્થી વિભકિત સંપ્રદાનમાં હોય છે જેમ કે (हंदि णमो सहाए) હન્દિ! જિનેશ્વર માટે મારા નમસ્કાર અગ્નિ માટે સ્વધા અહીં 'હન્દિ' આ શબ્દ કોમલામંત્રણ માટે આવે છે આ પ્રમાણે 'दा' ધાતુના યોગમાં ચતુર્થી હોય છે જેમ કે તે મુનિ માટે દાન આપે છે. (अवायाणे पंचमी) અપાદાનમાં પંચમી હોય છે જેમ કે (अवणय गिण्ह य एत्तो इ उत्तिवा) આને દૂર કરો અથવા એનાથી લઈ લો. (सामि संबंधे) જ્યાં સ્વ સ્વામિ સંબંધ વાચ્ય હોય છે ત્યાં ષષ્ઠી વિભકિત થાય છે જેમ કે (गयस्स तस्स गयस्स इमस्सव) ગયેલ

इति। आधारकालभावेऽधारे काले भावे च सप्तमी भवति, यथा-'तत् अस्मिन्निति, अस्मिन् कुण्डादौ तद् बदरादिकं तिष्ठति, इत्यर्थः। अत्राधारे सप्तमी बोध्या। काले यथा-'मधौ रमते' भावे तु-'चारित्रेऽवतिष्ठते' इति। आमन्त्रणे तु अष्टमी विभक्ति र्भवति। यथा-'हे युव'-न्निति। अत्र च नामविचारप्रस्तावात् प्रथमादि विभक्त्यन्तं नामैव गृह्यते। तथा चाष्ट विभक्तिभेदादष्टविधमिदं भवति। न च प्रथमादि विभक्त्यन्तनामाष्टकमन्तरेणाऽपरं नामास्ति, अतोऽनेन नामाष्टकेन सर्वस्य वस्तुनोऽभिधानद्वारेण सङ्ग्रहादष्टनामेत्युच्यते, इति भावार्थः। एतदुप संहरन्नाह-तदेतदष्टनामेति ॥सू० १६८॥

उसको अथवा गये हुए इसकी यह वस्तु है। (आहारकालभावे य सत्तमी पुण हवइ) आधार में, काल में और भाव में सप्तमी विभक्ति होती है। जैसे-तं इमम्मि) इस कुण्ड आदि में बदरादि फल हैं। यह आधार में सप्तमी विभक्ति का दृष्टांत है। काल में सप्तमी विभक्ति का दृष्टान्त "मधौ रमते" कोयल वसन्त में आनंद पाती है, यह है। भाव में सप्तमी विभक्ति का दृष्टान्त-"चारित्रेऽवतिष्ठते" यह साधु अपने चारित्र में उहरा हुआ है-यह है। (आमंतणे अट्ठमी भवे) आमंत्रण अर्थ में अष्टमी विभक्ति होती है। (जहा)-जैसे-(हे जुवाणत्ति) ये युवन्-तरुण! यहां पर नाम के विचार का प्रस्ताव होने से प्रथमादि विभक्त्यन्त नाम ही ग्रहण किया गया है। इस प्रकार आठ प्रकार की विभक्तियों के भेद से नाम आठ प्रकार का होता है। प्रथमादि विभक्त्यन्त नामाष्टक के विना और दूसरा नाम नहीं है। इसलिये इस नामाष्टक

તેની અથવા ગયેલ આની આ વસ્તુ છે. (आहार कालभावे य सत्तमी पुण हवइ) આધારમાં, કાળમાં અને ભાવમાં સપ્તમી વિભક્તિ હોય છે જેમ કે-(तं इमम्मि) આ કુંડ વગેરેમાં બદર વગેરે ફળો છે આ આધારમાં સપ્તમી વિભક્તિનું ઉદાહરણ છે કાલમાં સપ્તમી વિભક્તિનું ઉદાહરણ "मधौ रमते" કોયલ વસંતમાં આનંદ માણે છે ભાવમાં સપ્તમી વિભક્તિનું ઉદાહરણ "चारित्रेऽवतिष्ठते" આ સાધુ પોતાના ચારિત્રમાં જ સ્થિર છે. (आमंतणे अट्ठमी) આમંત્રણ અર્થમાં આઠમી વિભક્તિ હોય છે. (जहा) જેમ કે (हे जुवाणत्ति!) હે યુવન્! તરુણ! અહીં નામવિચાર પ્રસ્તાવને લીધે પ્રથમા વગેરે વિભક્ત્યંત નામ જ ગ્રહણ કરવામાં આવ્યાં છે આ પ્રમાણે આઠ પ્રકારની વિભક્તિઓના ભેદથી નામ આઠ પ્રકારના હોય છે પ્રથમા વગેરે વિભક્ત્યંત

अथ नवनाम निर्दिशति—

मूलम्—से किं तं नवनामे?, नवनामे—णव कव्वरसा पण्णत्ता, तं जहा—वीरो सिंगारो अब्भुओ य रोद्दो य होइ बोद्धव्वो। वेलणओ बीभच्छो, हासो कलुणो पसंतो य ॥१॥सू०१६९॥

छाया—अथ किं तत् नव नाम? नवनाम—नव काव्यरसाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—वीरः शृङ्गारः अद्भुतश्च रौद्रश्च भवति बोद्धव्यः। व्रीडनको बीभत्सो हास्यः करुणः प्रशान्तश्च ॥ १ ॥सू० १६९॥

से समस्तवस्तुओं के कथन का संग्रह हो जाता है-अतः यह अष्टनाम ऐसा कहा गया है। (से तं अट्ठणामे) इस प्रकार यह अष्ट नाम है। ॥ सू० १६८ ॥

अब सूत्रकार नव नामका कथन करते हैं-

"से किं तं नवनामे?" इत्यादि।

शब्दार्थ-(से किं तं नव नामे?) हे भदन्त! वह नव प्रकार का नाम क्या है?

उत्तर-(नव नामे) नव नाम इस प्रकार से है-(णव कव्वरसा पण्णत्ता) काव्य के जो नौ रस हैं, वे ही नव नाम रूप से प्रज्ञप्त हुए हैं। (तं जहा) वे नौ रस ये हैं-(वीरो सिंगारो, अब्भुओ य रोद्दो य होइ बोद्धव्वो। वेलणओ बीभच्छो हासो कलुणो पसंतोय) वीररस, शृंगाररस, अद्भुतरस रौद्ररस, व्रीडनकरस, बीभत्सरस, हास्यरस, करुणरस, और प्रशान्तरस।

નામાષ્ટક સિવાય બીજું નામ નથી એટલા માટે આ નામાષ્ટકથી બધી વસ્તુઓનો સંગ્રહ થઈ જાય છે. એથી આ અષ્ટનામ આમ કહેવામાં આવ્યું છે (से तं अट्ठणामे) આમ આ આઠનામો છે. ॥સૂ૦૧૬૮॥

હવે સૂત્રકાર નવ નામનું કથન કરે છે—

"से किं तं नवनामे?" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(से किं तं नवनामे?) હે ભદન્ત! તે નવપ્રકારનું નામ શું છે?

ઉત્તર-(नवनामे) નવ નામ આ પ્રમાણે છે. (णव कव्वरसा पण्णत्ता) કાવ્યના જે નવ રસો છે તેજ નવ નામથી પ્રજ્ઞપ્ત થયેલ છે. (तंजहा) તે નવ નામો આ પ્રમાણે છે. (वीरो सिंगारो, अब्भुओ य रोद्दो य होइ बोद्धव्वो। वेलणओ बीभच्छो हासो कलुणो पसंतो य) વીરરસ, શૃંગારરસ, અદ્ભુતરસ, રૌદ્રરસ, વ્રીડનકરસ, બીભત્સરસ, હાસ્યરસ, કરુણરસ અને પ્રશાન્તરસ.

टीका—'से किं तं' इत्यादि—

अथ किं तत् नव नाम ? इति शिष्य प्रश्नः। उत्तरयति–नवनाम–नवविधं नवनाम–नवसंख्यकाः काव्यरसाः–कवेः कर्म काव्यम्, रस्यन्ते–अन्तरात्मनाऽनुभूयन्ते इति रसाः, तत्तत्सहकारि कारणसामीप्यात्समुद्भूताश्चित्तोत्कर्षविशेषा इत्यर्थः, उक्तं च—

"बाह्यार्थालम्बनो यस्तु, मुल्लसो मानसो भवेत्।
स भावः कथ्यते सद्भिस्तस्योत्कर्षो रसः स्मृतः॥" इति॥

–काव्ये समुपनिबद्धा रसाः काव्यरसाः प्रज्ञप्ताः=कथिताः। तानेवाह–'वीरः शृङ्गारः' इत्यादिना–वीरयति=विक्रमयुक्तं करोति त्यागतपः–कर्म शत्रुनिग्रहेषु प्रेरयति जनमिति वीरः–उत्तम प्रकृति पुरुष–चरितश्रवणादि हेतु समुद्भूतो दाना-

---

कवि के कर्मका नाम 'काव्य' है। अन्तरात्मा से जिनका अनुभव किया जाता है उनका नाम रस है। ये रस तत्तत्सहकारी कारणों की समीपता से चित्तमें जो उत्कर्ष विशेष उत्पन्न होते हैं उनरूप होते हैं। कहा भी है–"बाह्यार्थ इत्यादि–बाह्यार्थ के अवलम्बन से जो मानसिक उल्लास होता है वह 'भाव' है। इस भाव का उत्कर्ष रस है। काव्य मे उपनिबद्ध हुए रस काव्यरस शब्द के वाच्यार्थ हैं। जो रस मनुष्य को विक्रम युक्त करता है–अर्थात् त्याग में शत्रुओं के निग्रह करने में प्रेरित करता है–वह वीररस है। तात्पर्य कहने का यह है कि–रस का जो वीर यह वीशेषण है वह अन्यरसों की अपेक्षा इसमें यही विशेषता प्रकट करता है, कि इसरस के सद्भाव में त्याग में तपश्चरण में, और कर्मरूप शत्रु के निग्रह करने में विक्रमयुक्त आत्मपरिणाम होता

કવિકર્મ કાવ્ય કહેવાય છે. અન્તરાત્માથી જે અનુભવાય છે તે રસ કહેવાય છે એ રસો તત્તત્સહકારી કારણોની સમીપતાથી ચિત્તમાં જે ઉત્કર્ષ વિશેષ ઉત્પન્ન કરે છે તે અનુરૂપ હોય છે કહ્યું પણ છે કે-"बाह्यार्थ इत्यादि–" બાહ્યાર્થના અવલંબનથી જે માનસિક ઉલ્લાસ હોય છે તે 'ભાવ' છે. તે ભાવનો ઉત્કર્ષ રસ છે કાવ્યમાં ઉપનિબદ્ધ થયેલ રસ કાવ્ય રસ શબ્દોનો વાચ્યાર્થ છે જે રસ માણસને વીરત્વપૂર્ણ કરે છે એટલે કે ત્યાગમાં, તપમાં અને કર્મરૂપ શત્રુઓના નિગ્રહ કાર્યમાં પ્રેરિત કરે છે તે વીર રસ છે. તાત્પર્ય આ પ્રમાણે છે કે રસનું જે વીર વિશેષણ છે તે બીજા રસો કરતાં આમાં એજ વિશેષતા પ્રકટ કરે છે કે આ રસના સદ્ભાવમાં, ત્યાગમાં, તપશ્ચરણમાં અને કર્મરૂપ શત્રુનિગ્રહમાં વીરત્વપૂર્ણ આત્મપરિણામ હોય છે. અને

द्युत्साहप्रकर्षात्मको रसः। रस इति सर्वत्र योजनीयः ॥२॥ शृङ्गारः शृङ्गं=प्राधान्यम् इर्यति-गच्छतीति-शृङ्गारः। अतएव—

"शृङ्गार-हास्यकरुण,-रौद्र-वीर भयानकाः।
बीभत्साऽद्भुतशान्ताश्च, नव नाट्ये रसाः स्मृताः" ॥

इत्यत्र शृङ्गारस्यैव प्रथममुपादानं कृतम्। अत्र तु वीररसस्य प्रथमत उपादानम्। अत्रायं हेतुः-त्यागतपःकर्मनिग्रहगुणो वीररसे भवति। अतोऽस्य सर्वरसप्रधानत्वम्। उक्तं च—"त्यागेन कर्ममलमेति लयं समस्तं, त्यागेन निर्मलतरत्वमुपैति जीवः। त्यागेन केवलमवाप्य समेति सिद्धिं, त्यागो गुणो गुणशतादधिको मतो मे"॥१॥

है। और वह परिणाम उस मनुष्य को उस ओर बढने के लिये प्रेरणा देता है। इस प्रकार के परिणाम की-उद्भूति के कारण उत्तम प्रकृतिवाले सत्पुरुषों के चरित्र श्रवण वगैरह हैं। इसलिये यह रस दानादिको में उत्साह का प्रकर्ष होने रूप है 'रस शब्द का संबन्ध सर्वत्र वीर, शृंगार आदि के साथ लगा लेना चाहिये "शृंगप्राधान्यं इर्यति गच्छति इति शृंगारः" जो रस प्रधान रूप से विषयों की ओर प्रेरित करता है वह रस शृंगार है। इसलिये-"शृंगार हास्य-करुण" इत्यादि श्लोक में इस शृंगार रसका प्रथम उपादान किया गया है। परन्तु यहां सूत्र में वीररस का प्रथम पाठ रखा है सो उसका कारण यह है कि लोग में, तप में एवं कर्मनिग्रह करने में प्रेरणा देना रूप जो गुण है वह एक इस वीररस में है। इसलिये इसमें सर्व रसों की अपेक्षा प्रधानता है कहा भी है "त्यागेन इत्यादि"-

---

તે પરિણામ તે માણસને તે તરફ આગળ વધવામાં પ્રેરણા આપે છે આ જાતના પરિણામની ઉદ્ભૂતિમાં ઉત્તમ પ્રકૃતિ (સ્વભાવવાળા) સંતોના ચરિત્ર શ્રવણ વગેરે જ કારણ છે. એટલા માટે આ રસ દાન વગેરેમાં ઉત્સાહના-પ્રકર્ષ માટે છે વીર, શૃંગાર વગેરે રસોની સાથે પણ રસ શબ્દનો સંબંધ બધે લગાડવો જોઈએ. (शृंग-प्राधान्यं इर्यति गच्छति इति शृंगारः-જે રસ પ્રધાનતયા વિષયો તરફ વાળે છે તે રસ શૃંગાર છે. એથી જ "शृंगारहास्यकरुण" "વગેરે શ્લોકમાં આ શૃંગાર રસનું સૌથી પહેલા ગ્રહણ કરવામાં આવ્યું છે. પણ અહીં સૂત્રમાં વીરરસનો પાઠ પહેલાં રાખવામાં આવ્યો છે. તેનું કારણ એ છે કે લોકોને તપ અને કર્મનિગ્રહ કરવામાં જે પ્રેરણાત્મક ગુણ હોય છે તે આ ફક્ત વીરરસમાં જ હોય છે. એટલા માટે આમાં બધાં રસોની અપેક્ષાએ પ્રાધાન્ય છે. કહ્યું પણ છે કે "त्यागेन इत्यादि" ત્યાગથી

इति, 'परलोकातिगं धाम तपः श्रुतम्' इति च। तपः श्रुतं चेत्यपि मोक्षप्रापकमिति स्थितम्। अतोऽत्र वीररसस्य प्रथममुपादानम् ॥२॥ अद्भुतः-श्रुतं शिल्पं त्यागतपः शौर्यकर्मादि वा यस्य सकलजनातिगमस्ति, तदेवंविधमपूर्वं किमपि वस्तु अद्भुतमित्युच्यते। तद्दर्शनश्रवणजो रसोऽप्युपचाराद् विस्मयरूपोऽद्भुतः ॥३॥ रौद्रः रोदयति=अतिदारुणतया अश्रूणि मोचयतीति रौद्रम्-शत्रुजन-महारण्य-गाढतिमिरादि, तद्दर्शनाद्युद्भवो विकृताध्यवसायरूपो रसोऽपि रौद्रः ॥४॥ व्रीडयति-

त्याग से कर्मरूप मैल विलय-विनाश-को प्राप्त होता है, त्याग से जीव निर्मलता को प्राप्त करता है, त्याग से ही केवलज्ञान को पाकर के आत्मा सिद्धि को पाता है। इसलिये सैंकडों गुणों से अधिक एक त्याग गुण माना गया है। तथा-"परलोकातिगं धाम तपः श्रुतम्" अर्थात् तप और श्रुत ये भी मोक्ष को प्राप्त करानेवाले हैं" इसलिये यहां सूत्र में वीर रस का सर्व प्रथम उपादान किया गया है। श्रुत, शिल्प, अथवा त्याग, तप, शौर्य कर्म आदि जिसके सकल जनों की अपेक्षा अधिक हैं इस प्रकार की वह कोई भी अपूर्व वस्तु अद्भुत कहलाती है। उस अपूर्ववस्तु के दर्शन से या श्रवण से जो रस उत्पन्न होता है, वह रस भी उपचार से 'अद्भुत रस' कहलाता है। यह विस्मय रूप होता है। जो अतिदारुण होने के कारण रुलाता है-अर्थात् अश्रुओं को निकलवाता है वह 'रौद्र' है। शत्रु, जन, महाअरण्य गाढतिमिर आदि रौद्र है। इनके दर्शन आदि से अद्भुत हुआ विकृत अध्यवसाय-परिणाम

કર્મરૂપ માલિન્ય વિલય-વિનાશ-ને પામે છે. ત્યાગથી જીવ નિર્મળ થાય છે. ફક્ત ત્યાગથી જ કેવળજ્ઞાનને મેળવીને આત્મા સિદ્ધિ પામે છે. એટલા માટે હજારો ગુણોં કરતાં પણ વધારે પડતો ત્યાગગુણ મનાય છે. તેમજ "परलोकातिगं धाम तपःश्रुतम्" એટલે કે તપ અને શ્રુત પણ મોક્ષ આપનારા છે એથી અહીં સૂત્રમાં વીરરસનું સર્વપ્રથમ ઉપાદાન કરવામાં આવ્યું છે શ્રુત, શિલ્પ, અથવા ત્યાગ, તપ શૌર્ય કર્મ વગેરે જેના સૌ કરતાં વધારે છે, એવી ગમે તે વસ્તુ હોય-તો તે પણ અદ્ભુત કહેવામાં આવશે જ એ પૂર્વ વસ્તુના દર્શનથી કે શ્રવણથી જે રસ ઉદ્ભવે છે તે રસ પણ ઉપચારથી અદ્ભુત રસ કહેવાય છે. આ વિસ્મય રૂપ હોય છે. જે અતિદારૂણ હોવા બદલ રડાવે છે એટલે કે અશ્રુ વહેવડાવે છે તે રૌદ્ર છે. શત્રુઓ, મહારણ્ય, ગાઢતિમિર, વગેરે રૌદ્ર છે. એમના દર્શન વગેરેથી ઉદ્ભવેલ વિકૃત અધ્યવસાય-પરિણામ રૂપ રસ પણ રૌદ્ર છે જે લજ્જાજનક છે તે

लज्जामुत्पादयतीति व्रीडनकः-लज्जास्पदवस्तुदर्शनादि-जन्यो मनोग्लानादि स्वरूपोऽयं रसः । अस्य स्थानेऽन्यत्र भयानको रसः प्रोक्तः । अयं हि-भयजनक संग्रामादि दर्शनेन जायते । अस्य रौद्ररसेऽन्तर्भावनादत्र नायं पृथगुक्तः ॥ ५ ॥ बीभत्सः-शुक्रशोणितोच्चारप्रस्रवणाद्यनिष्टोद्वेगजनकवस्तुदर्शनश्रवणादिजो जुगुप्सापकर्षो रसो बीभत्सः ॥ ६ ॥ हास्यः-हास्यास्पदविकृताऽसम्बद्धपरवचनवेषालङ्कारादिश्रवणदर्शनजो मनःप्रकर्षादि चेष्टात्मको रसो हास्यरसः ॥ ७ ॥ करुणः-प्रियवियोगादि दुःखहेतुसमुद्भवः शोकप्रकर्षस्वरूपो रसः करुणरसः । कुत्सितं

रूप रस भी रौद्र है । जो लज्जा को उत्पन्न करता है वह 'व्रीडनक' है । यह रस लज्जास्पद वस्तु के देखने आदि से उत्पन्न मनोग्लानि आदि रूप होता है । इसके स्थान में दूसरी जगह भयानक रस कहा गया है । यह भय जनक संग्राम आदि के देखने से उत्पन्न होता है । इसका अन्तर्भाव रौद्र रस में करलिया है, इसलिये उसे यहां पृथक् नहीं कहा गया है । शुक्र, शोणित, उच्चार-विष्टा, प्रस्रवण-पेशाब, मूत्र, आदि जो अनिष्ट एवं उद्वेग जनक वस्तुएँ हैं, उनके देखने से, सुनने आदि से जो जुगुप्सा का प्रकर्ष होता है वही जुगुप्सा प्रकर्ष बिभत्स रस कहलाता है । हास्यास्पद, विकृत एवं असंबद्ध ऐसे दूसरों के वचन सुनने से, वेष अलंकार आदि के देखने से जो मनप्रकर्ष आदि केचेष्टात्मक रस होता है वह 'हास्य रस है । प्रिय पदार्थ के वियोग से जन्य दुःख आदि हेतु से उद्भूत हुआ शोक प्रकर्ष स्वरूप जो रस है वह 'करुणरस' है । जीससे प्राणी बुरी तरह से रोता है अथवा जिसके

વ્રીડનક છે. આ રસ લજ્જાજનક વસ્તુ જોવા વગેરેથી ઉત્પન્ન થયેલ મનોગ્લાનિ વગેરે રૂપ હોય છે. એના સ્થાને બીજી જગ્યાએ ભયાનક રસ કહેવામાં આવ્યો છે. આ ભયાનક રસ સંગ્રામ વગેરે જોવાથી ઉત્પન્ન થાય છે એનો અન્તર્ભાવ રૌદ્ર રસમાં જ કરવામાં આવ્યો છે. એથી અહીં પૃથક્ કથન કર્યું નથી શુક્ર, શોણિત, ઉચ્ચાર-મલવિષ્ટા, પ્રસ્રવણ-મૂત્ર વગેરે જે અનિષ્ટ અને ઉદ્વેગજનક વસ્તુઓ છે એમને જોવાથી, સાંભળવા વગેરેથી જે જુગુપ્સાત્મક ભાવ ઉત્પન્ન થાય છે તેજ જુગુપ્સાપ્રકર્ષ રસ બીભત્સ રસ કહેવાય છે. હાસ્યજનક, વિકૃત અને અસંબદ્ધ એવા બીજા માણસોના વચનો સાંભળવાથી વેષ અલંકાર વગેરે જોવાથી જે મનઃપ્રકર્ષ વગેરે ચેષ્ટાત્મક રસ હોય છે તે હાસ્ય રસ છે. પ્રિયપદાર્થના વિયોગથી જન્ય દુઃખ વગેરે હેતુથી ઉદ્ભૂત થયેલ શોક પ્રકર્ષ સ્વરૂપ જ રસ છે તે કરુણ રસ છે જેનાથી પ્રાણી ભયંકર રીતે રડે છે અથવા

रौत्यनेनेति करुणास्पदत्वाद् वा करुणः, इत्युभयविधाऽपि करुणशब्दव्युत्पत्तिर्बोध्या ॥८। प्रशान्तःपरमगुरुवचःश्रवणादि हेतुसमुद्भव उपशमप्रकर्षात्मको रसः प्रशान्त रसः। प्रशाम्यति-क्रोधादिजनितचित्तविक्षेपादिरहितो भवत्यनेनेति प्रशान्तशब्दव्युत्पत्तिर्बोध्या ॥ ९ ॥ सू० १६९ ॥

एतानेव रसान् लक्षणादि द्वारेण विवक्षुः प्रथमं तावद् वीररसं लक्षणनिर्देशपुरस्सरं निरूपयति—

मूलम्—तत्थ परिच्चायंमि य, तवचरणसत्तुजणविणासे य। अणणुसयधिइपरक्कम-लिंगो वीरो रसो होइ ॥१॥ वीरो रसो जहा—सो नाम महावीरो, जो रज्जं पयहिऊणपव्वइओ। काम-कोहमहासत्तुपक्खनिग्घायणं कुणइ॥२॥सू०१७०॥

छाया—तत्र-परित्यागे च तपश्चरणे शत्रुजनविनाशेच। अननुशयधृतिपराक्रम-

---

कारण प्राणी करुणा का आस्पद (स्थान) बनता है, वह रस 'करुणरस' है। करुणशब्द की दोनों प्रकार की यह व्युत्पत्ति संगत जाननी चाहिये। परमगुरुओं के वचन श्रवणादिरूप हेतु से उद्भूत जो उपशम की प्रकर्षतारूपरस है, वह 'प्रशान्तरस है। जिसके द्वारा प्राणी क्रोध आदिसे जनित-चित्त विक्षेप आदि से विहीन बन जाता है ऐसी यह प्रशान्त शब्द की व्युत्पत्ति है। ॥ सू० १६९ ॥

अब सूत्रकार इन्हीं रसों को लक्षणादि द्वारा कहने की इच्छा से सर्व प्रथम लक्षण निर्देश पुरस्सर वीररस का कथन करते हैं।

"तत्थ परिच्चायंमि" इत्यादि।

शब्दार्थ-(तत्थ) इन नवरसों के बीच में (परिच्चायंमि य तव चरण-

જેનાથી પ્રાણી કરૂણાપૂર્ણ થઈ જાય છે તે રસ કરૂણ રસ છે. કરૂણ શબ્દની આ બન્ને પ્રકારની વ્યુત્પત્તિ યોગ્ય જ કહેવાય પરમગુરૂજનોના વચન શ્રવણ વગેરે રૂપ હેતુથી ઉદ્ભૂત જે ઉપશમની પ્રકર્ષતા રૂપ રસ છે તે પ્રશાન્ત રસ છે. જેના વડે પ્રાણી ક્રોધ વગેરેથી ઉદ્ભવેલ ચિત્તવિક્ષેપાદિથી વિહીન થઈ જાય છે પ્રશાન્ત શબ્દની આ વ્યુત્પત્તિ છે. ॥સૂ૦૧૬૯॥

હવે સૂત્રકાર એજ રસોને લક્ષણો વગેરે દ્વારા સ્પષ્ટ કરવાની અપેક્ષાથી અહીં સર્વ પ્રથમ વીર રસનું કથન લક્ષણ નિર્દેશ પુરસ્સર કરે છે—

"तत्थ परिच्चायंमि" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(तत्थ) આ નવ રસોમાં (परिच्चायंमि य तवचरणसत्तुजण

लिङ्गो वीरो रसो भवति ॥१॥ वीरो रसो यथा-स नाम महावीरो यो राज्यं प्रहाय प्रव्रजितः । कामक्रोधमहाशत्रुपक्षनिर्घातनं करोति ॥२॥ सू० ॥१७०॥

टीका—'तत्थ' इत्यादि—

तत्र तेषु नव रसेषु मध्ये परित्यागे च तपश्चरणे च शत्रुजनविनाशे अननुशयधृतिपराक्रमलिङ्गो वीरो रसो भवति । अयं भावः-परित्यागे-दाने अननुशयलिङ्गः-अनुशयः-गर्वः पश्चात्तापो वा, स लिङ्गं=लक्षणं यस्य सोऽनुशयलिङ्गः, न अनुशयलिङ्गः अननुशयलिङ्गः-दानं दत्वाऽहङ्कारं पश्चात्तापं वा न करोति तदा वीरो रसो बोध्यः । तपश्चरणे =तपसि धृतलिङ्गः=धैर्यचिह्नःतपश्चर्यायां धैर्यमेव करोति न पश्चात्तापं तदा वीरो रसो भवति । शत्रुविनाशे=शत्रूणामुन्मूलने पराक्रमलिङ्गः=

सत्तुजणविणासेय) परित्याग करने में, तपश्चरण करने में और शत्रुजन के विनाश करने में अणणुसयधिइपरक्कम-लिंगो वीररसो होइ) अननुशय धृति, पराक्रम इन चिन्हों वाला वीररस होता है। अनुशय शब्द का अर्थ गर्व अथवा पश्चात्ताप है। यह जिसका लक्षण है, वह अनुशयलिङ्ग है यह लिङ्ग जिसमें नहीं होता वह अननुशय लिङ्ग है दान देकर के जो अहंकार या पश्चात्ताप नहीं करता है, उससमय वीररस होता है। तपश्चर्या करने में जो धैर्यरखता है-पश्चात्ताप नहीं करता है वह वीररस का काम है। "शत्रुजन के विनाश करने में जो पराक्रमका अवलम्बन करता है वैक्लव्य-विकलता कमजोरी हृदय में नहीं लाता है, यह सब वीररस के द्वारा होता है। इन अननुशय, धैर्य और पराक्रम लक्षणों से यह जाना जाता है कि 'यह मनुष्य वीररस में वर्तमान है। इसीप्रकार से अन्यत्र भी समझना

विणासे य) પરિત્યાગ કરવામાં, તપશ્ચરણ કરવામાં, અને શત્રુઓના વિનાશ કરવામાં (अणणुसयधिइपरक्कमलिंगो वीररसो होइ) અનનુશય, ધૃતિ, પરાક્રમ આ લક્ષણોવાળો રસ વીરરસ કહેવાય છે. અનુશય શબ્દનો અર્થ ગર્વ-અથવા પશ્ચાત્તાપ છે. આ જેનું લક્ષણ છે, તે અનુશય લિંગ છે. એ જેમાં હોતો નથી. તે અનનુશય લિંગ છે. દાન આપીને જે અહંકાર કે પશ્ચાત્તાપ કરતો નથી તે વીરરસ કહેવાય છે. તપશ્ચર્યામાં જે ધૈર્ય રાખે છે-પશ્ચાત્તાપ કરતો નથી તે વીરરસને લીધે જ. શત્રુજનના વિનાશાર્થે જે પરાક્રમ બતાવે છે વૈક્લવ્ય-વિકલતા-નબળાપણું બતાવતો નથી તે વીર રસને લીધે જ. આ સર્વે અનનુશય, ધૈર્ય અને પરાક્રમના લક્ષણોથી એમ જણાય છે કે 'આ માણસ વીરરસ યુક્ત છે.' આ પ્રમાણે બીજે પણ સમજવું જોઇએ.

पराक्रमचिह्नः पराक्रमते न तु वैक्लव्यमवलम्बते तदा च वीरो रसो भवति । एतैस्त्रिभिर्लक्षणैर्ज्ञाते यदयं जनो वीरे रसे वर्तते इति। एवमन्यत्रापि बोध्यम्। सम्प्रति उदाहरणं दर्शयितुमाह —वीरो रसो यथा यथा=येन प्रकारेण वीरो रसो ज्ञायते-तथोच्यतेऽनुपदवक्ष्यमाणया गाथया 'सो नाम' इत्यादि रूपया। यो राज्यं परित्यज्य प्रव्रजितः सन् कामक्रोधरूपमहाशत्रुपक्षस्य निर्घातनं=विनाशं करोति स नाम=निश्चयेन महावीरो भवति। वीररसे यथा पुरुषचेष्टाप्रतिपाद्यते तथैवैवंविधेषु काव्येषु पुरुषचेष्टाप्रतिपादनात् वीरो रसो बोध्यः। तथा चात्र मोक्षप्रतिपादके प्रस्तुतशास्त्रे महापुरुषविजेतव्यकामक्रोधादिभावशत्रुजयेनैव वीररसोदाहरणम्। प्रा-

चाहिये। अब सूत्रकार (वीरो रसो जहा) वीररस जिस प्रकार के दृष्टान्त से जाना जाता है, उस प्रकार के दृष्टान्त को इस गाथा द्वारा प्रकट करते हैं-(सो नाम महावीरो जो रज्जं पयहिऊण पव्वइओ, कामकोहमहासत्तुपक्खनिग्घायणं कुणइ) 'जो राज्य का परित्याग करके दीक्षित होता है और दीक्षित होकर जो-काम क्रोध रूप महाशत्रु के पक्षका विनाश करता-है वह निश्चय से महावीर होता है। वीररस में जैसी पुरुष चेष्टा कही जाती है वैसी ही पुरुष चेष्टा इस प्रकार के काव्यों में प्रकट की जाती है अर्थात् वर्णित की जाती है-इसलिये वहां वीररस जानना चाहिये। यह प्रस्तुत शास्त्र मोक्ष का प्रतिपादन करने वाला है। इसलिये इसमें महा पुरुष द्वारा विजेतव्य जो काम क्रोध आदि भावशत्रु हैं, उनके जीतने से ही वीररस का उदाहरण कहा गया है। साधारण मनुष्यद्वारा साध्य-ऐसे संसार का कारण

હવે સૂત્રકાર આ (वीरो रसो जहा) વીરરસ જે પ્રકારના દૃષ્ટાન્તથી જાણવામાં આવે છે તે પ્રકારના દૃષ્ટાન્તને આ ગાથા વડે પ્રકટ કરે છે-(सो नाम महावीरो जो रज्जं पयहिऊण पव्वइओ, कामकोहमहासत्तुपक्खनिग्घायणं कुणइ) 'જે રાજ્યના વૈભવને ત્યજીને દીક્ષા ગ્રહણ કરે છે અને દીક્ષિત થઈને જે કામ-ક્રોધ રૂપ મહાશત્રુનાં પક્ષને વિનષ્ટ કરે છે, તે પુરુષ મહાવીર હોય છે. વીરરસમાં જેવી પુરુષ-ચેષ્ટા કહેવામાં આવે છે તેવી પુરુષચેષ્ટા આ જાતના કાવ્યોમાં પ્રકટ કરવામાં આવે છે એટલે કે વર્ણવવામાં આવે છે. એથી ત્યાં વીરરસ જાણવો જોઇએ આ પ્રસ્તુતશાસ્ત્ર મોક્ષપ્રતિપાદક છે. એટલા માટે આ શાસ્ત્રમાં મહાપુરુષ વડે વિજેતવ્ય કામ, ક્રોધ વગેરે શત્રુભાવો છે, તેમને જીતવાના જ વીરરસના ઉદાહરણો પ્રસ્તુત માનવામાં આવ્યાં છે. સામાન્ય માણસો વડે સાધ્ય એવા સંસારના કારણભૂત

कृतमनुजसाध्यसंसारकारणद्रव्यशत्रुनिग्रहस्यापस्तुतत्वान्न तथाविधोदाहरणमत्र दत्तम्। एवमन्यत्रापि बोध्यम् ॥सू० १७०॥

अथ द्वितीयं शृङ्गाररसं सलक्षणं निरूपयति—

मूलम्–सिंगारो नाम रसो रतिसंजोगाभिलाससंजणणो। मंडणविलासविब्बोयहासलीलारमणलिंगो॥४॥ सिंगारो रसो जहा महुरविलाससलियं हियउम्मादणकरं जुवाणाणं। सामा सद्दुद्दामं दाएती मेहलादामं॥५॥ धी धीमं सिंगारे, साहूणं जो उवज्जियव्वो य। मोक्खगिहअग्गला सो, नायरियव्वो य मुणिहि इमो॥६॥सू० १७१॥

छाया– शृङ्गारो नामरसो रतिसंयोगाभिलाषसंजननः। मण्डनविलास विब्बोक हास्यलीलारमणलिङ्गोः ॥४॥ शृङ्गारो रसो यथा–मधुरविलाससुललितं हृदयोन्मादनकरं यूनाम्। श्यामा शब्दोद्दामं दर्शयति मेखलादाम॥५। धिग्धिग् इमं शृङ्गारं, साधूनां यस्तु वर्जितव्यश्च। मोक्षगृहार्गला सः, नाचरितव्यश्च मुनिभिरयम् ॥६॥ सू०१७१॥

टीका —'सिंगारो' इत्यादि—

शृङ्गारो नाम रसो हि–रतिसंयोगाभिलाषसंजननः–रतिः रतिकारणानि ललनादीनि गृह्यन्ते कार्ये कारणोपचारात्, तत्संयोगाभिलाषस्य–ललनाभिः सह

भूत जो द्रव्य शत्रु का निग्रह करना है वह यहां अप्रस्तुत है। इसलिये सूत्रकारने इस प्रकार का उदाहरण यहां नहीं दिया है इसी प्रकार से अन्यत्र भी जानना चाहिये ॥ सू० १७० ॥

अब सूत्रकार लक्षण सहित शृंगार रस का निरूपण करते हैं–

"सिंगारो नाम रसो" इत्यादि।

शब्दार्थ– (सिंगारो नाम रसो रतिसंजोगाभिलास–संजणणो) शृङ्गार नामक रस रतिसंयोगाभिलाष जनक होता है। रति से

જે દ્રવ્યશત્રુનું દમન કરવું તે અહીં અપ્રસ્તુત છે. એથી જ સૂત્રકારે આ જાતનું ઉદાહરણ અહીં આપ્યું નથી આ પ્રમાણે બીજે પણ જાણવું જોઈએ. ॥સૂ०૧૭૦॥

હવે સૂત્રકાર લક્ષણસહિત શૃંગારરસનું નિરૂપણ કરે છે—

"सिंगारो नाम रसो" इत्यादि—

શબ્દાર્થ–(सिंगारो नाम रसो रतिसंजोगाभिलाससंजणणो) શૃંગાર રસ રતિસંયોગાભિલાષજનક હોય છે. અહીં રતિથી કાર્યમાં કારણના ઉપચારથી

सङ्गमेच्छायाः संजननः=समुत्पादकः, तथाच मण्डनविलासविब्बोकहास्यरमणलिङ्गः-मण्डनम्-अलङ्कारैर्गात्रालङ्करणम्, विलासः-प्रियसमीपगमने यः स्थानासनगमनविलोकितेषु विकारोऽकस्माच्च क्रोधस्मितचमत्कारमुखविकूवनं स विलासः, विब्बोकः=अभिमतप्राप्तावपि गर्वादनादरः, सापराधस्य स्रक्चन्दनादिना संयमनं ताडनं च, हास्यम्=प्रतीतार्थम्, लीला=सकामगमनभाषितादि रमणीयचेष्टा, अलब्धप्रियसमागमया स्त्रिया स्वचित्तविनोदार्थं प्रियस्य या वेषगतिदृष्टिहसितभणितैरनुकृतिः क्रियते सा वा लीला, रमणं=क्रीडनम्, एतानि लिङ्गं-चिह्नं यस्य स तथाविधो भवति। उदाहरणमाह-शृङ्गारो रसो यथा-श्यामा-षोडशवर्षदे-

यहां पर कार्य में कारण के उपचार से रति के कारणभूत जो ललना आदि पदार्थ हैं, वे ग्रहण किये गये हैं। उनके साथ संगम की इच्छा का जनक यह शृङ्गार रस होता है। (मंडणाविलासविब्बोय, हास, लीलारमणलिंगो) अलंकारों से शरीर को सज्जित=अलंकृत, करना इसका नाम 'मण्डन' है। प्रिय के समीप जाने में जो स्थान, आसन, गमन, एवं विलोकन में विकार और अकस्मात क्रोध, स्मित, चमत्कार, मुख विकूवन होता है, वह विलास है। अभिमत की प्राप्ति में भी गर्व (अहंकार) से अनादर, करना और अपराधसहित का स्रक-माला चंदन आदि से संयमन करना, ताडन करना, यह विब्बोक है। हास्य-हँसना। सकाम गमन एवं भाषित आदि जो रमणीय चेष्टाएँ हैं, वे 'लीला' हैं। अथवा जिस स्त्री को प्रिय का समागम अलब्ध हो रहा है, वह जो अपने चित्त को विनोदित करने के लिये प्रिय के वेष

રતિના કારણ જે લલના વગેરે પદાર્થો છે તેમનું ગ્રહણ કરવામાં આવ્યું છે. તેમની સાથે સંગમની ઇચ્છાનો ઉદ્ભાવક આ શૃંગાર રસ હોય છે. (मंडणविलासविब्बोय, हास, लीला रमणलिंगो) અલંકારોથી શરીરને સુસજ્જિત-અલંકૃત-કરવું તેનું નામ 'મંડન' છે. પ્રિયની પાસે જતાં જે સ્થાન, આસન, ગમન અને વિલોકનમાં વિકાર તેમજ ઓચિંતા-ક્રોધ, સ્મિત, ચમત્કાર, મુખવિકૂલવન હોય છે, તે વિભાસ છે અભિમતની પ્રાપ્તિમાં પણ ગર્વ (અહંકાર)થી અનાદર કરવો, તેમજ અપરાધીનું સ્રક-માળા-ચંદન વગેરેથી સંયમન કરવું, તાડન કરવું વિબ્બોક છે હાસ્ય-હસવું સકામ ગમન અને ભાવિત જે રમણીય ચેષ્ટાઓ છે, તે 'લીલા' છે. અથવા જે સ્ત્રી પ્રિયસમાગમ મેળવી શકી નહીં તેવી સ્ત્રી પોતાના ચિત્તને પ્રસન્ન કરવા માટે પ્રિયના વેષનું ગતિનું દૃષ્ટિનું, હાસ્યનું, વાણીનું અનુકરણ કરે છે, તે 'લીલા' છે.

शीया-स्त्री, 'इयामा षोडशवार्षिकी' इत्यभिधानात्, शब्दोद्दाम-शब्दउद्दामा= प्रचुरो यत्र तत्-किङ्किणी [illegible] 'उद्दाम' शब्दस्य [illegible] निपात आर्षत्वात्, अत एव यूनां=तरुणानां हृदयो[illegible]दकम् प्रबलस्मरप्रकटी[illegible] हृदयोन्मत्तता विधायकं स्वकीयं मेखलादाम=कटिसूत्रं मधुरविलासमुललिं[illegible] मधुरैः=कामिजनहृदयाह्लादकतया माधुर्यमुपगतैः विलासैः सकामचेष्टाविशेषैः मुललितम्=अतिशयमनोहारि यथास्यात्तथा दर्शयति। शृङ्गारप्रधानचेष्टाप्रतिपादनादयं शृङ्गारो रसः,

---

का, गति का, दृष्टि का, हास्य का, बोली का अनुकरण करती है, वह 'लीला' है। क्रीडा करना इसका नाम रमण है। इस शृङ्गार रस के मंडन, विलास, विब्बोक, हास्य, लीला और रमण ये चिह्न हैं।

अब सूत्रकार (सिंगारो रसो जहा) यह शृङ्गार रस जिस प्रकार से जाना जाता है, उस प्रकार को इस गाथा द्वारा प्रकट करते हैं—(सामा) "इयामा षोडशवार्षिकी" इस कथनानुसार कोई षोडशवर्षदेशीया—सोलह वर्ष की अवस्था वाली तरुण वयस्का-स्त्री (सद्दुद्दामं) क्षुद्रघंटिकाओं के शब्द से मुखरित अतएव (जुवाणाणं) युवा पुरुषों के (हियउम्मादणकरं) हृदय को प्रबलस्मरकी पीड़ा उत्पन्न करने से उन्मत्त करने वाले ऐसे (मेहलादामं) अपने कटिसूत्र को (महुरविलाससुललियं) कामिजनों के हृदय को आहादक होने के कारण मधुर लगने वाले विलासों-सकाम चेष्टा विशेषों-से अतिशय मनोहारी जैसे वह होता है उस प्रकार से (दाएती) दिखलाते है इस शृंगाररस में शृंगारप्रधान चेष्टाओं का प्रतिपादन होता है इसलिये इसे 'शृंगाररस'

ક્રીડા કરવી તે રમણ કહેવાય છે મંડન, વિલાસ, વિબ્બોક, હાસ્ય, લીલા તેમજ રમણ આ સર્વે શૃંગાર રસના ચિહ્નો છે.

હવે સૂત્રકાર (સિંગારો રસો જહા) શૃંગારરસ જેનાથી જણાય છે તેનું આ ગાથા વડે કથન કરે છે. (સામા) "इयामा षोडशवार्षिकी" આ કથન મુજબ કોઈ સોળ વર્ષની અવસ્થાવાળી તરુણવયસ્કા-સ્ત્રી (सद्दुद्दामं) क्षुद्रघंटिकाओથી મુખરિત તેથી (जुवाणाणं) યુવકોના (हियउम्मादणकरं) હૃદયોને પ્રબલતમ સ્મર પીડાથી યુક્ત કરીને ઉન્મત્ત કરનાર (मेहला दामं) પોતાના કટિસૂત્રને (महुरविलाससुललियं) કામુકોના હૃદયને આહ્લાદક હોવા બદલ મધુર લાગે તેવા વિલાસો-સકામ ચેષ્ટા વિશેષોથી અતિશય મનોહારી લાગે તેમ (दाएती) તેને બતાવે છે. આ શૃંગાર રસમાં શૃંગાર પ્રધાન ચેષ્ટાઓનું પ્રતિપાદન થાય છે એથી આને શૃંગાર રસ કહેવામાં આવે છે. (धी धीमं

इति बोध्यम् ॥इमं =पूर्वोक्तस्वरूपं शृङ्गारं=शृङ्गाररसं धिग् धिग्=धिगस्तु यस्तु साधूनां=सर्वविरतिमतां मुनीनां वर्जितव्यः । स शृङ्गारः मोक्षगृहार्गला=मोक्षद्वारस्यार्गलाभूतोऽतोऽसौ शृङ्गाररसः मुनिभिर्नाचरितव्यः=न सेवनीयः ॥६॥सू०१७१॥

अथ तृतीयमद्भुतरसं सलक्षणमाह—

मूलम्–विम्हयकरो अपुव्वो, अनुभूयपुव्वो य जो रसो होइ।
हरिसविसा उप्पत्ति,–लक्खणो अब्भुओ नाम॥६॥ अब्भुओ
रसो जहा–अब्भुयतरमिहएत्तो अन्नं किं अत्थि जीवलोगंमि।
जं जिणवयणे अत्था तिकालजुत्ता मुणिज्जंति? ॥७॥सू०१७२॥

छाया—विस्मयकरः अपूर्वः अनुभूतपूर्वश्च यो रसो भवति । हर्षविषादोत्पत्तिलक्षणः अद्भुतो नाम ॥ अद्भुतो रसो यथा–अद्भुततरमिह एतस्मात् अन्यत् किमस्ति जीवलोके । यत् जिनवचने अर्थाः त्रिकालयुक्ता ज्ञायन्ते ॥सू० १७२॥

टीका—'विम्हयकरो' इत्यादि—

अपूर्वः=अननुभूतपूर्वः, अनुभूतपूर्वः–पूर्वमनुभूतो वा विस्मयकरः–कस्मिंश्चिदद्भुते पदार्थे दृष्टे यदाश्चर्यं जायते, अतः स पदार्थो विस्मयकर उच्यते,

---

कहा है। (धी धीमं शृंगारं) इसपूर्वोक्त स्वरूपवाले शृंगारस–का धिक्कार हो धिक्कार हो (जो उ) क्योंकि यह (साहूणं) साधुजनों को (वज्जियव्वो) छोड़ने योग्य कहा गया है । कारण इसका यह है कि यह (मोक्खगिह अग्गलाओ) मोक्ष रूपी घरकी अर्गला रूप है । अतः (मुणिहि इमो नायरियव्वो) मुनि जनों को इसका सेवन नहीं करना चाहिये ॥सू० १७१॥

अब सूत्रकार लक्षणनिर्देश पुरस्सर तीसरे अद्भूत रस का कथन करते हैं ।–"विम्हय करो अपुव्वो अनुभूयपुव्वो" इत्यादि ।

शब्दार्थ–(अपुव्व) पूर्व में कभी अनुभव मे नहीं आये अथवा(अनु-

सिंगारं) આ ઉપરોક્ત સ્વરૂપવાળા શૃંગાર રસને ધિક્કાર છે, ધિક્કાર છે. (जो उ) કેમ કે એ (साहूणं) સાધુ જનોને સર્વ વિરતિ સંપન્ન મુનિજનોના માટે (विवज्जियव्वो) ત્યાજ્ય કહેવામાં આવ્યો છે. કેમ કે આ (मोक्खगिह–अग्गलाओ) મોક્ષરૂપી ઘરની અર્ગલા છે. એથી (मुणिहि इमो नायरियव्वो) મુનિજનો આ રસનું સેવન કરે નહીં. ॥સૂ૦૧૭૧॥

હવે સૂત્રકાર લક્ષણ સહિત ત્રીજા અદ્ભુત રસનું કથન કરે છે—

"विम्हयकरो अपुव्वो अनुभूयपुव्वो" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(अपुव्व) પૂર્વે કોઈ પણ દિવસે ન અનુભવેલ અથવા તો

तदर्शनोद्भवो रसोऽपि विस्मयकरो बोध्यः एतादृशो यो रसो भवति स हर्षविषादोत्पत्तिलक्षणः आश्चर्यमये शुभे वस्तुनि दृष्टे हर्षोत्पत्तिः, तथैवाशुभे वस्तुनि दृष्टे विषादोत्पत्तिः, एतदुभयचिह्नः अद्भुतो नाम रसो बोध्यः। उदाहरणमाह-अद्भुतो रसो यथा-इह=अस्मिन् जीवलोके=संसारे इतोऽन्यत्=अस्मात्परम् अद्भुततरम्=आश्चर्यतरम् किमस्ति?=न किंचिदप्यस्ति। कुतो न? इत्याह-यत्=यस्मात् कारणात् जिनवचने त्रिकालयुक्ताः=अतीतानागतवर्तमानरूपत्रिकालयुक्ता अपि अर्थाः=जीवादयः सूक्ष्मव्यवहितविरोहितातीन्द्रिया मूर्त्तादिस्वरूपा ज्ञायन्ते इति॥सू० १७२॥

भूयपुव्वो) અનુભવ में भी आये हुए ऐसे (विम्हयकरो) किसी अद्भूत पदार्थ के देखने पर जो आश्चर्य होता है, उस आश्चर्य का जनक वह पदार्थ विस्मय कर कहलाता है तथा उससे जो रस उत्पन्न होता है, वह रस-भी विस्मयकर कहा जाता है। इस अद्भूत रस का- लक्षण हर्ष और विषाद की उत्पत्ति होना है। आश्चर्य जनक किसी शुभवस्तु के देखने पर हर्षोत्पत्ति होती है, और अशुभवस्तु देखने पर विषादोत्पत्ति होती है। अतः यह अद्भूत रस इन दोनों चिह्न वाला होता है, ऐसा जानना चाहिये। अब सूत्रकार इस रस को जानने के लिये उदाहरण कहते हैं। वे कहते हैं कि (अब्भुओ रसो) 'यह अद्भूत रस इसप्रकार से है (जहा) जैसे-(अब्भुयतरमिह एत्तो अन्नं किं अत्थिजीवलोगंमि) इस-जीवलोक में इससे अधिक और दूसरा आश्चर्य-क्या है? (जं जिणवयणे तिकालजुत्ता अत्था मुणिज्जंति) जो जिन वचन में स्थित त्रिकाल-अतीत -अनागत-और वर्तमान कालवर्ती समस्त

(अनुभूयपुव्वो) અનુભવેલ (विम्हयकरो) કોઇ પણ અદ્ભુત પદાર્થને જોઇને જે આશ્ચર્ય થાય છે, તે આશ્ચર્યને ઉત્પન્ન કરનાર તે પદાર્થ વિસ્મયકારી કહેવાય છે. તેમજ તેના વડે જે રસ ઉત્પન્ન થાય છે, તે રસ પણ વિસ્મયકર કહેવાય છે આ અદ્ભુત રસનું લક્ષણ હર્ષ અને વિષાદની ઉત્પત્તિ થવી તે છે આશ્ચર્યોત્પાદક કોઇ શુભ વસ્તુને જોવાથી હર્ષ ઉત્પન્ન થાય છે. અને અશુભ વસ્તુને જોવાથી વિષાદની ઉત્પત્તી થાય છે. એથી આ અદ્ભુત રસ આ બન્ને ચિહ્નો યુક્ત હોય છે. હવે સૂત્રકાર આ રસને જાણવા માટે ઉદાહરણો પ્રસ્તુત કરે છે. તેઓ કહે છે કે (अब्भुओ रसो) આ અદ્ભુત રસ આ પ્રમાણે છે-(जहा) જેમ કે (अब्भुयतरमिह एत्तो अन्नं किं अत्थि जीवलोगंमि) આ જીવલોકમાં એના કરતાં બીજી કઇ નવાઈ પમાડે તેવી વાત છે. કે (जं जिणवयणे तिकाल जुत्ता अत्था मुणिज्जंति) જે જિન વચનમાં સ્થિત ત્રિકાલ-અતીત-અનાગત અને વર્તમાનકાલીન સર્વ

अथ चतुर्थं रौद्ररसं सलक्षणमाह—

मूलम्—भयजणणरूवसद्दंधयारचिंताकहाससमुप्पण्णो। सम्मोह-संभमविसायमरणलिंगो रसो रोद्दो ॥८॥ रोद्दो रसो जहा—भिउडी विडंवियमुहो संदट्ठोट्ठ इयरुहिरमाकिण्णो। हणसि पसुं असुरणिभ्भे भीमरासिय अइरोद्द! रोद्दोऽसि ॥९॥सू० १७३॥

छाया—भयजननरूपशब्दान्धकारचिन्ताकथासमुत्पन्नः। सम्मोहसंभ्रमविषादमरणलिङ्गो रसो रौद्रः॥ रौद्रो रसो यथा—भ्रुकुटिविडम्बितमुखः संदष्टौष्ठः इति रुधिरमाकीर्णः। हंसि पशुम् असुरनिभो भीमरासित अतिरौद्र! रौद्रोऽसि। सू० १७३॥

टीका—'भयजणण' इत्यादि—

भयजननरूपशब्दान्धकारचिन्ताकथासमुत्पन्नः—रूपं=शत्रुपिशाचादीनामाकृतिः,

---

सूक्ष्म व्यवहित एवं तिरोहित पदार्थ जान लिये जाते हैं। स्वभाव विप्रकृष्ट परमाणु आदि पदार्थ सूक्ष्म हैं। काल विप्रकृष्ट–राम–रावण आदि आदि पदार्थ व्यवहित हैं देश विप्रकृष्ट–सुमेरु पर्वत आदि पदार्थ तिरोहित हैं। इस प्रकार अतीन्द्रिय एवं अमूर्त्त स्वरूप जितने भी आगम-कथित त्रिकालवर्ति जीवादिक पदार्थ हैं, वे सब जिनवचन के प्रभाव से प्रत्यक्ष और परोक्षरूप से जानलिये जाते हैं॥ सू० १७२॥

अब सूत्रकार चौथा रौद्र रस का लक्षण निर्देशपूर्वक कथन करते हैं–"भयजणणरूव" इत्यादि

शब्दार्थ—(भयजणणरूवसद्दंधयारचिंताकहाससमुप्पण्णो) भय,

સૂક્ષ્મ વ્યવહિત અને તિરોહિત પદાર્થો જાણી લેવાય છે સ્વભાવ વિપ્રકૃષ્ટ પરમાણુ વગેરે પદાર્થો સૂક્ષ્મ છે. કાલવિપ્રકૃષ્ટ રામ-રાવણ વગેરે પદાર્થો વ્યવહિત છે, દેશવિપ્રકૃષ્ટ સુમેરુપર્વત વગેરે પદાર્થો તિરોહિત છે. આ પ્રમાણે જેટલાં આગમ કથિત ત્રિકાલવર્તી અતીન્દ્રિય અને અમૂર્ત સ્વરૂપ જીવાદિ પદાર્થો છે, તે સર્વે જિન વચનના પ્રભાવથી પ્રત્યક્ષ તેમજ પરોક્ષ રીતે જાણી લેવાય છે. ॥સૂ૦૧૭૨॥

હવે સૂત્રકાર ચતુર્થ રૌદ્ર રસનું લક્ષણ સહિત કથન કરે છે—

" भयजणणरूव " ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ-(भयजणणरूवसद्दंधयारचिंता कहा समुप्पण्णो) ભયોત્પાદક રૂપ,

शब्दः=तेषामेव शत्रुपिशाचादीनां शब्दः, अन्धकारः-निबिडतमः, एतेषां द्वन्द्वः, भयजननाः=भयोत्पादका ये रूपशब्दान्धकाराः-तेषां चिन्ता=तत्स्वरूपपर्यालोचनरूपा स्मृतिः, कथा=स्वरूपप्रकथनं च, उपलक्षणत्वाद् दर्शनमपि बोध्यम्, ततः समुत्पन्नः=संजातः, तथा-संमोहसंभ्रमविषादमरणलिङ्गः-संमोहः विवेकराहित्यम्, संभ्रमः=व्याकुलता, विषादः=ममाऽत्रप्रदेशे समागमनमशोभनमित्येवं शोकः, मरणं=भयोद्विग्नस्य गजसुकुमालहन्तुः सोमिलब्राह्मणस्येव झटिति प्राणोत्क्रमणम्, इत्यानि लिङ्गानि=चिह्नानि यस्य स तथाभूतो रौद्रो रसो भवति। नन्वयं भयजनकरूपादि स्मरणकथनदर्शनसमुत्पन्नः सम्मोहादिलक्षणो भयानक एव भवति, कथमस्य रौद्ररसत्वमभिहितम्? इति चेदाह-यद्यप्ययं भवत्कथनानुसारेण भयानक

जनक रूप, शब्द और अंधकार की स्वरूपपर्यालोचनारूप स्मृति से स्वरूप कथनरूप कथा से' दर्शन से उत्पन्न हुआ (संमोहसंभमविसायमरणलिंगो) तथा विवेकरहितपना रूप संमोह व्याकुलतारूप संभ्रम शोक रूप विषाद और प्राणविसर्जन रूप मरण इन-लिङ्गों चिह्नों वाला (रोद्दो रसो) रौद्र रस होता है। तात्पर्य कहने का यह है कि यह रौद्र रस भयजनक रूपादिकों के स्मरण आदि से उत्पन्न होता है और यह संमोह चिह्नों से जाना जाता है मेरा इस प्रदेश में समागमन ठीक नहीं है, इस प्रकार से शोक करने का नाम विषाद है। गज सुकुमाल को मारने वाले सोमिल ब्राह्मण की तरह भयोद्विग्न व्यक्ति के जो जल्दी से प्राणों का उत्क्रमण है वह मरण है।

शंका-भयजनक रूपादिकों के स्मरण से, कथन से एवं दर्शन से,-

શબ્દ અને અંધકારની સ્વરૂપ પર્યાલોચના રૂપ સ્મૃતિથી, સ્વરૂપ કથન રૂપ કથાથી દર્શનથી ઉત્પન્ન થયેલ (संमोहसंभमविसायमरणलिंगो) તેમજ વિવેકરાહિત્ય રૂપ સંમોહ, વ્યાકુલતા રૂપ સંભ્રમ, શોકરૂપ વિષાદ અને પ્રાણ વિસર્જન રૂપ મરણ આ ચિહ્નો યુક્ત (रोद्दो रसो) રૌદ્ર રસ હોય છે. તાત્પર્ય આ પ્રમાણે છે કે આ રૌદ્ર રસ ભયોત્પાદક રૂપ વગેરેના સ્મરણથી ઉત્પન્ન થાય છે. આ સંમોહન ચિહ્નોથી જાણવામાં આવે છે મારૂં આ પ્રદેશમાં સમાગમન ઉચિત નથી, આ પ્રમાણે ચિંતા કરવી તે વિષાદ છે. ગજસુકુમાલને મારનાર સોમિલ બ્રાહ્મણની જેમ ભયોદ્વિગ્ન વ્યક્તિના પ્રાણોનું જે જલ્દી ઉત્ક્રમણ છે, તે મરણ છે.

શંકા-ભયોત્પાદક રૂપાદિકોને સ્મરણથી, કથનથી અને દર્શનથી ઉત્પન્ન

एव, तथाऽपि पिशाचादिरौद्रवस्तुसंजातत्वादस्य रौद्रत्वं विवक्षितम्। अतो न कश्चिद् दोषः। किं च शत्रुजनादिदर्शने तच्छिरश्छेदने समुद्युक्तानां छागशूकरकुरङ्ग वधादिप्रवृत्तानां च यो रौद्राध्यवसायात्मको भ्रुकुटीभङ्गादिलिङ्गो रौद्रो रसोऽप्युपलक्षणत्वादत्रैव बोध्यः। अन्यथा स निरास्पद एव स्यात्। अत एवात्र रौद्रपरिणामयुक्तपुरुषचेष्टाप्रतिपादकमेवोदाहरणं वक्ष्यति। भयत्रस्तचेष्टाप्रतिपादकमुदाहरणं

उत्पन्न हुआ संमोहादिलक्षणोंवाला भयानक रसही होता है, फिर इसे रौद्ररस रूप कैसे कहा ?

उत्तर–यद्यपि यह आपके कथनानुसार भयानक रस ही है–तो भी पिशाच आदि रौद्र वस्तु के देखने आदि से यह उत्पन्न होता है, इसलिये इसमें रौद्रता विवक्षित हुई है। किंच–शत्रुजन आदि के दर्शन होनेपर उनके शिरच्छेद करने में कटिबद्ध हुए व्यक्तियों के और बकरा, शूकर एवं कुरंग–हिरण–आदि जानवरों की हिंसा करने में प्रवृत्त हुए व्यक्तियों के जो रौद्र परिणाम होते हैं, कि जो भ्रुकुटी भंग आदि चिह्नो से जाने जाते हैं वे भी रौद्ररस स्वरूप ही होते हैं। अतः उपलक्षण से रौद्ररस यहां पर जानना चाहिये। नहीं तो, रौद्राध्यवसाय रूप–रौद्ररस निराश्रय मानना पड़ेगा। इसीलिये रौद्रपरिणाम युक्त पुरुष की चेष्टाओं का प्रतिपादक ही उदाहरण यहां सूत्रकार ने कहा है। भय से त्रस्त हुए व्यक्तियों की चेष्टाओं का प्रतिपादन करने वाला उदा-

---

થયેલ સંમોહાદિ લક્ષણોવાળો ભયાનક રસ જ હોય છે, ત્યારે એને રૌદ્ર રસ રૂપ શા માટે કહેવામાં આવ્યો છે ?

ઉત્તર–ભલે કે તમારા કહ્યા મુજબ તો આ ભયાનક રસ જ છે છતાં એ પિશાચ વગેરે રૌદ્ર વસ્તુને જોવા વગેરેથી તે ઉત્પન્ન થાય છે, એથી આમાં રૌદ્રત્વ વિવક્ષિત છે. કિંચ શત્રુજન વગેરેના દર્શનથી, તેમનું શિરચ્છેદન કરવા માટે તત્પર થયેલ વ્યક્તિઓને અને બકરા, સૂકર તેમજ કુરંગ–હિરણ વગેરે જાનવરોની હિંસા કરવા માટે પ્રવૃત્ત થયેલ વ્યક્તિઓના જે રૌદ્ર રસ પરિણામ હોય છે અને જે ભ્રકુટી–ભંગ વગેરે ચિહ્નોથી જાણવામાં આવે છે તે પણ આ રૌદ્રરસ સ્વરૂપ જ હોય છે. માટે ઉપલક્ષણથી રૌદ્રરસ અહીં જ જાણવો જોઇએ નહિતર, રૌદ્રાધ્યવસાય રૂપ રૌદ્રરસ નિરાશ્રય માનવો પડશે એથી રૌદ્ર પરિણામ યુક્ત પુરૂષની ચેષ્ટાઓનું પ્રતિપાદક ઉદાહરણ જ અહીં સૂત્રકારે કહ્યું છે. ભય સંત્રાસ્ત વ્યક્તિની ચેષ્ટાઓનું પ્રતિપાદન કરનાર

स्वयमेवाभ्यूह्यम्। अतोदाहरणमाह–रौद्रो रसो यथा–भृकुटीविडम्बितमुखः–भृकुटिः =क्रोधादिना ललाटसंकोचनं तया विडम्बितं=विकृतं–भूतं मुखं यस्य स तथा, पुनश्च–सन्दष्टौष्ठः–सन्दष्टः=दन्तै–र्दष्ट ओष्ठो येन स तथाभूतः, इति=अतश्च–रुधिराकीर्णः–रुधिरैः आकीर्णः–शोणितसंकुलो हे भीमरसित!–भीमं=भयंकरं रसितं यस्य तत्संबुद्धौ,–हे भयजनकशब्दकारिन्! त्वम् असुरनिभ=दैत्य इव पशुं हंसि, अतो हे अतिरौद्र=अतिशयरौद्ररूपधारिन्! त्वं रौद्रोऽसि=रौद्रपरिणामयुक्तोऽसीति नरकनिगोदादिदुःखं भोक्ष्यसे ॥सू० १७३॥

हरण तो अपने आप जान लेना चाहिये। रौद्ररस का ज्ञान जिसप्रकार से हो सकता है सूत्रकार (रोद्दो रसो जहा) इन पदोंद्वारा उसी प्रकार के उदाहरणद्वारा प्रकट करते हैं–जैसे–(भिउडी विडंबियमुहो संदट्ठोट्ठइयरुहिरमाकिण्णो) पशुहिंसा में निरत बने हुए किसी हत्यारे मनुष्य से कोई धर्मात्मा मनुष्य यह कह रहा है कि अरे! यह तेरा मुख इस समय भृकुटी से विकरालबना हुआ है। क्रोधादिक के आवेग से तेरे ये दांत अधरोष्ठ को डस रहे हैं। खून से तेरा शरीर लथ पथ हो रहा है (भीमरसिय) जो तेरे मुख से शब्द निकल रहे हैं, बड़े भयावने हैं। अतः महाभयजनक शब्द बोलने वाले तुम (असुरनिभो) असुर जैसे बने हुए हो और (पसुं हणसि) पशुकी हत्या कर रहे हो। अतः (अइरोद्द) अतिशय रौद्ररूपधारी तुम (रोद्दोऽसि) रौद्रपरिणामों से युक्त होने के कारण रौद्ररस रूप हो–सो याद रखो, नरकनिगोद आदि के दुःखों को भोगोगे ॥ सू० १७३ ॥

ઉદાહરણ તો પોતાની મેળે જ જાણી લેવું જોઇએ. જે રીતે રૌદ્ર રસનું જ્ઞાન થઇ શકે છે હવે સૂત્રકાર (रोद्दो रसो जहा) તે પ્રમાણુ આ પદો વડે ઉદાહરણો પ્રસ્તુત કરીને સ્પષ્ટ કરે છે. જેમ કે–(भिउडी विडंबियमुहो संदट्ठोट्ठइयरुहिरमाकिण्णो) પશુ હિંસા માટે તત્પર થયેલા કોઇ ઘાતક માણસને કોઇ ધર્માત્મા પુરૂષ આ પ્રમાણે કહે કે અરે! આ તારૂં મોં ભમ્હાં ભ્રુકુટીઓથી વિકરાલ બની રહ્યું છે–ક્રોધ વગેરેના આવેગથી તારા દાંત અધરોષ્ઠોને ભીંસી રહ્યા છે તારૂં શરીર લોહીથી ખરડાઈ રહ્યું છે. (भीमरसिय) તારા વચનો અતી ભયોત્પાદક છે. એથી મહાભયજનક શબ્દો બોલનાર તું, (असुरनिभो) અસુર જેવો થઇ ગયો છો અને (पसुं हणसि) પશુની હત્યા કરી રહ્યો છો. એથી (अइरोद्द) અતિશય રૌદ્ર રૂપ ધારીતું (रोद्दोऽसि) રૌદ્ર-પરિણામથી યુક્ત હોવા બદલ રૌદ્રરસ રૂપ છો તો તું યાદ રાખ કે નરકનિગોદ વગેરેના દુઃખો ભોગવવા પડશે. ॥સૂ૦૧૭૩॥

अथ पञ्चमं व्रीडनकरसं सलक्षणं निरूपयति—

मूलम्–विणओवयारगुज्झगुरुदारमेरावइक्कमुप्पण्णो। वेलणओ नाम रसो, लज्जासंकाकरणलिंगो॥१०॥ वेलणओ रसो जहा–किं लोइयकरणीओ लज्जणी अतरंति लज्जयामुत्ति। वारिज्जम्मि गुरुयणो परिवंदइ जं वहुप्पोत्तं ॥११॥सू० १७४॥

छाया—विनयोपचारगुह्यगुरुदारमर्यादाव्यतिक्रमोत्पन्नः। व्रीडनको नाम रसो लज्जाशङ्काकरणलिङ्गः॥ व्रीडनको रसो यथा–किं लौकिककरण्या लज्जनीयतरं लज्जयामीति। वारिज्जे गुरुजनः परिवन्दते यत् वधूपोतम्॥सू० १७४॥

टीका—'विणओ' इत्यादि—

विनयोपचारगुह्यगुरुद्वारमर्यादाव्यतिक्रमोत्पन्नः–विनयोपचारः–विनययोग्ये=मातापित्रादिगुरुजने विनयकरणम्, गुह्यं=रहस्यम्, गुरुद्वारमर्यादा=पितृव्यकलाचार्यादि गुरुजनभार्याभिः सह औचित्येन वर्त्तनम्, एतेषां द्वन्द्वः, तेषां व्यतिक्रमः=विपर्ययस्तस्मादुत्पन्नः–संजातः, तथा–लज्जाशङ्काकरणलिङ्गः–लज्जा=

अब सूत्रकार पांचवे व्रीडनक रस का लक्षण को कहते हुए कथन करते हैं–"विणओवयार गुज्झ" इत्यादि।

शब्दार्थ–(विणओवयारगुज्झगुरुदार मेरावइक्कमुप्पण्णो) विनय करने के योग्य माता पिता आदि गुरु जनों की विनय के व्यतिक्रम–उल्लंघन–से मित्रादिजनों की गुप्त वार्ता आदि रूप रहस्य को अन्यजनों के समक्ष प्रकट करने से तथा पितृव्य–चाचा, एवं कलाचार्य आदि मान्यजनों की धर्मपत्नियों के साथ औचित्यपूर्ण व्यवहार का अतिक्रम करने से व्रीडनक रस उत्पन्न होता है। (लज्जासंकाकरणलिंगो)

હવે સૂત્રકાર પાંચમા વ્રીડનક રસનું લક્ષણસહિત કથન કરે છે—

"विणओवयारगुज्झ" ઇત્યાદિ—

શબ્દાર્થ–(विणओवयारगुज्झगुरुदारमेरावइक्कमुप्पण्णो) વિનય કરવા યોગ્ય માતાપિતા વગેરે ગુરુઓની સાથે અવિનયપૂર્ણ વ્યવહાર કરવાથી, મિત્ર વગેરેની ગુપ્ત વાત વગેરે રૂપ રહસ્યને બીજાઓની સામે પ્રકટ કરવાથી તેમજ પિતૃવ્ય (કાકા) અને કલાચાર્ય વગેરે માન્યજનોની ધર્મપત્નીઓ સાથે ઔચિત્યપૂર્ણ વ્યવહારના અતિક્રમ કરવાથી આ વ્રીડનક રસ ઉત્પન્ન થાય છે. (लज्जा संका करणलिंगो) લજ્જા અને શંકા ઉત્પન્ન થવી તે આ રસનું

शिरोऽधोऽवनमनादिरूपा, शङ्का=मां न कश्चित् किञ्चिद् वदेत् ? इतिरूपा, तयोः करणं=विधानं लिङ्गं=लक्षणं यस्य स तथाभूतो व्रीडनको नाम रसो भवति। अयं भावः-विनययोग्यानां मातापित्रादिपूज्यजनानां विनयोपचारव्यतिक्रमे सति सज्जनस्य पश्चाद् व्रीडा प्रादुर्भवति-अहो ! मया कथं मातापित्रादीनामपमानः कृतः ? इति, तथा-सुहृदां रहस्यस्य अन्यजनसन्निधौ कथने पश्चाद् सज्जनस्य व्रीडा भवति-कथं मया सुहृदो रहस्यमन्यजनसन्निधौ निवेदितम् ? इति, तथा-तथा-पितृव्यकलाचार्यादिगुरुजनानां भार्याणां शीलभङ्गे कृते सति पश्चाद् व्रीडा समुत्पद्यते-अहो ! मया दुरात्मना किमिदं दुष्कृतं कृतम् ? इति इत्येवं रूपेण व्रीडनको रसः समुत्पद्यते। तथा च-शिरोऽधोऽवमनगात्रसंकोचरूपा लज्जा, मां

लज्जा और शंकाकरना ये इस रस के चिह्न होते हैं। ऐसा (वेलणओ नाम रसो) यह व्रीडनक नाम का रस होता है। तात्पर्य इसका यह है कि-' विनय योग्य पूज्य माता पिता आदि गुरुजनों का यथायोग्य विनयोपचार जब उल्लंघित हो जाता है, तब सज्जन पुरुषों को बाद में लज्जा आती है। वे विचारते हैं कि अरे ! हमने क्यों माता पिता आदि जनों का अपमान किया है ? तथा अपने मित्रजनों का रहस्य जब दूसरे व्यक्तियों के पास प्रगट करता है, तब बाद में उस उद्घाटनकर्त्ता सज्जन को लज्जा आती है और वह सोचता है कि-' क्या मैंने दूसरों के समक्ष अपने मित्र के रहस्य का उद्घाटन किया ? तथा-पितृव्य, कलाचार्य आदि गुरुजनों की भार्याओं का शीलभंग कर देने पर मनुष्य को बाद में व्रीडा उत्पन्न होती है। वह सोचता है-मुझ दुरात्मा ने यह दुष्कृत क्यों किया ? इस प्रकार से यह व्रीडनक रस उत्पन्न होता है। शिर को नीचा नमाना शरीर को संकुचित करना इस

ચિહ્ન છે. એવો વ્રીડનક નામે રસ હોય છે. તાત્પર્ય આ પ્રમાણે છે કે વિનય યોગ્ય પૂજ્ય માતાપિતા વગેરે ગુરૂજનો સાથેનો ઉચિત વિનયોપચાર જ્યારે સજ્જનો વડે ઉલ્લંઘિત થાય છે ત્યારે તેમને લજ્જાની અનુભૂતિ થાય છે. તેઓ વિચાર કરે છે, કે ' અરે ! અમે માતાપિતા વગેરેનું અપમાન કર્યું છે.' તેમજ માણસ પોતાના મિત્રોની ગુપ્ત વાત જ્યારે બીજાને કહે છે ત્યારે તેને ગુપ્ત વાત કહ્યા બાદ લજ્જાની અનુભૂતિ થાય છે અને તે વિચાર કરે છે કે ' અરે ! મેં દુરાત્માએ આ કામ શું કામ કર્યું ?' આ પ્રમાણે તે વ્રીડનક રસ ઉત્પન્ન થાય છે લજ્જામાં મસ્તક નીચે થવું અને શરીર સંકુચિત

कश्चित् कचित् किमपि कथयिष्यति तु न? इत्येवं सर्वत्र या मनसोऽभिशङ्कना सा शङ्का, तयोः करणं=निष्पादनमेवास्य लक्षणमिति। अस्योदाहरणमाह-व्रीडनको रसो यथा-लौकिककरण्याः=लौकिकक्रियायाः परं लज्जनीयतरम्=अतिशयलज्जास्पदं किमस्ति? नातः परं किमपि लज्जास्पदमस्तीत्यर्थः, इत्यतोऽहं लज्जे। लज्जायां हेतुमाह-यत्=यस्मात् कारणात् वारिज्जम्मि देशी शब्दोऽयम्, विवाहे वधूवरयोः प्रथमसंगमे जाते 'वारिज्जंमि विवाहे इत्यर्थः गुरुजनः=श्वश्रूश्वशुरादिः वधूपोतं=स्नुषापरिधानवस्त्रं परिवन्दते=नमस्करोति। अस्य गाथाया अवतरणमेवं बोध्यम्-कस्मिंश्चिद् देशेऽयं व्यवहारोऽस्ति, यत् वधूवरयोः प्रथम-

---

रूप 'लज्जा' होती है। 'मुझसे कोई कुछ कहेगा तो नहीं?' इस प्रकार सर्वत्र जो मन में आशंका बन जाती है उसका नाम 'शंका' है। लज्जा और शंका इनका उत्पन्न करना ही इस व्रीडनक रस के लक्षण हैं। इसका ज्ञान जिस प्रकार से होता है, सूत्रकार उस प्रकार को (वेलणओ रसो जहा) इन पदों द्वारा प्रकट करने की सूचना देते हैं। वे कहते हैं कि-'यह व्रीडनक रस इस प्रकार से है।' जैसे-(किं लोइयकरणीओ लज्जणीअतरं ति लज्जया मुत्ति) इस लौकिकक्रिया से अधिक और लज्जास्पद बात क्या हो सकती है? मैं तो इससे बहुत लजाती हूँ। (वारिज्जम्मि गुरुजणो परिवंदइ जं वहुप्पोत्तं) वधूवर के प्रथम संगम होनेपर गुरुजन-सास ससुर आदि-जो वधूपोत को-वहु द्वारा परिधृत वस्त्र की प्रशंसा करते हैं। इस गाथा का अवतरण इसप्रकार से है-किसी देश में ऐसे चाल है-कि 'जब वधूवर का

કરવું થાય છે 'મને કોઇ કંઈ કહેશે તો નહીં?' આ પ્રમાણે મનમાં જે આશંકાઓ ઉત્પન્ન થાય છે તે 'શંકા' છે લજ્જા અને શંકા ઉત્પન્ન થવી તેજ વ્રીડનક રસનું લક્ષણ છે આ રસનું જ્ઞાન કેવું હોય છે, સૂત્રકાર તે વિષયમાં કહે છે કે 'આ વ્રીડનકરસ આ પ્રમાણે છે. જેમ કે (કિં લોઇયકરણીઓ લજ્જણીઅતરંતિ લજ્જયા મુત્તિ) આ લૌકિક વ્યવહારથી વધારે કઇ લજ્જાસ્પદ વાત થઇ શકે છે? 'મને તો એનાથી બહુજ શરમ આવે છે.' (વારિજ્જમ્મિ ગુરુજણો પરિવંદઇ જં વહુપ્પોતં) મને તો આનાથી બહુજ શરમ આવે છે (વારિજ્જમ્મિ ગુરુજણો પરિવંદઇ જં વહુપ્પોત્તં) વધૂ-વરના પ્રથમ-સમાગમ પછી ગુરૂજનો-સાસુસસરા વગેરે-વહુએ પહેરેલા વસ્ત્રના વખાણ કરે છે. આ ગાથાનું અવતરણ આ પ્રમાણે છે-કોઈ એક

सुहागे यदि वध्वा निवसनं शोणिताभिषिक्तं भवति, तदा सा पूर्वमकृतसंगमाऽतः सती वर्तते इति लोका मन्यन्ते। तस्यास्तद्रक्तारुणितं वसनं तत्सतीत्वख्यापनार्थं प्रतिगृहं भ्राम्यते। तस्याः श्वशुरादयो गुरुजना बहुमानपुरस्सरं तद्वस्त्रं वन्दते। अयं देशाचारमनुसृत्य कस्याश्चिद्वध्वास्तथाविधं निवसनं प्रतिगृहं नीयते गुरुजनैश्च तद्वन्द्यते। तद् दृष्ट्वा वधूः स्वसखीं वदति -'किं लोइयकरणीओ' इत्यादि॥सू.१७४॥

इतिश्री विश्वविख्यात जगद्वल्लभादिपदभूषित बालब्रह्मचारी 'जैनाचार्य' पूज्यश्री घासीलालव्रतिविरचिता "अनुयोगद्वारसूत्रस्य" अनुयोगचन्द्रिकाख्यायां टीकायां प्रथमो भागः समाप्तः

सुहागरात्रि में प्रथम संगम होता-है-तब उस संगम में-यदि वधूका पहिरा हुआ वस्त्र-खून से युक्त होता तो, उससे वह ऐसी जानी जाती है कि-'यह पहिले अकृतसंगमा रही है अतः सती है। ऐसा लोग जानते हैं। उसके उस रुधिररक्त--वस्त्र को हर एक घर में उसके सतीत्व के ख्यापन के लिये घुमाया जाता है। उसके श्वशुर आदि गुरुजन बहुमान पुरस्सर उस वस्त्र की प्रशंसा करते हैं। इसी देशाचार को लेकर किसी वधू के उस प्रकार के वस्त्र को गुरुजनों द्वारा वंदित होता हुआ देख-कर किसी वधू ने अपनी सखी से ऐसा कहा है-कि" किं लोइयकरणीओ इत्यादि। ॥ सू० १७४ ॥

जैनाचार्यश्री घासीलालजीमहाराजकृत 'अनुयोगद्वार' सूत्र की अनुयोगचन्द्रिकाटीका का प्रथम भाग समाप्त

દેશમાં એવી પ્રથા છે કે જ્યારે સુહાગરાત્રિમાં વધૂવરનો પ્રથમ-સમાગમ થાય છે ત્યારે તે સંગમમાં જો વધૂએ પહેરેલું વસ્ત્ર લોહીવાળું થઈ જાય છે તો તેથી એમ માનવામાં આવે છે કે તે સ્ત્રી પહેલા અકૃતસંગમાં રહી છે. એથી તે સતી છે. એવું લોકો માને છે તેથી વધૂના તે લોહીથી ખરડાયેલા વસ્ત્રને તેના સતીત્વની પ્રસિદ્ધિ માટે દરેકે દરેક ઘરમાં બતાવવામાં આવે છે તેના શ્વસુર વગેરે ગુરૂજનો ભારે સન્માનપૂર્વક તે વસ્ત્રોના ખૂબજ વખાણ કરે છે. આ જાતના લોકાચારને અનુલક્ષીને કોઇ એક વધૂના વસ્ત્રને ગુરૂજનો વડે પ્રશંસિત થતું જોઇને તે વધૂએ પોતાની સખીને આ પ્રમાણે કહ્યું છે કે-" किं लोइयकरणीओ इत्यादि " ॥सू०१७४॥

જૈનાચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજીમહારાજકૃત 'અનુયોગદ્વાર સૂત્ર' ની અનુયોગ-ચન્દ્રિકાટીકાનો પહેલો ભાગ સમાપ્ત.